श्रीः

बृहन्निघंटुरत्नाकर

(हिन्दीटीकासहित)

प्रथम / द्वितीय भाग

टीकाकार

श्री० दत्तराम श्रीकृष्णलाल माथुर

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रीः

बृहन्निघंटुरत्नाकर

(हिन्दीटीकासहित)

प्रथम भाग

टीकाकार
श्री० दत्तराम श्रीकृष्णलाल माथुर

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
बम्बई-४

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संस्करण : मई २०११, संवत् २०६८

मूल्य : २२० रुपये मात्र।

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

© सर्वाधिकार : प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass Prop: Shri Venkateshwar Press, Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रस्तावना.

श्रीमान् भरतखंडनिवासी वैद्यजनोंको सविनय विदित करनेमें आता है कि, इस संसारका मूल केवल शरीर है. जिस शरीरके उपभोगकेवास्तेही अनेक प्रकारकी युक्तियोंके साथ अनेक अनेक इस संसारके पदार्थ तैरयार होते हैं. ऐसा कोई पदार्थ दीखनेमें और सुन्नेमें नहीं आता है कि, जिस पदार्थका उपयोग इस शरीरको नहीं होय. और चार प्रकारके पुरुषार्थोंको वश करनेमें इस जीवमात्रको शरीरके सिवाय दूसरा साधन नहीं है कि,—जिससे वो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ए चतुर्विध पुरुषार्थ साधले. इस्में प्रमाण यह है कि, "देहादुत्पद्यते पुंसः पुरुषार्थचतुष्टयम्" ऐसे इस पुरुषार्थचतुष्टयको कारणीभूत इस शरीरको रक्षण करना यह सर्व जीवमात्रको इष्टहै, इस शरीरको रोगरहित रखना यहही इसका रक्षण है. इससे तो यह सिद्ध भया कि, यदि शरीर है और वह सदा रोगग्रस्त है तब उसकरके कौनसा पुरुषार्थ हो सक्ता है? इसवास्ते पुरुषार्थोंका साधन आरोग्य (नीरोग शरीर) ही कहना यहही योग्य है. इस्में यह प्रमाण है कि, "धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्" अब देखिये विद्वज्जन हो! प्रथम तौ कहा है कि, पुरुषार्थसाधन शरीर है. अब कहा कि, पुरुषार्थ साधन आरोग्य है. ऐसी दो प्रकारकी उक्ति क्योंकर होती है? ऐसे संदिग्ध विषयमें विचार करनेसे यह सिद्ध होता है कि, इन दोनों उक्तिओंसें एकही अर्थ निकलता है कि, रोगरहित शरीरही पुरुषार्थोंका साधन है, अब उस शरीरके आरोग्यका और जीवन कहिये आयुष्य तथा कल्याणका हरण करनेमें रोग निरंतर तत्पर रहते हैं. इस्में यह शार्ङ्गधरका प्रमाण है कि, "रोगास्तस्यापहन्तारः श्रेयसो जीवितस्य च" इसवास्ते उन रोगोंका नाश होना यहही शरीरका रक्षण है.

ऐसे इस शरीरके रक्षणके वास्ते चिकित्सा कहिये औषध आदिकोंका उपचार करना आवश्यक है. अब अमुक रोग होय, तौ उसपर अमुक चिकित्सा करना चाहिये, ऐसा ज्ञान होनेके वास्ते तिसट आदि आचार्योंने केवल लोकोपकारार्थ आयुर्वेदके ग्रंथ बनाये हैं, यह आयुर्वेद साक्षात् उपवेद है. इस्में यह प्रमाण है कि "ऋग्वेदस्योपवेदोयमायुर्वेद इति स्मृतः। सृष्ट्युत्पादनचित्तेन स्मृतः पूर्वं स्वयंभुवा॥" इत्यादि। इस आयुर्वेदकी संहिता पृथक् पृथक् बहोतही होगई हैं. परंतु ये संहिता-ग्रंथ बहोतही कठिन है. इसीसे उन सब ग्रंथोंको कोई प्रायः नहीं पढसक्ता है.

इस हेतुसे सर्वसाधारण मनुष्यमात्रको उस आयुर्वेदका सहजहीमें ज्ञानहोनेके वास्ते हमारा (बृहन्निघंटुरत्नाकर) ग्रंथमें प्रयत्न है.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इस पुस्तकको मथुरानिवासी पंडित दत्तराम चौबे इन्होंसे बनवाकर हमने अपने "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखानामें छपाया है. इस सर्वभी ग्रंथका आरंभसे लगाकर सब रजिष्टरी हक्क राजनियमके अनुसार हमने अपने स्वाधीन रक्खा है. कोईभी महाशय अविचारसे छपनेकी चेष्टा नहीं करे.

अब हम अपने ग्राहकजनोंको प्रार्थना करते हैं कि--यह चौथे वर्षका चतुर्थ भागभी तैयार होकर आप लोगोंके दर्शनकी इच्छा कर रहा है. इस वास्ते सुजन वैद्यलोग इसको अपना उदार आश्रय देकर कृतकृत्य करेंगे. और इसके साहाय्यसे रोगोंका विनाश करके अपने और दूसरेके शरीरको आरोग्य करके सर्वकार्यदक्ष शरीरद्वारा धर्मादिक चतुर्विधपुरुषार्थोंको प्राप्त होकर अपने मानवजन्मको सफल करेंगे, इति शम्।

आपका कृपाभिलाषी--

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना--कल्याण--मुंबई.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्रष्टव्य सूचना।

लीजिये ! देखिये ! अवश्य देखिये ! निरन्तर देखिये ! फिरभी देख लीजियेगा !

ऐसा कौन मनुष्य होगा कि, जिसको वैद्यविद्यासे प्रीति न होगी, और साल-भर में दो चार दफे इसके अनुशरण कर्त्ता वैद्य का आश्रय न लेताहो। क्योंकि यह देह रोगोंका घर है। यथा "शरीरं रोगमन्दिरम्" अतएव सर्व देशहितैषी, राजा महाराजा और सत्पुरुष वैद्यकी अत्यन्त तन मन धनसे प्रतिष्ठा करतेहैं तथा वाग्भट, वैद्यको प्राणोंका आचार्य्य लिखते हैं। "राजा राजगृहासन्ने प्राणाचार्य्यनिवेशयेत्" अर्थात् राजा प्राणाचार्य्य (वैद्य) को अपने घरके पास रक्खे। इस वाक्य को भारतवासी राजा महाराजा और सेठ साहूकार आदि तो सामान्य मानते हैं परन्तु मानना अंग्रेजोंका सत्य है कि विना डाक्टरके पत्तामी नहीं हिलाते। इसी कारण देखिये कि जैसे हृष्टपुष्ट अंग्रेजहैं, वैसे इस आर्यावर्त्त के मनुष्य बहुत थोड़े निकलेंगे। यह वैद्यविद्या ऐसी वस्तु है कि जो सर्वथा कुछ नहीं पढ़े वेभी एकदो औषधि अवश्य कंठाग्र रखतेहैं। और तो क्या पशु, पक्षी, आदिभी जब उनके रोग होते हैं, तो वेभी वनस्पति आदि खाकर वमन, विरेचनद्वारा अपनी देहकी रोगों से रक्षा करते हैं, अब जो मनुष्य होकें रोगोंसे देहरक्षा न करे, वो पशुओंसेभी बढ़कर है। इस लिखनेसे हमारा यह प्रयोजन है, आज कल इस भारतखंडमें बहुतसे मनुष्योंने देशोन्नतिपर कमर बांध रक्खी है परंतु जिसदेहसे अनेक अलभ्य वस्तुओंका लाभ हो सक्ता है, उसकी ओर कुछभी दृष्टि नहीं है। प्रत्येक वर्षमें हजारों मनुष्य इन रोगरूप शत्रुओंके द्वारा वध किये जाते हैं। अतएव हम सबको चाहिये कि, जैसे बने तैसे अपनी देहरक्षा सर्व प्रकार करे। क्योंकि नीतिमें लिखा है कि आपत्तिके अर्थ धनकी रक्षा करे, और धनसे स्त्री पुत्रादिकी रक्षा करे, तथा धन और स्त्री पुत्रादि द्वारा अपने आपकी रक्षा करनी चाहिये। सो देहरक्षा वैद्य पर निर्भरहै। परंतु वैद्योंकी तरफ देखते हैं तो निरक्षर भट्टाचार्य जिनको यहभी ज्ञान नहीं है कि निदानचिकित्सा किस चिडियाका नामहै और राजका आतंक न होनेसे माली, काछी, धोबी, कोरी, आदि नीच जात जिसकी इच्छा हुई वो दो चार झूठी मूठी दवाई ले वैद्य बन बैठे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मालाकारश्चर्मकारोनापितोरजकस्तथा
वृद्धारण्डाविशेषेणकलौपञ्चचिकित्सकाः ॥

यथा ।

अर्थ-माली, चमार, नाई, धोबी और वृद्ध रंडा स्त्री, ये पांच कलियुगके वैद्य हैं देखो ऐसे वैद्योंके होनेसे कैसा अनर्थ हुआ है कि, इनके आगे अब पढ़े लिखे वैद्य की पूछ कम होगई और इसी कारण हिन्दुस्थानमें आयुर्वेद शास्त्रका पठन पाठन दिन प्रति दिन अस्तप्रायसा होगया ।

दूसरे ऐसेही वैद्योंसे अब वैद्योंकी औषधका विश्वास जाता रहा । और मूर्ख मनुष्य कहते हैं कि आज कल हकीमोंकी और डाक्टरोंकी औषध तत्काल फलदायक है और जो शारीरक अर्थात् देहके अवयवोंका ज्ञान, तथा चीरना फाडना, तथा यंत्र और शस्त्र इत्यादि इनके हैं वो, हमारे वैद्य शास्त्रमें तो देखनेकोभी नहीं हैं ऐसे ऐसे अनेक कारणोंको सोचा तो यही निश्चय हुवा ।

कि यह केवल अपने बडे२ग्रन्थोंके पठन पाठन उठ जानेका कारण है यदि अपने ग्रन्थोंको देखें तो कदापि डॉक्टर और हकीमोंकी विद्यामें लालसा न होवे । दूसरे इस उष्ण प्रधान देशमें यूरोप आदि शीतदेशोंकी अतितीक्ष्ण औषधोंकी अपेक्षा हमारी भारतीय मृदुवीर्य्य औषधि सर्वथा कल्याण कर्त्ता है इससे हमको चाहिये कि अपने प्राचीन ग्रन्थोंको अवश्य देखें; परन्तु प्रथम उन ग्रन्थोंका मिलना कठिन, यदि मिलेभी और शुद्धाशुद्ध मिले तो फिर क्या कामके और शुद्धग्रन्थभी मिले तो उनके पढानेवाले तथा पढनेवाले न मिलेंगे, इन सब कारणोंको विचार यह निश्चय हुआ कि ।

कोई ऐसा ग्रन्थ रचाजाय कि जिसके देखनेसे ही सर्व आयुर्वेदके विषय सुगम रीतिसे मालूम होजावे और जो जो विषय जिस २ ग्रन्थके उत्तम होवें वो इसमें यथाक्रमपूर्वक लिखे जाँवें, तथा उचित २ स्थानोंमें फारसी इंग्रेजीका भी मत प्रकाशित कराजावे यह विचार हमने बृहन्निघंटुरत्नाकर ग्रन्थ रचनेका प्रारंभ करा ।

इस ग्रन्थमें आयुर्वेदोत्पत्तिनामाध्याय, शिष्योपनयनीयाध्याय, अध्ययनसंप्रदानीयाध्याय, प्रभाषणीयाध्याय, इसके अनन्तर, १० अध्यायोंमे शारीरक, जिसमें (गर्भवतीके नियम, मनुष्यके देहके संपूर्ण अवयवोंका पृथक् २ वर्णन विस्तार पूर्व-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क कियाजायगा) उपरांत बालकके जन्मोत्तरविधि, प्रसूताके नियम, बालककी रक्षाविधान, बालककी प्रकृतिवर्णन, देशवर्णन, काल वर्णन, दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, अवस्था वर्णन, व्याधि आदिके लक्षण, चिकित्सा वर्णन, यंत्राध्याय, शस्त्राध्याय, विशिखानुप्रवेशनीयाध्याय, शकुन, दूत, कालज्ञान, औषधके लक्षण, और औषध परिभाषा, द्रव्यकी परीक्षा, औषध ग्रहणमें औषधकी, संकेत, प्रतिनिधि, द्रव्यगत पंचपदार्थ, दीप्तादिगुण, हरीतक्यादि, सर्व औषधोंके प्रसिद्ध नाम, संस्कृतनाम, और यथाप्राप्त अंग्रेजी फारसीके नाम गुण ।

औषधोंके तोल हिन्दी, अंग्रेजी, फारसी; स्वरस, मंथ, हिम, फांट, क्वाथ, तैल, घृत, आदि की विधि; धातूनका शोधन मारण सविस्तर वर्णन होगा;वमन, विरेचन, अनुवासन, स्वेदन, और स्नेहनविधि, धूम्रपान, गंडूषविधि, जोक लगाना, दागना, फस्तखोलना, नेत्रप्रसादन कर्म, नाड़ीपरीक्षा, मूत्रपरीक्षा, नेत्रपरीक्षा, जिह्वापरीक्षा, स्पर्श, स्वर, और मलपरीक्षा, अग्रोपहरणीयाध्याय, योग्यासूत्रीय, क्षारपाक, दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञाना, कर्णवेध और बंधन, आमपक्वैषणीय, त्रिस्नैषणीय, हिताऽहित, कृत्याकृत्य इन अध्यायोंका वर्णन, निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय, और, संप्राप्ति का वर्णन, ज्वररोग का ज्योतिषद्वारा निर्णय, ज्वर का निदान, ज्वर की चिकित्सा, (जिस्में हिम, फांट, क्वाथ, गोली, तैल घृत, पाक, चूर्ण, आसव, रस, और मंत्रादि द्वारा ज्वरका निवारण तथा फारसी चिकित्सा, अंग्रेजी निदान चिकित्सा, भी कुछ कहा है) ज्वरका कर्मविपाक तथा धर्मशास्त्रकी विधिसे प्रायश्चित्त वर्णन–इसी प्रकार अतीसार संग्रहणी, ववासीर, पांडू, रक्तपित्त, क्षई, खासी, श्वास, से आदिले बालविरोग, स्त्रीरोग और विषरोगपर्यंत की चिकित्सा, लिखी है, तिसके पीछे वाजीकरणाधिकार अर्थात् नपुंसक की चिकित्सा, और रसायनाधिकार लिखा जायगा, । ए सब विषय इस ग्रन्थमें विस्तार पूर्वक वर्णन करे हैं । प्रथम संस्कृत श्लोक और उस्के नीचे सरल भाषा टीका लिखी जायगी । और अन्य ग्रंथोंसे इस ग्रन्थमें यह अति विचित्रता है कि जो प्रकर्ण लिखाहै वी इसमें गुरु शिष्यके संवाद पूर्वक लिखाहै. इसमें सर्व पठन पाठन कर्त्ता मनुष्योंके इसके विषय बहुत ठीक २ कंठाग्र होसकते हैं ।

इस ग्रन्थमें यह भी नियम रहेगा कि, चरक, सुश्रुत, वाग्भट, और भावप्रकाशमें जो विषय उत्तम हैं उन सबकी भाषाटीका करके इसमें लिखेंगे, बहुत कहाँतक

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लिखे यह एक ही ग्रन्थ भारतवासी पुरुषोंके लिये ऐसाहै कि अब दूसरे ग्रन्थ लेनेका कुछ प्रयोजन न रहैगा. जिनको थोडाभी शास्त्रमें परिचय है उनको यह ग्रन्थ अति उपकारी होगा. सर्व साधारण गृहस्थोंको अपने देहकी और अपने संतति आदि की रक्षार्थ इस ग्रन्थकी एक एक प्रति घरमें अवश्य रखनी चाहिये । अल-मतिविस्तरेण ।

आपका-दत्तराम चौबे मथुरा निवासि०

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गर्भाशयका चित्र.

पृष्ठ ११६

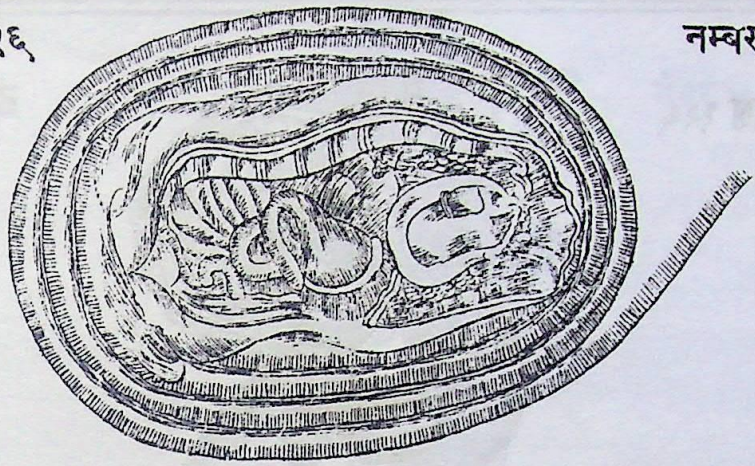

नम्बर १

यमलगर्भका चित्र.

पृष्ठ १२६

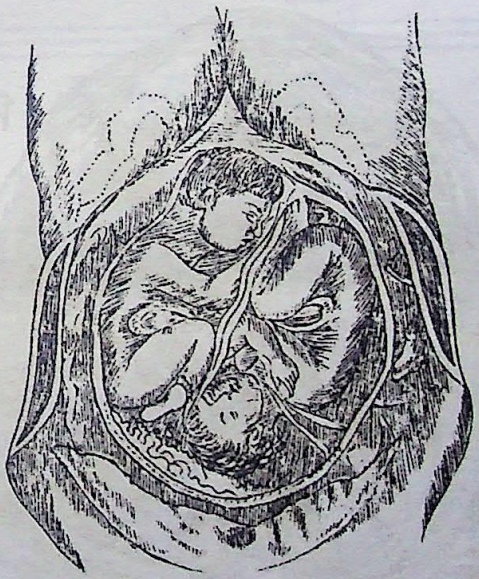

नम्बर २

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अनेक गर्भका चित्र.

पृष्ठ १२६

नंबर ३

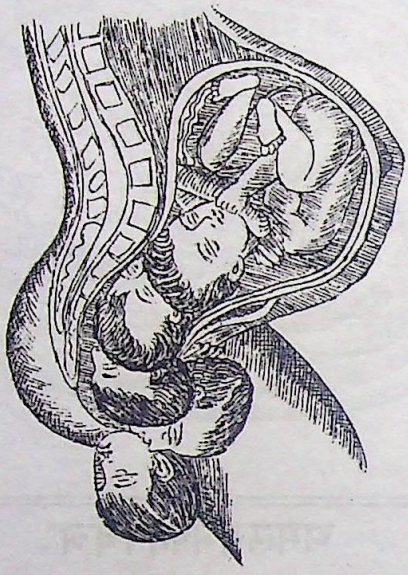

विकृताकृति.

पृष्ठ१२७

नंबर ३

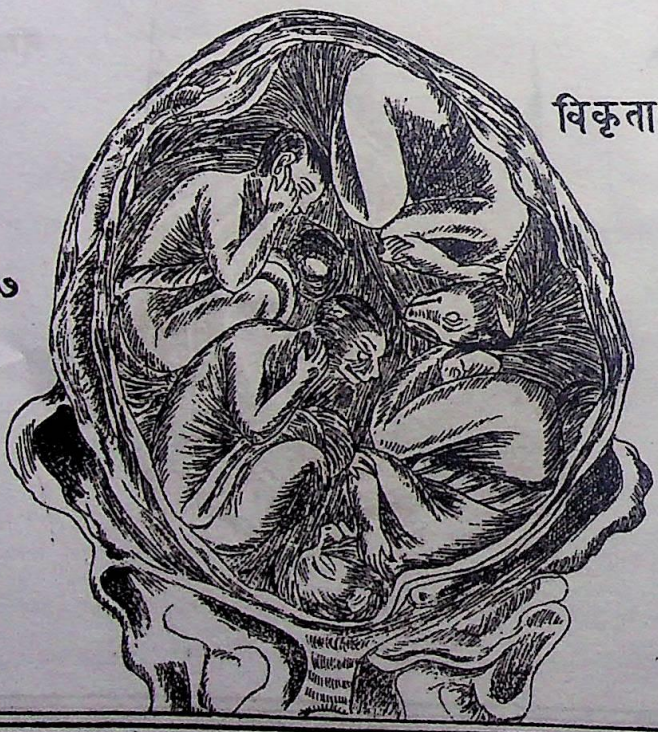

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राक्षसी गर्भका चित्र.

पृष्ठ १३२

नंबर ४

फुप्फुस (फेंफडा)

पृष्ठ १८०

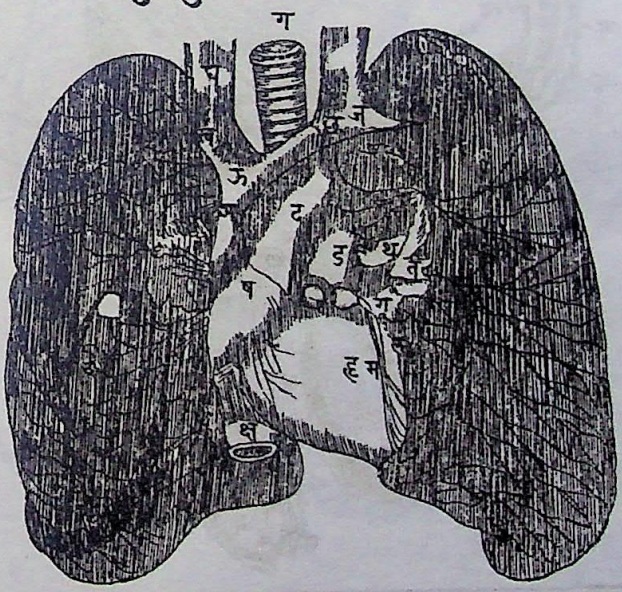

नंबर ५

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इस फुप्फुसचित्रमें ग श्वासनाड़ी इसके द्वारा मुखनासा कृष्ण बाहरकी वायु फुप्फुसमें प्रवेश करे हैं.

ष मूल अन्ननाड़ी.
ड. आभ्यंतर कंठशिरा.
ज.छ.झ.ञ ये विशेष २ शिरा.
ञ ऊर्द्धस्थूल महाशिरा.
ट धमनी मूल.
च ऊर्ध्वस्थ दक्षिण हृत्प्रकोष्ठ
ड दक्षिण फुप्फुस धमनी.
थ धामनिक प्रणाली.
त वाम फुप्फुस धमनी.
ह निम्नस्थ दक्षिण हृत्प्रकोष्ठ.
म हृद्बाह्यावृत्ति.
क्ष निम्नस्थूल महाशिरा.
ण ऊर्द्धस्थ वाम हृत्प्रकोष्ठ.
ल निम्नस्थ वाम हृत्प्रकोष्ठ.
फ फुप्फुस
क फुप्फुसका ऊर्द्धखण्ड
द फुप्फुसका मध्यखंड और नीचे का खंड.

पुंजननेंद्रिय.

पृष्ठ १९१ नम्बर ६

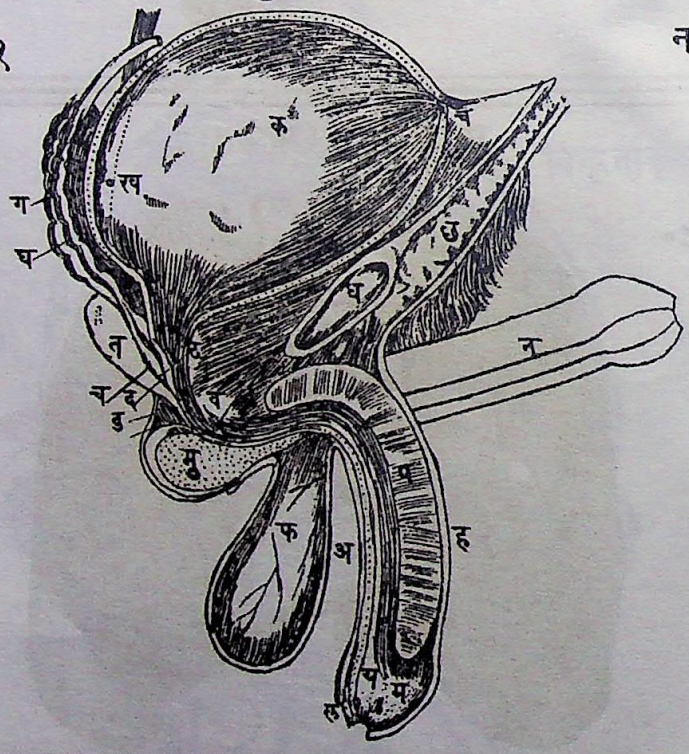

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इस पुंजननेंद्रियसंज्ञक चित्रमें क वस्ति वा मूत्राशय.

ध	उपस्थिकास्थिसन्धि.	द	वस्तीका अधोदेश.
तट	मेढ्रभूमि.	अ	मूत्रस्रोतः
ड	कलायिका.	च	रेतोनाड़ी शुक्रवाहिनी.
फ	अण्डकोश.	ख	मूत्रनाडीरन्ध्र
घ	बीजकोश	छ	लक्
तट	इस जगेसें ल पर्यंत मेढ्र	न	शलाका व्यवहारकी अवस्था लिंग इस प्रकार आकृष्ट तथा गुप्त करके इस रन्ध्रमें शलाका प्रवेश करी जाती है.
मु	लिङ्गमुंड		
य	लिंगसरित् वा लिंगग्रीवा.		
ल	असंसक्त अग्रचर्म.		
प	लिंगगात्र.		

स्त्रीजननेंद्रिय.

पृष्ठ१९३ नंबर७

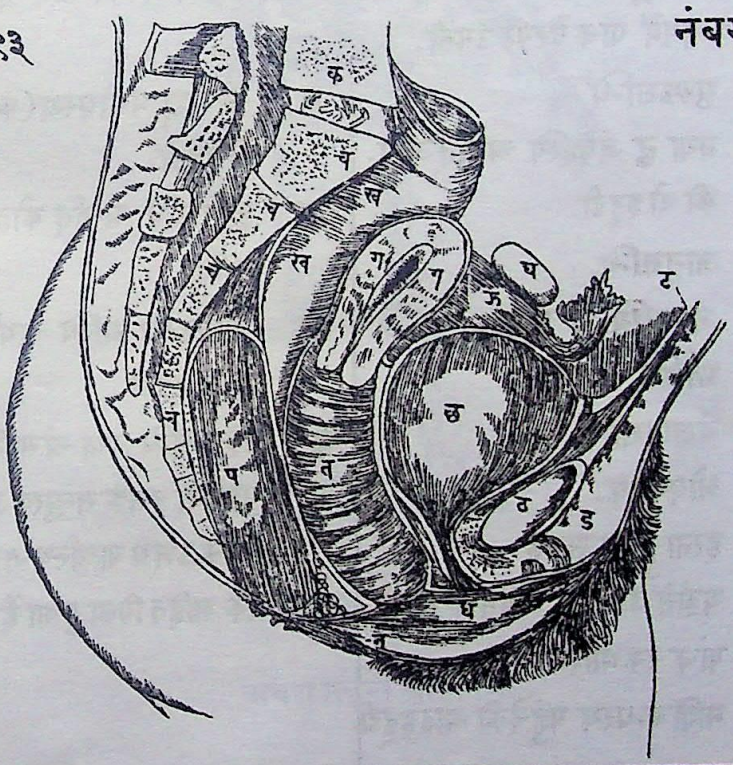

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इस स्त्रीजननेंद्रिय संज्ञक चित्रमें भ भगमणि.

न भगोष्ठ.
ध भगपक्ष.
द भगलिंग
त योनि वा स्त्रीद्रियविवर.
गग जरायु वा गर्भाशय.
य डिम्ब कोश.
ट मूत्रनाडी.
छ वस्ति वा मूत्राशय.
प गुदा
ठ उपस्थिकास्थिसंधि.
झ प्रशस्त रज्जु.
क कटिस्थनिम्नकशेरुका.
चचच त्रिकास्थीका ऊर्ध्वांश.
व त्रिकास्थीका निम्नांश
खख कलावृत निम्नौत्र.

इस नरकंङ्काल संज्ञक चित्रमें न गुल्फ सन्धि और उस जगेकी सात हड्डी इसके अग्रभागमें पांच पैरकी उंगली.

ढ गुल्फसन्धि.
ठ तथा ड जंघास्थि अर्थात् जंघाकी दो हड्डी.
ञ जानुसन्धि.
ट जान्वस्थि वा घोटू.
ऊ ऊर्वस्थि
ज वंक्षणसन्धि.
थ श्रोएयस्थि.
छ हस्ता ङ्गुलि सकल.
छ यहांसें लेकर च पर्यंतके अंशमें पांच रकभास्थि.
च मणिबन्धस्थ पहुंचेकी आठ हड्डी.
ड. और घ प्रकोष्ठस्थ (कलाईकी) दो हड्डी.
ग कूर्परसन्धि अर्थात् कोहनीकी-सन्धि.
ख प्रगण्डस्थ अस्थि अर्थात् बाजूकी हड्डी.
द स्कंधसन्धि तथा अंसास्थि.
क पृष्ठवंश इसके सन्मुख उरोस्थि इनके उभय पार्श्वस्थ जत्रुद्वयक रके सहित मिला हुआ है.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठवंश क यहांसें लेकर गुह्य देशके पश्चात् भागमें समाप्त हुआहै. इसके निम्नखंडका नाम त्रिक है.	त पार्श्वओंका समूह है. पृष्ठवंश अर्थात् पीठके वांसके ऊपर में वदनमंडलास्थि तथा करोट्यस्थि- आदि जाननी.
द यहांसें लेकर उरोस्थिपर्यंत जत्रुद्वय क- हातीहै.	

पृष्ठ २३७ नंबर ८

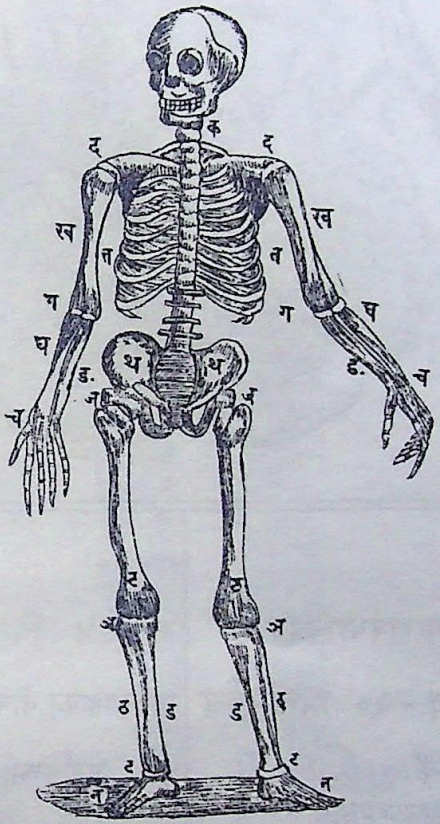

नरकङ्काल

अथवा मनुष्य अस्थिपंजर.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मस्तिष्क संबन्धिचित्र.

पृष्ठ २४०

नंबर ९

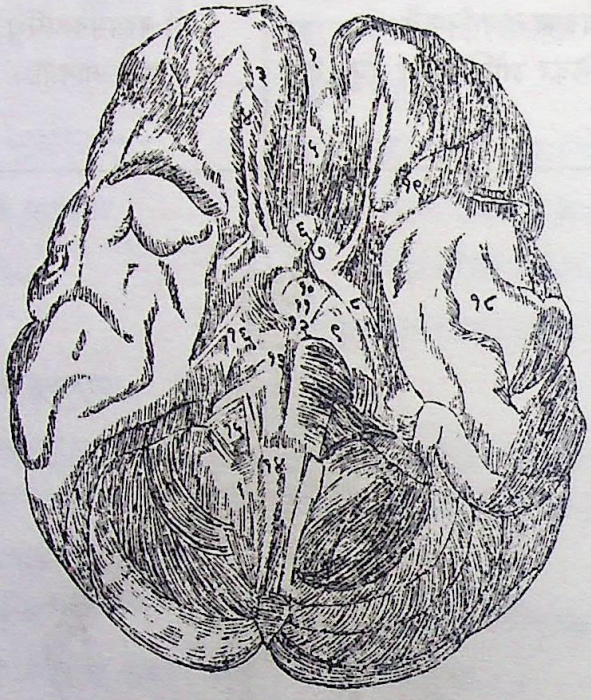

इस मस्तिष्क संबंधी चित्रमें १- १८ - १९ - २० चिन्हपर्यन्त

१ क्षुद्रमस्तिष्क.

३ मस्तिष्कका अग्रखंड.

४ घ्राणस्नायु.

७ दर्शनस्नायु

२-३-४ चिन्ह इत्यादिसें लेकर मस्तिष्कका नीचेका प्रतिरूप तिन्होंमें.

८ दर्शनस्नायुप्रदेश.

९ नेत्रसंदकस्नायु.

१० दृष्टिसन्धि.

१२ पश्चाच्छिद्रान्वितप्रदेश.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्नायुप्रदर्शक चित्र.

इस चित्रमें क मस्तकस्थ.

बृहत् मस्तिष्क.

पृष्ठ २४१

नंबर १०

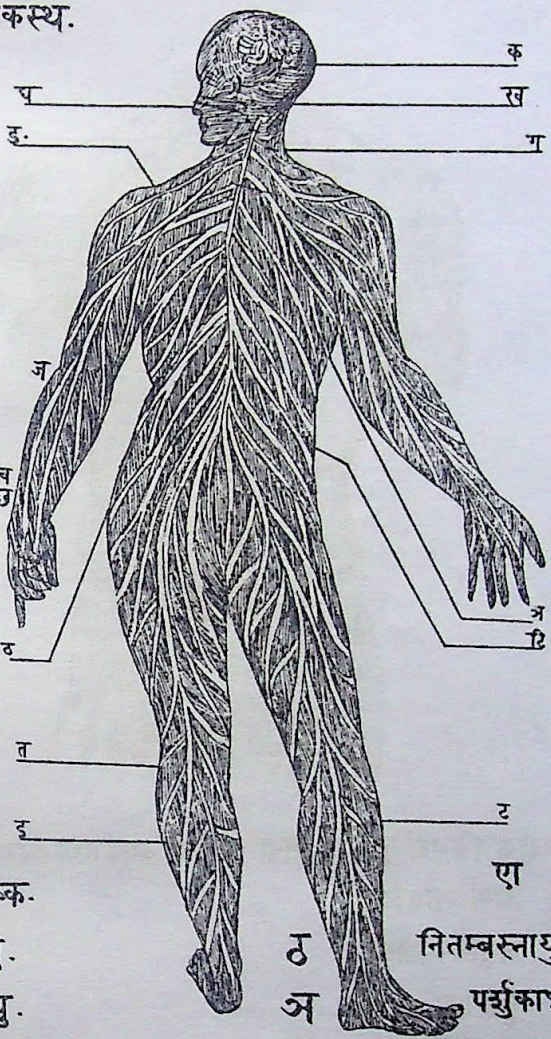

रव	क्षुद्रमस्तिष्क.	ठ	नितम्बस्नायु.
ग	ग्रीवास्नायु.	ञ	पर्शुकाभ्यंतरस्नायु.
घ	वदनस्नायु.	ड	जानुपश्चात्स्नायु.
ङ	प्रगंडसन्धिस्नायु.	ट	जान्वभिमुखस्नायु.
ज	प्रगंडस्नायु.	ण	पदतलस्नायु.
च	प्रकोष्ठस्नायु.	टि	कटिस्नायु.
छ	प्रकोष्ठनिम्नस्नायु	त	ऊरूस्नायु.
झ	करतलस्नायु		

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिराप्रदर्शक चित्र.

पृष्ठ २७०

नंबर ११

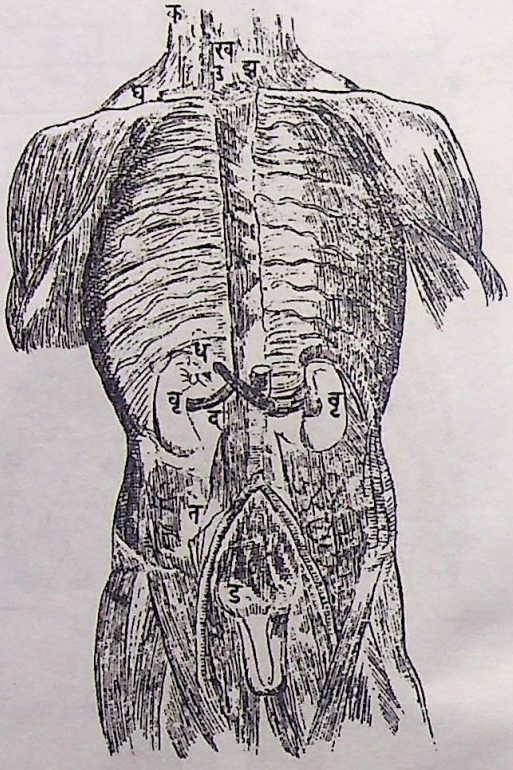

इस शिराप्रदर्शक चित्रमें क रव ग्रीवा पार्श्वस्थ बाह्य तथा अभ्यंतर कंठ शिरा.

ग अनाख्यात शिरा.

घ जत्रुनिम्नशिरा.

वृ वृक्कहृय.

द वृक्कशिरा.

ध ऊर्द्धवृक्कग्रंथिशिरा.

ड रेतो रज्जू शिरा.

थ बाह्य बस्तिशिरा.

जत्रुके नीचे उर्द्धस्थ महाशिरा तथा बस्तीसें अधस्थ महाशिरा.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धमनीप्रदर्शक चित्र.

इस धमनीप्रदर्शक चित्रमें ख ग धमनी मूल यह ऊर्ध्वाभिमुखी. पश्चाद्गामी तथा निम्न-मुखी ये तीन अंशोंमें विभक्त है.

पृष्ठ ३०२

नंबर १२

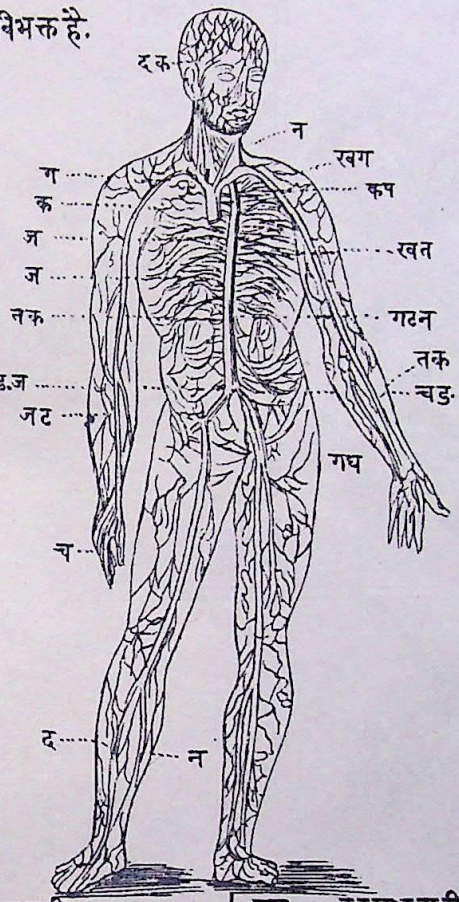

द क	कपालस्थधमनी.	च	उदरस्थनाडी
ह न	गलस्थधमनी.	द	नलकास्थीय धमनी.
ग	कंठस्थ धमनी.	न	जानुपश्चात् धमनी.
क	कक्षनाडी	व	जानुस्थ सन्मुख नाडी.
ज	धमनीस्कंध वावक्षःस्थमूलनाडी.	ख त	पर्शुकाभ्यंतर धमनी.
त ड	उदरस्थ मूल नाडी.	ह क	प्रगंडीय नाडी.
ट ड ज	अभ्यंतर(भीतरकी) बस्तिनाडी	त क	मणिबंधस्थ नाडी.
ज ट	बाह्य(बाहरकी) बस्तिनाडी	ग घ	प्रकोष्ठीय धमनी.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मूढगर्भप्रदर्शकचित्र.

पृष्ठ ३३६

नं० १८

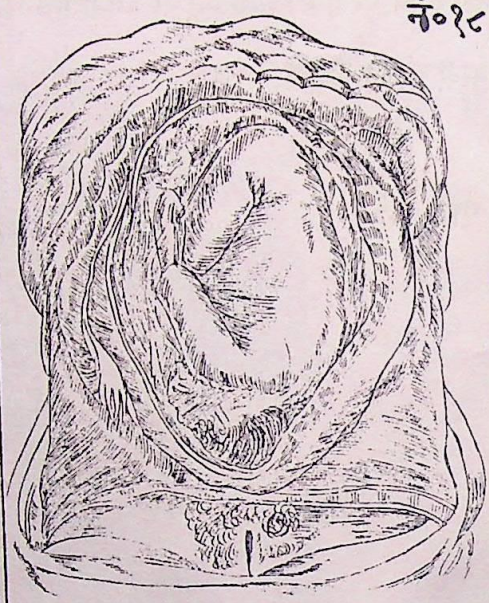

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मृदगर्भवेधक विविध शस्त्र.

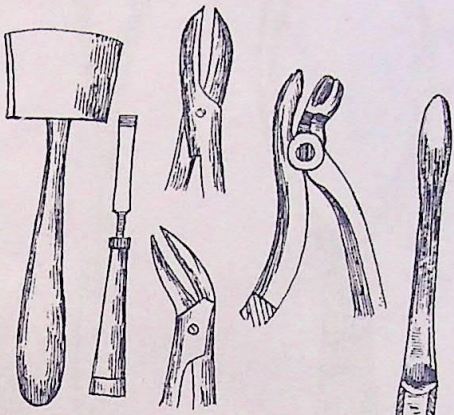

अस्थिव्रण अथवा अस्थिघात होनेके पश्चात् हड्डीके सडे हुए भाग काटनेको विविध हथियार.

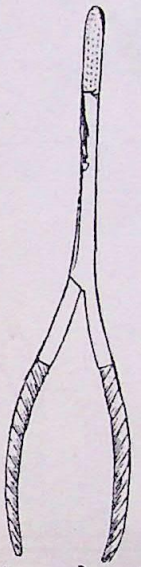

हड्डी पकडनेका चित्र.

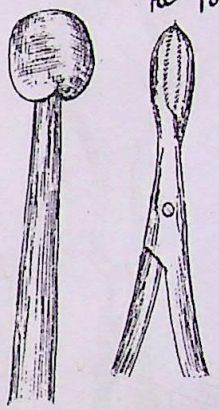

हड्डी तोडनेका शस्त्र.

हड्डी काटने का शस्त्र.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मूढगर्भनिकालनेके शस्त्र.

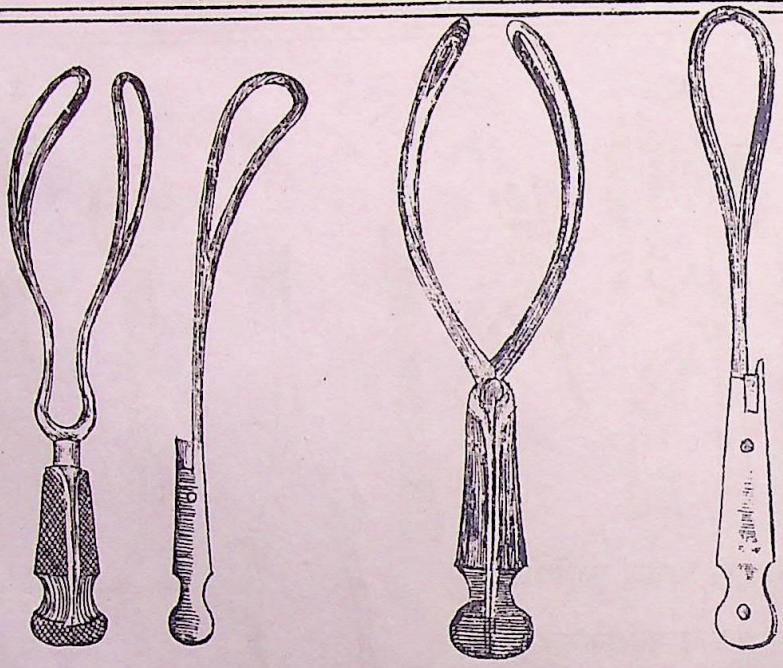

मूढगर्भआहरणप्रदर्शक चित्र.

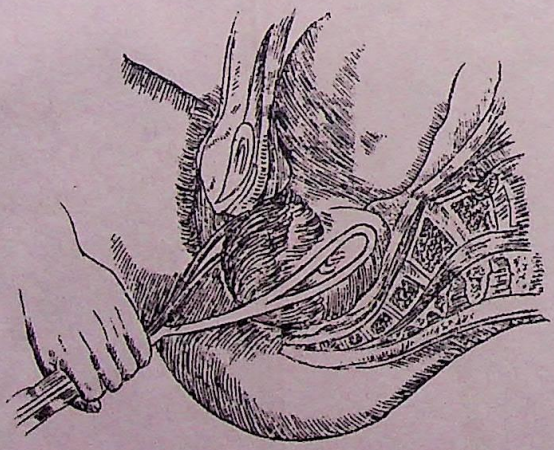

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मूढगर्भ निकालनेका चित्र.

मूढगर्भ तोडनेके शस्त्र.

शिरभेदनकर्त्री शस्त्र और उसको खैंच.

मस्तक भेदन करनेके पिछाडी खोपडी पकडनेका शस्त्र.

शिरमें गड़ायकर ईचनेका आंकडा.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अंत्र (आंतडें) प्रदर्शक चित्र.

पृष्ठ ४४०

नंबर २०

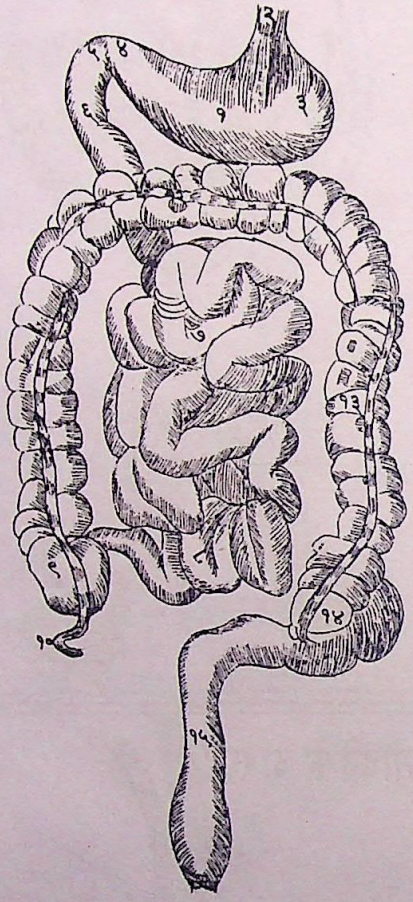

इस आंतडेके चित्रमें २ गलनालीका शेषांश, अन्ननाड़ी मुखसें लेकर इस स्थान आमाशयसें मिलित होती है.

१-२-३-४ ये चिन्ह गर्भप्रवेशित नाड़ीके है. ५ इस आकृति विशिष्ट यन्त्रको आमाशय (पाकस्थली) अन्न मुखसें गल नाड़ीमें होकर इस स्थानमें

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पतित होतीहै. ५-६ चिन्हांकित अधोमुख गामिनी नाड़ी ग्रहणी. इस स्थानमें सूक्ष्म नाड़ी विशेष मार्गमें यकृत् यहांसे पित्तरस आयकर आमाशयगत अन्नके साथ मिलताहै.

५-६-७-८- चिन्हांकित बृहत् नाडी क्षुद्रांत्र तिनमें ५-६- चिन्हित भागका नाम ग्रहणी है. ग्रहणीके परे जो अंश उसको पक्वाशय कहते हैं. इस जगेसे क्षुद्रान्त्र अतिशय कुंडलाकृति होकर अवस्थित है. भुक्त द्रव्य आमाशयसे समुदाय क्षुद्रांत्र परिवेष्टन करके तथा विविध पाचक रसके साथ मिलकर और जीर्ण होकर रहता है. क्षुद्रांत्रके निम्नवर्ती कोई दो २ अंश कारण विशेष करके कोषादिमें प्रवेश कर इसीका नाम अंत्रवृद्धि पीडा.

९-१०-११-१३-१४- इत्यादि चिन्हित नाडी स्थूलांत्र इनमें ९-११ चिन्हके तरफ अर्थात् दक्षिण पार्श्वके अंशके ऊर्ध्वगामी स्थूलांत्र तथा १३-१४ चिन्हवाले अर्थात् वामपार्श्वके अंशके अधोगामीको स्थूलांत्र कहते हैं. इन दोनोंके मध्यक्षुद्रान्त्रोंके ऊर्द्धस्थ अनुप्रस्थ अंशको अनुप्रस्थ स्थूलांत्र कहते हैं. प्रवाहिकादि पीडा स्थूलांत्रमें विशेष करके अधोगामी स्थूलांत्रोंमें क्षत. पीडा होनेसें रक्तादि विसृत होताहैं.

१५- अंक चिन्हित निम्नाभिमुख अंत्रांशको गुदा कहते हैं. इसका सर्व निम्नांश गुह्यद्वार रूप परिणामको प्राप्त हुआ है. प्रवाहिकादि रोग इसी स्थानमें तथा क्षतादि होते है. तथा इसी स्थानमें बवासीरके मस्से होते हैं इस निम्नाभिमुख अंत्र तथा उसके ऊर्ध्वस्थ स्थूलान्त्रांशको मलाशय कहते हैं. अधोगामी अंश (गुद) पुरीषनिर्गमक है.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पाकस्थली प्रदर्शक चित्र.

पृष्ठ ३४०

नंबर २०

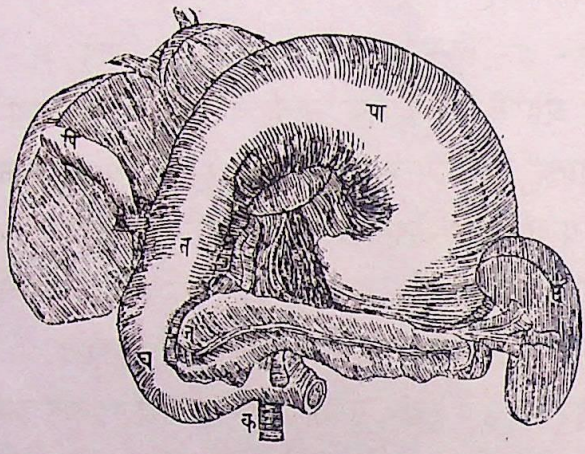

इस चित्रमें यय यकृत्.

पा	आमाशयके (पाकस्थलीक) अधोंश.	ड.	क्लोमदेह.
		न	क्लोमपुच्छ.
पि	पित्ताशय	द	प्लीहा.
त	आमाशयके अधःस्थ छिद्र.	ण	आमाशयका ऊर्ध्वछिद्र.
घ	ग्रहणिका अंशविशेष.	गग	उदरवक्षोव्यवधायक (वक्षस्थ-लस्थ) पेशीके दो स्तंभ.
क	उदरप्रविष्ट धमनीस्कंध.		
झ	लोम वा तिलयंत्र.	च	मूलपित्तप्रणाली.
ज	क्लोममूर्च्छा.	फ्ली	फ्लीहरक्त.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भ्रूणगर्भस्थिति प्रदर्शक चित्र.

पृष्ठ ३४५

नंबर २१

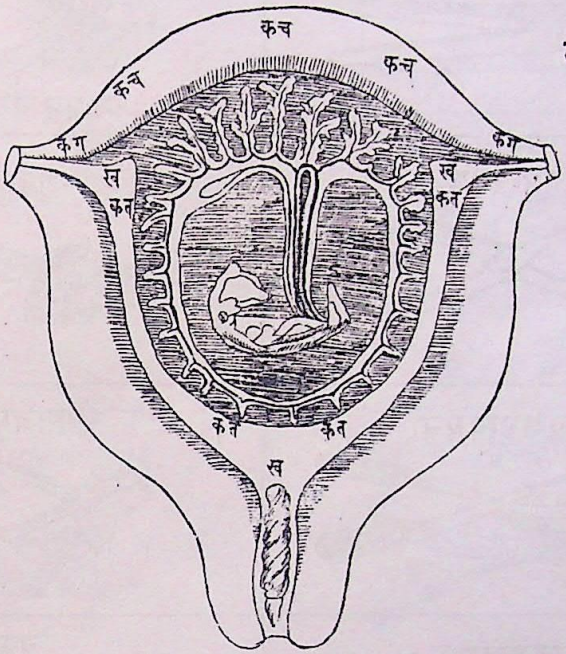

इस चित्रमें रव रव रव जरायुगव्हर.

कत- कत- कत- कत- अस्थायिनी भ्रूणावरक कला.

कग- कग- अस्थायिनी जरायु वेष्टिका कला.

कच- कच- अस्थायि जरायु वेष्टक डिम्बकला.

इस चित्रमें जरायुस्थ भ्रूणकी अवस्थिति प्रदर्शित करी है.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यंत्राध्यायके चित्र.

कंकमुखयंत्र.

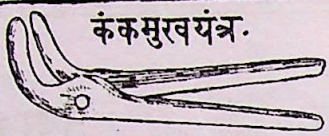

व्याघ्रमुखयंत्र.

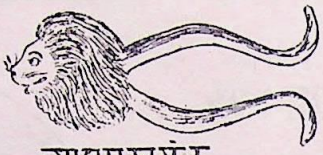

सिंहमुखयंत्र.

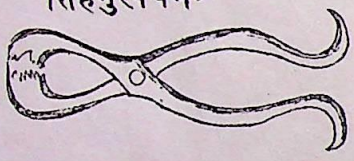

श्वानमुखयंत्र.

ऋक्षमुखयंत्र.

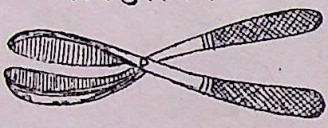

भृंगराजमुखयंत्र.

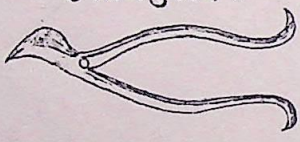

काकमुखयंत्र.

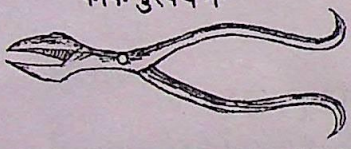

वृकास्ययंत्र.

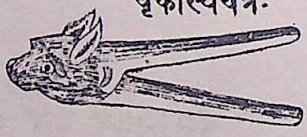

जरखमुखयंत्र.

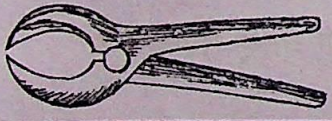

छुरी.

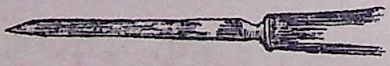

संदंशयंत्र.

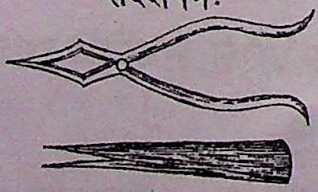

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तालयंत्र.

नाड़ीयंत्र.

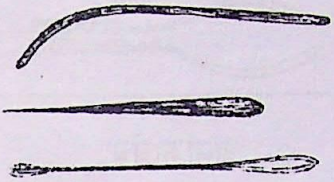

स्नुहियंत्र.

अर्शोयंत्र.

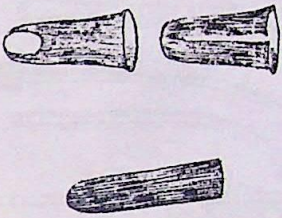

अंगुलित्राणयंत्र.

योनिव्रणेक्षणयंत्र.

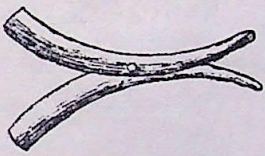

नाड़िव्रणक्षालनयंत्र.

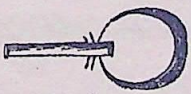

जलोदरयंत्र.

बस्तियंत्र.

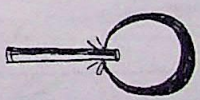

शलाकायंत्र.

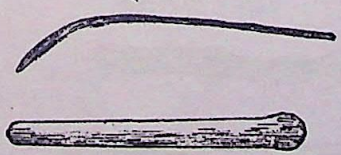

गर्भशंकुयंत्र.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

योग्मशंकुयन्त्र.

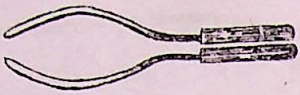

अश्मरीहरणयं०

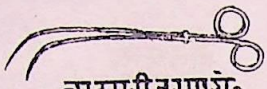

शलाकायंत्र.

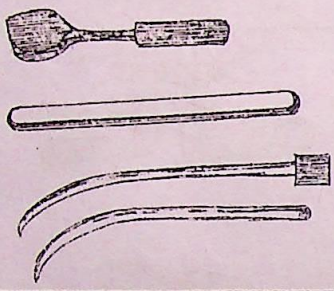

छेदनशस्त्र.

शस्त्राध्यायकेचित्र.

मंडलाग्रशस्त्र.

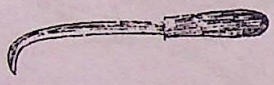

वृद्धिपत्रशस्त्र.

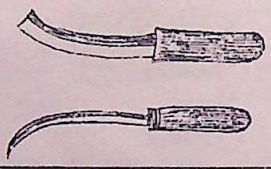

उत्पलशस्त्र.

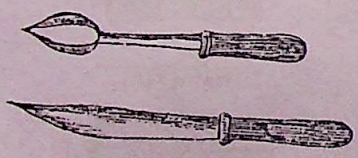

सर्पास्यशस्त्र.

एषणीशस्त्र.

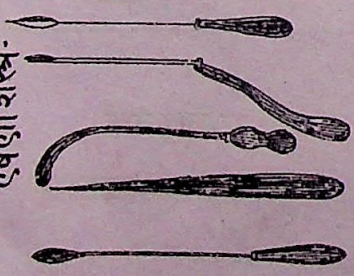

वेतसपत्रशस्त्र.

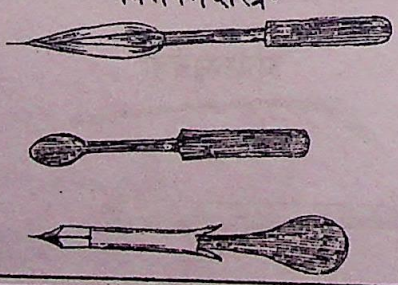

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुशपत्रशस्त्र.

आटी मुखशस्त्र.

व्रीहिमुखशस्त्र.

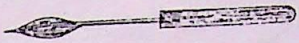

कुठारिकाशस्त्र.

शलाकाशस्त्र.

मुद्रिकाशस्त्र.

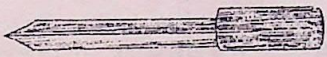

बडिशमुखशस्त्र.

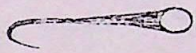

करपत्रशस्त्र

कर्तरी (केंची) शस्त्र

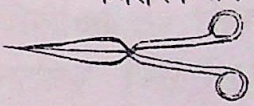

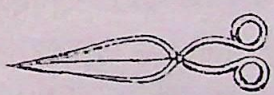

नखशस्त्र

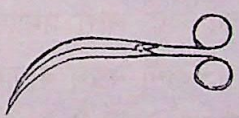

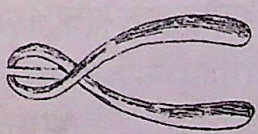

दंतलेखनशस्त्र.

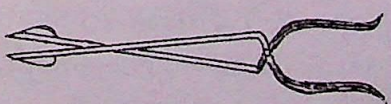

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सूचिशस्त्र

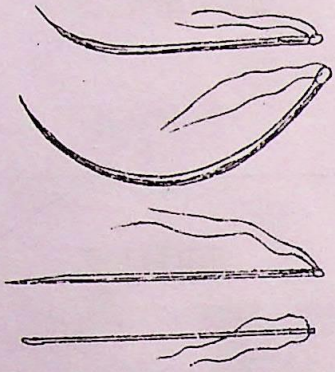

कूर्चशस्त्र.

कर्णछेदनशस्त्र.

सूचना.

समस्त विद्याओंमें आयुर्वेदविद्या उत्तम है. इसमेंभी और अंशोंकी अपेक्षा शारीरस्थान और अस्त्रचिकित्सा प्रकर्णका जानना सर्व वैद्योंके आवश्यक है. यद्यपि इस शस्त्रचिकित्साका बहुतसे मनुष्य अनादर और निंदा करतेहैं परंतु वे मूर्ख है. हमारे समस्त पूर्वाचार्य शवच्छेदन करके शिष्यको दिखाते थे. ऐसे ग्रन्थ औषधेनव. औरभ्र. सुश्रुत. पौष्कलावत आदि महर्षियोंको बनाए हुए अनेक ग्रन्थथे. परंतु हमारे और हमारे शास्त्रोंके द्रोही यवनादिकोंके अधिपत्य होनेसे वो ग्रन्थ अस्तप्राय से होगए. दूसरे इस शस्त्रचिकित्साका बड़ा भारी प्रमाण वेद. रामायण भारतादि ग्रंथ देतेहैं. क्योंकि हमारे इस देशमें प्रथम बाणोंसे युद्ध होता था तब अवश्य शस्त्रवैद्योंकी आवश्यकता रहतीथी इसीसे हम कहतेहैं कि, वैद्योंको अवश्य पठनीय यह शारीर और शस्त्रविद्याहै. शेष अन्यस्थलमें कहेंगे.

भवदीय आयुर्वेदोद्धारसंपादक,
दत्तराम चोबे. श्रीमथुरा.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बृहन्निघंटुरत्नाकरके शारीरस्थानकी

अनुक्रमणिका.

विषय	पृष्ठ
मङ्गलाचरण	१
कृष्ण, धन्वन्तरि, सूर्य, शिवगौरी, गणपति	,,
सरस्वतीऔरआयुर्व्वेद	२
ग्रंथकर्त्ताकीवंशपरम्परा	,,
सर्वोपकारीविद्याविषयकप्रश्न .... और उत्तर	,,
सर्वोत्तमआयुर्वेदविद्याहैइसमें वागूभटकाप्रमाण	,,
चरककाप्रमाण	३
शार्ङ्गधरकाप्रमाण....	,,
ग्रन्थान्तरोंकाप्रमाण	,,
बृहन्निघंटुरत्नाकरग्रंथरचनेके विषयमेंप्रश्नऔरउत्तर	,,
ग्रंथोंकोविषयपरत्वउत्तमताऔ रतद्वाराइसग्रंथकीसर्वोत्कृ ष्टताकथन	४
गुप्तविषयोंकाइसग्रंथमेंप्रकाश	,,
इसशास्त्रकीनिंदामेंप्रमाण	,,
तथाउसकाखंडनऔरआयुर्वेद कोश्रेष्ठत्वप्रतिपादन	,,
प्रमाण	५
चरककाप्रमाण	,,
तथाप्रमाणपूर्वकशुल्क(मौल्य) जीवीवैद्यकीनिन्दा	,,
आयुर्वेदशास्त्रकीउत्पत्ति	६
अध्यायकेआदिमेंअथशब्दकाप्र तिपादन	,,

विषय	पृष्ठ
वैद्यकशास्त्रकेसंबंधादिचतुष्टयवि षयकप्रश्न	,,
उक्तप्रश्नकाचरकोक्तउत्तरकथन	७
सुश्रुतकेमतसेंप्रयोजन	,,
दैववादीमतानुसारचिकित्सा आदिक्रियाओंकोनिष्फल त्वकथन	८
इसमेंशौनककावाक्य	,,
उक्तमतकाखंडनतथादैवऔर क्रियादोनोंकोमुख्यता कथन	,,
इसमेंकेशवार्किकाप्रमाण	,,
शार्ङ्गधरकाप्रमाण....	,,
याज्ञवल्क्यऋषिकावाक्य....	९
शकुनवसन्तराजग्रंथकाप्रमाण	,,
उसमेंयाज्ञवल्क्यकादृष्टान्त	,,
तथाकेशवार्किकाप्रमाण	,,
चरककाप्रमाणटिप्पणीमें	,,
भावप्रकाशोक्तआयुर्वेदकेलक्षण	१०
चरकोक्तआयुर्वेदकेलक्षण....	११
आयुर्वेदशब्दकीनिरुक्ति	,,
सुश्रुतऔरभावप्रकाशद्वाराप्र योजन....	१२
आयुर्वेदकेसामान्यलक्षण....	,,
आयुर्वेदकोअष्टाङ्गत्वकथन	,,
आठअङ्गोंकेनाम	१३
शल्यतंत्र	१४
शालाक्यतंत्र	,,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
कायचिकित्सा	१४
भूतविद्या	१५
कौमारभृत्य	,,
अगदतंत्र	,,
रसायनतंत्र	,,
वाजीकरणतंत्र	१६
वाग्भटकेअनुसारआठअंग	,,
आयुर्वेदकेगौरवोत्पादनार्थआगमशुद्धि	,,
ब्रह्मदेवकाप्रादुर्भाव	१७
दक्षप्रजापतिकाप्रादुर्भाव	,,
अश्विनीकुमारकाप्रादुर्भाव	,,
इन्द्रप्रादुर्भाव	१९
आत्रेयप्रादुर्भाव	,,
भरद्वाजमुनिप्रादुर्भाव	२१
चरकप्रादुर्भाव	२५
धन्वन्तरिप्रादुर्भाव....	२६
सुश्रुतकाप्रादुर्भाव	२७
वाग्भटप्रादुर्भाव	३०
वृद्धत्रयी (चरकसुश्रुतवाग्भट) कीप्रशंसा	,,
कलियुगमेंवाग्भटसंहिताकोप्रधानत्व....	३१
अठारहसंहिताओंकेनाम	,,
रसग्रन्थोंकाप्रचार....	,,
रसग्रन्थोंकेविशेषप्रचारहोनेकानिर्णय....	,,
रसोंकोश्रेष्ठता	३२
रसवैद्यकीप्रशंसा	३३
प्राचीनरसग्रन्थनिर्माणकरनेवालेआचार्योंकेनाम	,,

विषय	पृष्ठ
रसरत्नाकरऔररसेन्द्रचिंतामणिकाप्रचार	३४
माधवनिदानकाप्र०	,,
अन्यनिदानग्रंथकर्त्ताओंकेनाम	,,
दुर्जनभयशंकानिरास	३५
चक्रदत्तग्रंथकानिर्माण	,,
राजनिघंटु	,,
भावप्रकाश	३६
इसशास्त्रमेंपुरुषसञ्ज्ञा	३८
उसपुरुषमेंक्रियाकथन	,,
लोककोद्वैविध्यकथन	,,
तथाचतुर्विधभूतग्राम	,,
चतुर्विधव्याधियोंकेलक्षण	३९
उनकेरहनेकास्थान	,,
चतुर्विधव्याधिकोचिकित्सा	,,
प्राणियोंकेआहारकानिर्णय	४०
दोप्रकारकीऔषध	,,
स्थावरके ४ भेद	,,
जङ्गमके ४ भेद	४१
स्थावरजङ्गमोंसेंग्रहणीयअङ्ग	,,
पार्थिवकालकृतपदार्थोंकाप्रयोजन	,,
शरीरीविकारोंकावर्णन	४२
आगन्तुरोगोंकावर्णन	,,
मानसिकविकारोंकीचिकित्सा	,,
पुरुषग्रहणकाप्रयोजन	४३
व्याधिग्रहणसेंप्रयोजन	,,
क्रियाग्रहणसेंप्रयोजन	,,
आयुर्वेदशास्त्रपढनेकाफल	,,
ग्रन्थारम्भः ॥१॥	,,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
शिष्योपनयनीयाध्यायः	
प्रथमशिष्यकोशास्त्रकीपरीक्षा करना	४४
आचार्य (गुरु) की परीक्षा	४५
पठनपाठनकेउपाय	,,
तहांअध्ययनविधिःकल्प	४६
अध्यापनविधितहांप्रथमशिष्यकीपरीक्षा....	,,
ब्राह्मणआदित्रिवर्णकोउपनीयत्वकहतेहै	४७
कुलगुणसम्पन्नशूद्रकोभीपढनेकीआज्ञा	,,
दीक्षादेनेकीविधि	४८
ब्राह्मणकोत्रिवर्णकेउपनयनकरनेकीआज्ञा....	४९
एवंक्षत्रीआदिकोद्विवर्णऔरएकवर्णकेउपनयनकरनेकीआज्ञा	,,
अग्निसाक्षीकरकेशिष्यकोनियमोपदेश	,,
तथाआचार्यकोअपनेविषयमेंप्रतिज्ञा	,,
द्विजादिअनाथोंकेप्रतिस्वबांधवसदृशविनाद्रव्यकेचिकित्साकरनेकीआज्ञा	५०
व्याधआदिदुष्टजीवोंकेचिकित्साकरनेकानिषेध	,,
अनध्यायाः	,,
* इतिद्वितीयतरंगः २	
अध्ययनसंप्रदानीयाध्यायः	
पठनपाठनकीविधि	५१
पठनसमयकेनियम	५२
बोलनेकीऔरशास्त्रमेंअभ्यासहोनेकेउपाय	,,
पढकरक्रियाओंकोभीअवश्यजाननेकीआज्ञा	५३
शास्त्रपढकरक्रियाहीनवैद्यकोचिकित्साकरनेमेंअनधिकारित्वकथन	,,
शास्त्रहीनक्रियाज्ञातावैद्यकोराजदंड्यत्वकथन	५४
शास्त्रऔरक्रियादोनोंकेजाननेवालेवैद्यकोश्रेष्ठता	,,
मूर्खवैद्यकीऔषधखानेकानिषेध	,,
दुष्टवैद्यराजाकेदोषसैंलोभवशहोमनुष्योंकोमारताहै	,,
उभयकर्म (शास्त्र वा क्रिया) ज्ञातावैद्यकीप्रशंसा	,,
* इतितृतीयतरङ्गः ३	
प्रभाषणीयाध्यायः	
प्रभाषणकाप्रयोजनदिखातेहैं	५५
पठितशास्त्रकाप्रयोजनजानेविनावैद्यकीनिंदा	,,
द्रव्यरसवीर्यादिकोंकावारंवार विचारना	,,
अन्य (व्याकरणज्योतिष) शास्त्रादिकोंकेविषयोंको तत्तूशास्त्रद्वाराजानना	,,
वैद्यकोबहुश्रुतत्वहोनेकीआवश्यकता	५७
शास्त्रहीनवैद्यचोरकेसमानहै	,,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmul Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
चोरीआदिसैंविद्यापढनेकोनिष्फलत्वकथन	५७
* इतिचतुर्थतरङ्गः ४	
अथ	
शारीरस्थान	
प्रथमशारीरज्ञानकाप्रयोजन	५८
शारीरकविद्या	,,
शारीरकविद्याकाप्रयोजन	,,
शारीरज्ञानविनाचिकित्साकरनेकानिषेध	५९
अपठितशारीरककेवैद्यकोराजदंडनीयत्वकथन	,,
सर्वभूतचिंताशारीराध्यायः १	
सृष्टिक्रमकथन	६०
परमात्माकास्वरूप	,,
प्रकृतिकास्वरूप....	,,
प्रकृतिकोसर्वजीवाश्रयत्व	६१
अव्यक्तसेसर्वजीवोंकीउत्पत्ति	,,
अहंकारकोत्रिविधत्व	६२
अहंकारकेकार्य	,,
इन्द्रियोंकेनाम	,,
पंचभूतोसैंतन्मात्रोत्पत्ति	,,
पंचतन्मात्राओंकेनाम	६३
विषयकहतेहै	,,
भूतोत्पत्ति	,,
उत्पत्तिप्रकार	,,
चौवीसतत्वतथाबुद्धीन्द्रियोंकेविषय	६४
कर्मेन्द्रियोंके विषय	,,
प्रकृति तथा १६ विकार ...	,,
प्रकृतिऔरविकारोंके विषय	६४
अध्यात्म	६५
अधिदैव....	,,
श्रोत्रादिकोंकोअध्यात्मादि	,,
पुरुषलक्षण	६६
प्रकृतिपुरुषकासाधर्म्यऔरवैधर्म्य	
जीवोंकेलक्षण	६७
महत्तत्त्वकोत्रिगुणात्मकत्व	६८
पुरुषकोत्रिगुणात्मकत्व....	,,
जीवकोत्रिगुणात्मकत्व	६९
प्रकृतिकोषाड्विधत्व	,,
स्वाभाविकमत	,,
ईश्वरमत....	,,
कालकोईश्वरत्व....	७०
यादृच्छिकमत	,,
नियमितमत	,,
परिणामवादीमत	,,
स्वभावमत	७१
तथा	,,
अग्निकोईश्वरत्वतथाजीवत्व	७२
कालभीप्रकृतिकाभेदहै	,,
यादृच्छिकमतकाप्रमाण	,,
कर्मवादीमतकाप्रमाण	,,
परिणामकोहेतुत्व	,,
प्रकृतिहीकारणऐसेंस्वमतकहतेहैं	७३
स्वभावमतखण्डन	,,
नियमितमतखण्डन	७४
कालमतखण्डन....	,,
इसशास्त्रकासिद्धांत	,,
शरीरकहतेहै	,,
सर्वमतोंकीऐक्यता	७५

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
चिकित्सास्थानकोदिखातेहै	७५
वैद्यशास्त्रप्रतिपाद्यकहतेहै	७६
विषयोंकीपंचभौतिकत्वकहतेहै	,,
स्वविषयग्राहकत्वऔरअन्य विषयनिषेधकहतेहै....	,,
अन्यसांख्यादिकोंसेंक्षेत्रज्ञके विषयमेंआयुर्वेदकाभेदकहतेहै	७७
नित्यत्वकैसेहैसोदिखातेहै	,,
इसविषयमेंभोजकावचन	,,
सर्वमतोंकाउपसंहार	७८
असर्वगतजीवोंकोसर्वयोनिगम नकहतेहैं	,,
इसविषयमेंअनुमान	,,
प्रत्यक्षप्रमाणसेंक्षेत्रज्ञक्योंनहीं जानाजायसोकहतेहै	,,
वैद्यककेअनुमतपुरुषकीषड्धातु कसंज्ञाकहतेहै	७९
उसपुरुषकोऔषधोपयोगित्वक हतेहै	,,
मनकेसंयोगकरकेजीवकेगुणहो तेहै	,,
प्रकृतिकेगुण	,,
सतोगुणयुक्तमनकेलक्षण.	८०
रजोगुणयुक्तमनकेलक्षण.	,,
तमोगुणयुक्तमनकेलक्षण	,,
आकाशकेगुण.	८१
वायुकेगुण.	,,
अग्निकेगुण.	,,
जलकेगुण	,,
पृथ्वीकेगुण.	,,
आकाशकेधर्म.	८२

विषय	पृष्ठ
पवनकेधर्म.	८२
अग्निकेधर्म.	,,
जलकेधर्म.	,,
पृथ्वीकेधर्म	,,
अथपञ्चीकरण	,,
कारणगुणकीकार्यमेंव्याप्ति	८३
कार्यमेंकारणकीव्याप्ति	८४
इसमेंप्रमाण	,,
पृथ्वीजलमेंकैसेंरहतीहै	,,
सबकाउपसंहार	८५
*इतिपंचमतरङ्गः ५	
शुक्रशोणितशारीराध्यायः	
दुष्टशुक्रकेलक्षण	८६
वातादिसेंदुष्टशुक्रकेल०....	,,
दुष्टशुक्रमेंसाध्यासाध्य	८७
आर्त्तवकेदोष	,,
आर्त्तवकीपरीक्षा	,,
आर्त्तवकेसाध्यासाध्य	८८
शुक्रदोषकीचिकित्सा	,,
कुणपरेतवालेपुरुषकीचि कित्सा	८९
ग्रन्थिवान्रेतकीचिकित्सा	,,
पूयरेतकीचिकित्सा	,,
क्षीणरेतकाउपचार	,,
मलगंधिशुक्रकाउपचार....	९०
शुक्रदोषमेंसामान्यउपचार	,,
शुद्धशुक्रकेलक्षण	,,
वाग्भटोक्तशुद्धशुक्रकेलक्षण	,,
आर्त्तवदोषकेसामान्यलक्षण	९१
आर्त्तवदोषमेंसामान्यउपचार	,,
सर्वआर्त्तवदोषोंकीपथ्यकहतेहै	९२

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
शुद्धआर्त्तवकेलक्षण	९२
रक्तप्रदरकेलक्षण	९३
असृग्दरकेदोषसंबंधकृततथा व्याधिस्वभावकृतसामान्यलक्षण	,,
रक्तप्रदरमेंअवस्थापरत्वउपचार	,,
आर्त्तवकीअप्रवृत्तिलक्षणविकृति	,,
चिकित्सा	९४
ऋतुकालमेंसुपुत्रोत्पादकस्त्रियोंकेउपचार....	,,
नियम न पालनेकेदोष....	,,
प्रथमरजोदर्शमेंशुभाशुभफल औरमुहूर्त्त	९५
रजोदर्शमेंमासफल-टी०	,,
पक्षफल-टी०	९६
वारफल-टी०	,,
लग्नफल-टी०	,,
कालपरत्वफल-टी०	,,
नक्षत्रफल-टी०	,,
वस्त्रपरत्वफल-टी०	,,
बिन्दुफल-टी०	,,
निंद्यरजोदर्शकहतेहै	९७
रजस्वलाकेनियम	,,
तथावाग्भटोक्तनियम	,,
तथाअन्यफल	,,
स्थलभेदकरकेफल	,,
अशुभफलापवाद-टी०....	,,
रजस्वलाकीचाण्डालीआदि संज्ञा	९८

विषय	पृष्ठ
स्त्रीपुरुषदोनोंकोपुत्रचिंतवनका प्रकार	९८
इसमेंबृहत्संहिताकाप्रमाण	९९
रजोदर्शकेअनंतरस्नानकरकेप्रथमपतिकादर्शन	,,
प्रथमभर्त्ताकेदेखनेमेंकारण	,,
पुष्पस्नानकाप्रमाण	,,
पुष्पस्नानकीऔषधि	१००
इच्छितरूपवान्पुत्रप्राप्तिहोनेकाउपाय	१०१
उपाध्यायद्वारापुत्रेष्टीकरण	१०२
पुत्रेष्टीकीविधि	,,
शूद्रास्त्रीकोपुत्रेष्टीकीविधिऔर संयोगकीसाफल्यता....	१०३
श्यामलोहिताक्षपुत्रहोनेकाउपाय	,,
पुत्रेष्टीकेअनंतरकर्म	१०४
गर्भाधानमेंनियम	,,
गर्भाधानमेंस्त्रीकेनियम	,,
तथागर्भसंभवसैंपूर्वकृत्य....	,,
प्रीतिहीनास्त्रीसैंसंभोगकरनेकेदोष	१०५
पुरुषकेउपचार	,,
स्त्रीकेउपचार	,,
पच्चीसवर्षकेपुरुषकोबारहवर्षकीस्त्रीसैंसंयोगहोनायहकथन	,,
वाग्भटकेमतसैंसोलहवर्षकीस्त्री औरवीसवर्षकापुरुषहोना	१०६
छोटीअवस्थामेंपुरुषस्त्रीकेसंगहोनेकेअवगुण	,,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
शरीरकी ४ अवस्था	१०६
इसमेंप्रमाण	१०७
तथामनुकाप्रमाण	,,
गमनयोग्यपुरुषकहतेहैं	,,
मैथुनकरनेमेंवर्ज्यपुरुष....	१०८
मैथुनकरनेमेंयोग्यस्त्री	,,
अयोग्यस्त्री	,,
बारहवर्षकेउपरांतमहीनेकीम .... हीनेरजोदर्श....	,,
गर्भग्रहणमेंयोग्यसमय	१०९
ब्राह्मणक्षत्रीआदिकीस्त्रियोंको गर्भधारणकीशक्ति	,,
गर्भाधानमेंनिषिद्धऔरविहित काल	,,
रजोदर्शकीनिवृत्तिमेंस्त्रीसंग करना	११०
त्रिरात्रिस्त्रीवर्जनमेंयुक्तिचतुर्थरा त्रिसैउत्तरोत्तरगमनकाफल	,,
वाग्भटकाप्रमाण	१११
सायंकालभोगभवनमेंप्रवेश होनेकीविधि	,,
शय्यापरस्थितहोनेकीविधि	११२
ज्योतिषीकीआज्ञापूर्वकशय्या .... पर वामपैरऔरदक्षिणपै रधरकेचढनेकीआज्ञा	,,
गर्भाधानकामुहूर्त्त	,,
शय्याकेलक्षण	,,
गर्भाधानमेंस्त्रीपुरुषोंकेदोष	११३
सर्वदोषरहितस्त्रपिुरुषोंकेगमन कीविधि	,,
गर्भाधानमेंपढनेकेमंत्र	११४

विषय	पृष्ठ
स्त्रीकोगर्भाधानकेसमयउत्तान शयनकीआज्ञा	११४
स्त्रीकेनीचेपुरुषकोसोनावर्जित तथाकुबडी करवटवालीस्त्री मेंगर्भाधानकानिषेध	,,
प्रसंगवसभगकीतीननाडियो कावर्णन	११५
समीरणानाडीकाफल	,,
चान्द्रमसीनाडीकाफल....	,,
गौरीनामकनाडीकाफल	११६
गर्भाशयकास्वरूप	,,
एकवारस्त्रीसंगकरकेफिरएकम हीनेकेअनंतरगमनकीआ ज्ञा	,,
सद्योगृहीतगर्भाकेलक्षण....	११७
गर्भवतीकेआचार	,,
लक्ष्मणाकास्वरूप	,,
लक्ष्मणाकेउखाडनेकी और ला नेकीविधि	,,
व्यक्तिकेपूर्वहीपुंसवनादिकर्म कीआज्ञा	११८
पुंसवनकर्मकरनेमेंशास्त्रार्थ	,,
पुंसवनप्रयोग	११९
इसजगेसपेदकटेलीकोदेनेकी विधिलिखनाभूलसैरहग याहैसोजानलेनाऋतुक्षेत्र जलऔरबीजकेदृष्टांतसैग र्भकीस्थितिकावर्णन	१२०
गर्भप्रवेशमेंदृष्टान्त	,,
विधिपूर्वकहोनेवालेगर्भका फल	१२१

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
गर्भकेकालागोरादेहहोनेमेंकारण	१२१
इसीविषयमेंमतान्तर	१२२
उन्मत्त अपस्मारी स्त्रैण अल्पायु आदि अनेकरोगग्रस्तबालकहोनेमेंकारण	,,
अंगोंमेंविकृतिहोनेकेकारण	१२३
वंध्याऔरवार्त्तानामकस्त्रीव्यापदोंकावर्णन	१२४
वंध्यऔरतृणपूलिनामकपुरुषव्यापदोंकावर्णन	,,
जात्यन्ध,रक्ताक्ष,पिङ्गाक्ष,शुक्लाक्ष,विकृताक्षहोनेकेकारण	,,
गर्भाशयमेंपुरुषकेसंयोगहोनेसैं स्त्रीकीआर्त्तवप्रवृत्ति	१२५
तथापुरुषकेवीर्यकीप्रवृत्ति	,,
बालसंज्ञा	१२६
मातापिताकेरोगसैंसंतानकेरोगहोताहै	,,
यमल (जोडा) होनेमेंकारण....	,,
अधिकपुत्रकन्याहोनेमेंकारण	,,
एकसंतानअधिकपुष्टऔरएकन्यूनहोनेमेंकारण	१२७
देरीमेंसंतान होनेकाकारण	,,
विनागर्भकेगर्भसदृशलक्षण	,,
पांचषंढोंकीउत्पत्तिकाकारणतिनमेंप्रथमआसेक्यषंढकेलक्षण	१२८
सौगंधिकषंढ	,,
कुम्भिकषंढ	,,
तथाकुम्भिलकीउत्पत्ति	,,
ईर्ष्यककेलक्षण	१२९
इसमेंहेतु	,,
रूप्याकृतिषंढकेलक्षण	,,
स्त्रीषंढकेलक्षण	१३०
षंढसंग्रहश्लोक	,,
षंढोंकेलिंगनउठनेमेंकारण	,,
अनुक्तदेहवाणीऔरमनइनकेभेदकाहेतु	१३१
अतिपापसैंदुष्टसंतानकीउत्पत्ति	,,
स्वप्नमैथुनसैंगर्भसंभव	,,
सर्पविच्छूआदिगर्भसैंप्रगट होनेकाकारण	१३२
कुबड़ेआदिबालकहोनेमेंकारण....	,,
विकृतगर्भहोनेमेंकारण	,,
गर्भाशयमेंबालकके मलमूत्रनकरनेकाकारण....	,,
गर्भमेंबालककेनरोनेकाकारण	१३३
गर्भमेंबालककेश्वास निद्राआदिलेनेकी विधि	,,
शरीरजन्यअवयवोंकेसन्निवेशोंकाहेतु	,,
पूर्वजन्माभ्यासकेसदृशबुद्ध्यादिकहोतीहैं	,,
कर्मकोमुख्यता	१३४
❀ इतिषष्ठतरङ्गः ६	
गर्भावक्रान्तिशारीराध्यायः	
शुक्रआर्त्तवकास्वरूप	१३४
शुक्रआर्त्तवमेंपञ्चभूतोंकासाहचर्य	१३५
गर्भकीअवतरणक्रिया	,,
गर्भमेंकौनरहताहैयहकहतेहै	१३६

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
जीवगर्भमेंकिसप्रकारप्रवेशकरताहै	१३७
जीवकाप्रमाण	”
भावप्रकाशकामत	१३८
एकरूपजीवअनेकरूपकैसेधारणकरताहै	”
स्त्रीपुरुषनपुंसकहोनेकाकारण	”
दारुवाहीआचार्यकाप्रमाण	१३९
नपुंसकहोनेमेंवसिष्ठकामत	”
समविषमतिथियोंमेंशुक्रऔररजोवृद्धिहोतीहैइसमेंवैखानसकामत	”
मज्जामूत्रादिकाप्रमाण	१४०
स्त्रीकेशुक्रहोनेमेंप्रमाण	१४१
पुत्रेष्टिआदिकर्मसेंउत्तमसंतानकीउत्पत्ति	”
दोषधातुमलादिककेप्रमाणकानिषेध	१४२
अपत्यजन्मनेकाकाल	”
अदृष्टार्त्तवऋतु	”
अदृष्टार्त्तवऋतुमतीकेलक्षण	”
संकुचितयोनिमेंवीर्यप्रवेशनहींहोवे	१४३
आर्त्तवप्राप्तिकाकालऔरस्वरूप	”
आर्त्तवकेप्रवृत्तिनिवृत्तिहोनेकाकाल	”
समविषमदिवसभेदकरकेगर्भभेद	१४४
समविषमदिवसोंमेंरजऔरशुक्राधिक्यहोनेमेंविदेहकावचन	”
नपुंसकहोनेकाकारण	”

विषय	पृष्ठ
सद्योगृहीतगर्भकेलक्षण	१४५
वाग्भटकाप्रमाण	”
गर्भरहनेकेलक्षण	”
गर्भवतीकेउपचार	१४६
गर्भवतीकेवर्जितआचार	”
गर्भवतीकेदुःखसेगर्भकोदुःखहोताहैइसमेंप्रमाण	१४७
गर्भवतीकीसामान्यचिकित्सा	”
आवश्यकमेंतीक्ष्णऔषधोंकेदेनेकीआज्ञा	”
गर्भकीमासपरत्वअवस्था द्वितीयमास	१४८
पुरुषस्त्रीनपुंसकहोनेकीपरीक्षा	”
गयीभोजआदिकेमतसेंपिंडादिकोंकास्वरूप	”
तृतीयमास	१४९
स्त्रीपुरुषहोनेकीदूसरीपरीक्षा	”
चतुर्थमास	”
भावप्रकाशसेंअङ्गप्रत्यंगोंकावर्णन	”
द्वितीयअंगकावर्णन	१५०
तीसरेअंगकावर्णन	”
चतुर्थअंगकावर्णन	१५१
पंचमषष्ठऔरसप्तमअंगकावर्णन	”
अष्टमअंगकावर्णन	१५३
गर्भवतीकेनामान्तर	१५४
गर्भिणीकीश्रद्धाभंगनिषेध	”
विकृतगर्भहोनेकेऔरभीप्रमाण	१५५
स्त्रीकादौर्हृदकैसेंपरिपूर्णकरना	”
इन्द्रियोंकेअपमानसेंगर्भकीविकृति	”
दौर्हृदद्वारागर्भकेलक्षण	१५६

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
अनुक्तगर्भदौर्हृदसंग्रहश्लोक	१५७
दौर्हृदोंमेंप्रारब्धकारण	,,
चतुर्थमासकीव्यवस्था	१५८
पंचममास	,,
छठामहीना	,,
सप्तममास	१५९
अष्टममास	,,
अष्टममासमेंप्रगटबालककेनजीवनेकाकारण....	,,
प्रसूतकासमय	१६०
संग्रहोक्तगर्भकासन्निवेश	,,
भोजनकेविनागर्भवृद्धिमेंकारण	,,
अङ्गविभागपूर्वकपोषणकाज्ञान....	१६१
इसविषयमेंभोजकावाक्य	,,
गर्भवृद्धिकाक्रम	१६२
गर्भकेजोप्रथमअंगहोताहैउसको कहतेहैं	,,
शरीरमेंपितृजभाग	१६३
मातृजन्य	,,
रसजन्य	,,
आत्मजन्यपदार्थ	१६४
सात्विक राजस तामसजन्यपदार्थ	,,
सात्म्यजपदार्थ	,,
गर्भिणीकेपुत्रकन्यानपुंसकहोनेकेलक्षण	,,
तथावाग्भटोक्तलक्षण	१६५
नपुंसकगर्भकेलक्षण	१६६
जोडाहोनेवालेगर्भकेलक्षण	,,
ग्रन्थान्तरकाप्रमाण	,,

विषय	पृष्ठ.
गर्भवतीकेकायिकवाचिकमानसिकलक्षणोंसेपुत्रकेगुण	,,
विकृतअवयवहोनेकाकारण	,,
* इतिसप्तमस्तरङ्गः ७	

गर्भव्याकरणशारीराध्यायः

प्राणवर्णन	१६७
अग्न्यादिकप्राणकौनसेकर्मसे शरीरकापालनकरतेहैं	,,
यहशरीरअन्यसमवायिकारण करकेउत्पन्नहोताहैउनसबकोभावप्रकाशसेंकहतेहैं	१६८
शार्ङ्गधरकेमतसे	१६९
सप्तत्वचा	,,
ग्रन्थान्तरकामत	,,
त्वचाकेभेदकहतेहैं	१७०
अवभासिनीत्वचाकाप्रमाण	,,
द्वितीयत्वचा	१७१
तृतीयत्वचा	,,
चतुर्थत्वचा	,,
पंचमत्वचा	,,
छठीत्वचा	,,
सप्तमत्वचा	,,
स्थूलअवयवोंकीत्वचाका प्रमाण	१७२
कलाकास्थान	,,
कलाकाज्ञानप्रत्यक्षनहींहोता इसीसेदृष्टांतकरकेकहतेहैं	,,
कलाअदृश्यहैइसमेंप्रमाण	,,
प्रथमकला	१७३
मांसमेंशिरारहनेकादृष्टान्त	,,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
द्वितीयकला	,,
रक्तादिरहनेमेंदृष्टांत	१७४
तृतीयकला	,,
इसविषयमेंप्रमाण	,,
वसाकास्वरूप	,,
चतुर्थकला	,,
सन्धिचलनविषयमेंदृष्टांत	,,
पांचवीकला	१७५
कोष्ठोंकोकहतेहैं	,,
पांचवीकलाकोकोष्ठाश्रितत्व	,,
छटवीकला	,,
इसविषयमेंसंग्रहकाप्रमाण	१७६
सातवीकला	,,
शुक्रसर्वांगव्यापकहोनेमेंदृष्टांत	,,
शुक्रगमनकामार्ग	१७७
इसमेंवाग्भटकाप्रमाण	,,
वीर्यक्षरणकहतेहैं	,,
गर्भवतीकेआर्त्तवकानिषेध	,,
स्तनदुग्धोत्पत्ति	,,
अथ गुहातहांप्रथमगुहाकावर्णन	१७८
मध्यगुहाकावर्णन	,,
हृत्कोष्ठ(हृदय)कावर्णन	१७९
फुप्फुस(फेंफडे)कावर्णन	१८०
वाणीकेप्रवर्तनकाहेतु	१८१
उण्डुक	१८३
अधोगुहा	,,
आंतडेआदिकीउत्पत्ति	,,
ऊष्मोत्पत्ति	१८४
पेश्युत्पत्ति	,,
पेशियोंकास्वरूप	,,
स्नायुकीउत्पत्ति	१८५

विषय	पृष्ठ
आशयोंकीउत्पत्ति	,,
सप्ताशय	,,
वाग्भटसेंआशयोंका अनुक्रम	१८६
वृक्क	,,
वृषणोत्पत्ति	,,
अथाण्डद्वयम्	,,
अथ मूत्रयंत्राणि	१८७
अथ बस्तिः	१८८
अथ जननेन्द्रियम्	१८९
अथ पुंजननेन्द्रियाणिमेढ्रभूमिः	१९१
कलायिकाद्वयम्	,,
मेढ्रः	,,
बीजकोशद्वयम्....	१९३
अथ स्त्रीजननेन्द्रियाणि	,,
भगमणि	१९४
भगोष्ठद्वय	,,
भगपक्ष	,,
भगलिंग	१९५
सामिचन्द्र	,,
कलायिकाद्वय	,,
योनि	,,
जरायु	१९६
अथ स्तनद्वय	,,
मूलाधार	१९७
हृदयोत्पत्ति	,,
शरीरकोचेतनास्थानकहतेहैं	,,
हृदयकास्वरूप....	,,
प्रसंगवशनिद्राकावर्णन	१९८
तामसीनिद्रा	,,
स्वाभाविकीनिद्रा	,,
वैकारिकीनिद्रा	,,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
इसमेंचरककाप्रमाण	१९९
पूर्वगद्यकरकेकहेहुएअर्थकोपुनः पद्यकरकेकहतेहैं	,,
निद्रावस्थामेंस्वप्नदर्शनकैसे होताहै	,,
इन्द्रियोंकेलयकरकेआत्मा निद्रितसादीखताहै....	,,
दिनकीनिद्राकाविधिनिषेध	२००
अतिनिद्राकेदोष	,,
अल्पनिद्राकेगुण	,,
निद्रानाशकेहेतु	२०१
निद्रानाशकेउपचार	,,
अतिनिद्राआनेकाउपाय	,,
रात्रिमेंनिद्रावर्जितमनुष्य	२०२
दिनमेंकौनसैमनुष्योंकोसोना चाहिये	,,
निद्राकेप्रसंगकरकेतन्द्राकेलक्षण.	,,
जंभाईकेलक्षण	,,
छींककेलक्षण	,,
क्लमकेलक्षण	२०३
आलस्यकेलक्षण	,,
कोईइसजगेउत्क्लेशऔरग्लानिके लक्षणकहतेहैं	,,
गौरवकेलक्षण	,,
मूर्छादिकोंकाकारण	२०४
गर्भवृद्धिविषयमेंअन्यहेतु	,,
स्त्रोंतसोंकोआध्मानकीप्राप्ति	,,
सर्वदेहकीवृद्धि	,,
जैसे२ शरीरबढताहैतैसे २ दृष्ट्यादिकनहींबढते	२०५

विषय	पृष्ठ
शरीरकेक्षीणहोनेसैकोईअवय वोंकीवृद्धिकहतेहैं	,,
प्रसंगकरकेप्रकृतीकेरूपहेतु लक्षणोंकोक्रमकरकेकहतेहैं	,,
प्रकृतिकीउत्पत्तिविषयमेंहेतु कहतेहैं	,,
इसमेंवाग्भटकाप्रमाण	,,
वातकोमुख्यतादिखातेहैं	२०६
वातप्रकृतिकेलक्षण	,,
पित्तप्रकृतिकेलक्षण	२०७
कफप्रकृतिकेलक्षण	२०८
द्वंद्वजऔरसन्निपातजप्रकृति	२१०
प्रकृतिकेभावनपलटनेमेंकारण	,,
वातादिप्रकृतिइसमनुष्यकोदुःख नहींदेतेइसमेंप्रमाण	२११
मतान्तरसैप्रकृतियोंकेभेद	,,
ब्राह्मकायकेलक्षण	२१२
माहेन्द्रकाय	,,
वरुणकाय	,,
कुबेरकाय	,,
गंधर्वकाय	२१३
यमकाय	,,
ऋषिकाय	,,
असुरकाय	,,
सर्पकाय	२१४
पक्षिकाय	,,
राक्षसकाय	,,
पिशाचकाय	,,
प्रेतकाय	,,
पशुकाय	२१५
मत्स्यकाय	,,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
वानस्पत्यकाय	,,
त्रिविधिकायामेंयथायोग्यचिकित्साकथन	,,
आयुकाज्ञान	२१६
सुखायुकेलक्षण	२१७
दीर्घायुकेलक्षण	,,
पीठआदिकीउत्तमता	२१८
देहकोशुभत्व	,,
सर्वगुणयुक्तदेहकीशतायु	२१९
बलप्रमाणज्ञान	,,
आठप्रकारकेसारोंकेलक्षण–टि०	,,
सत्वादिप्रकृतिवालोंकोसुखदुःखानुभवकाप्रकार	२२०
देहकाप्रमाण	,,
आयुबढानेवालेकर्म	२२१
* इत्यष्टमस्तरङ्गः ८	

शरीरसंख्याव्याकरणाध्यायः

गर्भसंज्ञा	२२१
शरीरसंज्ञा	,,
षडंग	२२२
प्रत्यंग	,,
त्वगादिकोंकीसंख्या	,,
आशय	२२३
स्रोतस्	,,
स्मरातपत्रकावर्णन	,,
स्रोतसादिभेदमेंमतान्तर	,,
स्रोतसोंकाग्रन्थान्तरसेवर्णन	२२४
कंडरा	२२५
हस्तादिगतकंडराओंके अग्रभाग	,,
अथजाल	,,

विषय	पृष्ठ
कूर्चक	२२६
रज्जु	,,
सेविनी	२२८
संघात	,,
मतान्तर	,,
अथस्थिन्यस्वरूप	,,
शरीरधारणमेंहड्डियोंको प्रधानता	२२९
कंकाल	,,
हड्डियोंकाविशेषवर्णन	,,
हड्डियोंकेपांचप्रकार	२३०
पंचविधहड्डियोंकापृथक् २ वर्णनतहांअन्वस्थि	,,
कपालास्थि	,,
नलकास्थि	,,
असमगात्रास्थि	२३१
रुचकास्थि	,,
अस्थिसंख्या	२३२
शल्यतंत्रसेंहडड्डियोंकीसंख्या	,,
शाखागतहड्डियोंकीसंख्या	,,
श्रोण्यादिगतहड्डियोंकी संख्या	,,
ग्रीवोर्ध्वगतहड्डियोंकीसंख्या	२३३
मतांतरसेहड्डियोंकीसंख्या	,,
ऊर्ध्वशाखाकीहड्डियोंकी संख्या	,,
मध्यभागस्थितहड्डियोंका स्वरूप	२३४
पांसुओंकावर्णन....	,,
शिरकीहड्डियोंकावर्णन	२३५
मुखकीहड्डियोंकावर्णन	२३६

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
कर्ण	,,
जिह्वा	,,
अंगूठा	,,
औरभ्रऋषिप्रोक्तअस्थिसंख्या	२३७
हड्डियोंकीसंधियोंकावर्णन	,,
सन्धियोंकीसंख्या	२३८
मध्यभागऔरग्रीवाआदिकी संधि	,,
उक्तसंधियोंकीगणना	२३९
पेशीस्नायुशिराआदिकीसंधि योंकी संख्याकाअनियम	,,
स्नायवः	२४०
स्नायुसंख्या	२४१
हाथपैरकीस्नायुसंख्या	२४२
मध्यप्रान्तगतस्नायु	,,
ग्रीवासैंलेकरऊपरकाचतु र्विधस्नायु	,,
इसविषयमेंदृष्टांत	२४३
स्नायुप्रसंसा	,,
५०० पेशी	,,
पेशियोंकापृथक् २ वर्णन	,,
मध्यप्रदेशकीपेशियोंकीसंख्या	२४४
ऊर्ध्वप्रदेशकी ३४ पेशी	,,
स्त्रियोंकेपेशीअधिक	,,
पेशियोंकेस्थानविशेषकरकेस्व रूप	२४५
इसमेंभोजकावचन	,,
मतांतरेणपेशीसंख्यानम्	२४६
पेशियोंकेकर्म	२५०
मूढगर्भनिकालनेकेलियेग र्भस्थिति	,,
शल्यतंत्रकीउत्कृष्टता	२५१
मृतदेहकोचीरकरदेखनेकीविधि	,,
प्रत्यक्षदेखनेकाफल	२५२
देहप्रत्यक्षग्राह्यहैक्षेत्रज्ञ नहीं	,,
शास्त्रद्वाराऔरप्रत्यक्षदेखनेका फल	,,
* इतिनवमस्तरङ्गः ९	

प्रत्येकमर्मनिर्देशशारीराध्यायः

मर्मोंकीसंख्या	२५३
मांसादिभेदकर्कमर्मोंकीसंख्या	,,
मांसमर्म	,,
शिरामर्म	,,
स्नायुमर्म	२५४
अस्थिमर्म	,,
संधिमर्म	,,
मर्मोंकेविशेषज्ञानहोनेकेवास्ते प्रदेशकहतेहैं	,,
मर्मोंकेपांचप्रकार	२५५
सद्यःप्राणहरमर्म	,,
मर्मोंकेभेदकाकारण	२५६
मर्मभेदकेदूसरेकारण	,,
मर्मोंमेंमांसादिकपांच है इसमेंप्रत्यक्षप्रमाण	२५७
शिराकेप्रकार	,,
एकदेशमर्माघातकर्के सर्व शरीरकोपीडातथाप्राणघात	,,
मर्मोंमेंशल्यअच्छानलगने सें उसकीक्रियाकाविकल्प	२५८
सद्यःप्राणहरादिमर्मोंके विषयमेंकालावधि	,,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
क्षिप्रादिमर्मोंकेस्थान	,,
मांसमर्म तलहृदय	२५९
स्नायुमर्म कूर्चसंज्ञक	,,
स्नायुमर्मकूर्चशिरस	,,
संधिमर्मजानुसंज्ञक	,,
मांसमर्मइन्द्रबस्तिक	,,
संधिमर्म जानुसंज्ञक	२६०
आणिसंज्ञकस्नायुमर्म	,,
शिरामर्मउर्वीसंज्ञक	,,
शिरामर्मलोहिताक्षसंज्ञक	,,
स्नायुमर्म विटपसंज्ञक	,,
मांसमर्म गुदासंज्ञक	२६१
मूत्राशयमेंबस्तिसंज्ञकमर्म	,,
नाभिमर्म	,,
आमाशयमर्म	,,
स्तनमूलशिरामर्म	२६२
रोहितसंज्ञकमांसमर्म	,,
अपलापशिरामर्म	,,
अपस्तंबशिरामर्म	,,
पीठकेमर्म	२६३
ककुंदरसंधिमर्म	,,
नितंबअस्थिमर्म....	,,
पार्श्वसंधिशिराबंधनमर्म....	,,
बृहतीसंज्ञकशिरामर्म	,,
अंशफलकमर्म	२६४
स्नायुबंधनअंशमर्म	,,
जत्रुमूलकेऊपरकेमर्म	,,
मातृकामर्म	,,
कृकाटिकसंधिमर्म	,,
विधुरसंज्ञकस्नायुमर्म	२६५
फणसंज्ञकस्नायुमर्म	,,

विषय	पृष्ठ
अपाङ्गसंज्ञकशिरामर्म	,,
आवर्तसंज्ञकअस्थिमर्म	,,
शंखनामकअस्थिमर्म	,,
उत्क्षेपसंज्ञकमर्म	२६६
स्थपणीशिरामर्म	,,
सीमंतसन्धिमर्म....	,,
शृंगाटकनामकशिरामर्म	,,
अधिपतिशिरामर्म	,,
मर्मोंकासूत्रोक्तप्रमाण	,,
मर्मोंकाप्रयोजन	२६७
हाथपैरटूटनेसेंबचेहैऔरमर्म भेदकरकेमरे हैं	,,
मर्मकौनसेंकार्योंपयोगीहोतेहैं सोकहते	२६८
मर्महतअनेकउपद्रवोंकरके मरताहै	,,
मर्माभिघातकरकेमनुष्यमरणमें कारण	,,
सद्यःप्राणहरादिमर्मपंचकके लक्षण	,,
रुजाकरमर्मोंकोकुवैद्यबिगाडेहैं	२६९
मर्मसमीपचोटकरकेमर्मतुल्य पीडाकहतेहैं	,,
मर्माभिघातविषयमेंवैद्ययत्न	,,

* दशमतरङ्गः १०

शिरावर्णविभक्तिशारीराध्यायः

सर्वशिरा (नस—वा रगों)की संख्या	२७०
शिराओंकेकार्य	,,
शिराओंकेअतिसूक्ष्मप्रकार दृष्टांतकरकेकहतेहैं	,,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
प्रमाण	,,
शिराओंकाऔरप्राणोंकाआधाराधेयभावसंबंधकहतेहैं	२७१
शिराओंकीगणना	,,
अंगविभागकरकेशिरासंख्या	,,
कोष्ठगतशिराविभाग	२७२
नाडसैंलेकरऊपरकेभागमेंशिराओंकीसंख्या	,,
शिराश्रितवातादिकोंकेप्राकृत औरवैकृतकार्य	,,
वातवाहिनीशिरागतकुपितवातकेलक्षण	,,
पित्तकेकार्य	२७३
पित्तवाहिनीशिरागतकुपितपित्तकेकार्य	,,
कफकेकार्य	,,
विकृतकफकेकार्य	,,
रक्तकेकार्य	,,
कुपितरक्तकेकार्य	२७४
वातादिशिरासर्वदोषोंकोवहतीहै....	,,
सर्वदोषवहनेवालीशिराओंको कहतेहैं	,,
शिराओंकावर्णविभाग	,,
वर्जितशिरा	२७५
अवेध्यशिरा	,,
शास्त्रागतअवेधशिरा	,,
ठोडीकीशिरावेध	२७६
जिह्वाकीशिरावेध	,,
नासिकाकीशिरावेध	,,
अपांगकीशिरावेध	,,
नासानेत्रादिकोंमेंशिरावेध	,,
शंखगतशिरावेध	२७७
मस्तकसीमंतऔरअधिपतिइनमेंशिरावेध	,,
गिनीहुईशिराओंकान्यूनाधिक्यताकहते	,,
मतांतरसेंविशेषकहते हैं	,,
* एकादशतरङ्गः ११	

शिराव्यधविधिशारीराध्यायः

फस्तखोलनावर्जित	२७९
रक्तस्रावमेंसाध्यविकार....	२८०
फस्तखोलनेमेंवर्जितमनुष्योंकीभीफस्तखोलना	,,
शिरावेधकेपूर्वकृत्य	२८१
वेधकाल	,,
शिरोत्थापनकाप्रकार	,,
पादादिगतशिरावेधनेकाप्रकार	२८२
हस्तगतशिवरावेधप्रकार	,,
श्रोणीपीठऔरकंधेइन्मेंशिरावेध	२८३
कौनसीठौरशिरावेधकरेयहकहते	,,
अनुक्तयन्त्रप्रकारकहतेहैं	,,
वेध्यशरीरकेतारतम्यकरकेशस्त्रयोजना....	२८४
शिरावेध....	,,
सुविद्धशिराकेलक्षण	,,
दूषितशिराकेवेधहोनेसैंप्रथमदुष्टरुधिरनिकलताहै यहदृष्टांतदेकरकहते	,,
उत्तमविद्धहोनेपरभीरुधिरननिकलनेकाकारण	२८५
क्षीणमनुष्यकेरुधिरकाढनेपर	

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
अत्यन्तघवडाहटहोनेसेक्रमकहते हैं	२८५
रक्तस्रावकाबहुधानिषेध	,,
रक्तकाढनेकीपरमावधि.... ...	,,
इसमेंप्रमाण	२८६
कौनसैरोगमेंकोनसीशिरावेधनी	,,
अपचीरोगमेंशिरावेध	,,
गृध्रसीरोगमेंशिरावेध	,,
हस्तपादादिकोंमेंविशेष कहतेहैं (प्लीहमेंशिरावेध)	२८७
प्रवाहिकामेंशिरावेध	,,
मूत्रवृद्धिमेंशिरावेध	,,
विद्रधितथापार्श्वशूलमें शिरावेध....	,,
बाहुशोषतथाअपबाहुक इनमें शिरावेध	२८८
तृतीयकज्वरमेंशिरावेध	,,
चातुर्थकज्वरमेंशिरावेध....	,,
अपस्मारमेंशिरावेध	,,
उन्मादरोगमेंशिरावेध	,,
जिह्वारोगमेंतथादन्तव्याधिमें शिरावेध	२८९
तालुरोगमेंशिरावेध	,,
कर्णशूलऔरकर्णरोगमेंशिरावेध	,,
गन्धाग्रहणादिनासारोगमेंशिरावेध	,,
तिमिरपाकादिनेत्ररोगमेंशिरा०....	,,
दुष्टशिरावेधकेलक्षण	,,
दुर्विद्धशिराओंकापृथक्२वर्णन....	२९०
शिरावेधनेमेंअत्यन्तसावधानी चाहिये	२९१
अयोग्यशस्त्रद्वारावेधनेकेअवगुण	,,
इतरउपचारोंकीअपेक्षाशिरावेधकोआधिक्यता	,,
शिरावेधचिकित्साकाअर्धागहै	२९२
अबस्निग्धादिपुरुषोंकोक्रोधादिकसामान्यकरकेत्यागनेयोग्यहैयहकहते हैं	,,
रक्तस्रावकरनेकेसाधन....	,,
स्थानभेदकरकेउपायविशेष कहतेहै	२९३

* इतिद्वादशतरंगः

धमनीव्याकरणंशारीराध्यायः

धमनीशब्दकीव्युत्पत्ति....	२९३
धमनीयोंकीसंख्या	,,
शिराधमनीस्रोतसोंकाऐक्य कहते हैं	,,
शिरादिकोंकेभेद	,,
मतान्तर....	२९४
उक्तमतकाखंडन	,,
स्वधातुसमवर्णत्वकहतेहैं	,,
मूलनियमकहतेहैं	,,
कर्मभेद	२९५
आगमरूपचतुर्थहेतु	,,
अबशिरास्रोतसादिपरस्पर भिन्नहै तथापिउनकेकर्म मिलेहुएदीखतेहैं	,,
नाड्यादिकोंकीगतिकहतेहैं	२९६
धमनीयोंकेकर्म	,,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
धमनीकेकार्य	२९६
अधोगतधमनीकेकार्य	२९७
अधोगतधमनीसेऊर्ध्वशरीर-पोषणकैसेंहोताहै	,,
अधोगत ३० धमनीयोंकेकर्म	,,
तिर्यग्गतधमनीकहतेहैं	२९८
शब्दादिग्राहिणीतथासर्गादि कारकधमनियोंकीप्रक्रिया	२९९
मतांतरसेधमनियोंकेकर्मआ-दिकहतेहैं	३००
स्रोतसोंकोकहतेहैं	३०२
स्रोतसोंकास्वरूप	,,
अन्यमतकहतेहैं	३०३
स्रोतसोंकेभेद	,,
प्राणवहस्रोतस्	,,
अन्नवहस्रोतसोंकेमूल	,,
उदकवहस्रोतसोंकामूल....	३०४
रसवहस्रोतसोंकामूल	,,
रक्तवहस्रोतस्	,,
मांसवहस्रोतस्	,,
मेदोवहस्रोतस्	,,
मूत्रवहस्रोतस्	३०५
पुरीषवहस्रोतस्	,,
शुक्रवहस्रोतस्	,,
आर्त्तववहस्रोतस्	,,
चिकित्सा	,,
उद्धृतशल्यचिकित्सा	३०६
स्रोतोलक्षण	,,

इतिनवमोध्यायः ९

गर्भिणीव्याकरणाध्यायः।

विषय	पृष्ठ
गर्भिणीकेनियम....	३०६
गर्भिणीकाअन्न	३०७
अन्यमत....	३०८
स्वमतकहतेहैं	,,
गर्भिणीकोसूतिकागाराश्र-यणविधि	,,
सूतिकागारकीविधि	,,
सूतिकागारस्थितहोगर्भोत्पत्ति-केसमयकीवाटदेखना	३१०
तथाचरककामत	,,
आसन्नप्रसवाकेलक्षण	,,
आवीप्रादुर्भावकेअनंतरगर्भि-णीकोभूमिशयनकीआज्ञा	३११
गर्भिणीकेरक्षाबन्धनादिकर्मकर-केसघृतापेयादेनेकीआज्ञा	,,
आसन्नप्रसवाकोपृथ्वीशयनके अनंतरतैलादिकीमालिस औरजंभाईलेनातथाडोल नेकीआज्ञा	,,
गर्भवतीकोधूनीदेनाऔरगरम तैलसेंउसकेपार्श्वकटीआदि-कीमालिस	,,
तत्कालप्रसूताकेपासउत्तमअ नेकस्त्रीरहकरउसकोहितो पदेशकरे	३१२
अतिकष्टावस्थामेंखाटमेंशयन कराइसकीयोनिकोसाधन	,,
गर्भकेवहनकीविधि	,,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
गर्भिणीकोहर्षोत्पादन	३१३
तथाप्रसूतकेसमयप्रसूताकेक- र्णमेंजपनीयमंत्र	,,
अर्जुनकेनामोंसेअभिमंत्रितकरेहु- एजलपीनेसेगर्भमोचन	,,
हर्षोत्पादनकाप्रयोजन	,,
गर्भकेरुकनेमेंउपचार	३१४
उपायांतर	३१५
बालककेजन्मकेपश्चात्कर्म	,,
जातककर्म	३१६
अन्नप्राशन	३१७
स्त्रियोंकेस्तन्यकीप्रवृत्ति...	३१८
प्रसूतास्त्रीकोनियमनपालने- केदोष	,,
नामकरण	,,
धात्रीपरीक्षा	३१९
अथस्तनसंपत्	३२०
अथस्तन्यसम्पत्	,,
निषिद्धधायकेलक्षण	,,
अथस्तनपानविधि	३२१
अस्रावितदुग्धकेअवगुण ...	,,
अभिमंत्रणकेमंत्र	,,
अनेकउपमाता (धाय) होनेकेदोष	,,
दूधसूखनेकाकारण	,,
क्षीरउत्पन्नकारकप्रयोग	३२२
दूधकीपरीक्षा	,,
दुष्टस्तन्यकेविकार	,,
कुमारकेरहनेकास्थान	३२३
सूतिकाकेकपडेआदिमेंधूनी देनेकीऔषध	,,
पुनःस्तन्यस्वरूप	३२४

विषय	पृष्ठ
स्तन्यकीप्रवृत्ति	३२४
स्तन्यकेअल्पहोनेमेंकारण	,,
स्तन्यवृद्धिहोनेकेउपायांतर	,,
कलमधान्यकेलक्षण	,,
दुष्टस्तन्यकेलक्षण	३२५
दुष्टस्तन्यकाशोधन	,,
बालककेरोगज्ञानकाउपाय	,,
बालककीमात्राकाप्रमाण	३२६
ग्रंथान्तरकाप्रमाण	,,
प्रकारान्तरकरकेऔषधोपाय	३२७
ज्वरविषयमेंविशेषकहतेहैं	,,
बालककेतालुलटकआनेकाउ पाय	,,
बालककीनाभिफूलआनेकात- थागुदपाकहोजावेउसका उपाय	,,
घृतबालककोसदैवहितकारी होताहै....	३२८
अथबालककीपरिचर्याविधि	,,
उक्तपरिचर्याकाफल	,,
बालककीरक्षाकाप्रकार	३२९
बालककोस्वाभाविकहितवस्तू	,,
माताकेदूधनहोवैऔरधायमिले नहीउससमयकीविधि	,,
बालककेअन्नप्राशनकासमय	,,
बालककेकवलादिककासमय	३३०
ग्रहोपसर्गकेलक्षण	,,
कुमारकीपुरुषार्थसाधनहेतुभूत क्रियाकहतेहैं	,,
सहेतुकप्रतीकारगर्भस्रावकेलक्षण	३३१

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
गर्भस्रावकाउपचार	३३१
तथा	,,
आमरक्तकेअविरुद्धक्रिया	३३२
गर्भपातमेंउपचार	३३३
यहविधिकिसलियेकरनीचाहिये	,,
उपविष्टकगर्भकेलक्षण	,,
नागोदरगर्भकेलक्षण	३३४
उपविष्टकनागोदरगर्भकी चिकित्सा	,,
वृद्धकाश्यपकेमतसेशुष्कगर्भके लक्षण	,,
लीलाख्यगर्भकेलक्षण	,,
उपायांतर	३३५
गर्भिणीकेउदावर्तकायत्न	,,
मृतगर्भास्त्रीकेलक्षण	,,
मृतगर्भास्त्रीकायत्न	३३६
मूढगर्भकीशस्त्रचिकित्सा	,,
शस्त्रकर्म	३३७
मूढगर्भकेछेदनेकीविधि	,,
मूढगर्भस्त्रीकीसामान्य चिकित्सा	,,
गर्भावस्थाकेअनुसारकर्म	३३८
जीवितगर्भकेछेदनकेअवगुण	,,
त्याज्यमूढगर्भास्त्री	,,
मूढगर्भहरणकेपश्चात्कर्त्तव्यकर्म....	,,
बलातैलकीविधि	३४०
मृतस्त्रीकेबालकनिकालने कीआज्ञा	,,
अन्नविपाकक्रिया....	,,
णजन्मक्रम	३४५
गर्भिणीकेप्रतिमासमेंउपचार ...	,,

विषय	पृष्ठ
दूसराउपचार	३४६
मर्यादासेउपरान्तगर्भधारणकेदोष ....,,	
रोगविशेषकरकेगर्भिणीको वमनक्रिया	३४७
गर्भिणीकेआहारकानियम	,,
बालकोकोऔषधप्रमाण विश्वामित्रोक्त	,,

इति शारीरभागः समाप्तः ।

अथ शस्त्रचिकित्साप्रारंभः ।

अग्रोपहरणीयाध्यायः ।

त्रिविधकर्म	३४९
शस्त्रकर्मकोअष्टविधत्व	,,
शस्त्रकर्मकेपूर्वकर्त्तव्य	३५०
शस्त्रकर्म (चीराआदि) लगानेकीविधि	,,
चीरालगानेकाप्रमाणऔर उसकेगुण	३५१
प्रशस्तव्रणकेकर्म	,,
शस्त्रकर्ममेंवैद्यकीउत्तमता	३५२
विपरीतचीरादेनेकेउपद्रव	,,
शस्त्रकर्मकाफलऔरशस्त्रकर्मके पश्चात्कर्त्तव्यकर्म	,,
रोगीकारक्षाकर्म....	३५३
रक्षाविधानकेमंत्र	३५४
रक्षाकेअनंतरकृत्य	,,
शस्त्रजनितपीडामेंचिकित्सा	३५६

यंत्राध्यायः ।

यंत्रोंकीसंख्या	३५६
यंत्रव्यापिलक्षणपरिभाषा	३५७

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ
स्वस्तिकादियंत्रोंकीसंख्या	३५७
यंत्रबनानेकीधातुऔरउनके बनानेकीयुक्ति	,,
स्वस्तिकयंत्र	३५८
संदंशयंत्र	३५९
तालयंत्र....	,,
नाडीयंत्र	३६०
शलाकायंत्र	,,
उपयंत्र	३६१
यंत्रकर्म	३६२
अनेकशल्याकारकर्मोंको बाहुल्यहोनेसेपूर्वोक्त संख्याकाअनियम	३६३
यंत्रोंकेदोष	,,
यंत्रोंकीउत्तमता....	,,
स्वस्तिकयंत्रोंकाविषयभेद	,,
कंकमुखयंत्रकोप्रधानता	३६४

शस्त्रावचारणीयाध्यायः।

शस्त्रोंकीसंख्या	३६४
शस्त्रोंकेअष्टविधकर्म	,,
शस्त्रोंकेपकडनेकीविधि	३६५
शस्त्रोंकीआकृति	३६६
शस्त्रोंकेबनानेमेंलंबावचौडाव-काप्रमाण	,,
उत्तमशस्त्रकेलक्षण	३६८
शस्त्रोंकेदोष	,,
शस्त्रोंकीधार	,,
शस्त्रोंकीपायना	,,
शस्त्रकोश	३६९
धारकीपरीक्षा	,,
अनुशस्त्र	३७०
अनुशस्त्रोंकेविषय	,,
अवशस्त्रगुणसंपत्कारण....	,,
शस्त्राभ्यासकरनेकेगुण	३७१

योग्यासूत्रीयाध्यायः।

गुरुशिष्यकोछेद्यादिकर्ममें योग्यकरे	३७१
गुरुशिष्यकोदिखानेयोग्यकर्म	,,
योग्यकरनेकेगुण	३७२

अष्टविधशस्त्रकर्माध्यायः।

छेद्यकर्मकेयोग्य	३७३
भेदनेयोग्य	,,
लेख्ययोग्य	३७४
वेध्यऔरएष्य	,,
अहार्यऔरस्राव्य	,,
सीव्यरोग	३७५
सीव्यवर्जितरोग	,,
सीनेकीविधि	,,
अथसूची (सुई)	३७६
बहुतदूरऔरबहुतसमीपटांके लगानेकेदोष	,,
शस्त्रकर्मचतुर्विधव्यापादि	३७७
कुशस्त्रचलानेकेअवगुण....	,,
मर्मविद्धकेलक्षण	,,
छिन्नभिन्नशिराकेलक्षण....	३७८

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
स्नायुविद्धकेलक्षण	३७८	कौशल्यतापूर्वकशस्त्र निपातन	३७९
सन्धिस्थानमेंक्षतहोनेकेलक्षण	,,		
अस्थिविद्धकेलक्षण	,,		
मांसमर्मविद्धकेलक्षण	३७९		
शस्त्रकर्ममेंकुवैद्यकीनिंदा	,,		

इति शस्त्रचिकित्साविधिः समाप्तः

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

बृहन्निघण्टुरत्नाकरः।

श्रीशंवन्दे।

श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः।

मंगलाचरणम्।

भजेराधाराध्यंरमितरमणीरञ्जितपदं
रमातातानन्दातिशयगुरुगर्वापहनखम्॥
रमेशंगोविन्दंसुरवरकिरीटैरभिनुतं
हरन्तंमेविघ्नंसपदिसमलङ्कृत्यवचसाम्॥ १॥

रागादिरोगान्सततानुषक्तानिशेषकायप्रसृतानशेषान्॥
औत्सुक्यमोहारतिदान्जघान योपूर्ववैद्यायनमोस्तुतस्मै॥ २॥

पायाद्वोहरिरुद्भूवकलशंहस्तेसुधासंभृतं
देवायेनकृतामराभगवतावारिव्रजाद्यश्चसः॥
सर्वव्याधिविनाशनेतुकुशलोधन्वन्तरिर्देवता
आरोग्यैकनिदानदोमुनिवरैश्चर्कादिभिःसंस्तुतः॥३॥

यत्करस्पर्शनादेव विकसन्त्यब्जगाः श्रियः॥
तत्प्रसादेन वैद्यानां विकसन्तु यशःश्रियः॥ ४॥

श्रीखंडभस्मार्चितचर्चिताङ्गौ मुक्तालिगङ्गोल्लसदुत्तमाङ्गौ॥
शिवाशिवौनौमिसुमाल्यनागौ रत्नाग्निभाभूषितभालभागौ॥५॥

हेरम्बोरम्यलम्बोदरमरुणवपुर्मूषकेसन्निविष्टं
बिभ्रद्भिभ्राजमानंकरकमललसत्पुस्तकंस्वास्तिकञ्च॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ध्यातुर्विघ्नंविनिघ्नन्मृदुमधुरमहामोदकामोदकामो
गौरीसूनुर्गजास्योदिशतुगणपतिर्वांप्सयाऽभीप्सितार्थान् ॥ ६ ॥

स्फटिकाक्षसुधाकलशाभयकच्छपिकावरपुस्तदरेषुकरा ॥
धृतशौक्तिकमौक्तिकहारवराशरदिन्दुमुखीष्टदिमेवसताम्॥७॥

वक्राद्दष्टफलस्ययस्यपरमेशेनोदितत्वादिह
प्रामाण्यंनिगमेषुसिध्यतिकिलादृष्टार्थसामादिषु ॥
सत्यंशाश्वतमुत्तमोत्तमतमंशास्त्रेषुसर्वेषुवा
आयुर्वेदमुपास्महेवयमिमंतंसर्वविद्याकरम् ॥ ८ ॥

अथग्रंथकर्तुर्वंशपरंपरा ॥

श्रीमन्माथुरमण्डलेद्विजकुलेश्रीमाथुरीयान्वये
गोपीनाथप्रपाठकश्चयशसाश्लाघ्योभवत्सूरिभिः ॥
तत्पुत्रस्तपसांनिधिर्गुणनिधिः श्रीघासिरामोभवत्
तत्पुत्राःकुलभूषणाः समभवन्नामानितेषांब्रुवे ॥ ९ ॥
श्रीचन्द्रस्तदनुस्वधर्मनिपुणः श्रीरामचन्द्राभिध-
स्तद्भ्रातातृतियोबभूवसुभगोनाम्नाहरिश्चन्द्रकः ॥
तत्पौत्रःकिलकृष्णलालजनितःश्रीदत्तरामाभिधः
रत्नान्तंहिबृहन्निघंटुममलंकुर्वेसतांप्रीतये ॥ इति ॥

शिष्य–हेगुरो ! इस मनुष्यको परम हितकारी विद्या कौनसी है,
गुरु–आयुर्वेद विद्या,
शिष्य–कौन करणेंसैं आयुर्वेद हितकारी है,
गुरु–धर्मार्थ काम मोक्षका कारणभूत देहकी रक्षा कर्ता यही शास्त्र है, अत एव यह ग्रंथ सर्वजनादरणीय है, सो वाग्भटैंभी लिखा है ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

अर्थ–धर्म धन और सुखका साधनरूप जो आयु (जीवन) उसकी कामना करके मनुष्यको आयुर्वेदशास्त्रका अत्यन्त आदर करना चाहिये । अर्थात् आरोग्यके शत्रु रोग है, सो इस आयुर्वेदके पढनेसैं और इस्के लिखे अनुसार वर्त्ताव करनेसैं नष्ट होते हैं, चरकमुनिनैभी लिखाहै ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।
रोगास्तस्यापहन्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥

अर्थ-धर्म अर्थ काम और मोक्षका कारण नैरोग्य है, उस आरोग्यके और जीवनाद्वारा जो कल्याण होताहै उसके रोग हरण करता है, उसी प्रकार शार्ङ्गधरमें लिखा है ॥

अतो रुग्भ्यस्तनुं रक्षेन्नरः कर्मविपाकवित् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ॥

अर्थ-कर्मके विपाकके जाननेवाला पुरुष अपनी देहकी रक्षा करे क्योंकि धर्म अर्थ काम और मोक्षका साधन देहही है ।

ग्रंथान्तरे च ॥

देहादुत्पद्यते पुंसः पुरुषार्थचतुष्टयम् ।
न नीरोगः स कुत्रापि तच्छान्तिस्तु चिकित्सया ॥

अर्थ-पुरुषार्थचतुष्टय (धर्म अर्थ काम मोक्ष) पुरुषके देहसे प्रगट होते हैं, वो देह कहींभी नीरोग नहीं है, उन रोगोंकी शान्ति चिकित्सा करके होय है ॥

शिष्य-प्रथमही आयुर्वेदके अनेक ग्रंथ विद्यमान हैं फिर बृहन्निघंटुरत्नाकर बनानेका क्या प्रयोजन है ॥

गुरु---इह खलु चतुर्वर्गसाधनं शरीरं, तच्चायुःपराधीनं, तद्विघ्नकारिणो रोगाः तदभावहेतुचिकित्साप्रतिपादकतयातिसटाद्याचार्याणामायुर्वेदशास्त्रेप्रवृत्तिः तद्ग्रंथानामतिदुर्ज्ञेयतयाइदानींतनानामप्रवृत्तेः सुकरोपायेनज्ञानार्थमेतस्मिन्ग्रन्थेप्रयत्नः ॥

अर्थ-इस संसारमें चतुर्वर्गसाधनरूप शरीर है वह शरीर आयुके अधीन है, उस आयुके नाशक रोग हैं, उन रोगोंको नाशक चिकित्सा है, इस चिकित्साके प्रतिपादक तिसटादि आचार्योंकी आयुर्वेदशास्त्रमें प्रवृत्ति है, परंतु तिसटादि आचार्योंके बनाय ग्रंथ अतिकठिन हैं, इसीसे अद्यावधिपर्यंत उन ग्रंथोंको कठिनताके कारण कोई नहीं पढता, इस निमित्त सर्वसाधारण पुरुषोंके सहजमें ज्ञान होनेके निमित्त इस बृहन्निघंटुरत्नाकर ग्रंथमें हमारा प्रयत्न है, अर्थात् अनेक क्लिष्ट ग्रंथ पठनपाठनमें जो असमर्थ हैं उनको इस ग्रंथद्वारा सहज ज्ञान होजायगा, दूसरे प्राचीन ग्रंथोंकी प्रणाली संलग्न नहीं हैं, अर्थात् जिसजगह जो वस्तु

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लिखनी चाहिये सो नहीं लिखी, इस दोषको हमने बृहन्निघंटुरत्नाकरमें दूर कर-दीना है, तीसरे किसी ग्रंथका निदान किसीकी चिकित्सा किसीका शारीर उत्तम है, जैसे किसीने लिखा है ॥

निदाने माधवः श्रेष्ठः सूत्रस्थाने तु वाग्भटः ।
शारीरे सुश्रुतः प्रोक्तश्चरकस्तु चिकित्सिते ॥

अर्थ–निदानग्रंथोंमें माधव श्रेष्ठ है, सूत्रस्थान वाग्भटका, शारीरक सुश्रुतका, और चरकका चिकित्सा प्रशंसनीय है, इस कारण जो स्थल जिस ग्रंथमें उत्तम दीखा वो इसमें लिखा है, और प्रमाणान्तरभी लिखे हैं । अब इस ग्रंथ बनानेका चौथा कारण औरभी लिखते हैं ॥

प्रयोगाः परतन्त्रेषु ये गूढाः सिद्धसूचिताः ।
तानेव प्रकटीकर्तुमुद्यमं किल कुर्महे ॥

अर्थ–चतुर्थ अन्य ग्रंथोंमें जो रहस्य प्रयोग सिद्धोंके कहेहुए हैं, उन्के प्रगट करनेको हमारा इस बृहन्निघंटुरत्नाकर बनानेमें उद्योग है ॥

शिष्य–आप तो इस्को चतुर्वर्गदाता कहते हो, परंतु शास्त्रोंके मतसे आयुर्वेदकी अधमशास्त्रोंमें गणना है, यथा ॥

उत्तमा वेदविद्या च शास्त्रविद्या च मध्यमा ।
अधमा ज्यौतिषीविद्या वैद्यविद्याधमाधमा ॥

अर्थ–वेदविद्या उत्तम है, शास्त्रविद्या मध्यम है, और ज्योतिषविद्या अधम-विद्याओंमें है, तथा वैद्यविद्या तो अधमसेभी अधम अर्थात् नीचसेंभी अत्यंत नीच विद्या है । और मनुमहाराजने ३ अध्यायमें वैद्यको भोजन कराना तथा वैद्यके भोजन करना वर्जित करा है । औरभी बहुतसे प्रमाण हैं कि वैद्यविद्या अधम है ॥

गुरु–तुम्हारा कहना ठीक है, परन्तु यह जो निषेध है सो अधम वैद्यके प्रति है, और यह श्लोक किसी मूर्खका नवीन कल्पना कराहुआ है, क्योंकि आयुर्वेद सनातन है । और इस्के आचार्यभी ब्रह्मा, दक्ष, इन्द्र, चरक, सुश्रुत, भरद्वाज, अत्रि, पराशर आदि ऋषि हैं । यदि यह अधम शास्त्र है तो चरक, सुश्रुत, भरद्वाज आदि ऋषियोंको दूषण आना चाहिये । दूसरे यह शास्त्र ऋग्वेदका उपवेद है, यथा ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऋग्वेदस्योपवेदोयमायुर्वेदइतिस्मृतः ॥
सृष्टयुत्पादनचित्तेन स्मृतः पूर्वं स्वयंभुवा ॥

अर्थ-यह ऋग्वेदका उपवेद आयुर्वेद कहा है, इसको सृष्टि रचनेके प्रथम ब्रह्माने प्रगट करा है । और सुश्रुतने इसको अथर्ववेदका उपांग लिखा है इसके पढनेका फल चरकमुनिने इस प्रकार लिखा है ।

तदिदंशाश्वतंपुण्यंसौख्यंवृत्तिकरंपरम् ॥
स्वर्ग्यंयशस्यमायुष्यंयदिसम्यक्प्रकल्पितम् ॥

अर्थ-यह शास्त्र पुण्य, सुख और जीविकाका करनेवाला सनातन है । यदि इसको यथार्थविधिसे करे तो स्वर्ग, यश और आयुष्यको देवे, इस श्लोकमें जो (यदि सम्यक्प्रकल्पितं) यह पद है, इससे निश्चय होता है, कि जो वैद्यके लक्षण और शास्त्रके कहे अनुसार न वर्त्ते उसको पाप, दुःख, अपयश और नरककी प्राप्ति होती है । अर्थात् शास्त्रहीन, निर्दयी, मौल्य लेकर चिकित्सा करनेवाले वैद्यकी निंदा है । और मनुमहाराजनेभी ऐसेही वैद्यका निषेध लिखा है, यथा ।

नक्षत्रसूचिनंविप्रंभिषजंशुल्कजीविनम् ॥
तद्वत्पौराणिकांश्चापिवाङ्मात्रेणापिनार्चयेत्॥

अर्थ-नक्षत्रसूची ज्योतिषी और मोल लेकर औषध देनेवाला वैद्य, उसीप्रकार द्रव्य ठहराकर कथा वाचनेवाला पौराणिक, इन्होंका वाणीसेंभी सत्कार न करे । किंतु तिरस्कार करदे । इस शास्त्रका माहात्म्य और वैद्यके लक्षण आगे कहेंगे ॥

शिष्य-आपने आयुर्वेदका अच्छा प्रतिपादन करा, इसको सुनके मुझको इसके पढनेकी अत्यन्त लालसा उत्पन्न हुई है । इससें अब आप आयुर्वेदकी उत्पत्ति वर्णन करो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गुरु-

अथातोआयुर्वेदोत्पत्तिंनामा-ध्यायंव्याख्यास्यामः ॥

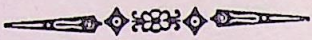

यथोवाचभगवान्धन्वन्तरिः सुश्रुताय ।

अर्थ–अब हम आयुर्वेदोत्पत्ति नामक * अध्यायकी व्याख्या करेंगे । जैसे भगवान् धन्वन्तरिने सुश्रुत शिष्यके प्रति सुश्रुत ग्रन्थमें कही है ॥

तत्रप्रथममेवग्रन्थसंदर्भप्रारम्भे, तदसमापनकारणविघ्नविनाशनपरमाप्ताचारपरंपरापरिप्राप्तमंगलाचरणमुचितमिति; तदाचरणीयत्वे प्रचुरतरविघ्नशंकाशंकितचेतसांप्रचुरतरविघ्नभङ्गायप्रचुरतरमङ्गलमेवशिष्यशिक्षायिषयाप्रत्याध्यायमग्रतोऽथशब्दोपादानेनाचचार ॥

अर्थ–तहां प्रथम ग्रन्थके प्रारंभमें, ग्रन्थकी समाप्तिके कारण और विघ्नविनाशनार्थ मंगलाचरण करना चाहिये । यह शिष्टाचार परंपरा चली आती है । इसीसे तदाचरणीय होनेसे और प्रचुरतर शंकाशंकित चित्तवाले पुरुषोंके संपूर्ण विघ्न दूर करनेके अर्थ, प्रचुरतर मंगल शिष्यशिक्षाके अर्थ प्रत्येक अध्यायके प्रथम अथशब्दके उपादान करके करा है । अर्थात् ग्रंथके बननेमें विघ्न न होय, इस कारण प्रत्येक अध्यायके प्रथम अथशब्द मंगलवाची धरा है ।

शिष्य–ननुकिमभिधेयार्थकमिदंशास्त्रंप्रयोजनमपिकिम् ?

अर्थ–शिष्य प्रश्न करे है, कि हे गुरो! इस आयुर्वेदशास्त्रमें कौन विषय है और क्या प्रयोजन है, जैसा लिखा है ।

ज्ञातार्थज्ञातसंबंधं श्रोतुं श्रोता प्रवर्त्तते ।
ग्रन्थादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनम् ॥

---

* अक्षरोंसैं शब्द, शब्दसैं पद, पदके समुदायसैं वाक्य, वाक्यके समूहसैं प्रकरण, प्रकरणके समूहसैं अध्याय, अध्यायके समुदायसैं स्थान और स्थानके समुदायसैं तंत्र होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-ज्ञातार्थ और ज्ञात संबंध सुननेको, श्रोता (सुननेवाले)की प्रवृत्ति होती है, इसी कारण ग्रन्थके आदिमें प्रयोजनसहित संबन्ध कहना चाहिये। अर्थात् जबतक प्रयोजन, संबंध, विषय और अधिकारी ये ४ नहीं जाने जांय तबतक मनुष्य किसी शास्त्रके पढनेमें प्रवृत्त नहीं होता है। अन्यत्रभी लिखा है।

प्रयोजनमनुद्दिश्यनमन्दोपिप्रवर्त्तते ॥

अर्थ-विना प्रयोजन मूर्खभी किसी कार्यको नहीं करे, अतएव हे गुरो! आप आयुर्वेदशास्त्रके संबंधचतुष्टय कहो, अर्थात् इस शास्त्रमें कौन विषय, क्या संबंध, क्या इस शास्त्रका प्रयोजन और कौन पढनेका अधिकारी है।

गुरु-आयुर्वेदका प्रयोजन चरकमुनिने इसप्रकार लिखा है।

धातुसात्म्यक्रियाचोक्तातन्त्रस्यास्यप्रयोजनम् ॥

अर्थ-धातु (रस, रुधिर, मांसादि) के समान करनेवाली क्रियाही इस आयुर्वेदशास्त्रका प्रयोजनरूप है, अर्थात् बढीहुई धातुओंको घटाना और घटी हुईयोंको बढाना, तथा जो स्वयं समान है उनको घटनेबढनेसैं रक्षा करना, यही इस शास्त्रका मुख्य प्रयोजन है। उपाय और उपेयरूप इस शास्त्रमें संबंध है. * हेतु, लिंग और औषधात्मक, तीनस्कंधोंका प्रतिपादन यही इसमें विषय है। और ब्राह्मण इसके पढनेका अधिकारी है, परंतु कोई आचार्य्य कहते हैं कि "तज्जिज्ञासुः" अर्थात् इसके पढनेकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य, त्रिवर्णको अधिकार है, और कुल गुण संपन्न शूद्रकोभी पढनेका अधिकार है। यह सुश्रुत कहता है, अब।

सुश्रुतके मतसे प्रयोजन कहते हैं ॥

वत्स सुश्रुत! इहखल्वायुर्वेदप्रयोजनंव्याध्युपसृष्टा-
नांव्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्यरक्षणञ्च ॥

अर्थ-धन्वन्तरि कहते हैं कि हेवत्स सुश्रुत! इस आयुर्वेदशास्त्रका यही प्रयोजन है कि रोगग्रस्त मनुष्योंको रोगोंसे (औषधादि देकर) रोगरहित करना, और रोगरहितों को (हित आहार विहारादि आचरण साधन कराकर) रोगोंसे रक्षा करना अर्थात् अहित आचरणके सेवनसे कदाचित् रोगी न होजाय।

---

* धातु समान करनेवाला यह शास्त्र है, इसीसैं इसको प्रयोजनवान् शास्त्र कहते हैं। इसके पढ़नेसैं और अर्थ जाननेसैं तथा इस शास्त्रविहित विधिके अनुष्ठान करनेसैं, आरोग्यरूप उपेयकी प्राप्ति, और नैरोग्य देह होनेसे अभीष्ट पूर्ण आयुकी प्राप्ति होती है, उस्सैं परमपुरुषार्थरूप मोक्षकी प्राप्ति सुलभ है, इसी कारण वास्तवसैं यह शास्त्र उपायरूप है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिष्य–हे गुरो ! जिस मनुष्यके प्रारब्धमें जो दुःख या सुख लिखा है वो अवश्य भोगना पड़ेगा, फिर यत्न करना व्यर्थ है, जैसे लिखा है "अवश्यमेवभोक्तव्यं कृतंकर्मशुभाऽशुभम्" शौनकभी कहते हैं । यथा ॥

येनतुयत्प्राप्तव्यं तस्यविपाकंसुरेशसचिवोपि ।
यःसाक्षान्नियतिज्ञः सोपिनशक्तोन्यथाकर्तुम् ॥

अर्थ–जिसको जो वस्तु प्राप्त होनेवाली है, उसको विपाकका जाननेवाला इन्द्रका सचिवभी अन्यथा नहीं करसके, उसीसे प्राचीन सदसत् कर्मको अवश्य भावित्व है ।

गुरु–ऐसा कहोगे तो औषधादि भक्षण मुहूर्त्तादि देखना और दुकान आदि करना, तथा पुरश्चरणादि कर्मको असत्यता आवेगी, इसीसें दैव (प्रारब्ध) और यत्न (उद्योग) दोनोंही सफल है, केशवार्कनेभी लिखा है ।

फलेष्वदिप्राक्तनमेवतर्हिक कृष्याद्युपायेषुपरःप्रयत्नः ॥
श्रुतिस्मृतिश्चापिनृणांनिषेधविध्यात्मकेकर्मणिकिंनिषण्णे

इति ॥

अर्थ–प्राक्तन कर्मही फले हैं । कदाचित् तुम ऐसा मानोगे तो खेती करना आदि उपायोंमें मनुष्यको प्रयत्न करना व्यर्थ है, तथा श्रुतिस्मृति निषेध विधिवाले कर्म करनाभी निरर्थक है, " न वृक्षमारोहेन्न कूपमवरोहेन्न बाहुभ्यां नदीन्तरेन्न संशयमभ्यापद्येत " अर्थात् वृक्षपर न चढ़े, कूएको उल्लंघन न करे, नदीको हाथोंसें न तरे, तथा जहां प्राणका संदेह होय उस स्थानमें न जाय, इत्यादि आश्वलायनके वचनोंको और आयुर्वेदशास्त्रको व्यर्थता आवेगी, और शार्ङ्गधरमें लिखा है ।

दिव्यौषधीनांबहवःप्रभेदा वृन्दारकाणामिवविस्फुरन्ति ॥
ज्ञात्वेतिसंदेहमपास्यधीरैःसम्भावनीयाविविधप्रभावाः ॥

अर्थ–दिव्यौषधोंके अनेक भेद हैं, और वे देवतोंके सदृश प्रकाशवान् हैं, अर्थात् देवतोंके समान फलके देनेवाली हैं । इस प्रकार जानके धीर पुरुष संदेहको दूरकर अनेक प्रभाववाली औषधोंको जाने इस जगह देवताओंके सदृश जो प्रभाव लिखा है उस्को असत्यता आवेगी, अतएव कर्मकी सिद्धि केवल दैवसें नहीं है किंतु पुरुषार्थसेभी होय है सो याज्ञवल्क्य ऋषि लिखते हैं ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दैवेपुरुषकारेपिकर्मसिद्धिर्व्यवस्थिता ।
तत्रदैवमभिव्यक्तंपौरुषंपौर्वदैहिकम् ॥

अर्थ–कर्मकी सिद्धि, अर्थात् भले बुरे फलकी प्राप्ति होना, यह केवल दैवसेंही नहीं है, किंतु पुरुषार्थसेभी होती है । क्योंकि पूर्वकृत पुरुषार्थकोही दैव कहते हैं । वो अल्प उद्योगसे महाफल देता है, ऐसाही शकुनवसंतराज ग्रंथमें लिखा है ।

पूर्वजन्मजनितंपुराविदः कर्मदैवमितिसंप्रचक्षते ।
उद्यमेनसमुपार्जितंतदावांछितंफलतिनैवकेवलम् ॥

अर्थ–पूर्वजन्मके कर्मको दैव कहते हैं । वह उत्तम उद्योगद्वारा वांछित फल देता है । स्वयंही फल नहीं दे सकता, इसीसे उद्योग और दैव दोनोंकोही मुख्यता है । उसको याज्ञवल्क्य दृष्टान्त देकर कहते हैं ।

यथाह्येकेनचक्रेण रथस्यनगतिर्भवेत्।
तद्वत्पुरुषकारेणविनादैवंनसिध्यति ॥

अर्थ–जैसे एक पैयेसै रथ नहीं चले, उसी प्रकार विना पुरुषार्थ (उद्योग) के दैव सिद्ध नहीं होता, केशवार्कीभी लिखता है ।

प्राक्कर्मवीजंसलिलानलोर्वीसंस्कारवत्कर्मविधीयमानम् ।
शोषायपोषायचयस्यतस्य तस्मात्सदाचारवतांनहानिः ॥

अर्थ-पूर्वजन्मान्तरोपार्जितकर्म दैव कहाता है । उसके निमित्त इस जन्ममें क्रियमाण कर्म सुखाने और पोषणार्थ होता है, जैसे बीजको जल, गरमी और पृथ्वीका संस्कार, अर्थात् जैसे उत्तम बीज जल खात आदिके देनेसैं जल्दी ऊगकर बढता है, उसी प्रकार पूर्वजन्मका कर्म इस जन्मके अच्छे उद्योगसै बढता है, अन्यथा क्षीण होजाता है । इसी कारण आयुर्वेदशास्त्रद्वारा, प्रथम निदानादिसै परीक्षा कर, औषध सेवन और शांति दुकान और मुहूर्त्तादि देखना आदि सदाचारवाले पुरुषोंकी हानी नहीं होती *

तथाचचरकेविमानस्थानस्यतृतीयाध्याये च ।

* किन्तु खलु भगवन् ! नियतकाल प्रमाणमायुः सर्वं नवेति । भगवानुवाच । इहाग्निवेश ! भूतानामायुर्युक्तिमपेक्षते । दैवे पुरुषकारेचस्थिते ह्यस्यबलाबलम् १ दैवमापिकृतं विद्यात्कर्मयत्पूर्वदैहिकम् । स्मृतः पुरुषकारस्तु क्रियतेयदिहापरम् २बलाबलविशेषोस्तितयोरपिचकर्मणोः । दृष्टंहित्रिविधंकर्म हीनंमध्यममुत्तमम् ३ तयोरुदारयोर्युक्तिर्दीर्घस्यस्वसुख

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिष्य–हे गुरो ! मेरे मनमें कर्म और उद्योग इन दोनोंमें कौन बडा है यह भ्रम था सो आपने दोनों मुख्य कहे यह ठीक है, मैनेभी बहुतसे प्रारब्ध माननेवाले देखे परंतु विना उद्योग किसीको न देखा इसीसे उद्योग अवश्य कर्त्तव्य है । अब आप आयुर्वेद किसको कहते हो सो कहो ।

गुरु–आयुर्वेदके लक्षण भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखे है ।

स्यच । नियतस्यायुषो हेतुविपरीतस्यचेतरा ४ मध्यमामध्यमस्येष्टाकारणंशृणुचापरम् । दैवं पुरुषकारेण दुर्बलंह्युपहन्यते ५ दैवेनचेतरत्कर्म्मविशिष्टेनोपहन्यते । दृष्ट्वायदेकेमन्यन्ते नियतंमानमायुषः ६ कर्मकिंचित्क्वचित्कालेविपाकेनियतंमहत् । किंचिन्न कालनियतंप्रत्ययैः प्रतिबोध्यते ७ तस्मादुभयदृष्टत्वादेकान्तग्रहणमसाधु । निदर्शनमपिचात्रोदाहरिष्यामः । यदि हिनियतकालप्रमाणमायुः सर्व्वस्यादायुष्कामानां नमन्त्रौषधिमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमप्रायश्चितोपवासस्वस्त्ययनप्राणिपातगमनाद्याः क्रियाइष्टयश्चप्रयोज्येरन् । नोद्भ्रान्तचण्डचपलगोगजोष्ट्रखरतुरगमहिषादयः पवनादयः दुष्टाः परिहार्याः स्युः । नप्रपातागिरिविषमदुर्गाम्बुवेगाः तथानप्रमत्तोन्मत्तोद्भ्रान्तचण्डचपलमोहलोभाकुलमतयोनारयोनप्रवृद्धोऽग्निर्नचविविधविषयाश्रयाः सरीसृपोरगादयः । नसाहसंनदेशकालचर्य्याननरेन्द्रप्रकोपइत्येवमादयो भावनाभावकराः स्युरायुषः सर्वस्यानियतकालप्रमाणत्वात् नचानभ्यस्ताकालमरणभयनिवारकाणामकालमरणभयमागच्छेत्प्राणिनाम् । व्यर्थाश्चारम्भकथाप्रयोगबुद्धयः स्युर्महर्षीणांरसायनाधिकारे । नापीन्द्रोनियतायुषंशत्रुंवज्रेणाभिहन्यात् । नाश्विनावार्त्तैभेषजेनोपपादयेतांनर्षयोयथेष्टं आयुस्तपसाप्राप्नुयुर्नचविदितवेदितव्यापमहर्षयः ससुरेशाः सम्यक्पश्येयुरुपदिशेयुराचरेयुर्वाअपिचसर्व्वचक्षुषामेतत्परंयदैन्द्रंचक्षुरिदंचास्माकंप्रत्यक्षंयथापुरुषसहस्राणामुत्थायोत्थायाऽऽहवंकुर्वतामकुर्वतांचतुल्यायुष्ट्वंनचतुल्योयोगउपदानघटकानां चित्रघटकानांचोत्सीदताम् । तस्माद्धितोपचारमूलं जीवितंअतोविपर्ययान्मृत्युरापि चदेशकालात्मगुणविपरीतानांकर्मणामाहारविकाराणाञ्चक्रिया पयोगः । सम्यक्सवीर्यातियोगसन्धारणमसंधारणमुदीर्णानाञ्चगतिमतांसाहसानांचवर्जनमारोग्यानुवृत्तौउपलभामहेहेतुरुपदिशामः । सम्यक्पश्यामश्चेति ।

अतःपरमग्निवेश उवाच । एवंसतिअनियतकालप्रमाणायुषांभगवन् ! कथंकालमृत्युरकालमृत्युर्भवतीति । तमुवाचभगवानात्रेयः । शृणुतामग्निवेश ! यथायानसमायुक्तोऽक्षः प्रकृत्यैवाक्षगुणैरुपेतः सर्वगुणोपपन्नोवाह्यमानोयथाकालंस्वप्रमाणक्षयादेवावसानंगच्छेत्तथायुः शरीरोपगतंप्रकृत्यायथावदुपचर्य्यमानंस्वप्रमाणक्षयादेवअवसानंगच्छति । समृत्युकाले । यथाचसएवाक्षोऽतिभारादिधिष्ठितत्वाद्विषमपथादपथादक्षचक्रभङ्गाद्वाह्यवाहकदोषादनिर्मोक्षात्पर्यसनादनुपाङ्गाच्चान्तराव्यसनमापद्यते । तथायुरप्ययथाबलमारम्भादयथाभ्यभ्यवहरणाद्विषमाभ्यवहरणाद्विषमशरीरन्यासादतिमैथुनादसत्संश्रयादुदीर्णवेगाविनिग्रहात् । विधार्यवेगाविधारणाद्भूतविषाग्न्युपतापादभिघातादाहारविवर्जनाच्चान्तराव्यसनमापद्यते । तथाज्वरादीनप्यातङ्कान्मिथ्योपचरितानकालमृत्यून्पश्याम इति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आयुर्हिताहितंव्याधिनिदानशमनंतथा।
विद्यतेयत्रविद्वद्भिः सआयुर्वेदउच्यते ॥

अर्थ-आयुका हित और अहित तथा व्याधि (रोग) का निदान, और शमन (चिकित्सा) जिस्में होय उसको आयुर्वेद कहते हैं । तथा च चरके ।

हिताऽहितंसुखंदुःखमायुस्तस्यहिताहितम् ।
मानञ्चतच्चयत्रोक्तमायुर्वेदःसउच्यते ॥

अर्थ-चरक कुछ विशेष कहता है कि- हित, अहित, सुख और दुःख, चार प्रकारकी आयू हैं, । इन चारों प्रकारकी आयून्का हित और अहित तथा आयु-का प्रमाण, और अप्रमाण, ये संपूर्ण जिसमें होय, उसको आयुर्वेद कहते हैं । १ तहां शरीर मानसिक रोगोंसें रहित, यौवनवान्, सामर्थ्यके अनुसार बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम, ज्ञान, विज्ञान, इन्द्रियार्थ बल समुदाय, श्रेष्ठ भोग और यथेष्ट विचारवान् पुरुषकी सुख आयु कहाती है । २ इस्सें विपरीत असुख आयु जाननी । ३ सर्व प्राणीयोंका हितैषी, सदुपदेशकर्त्ता, सत्यवादी, विचारके कार्य कर्त्ता, अप्रमत्त, त्रिवर्गसेवी, पूजनीयोंका पूजन कर्त्ता, ज्ञान विज्ञान साधक, वृद्धसेवी, तपस्वी, इस लोकका और परलोकका ज्ञाता, स्मृति और मतिमान् पुरुषकी आयुको हितआयु कहते हैं । इस्से विपरीतको अहित आयु जाननी ।

शिष्य-अब आयुर्वेदकी निरुक्ति कहो ।

गुरु-आयुर्वेदकी निरुक्तिभी भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखी है ।

अनेनपुरुषोयस्मादायुर्विन्दतिवेत्तिच ।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेदइतिस्मृतः ॥

अर्थ-इस शास्त्रद्वारा पुरुष अपनी आयुको प्राप्त हो और दूसरेकी आयु-को जाने, इसी कारण मुनीश्वर इस शास्त्रको आयुर्वेद ऐसें कहते है ।

शिष्य-आयु किस को कहते हैं ।

गुरु-शरीरजीवयोर्योगोजीवनं । तेनावच्छिन्नःकालआयुः ॥

अर्थ-देह और जीवके संयोग को जीवन कहते हैं, उस जीवनके अनवच्छिन्न कालको अर्थात् नियमित समयको आयु कहते हैं ।

सुश्रुतेच ।

आयुरस्मिन्विद्यतेऽनेनवाआयुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–अब सुश्रुतके मतसे आयुर्वेदकी निरुक्ति कहते हैं, शरीर इन्द्रिय सत्वात्मक संयोगको आयु कहते हैं, सो आयु इस शास्त्रमें है, इसीसे इसको आयुर्वेद कहते हैं । अथवा । आयु जिस करके जानी जाय उसको आयुर्वेद कहते हैं । अथवा । जिससे आयुका विचार करा जाय उसको आयुर्वेद कहते हैं । अथवा । आयु जिस करके प्राप्त हो उसको आयुर्वेद कहते हैं ।

शिष्य–अपनी और दूसरेकी आयु कौन कारणोंसें प्राप्त होती है और जानी जाती है सो हेतु कहो ।

गुरु––आयुर्वेदद्वाराऽऽयुष्याण्यनायुष्याणिच द्रव्यगुणकर्माणि ज्ञात्वातेषांसेवनत्यागाभ्यामारोग्येणायुर्विन्दति । तेनैवहेतुनापरस्याप्यायुर्व्वेत्तिच ॥

अर्थ–आयुर्वेदद्वारा, आयुष्यके बढ़ानेवाले और आयुष्यके नाश करनेवाले, द्रव्य, गुण और कर्म, जानकर जो आयुष्यके वृद्धि कर्त्ता होय, उनका सेवन और जो आयुष्यके नाशक हैं उनका त्याग करनेसे आयुकी वृद्धि होती है, तब मनुष्य आयुष्यको प्राप्त होता है इन्ही पूर्वोक्त कारणोंसें दूसरे मनुष्यकी आयु जान सकता है ।

आयुर्वेदके सामान्यलक्षण ॥

इहखल्वायुर्वेदोनामयदुपाङ्गमथर्व्ववेदस्याऽनुत्पाद्यैवप्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रञ्चकृतवान्स्वयम्भूः ॥

अर्थ–यह आयुर्वेद जो अथर्ववेदका उपाङ्ग है, उसको सृष्टि रचनेके प्रथमही, ब्रह्मदेवने एक लक्ष श्लोक और एक हजार अध्याय जिसमें ऐसा आयुर्वेद संहिता नामसे निर्माण करा, अर्थात् प्रथम आयुर्वेद प्रगट कर पीछे सृष्टि रचना करी, इस जगह ब्रह्माको आयुर्वेदकर्त्ता न समझना, किंतु, आयुर्वेदसंग्रहकर्त्ता जानना, क्योंकि आयुर्वेद अथर्ववेदका उपाङ्ग होनेसें नित्य और सनातन है ।

ततोऽल्पायुष्ट्वमल्पमेधस्त्वञ्चावलोक्यनराणाम्भूयोऽष्टधाप्रणीतवान्॥

अर्थ–तदनन्तर (संसारमें अधर्म प्रवृत्त होनेसें) मनुष्योंकी अल्प आयु और अल्प बुद्धि देख उसी आयुर्वेदके पुनः आठ विभाग करे, क्योंकि जब थोडा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जीवन और उसमेंभी मंदबुद्धिवाले पुरुष होने लगे, तो पूर्वोक्त १००००० लक्ष श्लोककी संहिता कंठाग्र होना दुर्घट जानके, आठ विभाग (टुकडे) करे।

शिष्य-आठ विभाग कौनसे हैं सो कहो।

गुरु-हे वत्स ! आयुर्वेदके आठ विभाग ये हैं।

शल्यं,शालाक्यं, कायचिकित्सा,भूतविद्या, कौमारभृत्य· मगदतन्त्रं, रसायनतन्त्रं, वाजीकरणतन्त्रमिति ॥

अर्थ-अब पूर्वोक्त आठ विभागोंको कहते हैं जैसे कि- १ शल्य, २ शालाक्य, ३ कायचिकित्सा, ४ भूतविद्या, ५ कौमारभृत्य, ६ अगदतन्त्र, ७ रसायनतन्त्र, और ८ वाजीकरणतन्त्र।

१ शल्य हरण, अर्थात् कांटा, खोवरा, तीरकी भाल आदि, निकालना प्रधान है जिसमें उस तन्त्रको शल्यतन्त्र कहते हैं। २ जिसमें शलाका, (सलाई) का कर्म, अर्थात् नेत्ररोगकी चिकित्सा प्रधान है, उसको शालाक्यतन्त्र कहते हैं। ३ जिसमें काय (अग्नि) की चिकित्सा है उसको कायचिकित्सा कहते हैं। अथवा। जिसमें काय (देह) की चिकित्सा कहते हैं, उसको कायचिकित्सातन्त्र कहते हैं। ४ जिसमें भूत (देव, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पित्रीश्वर, नाग और पिशाच)इन आठोंको जिससे जाने उस विद्याको भूतविद्या कहते हैं। अथवा। भूत वेशादि शान्ति कर्त्ता विद्याको भूतविद्या कहते हैं।५ बालकोंका भरण, पोषण आदि जिसमें, उस तंत्रको बालतंत्र कहते हैं। ६ जिसमें विषका प्रतिकार है, उस तंत्रको अगद-तंत्र कहते हैं। ७ जिसमें रस (रस रुधिर आदि) पुष्ट करनेकी विधि हो, उस को रसायनतंत्र कहते हैं। अथवा। रस कहिये रस, वीर्य, विपाकादि, आयुप्रभृ-तिकारणोंके विशिष्ट लाभोपायको रसायन कहते हैं, उसके अर्थ जो तंत्र, उस-को रसायनतंत्र कहते हैं। ८ जिस्से मनुष्य स्त्रीके विषयमें घोडेके सदृश सा-मर्थ्यको प्राप्त होय, उसको वाजीकरणतंत्र कहते हैं। कोई आचार्य ऐसा अर्थ क-रते हैं कि, वाजी शुक्रके वेगका नाम है, वह शुक्रका वेग जिन पुरुषोंमें है, उ-नको वाजिन्, ऐसा कहते हैं। अब जो अवाजी अर्थात् वीर्यवेगरहित पुरुषोंको वीर्यवेगयुक्त जिस्से करा जाय उसको वाजीकरण कहते हैं, कोई आचार्य शुक्र-कोही वाजी कहते हैं, अर्थात् वीर्यरहितोंको वीर्ययुक्त जिस्से करा जाय उसको वाजीकरण कहते हैं,। उसके अर्थतंत्रको वाजीकरणतंत्र कहते हैं।

अब आयुर्वेदके अंगोंके लक्षण कहते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शल्यतंत्रम् ॥

तत्र शल्यं नाम । विविधतृणकाष्ठपाषाणपांशुलोह लोष्टास्थिवालनखपूयास्रावान्तर्गर्भशल्योद्धरणार्थं यंत्रशस्त्रक्षाराग्निप्रणिधानव्रणविनिश्चयार्थञ्च ॥

अर्थ–पूर्वोक्त आठ भेद कहे उनमेंसे जो अनेक प्रकारके तृण, (तिनका घास, कठोर तृण, खोबरा, कांटा, गोखरू आदि) काष्ठ, (लकड़ीकी फांस आदि) पाषाण, (पत्थरकी कत्तल आदि) धूल, लोह, (सुई आदि) लोष्ट, (कंकर ठीकरी आदि) हाड, वाल, नख, (नाखून) आदिके लगनेसे अथवा, अंतर्गत शल्य, (तीर वगेरह आदि) सें जो घाव होजाता है और उस घावमें उक्त वस्तुओंका कुछ भाग रहजानेसे घाव दुष्ट होकर उसमेंसे राध, रुधिर आदि निकले, तथा स्त्रियोंके मूढ गर्भ निकालनेके वास्ते, जो यंत्र (स्वस्तिकादि) शस्त्र, (मंडलाग्र करपत्रादि) द्वारा पूर्वोक्त शल्योंका निकालना, तथा क्षार, अग्निदाह (दागना) और व्रणके अच्छे प्रकारसे जाननेके अर्थ जो शास्त्र है उसको शल्यतंत्र कहते हैं ।

शालाक्यम् ।

शालाक्यं नाम । ऊर्ध्वजत्रुगतानां रोगाणां श्रवणनयनवदन घ्राणादिसंश्रितानां व्याधीनामुपशमनार्थम् ॥

अर्थ–जिसमें जत्रु (कंठ अथवा हासियेके) ऊपर अर्थात् कान, नेत्र, मुख और नाक आदि शब्दसे शिर, कपालमें होनेवाले रोगोंके अर्थ जो ग्रंथ उसको शालाक्यतंत्र कहते हैं ।

कायचिकित्सा ।

कायचिकित्सा नाम । सर्व्वाङ्गसंसृतानांव्याधीनांज्वरातीसाररक्तपित्तशोषोन्मादाऽपस्मारकुष्ठमेहादीनामुपशमनार्थम् ॥

अर्थ-सर्वांगमें होनेवाले रोग, जे ज्वर, अतीसार, रक्तपित्त, काश्र्य, उन्माद, अपस्मार, (मृगी) कोढ़ और प्रमेहादिकोंके शमनार्थ चिकित्साको, कायचिकित्सा कहते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भूतविद्या ।

भूतविद्या नाम । देवासुरगंधर्वयक्षरक्षःपितृपिशाचनागग्रहाद्युपसृष्टचेतसां शान्तिकर्मबलिहरणादिग्रहोपशमनार्थम् ॥

अर्थ–देव, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पित्रीश्वर, पिशाच और नाग आदिग्रहों करके व्याप्त चित्तवाले पुरुषोंके ग्रह शांति करनेके निमित्त जो शान्तिबली देना आदि कर्मको भूतविद्या कहते हैं ।

कौमारभृत्यम् ।

कौमारभृत्यं नाम । कौमारभृत्यधात्रीक्षीरदोषसंशोधनार्थं दुष्टस्तन्यग्रहसमुत्थानाञ्च व्याधीनामुपशमनार्थम् ॥

अर्थ–बालकका पालना, माताके दूधके शोधनार्थ, तथा दुष्ट दुग्धसे होनेवाली शरीरकी व्याधी और दुष्टग्रहोंसें प्रगट आगन्तु व्याधियोंके शमनार्थ, तो जो कर्म है, उसको कौमारभृत्यतंत्र कहते हैं ।

अगदतंत्रम् ।

अगदतंत्रं नाम । सर्पकीटलूतावृश्चिकमूषिकादिदष्टविषव्यञ्जनार्थं, विविधविषसंयोगविषोपहतोपशमनार्थम् ॥

अर्थ–सर्प, कीट, (खाणखजूरा अथवा विच्छू आदि) लूता (मकड़ी आदि) विच्छू, मूसा आदिके काटनेसे जो मनुष्योंके देहमें विष फैल जावे उसके ज्ञानार्थ और अनेक प्रकारके भेद स्थावर जंगम आदि विष, तथा (घृत शहत आदि) संयोग विषसे ग्रस्त मनुष्योंके कल्याणार्थ जिसमें चिकित्सा करी है,उसको अगदतंत्र कहते हैं ।

रसायनतंत्रम् ।

रसायनतंत्रं नाम । वयःस्थापनमायुर्मेधाबलकरं रोगोपहरणसमर्थञ्च ॥

अर्थ–जिससे मनुष्य अपनी वयका स्थापन अर्थात् १०० वर्षकी आयु हो, तथा आयुकी वृद्धि, अर्थात् सौवर्षसे अधिक दोसौ तीनसो वर्ष की आयु (ऊ-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मर) करनेकी और बुद्धि तथा बलकर्त्ता और रोगनाशक उपायको रसायन-तंत्र कहते हैं ।

वाजकिरणतंत्रम् ।

वाजीकरणतन्त्रं नाम । अल्पदुष्टविशुष्कक्षीणरेतसामप्यायनप्रसादोपचयजननिमित्तंप्रहर्षजननार्थञ्च । एवमयमायुर्वेदोऽष्टांगउपदिश्यते ॥

अर्थ–प्रकृतिसेही अल्पशुक्रवाले मनुष्योंके शुक्र बढ़ानेके निमित्त दुष्ट शुक्र, अर्थात् दूषित वीर्यके शोधनार्थ और शुष्कवीर्यवाले पुरुषोंके वीर्य पुष्ट करनेके निमित्त और क्षीणवीर्यपुरुषोंके वीर्योत्पादनार्थ और स्त्रीयोंमें हर्षोत्पादनार्थ जो उपाय है, उसको वाजीकरणतंत्र कहते हैं । अथवा जिनकी २५ वर्षकी अवस्था नहीं है वो अल्पवीर्य कहाते हैं । और वृद्ध मनुष्योंको क्षीणरेतस् कहते हैं. यह सुश्रुतका मत कहा इसमें शल्यतंत्र मुख्य होनेसे प्रथम कहा है । परन्तु वाग्भटने दूसरा क्रम कहा है उसकोभी कहते हैं ।

कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान् ।
अष्टावङ्गानितस्याहुश्चिकित्सायेषुसंश्रिताः ॥

अर्थ–कायचिकित्सा, बालचिकित्सा, ग्रहचिकित्सा ऊर्ध्वाङ्गचिकित्सा, (शालाक्य) शल्यचिकित्सा, दंष्ट्राचिकित्सा, (अगद तंत्र) जराचिकित्सा, (रसायनतंत्र) और वृष, अर्थात् वाजीकरणचिकित्सा, इसप्रकार कायादि आठ चिकित्सा आयुर्वेदके आठ अङ्ग हैं । इन आठों अंगोंमें चिकित्सा विद्यमान है, चिकित्साके लक्षण चरकमुनिने कहे हैं यथा (चतुर्णांभिषगादीनांशस्तानांधातुवैकृते । प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्था चिकित्सेत्यभिधीयते) अर्थात् उत्तम भिषगादि चतुष्टय, (रोगी वैद्य-सेवक और औषध) इनकी, दूषित धातु सुधारनेके अर्थ जो प्रवृत्त होना उसको चिकित्सा कहते हैं, यह वाग्भटका मत कहा इसमें कायचिकित्सा मुख्य है ।

आयुर्वेदके गौरवोत्पादनार्थ आगमशुद्धि कहते हैं ।

ब्रह्माप्रोवाच । ततःप्रजापतिरधिजगे । तस्मादश्विनौ । अश्विभ्यामिन्द्रः इन्द्रादहंमयात्विहप्रदेयमर्थिभ्यःप्रजाहितहेतोः ॥

अर्थ–प्रथम ब्रह्मदेवने कहा, उनसे दक्षप्रजापतिने पढ़ा, तिनसे अश्विनीकुमार और अश्विनीकुमारसे इन्द्र, इन्द्रसे धन्वन्तरि कहे हमने पढ़ा, अब मैं प्रजाके

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कल्याणार्थ इस विद्याके पढ़नेवाले मनुष्योंको पृथ्वीमें देऊंगा, इस ग्रंथशुद्धि कहने का यह प्रयोजन है कि यह आयुर्वेद सनातन है, यह सुश्रुतमें लिखा है।

अब इस आयुर्वेदकी शुद्धीको विस्तारपूर्वक भावप्रकाशसे कहते हैं।

ब्रह्मदेवका प्रादुर्भाव।

विधाताथर्वसर्वस्वमायुर्वेदंप्रकाशयन्। स्वनाम्नासंहितांचक्रे लक्षश्लोकमयीमृजुम्॥ ततःप्रजापतिंदक्षं दक्षंसकलकर्मसु। विधिधीनिधिसाङ्गमायुर्वेदमुपादिशत्॥

अर्थ–अथर्ववेदका सर्वस्व जिसमें ऐसा आयुर्वेदका प्रकाश करते हुए श्री-ब्रह्माजी अपने नामसे एक लाख श्लोककी सरल संहिता करते हुये ब्रह्मा इस सर्व कर्ममें कुशल और बुद्धिके समुद्ररूप ऐसे दक्ष प्रजापतिको अङ्गसहित आ-युर्वेदका उपदेश करते भए॥

दक्षप्रजापतिका प्रादुर्भाव।

अथ दक्षः क्रियादक्षः स्वर्वैद्योवेदमायुषः। वेदयामासविद्वांसौसूर्यांशौसुरसत्तमौ॥

अर्थ–तत्पश्चात् क्रियामें कुशल ऐसे दक्ष प्रजापतिसो स्वर्गके वैद्य और सूर्य के अंशरूप, विद्वान्, तथा देवतोंमें उत्तम, ऐसे अश्विनीकुमारको आयुर्वेदका उपदेश करते भय॥

अश्विनीकुमारका प्रादुर्भाव।

दक्षादधीत्यदस्रौ वितनुतः संहितांस्वीयाम्। सकलचिकित्सकलोकप्रतिपत्तिविवृद्धयेधन्याम्॥

अर्थ–दक्षसै पढ़कर वे अश्विनीकुमार, संपूर्ण वैद्यलोकको ज्ञान बढ़ानेको, अपनी श्रेष्ठ संहिताका विस्तार करते भए॥

स्वयम्भुवः शिरश्छिन्नंभैरवेणरुषाथतत्। अश्विभ्यांसंहितंतस्मात्तौयातौयज्ञभागिनौ॥

अर्थ–तत्पश्चात् भैरव (शंकर) नें क्रोधवश होकर ब्रह्माका मस्तक छेदन करा, उसको अश्विनीकुमारोंनें संधित करा। अर्थात् जोड़ दिया इसी कारण वो दोनों यज्ञके भागी हुए।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवासुररणेदेवादैत्यैर्यैसक्षताःकृताः ।
अक्षतास्तेकृताःसद्योदस्राभ्यामद्भुतंमहत् ॥
वज्रिणोभूद्भुजस्तम्भःसदस्राभ्यांचिकित्सितः ।
सोमान्निपतितश्चन्द्रस्ताभ्यामेवसुखीकृतः ॥

अर्थ–जब देव और असुरोंके युद्धमें देवतोंको दैत्योंनें अंगभंग [घायल] करे उस समय अश्विनीकुमारोंनें तत्क्षण अंग जोड़ घावरहित करे यह अद्भुत कर्म करा । [च्यवन ऋषिके प्रतापसै] इन्द्रकी भुजाका स्तम्भ भया (लंबा संकोच ऊंचा नीचा न होना) उसकोभी अश्विनीकुमारोंने चिकित्सा करके अच्छा करा । सोमरहित चन्द्रमाको इन दोनों अश्विनीकुमारोंनें सुखी करा ।

विशीर्णादशनाः पूष्णोनेत्रेनष्टेभगस्यच । शशिनोराजयक्ष्माऽ
भूदश्विभ्यान्तेचिकित्सिताः ॥ भार्गवश्च्यवनःकामीवृद्धःसन्
विकृतिंगतः ॥ वीर्यवर्णस्वरोपेतः कृतोऽश्विभ्याम्पुनर्युवा ॥
एतैश्चान्यैश्चबहुभिः कर्मभिर्भिषजांम्वरौ । बभूवतुर्भृशंपूज्या
विन्द्रादीनांदिवौकसाम् ॥

अर्थ–पूषादेवताके दांत गिर पड़े, भगदेवताके नेत्र जाते रहे, चंद्रमाके खईका रोग हुआ, इन सबोंको अश्विनीकुमारोंनें चिकित्सा कर अच्छा करा । भृगुऋषि के वंशमें प्रगट ऐसे जो च्यवन ऋषि कामी, और वृद्ध अवस्थाके प्रवाससैं विकार अर्थात् वीर्यादिकके फेर फारसे बुरी चेष्टा होगई उनको अश्विनीकुमारोंनें फिर वीर्य, वर्ण, और स्वरयुक्त कर ज्वान करदीने । इन कर्मोंसैं, तथा और बहुतसे कर्मोंसैं, वैद्योंमें श्रेष्ठ अश्विनीकुमार इन्द्रादिक देवताओंमें पूजनीय हुए । भाव-प्रकाशमें ब्रह्माका शिर जोड़ना लिखा है और सुश्रुतमें यज्ञका शिर जोड़ा है ॥

यथा सुश्रुते ।

श्रूयतेहियथारुद्रेणयज्ञस्यशिरश्छिन्नमिति, ततोदेवाअश्विना
वभिगम्योचुः । भगवन्तौ नः श्रेष्ठतमौयुवांभविष्यथः । भव
द्भ्यांयज्ञस्य शिरःसन्धातव्यम् । तावूचतुरेवमस्त्विति । अथ
तयोरर्थेदेवाइन्द्रंयज्ञभागेनप्रासादयन् । ताभ्यांयज्ञस्यशिरः
संहितमिति ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–जैसै सुनते हैं कि, रुद्रने यज्ञका शिर काटा, तब संपूर्ण देवता अश्विनीकुमार दोनोंके समीप जाकर यह वाक्य बोले कि तुम दोनों हम लोगोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ होओ, और तुम यज्ञका शिर जोड़ देओ, तब अश्विनीकुमार बोले बहुत अच्छा, ऐसैही होगा, तदनन्तर सब देवता अश्विनीकुमारोंके लिये इन्द्रको यज्ञभाग करके प्रसन्न कर्ते यज्ञभाग मांगा और अश्विनीकुमारोंनें यज्ञका शिर जोड़ दिया ॥

अथ इन्द्रप्रादुर्भावः।

संदृश्यदस्रयोरिन्द्रः कर्माण्येतानियत्नवान्। आयुर्वेदंनिरुद्वेगं तौययाचेशचीपतिः ॥ नासत्यौसत्यसन्धेनशक्रेणकिलयाचितौ॥आयुर्वेदंयथाधीतंददतुःशतमन्यवे॥नासत्याभ्यामधीत्यैवआयुर्वेदंशतक्रतुःअध्यापयामासबहूनात्रेयप्रमुखान्मुनीन्॥

अर्थ–इन्द्राणीका पति, तथा यत्नवान् ऐसा जो इन्द्र सो उन दोनों अश्विनीकुमारके इन सब आश्चर्यकारक कर्मोंको देख, उद्वेगरहित अर्थात् उत्साहपूर्वक आयुर्वेदविद्याको अश्विनीकुमारोंसैं याचना करता हुआ, जब सत्यसंध इन्द्रनें दोनोंसे इस प्रकार याचना करी, तब अश्विनीकुमारोंने जैसै पढ़ा उसी प्रकार आयुर्वेद इन्द्रको देते भए । अश्विनीकुमारोंसैं आयुर्वेदको इन्द्र पढ़कर, आत्रेय हैं मुख्य जिनमें ऐसे अनेक ऋषियोंको पढ़ाता हुआ ।

आत्रेयप्रादुर्भावः।

एकदाजगदालोक्यगदाकुलमितस्ततः।चिंतयामासभगवानात्रेयोमुनिपुङ्गवः॥ किंकरोमिक्वगच्छामिकथंलोकानिरामयाः। भवन्तिसामयानेतान्नशकोमिनिरीक्षितुम् ॥ दयालुरहमत्यर्थं स्वभावोदुरतिक्रमः।एतेषांदुःखतोदुःखंममापिहृदयेधिकम्॥

अर्थ– एक समय चारों ओर रोगसैं व्याकुल ऐसा जगत्को देख, मुनिपुङ्गव भगवान् आत्रेयमुनि विचार करने लगे, क्या करूं, किधर जांऊ, कैसै मनुष्य रोगरहित होंवे । में इन रोगियोंको रोगाकुल देखभी नहीं सकूँ; क्या करूं मेरा स्वभावही अतिदयालू है, यह स्वभाव दुरतिक्रम अर्थात् अमिट है । इन मनुष्योंके दुःखसैभी मेरा हृदय अधिक दुखी है ।

आयुर्वेदंपठिष्यामिनैरुज्यायशरीरिणाम्। इतिनिश्चित्यभ

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गवान्आत्रेयस्त्रिदशालयम् ॥ तत्रमन्दिरमिन्द्रस्यगत्वाशक्रं ददर्शसः॥ सिंहासनसमासीनंस्तूयमानंसुरर्षिभिः॥भासयन्तं दिशोभासाभास्करप्रतिमान्त्विषा । आयुर्वेदमहाचार्यंशिरोधार्यंदिवौकसाम् ॥

अर्थ–अतएव मनुष्योंके रोग दूर करनेको मैं आयुर्वेद पढूंगा । ऐसैं निश्चय कर आत्रेय भगवान् स्वर्गको गए, तहां स्वर्गमें इन्द्रके भवनमें प्राप्त हो इन्द्रके दर्शन करते हुए । दिव्य सिंहासनपर विराजमान, सुर और ऋषि जिसकी स्तुति कर रहे हैं, सूर्यकासा प्रकाश जिस्सै सर्व दिशाओंमें प्रकाश कर रहाहै, सर्व देवमान्य तथा आयुर्वेदका बड़ा आचार्य ऐसे इन्द्रको देखा ।

शक्रस्तुतंनिरीक्ष्यैवत्यक्त्वासिंहासनंययौ ॥ तदग्रेपूजयामासभृशंभूरितपःकृशम्॥ कुशलंपरिपप्रच्छतथागमनकारणम्॥समुनिर्वक्तुमारेभेनिजागमनकारणम्॥

अर्थ–इन्द्र आत्रेयऋषिको देखतेही शीघ्र सिंहासनको परित्यागकर सम्मुख आय बहुततपसैं कृश भए ऐसैं मुनिकी पूजा करता हुआ मुनिसैं कुशल पूछी, और आगमनका कारण पूछा, तब आत्रेयमुनि अपने आनेका कारण इस प्रकार कहते हुए ।

देवराज ! नजानासिदिवएवयतोभवान् । विधात्राविहितोयत्नात्त्रिलोकीलोकपालकः ॥ व्याधिभिर्व्यथितालोकाः शोकाकुलितचेतसः । भूतलेसन्तिसन्तापन्तेषाहन्तुंकृपांकुरु ॥ आयुर्वेदोपदेशंमेकुरुकारुण्यतोनृणाम्। तथेत्युक्तासहस्राक्षो। ध्यापयामासतंमुनिम् ॥

अर्थ–हे देव ! हे राजन् ! तुम केवल स्वर्गकही राजा नहीं हो ? किंतु ब्रह्मानें तुमको यत्नपूर्वक त्रिलोकीका राजा करा है । शोकसैं व्याकुल हैं चित्त जिनके, और व्याधियोंसैं व्यथित (पीड़ित) मनुष्य पृथ्वीमें हैं उन्होंके संताप हरण करनेको कृपा करो । मनुष्योंकी करुणा विचार मुझको आयुर्वेदका उपदेश करो, पश्चात् 'ठीक है' ऐसै कहिकर इन्द्रने आत्रिय ऋषिको आयुर्वेद पढ़ाया ।

मुनीन्द्रइन्द्रतः साङ्गमायुर्वेदमधीत्यसः । अभिनन्द्यतमाशी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भिराजगामपुनर्महीम् ॥ अथात्रेयोमुनिश्रेष्ठोभगवान्करुणाकरः ॥स्वनाम्नासंहिताञ्चक्रेनरचक्रानुकम्पया॥ततोऽग्निवेशं भेडंचजातूकर्णंपराशरम्।क्षीरपाणिञ्चहारीतमायुर्वेदमपाठयत् ॥

अर्थ–मुनीन्द्र जो आत्रेय सो इन्द्रसै अङ्गसहित आयुर्वेद पढ़के तथा इन्द्रको आशीर्वादोंसैं प्रसन्न कर, फिर पृथ्वीमें पधारे । तदनन्तर दयासागर मुनिश्रेष्ठ भगवान् आत्रेय ऋषि मनुष्योंके समूहऊपर दया विचार अपने नामसै संहिता बनाते हुए । इनकी बनाई तीन संहिता हैं । (बृहत् आत्रेय संहिता, मध्य आत्रेय संहिता, और लघु आत्रेय संहिता, यह बात इनहींकी संहितामें लिखी है) तत्पश्चात् अग्निवेशको, भेडको, जातूकर्णको, पराशरको, क्षीरपाणीको, और हारीतको आयुर्वेद पढ़ाया ।

तन्त्रस्यकर्त्ताप्रथममग्निवेशोऽभवत्पुरा । ततोभेडादयश्च क्रुः स्वंस्वं तन्त्रंकृतानिच ॥ श्रावयामासुरात्रेयंमुनिवृन्देनवन्दितम् । श्रुत्वाचतानितन्त्राणिहृष्टोऽभूदत्रिनन्दनः॥ यथावत्सूत्रितन्तस्मात्प्रहृष्टामुनयोभवन् । दिविदेवर्षयोदेवाः श्रुत्वासाध्वितितेब्रुवन् ॥

अर्थ–पहले इस शास्त्रके कर्त्ता प्रथम अग्निवेशनामक मुनि भए, तिनके पीछे भेडादिक ऋषियोंनें अपने अपने नामसैं संहिता बनाई । अर्थात् अग्निवेशसंहिता, भेडसंहिता, जातूकर्णसंहिता, पराशरसंहिता, क्षीरपाणिसंहिता और हारीतसंहिता, ये छः ऋषियोंनें छः संहिता बनाई । ये पुरानी संहिता हैं इसीसै इनको प्रधानता है, और जहां वैद्यककी छः संहिता कहीं हैं तहां इनहींका ग्रहण है, जैसे लीलावतीमें लिखा है " षट्चभिषजोव्याचष्टत संहिताः " इसप्रकार अग्निवेशादि ऋषि अपनी २ संहिता बनाय, मुनिसमूहसै वंदित ऐसे आत्रेयमुनिको सुनाते हुए वे अत्रिनन्दन इस प्रकार सबोंक ग्रंथोंको सुनकर अत्यंत हर्षित भए । यथार्थ शास्त्र रचनेसे सब मुनि आनंदित होते हुए और स्वर्गमें देवता तथा देवर्षि सुनकर ' बहुत सुन्दर ' ऐसे बोले ।

भरद्वाजमुनिप्रादुर्भावः ।

एकदाहिमवत्पार्श्वेदेवादागत्यसङ्गताः । मुनयोबहवस्तेषां नामानिकथयाम्यहम् ॥ भारद्वाजोमुनिवरः प्रथमसमुपाग

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तः । ततोऽङ्गिरास्ततोगर्गोमरीचिर्भृगुभार्गवौ ॥ पुलस्त्योऽग स्तिरसितोवसिष्ठःसपराशरः। हारीतोगौतमःसांख्योमैत्रेयश्च्य वनोऽपिच ॥ जमदग्निश्चगार्ग्यश्चकाश्यपः कश्यपोपिच। नार दोवामदेवश्चमार्कण्डेयःकपिञ्जलः ॥

अर्थ–एक समय हिमालयपर्वतपर दैवइच्छासैं बहुतसे मुनि आकर इकट्ठे हुए, उन्होंके नाम कहते हैं । मुनिनमें श्रेष्ठ भरद्वाज, प्रथम आए । तिन्होंके पीछे अङ्गिरा और तत्पश्चात् गर्ग, मरीचि, भृगु, भार्गव, पुलस्त्य, अगस्ति, असित, वसिष्ठ, पराशर, हारीत, गौतम, सांख्य, मैत्रेय, च्यवन, जमदग्नि, गार्ग्य, काश्यप, कश्यप, नारद, वामदेव, मार्कण्डेय और कपिञ्जल आए ।

शाण्डिल्यःसहकौंडिन्यःशाकुनेयश्चशौनकः । आश्वलाय नसांकृत्योविश्वामित्रःपरीक्षकः ॥ देवलोगालवोधौम्यःकाम्य कात्यायनावुभौ । काङ्कायनोवैजवापःकुशिकोबादराय णिः ॥ हिरण्याक्षश्चलौगाक्षिः शरलोमाचगोभिलः । वैखान सावालखिल्यास्तथैवान्येमहर्षयः ॥

अर्थ–कौंडिन्यसहित शांडिल्य, शाकुनेय, शौनक, आश्वलायन, सांकृत्य, विश्वामित्र, परीक्षक, देवल, गालव, धौम्य, काम्य और कात्यायन, ए दोनों, कांकायन, वैजवाप, (वैजपायभी पाठान्तर है) कुशिक, बादरायण, हिरण्याक्ष, लौगाक्षी, शरलोमा, गोभिल, वैखानस और वालखिल्य, इनसै आदि ले और बहुतसे महर्षि आए ।

ब्रह्मज्ञानस्यनिधयोयमस्यनियमस्यच। तपसस्तेजसादीप्ताहूय मानाइवाग्नयः ॥ सुखोपविष्टास्तेतत्रसर्वेचक्रुः कथामिमाम्। धर्मार्थकाममोक्षाणांमूलमुक्तंकलेवरम्॥ तपःस्वाध्यायधर्मा णांब्रह्मचर्यव्रतायुषाम् । हर्त्तारः प्रसृतारोगायत्रतत्रचसर्वतः॥

अर्थ–वे ब्रह्मर्षि ब्रह्मज्ञान, यम, तथा नियमकी निधि और होमी हुई अग्निका जैसा प्रकाश ऐसे तपके तेजसैं प्रकाशवान्, सुखपूर्वक बैठे हुए सब ऋषि, इस प्रकार वार्त्ता करने लगे कि–धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका मूल देह है । इस प्रकार पूर्व कहा है, तप, स्वाध्याय (पढना पढ़ाना) धर्म, ब्रह्मचर्य, व्रत, और आयुष्यके हरणकर्त्ता रोग सर्वत्र फैल रहे हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रोगाः कार्श्यकराबलक्षयकरादेहस्यचेष्टाहराद्दृष्ट्यादीन्द्रि-यशक्तिसंक्षयकराः सर्वाङ्गपीडाकराः ॥ धर्मार्थाखिलकाममु क्तिषुमहाविघ्नस्वरूपा बलात् । प्राणानाशुहरन्तिसन्तियादेते क्षेमंकुतः प्राणिनाम्॥

अर्थ–रोग शरीरको कृश करते हैं । बलका क्षय करैं हैं । देहकी चेष्टाको हरण करैं हैं । नेत्र आदि इन्द्रियोंकी शक्तीको क्षय करैं हैं । सब अंगमें पीड़ा करते हैं । धर्म, अर्थ, अखिल काम, और मुक्तिमें महाविघ्नस्वरूप हैं । बलात्कार-से शीघ्र प्राणोंको हरण करलेते हैं । ऐसे रोग यावत् पर्यन्त विद्यमान हैं, तबतक दीन हीन मीनके सदृश विचारे प्राणियोंका कल्याण कहां हैं ।

तत्तेषांप्रशमायकश्चनविधिश्चिन्त्योभवद्भिर्बुधैर्योग्यैरित्यभि धायसंसदिभरद्वाजंमुनिंतेऽब्रुवन् ॥ त्वंयोग्योभगवन् ! सहस्र नयनंयाचस्वलब्धंक्रमात् । आयुर्वेदमधीत्ययंगदभयान्मु क्ताभवामोवयम् ॥

अर्थ–इसी कारण रोगोंके उपाय करनेमें योग्य और विद्वान् ऐसे तुम कर्के इन रोगोंके निवृत्ति करनेको कोई उपाय विचारना चाहिये । इस प्रकार आपसमें एकमती हो और विचार करके, सभामें बैठे हुए भरद्वाज मुनिके प्रति सब मुनीश्वर बोले । कि हे भगवन् ! तुम इस कार्य करने योग्य हो, इसीसे इन्द्रके पास जाकर याचना करो, और क्रमसे प्राप्त आयुर्वेदको अध्ययन करके, हम रोगके भयसैं मुक्ति होवैं ।

इत्थंसमुनिभिर्योग्यैःप्रार्थितोविनयान्वितैः।भरद्वाजोमुनिश्रेष्ठो जगामत्रिदशालयं ॥ तत्रेन्द्रभवनंगत्वासुरर्षिगणमध्यगम्।दृष्ट वान्वृत्रहन्तारंदीप्यमानमिवाऽनलम् ॥ दृष्ट्वैसमुनिंप्राहभग वान्मघवामुदा । धर्मज्ञस्वागतन्तेऽथमुनिन्तंसमपूजयत् ॥

अर्थ–इस प्रकार जब सब योग्य मुनीश्वरोंनें विनयपूर्वक प्रार्थना करी तब उनकी आज्ञा ले मुनिश्रेष्ठ भरद्वाज इन्द्रलोकको जाते भये, तहां अमरावती पुरी, में इन्द्रके भवनमें प्राप्त हो, देवता और ऋषिगणमें विराजमान, अग्निके समान प्रकाशित, वृत्रासुरका नाशक इन्द्रको देखा, भगवान् इन्द्रभी अपने समीप आए

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऐसे भरद्वाज मुनिको देख हर्षपूर्वक कहने लगा, कि हे धर्मज्ञ ! आप भले पधारे, इस प्रकार कहि पीछे मुनिकी अर्घपाद्यादिसै पूजा करी ।

सोऽभिगम्यजयाशीर्भिरभिनन्द्यसुरेश्वरम् । ऋषीणांवचनं सम्यक्श्रावयन्मुनिसत्तमः ॥ व्याधयाहिसमुत्पन्नाः सर्वप्राणि भयंकराः । तेषांप्रशमनोपायंयथावद्वक्तुमर्हसि ॥

अर्थ-मुनियोंमें श्रेष्ठ ऐसे जो भरद्वाज मुनि इन्द्रके समीप जाय, जयशब्द और आशीर्वाद देकर इन्द्रकी स्तुति करी, तथा सब ऋषियोंके वचन सुनाये, कि सुनो देवेन्द्र ! सर्व प्राणियोंको भयंकर, ऐसी व्याधि जगत्में उत्पन्न हुई हैं उनके नाश होनेका उपाय होय, वह बराबर हमसै आप कहिये ।

तमुवाचमुनिंसाङ्गमायुर्वेदंशतक्रतुः ॥ पदैरल्पैर्मतिंबुद्धाविपुलांपरमर्षये॥जीवेद्वर्षसहस्राणिदेहीनीरुङ्निशम्ययम्। हेतुलिंगौषधज्ञानंस्वस्थातुरपरायणम्॥सोनन्तपारंत्रिस्कन्धमायुर्वेदंमहामुनिः । यथावदचिरात्सर्वंबुबुधेतन्मनामुनिः ॥

अर्थ-विपुलबुद्धि जान, अल्प पदों करके अंगसहित आयुर्वेद, परमर्षि भरद्वाज मुनिके प्रति कहा । कि जिस आयुर्वेदको सुनकर रोगरहित हो मनुष्य हजार वर्ष जीवे है, तथा हेतु, लिङ्ग और औषधका ज्ञान जिस्से होय और स्वस्थ (सुखी) की रक्षा, आतुर (दुखी) की निवृत्तिरूप प्रयोजन साधनरूप शास्त्रको इन्द्रने कहा ।

वह मुनि भरद्वाज अपार और त्रिस्कंध (हेतुलिंगौषध) वाले आयुर्वेदको थोड़े कालमें भले प्रकार पढ़े, और उसमें अच्छी रीतिसैं मन रखनेसैं इस शास्त्रका सर्व आशय जाना ।

तेनायुः सुचिरंलेभेभरद्वाजोनिरामयम्।अन्यानपिमुनींश्चक्रेनीरुजः सुचिरायुषः ॥तत्तन्त्रजनितज्ञानचक्षुषाऋषयोखिलाः ॥ गुणान्द्रव्याणिकर्माणिदृष्ट्वातद्विधिमाश्रिताः ॥ आरोग्यंलेभिरेदीर्घमायुश्चसुखसंयुतम्। आयुर्वेदोक्तविधिनाऽन्येऽपिस्युर्मुनयोयथा ॥

अर्थ-इसी आयुर्वेद विद्याके द्वारा भरद्वाज मुनि रोगरहित पूर्ण आयुको प्राप्त

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भये, और अन्य बहुतसे ऋषियोंको निरोगी तथा पूर्णायु करते भये, तिनके तंत्रसे उत्पन्न भया ज्ञानरूपी चक्षु ऐसे अखिल ऋषि, गुण, द्रव्य, और कर्म देख आयुर्वेदकी विधिका आश्रय लेते हुए उसी विधिके अनुष्ठान करने सें सर्व ऋषि आरोग्य और सुखसंयुक्त दीर्घ आयुष्यको प्राप्त होते हुए। सर्व मुनीश्वर जैसे सुखी हुए उसी प्रकार आयुर्वेदविधिके सवनसें और भी मनुष्य सुखी होते हैं।

चरकप्रादुर्भावः।

यदामत्स्यावतारेणहरिणावेदउद्धृतः । तदाशेषश्चतत्रैववेदं साङ्गमवाप्तवान् ॥ अथर्वान्तर्गतंसम्यक्आयुर्वेदञ्चलब्धवान् । एकदासमहीवृत्तंद्रष्टुंचरइवागतः ॥ तत्रलोकान्गदैग्रस्तान् व्यथयापरिपीडितान् ॥ स्थलेषुबहुषुव्याप्रान्म्रियमाणांश्चदृष्टवान् ॥ तान्दृष्ट्वातिदयायुक्तस्तेषांदुःखेनदुःखितः । अनन्तश्चिन्तयामासरोगोपशमकारणम् ॥

अर्थ-जिस समय हरि भगवान् ने मत्स्यावतार धारणकर वेदोंका उद्धार करा, उस समय श्रीशेषजीने उसी ठिकाने अंगसहित चारा वेद पढ़े। और अथर्ववेदके अंतर्गत जो आयुर्वेद है, उस्कोभी प्राप्त होते भए, एक समय जैसे राजाका चर (पर राज्यका वृत्तान्त जानने के कारण निर्मित च कर) होय इस प्रकार, शेषजी आप पृथ्वीका वृत्तान्त देखनेको आये तहां पृथ्वीमें अनेक ठौर रोगोंसें ग्रस्त और पीड़ासे पीड़ित मुरझाए हुए और मरनेको तैयार ऐसे मनुष्योंको देखा, उनको देख अतिदयायुक्त तथा उनके दुःखसे अत्यन्त दुखी ऐसे शेष भगवान् मनुष्योंके रोगशांति होनेका कारण विचारने लगे।

संचिन्त्यससस्वयंतत्रमुनेःपुत्रोबभूवह ॥ प्रसिद्धस्यविशुद्धस्यवेदवेदाङ्गवेदिनः ॥ यतश्चरइवायातोनज्ञातःकेनचिद्यतः ॥ तस्माच्चरकनाम्नासौविख्यातःक्षितिमण्डले ॥ स भातिचरकाचार्योदेवाचार्योयथादिवि । सहस्रवदनस्यांशोयेनध्वंसोरुजांकृतः ॥

अर्थ-इस प्रकार शेष भगवान् अपने मनमें विचार करके, वेदवेदांग जाननेवाले और प्रसिद्ध ऐसे विशुद्ध मुनिके पुत्र हुए। किसी राजाका नौकर जैसे किसी परराज्यके वृत्तान्त जाननेको गुप्त होकर आवे उसके आनेको कोई नहीं जा-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ने, इसीसैं शेष पृथ्वीऊपर चरक इस नामसैं प्रसिद्ध हुए । शेष नारायणके अंश-रूप, तथा जिन्होने रोगोंका नाश करा, ऐसे चरकाचार्य, जैसैं देवोंके आचार्य बृहस्पति स्वर्गमें शोभित हैं । उसी प्रकार पृथ्वीमें शोभित हुए ।

आत्रेयस्यमुनेःशिष्याअग्निवेशादयोऽभवन् ॥ मुनयोवहव स्तेश्वकृतंतन्त्रंस्वकंस्वकम् ॥ तेषांतन्त्राणिसंस्कृत्यसमाहृत्य विपश्चिता ॥ चरकेणात्मनोनाम्नाग्रन्थोऽयंचरकःकृतः ॥

अर्थ-आत्रेय मुनिके अग्निवेशसैं आदिके बहुत शिष्य हुए । उन्होंने इस आयुर्वेदसैं अपने अपने न्यारे न्यारै शास्त्र रचे, उन सब ऋषियोंके ग्रंथ इकट्ठे कर तथा सुधारके विद्वान् ऐसे चरक मुनिने अपने नामसै यह चरक नाम ग्रन्थ रचा ।

धन्वन्तरिप्रादुर्भावः ।

एकदादेवराजस्यदृष्टिर्निपतिताभुवि । तत्रतेननराद्दृष्ट्वाव्याधिभिर्भृशपीडिताः ॥ तान्दृष्ट्वाहृदयंतस्यदययापरिपीडितम् ॥ दयार्द्रहृदयःशक्रोधन्वन्तरिमुवाचह ॥

अर्थ-एक समय देवराज इन्द्रकी दृष्टि पृथ्वीमें पड़ी तो अनेक मनुष्य रोगोंसैं पीड़ित देखे, उन्होंको देख इन्द्रका हृदय दयासे बहुत पीड़ित हुआ, पश्चात् दयासैं कोमल हृदयवाला इन्द्र धन्वन्तरिसे बोला ।

धन्वन्तरेसुरश्रेष्ठभगवन्किञ्चिदुच्यते । योग्योभवसिभूताना मुपकारपरोभव ॥ उपकारायलोकानांकेनकिन्नकृतंपुरा । त्रैलोक्याधिपतिर्विष्णुरभून्मत्स्यादिरूपवान् ॥ तस्मात्त्वंपृथिवींयाहिकाशिमध्येनृपोभव । प्रतीकारायरोगाणामायुर्वेदंप्रकाशय ॥

अर्थ-हे धन्वन्तरि ! हे सुरश्रेष्ठ ! हे भगवन् ! मैं आपसै कुछ कहताहूं सो आप सुनो, कि तुम प्राणियोंके उपकार करने योग्य हो, इसीसैं उनके उपकार करनेमें तत्पर होओ, लोकोंके उपकारार्थ पहिले किसने क्या नहीं करा ! देखो त्रिलोकीके अधिपति विष्णु भगवान् मत्स्यादिरूपवाले हुए । अतएव आप पृथ्वीमें जाय काशीमें राजा होओ, तथा रोगोंके उपाय करनेके निमित्त आयुर्वेदका प्रकाश करो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इत्युक्तासुरशार्दूलःसर्वभूतहितेप्सया । समस्तमायुषोवेदं धन्वन्तरिमुपादिशत् ॥ अधीत्यचायुषोवेदमिन्द्राद्धन्वन्तरिःपुरा । अभ्येत्यपृथिवींकाश्यांजातोबाहुजवेश्मनि ॥ नाम्नातुसोऽभवत्ख्यातोदिवोदासइतिक्षितौ । बालएवविरक्तो भूच्चचारसुमहत्तपः ॥

अर्थ—इन्द्रसे आयुर्वेदका अध्ययन कर, धन्वन्तरि आप पृथ्वीऊपर आय काशीमें बाहुज (क्षत्री) के घरमें उत्पन्न हुए । पृथ्वीमें दिवोदास इस नामसैं विख्यात हुए, वे धन्वन्तरि बालअवस्थामेंही विरक्तताको प्राप्त हुए, और घोर दुष्कर तप करा ।

यत्नेनमहताब्रह्मातंकाश्यामकरोन्नृपम् । ततोधन्वन्तरिर्लोकैःकाशीराजोऽभिधीयते ॥ हितायदेहिनांस्वीयासंहितावि हिताऽमुना । अयंविद्यार्थिनोलोकान्संहितान्तामपाठयत् ॥

अर्थ—तदनन्तर ब्रह्माने बड़े यत्नसैं उसको काशीमें राजा करा, पीछे उस धन्वन्तरिको मनुष्य ' काशीराज ' ऐसैं कहने लगे, प्राणियोंके हितके कारण इन धन्वन्तरिने अपने नामकी संहिता बनाई, और उसको विद्यार्थियोंको पढ़ाई, इस संहिताको धन्वन्तरिसंहिता कहते हैं ।

सुश्रुतस्य प्रादुर्भावः ।

अथज्ञानदृशाविश्वामित्रप्रभृतयोऽविदन् । अयंधन्वन्तरिः काश्यांकाशीराजोऽयमुच्यते ॥ विश्वामित्रोमुनिस्तेषुपुत्रंसु श्रुतमुक्तवान् । वत्स ! वाराणसींगच्छत्वंविश्वेश्वरवल्लभाम् ॥ तत्रनाम्नादिवोदासःकाशीराजोस्तिबाहुजः । सहिधन्वन्तरिः साक्षादायुर्वेदविदांवरः ॥

अर्थ—तदनन्तर विश्वामित्रसें आदिले सब ऋषि ज्ञानदृष्टि सैं जान गए कि, यह काशीराजा काशीमें धन्वन्तरिका अवतार है । यह विचार विश्वामित्र अपने पुत्र सुश्रुतसैं बोले कि, हे वत्स ! विश्वनाथकी प्यारी काशीपुरीको जाओ तहां द्विवोदास काशीका राजा है, वह आयुर्वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ साक्षात् धन्वन्तरि हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आयुर्वेदंततोऽधीत्यलोकोपकृतिहेतवे ।
सर्वप्राणिदयातीर्थमुपकारोमहामखः ॥
पितुर्वचनमाकर्ण्यसुश्रुतःकाशिकांगतः ।
तेनसार्द्धंसमध्येतुंमुनिसूनुशतंययौ ॥

अर्थ–उनके पाससे सर्व प्राणियोंकी दयासे पवित्र, ऐसा आयुर्वेदका अध्ययन करो, कारण कि सब प्राणियोंऊपर दया करना यह तीर्थ है, और उपकार यह बड़ा भारी यज्ञ है, इस प्रकार पिताके वचनसुन सुश्रुत काशीको गए और उनके संग पढ़नेके निमित्त मुनीश्वरोंके सौ पुत्र गए।

अथधन्वन्तरिंसर्ववैवानप्रस्थाश्रमेस्थितम् ।
भगवन्तंसुरश्रेष्ठंमुनिभिर्बहुभिः स्तुतम् ॥
काशिराजंदिवोदासंतेऽपश्यन्विनयान्विताः ।
स्वागतंवइतिस्माहदिवोदासोयशोधनः ॥
कुशलंपरिपप्रच्छतथागमनकारणम् ।
ततस्तेसुश्रुतद्वाराकथयामासुरुत्तरम् ॥

अर्थ–तहां काशीमें जायकर वानप्रस्थ आश्रममें स्थित देवतानमें श्रेष्ठ अनेक मुनि जिनकी स्तुति कर रहे ऐसे सर्व सामर्थ्ययुक्त धन्वन्तरि काशीके राजा दिवोदासको विनययुक्त ऐसे सर्व सुश्रुतआदि देखते हुए। यशरूपी धनवाले दिवोदास उन ऋषियोंको आए हुए देख, बोले कि 'तुम भले पधारे' तथा कुशल पूछी और आगमनका कारण पूछा, तब वे सर्व ऋषिपुत्र सुश्रुतद्वारा उत्तर कहते हुए।

भगवन् ! मानवान्दृष्ट्वा व्याधिभिः परिपीडितान् ।
क्रन्दतोम्रियमाणांश्चजातास्माकंहृदिव्यथा ॥
आमयानांशमोपायंविज्ञातुंवयमागताः ।
आयुर्वेदंभवानस्मानध्यापयतुयत्नतः ॥

अर्थ–कि हे भगवन् ! रोगोंसे परिपीड़ित, पुकारते और मरते हुए मनुष्योंको देख, हमारे हृदयमें पीड़ा उत्पन्न हुई है । इसी कारण रोगोंके नाश करनेका उपाय पूछनेको हम आपके पास आए हैं, सो आप हम सबको यत्नपूर्वक आयुर्वेदका उपदेश करो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अङ्गीकृत्यवचस्तेषांनृपतिस्तानुपादिशत् ।
व्याख्यातन्तेनतेयत्नाज्जगृहुर्मुनयोमुदा ॥
काशीराजंजयाशीर्भिरभिनन्द्यमुदान्विताः ।
सुश्रुताद्याः सुसिद्धार्थाजग्मुर्गेहंस्वकंस्वकम् ॥

अर्थ–वे काशिराज, उन सुश्रुतादि ऋषियोंके वचन अंगीकार कर, आयुर्वेद कहते हुए । उस व्याख्यानको वे ऋषि यत्नसे बड़े हर्षपूर्वक ग्रहण करते हुए । तदनन्तर काशिराजको 'तुम्हारी जय होय' ऐसे आशीर्वाद देकर हर्षयुक्त तथा अपने अर्थको भले प्रकार सिद्धकर सुश्रुतादि ऋषि अपने २ घर गए । * इसी प्रकार सुश्रुतमेंभी लिखा है ।

प्रथमंसुश्रुतस्तेषुस्वतन्त्रंकृतवान्स्फुटं । सुश्रुतस्यसखायोऽपिपृथक्तन्त्राणितेनिरे ॥ सुश्रुतेनकृतंतन्त्रंसुश्रुतंबहुभिर्यतः । तस्मात्तत्सुश्रुतंनाम्नाविख्यातंक्षितिमण्डले ॥

अर्थ–तिन औपधेनवादि ऋषियों में सुश्रुतने अपना स्फुट ऐसा शास्त्र रचा । तथा सुश्रुतके मित्र [औपधेनव, पौषकलावत, वैतरणौरभ्र, करवीर्य, गोपुररक्षित, आदि] भी अपने अपने पृथक् पृथक् ग्रन्थ बनाते हुए, सुश्रुतने जो शास्त्र रचा उसको बहुतसे मनुष्योंने सुना इसीसे वह ग्रन्थ सुश्रुत नाम से पृथ्वीमें विख्यात हुआ । परन्तु सुश्रुत नाम से दो आचार्य हुए हैं । एक सुश्रुत दुसरे वृद्धसुश्रुत इन दोनोंमें यह निश्चय नहीं हो सके कि यह प्रसिद्ध सुश्रुत ग्रन्थ किसका बनायाहै।

---

* अथ खलु भगवन्तममरवरऋषिगणपरिवृतमाश्रमस्थं काशिराजं दिवोदासं धन्वन्तरिमौपधेनव–वतरणौरभ्र–पौष्कलावत–करवीर्यगोपुर–रक्षितसुश्रुतप्रभृतय ऊचुः ॥ भगवन् ! शारीरमानसागन्तुस्वाभाविकैर्व्याधिभिर्विविधवेदनाभिघातोपद्रुतानसनाथानप्यनाथवद्विचेष्टमानान्विक्रोशतश्च मानवानभिसमीक्ष्य मनसि नः पीडाभवति, तेषां सुखैषिणां रोगोपशमार्थमात्मनः प्राणयात्रार्थञ्च प्रजाहितहेतोरायुर्वेद श्रोतुमिच्छाम इहोपदिश्यमानम् । अत्रायत्तमैहिकमामुष्मिकञ्चश्रेयः तद्भगवन्तमुपपन्नाः स्मः शिष्यत्वेनेति ॥ तानुवाचभगवान्स्वागतंवः सर्वएवमीमांस्याअध्याप्याश्चभवन्तोवत्साअयमायुर्वेदोऽष्टाङ्गमुपदिश्यते । कस्मैकिमुच्यतामिति । तऊचुः अस्माकं सर्वेषामेवशल्यज्ञानमूलंकृत्वोपदिशतुभवानिति । सउवाचैवमस्त्विति । तऊचुर्भूयोपिभगवन्तमस्माकमेकमतीनांमतमभिसमीक्ष्य सुश्रुतोभवन्तंपृच्छति अस्मै चोपदिश्यमानं वयमप्युपधारयिष्यामः सहोवाचैवमस्त्विति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथवाग्भटप्रादुर्भावः ।

ततः कालात्ययेजातेवाग्भटोभिषजांवरः । समुत्पन्नोधरण्यांवैधन्वन्तरिरिवाऽपरः ॥ आसीद्राजाऽधिराजस्यसत्यसंधस्यधीमतः । ज्ञानिनः पाण्डवाग्र्यस्यसभायांसुचिकित्सकः ॥ प्रबंधाबहवस्तेनप्रणीताहितकाम्यया । तेषामष्टाङ्गहृदयसंहिताप्रथिताभुवि ॥ सावाग्भटाऽभिधानेनख्याताधरणिमण्डले ॥

अर्थ—तदनंतर कुछ काल व्यतीत होनेपर, वैद्योंमें श्रेष्ठ, मानो दूसरा धन्वन्तरि ऐसा पृथ्वीमें वाग्भट वैद्य प्रगट हुआ । यह राजाधिराज, सत्यसंध, ज्ञानी ऐसे युधिष्ठिर महाराज पांडवकी सभामें चिकित्सक (वैद्य) था इन्होंने अनेक ग्रन्थ लोकहितार्थ बनाए, तिनमें अष्टाङ्गहृदयसंहिता पृथ्वीमें विख्यात हुई, और वही वाग्भटसंहिताके नामसे पृथ्वीमें विख्यात है ।

चरकात्सुश्रुताच्चैवतन्त्रेभ्योऽन्येभ्यएवच ॥ सासंगृहीतायत्नेनलोकाऽनुग्रहहेतवे ॥ विचित्रंकौशलञ्चास्यांचिकित्सासुप्रदर्शिता ॥ अनयोपकृतंसर्व्वंजगदेतन्नसंशयः ॥

अर्थ—चरक सुश्रुत आदि ग्रन्थोंसे लोकके कल्याणार्थ यत्नपूर्वक इस संहिताका संग्रह करा है । इस संहितामें और चिकित्सामें इन्होंने अद्भुत चतुराई दिखाई है अर्थात् चरक सुश्रुतमें वीस पच्चीस श्लोकमें जो कार्य करा है, वो इसमें दो चार श्लोकमेंही कर दीना है । इन्होंने यथार्थमें संपूर्ण जगत्का उपकार करा है । इसी कारण इसकी आयुर्वेदकी बृहत् त्रयीमें गणना है । सो किसीने कहा भी है ।

सुश्रुतंनश्रुतंयेनवाग्भटोनैववाग्भटः
नाधीतश्चरकोयेनसवैद्योयमकिङ्करः ॥

अर्थ—अर्थात् सुश्रुत जिसने सुना नहीं, वाग्भट जिसने जिव्हागत न करा, और चरक जिसने पढा नहीं, वो वैद्य यमका दूत है इसी कारण बृहत्त्रयीमाठी वैद्यकी अत्यन्त प्रतिष्ठा है और कोई वैद्य यह कहते हैं कि अन्य १८ संहिता और युगोंके लिये हैं । परंतु वाग्भटसंहिता केवल कलियुगके लिये बनी है । यथा.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अत्रिः कृतयुगेचैवत्रेतायांचरकोमतः ।
द्वापरेसुश्रुतः प्रोक्तः कलौवाग्भटसंहिता ॥

अर्थात् सतयुगमें अत्रिसंहिता, त्रेतामें चरकसंहिता, द्वापरमें सुश्रुत, और कलियुगके लिये तो वाग्भटसंहिता है ।

शिष्य–आपने कहा कि अन्य अठारह संहिता हैं वो कौनसी हैं सो कृपापूर्वक कहो ।

गुरु–अठारह संहिताओंके नाम हारीतसंहितामें इस प्रकार लिखे हैं ।

हारीतसुश्रुतपराशरभोजभेडभृग्वग्निवेशचरकाश्च्यवनोऽप्यगस्तिः । वाराहवाग्भटनरायणनारसिंहाआत्रेयकात्रिशशिनःशिवभास्करौच ॥ सन्त्यष्टादशशिक्षाधन्वन्तेरर्वाग्भटंबहिष्कृत्य ॥

अर्थ–हारीत, सुश्रुत, पराशर, भोज, भेड, भृगु, अग्निवेश, चरक, च्यवन, अगस्ति, वाराह, वाग्भट, नारायण, नारसिंह, आत्रेय, अत्रि, चन्द्रमा, शिव और सूर्य, इनमें वाग्भटको त्यागनेसे अठारह संहिता आयुर्वेद शास्त्रकी कही हैं ।

शिष्य–चरक सुश्रुत वाग्भट आदिग्रन्थोंमें रस चिकित्सा कहीं नहीं लिखी फिर रसग्रन्थोंका प्रचार कैसें हुआ । गुरु–

रसग्रंथानां प्रादुर्भावः ।

भूतानुकम्पाप्रवणोमहेशः श्मशानवासीजगदादिनाथः । स्ववीर्य्ययुक्तागदयोगरत्नैःकीर्णानितन्त्राणिबहूनिचक्रे ॥ रसप्रबन्धास्त्वधुनातनायेतन्मूलकाएवकृताःसुधीभिः॥सृष्टिस्थितिध्वंसकृतोऽखिलानामनादिनाथस्यमहाप्रसादात् ॥

अर्थ–सर्व जगत्के आदिभूत, श्मशानवासी परमकारुणिक, भूतपति श्रीमहादेव उन्होंने स्वप्रकाशित, विविधतन्त्र स्ववीर्ययुक्त अर्थात् जिन्होंमें पारदसैं आदि ले अनेक रसादि औषध रोग दूर करनेको कही ऐसे अनेक तंत्र रचते हुए । और जितने आधुनिक रसग्रन्थ पंडितोंने बनाए हैं वे सब उन्हीं शिवप्रोक्त तंत्रोंसैं निकाले हैं अतएव सब आधुनिक रस ग्रन्थोंकी जड़ प्राचीन तंत्र हैं ।

रसग्रन्थेषुतंत्रेषुधातुशोधनमारणे । विवृतेचविशेषेणरसराज

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्यसंस्कृतिः ॥ चरकादौरसादीनांप्रयोगोनैवदृश्यते । अतः प्रचारएतेषांहितायजगतोमतः ॥

अर्थ–रसके ग्रन्थोंमें और तंत्रोंमें धातुओंका शोधन, मारण और विशेष करके पारदके संस्कार कहे हैं सो चरकादि (सुश्रुत वाग्भटादि) ग्रन्थोंमें रस-प्रयोग नहीं है । इसीवास्ते जगत्के कल्याणार्थ इनका प्रचार संसारमें है ।

शिष्य–रसग्रन्थोंका प्रचार विशेष कबसे हुआ, और प्राचीन ग्रन्थोंसें इनमें क्या विशेषता है ।

गुरु–पहले समयमें काष्ठादि औषधद्वारा वैद्य चिकित्सा करा करते, क्योंकि रसोंके बनानेमें एक तो समय बहुत चाहिये, दुसरे द्रव्य विशेष खर्च होता है, तीसरे इनके बनानेमें सहायकभी दो चार मनुष्य अवश्य होने चाहिये । तथा रस, आसव और तैल आदि प्राचीन उत्तम कहे है । ऐसे ऐसे अनेक कारणोंसें प्राचीन वैद्य काष्ठादि जड़ी बूंटीसे चिकित्सा करते, इसीसे रस ग्रन्थोंका प्रचार पहले समयमें थोडाथा, परन्तु जबसे इस भारतवर्षमें यवनोंका राज्य हुआ और उनके साथ उनके देशके यूनानी वैद्य आए । उन यूनानी वैद्योंने यहांके राजा बाबू लोगोंको अपनी स्वादिष्ठ औषध देकर अपनी और अपने शास्त्रकी उत्तमता दिखाय, यहांके वैद्योंकी और यहांके शास्त्रोंकी निंदा करने लगे । इसी कारणसें वैद्योंकी जीविका नष्ट होने लगी, और दिन प्रतिदिन हकीमोंकी चाह विशेष होने लगी । तब हमारे गुरु घंटाल वैद्योंसे न सहा गया शीघ्र अपने प्राचीन रसशास्त्र रूप खजानेको खोला जैसे शत्रुकी चढाई देख राजा महाराजा अपने खजानेको खोलते है । बस जो इन्होने रसोंको देना प्रारंभ करा तो यूनानी मुगलानी पठानियोंकी वानी बंद कर पानीसें भी पतले कर दिये । और जो यूनानी वैद्य रुक्का लिख रोगीके द्रव्य हरण करनेको सैकरों दवाई लिखतेथे, तथा अत्तारोंसे आधा तिहाई ठहरा कर उस रुक्केमें दो चार दवाई संकेत (समस्या) की लिख देते थे जो दमडीकी औषध उसके अत्तार साहब रुपया दो रुपये अथवा जैसा रोगी दखा वैसाही दो आने चार आने मांग लेते थे, यह अधर्म रसशास्त्रक प्रगट होते ही नष्ट होने लगा अर्थात् जो हकीमोंकी सेरो दवाई काम करती वो वैद्योंके रसोकी पाव चावल आधे चावलकी मात्रा काम करने लगी । इसी कारण काष्ठादि औषधोंसे रसशास्त्रको श्रेष्ठता है जैसे किसीने लिखा है ।

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्यसंगतः ॥
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योरसोधिकः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–काष्ठादि औषधोंकी अपेक्षासें रसकी थोडी मात्रा उपयोगी होती है तथा काष्ठादि औषधोंके खानेसें अरुचि होती है, सो रसके भक्षणसें कदाचित् नहीं हो, और काष्ठादि औषधकी अपेक्षा रस जल्दी आरोग्यदाता है, इसीसे काष्ठादि औषधोंसे रसको आधिक्यता है ।

अन्यच्च

मुक्त्वैकंरसवैद्यन्तु लाभंपूजांयशस्तथा ॥
तृणकाष्ठौषधैर्वैद्यः कोलभेतवराटकाम् ॥

अर्थ–एक रसज्ञ वैद्यको छोड़, लाभ, पूजा और यशको कौन प्राप्त हो सकता है । तथा तृण काष्ठौषधोंकर्के कौन वैद्य कौंडी ले सके है । और चंद्रोदय, मकरध्वज, मृत्युंजय, रूपरस, राजमृगांक, स्वर्णपर्पटी, वसंतकुसुमाकर, नागेश्वर, तामेश्वर, वंगेश्वर आदि रसोंके अनुपानभी दूध, मक्खन, मलाई, सहत, मिश्री, सोने चांदीके वर्क इत्यादि है । बस जबसे मुसलमानोंका आर्यावर्त्तमें आना हुआ, तबसेही रसशास्त्रके प्रचार होनेकी बहुधा जड़जमी,

शिष्य–प्राचीन रसग्रन्थकर्त्ता कौनसे हैं ।

गुरु–प्राचीन रसशास्त्र बनानेवाले आचार्यों के नाम रसरत्नसमुच्चयमें इस प्रकार लिखे हैं ।

आगमश्चन्द्रसेनश्चलङ्केशश्चविशारदः । कपालीमतमांडव्यौ भास्करः शूरसेनकः ॥ रक्तकोशश्चशम्भुश्चतथैकोनरवाहनः। इन्द्रदोगोमुखश्चैवकंबलिर्व्यालिरेवच ॥ नागार्जुनः सुरानन्दो नागबोधिर्यशोधनः॥ खण्डः कपालिकोब्रह्मागोविन्दोलुंपकोहरिः॥ रसांकुशोभैरवश्चकाकचण्डीश्वरस्तथा । वासुदेवोऋष्यशृंगः क्रियातन्त्रसमुच्चयी ॥ रसेन्द्रतिलकोयोगीभालुकीमैथिलाह्वयः॥महादेवोनरेन्द्रश्चरत्नकारोहरीश्वरः ॥ एतेचान्येचयेसिद्धरसशास्त्रप्रवर्त्तकाः ॥

अर्थ–आगम, चन्द्रसेन, लंकेश (रावण) कपाली, मांडव्य, भास्कर, शूरसेन, रक्तकोश, शम्भु, नरवाहन, इन्द्रद, गोमुख, कंबलि, व्याली, नागार्जुन, सुरानन्द, नागबोधि, यशोधन, खंड, कपालिक, ब्रह्मा, गोविन्द, लुंपक, हरि, रसांकुश, भैरव,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

काकचंडीश्वर, वासुदेव, ऋष्यशृंग, क्रियातंत्रसमुच्चयी, रसेन्द्रतिलकयोगी, भालुकी, जनक, महादेव, नरेन्द्र, रत्नकार, हरीश्वर इनसे आदि ले और नित्यनाथ, गोरख, मुछंदरआदि सिद्ध रसशास्त्रके प्रवृत्तिकर्त्ता हैं ।

अथसिद्धोनित्यनाथः पार्व्वतीतनयः सुधीः ।
रसरत्नाकराख्यश्चरसग्रंथंप्रणीतवान् ॥
रसेन्द्रचिन्तामणिनामधेयः । टुंटूनिनाथोभिषगग्रगण्यः ॥
रसेन्द्रयुक्तैर्विविधैश्चकार । सुभेषजैःकीर्णमतीवचित्रम् ॥
रसग्रंथप्रणेतारोभूवन्नन्येपिभूतले ।
सर्व्वएवहितेग्रन्थाआश्चर्यफलदायिनः ।

अर्थ–पूर्वोक्त ग्रन्थोंके अनन्तर पार्वती पुत्र ऐसे सिद्ध नित्यनाथने रसका ग्रन्थ रसरत्नाकर बनाया, औरभिषग्शिरोमणि टुंटुनाथने अनेक पारदके प्रयोगसहित सुन्दर औषध जिसमें ऐसा रसेन्द्रचिन्तामणि ग्रन्थ निर्माण करा । तदनंतर और बहुतसे पंडितोंने अनेक रसग्रन्थ बनाए । वे सब ग्रन्थ आश्चर्यफलदायक हैं । उनमेंसे जो आज कल प्रचलित ग्रन्थ हैं उनके कुछ नाम लिखते हैं । रसार्णव, रसमञ्जरी, रसेन्द्रकल्पद्रुम, रसराजशंकर, रसहृदय, रसदीपक, रससिद्धिप्रकाश, रसेन्द्रकोश, रसालंकार, रसभूषण, इत्यादि हैं इन सबका संग्रह करके रसराज सुन्दर ग्रन्थ भाषाटीका सह निर्माण करा गया है ।

श्रीमाधवकरश्चन्द्रसूनुः सूरितमोभिषक् ।
नानाशास्त्रोद्धृतंचक्रेसंग्रहंरुग्विनिश्चयम् ॥

अर्थ–भिषक्शिरोमणि श्रीमाधवकरश्चन्द्रके पुत्र, अनेकशास्त्रोंका संग्रहकररुग्विनिश्चयनामक ग्रन्थ करते हुए।यद्यपि,अंजननिदान, हंसराजानिदान, सुषेणनिदान, व्याड़ि आदि आचार्य्योंकेनिदान बहुत हैं । परन्तु सर्वोत्तम निदान माधवही है इस माधवनिदानकी मधुकोशटीकाकरतानें औरभी ग्रन्थकर्त्ताओंके नाम लिखेहैं । यथा-

भट्टारजेज्जटगदाधरवाप्यचन्द्रैः श्रीचक्रपाणिबकुलेश्वरसेन भव्यैः ॥ ईशानकार्तिकसुकीरसुधीरवैद्यैर्मैत्रेयमाधवमुखै र्लिखितंविचिंत्य ॥१॥ तन्त्रान्तराण्यपिविलोक्यममैषयत्नः सद्भिर्विधेयइहदोषविधौसमाधिः ॥ मर्त्यैरसर्व्वविदुरैर्विहितेक्व नाम ग्रन्थेऽस्तिदोषविरहः सुचिरन्तनेपि ॥ २ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–भट्टार, जेज्जट, गदाधर, वाप्यचन्द्र, श्रीचक्रपाणि, बकुलेश्वरसेन, ईशान, कार्त्तिक, सुकीर, मैत्रेय और माधव आदिका लेख विचार, तथा और अनेक तंत्रों-को देख इस ग्रन्थ बनानेमें हमारा प्रयत्न है इस ग्रन्थमें पंडितजनोंको समाधान करना चाहिये क्योंकि असर्वज्ञ मनुष्यकृत ग्रन्थमें दोषराहित्य कहां है ! अर्थात् दोषदृष्टिको परित्याग कर जहां कहीं अशुद्ध रहगया होय उसको सुधार देवे, पर-न्तु, जो दुष्टजन हैं वो इस बृहन्निघंटुरत्नाकर ग्रन्थको देखकर दोषारोपण करेहींगे, उनसे हम नहीं डरते, जैसे लिखा है।

तथापिक्रियतेग्रन्थः सन्तियद्यपिदुर्ज्जनाः ।
नहिदस्युभयाल्लोकोदैन्यवानिहवर्त्तते ॥

अर्थ–यद्यपि संसारमें दुर्ज्जन जन हैं तोभी हम ग्रंथ करते हैं। क्योंकि संसार चोरोंके भयसें दीनता नहीं ग्रहण करे, अर्थात् सेठ साहूकार चोरोंके भयसे कुछ अपने व्यवहारको नहीं छोड़ते।

भ्रमद्भ्योव्याधिचक्रेभ्योरक्षितुंह्यबलान्नरान् । नानातन्त्रप्रसू नेभ्योमधून्याहृत्ययत्नतः ॥ शास्त्रचक्राणिसंचूर्ण्यदृष्ट्वासम्य क्फलाफलम् । चक्रपाणिश्चिकित्सात्ममधुचक्रंप्रणीतवान् ॥ ग्रन्थेचक्रकृतेरीतिवैशद्यंपरिदर्शितम् । चिकित्सायां विशेषेण स्नेहादिपचनेतथा ॥ नान्यस्मिन्दृश्यतेचेदृग्ग्रन्थकौशलब न्धनम् । चिरंविद्योततांसूरिहृदयेऽयंसुसंग्रहः ॥

अर्थ–निरन्तर भ्रमणशील रोगचक्रसें दुर्बल मनुष्य गणोंकी रक्षा करनेके निमित्त, भिषग्वर चक्रपाणिदत्त, अनेक शास्त्रोंका सार संग्रह कर स्वनामक अर्था-त् चक्रदत्त नाम चिकित्सा ग्रंथ बनाया। इस ग्रंथमें चिकित्साकर्मकी सुन्दर शृंखला दिखाई है और तैलआदि पाचनकी विधि उत्तम कही है। जैसी प्रणाली इस ग्रंथमें है ऐसी दूसरे ग्रंथमें कुशलता नहीं है, यह ग्रंथ पंडित लोगोंके हृदय-में बहुत कालपर्यंत प्रकाश करो. सुनते हैं कि, चक्रपाणिदत्तकृत चक्रदत्त ग्रंथमें निदान, निघंट और चिकित्सा सर्व वस्तु है परन्तु यह कलकत्तेमें जो छपा है वह संपूर्ण नहीं है।

राजनिघण्टुः।

नाम्नाश्रीनरसिंहपंडितवरः काश्मरिदेशोद्भवो नानाकोष-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

महाब्धिमन्थनगतंरत्नोच्चयंयत्नतः ॥ एकीकृत्यनिबन्धबन्ध नमहोनिर्घण्टुराजाभिधं चक्रेलोकहितेप्सयाहितकरंद्रव्या भिधानार्थकम् ॥ १ ॥

कोषादस्मात्तथाऽन्येभ्योद्रव्याणितद्गुणान्गुणान् । यौरू पींयावनींभाषांदेशभाषांतथैवच । सामग्र्येणतथोलाच्यक्रिया स्माभिर्विधीयते ॥

अर्थ—काश्मीर देशीय श्रीनरसिंह नामक पंडितवर, अनेक कोषरूप समुद्रका मन्थन कर उनसे अनेक शब्दोंको एकत्र कर, राजनिघंटु नामक सर्व लोकके कल्याणार्थ द्रव्याभिधान बनाया इस कोषसे तथा और कोशोंसे गुण और अवगुण विचार तथा अंग्रेजी यूनानी भाषाओंको विचार इस ग्रंथमें क्रिया लिखी है ।

भावप्रकाशः ।

आसीन्मद्रेजनपदेविप्रोविद्वत्कुलोत्तमः । शिरोमणिःसद्भिष जांधन्वन्तरिरिवक्षितौ ॥ शास्त्राणांपारदृक्सम्यक्भावमिश्रे तिनामकः । वाराणस्यामवस्थायभूमिपानांमहात्मनाम् ॥ ब हूनांबहुधासम्यग्रुजांकृत्वाप्रतिक्रियाम् । प्रतिष्ठांमहतींभूमौ लब्धवान्साधुपूजितः ॥

अर्थ—३०० तीनसौ वर्ष व्यतीत हुए तब मद्रदेशमें, विद्वान् ब्राह्मणों के उत्तम कुलमें, मानो द्वितीय धन्वन्तरि ऐसे शास्त्रके पारदर्शी, भावमिश्रनामक भिषक्शिरोमणि प्रगट हुए । वे काशीपुरीमें वास करि तद्देशीय अनेक महात्मा राजाओंकी अनेकवार चिकित्सा कर बड़ी भारी प्रतिष्ठाको प्राप्तहुए ।

शिष्यानध्यापयामासयोवेदशतसंख्यकान् । महारत्नानिचो द्धृत्यआयुर्वेदमहाम्बुधेः । ग्रंथंभावप्रकाशाख्यंलोकानांहित काम्यया । प्रणीतवान्प्रयत्नेनवैद्यानामुपकारकम् ॥ आयु र्वेदप्रबंधानांग्रन्थःसचरमःस्मृतः ।

अर्थ—जिन्होंने चारसौ ४०० शिष्योंको आयुर्वेदादि शास्त्र पढ़ाए, तथा आयुर्वेदरूप समुद्रसें महारत्नरूप श्लोकोंका संग्रह कर, लोकोंके कल्याणार्थ भावप्र-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

काश नाम ग्रंथ बनाते हुए । यह ग्रंथ वैद्योंका उपकारी है, यह जितने आयुर्वेदके ग्रंथहैं उनमें पिछला ग्रंथ है ।

आयुर्वेदाब्धिमध्यादतिमतिमुनयोयोगरत्नानियत्नाल्लब्ध्वा-
स्वेस्वेनिबंधेदधुरखिलजनव्याधिविध्वंसनाय । तत्तद्ग्रंथा
दृगृहीतैःसुवचनमणिभिर्भावमिश्रश्चिकित्साशास्त्रेजाड्या
न्धकारंप्रशमयितुमिमंसंविधत्तेप्रकाशम् ॥

अर्थ–आयुर्वेदरूपी समुद्रमेंसे, महाबुद्धिमन्त मुनीश्वरोंने योगरत्नरूपी रत्नाको लेकर, अपने अपने ग्रंथोंमें धरे हैं । उन रत्नोंको समग्र मनुष्योके रोगनाशनार्थ उन्हीं उन्हीं ग्रन्थोंमेंसें ग्रहणकरके और भावयुक्त ऐसें सुवचनरूपी मणियोंसें इस चिकित्साशास्त्रमें मूर्खताके अन्धकार दूर करनेके वास्ते ग्रन्थकर्त्ता आप यह प्रकाश करे है ।

पूर्वाचार्य्यैःप्रणीतेषुपूजनीयैर्महर्षिभिः ।तंत्रेषुयानिरत्नानिता-
न्यत्रापिप्रधानतः॥लभ्यन्तेन्यान्यपितथादृश्यन्तेयानिनक्वचि
त्॥ तथालिप्यंतरेचापियत्कृप्यन्यैर्नदृश्यते।पारस्यादिप्रदेशे
षुजाताऔषधयश्चयाः॥आचार्येणगृहीतास्ताःपूर्वाचार्य्यैर्नत
त्कृतम् । व्याधेःफिरङ्गकाख्यस्यालिखितंचात्रलक्षणम्।तस्यप्र
तिक्रियाचापितन्त्रेऽन्यस्मिन्नदृश्यते ॥

अर्थ–महर्षियोंकरके पूज्य ऐसे पूर्वाचार्य्योंके बनें हुए ग्रन्थोंके श्लोक सब इस भावप्रकाशमें हैं और बहुतसें ऐसे प्रयोग इसमें हैं, जो कहींनहीं लिखे-पारसी (मुसलमानी) प्रदेशोंमें होनेवाली औषधियोंके नाम गुण, प्राचीन आचार्योंने नहींलिखे वो सब इन्होंने लिखेहैं । तथा फिरंगरोगके लक्षण यत्न किसी ग्रंथमें नहीं है वो इन्होंने अपने ग्रंथमें लिखे हैं ।

अतःप्रतीयतेचायुःशास्त्राणांचरमोन्नतिः । जाताश्रीभावमिश्र
स्यसमयेकुशलप्रदे । तादिमंचरमंग्रन्थंवैद्यानांजीवनंमतम् ।
श्रीपतिपदप्रसादादाशीर्भिर्भूमिदेवानाम् । भावप्रकाशनामाग्रं
थोयंपठ्यतांसर्वैः ॥

अर्थ–इन पूर्वोक्त कारणोंसे मालूमहोता है कि इस भावप्रकाश ग्रंथकी उन्नति

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भावमिश्रके समय पीछे हुई है। यह सबके पश्चात् बनाहुआ ग्रंथ वैद्योंका जीवनरूप है। श्रीपतिके चरणारविंदके प्रसादसें, और ब्राह्मणोंके आशीर्वादसें भावप्रकाश-नामक यह ग्रंथ तुम सर्व मनुष्य पढ़ो।

इति आयुर्वेदप्रणेतृणांप्रादुर्भावः ।

अस्मिन् शास्त्रे पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायःपुरुषइत्युच्य ते । तस्मिन् क्रिया सोऽधिष्ठानं कस्माल्लोकस्य द्वैविध्यात् ।

अर्थ–इस आयुर्वेदशास्त्रमें, पञ्च महाभूत "पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश," और शरीरी कहिये आत्मा, इन्के संयोगको पुरुष कहते हैं। उस पुरुषमें शास्त्रोक्त कर्म हैं, क्योंकि वही पुरुष व्याधि और आरोग्यका आधार है, अर्थात् पुरुषमेंही शास्त्रोक्त चिकित्सा होती है, क्योंकि सर्व जीवोंके दो भेद हैं।

लोकोहिद्विविधः स्थावरोजङ्गमश्च । द्विविधात्मकए वाग्नेयः सौम्यश्चतद्भूयस्त्वात् । पञ्चात्मकोवा ।

अर्थ–लोक स्थावर और जंगमके भेदसें दो प्रकारका है, वह स्थावर जंगमभी आग्नेय (गरम) और सौम्य (शीतल) के भेदसें दो प्रकारका है, क्योंकि बहुधा प्राणिमात्र तेज और शीतल स्वभाववालेही होते हैं। अथवा सर्व प्राणी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशकी आधिक्यतासें पांच प्रकारके हैं।

तत्रचतुर्विधोभूतग्रामः । स्वेदजाण्डजोद्भिज्जजरायुजसंज्ञः । त त्रपुरुषःप्रधानंतस्योपकरणमन्यत् । तस्मात्पुरुषोऽधिष्ठानम्।

अर्थ–तहां पूर्वोक्त प्राणियोंका समूह चार प्रकारका है। स्वेदज (१) अंडज, (२) उद्भिज्ज, (३) जरायुज, (४) इन चारों प्रकारके प्राणियोंमें पुरुष (मनुष्य (५) को प्रधानता है। और उस मनुष्य जातिके स्थावर जंगम स्वेदजादि उपकरण (सामग्री) अर्थात् साधन है। इसीसें आयुर्वेदोक्त क्रियाओंका आधार पुरुष है।

(पंचमहाभूत शरीरी समवायः पुरुषः) इस्के कहनेसें, पुरुषशब्द करके पश्वादिकोंकाभी बोध होता है। तथापि मनुष्यजातिकाही इस जगह पुरुषशब्द वाचक है।

(१) पसीनासें जो होते हैं जुंआं लीख आदि (२) जो अंडाओंसें प्रगट होते हैं तोता चिरैया, सर्प आदि, (३) जो पृथ्वीको फोड कर प्रगट होते हैं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जैसै वृक्षादि (४) और जो जरा (झिली) सैं लिपटे माताके पेटसैं प्रगट हो जैसै मनुष्य आदि ।

तद्दुःखसंयोगाव्याधयःइत्युच्यंते । तेचतुर्विधाआगन्तवःशारीरा मानसाः स्वाभाविकाश्चेति । तेषामागन्तवोऽभिघातनिमित्ताः । शारीरास्त्वन्नपानमूलावातपित्तकफशोणितसन्निपातवैषम्यनिमित्ताः । मानसास्तुक्रोधशोकभयहर्षविषादेर्ष्याभ्यसूयादैन्यमात्सर्यकामलोभप्रभृतय इच्छाद्वेषभेदैर्भवंति । स्वाभाविकाःक्षुत्पिपासाजरामृत्युनिद्राप्रभृतयः ।

अर्थ–उस पुरुषको दुःख संयोग होनेको व्याधि अर्थात् रोग कहते हैं अथवा जिनके होनेसैं, अथवा जिन करके, अथवा जिनसैं मनुष्यको दुःख हो उनको रोग कहते हैं । वो व्याधि रोग) चार प्रकारके हैं । आगंतुज, शारीरी, मानसिक, और स्वाभाविक, तिनमें तीर, तलवार, लाठी आदि चोट लगनेसैं जो रोग होवे, उसको आगंतुज कहते हैं । अन्न अर्थात् विषम भोजन है कारण जिसमें और वात, पित्त, कफ, रुधिर, सन्निपात इन्होंकी विषमता है निमित्त जिन्होंकी उन व्याधियोंको शारीरी (अर्थात् शरीरसे होनेवाली) कहते हैं । क्रोध, शोक, भय, हर्ष, (आनन्द) विषाद (पश्चात्ताप) ईर्ष्या, निंदा, दीनता, मत्सरता, काम, लोभ, आदि शब्दसे–मान, मद, दम्भ, इत्यादि इच्छा और द्वेषसैं होनेवाली व्याधियोंको मानसिक (अर्थात्) मनसैं होनेवाली व्याधि कहते हैं । और भूख, प्यास, वृद्धता, मृत्यु, निद्रा आदि स्वाभाविक व्याधि (रोग) कहाते हैं । अर्थात् भूख प्यास ए ईश्वरनिर्मित हैं । इसीसैं इन्होंका निवारण नहीं होता है । यदि पूर्वोक्त भूख प्यास आदि रोग दोषोंके घटने बढनेसैं होवे (जैसे भस्मकरोग, अतितृषा, विना समय बुढापा) तो इनकी चिकित्सा होसकती है ।

तएतेमनःशरीराधिष्ठानाःतेषांसंशोधनसंशमनाहाराचाराःसम्यक्प्रयुक्तानिग्रहहेतवः ॥

अर्थ–पूर्वोक्त चतुर्विधव्याधि, मन और शरीरके आश्रय होती है । अर्थात् काम क्रोधादि रोग मनके आश्रय हैं । और ज्वरादि रोग शरीरके आश्रय होते हैं। तथा अपस्मार (मृगी) आदि व्याधि मन और शरीर दोनोंके आश्रित होती हैं। इन पूर्वोक्त ४ प्रकारकी व्याधि, (१) संशोधन (२) संशमन (३) आहार और (४) आचार (५) विधिपूर्वक सेवन करनेसे शांति होती है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्राणिनांपुनर्मूलमाहारोबलवर्णौजसांच । षट्सुर
सेष्वायत्तोरसाः पुनर्द्रव्याश्रयाः ।

अर्थ–प्राणियोंका कारण आहार (भोजन) है । केवल प्राणियोंकाही मूल नहीं है किंतु बल, वर्ण और ओज, (लावण्यता) काभी हेतु आहारही है । वह आहार मधुर आदि छः रसोंके अधीन है, रस द्रव्यके अधीन हैं ।

१ शोधन दो प्रकारका एक बहिराश्रय दूसरा अंतराश्रय, तहां शस्त्र, दागना, लेप आदिको बहिराश्रय, और वमन, विरेचन, अनुवासन, फस्त खोलने आदिको अन्तराश्रय शोधन कहते हैं ।

२ जो दूषित दोषोंको शोधन न करे, और जो दोष समान हैं उनको बढ़ावे नहीं, और कुपित दोषोंको समान करे, उस द्रव्यको संशमन कहते हैं । वो संशमन बाह्य अभ्यंतरके भेदसें दो प्रकारका है । तहां लेप, परिषेक, स्नान उबटना, फस्त खोलना, बस्तिकर्म, गंडूष, (कुल्ला) इत्यादि बाह्य संशमन है । और पाचन, लेखन, बृंहण, रसायन, वाजीकरण, विषप्रशमनादि, अभ्यंतर संशमन है ।

३ आहार ४ प्रकारका है १ भक्ष्य, २ भोज्य, ३ लेह्य, ४ चोष्य, फिर वह आहार तीन प्रकारका है । १ दोषप्रशमन, २ व्याधिप्रशमन, और ३ स्वस्थवृत्तिकर।

४ देह, वाणी और मन, इनके कर्म को आचार कहते हैं । तहां खेलना, कूदना, डोलना आदि देहका कर्महै । पढना, पढाना आदि वाणीका कर्म है । ध्यान, चिंता, विचार, संकल्प आदि मानसिक कर्म है ।

५ विधिपूर्वक कहनेका यह प्रयोजन है कि, देश, काल, अवस्था, बल आदिको देखकर शोधनादि कर्म करने चाहिये ।

द्रव्याणिपुनरौषधयस्ता द्विविधाः स्थावराजङ्गमाश्च । तासांस्थावराश्चतुर्विधाः वनस्पतयो वृक्षा वीरुध ओषधय इति। तास्वपुष्पाः फलवन्तो वनस्पतयः।पुष्पफलवन्तो वृक्षाः प्रतानवत्यः स्तंबिन्यश्च वीरुधः फलपाकनिष्ठाओषधयः।

अर्थ–द्रव्य औषधके अधीन है वह औषध दो प्रकारकी है, एक स्थावर, दूसरी जंगम, तिनमें स्थावर ४ प्रकारकी है वनस्पति, वृक्ष, वीरुध और औषधी, तिनमें फूलरहित फलवाली (जैसे पाखर, गूलर आदि) वनस्पति कहाती हैं । और जिन्होंमें फूल फल दोनों आवें (जैसे आम, जामुन आदिको) वृक्ष कहते हैं,और जो धरतीमें फैल जाती हैं अथवा छोटी गुल्मवान् हों (जैसे करेला, गिलोय, शा-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लपर्णी, पृष्ठपर्णी, जवासे आदि) इनको वीरुध कहते हैं, और जो फलके पकने सैं नष्टहोवे (जैसे गेंहूं, जो, चना आदि) इन्को ओषधि कहते हैं ।

जङ्गमास्त्वपिचतुर्विधाः जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जाः । त त्रपशुमनुष्यव्यालादयोजरायुजाः । खगसर्पसरीसृपप्रभृत योऽण्डजाः।कृमिकीटपिपीलकप्रभृतयःस्वेदजाः । इन्द्रगोप मण्डूकप्रभृतय उद्भिज्जाः ।

अर्थ–जंगम प्राणी भी ४ प्रकारके हैं । जरायुज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज्ज, तिनमें पशू, मनुष्य, व्याल (सर्प) आदि जरायुज कहलाते हैं।पक्षी (तोता, मैना, कोयल, मोर आदि) सर्प, सरीसृप, आदि अंडज कहलाते हैं कृमि,[1] कीट,[2] चेटी, (जूआं, खटमल) आदि स्वेदज अर्थात् पसीनेसें होनेवाले कहाते हैं । इन्द्रगोप (वीरबहूटी) मेडका, वृक्षादि उद्भिज्ज कहलाते हैं । व्याल शब्द करके हिंसक जीव सिंह व्याघ्रादिकोंका ग्रहण है, कोई आचार्य व्यालशब्द करके सर्पविशेष कहते हैं, यथा " सर्पजातिषुअहिपताकाजरायुजेति" अथवा सर्पशब्दसैं अजगर आदि मंदगामी सर्प जानने, और सरीसृपशब्दसैं जल्दी चलनेवाले काले, पौनिया आदि सर्प जानने । आदिशब्दसै मच्छी, मगर आदि जानने । कहीं कहीं चेटी अंडांसैं और पृथ्वीसैभी होती हैं ।

तत्रस्थावरेभ्यस्त्वक्पत्रपुष्पफलमूलकन्दनिर्यासस्वरसाद यः प्रयोजनवन्तोजङ्गमेभ्यश्चर्मनखरोमरुधिरादयः ।

अर्थ–तिन स्थावर जीवोंसैं त्वचा, (छाल) पत्ता, फूल, फल, जड़ कन्द, गोंद, रस आदिशब्दसैं तेल, खार, भस्म, कांटे आदि ए कामके हैं अर्थात् स्थावरोंसैं ए अंग ग्रहण करने चाहिये और जंगम जीवोंके चर्म (चाम) नख, रोम, (वाल) रुधिर, और आदिशब्दसैं मांस, वसा, हड्डी और खुर ए कामके हैं ।

पार्थिवाः सुवर्णरजतमणिमुक्तामनःशिलामृत्कपालादयः । कालकृतास्तुप्रवातनिवाताऽऽतपच्छायाज्योत्स्नातमःशीतोष्णवर्षाहोरात्रपक्षमासर्त्वयनादयः संवत्सरविशेषाः ।

---

१ काठ मलसै प्रगट होनेवाली उन्को कृमि कहते है, जैसे गिनार आदि । २ विच्छू छः बूंदवालेन्को कीट कहते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तएतेस्वभावतएवदोषाणांसञ्चयप्रकोपप्रशमप्रतीकारहेतवः प्रयोजनवन्तश्च ।

अर्थ–पार्थिव कहिये पृथ्वीके विकारोंमें सोना, चाँदी, फटिक आदि मणि, मोती, मनसिल, मट्टी, खपरा और आदिशब्दसें लोह, कीटी, धूल, विष, हरिताल' नोन, गेरू और सुरमा, आदि इन सबको काममें लाने चाहिये । तथा काल (समय) संबंधी वस्तुओंमें अत्यंत पवन, पवनका निरोध, धूप, छाया, चांदनी, अंधकार, सरदी, गरमी, वर्षा, दिन, रात्रि, पक्ष, महिना, ऋतु, अयन आदि संवत्सरविशेष और आदिशब्दसें निमिष, कला, काष्ठा, मुहूर्त्तादिक, जानने । अब इन्का प्रयोजन यह है कि-ए पूर्वोक्त स्थावर, जंगम, पार्थिव और कालकृत पदार्थ ये सब स्वभावहीसें वात, पित्त, कफ आदि दोषोंके संचय, प्रकोप और प्रशमन (शांति) के हेतु होते हैं, तथा चिकित्सोपकारक होते हैं अर्थात् खील, सुगंधवाला, खस, लालचंदन, जलमें डारके पवनमें रातिभर धरा रक्खे तथा मैनफलोंको पवनरहित धूहमें सुखावे इत्यादि प्रयोजन जानना ।

शरीराणांविकाराणामेषवर्गश्चतुर्विधः ॥चयेकोपेशमेचैवहेतुरुक्तश्चिकित्सकैः ॥आगन्तवश्चयेरोगास्तेद्विधानिपतन्तिहि॥मनस्यन्येशरीरेऽन्येतेषान्तुद्विविधाक्रिया॥शरीरपतितानान्तु शरीरवदुपक्रमः मानसानान्तुशब्दादिरिष्टोवर्गः सुखावहः ।

अर्थ–[आहार, आचार, पार्थिव और काल भेदसें] शरीर विकारोंका यह चार प्रकारका वर्ग, संचय कोप और शांतिका कारण वैद्योंनें कहा है, [परंतु जैज्जट आहार आचारको छोड़ स्थावर, जंगम, पार्थिव और काल इस चतुर्वर्गको देहके रोगोंके संचय, कोप और शांतिका कारण मानता है] परंतु इस्के मतका पंजिकावाला खंडन करता है । अब जो आगंतुक रोग अर्थात् किसी चोट आदि कारणोंसें प्रगटे हैं वह रोग दोप्रकारके हैं पहले जो मनसें संबंध रक्खे दूसरे वो जो शरीरसें सम्बन्ध रखते हैं उन दोनोंकी दो प्रकारकी चिकित्सा है । जो शरीरमें पड़ते हैं जैसें तीर, तलवार आदिका घांव उन्की शरीरके अनुकूल चिकित्सा करनी चाहिये और मनमें होनेवाले रोग (चिंता, उद्वेग, ईर्ष्या आदि) मन प्रसन्न करनेवाले (शब्दादि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) आदि वांछित पदार्थ सुख देनेवाले होते हैं ।

एवमेतत्पुरुषोव्याधिरौषधंक्रियाकालइतिचतुष्टयंसमासेन व्याख्यातं । तत्रपुरुषग्रहणात्तत्तत्सम्भवद्द्रव्यसमूहोभूतादि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रुक्तस्तदङ्गप्रत्यङ्गविकल्पाश्चत्वङ्मांससिरास्नायुप्रभृतयः।

अर्थ–इस प्रकार पुरुष, व्याधि, औषध, क्रिया और काल यह चार वस्तु संक्षेपसैं कही हैं यद्यपि पुरुषादिक पांच होते हैं तथापि चारही समझने अथवा क्रिया काल एकही जानना तहां पुरुषके ग्रहणसैं उस पुरुषसैं उत्पन्न द्रव्य समूह, (शुक्र, आर्त्तव) और पंच महाभूत आदि तथा पुरुषके अंग (मस्तकादि) प्रत्यंग, (चिबुक आदि) त्वचा, मांस नस आदिका ग्रहण करा जाय है।

व्याधिग्रहणाद्वातपित्तकफशोणितसन्निपातवैषम्यनिमित्ताः सर्वएवव्याधयोव्याख्याताः । ओषधिग्रहणाद्द्रव्यगुणरसवीर्यविपाकप्रभावाणामादेशः ।

अर्थ–व्याधिके कहनेसैं वात, पित्त, कफ, रुधिर और सन्निपात इन्होंकी विषमता (घाट वाढ) सैं उत्पन्न होनेवाली सर्व व्याधियोंका ग्रहण कियाजाय है (सर्वएव) इसके कहनेसैं आगंतुक, मानसिक, स्वाभाविक सर्व रोगोंका ग्रहण है।

क्रियाग्रहणाच्छेद्यादीनिस्नेहादीनिचकर्माणिव्याख्यातानि । कालग्रहणात्सर्वक्रियाकालानामादेशः । बीजंचिकित्सितस्यैतत्समासेनप्रकीर्तितम् ॥

अर्थ–क्रियाके कहनेसैं छेद्यादि (अर्थात् छेद्य, भेद्य, लेख्य, आहार्य, विश्राव्य और सीव्य) तथा स्नेह आदि(स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, स्थापन, अनुवासन, नस्य, कवलग्रहण, गंडूष, पाचन और संशमनादि) कोंका ग्रहण है । और कालके कहनेसैं संपूर्ण वमन विरेचनादि क्रियाओंका समय जानना चाहिये, अर्थात् अमुक समयमें विरेचनादि लेवे और अमुक समयमें चिरना फाड़ना आदि कर्म करने चाहिये यह चिकित्साका बीज संक्षेपसैं कहा है।

स्वयम्भुवाप्रोक्तमिदंसनातनंपठेद्धियः काशिपतिप्रकाशितम् ॥ सपुण्यकर्माभुविपूजितोनृपैरसुक्षयेशक्रसलोकतांव्रजेत् ॥ १॥

अर्थ–अब इस शास्त्रका माहात्म्य कहते हैं, जो मनुष्य श्रीब्रह्मदेवप्रणीत तथा काशिपतिप्रकाशित इस सनातन शास्त्रको पढ़ेगा वह पुण्यकरनैवाला पृथ्वीमें राजा महाराजाओंसैं पूजित होवे और देहके अन्तमें इन्द्रके स्वर्गमें जावे।

इति श्रीमाथुरदत्तरामनिर्मिते आयुर्वेदोद्धारेबृहन्निघंटुरत्नाकरस्य पूर्वखंडे आयुर्वेदोत्पत्तिनामाध्यायकथनं नाम प्रथमतरङ्गःप्रथमवीचिः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

॥ अथ शिष्योपनयनीयाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ–आयुर्वेदोत्पत्तिनामाध्याय कहनेके अनन्तर शिष्योपनयनीय अर्थात् जिसमें शिष्यको दीक्षा देनेकी विधि उस अध्यायकी व्याख्या करेंगे यह प्रकरण चरकसैं लिखते हैं। यद्यपि ब्राह्मणादि त्रिवर्णका उपनयन प्रथमही होजाता है तोभी आयुर्वेद पढ़नेके समय फिर उपनय होता है।

बुद्धिमानात्मनः कार्यगुरुलाघवे कर्मफलमनुबन्धं देशकालौ च विदित्वा युक्तिदर्शनाद्भिषक् बुभूषुः शास्त्रमेवादितः परीक्षेत ।

अर्थ–बुद्धिमान् मनुष्य अपने छोटे बड़े कार्यमें कर्मफल अनुबंध (प्रयोजन अधिकारी आदि) देश कालको जानके युक्तिके देखनेसैं वैद्य होनेवाला पुरुष प्रथम शास्त्रकी परीक्षा करे।

विविधानीह शास्त्राणि भिषजां प्रचरन्ति लोके तत्रयन्मन्येत महद्यशस्विवीरपुरुषाऽऽसेवितमर्थमाप्तजनस्यपूजितं त्रिविधशिष्यबुद्धिहितमपगतपुनरुक्तदोषमार्षं सुप्रणीतं सूत्रभाष्यसंग्रहक्रमं स्वाधारमनवपतितशब्दमकृष्टशब्दं पुष्कलाभिधानं क्रमगतार्थमर्थतत्वनिश्चयप्रधानं सङ्गतार्थमसंकुलप्रकरणमाशुप्रबोधकलक्षणवच्चोदाहरणवच्चतदाभिप्रपद्यते शास्त्रम् ॥

अर्थ–अनेक वैद्यकके शास्त्र लोक (संसार) में प्रचलित हैं, तिन्होंमें जिस ग्रंथ पढनेकी इच्छा होय उसको बडे बहुतसे यशस्वी वीर पुरुषोंकर आसेवित (अर्थात् पठित ग्रन्थ) बहुतसै आप्तजन (शिष्टों) करके पूजित, त्रिविध (उत्तम, मध्यम, अधम) शिष्यकी बुद्धिको हितकारक, पुनरुक्तदोषरहित आर्ष अच्छे प्रकारसें कहा सूत्रभाष्य संग्रहका क्रम जिसमें सुंदर आधारवाला हो जिस्में शब्द न गए होवें, बडा जिस्का नाम होय, क्रमपूर्वक प्राप्त अर्थ जिस्का, और अर्थतत्वका निश्चय प्रधान जिस्में, संगत अर्थ हो अर्थात् असंगत अर्थ न हो, न्यारे न्यारे प्रकरण, शीघ्रबोध करानेवाला, लक्षणवान्, उदाहरणवान् ऐसे शास्त्रका आश्रय लेवे अर्थात् ऐसे शास्त्रको पढना चाहिये।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ह्येवंविधममलइवादित्यस्तमोविधूयप्रकाशयति सर्वततोऽनन्तरमाचार्य्यपरीक्षेत । तद्यथा

अर्थ–ऐसा उज्ज्वल शास्त्र सूर्यके समान हृदयका अंधकार दूर करके ज्ञानको प्रकाश करता है । इस प्रकार प्रथम शास्त्रकी परीक्षा करके पीछे आचार्य्य (गुरु) की शिष्य परीक्षा करे. सो इस प्रकार ।

पर्य्यवपातश्रुतंपरिदृष्टकर्माणंदक्षंदाक्षिणंशुचिंजितहस्तमुपक रणवन्तं सर्व्वेन्द्रियोपपन्नंप्रकृतिज्ञंप्रतिपत्तिज्ञमनुपस्कृतवि द्यमनसूयकमकोपनंक्लेशक्षमंशिष्यवत्सलमध्यापकंज्ञापनास मर्थमित्येवंगुणोह्याचार्य्यः स्वक्षेत्रमार्त्तवोमेघइवसस्यगुणैः सु शिष्यमाशुवैद्यगुणैः सम्पादयति ॥

अर्थ–आयुर्वेद पढनेवाले मनुष्यको ऐसा आचार्य करना चाहिये कि, जिसका शुद्ध श्रुत अर्थात् यथार्थ शास्त्रोंको सुना हो । और गुरुके समीप रह कर संपूर्ण औषधादि, तथा नाडी, मूत्रकी परीक्षा आदि कर्म गुरुको करते हुये देखे हो चतुर हो, सरल हो, पवित्रतासै रहता हो । जितहस्त अर्थात् चोर न हो तथा जिसके समीप औषधबनानेके और चीरने फाडने आदिकी सर्व सामिग्री होवे । सर्व इन्द्रीवाला होवे, अर्थात् (लुला, लंगडा, टोंटा, काना, नकटा, अपाद ऐसा नहो)दूसरे मनुष्यकी प्रकृतिका जाननेवाला और बुद्धिका जाननेवाला हो, जिसने बहुत विद्याओंका संग्रह करा हो चुगल और क्रोधी, न होवे यदि औषध आदि बनानेमें क्लेश (दुःख) हो उसको सहनेवाला हो, शिष्यको प्यार करनेवाला, पढानेवाला समझानेमें समर्थ, इत्यादि गुणवाला आचार्य उत्तम शिष्यको वैद्य गुणोसै शीघ्र परिपूर्ण कर देवे । जैसे (खेत) के गरमी आदि दूषणोंको मेघ दूर कर घास आदि सै खेतको परिपूर्ण कर देता है ।

तमुपसृत्यारिराधयिषुरुपचरेदग्निवच्चदेववच्चराजवच्चपितृवच्च भर्तृवच्चाऽप्रमत्तस्ततस्तत्प्रसादात्कृत्स्नंशास्त्रमधिगम्यशास्त्र स्यदृढतायामभिधानस्यसौष्ठवस्यार्थस्यविज्ञानेवचनेऽस्यश क्तौचभूयः प्रयतेतसम्यक् । तत्रोपायाव्याख्यास्यन्ते । अध्य यनमध्यापनंतद्विद्यासम्भाषेत्युपायाः ॥

अर्थ–पूर्वोक्त सर्व गुण संपन्न गुरुके समीप जायकर, प्रसन्न करनेको गुरुकी अ

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ग्नि, देवता, राजा, पिता और भर्त्ता (स्वामी) इनके सदृश सेवा करे । तदनंतर गुरूकी प्रसन्नतासें संपूर्ण शास्त्रोंको प्राप्त हो शास्त्रोंकी दृढताको और नामके विख्यात होनेके लिये, तथा अर्थ जाननेको बोलनेकी शक्ति बढनेके वास्ते, फिर शास्त्रमें अच्छी रीतिसें यत्न करे । तहां शास्त्रमें प्रवृत्ति होनेके उपाय कहते हैं । पढना, पढाना और उस शास्त्रका संभाषण करना ए तीन उपाय हैं ।
तहां प्रथमपढनेकी विधि कहते हैं ।

तत्राध्ययनविधिकल्पः ।

कृतक्षणः प्रातरुत्थायोपव्युषंवाकृत्वाऽऽवश्यकमुपस्पृश्योद कंदेवगोब्राह्मणगुरुवृद्धासिद्धाऽऽचार्य्येभ्योनमस्कृत्य समेशु चौदेशेसुखोपविष्टोमनःपुरस्सरीभिर्वाग्भिः सूत्रमनुक्रामन्पुन रावर्त्तबुद्ध्यासम्यगनुप्रविश्यार्थतत्वंसदोषपरिहारप्रमाणार्थ मेवाऽपराह्णेरात्रौचशश्वदपरिहापयन्नभ्यस्येदित्यध्ययनविधिः

अर्थ-निश्चित करा है समय जिसने, ऐसा विद्याभिलाषी प्रातःकाल, अथवा चार पांच घड़ी रात शेष रहने पर उठे, और मल मूत्र परित्याग आदि आवश्यक कर्मसें निवृत्त हो, दांतन कुरला आदिकर स्नानादिक करे पीछे देवता, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, सिद्ध और आचार्य, इनको प्रणाम करे, पीछे समान और पवित्र स्थानमें सुखपूर्वक बैठे, मनको एकाग्र कर वाणीसें सूत्रका उच्चारण वारंवार करे, और शास्त्रमें बुद्धिको प्रवेश कर उसके अर्थ और तत्वको जानना चाहिये । तथा जो दोष होवें उसके परिहार और प्रमाण तथा प्रमाणके अर्थकोभी जाने । सायंकाल और रात्रिको छोडकर बाकी समयोंमें पढना चाहिये यह पढनेकी विधि कही ।

अथाध्यापनविधिः ।

अध्यापनेकृतबुद्धिराचार्यः शिष्यमादितः परीक्षेत तद्यथा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानामन्यतममन्वयवयःशीलशौर्यशौचाचार विनयशक्तिबलमेधाधृतिस्मृतिमतिप्रतिपत्तियुक्तं [अक्षुद्रक र्माणमव्यङ्गमव्यापन्नेन्द्रियंनिभृतमनुबद्धमव्यसानिनमध्ययना भिकाममत्यर्थंविज्ञानकर्मदर्शनेचानन्यकार्य्यमलुब्धमनाल सं] तनुजिह्वौष्ठदन्ताग्रमृजुवत्क्राऽक्षिनासंप्रसन्नचित्तवाक्चे ष्टंक्लेशसहञ्चाभिषक्शिष्यमुपनयेत् ।विपरीतगुणंनोपनयेत् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–पढानेवाला आचार्य प्रथम शिष्यकी इस प्रकार परीक्षा करे ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य, इनमेंसै किसी जातका हो उत्तम कुल (इस जगे कुलशब्दसै आयुर्वेदाध्ययनकर्त्ता कुलसै प्रयोजन है) नई अवस्था अथवा तरुण अवस्था शील स्वभाव, शूरवीर, बाहर भीतरसै शुद्ध; परंपरागत कुल, देश और लौकिकआचारवाला, नीतवाला, उत्साहवाला, बली, बुद्धिवान्, धृति (जिह्वा और लिंग इन्द्रियका जीतनेवाला) पढीहुई अथवा देखी वस्तुको स्मरण रखनेवाला, अप्राप्त वस्तुको ज्ञानवान्, बड़े भारी कामको करनेवाला, सर्व अंग और सर्व इन्द्री जिसके होवे, वशीभूत, किसी कार्यमें बंधा न हो, जुआ, चोरी, वेश्यागमन, आदि व्यसनवाला न होवे। पढनेकी और ज्ञान कर्मके जाननेकी इच्छावाला, पढनेके सिवाय जिसको दूसरा कार्य न हो, लोभी न हो, आलसी न होय, और जीभ, होठ, दांत ए पतले होवे मुख, नेत्र, नाक, ए जिसके सुडोल और देखने योग्य हो, जिस्की प्रसन्न चित्त, वाणी, और चेष्टा, होवे। दुःखको सहनेवाला, ऐसे शिष्यको वैद्य उपनयन करे। और जो गुण कहे इनसैं विपरीत गुणवाले शिष्यको उपनयन (दीक्षा) न देवें।

उपनीयस्तुब्राह्मणः उदगयनेशुक्लपक्षेप्रशस्तेऽहनिपुष्यहस्त श्रवणाऽश्वयुजामन्यतमेननक्षेत्रेणयोगमुपगतेभगवतिशशिनि कल्याणेतिथिकरणमुमुहूर्तेस्नातः कृतोपवासोमुण्डःकषायव स्त्रसंवीतःसमिधोऽग्निमाज्यमुपलेपनमुदककुम्भांश्च सगन्धह स्तमाल्यदामाहिरण्यान्हेमरजतमणिमुक्ताविद्रुमक्षौमपरिधि कुशलाजसर्षपाऽक्षतांश्चशुक्लाश्चसुमनसोग्रथिताग्रथिता मेध्या न्भक्ष्यान्गन्धांश्चपिष्टापिष्टानादायोपतिष्ठस्वेति ॥

अर्थ–उपनीय (दीक्षाके योग्य) तो ब्राह्मण है। उत्तरायण, शुक्लपक्ष, उत्तमदिवस, पुष्य, हस्त, श्रवण और अश्विनी, इनमेंसैं कोई नक्षत्रपर चन्द्र होवे कल्याण कर्त्ता तिथि, करण, और मुहूर्त्त होवे, तब गुरु शिष्यसैं कहे कि अमुक समय पर स्नान कर उपवास करना क्षौर कराकर मुंडित हो गेरुअे रंगके वस्त्र पहिन कर समिधा, अग्नि, घृत, उपलेपन (लीपना) जल भरे कलश, सुगंधितवस्तु माला, डोरी, सौना, चांदी, मणि, मोती मूंगा, रेशमीवस्त्र, यज्ञके वृक्ष, कुशा, खील, सरसो, अक्षत, सपेद चावल, सुंदर फूल और फूलोंकी माला, पवित्र और भोजनके पदार्थ, चंदन इनमें पिसे हुए तथा विना पिसे (चून, धान, आदि) सर्व सामिग्री लेकर तैयार रहना इस प्रकार सुन शिष्य उसी प्रकार, करे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तमुपस्थितमाज्ञाय शुचौसमेदेशे प्राक्प्रवणे उदक्प्रवणेवा चतुष्किष्कुमात्रंचतुरस्रंस्थण्डिलं गोमयोदकेनोपलिप्तं दर्भैः संस्तीर्य । यथोक्तेचन्दनोदकुम्भक्षौमहेमाहिरण्यरजतमणिमुक्ताविद्रुमालकृंतंमेध्यभक्ष्यगन्धशुक्लपुष्पलाजसर्षपाऽक्षतोपशोभितंकृत्वा । पुष्पैर्लाजभक्तैरत्नैश्चदेवताः पूजयित्वाविप्रान्भिषजश्च तत्रोल्लिख्याभ्युक्ष्यच दक्षिणतोब्रह्माणंस्थापयित्वाऽग्निमुपसमाधाय खदिरपलाशदेवदारुबिल्वानांसमिद्भिश्चतुर्णांवाक्षीरवृक्षाणांन्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थमधूकानांदधिमधुघृताक्ताभिर्दार्वीभिर्होमिकेनाविधिनास्रुवेणाज्याहुतीर्जुहुयात्॥

अर्थ–गुरु शिष्यको उपस्थित जान पवित्र और समान देशमें तथा जिस स्थान में वेदी बनावे वहा सैं अथवा उत्तरसैं मिली हुई चौकोन चार वितस्त अथवा चार हाथकी वेदी रचे उसको गोबर सैं लीपे, और उसपर कुशा बिछावे । तथा पूर्वोक्त चन्दन जलके कलश रेशमी कपड़े, चांदी, सोना, सोनेके पात्रआदि, मणि, मोती और मूंगा आदिसे यज्ञस्थानको सुशोभित करै । तथा पवित्र भोजन करनेके पदार्थ, सुगंधिक पदार्थ (अत्तर आदि) सफेद फूल, खील, सरसों और चावल आदिसे शोभितकरे । फूल, खील, भात और रत्नोंसे देवता ब्राह्मण तथा वैद्योंका पूजन करके पश्चात् वेदीको कुशाओंसे झाडके तथा जल छिडककर वेदी के दक्षिणमें ब्रह्माको स्थापन करै । पीछे वेदीमें अग्निको स्थापन कर खैर, ढाक, देवदारु और बेल इनकी समिधा अथवा वड़, गूलर, पीपर और महुआ इनक्षीर वाले वृक्षोंकी समिधाओंको दही, सहत, घृतमें डबोयके, तथा और जो हवन करने योग्य लकड़ी उनको होमकी विधिसे होमे तथा स्रुवा से घृतकी आहुति देवे ॥

सप्रणवाभिर्महाव्याहृतिभिस्ततःपतिदैवतमृषींश्चस्वाहाकार श्चकुर्यात् शिष्यमपिकारयेत् ।

अर्थ–ओंकारसहित महाव्याहृतिओंसे हवन करे (यथा ओं भूः स्वाहा, ओं भुवः स्वाहा, ओं स्वः स्वाहा, ओंभूर्भुवःस्वः स्वाहा) इसी क्रमसे देवताओंको भी आहुति देवे । जैसे (ओं ब्रह्मणे स्वाहा, ओं प्रजापतये स्वाहा, ओं विष्णवे स्वाहा) इसी प्रकार ऋषियोंके नामसैं हवन करे चकारसैं वैद्यविद्याके प्रवर्तक

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्राचीन आचार्य्योंके नामसे हवन करे । इस प्रकार वैद्य आप होम करे और शिष्यसे भी करावे ।

ब्राह्मणस्त्रयाणांवर्णानामुपनयनंकर्तुमर्हति । राज
न्योवैश्यस्यवैश्योवैश्यस्यैवेति।शूद्रमपिकुलगुणस
म्पन्नंमंत्रवर्ज्यमनुपनीतमध्यापयेदित्येके ॥

अर्थ–ब्राह्मण त्रिवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) का उपनयन करसक्ता है, क्षत्री (क्षत्री, वैश्य) दो वर्ण का, और वैश्य केवल अपनीही जातिको दीक्षा देसक्ता है कोई आचार्य कहते हैं कि श्रेष्ठ (कायस्थादि) कुलमें प्रगट और श्रेष्ठ गुणयुक्त मंत्र रहित तथा उपनयन रहित शूद्रकोभी पढाना उचित है ।

ततोऽग्निंत्रिःपरिणीयाऽग्निसाक्षिकंशिष्यंब्रूयात् । कामक्रोध
लोभमोहमानाहङ्कारेर्ष्यापारुष्यपैशुन्यानृतालस्यायशस्या
निहित्वानीचनखरोम्णाशुचिनाकषायवाससासत्यव्रतब्रह्मच
र्याभिवादनतत्परेणावश्यंभावितव्यम् । मदनुमतस्थानगम
नशयनासनभोजनाध्ययनपरेण भूत्वा मत्प्रियहितेषुव
र्त्तितव्यमतोन्यथातेवर्त्तमानस्याधर्मोभवत्यफलाचविद्याच
नप्राकाश्यंप्राप्नोति ॥

अर्थ–पीछे अग्निकी तीन परिक्रमा कराय अग्निके साक्षी शिष्यके प्रति गुरू इस प्रकार कहे । कि हे वत्स ! काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, अहङ्कार, ईर्षा, कठोरता, चुगली, असत्य, आलस्य और अपयश कर्ता कर्मोंको छोड देना, तथा नख, बालोंको सदैव दूर कराते रहना (अर्थात् क्षौर सदैव कराते रहना) पवित्रता सें रहना गेरुआ रंगे वस्त्र धारण करना, सत्य बोलना, वेदके जो व्रत लिखे हैं उन्को करना, ब्रह्मचर्यमें तत्पर रहना, और आचार्यसें आदि ले बडोंको प्रणाम करना, इत्यादि बातों मैं सदैव तुमको तत्पर रहना चाहियें, मेरी आज्ञानुसार जाना, सोना, बैठना, भोजन करना और पढना चाहिये । मेरे प्रिय और हितकारी कर्मोंमें वर्त्तना चाहिये । यदि तू पूर्वोक्त मेरे कहनेके विपरीत वर्त्तेगा तो तुझको अधर्म होगा, और तेरी पढी हुई सब विद्या निष्फल होवेगी, कदाचित् प्रकाशित न होगी ।

अहंवात्वयिसम्यग्वर्त्तमानेयद्यन्यथादर्शीस्या
मेनोभाग्भवेयमफलविद्यश्च ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–फिर गुरु अपने नियमोंको इस प्रकार कहेकि, यदि तू मेरे साथ निष्कपटतासैं वर्त्तेगा और फिर में तेरे साथ (पढानेमें) कपट करूंगा तो में पापभागी और मेरी पढी हुई विद्या निष्फल होवेगी ।

द्विजगुरुदरिद्रमित्रप्रव्रजितोदिनसाध्वऽनाथाऽभ्युपगतानाञ्चा
त्मबान्धवानामिवस्वभेषजैः प्रतिकर्त्तव्यमेवंसाधुभवति ॥

अर्थ-रोगियोंके साथ वर्त्ताव करनेके नियम गुरू शिष्यसैं कहे, कि ब्राह्मण, गुरु, (माता, पिता, बडा भाई आदि) दरिद्रि, मित्र, संन्यस्त, दीनजन, साधु (सत्पुरुष) अनाथ और प्रदेशी इन्होंकी अपने बांधवोंके (पिता पुत्रादिके) सदृश चिकित्सा करनी चाहिये इस प्रकार करनेसैं तुमको अच्छा है *

व्याधशाकुनिकपतितपापकारिणांचनप्रतिकर्त्तव्य
मेवंविद्याप्रकाशते मित्रयशोधर्मार्थकामांश्चप्राप्नोति

अर्थ–व्याध (अहेरिया, कंजर, चाण्डाल आदि हिंसक प्राणी) शाकुनिक (चिरीमार आदि पक्षियोंका पकडनेवाला) पतित (जातिभ्रष्ट वर्णसंकर आदि) और पापकर्त्ता (वेश्यागामी, लोंडेवाज आदि) इन्होंकी चिकित्सा (इलाज) न करना । इस प्रकार करनेसैं विद्याका प्रकाश होता है और मित्र, यश, धर्म, धन और कामनाओंकी प्राप्ति होती है ।

॥ अनध्यायानाह ॥

कृष्णेऽष्टमीतन्निधनेऽहनीद्वेकृष्णेतरेप्येवमहर्द्वयंसंध्यम् । अ
कालविद्युत्स्तनयित्नुघोषेस्वतन्त्रराष्ट्रक्षितिपव्यथासु॥ १ ॥
श्मशानयानोयतनाहवेषुमहोत्सवोत्पातिकदर्शनेषु । ना
ध्येयमन्येषुचयेषुविप्रानाधीयतेनाशुचिनाचनित्यम् ॥ २ ॥

अर्थ–कृष्ण पक्षकी अष्टमी, चतुर्दशी, और अमावसको, तथा शुक्लपक्षमेंभी अष्टमी, चौदश और पूर्णमासीको तथा सायंकाल और प्रातःकालकी दोनों सन्ध्याओंमें, तथा अकाल (कुसमय) में, विजुरी चमकना और मेघका गर्जन, अथवा अकालविद्युतके कहनेसैं (पौष आदि चार महिनेकी वर्षा जाननी) उ-

---

* इस प्रमाण के माननेवाले वैद्य संसार में विरले हैं श्रेष्ठ वैद्य वोहि है जो दुष्टोंकी चिकित्सा नहीं करते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्में, तथा देशोपद्रव (भाजड, मरी, आदि) में, तथा स्वदेश राजाकी पीडामें, श्मशानमें, घोडा, हाथी, आदिकी सवारीमें बैठकर, वधस्थान (कसाईखाने) में संग्राममें, महोत्सव (विवाह, यज्ञोपवीतादि) त्रिविधि उत्पात (दिव्य, भौम, अन्तरिक्ष) इन्होंमें और जिस्में ब्राह्मण नहीं पढे जैसें प्रतिपदा आदि तिथी इन्में, हे पुत्र ! तुमको न पढना चाहिये । तथा अपवित्रता सें भी कभी न पढना ।

इतिआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे पूर्व० शिष्योपनयनीयाध्यायकथनं नामप्रथमतरङ्गस्य द्वितीयवीचिः ॥ २ ॥

शिष्य–हे गुरो! अब आप इस आयुर्वेद पढनेका क्रम कहो ।

गुरु–हे वत्स! पढनेका क्रम सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है सो सुनो ।

अथातोऽध्ययनसंप्रदानीयमध्यायंव्याख्यास्यामः ॥

अर्थ–शिष्योपनयनीयाध्याय कहनेके पश्चात् अब हम अध्ययनसंप्रदानीय अर्थात् जिस्में पढनेकी परिपाटी है उस अध्यायको कहेंगे ।

अथ वत्स ! तदेतदधीतं यथातथोपधारयमयाप्रोच्यमानम् । अथ शुचयेकृतोत्तरासङ्गायाव्याकुलायोपस्थितायाऽध्ययन कालेशिष्याय यथाशक्तिगुरुरुपदिशेत्, पदंपादं श्लोकंवा । तेच पदपादश्लोका भूयः क्रमेणाऽनुसन्धेया एवमेकैकशो घटयेदात्मनाचानुपठेत् ।

अर्थ–हे वत्स ! यह आयुर्वेद शास्त्र जिस प्रकार पढना चाहिये, वह क्रम में कहताहूं, उस्को सावधान होकर धारण अर्थात् कंठाग्र कर । आवश्यक कर्मसें निवृत्ति होचुकाहो, तथा स्नानादिद्वारा पवित्र हो, और उत्तरीय वस्त्रको वामस्कंध पर धारण करनेवाला, अव्याकुल, पढनेके समय आचार्यको प्रणाम करचुकाहो, ऐसें शिष्यके अर्थ, गुरु यथाशक्ति आयुर्वेद शास्त्रका उपदेश करे । अर्थात् पढावे,एक २ पद, एक एक पाद, एक एक श्लोक, अर्थात् अल्प बुद्धिवाले शिष्यको चौथाई श्लोक, मध्य बुद्धिवालेको आधा २ श्लोक, और तीव्र बुद्धिवालेशिष्यको गुरू एक-एक श्लोक पढावे । जबतक शिष्यके । समझमें न बैठें तब तक गुरुको चाहिये कि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उस्को अच्छी रीतिसें समझावे, क्योंकि " वक्तुरेवहितज्ज्ञाड्यंश्रोतायत्रनबुध्यते" अर्थात् (वो कहनेवालेहीकी मूर्खता है कि जिस्को सुननेवाला न समझे) पीछे गुरूसैं भले प्रकार पढके शिष्यको चाहिये कि आप उस गुरूकी पढाईहुई संथाको घोख कर कंठाग्र कर लेवे, पश्चात् गुरू आगे पढावे । अर्थात् जिस्को चौथाई श्लोक बताया उस्को चौथाई औरभी बतावे, आधे वालेको एक, और एक श्लोक वालेको दूसरा श्लोक बतावे । पीछे जो थोड़ा पढा है उस्को उस्सैं विशेष पढे हुए शिष्यके आधीन कर देवे । और शिष्यके शीघ्र कंठाग्र करानेके अर्थ शिष्यके संग गुरूभी बराबर बोले ।

पठनसमयके नियम ॥

अद्रुतमविलम्बितमविशङ्कितमननुनासिकं व्यक्ताक्षरमपीडितवर्णमक्षिभ्रुवौष्ठहस्तैरनभिनीतं सुसंस्कृतं नात्युच्चैर्नातिनीचैश्चस्वरैः पठेन्नचान्तरेणकञ्चिद्व्रजेत्तयोरधीयानयोः ॥

अर्थ–बहुत जल्दी जल्दी न पढे, तथा बहुत धीरे धीरेभी न पढे, संदेहको त्याग कर पढे, और अननुनासिक अर्थात् गिनगिनाय कर न बोले ऐसैं बोले कि सब अक्षर स्पष्ट दूसरेको सुनाई देवे । वर्णोंको चवायके न बोले, भौंह, होठ, और हाथोंको, न चलावे । अर्थात् बहुतसे बालकोंके नेत्र, भौंह, हाथ, और सर्व शरीर पढते समय हिला करते हैं । इस अपगुणको छोड देना चाहिये । पृथक् २ वर्ण सुनाई देवे, न बहुत जोरसैं बोले, न बहुत मंदस्वरसैं पढे, और पढते समय गुरू शिष्यके बीचमें होकर न निकलना चाहिये ।

शुचिर्गुरुपरोदक्षस्तन्द्रानिद्राविवर्जितः । पठेदेतेनाविधिना शिष्यः शास्त्रान्तमाप्नुयात् । वाक्सौष्ठवेऽर्थविज्ञानेप्रागल्भ्ये कर्मनैपुणे । तदभ्यासेचसिद्धौचयतेताऽध्ययनान्तगः ॥

अर्थ–पवित्र, गुरूकी सेवामें तत्पर, चतुर, तन्द्रा और निद्राकरके रहित, इस प्रकारको शास्त्र पढ़े तो वह शिष्य भलेप्रकार शास्त्रोंके पारको प्राप्तहोवे । वाणी की सौष्ठव अर्थात् बोलनेकी सुन्दररीति सीखनेको, शास्त्रके अर्थ जाननेको, और शास्त्रमें प्रगल्भ (ढीट) होने को, तथाकर्म (क्रिया) में निपुण होनेको, और इन पूर्वोक्तोंके अभ्यासकी सिद्धीके लिये, पढ़ाहुआ विद्यार्थी यत्नकरे । अर्थात् केवल पढ़नेमात्रसेही वैद्य नहींहोता, शास्त्रको पढ़के बराबरके स्वाध्यायियोंसे शास्त्रार्थ कराकरे । तो बोलनेकी शक्ति बढे । और पढ़ेहुए शास्त्रको नित्य विचार करके

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विनापढे ग्रन्थको अपनी बुद्धिसे लगावे । जो स्थल आपसे न लगे उसको भी गुरू से अर्थ पूछलीया करे । और अपने पढ़े में जो भ्रम होवे उसको भी गुरू से पूछ लीया करे । इसप्रकार करनेस शिष्यकी अर्थमें प्रवीणता होती है । तथा गुरू जहां कहीं सभामें जावे तहां शिष्यको संग लेजावे, उस सभामें जो पण्डित हैं उन के साथ शिष्यका शास्त्रार्थ करावे, जहां कहीं शिष्य घबरावे उसीजगह सावधान करता रहे, पीछे जब अपने घरमें आवे तब शिष्यसे कहे कि देख तैनें अमुकस्थान मैं अशुद्ध बोला सो ऐसा नहीं ऐसा है । और अमुककी टीका अच्छा प्रतिपादन करा, परन्तु उसमें यह बात तुमको कहनी और भी चाहिये, और देखो तुम्हारे प्रतिपक्षीने अमुक बात कैसी उत्तमताके साथ कही और अमुक स्थानमें वो चूका था परन्तु तुमने नहीं जाना । इसप्रकार शिष्यको शिक्षा देनसे शिष्य बोलने चालनेमें प्रगल्भ (ढीट) होता है । बोलनेका प्रकार चरक ग्रन्थके विमानस्थानकी अष्टम अध्यायमें लिखा है सो देखलेना । इसी प्रकार जो रोगी आवे उसकी नाडी प्रथम गुरू आपदेखे, पीछे शिष्यको दिखावे, और उस शिष्यसे पूछे कि इसकी कौनदोषकी नाडी है, जब वो कहे अमुक दोषकी है, तब उससे पूछे किसप्रकार यदि वो उसकी चालका वर्णन ठीक ठीक करे तो कहे ठीक है।और यदि वो कुछकाकुछ कहे तो उसको समझाय देवे, इसीप्रकार मूत्रपरीक्षा, नेत्र परीक्षा, मलपरीक्षा और निदान आदिको गुरू आपकरे। और शिष्यको बताया करे, तथा तैल बनाना, रसों का बनाना, इनमें भी औषध, जल, तेल, आदिका अनुमान गुरू शिष्यको बतावे । तथा भट्ठीका बनाना, वकआदि यंत्रोंका बनाना, कच्ची पक्की धातुकी परीक्षा, मणियोंकी परीक्षा, इत्यादि सर्ववस्तू गुरू शिष्यको बतावे । इसप्रकार सिखानेसे शिष्य सर्व कर्ममें प्रवीण होता है ।

एतदवश्यमध्येयमधीत्यचकर्माप्यवश्यमुपासितव्य
मुभयज्ञोहिभिषग्राजार्होभवति ।

अर्थ–यह आयुर्वेद शास्त्र अवश्य पठितव्य है । और पढ़कर इसके कर्मोंको अवश्य सीखे क्योंकि शास्त्र और शास्त्रकी क्रिया दोनों का जाननेवाला वैद्य राजाओंके योग्य होता है । यथा ।

यस्तुकेवलशास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः ।
समुह्यत्यातुरम्प्राप्यप्राप्यभीरुरिवाऽऽहवम् ॥

अर्थ–जो वैद्य केवल शास्त्रका ज्ञाता हो, अर्थात् केवल शास्त्रको पढ़ाहो और कर्म

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(कर्त्तव्यता) में मूढ़ हो अर्थात् क्रिया न जानताहो वह रोगीको देखके घबड़ाता-है, जैसे संग्रामको देख कायर पुरुष डरै है।

यस्तुकर्म्मसुनिष्णातोधाष्ट्र्याच्छास्त्रबहिष्कृतः ॥
ससत्सुपूजांनाप्नोतिवधंचार्हतिराजतः ॥

अर्थ–जो वैद्य कर्ममें निष्णात अर्थात् क्रिया करनेमें कुशल हो, परन्तु शास्त्र न पढ़ाहो, और ढीठता पूर्वक वैद्य बने, वह श्रेष्ठ पुरुषोंमें सत्कार नहीं पाता है। और राजा से वधको प्राप्तहोता है । अर्थात् राजाको चाहिये कि ऐसे ढीठ वैद्योंको प्राणान्त दण्ड देवें *

उभावेतावनिपुणावसमर्थौस्वकर्माणि । अर्द्धवेदधरावेतावेक पक्षाविवद्विजौ ॥ औषध्योऽमृतकल्पास्तुशस्त्राशनिविषो पमाः । भवन्त्यज्ञैरुपहृतास्तस्मादेतौविवर्जयेत् ॥

अर्थ–इन दोनों अर्थात् न शास्त्रमें कुशल, और न क्रियामें कुशल, ऐसा वैद्य वैद्यविद्याके करनेमें असमर्थ जानना । ए दोनों (शास्त्र पढ़ा और क्रियाओंका जाननेवाला) अर्द्ध आयुर्वेदके धारण करनेवाला इनकी गति नहीं, जैसे एक पंखवाला पक्षी कुछ कामका नहीं, उसी प्रकार ये दोनों वैद्य जानने, अमृत तुल्य-भी औषध मूढ़वैद्यकी संग्रह करीहुई, शस्त्रकी अनी और विषके तुल्य होतीहै, इसीसे ए दोनों (केवल शास्त्रका ज्ञाता और केवल क्रियाकुशल वैद्य) वर्जित कहे हैं, अर्थात् जो औषधोंके गुणको तो शास्त्रद्वारा जानता है, आर उनके रूपको न जाने तथा औषध के रूपको तो जानता हो और उनके संयोगविधि तथा गुणको न जाने वे दोनों औषधके लेने देनेमें वर्जित हैं ।

छेद्यादिष्वनभिज्ञो यः स्नेहादिषु च कर्मसु । सनिहन्तिजनंलो भात्कुवैद्योनृपदोषतः ॥ यस्तूभयज्ञोमतिमान्ससमर्थोऽर्थ साधने । आहवेकर्मनिर्वोढुंद्विचक्रः स्यन्दनोयथा ॥

अर्थ–जो वैद्य छेद्यादि (छेद्य, भेद्य विस्राव्य आदि) और स्नेहादि (स्नेहन, रोपण, वमन, विरेचन आदि) कर्ममें मूर्ख है अर्थात् छेद्य कर्मोंमें स्नेहादि कर्म करे । और स्नेहादि कर्ममें छेद्यआदि कर्म करतेहैं । वे खोटे वैद्य राजाके दोषसे

---

* न मालुम हमारे इस देश में ऐसे अधर्मी वैद्योंकी अपेक्षा अंग्रेज बहादुरोंने क्यों कर रक्खी है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लोभवश हो मनुष्योंको मारते हैं। और जो शास्त्र और क्रिया दोनोंको जानते हैं वो बुद्धिवान् वैद्य प्रयोजन (आरोग्य) करनेमें समर्थहैं। जैसे संग्राममें दो पहिये का रथ कर्मसाधकहोता है।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरस्य पूर्वखंडे अध्ययनसम्प्रदानीयाध्यायकथनं नाम तृतीयस्तरङ्गः ॥ ३ ॥

अथातःप्रभाषणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ–गुरू कहते हैं कि हे वत्स ! पढ़ेहुए शास्त्रका फिर कहना उसको प्रभाषण कहते हैं वह प्रभाषण है जिस अध्यायमें उसकी हम व्याख्या करेंगे।

॥ प्रभाषणका प्रजोजन दिखाते हैं ॥

अधिगतमप्यध्ययनमप्रभाषितमर्थतः खरस्यचन्दनभारवाहइवकेवलंपरिश्रमकरंभवति ॥

अर्थ–पढाहुआ भी शास्त्र अर्थद्वारा करके अप्रभाषित होवे, अर्थात् जो ग्रंथपढ़ हुआ है परन्तु विना अर्थके जाने वह केवल परिश्रम कारी है। जैसे गधेके ऊपर चन्दन का वोझा केवल भार देनेवाला होता है।

यथाखरश्चन्दनभारवाहीभारस्यवेत्तानतुचन्दस्य । एवंहि शास्त्राणिबहून्यधीत्यचार्थेषुमूढाः खरवद्वहंति ॥

अर्थ–जैसे चन्दनके भारका वहनेवाला गद्धा, केवल भार(बोझा)कोजानता है। उस चन्दनके सुगन्धादि गुणोंको नहीं जाने, इसी प्रकार बहुतसे शास्त्रोंको भी पढ़ा, परन्तु उनशास्त्रोंके प्रयोजनोंको न जाना वह गधेके सदृश शास्त्रोंका बोझा धारण करनेवाला है। अर्थात् उसको शास्त्रज्ञाता नहीं कहना।

तस्मादायुर्वेदशास्त्रंविविदिषुणाह्यनुपदपादश्लोकार्द्धश्लोकमनुवर्णयितव्यमनुश्रोतव्यञ्च।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–इसीसे आयुर्वेद शास्त्रका जाननेवाला, चौंथाई चौंथाई श्लोक आधा आधाश्लोक । एक एक श्लोक । गुरूको शिष्यके प्रति भले प्रकार कहना चाहिये । और शिष्यको सावधान चित्तसे सुनना चाहिये । अथवा गुरूकहै और उसी प्रकार शिष्यसे सुने इसजगे (अनु) शब्द वीप्सा वाचक है ।

कस्मात्सूक्ष्माहि द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकदोषधातुमलाशयम र्म्मसिरास्नायुसन्ध्यऽस्थिगर्भसम्भवद्रव्यसमूहविभागास्तथा प्रनष्टशल्योद्धरणव्रणविनिश्चयभग्नविकल्पाः साध्ययाप्यप्रत्याख्येयताच । विकाराणामेवमादयश्चाऽन्येविशेषाः सहस्रशोयेविचिन्त्यमानाविमलविपुलबुद्धेरपिबुद्धिमाकुलीकुर्य्युः किंपुनरल्पबुद्धेः । तस्मादवश्यमनुपदपादश्लोकार्धश्लोकमनुवर्णयितव्यमनुश्रोतव्यञ्च ।

अर्थ–क्योंकि द्रव्य (स्थावरादि) रस (मधुरा दि) गुण (गुरु लघु आदि) वीर्य्य (शीतोष्णादि) विपाक (कटु मधुरादि , दोष (वात पित्तादि) धातु (रस रक्तादि) मल (दोष, मलमूत्रादि) आशय (शारीरोक्त ७) मर्म (१०७) शिरा (७००) नाडी (९००) सन्धि (२१०) हड्डी (३००) तथा गर्भसम्भव द्रव्य (शुक्र शोणितादि) द्रव्यादि विभागके समूह बहुत सूक्ष्म हैं । यह सूक्ष्म शब्द द्रव्य रस आदि प्रत्येकके साथ लगे हैं । तथा प्रनष्ट शल्य (त्वचा आदिमें चुभाहुआ) व्रण विनिश्चय (वातादिभेदसैं १६ प्रकारका) भग्न (दो प्रकारका) इत्यादि विकल्प (भेद) और साध्य याप्य (चकार जो है उससैं सुसाध्य और कृच्छ्रसाध्य , इत्यादिनाम हैं जिन्होंके, इसी प्रकार औरभी बहुत पदार्थ हैं । (जैसैं आठ प्रकरके शस्त्र कर्मोंकी विधि) आदि हजारों प्रकार के हैं । जिनको गुरूसैं विचारभी करे परन्तु विमल और अतितीव्र बुद्धिवान् मनुष्योंकी बुद्धि उन्के विचारमें (गुरूके विना) अतिशय करके व्याकुल होती है अर्थात् द्रव्यादिविभाग ऐसैं सूक्ष्महै कि बडे बडे पण्डितोंकीभी समझमें नहीं आवै । फिर अल्पज्ञ अर्थात् थोड़ीबुद्धिवाले हैं उन्होंका तो क्या कहना है?कोई आचार्य ऐसा अर्थ करता है, कि हजारों वार सुनकर चिंतवनभी करे, परन्तु उन्कोभी नहीं आवे । और जिन्होंने कभी नहीं सुना उन्का तो क्याही कहना है ? इसी कारण इस आयुर्वेदशास्त्रको पद पद, पाद पाद, आधा आधा श्लोक, एक एक श्लोकके क्रमसैं अवश्य गुरू शिष्यके प्रति कहे, और शिष्यसैं फिर सुने ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अन्यशास्त्रविषयोपपन्नानांचार्थानामिहोपनिपतितानामर्थव
शात्तेषांतद्विद्येभ्य एवव्याख्यानमनुश्रोतव्यम् । कस्मान्नह्येक
स्मिन्शास्त्रेशक्यःसर्वशास्त्राणामवरोधकर्तुम् ।

अर्थ–अन्य शास्त्रोंके विषय, प्रयोजन वससैं इस आयुर्वेद शास्त्रमें जो आवे, उन्को उन्के मुख्य शास्त्रोंसैं जाने (अर्थात् जैसैं दोषशब्द दुष् वैकृत्ये धातुसैं सिद्ध होता है । तों इस्को व्याकरणसैं जाने । पदार्थोंका वर्णन और तर्कविषय न्यायशास्त्रसैं जाने । ज्योतिषका प्रकरण ज्योतिषसैं । इत्यादि जानने चाहिये) क्योंकि सर्व शास्त्रोंका विषय एकही शास्त्रमें नहीं आ सके है, जैसैं लिखा है ।

एकंशास्त्रमधीयानोनविद्याच्छास्त्रनिश्चयम् ।
तस्माद्बहुश्रुतः शास्त्रंविजानीयाच्चिकित्सकः ॥

अर्थ–एक शास्त्रका पढनेवाला वैद्य, उस शास्त्रके यथार्थ सार पदार्थको नहीं जान सके । इसी कारण बहुश्रुत अर्थात् जिसने बहुत शास्त्र सुने हैं वह शास्त्रोंका यथार्थ प्रयोजनको जानेगा । परन्तु ग्रन्थके पढे विना केवल बहुश्रुत वैद्य नहीं हो सक्ता । इस लिये वैद्यको उचित है कि- सर्व शास्त्रोंके विषयोंको सुनता रहे । और पढनेभी चाहिये ।

विना पढे वैद्यकी निंदा ॥

शास्त्रंगुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्यचासकृत् ।
यःकर्मकुरुतेवैद्यःसवैद्योऽन्येतुतस्कराः ॥

अर्थ–जो वैद्य गुरुमुखसैं शास्त्रको पढ, और पाठ तथा अर्थको बारम्बार विचारके चिकित्सा करता है, वोही वैद्य है, और तो चोर है । अर्थात् विना गुरुमुख पढे और विचारे कदाचित् वैद्य न बने, क्योंकि वह विद्या फलीभूत नहीं होती । जैसैं लिखा है ।

विद्यांग्रहीतुमिच्छन्तिचौर्य्यच्छद्मबलादिना ।
नतेषांसिध्यतेकिंचिन्मणिमंत्रौषधादिकम् ॥

अर्थ–जो विद्या चोरीसैं, कपटसैं अथवा जबरदस्तीसैं लेना चाहे उन्की मणिपरीक्षा, मंत्रविद्या और औषध, आदिशब्दसै ज्योतिष, धर्मशास्त्र, आदिकी सिद्धि नहीं होवे, इसीसै गुरुमुखसै पढा शास्त्र फलीभूत होता है ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे प्रभाषणीयाध्याय-
कथनं नामचतुर्थतरङ्गः ॥ ४ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म् ॥

॥ श्रीशंवन्दे ॥

श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः।

अथ शारीरस्थानमारभ्यते ॥

तहां प्रथमशारीरज्ञानका प्रयोजन कहते है

दोषधातुमलादीनामाधारस्तुवपुर्यतः।
तत्सरूपमतोज्ञातुं शारीरं प्राङ्निरूप्यते ॥

अर्थ–वातादि दोष, रसरक्तादि धातु, तथा धातुओंके मल और आदिशब्दसै मल, मूत्र, नाडी हड्डी आदि जानने। इन सबका आधार शरीर है, उस शरीरके स्वरूप जाननेके अर्थ प्रथम शारीरका निरूपण करते हैं।

शिष्य–शारीर किस्को कहते हैं?।

गुरु–शारीर उस विद्याको कहते हैं, जिस्में देहके प्रत्येक अङ्ग और उपांग आदिका वर्णन है।

जैसे ग्रन्थान्तरमें लिखा है।

अङ्गप्रत्यङ्गजीवाऽऽशयधमनिशिरास्नायुभिः कण्डराभिः।
पेश्यस्थित्वक्कलाभिर्निजमलसहितैर्धातुभिः सन्धिभिश्च ॥
वातैः पित्तैर्बलासैः प्रकृतिभिरखिलैर्मर्मरन्ध्रोपधातुः।
स्रोतःश्रेणीगुणैरप्यमलतरधियः साभिशारीरमाहुः ॥

अर्थ–अङ्ग, प्रत्यङ्ग, जीव, आशय, धमनी, नस, नाडी, कंडरा, पेसी, हड्डी, त्वचा, कला और इन्होंके मल, रस, रुधिर, मांस, मेदा, मज्जा, शुक्र, सान्ध, वातपित्त, कफ, प्रकृति, मर्म, छिद्र, उपधातु, स्रोतोंकी (इन्द्रियोंकी) श्रेणी, इन सबके वर्णनको उत्तम बुद्धिवाले पुरुष शारीर कहते है।

शिष्य–शारीर विद्याके जाननेसै और क्या प्रयोजन हैं?।

गुरु–हे पुत्र! निज और आगंतुज रोगोंका आधार यही देह है। इसीसै इस

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देहके रक्षार्थ अनेक महर्षियोंने हेतु, लिङ्ग और औषधवान् त्रिस्कंधवाले इस आयुर्वेदके अनेक ग्रन्थ रचे है। उन ग्रन्थोंके द्वारा चिकित्सा करके देहकी अवश्य रक्षा कर्त्तव्य है। क्योंकि धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका दाता यही देह है।

परन्तु वैद्यको लिखा है कि प्रथम निदानपूर्वरूपादिद्वारा रोगका निश्चय करके फिर चिकित्सा करनी चाहिये। परन्तु उसमेंभी विना शारीरक जाने वैद्यको चिकित्सा करनेका अधिकार नहीं है।

अर्थात् जब तक इस बातको वैद्य भले प्रकार न जानलेवे कि, यह शरीर कौन कौन वस्तुओंसे बना है, और कैसें बना है, तथा कौन कौनसी हड्डी, नाड़ी, नस, आशय आदि देहके किस किस विभागोंमें हैं। और वो कितने हैं। तथा वे कौन कारणोंसे बिगड़ते है। और उन्के सुधारनेकी क्या रीति है। तब तक चिकित्सा करनेका अधिकारी नहीं है।

जैसे बृहद्योगतरंगिणीमें लिखा है।

यः शारीरमविज्ञायशस्त्रक्षाराग्निकर्मसु।
प्रवर्त्ततेसोस्खलतिवर्त्मनीवगतेक्षणः॥

अर्थ– जो वैद्य शारीर विद्याके ज्ञान विना शस्त्रकर्म (चीरना फाड़ना) क्षारकर्म और अग्निकर्म (दागना आदि) करता है उसकी चिकित्सा निष्फल होती है। जैसे अंधे मनुष्यका रस्ता चलना। अर्थात् जैसे विना जानीहुई रस्तेमें चलनेवाला अंधा ठोपर खाता है और गिरता है उसी प्रकार विना शारीरकके जाने वैद्य अंधेके समान चिकित्सारूप मार्गमें ठोपर खाता है और गिरता है। ऐसा वैद्य राजा कर्के दंड्य है। जैसे ग्रन्थान्तरमें लिखा है।

परिचितआयुर्वेदस्त्रिस्कन्धोयेननैवशारीरम्।
हन्यात्तमाशुनृपतिर्देशान्निःसारयेत्स्वकीयाद्वा॥

अर्थ–जिस वैद्यनें त्रिस्कन्धवान् आयुर्वेद तो पढा परन्तु उपेक्षापूर्वक उसमेंसे शारीरकको न पढ़ा ऐसे वैद्यको राजा फांसी आदिसे शीघ्र मारडाले और ब्राह्मणआदिको अपने राज्यसे निकाल देवे।

शिष्य–अब आप शारीरकका वर्णन करो।

गुरु– अब तुमसे हम सुश्रुतोक्त दश अध्यायोंसे शारीरकका वर्णन करते हैं और जो वार्त्ता सुश्रुतसे विशेष हैं वो ग्रन्थान्तरसे कहैंगे तहां प्रथम सर्वभूतचिंताशारीराध्यायको कहते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथातः सर्वभूतचिन्ताशारीरं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–ग्रन्थके प्रारम्भमें मंगलाचरण होता है, ऐसा शिष्टाचार चला आता है-इसीसे अथशब्दके प्रयोगसे मंगलाचरण करके स्थ वर जंगम आदि भूतोंकी अथवा पृथ्वी तेजआदि महाभूतोंकी चिंताका प्रतिपादन इसग्रन्थमें करतहैं । अर्थात् ए कैसें उत्पन्न हुए और इन्होंके कौनसे लक्षण हैं तथा इन्होंके कौनसे कार्य हैं ऐसा विचार इस ग्रन्थमें प्रतिपादन करा है, इसीसे हस ग्रन्थको सर्वभूतचिन्ता कहते हैं । फिर उसको शरीरके अधिकार (प्रधानता) करके किया इसीसे उसको शारीर कहते हैं, उस शारीरका व्याख्यान करते हैं [गयी] आचार्य [अथातः सर्वभूतचिंता नाम शारीरम्] ऐसा पाठ कहताहै ।

एतस्यनिबन्धस्यफलंचिकित्सा । चिकित्सापुरुषस्य । पुरुषस्तुचतुर्विंशतितत्त्वजीवात्मसमवायस्तस्माच्चातुर्विंशतितत्त्वानांजीवात्मनश्चस्वरूपनिरूपणायसृष्टिक्रममाह ॥

अर्थ–इस निबन्ध (ग्रन्थ) का फल चिकित्सा है । वह चिकित्सा पुरुषका करा जाता है । सो पुरुष चौवीस तत्व और जीवात्माके एकत्र होनेको कहतेहैं, इसीसे चौवीस तत्वों*के और जीवात्माके स्वरूप निरूपणार्थ सृष्टिक्रम कहते हैं ।

परमात्माका रूप ।

आत्माज्योतिश्चिदानन्दरूपोनित्यश्चनिःस्पृहः ।
निर्गुणः प्रकृतेर्योगात्सगुणःकुरुतेजगत् ॥

अर्थ–आत्मा जो है सो स्वयंज्योति चिदानन्दस्वरूप इच्छा रहित और निर्गुण है । वह अपनी मायाके संयोगसे इच्छादियुक्त होकर इस जगत्को उत्पन्न करै है । आत्मा और परमात्मा उसी ईश्वरके नामभेद हैं ।

सत्वंरजस्तमश्चेतिगुणास्तेप्रकृतेःसमाः ।
साजडापिजगत्कर्त्रीपरमात्मचिदन्वयात् ॥

अर्थ–सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण, ए तीनगुण मायाके हैं । और सम हैं ।

---

* (पांचज्ञानेन्द्रि) नेत्र नाक कान जीभ और त्वचा (पांच कर्मेन्द्रि) हाथ पैर वाणी लिंग और गुदा (पंचमहाभूत) पृथ्वी तेज वायु जल आकाश (चार अन्तःकरण) मन बुद्धि चित्त अहंकार (पांचसूक्ष्म) शब्दः स्पर्श रूप रस गंध ए चौवीस तत्व कहते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Açademy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वह माया जड़भी है परन्तु परमात्मारूपी चैतन्यके संबन्धसे जगत्को उत्पन्न करती है । सत्का प्रकाशक सतोगुण कहाता है । और वह सत्व प्रकाशकर्त्ता ज्ञानरूप और सुखका कारणरूप है । रज जो है सो रागात्मक है, और दुःखका कारण है । जिस्सें मनुष्य ग्लानिको प्राप्तहो वह तमोगुण कहाता है । वह तमोगुण बुद्धिका आच्छादन करताहै, और मोह होनेका कारण है । वे गुण समहैं, अर्थात् प्रकृतिरूप हैं उसी प्रकार न्यूनाधिक होनेसे विकृति कहाते हैं ।

अब सुश्रुतको उपदेश करते हुए धन्वन्तरि प्रकृतिके स्वरूप-विशेषको कहते हैं ।

सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः संभवहेतुरव्यक्तं नाम ।

अर्थ-अव्यक्त कहिये मूलप्रकृति सर्वभूतोंका कारण होकर स्वयं अकारण है । तथा कार्य कारण नहीं है अर्थात् अविकृत है । तथा स्वतंत्र सत्व रज तम रूप होकर अव्यक्त, महान्, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रा ऐसे आठरूपवाली है । तथा सर्व स्थावर जंगमात्मक जगत्के प्रगट होनेका कारण है । इसके कहनेसे कार्य और कारणकी तादात्म्यता दिखाई । जैसे गुडके गणपतीका गुड़ही नैवेद्य उसीप्रकार अव्यक्त होकर व्यक्तका कारण । कोई आचार्य, अव्यक्त महान् अहंकार और पंच महाभूत ए मूलप्रकृतिके आठ रूप कहते हैं । कोई धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य, आठ रूप कहते हैं । कोई मन, बुद्धि, अहंकार और महाभूत ए प्रकृतिके आठ रूप हैं । ऐसा कहते हैं।

तदेकंबहूनांक्षेत्रज्ञानामधिष्ठानसमुद्रइवौदकानांभावानाम् ।

अर्थ-वह अव्यक्त, अविवेच्यावयव होकर सर्व कर्म जीवोंका आश्रय है । जैसे समुद्र, सर्व (नदी, नद, सरोवर, तलाव आदि) जलोंका आधार है । कोई आचाय [औदकानां भावानाम्] इस पदका अर्थ चराचर मत्स्य पद्मादिक ऐसा करते हैं ।

शिष्य-एक अव्यक्त अनेकधर्मवाले पुरुषोंका कैसे कारण है ?

गुरु-हे प्रियवर ! अब हम सर्वभूतोंकी उत्पत्ति कहते हैं ।

अव्यक्तसे सर्वभूतोंकी उत्पत्ति ।

तस्मादव्यक्तान्महानुत्पद्यतेतल्लिङ्गकएव ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–तस्मात् कहिये, आत्माके प्रतिबिंबित जो अव्यक्त तिसमें सत्व, रज,तम, स्वभावात्मक, महत्तत्त्व उत्पन्न होता है ।

तल्लिङ्गान्ममहतस्तल्लिङ्गकएवाऽहङ्कारउत्पद्यते ।

अर्थ–शुद्ध सतोगुणरूप महत्तत्वसे सत्व, रज, तमोगुणात्मक, अहंकार उत्पन्न होता है * यह चरकमें लिखा है ।

अहङ्कारको त्रिविधत्व कहते हैं ।

सचत्रिविधोवैकारिकस्तैजसोभूतादिरिति ।

अर्थ-[यहां वैकारिकादि] संज्ञा पूर्वाचार्योंने व्यवहारके अर्थ करीहै अर्थात् वो अहंकार, सात्विक, राजस और तामस ऐसे तीन प्रकारका है । तहां वैकारिक (सात्विक) तैजस (राजस) और भूतादि (तामस) जानना ।

अहङ्कारके कार्य्य कहते हैं ।

तत्रवैकारिकादहंकारात्तल्लक्षणान्येवैकादशेन्द्रियाण्युत्पद्यन्ते ।

अर्थ–राजस सहाय, तथा तामस गुणांशाभियुक्त, सात्विक अहंकारसे प्रकाश-लक्षणवाली एकादश इन्द्री उत्पन्न हुई ।

इन्द्रियोंके नाम ।

श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाग्हस्तोपस्थपायुपादमनांसीति । तत्रपूर्वाणिपञ्चबुद्धीन्द्रियाणि इतराणिपञ्चकर्मेन्द्रियाणि।उभयात्मकंमनः ॥

अर्थ–कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नाक, वाणी, हाथ, लिंग, गुदा, पैर, और मन, ये ११ इन्द्री हैं । तिनमें पहिली पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं, तथा पांच कर्मेन्द्रिय हैं । और उभयात्मक ग्यारहवां मन है । अर्थात् मनके विना दोनों प्रकारकी इन्द्रियोंका व्यवहार नहीं होता ।

पंचभूतोंसे तन्मात्रोत्पत्ति ।

भूतादेरपितैजससाहाय्यात्तल्लक्षणान्येवपञ्चतन्मात्राण्युत्पद्यन्ते ।

---

* शुद्धसत्वस्ययाशुद्धासत्यांबुद्धिः प्रवर्त्तते । ययाभिनत्त्यतिबलंमहामोहमयं तमः ॥ सर्वभावस्वभावज्ञोयथाभवतीनिस्पृहः । ययानोपैत्यहङ्कारंनोपास्तेकरणंयया ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–राजस सहाय, सत्वांशयुक्त तामस अहंकारसे मोहलक्षणवाली पंचतन्मात्रा उत्पन्न होती है । अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये विषय हैं ।

तद्यथा । शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्रमिति ।

अर्थ–जैसे शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा, और गन्धतन्मात्रा ।

विषय कहते हैं ।

तेषां विशेषाः शब्दस्पर्शरूपरसगंधाः ।

अर्थ–तिन तन्मात्राओंके विशेष कहिये अनुभवयोग्य जे दुःख सुख मोह तिनसै युक्त होवे, वे विशेष शब्दादिक ऐसे जानने, तहां अनुद्भूतस्वभाव ऐसी बाह्य इन्द्रियोंसै उन तन्मात्राओंको योगी ग्रहण करते हैं ।

तन्मात्राण्यविशेषाणि ।

अर्थ–वे तन्मात्रा अति सूक्ष्म है । अतएव अनुभवयोग्य जे सुखादिक धर्म तिनसै युक्त नहीं हो सके ।

भूतोंकी उत्पत्ति ।

तेभ्यो भूतानि व्योमाऽनिलाऽनलजलोर्व्यः ।

अर्थ–तिन शब्दादि तन्मात्राओंसै आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पंच महाभूत उत्पन्न हुए । उन्का प्रकार कहते हैं ।

उत्पत्तिप्रकार ।

एकोत्तरपरिवृद्ध्याशब्दादयउत्पद्यन्ते

अर्थ–तिन शब्द तन्मात्रादि पांचोंसैं एकोत्तरवृद्धिके क्रमसै शब्दादि गुणविशिष्ट आकाश आदि पंच महाभूत उत्पन्न होते हैं । जैसै शब्दतन्मात्रासै शब्दगुणवाला आकाश प्रगट हुआ । और शब्दतन्मात्रासहित स्पर्शतन्मात्रासै शब्द, स्पर्शगुणवाला वायू (पवन) प्रगट हुआ । तथा शब्द, स्पर्श, तन्मात्रा सहित रूपतन्मात्रासै शब्दस्पर्शरूपगुणवान् तेज (अग्नि) प्रगट हुआ । तथा शब्द, स्पर्श, रूपतन्मात्रासहित रसतन्मात्रासै शब्द, स्पर्श, रूप, रसगुणवान् जल प्रगट हुआ । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तन्मात्रा सहित गंधतन्मात्रासै शब्द,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्पर्श, रूप, रस, गुणवान् पृथ्वी प्रगट हुई । [पतंजलि मुनिके मतानुसार शब्दादिकोंसेही आकाश आदिकी उत्पत्ति है] इस प्रकार शब्दादिकोंका आकाशादि महाभूतोंसे अभिन्नत्व सूचना कर उपसंहार कहते हैं ।

२४ तत्व तथा बुद्धीन्द्रियोंके विषय ।

एवमेषांतत्वचतुर्विंशतिर्व्याख्याता तत्रबुद्धीन्द्रियाणांशब्दादयोविषयाः ।

अर्थ–इस प्रकार इन तत्वोंकी समग्र चौवीस संख्या कही है । तिनमें श्रोत्रादि बुद्धीन्द्रियोंके शब्दादिक विषय जानने ।

कर्मेन्द्रियोंके विषय ।

कर्मेन्द्रियाणांयथासंख्यंवचनादानानन्दविसर्गविहरणानि ।

अर्थ–कर्मेन्द्रियोंके विषय, यथासंख्य अर्थात् यथाक्रमसे कहते हैं । वाणीका विषय भाषण, (बोलना) हाथोंका लेना देना, लिंगेन्द्रीका विषयानंद, गुदाका मलोत्सर्ग, पैरोंका गमन (चलना) ऐसे पांच विषय जानने । कहे हुए चौवीस तत्वोंके अन्य धर्म दिखाते हैं ।

८ प्रकृति व १६ विकार.

अव्यक्तंमहानअहङ्कारः पंचतन्मात्राणि चेत्यष्टौप्रकृतयःशेषाःषोडशविकाराः ।

अर्थ–अव्यक्त, महान्, अहंकार, पंचतन्मात्रा ए प्रकृति है । अर्थात् औरोंके कारणभूत है । अव्यक्त प्रथम कहआए है तथापि अव्यक्त प्रकृतिही है इसकी दृढ सूचनार्थ पुनः कहा है । [तन्मात्राणि चेति] इसमें जो चकार है उस्का [प्रकृतयः] इस पदसे संबन्ध है । इससे महदादिक सात प्रकृति होकर कार्यवान् विकृतभी होते है । महदादिकोंको अव्यक्त निरूपित होनेमें प्रकृतित्व और श्रोत्र दि षोडश विकारोंको विकारनिरूपित प्रकृतित्व जानना । [शेषाः] कहिये पंचमहाभूत तथा षोडशइन्द्री होनेसें ऐसे चौवीस तत्व हैं । तिनमें बुद्ध्यादिकोंको प्रकाशत्व करके प्रधानता है इसीसें जिनमें प्रकाश और जहां स्थितहोकर प्रकाश करते हैं तथा जिस्के अनुग्रहसे प्रकाश करते हैं तत्प्रकारत्रयोंको अधिभूतादि भेदों करके कहते हैं ।

स्वस्वश्चैषांविषयोऽधिभूतम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–[एषां] कहिये बुद्धि, अहंकार, मन, तथा श्रोत्रादि बुद्धीन्द्रिय और वाणी आदि, कर्मेन्द्रिय और मन इन्का स्वस्वविषय कहिये बुद्धिका विषय निश्चय अहंकारका विषय अभिमंतव्य, मनका संकल्प विकल्प और शब्दादिक विषय ए सर्व पंचमहाभूतोंमें स्वरूपसंबंध करके रहते हैं, अतएव इन्को अधिभूत कहते हैं। कोई आचार्य ऐसा पाठान्तर कहते हैं।

[स्वस्वएषांविषयोऽधिभूतम्)

अर्थ–बुद्धचादि त्रयोदशोंका जो स्वकीय विषय अर्थात् भोगसाधन उस्की अधिभूत संज्ञा जाननी।

अध्यात्म।

स्वयमध्यात्मम्।

अर्थ–ये बुद्धचादिक स्वतः अध्यात्म अर्थात् [आत्मनि अधि इत्यध्यात्मम्] आत्मशब्द इस जगे शरीरवाची है अर्थात् बुद्धचादिक शरीरका आश्रय करके रहते हैं। इसीसै अध्यात्म कहाते हैं।

अधिदैवत।

अधिदैवतञ्च। अथबुद्धेर्ब्रह्मा अहङ्कारस्येश्वरः मनसश्चन्द्रमाः दिशः श्रोत्रस्य त्वचो वायुः, सूर्य्यश्चक्षुषो रसनस्यापः, पृथिवी घ्राणस्य, वाचोग्निः, हस्तयोरिन्द्रः, पादयोर्विष्णुः, पायोर्मित्रं, प्रजापतिरुपस्थस्योति॥

अर्थ–देवताओंको इन्द्रियोंके अधिष्ठाता होनेसै अधिदैवत है। उन्को बुद्धचादिकोंमें प्रगट करते हैं। जो जो देवता विश्वरूप विष्णुके जिस जिस अवयव (अंग) सैं प्रगट हुआ, वही २ देवता उसी २ अंगका अधिदैवत हुआ। इस कहनेका कारण यह है कि, देवताओंके विना इन्द्रियोंका प्रकाश अर्थात् स्वस्वविषय ग्रहण नहीं होवे। अब उन देवताओंको कहते हैं। बुद्धिका ब्रह्मा, अहंकारका रुद्र, मनका चन्द्रमा, कानोंकी दिशा, त्वचाका पवन, नेत्रोंका सूर्य्य, जिह्वाका जल, नासिकाकी पृथ्वी, वाणीका अग्नि, हाथोंका इन्द्र, पैरोंका विष्णु, गुदाका मित्रदेवता, शिश्न-(लिंग) का प्रजापति अधिदैवत जानना।

श्रोत्रादिकोंको अध्यात्मादिस्वरूप।

यथाश्रोत्रमध्यात्मंश्रोतव्यमधिभूतंदिशोऽधिदैवतम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–श्रोत्रेन्द्रियका मांसगोलक जो कर्ण सो अध्यात्म, शब्द अधिभूत, दिशा अधिदैव । त्वचा अध्यात्म, स्पर्श अधिभूत, पवन अधिदैव । जिह्वा अध्यात्म, रस अधिभूत, जल अधिदैव । नेत्र अध्यात्म, रूप अधिभूत, सूर्य अधिदैव । नासिका अध्यात्म, गंध अधिभूत, पृथ्वी अधिदैव।इसी प्रकार वाणी, हाथ, लिंग, गुदा, पैर, बुद्धि, अहंकार और मन ए अध्यात्म हैं. इन्के भाषण, देना, लेना, विषयानंद, मलोत्सर्ग, गमन, निश्चय करना, अभिमान और मंतव्य ये अधिभूत हैं अर्थात् विषय हैं । और अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, मित्र, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, और चंद्रमा ये क्रमसैं वाणीआदिके अधिदैवत अर्थात् देवता हैं ।

पुरुषलक्षण ।

तत्रसर्वएवाचेतनएषवर्गःपुरुषः पञ्चविंशतितमः कार्य्यकारणसंयुक्तश्चेतयितासत्यप्यचैतन्येप्रधानस्य कैवल्यार्थप्रवृत्तिरुपदिशन्त्याचार्य्याः ॥

अर्थ–[सर्वएवैषवर्गः] कहिये अव्यक्तादि चतुर्विंशति तत्वोंका कारण अव्यक्त अचेतन है । इसीसैं उन्होंके कार्य्य जो महदादिक वेभी अचेतन जानने । इस्में दृष्टान्त जैसैं, सुवर्णके कटक कुंडलादि [पुरुषः पंचविंशतितमः] अर्थात् पुरुष पंचविंशतितत्ववान्, कार्य्यगण कहिये विकारगण महदादिक, और कारण कहिये मूलप्रकृति उस्के प्रतिबिंबित होकर उस्में चैतन्यता उत्पन्न करे हैं । वास्तवसैं परमात्मा निर्व्यापार, परन्तु लोहचुंबकके सान्निध्य करके जैसैं लोहमें चैतन्यता होती है । उसी प्रकार प्रकृति और महदादिकोंमें चेतना प्रगट होती है । पुरुषस्य] कहिये जीवोंके मोक्षार्थ [प्रधान] की अर्थात् मूलप्रकृतिकी आचार्य प्रवृत्ति मानते हैं । तात्पर्य यह है कि, पुरुष प्रकृतिसंयुक्त होनेसैं उस्के जो सत्वादि गुण तत्संबन्धी सुख दुःखादि भोग भोगता है । और उस्के न्हास होने (छूटने) सैं मुक्ति होती है । अचेतन कैसैं प्रवृत्त होता है इस्में उदाहरण दिखाते हैं ।

क्षीरादिश्चात्रउदाहरन्ति ।

अर्थ–जैसें दूध अचेतनभी होकर बछड़ाकी वृद्धिके विषयमें प्रवृत्ति होता है । [आदि] शब्द करके अन्य दृष्टान्त दिखाते हैं । जैसे, एकान्तमें परम सुंदर कामिनीके सुरत (क्रीड़ा) उत्सवमें सुखातिशयोत्पादनके अर्थ असंज्ञक (चेतनारहित) शुक्र प्रवृत्त होता है ।

प्रकृतिपुरुषका साधर्म्य कहते हैं ।

अतऊर्ध्वंप्रकृतिपुरुषयोःसाधर्म्यवैधर्म्यंव्याख्यास्यामः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–[अतऊर्ध्वं] कहिये तत्वनिरूपणानन्तर [प्रकृति] अव्यक्त और [पुरुष] आत्मा, इन्के [साधर्म्य] समान धर्म तथा (वैधर्म्य) विपरीत धर्म, उन्होंको [व्याख्यास्यामः] कहिये कहते हैं।

उभावप्यनादी उभावप्यनन्तौ उभावप्यलिङ्गौ उभावप्यनित्यौ उभावप्यनपरौ उभौचसर्वगताविति ॥

अर्थ–प्रकृति पुरुष समानधर्मवान् हैं इस प्रमाणसैं दोनों अनादि, व अनन्त, व अलिंग, तथा दोनों लयरहित, किसी कालमें नाश नहीं होते, तथा दोनों [अनपर] कहिये जिनसैं कोई परे नहीं तथा दोनों [सर्वगत] कहिये सर्वव्याप्त होकर स्थित। यह दोनोंके साधर्म्य कहिये अनादित्व धर्म, दोनोंके वीच समान रहते हैं ऐसैं जानना।

वैधर्म्य कहते हैं।

एकातुप्रकृतिरचेतनात्रिगुणाबीजधर्म्मिणी प्रसवधर्मिण्यमध्यस्थधर्मिणीचेति ॥

अर्थ–प्रकृति एक होकर, अचेतन, तथा त्रिगुणात्मक कहिये सत्वादिगुणत्रयकी समान अवस्थामें रहे हैं। तथा [बीजधर्मिणी] कहिये सर्व महदादि विकारोंकी बीजरूप रहे हैं। इसी सैं बीजधर्मिणी कहते हैं। "गयी आचार्य" इस प्रकार कहता है कि, प्रलयकालमें भूत, इन्द्री, तन्मात्रा, अहंकार, तथा महान् इत्यादिक प्रकृतिमें बीजरूप करके रहते हैं। इसीसैं उसको बीजधर्मिणी कहते हैं। तथा वही प्रकृति सृष्टि उत्पन्न करनेकी इच्छा करनेवाला परमात्मा प्रभूके साथ क्षोभको प्राप्त हो, समान अवस्थाको परित्याग कर तदनन्तर महदहंकारादिकके क्रम करके चराचर जगत्को प्रगट करे है, इसीसे प्रसवधर्मिणी कहते हैं। तथा (अमध्यस्थधर्मिणी) कहिये यह प्रकृति सत्वादिगुणोंकी राशि हैं, इसीसै सत्वादि स्वरूप सुख दुःखानुभव मध्यस्थको नहीं होवे। और इससै सुख दुःखानुभव होते हैं इसीसैं अमध्यस्थधर्मिणी कहते हैं।

जीवोंके लक्षण।

बहवस्तुपुरुषाश्चेतनावन्तोऽगुणाऽबीजधर्माणोऽप्रसवधर्माणोमध्यस्थधर्माणश्चेति ॥

अर्थ–(बहवः) कहिये, एक कालमें सबका मरण होना असंभव है इसीसैं पुरुष परमाणुओंके सदृश अनेक हैं। तथा चेतनायुक्त जानने। यदि पुरुष एकही

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

होता तो, एक मनुष्यके मरनेमें सर्व मनुष्य मर जावे, इस जगे (पूः) शब्द करके महदादिकोंका निर्मित सूक्ष्म शरीर, अर्थात् लिंग शरीर जानना । वह लिंग शरीर योगियोंकोही दीखता है । उस लिंग शरीरमें रहे उसको पुरुष कहते हैं । तथा वह पुरुष सत्वादि गुण रहित तथा वह पुरुष [अबीजधर्माणः] कहिये महाप्रलयमें जैसे महदादिक प्रकृतिके बीच रहते हैं । उस प्रकार पुरुषमें नहीं रहते इसीसे वह पुरुष अबीजधर्मक है । तथा [मध्यस्थधर्माणः] कहिये प्रीति, अप्रीति, विषाद, इनसे रहित है इसीसे इच्छा, द्वेषशून्य मध्यस्थके सदृश उदासीन है । अतएव मध्यस्थधर्मवान् पुरुष है ऐसे जानना । इस विषयमें सांख्यमत दिखाते हैं ।

तदुक्तंसांख्ये ।

तस्माद्विपर्य्ययात्सिद्धंसाक्षित्वमजस्यपुरुषस्य
कैवल्यंमाध्यस्थंद्रष्टृत्वमकर्तृभावश्चेति ॥

अर्थ- (तस्मात्) कहिये प्रकृतिके वैधर्म्यरूप विपरीततासें, परमात्माको साक्षित्व, मोक्षप्रदत्व, मध्यस्थत्व, द्रष्टृत्व, अकर्तृभाव, इत्यादिक सिद्ध हुए । अब कहेहुएको उपसंहार करते हैं ।

महत्तत्वको त्रिगुणात्मकत्व ।

तत्रकारणाऽनुरूपंकार्य्यमितिकृत्वासर्व
एवैतेविशेषाःसत्वरजस्तमोमयाभवन्ति॥

अर्थ-कारणके गुण कार्य्यमें नियम करके होते हैं । इसीसें प्रकृतिसें प्रगट भया जो महत्तत्व उसमें सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, ये तीन गुण हैं. प्रतिबिंबसंयुक्त जो पच्चीसवां पुरुष उसमेंभी सत्वादिक गुण हैं यह दिखाते हैं ।

पुरुषको त्रिगुणात्मकत्व कहते हैं ।

तदंजनत्वात्तन्मयत्वात्तद्गुणाएवपुरुषाभवन्तीत्येकेभाषन्ते ॥

अर्थ-पुरुषके सत्वादिक गुण प्रकाशकत्व तथा तन्मयत्व हैं, इसीसें वे सत्वादि गुण पुरुषके हैं । ऐसें कोई आचार्य कहते हैं । परन्तु सत्वादिरूप करके महत्तत्वादिकोंमें प्रतिबिंबित हुए इसीसें सत्वादिमय पुरुष ऐसे भासते हैं । जैसें तलाव सरोवरके जलमें जलके हिलनेसें सूर्य, चन्द्र, बिजली, आदिका प्रतिबिंबको हिलना कहते हैं । उसी प्रकार सत्वादिकोंमें प्रतिबिंबित पुरुष सत्वादिमय दीखते हैं । वास्तवसें सत्वादिमयत्व पुरुषको नहीं है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तादृशाश्चतन्मयत्वात्तल्लक्षणत्वेनतद्गुणाः
सुखिनोदुःखिनोमूढाश्चपुरुषाभवन्ति॥

अर्थ–उसी प्रकार पुरुष सत्वादि गुण होनेसै तन्मय है। इसीसैं सत्वादिकोंके परिणाम सुखी, अथवा दुःखी, मूढ ऐसा भासते है [गयी आचार्य] कहता है, कि सत्वादिकों करकें अंजन अर्थात् अभिव्यक्ति जिस्को ऐसा पुरुष है। सत्वादिकों करकें महदादिकोंकी अभिव्यक्ति कैसे होती है? इस लिये कहते हैं [तन्मयत्वात्] अर्थात् महदादिकोंकी कारण सत्वादिगुण राशि प्रकृति है। इसीसैं वे तन्मय जानने। निर्विकार पुरुषको तदंजनत्व कैसै है, इस्में दृष्टान्त देते हैं। जैसे स्फटिकमणिमें जपा (गुड़हर) पुष्पके समीप धरनेसैं लाली दीखती है। उसी प्रकार नीले, पीले, रंग वाले कांचकी फानूसमें दीपक धरनसैं उस फानूसके संबंधसै दीपकके नीले, पीले, रंग बाह्यदृष्टि करकें प्राप्त होते हैं। अथवा संध्याके समय जैसैं सूर्यकी किरणोंसै आकाश रंग जाता है, उसी प्रकार पुरुषमें सत्वादिगुण जानने। ये पूर्वोक्त सर्व एक मत दिखातेहुए अपने मतको कहते हैं। [वैद्यकेतु]

प्रकृतिको षड्विधत्व दिखाते हैं।

स्वभावमीश्वरंकालं यदृच्छांनियतिंतथा।
परिणामञ्चमन्यन्ते प्रकृतिंपृथुदर्शिनः॥

अर्थ–स्वभाव, ईश्वर, काल, यदृच्छा, नियति और परिणाम, ऐसैं दीर्घदर्शी प्रकृतिके छः भेद मानते हैं। तिन्में स्वभाववादी सर्व जगत्के उत्पन्न होनेका स्वभावही मानते हैं।

स्वाभाविक मत १।

कःकण्टकानांप्रकरोतितैक्ष्ण्यंविचित्रचित्रंमृगपक्षिणाञ्च॥
माधुर्य्यमिक्षौकटुतामरीचेस्वभावतःसर्वमिदंप्रवृत्तम्॥

अर्थ–कंटकको (कांटेन्) में तीक्ष्णता कौन करता है। पशु पक्षिओंको चित्रविचित्र कौन करता है। ईखमें मिठास और मीरचमें चरपरापना कौन करता है। यह सब धर्म स्वभावहीसैं प्रवृत्त हैं * ईश्वरवादी स्थावर, जंगम प्राणियोंको स्वर्ग नर्कका कारण ईश्वर मानता है। यथा–

ईश्वरमत २।

अज्ञोजन्तुरनीशोयमात्मनःसुखदुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितोगच्छेत्स्वर्गंनरकमेवच॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–अज्ञानी प्राणी अपने आत्माके सुख दुःखके दूर करनेको असमर्थ है। ईश्वरका प्रेरित स्वर्ग अथवा नर्कको जाता है । काल कारण वादी सर्व जगत्का कारण काल है ऐसा मानता है इस्में प्रमाण दिखाते हैं । जैसें ज्योतिर्वित् श्रीपति लिखता है ।

कालको ईश्वरत्व ३ ।

प्रभवविरतिमध्यज्ञानसन्ध्यानितान्तं
विदितपरमतत्वा यत्रतेयोगिनोऽपि ॥
तमहमिहनिमित्तं विश्वजन्माऽत्ययाना-
मनुमितमाभिवन्दे भग्रहैःकालमीशम् ॥

अर्थ–जिस कालरूपी ईश्वरके विषै, परमार्थवेत्ता ऐसै योगीभी उत्पत्ति, नाश और मध्य, इन्का जो ज्ञान उस कर्के रहित होते हैं । तथा विश्वके उत्पत्ति, पालन और नाशका हेतु तथा अश्विन्यादि नक्षत्र और सूर्यादि ग्रहों कर्के जिस्का अनुमान होता है, ऐसें कालरूपी ईश्वरको हम नमस्कार करते हैं ।

यादृच्छिकमत ४ ।

योयतोभवतितत्रानिमित्तामितियादृच्छिकाः ॥

अर्थ–जो जिस्सैं होता है, उसीमें उसका निमित्त होता है । ऐसैं यादृच्छिक मतावलंबी कहते हैं, इस्में दृष्टांत यथा [तृणारणिनिमित्तोवह्निरिति] जैसैं तृण-रूप अरणिसैं अग्नि उत्पन्न होकर उस अरणीको जलाता है ।

नियतिमत ५ ।

पूर्वजन्मार्जितधर्माधर्मौनियतिः ॥

अर्थ–पूर्वजन्मोपार्जित धर्म अधर्मही सर्व जगत्के कारण है । ऐसैं नियतिवादी कहते हैं ।

परिणामवादिमत ६ ।

प्रधानमेवमहदहङ्कारादिरूपतयापरिणतंसर्वस्य
निमित्तमितिपरिणामवादिनः ॥

अर्थ–प्रधानही महदहंकारादि रूप कर्के परिणाम पाते हैं । इसीसै वेही सबके कारण ऐसैं परिणामवादी कहते हैं । ये पूर्वोक्त सर्व मत स्वमतानुकूलही है । कारण यह है कि आयुर्वेद सर्व परिषदस्वरूप है । इसीसै सुश्रुताचार्यनेभी स्वभावादि भेदसै षड्विध प्रकृतिके उदाहरण कहे हैं । तिनमें स्वभावको कारणत्व कहते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्वभावमत।

अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तिः स्वभावादेवजायतेइति ॥

अर्थ–अंग और प्रत्यङ्ग इन्होंकी उत्पत्ति स्वभावसैंही होती है।

पुनश्च।

सन्निवेशःशरीराणां दन्तानांपतनोद्गमौ।
तलेष्वसम्भवोयच्च रोम्णामेतत्स्वभावतः ॥

अर्थ–सर्व शरीरके अवयवोंकी रचना, तथा दांतोंका गिरना और ऊगना, तथा हाथपैरोंकी हथेली, और तरुआ, इन्में केशों (बालों) की अनुत्पत्ति (न होना) यह सब स्वभावसैंही होता है।

पुनश्चोक्तम्।

धातुषुक्षीयमाणेषु वर्द्धतेद्वाविमौसदा।
स्वभावंप्रकृतिंकृत्वा नखकेशाविति स्थितिः ॥

अर्थ–धातुओंके क्षीण होनेपरभी दो वस्तु सदैव बढ़ती है। एक नख (नाखून) और दूसरे बाल, इस्मेंभी कारण स्वभावही है।

पुनरप्याह।

निद्राहेतुस्तमःसत्वं बोधनेहेतुरुच्यते।
स्वभावएववाहेतुर्गरीयान्परिकीर्त्तितः ॥

अर्थ–निद्राका कारण तमोगुण और जाग्रदवस्थाका कारण सतोगुण अथवा स्वभावही दोनों अवस्थाओंका कारण कहा है।

अन्यत्राऽप्युक्तम्।

स्वभावाल्लघवोमुद्गास्तथालावकपिञ्जलाः।
स्वभावाद्गुरवोमाषा वराहमहिषादयः ॥

अर्थ–जैसें मूंग, लवापक्षी और तीतरपक्षी, ये स्वभावसैंही हलके होतेहैं। और उरद, सुअरका मांसतथा भैंसा, आदि ऐं स्वभावसैंही भारी हैं। ईश्वर-भी अग्निरूप होकर जीवतादिकोंका कारण कहाहै।

अग्निको ईश्वरत्व तथा जीवत्व कहते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जाठरोभगवानग्निरीश्वरोन्नस्यपाचकः ॥ सौक्ष्म्याद्रसानाददा
नोविवेक्तुंनैवशक्यते ॥ अग्निमूलं बलंपुंसांबलमूलंचजीवितम्॥

अर्थ–स्वतंत्र तथा षड्गुणैश्वर्यसंपन्न ऐसा ईश्वर जठराग्नि होकर अन्नका परिपाक करे हैं। तथा रसोंका ग्रहण करे हैं। परंतु सूक्ष्म है इसीसैं दीखता नहीं। बलका मूल कारण अग्नि, तथा बलमूलक जीवित है ऐसैं जानना।

कालभी प्रकृतिहीका भेद है।

महाभूतविशेषास्तु शीतोष्णद्वयभेदतः । कालइत्यध्यव-
स्यन्ति न्यायमार्गाऽनुसारिणः ॥

अर्थ–शीत, उष्ण इन भेदों करकें, आकाशादि महाभूतविशेषोंका नैय्यायिक काल कहते हैं। वोह काल वातादिदोषोंके संचय, तथा प्रकोप और उपशम इन्होंके द्वारा हेतु हैं ऐसैं इसी सुश्रुतके सूत्रस्थानकी छटवी ऋतुचर्य्याध्यायमें कहा है।

यादृच्छिकमतका प्रमाण।

यदृच्छा पुनरलक्षितआकस्मिकःसर्वपदार्थाविर्भावः ॥

अर्थ–यदृच्छा कहिये अलक्षित होकर आकस्मिक ऐसा जो पदार्थका आविर्भाव उसैं यदृच्छा कहते हैं।

उक्तञ्च।

यदृच्छयाचोपगतानिपाकंपाकक्रमेणोपचरेद्विधिज्ञः ॥ इत्यादि।

अर्थ–सर्व वस्तु मात्र यदृच्छाकरकें परिणाम पाते हैं। इसीसैं विचारवान् पुरुषको उसी क्रम करकें आचरण करना चाहिये।

कर्मवादी मतका प्रमाण।

ब्रह्मस्त्रीसज्जनवतो परस्वहरणादिभिः ।
कर्माभिःपापरोगस्य प्राहुःकुष्ठस्यसम्भवम् ॥

अर्थ–ब्राह्मणकी स्त्रीमें गमन करनेसैं, तथा परद्रव्यहरण इत्यादि पापकर्मोंके करनेसैं, कुष्ठादिक रोग उत्पन्न होते हैं। इसीसैं कर्मही कारण है।

परिणामको हेतुत्व कहते हैं।

जाठराग्नेस्तुसंयोगाद्यद्ददेतिरसान्तरम् । रसानांप

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jaipur. Digitized by S3 Foundation USA

रिणामान्ते सविपाकइतिस्मृतः ॥ ताएवौषधयः कालपरिणामात्परिणतवीर्य्याभवंतिहेमन्तेभवन्त्या पश्चसम्यक्परिणतस्याहारस्यसारोरसः । एवंबालानामपि वयःपरिणामाच्छुक्रप्रादुर्भावोभवति ॥

अर्थ-जठराग्निके संयोग करके अन्नसें जो रसांतर उत्पन्न होता है। [रस कहिये उत्तम प्रकार जीर्ण हुआ आहारका सारांश] रसके परिणाम होनेसें उस्को विपाक कहते हैं। उसी प्रकार औषधिकालपरिणाम करके पूर्ण वीर्य होती है। जैसें हेमंत ऋतुमें उदक पूर्णवीर्य होते हैं। उसी प्रकार बालकोंके अवस्थाके परिणामकरके वीर्यप्रादुर्भाव होता है। इस प्रकार स्वभावादिकोंको प्रकृतित्व वैद्यशास्त्र संमत है। ऐसें दिखाया है इस प्रकार वैद्यकानुमत पूर्वोक्त प्रकृति दिखाई है। स्वभावादिक षट्पदार्थ अष्टरूपा प्रकृतिके पर्य्याय हैं। अथवा अन्य अर्थाभिधायित्व करके भिन्नार्थ है। यदि भिन्नार्थ है ? तो भिन्नार्थमेंभी दो भेद हैं। फिर भिन्नार्थ स्वभावादिकों करके क्या है। कुछ स्वभाव करके कुछ ईश्वर ऐसें मिलनेसें जगत्का आरंभ होता है। अथवा स्वभावादिक पृथक् २ ही विश्व प्रगट करनेमें समर्थ है, इस प्रकार अनेक विकल्प उत्पन्न होते हैं [जेज्जटाचार्यने] ईश्वरको त्याग स्वभावादिकोंको उस स्वरूप करके अवभास होनेसें अभिन्न प्रकृतित्व प्रतिपादन करा है।

प्रकृतिही कारण ऐसें स्वमत कहते हैं।

परमार्थतस्तुगुणत्रयात्मिकाप्रकृतिरेवकारणं यतःस्वभावादयश्चत्वारःप्रकृतिपरिणामस्य धर्मविशेषतयाप्रकृतावेवान्तर्भवन्ति।

अर्थ-वास्तव अर्थसें तो गुणत्रयात्मिका प्रकृतिही सर्व जगत्का कारण है। स्वभावादि चार प्रकृति परिणामके धर्मविशेष हैं। अर्थात् प्रकृतिमेंही इन्होंका अंतरभाव जानना।

स्वभावमतखण्डन।

स्वभावस्तावत्सत्वरजस्तमसांतद्विकाराणांपृथिव्यादिमहाभूतानाञ्चयादृशोविशेषइतिप्रकृतिपरिणामादन्योनभवति ॥

अर्थ-स्वभाव तो साकल्य करके सत्वादि गुण और उन्के विकार पृथिव्यादि पंचमहाभूत इन्का परिणामविशेष कहाता है। इसीसें स्वभाव प्रकृतिसे भिन्न नहीं है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नियतमतखण्डन ।

नियतेरपिपूर्वकृत्सदसत्कर्मरूपायारजोगुणपरिणामरू-पत्वेननप्रकृतेरन्यत्वम् ॥

अर्थ–नियति, पूर्वजन्मकृत जो शुभाऽशुभ कर्मके सदृश होता है, इसीसे रजोगुणके परिणाम रूप होनेसें वह नियति प्रकृतिसें भिन्न नहीं है ।

कालमतखण्डन ।

कालोपिचन्द्रार्कादिगतिःक्रियालक्षणः तथाचमहाभूता नांपरिणामविशेषाःशीतोष्णाभवन्ति ।

अर्थ–कालभी चन्द्र सूर्यादिक ग्रहों करके परिछिन्न इसीसें क्रियालक्षण तथा महाभूतोंके परिणामविशेष शीत, उष्ण, काल होता है इस्में पूर्वोक्त प्रमाण है । यथा " महाभूतविशेषास्तुशीतोष्णद्वयभेदतः । कालइत्यध्यवस्यन्तिन्यायमार्गाऽनुसारिणः" अर्थात् शीत उष्णके भेद करके जो महाभूतविशेष उसको नैयायिक काल कहते हैं ।

क्रियात्वेनरजोगुणपरिणामित्वान्महाभूतविशे-षत्वाच्चनकालस्यप्रकृतेरन्यत्वम् ।

अर्थ–कालको क्रियात्व है । अर्थात् रजोगुणका परिणाम काल और महाभूतोंका परिणामविशेष शीत उष्णादि काल, इसीसें प्रकृति भिन्नकाल नहीं है । ईश्वर, पच्चीसतत्वमय पुरुष और प्रकृतिका क्षोभक है । इसीसें उस्को कारण कहते हैं । यदृच्छाभी आकाशादि महाभूतोंका परिणामविशेष है । इसीसे प्रकृति भिन्न नहीं है ।

इस शास्त्रका सिद्धान्त ।

किञ्चास्मिन्शास्त्रेप्रकृतिपरिणामात्मकंविश्वंपठ्यते ॥

अर्थ–इस शास्त्रमें प्रकृतिपरिणामात्मक विश्व है, ऐसें कहा है ।

शरीर कहते हैं ।

सात्विकंकायलक्षणं राजसंकायलक्षणम् । तथासत्व बहुलमाकाशमित्यादि ।

अर्थ–काय कहिये शरीर, यह सतोगुणरजोगुणात्मक, तथा आकाश सत्वगुणप्रधान है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सर्वमतोंकी ऐक्यता।

तेचस्वभावादयःसमुच्चयेनजगदुत्पत्तौकारणभूताः। तत्रप्रकृतिपरिणामस्योपादानत्वंस्वभावादीनांपञ्चानांनिमित्तकारणत्वमिति।

अर्थ–वे स्वभावादिक सर्व मिलकर जगत् उत्पन्न करते हैं। परन्तु उनमें प्रकृतिपरिणाम उपादान कारण है और इतरस्वभावादिक पांच निमित्तकारण जानने।

तन्मयान्येवभूतानि तद्गुणान्येव चादिशेत्॥

अर्थ–आकाशादि पंचमहाभूत तन्मय है। अर्थात् अवकाश, घन, उष्ण, द्रव, स्वभावादि धर्मविशेष कर्के युक्त जो प्रकृतिपरिणाम उस कर्के वे पंचमहाभूत तन्मय होकर तद्गुणविशिष्ट है। क्योंकि सत्वबहुल आकाशयुक्तत्व ऐसें पूर्व कह आए हैं, गयीआचार्य (ततोजातानिभूतानि) ऐसा पाठ कहकर व्याख्या करता है कि, स्वभावादिक निमित्तकारण उनसें तथा प्रकृतिके परिणाम उपादान कारण उनसें हुए जो आकाशादि पंचमहाभूत वे कारण गुणात्मक है।

चिकित्सास्थानको दिखाते हैं।

तैश्चतल्लक्षणःकृत्स्नो भूतग्रामोव्यजन्यत। तस्योपयोगोभिहितश्चिकित्सांप्रतिसर्वदा। भूतेभ्योहिपरतस्मान्नास्तिचिन्ताचिकित्सिते॥

अर्थ–आकाशादिक भूतोंसें स्थावर, जंगम, पृथिव्यादिकोंके जो लक्षण स्थिर, गुरु, कठिनत्वादि तिन कर्के युक्त ऐसें अनेक प्रकारके भूतग्राम, प्रगट होते हैं। (तस्य) कहिये पंचमहाभूतारब्ध, तथा परस्परोपयोगी ऐसा भूतग्राम, उस्का प्रयोजन सर्व काल रोगनाश करनेके विषयमें कारण है। इसीसें [भूतेभ्यःपरम्] अर्थात् पंचमहाभूतारब्ध जो भूतग्राम तिनसें परे जे अव्यक्तादिक उनमें रोगापनयन विषयमें विचार नहीं है। जैसें प्रथमाध्यायमें लिखा है।

तत्रास्मिन्पञ्चमहाभूतशारीरसमवायःपुरुषइत्युच्यते। तस्मिन्पुरुषःप्रधानंतस्योपकरणमन्यत्॥

अर्थ–यहां पंचमहाभूतोंका जो शरीरसमवाय अर्थात् शुक्रशोणितका संयोगविशेष उस्को पुरुष ऐसें कहते हैं। उस पुरुष प्रकृतिका साधनभूतदेहमें चिकित्सा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

होता है । इसीसें देहसें परे जे अव्यक्तादिक तिनका चिकित्सामें प्रयोजन नहीं है । यह अर्थ अन्यत्रभी दिखाया है ।

यतोभिहितंतत्सम्भवद्द्रव्यसमूहोभूतादिरुक्तः ॥

अर्थ–इस सूत्रकी बीजाध्यायमें व्याख्या करी है । परन्तु यहांभी शिष्यबोधार्थ थोड़ासा व्याख्यान करते हैं । जिसकारण पुरुषके शुक्र शोणित संयोग करके पंचमहाभूत प्रधान स्थूलदेह वह भूतादि कहिये चिकित्साके उपयोगी हैं । इस मनुष्य देहसें व्यतिरिक्त अन्य देह उपयोगी नहीं है ।

वैद्यशास्त्रप्रतिपाद्य कहते हैं ।

भौतिकानिचेन्द्रियाण्यायुर्वेदेवर्ण्यन्ते । तथेन्द्रियार्थाः ।

अर्थ–भौतिक इन्द्री और इन्द्रियोंके अर्थ इस आयुर्वेदमें वर्णन करे जाते हैं । तहां श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन, घ्राण ये इन्द्री हैं । और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये इन्के अर्थ हैं ।

तथा चोक्तम् ।

पञ्चभूतात्मकत्वेपि । श्रोत्रेखंस्पर्शनेवायुर्दर्शनेतेज
उत्कटम् ॥ सलिलंरसनेभूमिर्घ्राणेतज्ज्ञैर्निरूपिता ॥

अर्थ–सर्व इंद्रियोंको पंचमहाभूतात्मकत्व यद्यपि है, तथापि कर्णइन्द्रीमें आकाश मुख्य, तथा त्वचामें पवन, नेत्रमें तेज, जीभमें जल और नाकमें पृथ्वी ये पंचभूत मुख्य हैं ।

विषयोंको पांचभौतिकत्व कहते हैं ।

शब्दोवैहायसःस्पर्शो वायवीयःप्रकीर्तितः ।
रूपमाग्नेयमाप्यस्तु रसोगन्धस्तुपार्थिवः ॥

अर्थ–शब्द आकाशसंबंधी, स्पर्श पवनसंबंधी, रूप तेजसंबंधी, रस जलसंबंधी और गंध पृथ्वीसंबंधी है, ए शब्दादिक पंचमहाभूतोंके विकार हैं । परंतु जिस महाभूतका जिस इन्द्रीमें अधिकता है, वोह शब्दादि गुण उसी इन्द्री करके ग्रहण कराजाय है । ऐसें दिखाते हैं ।

स्वविषयग्राहकत्व और अन्यनिषेध कहते हैं ।

इन्द्रियेणेन्द्रियार्थन्तु स्वंस्वंगृह्णातिमानवः ।
नियतंतुल्ययोनित्वान्नाऽन्येनाऽन्यमितिस्थितिः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–मनुष्य इन्द्रियों करकें तिसी तिसी विषयका ग्रहण करता है। जैसैं नेत्र नियम करकें रूपकोही ग्रहण करते हैं उसी प्रकार शब्दको कान, स्पर्शको त्वचा, रसकी जीभ, गंधको नासिका नियम पूर्वक ग्रहण करे हैं। इस विषयमें हेतु कहा है। [तुल्ययोनित्वात्] अर्थात् अपनी अपनी योनिके प्रति जाते हैं, जैसैं जल जलके प्रति जाता है। [नान्येनान्यम्] अर्थात् अन्य इन्द्रीसैं कारण भूतके विना दूसरा विषयका ग्रहण नहीं होवे।

अन्यसांख्यादिकोंसैंक्षेत्रज्ञकेविषयमेंआयुर्वेदकाभेदकहतेहैं।

नचायुर्वेदशास्त्रेषूपदिश्यन्तेसर्वगताः क्षेत्रज्ञाःकिंतर्ह्यायुर्वेदे असर्वगताःपुरुषाउपदिश्यंतेसत्वोपाधित्वात् ॥

अर्थ– आयुर्वेदशास्त्रमें सत्वोपाधि होनेसैं क्षेत्रज्ञको सर्वगत नहींमानते किंतु असर्वगत मानतेहैं। सांख्यादिशास्त्रोंमें क्षेत्रज्ञको सर्वगत मानते हैं। क्षेत्रज्ञ एकदेशीहै इसीसैं अनित्यता आई इससैं [नित्याश्चोपदिश्यन्तेइतिशेषः] अर्थात् पुरुष नित्य है ऐसैं मानते हैं।

नित्यत्व कैसैं सो दिखाते हैं।

असर्वगतेषुक्षेत्रज्ञेषुनित्येषुनित्यपुरुषव्यापकत्वाद्धेतूनुदाहरन्ति ॥

अर्थ–असर्वगत जो क्षेत्रज्ञ नित्य उसमें नित्यत्वप्रतिपादक ऐसैं सत्कारणत्वादिक हेतुओंको दिखाते हैं।

तथाहि। सन्नात्मासुखादिलिङ्गोपलम्भात् अविषयोकारणश्चअतोनित्यः।

अर्थ–आत्मा सत्तावान् कहिये भूत भविष्यत् वर्त्तमान् कालमें हैं इसका यह कारण है कि, उसको सुख दुःखादि लिंगोंका अनुभव होता है। इसीसैं अदृश्य होकर कारण है, अतएव नित्य है।

इस विषयमें भोजका वचन।

शुभाशुभाभ्यांकर्मभ्यां प्रेरणान्मनसोगतेः ॥ देहाद्देहांतरंयाति कृमिवच्छाश्वतोव्ययः ॥ नित्यइत्युच्यतेसद्भिः सन्नकारणवान्यतः ॥ इति।

अर्थ–शुभाऽशुभ कर्म करकें तथा मनकी गतिकी प्रेरणासैं यह जीव पहली देहसैं दूसरी देहमें जाता है। इसमें दृष्टान्त है। जैसैं, तिनकाकी गिनार दूसरे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तिनकाको पकड़ पहले तिनकाको छोड़ती है, उसीप्रकार पुरुष देहांतरको प्राप्त होता है । इसीसैं पुरुष शाश्वत, अव्यय नित्य और अकारण है, ऐसैं बुद्धिमान् कहते हैं ।

सर्वमतोंका उपसंहार ।

आयुर्वेदशास्त्रसिद्धान्तेषुअसर्वगताःक्षेत्रज्ञानित्याश्चेति ।

अर्थ–आयुर्वेदशास्त्रके सिद्धान्तमें पुरुष, असर्वगत, तथा नित्य ऐसा है । * असर्वगत जीवोंको सर्वयोनि गमन कहते हैं ।

तिर्य्यग्योनिमानुषदेवेषुसंसरन्तिधर्माऽधर्मनिमित्तम् ॥

अर्थ–तिर्यक् योनि, पशु पक्ष्यादिक तथा मनुष्य, देव, उन्होंमें पुरुष जन्म पाते हैं । उस विषयमें धर्म और अधर्म कारण है । परंतु तिर्यक् योनिमें बहुत जन्म होते हैं । इसीसैं सूत्रमें तिर्यक् पद प्रथम धरा है । तदनंतर मनुष्य धरा अर्थात् पाप पुण्य समान होनेसैं मनुष्यदेह मिलताहै । और पुण्यप्रधान देवदेह कमी किसीको मिलती है, इसीसैं देवशब्द मूलमें सबसे पिछाड़ी धरा है ।

इस विषयमें अनुमान ।

तेएतेऽनुमानग्राह्याःसुखदुःखोपलब्धिरूपेणालिङ्गेनाव्यभिचारिणा ।

अर्थ–वे आत्मा सुख दुःखोपलब्धिरूप लक्षणद्वारा अनुमान करके ग्रहण करे जाते हैं । आत्माके विना सुख दुःखका अनुभव नहीं होता है । जैसैं, धूँआसैं अग्निका अनुमान होता है । उसी प्रकार सुख दुःखोपलब्धि आत्मज्ञानका कारण होता है ।

प्रत्यक्षप्रमाणसैंक्षेत्रज्ञकैसैंनहींजानाजायसोकहतेहैं ।

परमसूक्ष्माश्चेतनावन्तः । शाश्वतलोहितरेतसःसन्निपातेषुअभिव्यज्यन्ते ।

अर्थ–क्षेत्रज्ञ परम सूक्ष्म परमाणुके सदृश चेतनावंत नित्य ऐसा हैं, इसीसैं दीखता नहीं है * यदि ऐसा है तो उत्पन्न कैसैं होता है सो कहते हैं, (लोहितरेतसः) अर्थात् आत्मा परम सूक्ष्म ऐसा होनेसैं पंचभूतात्मक जो शुक्र शोणित उन्होंके संयोगसैं प्रगट होता है । जैसै त्रसरेणु अन्यत्र नहीं दीखे परंतु झरोखामें सूर्यकी किरणोंसैं स्पष्ट दीखता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वैद्यककेअनुमतपुरुषोंकीषड्धातुकसंज्ञाकहतेहैं।

एषएवचसूक्ष्मपुरुषाणांभूतानाञ्चसंयोगोवैद्यके
षड्धातुकःपुरुषःपरिभाषितः॥

अर्थ–वैद्यकशास्त्रमें सूक्ष्मपुरुष तथा पंचमहाभूतोंके संयोगको षड्धातुकपुरुष कहते हैं। षड्धातुक यह संज्ञा कैसे करी इसलिये प्रथमाध्यायका प्रमाण देते हैं।

यतोभिहितंपञ्चमहाभूतशरीरिसमवायःपुरुषइति॥

अर्थ–पंचमहाभूत और शारीरि कहिये आत्मा, इन्के संयोगको पुरुष कहते हैं।

उसपुरुषकोऔषधोपयोगित्वकहतेहैं।

सएषकर्मपुरुषश्चिकित्साऽधिकृतः॥

अर्थ–यह पुरुष कर्मफल भोक्ता है इसीसे चिकित्सित कर्मफलकोभी प्राप्त होता है।

मनकेसंयोगकर्केजीवकेगुणहोतेहैं।

तस्यसुखदुःखेच्छाद्वेषोप्रयत्नःप्राणापानौ
उन्मेषनिमेषौबुद्धिर्मनःसंकल्पविचारणा
स्मृतिर्विज्ञानमध्यवसायोपलब्धिश्चगुणाः।

अर्थ–सुख, दुःख, इच्छा, वैर, कार्यारंभकउत्साह, वक्रसंचारीपवन, अधोवायु, नेत्रोंका खुलना मूदना, बुद्धि, (निश्चयात्मक अंतःकरणविशेष) मन (संकल्प-विकल्पात्मक) संकल्प (ऊहाऊपोह) स्मृति (अनुभूत पदार्थस्मरण) विज्ञान (शिल्पशास्त्रादिकोंका बोध) अध्यवसाय (बुद्धिका व्यापार) और उपलब्धि (शब्दादिविषयोंकी प्राप्ति) ए कर्म पुरुषके सोलह गुण हैं और इन्हींको कला कहते हैं। ' गयी ' आचार्य कहता है कि, सुख (प्रीति) दुःख (अप्रीति) इच्छा (सुखहेतुकी लालसा) द्वेष (दुःखहेतुकी मनसें अनिच्छा) प्रयत्न (मनप्रवृ-त्तिक उत्साह) मन (संकल्पात्मक लक्षण) उस मनका संकल्प (विषयोंमें दोष गुण कल्पना) बाकी सब अर्थ समान है।

प्रकृतिके गुण।

सत्वंरजस्तमस्त्रीणिविज्ञेयाः प्रकृतेर्गुणाः॥
तैश्चयुक्तस्यचित्तस्यकथयाम्यखिलान्गुणान्॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण, ए तीन प्रकृतिके गुण हैं । इन तीनों गुण युक्त ऐसा जो चित्त उसके संपूर्ण गुण पृथक् पृथक् कहते हैं ।

सतोगुणयुक्तमनकेलक्षण ।

आस्तिक्यंप्रविभज्यभोजनमनुत्तापश्चतथ्यंवचो
मेधाबुद्धिधृतिक्षमाश्चकरुणाज्ञानञ्चनिर्दम्भता ।
कर्म्मानिन्दितमस्पृहंचविनयोधर्मःसदैवादरा
देतेसत्वगुणाऽन्वितस्यमनसोगीतागुणाज्ञानिभिः ॥

अर्थ–आस्तिक्य (अर्थात् धर्म मोक्ष यह लोक परलोक आदिको मानना) अन्नका विभागकर भोजन करना, क्रोध रहित, सत्य वचन, मेधा (ग्रंथाकर्षण शक्ति) बुद्धि (तत्कालविषया) धृति (मनका नियमन) अथवा धृति (भूत, प्रेत, काम, क्रोध और लोभादिकोंके आवेशसै राहित्य) क्षमा, करुणा, आत्म-ज्ञान, निष्कपट, (निन्दित कर्मोंमें घृणा विनय, सदैव धर्मका आदर, (अथवा निद्रारहित, स्पृहारहित और निष्काम, ऐसी क्रियाको कर्म कहते हैं) उसका करनेवाला, ए सतोगुण युक्तवाले मनके गुण हैं ।

रजोगुणयुक्तमनकेलक्षण ।

क्रोधस्ताडनशीततापबहुलंदुःखंसुखेच्छाऽधिका
दम्भः कामुकताप्यलीकवचनंचाधीरताऽहंकृतिः ॥
ऐश्वर्य्यादभिमानिताऽतिशयितानन्दोऽधिकश्चाटनं
प्रख्याताहिरजोगुणेनसहितस्यैतेगुणाश्चेतसः ॥ २ ॥

अर्थ–क्रोध, किसीको मारना अत्यंत दुःख, सुखकी अधिक इच्छा, दंभी, कामी, अथवा कामना राखनी, मिथ्या बोलना, अधीरता, अहंकारी, ऐश्वर्य्यसैं अधिक अभिमान, अत्यंत आनन्द, सर्वत्र देश विदेशोंमें डोलना ' अधृति अर्थात् चित्तका डमाडोल होना, अकरुण, अर्थात् निर्दयता, यह सुश्रुतमें अधिक पाठ है ' ये लक्षण रजोगुणयुक्त चित्तके हैं । दंभ नाम बकवृत्ति अर्थात् बगला भगतको कहते हैं ।

तमोगुणयुक्त मनके लक्षण ।

नास्तिक्यंमुविषण्णतातिशयिताऽऽलस्यंचदुष्टामतिः
प्रीतिर्निन्दितकर्मशर्मणिसदानिद्रालुताऽहर्निशम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अज्ञानंकिलसर्वतोपिसततंक्रोधान्धतामूढता
प्रख्याताहितमोगुणेनसहितस्यैतेगुणाश्चेतसः ॥

अर्थ–नास्तिकता (यह लोक परलोक, शास्त्र और ईश्वर नहीं है) अत्यंत खेद, अति आलस्य, दुष्टबुद्धि, निन्दित कार्मोंमें तथा निंदित सुखमें निरंतर प्रीति, दिन-रात निद्रावान्, अज्ञान, निरंतर सर्वत्र क्रोधसैं अंध होजाना, मूढता ये सब तमो-गुणसहित चित्तके लक्षण हैं ॥ अब पंचमहाभूतोंके गुण कहते हैं ।

आकाशके गुण ।

आन्तरिक्षाःशब्दःशब्देन्द्रियंसर्वच्छिद्रसमूहोविविक्तताच।

अर्थ–आकाशके गुण । शब्द तथा शब्देन्द्रिय, तथा सर्वच्छिद्रसमूहोंकी विविक्त-ता अर्थात् सर्वशरीरसंबंधी जे पदार्थ शिरा, स्नायु, हड्डी, पेशी, इत्यादिक उनको जातिव्यक्ति करकें पृथक् २ करना इतने गुण हैं ।

वायुके गुण ।

वायव्याः स्पर्शःस्पर्शेन्द्रियंसर्वचेष्टासमूहःसर्वशरी
रस्पन्दनंलघुताच ।

अर्थ–वायुके गुण । स्पर्श, स्पर्शेन्द्रिय, तथा सर्व चेष्टासमूह, तथा सर्व देहका स्पन्दन होना, तथा लघुता (हलकापना) ये गुण जानने ।

तेज (अग्निके गुण) ।

तैजसाः रूपंरूपेन्द्रियंवर्णः सन्तापोभ्राजिष्णुताप
क्तिरमर्षःतैक्ष्णमाशुक्रियाशौर्यविक्रान्तता ।

अर्थ–तेजके गुण कहते हैं । रूप, नेत्रइन्द्री, वर्ण, संताप (गरमी) कांति, पक्ति (उदराग्नि करकें अन्नका पाक) अमर्ष (क्रोध) तैक्ष्ण (तीखापना) तथा सर्व कर्मोंमें शीघ्रता और शूरवीरता ।

जलके गुण ।

आप्यारसोरसनेन्द्रियंसर्वद्रवसमूहोगुरुताशैत्यंस्नेहोरेतश्च ।

अर्थ–जलके गुण कहते हैं । रस, जिह्वा इंद्री, सर्वद्रवसमूह, गुरुता (भारीपना) शीतलता, स्नेह और रेत ।

पृथ्वीके गुण ।

पार्थिवास्तुगंधोगन्धेन्द्रियंसर्वमूर्त्तिसमूहोगुरुताचेति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–पृथ्वीके गुण कहते हैं । गंध, गंधेंद्रिय (नासिका), सर्व मूर्तिसमूह तथा भारीपना और कठिनता ये पृथ्वीके गुण कहे । अब आकाशादि पंचमहा, भूतोंको सत्वादिगुणमयत्व दिखाते हैं ।

आकाशके धर्म ।

तत्रसत्वबहुलमाकाशंप्रकाशकत्वात् ।

अर्थ–आकाश प्रकाशक है, इसीसें उस्मे सतोगुण बहुत है ।

पवनके धर्म ।

रजोबहुलोवायुश्चलत्वात् ।

अर्थ–वायु चंचल हैं, इसीसें उस्मे रजोगुण अधिक है ।

अग्निके धर्म ।

सत्वरजोबहुलोग्निः प्रकाशकत्वाच्चलत्वाच्च ।

अर्थ–तेज प्रकाशक और चंचल है इसीसें उसमें सतोगुण रजोगुण बहुतहै ।

जलके धर्म ।

सत्वतमोबहुलाआपःस्वच्छत्वात्प्रकाशकत्वाद्गुर्वाचरणत्वात् ।

अर्थ–जल स्वच्छ, तथा प्रकाशक, तथा भारी हैं । इसीसें उसमें सतोगुण औ-र तमोगुण बहुत है ।

पृथ्वीके धर्म ।

तमोबहुलापृथ्वीअत्यन्तावरकत्वात्

अर्थ–पृथ्वी अत्यंत भारी है । इसीसें उसमें तमोगुण बहुत है ।

अथ पञ्चीकरणम् ।

अन्योन्यानिप्रविष्टानिसर्वान्येतानिनिर्दिशेत् । स्वे स्वेद्रव्येषुसर्वेषांव्यक्तंलक्षणमिष्यते ॥

अर्थ–आकाशादि पञ्चमहाभूत अन्योन्य मिले हुए हैं उन्होके लक्षण अपने अ-पने द्रव्योंमें प्रगट हैं (वेदान्तके मतसें पंचीकरण इस प्रकार है जैसे मानो कि, एक पृथ्वी सेरभरकी है । उसके आध २ सेरके दो विभाग कीने, उनमेंसें आध सेरके १ टुकडेको तो पृथक् धरा, और दूसरे आध सेरके टुकडेके आध आध पा-वके ४ टुकडे करके, अग्नि, जल पवन और आकाश, इन चारोंमें मिलाय दिये

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तो देखो पृथ्वीमें आधा तो अपनाही विभाग है और चार विभाग आध २ पावके अग्नि, जल, पवन और आकाशके हैं। इसी रीतसैं अग्निमें आधा अपना हिस्सा है बाकीके जल, पवन, आकाश और पृथ्वीके विभाग हैं, इसी रीतसैं औरभी जल, पवन, आकाशके विभाग करनेसैं और उसी रीतिसैं आपसमें मिलनेसैं पंचीकरण कहाते हैं।)

कारणगुणकीकार्यमेंव्याप्तिकहतेहैं।

तत्रशब्दगुणमाकाशंमारुतेप्रविष्टंशब्दस्पर्शगुणत्वंमारुतस्य।

अर्थ–वैद्यकका मत कहते हैं। तहां शब्दगुण आकाश, पवनमें प्रवेश हुआ, इसीसें वायुमें शब्द गुण आकाशका है। तथा स्वनिष्ठ स्पर्श ऐसें दो गुण हैं। तथा आकाश पवन ये दोनों अग्निमें प्रवेश हुए, इसीसैं शब्द, स्पर्श और तेजका गुण रूप, ये तीन गुण अग्निमें हैं। आकाश, वायु, तेज, ये जलमें प्रवेश हुए, इसीसैं शब्द, स्पर्श, रूप तथा स्वनिष्ठ रस, ऐसे चार गुण जलमें हैं। तथा आकाश, वायु, तेज, जल, ये पृथ्वीमें प्रवेश हुए उस्सैं पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा स्वनिष्ठ गुण गंध ऐसैं पांच गुण हैं।

एवंव्योमानिलानलजलोर्वीणांपरस्परप्रवेशकत्वानुप्रवेशकत्वेतावत्स्थितानामन्योन्यानुप्रवेशकत्वमुक्तम्।

अर्थ–इस प्रकार आकाशादि पंचमहाभूत परस्पर आपसमें प्रविष्ट अनुप्रविष्ट होकर रहते हैं उन्को अन्योन्यानुप्रविष्टत्व कहा है। अन्य आचार्य (अन्योन्यानुप्रविष्टानि) इस पदका औरही प्रकारसै व्याख्यान करते हैं।

तत्राकाशेपिभूरेणुरूपेणावस्थितासूक्ष्मरूपेण तोयेतेजोनुगतस्यमारुतस्यसंचरणादाकाशेपव नदहनतोयान्यपिबोद्धव्यानि।

अर्थ–तहां आकाशमें, पृथ्वी अणुरूप करके रहती है। और पवन सूक्ष्मरूप करके रहती है। जल और तेज इन्में संचार करते हैं। इसीसैं आकाशमें पवन, तेज, जल और पृथ्वीभी रहती है ऐसा जानना।

तथावायावप्याकाशंव्यवस्थितंव्यापकत्वात्

अर्थ–उसी प्रकार व्यापक होनेसैं पवन आकशमें स्थिति है।

इस विषयमें प्रमाण।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अनुष्णशीतस्पर्शोऽयंद्रव्यज्ञैर्वायुरिष्यते ।
दाहकृत्तेजसायुक्तःशीतकृत्सोमसंश्रयात् ॥

अर्थ–न गरम और न शीतल ऐसा जिस्का स्पर्श, उस्को नव द्रव्यके जाननेवाले पवन कहते हैं परंतु वह पवन, तेजयुक्त होनेसैं गरमी करती है। अर्थात् गरम मालूम होती है। और सोम (चन्द्र) के संबन्धसैं शीतलता करती है। अर्थात् सूर्यके सम्बन्धसैं गरमी करे है और चंद्रके संबंधसैं शीतलता करे है। अथवा सोम (जलसंयुक्त होनेसैं) सरदी करे है। इससैं यह सिद्ध हुआ की। पवन, जल और तेज मिली हुई है। तथा पवनमें पृथ्वी परमाणुरूपसैं रहती है। उसी प्रकार व्यापक होनेसैं, अग्निमें आकाश भी रहता है। और प्रेरणात्मक होनेसैं उस अग्निमें पवन भी रहता है। तथा अग्निमें जल भी अनुमान होता है। इस्का कारण यहहै, कार्य और कारणका ऐक्य है। अर्थात् जल कारण और अग्नि कार्यरूप है। जलसैं अग्नि प्रगट होती है, ऐसैं अनेक प्रमाण हैं। दूसरे समुद्रमें वाड़वाग्नि रहती है ऐसैं लोकप्रसिद्ध भी है।

भूमिरपिभौमादिरूपेणतेजसिव्यवस्थिता ।

अर्थ–पृथ्वी भी भौमादिरूप करके तेजमें रहती है।

अथ कार्यमें कारणकी व्याप्ति ।

अथतोयद्रव्येप्याकाशंवाव्यवस्थितंव्यापकत्वात्

अर्थ–व्यापक होनेसैं जलमें आकाश भी रहता है तथा पवन तरंग बबूला आदिका कारण है इसीसैं जलमें रहती है। अग्नि भी जलसैं उत्पन्न है इसीसैं उसमें रहती है।

इस्में प्रमाण ।

अद्भ्योग्निर्ब्रह्मनक्षत्रमश्मनोलोहमुत्थितम् ।
एवंसर्वत्रगंतेजःस्वासुयोनिषुशाम्यति ॥

अर्थ जलसैं अग्नि, ब्रह्मसैं नक्षत्र, पत्थरसैं लोह, उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार सर्वत्र रहनेवाले तेज, अपने २ कारणमें शांत होते हैं।

पृथ्वी जलमेंकैसैंरहतीहै ।

भूमिरपितोयद्रव्येऽणुरूपेणव्यवस्थिता

अर्थ–पृथ्वी जलमें परमाणुरूपसैं रहती है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तथापृथिव्यामपिआकाशपवनदहनतायान्येवंभू
मेःप्रविभागीयेपञ्चविधायाभूमेःप्रोक्तत्वात्।

अर्थ–पृथ्वीमें भी आकाश, पवन, अग्नि, और जल रहते हैं। इसमें प्रमाण है कि, जिस स्थलमें पृथ्वीके विभाग कहे हैं, उस जगे पांच प्रकारकी भूमि कही है। इस प्रकार पंचमहाभूतोंको अन्योन्यानुप्रविष्टत्व कहा है। इसीको वेदांतवादी पंचीकरण कहते हैं। (स्वस्वद्रव्येषु सर्वेषामिति) अर्थात् अपनी २ द्रव्यमें आकाशादिकोंके प्रगट लक्षण हैं। जैसें आकाश द्रव्यमें आकाशलक्षण शब्द प्रगटहै। उसी प्रकार सर्वत्र जानना सबका उपसंहार।

अष्टौप्रकृतयःप्रोक्ताविकाराः षोडशैवतु।
क्षेत्रज्ञश्चसमासेनस्वतन्त्रपरतन्त्रतइति।

अर्थ–अव्यक्त, महान्, पंचतन्मात्रा इस प्रकार आठ प्रकृति कही हैं। तथा कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नाक, वाणी, हाथ, पैर, गुदा, लिंग, और मन, ये ग्यारे इन्द्री। तथा आकाश, पवन, अग्नि, जल, और पृथ्वी, ये पंचमहाभूत, ये सोलह विकार कहे। स्थूल, सूक्ष्म, शरीरको जो जाने उसको क्षेत्रज्ञ और उसी क्षेत्रज्ञको पुरुष कहते हैं। इस प्रकार पच्चीस तत्वका निरूपण [स्वतंत्र] कहिये शल्यतन्त्रसें और [परतंत्र] कहिये शालाक्यतंत्रसें अथवा परतंत्र कहिये सांख्यशास्त्रमें करा है।

शारीरेनिबन्धसंग्रहस्य भाषायां सर्वभूतचिंता
शारीराध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे सौश्रुतशारीरे पंचमस्तरङ्गः ॥ ५ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

चिकित्सामें पुरुषको मुख्यता है, वह पुरुष शुक्रशोणितके संयोगसें प्रगट होता है, यह प्रथम अध्यायमें कहि आये हैं। परंतु इस जगे शुद्ध शुक्रशोणित (रुधिर) सें गर्भोत्पत्ति होती है इसीसें शुक्रशोणितकी शुद्धीका प्रतिपादन करते हैं।

अथातः शुक्रशोणितशुद्धिशारीरंव्याख्यास्यामः ॥

अर्थ–पच्चीस तत्व निरूपणके अनंतर, शुक्रशोणित शुद्धीशारीरको कहते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शुक्रशोणित इन्होंमें शोणितशब्द स्त्रियोंके आर्त्तव संज्ञक रुधिरका बोधक जानना। शुद्धि कहिये दुष्ट वात पित्त कफादिकोंका मिलाप न होना, वह शुद्धि वातादिकों सैं दुष्ट हुआ जो शुक्र उसीकी जानना ।

दुष्टशुक्रके लक्षण ।

वातपित्तश्लेष्मशोणितकुणपगंध्यनल्पग्रन्थिपूतिपू
यक्षीणरेतसःप्रजोत्पादनेनसमर्थाः ॥

अर्थ–वात, पित्त, कफ, रुधिर इनसैं दूषित वीर्य जिस्का, तथा कुणप (मुर्दाकीसी) गंधि, बहुत तथा गांठदार, दुर्गंधवान्, राधके सदृश, अर्थात् दुर्गंधयुक्त राधके समान, तथा क्षीणवीर्य ऐसैं पुरुष संतान प्रगट नहीं कर सक्ते । तहां कहते हैं कि, यह जो लिखा है कि दुष्टवीर्य वाले, संतान नहीं कर सक्ते सो नहीं है, किंतु शुद्ध संतानोत्पत्ति नहीं कर सक्ते, ऐसा जानना क्योंकि रोगोंसैं जो अशुद्ध तथा वातादिसैं दूषित शुक्रवालोंकेभी जन्मांध, बहरे, गूंगे, लंगड़े लूले, आदि पुत्र होते हैं ।

वातादिसैंदुष्टशुक्रकेलक्षण ।

तत्रवातवर्णवेदनंवातेन, पित्तवर्णवेदनंपित्तेन, श्लेष्मवर्ण
वेदनंश्लेष्मणा, शोणितवर्णपित्तवेदनंरक्तेन, कुणपगंध्यन
ल्पश्चरक्तेन, ग्रंथिभूतंश्लेष्मवाताभ्यां, पूतिपूयनिभंपित्त
श्लेष्मभ्यां, क्षीणशुक्रंप्रागुक्तं, पित्तमारुताभ्यांमूत्रपुरीष
गंधिःसर्ववर्णवेदनंसन्निपातेन ।

अर्थ–दुष्ट वातादि दोष उन्होंमें, वादी सैं दुष्टशुक्र वातके वर्ण काला लाल आदि रंग, और तोदादि पीड़ासहित होता हैं । यद्यपि वातका कोई वर्ण नहीं है, तौ भी वातसैं दूषित मनुष्यमें कृष्ण लाल कृष्ण अरुणादि वर्ण भासते हैं, वे वायुके वर्ण जानने ।

शिष्य एक वातसैं अनेक पीड़ा तोदभेदादिक कैसैं होती है ?

गुरु–इस्का यह कारण है कि "बहुकारणंप्रकोपस्य" अर्थात् वायुकोप होनेके अनेक कारण है । इसीसैं अनेक प्रकारके विकार होते हैं । गंध पवनकी नहीं है, तथा पित्त कर्के दूषित हुए शुक्रमें गरमी, दाह और पीत नील वर्ण तथा मुर्देकीसी गंध, तथा दुर्गंधयुक्त राधके सदृश होता है । और कफसैं दूषित शुक्रका कफकासा वर्ण, और कफके विकारयुक्त होता है । तथा रुधिरसैं दूषित शुक्र लाल रंग,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

और पित्तविकारोंसें युक्त होता है । तथा रुधिरसें दूषित शुक्रमें मुर्देकीसी गंध, और बहुत होता है । (यद्यपि रुधिर औरोंको दूषित नहीं कर सक्ता, क्यों कि रुधिरहीको वात पित्त और कफ ये तीनों दोष दूषित करते हैं । परंतु इस जगे रुधिरसें दूषित शुक्रका ऐसें व्यवहार होता है । जैसें घृत, तैलसें दुग्ध हुआ, तात्पर्य यह है कि जैसें घृत तैल आदि अग्निसें तत्ते होकर दूसरे मनुष्यको पजारतेहैं । उसी प्रकार रुधिर, वातादिकों सें दूषित होकर शुक्रको दूषित करता है) कफ और वादीसें दूषित शुक्र गांठवाला होता है । तथा पित्त कफसें दूषित शुक्र दुर्गधयुक्त राधके समान होता है।तथा पित्त वायु सें दूषित कफ क्षीण होता है।इस क्षीणशुक्रके लक्षण प्रथम सूत्र स्थानमें दोष धातु मल क्षय वृद्धि विज्ञानीयाध्यायमें कह आयेहैं । सन्निपातसें दूषित शुक्र मूत्र विष्ठाकीसी दुर्गंधवाला, तथा पूर्वोक्त सर्व दोषोंके विकारयुक्त होता है ।

दुष्टशुक्रमेंसाध्यासाध्य ।

तेषुकुणपग्रन्थिपूयक्षीणरेतसःकृच्छ्रसाध्याः मूत्रपुरीषरेतसोऽसाध्याः ।

अर्थ–पूर्वोक्त दूषित शुक्रोंमें कुणप, ग्रंथी, पूय, और क्षीण, ये चार प्रकारके शुक्र कृच्छ्रसाध्य । और मूत्र पुरीष गंधवाले शुक्र असाध्य । और बाकीके साध्य हैं ।

आर्त्तवके दोष ।

आर्त्तवमपित्रिभिर्दोषैःशोणितश्चतुर्थैःपृथग्द्वंद्वैः समस्तैश्चोपसृष्टमबीजंभवति ।

अर्थ–आर्तवभी, वात पित्त कफ दोषोंसें, और रुधिरसें, तथा द्वंद्वज दोषोंसें, तथा समस्त दोषोंके मिलनेसें, दूषित हुआ गर्भ धारण करनेके योग्य नहीं रहता है ।

आर्त्तवकी परीक्षा ।

तदपिदोषवर्णवेदनाभिर्ज्ञेयम् ।

अर्थ–दूषित आर्त्तवके लक्षण पूर्वोक्त वातादिकोंके वर्ण और विकार करके जानने, अर्थात् जो शुक्रके वर्णभेद कहे हैं वही आर्त्तवकेभी जानने ।

आर्त्तवकेसाध्यासाध्यलक्षण ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तेषुकुणपगंधिपूतिपूयक्षीणमूत्रपुरीषप्रकाशमसाध्यंसाध्यम न्यच्चेति । आर्त्तवदोषाथाप्यानभवन्ति ॥

अर्थ–आर्तव दोषोंमें कुणपगंधि आर्त्तव, ग्रंथि आर्त्तव, दुर्गंधयुक्त आर्त्तव, राधके सदृश आर्त्तव, क्षीण आर्त्तव, मूत्र और पुरीष गंध वाले आर्त्तव, ये असाध्य हैं । और बाकीके साध्य जानने । आर्त्तव दोष व्याधिके स्वभावसैं याप्य नहीं होते, अब आगे शुक्रदोषकी चिकित्सा कहते हैं ।

शुक्र दोष चिकित्सा ।

तेष्वाद्यान्शुक्रदोषांस्त्रीन्स्नेहस्वेदादिभिर्जयेत् । क्रियाविशेषैर्मतिमांस्तथाचोत्तरबास्तिभिः

अर्थ–तिन शुक्र दोषोंमें, पहले कुणपगंधादिक तीन दोष, घृतादि स्नेह पान, पसीने, वमन, विरेचन, निरूहबस्ति, अनुवासनबस्ति, तथा उत्तरबस्ती करकें दूर करे । (निरूहादिबस्ति कहिये मल मूत्रादि द्वारोंमें होकर चिकनाई मिली कषायादिकोंकी पिचकारी छुटानेके प्रयोग) ये सब यथा यथा प्रकर्णमें वर्णन करे जावेंगे। पुनः उत्तरबस्ति कहनेसैं विशेष करकें उत्तरबस्तिको सर्वउपचारोंमें श्रेष्ठता दिखाई है ।

" कुर्य्याद्वातादिभिर्दुष्टेस्वौषधम् ।

अर्थ–वातादि दूषित शुक्रमें वातादिहरण कर्त्ता औषध करनी चाहिये. तहां वातकुपितमें वातहरण कर्ता चिकनाई घृतादि गरम औषध, खट्टे, नोंनके पदार्थ आदि, पित्त कुपितमें, मीठे, शीतल, कसेले, आदि पदार्थ, कफ कुपितमें कडुए, रूखे, कसेले पदार्थ देने चाहिये ।

विशेष करके वातज शुक्र दोषमें, यव, थूहर, सैंधानोंन, त्रिफला, और खटाई, डालके घृतमें सिद्ध करे इस्में जवाखार मिलाके पीना चाहिये । तथा वेलगिरी, विदारीकंद, करके सिद्ध घृतमें दूध मिलाय कैं निरूहणबस्ती देवे । तथा दूध, कुलीरके रस करके सिद्ध कराहुआ तेलसैं अनुवासन और उत्तरबस्ति करनी चाहिये ।

पित्त दूषित शुक्रमें, तालमखाने, गोखरू, और गिलोय, इन्के काढेसैं सिद्ध और मूर्वा, मुलेटी डाला हुआ घृतको पीवे । तथा निसोतका चूर्ण मिला घृतसैं जुल्लाब देना, छाछ, और श्रीपर्णीके रससैं सिद्ध घृतमें दूध मिलाय निरूहबस्ती, मुलेटी, काकमुद्गा करके सिद्ध तैल करके अनुवासन और उत्तरबस्ति कर्म करने चाहिये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कफ दूषित शुक्रमें, पखानभेद, दुपतिया और आमले इन्के काढे कर्के सिद्ध, पीपर और मुलहटीका चूर्ण, मिला हुआ घृतका पान । मैनफलके क्वाथ करके वमन कराना, दंती और वायविडंगके चूर्णको तैलमें मिलायकर पीने कर्के जुल्लाब देना । अमलतास और मैनफलके काढेसैं निरूह बस्ती, मुलहटी, पीपल करके सिद्ध करे हुए तैलसैं अनुवासन, और उत्तरबस्ती लेनी चाहिये ।

कुणपरेतवालेपुरुषकीचिकित्सा ।

पाययेत्तंनरंसर्पिर्भिषक्कुणपरेतसि ।
धातकीपुष्पखदिरोदाडिमार्ज्जुनसाधितम् ॥
पाययेदथवासर्पिः शालसारादिसाधितम् ।

अर्थ–जिस पुरुषके वीर्यमें मुर्दे कीसी दुर्गंध आवे, उस्को वैद्य धायके फूला, खैरसार, अनारकी छाल और कोहकी छालका काढा अथवा कल्क करके सिद्ध करा गौका घृत पिवावे । अथवा रालका कल्क काढा आदि करके उस्में घृतको सिद्ध कर पिवाना चाहिये ।

ग्रंथिवान्रेतकीचिकित्सा ।

ग्रन्थिभूतेशठीसिद्धं पालाशेवापिभस्मनि ॥

अर्थ–जिस्का वीर्य गांठसदृश होवे, उस्को कचूरके कल्क अथवा क्वाथ करके सिद्ध कराहुआ घृत पिवावे । अथवा ढाकके खार कर्के सिद्ध घृतको पिवावे । तहां प्रमाण कहते हैं, ढाककी भस्म १ आढक, (२५६ तोले) जल ६ आढकमें ओटावे, जब चतुर्थांश रहे, तब उस्को उतारके कपड़ेमें छान लेवे पीछे गौघृत १ प्रस्थ उस्में मिलाय, चूल्हे पर चढावे जब सब जल जरजाय घृत मात्र शेष रहे तब उतार लेवे, इस प्रकार घृत सिद्ध सर्वत्र करना चाहिये ।

पूयरेतकीचिकित्सा।

परूषकवटादिभ्यांपूयप्रख्येचसाधितम् ।

अर्थ–परूषकादि "परूषकवराद्राक्षा" तथा न्यग्रोधादिगण "न्यग्रोधपिप्पलेति" ये प्रथम सूत्र स्थानमें कहि आए हैं, इन औषधोंके कल्क, अथवा काढेमें घृत सिद्ध करके राधके समान वीर्यवाले पुरुषको पीना चाहिये ।

क्षीणरेतउपचार ।

प्रागुक्तंवक्ष्यतेयच्चतत्कार्यंक्षीणरेतसि ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–जिस्का वीर्य क्षीण हो गया हो, उस पुरुषको पूर्वोक्त स्वयोनिवर्द्धन द्रव्य, तथा आगे वाजीकरणाधिकारमें क्षीण वीर्यवालोंको जो औषध कहेंगे, वो देनी चाहिये ।

मलगंधिशुक्रकाउपाय ।

विट्प्रभेतुपिबेत्सिद्धं चित्रकोशीरहिंगुभिः ।

अर्थ–जिस पुरुषका वीर्य मल मूत्रकी गंधसमान हो गया हो, उस पुरुषको चित्रक, उसीर, और हींग, इन्का कल्क अथवा काढा कर उस्सैं गौका घृत सिद्ध कर पीवे । यद्यपि मल मूत्र गंधवान् शुक्र रोग असाध्यहै तथापि विष्ठादि गंध दूर करनेको यह उपचार करे । सर्वथा यह रोग नहीं जाता, परंतु किसी आचार्यका यह मत है कि मल गंधवान् शुक्र साध्य हैं, इस्सै इस जगे मल शब्दसै विष्ठाका ग्रहण है, मूत्रका नहीं है । अर्थात् मल गंधवान् शुक्र अच्छा होसक्ता है परंतु मूत्र गंधवान् शुक्र तो सर्वथा असाध्य है । इसीसैं ग्रंथ कर्त्ताने इस्का उपायभी नहीं कहा । मल गंधवान् शुक्र पर वैद्य संग्रहवाला कुछ विशेष लिखे है*

शुक्रदोषमेंसामान्यउपचार ।

स्निग्धंवान्तंविरक्तञ्चनिरूहमनुवासितम् ।
योजयेच्छुक्रदोषार्त्तसम्यगुत्तरबस्तिना ।

अर्थ–जिस पुरुषका वीर्य कुणप (मुर्दे) कसी दुर्गंधयुक्त हो जावे उस पुरुषको स्नेह, वमन, विरेचन, निरूहबस्ति, अनुवासनबस्ति, और उत्तरबस्ति इत्यादि उपचारको करना चाहिये ।

शुद्धशुक्रके लक्षण ।

स्फाटिकाभंद्रवंस्निग्धं, मधुरंमधुगंधिच शुक्रामिच्छाति ।

अर्थ–जो शुक्र स्फटिकसदृश निर्दोष हो कर कुछ पतला तथा स्निग्ध, मधुर, तथा जिस्में मद्यकीसी गंध आती होवे, वह शुक्र गर्भधारण विषयमें उत्तम जानना । "केचित्तुतैलक्षौद्रनिभंतथा" कोई आचार्य कहता है कि तैल तथा छोटी मक्खीके सहतसदृश जो शुक्र है वह गर्भ धारणके योग्य है ।

तथाचवाग्भटे ।

शुक्रंशुक्लंगुरुस्निग्धं मधुरंबहुलंबहु ॥ घृतमाक्षिकतैलाभंसद्गर्भायेति

---

*हिंगुशीराचित्रकप्रियंगु समंगामृणालसिद्धं त्वगेलाचोचचूर्णप्रतिवापंघृतंपाययेदिति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–जो शुक्र सपेद, भारी, चिकना, मीठा, बहुत, तथा घृत, सहत और तेल-कीसी कांतिवाला उत्तम गर्भके अर्थ होता है। वह दूधमें जैसें घृत रहता है, ईखमें जैसें रस रहता है; इसी प्रकार शुक्र, देहमें शुक्रधरा कलाका आश्रय करके सर्वांगमें व्याप्त होकर स्थित है। वह मज्जा, मुष्कस्तनोंमें हर्षके होनेसें, संघट्टन करके हृदयमें आवेश होनेसें, पिंडीभूत होकर अंगसें अंगमें जाता है तब गर्भ होता है, इस जगे घृतके तैल, सहतके सदृश कहनेका औरभी प्रयोजन है अर्थात् जो शुक्र घृतके समान होता है उस्सें जो गर्भ रहे वह गौरवर्ण होता है। सहतके वर्ण शुक्रसें गर्भका रंग स्याम अर्थात् कुछ ललोंही लिये स्याम होता है और तेलके समान जो शुक्र होता है उस्सें जो गर्भ रहे वह काले रंगका होता है। और मिश्रितवर्णसें गर्भकेभी मिश्रित वर्ण होते हैं।

आर्त्तवदोषके सामान्य उपचार।

विधिमुत्तरबस्त्यन्तं कुर्य्यादार्त्तवसिद्धये।
स्त्रीणांस्नेहादियुक्तानां चतसृष्वार्त्तवार्त्तिषु।
कुर्य्यात्कल्कान्पिचूंश्चापिपथ्यान्याचमनानिच।

अर्थ–स्त्रियोंके वात, पित्त, कफ और रुधिर इन चार आर्तवपीडाओंके दूर करनेको स्नेह, वमन, विरेचनादि, उत्तरबस्तीपर्यंत उपचार वातादि रोगोंके तारतम्यके सदृश करे। तथा व तादि दोष हरण कर्त्ता द्रव्योंके कल्क, काढेसें, योनिका प्रक्षालन करना लेप, तथा पिचू कर्म्म करे (पिचु कहिये तेल, कल्क, काढा आदि कर कपडा भिजो उस्का फाया धरनेका प्रकार) यह प्रकार नेत्र, तलुआ, योनि, मुख इत्यादिक ठिकाने करते हैं, सो आगे लिखेंगें तथा वातादि हारक काढा, घृतादि स्नेह करके निरूहबस्ती, अनुवासनबस्ती प्रयोग करने चाहिये। तथा उसी प्रकार सर्व प्रकारोंमें उत्तरबस्ति प्रयोग करने चाहिये। गयी आचार्य (चतसृषु) इस पदमें चतुर्थशोणित प्रकृतिभूत जो बस्तगंधी उस्को शोणितार्त्तवार्ति मानता है। क्योंकि यह बस्तगंधी शोणितार्ति मात्र साध्य है, कुणपगंधि आर्त्तव साध्य नहीं है, इसीसें वातादि दोषहरण कर्त्ता द्रव्य संबंधी कल्कादिक योनिदोष प्रकरणोक्त देने चाहिये।

आर्त्तवदोषमें सामान्यउपचार।

ग्रन्थिभूतेपिबेत्पाठां त्र्यूषणंवृक्षकानिच। दुर्गन्धेपूयसं काशे मज्जतुल्येतथार्त्तवे॥ पिबेद्भद्रश्रितंक्वाथं चन्दन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्काथमेवच । शुक्रदोषहराणाञ्च यथास्वमवचारणम् ॥ यो
गानांशुद्धिकरणं शेषास्वमप्यार्त्तवार्त्तिषु ।

अर्थ–जिस स्त्रीका आर्त्तव गांठदार हो गया हो, वह पाढ, सोठ, मिरच, पीपल और कूडाकी छाल, इन औषधोंका काढा करने पीवे । और मूत्रपुरीषगंधि, तथा दुर्गंधियुक्त, राधके समान, कफ पित्त करके दुष्ट तथा मज्जाके सदृश, अर्थात् त्रिदोषसैं दूषित, ऐसा आर्त्तव होनेसैं सपेद चंदन तथा लाल चंदनका, काढा करके पीवे । (गयी आचार्य) कहता है कि, सपेद चंदन, और लाल चंदनके कहनेसैं इस जगह गोरोचन लेना चाहिये, क्योंकि लाल चंदनमें दुर्गंध दूर करनेकी शक्ति नहीं है । इसीसैं गोरोचन लेवे, तथा दुर्गंध कहिये कुणपगंधि, ऐसा व्याख्यान करता है । यद्यपि कुणपगन्ध्यादि पांच आर्त्तव असाध्य हैं, तथापि दुर्गंधनाशनार्थ चिकित्सा कही है । और जो वातादि संबंधी आर्त्तव दोष हैं उन्में पूर्वोक्त शुक्र हरण कर्त्ता उपचार करने चाहिये । जैसैं वातज पुष्प दोषमें, भारंगी, देवदारु, सिद्धघृतपान । अथवा कंभारी, और इन्द्रायणसैं सिद्ध घृत पीवे, अथवा मुलहटी, पिठवणका कल्क दूध, घृत, सहत, फूल प्रियंगू और तिलकल्कको योनिमें धारण करे अथवा शरल और मुद्गपर्णीके काढेसैं भगका प्रक्षालन करे ।

पित्तके आर्त्तव दोषमें, कांकोली, क्षीरकांकोली, विदारीकी जडका क्काथ, अथवा उत्पल (नीलाकमल) और पद्माखका क्काथ अथवा मुलहटीके फूल, कंभारीके फलका क्काथमें मिश्री डालके पीवे।अथवा सपेद चन्दन का क्काथ करके उस्में सहत डालके पीवे तो पित्त आर्त्तव दूर होवे । इत्यादि आयुर्वेद संग्रहमें औषध लीखीहै।

सर्वआर्त्तवदोषोंकीपथ्यकहतेहैं ।

अन्नंशालियवंमद्यं हितंमांसंचपिच्छलम् ।

अर्थ–शाली (चामर) और यव ये अन्न, तथा मद्य, मांस और पिच्छल पदार्थ ये सब आर्त्तवदोषमें पथ्य हैं ।

शुद्धआर्त्तवकेलक्षण ।

शशास्त्रप्रतिमंयच्चयद्वालाक्षारसोपमम् ।
तदार्त्तवंप्रशंसंतियद्वासोनाविरञ्जयेत् ॥

अर्थ–स्त्रियोंके महिनेकी महिने जो भगद्वारा तीन दिन पर्यंत रुधिर निकले हैं, उस्को आर्त्तव कहते हैं । तहां शुद्ध आर्त्तवके लक्षण कहते हैं । जो आर्त्तव, शशे-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

के रुधिरके समान लाल होवे, अथवा लाखके रंगसदृश लाल होवे, और कपडा-पर गिरनेसें दाग न पडे, वस्त्र धोनेसै स्वच्छ हो जावे, उस आर्त्तवको निर्दोष सद्गर्भके योग्य जानना।

रक्तप्रदरकेलक्षण।

तदेवातिप्रसंगेन प्रवृत्तमनृतावपि।
असृग्दद्रंविजानीयादतोन्यद्रक्तदर्शनात्॥

अर्थ–वही आर्त्तव अति प्रसंग करके निकलनेसें अर्थात् विना ऋतुकालके बहुत निकलनेसें असृग्दर जानना। परंतु पूर्व कहि आये जो शुद्ध आर्त्तवके लक्षण [शशास्त्रप्रतिमं] इत्यादि उनके विना अन्य लक्षण होवे। जैसें झागदार, शीघ्रगामी, खुजली, इत्यादि लक्षण होनेसें असृग्दर जानना।

असृग्दरकेदोषसंबंधकृततथाव्याधिस्वभावकृतसामान्यलक्षणकहतेहैं

असृग्दरोभवेत्सर्वः साङ्गमर्दःसवेदनः।
तस्यातिवृद्धौदौर्बल्यं भ्रमोमूर्च्छामदस्तृषा॥
दाहःप्रलापःपाण्डुत्वतन्द्रारोगाश्चवातजाः।

अर्थ–सर्व प्रकारके असृग्दरोंमें, अंगोंका टूटना, शूलका होना, ये लक्षण होते हैं। और जब इस रोगकी अत्यंत वृद्धि होती है, अर्थात् आर्त्तव अत्यन्तस्रवनेसें दुर्बलता, मूर्च्छा, भ्रम, (मद्यपान अथवा धतूरेके बीजखानेके समान अवस्था) प्यास, तथा देहमें दाह, प्रलाप (बकाद) देहका पीलापना, तन्द्रा और वात के रोग आक्षेपक, इत्यादि उपद्रव होते हैं।

रक्तप्रदरमेंअवस्थापरत्वउपचार।

तरुण्याहितसेविन्यास्तदाल्पोपद्रवंभिषक्।
रक्तपित्तविधानेन यथावत्समुपाचरेत्॥

अर्थ–जो स्त्री तरुण (सोलह वर्षकी) हो तथा हितपदार्थका सेवन करे, उस्के असृग्दर अल्प उपद्रवयुक्त होनेसै रक्त पित्त संबंधी उपचार करके वैद्य जीते।

आर्त्तवकीअप्रवृत्तिलक्षणविकृति।

दोषैरावृत्तमार्गत्वादार्त्तवंनश्यतिस्त्रियाः।

अर्थ–मूलमें [दोषैः] के लिखनेसें दोषशब्द करके इस जगे कफ और वदी, अथवा वादी, कफ मिले हुएका ग्रहण हैं। पित्तका ग्रहण नहीं है, कारण

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यह है कि, पित्तसैं तो आर्त्तवकी अत्यंत प्रवृत्ति होती है, इसीसैं इन वात कफ दोषोंसैं आर्त्तवका मार्ग रुकनेसैं स्त्रियोंका आर्त्तव नष्ट होता है । अर्थात् सर्वथा क्षय नहीं होता है किंतु निकलता हुआ नहीं दीखे ।

चिकित्सा ।

तत्रमत्स्यकुलत्थाम्लतिलमाषासुराहिता ।
पानेमूत्रमुदश्वित्च दधिसूक्तञ्चभोजनम् ॥

अर्थ-जिस स्त्रीका आर्त्तव अर्थात् जो स्त्री रजोधर्म होनेसैं बंद हो जावे, उस्को मछली, कुल्थी, अम्ल (कांजी) तिल, उडद और मद्य पीना हितकारी होता है । तथा गोमूत्रका पीना, उदश्वित् कहिये आधापानी, और आधादहीको मथ कर करा हुआ मट्ठेका पीना, तथा दही, और सूक्त कहिये चूकाका साग (जो पालकके समान होता है) ये सर्वपदार्थ भोजन करने चाहिये ।

क्षीणंप्रागीरितंरक्तं सलक्षणचिकित्सितम् ॥
तथाप्यत्रविधातव्यं विधानंनष्टरक्तवत् ॥

अर्थ-यद्यपि क्षीण रक्तके लक्षण, और चिकित्सा प्रथम दोष धातु मल क्षय वृद्धि विज्ञानीयाध्यायमें कहि आये हैं । तथापि इस जगे उस्का ग्रहण करा है, इसीसैं नष्टरक्तमें जो उपचार (मत्स्यकुलित्थादिक) कहे हैं, सो इस जगे करने चाहिये । अब प्रकरण प्रयोजनका, उपसंहार कहते हैं । " एवमदुष्टशुक्रः शुद्धार्त्तवाच " इस प्रकार अदुष्टवीर्य पुरुष, और शुद्ध आर्त्तववाली स्त्री होती है ।

ऋतुकालमेंसुपुत्रोत्पादकस्त्रियोंकेआचार ।

ऋतौप्रथमदिवसप्रभृतित्रह्मचारिणी दिवास्वप्नाञ्जनाऽश्रु
पातस्नानानुलेपनाभ्यङ्गनखच्छेदन प्रधावनहसनकथना
निलायासान्परिहरेत् ।

अर्थ-स्त्रीको रजोदर्शन होनेसैं प्रथम दिनसैं लेकर तीन रात्रि पर्यंत ब्रह्मचर्यमें रहना, तथा तीन दिन तक निद्रा, कज्जल लगाना, रुदन, स्नान, चंदन आदि अनुलेपन, उबटना, नखोंका काटना अथवा कुतरना, बहुत डोलना फिरना, बहुत हँसना, बहुतसा बोलना, तथा अति शब्दका सुनना, लेखन, पंखे आदिसैं अत्यंत हवा करना, इत्यादिक कर्म वर्जित हैं इन्होंका कारण भावप्रकाशसैं कहते हैं ।

नियम नपालनेके दोष ।

अज्ञानाद्वाप्रमादाद्वा लोभाद्वादैवतश्चवा । साचेत्कुर्यान्निषि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्धानि गर्भोदोषांस्तदाप्नुयात् ॥ एतस्यारोदनाद्गर्भोभवेद्विकृतलोचनः । नखच्छेदेनकुनखी कुष्ठीत्वभ्यङ्गतोभवेत् ॥ अनुलेपात्तथास्नाना दुःखशीलोऽञ्जनाददक् । स्वापशीलो दिवास्वापाच्चञ्चलःस्यात्प्रधावनात् । अत्युच्चशब्दश्रवणा द्बधिरःखलुजायते ॥ तालुदन्तोष्ठजिह्वासु श्यावोहसनतो भवेत् । प्रलापीभूरिकथनादुन्मत्तस्तुपरिश्रमात् ॥ स्खलतेभूमिखननादुन्मत्तोवातसेवनात् ।

अर्थ–अज्ञानसैं, अथवा प्रमादसैं, अथवा लोभसैं अथवा दैववशसैं, जो रजस्वला स्त्री निषिद्ध कर्म करे, तो उससैं गर्भ (बालक) को दोष प्राप्त होते हैं। इस रजस्वला स्त्रीके रुदन करनेसैं, खोटे नेत्रवाला बालक होता है नखोंके कतरनेसैं, बालक खोटे नखवाला होता है। तेल फुलेल आदिके लगानेसैं बालक कुष्ठरोगी होवे। चंदन आदिके लगानेसैं, तथा स्नान करनेसैं दुःख युक्त आचरणवाला होवे। काजरआदिके लगानेसैं, अंधा बालक होवे। दिनमें सानेसैं, अत्यंत निद्रालू होवे। बहुत डोलनेसैं, चंचल होवे। बहुत ऊंचे स्वरके सुननेसैं, बालक बेहरा होवे। अत्यंत हसनेसैं, बालकके तालू, दांत, होंठ और जीभ काली हो बहुत बोलनेसैं, बालक बकवादी होवे। अत्यंत परिश्रमके करनेसैं बालक उन्मत्त (बावला) होवे। पृथ्वी खोदनेसैं, जहां तहां गिरपडे ऐसा होय, और रजस्वला स्त्रीके अत्यंत पवन खानेसैं बालक उन्मत्त होता है।

प्रथमरजोदर्शमेंशुभमासादि।

आद्यंरजःशुभंमाघमार्गशाधेषफाल्गुने।
ज्येष्ठश्रावणयोःशुक्ले सद्वारेसत्तनौदिवा ॥

अर्थ–माघ, मार्गशिर, वैशाख, आश्विन, फाल्गुन, जेठ और सामन इन महिनों तथा शुक्लपक्ष, श्रेष्ठवार, उत्तम लग्न और दिनमें स्त्रीका प्रथम रजोदर्शवती होना शुभ कहा है * विशेष फल ज्योतिषके ग्रन्थोंसैं लिखते हैं।

रजोदर्शमेंमासफल।

* चैत्रेस्यात्प्रथमर्त्तौतुनारीवैधव्यभागिनी। वैशाखेधनपुत्राढ्या ज्येष्ठेरोगान्वितातथा ॥१॥ शुचौमृतप्रजाप्रोक्ता श्रावणेधनधान्यदा। नभस्येदुर्भगा क्लिष्टा आश्विनेचतपस्विनी ॥ २ ॥ ऊर्जेप्यायुष्मतीनारी मार्गशीर्षेबहुप्रजा। पौषेतुपुंश्चलीनारी माघेपुत्रसुखान्विता। फाल्गुनेश्रीमतीसाध्वी क्रमान्मासफलंस्मृतम् ॥ ३ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रुतित्रयमृदुक्षिप्रध्रुवस्वातौसिताम्बरे ।
मध्यंचमूलादितिभे पितृमिश्रेपरेष्वसत् ॥

अर्थ-श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा उत्तराफा ल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी और स्वातीनक्षत्र इन नक्षत्रोंमें तथा सपेद वस्त्र पहने हुए, जो स्त्री प्रथम रजोदर्शवती होवे, तो शुभ है। और मूल, पुनर्वसु, मघा, विशाखा, तथा कृत्तिका, इन नक्षत्रोंमें आद्यरजोदर्श मध्यम है । और भरणी, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा, तीन्हों पूर्वा, इन्में आद्यरजोदर्श होना अशुभ जानना ।

कृष्णपक्षशुक्लपक्षमेंरजोदर्शनहोनेकाफल ॥

शुक्लपक्षेसुशीलास्यात्कृष्णेसाकुलटाभवेत् । कृष्णस्यदशमी यावन्मध्यमंफलमादिशेत्॥४॥

वारपरत्वेनफलम् ॥

आदित्येविधवानारी सोमेचैवमृतप्रजा । भौमेचम्रियतेनारी कन्याप्रसविनीबुधे ॥ ५ ॥
गुरौपुत्रप्रसविनी शुक्रेकन्यातनुप्रसूः । शनौचपुंश्चलीवंशे प्रथमंपुष्पदर्शनात् ॥ ६ ॥

लग्नफलम् ॥

मेषेसाव्यभिचारास्याद् वृषभेपरभोगिनी । मिथुनेधनभोगाढ्या कर्कटेव्यभिचारिणी ॥ ७ ॥
पुत्राढ्यासिंहराशौतु कन्यायांश्रीमतीभवेत् । विचक्षणातुलायाश्च वृश्चिकेतुपतिव्रता ॥ ८ ॥
दुश्चारिणीधनुःपूर्वे अपरेचपतिव्रता । मकरेमानहीनाच कुंभेनिर्धनबंधुता ॥ ९ ॥ मीनेविलक्षणालग्ने ग्रहसंस्थाविवाहवत् ॥

कालपरत्वेनफलम् ॥

प्रातःकालेतुसधना सायाह्नेसर्वभोगिनी । मध्याह्नेचभवेद्वेश्या निशीथेविधवाभवेत् ॥ १० ॥

नक्षत्रफलम् ॥

सुभगाचैवदुःशीला वंध्यापुत्रसमन्विता । धर्मयुक्तात्रतघ्नीच परसंतानमोदिनी ॥ ११ ॥
सुपुत्राचैवदुष्पुत्रा पितृवेश्मरतासदा । दीनाप्रज्ञावतीचैव पुत्राढ्याचित्रकारिणी ॥ १२ ॥
साध्वीपतिव्रतानित्यं सुपुत्राकष्टकारिणी । स्वकर्मनिरताहिंस्रा पुत्रपौत्रादिसंयुता ॥ १३ ॥
नित्यंधनकथासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता । मूर्खार्थाढ्यागुणवती दस्रर्क्षादेः क्रमात्फलम् ॥१४॥

वस्त्रपरत्वेनफलम् ॥

सुभगाश्वेतवस्त्रास्याद् दृढवस्त्रापतिव्रता । क्षौमवस्त्राक्षितीशास्यान्नववस्त्रा सुखान्विता ॥
दुर्भगाजीर्णवस्त्रास्याद्रोगिणीरक्तवाससा । नीलांबरधरानारी विधवापुष्पितायदि ॥ मलिनांबरतोनारी दरिद्रास्याद्रजस्वला ॥

बिन्दुफलम् ॥

वस्त्रेस्युर्विषमारक्तबिन्दवः पुत्रमाप्नुयात् । समाश्वेतकन्यका चेति फलंस्यात्प्रथमार्त्तवे ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निन्द्यरजोदर्शकहतेहैं ।

भद्रानिद्रासंक्रमेदर्शरिक्ता संध्याषष्ठीद्वादशीवैधृतेषु ।
रोगेष्टम्यांचन्द्रसूर्य्योपरागे पातेचाद्यंनोरजोदर्शनंसत् ॥

अर्थ-भद्रामें, निद्रामें, संक्रांतिमें, अमावस में ४-९-१४-६-१२-८ इन तिथियोंमें, संध्यामें, वैधृति योगमें, रोगकी अवस्थामें चंद्र सूर्यके ग्रहणमें, और व्यतीपातमें, प्रथम रजोदर्श अशुभ है। अशुभ रजोदर्शकी शांति धर्मशास्त्रोक्त कर्त्तव्यहै ।

रजस्वलाकेनियम।

आर्त्तवस्नानदिवसादहिंसा ब्रह्मचारिणी ।
शयीतदर्भशय्यायां पश्येदपिपतिंनच ॥
करेशरावेपर्णेवा हविष्यंत्र्यहमाचरेत् ।

अर्थ-रजोदर्श स्नानके दिनसैं लेकर तीनदिनपर्यंत, स्त्रीको इस प्रकार वर्त्तना चाहिये। हिंसा न करे, ब्रह्मचर्यमें रहै, कुशाकी शय्यापर सोवे, और तीन दिनपर्यंत पतिको भी न देखना चाहिये, हाथोंमें, पात्रमें, अथवा पत्तलमें, हविष्य आहार, अर्थात् घृत, शाल्योदनादि, अथवा क्षीर संस्कृतयवान्नादिकका भोजन करना चाहिये ।

तथाचवाग्भटे ।

ततःपुष्पेक्षणादेव कल्याणध्यायनीत्र्यहम्।मृजालङ्काररहिता

अन्यच्च ।

संमार्जनंकाष्ठतृणाग्निशूर्पान् हस्तेदधानाकुलटातदास्यात् ।
तल्पोपभोगैरहसिस्थिताचेत् दृष्टंरजोभाग्यवतीतदास्यात् ॥

स्थलभेदेनफलम् ।

ग्रामाद्बहिः परागामे वाचेत्स्याद्व्यभिचारिणी । पतिव्रतापतिस्थाने सुशीलागृहमध्यमे ॥ ग्राममध्येचवृद्धिश्च विधवाचादिगम्बरा । उपरागेचदुःशीला आयुष्यंजलसन्निधौ । धनमध्येतुकन्याया धनधान्यसमृद्धिदा । प्रथमार्त्तवेस्यादितिशेषः।

अत्राशुभफलापवादमाह ।

अशुभ्रमपिसमस्तंचार्त्तवंसंप्रभूतम् सुरगुरुसितयुक्तेवीक्षतेवाथलग्ने । तिमिरमिवकठोरज्योतिरुत्पात्तिकाले क्षयमथसमुपैतिप्राप्नुयादीप्सितानि-कठोरज्योतिःसूर्यः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दर्भसंस्तरशायिनी ॥ क्षीरेयंयावकंस्तोकं कोष्ठशोधनक
र्षणम् । पर्णेशरावेहस्तेवा भुञ्जीतब्रह्मचारिणी ॥

अर्थ–स्त्री रजोदर्शके होतेही तीन दिनपर्यंत शुभचिंतवन करनेवाली होवे । तथा स्नानआदि क्रिया, अलंकार (हार, कुंडल, पायजेव, कोधनी, कडे, आदि) का धारण करना, अथवा अलंकारशब्दसैं फूलोंके गहने आदिका धारण करना, चंदन, काजर, सुरमा, मिस्सी, आदिका लगाना त्याग देवे । कुशाकी सेजपे सोवे, दूधके और जवके अथवा दूधके अथवा दूधसैं सिद्ध करे जवके पदार्थ कोठेको (गर्भाशयको) शुद्ध करनेवाले और तदंगोंके कर्षण करनेवाले पदार्थ, थोडे थोडे पत्तल, शराव, (मिट्टीका पात्र) अथवा हाथोंमें रखकर, भोजन करे, और ब्रह्मचर्य अर्थात् मैथुनादिक करनाभी तीन दिनपर्यंत त्याग देवे ।

तदुक्तंभरद्वाजसंहितायाम् ।

प्रथमेहनिचाण्डाली द्वितीयेब्रह्मघातिनी ।
तृतीयेरजकीज्ञेया चतुर्थेहनिशुद्ध्यति ॥
पंचमेहनियोग्यास्याद्दैवेपित्र्येचकर्मणि ।

अर्थ–पुरुषोंको जिस प्रकार रजस्वला स्त्रीसंग वर्जित है । वो इस प्रकार कि, प्रथम दिन चांडाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी, तीसरे दिन रजोदर्शवती स्त्रीकी धोवन संज्ञा है, और चतुर्थ दिन शुद्धि होती है । परंतु देवकार्य और पित्रीश्वरोंके कार्य योग्य पांचवें दिन होती है । इसीसैं ४ रात्रि स्त्रीगमन निषेध है ।

इच्छेतांयादृशंपुत्रं तद्रूपचरितांश्चतौ।
चिंतयेतांजनपदांस्तदाचारपरिच्छदौ ॥

अर्थ–स्त्री पुरुष जैसे पुत्रकी कामना करे, उन्को तद्रूप चरित जनपदोंका करना चाहिये । तथा तदाचारपरिच्छद होना चाहिये । अर्थात् जैसे पुत्र या पुत्रीकी इच्छा होय उस इच्छाके सदृश रूप (वर्ण, प्रमाण, और आकृति आदि,) तथा चरित (श्रद्धा, श्रुत, सत्य, नम्रता, दान, दया, चतुराई, और स्वभावादिक) तथा कुल, देशके अनुसार आचार, और परिच्छद (मनुष्य, गौ, घोडा, धन, धान्य, वस्त्र, भूषण, रत्न, गृह, बाग, वीणा, पणव, गान, शय्या, आदि) का ध्यान कर्त्तव्य है ।

तदुक्तंबृहत्संहितायाम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चित्तेनभावयतिदूरगताऽपियंस्त्रीगर्भंबिभर्त्तिसदृशंपुरुषस्यतस्य।

अर्थ–मैथुनके समय दूरस्थितभी स्त्री, चित्तसैं जिस पुरुषका ध्यान करै उसीके सदृश गर्भधारण कर्त्ती है। उसी प्रकार चरकमें लिखा है " गर्भोपपत्तौतुमनः स्त्रिया यं जंतुं व्रजेत्तत्सदृशंप्रसूते "।

ततःशुद्धस्नातांधौतवाससमलंकृतां
कृतमङ्गलस्वस्तिवाचनंभर्तारंदर्शयेत्।

अर्थ–तीन दिन व्यतीत होनेके पश्चात् शुद्ध कहियेसंचित (इकट्ठा) हुआ पुराना रुधिर, उस्के निकल जानेसैं प्राप्त हुआ है नवीन आर्त्तव जिस्को, इसीसैं स्त्री शुद्ध कहाती हैं, जैसे लिखा है " नवेऋतौचसंजाते विगतेजीर्णशोणिते। नारी भवतिसंशुद्धा पुमांसंसृज्यतेतदा ॥ " अर्थात् नवीन आर्त्तव प्राप्त होने सैं और जीर्ण संचित रुधिरके निकल जानेसैं स्त्री शुद्ध होती है, उस समय पुरुषसैं संयोग करने योग्य होती है। ऐसी शुद्ध स्त्री चतुर्थ दिवस, स्नान करके धुले हुए वस्त्रोंको पहन, हरिद्रा, रोरी, केशर, सिंदूर, आदि तथा सर्व भूषणोंको और पुष्पादिनसैं शृंगार करकै तथा मंगल कराया है (गीतवाद्यादिक) जिस्ने और स्वस्तिवाचन जिस्ने ऐसे भर्त्ताको वैद्य उस स्त्रीको प्रथम दिखावे। अर्थात् स्नान करके प्रथम स्त्रीको पतीकाही दर्शन कराना चाहिये।

प्रमाण।

पूर्वंपश्येदृतुस्नाता यादृशंनरमङ्गना।
तादृशंजनयेत्पुत्रं भर्तारंदर्शयेत्ततः॥

अर्थ–ऋतुस्नान करके स्त्री प्रथम जैसे पुरुषको देखे वैसेही पुत्रको प्रगट करती है। इसीसैं प्रथम भर्त्ताकोही देखे, इस जगे भावमिश्र इस श्लोकके अंतका चरण (ततः पश्येत्प्रियंपतिं) ऐसा लिखकर अर्थ करते हैं कि, प्रथम भर्त्ताको देखे यदि भर्त्ता समीप न होय तो प्रिय कहिये पुत्रादिक उन्कोभी प्रथम देखे, इस जगे स्नानके कहनेसैं चरकोक्त पुष्पस्नानभी कराना चाहिये।

यथा।

एताभिश्चैवौषधीभिःपुष्येपुष्येस्नानंसदाचसमालभेत।

अर्थ–इन पूर्वोक्त औषधियोंसैं, पुष्यनक्षत्रमें रजोदर्शवतीको सदैव स्नान करना चाहिये।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तच्चोक्तंवराहमिहिरेण ।

नदिनत्रयंनिषेवेत्स्नानंमाल्यानुलेपनंचस्त्री ॥ स्नायाच्चतुर्थेदि वसेशास्त्रोक्तेनोपदेशेन ॥ १ ॥ पुष्पस्नानौषधयोयःकथिता स्ताभिरम्बुमिश्राभिः॥स्नायात्तथात्रमन्त्रःसएवयस्तत्रनिर्दिष्टः२

अर्थ–रजस्वला स्त्री ३ दिनपर्यंत स्नान न करे । फूलमाला पहनना और चंदनआदिका लगाना त्याग देवे । चौथे दिन शास्त्रोक्त विधिसें स्नान करे । पुष्पस्नानके प्रकरणमें जो औषधी कही हैं । उनको जलमें मिलायके स्नान करे । और पुष्पस्नानमें जो मंत्र कहा है, वही मंत्र यहांभी पढना चाहिये ।

उक्तऔषधियोंकोकहतेहैं ।

ज्योतिष्मतींत्रायमाणामभयामपराजिताम् । जीवांविश्वेश्वरींपाठां समङ्गांविजयांतथा ॥ १ ॥ सहांचसहदेवींच पूर्णकोशांशतावरीम्।अरिष्टकांशिवांभद्रां तेषुकुम्भेषुविन्यसेत् ॥ २ ॥ ब्राह्मींक्षेमामजांचैव सर्वबीजानिकाञ्चनीम् ॥ मंगलानियथालाभं सर्वौषधिरसांस्तथा ॥ ३ ॥ रत्नानि सर्वगन्धांश्च बिल्वंचसविकंकतम्।प्रशस्तनाम्न्यश्चौषध्यो हिरण्यमङ्गलानिच ॥ ४ ॥

अर्थ–मालकांगनी, त्रायमाण, हरड, अपराजिता, (शमी) जीवंती, विश्वेश्वरी, पाढ, मजीठ, विजया, मुद्गपर्णी, सहदेई, पूर्णकोशा, शतावर, नीम, आमरे और श्वेतदूर्वा, इन्को स्थापित कुंभोमें (घडो) में डाले, ब्राह्मी, क्षेमा, अजा, सर्वौषधि, हलदी और मंगलकर्त्ता जो जो औषधि मिले वो डाले । रत्न (हीरा, पन्ना, आदि) डाले, (चंदन, केशर, कपूर, खस, आदि) सर्व सुगंधित वस्तु डाले । बेल, विकंकत वृक्षके फल, तथा जिन्के सुंदर नाम (जैसें जया, पुत्रजीवा, अमृतवल्ली, पुनर्नवा आदि) औषधि और सुवर्ण, (गोरोचन, सरसों, दूर्वा, आदि) मंगल वस्तु ये सब उन कलसोंमें डाले । जिनको पुष्पस्नानकी विशेष विधि देखनी हो वे, बृहत्संहिताकी ४८ वीं अध्यायमें देख लेवे । चरकमुनिने जो औषध कही है वो यह है, ऐन्द्री, ब्राह्मी, शतावरं, सपेददूब, हरी दूब, पाढल, आमरे, नागबला, वाद्यपुष्पी, (केशर ३ भाग, उशीर १ भाग चंदन १ भाग) और बिश्वक्से नकांता इत्यादि ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

साचेदेवमाशासीत। बृहन्तमवदातं हर्य्यक्षमोजस्विनंशुचिसत्वसंपन्नंपुत्रमिच्छेयमिति। शुद्धस्नानात्प्रभृत्यस्यैनिन्यमवदातयवानांमधुसर्पिर्भ्यांसंसृज्य श्वेतायागोःसवत्सायाःपयसालोड्यराजतेकांस्येवापात्रेकालेकालेसप्ताहंसततंप्रयच्छेत्। पानायप्रातश्चशालियवान्नविकारान् दधिमधुसर्पिर्भिःपयोभिर्वासंसृज्यभुंजीत।

अर्थ—यदि स्त्री ऐसी इच्छा करे कि, मेरे श्रेष्ठ और उज्ज्वल सिंहके समान तेजस्वी, पवित्र और सत्वसंपन्न ऐसा पुत्र होवे। तो शुद्ध स्नानसैं लेकर नित्य इस्को शुद्ध जवोंको सहत घृतमें मिलाय बछडावाली श्वेत गौके दूधमें भिजोय, चांदी अथवा कांसेके पात्रमें समयसमयमें सात दिन प्रातःकाल पीनेको देवे। तथा चावल, जो, के पदार्थोंको दही, सहत और घृतके साथ अथवा दूधके साथ भोजन करे।

तथासायमवदातशरणशयनासनयानवसनभूषणाचस्यात्। शश्वत्श्वेतंमहान्तमृषभमाजानेयंहरिचन्दनाङ्कितंपश्येत्। सौम्याभिर्मनोऽनुकूलाभिरुपासीतसौम्याकृतिवचनोपचारचेष्टांश्चस्त्रीपुरुषानितरानपिचेन्द्रियार्थानवदातान्पश्येत्। सहचर्य्यश्चैनांप्रियहिताभ्यांसततमुपचरेयुः। तथाभर्त्तानचमिश्रीभावमापद्येयातामित्यनेनविधिनासप्तरात्रंस्थित्वाष्टमेऽहन्याप्लुत्यसशिरस्काभर्त्रासहाहतानिवस्त्राण्याच्छादयेत् अवदातानिअवदातश्चस्रजोभूषणानिबिभृयात्॥

अर्थ—उसी प्रकार सायंकालमें स्वच्छ शैय्यापर सोना, शुभ आसन पर बैठना, तथा सुंदर सवारी, वस्त्र, भूषण, आदिका आश्रय लेना चाहिये। और सायंकाल तथा प्रातःकाल निरंतर श्वेतवर्ण और महान् बैलका तथा कुंकुमागर चंदनसैं पूजित उत्तम घोडेका दर्शन करे। सौम्य और मनके अनुकूल ऐसी स्त्री इस्के समीप रहा करे। तथा सुंदर है स्वरूप, वचन, उपचार, और चेष्टा, जिन्की ऐसैं स्त्री पुरुष तथा अन्य (पशुपक्षी आदि) इन्द्रियोंके अर्थ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध,) आदि उज्ज्वल पदार्थोंको देखे। तथा इसकी सहेली प्यार और हितसैं निरंतर इस्का उपचार करे। तथा इस्के पतिको इस्सैं मिलाप न होने देवे, इस प्रकार सात रात्रि-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पर्यंत रह कर आठवें दिन सशिरस्क स्नान करके पतिके साथ उज्ज्वल वस्त्र, भूषण' फूलोंके हार, आदिको धारण करे ।

ततोविधानंपुत्रीयं उपाध्यायःसमाचरेत् ॥

अर्थ–ऋतु कालके अनन्तर, मङ्गलपूर्वक आगे. जो विधि कहते हैं उस्को करे । जैसे कि, अथर्वण वेदका जानने वाला उपाध्याय (पुरोहित) पुत्रके निमित्त विधि-पूर्वक इष्टी करे, विधिपूर्वक कहनेका यह प्रयोजन है कि, जिस प्रकार वेदमें लिखा है उसी प्रकार करे न्यूनाधिक न करे । सो आगे लिखते हैं । यह प्रकरण चरककी ८ वीं अध्यायमें लिखा है ।

अथ पुत्रेष्टिविधिः ॥

तत्राचार्योब्राह्मणप्रयुक्तोऽनुपहतवस्त्रसंवीतश्चार्षभेचर्मण्युपविष्टोराजन्यप्रयुक्तोवैयाघ्रे आनडुहेवावैश्यप्रयुक्तोरौरवेबास्तेयेवाचतुरस्रंस्थंडिलंगोमयोदकाभ्यामुपलिप्योल्लिख्य दर्भैरास्तीर्य्य । वेणुयूपंदक्षिणेनब्रह्माणंव्यवस्थाप्यशुक्लकुसुमगन्धबलिभिरभ्यर्च्यार्ग्निप्रणीय संस्कृत्य पालाशीभिः समिद्भिरग्निमुपसमाधाय मंत्रोदकपूर्णपात्रमग्नेरग्नेस्थापयित्वा पुत्रजन्माशंस्याज्यं जुहुयान्महाव्याहृतिभिर्योषिच्चपुत्रार्थिनीसहभर्त्रापश्चिमतोग्नेरृत्विजोदक्षिणतः समुपविशेत् । ततोस्याब्राह्मणः प्रजापतिमुद्दिश्य यथाभिलषितसम्पादनाय मनसायोनौकाम्याभिष्टिंनिर्वपेत् " अनयोर्विष्णुर्योनिंकल्पयतु त्वष्टारूपाणिपिंशत्विति " ततश्चाज्येनस्थालीपाकमनिर्वाप्यनिर्जुहुयात् । यथाम्नायंचोपमन्त्रितमुदकपात्रमस्मैदद्यात् । सर्वानुदकार्थान्कुरुष्वेति । ततः समाप्तेकर्मणिपूर्वंदक्षिणंपादमभिहितंतीव्रदक्षिणमग्निमुपक्रमेत । ततः परिक्रम्यब्राह्मणान्स्वास्तिवाचायित्वासहभर्त्रा आज्यशेषंप्राश्नीयात् । पूर्वंपुमान्जघन्यंस्त्रीनचोच्छिष्टमवशेषयेत् इतिपुत्रीयविधानम् ।

अर्थ–तहां आचार्य रजोदर्शन सैं १६ दिन रात्रि ऋतुसंबंधी होते हैं इन्में चार रात्रिको त्याग कर शुभ दिन, घडी, मुहूर्त्त, नक्षत्र, और शुभ वारमें पुत्रेष्टी करावे । पुत्रेष्टी कर्त्ता, प्रातःकाल स्नानादि कर्म करके तथा पत्नीभी नवीन उदक-सैं स्नान कर मंगलीक वस्त्र भूषणोंको धारण कर स्वस्तिवाचन अभ्युदयिक कर्म करके, फिर संकल्प करावे " श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं पुत्रेष्टिंचकरिष्ये " तहां ब्राह्मणके योग्य नवीन वस्त्रसैं आच्छादित बैलके चर्मका आसन, राजाके योग्य व्याघ्र अथवा बैलके चर्मका आसन, वैश्यको रुरु बकराके चर्मका आसन है, उस्पै स्थिति हो चौकोन वेदीको लीप कुशासैं रेखा कर उस्पै कुशा बिछावे । पीछे पीले वासका स्तंबको खडा करे, और वेदीके दक्षिणमें ब्रह्माको स्थापित करे । सपेद फूल, चंदन, बलिदान आदिसैं पूजन करे । पीछे वेदीके पंचभूसंस्कार करके, अग्नि स्थापन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करे। ढाककी समिधासैं अग्निको प्रज्वलित करे, मंत्रित जलके पूर्णपात्रको अग्निके आगे स्थापन करे, तदनंतर पुत्रजन्मके लिये प्रशंसनीय आज्य (घृत) को (ओं-भूर्भुवःस्वः) इत्यादि महा व्याहृतियोंसैं हवन करे, उसी प्रकार स्त्रीभी पुत्रकी इच्छासैं पतिके साथ अग्निके पश्चिममें बैठे, और ऋत्विज अग्निके दक्षिणमें बैठे, पीछे उस स्त्रीको ब्राह्मण प्रजापतिके उद्देशसैं वांछित कामनाके अर्थ मन करके कुंडमें काम्यइष्टीको इन मंत्रोंसैं हवन करावे "अनयोर्विष्णुर्योनिंकल्पयतु त्वष्टारूपाणिपिंशतु, आसिञ्चतुप्रजापतिर्धातागर्भंदधातुतेस्वाहा ॥ ओंगर्भंधेहिसिनीवालिगर्भंधेहिसरस्वति॥ गर्भंतेअश्विनौदेवावाधत्तांपुष्करस्रजास्वाहा" तदनंतर चरु और घृत मिलायके ब्रह्मा, विष्णु, के नामसैं प्रधानाज्यहोम करे। इस प्रकार सात सात आहुती देवे। पीछे सब ब्राह्मण पूर्वोक्त पूर्णपात्रका जल लेके दोनों स्त्री पुरुषोंका "अपनः शोशुचेति" इन मंत्रोंसै मूर्धाभिषेक करे। पीछे अग्निका और सूर्यका उपस्थान करना चाहिये, तदनंतर अपने कुलरीत्यनुसार उदकपात्र इस पुरुषको देवे। "सर्वानुदकार्थान्कुरुष्वेति" इस प्रकार कर्मकी समाप्तिमें प्रथम दक्षिण पैरको धरती हुई तीव्र ज्वालावाली अग्निकी परिक्रमा करे, पीछे ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन पढ़ाय ब्राह्मणोंको भोजनदक्षिणासैं प्रसन्न कर, आशीर्वाद लेवे। तदनंतर आज्य और चरुशेषको पतिके साथ प्रथम पुरुष और पीछे स्त्री भोजन करे। उच्छिष्ट बाकी न छोडनी चाहिये। इस प्रकार पुत्रेष्टी त्रिवर्णको करनी चाहिये।

नमस्कारपरायास्तु शूद्रायामंत्रवर्जितम्।
अवंध्यएवंसंयोगः स्यादपत्यंचकामतः॥

अर्थ—शूद्रकी स्त्रीको नमस्कार है प्रधान जिस्में ऐसी पूर्वोक्त पुत्रेष्टी मंत्ररहित करानी चाहिये। अर्थात् शूद्रा स्त्रीको पुराण आदिके मंत्रोंसे अथवा "ब्रह्मणेनमः" "विष्णवेनमः" इत्यादि नाममंत्रोंसैं इष्टी करानी चाहिये, इस प्रकारकी इष्टी करके संयोग करे तो संयोग सफल हो और जैसे पुत्र कन्याकी इच्छा करे उसी प्रकारकी संतान होवे।

यातुस्त्रीश्यामंलोहिताक्षंव्यूढोरस्कंमहाबाहुंपुत्रमाशासीत।
यावाकृष्णंकृष्णमृदुकेशंशुक्लाक्षंशुक्लदन्ततेजस्विनमात्मवन्त
मेषएवानयोरपिहोमविधिः। किंतुपरिबर्हवर्णवर्ज्यःस्यात्।

अर्थ—जो स्त्री श्यामवर्ण लालनेत्र, विस्तीर्ण होती, और लंबी भुजावाले पुत्रकी इच्छा करे, तथा जो स्त्री कृष्णवर्ण रूपमें काले और नम्र केश, श्वेत नेत्र, श्वेत दांत, तेजस्वी, और आत्मवेत्ता ऐसैं पुत्रकी कामना करे इन दोनोंको

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पूर्वोक्त होम करना चाहिये, किंतु परिबर्हवर्ण (ग्रह सामग्री) वर्जित कर्त्तव्य है और पुत्रवर्णानुरूप आशीर्वाद लेने चाहिये ।

कर्मान्तेचक्रमंह्येतमारभेच्चविचक्षणः ।

अर्थ–इस प्रकार पुत्रेष्टी कर्मके अनंतर, आगे जो विधि कहते हैं उस्को बुद्धिवान् पुरुष करे ।

गर्भाधानमेंनियम ।

ततोपराह्णेपुमान्मासंब्रह्मचारीसर्पिः
स्निग्धःसर्पिःक्षीराभ्यांशाल्योदनंभुक्त्वा

अर्थ–तदनंतर १ महिने पर्यंत ब्रह्मचर्यव्रत धारण करनेवाला पुरुष, सायंकालको शरीरमें घृत मर्दन करके सुगंधित जलसैं स्नान कर घृत और दूधसैं स्निग्ध साठी चावलोंका भात भोजन करके स्त्रीके समीप जावे ।

गर्भाधानमेंस्त्रीकेनियम ।

मासंब्रह्मचारिणीतैलस्निग्धांतैलमाषोत्तराहा
रांनारीमुपेयाद्रात्रौसामभिर्नैश्चास्य

अर्थ–एक महिने पर्यंत ब्रह्मचर्यव्रत करनेवाली स्त्री, सुगंधित तैलका मालिस कर स्नान करे पीछे तिलके पदार्थ और उरदके पदार्थ प्रधान ऐसा भोजन करा जिसने ऐसी स्त्रीके समीप रात्रिमें पुरुष प्राप्त होकर, प्रिय, वचनोंसैं उस्को प्रसन्न कर, गमन करे । [मासंब्रह्मचारिणी] इस्के कहनेसैं यह प्रयोजन है कि-१ महिनेतक मनकरकेभी पुरुषकी इच्छा न करे ।

तथाचवाग्भटे ।

शुद्धशुक्रार्त्तवंस्वस्थं संरक्तंमिथुनंमिथः ।
स्नेहैःपुंसवनैःस्निग्धं शुद्धंशीलितबस्तिकम् ।

अर्थ–शुद्ध शुक्रार्त्तवके लक्षण कहकर अब गर्भसंभवके पूर्व कर्त्तव्यकर्मको कहते हैं । शुद्ध हैं शुक्र और आर्त्तव जिन्होंके, और किंचिन्मात्रभी रोग जिन्के देहमें होवे नहीं, तथा परस्पर अनुरागयुक्त अर्थात् अन्योन्य दर्शनमात्रसैंही कामबाणों करके विद्ध हृदय जिन्होंका ऐसे स्त्री पुरुष पुंसवन कर्त्ता (फलघृत, कल्याणघृत और प्रसारणी घृत आदि) स्नेहोंसैं देहको स्निग्ध करे, तथा वमनविरेचनद्वारा देह शुद्ध करे, और अभ्यास करके बस्तीका अनुष्ठान करना चाहिये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इस जगे (संरक्त) कहनेका यह प्रयोजन है कि, प्रीतवाली स्त्रीका सेवन करे. प्रीतरहित स्त्रीके सेवनसैं अनेक दुःख और मरणआदिका भय होता है । जैसैं लिखा है ।

शस्त्रेणवेणीविनिगूहितेन विदूरथंस्वांमहिषींजघान ।
विषप्रदिग्धेनचनूपुरेण देवीविरक्ताकिलकाशिराजम् ॥
एवंविरक्ताजनयंतिदोषान्प्राणच्छिदोऽन्यैरनुकीर्त्तितैःकिम् ।
रक्ताविरक्ताःपुरुषैरतोऽर्थात्परीक्षितव्याःप्रमदाःप्रयत्नात् ॥

अर्थ–विदूरथ महाराजकी राणी, विदूरथ महाराजको बालोंमें छिपे हुए शस्त्र (छुरी) सैं मारती हुई । उसी प्रकार काशीनरेशको उन्की राणी विषलिप्त नूपुर (पायजेम) सैं वध करती हुई । इस प्रकार विरक्त स्त्री प्राणनाशक दोषोको प्रगट करती है । और बहुत कहना क्या है ! पुरुषको चाहिये कि अनुरक्त और विरक्त स्त्रीकी परीक्षा करके पश्चात् संभोग करना उचित है ।

पृथक्पृथक्उपचारकहतेहैं ।

नरंविशेषात्क्षीराज्यैर्मधुरौषधसंस्कृतैः ।

अर्थ–इस प्रकार दोनों स्त्री पुरुषोंकी तुल्य कर्त्तव्यता कह कर, अब इन दोनोंका पृथक्पृथक् उपचार कहते हैं । जैसैं कि पुरुषको विशेष करके मधुरप्राय मधुर प्रभाववाली जीवनीयादि औषधोंसे संस्कार करे हुए दूध घृतोंका सेवन करना चाहिये [विशेषेण] इस पदके कहनेसैं यह प्रयोजन है कि संस्कृत दूध घृतका पुरुषकोही सेवन करना चाहिये स्त्रीको इन्का सेवन नहीं करना चाहिये ।

नारींतैलेनमाषैश्च पित्तलैःसमुपाचरेत् ।

अर्थ–स्त्री तैल और माष (उरद) के पदार्थों का तथा पित्तल पदार्थोंका सेवन करे । पित्तल पदार्थ रुधिरकी वृद्धिके हेतु सेवन कर्तव्यहै, अब इस जगे यहभी जानना उचित है कि स्त्री पुरुषका संयोग कितनी अवस्थामें होना उचित है यह सुश्रुतकी दशवीं अध्यायमें लिखा है परंतु हमारी समझ में इसी जगे लिखना अच्छा है सो लिखते हैं ।

अथास्मैपञ्चविंशतिवर्षायद्वादशवर्षापत्नीमावहेत् ।

अर्थ–विद्यासंपन्न पच्चीस वर्षकी अवस्था होने पर पुरुषको बारह वर्षकी अवस्था वाली पत्नी होनी उचित है । परंतु वाग्भट इस सैं विपरीत कहते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पूर्णषोडशवर्षास्त्री पूर्णविंशेनसंगता । शुद्धेगर्भाशयेमार्गे रक्तेशुद्धेऽविलेहृदि ॥ वीर्यवंतंसुतंसूते ततोन्यूनाब्दयोःपुनः । रोग्यल्पायुरधन्योवा गर्भोभवतिनैववा ॥

अर्थ-पूर्ण १६ वर्षकी स्त्री, २० वर्षकी अवस्थावाले पुरुषके साथ संग करनेसैं, शुद्ध गर्भाशय और गर्भाशयका मार्ग तथा रुधिर, वीर्य, पवन और हृदयके शुद्ध होनेसैं स्त्री सामर्थ्यवान् पुत्रको प्रगट करे, [परंतु वाग्भटकृत संग्रहमें वाग्भटही लिखते हैं कि, १६ वर्षकी स्त्री २५ वर्ष वाले पुरुषके साथ पुत्र होनेके निमित्त संग करे] इससे न्यून अवस्था वाले अर्थात् १५ वर्ष और १८ वर्ष के स्त्री पुरुषके संयोग होनेसैं रोगी, अल्पायु, और दुष्ट बालक होता है अथवा ऐसी अवस्था वाले पुरषों के संग सैं गर्भ नहीं भी होता है ।

अल्पावस्थामेंसंगकरनेकेअवगुणसुश्रुतमेंभीलिखेहैं ।

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तपञ्चींवशतिः । यद्याधत्तेपुमान्गर्भं कुक्षिस्थःसविपद्यते ॥ जातोवानचिरंजीवेज्जीवेद्वादुर्बलेन्द्रियः। तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानंनकारयेत् ॥

अर्थ-जिस स्त्री की १६ वर्ष की अवस्था न हुई हो, उस्में २५ वर्ष की अवस्थासैं न्यूनवाला पुरुष गर्भस्थापन करे तो, वो गर्भ कूखमेंही नष्ट हो जावे; यदि गर्भसैं जीके उत्पन्नभी होवे तो बहुत जीवे नहीं, और जीवे तो दुर्बलइन्द्रीवाला होवे । इसी कारण अत्यंत बाल्य अवस्थावाली स्त्रीमें पुरुषको गर्भाधान करना न चाहिये । सुश्रुतमें जो किसीने बारह वर्षकी अवस्थावाली स्त्रीमें गर्भाधान करना लिखा है सो सर्वथा असत्य है क्यों कि वाग्भट और मनु महाराजसैं विरुद्ध है हमको ऐसा निश्चय होता है कि यह पाठ किसी आधुनिक पोप महात्माका कल्पित है ।

तथाप्रमाणान्तर ।

चतस्रोवस्थाशरीरस्यवृद्धियौंवनंसंपूर्णताकिञ्चित्परिहारिणिश्चेति । आशोडषाद्वृद्धिः । आपञ्चविंशतेर्यौवनम् । आचत्वारिंशतःसम्पूर्णता । ततःकिञ्चित्परिहारिणिश्चेति ॥

अर्थ-इस शरीरकी चार अवस्था हैं, १ वृद्धि २ यौवन ३ संपूर्णता और ४ किंचित्परिहारिणि । जन्मसैं ले १६ वर्षतक वृद्धि अवस्था कहाती है । अर्थात् सोलह वर्षतक अवस्था बढती है, और २५ सैं ले ४० वर्षपर्यंत संपूर्णता अवस्था

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कहाती है। तिस्के उपरांत अर्थात् ४० वर्ष सैं उपरांत पारिहारिणि अर्थात् कुछ कुछ अवस्था घटने लगती है, इसीसैं लिखा है।

पञ्चविंशेततोवर्षे पुमान्नारीतुषोडशे।
समत्वागतवीर्यौतौ जानीयात्कुशलोभिषक्॥

अर्थ-पुरुष २५ वर्षका हो, और स्त्री १६ वर्षकी हो, इस प्रकार समान अवस्थावाले स्त्री पुरुषोंके (प्राप्त हुआ) वीर्य कुशल वैद्य जाने।

तथाचमनुः।

त्रीणिवर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमतीसती।
ऊर्ध्वन्तुकालादेतस्मा द्विन्देतसदृशंपतिम्॥

अर्थ-रजोदर्शवती कुमारी जिस दिनसैं रजोदर्श होवे, उस्से तीन वर्ष पर्य्यंत नियम सैं स्थित रहे, इस कालके उपरांत अर्थात् ३ वर्षके उपरांत सदृश पतिको प्राप्त होवे यह मनुका वाक्य है।

गमनयोग्यपुरुष।

स्नातश्चन्दनालिप्ताङ्गः सुगन्धसुमनोर्चितः। भुक्तपुष्पः सुवसनः सुवेषसमलंकृतः॥ ताम्बूलवदनस्तस्यामनुरक्तोऽधिकस्मरःपुत्रार्थीपुरुषोनारी मुपेयाच्छयनेशुभे॥

अर्थ-स्नान करके चन्दन लगाय, अतरआदि सुगंधित पदार्थोंसैं देहको सुगंधित कर, भोजन करके, पुष्पोंकी मालाआदि धारण करे हुए, उज्ज्वल वस्त्रोंको धारण करनेवाला तथा दिव्य भूषण धारण कर ताम्बूल (वीडा) मुखमें जिस्के, और अपनी प्रिया स्त्रीमें चित्त जिस्का और अत्यंत कामोद्दीपित पुरुष पुत्रकी इच्छा करके दिव्य सेजपर स्त्रीके पास जावे। इस जगे [भोजनशब्द करके वीर्यपुष्ट कर्त्ता जो वाजीकरणाधिकारमें रस, पाक, चूर्ण, और गोली, आदि लिखी हैं सो जानना] क्योंकि पेट भरे पुरुषको मैथुन करना वर्जित है और [अनुरक्तोधिकस्मरः। पुत्रार्थीपुरुषः] ये तीन पदोंके धरनेका यह प्रयोजन है कि, जिस स्त्रीमें चित्त न हो, तथा कामोद्दीपन जब तक स्वतः न होवे तावत्कालपर्य्यंत स्त्रीगमन नकरे। इस प्रकार गमन करनेसैं आनन्दकी प्राप्ति नहीं होती, और इस्मेंभी पुत्रकी इच्छा करके गमन करना चाहिये व्यर्थ वीर्यको न खर्च करे।

मैथुनकरनेमेंवर्ज्यपुरुष।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अत्यशितोऽधृतिःक्षुद्वान् सव्यथाङ्गःपिपासितः । बालो वृद्धोऽन्यवेगार्त्तस्त्यजेद्रोगीचमैथुनम् ॥

अर्थ–अत्यंत भोजन करा हुआ, धैर्य्यरहित, बुभुक्षित (भूंखा) पीडावाला, प्यासा, बालक, बूढा, अन्य वेग (मल मूत्रादि) सें पीडित, और रोगी ऐसें मनुष्यको मैथुन करना वर्जित है । १६ वर्षके भीतर अवस्थावाला बालक और ५० वर्षके उपरांत वृद्ध कहाता है ।

योग्यस्त्री कहते हैं ।

पुरुषस्यगुणैर्युक्ता विहितान्यूनभोजना ।
नारीऋतुमतीपुंसा सङ्गच्छेत्तुसुतार्थिनी ॥

अर्थ–पुरुषके गुणों करके युक्त, (अर्थात् स्नान कर, चंदन, सुगंध, पुष्प, सुंदर वस्त्र, आभूषण आदिको धारण करनेवाली, बीडीको चावती हुई, थोडा भोजन करनेवाली) ऋतुवंती पुरुषको चाहनेवाली, कामपीडित स्त्री पुत्रकी इच्छा करके पुरुषके पास जावे ।

अयोग्यस्त्री ।

रजस्वलाव्याधिमती विशेषाद्योनिरोगिणी । वयोधिका चनिष्कामा मलिनागर्भिणीतथा ॥ एतासांगमनात्पुंसां वैगुण्यानिभवन्तिहि ।

अर्थ–रजस्वला, रोगवाली, और विशेष करके योनिरोगवाली, पुरुषकी अवस्थासें अधिक उमरवाली, काम रहित, मलीन, और गर्भवती, ऐसी स्त्रियों सें संग करने से पुरुषों को अवश्य दोष प्राप्त होते हैं । रोगवालीके कहनेसे स्त्रियोंके प्रदरादि रोग जानने, और योनिरोगके कहनेसे गरमी आदि रोग जानने । इस कहनेका यह प्रयोजन है कि, प्रदरादिरोगवालीके संग करनेसे जैसा बिगाड नहीं है जैसा गरमीवाली स्त्रीके संग करनेसे तत्काल दुःख होता है इसीसें [विशेष] शब्द कहा है ।

द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमापञ्चाशत्समास्त्रियाः ।
मासिमासिभगद्वारा प्रकृत्यैवार्त्तवंस्रवेत् ॥

अर्थ–बारह वर्षसे लेकर पचास वर्षकी अवस्थापर्यंत, महिनेकी महिने योनिद्वारा स्वतः स्वभावसे स्त्रियोंके रुधिर निकला करे, उसीको आर्त्तव और रजोदर्श कहते हैं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आर्त्तवस्रावदिवसादृतुःषोडशरात्रयः ।
गर्भग्रहणयोग्यस्तु सएवसमयःस्मृतः ॥

अर्थ–रुधिरस्रावके दिनसे लेकर सोलह रात्रिपर्यंत ऋतु रहे है। यही समय गर्भ ग्रहणके योग्य कहा है। यह समय चतुर्वर्णवाली सर्व स्त्रियोंके संमतहै। परन्तु ग्रंथांतरमें विशेष लिखा है।

तद्यथा।

स्नानदिवसादूर्ध्वंद्वादशरात्रावधिब्राह्मण्याः । दशरात्रावधिक्षत्रियायाः। अष्टरात्रावधिवैश्यायाः।षड्रात्रावधिशूद्रायाः। गर्भधारणेशक्तिः।

अर्थ–जैसे कि स्नानके दिनसे लेकर १२ रात्रिपर्यंत ब्राह्मणकी स्त्रीको, और १० रात्रिपर्यंत क्षत्रीकी स्त्रीको, और ८ रात्रिपर्यंत वैश्यकी स्त्रीको, तथा ६ रात्रिपर्यंत शूद्रकी स्त्रीको गर्भधारणकी शक्ति रहती है; परन्तु यह वाक्य किसी पोपका कल्पना करा हुआ है इसीसे मंतव्य नहीं है।

गर्भाधानमेंनिषिद्ध और विहितकाल।

आयुःक्षयभयाद्भर्ता प्रथमेदिवसेस्त्रियम्। द्वितीयेपिदिनेरत्यै त्यजेदृतुमतींतथा ॥ तत्रयश्चाहितोगर्भो जायमानो नजीवति। आहितोयस्तृतीयेऽन्हि स्वल्पायुर्विकलाङ्गकः अतश्चतुर्थीषष्ठीस्यादष्टमीदशमीतथा। द्वादशीवापियारात्रिस्तस्यांतांविधिनाव्रजेत् ॥

अर्थ–आयुक्षयके भयसे पुरुष प्रथम दिवस रजस्वला स्त्रीका संग न करे । उसी प्रकार दूसरे दिनभी ऋतुमती स्त्रीसे संभोग न करे, इन दोनों दिनोंमें स्थापन कराहुआ गर्भ प्रथम ठहरेही नहीं और यदि उत्पन्न भी होवे तो जीवे नहीं. और तीसरे दिन स्थापित कराहुआ गर्भ थोड़ी आयुष्य और विकल अंगवाला होय है, अतएव ४-६-८-१०-१२, इन रात्रियोंमें रजोदर्शवती स्त्रीको गर्भाधानकी विधिसे सेवन करे तीन दिन रजस्वला स्त्रीकी चांडाली, ब्रह्मघातिनी और रजकी संज्ञा लिखी है, सो केवल शास्त्रने भय दिखाया है परन्तु असल प्रयोजन यह है कि इन तीन दिनोंमें स्त्रीसंग करनेसे उसके रुधिरकी गरमी लिंगद्वारा प्रवेश होकर पुरुषके रुधिरके परमाणुओंको दूषित करती है और इसी कारणसे गरमी मस्तक-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

में प्रवेश होकर मनुष्यको उन्मत्त करदेती है तथा अत्यंत सेवनसे सूजाक, गरमी आदिके अनेक असाध्य रोग प्रगट होते हैं जिनसे प्राणी किसी प्रकार नहीं बचसके ।

चतुर्थादिदिवसेऽपिरजोनिवृत्तौस्त्रीपत्यासङ्गःच्छे
न्नतुरजोनिवृत्तौ । यतआह ।

अर्थ–रजोदर्शनिवृत्ति होनेमें पुरुष स्त्रीगमन करे, किंतु रजोदर्श होनेमें स्त्री-गमन न करे जैसे लिखा है ।

त्रिरात्रिस्त्रीवर्जनेमेंयुक्ति ।

नचप्रवर्त्तमानेरक्तेबीजंप्रविष्टंगुणकरंभवति । यथानद्यांप्राप्ति स्रोतःप्लाविद्रव्यंप्रक्षिप्तंप्रतिनिवर्तते नोर्ध्वंगच्छति । तद्वदे वद्रष्टव्यं तस्मान्नियमवर्तीत्रिरात्रंपरिहरेत् ।

अर्थ–जब तक योनिसैं रुधिर स्रवे तावत्कालपर्यंत स्त्रीसंग न करे, क्योंकि ऐसैं समयमें जो वीर्य योनिमें गिरे वह गुण कर्त्ता नहीं होय, अर्थात् गर्भधारण कर्त्ता नहीं होवे । जैसैं नदीके प्रवाहमें वहनेवाला काष्ठ आदि पदार्थ वहि जाता है । ऊपरको नहीं प्राप्त हो उसी प्रकार वहते हुए रुधिरमें वीर्य सिंचन करनेसैं वीर्य वहकर बाहर गिर जाता है । भीतर गर्भाशयमें नहीं रहे । अतएव नियमपूर्वक स्त्रीगमनमें तीन रात्रि वर्जित है. गयी आचार्य लिखे हैं कि, (तत्रप्रथमदिवस इत्यादि) यावत् आगेकी तीसरी अध्याय है उस्में यह सिद्धान्त करा है कि दृष्टार्त्तव ऋतुकाल स्त्रियोंके बारह दिनपर्यंत रहता है ।

उत्तरोत्तरदिवसोंमेंगमनकाफल ।

एषूत्तरोत्तरंविद्यादायुरारोग्यमेवच । प्रजा सौभाग्यमैश्वर्यं बलंचाभिगमात्फलम् ॥

अर्थ–पूर्वोक्त चतुर्थ आदि रात्रियोंमें गमन करनेसैं उत्तरोतर आयु, आरोग्य, संतान, सुभगता, ऐश्वर्य और बल इन्की प्राप्ति होती है । अर्थात् चतुर्थ रात्रिमें गमन करनेसैं, आयुष्य और आरोग्यकी प्राप्ति होवे । छटवीं रात्रिमें पुत्रकी प्राप्ति, आठवींमें सुभगता, दशवींमें ऐश्वर्यकी प्राप्ति, और बारवीं रात्रिमें गमन करे तो बलकी प्राप्ति होवे, और कन्याकी इच्छा करके विषम रात्रि, अर्थात् ५-७-९-११ इन रात्रियोंमें गमन करना चाहिये [त्रयोदशप्रभृतयोनिंद्याः] तेरवीं रात्रि सैं आदि ले १४-१५-१६ इत्यादि रात्रि स्त्री गमनमें वर्जित हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तथाचवाग्भटे।

ऋतुस्तुद्वादशनिशाः पूर्वास्तिस्रश्चनिन्दिताः।
एकादशीचयुग्मासु स्यात्पुत्रोऽन्यासुकन्यका॥

अर्थ–रजोदर्श होनेसैं लेकर, १२ रात्रिपर्यन्त ऋतुवती स्त्री रहती है। अर्थात् तीन दिनही ऋतुवती होती है, ऐसा नहीं किंतु, बारह रात्रिपर्यन्त रजोदर्श होता है। इन बारह रात्रियोंमें पहली तीन रात्रियोंमें गमन करना निषेध करा है। इन्में उत्तम बुद्धिवाला पुरुष गमन न करे। इसीसैं पुरुषको ब्रह्मचर्य करना लिखा है। और उसी प्रकार ग्यारवीं रात्रिभी निषेध है। और इस श्लोकमें जो (च) है उस्सैं तेरवीं रात्रिभी निषेध है। अर्थात् तेरवीं रात्रिमें गमन करनेसैं नपुंसक संतान होती है ऐसैं कोई आचार्य कहते हैं। समरात्रि ४, ६, ८, १०, १२, में गमन करनेसैं पुत्र होता है, अर्थात् इन रात्रियोंमें स्त्रीके आर्त्तव थोड़ा होता है. और विषम ५, ७, ९, रात्रियोंमें गमन करनेसैं कन्या प्रगट होती है, इन रात्रियोंमें पुरुषके वीर्य थोडा होता है, सम रात्रियोंमें रज (रुधिर) का थोडा होना और विषम रात्रियोंमे वीर्यका थोडा होना इन दोनोंका कारण अचिंत्य है, अर्थात् यह नहीं कह सक्ते कि सम रात्रियोंमें रज थोडा कौन कारणसैं होता है। और विषम रात्रियोंमें वीर्य थोडा होनेका कौन कारण है। यदि आहार विहारादि द्वारा विषम रात्रिमें शुक्र अधिक हो जावे और सम रात्रिमें शुक्र थोडा होनेसैं जो पुत्र होय वह पुरुष, स्त्रीके सदृश आकारवाला दुर्बल अथवा हीन अंगवाला होवे, सो लिखाभी है, "स्त्रियाःशुक्रेऽधिकेस्त्रीस्यात्पुमान्पुंसोऽधिकेभवेत्। तस्माच्छुक्रविवृद्ध्यर्थंवृष्यंस्निग्धंचसेवयेत्॥ एकादशीत्रयोदश्योस्तुनपुंसकमिति" और पुत्रकी इच्छा करके सम रात्रिमें पुंसवनादिक कर्म करे। और कन्याकी इच्छा करके स्त्री पुरुष दोनों विषम रात्रिमें पुंसवनादि संस्कार करैं।

ततःसायंकालीननित्यकर्मकृत्वोभौशुक्लाम्बरानुलेपन
माल्याभरणादिभिरलंकृतौस्वलंकृतंधूपितंगंधमाल्या
मलदीपयुक्तंगृहंप्रविशेताम्।

अर्थ–तदनंतर सायंकालको नित्य कर्म करके दोनों स्त्री पुरुष, सपेद वस्त्र, चंदन, माला, भूषण, आदिसैं शृंगार कर, झाड फनूस खिलोना चित्राम पडदे आदिसै सजे हुए, और अगर केशर आदि अष्टांग षोडशांग धूप (धूनी) सैं धूपित, तथा दीपावलियुक्त ऐसैं परम सुंदर अटा अटारी चित्रमारी सुखकारी गृहमें प्रवेश करे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ततोभर्त्ताअभग्नंजंतुवर्जितंसुखस्पर्शीवितानोपरिमंडितंम
श्चकंशोभनेमुहूर्त्तेसप्रियमारुह्यवक्ष्यमाणविधिमाश्रयेत ।

अर्थ-तदनंतर भर्त्ता अभग्न (टूटी न हो) और खटमल आदि जीवोंसैं रहित जिस्के स्पर्शमात्रसैं सुख होवे, तथा चंदोवा आदि जिस्पे तन रहा हो, ऐसी परम सुंदर मेजपर उत्तम मुहूर्त्तमें अपनी स्त्रीसहित प्राप्त हो आगे जो विधि कहेंगे उस्को करे. शय्याके लक्षण बृहत्संहितामें लिखे है सो देख लेना * वाग्भट कुछ विशेष कहता है ।

वाग्भटे ।

कर्मान्तेचपुमान्सर्पिःक्षीरशाल्योदनाशितः । प्राग्दक्षिणे
नपादेन शय्यांमौहूर्तिकाज्ञया ॥ आरोहेत्स्त्रीतुवामेन त
स्यदक्षिणपार्श्वतः । तैलमाषोत्तराहारांतत्रमंत्रंप्रयोजयेत् ॥

अर्थ-पूर्वोक्त पुत्रेष्टी कर्म करके पुरुष दूध भातका भोजन कर, ज्योतिषीकी आज्ञासैं शय्यापर प्रथम दहना पैर धरके स्थित होय, और तैल, उडद, आदि-के पदार्थोंका भोजन कर स्त्री बांयापैर प्रथम रख कर पतिके दहनी तरफ बैठे फिर पति ये मंत्र पढे । * प्रसंग वशसैं स्त्रीगमनका मुहूर्त्तभी लिखते हैं ।

ईयाद्रजोदर्शनकालतोनरो वशामहःपञ्चकमर्कसावनम् ।
विहाययुग्मासुविभावरीष्वतो ह्यूर्ध्वंसुदायादफलाप्तिकामः ॥

अर्थ-रजोदर्शके प्रथम ५ दिन त्याग कर, उपरांत सम रात्रियोंमें सुंदर संता-नरूप फलकी इच्छा करनेवाला पुरुष स्त्रीगमन करे ।

भद्राषष्टीपर्वारिक्ताश्चसन्ध्या भौमार्कार्कीनाद्यरात्र्यश्चतस्रः ।
गर्भाधानंत्र्युत्तरेन्द्रार्कमैत्रब्राह्मस्वातीविष्णुवस्वम्बुपेसत् ॥
केन्द्रात्रिकोणेपशुभैश्चपापैरुयायारिगैः पुंग्रहदृष्टलग्नेओजां
शकेऽब्जेपिचयुग्मरात्रौ चित्रादितीज्याश्विषुमध्यमंस्यात् ॥

अर्थ-भद्रा छट्ट, पर्व (१४ ८-३०-१५-ये तिथी और संक्रांत), ४ -९-१४-ये तिथी, प्रातःकाल और सायंकाल ए दोनों संध्या, तथा मंगल, सूर्य, शनि,

---

* असनस्यंदनचंदनहरिद्रासुरदारुतिन्दुकीशालाः । काश्मर्यजनपद्मकशाकावार्शिशपा चशुभाः॥प्रतिषिद्धवृक्षनिर्मितशयनासनसेवनात्कुलविनाशः । व्याधिभयव्ययकलहा भवन्त्य नर्थाश्चनैकविधाः ॥ इत्यादिर्चिंतनीयम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

येवार [कोई आचार्य बुधवार नपुंसक होनेसें उस्कोभी वर्जित करते हैं] तथा रजोदर्श होनेकी प्रथम चार रात्रि ये स्त्रीगमनमें निषेध हैं * तथा उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, मृगशिर, हस्त, अनुराधा, रोहिणी, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, और शतभिषा इन नक्षत्रों में गर्भाधान करना उत्तम है ॥ २ ॥ अब लग्नबल कहते हैं, केन्द्र (१. ४. ७. १०.) त्रिकोण (५. ९.) स्थानों में शुभ ग्रह बैठे होवे, और ३. ११. ६. इन स्थानों में पाप ग्रह पडे हो, तथा, पुरुष ग्रहों करके वीक्षित लग्न हो, और विषम राशि के नवांशक में चंद्रमा पडा हो, तथा, सम रात्रियों (६. ८. १०. १२.) में पुत्र की इच्छावाला, और विषम रात्रियों में कन्या की इच्छावाला पुरुष स्त्रीगमन करे अर्थात् गर्भाधान करे । और चित्रा, पुनर्वसु, तथा अश्विनी इन नक्षत्रों में गर्भाधान करना मध्यमफल देता है। अब गर्भाधान में वर्जित स्त्री पुरुष कहते हैं।

यथाचरके।

तत्रान्याचिताक्षुधितापिपासितभीताविमनाशोकार्त्ताक्रुद्धान्यश्चपुमांसमिच्छन्तीमैथुनेचाभिकामानगर्भंधत्तेविगुणांवा प्रजांजनयतिअतिबालामतिवृद्धांदीर्घरोगिणीमन्येनविकारेणोपसृष्टांवर्जयेत् पुरुषस्याऽप्येतएवदोषाः।

अर्थ–अन्य पुरुष से रक्षित, क्षुधावाली, प्यासी, भयभीत, संभोगकी इच्छा रहित, शोचसे व्याकुल, क्रोधयुक्त, अन्य पुरुषकी इच्छा करनेवाली, और जो केवल मैथुनसुखके निमित्त संग करा चाहे, ऐसी स्त्री गर्भ नहीं धारण करे। यदि गर्भ रहभी जाय तो दुष्टसन्तानको प्रगट करती है । अतिबाल्य अवस्थावाली, अतिवृद्ध, बहुत दिनों की रोगिणी, और अन्य विकारों से दूषित, ऐसी स्त्रियों का संग करना वर्जित है। और जो दूषण स्त्रियों के कहे हैं वोही दूषणवान् पुरुषभी स्त्रियों के लिये वर्जित है।

अतः सर्वदोषवर्जितौस्त्रीपुरुषौसंमृज्येयातां। संजातहर्षौमैथुनेचानुकूलाविष्टगंधंस्वास्तीर्णं सुखशयनमुपकल्प्य

---

*गंडांतंत्रिविधंत्यजेन्निधनजन्मर्क्षंचमूलान्तकं दास्रंपौष्णमथोपरागदिवसंपातंतथावैधृतिम्। पित्रोः श्राद्धदिनंदिवाचपरिघाद्यर्धस्वपत्नीगमे भान्युत्पातहतानिमृत्युभवनंजन्मर्क्षतः पापभम् ॥ १ ॥ मुहूर्त्तमार्त्तण्डेतुश्राद्धदिवसस्यार्वाग्दिनमपिगर्भाधानेपरिहृतम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मनोज्ञंहितमशनमाशित्वानात्याशितौदक्षिणपादेन पुमा
न्स्त्रीवामेनारोहेत् तत्रमंत्रंप्रयुंजीत ।

अर्थ–अतएव इष्ट सुगंधित पदार्थों से व्याप्त, ऐसी सुखशय्या को बिछाय, तथा चित्तको प्रिय ऐसे पदार्थों को भोजन करके और अत्यन्त भोजन न करा होय तथा प्राप्त हुआ है हर्ष जिनको मैथुन में अनुकूल ऐसे सर्व दोष वर्जित दोनों स्त्री पुरुष मिलकर शय्याके ऊपर चढें, तहां पुरुष प्रथम दहना पैर रक्खे और स्त्री वाम पैर धरके चढे, तदनन्तर आगे जो मंत्र कहे हैं उनको पढे ॥

दक्षिणकरेणपतिर्वध्वाउपस्थमभिमृश्यजपति ।

ॐपूषाभगंसवितामेददातु रुद्रःकल्पयतुललामगुंविष्णु
र्योनिंकल्पयतु त्वष्टारूपाणिपिंशतुआसिंचतु प्रजापति
र्धातागर्भंदधातुमे।

अर्थ–पति दहने हाथ से स्त्रीका भग स्पर्श कर ये मंत्र पढे ।
तदनन्तरपतिपूर्वमुख अथवा उत्तरमुखबैठकर
इनमंत्रोंसें स्त्रीको अभिमंत्रितकरे ।

ॐअहिरसिआयुरसिसर्वतःप्रतिष्ठासिधातात्वांदधातु विधा
तात्वांदधातु ब्रह्मवर्चसाभवेति । ब्रह्माबृहस्पतिर्विष्णुःसो
मः सूर्यस्तथाश्विनौभगोथमित्रावरुणौ वीरंददतुमेसुतं
सांत्वयित्वाततोऽन्योन्यं संविशेतांमुदान्वितौ ॥
उत्तानातन्मनायोपि तिष्ठेदङ्गैःसुसंस्थितैः ॥

अर्थ–मंत्रपाठके अनन्तर प्रिय वचन कह प्रीत उत्पन्न करके मैथुन भावको प्राप्त होय, तथा हर्षपूर्वक स्त्री पति में मनको लगाय, सर्व अवयवोंको यथावस्थित करके उत्तान (सीधी) लेट जावे, चित्त लेटनेका प्रयोजन कहते हैं ।

तथाहिबीजंगृह्णाति दोषैः स्वस्थानमास्थितैः ।

अर्थ–वातादि दोषों को अपने २ स्थानमें स्थित रहने से स्त्री को उसी प्रकार वीर्य ग्रहण करना चाहिये ।

तथाचसंग्रहेचोक्तम् ।

नचासावधस्तिष्ठेत् । तथाहिस्त्रीचेष्टः पुमान्जायते पुंचेष्टा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वास्त्रीच। नचन्युब्जांपार्श्वगतांवासेवेत। न्युब्जायावातो बलवान्सयोनिंपीडयति। दक्षिणपार्श्वगायाःश्लेष्मापीडितश्चुतोऽपिदधातिगर्भाशयम्। वामपार्श्वगायास्तत्पित्तंविदहतिरक्तशुक्रे। तस्मादुत्तानाबीजंगृह्णीयात्। तस्याहियथास्थानमवतिष्ठन्तेदोषाः पर्याप्तंचैनांशीतोदकेनपरिषिंचेत्

अर्थ–पुरुष को स्त्री के नीचे रहकर मैथुन करना वर्जित है इस प्रकार मैथुन-से जो गर्भ रहता है, उस से स्त्री कीसी चेष्टावाला लड़का उत्पन्न होता है। अथवा पुरुषकी चेष्टावाली कन्या होती है, तथा कुबडी होकर जो स्त्री समीप प्राप्त हो उस्सें मैथुन न करे। क्योंकि कुबडी स्त्रीके वात प्रबल रहती है, वह वात योनिको पीडित करती है, इसी सैं गर्भ नहीं रहता। तथा दहनी करवटवाली स्त्रीके कफ पीडित होकर गिरता है उसीसैं गर्भाशय भर जाता है। और वांई करवटवाली स्त्रीके रक्त शुक्रको पित्त दहन (भस्म) कर देता है। इसी सैं स्त्री उत्तान अर्थात् चित्त (सीधी) लेट कर वीर्य ग्रहण करे। सीधी लेटने वाली स्त्रीके सर्व दोष अपने अपने स्थानमें स्थिर रहते हैं।। जब वीर्य ग्रहण कर चुके तब इसको शीतल जलसैं सेचन करे।

प्रसंगवशभगकीतीननाड़ियोंकेवर्णन।

मनोभवागारमुखेऽबलानां तिस्रोभवन्तिप्रमदाजनानाम्।
समीरणाचन्द्रमुखीचगौरी विशेषमासामुपवर्णयामि॥

अर्थ–कामगृह (भग) के मुखमें स्त्रियोंके तीन प्रकारकी नाड़ी होती हैं। तिनमें एक समीरणा, दूसरी चन्द्रमुखी और तीसरी गौरी, इनके भेद अब हम वर्णन करते हैं।

प्रधानभूतामदनातपत्रे समीरणानामविशेषनाडी।
तस्यामुखेयत्पतितंतुवीर्यं तन्निष्फलंस्यादितिचन्द्रमौलिः॥ २॥

अर्थ–मदनरूपी छत्रमें प्रधान भूत ऐंसी जो समीरणानामकी विशेष नाड़ी है, उस नाड़ीके मुखमें जो वीर्य गिरता है, वह निष्फल जाता है। ऐसैं चन्द्रमौलि आचार्य कहता है।

याचापराचान्द्रमसीचनाडी कन्दर्पगेहेभवतिप्रधाना।
सासुन्दरीयोषितमेवसूते साध्याभवेदल्परतोत्सवेषु॥ ३॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–दूसरी चान्द्रमसी नामक नाड़ी कामगृहमें प्रधान होती हैं । उस नाडीमें वीर्य पड़ने सैं वह स्त्री कन्या उत्पन्न करती हैं और वह थोडेही संभोग उत्सव सैं प्रसन्न हो सक्ती हैं ।

गौरीतिनाडीयदुपस्थगर्भे प्रधानभूताभवतिस्वभावात् ।
पुत्रंप्रसूतेबहुधाङ्गनासा कष्टोपभोग्यासुरतोपविष्टा ॥ ४ ॥

अर्थ–स्त्रीकी भगमें स्वभावसे प्रधानभूत ऐसी गौरी नामक नाड़ी है । [उसमें वीर्य पडनेसैं] वह स्त्री बहुधा करके पुत्र प्रगट करती है और संभोगके समय पुरुषसे बड़े कष्ट सैं प्रसन्न होती हैं ।

गर्भाशयकास्वरूप ।

शङ्खनाभ्याकृतियोंनिरुयावर्त्तासाप्रकीर्त्तिता । तस्या स्तृतीयेत्वावर्त्ते गर्भशय्याप्रतिष्ठिता ॥ १ ॥ यथारोहि तमत्स्यस्य मुखंभवतिरूपतः । तत्संस्थानांतथारूपां गर्भशय्यांविदुर्बुधाः ॥ २ ॥

अर्थ–स्त्रीकी भग शंखके समान तीन त्रिवलीदार होती हैं, उसके तीसरे आर्त्तव (आंटे) में गर्भ शय्या प्रतिष्ठित है । जैसी रोहित मछलीके मुखकी छबि होतीहै, उसीके प्रमाण और उसीके सदृश रूप गर्भाशयका पण्डित कहते हैं । तात्पर्य यह है कि जैसैं रोहित मछली जलमें रहती है उसी प्रकार गर्भाशयकी स्थितिभी पित्ताशय और पक्वाशयके बीचमें है । और जैसा रोहित मछलीका मुख छोटा और आशय बडा होता है, उसी प्रकार गर्भाशयका मुख छोटा और आशय बडा होता है । गर्भाशयका १ नम्बरका चित्र देखो ।

एवंतामभिसङ्गम्य पुनर्मासाद्व्रजेदसौ।मासादूर्ध्वंमितिशेषः।अव्वाग्गमनेनगर्भद्वारविघट्टनात् गर्भच्युतिप्रसङ्गः स्यात् । केचित्तुपुनःपुष्पदर्शनेनगर्भालाभनिश्चयेमासादूर्ध्वंगच्छेत् लब्धगर्भेनगच्छेदिति ।

अर्थ–इस प्रकार एकवार स्त्री गमन करके, फिर एक महिना होनेके उपरांत गमन करना चाहिये, कारण यह है कि महिनेके भीतर गमन करनेसैं गर्भद्वार खुल कर गर्भ गिर जाता है । कोई आचार्य कहते हैं कि महिना होने सैं यदि स्त्री रजोदर्शवती होय तो जाने कि गर्भ नहीं रहा इसी कारण पूर्वोक्त विधि सैं फिर स्त्री गमन करे और यदि स्त्री कपड़ों सैं न होय तो फिर गमन नहीं करना चाहिये।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गर्भ रहने सें स्त्रीसंग त्याज्य है और गर्भ न रहने सें स्त्री गमन करने योग्य है, इसी सें सद्योगृहीतगर्भा स्त्रीके लक्षण कहते हैं।

शुक्रशोणितयोर्योनेरस्रवोऽथश्रमोद्भवः।
सक्थिसादः पिपासाच ग्लानिः स्फूर्तिर्भगेभवेत्॥

अर्थ–शुक्र और रुधिरका योनि सें स्राव न होय, श्रम होय (जैसा मेहनत करने सें परिश्रम होता हैं) जंघाओंका जिकड़ना, प्यासका लगना, ग्लानि होय, और योनिमें स्फूर्त्ति (फडकना) होय, इन लक्षणों सें गर्भ रहा जानना। विशेष लक्षण तृतीयाध्यायमें कहेंगे।

गर्भवतीकाआचारकहतेहैं।

लब्धगर्भायाश्चैतेष्वहःसुलक्ष्मणावटशुङ्गासहदेवाविश्वे
देवानामन्यतमाक्षीरेणाभिप्लुत्यत्रींश्चतुरोवापिबिन्दून्दद्यात्
दक्षिणेनासापुटेपुत्रकामानतान्निष्ठीवेत्।

अर्थ–स्त्री गर्भवती होनेके उपरांत उसी दिन लक्ष्मणा वनस्पति, तथा वडकी कोपल, तथा पीले पुष्पकी कराही, और गुडशकरी, (अथवा सपेद फूलकी बला) इनमें किसी एकको दूध सें पीस, तीन वा चार बूंद पुत्रकी इच्छा करनेवाली स्त्री की नासिकाके दहनें नथनेमें सिंचन करे। उसे स्त्रीको थूकना न चाहिये।

लक्ष्मणाकास्वरूप।

तत्रकाकारिरक्ताल्पबिन्दुभिर्लक्षितच्छदा।
लक्ष्मणापुत्रजननी वस्तगंधाकृतिर्भवेत्॥

अर्थ–लक्ष्मणा वनस्पतिके पत्ते पर घूघूके रुधिर समान लाल २ बूंद थोडी २ सर्वत्र होती है। और आकृतिमें बनतुलसीके सदृश होती है। उसको पुत्र कर्त्ता जानना।

उखाडनेऔरलानेकीविधि।

तांशरत्कालेपुष्पफलोपेतांदृष्ट्वाशनिदिनेसंध्यायां तस्या
श्चतुर्षुभागेषुखदिरकीलकान्निखाद्यापरेद्युर्हस्तमूलपुष्ट्येर्यो
गंगतेसवितरिमंत्रवद्गृहीत्वासमानवर्णवत्सगोक्षीरेणयथा
विधिनस्यंदद्यात्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–लक्ष्मणाको शरद् ऋतुमें पुष्प फल संयुक्त देख कर, शनिवारके सायंकालको उस्के चारों कोनोंमे खैरकी लकडीकी चार कील गाड़ देवे, और, धूप, दीप, रोरी, अक्षत और नैवेद्य सैं पूजन कर निमंत्रण कर आवे, फिर जब हस्त, मूल अथवा पुष्य नक्षत्रपर सूर्य आवे उस दिन जाय कर औषध उखाड़नेके जो मंत्र हैं उन्हों सैं उस्को जड़ सुद्धां उखाड कर घरले आवे पिछाड़ी फिरकर न देखे । पीछे बछडावाली एकरंग गौके दूधमें पीस पुत्रकी इच्छावाली स्त्रीको दहने नथनेमें, और कन्यावालीको वाम नथने सैं विधिपूर्वक नस्य देवे ।

वाग्भटेविशेषमाह ।

अव्यक्तःप्रथमेमासि सप्ताहात्कललोभवेत् ।
गर्भपुंसवनान्यत्र पूर्वव्यक्तेप्रयोजयेत् ॥

अर्थ–सात दिनके प्रथम गर्भ गोलक, कफ सैं पिंडीभूत होता है । और सात दिनके उपरांत एक महिने पर्यंत गर्भ कलल अर्थात् कीचके समान अव्यक्तरूप होता है इसी कलल स्वरूप गर्भमें जबतक स्त्री पुरुषादि चिन्हकी उत्पत्ति न होय तिस्के पूर्व (प्रथम महिनेमें) पुंसवनादि (स्त्री पुरुष प्रगट कर्त्ता औषधोंके प्रयोग) करने चाहिये ।

शिष्य–(शुद्धेशुक्रार्त्तवेसत्वः स्वकर्मक्लेशचोदितः । गर्भःसंपद्यतइत्युक्तं) अर्थात् आप पहले यह बात कह आए हो कि शुद्धवीर्य और आर्त्तवमें कर्मप्रेरित जीव गर्भरूप को प्राप्त होता है । यदि पूर्वकर्मानुसार स्त्री होना लिखा है तो, अनेक यत्न करने सैं भी उस गर्भ को पुरुष नहीं कर सक्ते, इसी सैं हे गुरो ! मेरी समझ में पुंसवन कर्म करनाही असत्य है ।

गुरु–तुमने कहा सो ठीक है, परंतु इस का यह उत्तर है कि, " बली पुरुषकारोहिदैवमप्यतिवर्त्तते " अर्थात् बलिष्ठ पुरुषार्थ निर्बल दैव को जीत लेता है।और उसी प्रकार बलिष्ठ कर्म पुरुषार्थ को जीत अपना फल करता है,इसी सैं पूर्वजन्मकृत बलिष्ठ कर्म करके प्राप्त जो कन्या गर्भ, उस्का पुंसवनादि कर्म रूप पुरुषार्थ हजारो करने सैं भी कदाचित् पुरुष नहीं कर सक्ते । जैसैं लिखा है ।

दैवंपुरुषकारेण दुर्बलंह्युपहन्यते ।
दैवेनचेतरत्कर्मप्रकृष्टेनोपहन्यते ।

अर्थ–बलिष्ठ पुरुषार्थ (उद्योग) सैं दुर्बल दैव नष्ट होता है, और बलिष्ठ दैव (प्रारब्ध) सैं बलहीन पुरुषार्थ नष्ट होता है, अतएव पुंसवनादि क्रियाओंके करने सैं सिद्ध असिद्धके अनुमान सैं पूर्वजन्मकृत कर्मका हीनबल और प्रबल-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ताका निश्चय होता है। तात्पर्य यह है कि, पुंसवनादि क्रिया करनेसें यदि गर्भाधान हो कर पुत्रोत्पत्ति होनेसें पूर्वजन्मके कर्मको हीन बली जाने, और पुंसवनादि कर्म करनेसें संतान न होवे तो दैव (पूर्व जन्मके संस्कारको) प्रबल जानना, परंतु हमारी समझमें तो पुरुषार्थही मुख्य है यदि पुरुषार्थ करनेसें जो कार्य सिद्ध न होय तो जाने कि हमारे पुरुषार्थमेंही कुछ कसर रही है। यदि ऐसा न मानोंगे तो फिर आयुर्वेद (वैद्यक शास्त्र) को सर्वथा असत्यता आवेगी। कदाचित् तुम यह कहो कि अनेक मनुष्य औषध सेवन करते करते मर गए ऐसा हमने प्रत्यक्ष देखा है, तो ऐसें बुद्धिवालों सें हमारा यही उत्तर है कि, जो औषध खाते खाते मर गए उन्होंने अपना निदान यथार्थ नहीं करा, यदि निदान ठीक हो जाता तो वह रोग कदाचित् न रहता. यथार्थ निदान करके जो औषध दीनी जाती है वह अपना चमत्कार शीघ्र दिखाय देती परंतु आज कल यथार्थ निदानके जाननेवाले क्या इस भारतवर्षमें और क्या दुसरी विलायतोंमें थोडेही जहां तहां निकले और नहीं भी निकले, इस निदानकी विशेष व्याख्या निदान प्रकरणमें करी जावेगी।

कदाचित् तुम कहो कि ऐसाही तुम मानते हो तो फिर मनुष्य औषधों सें अपने मरणरूप रोगका उपाय क्यों नहीं कर लेवे, इस्में हम इतना कहते हैं कि "अतोमृत्युरवार्यःस्यात्किंतुरोगान्निवारयेत्" अर्थात् रोग दूर हो सक्ते हैं परंतु मृत्यु दूर नहीं हो सके, यह शार्ङ्गधर कहते हैं।

अथपुंसवनप्रयोग।

पुष्येपुरुषकंहैमं राजतंवाथवायसम्। कृत्वाऽग्निवर्णं
निर्वाप्य क्षीरेतस्यांजलिंपिबेत्॥

अर्थ–पुष्यनक्षत्रमें सोने वा चांदीका अथवा लोहका पुतला बनावे, उस पुतलेको अग्निमें डाल कर खूब धमावे, जब अग्निके समान लालवर्ण हो जावे, तब निकाल कर दूधमें बुझावे, उस दूधको ४ पल स्त्रीको पिलाना चाहिये तो उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होय।

गौरदण्डमपामार्गजीवकर्षभशैर्यकान्।
पिबेत्पुष्येजलेपिष्ट्वानेकद्वित्रिसमस्तशः॥ *

---

* क्षीरेणश्वेतबृहतीमूलंनासापुटेस्वयम्।
पुत्रार्थंदक्षिणेसेचेद्वामेदुहितृवांछया॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–सपेद दंडका ओंगा, तथा जीवक, ऋषभ और कटसरैया, इन्को पृथक् २ अथवा दो दो, अथवा सबको एकत्र कर जलमें पीस पुष्य नक्षत्रमें पीवे तो सुन्दर संतानकी प्राप्ति होय ।

पयसालक्ष्मणामूलं पुत्रोत्पादस्थितिप्रदं । नासयास्ये नवापीतं वटशुङ्गाष्टकंतथा ॥ औषधीर्जीवनीयाश्चबाह्यान्तरुपयोजयेत् ॥

अर्थ–दूधमें लक्ष्मणा औषधकी जडका कल्क करके पीने सैं, अथवा नास लेने सैं जिस स्त्रीके पुत्र न होता हो उस्के पुत्र होवे और जिस्के होता हो परंतु मर जाता हो उस्के चिरंजीव पुत्र हो । उसी प्रकार आठ बडके नवीन अंकुर, दूधमें पीनेसै दीर्घायुवाला पुत्र होय । (प्रभावको अचिंत्य होनेसैं यहां वडके आठ अंकुरोंका ग्रहण है) उसी प्रकार जीवनीय (काकोली क्षीरकाकोली आदि) औषधोंको बाह्य और अभ्यंतर योजना करे। तहां बाहर स्नान, उवटने आदि द्वारा कार्योंमें लेवे, और खाने, पीने आदि भीतरके प्रयोगमें लेनी चाहिये ।

यच्चान्यदपिब्राह्मणाब्रूयुराप्तावापुंसवनमिष्टंतच्चानुष्ठेयम् ।

अर्थ–और जो अन्य औषध ब्राह्मण अथवा सत्पुरुष, इष्ट पुंसवन बतावे जैसे (शिवलिंगी का बीज, मोरशिखा आदि हैं) उसको भी करना उचित है, विशेष पुंसवन की औषध वंध्याकी चिकित्सा में लिखेंगे ।

केवल शुक्र शोणित सेही गर्भ धारण होता है ऐसा नहीं है, किंतु अन्य सामग्रीभी गर्भधारण में अपेक्षित हैं उनको कहते हैं ।

ध्रुवंचतुर्णासान्निध्याद्गर्भःस्याद्विधिपूर्वकः ।
ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्यादङ्कुरोयथा ॥

अर्थ–ऋतु (वर्षा काल आदि) पृथ्वी, जल, और बीज, (चावल गेहूंआदि) इन चारों के संयोग से अंकुर (कुरा) उत्पन्न होता है । उसी प्रकार ऋतु कहिये (पुष्प) क्षेत्र कहिये (गर्भाशय) जल कहिये (जठराग्नि से अन्नका पाक होकर शरीर पालनीय रस उत्पन्न होता है सो) और बीज कहिये (आर्त्तव, शुक्र) इन चारों के विधिपूर्वक संयोग होने से गर्भ उत्पन्न होता है ।

शुद्धेशुक्रार्त्तवेसत्वः स्वकर्मक्लेशचोदितः ।
गर्भःसंपद्यतेयुक्तिवशादग्निरिवारणौ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–शुद्ध शुक्र आर्त्तव में अपने कर्म और क्लेशों कर प्रेरित जीव युक्तिवश-से गर्भ को प्राप्त होता है। जैसे अरणी से अग्नि। अर्थात् जैसे मथ्य, मंथन और मंथान सामग्री के विना अग्नि नहीं होती उसी प्रकार गर्भ भी यथोक्त सामग्री के विना नहींहोता। इस जगे स्त्री मथ्यस्थानीय है, पुरुष मंथनस्थानीय है, और गर्भाशय मंथानस्थानीय जानना चाहिये। अरनी भी युक्तिपूर्वक मथने से अग्नि प्रगट करे हैं। विना युक्तिके नहींकरे, उसी प्रकार स्त्री पुरुष भी विधिपूर्वक संग करने से संतान प्रगट करसक्ते हैं। इस श्लोक में [स्वकर्मक्लेशचोदितः] इस कहने-से यह प्रयोजन हैं कि जिन्हों का चित्त राग द्वेष अविद्या से बँधाहुआहै, उन्हीं को गर्भवास है। वीतरागवाले महात्माओं का तो जन्म होना असंभव है। क्योंकि वे कर्म-क्लेशों से रहित हैं. जैसे लिखाहै, " चित्तमेवहिसंसारि रागक्लेशादिदूषितम्। तदेव तै-र्विनिर्मुक्तं भवांतइतिकथ्यते"।

विधिपूर्वकहोनेवालेगर्भकाफल।

एवंजातारूपवन्तः सत्ववन्तश्चिरायुषः।
भवन्त्यृणस्यभोक्तारः सत्पुत्राः पुत्रिणोहिताः॥

अर्थ–पूर्वोक्त विधिपूर्वक जे पुरुष उत्पन्न होते हैं वे रूपवान्, सत्त्वगुणसम्पन्न, चिरायुषी, ऋणलेकर न खानेवाले, अर्थात् संपत्तिवान्, माता पिताको सुख देने-वाले ऐसे सत्पुत्र होते हैं।

शरीरकेकालेगोरेहोनेकाकारण।

तत्रतेजोधातुवर्णानांप्रभवःसयदागर्भोत्पत्तौअब्धातुप्रायोभवति तदागर्भगौरंकरोति। पृथ्वीधातुप्रायःकृष्णश्यामः। तोयाकाशधातुप्रायः गौरश्यामः। (समसर्वधातुप्रायः श्यामवर्णकरः)

अर्थ–सर्व देहके वर्ण होने का कारण तेज धातु है। यदि गर्भाधानके समय जल धातु अधिक होय तो उस गर्भ से गौर वर्ण बालक प्रगट होय। पृथ्वीधातु अ-धिक होने से कृष्ण और श्याम वर्णका बालक होय। जल आकाश धातुके अधिक होने से बालक का वर्ण गौर श्याम होता है और गर्भाधानके समय सर्वधातु समान होय तो बालक का श्यामवर्ण होता है किसी चरककी पुस्तक में ऐसाभी लिखा है कि पृथ्वी धातु केवल कृष्ण वर्ण करती है। कृष्ण वर्ण कौआके सदृश, और श्याम वर्ण दूबके समान जानना।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इसविषयमेंमतमतांतर ।

यादृग्वर्णमाहारमुपसेवेतगर्भिणीतादृग्वर्णप्रसवा भवतीत्येकेभाषन्ते ।

अर्थ–कोई आचार्य कहते हैं कि, गर्भवती जैसे २ स्वेत, पीत, कृष्णादि वर्णके पदार्थोंका सेवन करती है, उस्के उसी वर्णका बालक होता है ।

विवृत्तशायनीनक्तंचारिणीचोन्मत्तंजनयत्यपस्मारिणम्पुनः कलिकलहशीलाव्यवायशीलादुर्वपुषमह्रीकंस्त्रैणंवा शोकनित्याभीतमपचितमल्पायुषंवाअभिध्यात्रीपरोपतापिनमीर्ष्युस्त्रैणंवास्तेनान्वायासबहुलमतिद्रोहिणमकर्म्मशीलंवा अमर्षणाचण्डमौपधिकमसूयकंवा स्वप्ननित्यातन्द्रालुमबुधमल्पाग्निंवा ।

अर्थ–गर्भवतीके उलटे सोनेसैं तथा रात्रिमें डोलने सैं उन्मत्त,और मृगी रोगवाला बालक प्रगट करती है । कठिन कलह करने सैं तथा मैथुन करने सैं दुष्ट देह और निर्लज्ज तथा स्त्रैण बालक होता है, शोक करने सैं डरपनेवाला, कृश, तथा अल्पायु संतान होती हैं । और बुरा ध्यान करने वालीके औरोंको दुःख देनेवाला ईर्षी, तथा स्त्रैण संतान है । चोरीकी इच्छा करनेवाली स्त्री अति परिश्रमी, अतिद्रोही, और खोटे कर्मका करनेवाला पुत्र प्रगट करती है । क्रोध करनेसैं चंड, उपाधि कर्त्ता और निंदक संतान हो । निद्रा सैं तन्द्रालु मूर्ख और मंदाग्निवान् संतति होती है ।

मद्यनित्यापिपासालुमनवस्थितंवा गोधामांसप्रायाशार्करिणमश्मरिणंशनैर्मेहिनंवा वाराहमांसप्रायारक्ताक्षङ्क्रथनमनतिपरुषरोमाणंवा मत्स्यमांसनित्याचिरनिमिषंस्तब्धाक्षंवा मधुरनित्याप्रमेहिनंमूकमतिस्थूलं वा अम्लनित्यारक्तपित्तिनंत्वगक्षिरोगिणंवा लवणनित्याशीघ्रवलीपलितंखालित्यरोगिणंवा कटुकनित्यादुर्बलमल्पशुक्रमनपत्यंवातिक्तनित्याशोषिणमबलमपचितंवा कषायनित्याश्यावमनाहितमुदावर्त्तिनंवा यद्यच्चयस्ययस्यव्याधेर्निदानमुक्तंतत्तदासेवमानान्तर्वर्त्नीतद्विकारबहुलमपत्यंजनयति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–गर्भवतीके मद्य सेवन करने सें तृषावान्, तथा व्यग्रचित्तवाला बालक हो। गोधामांसके खानेसें शर्करा, और पथरी तथा शनैः प्रमेहरोगवाला होवे। सूकरके मांस खानेसें बालक लाल नेत्र, कसाई और अत्यंत कठोर रोमांचवाला होवे। मछलीके मांस खाने सें चिर निमिष (देरमें पलक लगे) तथा विकट नेत्रवाला हो। गर्भवतीके नित्य मिष्ट रस खाने सें बालक प्रमेही, गूंगा और अतिस्थूल होता है, खट्टे रस खाने सें रक्तपित्ती कुष्टरोगी, नेत्र रोगवान् हो, अत्यंत नोनके पदार्थ खानेसें थोडी अवस्थामें वली (गुजलट) और पलित (सपेद वाल) तथा खालित्य (शिरोरोगविशेष) वाला होवे। चरपरे पदार्थ सेवनसें दुर्बल, अल्प वीर्यवान्, और जिस्के संतान न होय ऐसा बालक होवे। कडुए पदार्थ सेवन सें अतिशुष्क, निर्बल, पुष्टतारहित बालक हो। और गर्भवती स्त्रीके अत्यंत कसेले पदार्थोंके सेवन करनेसें काला, और उदावर्त्त रोगी बालकको प्रगट करती है। जिस जिस रोगके निदानमें जो जो वस्तु सेवन सें जैसा जैसा रोग होना लिखा है, उसी पदार्थके सेवन सें गर्भवती स्त्रीके तद्विकारबहुल संतान प्रगट होती है।

यदास्त्रियादोषप्रकोपेनोक्तान्यासेवमानायादोषाः प्रकुपिताः शरीरमुपसर्पन्तः शोणितगर्भाशयोपघातायोपपद्यन्ते नच कात्स्न्र्येनशोणितगर्भाशयोदूषयति तदायंगर्भंलभतेस्त्री तदातस्यगर्भस्यमातृजादीनामवयवानामन्यतमोवयवो विकृतिमापद्यते।

अर्थ–दोषप्रकोपोक्त पदार्थों के सेवन करने से दोष कुपित होकर जब स्त्रीके शरीरमें विचरते हुए रुधिर गर्भाशय में प्राप्त होते हैं तब स्त्रीके रज और गर्भाशय को नष्ट करते हैं। यदि रज और गर्भाशय संपूर्ण को दूषित न करे उस समय यदि गर्भको धारण करे, तो उस गर्भ के मातृज अवयवोंमेंसें कोईसा अवयव विकृति को प्राप्तहो। अर्थात् जो माता के अङ्ग हैं उसी अङ्ग का विकृतिवान् बालक होता है।

एकोऽथवानेकोह्यस्ययस्यह्यवयवस्यबीजेबीजभागेवा दोषाःप्रकोपमापद्यन्ते तंतमवयवंविकृतिराविशति।

अर्थ–एक अथवा अनेक दोष इस पुरुष के जिस जिस अवयव (अंग) के वीज में अथवा बीजके किसी भागमें कोपको प्राप्त होते हैं, तो गर्भके उसी उसी अंगकी विकृति होती है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यदाह्यस्याःशोणितगर्भाशयबीजभागः प्रदोषमापद्यते त दावंध्यांजनयति । यदापुनरस्याः शोणितेगर्भाशयबीज भागावयवःस्त्रीकराणाञ्चशरीरबीजभागानामेकदेशः प्रदो षमापद्यते । तदारुयाकृतिभूयिष्ठामास्त्रियांवार्त्तानाम्नीं जनयतितांस्त्रीव्यापदमाचक्षते ।

अर्थ–जिस समय स्त्रीके रज, गर्भाशय और बीजभागदोषों से दूषित होय,तब स्त्री वन्ध्या कन्या प्रगट करे । अर्थात् उस स्त्रीके जो पुत्री होय सो वंध्या होवे । और यदि स्त्री के रज गर्भाशय और बीजभागका कोईसा अवयव अथवा स्त्रीके करने-वाले शरीर बीजभागों का कोईसा एकदेश दूषित होय तो उसके स्त्री की आकृति जिसमें अधिक ऐसी (अस्त्री वार्त्ता नामक) प्रगट करे उसको स्त्रीव्यापद अर्थात् स्त्रीव्याधि कहते हैं ।

एवमेवपुरुषस्ययदाबीजेबीजभागः प्रदोषमापद्यतेतदावंध्यंज नयति । यदापुनरस्यबीजेबीजभागावयवः प्रदोषप्रातिप्र जंजनयति । यदात्वस्यबीजेबीजभागावयवः पुरुषकराणांच शरीरबीजभागानामेकदेशः प्रदोषमापद्यतेतदापुरुषाकृतिभू यिष्ठपुरुषंतृणपूलिंनामजनयति तांपुरुषव्यापदमाचक्षते ।

अर्थ–उसी प्रकार पुरुष के वीर्यमें अथवा वीर्यके किसी भागमें दोष प्राप्त होते हैं तब उस पुरुषके वीर्य से वंध्य पुत्र होता है।अर्थात् जो संतान प्रगट न करसके ऐसा पुत्र होय।और जिस समय इस पुरुष के वीर्य तथा वीर्य भागके किसी एक अवयव में दोष कुपित हो तो प्रतिप्रज पुत्र प्रगट करे, यदि इस पुरुष के बीजमें अथवा बीजभाग के अवयवों में तथा पुरुषकर्त्ता शरीर बीजभागों का एक देश दोषों से दूषित होवे, तो उस पुरुष से पुरुषाकृति जिस में अधिक ऐसा अपुरुष (तृणपूलि नामक) प्रगट करे, उसको पुरुषव्यापद अर्थात् पुरुषव्याधि कहते हैं ॥

जन्मांध तथा लाल पीले सफेद और विकृत ऐसे नेत्र होनेके कारण कहते हैं ।

तत्रदृष्टिभागमप्रतिपन्नंतेजोजात्यन्धंकरोति तदेवरक्तानुगतंरक्ताक्षं पित्तानुगतंपिङ्गाक्षं श्लेष्मा नुगतंशुक्लाक्षं वातानुगतंविकृताक्षमिति ।

CC-0 JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–तहां पूर्वोक्त तेज चतुर्थ महिने इन्द्रियों के विभाग काल में पूर्व जन्म के-दुष्कर्म करके दृष्टि भागमें न प्राप्त होनेसैं गर्भको जन्मान्ध करे है। उसीप्रकार वही तेज रुधिरसे मिलकर दृष्टिभाग में जानेसे गर्भवाले बालकके लाल नेत्र होतेहैं उसी प्रकार पित्त से मिलकर दृष्टिभागमें जानेसे पीले नेत्र करे है। और कफ-संयुक्त होनेसे गर्भ के श्वेत नेत्र करे है, वादीसे मिलकर दृष्टि भागमें तेज पहुं-चने से विकृताक्ष अर्थात् कांणा, भेंड़ा, ऐंचाताने नेत्र करे हैं (और दो तीनदोषोंके मिलाप होनेसे, कंजा, गुलाबी, तथा धूंधरे आदि नेत्रवाला गर्भ होता है।)

शिष्य–पुराना आर्त्तव जो इकट्ठा हुआ है, सो तो तीन दिन में स्रवकर निवृत्त होजाता है, और जो नवीन आर्त्तव है, सो थोड़ा होता है वह प्रवृत्त नहीं होसके, फिर आर्त्तव का संचार होकर शुक्रसे मिलकर कैसे गर्भाशय में प्राप्त हो गर्भरूप होता है।

गुरु–इसका यह कारण है।

घृतकुम्भोयथैवाग्निमाश्रितः प्रविलीयते।
विसर्पत्यार्त्तवंनार्यास्तथापुंसांसमागमे॥

अर्थ–जैसे जमे हुए घृतका घड़ा अग्निके संयोगमें पिगलता है उसी प्रकार दोनों इन्द्रियोंके संघर्षणसैं प्रगट जो ऊष्मा (गरमी) उस करके स्त्रियोंका आर्त्तव पतला हो, शुक्रसैं मिल कर गर्भाशयमें प्राप्त होवे तदनंतर जीवांशसैं मिल गर्भ होनेका कारण होता है। जैसैं पुरुषके शुक्र होता है उसी प्रकार स्त्रीके भी शुक्र हो-ता है यह प्रमाण आगे ३ अध्यायमें लिखेंगे।

ऋतौस्त्रीपुंसयोर्योगे मकरध्वजवेगतः।
मेढ्रयोन्याभिसंघर्षाच्छरीरोष्मानिलाहतः॥
पुंसःसर्वशरीरस्थं रेतोद्रावयतेऽथतत्। वायुर्मेहनमार्गेण
पातयत्यङ्गनाभगे॥ तत्संश्रुतव्यात्तमुखं यातिगर्भाशयं
प्रति। तत्रशुक्रवदायाते आर्त्तवेनयुतंभवेत्॥

अर्थ–ऋतुमें जिस समय स्त्रीपुरुषका संयोग होता है, तब कामदेवके वेग सैं और लिंग योनिके परस्पर घिसनेसैं, शरीरकी गरमी वायुसै ताडित हो, पु-रुषके सर्व देहमें रहनेवाला जो वीर्य है उस्को पतला कर बहाता है। वह बह कर एकत्र होता है, उस्को वायु लिंगेन्द्री द्वारा स्त्रीकी भगमें गेरता है। वह वीर्य खु-ले मुखवाले गर्भाशयके प्रति जाता है उस्में वीर्यके सदृश आनेवाले रुधिरसैं मिल जाता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः ।
गर्भःसंपद्यतेनार्यः सजातोबालउच्यते ॥

अर्थ-कामसैं स्त्री पुरुषोंका संयोग होनेके अनंतर शुद्ध शोणित और वीर्यसैं स्त्रीको जो गर्भ होता है, वो जन्म लेने सै बालक कहाता है । पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रुधिर यदि शुद्ध होय तो गर्भ शुद्ध होता है । और अशुद्ध होने सैं गर्भ भी अशुद्ध होता है । इस्में प्रमाण लिखते हैं ।

दम्पत्योःकुष्ठबाहुल्यादुष्टशोणितशुक्रयोः ।
यदपत्यंतयोर्जातं ज्ञेयंतदपिकुष्ठितामिति ॥

अर्थ-जिन स्त्री पुरुषोंके कुष्ठ नामक भारी रोग होने सै, रुधिर तथा वीर्य बिगड गये हों, उन कुष्ठवाले स्त्री पुरुषों सैं जो संतान होय वह भी कुष्टरोगी होय है ।

शिष्य-हे गुरो ! यमल (जोडा) होनेका क्या कारण है ।

गुरु-यमल होनेका कारण पवन है । यथा ।

बीजेन्तर्वायुनाभिन्ने द्वेबीजे ❀ कुक्षिमाश्रिते ।
यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ ॥

अर्थ-बीज कहिये मिश्रित शुक्र शोणित, वे दोनों भीतरकी पवन सैं दो भाग होकर गर्भाशयमें गर्भरूप हो कर रहते हैं, उन्को यमल (जोहडले) कहते हैं । वे दोनों धर्मके पुरोगामी हैं परंतु [गयी आचार्य] ऐसा अर्थ करे हैं कि, धर्म सैं इतर अधर्मके पुरोगामी हैं । क्योंकि श्रुतिस्मृतियोंमें सर्वत्र यमलकी उत्पत्ति अधर्म सैंही कही है । इसी सैं यमल (जोडा) होनेमें प्रायश्चित्त कहा है । किसी किसीके तीन चार आदि भी बालक होते हैं । २ नम्बरका चित्र देखो ।

शुक्राधिकेद्वैधमुपैतिबीजं यस्याः सुतौसासहितौप्रसूते ।
रक्ताधिकंवायदिभेदमेति द्विधासुतेसासहितेप्रसूते ॥ भिनत्तियावद्बहुधाप्रपन्नशुक्रार्त्तवंवायुरतिप्रवृद्धः । तावन्त्यपत्यानियथाविभागं कर्मात्मकान्यःस्ववशात्प्रसूते ॥

अर्थ-शुक्रकी अधिकता सैं जिस स्त्री की कूखमें बीजके दो विभाग हो जावे वह एक साथ दो पुत्र प्रगट करे । उसी प्रकार रुधिरके दो विभाग होने सैं एक साथ दो कन्या उत्पन्न करती है । अतिबली दुष्ट पवन शुक्र आर्त्तवके जितने विशे-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ष विभाग करे, उतनीही संतान यथा विभाग पूर्वक स्त्री प्रगट करती हैं। यदि शुक्र अधिकके पवन अनेक विभाग करे तो अनेक पुत्र होवें, और स्त्री का रुधिर अधिक होय उस्के जितने विभाग करे उतनीही कन्या प्रगट होती है। यदि शुक्र और रुधिरके न्यूनाधिक मिल कर दो टुकडे होय तो एक कन्या एक पुत्र होवे शूकर और कुत्तोंकी जातिमें सदैव विशेष संतान होनेका यही कारण है, ३ नम्बरका चित्र देखो।

कर्माशकत्वाद्विषमांशभेदाच्छुक्रासृजौवृद्धिमुपैतिरूक्षौ ।
एकोऽधिकान्यूनतरोद्वितीया एवंयमेप्यभ्यधिकोविशेषः॥

अर्थ–पूर्वजन्मोपार्जित कर्माशकी विषमतासें शुक्र और रुधिर रूक्ष वृद्धिको प्राप्त होते हैं, तब एककी अधिक वृद्धि होती है दूसरेकी न्यून होती है, इसीसें एक बालक मोठा होता है और एक पतला होता है।

शिष्य–कभी कभी संतानवाली स्त्री भी देरीमें संतती क्यों प्रगट करती है तथा किसी किसी स्त्रीके गर्भ हो कर नष्ट हो जाता है, परंतु नष्ट होता हुआ नहीं मालूम हो इस्का क्या कारण है सो कहो?

गुरु–इसका यह कारण है सो सुनो।

योनिप्रदोषान्मनसोऽभितापाच्छुक्रासृगाहारविहारदोषात् ।
अकालयोगाद्बलसंक्षयाद्वागर्भंचिराद्विन्दतिसप्रजाऽपि ॥
असृङ्निरुद्धं पवनेननार्यागर्भंव्यवस्यन्त्यबुधाः कदाचित् ।
गर्भस्यरूपंहिकरोतितस्यास्तदस्रमस्राविविवर्द्धमानम् ॥

अर्थ–योनिके दोषसें, मनके तापसें, वीर्य रुधिर और आहार विहारके दोष सें दुष्ट समयके योग सें, बल क्षीण होने सें, इन कारणों सें संतानवालीभी स्त्री देरीमें गर्भ धारण करती है। किसी किसी स्त्रीके पवन करके रुधिर रुकजाने सें पेटमें गोलासा हो जाता है। उस्को मूर्ख मनुष्य गर्भ बताते हैं। वह रुधिरके एकत्र होने सें गर्भके से लक्षणवाला दिन २ प्रति बढता है।

तदग्निसूर्यश्रमशोकरोगैरुष्णान्नपानैरथवाप्रवृत्तम् ।
दृष्ट्वासृगेकेनचगर्भसंज्ञाः केचिन्नराभूतहृतंवदन्ति॥

अर्थ–पूर्वोक्त रुधिर, अग्नि, सूर्य, परिश्रम, शोक, और रोगों सें तथा गरम अन्न पान करके तपायमान हो निकलने लगे उस्को देख कर कोई मनुष्य कहते हैं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कि इस्को गर्भ नहीं है, और उसीको कोई मूर्ख मनुष्य भूत हत अर्थात् भूतबाधा सें गर्भ नष्ट हो गया ऐसा कहतें हैं ।

पंचषंडोंकीउत्पत्तिकाकारणकहतेतिनमें आसेक्यषंड (नपुंसक)के लक्षण ।

पित्रोरत्यल्पवीर्यत्वादासेक्यःपुरुषोभवेत् ।
सशुक्रंप्राश्यलभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥

अर्थ-गर्भाधानके समय माता पिताके अत्यंत अल्प वीर्य होने सें जो गर्भ रहता है, उस्सें आसेक्य नामा षंड उत्पन्न होता है । वह अपने मुखमें दूसरेके मैथुन करने सें जो प्रगट वीर्य, उस्को भक्षण करे तब उस्की लिंगेन्द्री उठे उस्का दूसरे नाम मुखयोनी है ।

सौगंधिकषंड ।

यःपूतियोनौजायेत ससौगंधिकसंज्ञितः ।
सयोनिशेफसोर्गन्धमाघ्रायलभतेबलम् ॥

अर्थ–दुर्गंध योनिवाली स्त्री सें जो पुरुष उत्पन्न होता है, वह सौगंधिक महाषंड कहाता है वह लिंग और योनिको सूंघे तब लिंग चैतन्य होय, उस्का दूसरा नाम नासायोनि जानना ।

कुम्भिकषंडके लक्षण ।

स्वेगुदेऽब्रह्मचर्य्याद्यः स्त्रीषुपुंवत्प्रवर्तते । कुम्भिकः सतुविज्ञेयः ॥

अर्थ–जो पुरुष प्रथम अपनी गुदा भंजन करावे, तब उसके लिंग में चैतन्यता प्राप्त होने से स्त्रियों में पुरुष के समान प्रवृत्त हो । उसको कुंभिक नपुंसक कहते हैं । [कोई आचार्य] ऐसा अर्थ करते हैं, कि प्रथम स्त्रियों की गुदामें पशुके समान पिछाड़ी बैठकर शिथिल लिंग से उन्होंकी गुदा भंजन करे, किस निमित्त की [ब्रह्मचर्यात्] ब्रह्मचर्य करने से जो नपुंसकता प्राप्त हुई उसके दूर करने को यह कर्म करता है, अतएव इस विकृति के करने से जब लिंग चैतन्य हो तब स्त्रियों में पुरुष के सदृश प्रवृत्त हो, उसको कुंभिक नपुंसक कहते हैं । इसी का दूसरा नाम गुदयोनि है । इस की उत्पत्ति का कारण ग्रन्थान्तरों में इस प्रकार लिखाहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मातुर्व्यवायप्रतिमेनवक्रीस्याद्बीजदौर्बल्यतयापितुश्च ।

अर्थ–गर्भाधान के समय माताके विपरीत मैथुन करने से और पिताके वीर्य निर्बल होने से कुंभिक संतान होती है। [गयी आचार्य] कुंभिककी उत्पत्तिके हेतु में काश्यपोक्त श्लोक कहता है। यथा

अरजस्कायदानारी श्लेष्मरेतान्नजेद्वतौ ।
अन्यसक्ताभवेत्प्रीतिर्जायतेकुम्भिलस्तदा ॥

अर्थ–गर्भाधान के समय अल्प रजवाली स्त्री में, कफरेता अर्थात् शिथिल रेतवाला पुरुष गमन करे, उस पुरुष से उस स्त्री की काम शांति न होने से अन्य पुरुष के साथ मैथुन करने की इच्छारहे, उस कालमें जो गर्भ रहे उस्सें कुंभिल षंड उत्पन्न होता है।

ईर्ष्यककेलक्षण।

ईर्ष्यकंशृणुचापरम् ॥ दृष्ट्वान्यवायमन्येषांव्यवाये
यःप्रवर्त्तते ॥ ईर्ष्यकःसतुविज्ञेयोदृग्योनिरयमीर्ष्यकः ॥

अर्थ–अब ईर्ष्यक के लक्षण सुनो। जो पुरुष औरों को मैथुन करता देखकर आप मैथुन करने को प्रवृत्त हो, (अर्थात् जब तक दूसरे को मैथुन करता हुआ न देखे तबतक लिंग खडा न हो) उसको ईर्ष्यक षंड कहते हैं, तथा दृग्योनि यह इसका दूसरा नाम है।

अत्रापितंत्रांतरपठितोहेतुर्यथा ।

ईर्ष्याभितापावपिमन्दहर्षादीर्ष्याह्वयस्यापिवदन्तिहेतुम् ।

अर्थ–गर्भाधान के समय दोनों स्त्री पुरुष, परोत्कर्ष के असहन करके पराभव को प्राप्त हो चिंतातुर होकर मैथुन करने को प्रवृत्तहोवे, उस समय जो गर्भ रहे उससे ईर्ष्यक षंडक होता है।

रुयाकृतिषंडकेकारणऔरलक्षण।

षंडकंशृणुपञ्चमं॥योभार्यायामृतौमोहादङ्गनेव
प्रवर्त्तते। तत्रस्त्रीचेष्टिताकारो जायतेषंडसंज्ञितः ॥

अर्थ–पंचम षंढ (नपुंसक) के लक्षण सुन। जो पुरुष मूर्खता से ऋतुकाल-में भार्य्या के विषे आप नीचे स्त्री के सदृश चित्त लेटकर मैथुन करावे, उस

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

काल में पुरुष के वीर्य से स्त्री कीसी चेष्टावाला षंढ़ उत्पन्न होता है । यह स्त्री के सदृश आप नीचे सोयकर अपने शिश्न (लिंग) पर अन्य पुरुष से वीर्य गिराताहै तब इसकी शांति होतीहै । इसप्रकार नरषंढ़ कहकर अब नारीषंढ़ कहते हैं ।

स्त्रीषंढ़केलक्षण ।

ऋतौपुरुषवद्यापि प्रवर्तेताङ्गनायदि ।
तत्रकन्यायदिभवेत्साभवेन्नरचेष्टिता ॥

अर्थ–जो स्त्री, पुरुष को नीचे सुलाय आप पुरुष के सदृश ऊपर चढ़कै मैथुन करे, उस समय जो गर्भ रहे उस गर्भ से जो कन्या होय वो पुरुष कीसी चेष्टावाली होवे । अर्थात् वह स्वयं स्त्रीरूपमी है, परन्तु पुरुषके सदृश दूसरी स्त्री के ऊपर चढ़ उसकी योनिसे अपनी योनिको घर्षण करे ।

शिष्य–स्त्री षंढ़ और पुरुष षंढ़में अंतर कुछ भी नहीं मालूम हो, अर्थात् दोनोंमें स्त्री ऊपर चढ कर मैथुन करती है । फिर दो प्रकारके षंढ़ कैसे होते हैं । और मेरी समझमें तो दो पाठ भी न लिखने चाहिये ।

गुरु–तुमने कहा सो ठीक है, परंतु इन दोनों षंढ़ोंमें स्त्री पुरुषोंका मन कारण है । अर्थात् पुरुष षंढ़में पुरुष अपनी इच्छा सें स्त्रीको ऊपर चढ़ा कर मैथुन करता है, और स्त्री षंढ़में स्वयं स्त्री पुरुषके ऊपर चढ़कर मैथुन करती है । अतएव दो भेद होते हैं और इसी सें ग्रन्थकर्त्ताने पाठभी पृथक् पृथक् लिखे हैं । अब कहे हुए षंढ़ोंके स्मरण रहनेके लिये संग्रह एक श्लोक से कहते हैं ।

षण्ढ़संग्रहश्लोक ।

आसेक्यश्चसुगंधीच कुम्भीकश्चेर्ष्यकस्तथा ।
सरेतसस्त्वमीज्ञेया अशुक्रःषंडसंज्ञितः ॥

अर्थ–आसेक्य, सुगंधी, कुंभिक, और ईर्ष्यक, इन चार षंढोंमें तो वीर्य है । और स्त्री कीसी चेष्टावाला जो पांचवा षंढ़ है, उसमें सर्वथा वीर्य नहीं होता ।

शिष्य–यदि आप इन्होंमें शुक्र कहते हो तो फिर षंढ़ कहना नहीं हो सके क्योंकि जो शुक्रवान् है वह षंढ़ कदाचित् नहीं होता ।

गुरु–इसका कारण यह है ।

अनयाविप्रकृत्यातु तेषांशुक्रवहाः शिराः ।
हर्षात्स्फुटत्वमायान्ति ध्वजोच्छ्रायस्ततोभवेत् ॥

अर्थ–पूर्वोक्त चार षंढ़ोंके भी शुक्र नहीं है, परंतु इनकी विरुद्ध चेष्टा (वीर्य

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भक्षण, योनि लिंगका सूंघना, गुदा भंजन, और परमैथुन देखना) इन कर्मोंके करने सैं उन पुरुषोंकी शुक्र वहनेवाली शिरा हर्षयुक्त होकर फूलती है, इसी सैं लिंग चैतन होता है । किंतु वीर्यके बल सैं लिंग नहीं उठे अतएव इनको भी षंढ़ कहते हैं। यह नपुंसक दोष स्त्रियोंमें भी होते हैं। इस विषयमें चरकका प्रमाण (नरनारी षण्ढौइत्युक्तम्)।

अनुक्तदेहवाणीऔरमनइनकेभेदकाहेतुकहतेहैं।

आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिःसमन्वितौ।
स्त्रीपुंसौसमुपेयातां तयोःपुत्रोपितादृशः॥

अर्थ-माता पिता जैसैं आहार, आचार और चेष्टा इन सैं युक्त हो मैथुनमें प्रवृत्त होते हैं, उसी उसी प्रकारके गुण उनकी संतानमें होते हैं (निर्ल्लज्ज, लज्जावान्, हास्यप्रिय, और आलस्ययुक्त इत्यादिकोंका यही पूर्वोक्त कारण है)

अति पाप करके षंड सैं भी निकृष्ट गर्भ उत्पन्न होता है
उनके कारण कहते हैं।

यदानार्यावुपेयातांवृषस्यन्त्यौकथञ्चन।
मुञ्चन्तःशुक्रमन्योऽन्यमनस्थिस्तत्रजायते॥

अर्थ-जिस कालमें दो स्त्री अति दुर्जय काम सैं पीडित हो, मैथुन करनेकी इच्छा करती हुई आपसमें मिल कर योनि सैं योनिको मिलाय, परस्पर अपने अपने वीर्यको किसी प्रकार सैं त्याग करे। उस कालमें उन सैं अनस्थि (हड्डीरहित) गर्भ उत्पन्न होता है । अनस्थिके कहने सैं थोडी और कोमल हड्डी होती हैं ऐसा जानना क्योंकि इस जगे ईषदर्थमें नञ् शब्द है।

स्वप्नमैथुनसैंगर्भसंभवकहतेहैं।

ऋतुस्नातातुयारी स्वप्नेमैथुनमावहेत्। आर्त्तवंवायुरादाय स्वप्नेगर्भंकरोतिच।मासिमासिविवर्द्धेत गर्भिण्याग र्भलक्षणम्। कललंजायतेतस्या वर्जितंपितृकैर्गुणैः॥

अर्थ-ऋतुस्नाता स्त्री चतुर्थ दिवस सैं लेकर बारह रात्रिपर्यंत कदाचित् स्वप्न में मैथुन करे, उस समय उस स्त्रीके शुद्ध आर्त्तव कोही पवन लेकर गर्भाशयमें गर्भ स्थापन करे है। उस गर्भ करके गर्भिणीके लक्षण प्रति महिनेके महिने बढते हैं। और उस गर्भ सैं कलल उत्पन्न होता है तथा पिताके लक्षण (केश, श्मश्रु, लोम, नख, दन्त, शिरा, स्नायु और धमनी) इन लक्षण करके रहित मनुष्याकृति (मां-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सका लोथडा सा होय है उसको कलल कहते हैं) ये दोनों श्लोक जेजट सुश्रुतकी टीकाकारने नहीं लिखे ।

सर्पवृश्चिककूष्माण्डविकृताकृतयस्तुये ।
गर्भास्त्वेवंविधास्त्वेते ज्ञेयाःपापकृतोभृशम् ॥

अर्थ–सर्प, विच्छू, कूष्मांड (गोलासा) इनके सदृश तथा विकृतस्वरूपवाले (जैसे विकराल अति लम्बे, अत्यंत छोटे, अधिक अंगवाले, छंगा आदि न्यून अंगवाले चार चार तीन तीन उंगली आदि के, तथा बंदर, बिलाव, आदि की सूरतवाले, इत्यादि) ये सब गर्भ प्रसूताके. पाप, करने से होते हैं ३ नम्बर का चित्र देखो ।

कुब्जादिगर्भोंकेकारणकहतेहैं ।

गर्भोंवातप्रकोपेन दोहदेवाविमानिते ।
भवेत्कुब्जःकुणिःपङ्गुर्मूकोमिम्मिणएवच ॥

अर्थ–वात के कोपसे, तथा माता के दौहद के अपचार करके गर्भ कुबड़ा,टोटा पांगुरा, गूंगा, और गिनगिना बोलने वाला, अथवा तोतला होता है ।

शिष्य–आपने जो कुबडे, गूंगे आदि होने कहे सो माता पिताके अपराधसे होते हैं कि स्वकृत दुष्कर्म से अथवा वातादि दोषोंसे होते हैं ।

गुरू–इसका कारण इस प्रकार है ।

मातापित्रोस्तुनास्तिक्यादशुभैश्चपुराकृतैः ॥
वातादीनांचकोपेन गर्भोंवैकृतिमाप्नुयात् ॥

अर्थ–माता पिताके नास्तिकपने से (अर्थात् पाप पुण्य वेद ईश्वरको न मानना) तथा पूर्व जन्म के दुष्कृत करके वातादि दुष्ट होते हैं उन वातादि की दुष्टता से गर्भ विकृत होता है, विकृत शब्द करके आड़े तिरछे शलरूप मूढ गर्भ भी जानने चाहिये, अर्थात् मूढ गर्भ भी माता पिता और स्वकृत अपराधसे होता है ।

शिष्य–गर्भाशय में बालक मल मूत्रादि क्यों नहीं करे ।

गुरु–मलाल्पत्वादयोगाच्च वायोःपक्वाशयस्यच ।
वातमूत्रपुरीषाणि नगर्भस्थःकरोतिच ॥

अर्थ–गर्भ के शरीर में मल अल्प है, तथा पक्वाशयसम्बन्धी पवन न

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

होने से (अर्थात् थोडे होने से) गर्भाशयस्थ प्राणी वात, मूत्र, मल इन का परित्याग नहीं करे।

शिष्य–गर्भ में बालक क्यों नहीं रोता है।

गुरु–जरायुणामुखेछन्ने कण्ठेचकफवेष्टिते।
वायोर्मार्गनिरोधाच्च नगर्भस्थःप्ररोदिति॥

अर्थ–जरायु करके मुख आच्छादित होने से, और कंठ कफ करके वेष्टित होने से तथा वायु के मार्ग रुकने से गर्भस्थित बालक नहीं रोता है। इस जगे वायुका मार्ग रुकजाना इस कहने से शब्दजनक पवन का ग्रहण है। निःश्वासादि-रूप वायु का निकलना तो आगे कहेंगे, क्योंकि विना श्वास के तो गर्भ का जीवनही दुर्लभ है।

शिष्य–यदि आप गर्भ को श्वास लेना मानों गे तो प्रमाण दीजिये कि वह कैसे श्वास लेता है, क्योंकि गर्भाशय में श्वास लेने को इतनी पवन नहीं है।

निश्वासाच्छ्वाससंक्षोभात्स्वप्नाद्गर्भोधिगच्छति।
मातुर्निःश्वाससंश्वास संक्षोभात्स्वप्नसंभवात्॥

अर्थ–गर्भ के श्वास, उच्छ्वास, तथा चलन, वलन, निद्रा इत्यादिक क्रिया माता के श्वासादिक करके होती है, अर्थात् माता जो जो श्वासादिक चेष्टा करती है वही गर्भ भी करे है।

शरीरजन्यअवयवोंकेसन्निवेशादिकाहेतुकहते हैं।

सन्निवेशःशरीराणां दन्तानांपतनोद्गमौ।
तलेष्वसम्भवोयच्च रोम्णामेतत्स्वभावतः॥

अर्थ–गर्भके अवयवोंकी रचना विशेष, तथा दांतोंका उत्पन्न होना और गिरन तथा हथेली में रोमका न होना ये सर्व स्वभाव करके होते हैं।

पूर्वजन्माभ्यासकेसदृशबुद्ध्यादिकहोती हैं।

भाविताःपूर्वदेहेषु सततंशास्त्रबुद्धयः। भवन्तिस
त्वभूयिष्ठाः पूर्वजातिस्मरानराः॥

अर्थ–पूर्व देहमें जिस गुणका अत्यंत अभ्यास था, वेही गुण वर्त्तमान देहमें होते हैं, तथा जिस पुरुषका अंतःकरण पहली देहमें जिस शास्त्रमें संस्कारविशेष करके तन्मय हुआ होगा, वो पुरुष वर्त्तमान देहमें उसी शास्त्रका ज्ञाता होगा तथा जे पूर्व देहमें

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सतोगुण प्रधान थे वो इस वर्त्तमान देहमें सतोगुण बहुल होते हैं । तथा व्यतीत जन्मकी जातिके स्मरण रखने वाले होते हैं । शरीर, वाणी, और मन इनके पूर्वोक्त जाति स्मरणादिक गुण वे स्वभावादि करके सिद्ध होते हैं ।

यद्यपिसर्वस्वभावादिसिद्धभीहैतथापिकर्महीमुख्य है ।

कर्मणानोदितोयेन तदाप्नोतिपुनर्भवे । अभ्य
स्ताःपूर्वदेहेये तानेवभजतेगुणान् ॥
इति सौश्रुतशारीरे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अर्थ–पूर्व जन्मोपार्जित कर्मका प्ररो हुआ, ऐसा पूर्व देहमें जिस गुणमें अभ्यास पड़ा होगा उन्ही गुणोंको इस वर्त्तमान देहमें पाता है । (तथापि असत्कर्मों सैं बचना चाहिये ।)

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे षष्ठस्तरङ्गः ॥ ६ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

शुद्ध शुक्रार्त्तव सैं गर्भका होना संभव है, इसीसे शुक्रार्त्तवकी शुद्धि कहनेके अनंतर गर्भकी अवतरणक्रिया करना उचित है, अतएव उसी अवतरणक्रियाको कहते हैं ।

अथातोगर्भावक्रान्तिशारीरं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ–अथ कहिये शुद्ध शुक्रार्त्तवकी शुद्धि कहनेके अनंतर गर्भकी अर्थात् गर्भाशयमें रहने वाला हो कर आत्मा और प्रकृति इन करके संमूर्च्छित हुआ ऐसा जो शुक्रार्त्तवोंका संयोग उसको गर्भ ऐसा कहते हैं । उसकी अब क्रांतिकहिये अवतरण अर्थात् गर्भाशयमें प्राप्त हो । उसमें अवयववान् होना वह अवक्रांति जिसमें हैं ऐसी शारीराध्यायकी व्याख्या करते हैं ।

गर्भकेमूलकारणशुक्रआर्त्तवहै, इसीसैंशुक्रार्त्तवकास्वरूपकहतेहैं ।

सौम्यंशुक्रमार्त्तवमाग्नेयम् ॥

अर्थ–वीर्य सौम्य (उदक) गुणविशेष है, और स्त्रियोंका पुष्प तेज गुण विशेष है ।

शिष्य–शुक्रार्त्तव तो आप पंचभूतात्मक कह आए हो फिर इस जगे जल और तेजरूपही कैसैं कहते हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गुरु—इतरेषामपिभूतानांसान्निध्यमस्त्यणुनाविशेषेण।

अर्थ–दोनों शुक्र आर्त्तव वे [इतर कहिये] पृथ्वी, पवन, और आकाशआदि तत्वोंकाभी सूक्ष्म रूप करके आश्रयत्व हैं।

इसकाकारणकहतेहैं।

परस्परोपकरणात्परस्परानुग्रहात्परस्परानुप्रवेशाच्च॥

अर्थ–पृथिव्यादिक पंचमहाभूत अपने अपने गुण, परस्पर एक दूसरेको दे कर आपसमें उपकार करते हैं। [स्पष्टार्थ यह है कि पृथ्वीका गुण धारण उस करकें इतर आकाशादिकों पर उपकार करै है। जलका गुण संहरण उस करके वो औरों पर उपकार करे हैं। तेजका गुण परिपाक करना, पवन का गुण अव्यूह, आकाश का गुण अवकाश देना, ऐसैं उपकार करते हैं। तात्पर्यार्थ यह है कि घटादि पार्थिव द्रव्यमें पृथिव्याख्य भूत एक बली है, और जल पवन आदि चार भूत दुर्बल हैं, तथापि वे अपना आश्रय दे कर उसपर अनुग्रह करते हैं [उसी प्रकार जल आकाशादि अन्न द्रव्यमें उदकादिक इतर चार द्रव्य अपने अपने में बलिष्ठ होकर बाकी जो पृथिव्याख्य भूत हैं उन पर अनुग्रह करते हैं] तथा परस्पर अन्योन्य प्रविष्ट हैं [अन्योऽन्याऽनुप्रविष्टानि सर्वाण्येतानि निर्दिशेत्] इस वाक्य करके प्रथम कह आए हैं, इसी सैं गर्भजननविषयमें अन्य भूतोंका सान्निध्य है ऐसैं जानना चाहिये।

गर्भकीअवतरणक्रियाकहतेहैं।

तत्रस्त्रीपुंसयोः संयोगेतेजःशरीराद्वायुरुदीरयाति ।
ततस्तेजोनिलसन्निपाताच्छुक्रंच्युतंयोनिमभिप्र
तिपद्यतेसंसृज्यतेचार्त्तवेन।

अर्थ–तहां (स्त्री पुरुष संयोग) कहिये, स्त्री पुरुषोंकी स्पर्श विशेषकी इच्छा करके आरंभ करा प्रयोग अर्थात् मैथुन उसमें (तेज) कहिये स्त्री पुरुष दोनोंकी इन्द्रीके संघर्षण करके उत्पन्न हुआ जो ऊष्मा उस सैं वायु शरीर सैं उठता है, तदनंतर उस तेज करके पुरुषका रेत पतला हो कर वायुके योग करके स्वस्थान सैं छूट योनिमें गिर फिर सर्वयोनिमें व्याप्त हो आर्त्तव सैं मिलता है।

तंतोग्नीषोमसंयोगात्संसृज्यमानोगर्भाशयमनुप्रतिपद्यते।
क्षेत्रज्ञोवेदयितास्प्रष्टाघ्राताद्रष्टाश्रोतारसयितापुरुषः स्व

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ष्टागन्तासाक्षीधातावक्तायःकोसावित्येवमादिभिः पर्याय वाचकैरभिधीयते दैवसंयोगात् । अक्षयोव्ययोचिन्त्योभू तात्मनासहाचक्षसत्त्वरजस्तमोभिर्देवासुरैश्च भावैर्वायुनाच प्रेर्यमाणोगर्भाशयमनुप्राविश्यावातिष्ठते ।

अर्थ–शुक्रार्त्तव करके योनिके तीसरे आवर्त्तमें पंचभूतात्मक और छटवां चेतना, धातुके संयोग करके इसकी गर्भत्व संज्ञा है । उस संयोगको दिखाते हैं ततइत्यादि-तहां (अग्रीषोम) कहिये शुक्र आर्त्तवोंका संयोग होनेके अनंतर उसी क्षणमें (क्षे, त्रज्ञ) कहिये पंचमहाभूतोंका रचित शरीर रूप क्षेत्रका जानने वाला कर्म पुरुष-वह शुक्रार्त्तव संयोगके विषे प्रतिबिम्बित होकर गर्भाशयके प्रति जाता है । वह कौनके साथ जाता है सो कहते हैं, सूक्ष्म लिंग शरीरके सह वर्त्तमान जाता है । और सत्व, रज, तम, स्वरूप प्राकृत गुणों करके युक्त तथा ब्रह्मा, महेन्द्र, वरुण, कुबेर, गंधर्व, यम, और ऋषि इन सात देवोंके सात्विक भाव तिन करके किंवा असुर, सर्प, शकुनी, राक्षस, पिशाच, और प्रेत, ये छः असुरादिक राजसी भाव करके अथवा पशु, मत्स्य, और वनस्पति ये तीन तामस भाव करके युक्त मनुष्य गर्भाशयके प्रति जायकर रहता है ।

कौनरहताहै, यहकहते हैं ।

यःकोसावित्यादि ।

अर्थ–मुनीश्वर जिसको यः, कः, असौ, इत्यादिक पर्यायवाचक करके बोलते हैं । इस जगे आचार्यने (यः कः) ये सर्वनाम बोधक दो पद कहे हैं; इन सें ऐसी सूचना करी है कि, क्षेत्रज्ञ परम दुर्बोध है, और सर्वगामी है, उस क्षेत्रज्ञका ज्ञान सद्गुरुके उपदेश बिना नहीं होता है । ऐसा दिखाया है । अब उसके नामोंको कहते हैं । (वेदयिता) कहिये मनका प्रवर्त्तक, (स्प्रष्टा) कहिये त्वगिन्द्रियको स्पर्शज्ञान देने वाला, (घ्राता) घ्राण (सुंघने) वाला (द्रष्टा) रूपेन्द्रियद्वारा रूपका बोधक, (श्रोता) करणेन्द्रिय द्वारा शब्द जाननेका कारण वह क्षेत्रज्ञ ऐसा है, तथा क्षेत्रज्ञ पुरुष(पुरिभौतिकेशरीरेवसतीतिपुरुषः) अर्थात् पुर कहिये देह उसमें जो वास करे उसको पुरुष कहते हैं इसीसे क्षेत्रज्ञ कहाता है, तथा चेतना योग करके उसी को कर्तृत्व है ।

तदुक्तंचरके ।

चेतनावान्यतश्चात्मा ततः कर्त्तानिरुच्यते ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ–आत्मा कहिये क्षेत्रज्ञ, वह चेतनायुक्त है। इसी से उसको कर्त्ता कहते हैं, तथा [गंता] गमन करने वाला [साक्षी] जानने वाला [धाता] शरीरादि संयोग के धारण का हेतु (वक्ता) कहिये बोलता है, क्षेत्रज्ञ इस कहने से यह सूचना करी कि कर्मेन्द्रियों का भी वचन, आदान, विहरण, उत्सर्ग, और आनंद का प्रवर्त्तक यही हेतु है।

शिष्य–यदि वह क्षेत्रज्ञ वेदयिता ज्ञाता इत्यादि स्वरूपोपेत परमर्षियों करके कहाजाता है तो फिर क्लेशकारी गर्भाशय में क्यों वास करता है।

गुरु–दैवसंयोगादिति

अर्थ–[दैवसंयोगात्] कहिये प्राकृत कर्मों के सम्बन्ध करके आत्मा [अक्षय] कहिये क्षीण नहीं होवे तथा नष्ट नहीं होवे, जो चिंतवन करने में भी नहींआवे, यद्यपि ऐसा है, तथापि गर्भाशय में प्राप्तहो गर्भरूप करके रहता है ऐसे जानना।

शिष्य–सत्व कूख में प्रवेश होने से गर्भ को प्राप्त होता है, ऐसा आपने कहा है परन्तु इसका प्रवेश होना प्रगट नहीं दीखे।

गुरू–इसका समाधान वाग्भटने इस प्रकार लिखा है।

तेजोयथार्करश्मीनां स्फटिकेनतिरस्कृतम्।
नेन्धनंदृश्यतेगच्छत्सत्वोगर्भाशयंतथा॥

अर्थ–जैसे स्फटिक मणिकरके व्यवहित सूर्य की किरणों का तेज उस मणी के नीचे स्थित ईंधन में जाता हुआ नहीं दीखे जब ईंधन में अग्नि प्रगट हो जाती है तब प्रतीत होती है उसी प्रकार सत्व (जीव) गर्भाशय में जाता हुआ नहीं दीखे। इस जगे सत्वका तो लक्षण मात्र है किंतु गर्भ में प्रवेश करते पंच महाभूत भी नहीं दीखे। परन्तु कार्य करके जाने जाते हैं। उसीप्रकार सत्वके अनुयायी पंचमहाभूतों करके गर्भ कूख में बढ़ता है, केवल पंचमहाभूतों करकेही नहीं बढसके इस में दृष्टांत जैसे मरा देह।

जीवप्रमाणमाहवैष्णवागमे।

वालाग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्यच।
भागोजीवःसविज्ञेयः सचानन्त्यायकल्पते॥

अर्थ–जीव का प्रमाण वैष्णवागम ग्रंथ में इसप्रकार लिखा है कि एक वालके अग्रभागके सौ टूक कर, उस में से एक टुकड़े के फिर सौ टूक करने से जैसा एक टूक होता है, उतनाही जीव का प्रमाण है, वही जीव अनंत कल्पना करा जाता है. भावप्रकाश में भी लिखा है। यथा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शुक्रार्त्तवसमाश्लेषो यदैवखलुजायते । जीवस्तदैवविशति युक्तःशुक्रार्त्तवांतरः ॥ सूर्यांशोःसूर्यमणितोऽनुभयस्मा द्युताद्यथा । वाह्निः संजायतेजीवस्तथाशुक्रार्त्तवाद्युतात् ॥

अर्थ–जब शुक्र और आर्त्तव का संयोग होता है, तभी वीर्य और आर्त्तव में युक्त रहने वाला जीवभी प्रवेश करे है । इस में दृष्टान्त है कि, जैसे सूर्य की किरण में रहने वाला अग्नि, तथा सूर्यकांत (स्फटिक मणि आदि) में रहने वाला अग्नि है, परन्तु पृथक् पृथक् रहने से अग्नि प्रगट नहीं होसके, किंतु सूर्य की किरण और सूर्यकांत मणिके एकत्र होने से उसी समय जैसे अग्नि प्रगट होती है । उसीप्रकार वीर्य और रज पृथक् पृथक् रहने से जीव नहीं प्रगट होसके किंतु दोनों के संयोग से जीव प्रगटे है । इस में भी यदि सूर्यकिरण तीखी हो, और स्फटिक मणि स्वच्छ हो, तो अग्निहोना संभवहै । अन्यथा नहीं, उसी प्रकार शुक्र आर्त्तव में भी बुद्धिमानोंको विचार करना चाहिये ।

शिष्य–जीव पंचभूतानुग एक रूप है, फिर मनुष्य, घोड़ा,सर्प, हाथी, वानर आदि अनेक जातियों की आकृति कैसे धारण करे हैं।

गुरु–इसकाभी समाधान वाग्भट ने लिखा है । यथा,

कारणानुविधायित्वात्कार्याणांतत्स्वभावता । नानायोन्याकृतीःसत्वो धत्तेऽतोद्रुतलोहवत् ॥

अर्थ–कारणके तुल्य स्वभाव वाले सर्व कार्य होते हैं । इसी हेतु सैं कार्योंको तत्सादृश्य है । अतएव कार्य कारणके सादृश्य हेतु सैं जीव पंचमहाभूतानुग एक, रूपभी अनेक रूप नाना योनिकी आकृति (प्रतिबिंब विशेषोंको) धारण करे है- कैसैं धारण करता है, इसमें दृष्टांत है जैसैं, तपा हुआ लोहा अर्थात् जैसैं सोना गलने पर एक रूप हो जाता है फिर उसी सोनेको मृत्तिका आदिके बने हुए सं, चेमें पहुंचने सैं, जैसा हाथी, घोड़ा, मनुष्य का संचा होता है उसीके सदृश सोनेका रूप हो जाता है । इसी प्रकार जीव एक रूप है परंतु जैसी जैसी देहोंकी भावना करता है वैसैं वैसैं रूपोंको धारण करता है । वास्तव सैं विचारो तो जैसे, सोनेको मनुष्य दि रूप नहीं है उसी प्रकार इस जीवकाभी कोई रूप नहीं है केवल अविद्या कल्पित भानमात्र है ।

स्त्रीपुरुषनपुंसकहोनेकाकारण ।

अतएवचशुक्रस्य बाहुल्याज्जायतेपुमान् । रक्तस्यस्त्रीतयोःसाम्ये क्लीबःस्यात ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-[अतएव] कहिये पूर्वोक्त कार्य कारण के सदृश हेतु से पुरुष के वीर्य-बाहुल्यता सैं पुरुष होता है। और स्त्री के रज (रुधिर) की अधिकता सैं स्त्री होती है। और स्त्री पुरुष दोनोंके शुक्र आर्त्तव समान होने सैं नपुंसक संतान होती है। इस प्रकार पिताका शुक्र स्त्री के रुधिर सैं मिल कर गर्भका कारण होता है, केवल पिताका वीर्य अथवा माता का रज मात्रही गर्भका कारण नहीं होवे इस पर दारुवाही आचार्यका प्रमाण है।

स्त्रीपुंसयोस्तुसंयोगेयद्यादौविसृजेत्पुमान्।शुक्रंततःपुमान्वीरोजायतेबलवान्दृढः॥अथचेद्रानितापूर्वंविसृजेद्रक्तसंयुतम्।
ततोरूपान्विताकन्याजायतेदृढसंहता॥

अर्थ-स्त्री पुरुषके संयोगमें यदि प्रथम पुरुष शुक्रका परित्याग करे तो बलिष्ठ और दृढ पुरुष उत्पन्न होवे, और यदि स्त्री रक्त मिश्रित शुक्रका पहले परित्याग करे तो परम सुंदर रूपवती दृढ कन्या होवे।

स्त्रीपुरुषयोरेकदैवयदाविसृष्टिर्भवेत् तदाषंढोजायते।

उक्तंचवासिष्ठेन।

स्त्रीपुंसयोर्विसृष्टिश्चेदेकदैवभवेद्यदा।
षंडस्तदाप्रजायेत इतिमेनिश्चितामतिः॥

अर्थ-यदि स्त्री पुरुष दोनों एकही समय स्खलित होवे तो षंढ (नपुंसक) होवे यह मेरी निश्चित मति है।

अतएव पुत्र गर्भ किंचित् माता के अनुहार होते हैं और कन्या के गर्भ किंचित् पिताके अनुहार होते हैं।

अत्रयुग्मायुग्मतिथिशुक्ररजोवृद्धौदैवंहेतुस्तत्रवैखानसमतम्।

यथाबहुलपक्षेषुमस्तुलुङ्गोऽधिकायते।
नतथाजायतेशुक्लेस्वभावश्चात्रकारणम्॥

अर्थ-इस जगे समविषम तिथियोंमें शुक्र रजकी वृद्धि होनेमें दैव कारण है, तहां वैखानस ऋषिका मत कहते हैं कि जैसै कृष्णपक्षमें मस्तुलुंग (विजोरे) की अधिक वृद्धि होती है परंतु शुक्ल पक्षमें उस प्रकारकी नहीं होती(इसी प्रकार वीर्य रज की वृद्धि में समविषम दिन जानने) इन दोनों में स्वभावही कारण है।

शिष्य-आप शुक्र बाहुल्य सैं पुत्रोत्पत्ति कहते हो यह बात मेरी समझ में नहीं आती क्यों कि सदैव आर्त्तवको अधिकता है। यथा,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मज्जामेदोवसामूत्रपित्तश्लेष्मशकृन्त्यसृक् । रसोजलञ्चदेहे ऽस्मिन्सप्तैवैकैकाञ्जलिवर्द्धितम् ॥ पृथक्स्वप्रसृतंप्रोक्तमो जोमस्तिष्करेतसाम् । द्वावञ्जलीतुस्तन्यस्य चत्वारोरज सःस्त्रियाः ॥ समधातोरिदंमानं विद्याद्वृद्धिक्षयावतः ।

अर्थ–इस मनुष्य की देह में मज्जा सैं आदि ले जलपर्यंत द्रव्य एक एक अंजली की अधिकता सैं हैं (जैसैं मज्जा १ अंजली मेदा २ वसा ३ मूत्र ४ पित्त ५ कफ६विष्ठा ७ रुधिर ८ रस ९ और जल१०अंजली हैं) तथा ओज, मस्तिष्क (घृत के तुल्य पदार्थ जो मस्तक में होता है) और रेत (वीर्य) ये तीनों इस देह में प्रत्येक अपने अपने पस्से भर हैं (दोनों हाथों के मिलाने सैं जो होता है उस को पस्सा कह ते हैं) स्त्री का दूध २ अंजली है, रज संबंधी स्त्री का रुधिर ४ अंजली है, सम धातु वाले देह में यह प्रमाण जानना, विषम प्रकृति में यह मान नहीं है । यह मज्जादिकों के क्षय वृद्धि का प्रमाण समान प्रकृति में जानना चाहिये, विषम प्रकृति अर्थात् (विषम धातु में) यह प्रमाण यथार्थ नहीं रहता है । इस प्रमाण द्वारा शुक्र सैं आर्त्तव सदैव अधिक रहता है। फिर आप शुक्राधिक्य सैं पुत्रोत्पत्ति कैसैं कहते हो ।

गुरु–इस का कारण यह है कि जितना आर्त्तव मल रहित गर्भाशय में गर्भजनन के लिये चाहिये उस सैं शुक्र की अधिक और न्यूनता लेनी चाहिये । अथवा अपने अपने प्रमाण की अपेक्षा शुक्र आर्त्तवों की अधिकता और न्यूनता इस जगे विवक्षित हैं । इस का यह कारण है कि चित्त में अत्यंत हर्ष होने सैं, तथा दूध, घृत आदि शुक्र कर्त्ता पदार्थों के सेवन करने सैं, शुक्र (वीर्य) की अधिकता के कारण कभी गर्भाशय में अधिक गिरता हैं । और कभी शोकाक्रांत वैमनस्य (दुःख) आदि संयुक्त चित्त होने सैं शुक्र थोडा गिरता हैं, इसी प्रकार आर्त्तव को भी जानना चाहिये ऐसे सब में प्रसिद्ध है । अन्य आचार्य कहते हैं कि शुक्रार्त्तवों का न्यूनाधिक्यपना तथा समानता पराक्रम करके होता है । तात्पर्य यह है कि स्त्री पुरुषों की शरीरशक्ति न्यून अधिक जैसी होय तैसेही शुक्र आर्त्तव होते हैं ।

शिष्य–हे गुरो! " रसाद्रक्तंततोमांतंमांसान्मेदस्ततोऽस्थिच।अस्थ्नो मज्जाततःशुक्रंशुक्राद्गर्भःप्रजायते ,, अर्थात् रस सैं रुधिर, रुधिर सैं मांस, मांस सैं मेदा, मेदा सैं अस्थि, अस्थि सैं मज्जा, मज्जासैं शुक्र और शुक्र सैं गर्भ की उत्पत्ति होती है । ऐसा लिखा हैं. कदाचित् आप यह कहो कि स्त्री के शुक्र नहीं होता है पुरुष केही शुक्र होता है । तो यह कहना भी असत्य है क्योंकि इस श्लोक में तथा अन्यत्र यह कहीं नहीं लिखा कि पुरुष के शुक्र होता है स्त्री के नहीं हों, कदाचित् आप ऐसा-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नहीं मानें तो स्त्री के सातवीं धातु कौन सी है? यदि आप रज (रजो धर्म के रुधिर-को शुक्रस्थानीय मानोंगे तो रुधिर तो प्रथमही लिख आए हैं रसाद्रक्तं फिर दूसरे कहन सें पुनरुक्ति दूषण आता है। अतएव मेरी समझ में तो शास्त्रद्वारा यह निश्चय होता है कि दोनों स्त्री पुरुष सप्त धातु वाले हैं, जब सप्त धातुवाले स्त्री पुरुष दोनोंहैंतो फिर गर्भाधान में स्त्री को पुरुष की कुछ आवश्यकता नहीं है। स्वयं स्त्रीही कामदेव सें पीडित हो केवल पुरुष के स्मरण स्पर्श और दर्शन मात्र सेंही चलायमान वीर्य जिस का उसवीर्य को गर्भाशयमें प्राप्त होने से, और रज संबंधी रुधिर के मिलने से गर्भ-वती क्यों नहीं होती। क्योंकि गर्भ होने में शुक्र और आर्त्तवही कारण है। वो दोनों स्त्री के समीपही है, अतएव गर्भ होना संभव है फिर क्यों नहीं होवे।

गुरु–तुम्हारा कहना बहुत ठीक है परन्तु सुनो भाई इस में पुरुषवीर्यही मु-ख्य है। जब पुरुष का वीर्य स्त्री के रुधिर सें मिलता है उसी समय गर्भ होता है, विना पुरुष वीर्य के स्त्री का वीर्य गर्भ नहीं करसक्ता। सो रजो दर्शवती स्त्रीके समीप न होने से वे स्वयं अपने वीर्यसे गर्भ धारण नहीं करसक्ती इसका प्रमाण सं-ग्रह में इसप्रकार लिखा है।

योषितोऽपिस्रवन्त्येवशुक्रंपुंसांसमागमे। गर्भस्य
तुनतत्किंचित्करोतीतिनचिंत्यते॥

अर्थ–स्त्री भी पुरुष के संयोग में शुक्र को स्रवती है, अर्थात् परित्याग करती है। परन्तु उन्होंका वीर्य गर्भाधान के कुछ प्रयोजन का नहीं है। अतएव उसका वर्णन भी नहीं करते।

शिष्य–यदि आप शुक्रकी आधिक्यता सें पुत्र होता है ऐसा कहोगे तो फिर पुत्रेष्टी आदि पुत्रीकरण जो कहा है उसको व्यर्थता आवेगी।

गुरु–पुत्रेष्टी कर्मके कहने सें हमने यह नहीं कहा कि इस कर्म सें पुत्र होवे, किंतु पुत्रेष्टी आदि पुण्य कर्मोंके करने सें बालक रूपवंत चिरायु और सत्वादि गु-णसंपन्न होता है। इसमें प्रमाण पूर्वोक्त कहतेहैं।

एवंजातारूपवंतः सत्ववन्तश्चिरायुषः।
भवन्त्यनृणभोक्तारःसत्पुत्राःपुत्रिणोहिताः॥

अर्थ–इस वचन सें पुत्रीकरण संस्कारादिकों सें संस्कृत गर्भ रूपवान्, बल-वान्, चिरायु, स्वभुजोपार्जितका खाने वाला, सत्पुत्र माता पिताको आनन्ददाय-क होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हे वत्स पूर्वोक्त शुक्रार्त्तवका जो प्रमाण कहा है (४ अंजली आर्त्तव और १ पस्से भर शुक्र) ये ठीक नहीं है क्योंकि इसी सुश्रुतग्रंथमें लिखा है यथा ।

वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायित्वात्तथैवच ।
दोषधातुमलादीनां परिमाणंनविद्यते ॥

अर्थ–देहधारियोंकी विलक्षणता (लंबे, ठिगने, कृश, स्थूल, आदि भेदोंसे) तथा देहके अस्थायित्व (अर्थात् अवस्थादिन रात्रि और ऋतुके भोग होने सें समान नहीं रहती) इन कारणों सें, दोष (वातादि) धातु (रस रुधिर वीर्यादि) और मल इत्यादिकोंका परिणाम नहीं है ।

अपत्यजनककालकहतेहैं ।

ऋतुस्तुद्वादशरात्रंभवतिदृष्टार्त्तवः ।

अर्थ–जिस कालमें स्त्री रजोदर्शवती हो, उस कालको ऋतु कहते हैं । वह ऋतुकाल बारह दिवस रहता है । इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि ऋतुके १६ दिन हैं परंतु उनमें तीन दिन प्रथमके और तीन दिन पिछलें योनिसंकोचके त्यागकर १२ दिनहीं ग्रहणयोग्य है ।

अदृष्टार्त्तवऋतुकहते हैं ।

अदृष्टार्त्तवोप्यस्तीत्येकेभाषन्ते ।

अर्थ–कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि, जैसें दृष्टार्त्तव होता है उसी प्रकार अदृष्टार्त्तव भी होता है । अर्थात् रुधिर न निकलने सें भी ऋतुवती स्त्री होती है ।

अदृष्टार्त्तऋतुमतीकेलक्षण ।

पीतप्रसन्नवदनां प्रक्लिन्नात्ममुखद्विज । नरकामप्रियकथां स्रस्तकुक्ष्यक्षिमूर्द्धजां ॥ स्फुरद्भुजस्तनश्रोणिनाभ्यूरुज घनस्फिजं । हर्षोत्सुक्यपरांचापिविद्यादृतुमतींस्त्रियम् ॥

अर्थ–जिस स्त्रीका मुख पीत वर्ण, तथा प्रसन्न दीखे, और देहके तथा मुख, और दांतोंके मसूढे ये अत्यंत पसीजते हों, और पुरुष संबंधी तथा काम संबंधी वार्त्ता प्यारी लगे, और कूख नेत्र तथा केश ये सिथिल होवे, तथा भुजा, स्तन, कमर, नाभि, ऊरू, जंघा, और कूले ये जिसके कंपित हों, । तथा मैथुन करनेकी अत्यंत इच्छा हो, ये पूर्वोक्त लक्षणों सें स्त्रीऋतुमती जाननी । अर्थात् इसके अं-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तरगत रजोदर्श हुआ है ऐसा जानना, वाग्भटमें (क्षाम) शब्द अधिक है, अर्थात् विना कारणके देह कृश होवे। यद्यपि श्लोकमें द्विजशब्दके कहने सें दांत कहे हैं, परन्तु दांतोंको पसीजना असंभव है इसी सें दंतवेष्टक (मसूढे) जानने।

संकुचितयोनिमेंबीजप्रवेशनहींहोयइसमेंदृष्टांत।

नियतेदिवसेतीते संकुचत्यम्बुजंयथा।
ऋतौव्यतीतेनार्यास्तु योनिःसंव्रियतेतथा॥

अर्थ–जैसें फूलनेके पांच सात दिन पीछे कमल स्वयं मुरझाय जाता हैं। यद्वा जैसें दिनमें फुला हुआ कमल सायंकालको स्वयं मुद जाता है। उसी प्रकार ऋतुके व्यतीत होने सें अर्थात् १२ रात्रि व्यतीत होने सें स्त्री की योनि (गर्भाशय) संकुचित होती है। इसी सें वीर्य ग्रहण नहीं करे।

आर्तवप्राप्तिकाकाल और स्वरूप।

मासेनोपचितंकाले धमनीभ्यांतदार्त्तवम्।
ईषद्रक्तंविवर्णंच वायुर्योनिमुखंनयेत्॥

अर्थ–आर्त्तव का काल द्वादश वर्ष से ले साठ वर्ष पर्यंत रहता है, वह महिने के महिने संचित हो वायु के योग से दोनों धमनीमार्ग करके किंचित् लाल अथवा [ईषत्कृष्णं] अर्थात् कुछ लाल, और दुष्ट वर्ण, अथवा (विगन्ध) कहिये गंध रहित योनिके मुख प्रति प्राप्त होता है अर्थात् निकलता है। गर्भ रूप फल प्रगट करने से इस आर्त्तव की पुष्प संज्ञाहै। इसी कारण ऋतुवती स्त्री को पुष्पवती कहते हैं।

आर्त्तवकेप्रवृत्तिनिवृत्तिहोनेकाकाल।

तद्वर्षाद्द्वादशात्काले वर्त्तमानमसृक्पुनः।
जरापक्वशरीराणां यातिपंचाशतःक्षयम्॥

अर्थ–[आहार रस से उत्पन्न होने वाला रज] रुधिर बारह वर्ष से प्रगट होकर तदनन्तर जैसे जैसे शरीर में सप्तधातु बढकर शरीर बढे है, तैसे तैसे वो रज बढकर महिने की महिने प्रवृत्त होता है। और पंचास वर्ष की अवस्था होनेके उपरांत बुढापासे शरीर तथा धातु पक्व होकर उत्तरोत्तर जैसे जैसे बढाथा उसीप्रकार क्रम से क्षीणहोकर साठ वर्षके करीब नष्ट होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

समविषमदिवसभेदकरकेगर्भभेद ।

युग्मेषुतुपुमान्प्रोक्तो दिवसेष्वन्यथाबला ।
पुष्पकालेशुचिस्तस्मादपत्यार्थंस्त्रियंव्रजेत् ॥

अर्थ–ऋतु सम्बन्धी सम दिवस ४.६. ८.१०. १२.१४. इन में स्त्री संग करने से पुत्र होता है । और विषम दिवस ५. ७. ९. ११. १३. १५. इन में गमन करने से कन्या होती है । इस प्रकार विचार कर जिस पुरुष को सन्तानकी इच्छा, होवे और जिसका काम शुद्धहो उस पुरुष को उसकी इच्छानुसार उसी उसी दिवस में स्त्रीसंयोग करना उचित है । अर्थात् पुत्रेच्छु सम दिनों में और कन्या की इच्छावाला विषम दिनों में गमन करे । किसी आचार्य का यह मत है कि, पांचवें दिन गमन से भी पुत्र होता है ।

शिष्य–शुक्र की आधिक्यता से पुत्र और रजकी आधिक्यता से कन्या होती है । ऐसा आप पूर्व कह आए हो फिर, सम विषम दिनों में पुत्र कन्या होना असंभव है क्यों कि पुत्र कन्या होने में रज और शुक्र की आधिक्यताही कारण है । यदि विषम दिनों में शुक्र अधिकहोवे तो पुत्र होवेगा कि कन्या ।

गुरु–इसका यह कारण है कि सम दिवसों में ही पुरुष के शुक्र अधिकहोता है और स्त्रियों के रज अल्प रहता है, इसी से पुत्र होता है और विषम दिवसों में स्त्री के रज अधिक होता है और पुरुषों के वीर्य अल्प रहता है, इसी से विषम दिनों स्त्री संग करने से कन्या होती है, इस में विदेह का वचन है । यथा,

युग्मेषुदिवसेष्वासां भवत्यल्पतरंरजः।संयोगंतत्रयाग
च्छेत्सापुमांसंप्रसूयते ॥ अयुग्मेषुदिनेष्वासां भवेद्बहु
तरंरजः । संयोगंतत्रयागच्छेत्सातुकन्यांप्रसूयते ॥

अर्थ–पूर्वोक्त सम दिवसों में स्त्री के आर्त्तव अत्यंत अल्प होता है, इसी से इन दिनों में जो स्त्री पुरुष संग करे तो पुत्र प्रगट करे, और विषम दिनों में आर्त्तव अधिक होता है । इसी से जो स्त्री पुरुष संगकरे तो कन्या उत्पन्न होवे ।

शिष्य–सम दिनों में पुत्र और विषम दिवसों में कन्या होती है, परन्तु नपुंसक कौनसे दिवसों में होता है । नपुंसक होनेका कोई दिन नहीं कहा ।

गुरु–नपुंसक होने का प्रमाण भोज आचार्यने इस प्रकार लिखा है ।

अयुग्मेस्त्रीपुमान्युग्मे संध्ययोस्तुनपुंसकम् । शुक्रा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धिक्यात्तुपुरुषः प्रमदारजसोधिकात् ॥ शुक्रशो
णितयोःसाम्यात्तृतीयाप्रकृतिर्भवेत् ।

अर्थ–पूर्वोक्त विषम दिनोंमें कन्या, और सम दिवसोंमें पुत्र, तथा सम विषम दिवसों की संध्यामें स्त्री गमन करनेसैं नपुंसक संतान होती है। उसी प्रकार शुक्राधिक्यसैं पुरुष, और रजकी अधिकतासैं कन्या, तथा शुक्र रज दोनों के समान होने सैं [तृतीयाप्रकृति] कहिये नपुंसक होवे, (आगे ईश्वर की इच्छा है.)

सद्योगृहीतगर्भाकेलक्षण।

श्रमोग्लानिःपिपासा सक्थिसदनंशुक्रशोणितयो
रनुबंधःस्फुरणञ्चयोनेः।

अर्थ–तत्क्षण गर्भधारण करनेवाली स्त्री के ये लक्षण हैं। विना कारण श्रम, ग्लानि, प्यास का लाना, जीवों का जिकडना, तथा शुक्र शोणित का रुकना, अर्थात् विषय करके जब स्त्री उठे उस समय वीर्य और रज बाहर न निकले, तथा योनिका स्फुरण (फडकना)।

तथाचवाग्भटे।

लिंगंतुसद्योगर्भायायोन्यांबीजस्यसंग्रहः। तृप्तिर्गुरुत्वंस्फुरणंशु
क्रास्राननुबन्धजम्॥हृदयस्पन्दनंतन्द्रातृड्ग्लानिर्लोमहर्षणम्।

अर्थ–तत्क्षण गर्भधारण करा हो उस स्त्री के ये लक्षण हैं। योनिमें बीज (शुक्रार्त्तव) का संग्रह, तृप्त के सदृश तृप्ति होना, कूख का भारीपना, और स्फुरण होना। शुक्र और आर्त्तव का योनि सैं बाहर न निकलना, हृदयकंप, तन्द्रा, प्यास, ग्लानि, और हर्षके होने सैं रोमांचोंका खडा होना।

गर्भरहनेकेपश्चातलक्षण।

स्तनयोःकृष्णमुखता रोमराज्युद्गमस्तथा। अक्षिपक्ष्माणि
चाप्यस्याः संमील्यन्तेविशेषतः ॥ अकामतश्छर्दयतिगं
धादुद्विजतेशुभात्। प्रसेकसदनंचापि गर्भिण्यालिङ्गमुच्यते ॥

अर्थ–स्त्री गर्भवती होनेके पश्चात उसके ये लक्षण होते हैं। स्तनके अग्रभाग काले होते जावें, अंगमें रोमांच खडे हों, नेत्रों के पलक वारंवार खुलें मिचें, विना कारण वमन होना, उत्तम सुगंधसैं डरपना, मुख सैं पानी छूटे, शरीर जिकडासा हो, अथवा कृश हो, ये गर्भवती के लक्षण हैं (स्तनोंमें दूध का होना, अरुचीहो खटाई खानेकी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इच्छा, विशेष करके अनेक प्रकारके भावोंमें श्रद्धा का होना, होठों पर कालोंच का आना, पैरों पर किंचित् सूजन का होना, योनिमें जाले से प्रतीत हो, इतने लक्षण चरकमें अधिक हैं)।

गर्भवतीकेउपचार ।

उपचारः प्रियहितैर्भर्त्राभृत्यैश्चगर्भधृक् ।
नवनीतघृतक्षीरैः सदाचैनामुपाचरेत् ॥

अर्थ–पति और नोकरों करके, प्रिय तथा हित (पथ्य) ऐसैं आहार विहार करके गर्भवती का उपचार करने सैं, स्त्रीगर्भ को सुखपूर्वक धारण करती है। तथा मक्खन, घृत, और दूध इन करके इस स्त्री के आत्मा के अनुकूल सदा उपचार करने चाहिये ।

गर्भवतीकेवर्जितआचार ।

अतिव्यवायमायासं भारंप्रावरणंगुरुम् । अकालजागरस्व
प्रकठिनोत्कटकासनम् ॥ शोकक्रोधभयोद्वेगवेगश्रद्धा
विधारणं । उपवासाध्वतीक्ष्णोष्णगुरुविष्टंभिभोजनम् ॥
रक्तंनिवसनंश्वभ्रकूपेक्षांमद्यमामिषम् । उत्तानशयनंयच्च
स्त्रियोनेच्छन्तितत्त्यजेत्॥तथारक्तस्रुतिंशुद्धिं बस्तिमामा
सतोऽष्टमात् । एभिर्गर्भःस्रवेदामां कुक्षौशुष्येन्म्रियेतवा॥

अर्थ–अत्यंत मैथुन करना, परिश्रम, भारी बोझ का उठाना, कुसमय सोना और जागना, कठिन बिछया पर बैठना । घोटुओंके बल बैठना, शोक, क्रोध, भय, उद्वेग, इनका धारण करना । तथा मल, मूत्र, अधोवायुआदि वेगोंका रोकना । व्रतोंका करना, मार्ग चलना, तथा तीक्ष्ण, भारी और विष्टंभी पदार्थोंका भोजन, लाल वस्त्रोंका धारण करना, खाई, बावडी और कूएका देखना, मद्य पीना, मांस खाना, और उत्तान शयन (सीधा सोना) इनसबका अत्यन्त सेवन गर्भवती स्त्री त्याग देवे । केवल इनहीं आहार विहार आदि को न त्यागे किंतु जो अनेकवार बालक जन चुकी हो, और संपूर्ण गर्भवतियों के व्यवहार में कुशल हो, वे स्त्री जिसकर्मको वर्जित करे वो भी गर्भवती स्त्री को त्याज्य हैं । तथा फस्त खोलना, और रुधिरकी वमन विरेचन द्वारा शुद्धिकरना, तथा अष्टम महीनेके पूर्व अनुवासन बस्ति कर्म करना वर्जित है, अष्टम महिने के पूर्व बस्ति कर्म न करे किंतु अष्टम महिनेमें तो करनाही चाहिये, ये पूर्वोक्त वर्जित वस्तुओंके सेवन करनेसे कच्चा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by eGangotri Foundation USA

गर्भ गिरपड़े। अथवा कूखमें ही सूखजावे, अथवा गर्भमें बालक मरजावे। (देवता राक्षस और इनके अनुचरोंसे रक्षाके अर्थ लालवस्त्रको न धारण करे यह चरक मुनि लिखतेहैं) तथा सर्व इन्द्रियोंके विरुद्धभावों को त्यागदेवे। और जिस कर्मको वृद्ध वर्जित करे उसको भी न करे।

गर्भवतीकेदुःखसेगर्भकोदुःखहोताहै।

दोषाभिघातैर्गर्भिण्या योयोभागःप्रपीड्यते।
तस्यभागःशिशोस्तस्या गर्भस्थस्यप्रपीड्यते॥

अर्थ–वातादि दोष तथा लकड़ी आदिके प्रहार इन करके गर्भिणी का जो जो देह का अवयव पीड़ित होता है, वही वही अवयव गर्भमें रहनेवाले बालक का दुखता है।

गर्भवतीकासामान्यचिकित्सा।

व्याधींश्चास्यामृदुसुखैरतीक्ष्णैरौषधैर्जयेत्।

अर्थ–इस गर्भवती के जो व्याधि प्रगट होवे, उन को मृदु (सुकुमारों के योग्य) और सुखकारक अर्थात् प्यारी तथा अतीक्ष्ण (जो तीखी न हो) ऐसा औषधों करके जीते।

शिष्य–मृदु कर कह फिर अतीक्ष्ण कहने का क्या प्रयोजन है, क्योंकि मृदु कहनेसें भी अकर्कश का बोध होताहै, और अतीक्ष्णकहने से भी अकर्कश का बोध होता है, दोनों के नामभेद हैं वास्तव में अर्थ एकही है।

गुरु–मृदु और अतीक्ष्ण के कहने का यह प्रयोजन है कि, जैसे शर्करादिक औषध हैं वे मृदु और तीक्ष्ण हैं। इनकी शक्ती भी उत्कृष्ट है। और कालीमिरच आदि केवल अतीक्ष्ण है, तथा तीक्ष्ण और अतीक्ष्ण गुणवाली राई आदि औषध दोष और उत्क्लेश कर्त्ता जाननी चाहिये, इसी से मृदु और अतीक्ष्ण दोनों का कहना ठीक है. जैसे तंत्रांतरों में लिखा है।

इत्यनात्ययिकेव्याधौ विधिरात्ययिकेपुनः।
तीक्ष्णैरपिक्रियायोगैः स्त्रियंयत्नेनपालयेत्॥

अर्थ–यह जो कहाहै कि, मृदु और अतीक्ष्ण औषधों करके गर्भवती की व्याधि हरण करे, सो यह विधि अनात्ययिक अर्थात् जहां अतिआवश्यकता न हो तहां जाननी, और जहां अति आवश्यकता होवे तहां तीक्ष्ण औषधभी देकर गर्भवती स्त्री-का यत्नसे पालन करे। अतएव सामान्य व्याधिमें तीक्ष्ण औषधोंसे गर्भवती स्त्री-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

की सदैव रक्षा कर्त्तव्य है, जैसा अति व्यवायादिक करनेसे भय नहीं होता कि जैसा तीक्ष्ण औषधसे गर्भवतीको हानि होती है।

अबगर्भकीमासपरत्वअवस्थाकहते हैं ।

तत्रप्रथमेमासिसंमूर्च्छितःसर्वधातुकलुषीकृतः खे
टभूतोभवतिअव्यक्तविग्रहः ॥

अर्थ–तहां प्रथम महिनेमें शुक्र शोणित संमूर्च्छित हो, तथा सर्व धातुओं करके कलुषीकृत खेट भूत अर्थात् कफरूप कलल अवस्थाको प्राप्त होता है, और अव्यक्त विग्रह होता है ।

द्वितीयेशीतोष्मानिलैरभिपच्यमानानांमहाभू
तानांसंप्राप्तोघनःसंजायते ।

अर्थ–दूसरे महिनेमें कफ, पित्त और वायु इन करके परिणाम दशा को प्राप्त हुए जे पंचमहाभूत उन्होंका शुक्र शोणितात्मक जो समूह सो कुछ कठिण अवस्था को प्राप्त होता है।

पुरुषस्त्रीनपुंसककीपरीक्षा ।

यदिपिण्डःपुमान्स्त्रीचेत्पेशीनपुंसकंचेदर्बुदमिति ।

गर्भ में पुरुष स्त्री नपुंसक की परीक्षा इसप्रकार करे । यदि गर्भ गोल पिंड के अथवा गोलाके समान स्पर्श करने से मालूम होवे, तो पुरुषगर्भ जानना; और यदि गर्भ पेशी के सदृश लंबा प्रतीत होवे तो गर्भ में कन्या जाननी । और गोल फल के अर्द्धभाग के समान प्रतीत होने से नपुंसक गर्भ जानना चाहिये ।

गर्भीभोजवचनसेपिंडादिकोंकास्वरूप
विपरीत कहते हैं ।

चतुरस्राभवेत्पेशी वृतःपिण्डोघनःस्मृतः ।
शाल्मलीमुकुलाकारमर्बुदंसंप्रचक्षते ॥

अर्थ–चौकोन पेशी होती है, और गोलपिंडके आकार घन कहाताहै, तथा सेमरकी कलीके आकार हो उसको अर्बुद कहते हैं, इन्हों के क्रमसे स्त्री पुरुष और नपुंसक गर्भ जानने ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तृतीयमासमें गर्भकास्वरूप।

तृतीयेहस्तपादशिरसांपञ्चपिण्डानिवर्त्त
न्ते। अङ्गप्रत्यङ्गविभागश्चसूक्ष्मोभवति।

अर्थ–तीसरे महिने में दो हाथ, दो पैर, और १ मस्तक, ये पांच पिंड एकही समयमें उत्पन्न होते हैं। और, अङ्ग तथा प्रत्यंग विभागभी अत्यंत सूक्ष्म उत्पन्न होते हैं। तहां हाथ, पैर, मस्तक, छाती, पीठ, और पेट ये अंग कहाते हैं। और ठोडी, नाक, होठ, कान, उंगलीटकना इत्यादि प्रत्यंग कहाते हैं। इन अंगोंमें कोई माता के अंग सैं और कोई पिताके अंगों सैं प्रगट होते हैं सो आगे कहेंगे। और महाभूतों के विकारों सैं जो शब्दादिक प्रगट होते हैं वो शारीरककी प्रथमाध्यायमें कह आए हैं। इस तिसरे महिनेमें जो दोष धातु मलादिक देहमें प्रगट होते हैं वो प्रकृति कहाते हैं। और पश्चात् दोष धातु आदिका न्यूनाधिक होना वह विकृति कहलाती हैं।

औरभीस्त्रीपुरुषनपुंसकहोनेकीपरीक्षाकहते हैं।

क्लैब्यंभीरुत्वमवैशारद्यंमोहोवस्थानम अधोगुरुत्व
मसहनंशैथिल्यंमार्दवंगर्भाशयबीजभागस्तथायु
क्तानिचापराणि स्त्रीकराणि। अतोविपरीतानिपुरु
षकराण्युभयभागभावानिनपुंसककराणि॥

अर्थ–कायरता, भययुक्त, मूर्खता, मोह, वश होना, नीचेका भाग भारी होना गरमी सरदी आदिका सहन सकना, शिथिलता, और जिस स्त्रीका गर्भाशय बीज भाग नम्र होवे, इत्यादि और भी चिन्ह स्त्री प्रगट कर्त्ता जानने। इन चिन्हों सैं विपरीत अर्थात् पुरुषार्थीपना, निर्भयता, चतुरता इत्यादि लक्षण पुरुष कर्त्ता जानने और कुछ पुरुषके और कुछ स्त्रीके चिन्ह मिले होनेसैं नपुंसक बालक होता है।

चतुर्थमास।

चतुर्थेसर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागःप्रव्यक्तोभवति।

अर्थ–चौथे महिने में पूर्वोक्त सूक्ष्म अंग, और प्रत्यंग स्पष्ट होते हैं। और इस महिनेमें गर्भके हृदय प्रगट होने के पश्चात् उनमें प्रतिबिंबित आत्माके योग करके हृदय फुरने लगे है। इसका कारण यह है कि हृदय आत्माका स्थान है।

प्रसंगवशभावप्रकाशसैंअंगऔरउपांगोंकोकहते हैं।

आद्यमङ्गंशिरःप्रोक्तं तदुपाङ्गानिकुन्तलाः। तस्यान्तर्म

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्तुलुङ्गश्च ललाटंभ्रुयुगंतथा ॥ नेत्रद्वयंतयोरन्तर्वर्त्तते द्वेकनीनिके । दृष्टिद्वयंकृष्णगोलौ श्वेतभागौचवर्त्मनी । पक्ष्माण्यपाङ्गौशंखौच कर्णौतच्छष्कुलद्वियं ॥ पालिद्वयं कपोलौच नासिकाचप्रकीर्त्तिता । ओष्ठाधरौचसृक्किण्यौ मुखंतालुहनुद्वयं ॥ दन्ताश्चदन्तवेष्टश्चरसनाचिबुकङ्गलः ।

अर्थ-प्रथम अंग मस्तक है । उस के उपांग केश (बाल) हैं, उस माथेके भीतर मस्तुलुंग है (अर्थात् जो मस्तकमें घृतके सदृश चिकनाई होती है) ललाट, दोनों भौंह, दो नेत्र, उनके भीतर दो तारे हैं, दो दृष्टि दो कृष्ण गोलकोंके ओरपास दो सपेद भाग हैं, दो नेत्रोंके पलक, दो वन्नी दो नेत्रोंके प्रांत, दो कनपटी, दो कानों के बाहर पोल के ओरपास के भाग, दो पाली, दो कपोल (गाल) एक नासिका, दो ओष्ठ, दो अधर, दो होठों के दक्षिण वाम प्रांत मुख, तालुआ, दो जाबड़ा, दांत, दांतों के वेष्टक, अर्थात् जिस मांससे दांत ओरपाससे ढकरहें हैं (मसूढे) जीभ, ठोडी और गला, इतने उपांग मस्तकसे संबंध रखते हैं अर्थात् ये मस्तकसंबंधी हैं ।

द्वितीयअंगकावर्णन ।

द्वितीयमङ्गंग्रीवातुययामूर्द्धाभिधार्यते ॥

अर्थ-दूसरा अङ्ग ग्रीवा, अर्थात् नाड है । जिसकरके मस्तक धारण करसक्ताहै।

तीसरेअंगकावर्णन ।

तृतीयंबाहुयुगलं तदुपाङ्गान्यथब्रुवे । तत्रोपरिमतौस्कंधौ प्रगण्डौभवतस्त्वधः॥कफोणियुग्मंतदधःप्रकोष्ठयुगलंतथा । मणिबंधौतलेहस्तौ तयोश्चाङ्गुलयोदश ॥ नखाश्चदशतेख्याता दशच्छेद्याःप्रकीर्त्तिताः ।

अर्थ-तीसरा अंग दोनों भुजा हैं । उनके उपांगोंको अब कहते हैं, उन दोनों भुजाओंके ऊपर दो स्कंध (कंधा) हैं, तिसके नीचे दो प्रगंड (कंधेका नीचेका भाग और कोहनीके ऊपरका भाग) है, उसके नीचे दो कफोणि (कोहनी) है, उसके नीचे प्रकोष्ठ (पहुँचे से ऊपर और कोहनीसे नीचे का भाग) है, उसके नीचे मणिबंध अर्थात् दो पहुँचे हैं, उसके नीचे दो हथेली और उनका पिछला भाग, उन हाथोंमें पांच पांच उंगली मिलके दश उंगली हैं. उन उंगलियोंमें दश लाल नख

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हैं, और उनमें दश छेद्य अर्थात् कटने वाले नख (नाखुन) हैं इतनेउपांग भुजा से सम्बन्ध रखते हैं।

चतुर्थअंगकावर्णन।

चतुर्थमङ्गंवक्षस्तु तदुपाङ्गान्यथब्रुवे॥स्तनौपरस्तथा नार्याविशेषउभयोरयं॥यौवनागमनेनार्याःपीवरौभवतः स्तनौ। गर्भवत्याःप्रसूतायास्तावेवक्षीरपूरितौ॥ हृद यंपुण्डरीकेण सदृशंस्यादधोमुखं।जाग्रतस्तद्विकसति स्वपतस्तुनिमीलति॥आशयस्तत्तुजीवस्य चेतनास्था नमुत्तमम्।अतस्तस्मिंस्तमोव्याप्ते प्राणिनःप्रस्वपन्तिहि॥ कक्षयोर्वक्षसःसन्धी जत्रुणोःसमुदाहृते।कक्षेउभेसमाख्या ते तयोःस्यातांचवंक्षणौ॥

अर्थ--चतुर्थ अंग वक्षस्थल (छाती) है, उसके उपांगोंको कहते हैं। पुरुषके तथा स्त्रीके दो दो स्तन हैं. इन दोनोंमें विशेषता यह है कि, स्त्री की यौवन अवस्था आने पर वेही स्तन पुष्ट हो जाते हैं और जब स्त्री गर्भवती तथाप्रसूता (बालक होने से) दोनों स्तन दूधसे परिपूर्ण होजाते हैं, छाती के समीप भीतर हृदय है, वह कमल के सदृश तथा नीचे को मुखवाला है, जब मनुष्य जागता है तब वो खिल जाताहै और जब प्राणी सोते हैं तब वह कमल मुद जाता है, यह जीवके रहनेका स्थान है। और चेतनाशक्तिका उत्तम स्थान है। जिस समय इस हृदयमें तम (अन्धकार अज्ञान) व्याप्त होता है तब प्राणी सोते हैं. दोनों कांख, और छाती की सन्धियों को जत्रु (हसली) कहते हैं। वह जत्रु, और दोनों कंधे, उन दोनों कंधेनके वंक्षण अर्थात् जोड, ये सब वक्षस्थलके उपांग हैं। इस अङ्गके वर्णन-में जो कहा है कि [चेतनास्थानमुत्तमम्] इस कहने का यह प्रयोजन है कि; शकल * शरीर चेतना का स्थान है परंतु सर्व देहके अपेक्षा हृदय विशेष चेतना का स्थान है।

पंचमषष्ठऔरसप्तमअङ्गकावर्णन।

उदंरम्पञ्चमञ्चाङ्गं षष्ठंपार्श्वद्वयंमतम्। सपृष्ठवंशंपृष्ठन्तु समस्तंसप्तमंस्मृतं॥उपाङ्गानिचकथ्यन्ते तानिजानीहि

---

* चेतनानामधिष्ठानं मनोदेहश्चसेन्द्रियः। केशलोमनखाग्रंच मलं द्रव्यगुणैर्विना॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यत्नतः । शोणिताज्जायतेप्लीहा वामतोहृदयादधः ॥ रक्तवाहिशिराणां स मूलंख्यातोमहर्षिभिः । हृदया द्वामतोऽधश्च फुप्फुसोरक्तफेनजः ॥ अधोदक्षिणत श्चापि हृदयाद्यकृतःस्थितिः । तत्तुरञ्जकपित्तस्य स्था नंशोणितजंमतम् ॥ अधस्तुदक्षिणेभागे हृदयात्क्लोम तिष्ठति । जलवाहिशिरामूलं तृष्णाच्छादनकृन्मतम् ॥

अर्थ–पांचवां अङ्ग उदर (पेट) है । छटा अङ्ग दोनों पसवाडे हैं।सांतवां अङ्ग पीठका वांस और समस्त पीठ है । अब इन पंचम, षष्ठ और सप्तम अङ्गों के उपांग कहता हूं उन को तू यत्नपूर्वक जान, हृदयके नीचे वाम भागमें रुधिरसैं प्लीहा (फिहा) उत्पन्न होती है । वह रुधिर के वहने वाली नाडियोंका मूल है । ऐसैं महर्षियोंनें कहा है । हृदय के नीचे वामभागमें फुप्फुस (फैंफडा) है । यह रुधिर के झाग सैं प्रगट हुआ है। हृदय के नीचे दहनी तरफ यकृत् (कलेजे) का स्थान है । वह रुधिर सैं उत्पन्न रंजक (रंगने वाले) पित्तका स्थान है. हृदयसैं नीचे दहनी तरफ क्लोम (प्यास का स्थान) है । यह जल वहनेवाली नाडियोंका मूलाधार है । और तृषा का आच्छादन कर्त्ता कहते हैं । तथा इसकी वातरक्त सैं उत्पत्ति कहते हैं । यह वाग्भट में लिखा हैं " रक्तादनिलसंयुक्तात् कालीयकसमुद्भवः" परंतु कोई लिखता है कि, वात और रक्त मिलकर कलेजा उत्पन्न हुआ है ।

मेदःशोणितयोःसाराद् वृक्कयोर्युगलंभवेत् । तौतुपुष्टिकरौप्रोक्तौ जठरस्थस्यमेदसः ॥ उक्ताःसार्द्धास्त्रयो व्यामाः पुंसामंत्राणिसूरिभिः । अर्द्धव्यामेनहीनानि योषितोऽन्त्राणिनिर्दिशेत् ॥ उन्दुकश्चकटीचापि त्रिकंबस्तिश्चवंक्षणौ । कण्डराणांप्ररोहःस्यात्स्थानंतद्वीर्यमूत्रयोः ॥ सएवगर्भस्यधानं कुर्याद्गर्भाशये स्त्रियाः । शंखनाभ्याकृतिर्योनिरुयावर्त्तासाप्रकीर्त्तिता ॥ तस्यास्तृतीयेत्वावर्त्ते गर्भशय्याप्रतिष्ठिता॥ वृषणौभवतःसारौ कफासृङ्मांसमेदसाम् ॥ वीर्यवाहिशिराधारौ तौमतौपुरुषावहौ ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–मेदा और रुधिर सैं दोनों अंडकोश बने हैं, ये दोनों उदरमें रहनेवाली मेदाको पुष्ट करनेवाले हैं । विद्वान् पुरुषोंने इस पुरुष के आंतडे साढ़ेतीन व्याम लम्बे कहेहैं । और स्त्रियों के आंतडे पुरुषकी अपेक्षा अर्द्ध व्याम न्यून है । (उँगली सहित दोनों हाथों को तिरछे फैलाने के विस्तार को व्याम कहते हैं) नाभि, कमर, और त्रिक (पीठ के वांस को धारण कर्त्ता तीन हड्डी सैं बने हुये स्थान को त्रिक कहते हैं) बस्ति (मूत्राशय और वंक्षण कहिये जांघोंकी दोनों सन्धि अर्थात् पेडू और मोटे नसोंके अंकुर ये वीर्य और मूत्रके स्थान हैं । वही स्त्रीके गर्भाशयमें गर्भको स्थापन करे हैं । शंखकी नाभिके सदृश तीन आंटेवाली स्त्रीकी योनि होती है । उसके तीसरे आंटेमें गर्भाशय है । कफ, रुधिर, मांस और मेदाके सार सैं वृषण (अंडकोश) बने हैं । ये दोनों वीर्यके वहनेवाली नाडियोंके आधार भूत हैं । और पुरुषार्थके देने वाले भी येही हैं ।

गुदस्यमानंसर्वस्य सर्वस्याच्चतुरंगुलम्। तत्रस्युर्वलयस्ति स्रःशंखावर्त्तनिभास्तुताः ॥ प्रवाहिणीभवेत्पूर्वा सार्धांगुलमितामता । उत्सर्जनीतुतदधः सासार्धांगुलसंमिता॥ तस्याअधःसंवरणी स्यादेकांगुलसंमिता । अर्धांगुलप्रमाणन्तु बुधैर्गुदमुखंमतम् ॥ मलोत्सर्गस्यमार्गोऽयं पायुर्देहेविनिर्मितः । पुंसःप्रोथौस्मृतौयौतुतौनितम्बौचयोषितः ॥ तयोःककुन्दरेस्यातां–

अर्थ–सर्व गुदाका विस्तार चार अंगुल है । उस गुदामें तीन वलय (आंटे) शंखकी नाभिके आकार हैं । प्रथम आवर्तका नाम प्रवाहिणी है यह मलको नीचेकी तरफ ढकेलता है, विस्तार इसका डेढ़ अंगुलका है । उसके नीचे दूसरा उत्सर्जनी नामका आंटा है, यह मलको गुदासे बाहर गेरता है, इसका विस्तार भी डेढ़ अंगुल है । उसके नीचे तीसरा संवरणी नामा आंटा है, यह मल गिरनेके पश्चात् ज्योंका त्यों गुदाको कर देता है, इसका विस्तार १ अंगुलका है, और पण्डितोंने गुदाका मुख आधे अंगुलका कहा है । मलके उत्सर्ग करनेका मार्गरूप यह गुदास्थान शरीरमें निर्माण करा है । पुरुषोंके [प्रोथ] अर्थात् जिनको कूले कहते हैं, उन्हींको स्त्रीके नितंब कहते हैं । नितंबके समीप दो ककुंदर हैं । (अर्थात् उन दोनों कूले अथवा नितंबके बीचको ककुंदर ऐसे कहते हैं.)

अष्टमअङ्गकावर्णन ।

सक्थिनीत्वङ्गमष्टमम् । तदुपाङ्गानिचब्रूमो जानुनीपिण्ड-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

काद्वयम् ॥ जंघेद्वेद्वेगुटकेपार्ष्णी तलेचप्रपदेतथा ॥ पादावं गुलयस्तत्र दशतासांनखादश ।

अर्थ–दोनों सक्थि (निरोह वा ऊरू) ये आठवां अङ्ग है । उसके उपांग हम तुम सै कहते हैं । दो घोट्ट दो पिंडिका, (पिंडरी) दो जंघा (पींडिरी सै नीचेका भाग) दो टकना, दो एडी, दो (तल) तरवा और दो पैर, दोनों पैरोंकी दश उंगली, उन दशों उंगलियोंके दश नख, ये सब सक्थिके उपांग हैं । अर्थात् सक्थि सै संबंध रखते हैं । इस प्रकार आठ अङ्ग कहे हैं इनका विस्तार आगे कहेंगे । आठ अङ्गों और उनके उपाङ्गोंको कहकर फिर गर्भवतीकी मासपरत्व दशा वर्णन करते हैं ।

तस्माद्गर्भश्चतुर्थेमासिअभिप्रायमिन्द्रियेषुकरोति

अर्थ–इस प्रकार चतुर्थ महिनेमें जीव प्रगट होता है, इसीसै शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इन विषयोंमें मन चलता है ।

गर्भवतीकानामान्तर ।

द्विहृदयांनारींदौहृदिनीमित्याचक्षते ।

अर्थ–चतुर्थ महिनेमें स्त्रीके दूसरा हृदय प्राप्त होता है । इसीसैं उसको द्विहृदया अथवा दौहृदिनी कहते हैं ।

मातृजंह्यस्यहृदयं मातुश्चहृदयेनतत् । सम्बद्धंतेन गर्भिण्या नेष्टंश्रद्धाविधारणम् ॥ देयमप्यहितंतस्यै हितोपहितमल्पकम् । श्रद्धाविघाताद्गर्भस्य विकृतिश्चुतिरेवचा ॥

अर्थ–गर्भके बालकका जो हृदय है वह मातृज है, इसीसै गर्भका हृदय माताके हृदय करके संयुक्त होता है । अतएव गर्भिणीका हृदय संतप्त होने सैं गर्भ में जो बालक होता है उसका भी हृदय संतप्त होता है,इसीकारण गर्भिणी द्विहृदया होने सैं दौहृदनी कहाती है। इसी से गर्भवती का हृदय पराधीन होनेसैं उसकाल में अपनी स्वभावोचित इच्छा को त्याग अनेक प्रकार की अभिलाष करे हैं इसी सैं गर्भवती की अभिलाषा परिपूर्ण न करना बुरा है । अतएव उस द्विहृदया गर्भवती को पथ्यके साथ मिलाय कर अपथ्य (दाह कर्त्ता विष्टंभी आदि) पदार्थ भी देने चाहिये (अपि शब्द) से पथ्य पदार्थ यथेच्छ देवे और अपथ्य पदार्थ

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बहुत थोड़े देने चाहिये। यदि आप अपथ्य कहते हो तो फिर कैसे देना कहते हो इस लिये कहते हैं, कि द्विहृदा स्त्रीकी श्रद्धा भङ्ग करनेसे गर्भ विकृतहो, अथवा वह गर्भ नष्ट होजावे। तात्पर्य यह है कि, गर्भिणी की इच्छा पूर्ण न करनेसे यदि गर्भ बहुत दिनका होवे तो बालक वैरूप्य होवे और थोडे दिनका होवे तो वह गर्भ गिर जावे। इसी प्रमाण को पुष्ट करते हैं।

विकृतिगर्भहोनेकेऔरभीप्रमाण।

दौहृदविषमात्कुब्जंकुणिंषण्ढंवामनंविकृताक्षंवानारीसुतं जनयति। तस्मात्सायदिच्छेत्तत्तस्यैदेयम्॥ लब्धदौहृदा वीर्यवन्तंचिरायुषम्पुत्रंजनयति॥

अर्थ–स्त्री की दौहृदेच्छा परिपूर्ण न होने से, वह स्त्री कुबडा, टोंटा, षंढ, वोना और विकृत नेत्रवाला, (तथा खंजा, खल्वाट, तिरछी भुजावाला) ऐसा पुत्र प्रगट करती है। इसीसे गर्भवती स्त्री जिस जिस पदार्थकी इच्छा करे वह उसको देना चाहिये। क्योंकि लब्धदौहृदा स्त्री वीर्यवान्, बडी उमरवाला पुत्रको प्रगट करती है। अब गद्योक्त अर्थको पद्यसे कहते हैं।

स्त्रीकादौहृदकैसेपरिपूर्णकरनाचाहिये, इसमेंप्रमाण।

इन्द्रियार्थान्प्रियान्यांस्तु भोक्तुमिच्छतिगर्भिणी। गर्भबाधाभयात्तान्वै भिषगाहृत्यदापयेत्॥ साप्राप्तदौहृदा पुत्रं जनयेतगुणान्वितम्। अलब्धदौहृदागर्भंलभेदात्मनिवाभयम्॥

अर्थ–गर्भवती स्त्री, गान आदि का सुनना और अलङ्कार (भूषणों) का उपभोग, देवतादिकों का दर्शन, षड्रस भोजनादिक, भक्षणीय पदार्थ का सेवन, अतरआदि सुगन्ध वस्तुओंका सूंघना, इनमेंसे जिस वस्तुकी इच्छा करे, वह वस्तु वैद्य लायकर दौहृद न मिलने से कदाचित् गर्भकी विकृति न होजावे इस भयसे उस स्त्रीको देवे। गर्भवतीकी इच्छा परिपूर्ण करनेसे उत्तम प्रकारके पुत्रको प्रसव करती है और जिसको दौहृद न मिले उसके गर्भको अथवा उसके शरीरको भय होता है ऐसे जानना चाहिये।

इन्द्रियोंकेअपमानसेगर्भकीविकृति।

येषुयेष्विन्द्रियार्थेषु दौहृदेयाविमानता। प्रजायतेसुतस्यार्त्तिस्तास्तिमस्तास्तिमस्तादिन्द्रिये॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–कान, नाक, जीभ, नेत्र और त्वचा, इन पांच इन्द्रियों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये पांचविषय हैं । जिनमें जिस विषयसे जो इन्द्री तृप्त न हुई हो उसी इन्द्री में गर्भवाले बालकके पीड़ा होती है । उसका उदाहरण दिखाते हैं । जैसे गर्भवतीकी इच्छा गान सुनने की हो और कदाचित् वो गान न सुने तो उस की श्रोत्र इन्द्री (कान) तृप्त नहीं हुआ अतएव गर्भगत बालक की कर्ण इन्द्री पीडित होती है । इसीप्रकार इच्छित वस्तुको न देखने सैं बालक की नेत्र इन्द्री पीड़ित होती है । इसीप्रकार और इन्द्रियोंके विषयमें जानना ।

दौहदद्वारागर्भकेलक्षण ।

राजसंदर्शनेयस्या दौहृदंजायतेस्त्रियाः । अर्थवन्तंमहाभागंकुमारंसाप्रसूयते ॥ दुकूलपट्टकौशेय भूषणादिषुदौहृदात् । अलङ्कारैषिणंपुत्रं ललितंसाप्रसूयते ॥

अर्थ–जिस स्त्री को राजा के दर्शन करने का दौहृद (इच्छा) होवे वह स्त्री द्रव्यवान् महाभाग (पुण्यवान्) ऐसैं कुमार को प्रगट करे । तथा महीन, उत्तम, वस्त्र अथवा पट्ट वस्त्र, तथा पीतांबर इत्यादिकों के धारण करने की इच्छा जिस स्त्री की हो, वह अलङ्कारों का भोगने वाला और रूपवान् पुत्र को प्रगट करे ।

आश्रमेसंयतात्मानं धर्मशीलंप्रजायते ।
देवताप्रतिमायान्तु प्रसूतेपार्षदोपमम् ॥

अर्थ–जिस स्त्री को मुनि ऋषियों के आश्रम देखनेकी तथा उस जगह रहनेकी अभिलाषा होवे, वह स्त्री धर्मशील जितेन्द्रिय पुत्र को प्रगट करे । और जिस स्त्रीकी इच्छा देवमूर्तिके पूजनेकी अथवा दर्शन करने की हो, वह [पार्षद] अर्थात् सभा के अधिकारीके समान पुत्रको उत्पन्न करे ।

दर्शनेव्यालजातीनां हिंस्रालुंसाप्रसूयते । गोधामांसाशनेपुत्रं सुषुप्तंधारणात्मकम् ॥ गवांमांसेतुमलिनं सर्वक्लेशसहंतथा।माहिषेदौहृदात्च्छूरं रक्ताक्षंलोमसंयुतम्॥ वाराहमांसात्स्वप्नालुं शूरंसंजनयेत्सुतम्।मार्गाद्विक्रान्तजंघालं सदावनचरंसुतम् ॥

अर्थ–जिस स्त्रीको सर्प, सिंह, व्याघ्रादि हिंसक पशुओंके देखनेकी सर्वदा इच्छा रहे वह स्त्री दुष्ट घातक ऐसे पुत्र को उत्पन्न करे । जिसको गोहके मांस

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

खाने की इच्छा होवे, वह स्त्री निद्रा का दुराग्रही अथवा बहुत सोने वाला और जिद्दी ऐसे पुत्र को प्रगट करे। जिस स्त्रीको गोमांस खानेकी इच्छा होय, वह मलिन और सर्व क्लेशों का सहने वाला हो, और जिस को भैंसे के मांस खाने की इच्छा होय, वह स्त्री शूर वीर, लाल नेत्र और जिस के अङ्ग में बहुत रोम (बाल) हो, ऐसे पुत्र को प्रगट करे। जो सूअर के मांस खाने की इच्छा करे, वह निद्रावान्, शूर वीर पुत्र को प्रगट करती है। और जिस स्त्रीकी इच्छा मार्ग चलने की हो, वह जल्दी चलने वाला और सदैव वन में विचरने वाले पुत्र को प्रगट करे।

सूमरोद्विग्रमनसं नित्यंभीतंचतैत्तिरात्।

अर्थ—जिस स्त्रीको [सूमर] कहिये महासूकर (जंगली वा वरेली सूकर) खाने की इच्छा हो, अथवा इस जगे [सावरोद्विग्रमनसं] ऐसा भी पाठ मानते हैं, अर्थात् जो बारह सींगा के मांस खाने की इच्छा करे, वह उद्विग्र मन (चंचल चित्त) वाले बालक को प्रगट करे। जो स्त्री तीतरके मांस खाने की इच्छा करे, वह डरपोका बालक प्रगट करती है। कोई [नित्यंशीलंचतैत्तिरात्] ऐसा पाठ मानते हैं, इसका यह अर्थ है जिस स्त्री के तित्तर पक्षी के मांस खानेका दौहृद होवे वह शीलवान् बालक को प्रगट करे। शूद्रादि नीच वर्ण पूर्वकालमेंभी मांस खातेथे।

अनुक्तगर्भदौहृदसंग्रहश्लोक।

अतोनुक्तेषुयानारी समभिध्यातिदौहृदम्।
शरीराचारशीलैः सा समानंजनयिष्यति॥

अर्थ—जो पदार्थ नहीं कहे उनकी इच्छा करे, वह स्त्री उसी पदार्थ के शरीर, आचार और स्वभाव करके तत्समान पुत्र को प्रगट करे। जैसे बहुतसी गर्भवती स्त्रियों का मन राख, मिट्टी, खिपडे, आदि खाने को चलता है। तो उन के पुत्र भी निर्धन, रोगी और कुरूप होता है। इसी प्रकार जो दिव्य पदार्थ भोजन करने की तथा दिव्य फूल, माला, चंदन, वस्त्रादि कों के धारण करने की इच्छा करने सें, दिव्य भोगों का भोगने वाला सत्पात्र बालक प्रगट करती है।

दौहृदोंमेंप्रारब्धकारणकहते हैं।

कर्मणानोदितंजन्तोर्भवितव्यंपुनर्भवेत्।
यथातथादैवयोगाद्दौहृदंजनयेद्धृदि॥

अर्थ—प्राणियों के प्रारब्ध कर्म करके प्रेरित भवितव्य, जैसे आगे होनहार होती

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

है उसी प्रकार के दौहृद दैव वश करके होते हैं । अर्थात् दुष्ट बालक के दौहृद भी दुष्ट होते हैं और उत्तम के भी दौहृदउत्तम होते हैं।चरक मुनि ने तीसरे महिने में ही स्त्री को द्विहृदा कही है । परंतु सुश्रुत के मत सें चतुर्थ महिने में दौहृदवती स्त्री होती है। अब चरकमतानुसार चतुर्थ मास का वर्णन करते हैं ।

चतुर्थमासेस्थिरत्वमापद्यतेगर्भस्तस्मात्तदागर्भिणीगु-
रुगात्रत्वमापद्यते ।

अर्थ–चतुर्थ महिनेमें गर्भ स्थिर होता है, इसी कारण गर्भिणीका देह इस महिनेमें भारी हो जाता है ।

पंचममास ।

पञ्चमेमनःप्रतिबुद्धतरंभवति [विशेषेणपञ्चमेमा
सिगर्भस्थमांसशोणितोपचयोभवत्यधिकमन्येभ्यो
मासेभ्यस्तदागर्भिणीकार्श्यमापद्यते]

अर्थ–पांचवे महिनेमें गर्भ कैं मन, अर्थात् चेतना प्रगट होती है। और चरकमुनि कहते हैं कि विशेष करके पंचम महिनेमें गर्भके मांस, रुधिरका संग्रह और महिने सैं इस महिनेमें अधिक होता है । इसी सैं गर्भिणी इस महिनेमें कृश हो जाती है ।

षष्ठमास ।

षष्ठेबुद्धिः [विशेषेणषष्ठेमासिगर्भस्यबलवर्णोपच
योभवत्यधिकमन्येभ्योमासेभ्यस्तस्मात्तदागर्भि
णीबलवर्णहानिमापद्यते]

अर्थ–छटवे महिनेमें गर्भके बालकके बुद्धि उत्पन्न होती है। चरक मुनि कहते हैं कि, विशेष करके छटे महिनेमें गर्भके बल और वर्णका संग्रह अन्य महिनोंकी अपेक्षा अधिक होती है । इसी सैं गर्भिणीके बल वर्णकी हानि होती है, परंतु वाग्भट इन दोनों सैं विपरीत कहता है ।

यथा ।

षष्ठेस्नायुशिरारोमबलवर्णनखत्वचाम् ।

अर्थ–छटवे महिने गर्भके बालकके अव्यक्त रूप जो स्नायु, नाडी, रोम, बल, वर्ण, नख और त्वचा, ये प्रगट होते हैं । अर्थात् छटवे महिने सूक्ष्म रूप सैं स्थूल रूप होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सप्तममास ।

सप्तमेसर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरोभवति ।

अर्थ–सातवें महिनेमें गर्भके सर्व अङ्ग (हाथ, पैर, मस्तक, आदि) और प्रत्यंग (नाक, कान, नेत्रादि) विभाग अच्छी रीति सें प्रगट होते हैं [इसी सें गर्भवती अत्यंत खेदित होती है) वाग्भटने छटवें महिनेमें जो स्नायु शिर आदिका प्रगट होना लिखा है सो सुश्रुत, चरक सें विरुद्ध है तथापि सर्वाङ्गसंपूर्णता गर्भकी सातवें महिने में ही होती है । क्यों कि, वाग्भटही लिखते हैं कि, सर्वाङ्गसंपूर्णभाव सप्तम महिने में ही होता है ।

अष्टममास ।

अष्टमेस्थिरीभवत्योजस्तत्रजातश्चेन्नजीवेतनिरोजस्त्वान्नैर्ऋतभागधेत्वाच्चततोबलिंमाषोदनमस्मैदापयेत् ।

अर्थ–आठवें महिनेमें हृदय में रहने वाला सर्व धातु संबंधी तेज स्थिर होता है। अतएव इस आठवें महिने में उत्पन्न हुआ बालक नहीं बचे, उसका यह कारण है कि वह तेज पूर्ण नहीं जमता, और वह राक्षसों का भाग (राक्षसों के लिये श्रीशिवजी ने बालकों में भाग दिया है यह कुमारतंत्र में लिखाहै) है इसी सें इस महिने में राक्षसों को उड़द, तथा भात इन का बलिदान देवै यह श्रीशिवजीकी आज्ञा है।

ओजेष्टमेसंचरति मातापुत्रौमुहुःक्रमात् ।
तेनतौम्लानमुदितौ तत्रजातोनजीवति ॥
शिशुरोजोऽनवस्थानान्नारीसंशयिताभवेत् ।

अर्थ–सर्व धातुओं का तेज, माता और पुत्र में संचार (गमन) करता है । क्रम से कभी गर्भिणी का तेज संचार करे, कभी गर्भ गत बालक का तेज संचार करे, इसी से दोनों म्लान (कुमलाए हुए से) और मुदित (प्रसन्न) होते हैं । अर्थात् गर्भ और गर्भिणी के रस बहनेवाली नाड़ियों में पूर्वोक्त ओज संचार करता है, यदि गर्भ और गर्भिणी दोनोंका तेज गर्भगत बालक में संचारकरे उस समय गर्भ प्रसन्न होता है और गर्भिणी मुरझाई सी होती है और यदि पूर्वोक्त दोनों का तेज गर्भिणी में संचार करे तो उस ओज संपत्तिसे गर्भिणी प्रसन्न रहती है और बालक म्लान (मुरझाया सा) होता है। अतएव ओजके एकत्र स्थित न होनेसे इस महिने में जन्माहुआ बालक नहीं जीवे, इसी से स्त्री संशय वाली होती है, अर्थात् यह बालक जीवेगा या न जीवेगा यह संदेहयुक्त रहती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तस्मिंस्त्वेकाहयातेपि कालःसूतेरतःपरम् ।

अर्थ–अष्टम महिने के एक दिनभी व्यतीत होनेहीसे उपरान्त प्रसूत होनेका काल है, ऐसा जानना, अपिशब्द से अष्टम महिने के व्यतीत होने से उपरान्त प्रसूतकाही काल जानना चाहिये । एक वर्ष के उपरान्त गर्भ में बालक पवनके विकार से रहता है ।

नवमैकादशद्वादशानामन्यतमस्मिन् जायते अतोन्यथाविकारीभवति ।

अर्थ–नवम, एकादश और द्वादश कहिये बारवां महिना, इन में से किसीएक महिने में बालक उत्पन्न होता है । इन महिनों में बालक न प्रगट होनेसे विकृत हुआ ऐसा जानना । चरक मुनि दश महिने पर्यंत प्रसूतका समय कहतेहैं, उपरांत बालक को गर्भ में रहना विकार से लिखा है ।

गर्भकासन्निवेशभीसंग्रहमेंलिखाहै ।

गर्भस्तुमातृपृष्ठाभिमुखोललाटे कृतांजलिःसंकुचिताङ्गो गर्भकोष्ठेदक्षिणंपार्श्वमाश्रित्यावातिष्ठतेपुमान् वामंस्त्री मध्यंनपुंसकम् ।

अर्थ–गर्भ माता के पीठकी तरफ मुख करके जुड़े हुए हाथों की अंजली मस्तकपर धर सब शरीर को समेट, गर्भ कोष्ठमें दहनी बगल आश्रय करके पुरुष रहता है । और कन्या बाईं बगल का आश्रय कर रहती है । और नपुंसक बीच में रहता है ।

शिष्य–भोजन के विना गर्भ कैसे गर्भ में जीता रहे हैं, अर्थात् मुखतो जरायु और कफ से बन्द रहता है, फिर यह कैसे आहार को भोजन करता है और आहार के विना जीवन नहीं होसके ।

गुरु–इसका यह कारण है । यथा–

मातुस्तुरसवाहायांनाड्यांगर्भनाडीप्रतिबद्धा । सास्यमातुराहारंसवीर्यमभिवहति।तेनोपस्नेहेनास्याभिवृद्धिर्भवति

अर्थ–माता के रस वहने वाली नाड़ी, उससे गर्भ की नाभिनाडी बंधी हुई है, वह नाडी माताके आहार वीर्य से कुछ स्नेहका अंश लेकर गर्भको बढ़ाती है ।

पूर्वोक्त अङ्ग प्रत्यंग विभाग प्रगठ होने के अनंतर गर्भ का उक्त प्रकार पोषण

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

होता है, परंतु अङ्ग प्रत्यङ्ग विभाग होने से पूर्व गर्भ का कैसे पोषण होता है । इस शङ्का को दूर करते हैं ।

अंगविभागपूर्वपोषणकाज्ञान ।

असंजाताङ्गप्रत्यङ्गविभागमानिमेषात्प्रभृतिसर्वशरीरावय
वानुसारिणीनांरसवहानांतिर्यग्धमनीनामुपस्नेहोजीवति ॥

अर्थ–जिस गर्भ के अङ्ग प्रत्यङ्ग विभाग, न प्रगट हुये हों उस गर्भ के सर्व शरीर में आपाद मस्तक पर्यंत जाने वाली, तथा उसी उसी अवयवों में रसके पहुंचाने वाली बारीक, मोटी, बांकी, तिरछी, धमनियों का उपस्नेह गर्भ को पोषण करे हैं । जैसे नदीतट के वृक्षों को नदी का पानी भीतरी मार्ग से पहुँच कर पोषण करता है ।

पूर्वोक्तविषयमेंभोजकावाक्य ।

गर्भोरुणद्धिस्रोतांसि रसरक्तवहानिवै । रक्ताज्जरायुर्भ
वति नाडीचैवरसात्मिका ॥ सानाडीगर्भमाप्नोति तथा
गर्भस्यवर्त्तनं।यद्यदश्नातिमातास्य भोजनंहिचतुर्विधं॥
तस्मादत्ताद्रसीभूतं वीर्यंत्रेधाप्रवर्त्तते।भागःशरीरंपुष्णा
ति स्तन्यंभागेनवर्द्धते॥गर्भःपुष्यतिभागेन वर्द्धतेचय
थाक्रमम् । गर्भकुल्येवकेदारं नाडीप्रीणातितर्पयतेति ॥

अर्थ–गर्भ माता के उदर में रहता हुआ, उस के रस रक्त वहने वाली नाडियों को निरोध करता है । उस रक्त सैं गर्भ वेष्टित होता है । और उस रस सैं नाभि नाल उत्पन्न होती है । वह नाडी गर्भ के बालक के नाभि नाल होकर रहती है । उस सैं गर्भ का इधर उधर को हलना, चलना नहीं होता. तथा माता जो जो भक्ष, भोज्य, लेह्य, चोष्य आदि चतुर्विध पदार्थों को भोजन करती है । उस भोजन करे हुए अन्न सैं रस उत्पन्न होता है । उस रस के तीन विभाग होते हैं, तिन में सैं एक विभाग सैं तो माता का शरीर पोषण होता है, दूसरे विभाग सैं उस स्त्री के स्तनों में दूध बढता है, और तीसरे रस के भागसैं गर्भ के बालक का पोषण होकर क्रम करके धीरे धीरे गर्भ बढता है । जैसैं पानी वरहा के मार्ग हो कर खेत में जाय उस खेतको तृप्त करता है । और धीरे धीरे वृद्धि करता है उसी प्रकार यह नाडी (नाल) माता के शरीर रस को लेकर आप तृप्त हो गर्भ को तृप्त करे हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गर्भवृद्धेरुपायमाह ।

गर्भस्यनाभिमध्येतु ज्योतिःस्थानंध्रुवंस्मृतम् । तदाधमति वातश्च देहस्तेनास्यवर्द्धते ॥ ऊष्मणासहितश्चापि दारयत्यस्यमारुतः।ऊर्ध्वंतिर्यगधस्ताच्च स्रोतांसितुयथातथा ।

अर्थ–गर्भगत बालक की नाभि में ज्योति स्थान है । उस में पवन जब चलती है, उस सें इस बालक का देह बढता है । जैसें जैसें उष्मा करके सहित पवन ऊपर नीचे तिरछे इस बालक के छिद्रों को विस्तारित करता है, उसी उसी रीति सें इस बालक का देह बढता है ।

गर्भकेजोप्रथमअङ्गहोताहै उसकोकहते हैं ।

शिरोभवतिचाङ्गस्य पूर्वमित्याहशौनकः । शिरस्यैवोपजायन्ते प्रधानानीन्द्रियाणियत् ॥ हृदयंजायतेपूर्वं कृतवीर्योवदन्मुनिः । बुद्धेश्चमनसश्चापियतस्तत्स्थानमीरितं ॥ पाराशर्यइतिप्राह पूर्वनाभिसमुद्भवः । प्राणोयत्रस्थितोदेहं वर्द्धयत्यूष्मसंयुतः ॥ पाणिपादंभवेत्पूर्वं मार्कण्डेयमुनेर्मते । देहिनःसकलाश्चेष्टाः पाणिपादाश्रयायतः ॥ प्रथमंजायतेकोष्ठं ततःसर्वाङ्गसंभवः । एतत्तुकथयामासगौतमोमुनिपुङ्गवः ॥ सर्वाण्यङ्गान्युपाङ्गानि युगपत्संभवन्तिहि । सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्तेमतंधन्वन्तरेरिदम् ॥

आम्रस्यानुफलेभवन्तियुगपन्मांसास्थिमज्जादयो ।
लक्ष्यन्तेनपृथक्पृथक्त्वणुतया पुष्टास्तएवस्फुटाः ॥
एवंगर्भसमुद्भवेत्ववयवाः सर्वेभवन्त्येकदा ।
लक्ष्याः सूक्ष्मतयानतेप्रकटतामायान्तिवृद्धिंगताः ॥

अर्थ–अन्य अवयवों के प्रथम, गर्भ के मस्तक उत्पन्न होता है । ऐसे शौनक ऋषि कहता है । कारण यह है कि, सर्वेन्द्री मस्तक सें ही होती हैं (अर्थात् सर्व ज्ञानेन्द्रियों का मूल मस्तक है) कृतवीर्यमुनि कहता है कि, प्रथम गर्भ के हृदय उत्पन्न होता है, क्योंकि मन और बुद्धि इन दोनों का स्थान हृदय ही है । पाराशर ऋषि कहते हैं कि, प्रथम बालक के नाभि उत्पन्न होती है, क्यों कि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नाभि में ही प्राण पवन रहती है। वह ऊष्मा संयुक्त देह को बढाती है। मार्कंडेय ऋषि कहता है कि, प्रथम हाथ पैर उत्पन्न होते हैं, क्योंकि सकल देहधारी पुरुष की चेष्टा हाथ पैरों के ही आश्रित है। प्रथम कोष्ठ (पेट) उत्पन्न होता है, तदनंतर सर्व अङ्ग प्रगट होते हैं, ऐसे गौतम मुनिपुंगव कहते हैं। परंतु वृद्ध सुश्रुत में लिखा है कि, प्रथम शरीर उत्पन्न होता है, ऐसैं सुभूति और गौतम ऋषि कहते हैं। क्यों कि सर्व अवयव देह में बँधे हुये बढते हैं। सर्व अङ्ग और उपाङ्ग एकही काल में उत्पन्न होते हैं। परंतु अत्यंत सूक्ष्म होने सैं दृष्टिगोचर नहीं होते यह धन्वन्तरि का मत है।

जैसैं आम्रफल की उत्पत्ति में एक काल में ही मांस मज्जा और अस्थि आदि होते हैं। परंतु परमाणुरूप होने सैं पृथक्पृथक् नहीं दीखने में आते, जब आम्र पुष्ट हो जाता है तब वे ही पूर्वोक्त मांस, मज्जा और अस्थि पृथक्पृथक् स्पष्ट दीखने लगती हैं। इसी प्रकार गर्भ की उत्पत्ति में सर्व अवयव एकही काल में होते हैं। परंतु अत्यंत सूक्ष्म होने के कारण नहीं दीखते। जब बढकर बडे हो जाते हैं तब अलग अलग प्रतीत होने लगते हैं। इस आम्र में मांस स्थानी गूदा, मेदा स्थानी रस, और अस्थि स्थानी गुठली जाननी चाहिये। [मज्जादयः] इस पद में आदि शब्द के कहने सैं त्वचा, केशर, मज्जा, छाल, अंकुर और वृंत (जिस में कली बँधी हुई होती है)इन सब का ग्रहण है। अर्थात् ये सब भी उत्पत्ति के समय नहीं मालूम होते हैं।

शरीरकेपितृजभाग।

गर्भस्यकेशश्मश्रुलोमनखदन्तशिरास्नायुधमनिरेतः-
प्रभृतीनिस्थिराणिपितृजानि।

अर्थ–गर्भ के केश, डाढी, मूछ, लोम, नख, दांत, नस, नाडी, धमनीनाडी, और शुक्र इत्यादिक कठोर पदार्थ पिता सैं उत्पन्न होते हैं।

मातृजन्य।

मांसशोणितमेदोमज्जाहृन्नाभियकृत्प्लीहान्त्रमुदर-
प्रभृतीनिमृदूनिमातृजानि।

अर्थ–गर्भ के बालक के मांस, रुधिर, चरबी, मज्जा, हृदय, नाभि, कलेजा, प्लीहा,आंतडी, और उदर इत्यादिक मृदु (नरम) पदार्थ माता सैं उत्पन्न होते हैं।

रसजन्य।

शरीरोपचयोबलंवर्णःस्थितिहानिश्चरसजानि।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–गर्भ के शरीर की वृद्धि, बल, वर्ण, स्थिति और हानि इत्यादिक रस सैं प्रगट होते हैं ।

आत्मजन्यपदार्थ ।

इन्द्रियाणिज्ञानविज्ञानमायुःसुखदुःखादिकंचात्मजानि ।

अर्थ–नेत्र आदि इन्द्री, ज्ञान, विज्ञान (अपरोक्ष ज्ञान) आयुष्य, सुख, दुःख, इत्यादिक आत्मा के सन्निकर्ष करके होते हैं । साक्षात् आत्मा सैं ही नहीं होते क्यों कि, आत्मा निर्विकार और प्रकृति करके अनुपपत्ति है ।

सात्विक, राजस, तामस, जन्यपदार्थ ।

सात्विकंशौचमास्तिक्यं शुक्लधर्मरुचिर्मतिः ।
राजसंबहुभाषित्वं मानक्रुद्दम्भमत्सराः ॥
तामसंभयमज्ञानं निद्राऽऽलस्यंविषादिता ।

अर्थ–पवित्रता (दैहिक, मानसिक, और वाणी के भेद सैं तीन प्रकार की है । मिट्टी जल आदि सैं शास्त्रोक्त शुद्धि को कायिक कहते हैं । और सर्व जगत् सैं प्रीत करना मानसिक । तथा सब सैं प्रिय बोलना वाणी की पवित्रता कहाती है) आस्तिकता, कपटरहित धर्म में रुचि कहि ये भक्ति और बुद्धि का रखना, ये सब सतोगुण सैं होते हैं । बहुत बोलना, अभिमान, क्रोध, दंभ, और मत्सरता ये रजो गुण सैं होते हैं । भय, अज्ञान, निद्रा, आलस्य, और विषाद, ये गर्भ के तामसजन्य होते हैं ।

सात्म्यजपदार्थ ।

सात्म्यजंत्वायुरारोग्य मनालस्यंप्रभावलम् ॥

अर्थ–सात्म्य तीन प्रकार का है। जैसैं व्याधिसात्म्य,देशसात्म्य और देहसात्म्य इन्होंमें व्याधिसात्म्य का यहां पर ग्रहण नहीं है । आत्मा के अनुकूल को सात्म्यज कहते हैं वो ये हैं, जीवन, आरोग्य, (धातुओं की समानता) अनालस्य (सर्व-चेष्टाओं में उत्साह) कांति, और बल (तथा अलोलुपत्व, इन्द्रियों की प्रसन्नता, स्वर, वर्ण, वीर्य, तेज और हर्षादिक ये सब सात्म्यज ही हैं) ।

अबगर्भिणीकैं जिनलक्षणोंकरके पुत्र, कन्या, नपुंसक और यमल उत्पन्न होनेकाअनुमानकराजायउनकोकहते हैं ।

यस्यादक्षिणस्तने प्राक्पयोदर्शनंभवति दक्षिणमाहत्वञ्च पूर्वंचदक्षिणसक्थिउत्कर्षयाति । बाहुल्याच्चपुन्नामधेयेषु

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्रव्येषुदौहृदमभिध्यायतिस्वप्नेषुचोपलभतेपद्मोत्पलकुमुदाम्रातकादीनिपुन्नामान्येवप्रसन्नमुखवर्णाचभवति तांवेद्यात्पुत्रंप्रियंजनयिष्यति ॥

अर्थ–जिस के दहने स्तनमें प्रथम दूध दीखे, तथा दहना नेत्र कुछ बडा मालूम हो, तथा दहनी सक्थि (ऊरू) गर्भ के भार करके उच्च सी प्रतीत हो, तथा जो पुरुषसंज्ञक द्रव्य (आंब, केला, घोडा, हाथी आदि) में प्रीत करे, तथा स्वप्नमें सपेद कमल, सूर्य कमल, कमोदनी, और अंबाडे इत्यादिक पुरुषनाम के पुष्प फल देखे, तथा जिस का मुख सर्व काल में डहडहा दीखे, उस को जाने कि यह स्त्री पुत्र प्रगट करेगी । इस सैं विपरीत लक्षण कन्या के जानने चाहिये ।

वाग्भटेऽपि ।

प्राद्वक्षिणस्तनस्तन्या पूर्वंतत्पार्श्वचेष्टनी । पुन्नामादौहृद प्रश्नरतापुंस्त्वप्रदर्शिनी ॥ उन्नतेदक्षिणेकुक्षौ गर्भेचपरिमण्डले । पुत्रंसूतेऽन्यथाकन्यां याचेच्छातेनृसङ्गतिम् ॥ नृत्यवादित्रगांधर्वगन्धमाल्यप्रियाचया ।

अर्थ–जिस गर्भवतीके प्रथम दहने स्तनमें दूध प्रगट हो, तथा दहनी तरफ करके सर्व चेष्टा करे (अर्थात् चले तो प्रथम दहने पैर को उठावे, सोवे तो दहनी करवट सोवे) तथा दौहृद (गर्भवती की इच्छा) भी पुरुषसंज्ञक वस्तुओं में चले (जैसैं लड्डू, पेडा, आम, आमरूद, केला, आदि) तथा प्रश्न करे तो भी पुरुषसंज्ञक प्रश्नों को करे (अर्थात् बारम्बार पुरुष संज्ञा वाले नामों को लेवे) और स्वप्नमें भी पुरुष संज्ञक (घोडा, हाथी, शूकर, आम, अनार, अशोक, आदि वृक्ष, फूल, फल, देवता, पक्षी, मनुष्य आदि) देखे तथा जिसकी दहनी कूख ऊँची होवे, तथा गर्भस्थान गोल होवे, इन लक्षणों सैं गर्भवती पुत्र प्रगट करती है ।

और पुत्र उत्पन्न करने वाले लक्षणों सैं विपरीत लक्षण होवें, (जैसैं वाम स्तनमें प्रथम दूध हो, सर्व चेष्टा वाम अङ्ग सैं करे, स्त्री नाम वाले पदार्थोंकी इच्छा करे, स्वप्नमें भी स्त्रीवाचक पदार्थों को देखे, और वांई कूख जिस की ऊँची होवे, तथा जो स्त्री पुरुषसंग करने की इच्छा करे और जिसके चित्त को नाचना, गाना, बाजे बजाना, और चन्दन लगाना, फूल माला का धारण करना, आदि प्रिय लगे वो कन्या प्रगट करती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नपुंसकगर्भके लक्षण ।

यस्याःपार्श्वद्वयमुन्नतंपुरस्तान्निर्गतमुदरंप्रागाभिहे
तंलक्षणंचतस्यानपुंसकंविंद्यात् ।

अर्थ–जिस की दोनों कूख ऊँची सी प्रतीत हों, और आगे की तरफ पेट बराबर सपाट दीखे, और पूर्वोक्त दोनों पुत्र तथा पुत्री होनेके जो लक्षण कहे वो मिलते हों, वो स्त्री नपुंसक बालक को प्रगट करे हैं । (भावमिश्र कहते हैं कि नपुंसक बालक पेटमें होने सें पेट अर्बुद के सदृश होता है और आगे को भारी प्रतीत होता है) ।

जोडाहोनेवालेगर्भलक्षण ।

यस्यामध्योनिम्नंद्रोणीभूतमुदरंसायुग्मंप्रसूयते ॥

अर्थ–जिस का पेट बीचमें नीचा होकर द्रोणी (जल के पात्र) समान दीखे वो स्त्री जोडा अर्थात् दो बालक प्रगट करे ।

अथान्तरेच ।

रोमराजिर्भवेन्निम्ना यस्याःसासूयतेयमौ ।

अर्थ–जिस की रोमपंक्ती गर्भ के कारण नीची हो, अर्थात् जिस गर्भवती के रोमांच नीचे को झुके हों वो दो बालक प्रगट करती है ।

गर्भवती के कायिक, वाचिक, मानसिक, लक्षणों से पुत्रके गुण कहते हैं ।

देवताब्राह्मणपरा शौचाचारविवर्जिता ।
महागुणंप्रसूयेत विपरीतांस्तुनिर्गुणान् ॥

अर्थ–जो स्त्री देवता, ब्राह्मण पूजनादि सदाचार, तथा दंत धावन (दांतौन) और स्नानादि शौचाचार युक्त होय, वह महागुणवान् पुत्रको प्रसव करती है । और पूर्वोक्त से विपरीत आचरण करे तो निर्गुण पुत्रों को प्रगट करे हैं ।

विकृतअवयवहोनेकाकारण ।

अङ्गप्रत्यङ्गनिवृत्तौ येभवन्तिगुणाऽगुणाः ।
तेवैगर्भस्यविज्ञेया धर्माधर्मनिमित्तजाः ।
इति श्रीसौश्रुतशारीरे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–पूर्व कहे जो हस्त पादादि अङ्ग और अंगुल्यादि प्रत्यङ्ग इन के उत्पत्ति के समय जो उत्तम और दुष्टता का होना वह शुभाशुभ कर्म करके होता है।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे सप्तमस्तरङ्गः ॥ ७ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

गर्भ की अवतरणक्रिया कहने के अनंतर उत्पन्न हुए गर्भका वर्णन करते हैं।

॥ अथातोगर्भव्याकरणंशारीरंव्याख्यास्यामः ॥

अर्थ–गर्भ की अवतरणक्रिया कहने के अनन्तर, गर्भ का वर्णन जिसमें है ऐसी शारीराध्याय की व्याख्या करते हैं।

गर्भ के वर्णन में प्राण और त्वचा आदि करके वर्णनीय पदार्थों में प्राण सब शरीरका उत्तम रीतिसे पोषण करते हैं, अतएव प्रथम प्राणों का वर्णन करते हैं।

प्राणवर्णन।

अग्निःसोमोवायुःसत्वंरजस्तमः पञ्चेन्द्रियाणिभूतात्मेतिप्राणाः ॥

अर्थ–अग्नि, सोम, पवन, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, पंचेन्द्री और भूतात्मा ये प्राण है। प्राण शब्द करके इस जगे शरीर के पोषण करने वाले तथा कांत्यादिक देने वाले जानने, अग्नि शब्द करके पाचक, भ्राजक, आलोचक, रंजक, साधक, ऐसे भौतिक पांच ऊष्मा और सर्वधातुगत ऊष्माओं को शक्ति देनेवाला होकर वाणी का अधिदैवत जानना; तथा सोमपद करके श्लेष्मा (कफ) रस, शुक्र,आदि-शब्द करके रसात्मक पदार्थ। रसेन्द्रियों को शक्ति देने वाला मनका अधिदैवत जानना; वायु शब्दकरके प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान ऐसे पांच प्रकार के पवन जानना। सत्व, रज, और तम ये पूर्वोक्त अष्टविध प्रकृतिके गुण हैं। पंचेन्द्री करके श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन, घ्राण आदि पंचभूतात्मा शुभाशुभ कर्म करके परिगृहीत कर्म पुरुष जानना चाहिये। ये अग्न्यादिक प्राणों को प्रीणन अर्थात् जिवाते हैं इसी सैं इन को प्राण कहते हैं।

अग्न्यादिक प्राण कौनसे कर्म से शरीर का प्रीणन अर्थात् पालन करते हैं सो कहते हैं।

तत्राग्निस्तावदाहारपाकादिकर्मणाप्रीणयाति ॥

अर्थ–तिनमें अग्नि आहार पाकादिकों से शरीर का प्रीणन करे हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सोमश्चसौम्यधातोरोजःप्रभृतेःपोषणेन ॥

अर्थ–चन्द्र सौम्य धातु का प्रीणन सारभूत तेजादिकों का पोषण करके शरीर पालन करे है ।

वायुश्चदोषधातुमलादीनांसंचारणेनोच्छ्वासनिःश्वासाभ्यांच ॥

अर्थ–वायु, वात, पित्त, कफ, तथा सप्तधातु और मल, मूत्र इन के संचार करके और ऊर्ध्वश्वास निश्वास करके शरीर का पोषण करे है ।

सत्वंरजस्तमश्चमनोरूपतयापरिणतम् ॥

अर्थ–सत्व, रज, तम गुण ये मनोरूप करके परिणाम को प्राप्त हो कर कर्म पुरुष के शरीरांतरग्रहण के हेतु होकर पोषण करते हैं ।

अबयहशरीरअन्याजिनजिनसमवायि*कारणकरकेउत्पन्न होताहैउनसबकोभावप्रकाशसैंकहतेहैं ।

अथदोषाःप्रवक्ष्यन्ते धातवस्तदनंतरम् । आहारादेर्गतिस्तस्य परिणामश्चवक्ष्यते ॥ आर्त्तवंचाथधातूनां मलास्तदुपधातवः । आशयाश्चकलाश्चापि मर्माण्यथचसन्धयः ॥ शिराश्चस्नायवश्चापि धमन्यःकण्डरास्तथा । रन्ध्राणिभूरिस्रोतांसि जालैःकूर्च्चाश्चरज्जवः ॥ सेविन्यश्चाथसंघाताः सीमन्ताश्चतथात्वचः । लोमानिलोमकूपाश्च देहएतन्मयोमतः ॥

अर्थ–अब दोषों को कहेंगे पश्चात् धातु, तत्पश्चात् आहार की गति और आहार का परिणाम कहेंगे । पीछे आर्त्तव, धातुओं के मल, उपधातु, आशय, कला, मर्मसंधि, शिरा, स्नायु, धमनी, कंडरा, जिस में अत्यंत छिद्र हैं ऐसें रंध्र, कूर्चा (डाढी मूछ) रज्जू, चार मोटी शिरा जिन को सेवनी कहते हैं । हड्डी, केश, त्वचा, रोम, रोमकूप, इन सबका वर्णन यथाक्रम करा जायगा, क्योंकि यह देह एतन्मय है । अर्थात् यह देह इन्हीं पूर्वोक्त पदार्थों सैं बना है । बहुत सैं पदार्थ

* जो कारण कार्य में मिला हुआ होय उस को समवायिकारण जानना, जैसैं वस्त्र के कारण तंतु हैं वे वस्त्र में मिले हुए हैं इसी सैं वे तंतु वस्त्र के समवायि कारण हैं ।इसी प्रकार दोष धातु मलादिक मिल कर देह उत्पन्न हुआ है । अतएव दोष धातु आदि देह के समवायि कारण है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तो इसी चतुर्थ अध्याय में कहेगें और बाकी अन्य अन्य अध्यायों में वर्णन करे जावेंगे।

शार्ङ्गधरेतु।

कलाःसप्ताशयाः सप्त धातवःसप्ततन्मलाः। सप्तोपधातवः सप्तत्वचःसप्तप्रकीर्तिताः॥ त्रयोदोषानवशतं स्नायूनां संधयस्तथा। दशाधिकंचद्विशतमस्थनाञ्चत्रिशतंमतम्॥ सप्तोत्तरंमर्मशतं शिराःसप्तशतंतथा। चतुर्विंशतिराख्या ता धमन्योरसवाहिकाः॥ मांसपेश्यःसमाख्याता नृणां पञ्चशतंबुधैः। स्त्रीणांचविंशत्यधिकाः कण्डराश्चैवषोड श॥ नृदेहेदशरन्ध्राणि नारीदेहेत्रयोदश। एतत्समा सतःप्रोक्तं विस्तरेणाऽधुनोच्यते॥

अर्थ-सात कला, सात आशय, सात धातु, सात धातुओं के मल, सात उपधातु, सात त्वचा, तीन दोष, नौसै नाडी, तथा दोसै दश सन्धि, तीन सौं हड्डी, एक सौं सात मर्म, सात सौं छोटी शिरा अर्थात् नस, चोवीस रस के रहने वाली धमनी नाडी, मांसपेशी ५०० स्त्रियों के मांसपेशी पुरुष सैं वीस अधिक हैं. सोलह कण्डरा, पुरुष के देह में बडे छिद्र दश हैं और स्त्रियों के १३ हैं। यह संक्षेप सैं शारीरक कहा है। अब इसीको विस्तारपूर्वक कहते हैं। सर्व देह त्वचा सैं आच्छादित है इसी सैं सुश्रुत में प्रथम त्वचा का वर्णन है इसी सैं त्वचा का वर्णन करते हैं।

सप्तत्वचा।

तस्यखल्वेवंप्रवृत्तस्यशुक्रशोणितस्याभिपच्यमा नस्यक्षीरस्येवसान्तानिकाःसप्तत्वचोभवन्ति॥

अर्थ-इसप्रकार भूतात्मा के योग करके पचन होनेवाला शुक्र शोणितोंके विकार से सात त्वचा उत्पन्न होतीहैं जैसे दूधके औटाने से मलाई उत्पन्न होती है ऐसे देहमें त्वचा प्रगट होती है।

ग्रंथान्तरेच।

त्वचायमखिलःकायः संवृतोविश्वकर्मणा। बाह्योपद्रव संघाताद्रक्षितःसाधुतिष्ठति॥ स्तरद्वयवतीयंत्वक् तद्वा ह्यश्चर्मकथ्यते। स्तरोनाम्नोच्यतेन्तस्त्वग भूमिःस्पर्शे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

न्द्रियस्यसा ॥ उपर्य्युपरिविस्तीर्णस्तरसप्तकसंहतेः । एषात्वगखिलाजाता कैश्चिदितिचमन्यते ॥ तोयानिला दिसंकर्षः स्वेदस्यचविनिर्गमः । दैहिकस्योष्मणोरक्षा त्वचासंपाद्यतेध्रुवम् ॥

अर्थ–विश्वकर्मा (परमात्मा) करके इस त्वचाके द्वारा यह संपूर्ण देह ढकी हुई है । और देहके बाहर होने वाले उपद्रवसमूहों से रक्षा करती हैं । इस त्वचा के दो पुरत हैं । बाहरके पुरत को चर्म (चाम) कहते हैं । और भीतर की त्वचा के पुरतको अंतस्त्वक् अर्थात् भीतर की त्वचा कहते हैं । ये त्वचा स्पर्शेन्द्रियका आधार है । कोई कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि एकके ऊपर दूसरी इस प्रकार सातपूर्त्त मिलकर यह त्वचा बनी हुई है । इस त्वचा से यह प्रयोजन है कि, त्वचा द्वारा जल पवन आदिका शोषण (सूखना), पसीनों का निकलना, तथा दैहिक ऊष्मा की रक्षा संपादन होती है ।

त्वचाकेभेद कहते हैं ।

तासांप्रथमावभासिनीनामयासर्ववर्णानवभासय तिपंचविधांछायांप्रकाशयति ॥

अर्थ–सात त्वचाओं में पहली त्वचा का नाम अवभासिनी कहते हैं । यह भ्राजक अग्निके योग करके गौर कृष्ण आदि सर्व वर्ण प्रतीत करे हैं, और पंचमहाभूतों की करी हुई जो पांच प्रकारकी छाया और प्रभा इन दोनोंको प्रकाशित करे हैं ।

शिष्य–छाया और प्रभा में क्या भेद है ।

गुरु–आसन्नालक्ष्यतेछाया प्रभादूरात्प्रकाशते ।

अर्थ–छाया पास से मालूम होती है और प्रभा दूरसे ही प्रकाशित होती है यह दोनों में भेद हैं ।

अवभासिनीत्वचाकाप्रमाणआदि ।

सात्रीहेरष्टादशभागप्रमाणासिध्मकण्टकाधिष्ठाना ।

अर्थ–सर्व त्वचाओं के प्रमाण विषय में यव (जों) के विस्तार के बीस भाग कल्पना करे इन में अवभासिनी त्वचा का प्रमाण अठारह भाग हैं । और यह अवभासिनी त्वचा सिध्म (विभूती) तथा कंटक आदि चर्म रोगों के उत्पन्न होने की जगह है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्वितीयत्वचा।

द्वितीयालोहितानामषोडशभागप्रमाणातिलकाल
कन्यच्छव्यङ्गाधिष्ठाना

अर्थ–दूसरी त्वचा लोहिता नामक है, इस त्वचाका प्रमाण यव (जौं) का सोलह भाग है। यह तिल, न्यच्छ और व्यंगरोग (ये क्षुद्र रोगों में लिखेहैं) इनके उत्पत्ति होनेकी जगह है।

तृतीयत्वचा।

तृतीयाश्वेताद्वादशभागप्रमाणाचर्मदलाजगल्लिका
मशकाधिष्ठाना।

अर्थ–तीसरी त्वचा का नाम श्वेता है। इसका प्रमाण यवके बारह भागहैं। यह चर्मदलकुष्ठ, तथा अजगल्लिका और मस्सा, इन के होनेकी जगह है।

चतुर्थत्वचा।

चतुर्थीताम्रा अष्टभागप्रमाणाकिलासकुष्ठाधिष्ठाना।

अर्थ–चौथी त्वचा का नाम ताम्रा है। उस का प्रमाण जवका आठ भाग हैं यह किलास कुष्ठ होनेका स्थान है।

पंचमत्वचा।

पञ्चमीवेदनीनामपञ्चभागप्रमाणाकुष्ठविसर्पाधिष्ठाना।

अर्थ–पांचवीं त्वचा का नाम वेदनी है, उस का प्रमाण पांच भाग, तथा कुष्ठ, विसर्प, आदि चर्म रोगों की जन्मभूमि है।

षष्ठत्वचा।

षष्ठीलोहितात्रीहिप्रमाणाग्रन्थ्यपच्यर्बुदश्लीपदगल-
गंडाधिष्ठाना।

अर्थ–छटवीं त्वचा लोहिता नामक है। उस का प्रमाण एक जव है, यह गांठ, अपची, अर्बुद रोग, श्लीपद, गलगंड और गंडमाला इन रोगों की उत्पत्तिका स्थान है।

सप्तमत्वचा।

सप्तमीमांसधरात्रीहिद्वयप्रमाणाभगन्दरावित्रध्यर्शोधिष्ठाना।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–सातवीं त्वचा मांसधरा है । उस का प्रमाण दो जव है, यह भगंदर, विद्रधि, और बवासीर, आदि रोगों के उत्पन्न होने की जगह है । इस प्रकार सात त्वचाओं के नाम और प्रमाणादिक कहे हैं । परंतु यह प्रमाण मांसल देश अर्थात् जिस जगे अधिक मांस हो उस जगे जानना (जैसैं उदर, ऊरू, जंघा, आदि की त्वचा हैं) किंतु ललाट ऊँगली इत्यादि सूक्ष्म देशों में यह त्वचा का प्रमाण न जानना क्यों कि आगे लिखते हैं ।

यथा ।

स्थूलअवयवोंकीत्वचाकाप्रमाण ।

उदरेव्रीहिमुखेनांगुष्ठोदरप्रमाणमवगाढंविध्येदिति ।

अर्थ–उदर में अंगुष्ठोदर प्रमाण एक सैं एक त्वचा लिपट रही है, इसी सैं पेट में एक अंगुष्ठोदर प्रमाण छेदे ऐसैं कहा है । तात्पर्य यह है कि, सात त्वचा मिलकर अंगुष्ठोदर प्रमाण हैं । (अंगुष्ठोदर कहिये छः यव और एक का विसवां भाग $६\frac{१}{२०}$ को कहते हैं) इस प्रकार सात त्वचाओं का वर्णन कर, अब सात कलाओं का वर्णन करते हैं, क्यों कि त्वचा के भीतर कलाओं का स्थान हैं ।

कलाकास्थान ।

कलाःखल्वपिसप्तधात्वाशयांतरमर्यादाः

अर्थ–कला भी सात हैं (कला को भाषा में झिल्ली कहते हैं) वे धातु और आशयों की मर्यादा अर्थात् सीमा है । इस जगे धातु शब्द कर के रक्त मांसादि और कफ, पित्त, मल इत्यादि धातुओं के अवस्थानप्रदेश के मध्य में सीमा के समान है ।

कलाकाज्ञानप्रत्यक्षनहींहोताइसीसैंदृष्टांतकरकेकहते हैं ।

यथाहिसारःकाष्ठेषुच्छिद्यमानेषुदृश्यते ।
तथाहिधातुर्मांसेषुच्छिद्यमानेषुदृश्यते ॥

अर्थ–जैसैं वृक्षों की लकडी का सार छाल सैं आच्छादित होने के कारण नहीं दीखे, परंतु उस लकडी के छेदन करने सैं प्रत्यक्षही दीखता है उसी प्रकार धातु मांसादिकों के छेदन करने सैं दीखे हैं ।

कलाअदृश्यहै इसविषयमेंप्रमाण ।

स्नायुभिश्चपरिच्छन्नान्सततांश्चजरायुणा ।
श्लेष्मणावेष्टितांश्चापि कलाभागांस्तुतान्विदुः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–कला भाग विशेष स्नायुओं सैं आच्छादित और जरायु कहिये गर्भवेष्टन-सदृश पदार्थ है उस को कलावेष्टक कहते हैं। उस सैं उत्तम प्रकार करके व्याप्त तथा कफ सैं वेष्टित हैं। इसी सैं दीखती नहीं हैं, कला का स्वरूपविशेष वृद्धवाग्भट में ऐसे लिखा है।

प्रथमकला।

तासांप्रथमामांसधरायस्यांमांसेशिरास्नायु-
धमनीस्रोतसांप्रतानानिभवन्ति।

अर्थ–सात कलाओं में प्रथम मांसधरा नाम कला है। जिस कला के आधार करके रहने वाले मांस में शिरा, स्नायु, धमनी, स्रोतसू [छिद्र] इत्यादि फैले हुए हैं।

मांसमेंशिरारहनेकादृष्टांत।

यथाविसमृणालानि विवर्द्धन्तेसमंततः।
भूमौपङ्कोदकस्थानि तथामांसेशिरादयः॥

अर्थ–जैसैं पृथ्वी की कीच तथा जल इन में होने वाले कमल की जड, तंतु और पत्ते इत्यादि चारों तरफ फैले हुए होते हैं उसी प्रकार कलाश्रित मांस में शिरा आदि फैली हुई हैं।

शिष्य–रस सैं रुधिर,रुधिर सैं मांस होता है, ऐसा आप कह चुके हो, फिर प्रथम रक्तधरा कला कहनी उचित थी फिर आपने मांसधरा कला क्यों कही?।

गुरु–रस सैं रुधिर और रुधिर सैं मांस यह क्रम पोषण का है, धारण का नहीं है। इसी सैं लिखा कि जिस कला के आधार करके रहने वाले मांसमें शिरा आदि फैली हुई है।

द्वितीयकला।

द्वितीयारक्तधरामांसस्याभ्यन्तरतस्तस्यांशोणितंवि-
शेषतश्चशिरायकृत्प्लीहाश्चभवन्ति।

अर्थ–दूसरी कला रक्तधरा है। यह मांस के भीतर है उस में रुधिर और विशेष करके शिरा, यकृत और प्लीह ये होते हैं।

---

* यस्तुधात्वाशयान्तरेषुक्लेदोऽतिष्ठते सयथामूष्मभिः विपक्वः स्नायुश्लेष्मजरायुच्छन्नःकाष्ठइवसारोधातुरसशेषोऽल्पत्वात्कलासंज्ञ इति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रक्तादिरहनेकेविषयमेंदृष्टांत ।

वृक्षाद्यथाभिप्रहितात्क्षीरिणःक्षीरमास्रवेत् ।
मांसादेवंक्षतात्क्षिप्रं शोणितंसंप्रसिच्यते ॥

अर्थ–जैसैं दूधवाले वृक्षों की ढाली पत्ता आदि टूटने सैं दूध बहने लगे हैं, उसी प्रकार मांस में घाव होने सैं शीघ्र रुधिर निकलने लगता है ।

तृतीयकला ।

तृतीयामेदोधरा मेदोहिसर्वभूतानामुदरस्थेष्वस्थिषुच ।

अर्थ–तीसरी कला का नाम मेदोधरा है । मेद (चरबी) सर्व प्राणियों के उदर में और बारीक हड्डीओं में रहे हैं, और बडी हड्डीओंमें मज्जा रहती है ।

इसविषयमेंप्रमाण ।

स्थूलास्थिषुविशेषेण मज्जात्वभ्यन्तरेस्थिता ।
अस्थ्यन्तरेषुसर्वेषु सरक्तोमेदउच्यते ॥

अर्थ–बडी हड्डियों के भीतर बहुधाकरके मज्जा रहे हैं और इतर सर्व हड्डियों में रक्त सहवर्त्तमान मेदा रहता है, उसी प्रकार वसा है।मेदोमज्जानुकारी उपधातुवसा कौन सी है इस लिये कहते हैं ।

वसाकास्वरूपकहते हैं ।

शुद्धमांसस्ययःस्नेहः सावसापरिकीर्त्तिता ।
तप्यमानस्यवास्नेहो मेदसांसावसामता ॥

अर्थ–शुद्ध मांस का अथवा तपायमान होकर मेदा सैं निकला घृत तेल इनके समान पदार्थ उस को वसा कहते हैं ।

चतुर्थकला ।

चतुर्थीश्लेष्मधरासर्वसन्धिषुप्राणभृतांभवति ।

अर्थ–चौथी कला का नाम श्लेष्मधरा है । यह सर्व प्राणियों की सन्धी में रहकर कफ को धारण करती है, इस कफ करके सन्धियों का चलना हलना निर्विघ्नता सैं होता है ।

सन्धिचलनविषयमें दृष्टान्त ।

स्नेहाभ्यक्तेयथैवाक्षे चक्रंसाधुप्रवर्त्तते ।
सन्धयः साधुवर्त्तन्ते संश्लिष्टाःश्लेष्मणातथा ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-रथ के धुरा और छिद्र में तथा चाक की भोगली में, घृत तेल आदि चिकनाई लगाने सें जैसा पैया और चाक का फिरना निर्विघ्नता सें होता है। उसी प्रकार संधी कफलिप्त होने सें निर्विघ्नता सें फिरती है। ऐसा जानना।

पांचवीं कला।

पञ्चमीपुरीषधरानामयान्तःकोष्ठमलमाभिविभजति पक्वाशयस्था।

अर्थ-पांचवीं कला का नाम पुरीषधरा है। यह पक्वाशय में स्थित हो कोष्ठ में रहने वाले मल का तथा मूत्रका विभाग करे हैं।

कोष्ठोंकोकहते हैं।

स्थानान्यामाग्निपक्वानांमूत्रस्यरुधिरस्यच ।
हृदुन्दुकः फुप्फुसश्च कोष्ठइत्यभिधीयते ॥

अर्थ-आमाशय, तथा अग्न्याशय, तथा पक्वाशय, तथा मूत्रस्थान, तथा यकृत् और प्लीहा तथा हृदय और गुदा तथा गुदा में मल के लानेवाले मोटे आंतडे तथा फेंफडा इन को कोष्ठ ऐसा कहते हैं।

पांचवींकलाकोकोष्ठाश्रितत्वस्पष्टकहते हैं।

यकृत्समंतात्कोष्ठंच तथान्त्राणिसमाश्रिता ।
उंदुकस्थंविभजते मलंमलधराकला ॥

अर्थ-मलधरा पांचवीं कला यह यकृत्, प्लीह, हृदय, फुप्फुस, तथा आंतडे, इन सब के अवयवों में व्यापक हो रहकर उंदुकस्थ मल का विभाग करे हैं। कोष्ठ की मर्यादा ऊर्ध्वप्रदेश में हृदयपर्यंत तथा अधोभाग में गुदापर्यंत इन का आश्रय करके रहति है। उंदुक को लोक में पोदलक कहते हैं। परंतु चरक में पुरीषांत्र करक उंदुक कहा हैं।

छटवीं कला।

षष्ठीपित्तधरानाम चतुर्विधमन्नपानमुपयुक्त-
मामाशयात्प्रच्युतंपक्वाशयोपस्थितंधारयति।

अर्थ-छटवीं कला का नाम पित्तधरा है। यह भोजन करे हुए चतुर्विध अन्न पानी इन को आमाशयद्वारा पक्वाशय में पित्तस्थान के प्रति प्राप्त हुए उन को पक्व होने के उपरांत धारण करे हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उक्तश्लोककोस्पष्टकहते हैं ।

असितंखादितंपीतं लीढंकोष्ठगतंनृणाम् ।
तज्जीर्यतियथाकालं शोषितंपित्ततेजसा ॥

अर्थ–[असित] कहिये विशेष दंत व्यापार के विना भक्षण करा हुआ तथा [खादित] कहिये दांतों सैं तोडकर खाया जाय जैसैं चना आदि, तथा [पीत] जो पिया जाय जैसैं दुग्धादि और [लीढ] कहिये जो चाटा जावे जैसैं सोंठ अवलेह, आदि ये चारों प्रकार के अन्न मनुष्य के कोष्ठ में पहुँचने के उपरांत पित्त-के तेज करके शोषित हो मंद, मध्य, तेज, ऐसी त्रिविध अग्नि के विषे उचित काल तथा मात्रा लघु, गुरु, इन के विषय में उचित काल के व्यतीत न होने सैं पचता है । अर्थात् आमाशय और कफाशय सैं भ्रष्ट हो पक्वाशय में उपस्थित अर्थात् पित्तस्थान में प्राप्त हुए अन्न को पाक करने के अर्थ धारण करती है इसी सैं इस को पित्तधरा कला कहते हैं ।

इसविषयमेंसंग्रहकाप्रमाण है ।

षष्ठीपित्तधरानाम याकलापरिकीर्त्तिता ।
पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणीपरिकीर्तिता ॥

अर्थ–छटवीं पित्तधरा कला पक्वाशय तथा आमाशय के मध्य में अग्नि के अधिष्ठानरूप करके रहती हुई, पूर्वोक्त चतुर्विध अन्न को पित्तके तेज करके पक्व करती है । इसी सैं इस छटवीं कला को ग्रहणी कहते हैं ।

सातवींकला ।

सप्तमीशुक्रधरानामसर्वप्राणिनांसर्वशरीरव्यापिनी ।

अर्थ–सातवीं कला का नाम शुक्रधरा है । यह कला सर्व प्राणियों के सर्व देह में रहनेवाले शुक्रको धारण करे हैं ।

शुक्रसर्वाङ्गव्यापकहोनेमेंदृष्टान्त ।

यथापयसिसर्पिस्तु गूढश्चेक्षौरसोयथा ।
शरीरेषुतथाशुक्रं नृणांविद्याद्विषग्वरः ॥

अर्थ–जैसे दूधके सर्व परमाणुओं में घृत, तथा ईखके सब अवयवों में रस, गुप्तरूप होकर रहता है । उसी प्रकार शरीर में शुक्र धातु रहती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शुक्रकागमनमार्गकहते हैं।

द्व्यंगुलेदक्षिणेपार्श्वे बस्तिद्वारस्यचाप्यधः।
मूत्रस्रोतःपथाच्छुक्रं पुरुषस्यप्रवर्तते ॥

अर्थ–मूत्राशय द्वार के अधोभाग में दहनी तरफ दो अंगुल पर जो मूत्रवाहिनी नाडी है, उस मार्ग के समीप से पुरुष का वीर्य प्रवृत्त होता है। इस विषय में प्रमाण कहते हैं।

तदुक्तंवृद्धवाग्भटे।

सप्तमीशुक्रधराद्व्यंगुलेदक्षिणेपार्श्वेबस्तिद्वारस्यचाधो-
मूत्रमार्गमाश्रितासकलशरीरव्यापिनीशुक्रंप्रवर्तयति।

अर्थ–सातवीं शुक्रधरा कला बस्तिद्वार के अधोभाग में दो अंगुल पर दक्षिण बाजू में, मूत्रमार्गका आश्रय करके सर्व शरीर में व्याप्तहो शुक्रको प्रवृत्त करतीहै। यह वृद्धवाग्भट में लिखा है।

वीर्यक्षरणकहते हैं।

कृत्स्नदेहाश्रितंशुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा।
स्त्रीषुव्यायच्छतश्चापि हर्षात्तत्संप्रवर्तते ॥

अर्थ–जिस पुरुष का चित्त क्रोधादिक करके रहित, तथा स्त्री के साथ मैथुनादि शरीरायास (परिश्रम) करे उस पुरुष के सर्व देहमें व्याप्तहोकर रहनेवाला शुक्र सुख से प्रवृत्त होता है।

गर्भवतीकेआर्त्तवकानिषेधकहते हैं।

गृहीतगर्भाणामार्त्तववहानांस्रोतसांवर्त्मान्यवरुध्य-
न्तेगर्भेणतस्माद्गृहीतगर्भाणामार्तवंनदृश्यते।

अर्थ–जब स्त्री गर्भवती होती है तदनन्तर आर्त्तव वहनेवाली नाडियों के मुख गर्भ से रुक जाते हैं, इसीसें उन गर्भवती स्त्रियों के आर्तव नहीं दीखे है।

स्तनदुग्धोत्पत्ति।

ततस्तदधःप्रतिहतमूर्ध्वमागतमपरांचापचीयमानमपरे
त्यभिधीयते शेषंचोर्ध्वान्तरमागतंपयोधरावभिप्रतिपद्य-
ते तस्माद्गर्भिण्यःपीनोन्नतपयोधराभवन्ति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–गर्भ धारण के पश्चात्, वह आर्तव अधोभाग में जाने से रुककर ऊपरके भागमें जाय संचित होकर आवर रूप होता है और शेषभाग ऊपर स्तनों में प्राप्त होता है इसी से गर्भवतीके स्तन पुष्ट और उन्नत्त (ऊँचे) होते हैं ।

अथगुहः ।

शरीरंत्रिगुहंप्रोक्तं करोटिहृदयोदरैः । करोटौमस्तकस्नेहो वक्षस्युण्डुकफुप्फुसौ ॥ हृत्कोष्ठश्चोदरेसन्ति यकृत्पित्ता मधामनी । क्लोमस्कन्धोधामनीकः क्षुद्रांत्रंस्थूलमंत्रक म् ॥ प्लीहावृक्कद्वयंमूत्रनाडीबस्तिर्गुदंतथा । मत्तःशृ-णुतसर्वेषामुक्तानांगुणकर्माणि ॥

अर्थ–इस मनुष्य देह में करोटि, वक्षस्थल और उदर ये तीन गह्वर (गुफा) के सदृश स्थान है । इसी कारण इस देह को त्रिगुह कहते हैं । इन में ऊर्ध्व गुहा अर्थात् करोटी (मस्तक की हड्डी) में मस्तिष्क, अर्थात् घृत के सदृश पदार्थहै । इसी के घटने सैं मस्तकपीडा आदि अनेक रोग होते हैं । और मध्य गुहा अर्थात् वक्षस्थल में उंडुक, फुप्फुस, और हृत्कोष्ठ है उसी प्रकार नीचे की गुहा अर्थात् उदर में यकृत्, पित्ताशय, आमाशय, क्लोम, धमनी, स्कंध, छोटी आंतडी, बडे आंतडे, प्लीहा, वृक्कद्वय, मूत्रनाडी, बस्ति और गुदा (बडे आंतडों के नीचे का भाग) है । इन में प्रत्येक के गुण और कर्म क्रमसैं वर्णन करते हैं उन को सुनो ।

मध्यगुहा ।

ब्रवीम्यूर्द्धगुहांपश्चादिदानींमध्यमामया । सकोष्ठावर्ण्यतेवत्सा निशामयततत्वतः ॥ उरोऽस्थिपर्शुकोपास्थि पर्शुका अभितः स्थिताः । पार्श्वयोपर्शुकाः सन्ति पश्चात्पृष्ठकशेरुकाः ॥ पर्शुकाद्योर्द्ध्वपट्टुश्च शिरस्यस्याभिवर्तते । आस्तेऽधस्ता त्तथावक्षस्थलपेशीचवक्षसः ॥

अर्थ–ऊर्ध्व गुहा का वर्णन स्नायु के वर्णन में करेंगे । अब मध्य गुहा का अर्थात् कोष्ठ सहित वक्षस्थल का वर्णन करा जायगा उस को श्रवण करो । इस गुहा के सन्मुख भाग में उरोस्थि (छाती की हड्डी) है, पर्शुकोपास्थि (पांशुओं के समीप रहने वाली छोटी हड्डी) है, पर्शुका गण (पांशुओं का समूह) दोनों पसवाडे, पीछे के अर्थात् पीठ की तरफ पृष्ठकसेरुका संपूर्ण है । ऊपर के भाग में प्रथम पर्शुका, तथा ऊर्ध्व पट्टु (वक्षस्थल के ऊपर ढका हुआ वस्त्रवत् पदार्थ विशेष) उसी प्रकार नीचे के भाग में वक्षस्थल पेशी जाननी ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गर्भैगुहायाएतस्या हृत्कोष्ठोण्डुकफुप्फुसाः।
सन्त्यमीषांत्रयाणाञ्च ब्रवीमिगुणकर्मणी॥

अर्थ–इसी मध्य गुहा में हृत्कोष्ठ, उंडुक और फुप्फुस हैं, इन तीनों के गुण तथा कर्म क्रम सैं हम कहते हैं।

हृत्कोष्ठः (हृदय.)

उरोमध्यगतःकोष्ठो लवनीफलवर्तुलः। रक्ताधारश्चतुर्गर्भ आवरण्यासमावृतः॥ तिर्य्यक्स्थोधमनीभूमिः फुप्फुसद्वयशीर्षकः। स्फीत्याकुञ्चनशीलोऽसौ हृत्कोष्ठइतिकीर्तितः॥ ऊर्द्धेगर्भद्वयंतस्य निम्नतश्चापितद्वयम्। ऊर्द्धस्थेदक्षिणेगर्भे शिरासङ्गमजोशिरे॥ अर्पयतोमहत्यौ द्वे रक्तंगुणविवर्जितम्। अधःस्थाद्वामगर्भाच्च धमनीमूलमुत्थितम्॥ सर्वेष्वपिचगर्भेषु रक्तंक्रमसमागतम्। दोषहीनंगुणैर्युक्तं जन्तुंजीवयतेगुणैः॥ अनिशंस्फायतेकोष्ठः प्रकृत्यासंकुचत्यपि। आभूमिस्पर्शनाद्यावन्मृत्युसर्वस्यदेहिनः॥ तदाकुञ्चनतोरक्तं महताखलुरंहसा। प्राविशेद्धमनीमूलं ततोभ्रमतिविग्रहम्॥ स्फायनाकुञ्चनेतस्य विरमेतांक्षणंयदि। सहसैवभवेन्मृत्युर्नास्तिकोऽप्यत्रसंशयः॥

अर्थ–हृत्कोष्ठ अर्थात् हृदय वक्षस्थल के मध्य स्थान में तिरछा होकर रहता है। इस हृत्कोष्ठ की आकृति हरफारेवडीफलके सदृश है तथा एक प्रकार की आवरणी (ढकने के पदार्थ) सैं आच्छादित है।इसके ऊपर दो शिरवाली फुप्फुस हैं (अर्थात् एंक फुप्फुस वामांस और एक दक्षिणांस के भेद सैं दो भेद हैं, यह हृत्कोष्ठ शुद्ध रुधिर का आधार है। इसी जगे सैं धमनी नाडी उत्थित है अर्थात् इसी सैं धमनी नाडी लगी हुई है, इस जगे चार प्रकार के गर्भ प्रकोष्ठ हैं दो ऊपर की तरफ, और दो नीचे की तरफ, प्रथम लिख आए हैं। ये जितनी शिरा हैं सब मिल कर दो बडी शिरा रूप परिणाम को प्राप्त हुई हैं। ये दोनों शिरा ऊपर स्थित दक्षिण हृद्गर्भ सैं मिली हुई हैं, ये दोनों शिरा शरीर के दुष्ट रुधिर को शुद्धि करती है, अधःस्थ वाम गर्भ सैं मूल धमनी उत्पन्न हुई है, दूषित रुधिर इन गर्भचतुष्टयों में प्राप्त होने सैं शुद्ध हो कर

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देहको आत्मगुण देकर जीव को जीवाता है । यह हृत्कोष्ठ अर्थात् हृदय स्वभाव सेही एक वार खिलता है और एक वार संकुचित अर्थात् मुंदता है । जीव के गर्भ सैं निकल पृथ्वी के स्पर्श करतेही जबतक मृत्यु होती है तबतक बराबर हृदय-के खुलने मुँदने की क्रिया निरंतर होती रहती है । हृत्पिंड के खुलते ही उस जगे रहने वाला रुधिर अति वेग सैं उस हृत्पिंड में प्रवेश कर तदनंतर धमनी समूह-के मार्ग में प्रवेश हो सर्व देह में विचरे है । यादि एक क्षणमात्र भी हृदय का खुलना मूंदना बंद हो जावे तो उसी समय यह मनुष्य मर जावे इस में कुछ सन्देह नहीं है ।

फुप्फुस (फेंफडा.)

फुप्फुसस्तुद्विधाभिन्नौ वामदक्षिणभेदतः । पेश्यांवक्षस्थ-लस्थायां समासन्नोऽनुशीर्षकः ॥ अधोविशालोबहुभिः कोषैरिवमधुक्रमः । दुष्टशोणितसंशुद्धिकोषोऽयंपरिकी-र्तितः ॥ तरुणास्थिमयीनाडी जिह्वामूलात्प्रधाविता । अधःशाखाद्वयवती फुप्फुसद्वयमागता ॥ ततःशाखाद्व-यात्तस्माद्धृच्यःशाखाविनिःसृताः । कोषेषुफुप्फुसस्थेषु सुसूक्ष्माःसमुपस्थिताः ॥ नासामुखसमाकृष्टः पवनःश्वा-सकर्मणा । श्वासनाड्यातयासर्वास्तान्कोषान्प्रविश-त्यसौ ॥ महाशिराभ्यांहृत्कोष्ठं संप्राप्तंदुष्टशोणितम् । नाडीविशेषोनियतं तदानयतिफुप्फुसम् ॥ श्वासाकृष्टो ऽनिलस्तत्र समर्प्यात्मगुणंततः । निर्दोषंशोणितंकुर्य्या-त्सुखोष्णंचसुलोहितम् ॥ तद्रक्तंहृदयंभूयः प्रविष्टंधम-नीगणैः । निरन्तरंमहारंहो देहान्तर्देहिनांभ्रमेत् ॥

अर्थ–फुप्फुस अर्थात् फेंफडा दो विभागों में विभक्त है, एक वाम फुप्फुस और दूसरी दक्षिण फुप्फुस, यह वक्षस्थलस्थ पेशीके ऊपर स्थित है, इस के ऊ-पर का भाग छोटा है और नीचे का भाग विशाल है, अर्थात् बडा है । जैसा मधुक्रम अर्थात् मोहार की मक्खी का कोष होता है, उसीप्रकार इस का अ-संख्य कोष है । यह फुप्फुस दुष्ट रुधिर के शोधन करने का कोष्ठ है । जिह्वा मूल के नीचे सैं उपास्थिमयी एक प्रकार की नाडी नीचे को मुख जिस का ऐसी क्रम से गमन करती हुई अधोभाग में दो शाखा के बीच विभक्त होकर दोनों

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

फुप्फुस पर्यंत चली गई है, और इन दोनों शाखाओं में सैं बहुतसी छोटी छोटी शाखा प्रशाखा निकल कर फुप्फुस के प्रत्येक कोष में विद्यमान हैं। नासिका और मुख द्वारा भीतर को खींची हुई बाहर की पवन श्वास नाडियों में प्रवेश करके प्रत्येक कोष में प्राप्त होती है। पूर्व लिख आए हैं कि, ये जितनी शिरा हैं, वो मिलकर दो शिराओं में परिणाम को प्राप्त हो दक्षिण हृद्गर्भ में मिली हुई हैं। इन दोनों शिराओं के द्वारा प्राप्त हुआ दुष्ट रुधिर हृत्कोष्ठ में प्राप्त होकर पश्चात् अन्य नाडियों के द्वारा फुप्फुस में प्राप्त होता है। तहां यह रुधिर श्वास करके भीतर लीनी हुई पवन द्वारा विशुद्ध और सुखोष्ण तथा लोहित वर्ण होकर हृत्कोष्ठ अर्थात् हृदय में फिर प्राप्त होता है। फिर इस हृत्कोष्ठ में सैं धमनी नाडियों के मार्ग हो कर अतिप्रबल वेग सैं सर्व देह में विचरे हैं। पांचवे नम्बर का चित्र देखो।

श्वासाकृष्टोऽनिलोऽस्राय समर्प्यात्मगुणाञ्छुभान्। अशुभां श्चसमादाय फुप्फुसादथनिःसरेत्॥ असौश्वासक्रियासाच कालेनयावतायदि। वारान्प्रवर्ततेनाड्याः स्पंदसंख्याच याभवेत्॥ इत्याद्यानिखिलाभावाः नाडीज्ञानेपुरामया। वर्ण्यंतेश्रृणुतेदानीं हेतुंवाचांप्रवर्तने॥

अर्थ—श्वासद्वारा लीनी हुई पवन फुप्फुस में जायकर उस जगे उस रुधिर को अपने उत्तमगुण देकर और उस रुधिर के दुष्ट गुण लेकर फुप्फुस में से निकलती है। इसी पवनके भीतर बाहर जाने आने को श्वासक्रिया कहते हैं। यह श्वासक्रिया जितने काल में जितनी वार होवे उतने काल में उतनी बार नाडीका फडकना होता है। (जितनी देर में मनुष्य एक श्वास लेता है उतने समय में नाडी ४ वार फडकती ऐसा जानना) इत्यादि संपूर्ण नाडी की स्पंदन (फडकने की संख्याआदि भावों को आगे नाडीज्ञानमें हम वर्णन करेंगे। अब बोलने की प्रवृत्तिके हेतु को वर्णन करते हैं उसको सुनों।

वाणीकेप्रवर्तनकाहेतु।

ऊर्ध्वांशःश्वासनाड्याहि वाग्यंत्रमितिकीर्तितः। तरुणास्थिधरारज्जू पेशीस्नायुकलागणैः॥ निर्मितंकण्ठदेशेतत्पुरस्तादभिवर्त्तते। तस्योपास्थिविशेषस्य द्वेपक्षेपक्षिपक्षवत्॥ कण्ठोत्सेधंजनयतो मिलित्वाचपरस्परम्। लक्ष्यतेचक्षुषैवैष क्षीणानांचविशेषतः॥ तस्मादुपरिवाग्यंत्रा दुपजिह्वाभिव-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

र्तते । अन्नग्रहणकालेया श्वासरन्ध्रंप्रगोपयेत्॥ जनयन्वाक्य-यंत्रस्य हेतूनांसमवायिनाम् । जन्तुभेंदानवस्थायाः स्वराञ्ज-नयतेबहून् ॥ सिंहशार्दूलखड्गानां रवैर्मूच्छंतिजन्तवः । वि-हङ्गगीतध्वनिभिः कोनमुह्यतिजन्तुषु ॥ द्रवीकरोतिहृदयं बालानांसुखदः स्वरः । क्रंदनध्वनिभिःकस्य नगलत्यश्रुनेत्र-तः ॥ सुखैरमृतानिःस्यन्दैः कोमलैःकामिनीश्वरैः । सुरासुरन-रेष्वेषु कोनमुह्यतिसर्वथा ॥ जिह्वोष्ठतालुदन्ताद्यैरन्योन्याऽ भिहतैःस्वरः । कण्ठोद्भिन्नः कादिवर्णभेदेनाथप्रकाशते ॥ ननरादितरेषांतद्यंत्राङ्गानांसुसंस्थितिः । निर्मितिश्चेदृशीतेऽ तो नवदेरन्यथानरः ॥

अर्थ–पूर्वोक्त श्वास नाडी के ऊर्द्ध भागको वाग्यंत्र ऐसे कहते हैं । वह वाग्यंत्र तरुणास्थि, धमनी, रज्जू, पेशी, स्नायु और कला आदि समूह से बना हुआ है। यह कंठदेशके अग्र भागमें विद्यमान है। उस एक प्रकार के उपास्थिविशेष वाग्-यंत्र के पखेरू के तुल्य दो पंख (पर) हैं। वे दोनों पांख परस्पर मिलकर कंठो-त्सेध (अर्थात् कंठ से उत्तम स्वर को) प्रगट करे हैं ये दोनों पंख नेत्रद्वारा वि-शेष करके क्षीण देहवाले मनुष्यों के प्रत्यक्ष दीखते हैं । इस वाग्यंत्र के ऊपर उपजिह्वा (छोटी जीभ) है, यह उपजिह्वा जिस समय मनुष्य भोजन करता है उस समय श्वास आने जाने के छिद्र को आच्छादन (ढक) लेती है। कि जिससे भोजन कराहुआ अन्न जल आदि श्वास के छिद्र में जाने न पावे (दैव वश कदा-चित् भोजन करते समय अन्न का ग्रास अथवा पानी आदि वस्तू इस श्वास छिद्रमें गिर जावे तो अत्यंत खांसी प्रगट होकर उसको उस श्वासछिद्रमेंसे निकालकर बाहर पटकदेती है। इसी को धांस गई कहते हैं) यह वाग्यंत्र के समवायि कारण अर्थात् उपादान कारण समस्त जीवों के अवस्था विशेष करके अनेक प्रकार के स्वरों-को प्रगट करेहैं।जैसे सिंह, शार्दूल, गैंडे आदिके घोर शब्द से सब प्राणी मूर्च्छित होते हैं। विहङ्ग (कोयल, तोता, मैना, कबूतर, आदि) के बोलने सुनने को कौन मोहित नहीं होवे?छोटे छोटे बालकों का सुखदायक मिष्ट स्वर हृदयको द्रवीभूत करता है, दुखिया जीवों का क्रन्दन अर्थात् रुदन सुनकर किस मनुष्य के नेत्रों से आंसू नहीं गिरते ? कंठ कामिनी (नवयौवना स्त्रियों) के सुखदायक अमृततुल्य कोमल स्वरको सुनकर ब्रह्मांड के देवता, दैत्य, मनुष्यों में कौन मोहित न होगा ? कंठ-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नाडी के सदृश जीभ, होंठ, तालू और दांत आदि वाग्यंत्रके अङ्ग कहातेहैं। कंठसे निकलाहुआ स्वर इन पूर्वोक्त जीभ होठ और वाग्यंत्रादि द्वारा परस्पर ताडित होकर क, च. ट. त. प. इत्यादि वर्ण स्वरूप करके प्रकाशित होते हैं। मनुष्यों के वाग्यंत्र की जैसी स्थिति और जैसी बनावट है एसी इतर प्राणी (सिंह, व्याघ्र, कुत्ता, बिल्ली, वानर आदि) के नहीं हैं, इसी सें जैसा मनुष्य बोलता है ऐसें कुत्ता बिल्ली आदि जीव नहीं बोल सक्ते।

उण्डुकः।

शोणिताकिट्टप्रभवउंडुकः।

अर्थ–रुधिर के मैल सें उंडुक प्रगट होता है।

फुप्फुसस्यावरण्यौद्वे ऊर्णुतस्तद्वयंतयोः।
उण्डुकःशैशवेमध्ये मध्यास्तेमहतांनहि॥

अर्थ–दो आवरनी द्वारा कुप्फुसद्वय ढकी हुई है। इन के मध्य भाग में बालकअवस्था में उण्डुक होता है। अवस्था के बढने सें बाल्य अवस्थाके साथही यह उण्डुक नष्ट हो जाता है। गांठ के सदृश एक प्रकार का पदार्थ होता है उस को उण्डुक बोलते हैं।

अधोगुहा।

गुहानांतिसृणांज्ञेया गुहाधःस्थामहत्तमा। बहुयंत्राण्ड वद्वृत्ता स्थानंपाकादिकर्मणाम्॥ ऊर्ध्ववक्षस्थलस्थास्याः पेशीवास्तिरधःस्थिता। पार्श्वयोश्चाभितःपेश्यः पश्चात्पेश्यःकशेरुकाः॥

अर्थ–तीनों गुहान में नीचे की गुहा अर्थात् उदर गह्वर बहुत बडा है। इस में अनेक शारीर यंत्र हैं, यह अंडा के सदृश गोलाकार है, इस में अन्न परिपाकादि क्रियाओं का स्थान है, इस गुहा के ऊपर वक्षस्थलस्थ पेशी है। और अधोभाग में बस्तिदेश है, पार्श्व (पसली) दोनों तथा सन्मुख उदर की पेशी है, इसी प्रकार पीछे की तरफ औदरीय पेशी और कशेरुका गण हैं।

आंतडेआदिकीउत्पत्ति।

असृजःश्लेष्मणश्चापि यःप्रसादपरोमतः। तंपच्यमानं पित्तेन वातश्चाप्यनुधावति॥ ततोंत्राणिप्रजायन्ते गुदं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बस्तिश्चदेहिनः । उदरेपच्यमानानामाध्मानाद्बुक्मसार वत् ॥ कफशोणितमांसानां सारान्मज्जाप्रजायते ।

अर्थ–रुधिर, तथा कफ, इन का उत्कृष्ट पदार्थ पित्त की ऊष्मा करके पचन होने सैं इन में वायु आनकर मिलता है, तिन सबों के मिलने सै आंतडी, बस्ति और गुदा ये होते हैं । तथा उदर में देह की अग्नि के योग सैं पच्यमान कफ, रुधिर, मांस के सार सैं मज्जा होती है । जैसै सुवर्ण को तपाते तपाते उस सैं सार पदार्थ अर्थात् शुद्ध सुवर्ण प्रगट होता है. गयी आचार्य उदर के स्थान में हृदय ऐसा पाठ कहता है अर्थात् हृदय में देह की अग्नि सैं पच्यमान कफ रुधिर ।

ऊष्मोत्पत्ति ।

यथार्थमूष्मणायुक्तो वायुःस्रोतांसिदारयेत् ।

अर्थ–पित्त सैं मिली हुई वायु, जैसा जिस का कार्य है तैसा रस, रुधिर, वीर्य, शब्द इत्यादिकों को वहने वाली नाडियों को करे हैं ।

पेश्युत्पत्ति ।

अनुप्रविश्यपिशितं पेशीर्विभजतेतथा ॥

अर्थ–वायु मांस में प्रवेश होकर पेशीयों का विभाग करे है । मांस के चौकोन तथा कोई लंबे ऐसी मांस की वोटियों को पेशी कहते हैं । इन की संख्या आगे पंचम अध्याय में कहेंगे ।

पेशियोंकास्वरूप ।

पेश्यस्तुलोहिताः सौत्राः सर्वकायसमाश्रिताः । ताःसङ्कोचनशीलाश्च समन्तात्कालयावृताः । स्पन्दनानिप्रवर्तन्यो द्विधाताःपरिकीर्त्तिताः । स्वेच्छाधीनश्चकाश्चित्स्युः स्वाधीनाःकाश्चिदेवहि ॥ सक्थिबाह्वादिषुज्ञेया इच्छा धीनास्तथापरा।अंत्रोपस्थादिषुप्रोक्तामुनिभिर्दैहवेत्तृभिः॥ धमन्यस्थिशिरास्नायु सन्धयश्चशरीरिणाम् । पेशीभिःसंवृताः सर्वे भवन्तिबलिनोह्यतः ॥

अर्थ–सब पेशी लाल रंग की बहुत बारीक बारीक सूतसदृश पदार्थ सैं बनी हुई सर्व देह में व्याप्त हैं और सर्वत्र झिल्ली सैं आच्छादित हैं, ये पेशी संकोचनशील अर्थात् इन्हों का सिमटने का स्वभाव है, और स्पंदन (फडकना आदि)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्रियाओं की प्रवर्त्तक हैं। पेशी दो प्रकार की हैं, एक स्वाधीन, दूसरी इच्छाधीन, तिन में सक्थि, भुजा, आदिमें इच्छाधीन पेशी हैं और आंतडी तथा उपस्थ (भग, लिंग,) प्रभृति आदि में स्वाधीन पेशी हैं। मनुष्यों के हड्डी, धमनी, शिरा, स्नायु, (पट्ठे) और सन्धि ये सब पेशियों के द्वारा बँधी हुई होने सैं सुरक्षित और बलवान् रहती हैं। पेशी का दूसरा नाम मांस है बकरी आदि के मांस में प्रत्यक्ष दीखती है नेत्रों में जो लाल लाल डोरे हैं वे भी पेशी जाननी।

स्नायुकीउत्पत्ति।

मेदसःस्नेहमादाय शिरास्नायुत्वमाप्नुयात्।
शिराणांतुमृदुःपाकः स्नायूनांतुततःखरः॥

अर्थ–वायु, मेदा के स्नेह को लेकर पूर्वोक्त ऊष्मा सैं पक्व करके शिरा (रग) और स्नायु (पट्ठे) इन को उत्पन्न करे हैं।

शिष्य–आपने कहा कि मेदा के स्नेह सैं शिरा और स्नायु प्रगट होती हैं सो मुझ को सन्देह है कि एक प्रकार के पदार्थ सै दो प्रकार के पदार्थ कैसैं बनते हैं।

गुरु–इसका यह कारण है कि शिराओं के स्नेह का थोडा नम्र पाक होता है और स्नायुओं के स्नेह का अधिक पाक होता है। इसी सैं दो प्रकार के पदार्थ बनते हैं, जैसैं ईख के रस सैं राब और कंद होता है।

आशयोत्पत्ति।

आशयाभ्यासयोगेन करोत्याशयसम्भवम्।

अर्थ–वायु अपनी स्थिती करके अपने सहवास करके आशयों को करे हैं।

सप्ताशयानाह।

उरोक्ताशयस्तस्मादधश्लेष्माशयःस्मृतः। आमाशयस्तुतदधस्तल्लिंगंचरकोवदत्॥

अर्थ–उरःस्थल रक्ताशय कहाता है, उस उर (छाती) के नीचे कफाशय है, उसके नीचे आमाशय है, उस के लक्षण चरक में इस प्रकार लिखे हैं।

नाभिस्तनान्तरंजन्तोराहुरामाशंयबुधा इति।

अर्थ–मनुष्य के नाभि और स्तनों के बीच में, पंडितजन आमाशय कहते हैं।

आमाशयादधःपक्वाशयादूर्ध्वंतुयाकला। ग्रहणीनामिकासैव कथितःपावकाशयः॥ ऊर्ध्वमन्त्याशयोनाभेर्मध्य-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भागेव्यवस्थितः । तस्योपरितिलंज्ञेयं तधदःपवनाशयः ॥ पक्वाशयस्तुतदधः सएवतुमलाशयः ॥ तदधःकथियोव-स्तिःसहिमूत्राशयोमतः ॥

अर्थ–आमाशय के नीचे और पक्वाशय के ऊपर जो कला (झिल्ली) है, उस-को ग्रहणी कहते हैं उसी को पावकाशय भी कहते है । नाभि के ऊपर मध्यभाग में अम्याशय है उस के ऊपर तिल है, उसके नीचे पवनाशय है, उस के नीचे पक्वाशय है, उसी को मलाशय कहते हैं, उसके नीचे बस्ति है, उसी को मूत्राशय कहते हैं ।

आशयोंकाअनुक्रमवाग्भटमेंइसप्रकारलिखाहै ।

रक्तस्याधःक्रमात्परे । कफाऽऽमपित्तवातानामाशयाम-लमूत्रयोः । पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्ये नारीणामाशयास्त्रयः ॥ धरागर्भाशयः प्रोक्तः पित्तपक्वाशयांतरे । स्तनौप्रवृद्धौतावे-व बुधैःस्तन्याशयोमतः ॥

अर्थ–रक्ताशय के नीचे क्रम सें, कफाशय, आमाशय, पित्ताशय, पवनाशय, मलाशय और मूत्राशय ये आशय हैं । पुरुष की अपेक्षा स्त्री के तीन आशय अ-धिक हैं । पित्ताशय और पक्वाशय के बीच के स्थान को गर्भाशय कहते हैं । तथा दोनों स्तन जब बढ़ते हैं तब उन्हीं दोनों स्तनों को पंडित स्तन्याशय मानते हैं ।

रक्तमेदप्रसादाद्वृक्कौ ।

अर्थ–रुधिर और मेदा इन के सार सें वृक्क (कुक्षिगोलक) होते हैं । कूख में दो मांस के पिंड होते हैं उनको वृक्क कहते हैं ।

वृषणोत्पत्ति ।

मांसासृक्कफमेदःप्रसादाद्वृषणौ ।

अर्थ–मांस, रुधिर, कफ और मेद इन के सार सें वायू के योग करके पूर्व-वत् वृषण (अण्डकोश) उत्पन्न होते हैं ।

अथाण्डद्वयम् ।

रेतःसूत्रसमाबद्धं कोषगर्भेऽवतिष्ठति । रेतःस्नाव्यण्डयुगुलं ग्रंथ्याभंचाण्डवर्तुलं ॥ भ्रूणस्योदरवेष्टन्याः पश्चादुदरग

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ह्वरे । तिष्ठेत्प्राक्स्पर्शनाद्भूमेः कोषमायातितद्वयं ॥ दक्षिणस्मात्स्थूलतरं वामाण्डंनिम्नलम्बिच । वामं रैतसिकंसूत्रं यतोदीर्घतरंपरात् ॥ उपर्य्युपरिसंस्थानस्तरद्वंद्वेननिर्मितः । कोषोरैतसिकेसूत्रे धत्तेऽण्डयुगुलंतथा ॥ तयोराभ्यन्तरोरक्तः संकोचनगुणान्वितः । स्तरोबाह्यश्चर्ममयो लोमभिःकतिभिश्चन ॥ स्तरास्तिरष्करण्यान्तरेकयाभिद्यतेद्विधा । तद्गर्भद्वयमध्यास्ते पुंसोऽण्डयुगुलंननु ॥ उदराद्रेतसःसूत्रे पश्चाद्भागमथाण्डयोः । नियतं समनुप्राप्ते धरास्नाय्वादिनिर्मिते ॥

अर्थ–दोनों अण्ड रेत सूत्र सैं बँधे हुए कोष के भीतर रहते हैं, इन दोनों का स्वरूप अंडे के सदृश गोलाकार है । इन्हीं दोनों अण्डकोषों में सैं वीर्य गिरता है, गर्भावस्था के समय अर्थात् जिस समय बालक गर्भ में होता है इस समय इस बालक के उदर गव्हर में उदरवेष्टनी के पिछाडी रहते हैं । बालक के पृथ्वी स्पर्श-करने के पूर्व दोनों अण्ड दोनों कोषों में उतर आते हैं । बाँया अण्ड दहने अण्ड की अपेक्षा कुछ बडा और उसी प्रकार वाम रेत सूत्रके अधिक लम्बे होने सैं कुछ अधिक नीचे को लटकता है । इन का आवरण कर्त्ता कोष एक के ऊपर दूसरा इस प्रकार के दो परतों सैं बना हुआ है । इन कोषों में दो रेत सूत्रों के नीचे ये दोनों अण्ड लटके हुए हैं । इन दोनों परतों में भीतर का परत सङ्कोचन गुणवाला है, अर्थात् (अंडों को खींचने सैं अथवा सरदी पाने सैं तथा स्वतः स्वभाव सुकड जाता है, कभी कभी वारंवार सुकडते हैं और फिर लटक कर लम्बे हो जाते हैं) तथा भीतर के परत का लाल रङ्ग हैं । बाहर का परत चर्म मय है । यह परत बहुत से रोमांचों सैं व्याप्त हैं, भीतर का परत एक तिरष्करनी (अर्थात् पर्दा के सदृश एक प्रकार के पदार्थ सैं) दो विभागों में विभक्त होकर दो गर्भों में परिणत है । इन्हीं दोनों गर्भों में दो अण्ड रहते हैं । रेतसूत्र दोनों उदर सैं लेकर दोनों अंडों के पिछाडी के भाग पर्यंत विस्तारित हैं । ये रेतसूत्र धमनी और स्नायुप्रभृति द्वारा निर्मित है*। प्रसङ्गवश मूत्रयंत्र और पुंजननेन्द्रियों को कहते हैं ।

अथ मूत्रयन्त्राणि ।

वृक्कौद्वौमूत्रनाड्यौद्वेतथाबस्तिश्चमूत्रणे । ज्ञेयानीमानियंत्राणि रंध्रमौषस्थिकंतथा॥शिम्बीबीजनिभौवृक्कौ यकृत्प्लीहा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ह्नोरधःस्थितौ । पश्चादुदरवेष्टिन्याः कटिदेशगतौमतौ ॥ अत्रस्रोतांसिभूयांसि धमन्यस्त्रादयःसदा । गृह्णन्तिदोषसहितास्तेनास्रंशुद्धतांव्रजेत् ॥ बुक्कफुप्फुसचर्माणि धमनीशोणितादयः । सदोषाःसम्यगादाय शोधयन्त्यनिशंहितत् ॥ बुक्काङ्गनिःसृतेनाढ्यौ बस्तिपृष्ठमधोगते । बुक्कसंचितमूत्राणि बस्तिमानयतःशनैः ॥

अर्थ–दो बुक्क, दो मूत्रनाडी, बस्ति तथा उपस्थ (लिंग तथा योनि) रन्ध्र ये सब मूत्रयंत्र के नाम हैं । दोनों बुक्कों का आकार, सैमके बीजकासा है । ये दोनों कटिदेश (कमर) में यकृत् तथा प्लीहा के नीचे उदरवेष्टनी के पिछाड़ी रहते हैं । बुक्कस्थ स्रोतो नाडीसमूह जो है सो धमनी नाडियोंमें रहनेवाले रुधिर में जो दूषित जलका भाग है उसको खींचकर रुधिर को निर्दोष करती है। वही रुधिर का दूषित जलभाग जो है सो मूत्रनामसे विख्यात होता है ।

बुक्क: फुप्फुस तथा चर्म ये रुधिर का दूषित भाग ग्रहण करके सदैव उस रुधिर को विशुद्ध करते रहते हैं । दोनों बुक्क के अंग से दो नाडी निकल कर बस्ती के पृष्ठभागके नीचे जायकर मिल गई है । ये दोनों नाडी बुक्कस्थ मूत्रकोष में संचित हुए मूत्रको धीरे धीरे उस मूत्रको बस्ती में मिलाती है ।

अथबस्तिः ।

कलापेश्यात्मिकाबस्तिर्गुदस्यपुरतःस्थिता । पश्चादौपस्थिकास्थ्नोश्चमूत्राशयइतिस्मृतः ॥ बस्तेरूर्ध्वमुखंरज्ज्वा नाभौसंबद्धमेकया । अपराभिर्निबद्धाच बस्तिःस्थानेऽवतिष्ठते ॥ स्त्रीषुयोनिर्धराचापि गुदस्यपुरतःस्थिता । तयोस्तुपुरतोबस्तिर्विशेषोऽयमुदीरितः ॥ बस्तेःसंकुचितंनिम्नं मुखंरन्ध्रेणसंयुतं । औपस्थिकेनमूत्रस्य बाहिर्निःसरणायहि ॥ आशयेसंचितंमूत्रमतिमात्रंयदाभवेत् । तदौपस्थिकरन्ध्रेण रंहसानिःसरेद्बहिः ॥

अर्थ–बस्ति (अर्थात् मूत्राशय) पेशी और कला इन दोनों से बनी है । वह गुदाके सन्मुख तथा उपस्थिका की हड्डी के पिछाडी स्थिति है । यह मांसमयी एक छिद्र द्वारा नाभी से बँधी हुई है । उसीप्रकार और भी कितने छिद्रों से सम्बद्ध

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हो अपने ठिकाने पर स्थित हैं । स्त्रियों की देह में गुदाके सन्मुख योनि तथा जरायु विद्यमान हैं । इन दोनों के सन्मुख बस्ति विद्यमान है, बस्ती का नीचे को मुख सुकड़ा हुआ और उस जगे उपस्थिक (लिंग योनि) के छिद्र करके संयुक्तहै । जब मूत्राशय में प्रमाण से अधिक मूत्र इकट्ठा संचय होजाता है, तब उपस्थके छिद्र करके अतिवेगसे बाहर निकलता है ।

अथ जननेन्द्रियम् ।

जीवस्रोतसिहेतुर्यद्यदृतेतस्यसंहृतिः । इन्द्रियंजननाख्यंतदुपस्थश्चेतिकथ्यते ॥ उत्पत्तौजीवसंघस्य द्वारंनान्यद्धिविद्यते । बलाद्विहीनेतत्सङ्गे जीवोत्पत्तिः खिलीभवेत् ॥ यंत्रंविचित्रनिर्माणमहोधात्रावितर्किणा । ध्यात्वाध्यात्वेवरहसि विहितंनिपुणेनतत् ॥ अहोयंत्रस्यशक्तिंतां कोवदेच्छक्तिमान्भुवि । सम्यग्जानातिविश्वात्मातत्स्रष्टैवहितद्गुणं ॥ यस्यशक्त्याजगत्यस्मिन् पाशैरिववलीमुखाः । नृत्यन्तिजन्तवोनित्यमवशामुग्धमानसाः । नित्यमानंदसंतान उत्साहःकरुणाक्षमा । शांतिर्दाक्षिण्यमास्तिक्यं मैत्रीचेहविराजते ॥ तदिन्द्रियभवंजीवा नित्यंभुंजंतियत्सुखं । विचेतनाइवस्वर्ग्यं तस्यनास्त्युपमाभुवि ॥ वनालयाश्चमुनयोभूपाःप्रासादवासिनः । कुटीरस्थादरिद्राश्चसर्वेतेनजिताध्रुवं ॥ पुमांसोनिखिलालोके यौवनस्थाः स्त्रियस्तथा । जन्तुष्वश्रान्तमवशाःकामयन्तेसुखंनुतत् ॥ शान्तौतदिन्द्रियंहेतुर्विद्रोहेचमहत्यपि । महिमानमतस्तस्यकःस्याद्गमितुमीश्वरः ॥ जीवप्रवाहरक्षार्थंशांतिसंस्थापनायच । इदमेवंगुणंधात्रा विहितंविश्वकर्मणा ॥ शक्तिर्महीयसीयंचेन्नस्यादस्याबलीयसी । इयमानन्दनिलयोधन्वेवधरणीभवेत् ॥ आलोच्यभावंनिखिलंतदीयमुन्मीलिताक्षाननुमूढजीवाः । अपास्यसंदेहमहोहिसत्तां शक्तिंतथेक्षध्वमचिंत्यशक्तेः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–ये इन्द्री जीवस्रोतोविषय अर्थात् जीवों के आनेका कारण है, उसी प्रकार इस जननेन्द्री के व्यतिरिक्त जीव का संहार जानना, अर्थात् विना जननेन्द्री के जीव किसी रीति सैं नहीं प्रगट हो सक्ता, इसी कारण इस को जननेन्द्री कहते हैं। जननेन्द्री का दूसरा नाम उपस्थ है, इस के विना जीव के उत्पन्न होने का दूसरा रास्ता नहीं है, यदि दोनों स्त्री पुरुष प्रतिज्ञापूर्वक संग करना छोड देवें तो जीवोत्पत्ति का होना बन्द हो जावे; इस जननेन्द्री रूप यंत्र का निर्माण अति विचित्रहै! यह विधाता ने अपूर्व कौशलतापूर्वक निर्माण करा है। इस के अङ्ग प्रत्यङ्ग समुदाय का परस्पर संबंध तथा विशेषकारित्व शक्ति अनिर्वचनीय है। इस यंत्र की इस शक्ति सैं ब्रह्मांडस्थ जीवगण अवश तथा मुग्ध मानस हो डोरी सैं बंधे हुए (बंदर) की तरह निरंतर नाचते हैं। पृथ्वी में ऐसा कौन सामर्थ्यवाला है जो इस यंत्रशक्ति का वर्णन करे, इस के गुण तो वोही विश्वप्रकाशक सृष्टि का रचनेवाला जानता है। इसी के प्रभाव सैं, आनन्दप्रवाह, कर्मोत्साह, दया, क्षमा, शान्ति, चातुर्य, आस्तिक्य और मैत्री, पृथ्वीमंडल में नित्य विराजमान रहती है, जीवगण नित्य विचेतनसे होकर इस इन्द्री सैं उत्पन्न हुए स्वर्ग के सुख सदृश इस अपूर्व सुखको संभोग करते हैं। इस सुख की पृथ्वी में कोई उपमा नहीं है। वनवासी ऋषीश्वर महलों में रहनेवाले राजा महाराजा, और कुटी (झोंपडी) में रहने वाले दरिद्री मनुष्य ए सब इस विषय सुख सैं जीते गए हैं। यावन्मात्र मनुष्यों में यौवन अवस्था वाले पुरुष और यावन्मात्र नवयौवना स्त्री है, सब सुख की निरंतर आकांक्षा करे हैं येही इन्द्री अत्यंत शान्ति और अत्यंत द्रोहका कारण है। जीव प्रवाह की रक्षार्थ और शान्ति संस्थापनार्थ विश्व कर्त्ताने इस इन्द्री को ऐसी अद्भुत शक्ति दीनी है, यदि इस इन्द्री में ऐसी प्रबल तथा अलंघ्य शक्ति न होय तो यह आनंद धाम धरणी, थोडे ही काल में मरुभूमि (जंगल) के सदृश हो जावे।

हे मूढ जीवगण जननेन्द्रिय संबंधी सर्व भाव को विचार कर चिरसंचित सन्देह को दूर कर और बोध रूप नेत्रों को खोल कर, अचिंत्य शक्ति संपन्न जगदीश्वर का सत्व और शक्ति को देखो।

आधारकारभेदेन पौंस्नःस्त्रैणइतिद्विधा । विशिष्यतउप
स्थःस चेतनावानिवस्थितः॥ शिश्नोमेढ्रोव्यङ्गलिङ्गेमेहनं
शेफशेफसी। पुरुषेन्द्रियनामानि ध्वजोपस्थौचसाधनम्॥
स्त्रीन्द्रियस्यतुनामानि योन्युपस्थौभगोधरे। तत्वंवच्म्य
नयोःसम्यगुभयोरप्युपस्थयोः॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ—आधार और आकार भेद करके उपस्थ दो प्रकारकी है, पुरुषाधार पौंस्न और स्त्री आधार स्त्रैण उपस्थ कहाती है । दोनों उपस्थ चेतनासंयुक्त के सदृश प्रतीत होती है । शिश्न, मेढ्र, व्यंग, लिंग, मेहन, शेफ, शेफः (स्) ध्वज, उपस्थ, और साधन, ए पुंजननेन्द्रिय अर्थात् पुरुषकी उपस्थ इन्द्री के नाम है । और योनि, उपस्थ, भग और अधर, इतने स्त्री जननेन्द्री के नाम हैं । दोनों उपस्थों के कार्य साधन गुप्कादि (पुरुषों के) और डिंबकोष आदि (स्त्री जाति के) जननेन्द्रिय-पदवाच्य इन दोनों प्रकार की जननेन्द्रियों का स्वरूप क्रम सें वर्णन करते हैं ।

अथपुंजननेन्द्रियाणि ।

मेढ्रभूमि ।

यत्रोपस्थिसमायोगादस्थिनीमिलितेउभे । उपस्थिके अधस्तस्मात्पश्चाद्यास्तिगुदाश्रना ॥ दृढाग्रन्थिनि भापांडुः संवेष्टयबस्तिकंधराम् । मूत्रस्रोतोऽन्तरस्थश्च सामैढ्रीभूमिरुच्यते ॥

अर्थ—जिस स्थान में औपस्थिक दोनों हड्डियों का उपस्थि संयोग परस्पर मिला हुआ है, उसी के नीचे और पश्चात् भाग में गुदा के ऊपर स्थित दृढ़, तथा पीले रङ्ग का ग्रन्थि (गांठ) सदृश पदार्थ को मेढ्रभूमि कहते हैं । यह बस्ती की ग्रीवा को तथा भीतर के मूत्र छिद्रों को वेष्टन कर रही है ।

कलायिकाद्वयम् ।

मेढ्रभूमिसमीपेद्वे कलायपरिमण्डले ।
आयुषोह्रासशीलेस्तो गुटिकेतेकलायिके ॥

अर्थ—मेढ्रभूमि के निकट मटर के समान गोल दो गुटिका (गोली) के सदृश पदार्थ हैं, इन दोनों का जैसें आयुष्य का घटना होता है उसी के साथ क्रम सें इन का भी ह्रास होता है, इन को कलायिका कहते हैं ।

मेढ्रः ।

मेढ्रभूमिंसमारभ्य दीर्घःशृंगारसाधनः । उपस्थास्न्थोःस काशाच्च मेढ्रंसमभिवर्त्तते ॥ मूलादयमुपस्थास्न्थोः कौ षिकेणचचर्मणा । संसक्तोवेष्टितश्चापि परंमूर्द्धनिकेवल म् ॥ आवृतोनचसंसक्तस्तस्मिन्नग्रीयचर्मणि । पश्चादा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कृष्टलिंगस्य मुंडंव्यक्तंप्रकाशते ॥ कदलीकुसुमाकारं लिङ्गमुण्डंसचेतनम् । ततःपश्चाल्लिंगसरिल्लिंगग्रीवाचसोच्यते ॥ तत्रश्रान्तंरसःपूतिर्निःस्रवेत्क्षारधर्मवान् । ततश्च र्मसमासक्तं गात्रंलिङ्गस्यवर्त्तते ॥ ततोगुदसमीपेच लिङ्गमूलमवस्थितम् । बस्तितोमौत्रिकंस्रोतो लिङ्गपुण्डाद्बहिर्गतम् ॥ मेढ्रोऽहृष्टस्यपुंसःस्याच्छिथिलंस्तंभवर्तुलम् । जातेहर्षेसएवस्यादृढस्त्रिभुजसन्निभः ॥

अर्थ–उपस्थ की दोनों हड्डियों के समीप मेढ्रभूमि सैं मेढ्र (लिंग) की उत्पत्ति है, अर्थात् इतनी लम्बाई को लिंग कहते हैं । यही संगम साधन इन्द्री है, यह लिंग, उपस्थ की दोनों हड्डियों के मूल भाग सैं लेकर ऊपर पर्यंत अण्डकोष के ढकने वाले चर्म सैं मिला और लिपटा हुआ है । परंतु मुंडांशभाग जिस को कि, सुपारी कहते हैं, वह चर्म सैं ढका हुआ है । किंतु उस चर्म में मिला हुआ नहीं है । इस लिंग के ढकने वाले चर्म को पिछाडी खींचने सैं लिंग का मुख उघड कर दीखने लगे हैं. लिंग के मुख का अर्थात् सुपारीका आकार केला के फूल के सदृश और चैतन्य के समान है । लिंग की सुपारी के पिछाडी में लिंग सहित, अथवा लिंग की ग्रीवा (नाड) है । इसी जगेसैं बराबर एक प्रकार का दुर्गंधवाला खारी रस निकसता है । वोही लिंगग्रीवा में चिपट जाता है तब उस को मनुष्य लिंग में अंडे पडगए ऐसा कहते है । और लिंग की ग्रीवा के पिछाडी के चिपटेहुए चर्म को लिंगगात्र ऐसा कहते हैं । तदनंतर गुदा के समीप भागको लिंगमूल कहते हैं । मूत्रस्रोत अर्थात् जिस में हो कर मूत्र आता है वह छिद्र बस्ती की ग्रीवा सै लेकर लिंग के भीतर होकर लिंग के मस्तक के बाहरतक चला आया है, इसी छिद्रद्वारा संचित मूत्र बाहर को गिरता है । जबतक हर्ष नहीं होता तबतक लिंग सिथिल और स्तंभ के सदृश वर्तुलाकार पडा रहता है । और जहां हर्ष हुआ उसी समय लिंग खडा हो कर दृढ और त्रिभुजाकार हो जाता है । यद्यपि इस लिंग में कोई हड्डी नहीं है परंतु हर्ष के होने सैं लिंग की सर्व नाडी फूल जाती हैं, इसी सैं यह कठोर हो जाता हैं । इस को काम शास्त्र में मदनांकुश करके लिखा है । जैसैं अंकुश के लगने सैं हाथी चैतन्य होता है, उसी प्रकार इस के लगने सैं कामदेव चैतन्य होता है । लिंग का प्रमाण तथा सामुद्रिक द्वारा शुभाशुभ फल आदि विशेष वार्ता निघंट में (लिंग) शब्द की व्याख्या में लिखेंगे सो देखलेना ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बीजकोषद्वय।

बस्तिमूलगुदान्तस्थौ बीजकोषौनृणांस्मृतौ। बीजंधार यतोगर्भजननेमुख्यकारणम् ॥ तद्बीजंतरलंस्त्यानं शुभ्रं गंधविशेषवत्। चेतनाण्डपरिव्याप्तं रेतःशुक्रंतदुच्यते ॥ नाड्याशुक्रप्रवाहिन्या फलमागत्यवैततः। उपस्थिकेन रंध्रेण बहिर्निधुवनात्सरेत् ॥ आहारजःपरःसारःशुक्रं प्राणकरंपरम्। कारणंजीवनेचोक्तं तत्क्षयान्मरणंध्रुवम् ॥ अतोरक्ष्यंप्रयत्नेन शुक्रंजीवनकांक्षिणा। नित्यंतत्संचये चापि यतितव्यंचसर्वथा ॥ रेतस्युपचितेऽत्यर्थं जायते रमणीस्पृहा। तदानिधुवनंकुर्य्यात्प्रिययानाविचारयन् ॥ अव्यवायान्मेहमेदोवृद्धिःशिथिलतातनोः। यतःस्यान्न हितंतस्मात्कामस्यातिविनिग्रहः ॥

अर्थ—बस्ति के मूल में और गुदा के मध्य में दो बीजकोष रहते हैं। ये दोनों गर्भोत्पत्ति के हेतुभूत बीज को धारण करते हैं, यह बीज घन, स्वच्छ, और विशेष गन्ध युक्त, एक प्रकार का तरल पदार्थ है। यह बहु चेतनावाले परमाणुओंसें व्याप्त है। बीज, रेत और शुक्र आदि इस के नाम विख्यात हैं। ये वीर्य, विषय के समय वीर्यवाहिनी नाडियों के द्वारा अण्डकोषों में आकर पीछे उस जगे सें चलकर उपस्थिक छिद्र (लिंग के छिद्र) द्वारा निकलता है। यह शुक्र आहारजन्य प्रधान सार पदार्थ है, यही बल रक्षा, तथा जीवन धारण का कारणभूत है, इस के अतिक्षीण होने सें निश्चय मृत्यु होवे, इसीसें जीवन की इच्छावाले मनुष्य को नित्य सर्व यत्नों सें इस वीर्य के संचय और रक्षा में तत्पर होना चाहिये जब वीर्य का अधिक संचय होता है तब इस पुरुष को अत्यंत स्त्री के संग की इच्छा होती है, जब अत्यंत स्त्रीसंग की इच्छा होय उस समय यथा शास्त्र के विचार पूर्वक परमसुंदर प्रियतमा स्त्री के साथ रतिकर्म में प्रवृत्त होना उचित है, यदि वीर्य वृद्धि में भी स्त्रीसंग न करे तो प्रमेह, मेदवृद्धि और देह में शिथिलता आदि अनेक रोग होते हैं इसी सें काम प्रवृत्ती का अत्यंत रोकना हितकारक नहीं है। ६ छटे नम्बर का चित्र देखो।

अथस्त्रीजननेन्द्रियाणि।

भगमणिर्भगोष्ठौच भगपक्षद्वयंतथा। भगलिंगंचयो-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निश्च तथाद्वेचकलायिके ॥ जरायुडिम्बवाहिन्यो डिम्बकोषौसढिम्बकौ । स्तनौचेतीन्द्रियगणो नारीणां कथितोबुधैः ।

अर्थ–स्त्रियों की जननेन्द्रिय कहते हैं । भगमणि, भगोष्ठद्वय, भगपक्षद्वय, भगलिंग, योनि, कलायिकाद्वय, जरायु, दोनोंडिंबवाहिनी, दोनोंडिंबकोष, सर्वांडिंब और दोनों स्तन इतनी स्त्रियों के जननेन्द्री होती है ।

भगमणिः ।

औपस्थिकास्थ्नोःपुरतस्त्वग्वसापरिनिर्मितः ।
उच्चैःसुकोमलोवृत्तः स्त्रीणांभगमणिःस्मृतः ॥
यदावाल्यमतिक्रम्य तारुण्यंयान्तियोषितः ।
तदुद्भवन्तिलोमानि समंतादस्यगात्रतः ॥

अर्थ–दोनों उपस्थि की हड्डियों के सन्मुख त्वचा और वसा द्वारा बने हुए ऊंचे और गोलाकार कोमल स्थान को भगमणि कहते हैं, स्त्री की बाल्य अवस्था व्यतीत होने पर और यौवन अवस्था के प्राप्त होते ही इस भगमणि के ऊपर चारों तरफ रोमांच उत्पन्न होते हैं ।

भगोष्ठद्वयम् ।

भगविवरसंवेष्टौ भगोष्ठौपीवरौमणेः । मूलाधाराग्रसीमानं स्थितायावत्तुतद्वयम् ॥ पुंसांकोषद्वयमिव स्मृतंप्रकृतितोबुधैः ॥ बहिश्चर्ममयंचान्तःकलावद्यौवने पुनः ॥ लोमभिर्व्रियतेस्नायु धराग्रन्थ्यादिसंयुतम् ।

अर्थ–भगरूप विवर (गड्ढे) के संवेष्टन करनेवाले स्थूल अङ्गद्वय को भगोष्ठ कहते हैं, ये भगमणिसे लेकर मूलाधारकी (गुदा और उपस्थके मध्यवर्त्ती स्थान को मूलाधार कहते हैं) आगे की सीमापर्यंत विस्तारित हैं । दोनों भगोष्ठ पुरुषों के अण्डकोष के सदृश रूपवाले हैं । इनके बाहर का देश चर्मद्वारा तथा भीतरका भाग कलाद्वारा बना हुआ है, ये दोनों यौवन अवस्था में बालों के समूह से आच्छादित होते हैं, इनके भीतर फैलीहुई स्नायु धमनी और गांठ है ।

भगपक्षौ ।

पश्चाद्भगोष्ठयोरूर्ध्वं कलावन्तौ सुकोमलौ ।
लिङ्गमुभयतः पक्षौ किंचिन्निम्नं समागतौ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–दोनों भगोष्ठों के भीतर ऊपरले भागमें कलासे बना, अत्यंत कोमल अंग द्वय को भगपक्ष कहते हैं। ए भगलिंगसे लेकर दोनों तरफके पार्श्वोंमें कुछ दूर नीचेतक विस्तृत हैं।

भगलिंगम्।

भगोष्ठयोरूर्ध्वसन्धेः प्रायेणद्व्यंगुलादधः। चेतनं दीर्घदेहंचभगलिङ्गमितिस्मृतम्॥ भगलिङ्गंतथा पुंसां मेढ्रःप्रकृतितोमतम्।

अर्थ–दोनों भगोष्ठों के ऊपरकी संधी के प्रायः करके दो अंगुल नीचे, लंबी आकृतिवाले चेतनाविशिष्ट अङ्ग विशेष को भगलिंग ऐसे कहते हैं। इस भगलिंग का आकार पुरुष के लिंग सदृश होता है।

सामिचन्द्रः।

अधस्ताद्योनिरन्ध्रस्य तनुश्चन्द्रार्द्धसन्निभः। कौमारेप्रायशःसामिचन्द्रोनारीषुदृश्यते॥

अर्थ–योनि छिद्रके नीचे के भाग में अर्द्धचन्द्राकृति (जैसा आधा चन्द्र होता है) और पतला पर्दा के सदृश पदार्थ को सामिचन्द्र कहते हैं, यह सामिचन्द्र कुमारी अवस्थामें प्रायः दीखता है।

कलायिकाद्वयम्।

योनिरन्ध्रमुभयतः स्त्रीणांपुंवत्कलायिके।

अर्थ–पुरुषों के जैसी दो कलायिका होती है उसी प्रकार की स्त्रियोंके योनिरंध्रके दोनों तरफ कलायिका होती है।

योनिः।

योनिःकलामयीनाडी बस्तिगर्भेव्यवस्थिता। गुदस्यपुरतःपश्चान्मूत्राधारस्यकोमला॥ आवर्त्तनीभगोष्ठात्तु जरायुं समुपस्थिता। अधस्तान्मूत्ररन्ध्रस्य मुखंयोनेरवस्थितम्॥

अर्थ–योनि एककलानिर्मित नाड़ी विशेषको कहते हैं। यह बस्तिगह्वर में गुदाके सन्मुख और मूत्राधारके पिछाड़ी है। तथा भगोष्ठसे लेकर जरायु पर्यंत विस्तृत है; यह अतीव कोमल है, और आवर्त्तमयी अर्थात् आंटेदार है। मूत्रछिद्रके नीचे योनिका मुख है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जरायुः ।

गुदमूत्राशयान्तःस्थो जरायुर्गर्भमंदिरम् । जरायुपार्श्वना
ड्यौद्वेडिम्बनाड्यौप्रकीर्तिते ॥ डिम्बकोषद्वयाडिंबं नय
तोगर्भकारणम् । जरायुकोषंनारीणां जातर्तूनांस्वभावतः ॥

अर्थ–गुदा और मूत्राशय के बीचमें जरायु है । इसी स्थान में गर्भ रहता है तथा वृद्धि को प्राप्त होकर यथासमय पृथ्वी पर पड़ता है, जरायु के पार्श्व दो डिंबनाड़ी रहती हैं । डिंबकोषद्वयसे गर्भोत्पत्तिके हेतुभूत डिंब को वहन करके ये दोनों नाड़ी लाती हैं । रजोदर्शवती स्त्रियों के स्वभावसेही जरायुकोष विद्यमान होता है ।

अथस्तनद्वयौ ।

स्तनौद्वौसंख्ययास्यातां स्त्रियांचपुरुषेतथा । तारुण्येतु
स्त्रियांपीनौ भवेतांचातिमोहनौ ॥ पर्शुकायास्तृतीयाया
यावत्षष्ठीमुरोऽस्थितः । आकक्षंचकृतस्थानावर्धवृत्तौ
सुकोमलौ ॥ जातेमहत्तमौगर्भे स्यातांचापिपयस्विनौ ।
लम्बमानौप्रसूताया वृद्धायाःशुष्यतश्चतौ ॥ स्तनयोरुभ
योर्ज्ञेयो वामःकिंचिन्महत्तरः । चूचुकःस्तनवृन्तंस्या
दुग्धनाडीभिरन्वितम् ॥

अर्थ-योनि और जरायु आदिके सदृश स्तनभी जननेन्द्रियों में गिने जाते हैं। स्त्री पुरुष दोनों के दो दो स्तन होते हैं, इन में पुरुषों के जैसे बाल्य अवस्था में होते हैं उसीप्रकार के रहते हैं, परन्तु स्त्रियों के यौवन (जवानी) अवस्था आनेपर पुष्ट और ऊंचे तथा देखने में मनके चुरानेवाले अतिसुन्दर होजाते हैं । ये तीसरी पांशूसे लेकर छठवीं पांशू पर्यंत, तथा छाती की हड्डीसे ले कक्ष (बगल) पर्यंत फैले हुए होते हैं । ये अर्द्ध वृत्ताकार और अति कोमल हैं । जब स्त्री गर्भवती होतीहै तब ये दोनों स्तन बडे और दूधसे परिपूर्ण हो जाते हैं । प्रसूता (जिसके बालक होचुकाहो) ऐसी स्त्रीकेस्तन नीचे को लम्बे होकर लटक जातेहैं । और बुड्ढी स्त्री के स्तन सूख जाते हैं । दहने स्तनकी अपेक्षा वाम स्तन कुछ बडा होता है । स्तनों के ऊपर की घुंडी को चूचुक और स्तनवृंत कहतेहैं । ये स्तनवृंत अनेक दूधवाली नाडियों से व्याप्त होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मूलाधारः।

पायूपस्थान्तरस्थोऽसौ मूलाधारःप्रकीर्त्तितः।
हर्षोऽस्यापिरिरंसूनामन्याङ्गानांयथाभवेत् ॥

अर्थ–गुह्यद्वार और उपस्थ अर्थात् गुदा और भगलिंग के बीचवाले अंग को मूलाधार कहते हैं। रमण कर्त्ता मनुष्यों को जैसे और इन्द्री सुखदायक हैं उसी प्रकार यह हर्ष कर्त्ता है। सातवें नम्बरका चित्र देखो।

हृदयोत्पत्ति।

शोणितकफप्रसादजंहृदयंयदाश्रिताधमन्यःप्राणवहाः त
स्याधोवामतःप्लीहाफुप्फुसश्चदक्षिणतोयकृत्क्लोमच तत्हृद
यंविशेषेणचेतनास्थानमतस्तस्मिन्तमसावृतेप्राणिनःस्वपंति

अर्थ–रुधिर और कफ इनके सार से हृदय बना है। जिस के आश्रय करके रहनेवाली धमनी नाडी प्राणों को बहती है। तथा हृदय के अधो भागमें वाईं तरफ प्लीहा है। और दहनी तरफ फुप्फुस है, तथा हृदय के दहनी तरफ कुछ नीचे को यकृत् और क्लोम ये हैं। यकृत् कलेजे को कहते हैं। और क्लोम तिलकालकको कहते हैं। ये प्यास लगने के स्थान हैं। और यह हृदय विशेष करके चेतना का स्थान है जब यह तमोगुण से व्याप्त होता है तब प्राणी सोते हैं। इसजगे हृदयके कहने से सर्व देह चेतना स्थान है ऐसा जानना. जैसे चरक में लिखा है।

शरीरकोचेतनास्थानकहते हैं।

चेतनानामधिष्ठानं मनोदेहश्चसेन्द्रियम्।
केशलोमनखाग्रान्तमलद्रव्यगुणैर्विना ॥

अर्थ–इन्द्री सह मन और सर्व देह चेतना का स्थान है। परन्तु केश, लोम, और नखों के अग्रभाग अर्थात् छेद्यनक इत्यादि मलद्रव्यों के गुण विना सर्व देह चेतना का स्थान है।

हृदयकास्वरूप।

पुण्डरीकेणसदृशं हृदयंस्यादधोमुखम्।
जाग्रस्ततद्विकसति स्वपतश्चनिमीलति ॥

अर्थ–हृदय कमल के समान अधोमुख है वह जागृत अवस्था में खुल जाता है और जब प्राणी सोते हैं तब मूंद जाता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रसंगवशनिद्राकावर्णनकरते हैं ।

निद्रातुवैष्णवीमाया पाप्मानमुपदिश्याते ।
सास्वभावतएवसर्वप्राणिनोभिस्पृशति ॥

अर्थ–निद्रा विष्णु की माया है । उसका स्वभाव ऐसा है, कि यह सर्व प्राणी-मात्रों को स्पर्श करके शुभाशुभ कर्म का निरोध करती है । इसी सें पापोंकाही उपदेश करे हैं । यद्यपि अन्य ग्रंथों में सात प्रकार की निद्रा कही है । तथापि तामसी, स्वाभाविकी और वैकरिकी, ऐसे तीनप्रकार की मुख्य निद्रा है उन्को कहते हैं ।

तामसीनिद्रा ।

यदासंज्ञावहानिस्रोतांसितमोभूयिष्ठंश्लेष्माणंप्रतिप
द्यन्तेतदातामसीनिद्राभवतिअनवबोधनीसाप्रलये ।

अर्थ–जिसकाल में शरीर के चैतन्य वहने वाली नाडियों में तमोगुण प्रधान कफ जायकर उन नाडियों के मार्गको रोकलेता है । उसकाल में घोर निद्रा आती है उसमें ज्ञान नहीं रहता तथा यह प्रलय काल में मूर्च्छा के विषे होती है । यद्यपि सर्व निद्राओंका हेतु तमोगुण है । तथापि इसमें अधिक होता है । इससे इसको तामसी निद्रा कहते हैं ।

स्वाभाविकीनिद्रा ।

तमोभूयिष्ठानामहःसुनिशासुचभवति,
रजोभूयिष्ठानामनिमित्तं सत्वभूयिष्ठानामर्धरात्रे ।

अर्थ–निद्रा तमोगुणी पुरुषों को दिन रात और रजोगुणी पुरुषों को कभी रात में और कभी दिन में कभी सायंकाल मे कभी सूर्योदय, कभी तीनों सन्ध्या-में निद्रा आती है । और सतोगुणी पुरुषों को आधीरात्रि के समय अल्पसत्व होता है और तमोगुण अधिक होता है इसीसें अर्द्धरात्रि के समय निद्रा आती है ।

वैकारिकीनिद्रा ।

क्षीणश्लेष्मधातूनामनिलबहुलानांमनःशरीरा
भिघातवतांचनैवसावैकारिकीभवति ।

अर्थ–जो प्राणियों के शरीर को बल देने वाला कफ और सप्त धातु ए क्षीण होनेसें तथा शरीर में वायु प्रबल होने सें, तथा मन और शरीर इन में किसी प्रकार की चोट लगने सें उस मनुष्य को निद्रा नहीं आती है, कदाचित् थोडी आने सें उस को वैकारिकी निद्रा जाननी ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लंघन श्रमादिक करके शरीर में वायु बढती है और कफ क्षीण होता है, उस काल में निद्रा कैसें आती है ? उस को कहते हैं । उस काल में मन को अत्यंत ग्लानी होने सें भूतात्मा की विषयों सें निवृत्ति होने सें प्राणी सोते हैं इस में प्रमाण है ।

तदुक्तंचरके ।

यदातुमनसिक्लान्ते कर्मात्माचश्रमान्वितः ।
विषयेभ्योनिवर्त्तन्ते तदास्वपितिमानवः ॥

अर्थ–जिस समय मन ग्लानि युक्त होता है, और कर्मात्मा (कर्मपुरुष) को श्रम होने सें विषयों सें निवृत्त होती है उस काल में मनुष्य सोता है ।

पूर्व गद्य करके कहे हुए अर्थ को सुखबोधार्थ फिर दो श्लोकोंसें कहते हैं ।

हृदयंचेतनास्थानमुक्तंसुश्रुतदेहिनाम् । तमोभिभूतेस्त स्मिंस्तुनिद्राविशतिदेहिनाम् ॥ निद्राहेतुस्तमःसत्त्वंबोध नेहेतुरुच्यते । स्वभावएववाहेतुर्गरीयान्परिकीर्तितः ॥

अर्थ–हृदय प्राणियों का चेतनास्थान है, वह तमोगुण करके व्याप्त होनेसें निद्रा आती है, निद्रा का कारण तमोगुण और जगने का कारण सतोगुण है, अथवा परमश्रेष्ठ स्वभावही दोनों अवस्थाओंका कारण कहा है ।

निद्रावस्थामेंस्वप्नदर्शनकैसेंहोताहैसोकहतेहैं ।

पूर्वदेहानुभूतानां भूतात्मास्वपतःप्रभुः ।
रजोयुक्तेनमनसा गृह्णात्यर्थान्शुभाशुभान् ॥

अर्थ–भूतात्मा जो सोनेवाले के देह का नियंता क्षेत्रज्ञ वह पहले अनन्त जन्मों के अनुभव करे विषयों के सुखदुःखों को भोगासक्तिरूप मन करके ग्रहण करे हैं उसी को स्वप्न कहते हैं ।

इन्द्रियोंकेलयकरकेआत्मानिद्रितसादीखताहै ।

करणानांतुवैकल्ये तमसाभिप्रवर्धिते ।
अस्वपन्नपिभूतात्मा प्रसुप्तइवचोच्यते ॥

अर्थ–तमोगुणकी वृद्धि करके इन्द्री विकल होनेसें क्षेत्रज्ञ न सोता हुआ भी सोता हुआसा प्रतीत होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दिनकीनिद्राकाविधिनिषेधकहतेहैं ।

सर्वर्तुषुदिवास्वापः प्रतिषिद्धोऽन्यत्रग्रीष्मात् ।

अर्थ–ग्रीष्म ऋतु को त्याग कर अन्य ऋतुओंमें दिन का सोना वर्जित है ।

प्रतिषिद्धेष्वपिबालवृद्धस्त्रीकर्षितक्षतक्षीणनित्यमद्यपान वाहनाऽध्वकर्मपरिश्रांतानामभुक्तवतांमेदःस्वेदकफरक्तक्षीणानामजीर्णिनांचमुहूर्त्तस्वापनमप्रतिषिद्धम् ॥

अर्थ–वर्जित ऋतु में भी बालक, वृद्ध और मैथुन करके क्षीण तथा उरःक्षत करके क्षीण तथा नित्य मद्यपान कर्त्ता तथा घोडा, उंट आदि वाहन पर चढने करके थका हुआ तथा उपवास और जिस के मेद, पसीने, कफ रस, रुधिर, ए क्षीण होगए हों उसको तथा अजीर्णवाला इन सब को दिन में दो घडी निद्रा लेने का निषेध नहीं है, उसी प्रकार रात्रि में जगे हुए मनुष्य को जितने समय रात्रि जगा हो उस सें अर्धकाल पर्यंत दिन में सोना हितकारी है ।

अतिनिद्राकेदोष ।

विकृतिर्हिदिवास्वापोनाम तत्रस्वपतामधर्मः सर्वदोषप्रकोपश्चकासश्वासप्रतिश्यायशिरोगौरवांगमर्दारोचकज्वराग्निदौर्बल्यानिभवंति ॥

अर्थ–दिनमें सोने सें विकृति होती है और अधर्म होता है तथा वात रक्तादि सर्व दोषोंका प्रकोप हो कर खांसी, श्वास, सरेकमां देह भारी, अंगोंका टूटना, अरुचि ज्वर, मंदाग्नि और दुर्बलता इत्यादि विकार होते हैं ।

तस्मान्नजागृयाद्रात्रौदिवास्वापंतुवर्जयेत् । ज्ञात्वादोषकरावेतौ बुधःस्वापंमितंचरेत् ॥ अरोगःसुमनाह्येवं बलवर्णान्वितोबुधः । नातिस्थूलकृशःश्रीमान्नरोजीवेत्समाःशतम् ॥

अर्थ–पूर्वोक्त अधर्म और विकार होते हैं इसी सें रात्रिमें जागना और दिनमें निद्रा लेना त्याग देवे, पण्डितोंको ये दोनों दोष कारक ऐसें जान कर निद्रा तथा जागरण परिमाणके करने चाहिये, इस प्रकार वर्त्ताव करनेवाले पुरुष रोगरहित जिनका मन निर्दोष तथा बल करके और वर्ण करके युक्त तथा स्त्री रमण शक्ति युक्त, न अत्यंत मोटे न बहुत पतले ऐसें होते हैं, तथा शरीरकी शोभा युक्त हो सौ १०० वर्ष पर्यंत जीते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निद्रानाशकेहेतु।

निद्रानाशोनिलात्पित्तान्मनस्तापात्क्षयादपि।
संभवत्यभिघाताच्च प्रत्यनीकैश्चशाम्यति॥

अर्थ–वात, पित्त, क्षय तथा मनःसंताप चोट इत्यादि कारणों करके निद्राका नाश होता है। और वो निद्रानाश जिन कारणोंसे होता है, उसके विरुद्ध अभ्यंगादि उपचार करनेसे शान्ति होता है।

उपचारोंकोकहतेहैं।

निद्रानाशेभ्यंगयोगो मूर्ध्नितैलनिषेवणम्। गात्रस्योद्वर्त्तनंचैव हितसंवाहनानिच॥ शालीगोधूमपिष्टान्नभक्षैरैक्षवसंस्कृतैः। भोजनंमधुरंस्निग्धं क्षीरमांसरसादिभिः॥ रसैर्बिलेशयानांच विष्कराणांतथैवच। द्राक्षासितेक्षुद्रव्याणामुपयोगोभवेन्निशि॥ शयनाशनयानानि मनोज्ञानि मृदूनिच। निद्रानाशेचकुर्वीत तथान्यानपिबुद्धिमान्॥

अर्थ–निद्रा नाश होने पर तेल का मालिस कर भले प्रकार गरमजल से स्नान करे तथा मस्तक में तेल डालना तथा शरीर में उबटना उत्तम रीत से कर अस्नान करैं तथा अंगोंको धीरे धीरे मसलवावे तथा सांठी चांवल और खांड से बने हुए गोधूम मिष्टान्न का भोजन तथा दूध और मांस इत्यादि करके स्निग्ध मधुर ऐसे भोजन करें, बिले में रहनेवाले ससे, सेह आदि जानवर तथा मुरगा, तीतर आदि विष्कर (पक्षी) इनका मांस रसकरके तथा दाख, मिश्री और गंडे इन का रात्रि मे सेवन कर के तथा शयन स्थान आसन और सवारी ए उत्तम नम्र मन को आल्हाद करने वाली और प्रावर्ण (हिम नाशक कपडे) आदि करके निद्रा नाश का उपशम अर्थात् शान्ति होती है।

अतिनिद्राआनेकाउपाय।

निद्रातियोगेवमनं हितंसंशोधनानिच।
लंघनंरक्तमोक्षश्च मनोव्याकुलतापिच॥

अर्थ–निद्रा का अति योग होने से वमन करना हित है, तथा वमन, विरेचन, स्वेदन इत्यादिकों करके शरीर का शोधन तथा लंघन और रुधिर का कढाना तथा मनको व्याकुलता इत्यादिक उपचार हितकारक होते हैं; यद्यपि संशोधन के क-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हने सें ही वमन का बोध होगया तथापि पुनः वमन का ग्रहण करने से विशेषता द्योतन करी है ऐसा जानना ।

रात्रिमेंनिद्रावर्जितमनुष्य ।

कफमेदोविषार्त्तानां रात्रौजागरणंहितम् ।

अर्थ–कफ रोगी, मेद रोगी, और विष से व्याकुल पुरुषों को रात्रिमें जागरण करना हितकारक है ।

दिनमेंकौनसेमनुष्योंकोसोनाचाहिये ।

दिवास्वापश्चतृट्शूलहिक्काजीर्णातिसारिणाम् ॥

अर्थ–तृषा, शूल, हिचकी, अजीर्ण और अतीसार इन रोगों से व्याप्त मनुष्यों को दिन में सोना हितावह है ।

निद्राकेप्रसंगकरकेतंद्राकोकहते हैं ।

इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्गौरवंजृंभणंक्लमः ।
निद्रार्त्तस्येवतस्येहा तस्यतन्द्रांविनिर्दिशेत् ॥

अर्थ–जिस अवस्था में शब्दादिक विषयों का अज्ञान, शरीर की जडता तथा जँभाई, क्लम ए होते हैं तथा निद्रा युक्त होने पर भी चैतन्यता होय उस अवस्था को तंद्रा कहते हैं, निद्रा के विषे जागने के पश्चात् ग्लानि नहीं होती, और तन्द्रा में ग्लानि होती हैं ऐसा जानना ।

जँभाईकेलक्षण ।

पीत्वैकमनिलोच्छ्वासमुद्वेष्टंविवृताननः ।
संमुंचतिसनेत्राश्रुं सजृंभइतिकीर्त्तितः ॥

अर्थ–जिस अवस्था में मनुष्य एक उच्छ्वास संबंधी वायु मुख को पसार कर पीवे पीछे छोडते समय मुख विकसित करके आंसू छोडे उस अवस्था को जंभाई कहते हैं ।

छीककेलक्षण ।

प्राणोदानौसमौस्यातां मूर्ध्निस्रोतःपथिस्थितौ ।
नस्तःप्रवर्त्ततेशब्दःक्षवथुंतंविनिर्दिशेत् ॥

अर्थ–हृदयस्थ वायु और कंठस्थ वायु ए मस्तक में जाय कर शिरा (नाडी)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

के मार्ग बंदकरके क्षणमात्र स्थिर होकर अकस्मात् नासिका से शब्द युक्त बाहर निकले उस अवस्थाको छिक्का (छीक) कहते हैं।

क्लमकेलक्षण।

योनायासश्रमोदेहे प्रवृद्धश्वासवर्जितः।
क्लमःसइतिविज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः॥

अर्थ–जिस अवस्था में परिश्रम बिना देह के विषे श्रम होय परंतु श्रम में भारी श्वास होय वो होय नहीं और इन्द्रियों की सर्व कर्मों के विषय में प्रवृत्ति होय नहीं उस अवस्था को क्लम और ग्लानि कहते हैं।

आलस्यकेलक्षण।

सुखस्पर्शमसंगित्वं दुःखद्वेषणलोलता।
शक्तस्यचाप्यनुत्साहः कर्मण्यालस्यमुच्यते॥

अर्थ–जिस अवस्था में सुखस्पर्श की इच्छा और दुःखसे द्वेष होय और शक्ति होने परभी कर्म करनेमें उत्साह न होय उस अवस्थाको आलस्य कहते हैं।

कोईइसजगेउत्क्लेशऔरग्लानीकेलक्षण।

उत्क्लिश्यान्नंननिर्गच्छेत्प्रसेकष्ठीवनेरितम्। हृदयंपी
ड्यतेचास्य तमुत्क्लेशंविनिर्दिशेत्॥ वक्त्रेमधुरतात
न्द्रा हृदयोद्वेष्टनंभ्रमः। नचान्नमभिकांक्षेत ग्लानि
स्तस्याविनिर्दिशेत्॥

अर्थ–जिस अवस्थामें पेट में से ढकिल कर ऊर्ध्व वेग आवे परंतु उस वेग के साथ अन्न बाहर न निकले और ओकारी आवे, मुखसे लार और पानी गिरे तथा हृदयमें पीडा होय उस अवस्थाको उत्क्लेश कहते हैं; तथा मुखमें मिठास आय कर तन्द्रा होय तथा हृदय भारी और धिरासा प्रतीत हो, भ्रम होय अन्न पर इच्छा होय नहीं उस अवस्थाको ग्लानि कहते हैं।

गौरवकेलक्षण।

आर्द्रचर्मावनद्धंवा योगात्रंमन्यतेनरः।
तथागुरुशिरोत्यर्थं गौरवंतद्विनिर्दिशेत्॥

अर्थ–जिस अवस्थामें मनुष्य अपनी देहको गीले चमडेसे ढका हुआसा भारी जाने और मस्तक अत्यंत भारी प्रतीत होय उस अवस्थाको गौरव कहते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मूर्च्छादिकोंकाकारणकहते हैं ।

मूर्च्छापित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद्भ्रमः ।
तमोवातकफात्तन्द्रा निद्राश्लेष्मतमोभवा ॥

अर्थ–अकस्मात् अंधकार आय कर मनुष्य निश्चेष्ट गिर पडे ऐसी अवस्था पित्त और तमोगुण इन से होती है, उस को मूर्च्छा कहते हैं, चाक पर बैठा कर फिराने से जैसी अवस्था होती है, वह रजोगुण पित्त और वायु इन से होती है इस को भ्रम कहते हैं, तंद्रा तमोगुण वायु और कफ इन करके होती है, तथा निद्रा, कफ और तमोगुण इन करके होती है ।

गर्भवृद्धिविषयमेंअन्यहेतुकहते हैं ।

गर्भस्यखलुरसनिमित्तामारुताध्माननिमित्ताच
परिवृद्धिर्भवति ॥

अर्थ–गर्भ की वृद्धि दो प्रकार से होती है, एक रसनिमित्ता दूसरी मारुताध्माननिमित्ता, तहां रसनिमित्ता वृद्धि उसे कहते हैं, जैसे माता के रस वाहिनी नाडी से गर्भ की नाभि नाडी लगी हुई है, वह माता के आहार रस से रस को लेकर गर्भ का पोषण करे है यह प्रकार प्रथम कह आए हैं, और दूसरे प्रकार की वृद्धि वायु करके शिराओंकी पूर्णता हो कर गर्भ के सर्व अवयवों की वृद्धि होती है ऐसे जानना ।

स्रोतसोंकाआध्मानकीप्राप्तिकहते हैं ।

तस्यांतरेणनाभेस्तु ज्योतिःस्थानंध्रुवंस्मृतम् ।
तदाधमतिवायुस्तु देहस्तेनाभिवर्द्धते ॥

अर्थ–गर्भ के नाभी में अग्निका स्थान है, ऐसे मुनीश्वरों ने कहा है, उस अग्नि को वायु प्रज्वलित करता है वह अग्नि वायु सहवर्त्तमान शिराओं में प्रवेश होकर पूर्ण होने से गर्भकी वृद्धि होती है ।

सर्वदेहकीवृद्धिकहते हैं ।

ऊष्मणासहितश्चापि दारयत्यस्यमारुतः ।
ऊर्ध्वतिर्यगधस्ताच्च स्रोतांस्यापियथातथा ॥

अर्थ–ऊष्माकरके संयुक्त वायु जैसे जैसे आपाद मस्तक पर्यंत शिराओं को पूरण करता है, तैसे तैसे गर्भका देह बढता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जैसे २ शरीरबढता है तैसे २ दृष्ट्यादिकनहींबढते।

दृष्टिश्चरोमकूपाश्च नवर्द्धन्तेकथंचन ।
ध्रुवाण्येतानिमर्त्यानामितिधन्वन्तरेर्मतम् ।

अर्थ-दृष्टि और रोम कूप ए मनुष्यों के निश्चल है, इसीसे देहके बढने से ये नहीं बढते यह धन्वन्तरी का मत है ।

शरीरकेक्षीणहोनेसेकोईअवयवोंकीवृद्धिहोतीहै सोकहतेहैं ।

शरीरेक्षीयमाणेपि वर्धतेद्वाविमौसदा ।
स्वभावंप्रकृतिंकृत्वा नखकेशाविवितिस्थितिः ॥

अर्थ-शरीरके क्षीण होने पर भी नख और केश दोनों सदैव बढते हैं, इनका कारण स्वभाव जानना ।

प्रसंगकरकेप्रकृतीकेरूपहेतु,लक्षणोंकोक्रमकरकेकहते हैं ।

सप्तप्रकृतयोभवंतिपृथग्द्विशःसमस्तैश्च ।

अर्थ-मनुष्यों की प्रकृति वात, पित्त और कफ इस भेद करके तीन और द्वंद्वज तीन तथा सन्निपातसे एक ऐसे सातप्रकारकी होती है ।

उनकीउत्पत्तिविषयमें हेतुकहतेहैं ।

शुक्रशोणितसंयोगाद्योभवेद्दोषउत्कटः ।
प्रकृतिर्जायतेतेन तस्याग्रेलक्षणंशृणु ॥

अर्थ-शुक्र शोणित के संयोग होने के समय वातादि दोषों में जो जो स्वभाव करके प्रबल होता है उस दोष करके मनुष्यकी प्रकृति होती है उनके लक्षण आगे कहेंगे, उसको तू सुन । उदाहरण, जैसे गर्भाधानके समय वायु प्रबल होने से वात-प्रकृति होती है, उसी प्रकार कफ तथा पित्तके प्रबल होने से, कफ और पित्तप्रकृतिवाला मनुष्य होता है ।

वातादि दोष दो प्रकार से प्रबल होते हैं, एक स्वभाव करके और दूसरे कुपित होकर प्रबल होते हैं तिन में स्वभाव करके प्रबल होते हैं, वे प्रकृतिके कारण होकर शरीरको उत्पन्न करते हैं, और कुपित होकर जो प्रबल होते हैं वे दोष रोगोंके कारण होकर गर्भ को नाश करते हैं ।

यथोक्तंवाग्भटे ।

शुक्रासृग्गर्भिणीभोज्यचेष्टागर्भाशयर्तुषु ।
यःस्याद्दोषोधिकस्तेनप्रकृतिःसप्तधोदिता ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ—गर्भाधान के समय शुक्र, रुधिर और गर्भ की माताके भोजन चेष्टा (आहार विहार) गर्भाशय और ऋतु इन में जो वातादिक दोष अधिक हो उस से उसी दोषकी प्रकृति होती है उस प्रकार दोष भेद करके सात प्रकार की प्रकृति होती है।

वातकोमुख्यतादिखाते हैं।

विभुत्वादाशुकारित्वाद्बलित्वादन्यकोपनात् ।
स्वातंत्र्याद्बहुरोगत्वाद्दोषाणांप्रबलोऽनिलः ॥

अर्थ—व्यापक आशुकारी और बली होनेसे तथा अन्य दोषों को कुपित करने-से, तथा स्वतंत्र और बहु रोगवान् होने से दोषों में वात प्रबल है, प्रयोजन यह है कि, वायुही व्यापक आशुकारी और बलीहै ऐसे कफ पित्त दोनों नहीं है, उसीप्रकार कफ पित्तको वायुही कुपित करती है, कफ पित्त इसप्रकार वायु को कुपित नहीं कर सक्ते, और इन दोनों दोषोंको प्रेरणा करनेवाला वातही है * कफ पित्त, वात-को प्रेरणा नहीं कर सक्ते इसीसे वातको स्वतंत्रता है, तथा वातके जितने अधिक रोग हैं उतने कफ पित्तके रोग नहीं है, जैसे " अशीतिर्वातजारोगाश्चत्वारिंशच्चपै-त्तिकाः ॥ विंशतिः श्लेष्मजाश्चेति" अर्थात् वातके ८० रोग हैं, पित्तके ४० रोग हैं, और कफके २० रोग हैं, इन पूर्वोक्त छः कारणोंसे वातको प्राधान्यता है, इसीसे प्रथम वात प्रकृतिका वर्णन करते हैं।

वातप्रकृतिकेलक्षण।

प्रायस्तएवपवनाध्युषितामनुष्यादोषात्मकाःस्फुटितधू
सरकेशगात्राः । शीतद्विषश्चलधृतिस्मृतिबुद्धिचेष्टासौ
हार्ददृष्टिगतयोऽतिबहुप्रलापाः॥अल्पपित्तबलजीवितनि
द्राः सन्नसक्तचलजर्जरवाचः। नास्तिकाबहुभुजःसविला
सागीतहासमृगयाकलिलोलाः ॥ मधुराम्लकटूष्णसा
त्म्यकांक्षाः कृशदीर्घाकृतयःसशब्दयाताः । नदृढान
जितेन्द्रियानचार्या नचकान्तादयितावहुप्रजावा । नेत्राणि
चैषांखरधूसराणि वृत्तान्यचारूणिमृतोपमानि । उन्मी

---

* पित्तं पंगु कफः पंगुः, पंगवोमलधातवः ।
वायुनायत्रनीयन्ते, तत्रवर्षन्तिमेघवत् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लितानीव भवन्तिसुप्ते शैलद्रुमास्तेगगनंचयांति ॥ अध न्यामत्सराध्माताःस्तेनाःप्रोद्बद्धपिण्डिकाः । श्वसृगालो ष्ट्रगृध्राखुकाकानूकाश्चवातिकाः ॥

अर्थ–विशेष करके वातप्रकृतिवाले मनुष्य दुष्ट स्वभाव वाले होते हैं उन्होंके केश और गात्र (देह) फटे हुए तथा कुछ कुछ पिलाई लिये होते हैं. शीत से द्वेष करने वाले तथा धीरज, स्मरण, बुद्धि, चेष्टा, सुहृदता दृष्टि और इनकी गति ये चंचल होते हैं, अत्यंत वाचाल होते हैं, पित्त, बल, जीवन और निद्रा ये अल्प होते हैं, तथा वात प्रकृति वाले मनुष्योंमें किसीके वचन टूटे हुए, किसीके हकलाय कर और किसीके कुछके कुछ और कोई फूटे कांसेके शब्द समान बोलता है, नास्तिक, बहुत भोजन करने वाला, विलास कर्त्ता तथा गीत, हास, और शिकार तथा कलह करनेकी रुचिवाला होता है । मीठा, खट्टा, खारी और गरम पदार्थ अनुकूल लगते हैं, देह पतला और लंबा होता है, तथा शब्दयुक्त गमन होता है, और न दृढ देह होते, न जितेन्द्री होते, न साधु होते न स्त्रियोंको प्यारे लगते और न वात प्रकृति-वालेके बहुत संतान होती तथा इन्होंके नेत्र रूखे और सपेदाई लिये गोल सुंदरता रहित मुर्दैकेसे होते हैं, और जब वात प्रकृतिवाला मनुष्य सोता है तब नेत्र खुलेसे होजाते हैं तथा सपनेमें पर्वत, वृक्ष और आकाशमें गमन करता है, भाग्यशाली नहीं हो द्वेषी और चोर होता है तथा इनकी पिंडली गांठदार होती हैं, तथा कुत्ता, स्यार, ऊंट, गीध, चूहा और कौआ इन्होंकासा स्वभाव स्वर (आवाज) रूप और चेष्टाके करने वाले होते हैं, इतने लक्षण वात प्रकृतिवाले मनुष्यके कहे हैं ।

पित्तप्रकृतिकेलक्षण ।

पित्तंवह्निर्वह्निजंवायदस्मात्पित्तोद्रिक्तस्तीक्ष्णतृष्णाबुभु क्षः ॥ गौरोष्णाङ्गस्ताम्रहस्तांघ्रिवक्त्रःशूरोमानीपिंगकेशो ल्परोमा ॥ दयितमाल्यविलेपनमंडनः सुचरितःशुचिरा श्रितवत्सलः ॥ विभवसाहसबुद्धिबलान्वितो भवतिभीषुग तिर्द्विषतामपि ॥ मेधावीप्रशिथिलसंधिबंधिमांसो नारीणा मनभिमतोऽल्पशुक्रकामः । आवासःपलिततरंगनीलि कानां भुंक्तेऽन्नंमधुरकषायतिक्तशीतम् ॥ धर्मद्वेषीस्वेदनः पूतिगंधिर्भूर्य्युच्चारक्रोधपानाशनेर्ष्यः । सुप्तःपश्येत्कर्णि कारान्पलाशान् दिग्दाहोल्काविद्युदर्कानलांश्च ॥ तनूनि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पिंगानिचलानिचैषां तन्वल्पपक्ष्माणिहिमप्रियाणि । क्रो धेनमद्येनरवेश्चभासा रागंव्रजंत्याशुविलोचनानि ॥ म ध्यायुषोमध्यबलाः पण्डिताःक्लेशभीरवः । व्याघ्रर्क्षकपि मार्जारयज्ञानूकाश्चपैत्तिकाः ।

अर्थ–धन्वन्तरि के मत में पित्त ही अग्निरूप है क्यों कि अन्न और रसादिक धातुओं का परिपाक कर्त्ता यही है, अथवा अग्नि से उत्पन्न हुआ क्यों कि पित्त को अग्न्याधारत्व लिखा है इसी से रुधिर के कीट को पित्त कहते हैं इन पूर्वोक्त कारणों सैं पित्त प्रकृति वाले मनुष्यको भूख और प्यास अधिक लगती है, गौरांग तथा गरम देह वाला होय है; हाथ, पैर और मुख ये लाल होते हैं, शूरवीर और अभिमानी होता है, पीले केश और अल्प रोम (रूआं) वाला होता है, फूल, माला और चन्दन लगाना तथा भूषणों का धारण करने वाला होता है, रीत भांत उत्तम होती है, देह वाणी और मन के मलिन व्यापारों से दूर रहता है, आश्रित मनुष्यों पर प्यारका करने वाला होता है, वैभव, साहस तथा बुद्धिबल युक्त होता है, भय में शत्रुओंकाभी रक्षा करने वाला होता है, (फिर इष्ट मित्र और मध्यस्थों की तो क्यों नहीं रक्षा करेगा) स्मरण शक्ति उत्तम होती है, सन्धियों के बंधन तथा मांस ये शिथिल होते हैं तथा स्त्रियों को अप्रिय, वीर्य और कामदेव जिसके अल्प तथा जल में जैसी तरंग पडती है ऐसी देह में गुजलट पड जावे, बाल सपेद हो जावें और नीलिका (क्षुद्र रोग विशेष) करके युक्त होता है, मिष्ट, कषेले कडुए और शीतल ऐसे पदार्थों को भोजन करता हैं, धर्म का विरोधी अथवा [धर्मद्वेषी] अर्थात् गरमी सुहाय नहीं, पसीने बहुत आवे, देह में दुर्गंध आवे, तथा विष्टा, क्रोध, जलपान, भोजन और ईर्ष्या ए अधिक होते हैं, सपने में कणेर, ढाक, दिशाओं में दाह, उल्कापात, विजली, सूर्य और अग्नि को देखे, तथा पित्त प्रकृति वाले मनुष्य के नेत्र छोटे, पीले, चंचल और छोटी वरुनी तथा पतले पलक और शीलता प्रिय लगे ऐसे होते हैं और क्रोधसे, मद्य पीने से तथा सूर्य्यकी घामसैं, नेत्र तत्काल लाल हो जाते हैं, पित्त प्रकृति वाला मनुष्य मध्यायु, मध्यबली, पण्डित, और क्लेशों सैं डरने वाला होता है, तथा बघेरा, रीछ, वानर, बिलाव और शूकर इन की सी चेष्टा, स्वभाव, स्वर और रूप वाले होते हैं, ये लक्षण पित्त प्रकृति वाले मनुष्य के कहे हैं ।

कफप्रकृतिवालेमनुष्यकेलक्षण ।

श्लेष्मासोमःश्लेष्मलस्तेनसौम्यो गूढस्निग्धश्लिष्टसंध्यस्थि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मांसः । क्षुत्तृड्दुःखक्लेशधर्मैरतप्तो बुद्ध्यायुक्तःसात्विकः सत्यसंधः ॥ प्रियङ्गुदूर्वाशरकांडशस्त्रगोरोचनापद्मसुवर्ण वर्णः । प्रलंबबाहुःपृथुपीनवक्षा महाललाटोघननीलकेशः ॥ मृदंगःसमसुविभक्तचारुवर्ष्मा बह्वोजोरतिरसशुक्रपुत्रभृत्यः । धर्मात्मावदतिननिष्ठुरंचजातुप्रच्छन्नंवहतिदृढंचिरंचवैरम् ॥ समदद्विरदेन्द्रतुल्ययातो जलदांभोधिमृदंगसिंहघोषः । स्मृतिमानभियोगवान्विनीतो नचबाल्येऽप्यतिरोदनोनलोलः ॥ तिक्तंकषायंकटुकोष्णरूक्षमल्पंसभुंक्तेबलवांस्तथापि । रक्तान्तसुस्निग्धविशालदीर्घ सुव्यक्तशुक्लासितपक्ष्मलाक्षः* ॥ अल्पव्याहारक्रोधपानाशनेर्ष्यः प्राज्यायुर्वित्तोदीर्घदर्शीवदान्यः । श्राद्धीगंभीरःस्थूललक्ष्यः क्षमावानार्योनिद्रालुर्दीर्घसूत्रीकृतज्ञः ॥ ऋजुर्विपश्चित्सुभगः सलज्जोभक्तोगुरूणां स्थिरसौहृदश्च । स्वप्नेसपद्मान्सविहंगमालांस्तोयाशयान्पश्यतितोयदांश्च ॥ ब्रह्मरुद्रेंद्रवरुणताक्ष्यर्हंसगजाधिपैः । श्लेष्मप्रकृतयस्तुल्यास्तथासिंहाऽश्वगोवृषैः ॥

अर्थ—कफ सौम्य है इसी सें कफप्रकृतिवाला मनुष्यभी सौम्य होता है, इस की संधी, हड्डी और मांस परस्पर मिले हुए स्निग्ध और गूढ़ होते हैं। भूख, प्यास, दुःख, क्लेश, आदि धर्मों सें तापित (दुःखी) नहीं होवे, उत्तम बुद्धि होती है तथा सत्वप्रधान और सत्य वचन का पालन कर्त्ता होता है, प्रियंगुपुष्प, दूध, मूँज, शस्त्र, गोरोचन, कमल और सुवर्णकासा देहका वर्ण होता है, हाथ लम्बे होते हैं, छाती विशाल और पुष्ट होती है, ललाट विस्तीर्ण होता है; घुघरारे, कारे और लम्बे बाल होते हैं, कोमल अङ्ग और सर्व देहके अवयव सुडोल और दिसनोंट होते हैं; ओज, रति (स्त्री संग) रस, शुक्र पुत्र और भृत्य ये अधिक होते हैं, धर्मात्मा होता है, अप्रिय वचन कदाचित् नहीं बोले, किसीको प्रतीत नहो ऐसी रीति सें शत्रुके प्रति बहुकालपर्यंत वैरभाव रखता है, मतवारे हाथीकासा गमन, मेघकी सी घुमडन, समुद्रकी सी गर्जना, मृदंग और सिंहकीसी गर्जनाके स-

* अव्याहारक्रोधपानाशनेर्ष्यः प्रज्ञायुक्तोदीर्घदर्शीवदान्यः । हृद्गंभीरः स्थूललक्ष्यः क्षमावान् आर्योनिद्रालब्धवित्तःकृतज्ञः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दृश शब्द होता है, स्मृतिवान् (सब आगे पीछेकी बातको स्मरण रखने वाला) श्रेष्ठ उद्योगवाला और विनयवाला होता है, बालकपनमेंभी बहुत नहीं रोवे. और न बहुत लोलुप होता है; कडुआ, कषेला, चरपरा, गरम, रूखा और थोडा ऐसा भोजन मिलनेपरभी बलवान् होवे, स्निग्ध, विशाल, लम्बे, स्पष्ट, सपेद और काली वन्नीवाले तथा जिनके प्रांत लाल हो ऐसे नेत्र होते हैं, अल्प है भाषण, क्रोध, पीना, भोजन और ईर्ष्या अथवा [ईहा] देहकी चेष्टा जिसकी, दीर्घ है आयु और धन जिसके तथा दीर्घदर्शी (आगे होने वाले कार्यको प्रथमही विचार करने वाला) मनोहर बोलने वाला, दान आदिमें श्रद्धावाला, गंभीर, बहुत देनेवाला, क्षमावान्, आर्य (सज्जन) बहुत सोने वाला, दीर्घसूत्री (जो कार्य जल्दी करनेका हो उसके करनेमें देर कर देवे) और कृतज्ञ होता है ।

जिसका चित्त कुटिल न हो, और पण्डित हो, सबोंको प्रिय और लज्जावान्, माता पिता गुरु आदिकी सेवा करने वाला, तथा दृढ सौहृद (मित्रता) वाला होता है, तथा कफ प्रकृतिवाला मनुष्य सपनेमें कमल और (चक्रवाकादि) पक्षियोंकी पंक्ति सहित जलाशय (तालाव, पुष्करणी) आदिको और बद्दलोंको देखे है । ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, गरुड, हंस ऐरावत-हाथी तथा सिंह, घोडा, गौ और बैल इनकीसी चेष्टा रूप, स्वभाव, स्वरवाले होते हैं, ये लक्षण कफ प्रकृतिवाले मनुष्यके कहे हैं ।

द्वंद्वजऔरसन्निपातजप्रकृति ।

द्वयोर्वातिसृणांवापि प्रकृतीनांतुलक्षणैः ।
ज्ञात्वासंसर्गजावैद्यैः प्रकृतीरभिनिर्दिशेत् ॥

अर्थ–वैद्योंको दो दोषोंकी तथा तीन दोषोंकी प्रकृतियोंके लक्षणों करके द्वंद्वज, और सन्निपातज प्रकृति जानना, अर्थात् जिस मनुष्यमें वात पित्त, वा वात कफ वा पित्त कफके लक्षण मिलते हों उसको द्वंद्वज प्रकृति कहनी । और जिसमें वात, पित्त, कफ तीनोंके लक्षण पाए जावें उसकी सन्निपात प्रकृति कहनी चाहिये ।

वेप्रकृतिकेभावपलटतेनहीं ।

प्रकोपोवान्यभावोवा क्षयोवानोपजायते ।
प्रकृतीनांस्वभावेनजायतेतुगतायुषः ॥

अर्थ–पूर्वोक्त प्रकृतिके स्वभाव करके प्रकोप, विकार, और क्षय ए होते नहीं । परंतु गतायु मनुष्य (अर्थात् मरने वाला मनुष्य) जब होता है, उस कालमें प्रकृति प्रबल होकर स्वभाव पलट जाता है । अर्थात् मरणवाले मनुष्यकी प्रकृति पलट जाती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिष्य–वातादि प्रकृतिके दोष इस प्राणीको पीडा क्यों नहीं देते।

गुरु–विषजातोयथाकीटो नविषेणविहन्यते।
तद्वत्प्रकृतयोमर्त्यं शक्नुवन्तिनबाधितुम्॥

अर्थ–जैसे विष से उत्पन्न हुआ कीडा उस विष करके पीडित नहीं होता, उसी प्रकार प्रकृतिगत वातादि दोष, स्वजन्य मनुष्योंको विशेष बाधा नहीं करते। किंतु हाथपैरका फटना आदि विकार करके अल्प बाधा करते हैं।

इस जगे यह औरभी जानना चाहिये कि केवल एक दोष प्रकृतिवाले मनुष्य सदैव रोगाक्रांत रहतेहैं, क्योंकि एकदोषका आधिक्य देहमें सदैव विशेष रहता है, और जो द्विदोषप्रकृतिवालेहैं, वो सत्वादि गुणोंके मिश्रित विकार करके रोगवान् भी आरोग्य कहलातेहैं. जैसे भूख प्यास आदि यद्यपि रोगहैं परंतु उन्होंकी रोगोंमें गणना नहीं है.

मतान्तर कहतेहैं।

प्रकृतिमिहनराणां भौतिकीं केचिदाहुः
पवनदहनतोयैः कीर्तितास्तास्तु तिस्रः।
स्थिरविपुलशरीरः पार्थिवश्च क्षमावान्
शुचिरथ चिरजीवी नाभसः खैर्महद्भिः॥

अर्थ–कोई आचार्य इसप्रकार कहते हैं कि, मनुष्यकी प्रकृति पंचमहाभूतोंकरके बनी हुई है; तिनमें वात, पित्त और कफ इन करके (पवनवात, दहनपित्त और तोयकहिये कफ) ये तीन प्रकारकी कहआएहैं और जिसका देह स्थिर, पुष्ट और जो व क्षमावान् हो, उसकी पार्थिव अर्थात् पृथ्वीसंबंधी प्रकृति जाननी। तथा जो पवित्र हो बहुतकालपर्यंत जीवे उसकी आकाश प्रकृति जाननी इसप्रकार पंचमहाभूतात्मक प्रकृति कही है।वो प्रकृति एक,दो, तीन और चार भूतोंके संबंध करके अनेक प्रकारकी होती है। जैसे एक एक भूतोंके संबंधसे पांचप्रकारकी; दोदो भूतोंके संबंधसे दश प्रकारकी, ऐसे प्रस्तार करनेसे अनेक प्रकारकी होतीहै * उसीप्रकार सतोगुण, रजोगुण, और तमोगुण के भेदसें सात प्रकृति होती है, तथा नागार्जुन आ-

---

* उक्तंच. एकैकेनवदंतिपंचदशतुद्वाभ्यांत्रिभिस्तावती
भूतैः पंचचतुर्भिरेवभिषजस्त्वेकांसमस्तैरपि।
एकात्रिंशकमत्रभूमिसलिलस्वाहाप्रियस्पर्शना-
काशैश्चप्रकृतीगुणैरपिपुनः प्राहुः स्म सप्तापरे॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चार्य कहता है कि, सात प्रकृति दोषों करके और सातही प्रकृति सत्वादि गुण करके होती हैं । उसीप्रकार जाति, कुल, देश, काल, अवस्था, बल, और आत्मसंश्रय प्रकृति करके सात प्रकारकी प्रकृति होती है । क्योंकि पुरुषोंमें जात्यादि भाव विशेष परस्पर विलक्षण दीखते हैं. इन्ही सत्वादि असंख्य भेदवशसे और रूप, स्वर, चरित, अनुकरण (अनूकशब्दवाच्य) भी असंख्य भेदवान् होता है. सत्वादि आवेश तो अनेक जन्माभ्यास वासना करके प्रगट होता है, इसीसें देव, मानुष, तिर्यक्, प्रेत और नारकी जीवोंका अनुकरण पुरुषमें उन्हीं उन्हीं के लक्षणों से जानना चाहिये । उनके लक्षण आगे कहते हैं ।

ब्राह्मकायकेलक्षण ।

शौचमास्तिक्यमभ्यासोवेदेषुगुरुपूजनम् ।
प्रियातिथित्वमिज्याचब्राह्मकायस्यलक्षणम् ॥

अर्थ–पवित्रता, परलोक और ईश्वरमें आस्तिक्यबुद्धि, वेदोंमें अभ्यास, गुरु (माता, पिता, आचार्य आदि) का पूजन, सत्कर्मका आचरण, अभ्यागतमें भक्ति, क्रिया (यागादि) में प्रीति, इत्यादि लक्षण निरंतर जिसके शरीरमें रहते हो उसकी ब्रह्मकाय जाननी ।

माहेन्द्रकायकेलक्षण ।

माहात्म्यंशौर्यमाज्ञाचसततंशास्त्रबुद्धयः ।
भृत्यानांभरणंचापिमाहेन्द्रंकायलक्षणम् ॥

अर्थ–बडेप्पन, शूरवीरता, आज्ञाशक्ति, शास्त्राभ्यास, सेवकोंका पोषण, इत्यादि लक्षण निरंतर जिसके देहमें रहते हो उसकी माहेन्द्रकाय जाननी ।

वरुणकायकेलक्षण ।

शीतसेवासहिष्णुत्वंपैङ्गल्यंहरिकेशता ।
प्रियवादित्वमित्येतद्वारुणंकायलक्षणम् ॥

अर्थ–शीतपदार्थ में प्रीत, सहनशीलता, पीले नेत्र, कपिश (किसमिसी) वर्ण केश हो, और मधुर भाषण इत्यादि लक्षण करके युक्तहो उसकी वरुणकाय जाननी ।

कुबेरकायकेलक्षण ।

मध्यस्थतासहिष्णुत्वमर्थस्यागमसंचयौ ।
महाप्रसवशक्तिश्चकौबेरंकायलक्षणम् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–मध्यस्थपना, सहनशीलता, धनका आना और संचय करना, तथा प्रबल प्रजोत्पादन की शक्ति, ए लक्षण जिस्में होवे उसकी कुबेरकाय जाननी।

गांधर्वकायकेलक्षण।

गंधमाल्यप्रियत्वंचनृत्यवादित्रकामिता।
विहारशीलताचैवगांधर्वकायलक्षणम्॥

अर्थ–जिसको गंध (चन्दन अतर आदि) फूलमाला, नाच, गाना बाजोंका बजाने आदि प्रिय और इनकी इच्छारहे, तथा विहार करनेका जिस्का स्वभाव होय, वो गंधर्वकायावाला प्राणीहै, ऐसाजानना.

यमकायकेलक्षण।

प्राप्तकारीदृढोत्थानोनिर्भयः स्मृतिमान्शुचिः।
रागमोहभयद्वेषैर्वर्जितोयामसत्ववान्॥

अर्थ–जो यथार्थ कर्मका करनेवाला,आरम्भ करेहुए कर्मको समाप्ति करनेवाला, भयरहित, स्मृतिमान्, पवित्र, तथा रागद्वेष, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या आदि करके जो वर्जितहो उसको यमशरीरयुक्त जानना।

ऋषिकायलक्षण।

जपव्रतब्रह्मचर्यहोमाध्ययनसेवनम्।
ज्ञानविज्ञानसहितं ऋषिसत्वंविदुर्नरम्॥
सप्तैतेसात्विकाःकाया राजसांस्तुनिबोधमे।

अर्थ–जप, व्रत, ब्रह्मचर्य, होम, पढ़ना, पढ़ाना, तथा ज्ञान, विज्ञान करके युक्त इन लक्षणों से ऋषिकायावान् मनुष्यको जानना। इस प्रकार ब्रह्मकायसे लेकर ऋषिकायपर्यंत सात देह सात्त्विकी कही हैं। अब राजसी कहते हैं।

आसुरकायकेलक्षण।

ऐश्वर्यवन्तंरौद्रंचशूरंचण्डमसूयकम्।
एकाशिनंचौदरिकमासुरंसत्वमीदृशम्॥

अर्थ–ऐश्वर्यवान्, भयानक, शूर, अत्यंत क्रोधी, परायेगुणोंकी निंदा करनेवाला, अकेला भोजनकर्त्ता ऐसा जिस्का स्वभाव, भक्ष्याभक्ष्य का खानेवाला, गयदास औदरिकं के स्थानमें [औपधिकम्] ऐसा कहकर कपट करता ऐसा अर्थ करता है, अथवा उपाधिकर्त्ता हो, इस प्रकार असुरकाययुक्त मनुष्य जानना।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सर्पकायलक्षण ।

तीक्ष्णमायासिनंभीरुंचंडंमायान्वितंतथा ।
विहाराचारचपलंसर्पसत्वंविदुर्नरम् ॥

अर्थ–जो तीक्ष्णस्वभाव और तीव्रवेगवान्हो, डरपनेवाला और क्रोधी होकर अत्यंत शूर, अथवा [भीरु] कहिये अक्रोधी, मायावी, जिसके आहार और आचार अत्यंत चपलहो, उस पुरुषकी सर्पदेह जाननी ।

पक्षिकायकेलक्षण ।

प्रवृद्धकामसेवीचाप्यजस्राहारएववा ।
अमर्षणोनवस्थायीशाकुनंकायलक्षणम् ।

अर्थ–जो मनुष्य प्रबलकामसेवी हो, तथा स्वभाव करके निरन्तर भोजन करने वाला, क्रोधी, एकस्थल में क्षणमात्र भी न ठहरने वाला, ए पक्षीदेहवान् के लक्षण हैं ।

राक्षसकायकेलक्षण ।

एकांतग्राहितारौद्राप्रकृतिर्धर्मबाह्यता ।
भृशमात्रंतमश्चापिराक्षसंकायलक्षणम् ।

अर्थ–एकांत स्थलमें रहने वाला, उग्रस्वभाव, धर्मका निंदक, अत्यन्ततामषी, इत्यादि राक्षसकायाके लक्षण जानने ।

पिशाचकायाकेलक्षण ।

उच्छिष्टाहारतातैक्ष्ण्यंसहसाप्रियतातथा ।
स्त्रीलोलुपत्वंनैर्लज्ज्यंपैशाचंकायलक्षणम् ।

अर्थ–उच्छिष्ट भक्षण, शास्त्रविरुद्ध कर्ममें प्रीति, तीक्ष्णस्वभाव, स्त्रीविषयमें लंपट, निर्लज्जता, इत्यादि लक्षणोंकरके जो युक्तहो उसको पिशाचकाय जानना ।

प्रेतकायाकेलक्षण ।

असंविभागमलसंदुःखशीलमसूयकम् ।
लोलुपंचाप्यदातारं प्रेतसत्वंविदुर्नरम् ॥
षडेतेराजसाःकाया स्तामसांस्तुनिबोधमे ।

अर्थ–जो कार्य और अकार्य के विचार करके शून्यहो, आलसी, दुःखशील,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निंदक, लोभी, और कृपणहो, वो प्रेतसत्व जानना। इसप्रकार राजसी छः प्रकार-की काया कही है। अब तामसी कायाओंको कहते हैं.

पशुकायकेलक्षण।

दुर्मेधस्त्वंमन्दताचस्वप्नेमैथुनमिच्छाति।
निराकरिष्णुताचैवविज्ञेयाःपाशवोगुणाः॥

अर्थ–मूर्खता, सर्व कार्य विषयमें मंदता, सोते में मैथुनका अनुभव और किसी कार्यको न करना, इत्यादि पशुदेह के गुण जानने।

मत्स्यकायकेलक्षण।

अनवस्थिततामौर्ख्यंभीरुत्वंसलिलार्थिता।
परस्परामिमर्शश्चमत्स्यसत्वस्यलक्षणम्॥

अर्थ–सर्व कार्यमें अव्यवस्थितता, मूर्खता, डरपना, सर्वकाल में जलसें प्रीति और परस्पर द्वेष, ए मत्स्यकाय अर्थात् मछलीकी देहवाले पुरुषके लक्षण हैं।

वानस्पत्यकायकेलक्षण।

एकस्थानेरतिर्नैत्यमाहारेकेवलेरतः।
वानस्पत्येनरः सत्वेधर्मकामार्थवर्जितः॥

अर्थ–एकही स्थानमें प्रीति, सर्वकाल भोजन करनेमें रुचि, तथा धर्म, अर्थ, काम इनकरके वर्जित हो, उसको वनस्पति (वृक्ष) की प्रकृतिवाला जानना।

इत्येतास्त्रिविधाःकायाःप्रोक्तावैतामसास्तथा।
कायानांप्रकृतीर्ज्ञात्वात्वनुरूपांक्रियांचरेत्॥

अर्थ–इसप्रकार त्रिविध तामसी प्रकृति कही है, वैद्यको उचित है कि पूर्वोक्त देहोंकी प्रकृति जानकर उसके अनुरूप चिकित्सा करे। अर्थात् प्रथम वैद्यको रोगीकी कायाका विचार करना चाहिये कि, इस रोगी की वात, पित्त और कफ से जो सातप्रकारकी कही है उनमें सै कौनसी प्रकृति है। फिर ब्राह्मकाया आदि जो सात्विकी सात प्रकृति और आसुरी आदि छः राजसी प्रकृति, तथा पशुआदि तीन तामसी प्रकृतीओंका विचार करके पश्चात् चिकित्सा करनी चाहिये इसमें औरभी प्रमाण देते हैं।

महाप्रकृतयस्त्वेतारजःसत्वतमःकृताः।
प्रोक्तालक्षणतः सम्यग्भिषक्ताश्चविभावयेत्॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–ए सत्व, रज और तमोगुणोंकी करी महाप्रकृति, लक्षण करके उत्तम प्रकार सें कहीहै । इनका विचार वैद्योंको भले प्रकार करके पश्चात् चिकित्सा कर्त्तव्यहै । इस प्रकार वातादि प्रकृति और सत्वादि प्रकृतियोंको कहकर इन दोनोंके ज्ञानार्थ यह श्लोक कहते हैं.

आयुकाज्ञान ।

वयस्त्वाषोडशाद्बालं तत्रधात्विन्द्रियौजसाम् ।
वृद्धिरासप्ततेर्मध्यं तत्रावृद्धिः परंक्षयः ॥

अर्थ–कालकृत शरीरकी अवस्थाको (वय) कहते हैं । उस्के तीन भेदहैं, १ बाल २ मध्य ३ वृद्ध । इन्होंमें जन्मसै लेकर १६ वर्षपर्यंत अवस्था को बाल कहते हैं, उस बाल अवस्थाकेभी तीनभेद हैं, एक तो जिसमें बालक केवल दूधही पीताहै; दूसरी वह है कि, जिसमें दूध और अन्न दोनों सेवन करे; तीसरी बाल अवस्था का भेद वह है कि, जिस्में दूधको छोड केवल अन्नही भक्षण करता है; इन तीनों (क्षीर, क्षीरान्न, और अन्नवृत्तिवाली) बाल्यअवस्थाओंमें रसादि धातु, नेत्र आदि इन्द्री, तथा सर्वधातुओंके पोषण करता ओजकी वृद्धि होतीहै । और बाल्य अवस्थामें कफकी अधिकवृद्धि रहनेसे बालक का देह सचिक्कण, नम्र, सुकुमार, अल्पक्रोध और सुंदर रहता है; तथा सोलह वर्षसे लेकर ६८ वर्ष तक मध्य अवस्था कहातीहै । इस मध्यअवस्था केभी तीनभेदहैं; १ यौवन २ संपूर्ण और ३ अपरिहानि; इस मध्यअवस्थामें पित्तकी वृद्धि रहतीहै; इसीसे जठराग्निका प्रबल होना, संतानकी उत्पत्ति और पराक्रमकी अधिकता होती है. तहां सोलहसे लेकर तीस वर्षपर्यंत यौवनअवस्था कहाती है; और तीससे लेकर चालीसपर्यंत अवस्थाको संपूर्णता कहते हैं; इसमें सर्व धातु, इन्द्री, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, स्मरण, वचन, विज्ञान और प्रेमआदिकी संपूर्णता रहती है । इसके उपरांत अर्थात् चालीसवर्षके उपरांत अवस्थाको अपरहानि कहते हैं. इस मध्यअवस्थामें धातु, इन्द्री आदिकी वृद्धि नहीं होती किंतु ज्योंके त्यों रहते हैं; इस सत्तर वर्षकी अवस्थासे जो शेष अवस्था बाकी है उस अवस्थाको क्षयअवस्था कहते हैं. इसमें धातु, इन्द्री और ओजका क्रम से क्षय होता है; तथा बल, वीर्य,पुरुषार्थ, वचन, विज्ञान, स्मरण, आदिकीभी क्षीणता होती है; तथा गुजलटका पडना, बालोंका सपेद होना, श्वास, खांसी, मंदाग्नि आदिके व्याप्तहोनेसे जैसे पुराना भवन वर्षाके होनेसें गिरताहै, ऐसे रोगरूप वर्षासें दिनप्रतिदिन यह वृद्धदेह क्षीण होता है । इस वृद्धावस्थामें वात प्रबल होती है, इसीसे बलसिथिल, मांस, संधि, हड्डी, त्वचा और पुरुषार्थ ए नष्ट होते हैं । तथा देहमें कंप, कंठमें कफ, बोलना, नेत्र कान आदिमें मैलका निकलना होताहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सुखायुकेलक्षण ।

स्वंस्वंहस्तत्रयंसार्द्धंवपुःपात्रंसुखायुषोः ।

अर्थ–अपने अपने हाथोंसैं साढ़ेतीन हाथका लंबा देह उत्तम आयु (उमर) वालेका होताहै. ।

नचयद्युक्तमुद्दिक्तैरष्टाभिर्निन्दितैर्नृजैः ।
अरोमशासितस्थूलदीर्घत्वैःसविपर्ययैः ॥

अर्थ–पूर्वोक्त साढ़ेतीनहस्त परिमित भी देह इन निंदित अपने आठ कारणो की आधिक्यता करके शुभ नहीं है । उन आठ कारणोंको कहतेहैं कि, जिस्की देहमें रोम (वाल) रहितहो, उसीप्रकार जिस्की. देहमें अधिकरोमहोवे, जो अत्यंत काला होय, और जो अत्यंत गौर होवे, जो अत्यंत मोटा हो, और जो अत्यंत पतला हो; उसी प्रकार जो अत्यंत लंबाहो, और जो अत्यंत ठिगना हो, ए आठ कारण सुखायु अर्थात् दीर्घ उमरवालेके नहीं होते, किंतु अल्पायु और मध्यमायु वालेके जानना ।

दीर्घायुकेलक्षण ।

सुस्निग्धामृदवःसूक्ष्मानैकमूलाःस्थिराःकचाः । ललाटमुन्नतंश्लिष्टं शंखमर्धेन्दुसन्निभम् । कर्णौनीचोन्नतौपश्चान्महान्तौश्लिष्टमांसलौ ॥ नेत्रेव्यक्तासितासितेसुबद्धेघनपक्ष्मणी । उन्नतात्रामहोच्छ्वासापीनर्जुनासिकासमा । ओष्ठौरक्तावनुद्वृत्तौमहत्यौनोल्बणेहनू । महदास्यंघनादन्ताःस्निग्धाःश्लक्ष्णाःसिताःसमाः । जिव्हारक्ताऽऽयतात न्वीमांसलंचिबुकंमहत् । ग्रीवाऽह्रस्वाघनावृत्तास्कंधावुन्नतपीवरौ । उदरंदक्षिणावर्तंगूढनाभिसमुन्नतम् । तनुरक्तोन्नतनखंस्निग्धमातामंसलम् । दीर्घाच्छिद्राङ्गुलिमहत्पाणिपादंप्रतिष्ठितम् ॥

अर्थ–जिसके चिकने, नरम, पतले, अनेक जडवाले, (एकजडमेंसै दो तीन न ऊगेहो) और मजबूत ऐसे केश (वाल) उत्तम होते हैं । अर्थात् दीर्घावस्था वालेके होते हैं । जिस्का ललाट ऊंचा [सुढार] और स्पष्ट तथा अर्धचंद्राकार है कनपटी जिस्में, और नीचेसैं छोटे, और ऊपर सैं बडे, पीछेसैं विस्तृत और रमणीक तथा पुष्ट ऐसे कान उत्तम होते हैं । प्रकाशित है सपेद और काले भाग जिन्होंमें, (अर्थात् काले भाग कालेहो और सपेद भाग सपेदहो किंतु मिलाहुआ वर्ण न हो) सु-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बद्ध और घन है. पलकों की वन्नी जिन्हों में ऐसे नेत्र उत्तम होते हैं । जिसका अग्रभाग ऊँचा और महान् उच्छ्वास जिस्का तथा पुष्ट सरल और समान ऐसी नासिका उत्तम होती है । लाल और बाहर की तरफ निकलेहुए ओष्ठ (होठ) उत्तम होते हैं । किंतु बडे होठ उत्तम नहीं होते; सुन्दर ठोडी उत्तम होती है। बड़ामुख, मिलेहुए चिकने और सुन्दर सपेद तथा समान दांत उत्तम होते हैं । लाल लम्बी और पतली जीभ शुभ होती है । मांसल और बडी चिबुक (ठोडीसे ऊपर और अधरोंसे नीचेका भाग) शुभ होता है । छोटी घन और गोल ग्रीवा (नाड) ऊंचे और पुष्ट कंधे शुभ होते हैं । दक्षिणावर्त्त और गम्भीरनाभि जिसमें तथा किंचित् ऊंचा ऐसा उदर शुभ होता है। पतले ऊंचे और लाल ऐसे नख जिन्हों में तथा चिकने लाल और मांसदार ऐसे हाथ पैर शुभ होतेहैं । तथा लंबी छिद्ररहित परस्पर मिली हुई उंगली दीर्घायुवाले पुरुषकी होती है ।

गूढवंशंबृहत्पृष्ठं निगूढाः संधयोदृढाः ।
धीरःस्वरोऽनुनादीचवर्णः स्निग्धःस्थिरप्रभः ।
स्वभावजंस्थिरं सत्वमविकारिविपत्स्वपि ॥

अर्थ–छिपाहुआ है पृष्ठका वांस जिसमें और विशाल पीठ शुभ होती है । भीतर छीपी और दृढ (टूटेनहीं.) ऐसी संधीहो कृपणता रहित और सुन्दर शब्द तथा मेघकीसी घुमडनकासा प्रतिध्वनि करता वचन शुभ होता है सचिक्कण और स्थिर है कांति जिसकी ऐसा देहका वर्ण शुभ होताहै । स्वभाव से प्रगट और पलटे नहीं. तथा विपत्तिमें भी क्षोभित न हो ऐसी प्रकृति उत्तम होती है ।

उत्तरोत्तरसुक्षेत्रंवपुर्गर्भादिनीरुजम् ।
आयामज्ञानविज्ञानैर्वर्धमानंशनैःशुभम् ॥

अर्थ–उत्तरोत्तर सुक्षेत्र वपु शुभ होता है । जैसे अपने अपने हाथोंसे ३॥ हाथ का लंबा देह शुभ होता है; तथा ललाट आदि देहके जो लक्षण कहे हैं उन्हों से युक्त देह शुभतर होताहै, और यथोक्त सत्व (प्रकृति) के लक्षण कहेहैं जैसे [स्वभावजंस्थिरंसत्वं] इत्यादि गुणयुक्त देह शुभतम होता है, और बाल यौवनआदि अवस्था जिसकी रोगरहितहो ऐसा देह शुभ होता है, तथा देहका बढना, और ज्ञान (लौकिकव्यवहार) विज्ञान (विशेषज्ञान जो शास्त्राभ्याससे हुआ हो) ए सब जिस्के क्रमसे धीरे २ बढेहों ऐसा देह शुभ होता है अर्थात् ए लक्षण दीर्घायु वालेके जानने ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इतिसर्वगुणोपेते शरीरेशरदांशतम् ।
आयुरैश्वर्यमिष्टाश्चसर्वेभावाः प्रतिष्ठिताः ॥

अर्थ–इसप्रकार पूर्वोक्त सर्वगुण युक्त देहकी सौ वर्षकी आयु होती है तथा ऐश्वर्य और जो शुभवस्तू होती है वो सब इसदेहमें सौवर्ष पर्यंत रहती है।

इसप्रकारदेहकेउत्तमलक्षणकहकर
बलप्रमाणजाननेकेअर्थकहते हैं।

त्वग्रक्तादीनिसत्वांतान्यग्राण्यष्टौ यथोत्तरम् ।
बलप्रमाणज्ञानार्थं साराण्युक्तानि देहिनाम् ॥
सारैरुपेतः सर्वैःस्यात्परं गौरवसंयुतः ।
सर्वारंभेषुचाशावान्सहिष्णुः सन्मतिःस्थिरः ॥

अर्थ–त्वचा, रुधिरसे लेकर सत्वपर्यंत जो ए आठ सार हैं सो क्रमसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं, अर्थात् त्वक्सारसे रक्तसार. रक्तसारसे मांससार, मांससारसे मेदसार, मेदसारसे, अस्थिसार, अस्थिसारसे मज्जसार, मज्जसारसे शुक्रसार, और शुक्रसारसे श्रेष्ठ सत्वसारवान् मनुष्य होता है, । ये सार मनुष्यों के बल प्रमाण जाननेके अर्थ कहे हैं इन सर्वसारोंकरके युक्त पुरुष अत्यंत गौरवसंयुक्त होता है । और सर्व आरंभ कार्य में आशावान् होता है, सहनशील, श्रेष्ठबुद्धिवाला और कर्त्तव्यकार्योंमें स्थिर बुद्धिवाला होता है । *

---

* आठप्रकारकेसारोंकेलक्षणचरकमुनिने अपनीसंहितामेंइसप्रकार लिखेहैं–

त्वग्रक्तमांस मेदोस्थिमज्जशुक्रसत्वानि । तत्रस्निग्धश्लक्ष्णमृदुप्रसन्नसूक्ष्माणांगंभीर सुकुमारलोमशप्रभत्वंत्वक्साराणांसारता । सुखसौभाग्यैश्वर्योपभोगबुद्धिविद्यारोग्यप्रहर्षाण्यायुष्याणिपरमाचष्टे ।

कर्णाक्षिमुखजिव्हानासौष्ठपाणिपादतलनखललाटमेहनंस्निग्धंरक्तं श्रीमत्भ्राजिष्णुरक्तसाराणांसारता । सुखमुदग्रतांमेधांमनस्वित्वंसौकुमार्यमनतिबलमक्लेशसहिष्णुतांचाचष्टे ।

शंखललाटकृकाटिकाऽक्षिगण्डहनुग्रीवास्कंधोदरवक्षःकक्ष्यापाणिपादसन्धयः स्थिरगुरुमांसोपचितामांससाराणांसारता । क्षमाधृतिमलौल्यंवित्तंविद्यांसुखमार्जवमारोग्यंबलमायुश्चदीर्घमाचष्टे ।

वर्णस्वरनेत्रकेशलोमनखदन्तोष्ठमूत्रपुरीषेषुविशेषेणस्नेहो मेदःसाराणांसारता । वित्तैश्वर्यसुखोपभोगप्रदान्यत्यार्जवंसुकुमारोपचारतांचाचष्टे ।

पार्ष्णिगुल्फजानूरुजत्रुचिबुकशिरःपर्वस्थूलास्थिनखदन्ताश्चास्थिसाराः । तेमहोत्साहाः क्रियावंतः क्लेशसहाः सारास्थिरशरीराभवंत्यायुष्मंतश्च ।

तन्वङ्गाबलवन्तश्चस्निग्धवर्णस्वराः स्थूलदीर्घवृत्तसन्धयश्च मज्जसाराः तेदीर्घायुषोबलवंतः श्रुतविज्ञानावित्तापन्नाः सन्मानभाजनाश्च सदाभवन्ति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सत्वादि तीनोंप्रकृतियोंको कौनसीरीतिसें सुख दुःखका अनुभव होताहै.

अनुत्सेकमदैन्यंचसुखंदुःखंचसेवते ।
सत्ववांस्तप्यमानस्तुराजसोनैवतामसः ॥

अर्थ–सतोगुणी मनुष्य अभिमानको परित्यागकर सुखका अनुभव करता है । और दीनताको त्यागकर दुःखका सेवन करते हैं । और राजसी पुरुष तप्यमान होकर अर्थात् हमहीं इससुखसैं सुखी हैं ऐसैं सुखका सेवन करे हैं । और अहंकार युक्त दुःखका सेवनकर्ता है, अर्थात् मैंही इस दुःखको भोगसकताहूं ।

सौम्याः सौम्यप्रेक्षिणः क्षीरचूर्णलेहनादेव प्रहर्षबहुलाः स्निग्धवृत्तसारसमसंहतशिखरदशनाः प्रसन्नस्निग्धवर्णस्वराभ्राजिष्णवो महास्फिजश्च शुक्रसाराः ॥ तेस्त्रियोपभोगाबलवन्तः सुखभोग्यवित्तैश्वर्यसमानाः फलभाजश्चभवन्ति ॥

स्मृतिमंतो भक्तिमंतः कृतज्ञाः प्राज्ञाः शुचयो महोत्साहा धीराः समरविक्रान्तयोधिनस्त्यक्तविषादाः स्ववस्थितगतिगंभीरबुद्धिचेष्टाः कल्याणाभिनिवेशिनश्चसत्वसाराः । तेषांस्वलक्षणैरेवगुणाव्याख्याताः ॥

तत्रसर्वैः सारैरुपेताः पुरुषाभवन्त्यतिबलाः ॥ परमगौरवयुक्ताः क्लेशसहाः सर्वारंभेष्वात्मनि जातप्रत्याशाः कल्याणाभिनिवेशिनः स्थिरसमाहितशरीराः सुसमाहितगतयः सानुनादगंभीरमहास्वराः सुखैश्वर्यवित्तोपभोगसन्मानभाजो मंदजरसो मंदविकाराः प्रायस्तुल्यगुणाविस्तीर्णापत्याश्चिरजीविनश्च भवंति । अतोविपरीतास्त्वसाराः ॥

देहका प्रमाणभी संग्रहमें लिखाहै.

स्वाङ्गुलैः पादाङ्गुष्ठप्रदेशिन्यौद्व्यङ्गुलायते । तिस्रोऽन्याः क्रमेणोत्तरोत्तरं पंचभागहीनास्तन्नखहीनावा । चतुरङ्गुलायताः पृथक् प्रपदपादतलपार्ष्णयः षट्पंचचतुरङ्गुलिविस्तृताः । चतुर्दशैवायामेन पादश्चतुर्दशैव परिणाहेन । तथा गुल्फौजंघामध्यंच । चतुरङ्गुलोत्सेधः पादः । अष्टादशायामाजंघाऊरुश्च । चतुरङ्गुलंजानु । त्रिंशदङ्गुलपरिणाहऊरुः । षडायामौ मुष्कमेढ्रावष्टपंच परिणाहौ । षोडशविस्ताराकटी पंचाशत्परिणाहा । दशाङ्गुलं बस्तिशिरः । द्वादशाङ्गुलमुदरम् । दशविस्तारं द्वादशायामं द्वादशोत्सेधं त्रिकम् । अष्टादशोत्सेधं पृष्ठम् । द्वादशकं स्तनान्तरम् । द्व्यङ्गुलः स्तनपर्यंतः । चतुर्विंशत्यङ्गुलविशालं द्वादशोत्सेधमुरः । द्व्यङ्गुलं हृदयम् । अष्टकौ स्कन्धौकक्षेच । षड्वांसौ । षोडशकौ प्रबाहू । पंचदशकौपाणी । दशाङ्गुलौ पाणी । तत्रापि पंचांगुलामध्यमा । ततोद्व्यङ्गुलहीने प्रदेशिन्यनामिके । सार्द्धत्र्यंङ्गुलौकनिष्ठाङ्गुष्ठौ । चतुरंगुलोत्सेधा द्वाविंशतिपरिणाहा शिरोधरा । द्वादशोत्सेधं चतुर्विंशतिपरिणाहमाननम् । पंचाङ्गुलमास्यम् । चतुरंगुलं पृथक्चिबुकोष्ठनासादृष्टयंतरकर्णललाटम् । शंखगंडाश्चतुरंगुलाः त्रिभागांगुलविस्तारौ नासापुटौ । द्व्यंगुलायतमंगुष्ठोदरविस्तृतं नेत्रम् । तत्रशुक्लतृतीयांशः कृष्णः । कृष्णनवमांशामसूरदलमात्रादृष्टिः । षडंगुलोत्सेधं द्वात्रिंशत्परिणाहं शिरः इति । सर्वपुनःशरीरमंगुलानि चतुराशीतिः । तदायामविस्तारसमं सममुच्यते । यथोक्तपरिमाणमिष्टम् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उसीप्रकार तामसी पुरुष अत्यंत मूढ होनेसैं न सुखका सेवन करे और न दुःखका सेवन, उसीप्रकार द्वंद्वप्रकृति वाला भी सुखदुःखका सेवन नहीं करे। समानप्रकृतिवाला सुखदुःखका सेवन अदीन होकर करे हैं।

आयुबढानेवालेकर्म।

दानशीलदयासत्यब्रह्मचर्यकृतज्ञताः।
रसायनानि मैत्रीचपुण्यायुर्वृद्धिकृद्गुणः॥
इतिश्रीसौश्रुतशारीरेचतुर्थोध्यायः॥ ४॥

अर्थ-दानशीलता, दया, सत्यता, ब्रह्मचर्य, कृतज्ञता, रसायन औषध, और सर्वप्राणियोंमें मित्रता इत्यादि गुण पुण्य और आयुके बढाने वाले हैं। अर्थात् इनमें कोई पुण्यको बढाता हैं. और कोई वस्तु आयुको बढाती है।

इतिश्रीआयुर्वेदोद्धारेबृहन्निघंटुरत्नाकरेसप्तमस्तरङ्गः॥ ७॥

पंचमोध्यायः।

गर्भवर्णनकरनेकेअनन्तरगर्भमेंप्रगटहुएबालककेशरीरकेअवयवोंकीसंख्याकरणीउचितहै, अतएवउससंख्याकावर्णनकरतेहैं।

अथातः शरीरसंख्याव्याकरणंशारीरंव्याख्यास्यामः।

अर्थ-पंचमहाभूत शरीर समवायको शरीर कहते हैं.। उस शरीरके अवयवोंकी संख्या का विवरण है जिस शरीरमें उस शारीरकी हम व्याख्या करेंगे। तहां शरीरावयव संख्या विवरण प्रतिपादन की कामना करके शरीर शब्द के व्यपदेश्य करके उसीका क्रमसै वर्णन करते हैं।

शुक्रशोणितंगर्भाशयस्थमात्मप्रकृतिविकारसंमूर्च्छितं गर्भइत्युच्यते।

अर्थ-गर्भाशयमें स्थित जो शुक्रशोणित वो क्षेत्रज्ञ और प्रधान आदि आठ प्रकृति, तथा पंचभूत, ग्यारह इन्द्री, ए सोलह विकार इनसैं मिलकर गर्भसंज्ञाको प्राप्त होताहै. [इस करके योगियों का उपयोगी पंचविंशति कोष कहाहै.] उसीको वैद्योंका उपयोगी छः धातुवाला कोष है उसको कहते हैं।

तंचेतनावस्थितंवायुर्विभजति तेजएनंपचति आपःक्लेदयन्ति पृथ्वीसंहनयति आकाशंविवर्द्धयति एवंविवर्द्धितः सयदा हस्ताद्यङ्गैरुपेतस्तदाशरीरमितिसंज्ञांलभते॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–आयु प्रसवकालपर्यंत चेतनायुक्त जो गर्भ उसके दोष, धातु, मल, अंग, प्रत्यंग, इन्होंका विभाग करता है. । तदनंतर तेज उस गर्भका रूपांतर उत्पन्न करे है । गर्भके विभाग और परिणाम इनके करने वाला वायु और पित्त इसको सुखाता है । जब वात और पित्त (अग्नि) इसको सुखाते हैं तब जल फिर इस गर्भको-गीला कर देता है । जब जलसे गर्भ गीला हो जाताहै उसको पृथ्वी मूर्तिमान्करे है, तब उस गर्भकी शरीर संज्ञा होती है । और इस गर्भको आकाश बढाता है, इस प्रकार बढाहुआ गर्भ जब हस्तादि अंगों करके युक्त होता है तब शरीर संज्ञाको प्राप्त होता है. ।

तच्चषडङ्गं शाखाश्चतस्रोमध्यंपंचमंषष्ठंशिरइति ॥

अर्थ–उस शरीरके छः अंग हैं । हाथ पैर चार, मध्यम भाग पांचवा और मस्तक छठा अंग है. इसके उपरांत प्रत्यंगोंको कहते हैं.

प्रत्यङ्ग

मस्तकोदरपृष्ठनाभिललाटनासाचिबुकवस्तिग्रीवा इत्येताएकैकाः । कर्णनेत्रभ्रुवोंसगंडकक्षास्तनवृषण पार्श्वस्फिग्जानुबाहूरुप्रभृतयोद्वेद्वे । विंशतिरङ्गुलयः । स्रोतांसिवक्ष्यमाणानि एषप्रत्यङ्गविभागउक्तः ।

अर्थ–अब प्रत्यंगोंकी संख्या कहते हैं. तिनमें, मस्तक, पेट, पीठ, नाभि, ललाट, नासिका. ठोडी, बस्ती, नाड, ए अवयव एक एक हैं । तथा कान, नेत्र, भोंह, कंधे, गाल, कांख, स्तन, अंडकोश, कूख, स्फिक् (कूले) घोटू, हाथ, जांघ, होठ, सृक्कणी कहिये होठोकेप्रांत इत्यादि अवयव दो दो हैं । वीस उंगली, स्रोतस् आगे कहैंगे, यह प्रत्यंग विभाग कहा ।

त्वगादिकोंकीसंख्या ।

तस्यपुनः संख्यानं त्वचः कलाधातवोमलायकृत्प्लीहा नौफुप्फुसउन्दुकोहृदयामी आशयाअंत्राणिवृक्कोस्रोतांसिकण्डराजालानिकूर्चारज्जवः सेवन्यःसंघातासीमंती अस्थीनिसन्धयः स्नायवः पेश्योमर्माणिशिराधमन्यो योगवहानिस्रोतांसिच ।

अर्थ–उस गर्भके अंग प्रत्यंग इन करके जो शरीर बना उन अंगोंको कहतेहैं,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्वचा, कला, धातु, मल, दोष, कलेजा, प्लीहा, फुप्फुस, उंदुक, आशय आंतडी, वृक्क, स्रोतस, कंडरा, जाल, कूर्चा, रज्जू, सेवनी, संघात, सीमंती हड्डी, संधी, स्नायु, पेशी, मर्म, शिरा, धमनी तथा योगवहस्रोतस् कहिये धमनी, प्राण, उदक, अन्न, इनको वहने वाली स्रोतस्, ये २९ उनतीस अंग जानने, अब इनको विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं.

रक्तस्याधःक्रमात्परे । कफामपित्तेपक्वेति ।

अर्थ–आशयोंका वर्णन चतुर्थाध्यायमें कर आएहैं इसीसै इसजगे अर्थ नहीं लिखा है.

स्रोतसोंकोकहतेहैं ।

स्रोतांसिनासिकेकर्णौनेत्रेपाय्वास्यमेहनम् ।
स्तनौरक्तपथश्चेतिनारीणामधिकंत्रयम् ॥

अर्थ–कान, नेत्र, मुख, नाक, गुदा, मेद्र, इस प्रकार बहिर्मुख स्रोतस् (छिद्र) ए स्त्री पुरुषोंके समान हैं। तथापि स्त्रियोंके बहिर्मुख स्रोतस् तीन अधिकहैं; दो स्तनसंबंधी तथा तीसरा योनिसंबंधी आर्त्तवका वहने वाला स्रोतस् हैं। स्मरातपत्र योनिके तीसरे आवर्त्तमें है. इसका प्रमाण लिखते हैं.

विपुलपिप्पलपत्रसमाकृतेरवयवस्याशिरस्तलमाश्रितम् ।
सकलकामशिरामुखचुंबितंविमृदितंमदनातपवारणम् ॥

अर्थ–बड़ेपीपलके पत्तेकी सी आकृतीवाले अवयववाली जो योनि उसके मस्तकके आश्रय करके रहती हुई सर्वकामवाहिनी नाडी उनके मुखकरके चुंबित तथा मर्दित ऐसा मदनका छत्र है.

मतान्तरम् ।

तत्रकेचिदाहुः-शिराधमनीस्रोतसामविभागः शिराविकाराएव ।
धमन्यः स्रोतांसिचेति । तत्तुनसम्यक् अन्यान्येवहिस्रोतांसि ।
धमन्यश्चशिराभ्यःकस्माद्व्यंजनान्यत्वान्मूलसंनियमात् ।
कर्मवैशेष्यादागमाच्च केवलंतु परस्परसन्निकर्षात्सदृशागमकर्म
त्वात्सौक्ष्म्याच्च विभक्तकर्मणामप्यविभागइवकर्मसुभवति ।

अर्थ–कोई कोई आचार्य कहते हैं कि, शिरा, धमनी, और स्रोतस् इनमें कुछ भेद नहीं है, केवल धमनी तथा स्रोतस् शिराके रूपांतर मात्रहै। यह वार्त्ता वि-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शेष युक्तिसंगत नहींहै स्रोतस और धमनी शिरासैं पृथक्है । रूपभेद, मूलनिवेश-भेद और कार्यकारित्वभेद हेतु इन तीनोंके भिन्न भिन्न हैं केवल परस्पर सन्निकर्ष. सदृशकर्मकारित्व, सूक्ष्मभेदाश्रयत्व उसी प्रकार शास्त्रमें सदृशरूपवर्णनहेतु इन्होंका अभिन्न कहना अनुभूतसा होता है । वास्तवसैं विचारकर देखो तो इन प्रत्येकके कार्य अपने अपने अधीन हैं ।

स्रोतांसिसन्तिदेहेऽस्मिन्धमन्यश्चशिरायथा । तानिलसीकागर्भा णिकर्मकुर्वन्तिदैहिकम् ॥ मस्तिष्केनाभिरज्जौचनेत्रयोःपृष्ठमज्जनि । नखेषुकण्डरायांचनसन्त्यस्थन्युपास्थनि ॥ स्रोतसांनिखिलानांच परस्परसमागमात् । महास्रोतोद्वयंजातमधस्ताज्जत्रुणोश्चतत् ॥ शिरासङ्गमसंप्राप्तंस्वरसंतत्रनिक्षिपेत् । सरसःशैररक्तेनहृत्कोष्ठंच समागतः ॥ शोणितीभूयव्रजतिदेहमेतन्निरन्तरम् । सरसोदेहजंपूर्व पश्चाच्छोणिततांव्रजेत्॥ धराभ्यस्तान्याददेतपदार्थान्देहपोषकान्। ग्रहण्यादिभ्यआदायरसमाहारजंतथा ॥ शिरामार्गेणहृदयमानय न्तिनिरंतरम् । बलंपुष्टिंचलावण्यंदेहस्तन्नित्यमाव्रजेत् ॥

अर्थ–इसदेहमें स्रोतस् समूह, धमनी और शिराके सदृश एक प्रकारकी नाडी-विशेषको कहते हैं । इनके भीतर एक प्रकार का जलसंबंधी पदार्थ रहता है; उ-सको लसीका कहते हैं; ये देहको सर्व अंशमें रहकर दैहिक कार्योंका निर्वाह करेहैं, मस्तिष्क, नाभिरज्जु, नेत्र, पीठके वांसकी मज्जा, नख. कंडरा, हड्डी तथा उपा-स्थि इन सबजगे स्रोतोनाडी नहीं हैं ।

जितने स्रोत हैं सबके मिलनेसैं दो बडे स्रोत होगए हैं । ए दोनों महास्रोत जत्रुके नीचे शिरासंगम (जिसजगे शिराओंके गण मिलकर महाशिरारूपको प्राप्त हुए हैं) में मिलकर तहां आत्मगर्भस्थ रसको देते हैं, यह रस शिरामें स्थितरक्तके साथ मिलकर हृत्कोष्ठमें आता है । उसजगे रुधिरहोकर निरंतर इसदेहमें विचरे हैं, यहरस प्रथमदेहसे उत्पन्न होकर फिर रुधिरके भावको प्राप्त होता है.

स्रोतोनाडीगण धमनियोंमें रहने वाले रुधिरसैं, देहपोषणोपयोगी पदार्थ को आकर्षण करके देहको बढाते हैं और येही स्रोतोनाडीगण, ग्रहणी (क्षुद्रांत्रके अंश-विशेष) आदिसैं आहारजन्य रसको आकर्षण करके शिरामार्ग होकर हृदयमें प्राप्त करती है, इसीसें देहमें बल, पुष्टता, और लावण्यता की वृद्धि होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कण्डरा।

षोडशकण्डरास्तासांचतस्रःपादयोस्तावन्त्योहस्तग्रीवापृष्ठेषु।

अर्थ–कंडरा (मोटेस्नायु) सोलहहैं. तिनमें चारपैरोंमें है, चार हाथोंमें, चार नाडमें और चार पीठमें हैं.

अब हस्तादिगत कंडराओंके अग्रिमभागको कहते हैं।

तत्रहस्तपादगतानांकण्डराणांनखाग्रप्ररोहाः।
ग्रीवाहृदयनिबंधनीनामधोभागगतानामग्रे
बिबंश्रोण्यासहपृष्ठनिश्चलबंधंकुर्वतीनां
पृष्ठजानांचतसृणामधोभागगतानांबिंबंमण्डलं
आपाङ्गितम्बस्यमूर्धोरुवक्षोक्षिपिण्डादीनांच।

अर्थ–तिन कंडराओंमें हाथपैरमें गएहुए कंडरा उनके अग्रभाग नखाग्रहैं। तथा ग्रीवा और हृदय इनका बंधन करके अधोभागमें जानेवाले जो स्नायु हैं, उनके अग्रभागमें बिंब कहिये मंडल है। तथा श्रोणी कहिये कमर उसके साथ पृष्ठका बंधन करके अधोभागमें जाने वाली जो स्नायु उन्होंके अग्र उदक और कमर ए हैं, उसी प्रकार, मस्तक, उर वक्षस्थल तथा अक्षिपिंड इनके मंडल तथा आदिशब्दकरके स्तनपिंडोंके मंडल ए कंडरा (बडीस्नायु) ओंके अग्रिमभाग जानने।

अथजालानि।

मांसशिरास्नाय्वस्थिजालानिप्रत्येकं चत्वारिचत्वा
रितानिमणिबन्धगुल्फसंश्रितानिपरस्परनिबद्धानि
परस्परसंश्लिष्टानिपरस्परगवाक्षितानिचेतियैर्गवा
क्षितमिदंशरीरम्।

अर्थ–मांस, शिरा, स्नायु और हड्डी इनके जाल कहिये झरोखा के समान छिद्रयुक्तपदार्थ वे एक एक के चारचार हैं। उन्होंमें मांसके चार जाल एकएकमणिबंध (पहुँचों) में हैं, और एकएकगुल्फ (टकना) में है; उसीप्रकार शिराके, स्नायुके और हड्डियोंके जाल जानने चाहिये. इन चारोंप्रकारके चारचार जालसैं यह देहगवाक्षित (झरोखोंकेसदृशहोरहा) है। ए चारों प्रकारके जाले परस्पर बँधेहुए परस्पर मिलेहुए हैं। तात्पर्य यह है कि, मणिबंधमें एक मांसजाल, तथा एक शिराजाल, तथा एक स्नायुजाल और एक अस्थिजाल ऐसे चार जाल हैं। इसी प्रकार दूसरे मणिबंधमें और गुल्फमें जानो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कूर्च कहते हैं ।

षट्कूर्चास्तेहस्तपादग्रीवामेढ्रेषु ।

अर्थ–इसजगे कूर्चशब्द करके कूर्चाके समान तथा लाल, तेजस्वी पदार्थ, मांस, शिरा, स्नायु और हड्डियोंके जालकके विस्तारकरके प्रगटहुए जानने, तिनमें हाथ तथा पैर, इनमें चार और एक ग्रीवामें तथा एक शिश्नेंद्री में ऐसे छः हैं। कुशापुंजसदृश पदार्थको कूर्चा कहते हैं ।

रज्जू (बंधनी ।)

महत्योमांसरज्जवश्चतस्रः पृष्टवंशेउभयतः पेशी
बन्धनार्थबाह्येआभ्यन्तरेचद्वेद्वे ।

अर्थ–बडे मांसमय रस्सीसदृश चार पदार्थ हैं. वे पीठके वांसके दोनों तरफ हैं. इन्होंका कार्य पेशियों का बन्धन करना हैं, तिनमें दो भीतरके अंग में हैं, तथा दो बाहर हैं ।

अस्थ्नां संयोजिकाः शुभ्राः सौत्रिकारज्जवोमताः ।
काश्चित्स्थूलाःप्रशस्ताश्चदीर्घाबहुविधास्तथा ॥
मध्यकायेतथाबाह्वोः सक्थ्नोरेवचताः स्थिताः ।
अस्थीन्यभिनिबद्धानिस्वस्थानान्नचलंतिहि ॥

अर्थ–हड्डियों में परस्पर संयोजक, सपेदवर्ण, सूत्रमय पदार्थविशेष को रज्जू कहते हैं । कोई कोई रज्जू स्थूल तथा प्रशस्त और कोई दीर्घ इत्यादि अनेक प्रकारके हैं । मध्यदेह, दोनों भुजा और सक्थिद्वयों में सब रज्जू अवस्थित हैं । इन रज्जूओंसे बँधीहुई हड्डी संपूर्ण अपने अपने स्थानसे चलायमान नहीं होती है ।

पादाङ्गुलीनांपर्वास्थ्नांयोजिन्यस्ताः परस्परम् । अङ्गुल्यस्थ्नां तथासन्तिप्रपदास्थ्नांचयोजिकाः ॥ गुल्फास्थ्नांप्रपदास्थ्नांच गुल्फास्थ्नां चपरस्परम् । गुल्फसन्धेश्चजंघास्थ्नोजानुसन्धेस्त तः परम् ॥ तथावंक्षणसन्धेश्चरज्जवोविविधामताः ।

अर्थ–पैरकी उंगलियों के सब पोरुओं के मिलानेवाली अंगुल्यस्थि और प्रपदास्थि आदिके मिलानेवाली प्रपदास्थि और गुल्फास्थि आदिकी योजक, गुल्फा-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्थि आदिकी परस्पर संयोजक, गुल्फसंधिकी संयोजक जंघास्थि दोनोंकी परस्पर मिलाने वाली, जानुसंधिके मिलाने वाली और वंक्षणसंधिके संयोजक रज्जु-समूह एक एक सक्थी में रहते हैं। इसका तात्पर्यार्थ यह है कि जो उंगली की हड्डी के बंधन करनेवाली है वोही बंधनी पैरकी हड्डियों के बंधनकर्त्ता जाननी, अर्थात् अंगुलीकी हड्डियों के साथ पैरकी हड्डियोंको मिलाती है; इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना।

करांगुलीनांपर्वास्थांसंयोजिन्यापरस्परम् । अंगुल्यस्थांतथा संतिकरभास्थांचयोजिकाः ॥ तदस्थांमणिबन्धास्थांतेषांचापि परस्परम् । मणिबंधस्यसंधेश्चप्रकोष्ठास्थश्चयोजिकाः । कफोणेः स्कन्धसंधेश्चतथाप्यंसस्यरज्जवः । अंसजत्वस्थियोजिन्यउरोऽस्थिजत्रुयोजिकाः ॥

अर्थ—हाथकी उंगलियों के सब पोरुओं के परस्पर योजक अंगुल्यास्थि, तथा कर-भास्थि आदिके मिलाने वाली, करभास्थि और मणिबंधास्थि आदिकी संयोजक और मणिबंध संधियोंकी योजक, प्रकोष्ठास्थिद्वयकी परस्पर संयोजक, कफोणि (कुहनी) की संधियोंके मिलानेवाली और कंधेकी संधियोंको मिलानेवाली, अंसास्थियोजक अंसास्थि और जत्रू (हसली) के हड्डियोंके योजक इसीप्रकार जत्रूकी हड्डी और ऊरूकी हड्डीके मिलाने वाले रज्जूसमूह एक एक भुजामें है.

रज्जवोमध्यकायस्यपर्शुकोरोऽस्थियोजिकाः।त्रयाणा मापेभिन्नानांमुरोऽस्थ्नःपरिमोलिकाः॥कसेरुकापर्शुका नांकशेरूणांपरस्परम् । शिरसःपश्चिमास्थ्नश्चतथाप्यू र्ध्वगयोर्द्वयोः ॥ कशेर्वोर्हनुकूल्यस्यपृष्ठबस्त्यस्थियो जिकाः । संयोजिन्यश्चबस्त्यस्थांपरस्परमुदीरिताः ।

अर्थ—मध्यदेहमें नीचेलिखे सबरज्जू हैं। जैसे ऊपर स्थित सातपांशुओंके स-हित वक्षोस्थि के योजक, वक्षोस्थिके खंडत्रयके योजक, (एक वक्षस्थलकी हड्डी तीन जगे विभक्त है) कशेरुका (पिछाडीका वांस) और पर्शुका आदिके मिलानेवाले कशेरुकादिकोंके परस्पर मिलाने वाले, करोटी (मस्तककीहड्डी) के पिछाडीकी हड्डीसहित ऊर्ध्वस्थकशेरुका दोनों द्वयके संयोजक, हन्वस्थिके योजक, पृष्ठवंशास्थि तथा बस्तीकी हड्डी, आदिके मिलानेवाले तथा सर्व बस्तीकी हड्डीयोंके पर-स्पर मिलाने वाले रज्जूसमूह मध्यदेहमें है. रज्जुओंको बंधनीभी कहते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सेविन्यः ।

सप्तसेविन्यःशिरसिविभक्ताःपंचजिह्वाशे
फसोरेकैकाताः परिहर्त्तव्याःशस्त्रेण ।

अर्थ–सेवनी सातहैं, तिनमें मस्तक के विषे पृथक् पृथक् पांच और जीभ तथा शिश्न इनमें एक एक ऐसे सातहैं, इनको शस्त्रकरके तोडने चाहिये. सुईके सदृश मिलीहुई जगहको सेवनी कहतेहैं ।

संघाताः ।

चतुर्दशास्थ्नांसंघातास्तेषांत्रयोगुल्फजानुवंक्षणेषु ।
एतेनइतरसक्थिबाहूचव्याख्यातौ । त्रिकशिरसोरेकैकः ।

अर्थ–हड्डियोंके समूह चोदश हैं, तिनमें पैरोंके टकना, जानु और वंक्षण (ऊरूकीसंधि) इनस्थानों में तीन, इसीप्रकार दूसरे पैरमें तीन तथा दोनों हाथोंमें तीन तीन और एक त्रिक (बाहु और मस्तककी संधीमें) और एक मस्तकमें ऐसे १४ संघात हैं ।

मतान्तरे ।

येह्युक्ताःसंघातास्तेखल्वष्टादशैकेषाम् ।

अर्थ–किसी किसी आचार्य के मतसैं पूर्वोक्त संघात १८ हैं । सो इसप्रकारहैं, जैसे कि पूर्वोक्त १४ श्रोणिकांडके ऊपर एक; वक्षस्थलमें उदर और उर इनकी संधीमें एक, और अंसकूट के ऊपर एक, ऐसे हड्डीके समूह, अठार हैं । यद्यपि श्रोणी कांडभाग अर्थात् कमरमें त्रिकस्थान प्रसिद्धहैं तथापि नाडकी जडको भी त्रिक कहतेहैं क्योंकि इसजगे दोनों भुजा और ग्रीवा इन तीनोंका समूह एकत्रित हुआहै.

अथास्थ्नः स्वरूपमाह ।

मेदोयत्स्वाग्निनापक्वंवायुनाचातिशोषितम् ।
तदस्थिसंज्ञांलभतेससारःसर्वविग्रहे ॥

अर्थ–अब प्रथम हड्डियोंका स्वरूप कहतेहैं. जैसेकि मेदा अपनी आग्निसे पक्व होती है और पवन उसको अत्यंत शोषण करेहैं तब वोही मेद अस्थि (हड्डी) कहलातीहैं वह हड्डी इस देहमें सारभूतहै ।

तहां कहतेहैं कि, शरीर दो प्रकार का है, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, तिन्में मृत्तिका, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंचभूतोंसे निर्मित और चक्षुरादि इन्द्रियोंसे ग्राह्य देहको स्थूलदेह कहते हैं। और पंचप्राण, मन, बुद्धि और दशइन्द्री

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करके समन्वित अपंचभूतसे प्रगट देहको सूक्ष्म देह कहतेहैं। परंतु इस आयुर्वेद शास्त्रमें मनुष्यके स्थूल देहकाही वर्णनहै, देहकी प्रधान उपादान कारण हड्डीहैं, अत एव अब उनको वर्णन करतेहैं।

शरीरधारणविषयमेंहड्डियोंकोप्रधानताहै।

अभ्यन्तरगतैःसारैर्यथातिष्ठंतिभूरुहाः। अस्थिसारैस्तथा देहोध्रियन्तेदेहिनांध्रुवम्॥ तस्माच्चिरविनष्टेषुत्वङ्मांसेषु शरीरिणाम्। अस्थीनिनविनश्यन्तिसाराण्येतानिदेहिनाम्॥ मांसान्यत्रनिबद्धानिकलाभिश्छादितानिच। अस्थीन्या लम्बनंकृत्वानशीर्यंतेपतंतिवा॥

अर्थ–जैसे वृक्ष भीतर रहनेवाले सारके आश्रयसे खडे रहते हैं, उसी प्रकार देहमें देहके सारभूत हड्डियोंके द्वारा यह मनुष्य का देह खडा हुआहै। त्वचा और मांस आदिके नष्टहोनेपर हड्डियों का नाश नहीं होताहै। ये देहधारियोंके देहमें सारभूतहै, कलाच्छादित मांससमूहसे हड्डी जहांकी तहां अवस्थितहैं और देहके बंधन अर्थात् नाडी, नस, कंडरा, बंधनी और स्नायु आदिसे बंधीहुईहैं. पूर्वोक्त पदार्थ हड्डियोंका आलंबन करेहुए हैं, इसीसे ये हड्डी नतो बिखरती हैं और न गिरतीहैं।

कंकाल।

त्वङ्मांसादिरहितः स्वस्थानस्थितः शरीरास्थिचयः कङ्कालसंज्ञोभवति। सचकङ्कालः षडङ्गोभवति यथा शाखाश्चतस्रोमध्यंपंचमं षष्ठशिरइति।

अर्थ–त्वचा मांस आदि करके रहित, स्वस्थान स्थित, देहकी हड्डियोंकेसमूहको कंकाल ऐसा कहते हैं। अर्थात् केवल हड्डीमात्रवाले देहको कंकाल जानना। वह कंकाल छः अंगोंमें विभक्त हैं। जैसे चार हाथ पैर, एक मध्यभाग, और एक मस्तक।

हड्डियोंकाविशेषवर्णन।

सर्वाण्येवास्थीनिबहिरन्तः समन्तात्कलावृतानिसगर्भाणिच तेषांगर्भाः पीताभस्नेहविशेषेणपूर्णाः समज्जेत्याभिधीयते। अस्थ्नांसन्धिषुकलानदृश्यते तेहितनुभिस्तरुणास्थिभिरावृताः सन्ति। अस्थिगात्राणि क्वचिदवटुमन्तिक्वचिदुत्सेधवन्तिच।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–संपूर्ण हड्डी बाहर भीतर से कला अर्थात् झिल्ली द्वारा ढकी हुईहैं । और हड्डियों के भीतर पीले रंगकी चिकनाई भरीहुई है. उसीको मज्जा ऐसे कहते हैं । हड्डीकी संधियोंमें झिल्ली नहीं है । परन्तु संधिस्थान पतली उपास्थियों से ढकाहुआ है । कोई हड्डी गट्ढेके सदृश नीची है । और कोई हड्डी ऊंची प्रतीत होती है ।

अस्थियोंके पांचप्रकार ।

तान्यस्थीनिपंचविधानिभवन्ति । तद्यथा । अनुकपालनलकासम गात्ररुचकसंज्ञकानि । कैश्चित्कपालरुचकतरुणवलयनलकसंज्ञा निपंचविधान्युच्यन्तेतत्रवलयादीनामण्वादिष्वन्तर्भावइत्यभेदः सुकोमलास्थीनितरुणसंज्ञामुपास्थिसंज्ञांवालभन्ते ।

अर्थ–ए संपूर्ण हड्डी पांच भागोंमें विभक्त हैं; जैसे अण्वस्थि, कपालास्थि, नलकास्थि, असमगात्रास्थि और रुचकास्थि. कोई कोई आचार्य कपाल, रुचक, तरुण, वलय और नलकसंज्ञक पांच प्रकार हड्डीके कहते हैं, तिनमें वलयादि अस्थि अण्वस्थि अर्थात् क्षुद्रास्थिके अन्तरगत मानते हैं, सुतरां उभयमतोंमें विशेष भेद नहीं है । और अतिकोमल हड्डियों को तरुणास्थि अथवा उपास्थि कहते हैं ।

अबइनपंचविधअस्थियोंका पृथक् २ वर्णन.

अन्वस्थीनि ।

देहस्यदृढान्याचलान्यङ्गानिअन्वस्थिभिर्वैनिर्मिता-निमणिबन्धगुल्फादिषुतान्येवस्थितानि ।

अर्थ–शरीरके मध्यमें दृढ़ और अचल अंग सब अण्वस्थि समूहद्वारा बने हैं । मणिबंध तथा गुल्फ आदिमें यही अण्वस्थि हैं ।

कपालास्थीनि ।

देहस्यास्थिमयविवराणिकपालास्थिभिर्नैर्मितानितानिप्रशस्ता कृतीनि । करोटिबस्त्याद्यङ्गेषुकपालास्थीनिसन्ति ।

अर्थ–देहके अस्थिमय विवर (गट्ढे) समग्र कपालास्थि द्वारा बनेहुए हैं ये सुन्दर आकृतिवाली है । करोटि (मस्तक की हड्डी) और बस्तीआदि अंगोंमें कपालास्थि हैं ।

नलकास्थीनि ।

नलकास्थीनिनलवत्सुषिराणिसुदीर्घाणिचतानिशाखा स्ववस्थितानि ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–नलकास्थि समूह नलके सदृश छिद्रवाले और लंबेहैं। ये भुजा और पैरों-में विद्यमान हैं।

असमगात्रास्थीनि।

असमगात्राणामस्थ्नांनाम्नैवाकृतिर्व्याख्याता कशे-
रुकाशंखास्थिप्रभृतीन्यसमगात्राणि॥

अर्थ–असमगात्रास्थियोंकी आकृति नामानुसार कही है अर्थात् इनका कोई अंश लंबा, कोई अंश छोटा, कोई मोटा, कोई अंश पतला है। कशेरुका(पीठकावांस) शंख (कनपटी) आदि की हड्डी असमगात्रास्थि कहलाती हैं।

रुचकानि।

दशनारुचकानिस्युश्चतुर्धातेभवन्तिहि। छेदनाः शौवनाद्व्यग्राः
पेषणास्तेतुसंख्यया॥ अष्टौचत्वारश्चाष्टौहिततस्तुद्वादशस्मृताः।
दन्तानांपतनंजन्मपुनः पातेत्वसंभवः॥

अर्थ–सब दांतोंको रुचक कहतेहैं। ए चारप्रकारकेहैं, जैसे कि छेदन, शौवन, द्व्यग्र और पेषण. छेदन दांतऊपरकी पंक्तिमें ४ और नीचेकी पंक्तिमें ४ हैं। सौवन दांतऊपर २ और नीचे २ हैं। द्व्यग्रदांतऊपर ४ और नीचे ४ हैं। तथा पेषण दांतऊपर ६ और नीचे ६ हैं.। सबमिलकर ३२ हैं। बाल्य अवस्थामें प्रगट हुए दांत यथाकालमें गिरजातेहैं.। फिर दूसरे स्थायी (ठहरनेवाले) दांत प्रगट होतेहैं। एकस्थायी दांतोंके गिरनेके पश्चात् फिर दांत नहीं आतेहैं।

यूनानी वैद्य कहते हैं, कि दांत हड्डीकी जातिमें से हैं. क्यों कि कठोर और बेहरकतहैं। इसीसेंइनके काटनेसे कष्ट नहीं होता. परंतु किसी २ की यह संमतिहै कि ये दांत पट्टेकी जातिमेंसेहैं। क्योंकि इनमें शरदी गरमी असर करती है।

आगेके ४ दांत छेदनकहातेहैं, उनके ओर पास जो दांत हैं उनको सौवन (खूंटा) कहते हैं। और इनके पासवाले दांतोंको द्व्यग्र अर्थात् इनके ऊपरके दोभाग उठेहुएहैं इसीसेइनको द्व्यग्रकहतेहैं। और इनकेपास जो चारदांतहैं उनको पेषण अर्थात् डाढाकहतेहैं.। और संस्कृतमें इनको दंष्ट्रा कहतेहैं.। फारसीमें, सनाया, रवाईतान, नावान, और अजरासकहतेहैं. सनाया और रवाई तानकाटनेकेवास्तेहैं, और नावानवास्ते चबानेकेहैं; और अजरासवास्तेदबानेकेहैं, और दांतोकी जड़की बहुत बारीकहै वेवेजावडेकेछिद्रोंमें गढीहुईहै। और प्रत्येकछिद्रके चारोंतरफ गोल मंडल है, कि दांतोंपर ढकेरहनेसे दृढरहतेहैं, उनको मसूढे कहतेहैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथास्थिसंख्या ।

त्रिषष्टीन्यस्थिशतानिवेदवादिनोभाषन्ते ।

अर्थ–अस्थि (हड्डी) तीनसौसाठ ३६० हैं ऐसे आयुर्वेदवादीकहतेहैं ।

शल्यतंत्रे त्रीण्येवास्थिशतानि । तेषांविंशमधिकंशतंशाखासु । सप्तदशोत्तरंश्रोणिपार्श्वपृष्ठोदरोरः सुग्रीवांप्रत्यूर्ध्वंत्रिषष्टिः ।

अर्थ–शल्यतंत्रमेंअस्थी ३०० तीनसौ कहीहैं, तिनमें १२० हाथपैरोंमें तथा ११७ कमरपार्श्व (पसवाडें) उदर उर इन्होंमें, और नाडसैलेकर ऊपरके भागमें ६३ ऐसे सबहड्डी ३०० हुई ।

शाखागतहड्डियोंकोकहते हैं ।

एकैकस्यांपादांगुल्यांत्रीणितानिपंचदश तलगुल्फकूर्चसंश्रिता निदश पार्ष्णावेकंजंघायांद्वेजानुन्येकमूरावितिं । त्रिंशदेवमेक स्मिन् सक्थीनिभवन्ति । एतेनेतरसक्थिबाहुचव्याख्यातौ ।

अर्थ–पैरकी एक एक उंगली में तीन तीन हड्डीहैं, सबमिलकर १५ हुई, पादतल (तरुआ) गुल्फ (टकना) कूर्चक (पैरकापिछलाभाग) इनमें १० हैं, पार्ष्णी (एडी) में १ जंघा (पीडरी) में २ जानु (घोटू) में १ और ऊरू (जाँघ) में १ हड्डीहैं ऐसेएकसक्थी (पैर) में ३० हड्डी हुई और दोनों पैरोंकी मिलानेसे ६० होती है, और दोनोंहाथोंकीभी ६० होतीहैं, ऐसे दोनोंहाथपैरोंकीसंख्या-मिलानेसे १२० होती हैं ।

श्रोण्यादिगतहड्डियोंकोकहतेहैं ।

श्रोण्यांपंचतेषांभगगुदनितंबेषुचत्वारित्रिकसांश्रित मेकंपार्श्वेषट्त्रिंशदेकस्मिन्द्वितीयेत्येवंपृष्ठेत्रिंशदष्टा वुरसिद्वेअक्षकसंज्ञे ।

अर्थ–कमरमें ५ हड्डीहैं. (तिनमेंभगऔरलिंगमें १ नितंब अर्थात् कूलेन्में २ गुदामें १ और त्रिकस्थानमें १ हड्डीहैं ऐसे ५ हुई) एकपार्श्व (पांसूअथवाकूख) में ३६ उसीप्रकार दूसरीपांसूमें ३६ और पीठमें ३० और उर (वक्षस्थल) में ८ और अक्षकसंज्ञककी २ हड्डीहैं, ऐसे कुलश्रोण्यादिहड्डीयोंकी संख्या मिलानेसे ११७ होतीहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ग्रीवोर्ध्वगतहड्डियोंकोकहतेहैं।

ग्रीवायांनवकण्ठनाड्यांचत्वारिद्वेहनोः दन्तानां द्वात्रिंशत्नासायांत्रीणिएकंतालुनिगण्डकर्णशंखे ष्वेकैकंषट्शिरसि।

अर्थ–ग्रीवा (नाड) में ९ कंठकी नाडी में ४ ठोडी में २, दंतसंबन्धी हड्डी ३२ नाकमें ३ तालुओं में १ गालों में २, कानों में २, कनपटीन्में २ और मस्तकमें ६ हड्डी हैं ऐसे सब मिलकर ६३ त्रेसठ हड्डी हैं।

मतांतरसेहड्डियोंकीसंख्या.

एकैकस्यांपादाङ्गुल्यांत्रीणित्रीणिअन्यत्राङ्गुष्ठात् अङ्गुष्ठेद्वे तानिचतुर्दश प्रपदेपंचतान्यग्रतोऽङ्गुलीनामूलास्थिखण्डैः पंचभिर्मिलितानि। तेषांकतिपयानिगुल्फसन्धिपर्यन्तंवि स्तृतानि गुल्फेसप्त। जंघायांद्वेजानुन्येकम्। एकमूराविति। त्रिंशदेवमेकस्मिन्सक्थिभवन्ति द्वयोः सक्थ्नोरुपरिबस्ति मुभयतोद्वेश्रोण्यस्थिनीस्तः।अनयोरग्रभागावौपास्थिकास्थि संज्ञांलभेते एतेनेतरसक्थिव्याख्यातम्।

अर्थ–अंगूठे को त्यागकर अन्य चारउंगलियोंमें तीन तीन हड्डीहैं, और अंगूठेमें२ हड्डी हैं, ऐसे पांचोउंगलियों में १४ हुई, पैरमें ५ हड्डी हैं। इन प्रत्येकके अग्रभाग यथाक्रम पांचोउंगलियोंके मूल पर्वास्थियोंसे मिलेहुएहैं। और ये कितनीएक गुल्फ संधियों से मिलेहुए हैं।

गुल्फ (टकना) में ७ हड्डी हैं, जंघा (पीडली) में २ जानू (घोटू) में १ ऊरू (जांघ) में १ हड्डीहैं, ऐसे प्रत्येक पैरमें ३० हड्डीहैं। दोनों पैरोंके ऊपर बस्तीके दोनों पार्श्वों में एक एक श्रोणास्थि है। इन दोनोंहड्डियों के अग्रभागको उपास्थि-कास्थि अर्थात् मेढ् वा योनिसंपृक्तअस्थि कहते हैं। श्रोणास्थि मिलाकर गणना करने-से प्रत्येक पैरों में ३१ हड्डी होती हैं।

ऊर्ध्वशाखहड्डीयोंकीसंख्या।

पादाङ्गुलिवत्करङ्गुलिषुचतुर्दश। प्रपदवत्करभेपंच मणिबन्धे अष्टौ।प्रकोष्ठे द्वे प्रगण्डेएकम्।त्रिंशदेवमेकस्मिन्बाहावस्थीनिभव

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

न्ति । प्रगण्डास्थ्नउपरितएकमंसास्थि । अंसास्थितउरोऽस्थि पर्यंतंविस्तृतंजत्रवस्थि । एतेनेतरबाहुर्व्याख्यातः ॥

अर्थ–पैरकी उंगलियों के सदृश हाथकी भी पांचों उंगलियोंमें १४ हड्डी हैं, और पैरके सदृश करभ (हथेली) में ५ हड्डी हैं, मणिबंध (पहुंचे) में ८ हड्डी हैं, प्रकोष्ठ (कलाई) में २ प्रगंड (बाजू) में १ हड्डी है, ऐसे प्रत्येक भुजामें ३० हड्डीहैं, प्रगंडास्थिके ऊपर १ अंसास्थि (कंधेकी हड्डी) है अंसास्थिसे लेकर छातीकी हड्डी पर्यंत वक्षस्थलके ऊपर और सन्मुख भागमें एक एक जत्रवस्थि है । (कंधेकी संधिको जत्रु कहते हैं) अंसास्थि और जत्रवस्थिको मिलाकर गणना करनेसे एक एक भुजामें ३२ बत्तीस हड्डी होती हैं ।

उरोस्थ्येकमुभयतोजत्रुसंयुतंसत्क्रमेणोदराभिमुख मागतम् निम्नोऽन्तोऽस्याङ्गुल्यादिभिरनुभूयते ।

अर्थ–उरोस्थि अर्थात् वक्षोस्थि १ है, यह दोनों पसवाडेके दोनों जत्रु (कंधे की संधियों) से मिलेहुये अस्थि क्रमसे उदराभिमुख होकर नीचेको आई है, इन्हींके नीचेकाभाग उंगली आदिद्वारा करके अनुभव होता है । यह उपास्थि अर्थात् उपास्थिसंबंधी हड्डियोंका स्वरूप जानना.

मध्यभागस्थितहड्डियोंकास्वरूप।

पृष्ठवंशःपरस्परामिलितैःकशेरुकाभिधैःषड्विंशत्यास्थिखण्डै र्निर्मितानि सहिग्रीवामारभ्य क्रमेण निम्नाभिमुखोगुह्य पश्चाद्भागपर्यन्तमागतः । निम्नखण्डंत्रिकनाम्नाभिधीयते ।

अर्थ–पिछाडीका वांस परस्पर २६ अस्थि खंडों से निर्मित तथा ग्रीवा (नाड) से लेकर क्रमसे निम्नाभिमुख होकर गुह्य देश (गुदालिंग) के पश्चात् भाग पर्यंत आया है । इन २६ हड्डीके टुकडोंके प्रत्येकका नाम कशेरुका है । सबसें नीचेके कशेरुकाका नाम बहुधा त्रिकास्थि है ।

पार्श्वओंकावर्णन ।

एकैकस्मिन्पार्श्वेद्वादशपर्शुकाःपृष्ठवंशतोधनुर्वद्वक्रादेहस्य सन्मुखभागमागतास्तासामूर्ध्वस्थाःसप्तउरोऽस्थामिलिताः । शेषाःपंचसांमुख्येनकेनाप्यस्थामिलिताः । प्रथमामारभ्यं अष्टमपर्शुकांयावत्क्रमेणदैर्घ्यवृद्धिस्ततःक्रमशोहानिः । एकै

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कस्याः पर्शुकायाअग्रतएकैकंतरुणास्थिविद्यते तत्रोर्ध्वस्था नांसप्तानां तरुणास्थीनिउरोऽस्थातन्निम्नगतानांतिसृणां त्री णिपरस्परं मिलितानि शेषयोर्द्वयोर्द्वेनकेनापिमिलिते।

अर्थ—शरीरके प्रत्येक पार्श्वमें १२ पर्शुका अर्थात् पंजरास्थिहैं, ये प्रत्येक पर्शुका पीठके वांससैं लेकर धनुषके समान टेढीहो देहके सन्मुखभाग पर्यंत चलीगई है। तिनमें ऊपर की ७ पर्शुका वक्षस्थलकी हड्डीसैं जायकर मिलगई हैं। और नीचे-की ५ पांशु देहकी सन्मुखवाली किसी हड्डीसैं नहीं मिली, पहलीसैं लेकर अष्टम पर्यंत जो पांशूहै वो क्रमसैं लंबी (अर्थात् पहलीसैं दूसरी दूसरीसैं तीसरी अधि-कलंबीहै.) और उन आठपर्शुकाओंके नीचे जो ४ पर्शुका हैं, वो क्रमसैं छोटी होगई है, प्रत्येक पर्शुकाके आगे एक एक तरुणास्थीहै, तिनमें ऊपरकी ७ तरुणास्थि वक्षस्थलकी हड्डीसैं मिल रही हैं और उन सातके नीचे जो ३ तरुणास्थी हैं, वो परस्पर मिलरही हैं, बाकी जो २ पर्शुका है उनकी जो २ तरुणास्थी है वो किसी सैं नहीं मिली किंतु पृथक् है।

शिरकीहड्डीयोंकावर्णन।

करोटावष्टास्थीनिसन्तियथा। एकंललाटेद्वयोःपार्श्वयोरूर्ध्वतः परस्परमिलितेद्वेऊर्ध्वशिरःपार्श्वास्थनी। तन्निम्नतोद्वयोःपार्श्व योर्द्वेशंखास्थनी। पश्चादेकंपृष्ठवंशस्योर्ध्वकशेरुकोपरिस्थितम्। करोटिमूलेऽग्रतःसौषिरास्थि। बहुभिः सुषिरैर्व्याप्तत्वादस्यसौ षिरसंज्ञता। करोटिमूले पश्चिमाएकम्। एतच्छेषैःसप्तभिर्मिलित म्। एवंकरोटावष्टास्थीनिपूर्यतेकरोटिगह्वरंमस्तिष्कस्यस्थानम्।

अर्थ—करोटि (मस्तक)में आठ हड्डीहैं, जैसे१ ललाटमें, दोनो पार्श्वोंके ऊपर२ ऊर्ध्व शिरःपार्श्वास्थि है, ए ऊपरसैं परस्पर मिल रही हैं, उर्ध्वशिरःपार्श्वास्थि दोनोंके नीचे दोनो पार्श्वोंमें २ शंखास्थि (कनपटीकी हड्डी) है पिछाडी१ हड्डी है, ऊर्ध्व पृष्ठकशेरुकाके ऊपर स्थित १ हड्डीहै, यह करोटिके मूलमें और आगेहैं इसको सौषिरास्थि कहतेहैं. यह अनेक छिद्रों करके व्याप्त होनेसैं इसको सौषिर संज्ञक कहतेहैं। करोटिके मूल और पिछाडीमें १ हड्डीहै, यह उक्त ७ हड्डीयोंसैं मिली-हुई है. ऐसे मस्तकमें आठ हड्डी गिनी जातीहैं, यह करोटि गह्वर मस्तिष्क (घृताकारचरबी) के रहनेका स्थान है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मुख (चेहरे) का वर्णन

वदनमण्डलेचतुर्दशास्थीनिसन्ति। तथाद्वेनासास्थिनीवदनमण्डलस्योर्ध्वमध्यतोद्वयोः पार्श्वयोः स्थितेपरस्परमिलितेच। नेत्रविवरस्याभ्यन्तरमभितोद्वेतन्वस्थिनी। नासारन्ध्रव्यवधायिन्याभित्तेः पश्चादेकम् नासिकाधश्छिद्रतउपरिद्वेउष्णीषास्थिनी। तालुनिद्वे। द्वेगण्डयोः। द्वेऊर्ध्वहन्वस्थिनीवदनमण्डलमुभयतोधिष्ठिते। दन्तवेष्टीयबृहद्गह्वरवतीच। एकमधोहन्वस्थिनिम्नतोवदनस्यावस्थितम्। अत्रैवावाचीदन्तपंक्तिस्तिष्ठति।

अर्थ–वदनमंडल अर्थात् चेहरेमें १४ हड्डी हैं। जैसे नासिकाकी २ हड्डी वदनमंडलके ऊर्ध्वभागमें और मध्यांशमें दोनों पार्श्वोंमें स्थित तथा परस्पर मिली-हुईहैं। नेत्रोंकेगड्ढोके भीतर सन्मुखमें २ तन्वस्थि अर्थात् पतली हड्डी है। नासारन्ध्रके व्यवधान कर्त्ता भित्ती (भीत) के पिछाडी १ हड्डी है नासिकाके नीचेके छिद्रोंके ऊपर २ उष्णीषास्थि हैं अर्थात् किरीटके आकार होनेसें इसको उष्णीषास्थिकहतेहैं, तालुएमें २ गालोंमें २ ऊपरकी हन्वस्थि २ है ये मुखमंडलके दोनों पार्श्वोंमें स्थित तथा ऊर्ध्वदंतवेष्टीय बृहत्गह्वर संयुक्त है। नीचे १ हन्वस्थि है, यह मुखमंडलके अधोभागमें स्थितहै। इसमें नीचेकी दंतपंक्तिहैं।

कर्ण।

एकैकस्यकर्णस्याभ्यन्तरतस्त्रीणि त्रीणिक्षुद्रास्थीनिसंति

अर्थ–एकएककानके भीतर तीन तीन क्षुद्रास्थिहैं।

जिह्वा।

जिह्वामूलात्पश्चादेकंक्षुद्रास्थनकेनाप्यस्न्थासंयुतं।
पेशीभिरेवधृतंतिष्ठति॥

अर्थ–जिह्वा मूलके पिछाडी १ क्षुद्रास्थिहै। यह किसी हड्डीसेमिलीहुईनहीं है, यह पेशियोनें धारण कररक्खीहै।

अङ्गुष्ठमूलादिषुकलायपरिमण्डलानिकतिपयान्यणुमण्डलास्थीनिसन्तिसंख्यातश्चैतानिप्रायशोष्टौ।

अर्थ–अंगुष्ठमूल आदिस्थानमें कितनी एक अणुमंडलास्थिहैं, इनकी आकृती प्रायः मटरके समान है. इनकी संख्या सब मिलकर ८ है.।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अतःषट्चत्वारिंशदधिकद्विशतसंख्यास्थिमयोऽयम्।
नरकङ्कालइतिभगवतऔरभ्रस्यमतम् यथा
सक्थ्नोर्द्विषष्टिरस्थीनिबाह्वोस्तुद्व्यधिकानिच।
उरस्येकंपृष्ठवंशेषड्विंशतिरतः परम्।
पर्शुकाः पार्श्वयोर्ज्ञेयाश्चतुर्विंशतिसंमिताः।
अस्थीन्यष्टौकरोटौचवदनेऽथचतुर्दश।
कर्णयोःषट्तथैकंचरसनामूलसंश्रितम्।
अष्टाणुमण्डलानिस्युर्द्वात्रिंशद्दशनामताः।
एतेभ्योऽतिरिक्ताप्यपिकतिपयानिक्षुप्रास्थीकङ्कालेदृश्यन्ते।

अर्थ–अतएव २४६ हड्डियोंसें * निर्मित नरकंकाल अर्थात् मनुष्यका अस्थिपंजर है. यह महर्षि औरभ्रका मत है, अब उसको स्पष्ट दिखाते हैं. जैसें

सक्थि (पैर) दोनों में	६२	करोटि में	८
भुजादोनों में	६४	मुखमंडलमें	१४
वक्षस्थल में	१	दोनोंकानोंमें	६
पृष्ठवंश में	२६	जिह्वामूलमें	१
पार्श्वद्वय में	२४	अनुमंडलास्थि	८
		दांत	३२

२४६

८ नम्बरके चित्रोंको देखो।

अबहड्डिकी संधियोंको कहते हैं.

उभयोर्मीलनंसन्धिरस्थ्नोःसद्विविधोमतःश्वैष्टावान्स्थिरसंधिश्चचेष्टावांश्चपुनर्द्विधा। सम्यक्चेष्टोऽल्पचेष्टश्चतरुणास्थिभिरादिमः।

* किसी आचार्यके मतसें हड्डी ३६० हैं. किसीके मतसें २४८ किसीके मतमें २५३ हड्डीमानी हैं. परंतु सुश्रुतमें जो ३०० हड्डी लिखी हैं, वो असत्य नहीं हैं किंतु बहुतसी हड्डी अतिनम्र और पतलीनको और आचार्योंने उनकी हड्डीयोमें नहीं गणना करी. इन सबका मतांतर भेद अर्थात् अंग्रेजी डाक्टर युनानी वैद्य, और अपने संस्कृतका परस्पर विरोध आगे निवंटमें (अस्थि) शब्दकीव्याख्यामें लिखेंगे.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संयुतःकलयास्नेहस्राविण्याचसमावृतः । तरुणास्थिभिःसंश्लिष्टैः रज्जुभिर्वासमावृतैः । अस्थिप्रान्तैःवृतोन्त्यश्चस्थिरंतुकेवलास्थिभिः । शाखासुहन्वोःकट्यांचतथाप्यूर्ध्वगयोर्द्वयोः । कशेर्वोर्जत्रुणोश्चैवसम्यक्चेष्टान्तसन्धयः । अल्पचेष्टाःकशेरूणां शेषाणांपरिकीर्तिताः । इतरेसंधयः सर्वेस्थिरामुनिभिरीरिताः ।

अर्थ–दो हड्डियों के परस्पर मिलने के स्थानको संधि कहते हैं । ये संधि दो प्रकारकी हैं, जैसे एक चेष्टावान् संधि, दुसरी स्थिरसंधि, अब कहतेहैं कि चेष्टावान् संधिके भी दो भेद हैं अर्थात् एक विशेष चेष्टावाली और दूसरी अल्पचेष्टावान् संधि है । तिनमें प्रथम अर्थात् विशेष चेष्टावान् संधि उपास्थि (तरुणहड्डी) संयुक्त तथा स्नेहस्रवणशील कला (झिल्ली) ओंसे सर्वत्र लिपटीहुई है । शेष जो सन्धि अर्थात् अल्पचेष्टावान् जो सन्धिहै वो उपास्थियों से लिप्त तथा रज्जू करके लिपटीहुई है, और अस्थिप्रान्तद्वारानिर्मित है । और स्थिरसंधि जो है वो सब केवल परस्पर अस्थिप्रान्तयोगकरके बनी हुईहै, शाखाचतुष्टय (हाथपैर) हनुद्वय (दोनोंजावडे) कमरके ऊपर रहनेवाले कशेरुकाद्वय तथा जत्रु इनमें विशेषचेष्टावाली सन्धिहै, और बाकी कशेरुका आदि समस्तोंमें अल्पचेष्टावान् संधिहै, इनसे भिन्न जितनी संधिहैं. उनको स्थिरसंधि कहते हैं ।

संधियोंकीसंख्या ।

एकैकस्यां पादाङ्गुल्यांत्रयस्त्रयोद्वावङ्गुष्ठे ते चतुर्दश जानुगुल्फवंक्षणेष्वेकैक एवं सप्तदशैकस्मिन्सक्थी निभवन्ति एतेनेतरसक्थि बाहूच व्याख्यातौ

अर्थ–एक एक पैरकी उंगली में तीन तीन और अंगूठे में दो ऐसे मिलकर १४ तथा घोटू एडी और पेडू इनमें एकएक ऐसे सब मिलकर एक पैरमें १७ संधी हैं, इसीप्रकार दूसरे पैरमें और दोनों हाथोंमें भी सत्रह सत्रह सन्धी जाननी ।

मध्यभागऔरग्रीवाआदिकीसंधि ।

त्रयःकटीकपालेषुचतुर्विंशतिःपृष्ठवंशेतावन्तएवपार्श्वयोरुरस्यष्टौतावन्त एवग्रीवायां त्रयःकण्ठेनाडीषु हृदयक्लोमफुप्फुसेनिबद्धास्त्वष्टादशदंतपरिमिता दंतमूले एकःकाकलके नासायांच द्वौ

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वर्त्ममण्डलौनेत्राश्रयौ गण्ड कर्ण शंखेष्वेकैकाद्धौ हनुसंधी द्वावु परिष्टाद्भ्रुवोः शंखयोश्च पंच शिरःकपालेष्वेकोमूर्ध्नि।

अर्थ–कमर और कपालास्थिके बीच ३ संधी हैं, पीठके वांसमें २४ संधिहैं, दोनों कूखोंमें २४ तथा उरमें आठ ८ ए सब मिलकर मध्यप्रदेश में ५९ संधीहुई. ग्रीवा में ८ आठ तथा कंठमें ३ तीन, "हृदयक्लोमनिवद्धासुनाडीषु" अर्थात् अन्न और जलके वहनेवाली हृदय और क्लोम इनसे बंधीहुई है. इसका स्पष्टार्थ यह है कि, गलनाडी और कंठनाडी इनमें १८ अठारह संधिहैं, दंतमूलसंधि ३२ तथा काकलक-में (गलमणि अर्थात् जिस्को घांटिका कहते हैं) उसमें १ एक नासिकाकी हड्डी में तथा नेत्रकोशसंबंधी तरुणास्थिमें २ गाल कान और कनपटी ए तीन जोडोंको मि-लाने से ६ ठोडी में २ भौंहके ऊपर अंगमें २ और मस्तकसंबन्धी कपालास्थि में ५ तथा १ मस्तक में मिलकर ५३ सर्व मिलकर २१० संधि होती हैं।

उक्तसंधियोंकीगणना।

कथितादेहिनांदेहेसन्धयोद्वेशतेदश।
शाखासुतेऽष्टषष्टिश्चकोष्ठेत्वेकोनषष्टिकाः।
ग्रीवायाऊर्ध्वदेशेतुत्र्यशीतिस्तेप्रकीर्त्तिताः।

अर्थ–मनुष्योंकी देहमें २१० सन्धिहैं, तिनमें हाथ पैरमें ६८ कोष्ठ अर्थात् म-ध्यभागमें ५९ और ग्रीवाआदि ऊपरके देशमें ८३ संधी हैं।

सन्धियोंके आठ भेद कहते हैं.

कोरोदूखलसामुद्गाप्रतरानुन्नसेवनीवायसतुण्डमण्डलशंखावर्त्ता। तेषामंगुलिमणिबन्धजानुगुल्फकूर्परेषुकोराःसंधयः। कक्षवंक्षण दशनेषुउदूखलाः। अंसपीठगुदपादनितंबेषुसामुद्गाः। ग्रीवापृष्ठ वंशयोःप्रतराः। शिरःकटिकपालेषुनुन्नसेवनी हन्वोस्तुवायस-तुंडाः। कंठहृदयनेत्रक्लोमनाडीषुमण्डलाः। श्रोत्रशृंगाटकेषुशं खावर्त्ताः।

अर्थ–कोर, उदूखल, सामुद्ग, प्रतर, नुन्नसेवनी, वायसतुंड, मंडल और शंखा-वर्त्त ये नामवाली संधी आठ प्रकारकी हैं. तिनमें उंगली, पहुचा, घोटू, एडी और कोहनी इनमें कोर (गट्ठा अथवा कली) के सदृश संधी हैं। काख, पेडू, दांत, इनमें उलूखल (ओखली) के सदृश संधिहैं. तथा कंधा, पीठ, गुदा, पैर और कूले-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

न्मे सामुद्र (संपुट) के आकार संधिहै । ग्रीवा, पीठकावांस इनमें प्रतर (नौका) के सदृश संधिहै । और शिर, कमर, कपाल इनमें नुन्नसेवनी (वर्तनकी संधिके समान अथवा सिलेहुए) के सदृश संधिहै । और ठोडीके दोनोंतरफ जो संधिहै वो वायसतुंड अर्थात् कौआकी चोंचके समानहैं । कंठ, हृदय, नेत्र, और क्रोमनाडियोंमें मंडलाकृति अर्थात् गोलसंधिहै । कान और शृंगाटक (कसेरुक) इनमें शंखके आंटेके समान संधिहैं ।

अस्थ्नांतुसंधयोह्येतेकेवलाःपरिकीर्त्तिताः ।
पेशीस्नायुशिराणांतुसंधिसंख्यानविद्यते ॥

अर्थ–ये जो ऊपरसंधिकही हैं सो ये केवल हड्डीयोंकी संधियोंका वर्णन करा है, बाकीपेशी, स्नायु और शिरा आदि संधियोंकी संख्या नहीं है अर्थात् इनकी संख्या अनंत है.

अथस्नायवः ।

स्नायवःसूत्रवत्सूक्ष्माःशुभ्रानिखिलदेहगाः ॥ कारणानिचेतनानांसदाचैतन्यसाधने ॥ सुखदुःखावबोधेचप्रवृत्तौचनिवर्त्तने ॥ रूपगंधरसस्पर्शशब्दज्ञानेचहेतवः॥निखिलास्ताश्चसंजातामस्तिष्कात्पृष्ठमज्जनः ॥ शिरोमंडलमेवाद्याः शेषाः शेषाङ्गमाश्रिताः॥ तेषुतेषुचभावेषुदेहमात्तेषुवस्तसाः । कम्पमानाः कम्पयन्तेमस्तुलुङ्गञ्चतत्क्षणात् । तस्यविकम्पभेदेनज्ञानभेदोभवेद्बहुः । अतोमस्तिष्कमेवैकोज्ञानहेतुः प्रकीर्त्तितः । करोटिगह्वरान्तस्तद्वसेदाज्यसुपेलवम् । सुशुभ्रंचासमतलमाभिन्नंचद्विधोपरि ॥

अर्थ–सर्वस्नायु सूत्रके सदृश सूक्ष्म और सपेद रंगवाली हैं; तथा ये सर्व देहमें व्याप्त हैं और चेतन (जीवोंके) चैतन्य करनेकी कारण स्वरूप हैं; सुखदुःखज्ञान, कार्यकी प्रवृत्ति और निवृत्ति, तथा रूप, रस, गंध, स्पर्श, और शब्दज्ञानके होनेमें कारणभूत हैं । ये सर्व स्नायु मस्तिष्क तथा पृष्ठवंशकी मज्जासैं उत्पन्न हुई हैं, मस्तिष्कसैं जो स्नायु प्रगटहुई हैं वो मस्तकमें रहती हैं, और पृष्ठमज्जासैं प्रगटस्नायु हाथ, पैर और उदर आदिमें रहती हैं । अनेक प्रकारके भाव देहमें प्राप्त होनेसैं उसजगे रहनेवाली स्नायुओंके कंपित होनेसैं वो स्नायु तत्क्षण मस्तिष्कको कंपाती हैं, उस मस्तिष्कके कांपनेके भेद करके पृथक् पृथक् ज्ञानकी उत्पत्ति होतीहै । इसीसैं मस्तिष्कही केवल सर्वज्ञान होनेका हेतुहै । करोटिगह्वरके भीतर मस्तिष्क रहता है,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(सुन्दर शुभ्रवर्ण और घृतकेतुल्य अतीव कोमल पदार्थको मस्तिष्क कहते हैं) यह मस्तिष्क नीचेके भागमें असमतल और ऊपर दो भागोंमें बटाहुआ है। ९ नंबरका चित्र देखो।

नेत्रेरूपवताबिम्बपतनान्नेत्रवस्नसाः। भावान्तरंमस्तुलुंगंनयन्तेत द्धिदर्शनम्।पदार्थानांगन्धवतांगन्धाणूनांसमागमात्। नासास्थाः कुर्वतेतद्धत्तद्घ्राणंपरिकीर्त्तितम्। तथारसवतांचाणुसङ्गमाद्रसना श्रिताः। क्रियांतांकुर्वतेतद्धिरसनंचाभिधीयते। शीतोष्णादिगुणव तांद्रव्याणांत्वचिसङ्गमात्। तत्रस्थाः कर्मकुर्वीतेतादृशंस्पर्शनंहि तत्।परस्परभिघातेनद्रव्याणामनिलस्तदा।तरङ्गवानभीहन्यात् कर्णांतः श्रवणंततः। गत्यादिष्वपिकीर्त्यतेस्नायवोमुख्यहेतवः। अथर्किबहुनोक्तेनजीवत्वंस्नायुसंभवम्। स्नायुनाशोभवेद्यस्मिन्नङ्गे तत्स्यान्मृतोपमम्। पक्षाघातादिरोगेषुकारणंतद्विधंमतम्।

अर्थ—नेत्रोंमें रूपवान् पदार्थका प्रतिबिंब पडनेसे सर्व नेत्रकी स्नायु मस्तिष्कको भावांतर प्राप्त करती है; उसीको दर्शन अर्थात् देखना कहते हैं। उसी प्रकार गंधवान् पदार्थके गंधपरमाणु नाकमें जानेसे उस जगेके रहनेवाली स्नायु मस्तिष्कको कंपितकरे तब गंधका ज्ञान होवे, इसीको घ्राण अर्थात् सूंघना कहते हैं। रसवान् पदार्थके परमाणु रसना (जीभ) संयुक्त होकर उस जगे रहनेवाली स्नायुद्वारा मस्तिष्कको कंपितकरे तब इस प्राणीको रसका ज्ञान होता है, शीत और गरमी संयुक्त पदार्थ सर्वत्वचाको स्पर्शकरे तब उस त्वचाके रहनेवाली स्नायु मस्तिष्कको कंपितकरे तब इस प्राणीको शीत और उष्णताका ज्ञान होताहै। इसीको स्पर्श कहते हैं इसी प्रकार द्रव्यगणोंके परस्पर अभिघात करके पवन से तरंगविशेष उठे उस तरंगसै कानकी झिल्ली ताडितहो तब उस जगे रहनेवाली स्नायुगण मस्तिष्कको कंपितकरे तब इस प्राणीको शब्दज्ञान होता है, अतएव इन्द्रियजन्यज्ञानके होनेका मुख्य कारण स्नायु है। और चलने आदिकार्य विषयमेंभी मुख्य स्नायुगणही कारण है। बहुत कहनेसे क्याहै मनुष्यका जीवन स्नायुकरके हैं; जिस अंगकी स्नायु नष्ट हो जाती है वह अंग मरेके समान हो जाता है। इसीसे पक्ष घातादि (लकवा-आदि) पीडामेंभी केवल स्नायुनाश कारण जानना। १० नंबरका चित्र देखो।

स्नायुसंख्या।

नवस्नायुशतानितेषांशाखासुषट्शतानि
द्वेशतेत्रिंशच्चकोष्ठग्रीवायांप्रत्यूर्ध्वसप्ततिः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–स्नायु ९०० हैं, तिनमें हाथपैरमें छःसौं ६०० हैं. मध्यप्रांतमें २३० हैं, और ग्रीवासैंलेकर ऊपरके प्रदेशमें ७० हैं ।

हाथपैरकीस्नायुकहतेहैं ।

एकैकस्यांपादाङ्गुल्यांषट्षट्चिताःतास्त्रिंशत्तावन्त्योनलकूर्पगु
ल्फेषुतावंत्यएवजंघायांदशजानुनिचत्वारिंशदूरौदशवंक्षणे ।

अर्थ–प्रत्येक पैरकी उंगलीमें ६ हैं, सब मिकलर हुई ३०, नल, कूर्पर, गुल्फ इनमें ३० जंघामें ३० जानु (घोटु) में १०, ऊरूमें ४०, वंक्षणमें १०, सब मिलानेसें एक पैरमें १५० स्नायु हुई, दोनोंमें ३०० और इसी प्रकार दोनों हाथोंकी मिलानेसे ६०० स्नायु होती हैं.

मध्यप्रान्तगतस्नायु ।

षष्टिःकट्यांमध्येअशीतिःपार्श्वयोःषष्टिरुरसित्रिंशत् ।

अर्थ–कमरमें ६० पीठमें ८० कूखमें ६० उरसंबंधी ३० सबमिलकर २३० होती हैं ।

ग्रीवासेलेकरऊपरकीस्नायु ।

षट्त्रिंशदूग्रीवायांमूर्ध्निचतुस्त्रिंशत् ।

अर्थ–ग्रीवा (नाड) में ३६ मस्तकमें ३४ मिलकर ७० होती हैं; पूर्वोक्त सर्वस्नायुमिलाने से ९०० स्नायु होती हैं. महास्नायुओंको कंडरा कहते हैं ।

चतुर्विधस्नायु ।

स्नायुश्चतुर्विधःप्रोक्तस्तंतुसर्वनिबोधमे ।
प्रतानवत्योवृत्ताश्चपृथव्यश्चसुषिराःखलु ॥
प्रतानवत्यः शाखासुसर्वसंधिषु चाप्यथ ।
वृतास्तुकंडराः सर्वाविज्ञेयाः कुशलैरिह ॥
आमपक्वाशयात्तेषु बस्तौचसुषिराःखलु ।
पार्श्वोरसितथापृष्ठे पृथुलाश्चशिरस्यथ ॥

अर्थ–स्नायु, चारप्रकारकीहै । प्रतानवती, वृत्त, पृथु और सुषिर । हाथपैरोंमें और संधियोंमें प्रतानवतीस्नायुहै । और जो वृत्तहै उनको कंडरा कहतेहैं । तथा आमाशय पक्वाशय और बस्तीमें सुषिर संज्ञकहैं । पसवाडोंमें छातीमें पीठ और शिरमें पृथुल संज्ञक स्नायु जाननी, स्नायुओंसे सर्वदेह बँधाहुआहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इसविषयमेंदृष्टांत।

नौर्यथाफलकास्तीर्णाबंधनैर्बहुभिर्युता।
भारक्षमाभवेदाशुतृयुक्तासुसमाहिता॥
एवमेवशरीरेस्मिन्यावंतःसंधयःस्मृताः।
स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेनभारसहानराः॥

अर्थ–जैसे नौका फलकोंसे व्याप्त और अनेक बँधनोंसे बंधीहुई। बोझाको सहनकरे हैं। और मनुष्य युक्त उत्तम तरनेका साधन होता है। उसीप्रकार इसदेहमें जितनी संधी हैं वो स्नायुओंकेंकै बँधी हैं इसीसे मनुष्य भारको सहन करसकताहै।

स्नायुप्रशंसा।

नह्यस्थीनिनवापेश्योनशिरानचसंधयः। व्यापादितास्तथाहन्युर्यथास्नायुः शरीरिणः। यःस्नायून्प्रविजानातिबाह्यांश्चाभ्यंतरांस्तथा। सगूढशल्यमाहर्तुंदेहात्शक्नोतिदेहिनाम्।

अर्थ–जैसा स्नायु विकृत होनेसे मनुष्योंको प्राणोंका भय होता है। ऐसा हड्डी, पेशी, संधी इत्यादिक विकृत होनेसे होवे। तथा जिस मनुष्यको बाहर और भीतर की स्नायुओंका उत्तमरीतिसे भेद मालुम है, वह, देहमेंसे गुप्तशल्य (कांटाआदि) काढनेमें समर्थ है ऐसा जानना।

५०० पेशीन्कोकहतेहैं।

पंचपेशीशतानि तासांचत्वारिंशतानिशाखासुकोष्ठे॥
षट्षष्टिः ग्रीवांप्रत्यूर्ध्वंचतुस्त्रिंशत्॥

अर्थ–परस्पर विभक्त ऐसे मांसावयव समूहोंको पेशीकहते हैं। वो ५०० पांचसौं हैं। तिनमें ४०० हाथ पैरों में, ६५ मध्यप्रदेश में, ३४ कंठसेलेकर ऊपरके भागमें हैं, परन्तु गयीआचार्य कहता है कि मध्यप्रदेश में ५० और ऊपरके भागमें ४०० पेशी हैं। परन्तु किसीआचार्यके मतसे सर्व ४०० पेशी हैं सो आगे लिखेंगे।

पेशियोंका पृथक् २ वर्णन।

एकैकस्यांपादाङ्गुल्यांतिस्रस्ताः पंचदश। दशप्रपदे पादोपरि कूर्चेसंनिविष्टास्तावन्त्यएव। दशगुल्फतलयोः। गुल्फजान्वन्तरे विंशतिः। पंचजानुनि। विंशतिऊरौदशवंक्षणे शतमेवमेकस्मिन्नूसक्थीनिभवंति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–एक एक पैरकी ऊंगलियोंमें ३ तीन तीन पेशी हैं। सब मिलकर १५ हुई, तथा पैरके अग्रभागमें १० और पैरके पृष्ठ भाग में १० गुल्फ और तलवेमें १० गुल्फ और घोटूके मध्यमें २० घोटूमें ५ जांघों में २० वंक्षणमें १० ऐसे एक पैरमें कुल १०० पेशी होती हैं। इसीप्रकार दूसरे पैरमें और दोनों हाथोंमें मिलाने से ४०० पेशी होती हैं।

मध्यप्रदेशकीपेशियोंकोकहते हैं।

तिस्रःपायौएकामेढ्रेसेवन्यांचापरद्वेवृषणयोःस्फिजोःपंच । द्वेवस्तिशिरासि । पंचोदरेनाभ्यामेकापृष्ठोर्ध्वसान्निविष्टाःपंचपंचदीर्घाः षट्पार्श्वयोर्दशवक्षसिअक्षकांसौप्रतिसमंतात्सप्तद्वेहृदयामाशययोः षट्यकृत्प्लीहोंदुकेषु ।

अर्थ–गुदामें ३ तीन पेशी हैं, उन्हीं को त्रिवली कहते हैं। एक लिंगमें १ और १ एक शीवनीमें, २ अंडकोशों में, १ कमरमें, २ बस्तीके ऊपरले भागमें, उदरमें १ नाभिमें, १० पैरोंमें ऊर्ध्वरचित लंबी है। कूखमें ५, वक्षस्थलमें १० दोनोंकन्धे और अक्षकमें मिलकर ७ हृदय में तथा आमाशय में यकृत, प्लीह, और उंदुक इन्हों में ६ पेशी हैं, ऐसे सब मिलकर ६६ पेशी होतीहैं। परन्तु गयीआचार्य वृद्धवाग्भटके मतको आलंबन करके कोष्ठमें ६० पेशी और ऊर्ध्वप्रदेशमें ४० पेशी हैं ऐसे कहता है।

ऊर्ध्वप्रदेशकी ३४ पेशियोंकोकहतेहैं।

ग्रीवायांचतस्रः अष्टौहन्वोः एकैकाकाकलकगलयोः द्वेतालुनि एकाजिह्वायांद्वेओष्ठयोः द्वेनासायांद्वेनेत्रयोः गण्डयोश्चतस्रोद्वे कर्णयोश्चतस्रोललाटेएकाशिरसीतिएवमेतानिपंचपेशीशतानि ।

अर्थ–नाडमें ४ पेशीहैं, ठोडीमें ८ काकलक (काक) में, गलेमें एकएक हैं, तालुएमें २ जिह्वामें १ होठोंमें २ नाकमें २ नेत्रोंमें २ दोनों गालोंमें चार, कानोंमें २ ललाटमें ४ मस्तकमें १ कुलजोडनेसे ३४ होतीहैं। सब मिलकर ५०० हुईये पेशी शिरा, स्नायु, अस्थि पर्व, संधी इनको धारण करती हैं। इसीसे शिरादिक बलवान् होकर सर्व देहको बल देती हैं।

स्त्रियोंकेपेशी अधिककहते हैं।

स्त्रीणांविंशत्यधिकास्तासांस्तनयोरेकैकास्मिन्पंचपंचयौवनेतासां

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

परिवृद्धिःअपत्यपथेचतस्रः प्रसृतेरभ्यंतरतोद्वेमुखाश्रितवृत्तेचद्वे गर्भोच्छिद्रसंश्रितास्तिस्रः शुक्रार्तवप्रवेशिन्योगर्भाशयेचातिस्रएव।

अर्थ–स्त्रियोंके वीस पेशी अधिकहैं, तिनमें स्तनोंमें पांच पांच मिलकर १० हैं, ये यौवन अवस्था आनेपर बडी हो जातीहै। योनिमें ४ पेशीहैं, तिनमें दो भीतर, और योनिकर्णिकाके पार्श्वोंमें वर्तुल तथा स्पर्श करके सुख देनेवाली २ पेशी हैं, तथा गर्भ मार्गमें गोल आंटेके समान ३ तीन, और गर्भाशयमें शुक्र आर्त्तवके प्रवेश करनेवाली ऐसी तीन ३ पेशी हैं। ऐसे सब मिलकर २० पेशीहुई; गर्भाशय योनीके तीसरे आवर्त्तमें रोहूमछलीके मुखके समान हैं।

पेशियोंकेस्थानविशेषकरकेस्वरूप।

तासांबहुलपेलवस्थूलाणुपृथुवृत्तह्रस्वदीर्घस्थिरमृदुश्लक्ष्णकर्कशा भावाः। संधिशिरास्नायुप्रच्छादकायथाप्रदेशस्वभावतएवभवति।

अर्थ–तिन पेशियोंमें बहुल कहिये बहुतसी, पेलव कहिये थोडी, सूक्ष्म मोटी विस्तीर्ण,गोल, छोटी लंबी, ऐसी आकृति करके अनेक प्रकारकी हैवह संधी, आस्थि, शिरा, स्नायु इन्होंके आच्छादन करनेवाली अपने २ स्थानमें स्वभाव करके कठिन कोमल, सुखस्पर्शवान् और दुःख स्पर्शवान् ऐसी अनेक प्रकारकी हैं।

स्त्रियोंके शिश्न औरवृषण नहींहै इसीसे उस जगेकी पेशियोंकी अन्यत्र कल्पना करके कहते हैं.

पुंसांपेश्यः पुरस्ताद्याः प्रोक्तालक्षणमुष्कयोः। स्त्रीणामावृत्यतिष्ठंतिफलमंतर्गतंहिताः॥

अर्थ–प्रथम पुरुषके तीनपेशी अर्थात् एक शिश्नमें, तथा दोवृषणमें जो कही हैं। वो तीनोंपेशी स्त्रीके गर्भाशयमें रहतीहैं। ऐसा कोई आचार्य कहते हैं, परंतु गयीआचार्य इस तंत्रांतरके प्रमाणको नहीं मानताहै। पांचसौं पेशी हैं ऐसे जो वचन कहाहै उसमें (पुंसां) इस पदकरके पुरुषोंके ५०० हैं। और स्त्रियोंके तीन पेशीन्यून हैं ऐसा व्याख्यान करताहै।

इस्मेंभोजवचनप्रमाण।

पंचपेशीशतान्येवस्त्रीवर्ज्यंविद्धिभूमिप। अतश्चतस्रोहीयंतेस्त्रीणांशेफसिमुष्कयोः॥

अर्थ–भोजकहताहै कि, हेराजन्! पेशी ५०० हैं; परंतु स्त्रियोंके विना. इसका

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कारण यह है कि, शिश्न और वृषण संबंधी पेशी स्त्रियोंके नहींहै, इसीसे स्त्रियोंके तीन पेशी न्यूनहैं । गर्भाशयका स्वरूप प्रथम लिखआएहैं, अतएव इसजगे छोड-दियाहै ।

मतांतरेण पेशीसंख्यानम् ।

मानवदेहेचत्वारिपेशीशतानिसन्ति ।
सुश्रुतस्तुपंचशतान्याहतासांकतिचिद्विशेषेणोच्यन्ते ।

अर्थ–मनुष्यके देहमें ४०० चारसौ पेशीहै । परंतु सुश्रुतके मतमें ५०० पांचसौं मानीहैं । इनमें कोई पेशीके विषय विशेषको वर्णन करतेहैं ।

मूर्द्धन्युपरितएकातन्वीकरोटेःपश्चादस्थ्नःशंखास्थिभ्यांच
समुत्थायमूर्द्धोर्ध्वमतिव्याप्यतत्रचकण्डरामयीसतीललाटा
धःपेशीपर्यंतमागता । एतयाभ्रुवावूर्ध्वमाकृष्येते ।

अर्थ–मूर्धदेश अर्थात् मस्तकके ऊपरके भागमें एक पतली पेशीहै । यह करोटिके पिछाडीकी हड्डी तथा दोनोंकनपटीकी हड्डीसे उत्पन्नहोकर मस्तकके ऊपरके भागमें व्याप्त होकर और इसीस्थानमें कंडरास्वरूपहोकर ललाटकी अधस्थपेशी पर्यंत आयकर प्राप्तहुईहै । यह मध्यमें कंडरामय और दोनों प्रान्तोंमें मांसमय हैं। इन दोनों पेशी करके दोनोंभ्रू (भौंह) ऊपरको खींची हुईहैं ।

कर्णदेशयोस्तिस्रस्तिस्रोयथाक्रमंपश्चादूर्ध्वमाभिमुख्येच
स्थिताः आभिःकर्णौपश्चादूर्ध्वमाभिमुखेचाकृष्येते ॥

अर्थ–प्रत्येक कर्ण प्रदेशमें तीन तीन पेशी हैं, इनकी यथाक्रमसे दोनों कानोंके पिछाडी ऊपर और सन्मुखमें स्थिति है; इन्होंसे दोनों कान पिछाडी ऊपर और सन्मुखकी तरफ खींचे हुए है ।

समंतान्नेत्रवर्त्मपरिवेष्टयस्थितैकानेत्रंनिमीलयति ।
नयनपुटाधःस्थितापरा भ्रुवौपरस्परासन्नेकरोति ।
अन्येकाश्रुनाडीमन्तराकर्षति ॥

अर्थ–नेत्रके पलकोंको वेष्टन करके रहनेवाली एक पेशी है इस करके नेत्र मूंदतेहैं, नेत्रपुटके नीचे एक पेशी है उसकरके दोनों भौंह परस्पर मिली रहती हैं, और एक पेशी अश्रुनाडीको भीतरकी तरफ खींचे है । ऐसे दोनों बगलमें इसी प्रकार पेशी हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नेत्रस्थानांपेशीनांकयाचिदूर्ध्ववर्त्मऊर्ध्वमाकृष्यते। कयाचिन्नेत्रमण्डलमूर्ध्वंकयाचिदधःकयाचिदन्तःकयाचिद्बहिराकृष्येते। कयाचिदन्तराभितःकयाचिद्बहिःपश्चाद्घूर्ण्यते।

अर्थ—नेत्रमें कितनीक पेशीहैं, तिन्होंमें एक पेशीसें नेत्रके ऊपरका पलक ऊपरकी तरफ खींचाहुआ है; और एक पेशी द्वारा नेत्रमंडल ऊपरको एकसे नीचेको, एक से भीतरको, तथा एक पेशीद्वारा बाहरको खींचाहुआहै। और दो पेशीमें से एकसे नेत्रमंडल भीतर तथा आगेको और दूसरी पेशी द्वारा पिछाडी और बाहरकी तरफ भ्रमण करतेहे।

नासादेशेतिस्रोनसोनमनादिक्रियाःकुर्वंति।

अर्थ—नासिकामें तीन पेशीहैं, इन पेशियोंके द्वारा नासिकाकी नमनादि क्रिया निर्वाहित होतीहै।

ओष्ठस्थानांपेशीनांकयाचिन्मुखसंवृतिःकयाचिदोष्ठनसोरूर्ध्वाकर्षणंकयाचिदोष्ठस्योर्ध्वाकर्षणंकयाचिदास्यप्रान्तयोरन्तराकर्षणंकयाचित्तयोरूर्ध्वाकर्षणंकयाचिद्धास्यंकयाचिन्नासापुटसंवरणंचसंपाद्यतेइति।

अर्थ—ओष्ठस्थ पेशियोंमें से किसीके द्वारा मुखका आच्छादन, किसीकेद्वारा होठ और नासिका ऊपरकी तरफ खींचना, किसीकेद्वारा मुख प्रान्तद्वयका भीतरकी तरफ आकर्षण, किसीके द्वारा मुखप्रान्तोंका ऊपरकी तरफ आकर्षण होना, किसीके द्वारा हास्यक्रिया उसीप्रकार किसीके द्वारा नासिकापुटका आच्छादन होता है।

अधरस्थानांकयाचिदधरस्याधस्तादाकर्षणंकयाचिदूर्ध्वाकर्षणंकयाचित्सृक्कद्वयस्याधस्तादाकर्षणंसंपाद्यते।

अर्थ—अधरस्थ पेशियोंमें से किसीके द्वारा अधरकानीचेकी तरफ खींचना और किसीके द्वारा ऊपरको खींचना, उसी प्रकार किसीके द्वारा मुख प्रान्तद्वय (दोनोंहोठोंका) नीचेकी तरफ आकर्षण होताहै।

हन्वस्थाभिरूर्ध्वहन्वस्थाभिश्चहन्वस्थऊर्ध्वाकर्षणंमुखांतर्गृहीततोयादीनांबहिःक्षेपणंहन्वस्थिचालनमित्याद्याःक्रियाःसंपाद्यन्ते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–ठोडीके तथा ऊपर ठोडीके रहने वाली पेशियोंमें किसीके द्वारा ठोडीकी हड्डीका ऊपरकी तरफ आकर्षण, किसीके द्वारा मुखमें पीये हुए पानी आदिका बाहरको गेरना तथा किसीके द्वारा ठोडीकी हड्डीका इधर उधरको चलाना इत्यादि क्रियाओंका निर्वाह होताहै ।

ग्रीवास्थिताभिश्चिबुकाधश्चर्मणोधोऽवनमनंमुखमंडलस्येतस्ततश्चालनम् (आभ्यामेवशिरोमंडलस्याभिनमनंसंपाद्यते)।जिह्वामूलस्थितस्यास्थ्नःकंठस्यचाधोनमनंमास्यव्यादानंजिह्वाचिबुकयोरधोनमनमभ्यवहरणंतालवधोनमनंतदूर्ध्वाकर्षणमुपजिह्वानमनंपर्शुकानामूर्ध्वाकर्षणंपृष्ठवंशस्यनमनंशिरोमंडलस्यघूर्णनंचेत्याद्याःक्रियाःसंपाद्यंते ।

अर्थ–ग्रीवादेशस्थ पेशियोंमें से किसीके द्वारा चिबुक (ठोडी) के नीचेके चर्मका अधोभागमें लटकना होताहै, किसीके द्वारा मुखमंडलका इतस्ततो चालन क्रिया (इन दो पेशियोंके द्वारा शिरोमंडलका सन्मुखको नवन क्रिया होती है) किसीके द्वारा जिह्वामूलास्थिका और कंठका नीचेको नवना (झुकना) होता है, किसी के द्वारा गलेका नीचेको करना आदिकर्म । किसीकेद्वारा तालुएका लटकना, किसी के द्वारा तालुएका ऊपरको आकर्षण होना, किसीके द्वारा उपजिह्वाका नवना, किसीके द्वारा पांशुओंका ऊपरको आकर्षण होना, किसीके द्वारा पृष्ठवंशका नवना, उसी प्रकार किसी पेशीके द्वारा शिरका फिरना इत्यादि क्रियाओंका निर्वाह होता है ।

पृष्ठस्थाभिः स्कंधस्यपश्चादूर्ध्वंचाकर्षणंमध्यकायस्याभितःसमाकर्षणंपृष्ठवंशस्यर्जुकरणमित्याद्याः क्रियाःसंपाद्यन्ते ।

अर्थ–पृष्ठस्थ पेशियोंमें से किसीकेद्वारा कंधेका पीछेको और ऊपरको आकर्षण, किसीकेद्वारा मध्यदेहका सन्मुखकी ओर आकर्षण, उसीप्रकार किसी पेशिकेद्वारा पृष्ठवंशका नम्रता होना इत्यादि क्रियाओंका निर्वाह होता है ।

वक्षस्येकैकास्मिन्पार्श्वेपर्शुकानांबहिर्देशमभिव्याप्यैकादशैकादशसन्ति । तासामेकैकाद्वेद्वेपर्शुकेअभिव्याप्यवर्त्तते । एवमंतरेकादशैकादश । उरोऽस्थ्येकातदस्थ्नोऽधोभागाश्चतुर्थीपञ्चमीषष्ठीनांपर्शुकानांतरुणास्थिपर्यंतमुपस्थिता । वक्षस्थलेएकाउदरवक्ष

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सीपृथक्करोति । आभिः श्वसनप्रश्वसनशोणितयंत्रधारणाद्याः क्रियाः सम्पाद्यन्ते ।

अर्थ–वक्षस्थलके एक एक पार्श्व में पांशुओंके बहिर्देशमें व्याप्त ११ ग्यारह पेशीहैं, तिनमें एक एक पेशी दोदो पांशुओं में लिपटी हुई हैं, इसी प्रकार पांशुओं-के भीतरभी ११ पेशी प्रत्येक पसवाडे में एक एक, दोदो पांशूनमें व्याप्त होकर रहती हैं । उरोस्थि अर्थात् छातीकी हड्डी उसके अधोभागसे लेकर चौथी, पांचवीं तथा छठवीं पर्शुकाके तरुणास्थिपर्यंत रहनेवाली एक पेशी है, वक्षस्थल में उदरके ऊपर एक पेशी है, इसके द्वारा उदर और वक्षस्थल पृथक् होते हैं, इसी वक्षस्थल में उदरके ऊपरवाली पेशीके द्वारा निःश्वास और रुधिरयंत्र धारण आदि कार्य संपादन होते हैं ।

उदरास्थिताभिर्वमनरेचनमूत्रणप्रसवनाद्याःक्रियाःसंपाद्यन्ते । गुह्य स्थिताभिर्मूत्रणरेचनपायुसंकोचनलिंगोत्थापनादीनिकर्माणि ।

अर्थ–उदरस्थ पेशियोंके द्वारा वमन, रेचन, मूत्रण,तथा संतान प्रसवनादि कार्य होतेहैं । गुह्यस्थ पेशियोंकेद्वारा मूतना, दस्तहोना, गुदाका संकोचन और लिंगका उठना आदि कार्य होते हैं ।

उरोस्थिजत्रुपर्शुकांशप्रगण्डप्रकोष्ठकराङ्गुल्यादिषुबह्व्यःपेश्यः सन्ति । ताःश्वसनालिंगनबाहुचालनग्रहणक्षेपणादीनिबहूनि कर्माणिकुर्वन्ति ।

अर्थ–छातीकी हड्डी, जत्रुस्थान, पांशू, कंधे, बाजू, कलाई, हाथ और उंगली आदि इन स्थानों में बहुतसी पेशी हैं । वे श्वसन (श्वासकालेना) आलिंगन, भु-जाओंका चलाना, तथा द्रव्यकालेना देना इत्यादि बहुतसे कार्यको करे हैं ।

श्रोणिस्थानामेकातिपृथुलाश्यंत्रिकश्रोण्यस्थितऊर्वस्थ्नऊर्ध्व भागपर्यंतमागता । श्रोणिप्रदेशेअपराअपिकतिपयाः सन्ति । आभिः सुखास्याऊर्वस्थ्नोवहिराकर्षणंक्रमणंतथैवंविधान्यन्या निचकर्माणिनिष्पाद्यन्ते ।

अर्थ–श्रोणिस्थ अर्थात् कमरमेंस्थित पेशियोंमें एक अतिस्थूल पेशी है । यहत्रिक तथा श्रोण्यस्थिसें लेकर ऊरूकी हड्डीके ऊर्ध्वांश पर्यंत आयकर समाप्त हुई है, श्रोणिप्रदेशमें औरभी कितनीएक पेशी हैं । इन्हीं पेशी समूहके द्वारा सुखपूर्वक

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बैठना, जांघकी हड्डीका बाहरकी तरफ आकर्षण, तथा पैरोंका उठाना धरना उसी प्रकार और अनेक प्रकारके कार्य निर्वाहित होतेहैं ।

ऊरुजंघापादाङ्गुलिस्थाभिः सक्थिसंचालनदंडायनगमन प्रभृतीनिकर्माणिसम्पाद्यन्ते ।

अर्थ–ऊरू, जंघा, पैर, तथा पैरकी उंगलीमें रहनेवाली पेशियोंके द्वारा पैरोंका संचालन, तथा पैरोंका सीधा होना और गमन इत्यादि कार्य होते हैं ।

पादयोस्तलतः पृष्ठेग्रीवायामपिताः स्थिताः ।
उपर्युपरिभावेन स्वंस्वं कुर्वंति कर्मच ॥

अर्थ–पैरोंकेतलुए, पीठ, ग्रीवादेशमें पेशीगण ऊपरऊपरभावकरके स्थितहोकर अपनेअपने कर्मोंकोकरतीहै ।

पेश्यःकुर्वंतिकर्माणिनिखिलानिशरीरिणाम् । गोपयन्तिचकुल्या निजनयन्तिसुखानिच । नाभविष्यन्नथैताश्चेद्गतिस्पन्दविवर्जिताः । काष्ठीभूतामृतप्रायाअभविष्यन्हिदेहिनः । भारवाहोगतिः स्पन्दोव्यायामः श्वसनंस्थितिः । आस्योपगूहणंहास्यंगीतिर्नर्तन वादने । विहाराहारनिर्हाराश्चुंबनंशयनंरतिः । गर्भोत्पत्तिस्तत्सव नंसर्वंपेशीकृतंमतम् । अथकिंबहुनोक्तेनप्राणिनांप्राणधारणे । कारणानिप्रधानानिपेश्यएवेतिनिश्चितम् ॥

अर्थ–पेशीसमूह मनुष्योंके सर्वकार्यकरेहैं, ये हड्डियोंके समूहकीरक्षा और अनेकप्रकारके सुखोत्पादन करेहैं, यदि कदाचित् पेशी नहोवे तो जीवगण हलनाचलना, आदि शक्तिशून्य लकडीकेसमान और मृतप्रायहोजावे-बोझेको लेचलना, गमन, स्पन्दन, दंडकसरत, श्वासक्रिया, ठहरना, बैठना, आलिंगन, हास्य, नृत्य, गीत, बाजाबजाना, विहार, आहार, मलमूत्रोत्सर्ग, चुम्बन, शयन, शृंगार, गर्भोत्पत्ति और संतानका प्रसव इत्यादि समुदायक्रिया पेशियोंके द्वाराहोतीहै । अथवा बहुतकहनेसैं क्याहै; प्राणियोंके प्राणधारणमें पेशीही प्रधान कारणहै यह निश्चितहै ।

मूढगर्भ निकालनेकेलिये गर्भकी स्थिति कहतेहैं ।

अभुग्नोभिमुखःशेतेगर्भोगर्भाशयेस्त्रियः ।
सयोनिशिरसायातिस्वभावात्प्रसवंप्रति ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ—गर्भ गर्भाशयमें सन्मुख तथा अंगोंको संकुचितकरके रहताहै, वह पूर्वकर्मके आक्षेपकरके प्रसवके समय योनिकेप्रति मस्तककी तरफसें आताहै ॥

अबशल्यतंत्रकी उत्कृष्टतादिखाते हैं।

त्वक्पर्यंतस्यदेहस्ययोयमङ्गविनिश्चयः। शल्यज्ञानादृते नैववर्ण्यतेङ्गेषुकेषुचित्। तस्मान्निःसंशयज्ञानंहर्तुंशल्यस्यवांछति। धावयित्वामृतंसम्यगद्रष्टव्योङ्गविनिश्चयः ॥

अर्थ—त्वचा; हड्डीआदिपर्यंत देहके अंगोंका निश्चय (अर्थात् इसमें इतनी हड्डी, नस, नाडी, कंडरा, पेशी, धमनी, त्वचा, आदिहै, इस्का यथार्थ विश्वास) विना शल्यतंत्रकेजाने किसी अंगका नहींहोवे। अतएव शरीरमें गुप्तशल्य (कांटा खोबराआदि) के काढनेवाले वैद्यको निःसंदेह सर्व अंगोंका ज्ञान होना अति आवश्यक है। इसीसें शल्यचिकित्सक (जर्राह) को उचितहै कि, मुर्देके देहको अच्छीरीतिसे पानीसें धोयकर चीरे और चीरकर एकएक अंगके पृथक् २ पुर्जे करके देखे।

मृतदेहके देखनेकी विधि।

तस्मात्समस्तगात्रमविषोपहतमदीर्घव्याधिपीडितमवर्षशतकं निष्कृष्टांत्रंपुरुषमवहनयापगायांनिवद्धंपंजरस्थं मुंजवल्कल कुशादीनामन्यतमेनावेष्टिताङ्गप्रत्यङ्गमप्रकाशेदेशे कोथयेत्। सम्यक्प्रकुथितंचोद्धृत्यततोदेहंसप्तरात्रादुशीरवालवेणुवल्कजमूर्वानामन्यतमेनशनैःशनैरवधर्षयंस्त्वगादीन्सर्वानेवबाह्याभ्यन्तराङ्गप्रत्यङ्गविशेषान्यथोक्तान्लक्षयेच्चक्षुषेति ॥

अर्थ—अब शास्त्रदृष्टको प्रत्यक्ष कैसे देखे इसवास्ते कहतेहैं कि,किसी तत्काल मरेहुए मुर्देको लेवे, जिस्का कोई अङ्ग खंडित न हुआहो; और जिस्का देहलेवे वो मनुष्य विषादिक से न मराहो क्योंकि विषखानेसे या विषैल जानवरके काटने से अथवा विषके स्पर्शसे जो मनुष्य मरता है उसकी त्वचाआदि विखरजाते हैं; उसी प्रकार जो बहुतदिन बीमाररहाहो उसकाभी देह न लेवे, क्योंकि जो बहुतदिन बीमाररहता है उसकी त्वचाआदि सूखजाती है, उसीप्रकार जिस्की सौ१०० वर्षकी अवस्था न हो, क्योंकि सौवर्षकी अवस्थाहोने से मनुष्य अत्यंत बुड्ढा होजाता है, अत्यंत बुढापेसे भीदेहके अङ्ग और प्रत्यंग यथार्थ नहींरहते हैं; इसी से उक्तलक्षणों करकेहीन मुर्देकी देह को लेकर उसकेभीतरसे आंतोंको निकालडाले; पीछे मूंज, या बक्कल अथवा कुशाआदिसे अङ्गप्रत्यंगोंको लपेट किसीपेटी अथवा पिंजडे में बन्दकर, जिस्में कोईमनु-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ष्य आते जाते नहो और जिसजगे उजेला न होवे ऐसीनदी में उसपेटीको डालकर किसीरस्सी से बांधदेवे कि जिस्से वो देह सडजावे; इसप्रकार जब अच्छीरीतिसे सडजावे तब उसदेहको निकाल सातरात्रिपर्यंत उसीर, नेत्रवाला, वास, और मूर्वा,इनमेंसे किसीएकसे घिसे और धीरेधीरे शस्त्रादिकसे चीर त्वचा, मांस, पेशी, नस, नाडी, आदिको पृथक् पृथक् करता जाय और देखताजावे इसप्रकार बाहर और भीतरके प्रत्येकअंग और प्रत्यंगोंको पुर्जेपुर्जे करके शास्त्रोक्तोंको अपनेनेत्रोंसे प्रत्यक्षदेखें (इसजगे मूंजआदिसे जो लपेटनालिखाहै सो इसवास्ते है कि खुलेहुए देहको जल में रखनेसे मछली आदि जीव खाजावें तो फिर संपूर्ण अवयव नहींरहते और पेटीमें रखने से यह प्रयोजन है कि, विनापेटीके रखने से कदाचित् जलके वेगसे छिन्नभिन्न न होजावे, और गृध्रादिक भक्षणके भयसे अंधेरे में रखना कहाहै.)

प्रत्यक्षदेखनेकाफल ।

प्रत्यक्षतोहियद्दृष्टंशास्त्रदृष्टंचयद्भवेत् ।
समागम्यद्वयं तत्रभूयोज्ञानविनिश्चयः ॥

अर्थ–जो नेत्रादिद्वारा प्रत्यक्षदेखा और शास्त्रदृष्ट अर्थात् शास्त्रपढ़कर अनुभव करागया इनदोनोंको प्राप्तहोने से अंगोंके ज्ञानका निश्चय होता है ।

देहकीचक्षुइंद्रीकरकेग्राह्यहै क्षेत्रज्ञपुरुषनहींहै इसबातकोकहतेहैं ।

नशक्यश्चक्षुषाग्राह्योदेहेसूक्ष्मतमोविभुः ।
दृश्यतेज्ञानचक्षुर्भिस्तपश्चक्षुर्भिरेववा ॥

अर्थ–देह में आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म है, इसी से नेत्रद्वारा नहींदीखे; वो ज्ञानचक्षु अर्थात् ज्ञानी पुरुषों को और तपश्चक्षु अर्थात् तपस्वियों को ज्ञान और तपके प्रभावसे दीखे है ।

शास्त्रऔरप्रत्यक्षदेखनेकाफल ।

शरीरेचैवशास्त्रेचदृष्टार्थःस्याद्विशारदः ।
दृष्टश्रुताभ्यांसंदेहमपोह्यारभतेक्रियाम् ॥
सौश्रुतशारीरेपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अर्थ–शरीर और शास्त्र इन्हों में सर्वअर्थ देखने से मनुष्य कुशल अर्थात् चतुर होताहै इसीसे दृष्ट और श्रुत दोनोंप्रकारसे संदेह निवृत्तिकरके छेदन भेदन आदि क्रियाकरनीचाहिये । इसलिखनेसे यह प्रयोजनहै कि, प्रथमतो शरीरकेग्रंथ गुरुमुखसे पढे पश्चात् गुरुके आगे मुर्देको चीर २ के शास्त्रके लेखानुसार मिलानकरे और

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जो हड्डी; पेशीआदि समझमें न आवे उसको उसीसमय गुरूसेपूछकर संदेह निवृत्त करलेवे; इसप्रकार मनुष्य शल्यशास्त्रकी क्रियाओंमें कुशलहोता है । चीरनेफारनेका विशेष विस्तार शारीरकी समाप्तिके पश्चात् कहेंगे ।

इति श्रीमदयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरेनवमस्तरंगः ॥ ९ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

शरीरसंख्याव्याकरणाध्यायमें मांसशिरा आदिका वर्णनहै; और मर्म मांस शिरा आदिके आश्रय हैं, इसीसे मर्मकहना चाहिये सो मर्मोंकोकहते हैं ।

अथातःप्रत्येकमर्मनिर्देशंशारीरंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ–मांस, शिरा, इत्यादिकोंके वर्णनके अनंतर मांसादिमर्मकथनरूप शारीराध्यायको कहते हैं.

मर्मोंकीसंख्या ।

सप्तोत्तरंमर्मशतम् । तानिमर्माणिपंचात्मकानिभवंति । तद्यथा । मांसमर्माणि शिरामर्माणि स्नायुमर्माणि अस्थिमर्माणि सन्धिमर्माणिचेति ।

अर्थ–मर्म १०७ एकसैंसातहैं, वो पांच प्रकारके होते हैं; उनको कहते हैं. मांसमर्म, शिरामर्म स्नायुमर्म, अस्थिमर्म, और संधिमर्म, ए पांच प्रकारहैं ।

मांसादिभेदकरके मर्मोंकी संख्या ।

तत्रैकादशमांसमर्माणि । एकचत्वारिंशत्शिरामर्माणि । सप्तविंशतिःस्नायुमर्माणि । अष्टावस्थिमर्माणि । विंशतिः सांधिमर्माणि ।

अर्थ–मांसमर्म ११, शिरामर्म ४१, स्नायुमर्म २७, अस्थिमर्म ८, संधिमर्म २०, सबमिलनेसे १०७ होते हैं ।

मांसमर्मोंको कहते हैं ।

चत्वारितलहृदयानितावंत्येवेन्द्रवस्तीनिगुदमेकंद्वेस्तनरोहिते ।

अर्थ–मांसमर्म ११ है, उनमें तल हृदयमें ४ तथा इन्द्रवस्तिसंज्ञक ४ गुद १ और स्तनरोहितसंज्ञक २ इसप्रकार जानने । वाग्भट मांसमर्म १० कहता है ।

शिरामर्म ।

चतस्रोधमन्यःअष्टौमातृकाःचत्वारिशृंगाटकानिद्वेअपाङ्गेएकास्थप

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

णीफणौद्वेस्तनमूलेद्वावपस्तंबौद्वावपलापौएकंहृदयंएकानाभीद्वौपार्श्वसंधीद्वेबृहत्यौचत्वारिलोहिताक्षाणिचतस्रऊर्ध्वःएवमेकचत्वारिंशत्

अर्थ–शिरामर्म ४१ कहे हैं, तिनमें ग्रीवासंबंधी धमनी ४ मातृका ८ शृंगाटकमें ४, अपांग २, स्थपणी १, फण २, स्तनमूलमें २, अपस्तंब २, अपलाप २, हृदय १, नाभी१ पार्श्वसंधी २, बृहती २, लोहिताक्ष, ४, ऊर्वी ४, ऐसेइकतालीस होतेहैं; वाग्भटमें ३७ सैंतीसशिरामर्मकहेहैं ।

स्नायुमर्म ।

चतस्रआण्येद्वौविटपौद्वौकक्षधरौचत्वारःकूर्चाश्चत्वारिकूर्चशिरांसिएकोबस्तिश्चत्वारिक्षिप्राणिद्वावंसौद्वेविधुरेद्वावुत्क्षेपौएवंसप्तविंशतिः ।

अर्थ–स्नायुमर्म २७, कहे हैं, उनमें आणिसंज्ञक ४, विटप २, कक्षधर २, कूर्च ४ कूर्चशिर ४, वस्ति १, क्षिप्रसंज्ञक ४, अंश २ विधुर २ उत्क्षेपसंज्ञक २ इस प्रकार स्नायुमर्म २७, कहे हैं. वाग्भट स्नायुमर्म २३ कहते हैं ।

अस्थिमर्म ।

द्वेकटीतरुणेद्वौनितंबौद्वेअंशफलकेद्वौशंखौएवमष्टौ ।

अर्थ–अस्थिमर्म ८ हैं; तिनमें कटितरुण संज्ञक २ नितंब २ अंसफलक २ और शंख २ ऐसे ८ हैं ।

संधिमर्म ।

द्वेजानुनीद्वौकूर्परौपंचसीमंताःएकोधिपतिरितिद्वौगुल्फौद्वौमणिबंधौद्वेककुंदरेद्वावावर्त्तौद्वेकृकाटिकेएवंविंशतिः ।

अर्थ–संधिमर्म २० हैं, तिनमें जानुसंबंधी २ कूर्पर (कलाई) संबंधी २ सीमंत संज्ञक ५ अधिपति संज्ञक १ गुल्फ संबंधी २ मणिबंध (पहुचा) संबंधी २ ककुंदरसं० २ आवर्त्त संज्ञक २ कृकाटिका संज्ञक २ इस प्रमाण जानने वाग्भट ९ धमनीमर्म पृथक् कहकर १०७ मर्मोंकी पूर्ण संख्या करीहै । अर्थात् जैसे सुश्रुत मांस, शिरा, स्नायु, हड्डी, और सांधि ए पांच प्रकारके मर्म कहता है उसी प्रकार वाग्भट मांस, हड्डी, स्नायु, धमनी, शिरा, और संधि इनेके मिलाप होनेवाले स्थानोंको ६ प्रकारके मर्म कहता है ।

मर्मोंकीविशेषज्ञानहोनेकेवास्तेप्रदेशकहतेहैं ।

तेषामेकादशैकस्मिन्सक्थीनिभवंति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-एकसो सात मर्मोंमेंसें एक पैरमें ११ मर्महैं; इसी प्रकार दूसरा परै और दोनों हाथोंके मिलानेसें ४४ मर्म होते हैं; पैरके मर्मोंके नाम-क्षिप्र १ तलहृदय १ कूर्च १ कूर्चशिरस १ गुल्फ १ इन्द्रबस्ति १ जानु १ और ऊर्वी १ लोहिताक्ष १ विटप १ इस जगे तल और हृदय पृथक् २ गणना करनेसें ११ संख्या होतीहै। इन क्षिप्रादिकोंके लक्षण स्वयं आचार्य आगे कहेगा इसीसें यहां व्याख्या नहीं करी। उदर और उरके मिलानेसें बारह १२ मर्म और पीठमें १४ ग्रीवासें लेकर ऊपरके भागमें ३७ मर्म। उदर उर इन्होंके मर्मोंके नाम-गुद १ बस्ति १ नाभि १ हृदय १ स्तनमूल २, स्तनरोहित २ अपलाप २ अपस्तंभ २ ऐसें बारहहैं। पीठके १४ मर्मोंके नाम-कटितरुण २, ककुंदर २, नितंब २ पार्श्वसंधी २, बृहती २, अंसफलक और अंश २ ये चौदहहुए। पैरके ११ मर्मोंके जो नाम कहे हैं वोही हाथोंके मर्मोंके नाम जानने। परंतु गुल्फ और विटप इनस्थानोंमें मणिबंध और कक्षधर ये पृथक् हैं। जत्रुके ऊपर ३७ मर्म हैं, उनके नाम-धमनी ४ मातृका ८, कृकाटिका २, विधुर २, फण २, अपांग २, आवर्त्त २, उत्क्षेप २, शंख २, स्थपणी १, सीमंत ५, शृंगाटक ४, अधिपति १, इस प्रकारहैं।

मर्मोंके पांच प्रकार।

सद्यःप्राणहराणिकालांतरप्राणहराणि
शल्यघ्नानिवैकल्यकराणिरुजाकराणि।

अर्थ-मर्म पांच प्रकारके हैं। किसी मर्ममें चोटलगनेसें तत्काल (आठदिनमें) मरे, वो सद्यःप्राणहारक, तथा कोईकालांतर प्राणहारक कहिये महिने या पक्षमें मरताहै, कोई विशल्य कहिये शल्य निकलजानेके पश्चात् मरे तथा कोई वैकल्यकर (जिसमें विकार होनेसें विकलताहोवे) और एक रुजाकर अर्थात् जिस्में किसी प्रकारका विकार होनेसें अत्यंत पीडा होवे, सद्यःप्राणहरण करनेवाले मर्म १९हैं. कालांतर प्राणहारक मर्म ३३ हैं, विशल्यघ्न ३, वैकल्यकर ४४ और रुजाकर ८ सबमिलकर १०७ हुए।

सद्यःप्राणहरमर्म।

शृङ्गाटकान्यधिपतिःशंखौकण्ठशिरागुदम्।
हृदयंबस्तिनाभीच हंतिसद्योहराणितु॥

अर्थ-शृंगाटक ४ अधिपति १ शंख २ कंठसंबंधी शिरा ८ जिनको मातृका कहते हैं, गुदा १ हृदय १ बस्ति १ और नाभी १ ऐसे १९ मर्म सद्यःप्राणहर हैं। कालांतर प्राणहारक ३३ मर्म हैं उन्होंकेनाम। वक्षस्थलसंबंधि स्तनमूलमें २

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्तनारोहित २ अपलाप २ अपस्तंब २ सीमंत ५ तलहृदय ४ क्षिप्र ४ इन्द्रबस्ति ४ कटितरुण २ पार्श्वसंबंधी २ बृहती २ नितंब २ ऐसे ३३ हैं ।

विशल्य ३ मर्मोंके नाम । उत्क्षेप २ स्थपणी १ ऐसे ३ मर्म हैं ।

वैकल्यकारक ४४ मर्म उन्होंके नाम । लोहिताक्ष ४ आणी ४ जानु २ ऊर्वी ४ कूर्च ४ विटप २ कूर्पर २ ककुंदर २ कक्षधर २ विधुर २ कृकाटिका २ अंस २ अंसफलक २ अपांग २ नीलधमनी २ मन्या २ फण २ आवर्त २ ऐसे ४४ हुए ।

रुजाकर ८ मर्म उनके नाम । गुल्फ २ मणिबंध २ कूर्चशिरस ४ ऐसे ८ हैं ।

अब प्राणहरादि मर्मोंके कार्य और उसमें युक्ति ।

मर्माणिमांसशिरास्नाय्वस्थिसंधिसंनिपाताः ।
तेषुस्वभावतएवविशेषेणप्राणास्तिष्ठंति ।

अर्थ–मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और संधि इनका सन्निपात कहिये अत्यंत मिलना उसको और उसमें अग्न्यादिक प्राणस्वभाव करके रहते हैं उसको मर्म कहते हैं । उसमें चोटआदि विकार होनेसैं भ्रम, प्रलाप, पतन और प्रमेह इत्यादि उपद्रव होते हैं ।

मर्मोंके भेदका कारण ।

तत्रसद्यःप्राणहराणिआग्नेयानिकालांतरप्राणहरा
णिसौम्यानिविशल्यघ्नानिवायव्यानिवैकल्यरा
णिसोमवायव्यानिअग्निवायव्यानिरुजाकराणि ।

अर्थ–जिस मर्ममें अग्निरूप प्राण रहते हैं वह तत्काल मारे हैं, कारण यह है कि, अग्निमें शीघ्रता बहुतहै । तथा शीतरूप प्राण जिस मर्ममें रहते हैं, वह कालांतरमें मृत्यु करेहै । कारण यहहै, कि सोम(कफ) स्थिर है । इसीसैं विलंबमें प्राणहरण करे हैं; और वायुरूप प्राण जिस मर्ममें रहतेहैं, वह विशल्यघ्न है, क्योंकि शल्यसे वायु रुका रहता है उस शल्यके निकलतेही उसमें वायु निकलकर प्राणीको मारेहैं । तथा जिस मर्ममें कफ वायु दोनों रहतेहैं वह वैकल्यकारक और जिस मर्ममें अग्नि और वायु रहते हैं वो पीड़ाकरता जानना ।

मर्मभेदके दूसरे कारण ।

केचिदाहुर्मांसादीनांपंचानामपिसमृद्धानांसमवायात्सद्यःप्राण
हराणिएकहीनानामल्पानांवाकलांतरप्राणहराणिद्विहीनानांवि
शल्यघ्नानित्रिहीनानांवैकल्यकराणिएकस्मिन्नेवरुजाकराणि ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–कोई आचार्य ऐसे कहते हैं, कि मांसादिक पांच पदार्थ जिस एक मर्ममें हैं वह सद्यःप्राणहारक और उनमें एकही न होनेसे अथवा आघातादि अल्पहोनेसे कालांतरमें प्राणहरण करेहैं । और जिसमें मांसादि दो पदार्थ न होवे वो मर्म विशल्यघ्न जानना, तथा तीन पदार्थ न्यून होनेसे वैकल्यकारक और मांसादिक एकही होय तो वह मर्म रुजाकर जानना; यद्यपि गुद, बस्ति, नाभि, हृदय ये मर्म सद्यप्राणहारक हैं, इनमें हड्डी प्रगट नहीं दीखे परन्तु अव्यक्त अस्थिकी शक्तिकरके सद्यः प्राणहर कहे हैं ।

स्तनमूल, अपलाप, अपस्तंब, सीमंत, कटितरुण, पार्श्वसंधी, बृहती, नितम्ब इतने मर्म मांसहीन हैं । स्तनरोहित, तल, हृदय, क्षिप्र, इन्द्रबस्ति इतने मर्म अस्थिहीनहैं । उत्क्षेपमर्म मांस और संधिहीन है । अणवसंज्ञकमर्म मांस, शिरा और स्नायुहीनहैं । गुल्फ मणिबन्ध और कूर्चशिरस, मांस, शिरा, स्नायु और अस्थिहीन है । इसीप्रकार कोई मर्म एकहीन, कोई दो, कोई तीन और कोई चारहीन है, ऐसा जानना । इसजगे हीनशब्द उत्पन्नाभावमें है, न्यूनाभावमें नहीं है अर्थात् जहां जहां ऐसा लिखाहै कि अमुक मर्म मांसहीन है, तो उसजगे ऐसा न समझना, कि उनममोंमें मांस नहींहै किंतु उनममोंमें मांसउत्पन्न नहींहो ऐसाजानना ।

मर्मोंमेंमांसादिकपांचहैंइसविषयमेंप्रत्यक्षप्रमाण ।

यतश्चैवमस्थिविद्धेष्वपिशोणितदर्शनंभवत्येतत्प्रत्यक्षप्रमाणात् ।

अर्थ–अस्थिमर्ममें वेधहोनेसे रुधिरनिकालताहै, इसीसे जाननाचाहिये कि सर्वमर्मोंमें सबोंका संयोग है ।

शिराकेप्रकार ।

चतुर्विधास्तुशिराःप्रायेणमर्मसुसन्निविष्टाः
स्नाय्वस्थिसंधिमांसानिसंतर्प्यदेहंपुष्णाति ।

अर्थ–वात, पित्त, कफ और रुधिरके वहनेवाली नाडी बहुधाकरके मर्मोंमें स्थितहोकर स्नायु, अस्थि, मांस और संधि इनको तृप्तकर देहको पोषणकरे हैं ।

एकदेशममर्माघातकरकेसर्वशरीरकोपीडाअथवाप्राणवियोगकहतेहैं ।

ततःक्षतेमर्मणिताःप्रवृद्धःसमंततोवायुरभिस्तृणाति।प्रवृद्धमानस्तु समातरिश्वारुजःसुतीव्राःप्रतनोतिकाये ॥ रुजाभिभूतंतुततः शरीरंप्रलीयतेनश्यतिचास्यसंज्ञा । अतोहिशल्यंविनिहर्त्तुमिच्छन्मर्माणियत्नेनपरीक्ष्यकर्षेत् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–मर्ममें क्षतहोनेसे वायु बढ़ता है और शिराओंमें प्रवेशकरके सर्वशरीरमें व्याप्तहोताहै, तथा पीडाकरेहै उससमय शरीर मुरझायासा होकर नष्टहोताहै अथवा मरताहै । इसीसे शल्यको यत्नपूर्वक काढनेवाले वैद्यको सर्वमर्मोंका संरक्षणकरके परीक्षापूर्वक यत्नसे शल्यको निकाले ।

मर्मोंमेंशल्यअच्छा न लगनेसेउसकीक्रियाकाविकल्पकहतेहैं ।

तत्रसद्यःप्राणहरमन्तेविद्धंकालांतरेणमारयति । कालांतरमंतेविद्धंविशल्यवद्भवति । विशल्यंप्राणहरंवैकल्यकरंभवति । वैकल्यकरंचकालांतरेक्लेदयतिरुजांचकरोति ॥

अर्थ–सद्यःप्राणहरण करनेवाले मर्मके अंतमें वेधहोनेसे कालांतरमें मारेहैं, कालांतर मारक मर्मके अन्तमें वेधहोनेसे विशल्यके समान होता है, विशल्य अंतविद्ध होनेसे प्राणनाश अथवा वैकल्यकरें, वैकल्यकर मर्मके अंतविद्ध होनेसे आगे कोई दिवसपर्यंत क्लेदकरे और पीडा करे हैं, मर्म अतिशय विद्ध होनेसे पूर्ववत् मर्मोंकेसे कार्य करेहैं, अर्थात् रुजाकर मर्म अतिविद्ध होनेसे वैकल्यकारक होता है, इसी प्रकार और मर्मोंमें भी जानना ।

सद्यः प्राणहरादिमर्मोंकेविषयमें कालावधि कहते हैं ।

तत्रसद्यःप्राणहराणिसप्तरात्रान्मारयति । कालांतरहराणिपक्षान्मासाद्वा । तेष्वपिक्षिप्राणिकदाचिदाशुमारयंति । विशल्यप्राणहराणिचेति ।

अर्थ–सद्यःप्राणहारक मर्म सात दिवसमें मारे हैं, और कालांतर प्राणहारक मर्म पंद्रहदिनमें अथवा एक महीनेमें मारे हैं, तिनमें क्षिप्रसंज्ञकमर्म कदाचित् अतिविद्ध होनेसे तत्काल मारे हैं, उसीप्रकार विशल्यादि मर्म मारते हैं ।

क्षिप्रादिमर्मोंके स्थान ।

तत्रपादस्यांगुष्ठांगुल्योःक्षिप्रमितिमर्मतत्रविद्धस्याक्षेपकेमरणम्,स्नायुमर्मेदमर्धांगुलंकालांतरप्राणहरंच ।

अर्थ–पैरोंके अँगूठा और उसके समीपकी उंगली इनमें अर्धांगुल जगेमें स्नायुमर्म है, उसीको क्षिप्रमर्म कहते हैं । उसका वेध होनेसे आक्षेप वायुका रोग होकर प्राणी मरे है, यह कलांतरमें प्राणहरण करेहैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मांसमर्म ।

मध्यमांगुलीमनुक्रमेणमध्येपादंतलहृदयंतत्ररुजा
भिर्मरणंमांसमर्मेदमर्धांगुलंकालान्तरप्राणहरंच ।

अर्थ–पैरकी मध्यमांगुलीके अनुक्रम करके बीचमें तलहृदय नामक मर्म है, उसके विद्धहोनेसे मरण होताहै, यह अर्धांगुल प्रमाण मांसमर्म कालांतरमें प्राण-हारक है ।

स्नायुमर्म ।

क्षिप्रस्योपरिष्टादुभयतःकूर्चस्तत्रपादस्यभ्रमणवे-
पनेभवतः स्नायुमर्मेदंचतुरंगुलंवैकल्यकरम् ।

अर्थ–क्षिप्रसंज्ञक मर्मके ऊपर दोनोंतरफ (ऊपर नीचे) कूर्चसंज्ञक मर्म है, यह स्नायुमर्म चार अंगुलका वैकल्यकारक है, इसके वेध होनेसे पैर कांपते हैं अथवा पैर फिरे हैं ।

स्नायुमर्मकहतेहैं ।

गुल्फसंधेरधः उभयतः कूर्चशिरस्तत्ररुजाशोफौ
इदमपिस्नायुमर्मएकांगुलंवैकल्यकरम् ।

अर्थ–गुल्फ (टकना) संधीके नीचे दोनोंतरफ कूर्चशिरस नामक मर्म है । वो विद्ध होनेसे पीडा और सूजन इत्यादि होतेहैं, यह स्नायुमर्म एकांगुलप्रमाण वैकल्य करनेवाला है ।

संधिमर्म ।

जंघापादयोः संघातेगुल्फस्तत्ररुजास्तद्वयपादखं-
जतावा । संधिमर्मेदंद्व्यंगुलप्रमाणंवैकल्यकरम् ।

अर्थ–पीडरी और पैर इनकी संधिको गुल्फ कहते हैं, यह संधिमर्म दो अंगु-लका वैकल्यकारक है, इसमें विकार होनेसे अत्यंत पीडा होती है, पैरका रुकूजाना अथवा लँगड़ाहो जाता है ।

मांसमर्म ।

पार्ष्णिप्रतिजंघामध्येइन्द्रवस्तिस्तत्रशोणित
क्षयेमरणंमांसमर्मेदमर्धांगुलंकालांतरप्राणहरम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–एडीकेपास तेरह अंगुलपर जंघाके मध्यमें इन्द्रबस्तिक नाम मांसमर्म अर्धअंगुलका है, उसमेंसे रक्तस्राव होनेसे कालांतरमें मरण होय. भोज तथा गयदासके मतसे यह मर्म दो अंगुलका है ।

संधिमर्म ।

जंघोर्वोःसंधातेजानुसंधिममेंदंवैकल्यकरम् ।

अर्थ–पीडरी और जंघा इनकी संधिको घोटू कहते हैं, यह संधिमर्म वैकल्यकारक दो अंगुलका है, इसमें विकार होनेसे मनुष्य लँगड़ा होताहै ।

स्नायुमर्म ।

जानुनउभयतरुयंगुलादाणितत्रशोफाभिवृद्धि
स्तब्धसक्थिताचस्नायुममेंदमर्धांगुलम् ।

अर्थ–घोटूके दोनों बगल तीन अंगुलपर आणिसंज्ञक स्नायुमर्म अर्धांगुलप्रमाण है, उसमें विकार होनेसे सूजन होवे और जांघोंमें स्तब्धता होवे ।

शिरामर्म ।

ऊरूमध्येऊर्व्यस्तत्रशोणितक्षयात्सक्थिशोषः
शिरामर्मेदमर्धांगुलंवैकल्यकरम् ।

अर्थ–जांघोंके मध्य देशमें ऊर्वी नामक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकारक है, उसजगे रुधिरक्षय होनेसे जांघ सूखजावे ।

शिरामर्म ।

ऊर्ध्वमधोवंक्षणसंधेरूरुमूलेलोहिताक्षंतत्रलोहितक्षयेन
पक्षाघातःसक्थिसादोवाशिरामर्मेदमर्धांगुलंवैकल्यकरंच ।

अर्थ–वंक्षणसंधिके ऊपर नीचेके अंगमें ऊरूके मूलमें लोहिताक्षसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकारक है, उसमें से रुधिरस्राव होनेसे पक्षाघात अथवा पैर रहजावे ।

स्नायुमर्म ।

वंक्षणवृषणयोर्विटपंतत्रषांढ्यमल्पशुक्रतावास्नायुम
मेंदमेकांगुलंवैकल्यकरंचएवमेतानिएकादशसक्थिम
र्माणिव्याख्यातानि ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-वंक्षण और वृषण इनके बंधनरूप स्नायुको विटपसंज्ञक मर्म कहतेहैं,इसमें विकार होनेसे षंढपना अथवा अल्पशुक्रता होय. इसप्रकार एकपैरमें ११ मर्मकहे हैं, इसीक्रमसे दूसरे पैरमें और दोनों हाथोंके मिलानेसे ४४ मर्म होते हैं।

पेटऔरउदरइनकेमर्म।

अतऊर्ध्वमुदरोरसोमर्माणिव्याख्यास्यामः तत्रवातवर्चो विरसनंस्थूलांत्रप्रतिबद्धंगुदंनाममर्मतत्रसद्योमरणम्।

अर्थ-अब उदर और उर इनके मर्मोंको कहते हैं, तिनमें बड़े आंतडोंसे बँधेहुए तथा जिनसे विष्ठा और अपानवायूकी प्रवृत्ति होती है, उसको गुदा कहते हैं, उसका आघात होनेसे तत्काल मरण होय, यह मांसमर्म चार अंगुलका है।

मूत्राशयबस्तिमर्म।

अल्पमांसशोणिताभ्यंतरतःकट्यांमूत्राशयोबस्तिः तत्रापिसद्योमरणंमश्मरीव्रणादृतेतत्राप्युभयतोभिन्ने नजीवतिएकतोवाभिन्नेमूत्रस्रावोव्रणोवाभविष्यति॥

अर्थ-अल्पमांस तथा अल्परुधिरसे प्रगट और कमर, नाभि, पृष्ठ, मुष्क, गुदा, वंक्षण, शिश्न, इन सबके बीचमें अधोमुख एकद्वार तथा मूत्रका आशय ऐसा यह बस्तिसंज्ञक मर्महै। इसमर्ममें पथरीकृत व्रणके विना अन्यविकार होनेसे तत्काल मरण होय, इस बस्तीके दोनों तरफ छिद्र पड़नेसे तत्काल मरण होय. एक अङ्गमें छिद्र पड़नेसे उसमें होकर मूत्र निकलनेलगे ऐसा व्रणहोय. यह स्नायुमर्म चार अंगुलकाहै।

नाभिमर्म।

पक्वामाशययोर्मध्येशिराप्रभवानाभिस्त त्रापिसद्योमरणंशिरामर्मैदंचतुरंगुलम्॥

अर्थ-पक्वाशय और आमाशय इनके मध्यमें शिरासमुदायसे बनी ऐसी नाभीहै, इसमर्ममें विकारहोनेसे तत्कालमरणहोय, यह शिरामर्म चारअंगुलका है।

आमाशयमर्म।

स्तनयोर्मध्यमधिष्ठायोरसिआमाशयद्वारंसत्वर जस्तमसामधिष्ठानंहृदयंतत्रापिसद्यएवमरणंशि राममैदंकमलमुकुलाकारमधोमुखंचतुरंगुलंच।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–दोनोंस्तनोंके मध्यदेशमें व्याप्तहोकर उरके अंतमें आमाशयका द्वार और सत्वरज और तमोगुणका अधिष्ठान ऐसा हृदयसंज्ञक शिरामर्महै, यह कमलकीकली-के समान तथा अधोमुख चारअंगुलकाहै, यह सद्यमरणदेनेवालाहै ।

स्तनमूलशिरामर्म ।

स्तनयोरधस्ताद्द्व्यंगुलमुभयतस्त-
नमूलेतत्रकफपूर्णकोष्टतयाम्रियते ।।

अर्थ–दोनों स्तनोंके नीचे दोअंगुलपर स्तनमूलसंज्ञक शिरामर्म दोअंगुलकाहै; यह कालांतरमें मारकहै, इसमें विकारहोनेसे कफकरके पूर्णकोष्ठहोकर मरेहै ।

रोहितसंज्ञकमांसमर्म ।

स्तनचुबुकयोरूर्ध्वंस्तनरोहितेतत्रलोहित
पूर्णकोष्ठतयाश्वासकासाभ्यांम्रियते ।

अर्थ–स्तनचिबुकके ऊपर दोअंगुलदेशमें अर्धांगुलप्रमाण स्तनरोहितसंज्ञक मांस-मर्महै, इसमें चोटलगनेसे रुधिरसे कोष्ठ परिपूर्णहोकर श्वास, खांसीके रोगसे कोई दिनमें मरे ।

अपलापशिरामर्म ।

अंशकूटयोरधस्तात्पार्श्वस्योपरिभागेऽपलापस्तत्ररक्तेनपूर्ण
भावगतेनमरणंशिरामर्मणीअर्धांगुलेकालांतरेणप्राणहरे ।।

अर्थ–अंशकूट (कंधे) के नीचे और पसवाडोंके ऊपरके भागमें अपलापसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुलप्रमाण कालांतरमें प्राणहरणकर्त्ताहै, उसमें विकार होनेसै अत्यंत-रुधिरसंचितहोनेसे रोगी मरे ।

अपस्तंबशिरामर्म ।

उभयतोरसोनाड्यौवातवहेअपस्तंबौतत्रवा-
तपूर्णकोष्ठतयाश्वासकासाभ्यांचम्रियते ।

अर्थ–उदरके दोनोंतरफ वातवाहकनाडीहै, उनको अपस्तंबमर्मकहते हैं । उस-नाडीमें विकारहोनेसे वायुकरके कोष्ठपरिपूर्णहो श्वास खांसीके रोगसे कोईदिनमें रो-गी मरे, यह शिरामर्म अर्धअंगुलप्रमाण कालांतरमें प्राणहरणकर्ताहै, इसप्रकार उद-र और उरमें बारह १२ मर्मकहेहैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अबपीठकेमर्मकहतेहैं ।

अतऊर्ध्वंपृष्ठमर्माणिव्याख्यास्यामः तत्रपृष्ठवंशमुभयतः प्रतिश्रोणीकांडमस्थीनिकटितरुणे तत्रशोणितक्षयात् पांडुविवर्णोहीनश्चम्रियते ।

अर्थ–अब पृष्ठमर्मोंको कहतेहैं। तहां पीठके वांसके दोनोंतरफ आगे कमरकी जो हड्डीहैं उसको कटितरुणसंज्ञक अस्थिमर्म कहतेहैं, उसमेंआघात होकर रक्तस्राव होनेसे मनुष्य विवर्ण तथा हीनवर्ण होकर कोईदिनोंमें मरे ।

ककुन्दरसन्धिमर्म ।

पार्श्वजघनबहिर्भागेपृष्ठवंशमुभयतः ककुंद-रेतत्रस्पर्शाज्ञानमधः कायेचेष्टोपघातश्च ।

अर्थ–पार्श्व और जघनके बाहरके भागमें तथा पृष्ठवंशके दोनोंतरफ कुकुंदरकहतेहैं; इसमें विकारहोनेसे वहस्थल बधिरहोजावे और कमरके पास नीचेका अंग निर्जीव होजावे ।

नितंबअस्थिमर्म ।

श्रोणिकांडयोरुपर्यामाशयाच्छादकौ पार्श्वान्तरप्रतिबद्धानितम्बौतत्राधः कायशोषोदौर्बल्याच्चमरणम् ।

अर्थ–कटितरुण अस्थिमर्म जो पूर्व कहआएहैं उसकेऊपर आमाशयका आच्छादक तथा पार्श्वसंधीसे बंधा ऐसा नितंबसंज्ञक अस्थिमर्महै, उसमें विकारहोनेसे नीचेके आधेअंगका शोषहो निर्बलपनेसे प्राणी मरेहैं ।

पार्श्वसंधिशिराबंधनमर्म ।

जघनमध्यपार्श्वयोस्तिर्यगूर्ध्वंचजघनात्पार्श्वसंधिस्तत्रलोहितपूर्णकोष्ठतयाम्रियते ।

अर्थ–जघनकेमध्य अंगसे तिरछा तथा ऊपरके दोनोंपार्श्वोंमें शिराओंका बंधन है । उसको पार्श्वसंधिकहते हैं, उसमें विकार होनेसे रक्तपूर्णकोष्ठ होकर थोडे दिनमें मरेहैं; इसका प्रमाण अर्धागुल है ।

बृहतीसंज्ञकशिरामर्म ।

स्तनमूलादुभयतः पृष्ठवंशस्यबृहतीतत्रशोणितातिप्रवृत्तिनिमित्तैरुपद्रवैर्म्रियते शिरामर्मणीअर्धांगुले ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–स्तनमूलमर्मके अनुमानकरके पृष्ठवंशके दोनोंतरफके अंगमें बृहतीसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाणहै; उसमेंसे रुधिरकीप्रवृत्तिहोकर मनुष्य मरता है।

अंशफलकमर्म।

पृष्ठोपरिपृष्ठवंशमुभयतस्त्रिकसंधावंशफलके।

अर्थ–पीठकेऊपर दोनोंतरफ तथा जिसजगे मन्यानाडी और कंधेन्का संयोगहुआ उसस्थलकी संधीको त्रिक कहतेहैं, उसकेसमीप अंशफलकमर्म अर्धांगुलप्रमाण वैकल्यकारकहै।

स्नायुबंधनअंशमर्म।

बाहुमूर्ध्वग्रीवामध्येंशपीठस्कंधबंधनेअंशेतत्रस्तब्ध
बाहुतास्नायुमर्मणीअर्धांगुलेवैकल्यकरे।

अर्थ–बाहुकाऊपरलाभाग और मन्यानाडी इनकेमध्यमें अंशफलका सहवर्त्तमान भुजशिरसे बँधीहुई स्नायुबंधनहै, उसको अंशकहतेहैं, यह स्नायुमर्म अर्धांगुलप्रमाण वैकल्यकरताहै।

जत्रुमूलकेऊपरकेमर्मकहते हैं।

तत्रकण्ठनाड्यामुभयतश्चतस्रोधमन्योद्वेनीले
द्वे मन्येव्यत्यासेनतत्रमूकतास्वरवैकृतमरसग्रा
हिताचशिरामर्मणीचतुरंगुलेवैकल्यकरे।

अर्थ–कंठनाडीके दोनोंतरफ चारधमनीहैं। उनके नाममन्या तथा नीला, उनमेंसे एकएक तरफ एकमन्या और नीलाहै। ये शिरामर्म चारअंगुलप्रमाणहैं, इनमें विकारहोनेसे गूंगापना, स्वरभेद, इत्यादि विकार होतेहैं।

मातृकाशिरामर्म।

ग्रीवामुभयतश्चतस्रश्चतस्रःशिरामातृकास्तत्रसद्योमरणम्।

अर्थ–नाडकेदोनोंतफफ चारचारशिराहैं, उनआठोंको मातृकाकहतेहैं, ये शिरामर्म चारअङ्गुलप्रमाण सद्यःप्राणहारक जानने।

कृकाटिकसंधिमर्म।

शिरोग्रीवयोःसंधानेकृकाटिके। तत्रचलमूर्धतासंधि
मर्मणीअर्धांगुले।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–मस्तक और नाड इनकेसंयोगमें कृकाटिकसंधिमर्म अर्धांगुलप्रमाण है, इसमें विकारहोनेसें मस्तक कांपे, यह मर्मपीठके ओर मन्यानाडीके जोडमें है ।

विधुरसंज्ञकस्नायुमर्म ।

कर्णपृष्ठयोरधःसंश्रितेविधुरेतत्रबाधिर्यस्नायु
मर्मणीकिंचिन्निम्नाकारेवैकल्यकारिणीच ।

अर्थ–कानोंकेपिछाडी किंचित्नीचे विधुरसंज्ञक स्नायुमर्महै, इसमेंविकारहोनेसै मनुष्य बहिरा होताहै।

फणसंज्ञकशिरामर्म ।

घ्राणमार्गमुभयतःस्रोतोमार्गप्रतिबद्धे
अभ्यन्तरतःफणेतत्रगंधाज्ञानम् ।

अर्थ–नासिकाके भीतर दोनों मार्गके दोनोंतरफ बँधा फणसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकारी है, इसमें विकार होनेसे गंधका ज्ञान नहींहोवे ।

अपाङ्गसंज्ञकशिरामर्म ।

भ्रूपुच्छांतयोरधोक्ष्णोर्बाह्यतोपाङ्गौतत्रान्ध्यंदृष्ट्युप
घातोवाशिरामर्मणीअर्धांगुलेवैकल्यकारिणीच ।

अर्थ–भौंहके अंतमें नीचे नेत्रोंके बाहरकी तरफ अपांगसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकर है, उसमें विकार होनेसे अंधा अथवा नेत्रविकारी होताहै ।

आवर्त्तसंज्ञकसंधिमर्म ।

भ्रुवोरुपरिनिम्नयोरावर्त्तौतत्राप्यान्ध्यंदृष्ट्युपघातोवा ।

अर्थ–भौंहके ऊपरले अङ्गमें किंचित् गड्ढेदार प्रदेश है, उसमें आवर्त्तसंज्ञक संधिमर्म अर्धांगुल प्रमाण वैकल्यकारी है, उसमें चोटलगनेसे अंधा वा दृष्टीका उपघात होवे ।

शंखनामकअस्थिमर्म ।

भ्रुवोरंतरोपरिकर्णललाटयोर्मध्येशंखौ ।
तत्रसद्योमरणंअस्थिमर्मणीअर्धांगुले ।

अर्थ–भौंहोंके ऊपर कान और ललाट इनमें शंखनामक अस्थिमर्म अर्धांगुल प्रमाण है, उसमें विकार होनेसे तत्काल मरे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उत्क्षेपसंज्ञकमर्म ।

शंखयोरुपरिकेशान्तेउत्क्षेपौतत्रसशल्योजीवेत् ।

अर्थ–कनपटीके ऊपर केशपर्यंत उत्क्षेपसंज्ञकमर्म है, उसमें जबतक शल्यरहै तबतक बचे और शल्यनिकालतेही मरजावे ।

स्थपणीशिरामर्म ।

भ्रुवोर्मध्येस्थपणीतत्रोत्क्षेपवत् ।

अर्थ–दोनों भौंहोंके मध्यमें स्थपणीसंज्ञक शिरामर्म है, इसमेंभी जबतक शल्य रहे तबतक जीवे, शल्यनिकलतेही मरे।

सीमंतसंधिमर्म ।

पंचसन्धयःशिरसिविभक्ताःसीमन्ताः।

अर्थ–मस्तकमें बर्तनोंकी संधिके सदृश पृथक् २ पांच संधिहैं, उनको सीमंत कहतेहैं. ए मर्म चारअंगुल प्रमाण कालांतरमें प्राणहरणकरनेवाले जानने ।

शृंगाटकनामकशिरासंयोगमर्म ।

घ्राणश्रोत्राक्षिजिह्वासंतर्पणीनांशिराणांमध्यशिरःसन्निपातः ।
शृङ्गाटकानितानिचत्वारिमर्माणितत्रापिसद्योमरणम् ।

अर्थ–नासिका, कान, नेत्र, जिह्वा, इनचारों इन्द्रियोंको तृप्तकरनेवाली जो शिरा उसके मुखका संयोग मस्तकमें जिस स्थलमें हुआहै, उसीजगे शृंगाटकसंज्ञक चार शिरामर्म सद्यःप्राणनाशक हैं ।

अधिपतिशिरामर्म ।

मस्तकाभ्यन्तरतउपरिष्टाच्छिरासंधिसन्निपातोरोमावर्त्तोंधिपतिः।

अर्थ––मस्तकके मध्य ऊपरले भागमें जिसजगे सर्वशिरा तथा संधी इनका संयोग हुआहै उसस्थलमें अधिपतिसंज्ञक शिरामर्म अर्धांगुलप्रमाणहै. उसके बाहरकी तरफ केशोंकी भौंरी है, ये मर्म सद्यःप्राणहारक जानना ।

मर्मोंकासूत्रोक्तप्रमाणकहतेहैं ।

उर्व्यःशिरांसिविटपेचसकक्षपार्श्वेएकैकमंगुलमितास्त
नपूर्वमूलम्।बद्धचंगुलद्वयमितंमणिबंधगुल्फंत्रीण्येवजा
नुमपरंचसकूर्परान्याम्।हृद्बस्तिकूर्चगुदनाभिवदंतिमूर्ध्नि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चत्वारिपंचगलकेदशयानिचद्वे। तानिस्वपाणितलकुंचि
तसंमितानि, शेषाण्यवेहिपरिविस्तरतोंगुलार्धम्।

अर्थ–उर्वी, शिरस, विटप, कक्षधर, ए चारप्रकारके मर्म विस्तारमें एक एक अंगुल प्रमाणहै, और मणिबंध, गुल्फ, स्तनमूल, ए मर्म दोदोअंगुलके हैं. जानु, कूर्पर, ए तीनतीनअंगुलकेहैं; तथा हृदय, बस्ति, कूर्च, गुद, नाभि सीमंत, शृंगाटक, मातृका, मन्या और नीलधमनी ए सब मर्म चारचार अंगुलके हैं और बाकीके मर्म है वो सब अर्धांगुल प्रमाण जानने।

मर्मोंकाप्रयोजनकहतेहैं।

एतत्प्रमाणमभिवीक्ष्यवदन्तितज्ज्ञाःशस्त्रेणकर्मक
रणंपरिहृत्यकार्यम्। पार्श्वाभिघातितमपीहनिहं
तिमर्मतस्माच्चमर्मसदनंपरिवर्जनीयम्।

अर्थ–पूर्वोक्त मर्मोंका प्रमाण देखकर मर्मस्थानको छोड़ वैद्योंको शस्त्रक्रिया (छेदनभेदनआदि) करनी चाहिये। क्योंकि मर्मोंमें शस्त्रलगनेसे मरजावे और हाथ तथा पैर इनका छेदनहोनेसे मनुष्य बचेहैं। परंतु तदवयवभूत मर्मका छेद होनेसे मरताहै।

हाथपैरटूटनेसेबचजावेऔरमर्मभेदकर्केमरेहैंयहकहतेहैं।

छिन्नेषुपाणिचरणेषुशिरानराणां संकोचमापुरसृ
गल्पमतोनिरेति। प्राप्यामितव्यसनमुग्रमतोमनु
ष्यः संछिन्नशाखतनुवन्निधनंनयांति। क्षिप्रेषुतच्च
सतलेषुहतेषुरक्तं गच्छत्यतीवपवनश्चरुजंकरोति।
एवंविनाशमुपयांतिहितत्रविद्धा * वृक्षाइवायुध
निपातवशंह्यनीशाः॥

अर्थ–मनुष्योंके हाथ पैर टूटनेसे उसजगेकी शिराओंके मुख सुकडकर रुधिर बहुत नहीं निकले, केवल अत्यंत पीडा होती है, परंतु मरे नहीं है। और हाथपैर टूटते समय क्षिप्रमर्म अथवा तलहृदय इनमें शस्त्रलगनेसे रुधिर अत्यंत निकल कर उसजगे वायु कुपितहोकर अत्यंत पीडाकरेहैं, उस्से मनुष्य मरजाताहै। इसमें

* पाठांतरम्–किंजल्कपत्रमथनादिवपङ्कजानीति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दृष्टांतहै कि जैसे वृक्ष कुठार आदिकरके शाखासंधिके विषे खंडितहोनेसे पत्ते आदि सूखकर मरताहै ।

मर्मकौनसेकार्यकेउपयोगीहोतेहैंसोकहतेहैं ।

मर्माणिशल्यविषयार्थमुदाहरन्ति यस्माच्चमर्मसुहतानभव न्तिसद्यः । जीवन्तितत्रयदिवैद्यगुणेनकेचित्तेप्राप्नुवन्तिविक लत्वमसंशयंहि ॥

अर्थ–मर्मोंको शल्य (शस्त्रकंटक) विषय कहाहै, ऐसे कोई आचार्य कहते हैं, तथा शल्यकंटकादि करके शरीर और मन इनको पीडा देना या मारना इनमें मरण, कारक धर्म तो शल्यविषयक आघातकरके होताहै; परंतु तत्काल मरता नहीं है. सातदिनके अंतरसे मरे है; इसीसे मर्मोंको शल्यविषयोंका अर्थ है ऐसा कहते हैं; और मर्मस्थानमें शल्यलगनेसेभी बचजाताहै, ऐसा देखागयाहै, ऐसे कहनेसे कहते हैं कि वह वैद्यकी कुशलतासे कदाचित् कोई बचनेसे उसी उसी अंगकी विकलता होती है, वह अंगकार्योपयोगी नहीं रहै ।

मर्महतअनेकउपद्रवोंकरके मरताहै सो कहतेहैं ।

तंभिन्नजर्जरितकोष्टशिरःकपालाजीवंतिशस्त्रविहतैश्चशरीरदेशैः । छिन्नश्चसक्थिभुजपादकरैरशेषैर्येषांनमर्मसुकृताविषयप्रहाराः ।

अर्थ–शस्त्रसे हतशरीरमें मर्मकाप्रदेश, उसविकारकेंकें जिन्होंके कोष्ठ, मस्तक, कपाल ये जर्जरहुए वो बचे नहीं हैं । और मर्मके विना इतर अवयव जे हस्तपादादिक इनमें विघात होनेसे जर्जरित होकर बचते हैं ।

मर्माभिघातकरकेमनुष्यमरणमेंकारणकहतेहैं ।

सोममारुततेजांसिरजःसत्वतमांसिच । मर्मसुप्रायशःपुंसां भूतात्माचावतिष्ठते। मर्मस्वभिहतास्तस्मान्न जीवंतिशरीरिणः ॥

अर्थ–पांचप्रकारका कफ, पांचप्रकारका वायु, पांचप्रकारके पित्त, भूतात्मा, रज, सत्व और तम, ये सर्व प्रायः करके मर्ममें रहतेहैं । इसीसे मर्मका छेद तथा भेद होनेसे मनुष्य मरता है ।

सद्यःप्राणहरादिमर्मपंचककेलक्षण ।

इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्मनोबुद्धिविपर्ययः । रुजश्चविविधास्तीव्राभवन्त्याशुहतेहते । हतेकालान्तरंहेतुध्रुवोधातुक्षयोनृणाम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अतोधातुक्षयाज्जन्तुर्वेदनाभिश्चनश्यति । हतेवैकल्यजन
नेकेवलंवैद्यनैर्गुणात्।शरीरंक्रिययायुक्तंविकलत्वमवाप्नुयात्।
विशल्यघ्नेतुविज्ञेयंपूर्वोक्तंयत्तुकारणम् ।

अर्थ–सद्यःप्राणहरणकर्त्ता मर्ममें किसीप्रकारकी चोट लगनेसे सर्वइन्द्री विकलहो स्वस्वविषयोंके ग्रहणकरनेकी शक्ति नहीं रहे, तथा मन बुद्धि इनका विपरीत होना,अनेक प्रकारकी उग्रपीडा होतीहै । और कालांतर प्राणहरणकर्त्ता मर्मोंके अभिहत होनेसे शरीरकी धातु नष्ट होतीहै और मनुष्यके वेदना होनेसे मरताहै । और वैकल्यकारक मर्मके आघातहोनेसे वैद्यकी कुशलतासे शरीर अच्छा होजावे, परंतु विकलहोताहै । और विशल्य मर्ममें जो शल्य है वो जबतक उसमें रहेहै तबतक बचताहै, यह पूर्वोक्त कारणके लक्षण करके जानने ।

रुजाकरमर्मोंकोकुवैद्यबिगाडेहैं ।

रुजाकराणिमर्माणिक्षतानिविविधारुजः ।
कुर्वन्त्येतानिवैकल्यंकुवैद्यवशगायदि ॥

अर्थ–रुजाकर मर्मोंको विकृति होनेसे नानाप्रकारकी पीडा होतीहै और उत्तम वैद्यके न मिलनेसे अर्थात् दुष्टवैद्यके वशहोनेसे शरीर और बलको हीनकरेहैं ।

मर्मसमीपचोटकरकेमर्मतुल्यपीडाकहतेहैं ।

छेदभेदाभिघातेभ्योदहनाद्वारणादपि ।
उपघातंविजानीयान्मर्मणांतुल्यलक्षणम् ॥

अर्थ–मर्मसमीपके देशोंमें छेदन, भेदन, आघात, अग्निसे फुकजाना, अथवा विदीर्णहोनेसे अथवा उपघात होनेसे, उनके लक्षण पूर्वोक्त मर्मलक्षणोंके सदृश जानने ।

मर्माभिघातविषयमेंवैद्ययत्नकहतेहैं ।

मर्माण्यधिष्ठायचयेविकारामूर्च्छन्तिकायेविविधानराणाम् ।
प्रायेगतेकृच्छ्रतमाभवंतिनरस्ययत्नैरपिसाध्यमानाः ॥

इति सौश्रुतशारीरे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अर्थ–मर्मोंमें जो विकार होतेहैं वे सर्व शरीरमें व्याप्त हो अत्यंत क्लेशदायक होतेहैं, अतएव वैद्यको बडे यत्न करके साध्यभी कृच्छ्रतम होतेहैं ।

इति श्रीमदायुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरेदशमस्तरङ्गः ॥ १० ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

(मर्मशिरास्नायुधमनीः परिहरन्) इत्यादि पदोंमें मर्मके पश्चात् शिरा शब्दके कहनेसें प्रत्येकमर्मनिर्देशशारीराध्याय कहनेके अनंतर शिरावर्णविभागशारीर कहना उचितहै, अतएव उसीको कहते हैं ।

अथातः शिरावर्णविभक्तिशारीरंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ–शिरा और उन्होंके शुक्ल लोहितादि (लाल काले पीले आदि) वर्ण और उन्होंके समुदायसें पृथक्करण जिसमें वर्णन करा, ऐसी शिरावर्णविभक्तिशारीराध्यायकी व्याख्या करते हैं ।

सर्वशिराओंकीसंख्या ।

सप्तशिराशतानिभवन्ति ।

अर्थ–शिरा (नस) सब ७०० सातसौं हैं ।

शिराओंकेकार्य ।

याभिरिदंशरीरमारामजलमिवजलहारिणीभिः केदारमिवकुल्याभिरुपस्निह्यतेअनुगृह्यतेचाकुञ्चनप्रसारणादिभिर्विशेषैः ।

अर्थ–शिरा सर्व शरीरमें आपाद मस्तक पर्यंत रस लेजायकर शरीरको स्निग्धकरती है, जैसें बगीचेमें वृक्षोंकी क्यारी वरहाके जलसें तृप्तहोती है, उसीप्रकार नहरके बंबासे जैसे खेत परिपूर्ण होताहै, उसीप्रकार बड़ी और छोटी शिराओंके द्वारा देह पुष्ट होता है । और आकुंचन, प्रसारण, भाषण, निद्रा, जागने आदि कर्मकरके शरीरका पालन पोषण होता है ।

शिराओंकेअतिसूक्ष्मप्रकारदृष्टांतकरकहतेहैं ।

द्रुमपत्रसेवनीनामिवतासांप्रतानाः तासांनाभिर्मूलंततश्चप्रसरंत्यूर्ध्वमधश्चतिर्यक्चप्रताना ।

अर्थ–शिराओंके विस्तार, वृक्षोंके पत्तेके शिराप्रमाण असंख्यात है उन सबका मूल नाभी है । उसनाभिसे निकल ऊपर नीचे आडे तिरछे सर्वदेहमें फैलरहे हैं ।

प्रमाण ।

यावत्यस्तुशिराकायेसंभवंतिशरीरिणाम् ।
नाभ्यांसर्वानिबद्धास्ताः प्रतन्वंतिसमंततः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–जितनी शरीरमें शिराहै सब नाभिसे बंधीहै, उसीजगेसे चारोंतरफ फैलीहैं। (कोई आचार्य कहतेहैं कि नाभिमें शिरा गोपुच्छाकृतिहैं.)

शिराओंकाऔरप्राणोंकाआधाराधेयभावसंबंधकहतेहैं।

नाभिस्थाः प्राणिनांप्राणाः प्राणानाभिंव्यपाश्रिताः।
शिराभिरावृतानाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः।

अर्थ–सर्व प्राणियोंके प्राण नाभिमें नाभीके आवरक शिराओंका आश्रय करके रहते हैं, उन शिराओंसे इसप्रकार नाभि लिपटी हुईहै जैसे गाडीके पहियेकी नाभि लकडियों करके चारों तरफसे घिरी हुई होतीहै।

शिराओंकीगणना।

तासांमूलशिराश्चत्वारिंशत्तासांवातवाहिन्योदश पित्तवाहिन्योदशकफवाहिन्योदश रक्तवाहिन्योदश।

अर्थ–उन नाभिचक्रस्थ शिरासमुदायमें मुख्य ४० चालीस शिराहै, तिनमें १० वातवहने वाली, १० पित्तवहने वाली, १० कफवहने वाली, और १० रुधिरके वहनेवाली सबमिलकर ४० हुई।

तासांवातवाहिनीनांवातस्थानगतानांपंचसप्तशतंभवति तिएवं पित्तवाहिन्यः पित्तस्थाने कफवाहिन्यः कफस्थाने रक्तवाहिन्यःरक्तस्थाने यकृत्प्लीह्नोरेवमेतानिसप्तशिराश तानिभवन्ति।

अर्थ–वातवाहिनी शिराओंकी शाखा जो वातस्थानके प्रतिगई है वो, १७५ एकसौ पिचत्तरहैं। कफवाहिनीकी शाखा जो कफस्थानके प्रति गई है वो १७५ है. पित्तवाहिनी की पित्तस्थानमें जानेवाली १७५ हैं, और रक्तवाहिनी नाडीयोंकी शाखा जो रक्तस्थान (यकृत्प्लीह) के प्रति गईहैं वो भी १७५ एकसौं पिचत्तर, इसप्रकार सबमिलकर ७०० हुई।

अंगविभागकरकेशिरासंख्याकहतेहैं।

तत्रवातवहाशिराएकस्मिन्सक्थिनिपंचविंशातिः।
एतेनेतरसक्थिबाहूचव्याख्यातौ।

अर्थ–वातवाहिनी शिरा एक पैरमें २५ पच्चीस है, उसीप्रकार दूसरे पैरमें और दोनों हाथों में मिलकर १०० सौ होती हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कोष्ठगतशिराविभाग ।

विशेषतस्तुकोष्ठेचतुस्त्रिंशत् तासांगुदमेढ्रश्रिताः श्रो-
ण्यामष्टौद्वेपार्श्वयोः षट्पृष्ठतावंत्यएवोदरेदशवक्षसि ।

अर्थ-कोष्ठ (मध्यप्रदेश) में ३४ वातवाहिनी, तिनमें भी गुदा और लिंग इनके आश्रयकरके रहने वाली श्रोणीमें ८ दोनों कूखोंमें ४ पीठमें ६ पेटमें ६ उरमें १० सब मिलकर ३४ हुई ।

नाडसेलेकरऊपरकेभागमेंशिराओंकीसंख्या।

एकचत्वारिंशज्जत्रुणऊर्ध्वंतासांचतुर्दशग्रीवायां कर्णयो
श्चतस्रोनवजिह्वायांषड्नासिकायामष्टौनेत्रयोः एवंपंच
सप्तशतंवातवहानांव्याख्यातम् ।

अर्थ-जत्रु (दोनोंकंधे और नाडकी संधि) से लेकर ऊपरके प्रदेशमें ४१ वातवाहिनी शिराहैं, तिनमें नाडमें १४ कर्णगत ४ जीभमें ९ नाकमें ६, नेत्रमें ८, सब मिलकर ४१ हुई । अब कोष्ठ और नाड दोनोकी जोडनेसें १७५ शिरा होती हैं । इसीप्रकार पित्तवाहिनी आदि नाडियोंका प्रमाण जानना, परंतु पित्तवाहिनी शिरा नेत्रगत १० कर्णगत २ इतना भेद है ।

शिराश्रितवातादिकोंकेप्राकृतऔरवैकृतकार्यकहते हैं ।

क्रियाणामप्रतीघातः प्रमोहोबुद्धिकर्मणाम् ।
करोत्यन्यान्गुणांश्चापिस्वाःशिराःपवनश्चरन् ।

अर्थ-वायु स्ववाहिनी नाडियोंमें सुप्रकृतिपूर्वक संचार करनेसें आकुंचन, प्रसारण, भाषण इत्यादि क्रिया यथास्थित होती हैं । तथा नेत्रादि ज्ञानेन्द्रिय मन बुद्धि इनकी शक्ती अपने अपने कार्योंमें उत्तम रहती है । और वायु अन्यगुण प्रस्यंदन, उद्बहन, पूरण इत्यादिकोंको करे है ।

वातवाहिनीशिरागतकुपितवातकेविकारकहतेहै।

यदातुकुपितोवायुःस्वशिराःप्रतिपद्यते ।
तदास्यावेविधारोगाजायन्तेवातसंभवाः ।

अर्थ-जिसकालमें वायु कुपितहोकर स्ववाहिनी नाडियोंमे संचार करने लगे है, उसकालमें अनेक प्रकारके वातसंभव रोग होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पित्तकेकार्य।

भ्राजिष्णुतामन्नरुचिमग्निदीप्तिमरोगताम्।
संतर्प्यस्वशिराःपित्तंकुर्यादन्यान्गुणानपि॥

अर्थ–पित्त, स्ववाहिनी नाडियोंमें सुप्रकृतिपूर्वक रहता हुआ उनको तृप्त करने करके शरीरमें कांति तथा अन्नपर रुचि, जठराग्निकी दीप्ति, नैरोग्यता, तेजस्वीपना, रागपंक्ति और ओज इत्यादि कर्मकरे है।

पित्तवाहिनीशिरागतकुपितपित्तकेविकारकहतेहैं।

यदातुकुपितंपित्तंसेवतेस्ववहाःशिराः।
तदास्यविविधारोगाजायन्तेपित्तसंभवाः॥

अर्थ–जिसकालमें पित्त कुपितहोकर स्ववाहिनी नाड़ियोंमें संचार करनेलगे है उसकालमें इस मनुष्यके अनेक प्रकारके पित्तसंभव रोग होते हैं।

कफकेकार्यकहतेहैं॥

स्नेहमङ्गेषुसन्धीनांस्थैर्यंबलमुदीर्णताम्।
करोत्यन्यान्गुणांश्चापिबलासःस्वाःशिराश्चरन्॥

अर्थ–कफ, स्ववाहिनी नाडियोंमें सुप्रकृती पूर्वक रहनेसे अंगोंमें सचिक्कणता, संधियोंकी स्थिरता, बल, इत्यादि गुण करे है।

विकृतकफकेकार्य।

यदातुकुपितःश्लेष्मास्वाःशिराःप्रतिपद्यते।
तदास्यविविधारोगाजायन्तेश्लेष्मसंभवाः।

अर्थ–जिसकालमें कफ कुपितहोकर स्ववाहिनी नाडियोंमें संचार करने लगेहै उसकालमें इस मनुष्यके अनेक प्रकारके कफसंभव रोग होते हैं।*

रक्तकेकार्य।

धातूनापूरणंवर्णस्पर्शज्ञानमसंशयम्।
स्वाःशिराःसंचरद्रक्तंकुर्याच्चान्यान्गुणानपि॥

---

* वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंका वर्णन आगे दोषवर्णविज्ञानीयाध्यायमें विस्तारपूर्वक कहेंगे.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–रक्त, स्ववाहिनी नाडियोंमें निर्दोष वहनेसे धातुओंका पूरण, वर्ण,स्पर्श-ज्ञान, और पित्तके गुणसदृश गुणकरे है । तथा " रक्तवर्णप्रसादं " इत्यादि अन्य-गुणोंकोभी करे है ।

कुपितरक्तकेकार्य ।

यदातुकुपितंरक्तंसेवतेस्ववहाःशिराः ।
तदास्यविविधारोगा जायन्तेरक्तसंभवाः ।

अर्थ–जिसकालमें रुधिर कुपितहोकर स्ववाहिनी नाडियोंमें विचरे है, उससमय इस मनुष्यके देहमें अनेक रुधिरके विकार होते हैं ।

वातादिशिरासर्वदोषोंकोवहती हैं सो कहतेहैं ।

नहिवातंशिराःकश्चिन्नपित्तंकेवलंतथा ।
श्लेष्माणंवाहयंत्येताअतःसर्ववहाःशिराः ॥

अर्थ–कोईभी शिरा केवल एक वायुको अथवा केवल पित्तको किंवा केवल एक कफको नहीं वहे हैं किंतु सर्वशिरा अंशतः वात पित्त कफादिकोंको वहती हैं अत-एव उनको सर्ववहा कहतेहैं ।

सर्वदोषवहनेवालीशिराओंकोहीसर्ववहत्वकहतेहैं ।

प्रदुष्टानांहिदोषाणांमूर्च्छितानांप्रधावताम् ।
ध्रुवमुन्मार्गगमनमतःसर्ववहाःस्मृताः ॥

अर्थ–कुपित वातादिदोषोंकोही सर्वशिरा अंशांश प्रमाण करके वहती हैं, इसी-से उनको सर्ववह कहते हैं ।

शिराओंकावर्णविभागकहते हैं ।

तत्रारुणावातवहाः पूर्यन्तेवायुनाशिराः । पित्तादु-ष्णाश्चनीलाश्चशीतागौर्यःस्थिराःकफात् ॥ असृग्व हास्तुरोहिण्यः शिरानात्युष्णशीतलाः ।

अर्थ–वातके वहनेवाली शिरा लाल और वायुकर्के पूर्ण है, पित्तके वहनेवाली शिरा उष्ण और नीलवर्णकीहै । और कफवाहिनी शिरा शीतल सपेदरंगवाली और स्थिरहै, और रक्तवाहिनी शिरा न अत्यन्त गरम न बहुत शीतल किंतु मध्यम होती है; और इनका लोहितवर्ण होताहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वर्जितशिराओंकोकहते हैं।

अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिनविच्छिद्येच्छिराभिषक्।
वैकल्यंमरणंचाशुव्यधात्तासांध्रुवंभवेत्।

अर्थ–अब उनशिराओंको कहते हैं, कि जो न खोलनी चाहिये, कदाचित् इन अवेध्य शिराओंकी फस्तखोले तो विकलता और मरण होताहै।

अवेध्यशिरा।

शिराशतानिचत्वारिविन्द्याच्छाखासुबुद्धिमान्। षट्त्रिंशच्चशतं कोष्ठेचतुःषष्टिश्चमूर्धसु। शाखासुषोडशशिराःकोष्ठेद्वात्रिंशदेवतु। पञ्चाशज्जत्रुणश्चोर्ध्वनव्यध्याःपरिकीर्तिताः।

अर्थ–हाथपैरोंमें पूर्वोक्त प्रकारकरके४०० शिराहैं, तिनमें१६ शिराओंका खोलना वर्जितहै, तथा मध्यप्रदेशमें १३६ शिराहैं, तिनमें ३२ शिराओंकी फस्त खोलना वर्जितहै, तथा मस्तकमें १६४ तिनमें ५० शिरावेधने योग्य नहीं हैं।

शाखागत १६ अवेधशिरा।

जालधराचैकातिस्रश्चाभ्यन्तरास्तत्रोर्वीसंज्ञेद्वे लोहिताख्यसंज्ञैका।

अर्थ–हाथ और पैरमें १६ नाडी वेधनेयोग्य नहीं हैं, तिनमें १ जालधरा और तीनशिरा भीतरहैं; उनमें दोशिरा उर्वी संज्ञक हैं, और तीसरी लोहितसंज्ञक है, ऐसे एक पैरमें चार और दूसरे पैरमें चार इसीप्रकार दोनों हाथोंमें ८, सब हाथ पैरकी मिलकर सोलह शिराहैं इनको न तोडे।

द्वात्रिंशच्छ्रोण्यांतासामष्टौअशस्त्रकृत्याः
द्वेद्वेविटपयोःकटिकतरुणयोश्च।

अर्थ–पृष्ठ, उदर और उर इन्में ३२ शिरा अवेध्य हैं, (इसजगे पृष्ठशब्द करके श्रोणि और पार्श्व इनका ग्रहण होताहै) सारांश यहहै कि, श्रोणिगत ८ पार्श्वगत ८ पृष्ठगत २ और उदरमें १४ ऐसे मिलकर ३२ शिरा मध्यप्रदेशमें हैं तथा कमरमें ३२ शिराहैं, तिनमें विटपसंज्ञक ४ और कटितरुणास्थि संबंधी ४ ऐसे आठ शिरा अशस्त्रकृत्यहै, अर्थात् इनकी फस्त न खोले। तथा एकएक कूखमें आठ-आठ शिराहैं; तिनमें ऊपरको गई ऐसी दो शिरा अशस्त्रकृत्य हैं तथा पृष्ठवंशके दोनों अंगोंमें २४ शिराहैं, तिनमें ऊपरको गईं ऐसी बृहतीसंज्ञक ४ शिरा अशस्त्रकृत्यहैं, तथा उरमें ४० शिरा हैं, तिनमें १४ अशस्त्रकृत्य उनको वर्णन करते हैं। हृदय-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गत २ स्तनमूलगत ४, तथा स्तनरोहितगत ४, अपलाप और अपस्तंभ मिलकर ४ ऐसे सब १४ उदरगत २४ तिनमें ४ अशस्त्रकृत्यहैं, ऐसे ३२ शिरा मध्यप्रदेशगत जाननी, तथा जत्रुसे लेकर ऊपरके प्रदेशमें १६४ शिराहैं, तिनमें ५८ शिरा नाडमें हैं, तिनमें मातृका ४ मन्या २ नीला २ कृकाटिकगत २ विधुरगत २ सब मिलकर १६ शिरा नाडमें अशस्त्रकृत्यहैं, अर्थात् इनकी फस्त न खोलनी चाहिये ।

ठोडीकीशिरावेध ।

हनोरुभयतोष्टावष्टौतासांसंधिधमन्यौद्वेद्वेपरिहरेत् ।

अर्थ–ठोडीके दोनोंतरफ आठ २ शिरा हैं, तिनमें ठोडीकी संधिके हेतुभूत ऐसी एकएक तरफ २ हैं, येही केवल ४ शिरामात्र अवेधयोग्य हैं, ठोडीके सोलहशिरा नाडके अंतर्भूतहैं, इसीसे पृथक् नहीं कही गई. किसी आचार्यके मतसे ठोडीमें १६ शिरा पृथक् हैं, तिनमें दो संधिबंधन मर्मरूप वर्जित हैं ।

जिह्वाकीशिरा ।

षट्त्रिंशज्जिह्वायांतासामधःषोडश अशस्त्रकृत्याः रसवहेवाग्वहेच ।

अर्थ–जिह्वामें ३६ शिरा हैं, तिन जिह्वागत ३६ शिराओंमें १६ शिरा नीचेके भागमें और बीसऊपरके अंगमें, तिनमें दो रसवाहिनी और दो वाणीके वहनेवाली ऐसे चारशिरा मात्रको न तोडनी चाहिये ।

नासिकाकीशिरा ।

द्विर्द्वादशनासायांतासामौपनासिक्यश्चतस्रःपरिहरेत् तासामेवतालुन्येकांमृदावुदेश्ये ।

अर्थ–नासिकामें १४ शिरा हैं, तिनमें नासिकाके समीप चार तथा तालुऐमें काकके समीपकी १ ऐसे पांच शिरा शस्त्रकर्मोपयोगी नहीं हैं ।

अपाङ्गकीशिरावेध ।

षट्त्रिंशदुभयोर्नेत्रयोस्तासामेकैकामपाङ्ग्योःपरिहरेत् ।

अर्थ–नेत्रमें ३६ शिराहैं, तिनमें अपाङ्गगत (नेत्रकेअंतकेभागमें) एकएक त्याज्य है ।

नासानेत्रादिकोंमेंशिरावेध ।

नासानेत्रतालुललाटेषष्टिस्तासांकेशान्तानुगताश्चतस्रः आवर्त्तयोरेकैकास्थपण्यौचैकापरिहर्तव्या ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–ललाटमें ६० शिराहैं, तिन्होंमें आवर्त्तमर्मके समीपकी ४ शिरा तथा आवर्त्तमें एकएक और स्थपणीमें १ ऐसे ७ शिरा त्यागने योग्य हैं, ललाटगत ६० शिरा नासिका तथा नेत्रमें जानेवालीहैं, इसीसे नहीं कहीं अर्थात् २४ नाककी और ३६ नेत्रकी येही मिलकर ६० शिरा ललाटमें हैं।

शंखगतशिरावेध।

शंखयोर्दशतासामेकैकांपरिहरेत् ।

अर्थ–शंख (कनपटी) में १० शिरा हैं, तिनमें एकएक त्यागने योग्य है, शंखगत शिरा येभी नासिका नेत्रगतही हैं।

मस्तकसीमंतऔरअधिपतिइनमेंशिरावेध।

द्वादशमूर्धनितासामुत्क्षेपयोर्द्वैपरिहरेत्।
सीमन्तेष्वेकैकामधिपतौ।

अर्थ–मस्तकमें १२ शिराहैं, तिनमें उत्क्षेप मर्मगत एकएक और सीमंतगत ५ अधिपति गत एक ऐसे आठ शिरा त्यागने योग्यहैं, येभी शिरा नेत्रगतही हैं, इसीसे प्रथक् इनके नाम नहीं कहे।

गिनीहुईशिराओंकीन्यूनाधिकताकहतेहैं।

व्याप्नुवन्त्यभितोदेहंनाभितःप्रसृताःशिराः।
प्रतानाःपद्मिनीकन्दाद्विशादीनांजलंयथा॥

अर्थ–शिरा, नाभिसे निकलकर विस्तृतहो सर्वदेहमें व्याप्त होतीहैं, जैसे कमलनीकन्दसे मृणालतन्तु निकलकर जलमें फैलते हैं। अतएव उक्त संख्यामें न्यूनाधिक्य मालूम होताहै।

अथमतान्तरेणविशेषमाह।

धमन्यइवविज्ञेयाःशिराश्चसर्वदेहगाः। रक्तस्रोतःप्रवाहिण्यो देहरक्षणहेतवः। शिरस्युरसिकण्ठेचवाह्वोरपिचयाःस्थिताः। सर्वास्त्वाजत्रुणोरारान्मिलित्वैकत्वमागताः। सक्थ्नोरुदरबस्त्योर्याबस्तिदेशेचसङ्गताः। भित्त्वावक्षस्थलेपेशींनयन्त्यस्रंहृदालयम्। शिराभिर्निखिलाभिश्चशिरासङ्गमजातयोः।द्वयोर्महत्योःशिरयोरप्यतेशोणितंसदा॥हृदयाच्छोणितं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शुद्धमाश्रित्यधमनीपथम् । गुणविश्राणनाद्देहंक्षीणंपुष्णाति नित्यशः । एवंत्यक्तगुणंकृष्णंदेहनाशगुणान्वितम् ॥ शिराभिश्चपुनर्यातिदक्षिणंहृदयालयम् । तत्रनिःश्वासवातेनवीतदोषंगुणान्वितम् । सुरक्तंधमनीभिश्चपुनर्भ्रमतिवर्ष्मतत् । एकैकस्याधमन्यश्चकुत्रचित्पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ विद्यमानेशिरेद्वेवहतोदुष्टशोणितम् । नाड्यःसूक्ष्मानयन्त्यस्रंधमनीभ्यःशिराःसदा । शिराभिर्हृदयंयातिततस्तद्धमनींपुनः । एवंपुनःपुनर्देहंभ्रमेदस्रंनिरंतरम् । आभूमिस्पर्शनाद्यावन्मृत्युंसर्वस्यदेहिनः । निवृत्तायांगतौरक्तस्रोतसांसद्यएवहि । मृत्युर्भवतिजीवस्यविचिकित्सानविद्यते । सन्तिसूक्ष्माःशिराःकाश्चित्काश्चिच्चपृथुलास्तथा । काश्चिद्गंभीरदेहस्थाआगम्भीरगतास्तथा । बाह्वोःसक्थ्नोरधःस्थानाअगम्भीरस्थिताहियाः । अमांसलेषुदेशेषुव्याधिक्षीणस्यदेहिनः । शिराव्यक्ततराःस्युस्तास्तद्वलक्षयलक्षणम् । बृंहणंवातशमनंतत्रकार्यंयथायथम् । इति श्रीसौश्रुतशारीरेसप्तमोध्यायः ॥ ७ ॥

अर्थ–धमनियोंके सदृश शिरा सर्वदेहगत जाननी, ये रुधिरको स्रोतोद्वारा वहन करके देहके रक्षणकी हेतुभूत हैं. मस्तक, वक्षस्थल, कंठ और बाहू दोनों इन सब स्थानोंमें शिरा स्थित हैं, ये सब जत्रुके निकट आय मिलकर एक होगई हैं; सक्थिद्वय, उदर और बस्ती इन स्थानोंकी सब शिराहैं वो सब बस्तिदेशमें मिलकर एकहोकर वक्षस्थलस्थ पेशियोंको भेदकर हृत्कोष्ठमें प्राप्त हुई हैं. देहमें जितनीशिरा हैं वो सब इन दोनों बडी शिराओंमें मिलकर रुधिरको हृदयमें प्राप्त करेहैं, और ओरस्थानके सदृश शोणितयंत्रशिराकी अवस्थिति जाननी. हृदयसे शुद्धशोणित निकलकर धमनीमार्ग होकर समस्त देहमें परिभ्रमण करके क्षीण अंगोंको आत्मगुण देकर नित्य पोषण करेहैं, इसप्रकार गुणहीन कृष्णवर्ण और देहनाशक शक्तिसंपन्न होवे. यह दुष्टशोणित शिरामार्गहो दक्षिण हृत्प्रकोष्ठमें प्राप्त होता है, उसजगे निःश्वासकी पवनके योगसे दोषवर्जित देह पोषणशक्तिसम्पन्न तथा लोहितवर्ण होकर फिर दूसरीवार धमनीमार्गहो देहमें भ्रमण करेहैं, किसीकिसी स्थलमें एक एक धमनीके दोनों पार्श्वोंमें दोदो शिरा विद्यमानहैं, वे दुष्टशोणितको बहती

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

है। छोटीछोटी नाडीसमूह धमनी से शिराओंमें रुधिरको लाती है, उन शिराओंमें होकर वह रुधिर हृदयमें प्राप्तहो फिर उसी प्रकार विशुद्धहो पुनर्वार धमनी नाडियोंमें होकर देहमें घूमेंहै, इसीप्रकार देहमें रुधिर निरन्तर घूमा करेहै जबसे बालक गर्भसे निकल पृथ्वीमें गिरेहै और जबतक मृत्यु नहीं हो तावत्कालपर्यंत इसकी देहमें निरन्तर यह रुधिर भ्रमण करेहै कभी डोलनेसे बंद नहींहोता। कदाचित् किसी कारणवश रक्तस्रोतकी गति रुकजावे तो तत्क्षण मृत्युहोवे। इसमें कुछ संदेह नहींहै, और फिर इसका कुछ इलाजभी नहींहै, शिरासमूहके मध्यमें बहुतसी शिरा सूक्ष्म और बहुतसी स्थूल हैं कोई शिरा देहके गंभीर स्थानोंमें स्थितहैं। और कोई अगंभीर अर्थात् बाहरके देशमें निस्नेह विद्यमानहैं। बाहु और सक्थिद्वयके अधोभागस्थ-अगंभीर शिराहै। अमांसल प्रदेशस्थ शिरा तथा व्याधिक्षीण देहवाले मनुष्योंके अंग की शिरासमूह सुव्यक्त अर्थात् चक्षुद्वारा लक्षित होतीहै। इसप्रकार शिराप्रकाश होनेसे बलक्षीणके लक्षण जानने। ऐसे मनुष्योंको बृंहण और वायुप्रशमक क्रिया कर्त्तव्यहै। १० नंबरका चित्र देखो।

इतिश्रीमदायुर्वेदोद्धारेबृहन्निघंटुरत्नाकरेएकादशस्तरङ्गः॥११॥

अष्टमोऽध्यायः।

शिरावर्णविभक्तिकहनेकेपश्चात्ज्ञातव्यव्याधिमेंशिरावेधविधिकहनीउचित्र है सोई कहतेहैं-

अथातःशिराव्यधविधिशारीरंव्याख्यास्यामः।

अर्थ--अथेत्यनंतरं अर्थात् शिरावर्णविभक्ति कहनेके पश्चात् अब हम शिरावेधशारीरको कहेंगे.

फस्तखोलनावर्जित।

बालस्यरूक्षक्षतक्षीणभीरुपरिश्रान्तमद्याध्वस्त्रीकर्षितवां तविरक्तास्थापितानुवासितजागरित क्लीवकृशगर्भिणीनां कासश्वासशोषप्रवृद्धज्वराक्षेपकपक्षाघातोपवासपिपासा मूर्च्छाप्रपीडितानांशिरांनविध्येत्।

अर्थ--बालक, रूखादेहवाला, क्षतक्षय करके क्षीण, चोट आदि करके सप्तधातु क्षीणहुआ, डरपोका, थकाहुआ, मद्यपान करके शुष्क, मार्ग अथवा स्त्रीके संयोगकरके थकाहुआ, अत्यंत वमन करचुकाहो, दस्तवाला, निरूहबस्ति तथा अनुवासनबस्ति ये उपचार कराहुआ, पंढ (हिजडा) कृश, गर्भिणी, खांसी, श्वास, क्ष-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रोग, अत्यंत ज्वरवान्, आक्षेपकवायु, पक्षाघात (लकवा) उपवास, मूर्च्छा, प्यास इनकरके पीडित मनुष्योंकी शिरावेध अर्थात् फस्त न खोले । इस्का कारण यह है कि, खांसी, श्वास, घोरज्वर, आक्षेपक, पक्षाघात और क्षतक्षीणवाले पुरुषोंके रक्तस्राव होनेसे वायुकोप होनेका भय होताहै । डरपे हुए मनुष्यमें तमोगुण होताहै। इसीसे उसको रुधिरके देखतेही मूर्च्छा होतीहै । तथा श्रीमंत मनुष्योंके वायु कुपित होताहै । वह रक्तस्रावसे अधिक कुपितहो शरीरका नाश करेहै । मद्यप मनुष्यका रुधिर काढनेसे मदकरके विक्षिप्त चित्तहो अतिमूर्च्छित होताहै, और मार्ग तथा स्त्री इनकरके कृश मनुष्यके रुधिर निकालनेसे वातकोप होताहै । आस्थापित, तथा कुपित इन्होंको रुधिर निकालनेसें वातकुपित होताहै । अनुवासित मनुष्यके जठराग्नि मंद होताहै, यदि ऐसैका रुधिर काढाजाय तो अतिमंदाग्नि होवे, नपुंसकका रुधिर काढनेसे सर्वप्रधान धातूक्षय होकर निःसंदेह मरे । कृश और गर्भिणी इनका रुधिर निकालनेसे धातुक्षीण होनेपर देहनाशका भय होताहै, श्वास, खांसी, शोष, इनसे ग्रस्त मनुष्योंका रुधिर निकालनेसे धातुक्षीण होकर देहनाशकी शंका होतीहै ।

रक्तस्रावमेंसाध्यविकार ।

शोणितावसेकसाध्याश्चयेविकारास्तेषुवापक्वेषुअन्येषुचानुरक्तेषुयथाभ्यासंयथान्यायंशिरांविध्येत् ।

अर्थ–जे विकार रक्तस्राव साध्यहैं उनको कहतेहैं, त्वग्दोष, ग्रंथी (गांठ) सूजन, रक्तविकार ये रक्तस्राव साध्यहैं, ऐसा शोणितवर्णनप्रसंगमें कहाहै । वे विकार पक्व होनेपर रक्तस्राव करना चाहिये और जिनसे पश्चात् दाहादि विकारहोवें ऐसे पूर्वरक्तसेक साध्योंमें नहींकहे, उनमें रोगस्थलके समीप प्रदेशको रक्तके यथान्याय अर्थात् स्नेहस्वेदादि उपचारपूर्वक कढाना चाहिये ।

फस्तखोलनेमेंवर्जितमनुष्योंकीभीफस्तखोलनाकहतेहैं।

प्रतिषिद्धानामपिविशेषोपसर्गेआत्यये केवाशिराव्यधनमप्रतिषिद्धम् ।

अर्थ–रक्तस्रावके विषयमें जो वर्जित बाल, क्षीण इत्यादि प्रथम कहआएहैं उन्होंके अतिउपद्रव देनेवाली व्याधि अथवा मृत्युकारक विद्रधि आदि रक्तस्राव साध्य व्याधिहोनेसे, रक्तकढाना निषेध नहींहै, अर्थात् ऐसे रोगमें अवश्य रुधिरकढाना चाहिये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिरावेधकेपूर्वकृत्य।

तत्रस्निग्धस्विन्नमातुरंयथादोषप्रत्यनीकंद्रवप्रायमन्नंभुक्त
वंतंयवागूंपीतवंतंवायथाकालमुपस्थाय्यासीनंस्थितंवाप्रा
णानबाधमानोवस्त्रपटचर्मवल्कलानामन्यतमेनयंत्रयित्वा
नातिगाढंनातिशिथिलंशरीरप्रदेशमासाद्यंप्राप्तंशस्त्रमादा
यशिरांविध्येत्।

अर्थ–फस्त खोलने के पूर्व रोगीके तेल मालिस आदि उपचार कराने चाहिये, और पसीने निकाले; परंतु नैरोग्य पुरुषकी फस्त न खोलनी चाहिये। तथा दोषोंके विरुद्ध न होवे ऐसे द्रवद्रव्य प्रधान अन्न, अथवा यवागू, स्वस्थ होने सैं भोजनकरके, तथा वर्षा और बद्दल न होवे ऐसे दिन वैद्य, रोगीको अपने पास खड़ा कर अथवा बिठलाकर धीरज देकर वस्त्र, पटवस्त्र, चर्म, अथवा वल्कल इनमेंसैं किसी एकसैं लपेटे; परंतु वहवेष्टन (बांधनेकी पट्टी आदि)मस्तकमें बांधनेकी आवश्यकता होवे तो मस्तकको बहुत करडा न बांधे, और हाथपैर बांधने होवे तो इनको बहुत ढीले न बांधे, इसप्रकार बांधकर मर्मप्रदेश स्थानको बचायकर जैसा मिले ऐसें शस्त्रको लेकर शिराको वेधे अर्थात् फस्त खोल रुधिर निकाले।

वेधकालकहतेहैं.

नवातिशीतेनात्युष्णेनप्रवातेनचाश्रिते।
शिराणांव्यधनंकार्यमरोगेवाकदाचन।

अर्थ–अतिशीतदेश, अतिशीतकाल, तथा अत्युष्णदेश और काल, तथा अत्यंत पवन चलता हो ऐसा दिन, तथा बद्दलहोरहा हो ऐसा दिवस इनमें शिरावेध (फस्त) न करे उसीप्रकार रोगहीन पुरुषकी भी फस्त न खोले।

शिरोत्थापनकाप्रकारकहतेहैं.

तत्रव्याध्यशिरंपुरुषंप्रत्यादित्यमुखंमरात्रिमात्रोच्छ्रितंमु
पवेश्यासनेसक्थ्नोराकुंचितयोर्निवेश्यकूर्परेसंधिद्वयस्यो
परिहस्तावर्तगूढांगुष्ठकृतमुष्टिमन्ययोःस्थापयित्वायंत्रेण
शाटकंग्रीवामुष्टयोरुपरिपरिक्षिप्यान्येनपुरुषेणपश्चात्स्थि
तेनवामहस्तेनोत्तानशाटकांतद्वयंग्राहयित्वाततोवैद्योयाना
त्शिरोत्थापनार्थंनात्यायितशिथिलंयंत्रमाचरेत्असृक्स्राव

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

णार्थंचयंत्रंपृष्ठमध्येपीडयेदितिकर्मपुरुषमुखंवायुनापूरये
देषउत्तमाङ्गगतानांमन्तर्मुखवर्जानांशिराणांयंत्रेणव्यध
नेविधिः ।

अर्थ–जिस पुरुषकी फस्तखोलनी हो उसको सूर्याभिमुखकर एकविलस्त ऊंचा आसनपर बैंठाल पैरोंको नीचे लटकायदेवे और यत्किंचित् सुकडकर ऊंकरूं के सदृश बैंठारे और उसपुरुष के दोनों कूर्पर (कोहनी) घोटुओंकी संधिके ऊपर धरवावे और अंगूठेको भीतरकर मुठीबंद करावे अथवा हाथमें किसी वस्तूकी पोटली देकर दोनोंको एकत्र करके धरावे, और नाडमें वस्त्रकी पट्टी बांध और यंत्र करके अर्थात् दोनोंबगल कपडे आदिकी दृढपट्टी लेकर उसको कलाईके तीन अंगुलठौरको छोड दृढबांधे, और दूसरा मनुष्य उस मनुष्यके पिछाडी खडा होकर उस यंत्ररूप शाडीके दोनोंपरले अर्थात् जो नाडमें पडीहै उसको दोनोंहाथोंसे पकडकर खडारहै, अथवा दोनोंपरलोंको बाएहाथसे पकडकर खडारहै; पीछे उसरोगीको वैद्य आज्ञादेवेकि शिराओंके उत्थापन होने चाहिये अतएव वांएहाथसैं बहुत करडा न होवे तथा अत्यंत शिथिल न होने पावे, ऐसैं यंत्रको कुछउठावे और रक्त अच्छीरीतिसैं निकले इसलिये पीठमें यंत्रको अच्छी रीतिसैं दावे; जिस्का शिरावेधरूप कर्म करे उसका मुख पवनसे परिपूर्ण करे; अर्थात् उसमनुष्यको मुखद्वारा श्वासका लेना और छोडना न करने देवे । इसप्रकार उत्तमांग गत शिराका बेध यंत्रकरके करे परंतु यह विधि मुखकी शिराओंके सिवाय इतर उत्तमांगगत शिराओंमें जानना ।

पादादिगतशिरावेधनेकाप्रकार.

पादविध्यस्यपादंसमेस्थानेसुस्थितंस्थापयित्वाअन्यपाद
मीषत्संकुचितमुच्चैःकृत्वाव्यध्यशिरपादंजानुसंधौशाटके
नावेष्टचचहस्ताभ्यांवाप्रपीड्यगुल्फंव्यध्यप्रदेशस्योपरिच
तुरंगुलेप्रोतादीनामन्यतमेनबद्धाशिरांविध्येत् ।

अर्थ–जिस मनुष्यके पैरकी शिरावेध करनी होवे; उस मनुष्यका पैर समान भूमिमें अच्छी रीतिसैं धराकर दूसरे पैरको कुछसकोड ऊंचाधरे, और जिस पैरकी शिरावेधनीहो उसपैरके घोंटुओंकेनीचे दृढकपडेकी पट्टीसैं बांधे, अथवा हाथोंसैंदबावे, पीछे गुल्फसंधीके विषे व्यध्यस्थल छोड चार अंगुलपर वस्त्र चर्मादिकोसे बांधकर शिरावेधकरे ।

हस्तगतशिरावेधप्रकार.

अथोपरिष्टाद्धस्तेगूढांगुष्ठकृतमुष्टींसम्यगा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सनेस्थापयित्वासुखोपविष्टस्यपूर्ववद्यंत्रंबद्धा
हस्तशिरांविध्यात्।

अर्थ–ऊपरके प्रदेशोंमें हस्तादिकोंका शिरावेध करनेके लिये पूर्ववत् अंगूठेको भीतरी दबाकर मुट्ठी बांध लेवे; और मध्य प्रदेशको त्याग ऊपरकी तरफ चार अंगुलपर पट्टीसे बांध शिरावेध कर रुधिर निकालना चाहिये। इसप्रकार गृध्रसी और विश्वाची इन वातरोगोंमें आसनपर बिठलाकर कुछ घोंटू और कोहनीको संकोचित करके शिरावेधकरे।

श्रोणीपीठऔरकंधेइनमेंशिरावेध.

श्रोणीपृष्ठस्कन्धेषुउन्नामितपृष्ठस्यावटुःशि
रःस्कन्धस्योपविष्टस्यविस्फूर्जितस्यपृष्ठस्य।

अर्थ–जिस मनुष्यकी पीठ उन्नामित कहिये नवीहुईहो, तथा जिसका अवटु कहिये नाडके पीछाडीकी शिरा और मस्तक तथा स्कंध इनमें विकार होकर स्तंभित सरीके होनेसें तथा पृष्ठ विस्फूर्जित कहिये चौंडी होनेसें श्रोणी, पृष्ठ, स्कंध इनमें शिरावेध कर रुधिर कढावे, तथा जिस्का मध्यशरीर स्तंभित होजावे उसकी फस्त खोले।

कौनसीठौरशिरावेधकरेयहकहते.

बाहुभ्यामवलम्बमानदेहस्यपार्श्वयोरवनामितमेढ्रस्यमेढ्रे
विदष्टजिह्वाग्रस्याधोजिह्वायाः। अतिव्यात्ताननस्यतालुनि
दन्तमूलेषुच।

अर्थ–जिस पुरुषके दोनोंहाथ स्तंभित सरीखे लंबायमान होकर दोनों कूखोंसें चिपटेसे होजावे; उसके पार्श्वसंबंधी शिराका वेध करे, तथा शिश्न स्तब्ध होनेसें शिश्नसंबंधीशिरावेधकरावे, और जिह्वाग्र काटनेसें जैसी हो ऐसी होजावे उसके जीह्वाके नीचेकी शिरा वेधे, तथा मुख फटासा रहजावे उस पुरुषकी तालुसम्बंधी और दंतसंबंधी शिरावेधनी चाहिये।

अनुक्तयंत्रप्रकारकहतेहैं.

एवंयत्रोपायानन्यांश्चशिरोत्थापनहेतून्बुद्ध्यावेक्ष्य
शरीरवशेनव्याधिवशेनविदध्यात्।

अर्थ–इसप्रकार यंत्रोपाय, तथा अन्ययंत्रोपाय शिराओंके उत्थापनके हेतु कहे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

है ऐसे उपायोंकरके वैद्य स्वबुद्धिसें व्याधि और शरीरका बल देख उसके अनुसार उपचारकरे, अर्थात् शरीरप्रदेशविशेष करके शस्त्रविशेषकी योजना करनी चाहिये।

वेध्यशरीरकेतारतम्यकरकेशस्त्रयोजना.

मांसलेष्ववकाशेषुयवमात्रंशस्त्रंविदध्यादतोन्यथा
अर्धयवमात्रंव्रीहिमुखेनास्थ्नामुपरि ।

अर्थ–मांसल प्रदेश कहिये जठर, कूले ऊरू आदि इनमें शिरावेध करके रक्त काढनेके लिये यवप्रमाण शस्त्र योजना करे । और इतर स्थलके रुधिर निकालनेको अर्धयवके प्रमाण शस्त्रलेवे, और बहुतहड्डीवाले अंगमें रुधिर निकालनेके वास्ते चावलकी कनीके समान शस्त्रलेवे, शीत, उष्ण, वर्षा, इस भेदसे काल तीनप्रकारका है, उनमें विशेष कहते हैं ।

शिरावेधकाल ।

व्यभ्रेवर्षासुग्रीष्मेशीतलेहेमन्तेउष्णे ।

अर्थ–वर्षाकालमें जिस दिन बद्दल न हो उसदिन फस्त खोले, और ग्रीष्म ऋतुमें जिसदिन अत्यंत गरमी न हो उसदिन शिरावेध करे, अथवा तीसरे प्रहर जिससमय ठंडक होजावे उससमय रुधिर निकलवावे, हेमन्त ऋतुमें जिसदिन गरमी होवे उससमय रुधिर निकलवाना चाहिये, परन्तु हेमंत ऋतुमें रोग असाध्य प्राणनाशक दीखे तो कढवावे, अन्यथा न कढानाचाहिये। इसजगे हेमन्तग्रहण सामान्य शीतकालका बोधक है ।

सुविद्धशिराके लक्षण ।

सम्यक्शस्त्रनिपातेनधारयावास्रवेदसृक् ।
मुहूर्तंरुद्धातिष्ठेत्तुसुविद्धांतांविनिर्दिशेत् ॥

अर्थ–उत्तम शस्त्र लगनेसे धारारूप करके क्षणमात्र रक्त निकले और पट्टीबांधनेके पश्चात् निकले नहीं वह शिरा उत्तम विधी जाननी ।

दूषितशिराकेवेधहोनेसेप्रथमदुष्टरुधिरानिकलताहैयह दृष्टांतदेकरकहतेहैं ।

यथाकुसुम्भपुष्पेभ्यःपूर्वंस्रवतिपीतिका ॥
तथाशिरासुदुष्टासुदुष्टमग्रेप्रवर्तते ।

अर्थ–जैसे कसूमके फूल भिजानेसे प्रथम पीला पानी निकलताहै, पश्चात् उत्तम

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रंग निकले है. उसीप्रकार फस्तखोलनेसे प्रथम विकृत रुधिर निकलकर पीछे उत्तम रुधिर निकलता है।

उत्तमविद्धहोनेपरभीरुधिरननिकलनेकाकारण।

मूर्छितस्यातिभीतस्यश्रांतस्यतृषितस्यच।
नवहंतिशिराविद्धास्तथानुत्थितयंत्रिता॥

अर्थ–फस्त खोलनेके समय जिस मनुष्यको मूर्च्छा आजावे, अथवा अत्यंत डरपे, तथा अत्यंत श्रमयुक्त होजावे, वा अत्यंत प्यासाहो, ऐसे मनुष्यकी शिरासे रुधिर अच्छे प्रकार नहीं स्रवे। कारण यह है कि मूर्छादिक करके वायू कोपको प्राप्तहो शिरा (नसों) के मुखको बंदकर देताहै। तथा शिराके फूलनेविना यदि वेधी जावे तोभी रुधिर नहीं निकले, कारण यह है कि, ऐसी शिराओंसे रक्तप्रवाह अभिमुख नहीं होवे.

क्षीणमनुष्यके रुधिरकाढनेपर अत्यंत घबडाहट होनेसे क्रम कहतेहैं।

क्षीणस्यबहुदोषस्यमूर्च्छयाभिहतस्यच।
भूयोपराह्णेविश्राव्याअपरेद्युरुयहेपिवा॥

अर्थ–जो मनुष्य अत्यंत क्षीण होगयाहो, तथा जिसकी देहमें वातादि दोष अत्यंत प्रबल होवे, उस मनुष्यका रुधिर एकहीवार न काढे, किंतु दूसरीबार अपराह्णमें अथवा दूसरे तीसरे दिन कढावे। तथा रुधिर काढते समय जिसको मूर्छा आयजावे उसकाभी रुधिर एकहीवार न निकाले, धीरेधीरे अपराह्ण कालमें अथवा दूसरे तीसरे दिन काढना चाहिये।

रक्तस्रावकाबहुधानिषेध।

रक्तंससेषदोषंतुकुर्यादपिविचक्षणः।
नचातिनिसृतिंकुर्यात्शेषंसंशमनैर्जयेत्॥

अर्थ–विचक्षण वैद्य बहुत रुधिर निकाल एकही दफे दोष दूर न करे, किंतु कुछ शेष रहनेदे अब जो शेष दोष थोडे रहगएहों उनको संशमन आदि औषधोंकरके जीते।

रक्तकाढनेकीपरमावधि.

बलिनोबहुदोषस्यवयस्यस्यशरीरिणः।
परंप्रमाणमिच्छंतिप्रस्थंशोणितमोक्षणे॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–जो पुरुष बलवान्हो तथा जिसके शरीरमें वातादि दोष बलवान्हो तथा प्रौढ अवस्था हो, उसमनुष्यका रुधिर १ एकप्रस्थ निकालना चाहिये (इसजगे १३॥ साढेतेरह पलका एकप्रस्थ होताहै.)

इस्मेंप्रमाण.

वमनेचविरेकेचतथाशोणितमोक्षणे ।
सार्धत्रयोदशपलंप्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥

अर्थ–वमन और विरेचन तथा रक्तस्राव इसविषयमें साढेतेरह पलका प्रस्थ-जानना ।

कौनसेरोगमेंकौनसीशिरावेधनी.

तत्रपाददाहपादहर्षअपबाहुकचिमचिमविसर्प
वातशोणितवातकंटकविचर्चिकापाददारिप्रभृति
षुक्षिप्रममर्मोपरिष्टाद्द्व्यङ्गुलेव्रीहिमुखेनशिरांविध्येत् ।

अर्थ–पाददाह, पादहर्ष, अपबाहुक, चिमचिम, विसर्प, वातरक्त, वातकंटक, विचर्चिका, और पाददारी आदिरोगोंमें तथा तत्सदृश अन्यरोगोंमें तथा तत्संबंधी अन्यरोगोंमें क्षिप्रसंज्ञक मर्मके ऊपर दो अंगुल जगे छोड उसजगे शिरा व्रीह्यग्रप्रमाण शस्त्रकरके वेधनी, श्लीपदरोगमें उसके चिकित्सा प्रकरणमें जिस प्रमाण वेधना लिखा है, उसीप्रमाण शिरा वेधनी चाहिये, क्रोष्टुशीर्ष, खंज, पंगू इत्यादिक वात-रोगोंमें, जंघामें, इन्द्रमर्मके नीचेकी शिरावेधनी चाहिये ।

अपचीरोगमेंशिरावेध.

अपच्यामिन्द्रवस्तेरधस्ताद्द्व्यंगुले ।

अर्थ–अपची रोगमें, इन्द्रवस्ती मर्ममें अधोभागमें,दो अंगुल जगेमें शिरावेधनी चाहिये । परंतु अपची उत्पन्नहोतेही वेधनी चाहिये ।

गृध्रसीमेंशिरावेध.

जानुसन्धेरुपर्यधोवाचतुरंगुलेगृध्रस्याम्
जानुमूलसंश्रितायांगलगंडे ।

अर्थ–गृध्रसी नामक वातरोगमें, घोंटुओंके ऊपर अथवा नीचें चार अंगुल के बीच शिरावेधे । जानुमूलाश्रित शिरा गलगंडमें वेधे इसकरके दूसरा पैर और हाथ इनकी शिराका वर्णन हुआ कारण यह है कि, हाथमें ये दाहादि रोग है, और उसी प्रकार शिरा भी है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हस्तपादादिकोंमेंविशेषकहते हैं।

प्लीहमेंशिरावेध.

विशेषतस्तुबाहौकूर्परसंधेरभ्यन्तरतोबाहु
मध्येप्लीह्निकनिष्ठिकानामिकयोर्मध्येवा।

अर्थ-पैरोंकी अपेक्षा हाथोंमें विशेषकरके प्लीहसंबंधी रोगोंके दमनार्थ कूर्पर (कोहनी) की संधीको संधीके समीप भुजाके मध्यकी शिरा अथवा कनिष्ठिका उंगली और अनामिका इन दोनोंके मध्यकी शिरा वेधे, उसीप्रकार यकृदाल्युदर तथा कफोदर, कफजन्यक श्वासयुक्त, कफावृत वायुजन्य खांसी और श्वास इनमें दहनी हाथकी शिरावेधनी चाहिये।परंतु यकृदाल्युदरके पूर्वावस्थामें वेधनी चाहिये; कोयी आचार्य कहता है कि, श्वास खांसी अल्प होने सैं इनके मार्ग शुद्धकरनेमात्रको शिरावेध करना लिखा है। किंतु अतिरिक्त होनेसे शिरावेध न करे क्योंकि श्वास खांसी में शिरावेध लिख आए है। इसी सैं गृध्रसीमें जो शिरावेधनी कही है वही विश्वाचीमें जाननी।

प्रवाहिकामेंशिरावेध.

श्रोणींप्रतिसमंताद्द्व्यंगुलेप्रवाहिकायांशूलिन्याम्।

अर्थ-जो रक्तकृत वातशूल करके युक्त तथा बहुत दिनोंकी प्रवाहिका उसके शांत्यर्थ श्रोणीके आसमंतात् भागकी द्व्यंगुलदेशमें शिरावेधे, और परिकर्त्तिका, उपदंश, शुक्रदोष, शुक्रव्यापत् इनरोगोंमें लिंगकी शिरावेधे।

मूत्रवृद्धीमेंशिरावेध।

वृषणयोः पार्श्वेमूत्रवृद्ध्याम्।

अर्थ-मूत्रवृद्धिरोग पूर्णदशामें पहुचनेसैं वृषणोंके दोनों बाजू की शिरा वेधनी और नाभीके अधोभागमें सेवनीके वामभागमें ऊपरकी शिरावेधे.

विद्रधितथापार्श्वशूलमेंशिरावेध.

वामपार्श्वेकक्षास्तनयोरन्तरेविद्रधौपार्श्वशूलेच।

अर्थ-इसजगे वामपार्श्व करके दोनों पार्श्व जानने, इनमें विद्रधि अथवा पार्श्वशूलहोने सैं दोनो कूखोंमें और स्तन इनके मध्यमें शिरावेधनी चाहिये। उदाहरण, जैसे बाएँ अंगमें होनेसे वामस्तन और वामकूख इन दोनोंके मध्यकी शिरा वेधनी, उसीप्रकार दहनी बाजू जाननी, कोई ऐसे कहतेहैं कि कफोदरमेंही ये शिरा वेधनी, परंतु यहबात ठीक नहीं है। क्योंकि पहले यकृदाल्युदर, और कफोदर इनमें दक्षिणबाहुसंबंधी शिरा वेधनेके लिये कह आएहैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बाहुशोषतथाअपबाहुकइनमेंशिरावेध ।

बाहुशोषापबाहुकयोरप्येकेवदन्त्यंसयोरंतरे ।

अर्थ–शोणितावृत वातजन्य जो बाहुशोष और अपबाहुक तिनमें कंधेके मध्यदेशकी शिरावेध करे, केवल एकवातसे प्रगटमें न करे, ऐसे कोई आचार्य कहते हैं । परंतु अपबाहुकको स्नेहन-स्वेदनादि उपचारोंका निषेधहै । सामान्यशिरावेधका निषेध नहीं है । बाहुशोषमें केवल वायुका निषेध है परंतु अवस्थाभेदकरके शिरावेध करावे । तथा जिस कालमें उष्णाम्ललवणादिको करके पित्तकुपित होकर उसमें वायु मिलकर पीडादेता है उस कालमें शिरावेध करावे ।

तृतीयकज्वरपरशिरावेध ।

त्रिकसंधिमध्यगतांतृतीयके ।

अर्थ–तृतीयक ज्वरमें कंधेके मध्यगत त्रिकसंधी कहिये नाडकीसंधी उसकी शिरावेध करे ।

चातुर्थिकज्वरमेंशिरावेध ।

अधःस्कंधगतामन्यतरपार्श्वस्थितांचतुर्थके।

अर्थ–चातुर्थक अर्थात् चौथैया ज्वरमें कंधेके नीचे वांईतरफ अथवा दहनी तरफकी शिरावेधे ।

अपस्मारमेंशिरावेध ।

हनुसंधिगतामपस्मारे।

अर्थ–अपस्मार कहिये मृगी इसरोगमें हनुसंधिके समीपस्थ शिरावेधनी चाहिये.

उन्मादरोगमेंशिरावेध ।

शंककेशान्तसन्धितामुरोपाङ्गललाटेषूउन्मादे ।
केचिदत्रउन्मादेअपस्मारेचेतिपठन्ति।

अर्थ–उन्मादरोगमें शंखगत, केशांतसंधिगत, उर, अपांग और ललाट इनमें शिरा वेधकरे । तथा कोई अपस्मारमें यह शिरावेधे ऐसा कहतेहैं, परंतु वाग्भटादि *ग्रंथोंके विरुद्धहोनेसे यह पाठ उत्तम नहींहै ।

---

* तथाचवाग्भटः॥उरोपाङ्गललाटस्थामुन्मादेह्यस्मृतौपुनः । हनुसंधौसमस्ते वाशिराभ्रूमध्यगामिनी ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जिह्वारोगतथादंतव्याधिमेंशिरावेध।

जिह्वारोगेअधोजिह्वायादन्तव्याधिषुच।

अर्थ–कंटकादि जिह्वारोग तथा कृमिदंतादि दंतरोग इनमें जिह्वाके अधोभागकी शिरा वेधे।

तालुरोगमेंशिरावेध।

तालुनितालव्येषु।

अर्थ–तालुसंबंधी रोगोंमें तालुसंबंधी शिरा वेधनी चाहिये।

कर्णशूल और कर्णरोगमें शिरावेध।

कर्णयोरुपरिसमंतात्कर्णशूलेतद्रोगेच।

अर्थ–कर्णशूल और इतर कर्णरोग इनमें कानके ऊपर आसमंतात् भागकी शिरा वेधे।

गंधाग्रहणादिनासारोगमें।

गंधाग्रहणेनासारोगेषुचनासाग्रे।

अर्थ–नाकमें गंधका ज्ञान जाता रहे अथवा इतर नासिकाके रोगोंमें नासाग्रसंबंधी शिरा वेधे, कर्णशूल और गंधाग्रहण इन दोनों रोगोंके कर्णरोग और नासारोगके कहनेसेही ग्रहण होगया तथापि विशेषता दिखानेको दूसरे कहाहै।

तिमिरपाकादिनेत्ररोगोंमें।

तिमिरपाकप्रभृतिषुअक्ष्यामयेषु।
उपनासिकाललाटस्थाअपांग्यावा।

अर्थ–तिमिर और नेत्रपाक इत्यादि नेत्ररोगोंमें नासिकाके समीपकी अथवा ललाटस्थ अथवा अपांगस्थ शिरा वेधनी। अधिमंथ आदि मस्तकरोगोंमें यही शिरा वेधे, इसजगे प्रभृतिग्रहण जो करा है उससे क्षुद्ररोगोंमें जो अरुंषिका आदि मस्तकरोग लिखेहैं उनका ग्रहण है।

दुष्टशिरावेधकेलक्षण।

अतऊर्ध्वंदुष्टव्यध्याःशिराव्याख्यास्यामः। तत्रदुर्विद्धाऽभिविद्धासंकुचितापिचिताकुट्टिताप्रस्तुताऽत्युदीर्णान्तेविद्धापरिशुष्काक्षणितावेपिताऽनुत्थिता अविद्धशस्त्रहतातिर्यग्विद्धाअपविद्धाअव्यध्याविद्धुताधेनुकापुनःपुनर्विद्धाशिरास्नाय्वस्थिसंधिमर्मसुचेतिविंशतिर्दुष्टव्यध्याः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–अब दुष्ट विद्ध शिराओंको कहतेहैं, जैसे कि दुर्विद्धा १ अभिविद्धा २ संकुचिता ३ पिचिता ४ कुट्टिता ५ अप्रस्तुता ६ अत्युदीर्णा ७ अन्तेविद्धा ८ परिशुष्का ९ क्षणिता १० वेपिता ११ अनुत्थिता १२ अविद्धशस्त्रहता १३ तिर्यग्विद्धा १४ अपविद्धा १५ अव्यध्या १६ विद्रुता १७ धेनुका १८ पुनःपुनर्विद्धा १९ शिरास्नायुअस्थिसंधिमर्मसुविद्धा २० इसप्रकार दुर्विद्ध शिरा वीसप्रकारकी जाननी.

दुर्विद्धशिराओंकापृथक् २ वर्णन ।

तत्रयासूक्ष्मविद्धाऽव्यक्तमसृक्स्रवतिरुजाशोफवतीसादुर्विद्धाप्रमाणातिरिक्तविद्धायामन्तःप्रविशतिशोणितमितिप्रवृत्तशोणितावासाऽतिविद्धा । कुञ्चितायामप्येवम् । कुण्ठशस्त्रमथितापृथुलीभावमापन्नापिच्चिता । अनासादितापुनःपुनरंतरयोश्चबहुशस्त्राक्षिहताकुट्टिता । शीतभयमूर्च्छाभिरप्रवृत्तशोणिताप्रस्तुता । तीक्ष्णमहामुखशस्त्रविद्धात्युदीर्णा।अल्परक्तस्रावियन्तेविद्धा । क्षीणशोणितस्यानिलपूर्णापरिशुष्का । चतुर्भागासादितार्किंचित्प्रवृत्तशोणिताक्षणिता । दुःस्थानबन्धनाद्वेपमानायाःशोणितसंमोहोभवतिसावेपिता । अनुत्थितविद्धायामप्येवम् । छिन्नातिप्रवृत्तशोणिताक्रियासङ्करीशस्त्रहता । तिर्यक्प्रणिहितशस्त्रार्किंचिच्छेषातिर्यग्विद्धा । बहुशतावधिशस्त्रप्रणिधानेनापविद्धा । अशस्त्रकृत्याअव्यध्या । अनवस्थितविद्धाविद्रुता ।प्रदेशस्यबहुशोघटनादारोहव्यधाद् मुहुर्मुहुःशोणितास्रावाधेनुका । सूक्ष्मशस्त्रव्यधनाद्बहुशोभिन्नापुनःपुनर्विद्धा ॥

अर्थ–यदि शिरा सूक्ष्मविद्ध होनेसे अत्यंत थोडा रुधिर निकले और जिस्में पीडा तथा सूजन हो उस्को दुर्विद्ध शिरा कहते हैं । तथा जो प्रमाणसे अधिक वेधी गईहो, उसमें रक्त भीतर प्रवेश होकर अच्छे प्रकार न निकले उसको अभिविद्धा शिरा कहतेहैं, तथा संकुचिता शिराकेभी येही चिह्नहैं. और भीतरे शस्त्रद्वारा वेध करनेसे जो शिरा मथीसी होकर मोटी होजावे उसको पिच्चितशिरा कहतेहैं, जो शिरा अच्छी रीतिसे शुद्ध न हुईहो वह वारंवार अनेक शस्त्रोंसे वेधी गईहो उसको कुट्टिता कहतेहैं, तथा शीत भय मूर्च्छा इत्यादि कारणोंकरके जो स्रवे नहीं उसको अप्रस्तुता

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कहतेहैं, तथा तीक्ष्ण और बडेमुखवाले शस्त्रसे जो शिरा विद्ध हुईहो उसको अत्युदीर्णा कहतेहैं, जिसमें थोडा रुधिर निकले उसको अंतेविद्धा कहते हैं, जो रक्तक्षीण होनेके अनन्तर वायुकरके परिपूर्ण होजावे उसे परिशुष्का कहतेहैं, जो चारोंतरफसे वेधी जावे और जिसमेंसे थोड़ा रुधिर निकले उसे कणिता कहतेहैं, जो दुष्टस्थानमें बांधनेसे कंपयुक्त होवे और रुधिर निकले नहीं उसे वेपिता कहतेहैं; और जो अच्छी रीतिसे फुली न हो उसे वेधे इसीसे उसमेंसे रुधिर निकले नहीं उसे अनुत्थिता कहतेहैं, जो शस्त्रसे टूटकर उसमेंसे अत्यंत रुधिर निकले इसीकारण अवयवोंके चलनवलनादि व्यापार बंद होजावे उस शिराको अविद्ध शस्त्रहता कहते हैं, तथा तिरछा शस्त्र लगनेसे यथार्थ विधी नहो और कुछ अंश विधनेसे रहगया हो उसे तिर्यग्विद्धा कहते हैं. तथा सैकडों शस्त्रोंके लगनेसे यथार्थ न विधे उसे अपविद्धा कहते हैं; और जो शस्त्रोंके लगनेसे न विधे उसे अव्यध्या कहते हैं. तथा जगेजगे पर वेधीगई हो उसे विद्रुता कहते हैं; जो अत्यंत वेधनेसे वारंवार स्रवे उसे धेनुका कहते हैं. बहुत सूक्ष्म शस्त्र करके वेधनेसे रक्त स्रवे नहीं अर्थात् वारंवार वेधनेसे जगेजगे छिद्र पडजावे उसे पुनःपुनर्विद्धा कहते हैं; और जो अस्थिशिरा संधीममोंमें विद्ध हुई है उससे वही वही अवयव पीडा करे उसे मर्मविद्ध शिरा जाननी।

शिरावेधनेमें अत्यंतसावधानीचाहिये।

शिरासुशिक्षितोनास्तिचलाह्येताःस्वभावतः।
मत्स्यवत्परिवर्त्ततेतस्माद्यत्नेनताडयेत् ॥

अर्थ–शिराओंके विषयमें अभ्यास करके निपुण ऐसा कोई नहीं होवे. इसका यह कारण है कि वे शिरा स्वभाव करके मछलीके सदृश अतिचंचल है, अतएव बहुत सावधानीके साथ वेधनी चाहिये। शस्त्रकर्ममें निपुण वैद्य उससेभी कभीर विपर्यय होजाता है यह कहते हैं.

अयोग्यशस्त्रद्वारावेधनेकेअवगुण।

अजानतागृहीतेतुशस्त्रेकायनिपातिते।
भवन्तिव्यापदश्चैतावहवश्चाप्युपद्रवाः ॥

अर्थ–वैद्य विनाजाने दुष्टशस्त्रको लेकर शिरावेधकरे अर्थात् फस्त खोले तो अनेक प्रकारके उपद्रव तथा व्याधि होती है.

इतरउपचारोंकीअपेक्षाशिरावेधकोअधिकताकहते हैं।

स्नेहादिभिःक्रियायोगैर्नतथालेपनैरपि।
यान्त्याशुव्याधयः शांतिंयथाशांतिंशिराव्यधात् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–जैसी शिरावेध करके व्याधि शीघ्रशांति होती है; ऐसी स्नेहन लेपन आदि उपचारोंसे शीघ्र शांति नहीं हो ।

शिरावेध चिकित्साकाअर्धागहै ।

शिराव्यधश्चिकित्सार्धंशल्यतंत्रेप्रकीर्तितम् ।
यथाप्रणिहितंसम्यग्बस्तिःकायचिकित्सिते ।

अर्थ–चिकित्सा कहिये रोगकी प्रतिक्रिया (इलाज) उसमें फस्त खोलना प्रधान अंग है, जैसे कोष्ठशोधनके विषे बस्तिप्रयोगप्रधानहै, इसी प्रकार चिकित्सामें शिरावेधको प्रधानता है । कोई (अर्ध) शब्दको संख्यावाचक कहते हैं; अर्थात् शिरावेध आधी चिकित्सा है, और वमन, विरेचन, शमनादि सर्व आधी चिकित्सा हैं।

अबस्निग्धादिपुरुषोंकोक्रोधादिकसामान्यकरके
त्यागनेयोग्यहैयहकहतेहैं ।

तत्रास्निग्धस्विन्नवांतविरक्तास्थापितानुवासितशिराविद्धैःपरि
हर्तव्यानिक्रोधोपवासमैथुनदिवास्वप्नवाग्व्यायामाध्ययनस्था
नासनचंक्रमणशीतवातातपविरुद्धासात्म्याजीर्णान्नाबलला
भान्मासमेकेमन्यंते ।

अर्थ–स्निग्ध, स्विन्न, वांत, विरक्त, (जिसने दस्ताकी औषधलीनीहो) आस्थापित, अनुवासित और शिराविद्ध; इतने पुरुषोंको क्रोधकरना, उपवास, मैथुन, दिनमें सोना, बहुतबोलना, पढ़ाना, पढ़ना, स्थान और आसन, इनकी उलटपलट और शीत, पवन, गरमी और विरुद्ध, असात्म्य अजीर्ण, ऐसे अन्न इत्यादिक वर्जित हैं ।

रक्तस्रावकरनेकेसाधन ।

शिराविषाणतुंबैस्तुजलौकाभिःपदैस्तथा ।
अवगाढंयथापूर्वंनिर्हरेदुष्टशोणितम् ॥

अर्थ–अभ्यंतराश्रित रुधिरके दूषित होनेसे उसको शिरा, विषाण, तुंबी और जोख इत्यादिकों करके पूर्वोंका अतिक्रम न करके कढावे, स्पष्टार्थ यह है कि, अभ्यंतराश्रित रुधिर अत्यंत गाढा न होवे तो जोख लगाकर निकालना; यदि अत्यंतभीतरहो उसको तूंवडीसे निकाले और उससे भीतरी रुधिरको सिंगीसे कढावे और सर्व देहगत हो उसको शिरावेध अर्थात् फस्त खोलकर निकालना चाहिये.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्थानभेदकरकेउपायविशेषकहतेहैं।

अवगाढेजलौकास्यात्प्रच्छन्नंपिण्डितेहितम्।
शिराङ्गव्यापकेरक्तेशृङ्गालाबूत्वचिस्थिते॥

इतिसौश्रुतेऽष्टमोऽध्यायः॥८॥

अर्थ–अभ्यंतराश्रित रुधिर दुष्टहोनेसे जोक लगावे और जमकर गांठदार होगयाहो उसका फासणिद्वारा निकाले और सर्वांग दुष्टहुएरुधिरको शिरावेधकर निकाले. त्वचागत दूषित रुधिरको तूंबी अथवा सिंगी लगाकर निकाले.

इति श्रीमदायुर्वेदोद्धारेबृहन्निघण्टुरत्नाकरेद्वादशस्तरंगः॥१२॥

नवमोऽध्यायः।

शिराव्यधविधिशारीराध्यायके अनंतर शिरा, धमनी और स्रोतस् ए सब समान होनेसे धमनीव्याकरण अर्थात् धमनीका वर्णन करेहैं।

अथातोधमनीव्याकरणंशारीरंव्याख्यास्यामः।

अर्थ–धमनीके वर्णनरूप शारीराध्यायकी व्याख्या करतेहैं।

धमनीशब्दकीव्युत्पत्ति।

ध्मानादनिलपूरणाद्धमन्यः।

अर्थ–वायुकरके पूरितहोकर जिन्होंका स्फुरणहोवे उनको धमनी कहते हैं।

धमनियोंकीसंख्या।

चतुर्विंशतिर्धमन्योनाभिप्रभवाभिहिताः।

अर्थ–नाभिसे २४ धमनी उत्पन्न हुईहैं, ऐसे शोणितवर्णनप्रकरणमें कहीहै।

शिराधमनीस्रोतसोंकाऐक्यकहतेहैं।

तत्रकेचिदाहुःशिराधमनीस्रोतसामविभागः
शिराविकाराएवधमन्यःस्रोतांसिच।

अर्थ–कोई कहतेहैं कि शिरा, धमनी और स्रोतस् ए भिन्न नहीं हैं, किंतु कर्मभेद करके नाममात्र पृथक् २ है।

शिरादिकोंकाभेदकहतेहैं।

शरणात्शिरास्ताएवध्मानाद्धमन्यःस्रवणात्स्रोतांसि।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ- (शरणात्) कहिये सर्वरस, शरीरमें जगेजगे पहुँचानेसे शरीरको पोषण करेहैं, इसीसे शिराकहतेहैं । तिनमें कोई पवनपूरितहोकर स्फुरणयुक्त होतीहै, वो धमनीनामसे विख्यात है । तथा कोई प्रकारकी शिरा मलमूत्रादिकोंको स्रवतीहै, अतएव उन्होंको स्रोतस् कहतेहैं, जैसे गेहूंका चून, मेंदा और दूधके दही, मक्खन आदि प्रकारांतर होजाते हैं, उसीप्रकार शिरा, धमनी और स्रोतसोंमें भेदहै ।

मतान्तर ।

आकाशीयावकाशानांदेहेनामानिदेहिनाम् ।
शिराःस्रोतांसिभागाःखंधमन्योनाड्यआशयाइत्यादि।।

अर्थ-देहधारी पुरुषोंके देहमें आकाशसंबंधी जो अवकाशहै, उसीके शिरा, धमनी, स्रोतस्, ख, नाडी और आशय इत्यादि नामहैं ।

उक्तमतकाखण्डन।

तत्तुनसम्यगन्याएवधमन्यःस्रोतांसिचशिराभ्यःकस्मा
दव्यंजनान्यत्वान्मूलजान्नियमात्कर्मवैशेष्यादागमाच्च ।

अर्थ-ऊपर कहा हुवा मत उत्तम नहींहै क्योंकि शिरासे धमनी, स्रोतस् ये जुदे२ हैं. इनका कारण यहहै, कि इन्होंके पृथक् होनेमें चार हेतुहैं, उनको कहतेहैं (व्यअनान्यत्वात्) कहिये, इनके लक्षण और वर्ण नील, अरुण, शुक्ल, लोहित, इत्यादिकहैं. और शब्दादि वह धमनियोंका वर्ण नहीं कहा इसीसे (स्वधातुसमवर्णत्वम्) अर्थात् धमनी जिस २ धातुओंको वहतीहैं उसी २ धातुके वर्णसमान वर्ण जानना चाहिये. इसी प्रकार स्रोतसोंकेभी लक्षण जानने सो चरकमेंभी लिखाहै.

स्वधातुसमवर्णत्वकहते हैं ।

स्वधातुसमवर्णानिवृत्तस्थूलान्यणूनिच ।
स्रोतांसिदीर्घाण्याकृत्येत्यादिकम् ।

अर्थ-स्रोतस् जिस जिस धातुओंको वहतेहैं; उसीउसी धातुके समान उन्होंका वर्ण जानना, स्रोतस्, आकृति करके गोल, तथा कोई २ मोटी, कोई बारीक, लंबी लंबी, ऐसीहै । इसप्रकार शिरा और धमनीयोंमें भेद जानना चाहिये ।

मूलनियमकहतेहैं ।

मूलजान्नियमात् । तासांमूलशिराश्चतु
श्चत्वारिंशदित्यारभ्ययावदेतानिसप्तशि-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

राशतानिभवंतिधमनीनांचतुर्विंशतिधमन्यः
स्रोतसांपुनर्द्वाविंशतिः।

अर्थ–मूलशिरा ४४ तिनमें से ७०० शिरा निकली हैं, तथा मूलभूत धमनी २४ हैं, और स्रोतस् २२ हैं. इसप्रकार मूलभूत शिरा, धमनी और स्रोतस् इनमें भेद जानना।

कर्मभेदकहतेहैं।

शिराणांकर्मवैशेष्यंधमनीनांशब्दरूपरसगंधवहत्वा
दिकंप्राणान्नरसशोणितमांसवहत्वादिकंस्रोतसाम्।

अर्थ–शिराओंके कर्म अतिघातादिक, धमनीके कर्म शब्दादि वहत्वादिक और स्रोतसोंके कर्म प्राण, अन्नरस, रुधिर मांस, मेद, इनका वहनरूप जानना। इसप्रकार कर्मभेदरूप तृतीयहेतु जानना।

आगमरूपचतुर्थहेतुकहतेहैं.

आगमोत्रायुर्वेदः सचतुर्थोभेदहेतुस्तद्यथा
शिराधमन्योयोगवहानिस्रोतांसीति।

अर्थ–आगमके कहनेसे इसजगे आयुर्वेदका ग्रहणहै। वह आयुर्वेद धमनी शिरा आदिके पृथक् होनेमें चतुर्थहेतुहै; जैसे इसी आयुर्वेदशास्त्रमें शिरा, स्रोतस्, धमनी ऐसा पृथक् निर्देशकिया है, यथा [मर्मशिरास्नायुसंध्यस्थिधमनीः परिहरन्] इत्यादि वाक्योंमें शिरासे धमनी निर्दोष पृथक् करके कहीहैं। इसीसे स्पष्ट प्रतीत होताहै कि, शिरा धमनी और स्रोतस् ए पृथक् २ हैं।

अब शिरास्रोतसादि परस्पर भिन्नहैं तथापि उनके कर्म
मिलेहुएसे दीखतेहैं ऐसेकहतेहैं।

केवलंतुपरस्परसन्निकर्षात्सदृशागमकर्मकत्वादतिसौक्ष्म्याच्च।
विभक्तकर्मणामपिअविभागइवकर्मसुभवतिअतिसंनिकृष्टत्वादि
हेतुचतुष्टयेनकर्मसुअपृथक्त्वमिवभवति।

अर्थ–शिरा, धमनी, स्रोतस्, ये परस्पर मिले हुएहैं, तथा सबका आगम और कर्म ये समान हैं तथा ए सब अतिसूक्ष्म हैं। अतएव कर्मकरके विभक्त अर्थात् पृथक् २ होनेपरभी कर्मकेविषे अविभक्तसे (मिलेहुएसे) प्रतीत होतेहैं. इस विषयमें दृष्टांतहै। जैसे पांच सात प्रकारके पदार्थ एकत्रकर वरानेसे सबकी ज्वलनक्रिया

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वस्तुतः भिन्नभी होनेपर एकही दीखेहै । इसप्रकार इसजगे समझना । उसीप्रकार दूसराहेतु कहतेहैं [सदृशागमकत्वात्] अर्थात् शिरादिकोंके आप्त वाक्य [आकाशीयावकाशानां] इत्यादि सबोंके समानहै । तीसरा हेतुकहतेहैं [सदृशकर्मकत्वात्] अर्थात् शिरा धमनी स्रोतस् इनके रसादि वहनरूपकर्म समानहै तथा अतिसूक्ष्महै, चारोंहेतुओंसे शिरादिकर्मविषयमें एकसे दीखतेहैं ।

नाड्यादिकोंकीगतिकहतेहैं ।

तासांखलुनाभिप्रभवानांधमनीनामूर्ध्वगा
दशदशचाधोगामिन्यश्चतस्रस्तिर्यगाः ।

अर्थ–नाभिसे प्रगट हुई जो २४ धमनी, तिनमें ऊपरके भागमें जानेवाली १० और अधोभागमें जानेवाली १० तथा आडी तिरछी जानेवाली ४ धमनीहैं ऐसें २४ हुई।

धमनीनाडियोंकेकर्म ।

ऊर्ध्वगाःशब्दरूपरसगंधप्रश्वासोच्छ्वासजृंभितक्षुधितहसित
कथितरुदितादीन्विशेषानभिवहन्त्यःशरीरंधारयन्ति ।

अर्थ–ऊर्ध्वगत धमनी शब्दादि क्रियाविशेषोंको वहतीहुई देहको धारण करती है शब्द, रूप, रस, गंध, एप्रसिद्धहैं, प्रश्वासोछ्वास कहिये पवनका भीतरलेना और छोड़ना, स्वप्नकृत धमनीका धर्म, रोदनादिअश्रुवाहिनीके धर्म आदिशब्दकरके रूपादिवाहिनीसंबन्धी प्रेक्षणादि कर्मोंका ग्रहण जानना.

धमनीकेकार्यकहतेहैं।

तास्तुहृदयमभिपन्नास्त्रिधाजायन्ते ।

अर्थ–ऊर्ध्वगत धमनी नाभिसे हृदयकेप्रति आयकर तीनप्रकारकी होतीहैं । तिनमें दो धमनी करके भाषण, दोसे घोषण, दोसे निद्रा, दोसे जागना, और दो अश्रुवाहिनी, तथा दो स्तनाश्रितहोकर स्त्रियोंके स्तनसंबंधी दूधको वहतीहैं, तथा वेही स्तनाश्रित होनेपर पुरुषोंके शुक्रको वहतीहै, इसप्रकार ऊर्ध्वगत धमनी तीनप्रकारके ३० विभागकहेहैं । ये उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर, स्कंध, ग्रीवा बाहु इनको धारण करतीहै. तथा शब्द, घोष, निद्रा, प्रबोध, इनको प्रत्येक दोदो धमनी वहती हैं । ऐसे ये आठधमनी रजप्रवर्तित आत्मप्रयत्न प्रबोध मनोनुगत धमनीकरके ग्रहणकराजायहै । परंतु मन परमाणुरूपहै, इसीसे एककालमें उस धमनीकेविषे प्रवृत्त नहीं होता । तात्पर्य यहहैकि, उन धमनियोंमें जो धमनी मनसहवर्त्तमान युक्तहोती है उसके योगकरके शब्दादिकोंका ग्रहणहोताहै । एकही कालमें सर्व शब्दस्पर्शादि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कोंका धमनीकरके ग्रहण नहींहोवे। स्पर्शादिक तिर्य्यग्गत धमनीके कर्म आगे इसी अध्यायमें कहेंगे। भाषण (ताल्वादि स्थान व्यापार निष्पादित अकारादि वर्णयुक्त शब्द) और घोष (एतद्विपरीत अव्यक्तशब्द) तथा (द्वाभ्यांस्वपिति अर्थात् तमोगुण युक्त दो धमनी करके निद्रा लेना) सतोगुण युक्त दो धमनीकरके जागृत होना, तथा ऊर्ध्वगत धमनी उदरादिकोंको धारण करेहैं।

अधोगतधमनीकेकार्य।

ऊर्ध्वगमास्तुकुर्वन्तिकर्माण्येतानिसर्वशः।
अधोगमास्तुवक्ष्यामिकर्मचासांयथायथम्॥

अर्थ—इसप्रकार ऊपर जानेवाली धमनियोंके कर्म कहकर अब अधोगत धमनियोंके कर्म कहतेहै.

अधोगमास्तुवातमूत्रपुरीषशुक्रार्त्तवादीनधोवहन्ति
तास्तुपित्ताशयमभिप्रपन्नास्तत्रस्थमेवान्नपानरसंवि
पक्कमौष्ण्याद्विवेचयन्त्योऽभिवहन्त्यःशरीरंतर्पयन्ति।

अर्थ—अधोभागमें जानेवाली धमनी वात, मूत्र, मल, शुक्र, आर्त्तव, इत्यादिकोंको अधोभागमें वहतीहै, और वे धमनी पित्ताशयमें प्राप्तहो उसजगे अन्न, पानसंबंधी रस जठराग्निकी ऊष्मा करके पक्कहुए उनको यथास्थित योजना करके जितना पक्कहुआ उतनेको जहां तहां पहुचाकर सर्वशरीरको पोषण करेहै।

अधोगतधमनीसेंऊर्ध्वशरीरपोषणकैसेंहोताहैसोकहतेहैं.

ऊर्ध्वगानांरसस्थानंचाभिपूरयन्तिमूत्रपुरी
षस्वेदांश्चविवेचयन्ति।

अर्थ—अधोगत धमनी, ऊर्ध्वदेशगत धमनीके रसस्थानको पूर्ण करती है स्पष्टार्थ यह है कि, वे धमनी आमाशय और पक्काशयमें प्राप्तहो अन्नरसको वर्तुलीकृत करके रसस्थानको पूर्ण करे है, और ऊर्ध्वगामिनी धमनी उसजगेसैं रस जगेजगे पहुचायकर सर्व शरीरको तृप्त करे हैं, अतएव अधोगत धमनीही सर्व शरीरको पोषण करती है, ऐसैं फलित होता है। और आम पक्काशयमें अधोगत धमनी विपक्व हुए अन्नसैं मूत्र, पुरीष, इत्यादिकोंको प्रथक् २ करे है, तथा उसजगे तीनप्रकार होते ह अतएव ३० धमनी जाननी।

अधोगत ३० धमनियोंकेकर्म.

तासांवातपित्तकफशोणितरसान्द्वेद्वेवहत-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्तादशद्धेअन्नवाहिन्यौअंत्राश्रितेतोयवहेद्धेमूत्रवस्तिमभिप्रप
न्नमूत्रवहेद्धेशुक्रप्रादुर्भावायद्धेविसर्गायद्धेतेएवरक्तमभिवहतो
विसृजतश्चनारीणामार्त्तवसंज्ञेद्धेवचौंनिरासिन्यौस्थूलांत्रप्रतिबद्धे ।

अर्थ–तिनमें वात, पित्त, कफ, रस, रक्त, इनके वहनेवाली प्रत्येककी दोदो हैं। सर्व मिलकर १० हुई, तथा अंत्राश्रित होकर अन्नके वहनेवाली २ और उदकवहनेवाली २ मूत्राश्रित मूत्रवहनेवाली २ तथा शुक्र उत्पन्न करनेवाली २ और शुक्रका विसर्ग करनेवाली २ वेही स्त्रियोंके आर्त्तवसंज्ञक रक्त वहनेवाली २ तथा विसर्ग करनेवाली जाननी, और २ स्थूलांत्रोंसे बंधीहुई पुरीषको वहती है ।

अष्टावन्यास्तिर्यग्गामिनीनांधमनीनांस्वेदमपतर्पयन्तिता
स्त्वेतास्त्रिंशत्सविभागाव्याख्याताएताभिरधोनाभेःपक्वा
शयकटीमूत्रपुरीषगुदवस्तिमेढ्रसक्थीनिधार्यंतेयाप्यंतेच ।

अर्थ–दूसरी आठ धमनी और हैं, वे तिर्यग्गत धमनीके मुखप्रति स्वेदको प्राप्तकर उनको तृप्त करेहैं, इसप्रकार अधोगत धमनीके विभाग कहेहैं । वेनाभिके अधोभागके पदार्थ पक्वाशय, कटि, मूत्र, पुरीष, गुदा, वस्ती, शिश्न, ऊरु, इनको भलेप्रकार धारण करेहैं । वातादिकोंका वहन इनका सामान्य कर्म जानना ।

तिर्यक्गतधमनी कहतेहैं ।

अधोगमास्तुकुर्वन्तिकर्माण्येतानिसर्वशः ।
तिर्यग्गाःसंप्रवक्ष्यामिकर्मचासांयथायथम् ॥

अर्थ–नाभीके अधोभागमें जानेवाली धमनी पूर्वोक्त प्रकार कर्म करती है; अब तिर्यग्गत धमनीके जैसेजैसे कर्महै, तैसे तैसे कहतेहैं ।

तिर्यग्गानांचतसृणांधमनीनामेकैकाशतधासहस्रधाचोत्तरो
त्तरंविभज्यन्ते तास्त्वसंख्येयास्ताभिरिदंशरीरंगवाक्षितंवि
बद्धमाततंच । तासांतुमुखानिरोमकूपप्रतिबद्धानियैःस्वेदम
भिवहंतिरसंचाभिसंतर्पयंत्यंतर्बहिश्चतैरेवाभ्यङ्गपरिषेकाव
गाहालेपनवीर्याणिअन्तःशरीरमभिप्रतिपद्यत्वचिविपक्वानि
तैरेवस्पर्शसुखमसुखंवागृह्णीते ।

अर्थ–शरीरमें बाँकी, तिरछी जानेवाली ऐसी चार धमनी हैं, वो एक एक सौसौ

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हजारहजार ऐसे उत्तरोत्तर विभागोंमें बढ़कर असंख्य होगई है । उनसे यह सर्वशरीर व्याप्तहो जालके सदृश बनाहुआ है । तथा उन धमनियोंके मुख रोमकूपोंसे प्रतिबद्धहैं, उनसे पसीना निकलताहै, तथा उस मुखकरके सर्वशरीरके बाहरभीतर त्वचादिकोंके प्रति रसको प्राप्त करतीहै । तथा उन्हींकरके अभ्यङ्ग, परिषेक और जलादिकोंके बीच स्नान तथा लेपन, इत्यादिकोंका वीर्य शरीरमें पहुँचता है । तथा मनोनुगत उसी धमनी करके त्वचामें सुखदुःख, स्पर्श, आत्माको अनुभव होताहै । इसप्रकार तिर्यग्गत चारधमनी सर्वांगगत विभागपूर्वक कहीहैं, अब शब्दादिकोंको ग्रहण करनेवाली और सर्ग, स्थिति, प्रलय इनमें प्रकृतिभूत ऐसी जो धमनी हैं उन्होंकी प्रकिया कहतेहैं ।

शब्दादिग्राहिणीतथासर्गादिकारकधमनीइनकीप्रक्रियाकहतेहैं

पञ्चाऽभिभूतास्त्वथ पञ्चकृत्वः पञ्चेद्रियं पञ्चसु भावयन्ति ।
पञ्चेद्रियं पञ्चसु भावयित्वा पञ्चत्वमायान्ति विनाशकाले ॥

पञ्चाभिभूताः पञ्चेद्रियं पञ्चकृत्वः पंचसुभावयन्तिच परं विनाशकाले पञ्चत्वमायान्ति । किंकृत्वा पञ्चेद्रियं पञ्चसु भावयित्वा इत्यन्वयः ।

अर्थ-पंचभूतोंकरके व्याप्त, अथवा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, करके व्याप्त, अथवा आकाश, पवन, दहन, जल, और पृथ्वी, इनकरके व्याप्त ऐसी धमनी उस [पंचेंद्रियं] कहिये कर्मपुरुष जो है ताय [पञ्चधा कृत्वा] कहिये पांचजगे विभक्तकर पंचेंद्रियोंके विषे [भावयन्ति] कहिये योजना करे है, और विनाशकाल प्राप्तहोनेपर [पञ्चसु] कहिये श्रोत्रादिक इन्द्रियोंके अधिष्ठानोंके विषे अर्थात् आकाशादिकोंके विषे पृथक् पृथक् योजनाकर आप विनाशको प्राप्त होता है । इसका खुलासा अर्थ यह है कि, आकाशादि पञ्चमहाभूतोंसे प्रगट जो धमनी वे कर्म पुरुषको इन्द्रियोंके अधिष्ठानोंमें पांचवार भावनाकर तदनंतर इन्द्रीपंचकको आकाशादिभूतोंमें संयोजनाकर विनाशकालमें वे धमनी नाशको प्राप्त होती हैं ।

अन्य आचार्य [पंचाभिभूतान्यथपंचकृत्वः इतिपठन्ति व्याख्यानयंतिच] इस प्रकार पाठको लिखकर उसकी व्याख्या करते हैं कि, आकाशादि पञ्च महाभूत कर्मपुरुषको श्रोत्रादि इन्द्रियाधिष्ठानोंके विषे योजनाकर आप विनाशकाल प्राप्त होनेसे पंचत्वको प्राप्त होते हैं ।

अन्य आचार्य [पञ्चाभिभूतास्त्वथपंचधा चेति पठंति व्याख्यानयंति च] इसप्रकार लिखकर उसकी व्याख्या करते हैं कि, पंचाभिभूत जो धमनी है सो, पंचेन्द्रिय कहिये बुद्धीन्द्रियपंचकोंको शब्दादिकोंके जो वचनादिपंचक अर्थोंमें पांचवार योजनाकर विनाशकालमेंआप नाशको प्राप्त होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अब मतान्तरसे धमनियोंकेकर्म आदि कहते हैं।

सव्यप्रकोष्ठाद्धृदयस्यनाडी द्वितीयपर्शोस्तरुणास्थियावत् ।
ऊर्द्धंगताऽर्यंगुलसंमितासा शाखेचतस्याद्धृदयंप्रयाते ।
ततश्चपश्चात्प्रसृतातृतीयं कक्षेरुभित्तंननुसव्यपार्श्वे ।
समागतास्यावपुषोमहत्यः शाखाश्चतिस्रोविसृताःसमन्तात् ।
अवाङ्मुखीसाथकक्षेरुखण्डं तृतीयमाहाखलुनिम्नदेशे ।
भागत्रयंवर्णितमेतदेवस्मृतांहिमूलंधमनीगणस्य । धमन्यथोर
स्थलगांविभिद्यपेशीप्रविष्टोदरगह्वरान्तः । इयंचमूलंधमनी
गणस्यस्कंधोऽथवोक्तोऽपियथाद्रुमस्य । अतःशाखाःप्रशाखा
श्चक्रमात्सूक्ष्मतराश्चताः । व्याप्नुवन्निखिलंदेहंशोणितौघप्रवा
हिकाः । कलास्वस्थिषुपेशीषुमस्तुलुङ्गेचमज्जसु । सर्वत्रैवाथि
ताएताधमन्योधमनीष्वपि । नास्तिवर्ष्माणितच्चाङ्गंधमन्यो
यत्रनस्थिताः । केशादिष्वेवनाभ्यस्तानदृश्यन्तेकदाचन ।
हृदयाच्छोणितंशुद्धंनिर्मलंप्राणधारणम् । सुलोहितंसुखोष्णं
चवाहयन्तिसमंततः । मुहुर्मुहुःक्षयंयान्तिसर्वाण्यङ्गानिदेहि
नाम् । श्वासभाषगतिस्पन्दरतिर्चिंतादिकारणात् । क्षपयि
त्वाक्षयंतेषामङ्गानांरक्तयोगतः । कुर्युःसंवर्द्धनंनाड्योजनये
रन्बलंतथा । सर्वाण्येवोपदानानिशारीराणिचशोणिते । यतः
सन्तिततस्तत्स्यात्कारणंदेहरक्षणे।शोणिताज्जायतेपेशीकला
मज्जास्थिरेतसी । बलौजसीमस्तुलुङ्गःसर्वंशोणितसम्भवम् ।
कुल्याभिःसलिलंयद्वद्दौद्यानिकमहीरुहान् । जीवयेत्तर्पयेत्तद्व
द्धमनीभिश्चशोणितम् । सर्वाण्यङ्गानिजीवानामितिधन्वन्तरे
र्मतम् । अतोधमन्योविज्ञेयाःप्रीणनेचापिहेतवः । शोणितस्रो
तसांवेगात्स्पंदन्तेचधरामुहुः । तासांस्पन्दनतोज्ञेयंसुखंदुः
खंचदेहिनाम् । अंगुष्ठमूलेधमनीसततंयापरीक्ष्यते । भागो
द्वितीयोमूलस्यतदादिःकीर्तिताबुधैः ।कक्षेचापिप्रगण्डेचप्रको

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ष्ठेऽथकरेतथा । अंगुल्याह्वयनुभूयेतबाह्वोरेषाद्वयोरपि । मणि बन्धेयथानाडीतथागुल्फेऽनुभूयते । कण्ठेपार्श्वकपालेचवंक्षणे योनिशिश्नयोः । तनुत्वगावृतेष्वेवतथाङ्गेष्वपरेषुच । शोणि तौहाञ्चसूक्ष्माणामनुभावोगतेर्भवेत् । यंयंहतुंसमाश्रित्ययाति यांयांगतिंधरा । यययायासुखंगत्यादुःखं वापियययाया । यययायाचजीवोऽयंयातिमृत्युवशंध्रुवम् । मयासावर्ण्यतेव-त्सदर्पणेनाडिकाभिधे ।

अर्थ-हृदयके वामप्रकोष्ठसे मूलधमनीकी उत्पत्ति है, यह इसस्थानसे उत्पन्न होकर ऊर्ध्वाभिमुखहो दूसरी पांशूकी तरुणास्थिपर्यंत उपस्थित है । यह ऊर्ध्वगामी अंशप्राय ३ अंगुलके प्रमाणहै, इसजगेसे दो शाखा निकलकर हृदययंत्रमें गमनकरे हैं । अनन्तर ये पश्चान्मुखी होकर तीसरे कशेरुकाके वामपार्श्वमें उपस्थित हुईहै । इसीजगेसे तीसरी बडीशाखा निकलकर देहके अनेक स्थानोंमें फैलगईहै, इसके उपरांत यह अधोमुखी होकर चतुर्थ कशेरुकाके निम्नदेशमें उपस्थित हुईहै, यह कहे हुए भागत्रय समुदायको धमनीका मूलकहतेहैं, अनन्तर यह धमनी कुछ थोडी दूर निम्नमुखहो वक्षस्थलकी पेशीको भेदकर उदरमें प्रवेश करतीहै, इसको धमनीगणका मूल अथवा स्कंध कहतेहैं । जैसे वृक्षकी जड़मेंसे एकशाखा निकल ऊपर उसीमेंसे डाली गुदेनके समूह प्रगट होतेहैं, उसीप्रकार कहेहुए धमनीकेभागत्रयमेंसे बहुतसी शाखा प्रशाखा रूप नाडी उत्पन्नहो क्रमसे अतिसूक्ष्म होकर सर्वदेहमें फैलीहुईहै. कला-समूह, अस्थिगण, सबपेशी, मस्तिष्क और मज्जा इन सबमें धमनी विद्यमानहै, धमनीसमूहमेंभी अतिसूक्ष्मतर धमनी देखनेमें आतीहैं, शरीरमें ऐसा कोईसा अंग नहींहै कि जिसमें धमनी नहींहै, केवल केशादिकोंमें धमनी नहीं दीखती. धमनीगण हृदयसे शुद्ध, निर्मल, सुलोहित, सुखोष्ण और प्राणरक्षण शक्तिसम्पन्न रुधिरको शरीरके सर्वस्थानोंमें वहन करतीहै, श्वासक्रिया, शब्दोच्चारण, गमन, स्पंदन, मैथुन और चिंता आदि कारणमें जीवगणके समस्त अंग निरन्तर क्षयहोतेहैं, संपूर्ण धमनी विशुद्ध रुधिरके योगसे उसी क्षीण अंशोंको परिपूर्णकर अंगसमूहको संवर्धित तथा बलोत्पादन करतीहै, रुधिर सर्व प्रकार शारीरिक उपादानकारणरूपसे विद्यमानहैं इसहेतुसे रुधिर देहरक्षाका मुख्य कारणहै, पेशी, कला, मज्जा, हड्डी, शुक्र, बल, ओज और मस्तिष्क समुदाय इसीरुधिरसे बनतेहैं, जैसे पानीके वरहासे खेत वा बगीचेकी क्यारीके वृक्षसमूह तृप्त होतेहैं और उसजलसे उनवृक्षोंको जीवन और रक्षा होतीहै, उसीप्रकार धमनी नाडियोंके द्वारा शुद्धरुधिर श्रोतोंमें वहकर सर्व अं-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गोंको तर्पितकर जीवितरक्खेहैं। अतएव धमनीसमूहको जीवनके रक्षाका मुख्यहेतु समझना चाहिये।

श्रोणित स्रोतोंके वेगसे धमनीगण वारंवार स्पंदित होती है, अर्थात् रुधिरका संचार होनेसे धमनी नाडी वारंवार फडकतीहै, इसी स्पंदनद्वारा जीवोंके सुखदुःख-का निर्णय होताहै, (इसीसे वैद्य नाडीको देखाकरे हैं) अँगूठेकी जडमें जो सर्वदा नाडीपरीक्षा करतेहैं उसका मूल, धमनीका द्वितीयअंश (अर्थात् यह द्वितीयपर्शुका-के उपास्थिसे लेकर पश्चान्मुखवाले तीसरे कशेरुकाके वामपार्श्वपर्यंत विद्यमान है) यह नाडी कांख, बाजू, पहुँचा और दोनोंहाथोंमें उंगलियोंकरके अनुभूत अर्थात् प्र-तीतहोती है. जैसे मणिबन्ध (पहुँचे) में नाडीजानी जाती है उसीप्रकार गुल्फ (ऐडी) कण्ठ, पसवाडे, कपाल, वंक्षण, योनि और लिंग इनमें जानी जाती है. इसीप्रकार और सूक्ष्मत्वगाच्छादित अंगकी धमनियोंका स्पन्दन (फडकना)अंगुली आदिद्वारा अनुभव होताहै.

जिस २ कारणसे नाडीकी जैसी २ गति होय और जिस २ गतिद्वारा शुभ और अशुभ प्रतीतहो, तथा जिस २ गतिद्वारा इसमनुष्यकी मृत्युघटना होय इत्यादि संपूर्ण नाडीके भेद आगे हम नाडीदर्पणमें लिखेंगे। १२ नंबरका चित्र देखो।

स्रोतस्कहतेहैं।

अतऊर्ध्वंस्रोतसांमूलविधिलक्षणमुपदेक्ष्यामः

अर्थ–धमनीके सविस्तर वर्णनानन्तर स्रोतसोंके मूलविधिलक्षणोंको कहतेहैं।

तानितुप्राणान्नोदकरक्तानांसमेदोमू
त्रपुरीषशुक्रार्त्तववहानियेष्वधिकारः।

अर्थ–जिनके मूलविधिलक्षण कहनेके विषयमें अधिकार वो स्रोतस्, प्राण, अन्न, जल, रस, रुधिर, मांस, मेद, मूत्र, पुरीष, शुक्र, आर्त्तव, इनको वहतेहैं। यह स्रोतसोंकी मूलविधिलक्षण जाननी।

स्वरूपकहतेहैं।

स्वधातुसमवर्णानिवृत्तस्थूलान्यणूनिस्रो
तांसिदीर्घाण्याकृत्याप्रतानसदृशानिचेति।

अर्थ–स्रोतस् जिसजिस धातुओंको वहतेहैं, उसी २ धातुके सदृश स्रोतसोंका वर्ण जानना, स्रोतस्गोल, मोटी, लंबीलंबी, तथा कोई बारीक ऐसीहो सर्वदेहमें क-मलतंतु मंडलके समान फैलीहुईहै, तथा प्राणसे लेकर आर्त्तव पर्यंत जो ग्यारह पदार्थ

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हैं उनके वहनेवाली स्रोतस् प्रत्येक दोदोहैं. और हड्डी मज्जादि स्रोतस् यद्यपि हैं तथापि उनका अधिकार नहींहैं; इसका यह कारणहै कि, अस्थिवह स्रोतसोंका भेद मूलहै. और मज्जावहोंका सर्वअस्थि मूल वे सर्वदेहगतहै, इसीसे उनकी विधिलक्षण ये साध्यासाध्य आदि ज्ञानविषयमें नियामक नहीं है, उसीप्रकार स्वेदवह स्रोतसोंका भेदमूलहै अतएव शल्यतंत्रमें उसकी विधिलक्षणका अधिकार नहीं करा। इसी अर्थको मनमें रखकर (येष्वधिकार) ऐसे आचार्य कहतेहुए, चिकित्सा विषयमें स्रोतो दुष्टलक्षण कहना चाहिये । इसका यह तात्पर्यहै कि, चिकित्साविषयमें सर्वशरीरगत स्रोतसोंका अधिकार और शल्यतंत्रमें नियतदेश स्थित स्रोतस् विद्धहोनेसे वेदना विशेष तथा साध्यासाध्य ज्ञानविषयमें नियामक अधिकारहै। तथा देहचिकित्साधिकार सर्वशरीरगतत्व करके साध्यादि ज्ञाननियामक होता है, इसीसे अस्थिमज्जादिवह स्रोतसोंका अधिकार नहींहै ऐसे उक्त ग्रन्थका तात्पर्य जानना।

अन्यमतकहतेहैं।

एकेषांबहूनि।

अर्थ–किसी आचार्योंका यह मतहै कि, स्रोतस् बहुतसे हैं, परंतु उनका अधिकार इसजगे नहीं है।

स्रोतसोंके भेद कहते हैं।

एतेषांविशेषाबहवः।

अर्थ–स्वतंत्रोक्त प्राणादि वह २२ स्रोतस् हैं उनके अनेक भेद हैं।

प्राणवहस्रोतसोंकामूलकहते हैं।

तत्रप्राणवहेद्वेतयोर्मूलंहृदयरसवाहिन्यश्चधमन्यः।
तत्रविद्धेस्यक्रोशनंविनमनंभ्रमणंवेपनंनिःसरणंवाभवति।

अर्थ–पूर्वोक्त प्रकरणमें प्राणवह स्रोतस् दोकहे हैं, उनका मूल हृदय और रसवाहिनी धमनी जाननी, उस मूलके विद्धहोनेसे आर्त्तस्वरयुक्त रोदन, वक्रता, भ्रमण, कंपन, इत्यादि उपद्रव होते हैं।

अन्नवहस्रोतसोंकेमूलको कहते हैं.

अन्नवहेद्वेतयोर्मूलमन्नाशयोन्नवाहिन्यश्चधमन्यः।
तत्रविद्धस्याध्मानंशूलान्नद्वेषोमरणम्।

अर्थ–अन्नवह स्रोतस् दो हैं, उनका मूल अन्नाशय और अन्नवाहिनी धमनीहै, उनके मूलवेध होनेसे अफरा होवे, तथा शूल, अन्नद्वेष हो, तथा मरणभी कभी होजावे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उदकवहस्रोतसोंकामूल.

उदकवहेद्वेतयोर्मूलंतालुक्लोमच । तत्रविद्धस्यपिपासा श्यावास्यतामरणञ्च

अर्थ–उदकवह स्रोतस् दो हैं; उनका मूल तालु और पिपासास्थानहै । उसका वेधहोनेसे प्यास, मुखपर कालौच आयकर मरणहोय ।

रसवहस्रोतसोंकामूलकहते हैं ।

रसवहेद्वेतयोर्मूलंहृदयंरसवाविन्यश्चधमन्यस्तत्रविद्धस्यशोषः प्राणवहविद्धवच्चमरणं तत्रहविद्धवल्लिङ्गानि ।

अर्थ–रसवह स्रोतस् २, उनका मूल हृदय और रसवाहिनी धमनी उनका वेध होनेसे शरीरशोष तथा प्राणवह स्रोतस् विद्धहोनेसे जो लक्षण होतेहैं वो लक्षण रसवाहिनी धमनी विद्धहोनेसे होते हैं ।

रक्तवहस्रोतसोंका मूलकहते हैं ।

रक्तवहेद्वेतयोर्मूलंयकृत्प्लीहानौरक्तवाहिन्यश्च धमन्यः तत्रविद्धस्यश्यावाङ्गताज्वरदाहपाण्डुताशोणितागमनंच ।

अर्थ–रक्तवह स्रोतस् २ हैं, उनका मूल यकृत् प्लीहा और रक्तवाहिनी धमनी है, उनका वेध होनेसे अंगमें कालौच हो; तथा ज्वर, दाह, पीलिया, तथा ऊपरनीचेके मार्गहोकर रक्तस्राव, तथा नेत्रोंमें लाली इत्यादि उपद्रव होते हैं ।

मांसवहस्रोतसोंकामूलकहतेहैं ।

मांसवहेद्वेतयोर्मूलंस्नायुत्वचेरक्तवाहिन्यश्चधमन्यस्तत्र विद्धस्यश्वयथुर्मांसशोषःशिराग्रंथयोमरणञ्च ।

अर्थ–मांसवह स्रोतस् २ हैं, उनके मूल स्नायु और त्वगादिक रसरक्तवह धमनी है । उनका वेधहोनेसे सूजन होय, तथा मांसशोष होय, और शिराओंमें गांठ-होजावे, तथा मरणभी होवे । इस जगे त्वक्शब्द करके तदाश्रित रसका ग्रहण हैं ।

मेदोवहस्रोतोंकामूलकहते हैं ।

मेदोवहेद्वेतयोर्मूलंकटिवृक्कौतत्रविद्धस्यस्वेदागमनं स्निग्धाङ्गतातालुशोषस्थूलशोफपिपासाच ।

अर्थ–मेदोवह स्रोतस् २ हैं, उनके मूल कटि तथा वृक्क है। ए वेध होनेसे अत्यंत पसीनें अंगचिकना, तथा तालुशुष्क हो; स्थूलता और अंगमें सूजनहो तथा प्यास लगे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मूत्रवहस्रोतसोंकामूल।

मूत्रवहेद्वेतयोर्मूलंबस्तिमेढ्रं तत्रविद्धस्यानद्धबस्तिता मूत्रनिरोधस्तब्धमेढ्रताच।

अर्थ–मूत्रवह स्रोतस् २ हैं. उनके मूल बस्ती और शिश्न (लिंग) है; उनका वेध होनेसे मूत्राशय तनेके समान होजावे, तथा मूत्रका रुकना और शिश्न स्तंभित होजावे।

पुरीषवहस्रोतसोंकामूल।

पुरीषवहेद्वेतयोर्मूलंपक्वाशयोगुदंचतत्रविद्ध स्यानाहो दुर्गंधताग्रन्थितांत्रताच।

अर्थ–पुरीषवह स्रोतस् २ हैं, उन्के मूल पक्वाशय और गुदा है इन्में आघातहोनेसे अनाह कहिये (वातकारोग) और दुर्गंध आवे तथा आँतडोंमें गांठ पडजावे।

शुक्रवहस्रोतस्।

शुक्रवहेद्वेतयोर्मूलंस्तनवृषणौचतत्र विद्धस्यक्लीबताचिरात्प्रसेकोरक्तशुक्रताच।

अर्थ–शुक्रके वहनेवाले २ स्रोतसूहैं, उन्के मूल स्तन और वृषण हैं उन्में किसी प्रकारकी चोटलगनेसे नपुंसकता, अथवा चिरकालकरके वीर्यका स्राव होता है, तथा शुक्रका लाल रंग होता है।

आर्त्तववहस्रोतस्।

आर्त्तववहेद्वेतयोर्मूलंगर्भाशयआर्त्तववहधमन्यश्च तत्रविद्धायांवंध्यात्वंमैथुनासहिष्णुत्वमार्त्तवनाशश्च।

अर्थ–आर्त्तववह स्रोतस् २ हैं, उन्के मूल गर्भाशय और आर्त्तववह धमनी है। उन्का वेधहोनेसे वंध्यापना होय तथा मैथुनकरना अच्छा न मालूमहो, तथा आर्त्तवका नाशहोय. शुक्रवहस्रोतसोंके समीपकी सेवनी विद्धहोनेसे उसके लक्षण अश्मरी चिकित्सित बस्तिप्रसंग करके कहीहै. अब चिकित्सासूत्र कहते हैं।

चिकित्सा।

स्रोतोविद्धंतुप्रत्याख्यायोपाचरेदिति।

अर्थ–उक्तस्रोतसोंके विषे विद्धहोनेसे असाध्यत्व कहा है उसको शल्योद्धरण प्रकार करके चिकित्सा करे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उद्धृतशल्यचिकित्सा ।

उद्धृतशल्यंतुक्षतविधानेनोपाचरेत् ।

अर्थ–जिस पुरुषका शल्य निकलगयाहो उसकी क्षतविधान करके चिकित्सा करे।

स्रोतोलक्षण ।

मूलात्खादन्तरेदेहेप्रसृतत्वाभिवाहियत् ।
स्रोतस्तदितिविज्ञेयंशिराधमनिवर्जितम् ॥
इति सौश्रुतशारीरेनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अर्थ– (मूलात्खात्) कहिये हृदयछिद्रसे लेकर जो अन्तरछिद्र प्रवहनशील है उसको स्रोतस् जानना परंतु धमनी और शिरा इनको छोड़कर जानना ।

इति श्रीमदायुर्वेदोद्धारेबृहन्निघण्टुरत्नाकरेत्रयोदशस्तरङ्गः ॥१३॥

दशमोऽध्यायः।

धमनीव्याख्यानंतर शुक्रार्त्तवस्रोतसोंका वर्णन होनेसे अब शुक्रार्त्तवमूलक पूर्वकहेहुए गर्भकी आश्रयभूत गर्भिणी उसका वर्णन करना उचितहै अतएव उसीको कहतेहैं ।

अथातोगर्भिणीव्याकरणंशारीरंव्याख्यास्यामः।

अर्थ–धमनीव्याख्यानंतर अब हम गर्भिणीका वर्णन जिसमेंहैं ऐसी शारीराध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

गर्भिणीकेनियम ।

गर्भिणीप्रथमदिवसात्प्रभृतिनित्यंप्रहृष्टाशुचिरलंकृताशुक्लवसनाशांतिमङ्गलदेवताब्राह्मणगुरुपराभवेत् । मलिनविकृतहीनगात्राणिनस्पृशेदुद्वेजनीयाश्चकथाः । शुष्कंपर्युषितंक्थितंक्लिन्नंचान्नंनोपभुञ्जीत । बहिर्निष्क्रमणंशून्यागारचैत्यश्मशानवृक्षाश्रयान्क्रोधामयसंस्करांश्चभावान्उच्चैर्भाष्यादिकंचपरिहरेत् ।

अर्थ–गर्भिणीको गर्भधारणदिवससे लेकर सर्वकाल आनन्दयुक्त रहना चाहिये, तथा उसके प्रियमनुष्य उसको प्रियपदार्थदेकर सदैव संतुष्टरासे और वह स्त्री स्वयं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पवित्र रहे; अलंकारोंको धारण सुपेदवस्त्रोंको पहिराकरे, शांतिपूर्वक मंगलाचरण करे। देवता, ब्राह्मण, गुरु, इन्से प्रीतिकरे। मलिन, विकृत, हीनगात्र, इनका स्पर्श न करे। तथा शुष्क, मलिनवासा, दुर्गंधवान्, गीला और कच्चाअन्नभोजन न करे। तथा बाहर बहुत न जावे, सूनेघरमें, जिस वृक्षपर अथवा नीचे उसके देवताका स्थानहो ऐसे वृक्षके नीचे अथवा बौद्धोंके मंदिरमें, श्मशान वृक्ष इनका आश्रय न लेवे. जिससे क्रोध आवे ऐसे कर्मोंको न करे. बहुतजोरसे न बोले. और उद्वेग कर्त्ता वार्त्ताको भी नसुने।

भोज्यंतुमधुरप्रायंस्निग्धंहृद्यंद्रवंलघु । संस्कृतंदीपनीयंतु नित्यमेवोपयोजयेत् । गुर्विणीनतुकुर्वीतव्यायाममपतर्पणम् । रात्रौजागरणंशोकंयानस्यारोहणंतथा । रक्तमोक्षंवेगरोधंनकुर्यादुत्कटासनम् । नजिघ्रेदपिदुर्गंधंनपश्येन्नयनाप्रियम् । वचांसिनापिशृणुयात्कर्णयोरप्रियाणिच । तैलाभ्यङ्गोद्वर्त्तनञ्चभावाश्चाप्ययशस्करान् । नामृद्वास्तरणंकुर्यान्नात्युच्चंशयनासनम् । अन्यांश्चापिनतत्कुर्याद्येनगर्भोविनश्यति । एतांस्तुनियमान्सर्वान्यत्नात्कुर्वीतगुर्विणी ।

अर्थ—गर्भिणी मधुरप्राय, सचिक्कण, हृदयको हितकारी, पतले हलके तथा उत्तम पाककर्ताने विधिपूर्वक बनाएहो और जो दीपनहो ऐसे पदार्थोंको नित्य सेवनकरे, तथा गर्भिणी व्यायाम, अपतर्पण रात्रिमें जागना, मैथुन, शोक, सवारीमें बैठना, रुधिर निकालना मलमूत्रआदि वेगोंका रोकना, ऊंचे और दुष्टआसनपर बैठे नहीं, दुर्गंधको न सूंघे और नेत्रोंको अप्रियपदार्थको न देखे, कानोंको अप्रिय ऐसे वाक्योंको न सूने, अत्यन्त तैलका लगाना, और उवटना त्यागदेवे और जो अपयश कर्ता कर्महै उन्को नकरे, कठोर बिछैया नबिछावे, अत्यंत ऊंचेपर शयन और आसन नकरे, और भी जो दुष्टकर्म है, कि जिनसे गर्भ नष्टहोवे उन्को कदाचित् नकरे, इन कहेहुए नियमोंको गर्भवती यत्नपूर्वकसाधनकरे।

गर्भिणीकाअन्नकहते हैं।

गर्भिणींप्रथमद्वितीयमासेषुषष्टिकांपयसाभोजयेत् ।

अर्थ—गर्भिणीको प्रथम तथा दूसरे महिनेमें साठी चावलोंका भात दूधके साथ भोजनको देवे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अन्यमत ।

चतुर्थेदध्नापञ्चमेपयसाषष्ठेसर्पिषेत्येके ।

अर्थ–कोई आचार्य कहतेहैंकि, चौथे महिनेमें दही मिश्रित, पांचवे महिनेमें दूधमिश्रित, छटवे महिनेमें घृतमिश्रित भोजन अधिक देवे. वाग्भटकहताहै कि * गर्भकरके पीडित दोष सातवे महिने हृदयमें प्राप्त होतेहैं इसीसे गर्भिणीके खुजली और दाह तथा खीखस करेहैं ।

स्वमतकहते हैं।

चतुर्थेपयोनवनीतसंसृष्टमाहारयेत् ।

अर्थ–चौथे महिनेमें दूध और मक्खन मिला जंगली जीवोंका मांस भोजनमें देवे. पांचवे महिनेमें दूध और घृत मिला भोजन देवे. छठे महिनेमें गोखरू करके सिद्ध घृतकी मात्रा यवागू सहित देवे. सातवे महिनेमें विदारीकंद करके सिद्धकरा घृत पिवावे. आठवे महिनेमें चंदनके जलमें बला अतिबला, सौंफ, मांस, दूध, दही, छाछ, तेल, नोन, मैनफल, सहत, घृत, इनको मिश्रितकर निरूहबस्ती देवे । इसप्रकार करनेसे पुराने पुरीष (मल) की शुद्धि तथा वायुकी अनुलोमगति होती है। अनंतर दूध और मधुर पदार्थ इनके कषाय करके सिद्धकरेहुये तैलसे अनुवासन बस्तिकरे । इस करके वायुकी अनुलोमगति होतीहै. उस अनुलोमगति होनेसे स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करतीहै और उपद्रवरहित होतीहै. आठवे महिनेके अनंतर प्रसवकालपर्यंत स्निग्धादिकों करके तथा यवागू जांगलरस इन करके उपचार करावे । इसप्रकार उपचार करनेसे गर्भिणी स्निग्ध तथा बलवती होकर सुखपूर्वक उपद्रवरहित प्रसूत होती है ।

प्राक्चैवनवमान्मासात्सूतिकागृहमाश्रयेत् ।
देशेप्रशस्तेसंभारैःसम्पन्नंसाधकेऽहनि ॥

अर्थ–गर्भिणी नवमहिनेके पूर्वही उत्तमदेशमें वास्तुविद्याके जाननेवालोंने परीक्षा करके बनाया और संपूर्णसामग्री करके युक्त तथा शुभ तिथि नक्षत्र मुहूर्त्तमें सूतिकाग्रहका आश्रयलेवे ।

सूतिकागारकीविधि ।

तत्रारिष्टंब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणांश्वेतपीतरक्तकृष्णेष्वप-

---

* गर्भेणोत्पीडिता दोषास्तस्मिन्हृदयमाश्रिताः । कण्डूंविदाहं कुर्वन्ति गर्भिण्याः किकिसानिच ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हृतास्थिशर्कराकालेदेशंप्रशस्तरूपरसगंधायांभूमौप्राग्द्वार मुदग्द्वारंवाविल्वन्यग्रोधतिन्दुकेंगुदभल्लातकनिर्मितसर्वांगा रंवायानिचान्यान्यपिब्राह्मणाःशंसेयुरथर्ववेदविदः तन्मयप- र्यंकंसमुपलिप्तभित्तिषुसुविभक्तपरिच्छदंचाष्टहस्तायतंचतुर्ह- स्तविस्तृतंरक्षामंगलसम्पन्नंविधेयंतद्वसनालेपनाच्छादनापि धानसम्पदुपेतमग्निसलिलोलूखलवर्चःस्थानस्नानभूमिमहा- नसमृतुसुखम् ।

अर्थ–सूतिकागारकी भूमि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, और शूद्रको क्रमसे सपेद, पीली, लाल और काली होनी चाहिये. दूर हुई है अस्थि और धूल जिसमें तथा शुभकाल सुन्दर देश और उत्तमरूप, रस तथा गंधवान् पृथ्वीमें सूतिकागार बनावे कि, जिस्का द्वार पूर्वकी तरफ अथवा उत्तरकी तरफ होवे (कोई दक्षिण द्वार होनाभी लिखतेहैं) बेल, वड, तेंदू, गोदी और भिलाया इनकाष्ठोंसे उसगृहकी सर्वभीत छत्त आदि बनीहो और भी जो अथर्ववेदके जानने वाले ब्राह्मण कहे उस काष्ठकी शय्या बनावे, उस मकानकी भीतोंको लीप पोतकर उज्ज्वलकरे और प्रत्येक कार्यकेवास्ते पृथक् २ परिच्छद (सामग्री) हो तथा उस घरकी ८ आठ हाथकी लंबाई और ४ चार हाथकी चौडाई तथा रक्षा और मंगलकरके संपन्न ऐसा होना चाहिये, तथा वस्त्र, लेपन, आच्छादन और पिधान अर्थात् ओढने बिछानेकी सामग्री आदिसे युक्तहो, अग्नि, जल, ओखली, मलमूत्र त्यागनेकी जगे, स्नान की भूमि, रसोई करनेकीठौर, और जाडे, गरमी, वर्षाऋतुमें सुखकारक इत्यादि स्थानों करके युक्त घर होना चाहिये (उस सूतिकाके स्थानमें इतनी वस्तु औरभी उपस्थित रखनी चाहिये । घृत, तेल, मधुरक, सैंधानिमक, सौंचरनोन, राल, गुड, कूठ, तेलीया, देवदारु, सौंठ, पीपलामूल, गजपीपल, मंडूकपीपल, इलायची, कलयारी, वच, चित्रक, चिरबिल्व, हींग, सरसों, लहसन, धतूरा, कदंब, बावची, भोजपत्र, कुलथी, मैरेय मद्यविशेष, आसव और सुरा (दारु) दोपत्थरके टुकडे, दो अंडकीजड, ओखली मूसल, गधा, बैल, दो लोहके टूक, दो पिप्पलक, सुवर्ण, चांदी, दो शस्त्रलोहेके, दो वेलके पलंग, तेंदू, इंगुदीकी लकडी, अग्निके वरानेको पंखा इत्यादि सामग्री सूतिका घरमें उपस्थित रहनी चाहिये. जो अनेकवार प्रसूति होचुकी हो, मोहार्धयुक्त, निरंतर अनुरागवती, आचार विचारमें कुशल, तथा निर्णयमें और उपचारकरनेमें कुशल, वात्सल्य प्रकृतिवाली, खेदरहित, क्लेशको सहनेवाली, ऐसी स्त्री उस प्रसूति घरमें उपस्थित रहे । तथा अथर्ववेदके ज्ञाता ब्राह्मण स्थित रहे और जो वृद्धस्त्री और ब्राह्मण बतावे वोभी उपस्थित रखने चाहिये) ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तत्रोदीक्षेतसासूतिंसूतिकापरिवारिता ।

अर्थ–गर्भिणी उस सूतिका घरमें अनेकवार प्रसूतीहो चुकीहो ऐसी स्त्रियोंके साथ स्थितहो प्रसूत समयकी वाट देखे अर्थात् इस घरमें मैं प्रसूती होऊंगी ।

तथाचचरके ।

ततःप्रवृत्तेनवमेमासेपुण्येऽहनिनक्षत्रमुपगते प्रशस्तेभगवतिशशिनिकल्याणेकरणेमैत्रेमुहूर्तेशान्तिहुत्वागोब्राह्मणमग्निमुदकञ्चादौप्रवेश्यगोभ्यः तृणोदकंमधुलाजांश्चप्रदायब्राह्मणेभ्योऽक्षताःसुमनसोनान्दीमुखानिचफलानीष्टानिदत्त्वाउदकपूर्वमासनस्थेभ्योऽभिवाद्यपुनराचम्यस्वस्तिवाचयेत्ततःपुण्याहशब्देनगोब्राह्मणमन्वावर्त्तमानाप्रदक्षिणंप्रविशेत्सूतिकागारम् तत्रस्थाचप्रसवकालं प्रतीक्षेत ।

अर्थ–तदनंतर नवम महिने लगतेही शुभ दिवस नक्षत्र और चन्द्रमा तथा कल्याणकारी करण, मैत्रमुहुर्त्तमें शांति हवन करके गौ ब्राह्मण, अग्नि जल को, प्रथम उस घरमें प्रवेशकर गौओंको तृण जल मिली खील देकर और ब्राह्मणोंको अक्षतादि द्वारा पूजनकर इष्टफल दक्षिणा देकर उत्तर वा पूर्वाभिमुख स्थित ब्राह्मणोंको प्रणामकर फिर आचमनकर स्वस्तिवाचन पढाकर पुण्याहशब्दकरके गौ ब्राह्मणोंको संगले प्रदक्षिणापूर्वक प्रथम दहना पैर* धरकै गर्भवती स्त्री सूतिकागारमें प्रवेश करे उस प्रसूतघरमें स्थित होकर प्रसवकालकी वाट देखे.

आसन्नप्रसवाके लक्षण ।

अद्यःश्वःप्रसवेग्लानिःकुक्ष्यक्षिश्रथताक्लमः ।
अधोगुरुत्वमरुचिःप्रसेकोबहुमूत्रता ।
वेदनोरूदरकटीपृष्ठहृद्वस्तिवंक्षणे ।
योनिभेदरुजातोदस्फुरणस्रवणानिच ।

अर्थ–आज या दूसरे दिन ऐसी आसन्नप्रसवा स्त्रीके ग्लानि (हर्ष जातारहे) कूख और नेत्र ए शिथिल होवे, उपताप और नीचेका भाग भारी, अरुचि मुखसे

---

* प्रयाणकाले स्वगृहप्रवेशे विवाहकालेपिच दक्षिणांघ्रिम् । कृत्वाग्रतः शत्रुपुरप्रवेशे वामंनिदध्याच्चरणं नृपालये ॥ १ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पानीका गिरना, वारंवार अधिक मूत्रका उतरना, जांघ, उदर, कमर, पीठ, हृदय, बस्ति और वंक्षण इनमें पीडा होवे । योनिका फटना, पीडा और चवकाओंका चलना तथा स्फुरण और कफके सदृश पदार्थ निकले इत्यादि लक्षणोंसे जाने कि इसके अब बालक होनेवाला है ।

ततोऽनन्तरभावीनांप्रादुर्भावःप्रसेकश्चगर्भो
दकस्यावीप्रादुर्भावेतुभूमौशयनंविदध्यात् ।

अर्थ–तदनंतर गर्भनिष्क्रमण कालमें जो शूलहोते हैं उनका प्रादुर्भाव होता है, मुखसे पानी गिरता है । जब शूल और भगमेंसे गर्भोदक अर्थात् गर्भका पानी निकलने लगे उसी समय उसस्त्रीको पृथ्वीमें शयन करावे ।

अथोपस्थितगर्भांताकृतकौतुकमङ्गलाम् । हस्तस्थपुन्नाम
फलांस्वभ्यक्तोष्णाम्बुसेचिताम् । पाययेत्सघृतांपेयाम्

अर्थ–इस प्रकार उपस्थितगर्भा अर्थात् तत्काल होनेवाला बालक जान उस गर्भिणीका रक्षा बंधनरूप मंगल करके और पुरुष नामके फल (अनार आम्र आदि) हैं हाथमें जिसके तथा तैल आदिका मालिस कर गरम जलसे स्नान कराय उसको घृतसहित पेया (यवागू) कंठपर्यंत पिवावे ।

तनौभुशयनेस्थिताम् ।
आभुग्नसक्थिमुत्तानामभ्यक्ताङ्गींपुनःपुनः ।
अधोनाभेर्विमृन्दीयात्कारयेज्जृम्भचंक्रमम् ॥

अर्थ–पृथ्वीमें मखमल आदिके नरमबिछैयेपर सीधी सुलावे और पैरोंको सकोड वारंवार तैलका मालिसकरे, नाभिसे नीचे धीरेधीरे सुतवावे तथा जँभाई और इधर उधरको डोलना उससे करावे । इसप्रकार करनेसे क्या होताहै सो कहतेहैं ।

गर्भः प्रयात्यवागेवंतल्लिङ्गंहृद्विमोक्षतः ।
आविश्यजठरंगर्भोबस्तेरुपरितिष्ठति ।

अर्थ–इस प्रकार करनेसे गर्भ हृदयस्थानको त्यागकर नीचे आताहै उस गर्भ, के येलक्षण होतेहैं कि, वह हृदय छोड़कर पेटमें आनकर बस्तीके ऊपर ठहरे है ।

दद्यात्कुष्ठलाङ्गलकी वचाचव्यचित्रकचिरविल्वचूर्णमुपाघ्रातुंमुहु-
र्मुहुर्योजयेत्तथाभूर्जपत्रशिंशपासर्जरसानामन्यतमंधूपमन्तरान्तराच ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पार्श्वपृष्ठकटीसक्थिदेशान्कोष्णेनतैलेनाभ्यज्यानुसुख
मस्याविमृन्दीयादेवमवाक्परिवर्ततेगर्भः ।

अर्थ–कूठ, कलयारी, वच, चव्य, चित्रक, कंजा, इनका चूर्णकर वारंवार गर्भवतीके सूंघनेको देवे । तथा भोजपत्र, सीसो, राल, इनसे आदिले औरभी औषधोंकी धूनी ठहर २ के देता जावे । पसवाड़े, पीठ, कमर, पैर, इत्यादि अंगोंको गुनगुने तैलसे मालिस कर सुहाता सुहाता मर्दन नीचेको करावे इस प्रकार करनेसे गर्भ नीचेको उतरता है ।

ताःसमन्ततः परिवार्ययथोक्तगुणाः स्त्रियःपर्युपासीरन्नाश्वास
यन्त्योवावागभिसंग्राहिणीभिःसान्त्वनीयाभिः । साचेदा
वीभिः संक्लिश्यमानानप्रजायेताथैनांब्रूयात्उत्तिष्ठमुसलम
न्यतरद्गृह्णीष्वानेनतदुलूखलंधान्यपूर्णमुहुर्मुहुरभिजहिमुहु
र्मुहुरवजृम्भस्वचंक्रमस्वचान्तरान्तरातन्नेत्याहभगवानात्रेयः ।

अर्थ–उस गर्भिणीके समीप दो चार स्त्री यथोक्त गुणसंपन्न होनी चाहिये और जबजब पीडासे गर्भिणी घबडावे तभीतभी उसको धीरज बँधाती रहै, और मिष्टवचनोंसे उसको शांतिकरतीरहे । जब देखेकि अब अत्यंत पीडा होनेलगी और गर्भ नहीं निकले उससमय उसगर्भिणीसे कहे कि, हे सुभगे ! तू खडी होजा और मूशलको लेकर ये जो ओखलीमें धान है इनको वारंवार कूट और वारंवार जँभाईले. तथा धीरे २ ठहरकर इधर उधर डोल. परन्तु इस कर्म करनेको भगवान् आत्रेय वर्जित करते हैं, क्योंकि गर्भवतीको व्यायाम (मेहनत) करना वर्जित कहाहै। दूसरे विशेष करके प्रसवकालमें प्रचलित सर्वधातु दोषादिक जिस्के ऐसी सुकुमार आशयवाली स्त्रीको मूशलके उठाने धरने रूपमेहनतसे वायु कुपितहोकर उस गर्भिणीके प्राणहर्ता होतीहै, अतएव धानोंका कूटना गर्भिणीको निषेधहै ।

आव्योहित्वरयन्त्येनांखट्वामारोपयेत्ततः ।
अथसंपीडितेगर्भेयोनिमस्याःप्रसाधयेत् ।

अर्थ–जब प्रसवकालकी अधिक पीडा दुःखदे तब इसको शय्यापर आरोपण करे, तदनन्तर गर्भ अत्यंत पीडा करे तब इस गर्भिणीकी योनिको तैल आदिसे विकाशित करे ।

मृदुपूर्वंप्रवाहेतबाढमाप्रसवाच्चसा ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–वह गर्भिणी गर्भको नम्र करके प्रथम वहनकरे जबतक गर्भ योनिके मुखतक न आवे और जब योनिके मुखपर आयजावे तब अत्यंत जोरसैं वहे अर्थात् धक्का देवे ।

हर्षयेत्तांमुहुःपुत्रजन्मशब्दजलानिलैः ।

अर्थ–उस समय समीप रहनेवाली स्त्री वारंवार पुत्रजन्मशब्दकरके इस गर्भिणीको प्रसन्नकरे अर्थात् (हे सुभगे! तूं परम सुंदर पुत्रको जनेगी) तथा शीतल गुलाबजल छिड़क और शीतल पवन करके उस गर्भिणीको प्रसन्न करे ।

एनांब्रूयाच्चसुभगेशनैःशनैःप्रवाहयस्वशोभनस्तेमुखवर्णःपुत्रं जनयिष्यासि । तथाअन्यातुवामकर्णेऽस्यामंत्रमिमंजपेत् ।

अर्थ–इस गर्भवतीसैं समीपकी स्त्री कहे कि, हे सुभगे ! तूं धीरेधीरे गर्भको ढकेल देख कैसा सुन्दरतेरे मुखका वर्ण है तूं पुत्रको प्रगट करेगी तथा दूसरी स्त्री इसके वामकर्णमें इन मंत्रोको पढ़े ।

मन्त्राः

क्षितिर्जलंवियत्तेजोवायुर्विष्णुःप्रजापतिः ॥ सगर्भांत्वांसदापातु वैशल्यं वादधातुते॥ १॥प्रसुष्वत्वमविक्लिष्टमाविक्लिष्टाशुभानने । कार्त्तिकेयद्युतिंपुत्रंकार्तिकेयाभिरक्षितम्॥२॥इहामृतंचसोमश्च चित्रभानुश्चभामिनि । उच्चैःश्रवाश्चतुरगोमन्दिरेनिवसंतुते॥३॥ इदममृतमपांसमुद्धृतंवैतवलघुगर्भमिमंप्रमुंचतुस्त्री । तदनल पवनार्कवासवास्तेसहलवणाम्बुधरैर्दिशन्तुशांतिम् ॥ ४ ॥

यदि बहुत कष्टी होवेतो ये नीचे लिखे अर्जुनके दशनाम हैं इनको पढता जावे और कूएमेंसैं एकही हाथ करके जलखींचे उसजलके पीतेही गर्भिणी कष्टसैं छूट जावे ।

अर्जुनःफाल्गुनोजिष्णुः किरीटीश्वेतवाहनः ।
बीभत्सुर्विजयःकृष्णःसव्यसाचिर्धनंजयः ॥

अथवा चकावूका यंत्र अष्टगंधसैं लिखकै उस गर्भिणीको दिखावे पीछे उस यंत्रको धोयकर उस गर्भिणीको पिवाय देवे तो गर्भिणी कष्टसैं छूट जावे ।

हर्षोत्पादनकाप्रयोजन

प्रत्यायांतितथाप्राणाः सूतिक्लेशावसादिताः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–गर्भिणीको पुत्रजन्मादि कारणोंसे प्रसन्नकरनेका यह प्रयोजनहै कि प्रसूतिके दुःखसैं ग्लानिको प्राप्तहुए प्राण हर्षोत्पादनसे फिर नवीन होतेहैं ।

गर्भकेरुकनेमेंउपचार

धूपयेद्गर्भसङ्केतुयोनिंकृष्णाहिकञ्चुकैः।हिरण्यपुष्पीमूलञ्च पाणिपादेनधारयेत् । सुवर्चलांविशल्यांवाजराय्वपतनेऽपिच । कार्यमेतत्तथोत्क्षिप्यबाह्वोरेनांविकम्पयेत् । कटीमाकोटयेत्पाष्ण्यार्फिजौगाढंनिपीडयेत् । तालुकण्ठंस्पृशेद्वेण्यामूर्धिदद्यात्स्नुहीपयः । भूर्जलाङ्गलिकीतुम्बीसर्पत्वक्षुष्ठसर्षपैः । पृथग्द्वाभ्यांसमस्तैर्वायोनिलेपनधूपनम् । कुष्ठतालीसकल्कंवासुरामण्डेनपाययेत् । यूषेणवाकुलत्थानांबिल्वजेनासवेनवा ।

अर्थ–गर्भके रुकनेमें ये उपचार करे कि, कालेसर्पकी कांचलीकी योनिको धूनी देवे, हिरण्यपुष्पी (छोटी खजूरी वा मूसली) की जडको हाथपैरोंमें धारणकरे. अथवा सुवर्चला और विशल्या रूखडी को हाथपैरोंमें धारणकरे, यह यत्न जरायु (आमरवेवर) के न निकलने में भी करे, तथा जबतक जरायु न गिरे तबतक इसगर्भिणीके हाथोंको कंपितकरे (चरकमें लिखाहै. कि, यदि जरायु न निकले तो उसस्त्रीके नाभिके ऊपर दहनेहाथसे खूब दबावे और दूसरेहाथसे उसकी पीठको पकडकर कंपावे) तथा पीठ और कमरको पीडितकरे, और कूलेन्को पीडित करे, माथेकी वेणीसैं उसके तालु और कंठको स्पर्शकरे तथा मस्तकमें थूहरका दूधडाले एवं भोजपत्र कलयारी, तूंबी, सांपकी कांचली, कूठ, और सरसों प्रत्येककी पृथक् २ अथवा सबको मिलाके योनिको धूनीदेवे, अथवा लेपकरे । तथा कूठ और तालीस पत्रका कल्क अथवा सुरा और मंडको मिलाके पिवावे । अथवा कुलथीका काढा वा वेलकी दारू पिवावे, (चरक में लिखाहै कि भोजपत्रकाचमणि, और सर्पकी काचली इनकी योनिको धूनी देवे) अथवा भोजपत्र और गूगलकी धूनी दे, अथवा चावलोंकी जडसे सिद्धकरे हुए घृतसे योनिको लेपनकर, कडुई तूंबी, तोरई, नीम, और सर्पकी कांचली इन सबकी कूख, आदिको धूनीदेवे अथवा गुड सोंठके कल्कका भगमें लेपकरे और इसीकल्कको पीवें, अथवा कलयारीकी जडके कल्कको हाथ पैर और उदरमें लेपकरे, कूठ इलायचीका कल्क मद्यमें मिलायकर पीवे. आक थूहरके काढे में मद्य मिलाकर पीवे. अथवा कूठ कलयारीकी जडके कल्कमें मद्य अथवा गोमूत्र मिलायकर पिवावे. अथवा सौंफ, कूठ, मैनफल, हिंग, इनसे सिद्धकरेहुए तैलमें कपड़ा भिगोकर योनिमें धरे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शताह्वासर्षपाजाजीशिग्रुतीक्ष्णकचित्रकैः । साहिंगुकुष्ठमदनै
र्मूत्रेक्षीरेचसार्षपम् । तैलंसिद्धंहितंपायौयोन्यांवाप्यनुवासनम् ।
शतपुष्पावचाकुष्ठकणासर्षपकल्पितः । निरूहःपातयत्याशुस
स्नेहलवणोऽपराम् । तत्सङ्गेह्यनिलोहेतुःसानिर्यात्याशुतज्जयात् ।

अर्थ–सौंफ, सरसों, जीरा; सहजना; चव्य, चीतेकी छाल, हींग, कूठ, मैनफल, इन सबको एकत्र करे पीछे गोमूत्रमें और गौके दूधमें ए सब औषध मिलाय सरसोंका तेल मिलावे, उसको तैलपाकविधिसे सिद्धकर इस तैलसे गुदा और योनिमें अनुवासन करना हित होताहै । तथा सौंफ, बच, कूठ पीपल, और सरसों इनका कल्क कर उसमें तैल और नोन मिलायकर निरूहबस्ती करे तो तत्काल पेटमेंसे जरायुको निकालकर पटकदेवे, उस जरायु के रुकनेका कारण वायु है, उसवायुके पराजय होनेसे वह जरायु कूखसे बाहर निकल आताहै, अतएव पवनके जीतने को बस्तिप्रधान है, (चरकमें लिखाहै कि, गर्भिणीको कुबडीकर उसके निरूहन और अनुवासवन बस्तिकरे. इसप्रकार विवृतमार्ग होनेसे औषधी भलेप्रकार प्रवेश करतीहै)

कुशलापाणिनाऽक्तेनहरेत्कृत्तनखेनवा ।

अर्थ–गर्भ निकालने में कुशल ऐसीस्त्री शस्त्रसे नखोंको दूरकर और हाथों में घृतचुपड़ नालके अनुसार उसको बाहर खींचे ।

मुक्तगर्भापरांयोनिं तैलेनाङ्गञ्चमर्दयेत् ।

अर्थ–जब स्त्रीके गर्भ और जरायु योनिसे बाहर आयजावे तब उसकी योनिको तथा सब अंगोंको तैलसे मर्दन करे.

मकल्लाख्येशिरोबस्तिकोष्ठशूलेतुपाययेत् । सुचूर्णितंयवक्षारंघृते
नोष्णजलेनवा । धान्याम्बुवागुडव्योषत्रिजातकरजोन्वितम् ।

अर्थ–प्रसूतहोनेके पश्चात् स्त्रीके मकल्लाख्यरोग प्रगटहोनेसे तथा उसमें, शिर, वस्ति, और कोठा इनमें शूलहोनेसे जवाखारको पीस घृतके साथ अथवा गरम जलके साथ पीनेकोदेवे अथवा पुरानागुड सोंठ, मिरच, पीपल, इलायची; दालचीनी, और पत्रज, इनका चूर्णमिलायके देवे.

बालकजन्मकेपश्चात्कर्म

अथबालेसमुत्पन्नेविदधीतविधिततः ।
यथैवकुलवृद्धास्त्रीव्यवहारपरम्परा ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–बालक उत्पन्न होनेके उपरांत, जैसी अपने कुलमें वृद्धस्त्रियोंकी रीति भांत होवे, उसके अनुसार बालकजन्मविधि करे.

अथजातस्योल्बंमुखंचसैन्धवसर्पिषा विशोध्यघृताक्तंमूर्ध्निपिचुंदद्यात् ।

अर्थ–बालकके उत्पन्नहोतेही उसके अङ्गके ऊपरकी जरायु उतारकर दूरकरे, तथा सैंधानोन घीमें मिलाय मुख में डाल कण्ठमें जमेहुए कफको निकालकर मुख निर्मलकरे; और घीमें कपड़ेको अच्छीतरह भिजोय उसको चोलडकरके बालकके तालुए ऊपर धरे.

नाभिनाडीमष्टाङ्गुलमायम्यसूत्रेणबद्धाछेदयेत् । तत्सूत्रैकदेशञ्च ग्रीवायांसम्यग्बध्नीयात् । अश्मनोः संघट्टनंकर्णमूलेकार्यम् ।

अर्थ–तदनंतर नाभिनाल आठ अंगुल खीच उसमें सूतबांधकैं छेदनकरे और उस सूतमें नालको लपेट बालककी नाडमेंबांधे. और उसबालककेकानोंपर पत्थरोंको बजावे परंतु इसमध्यदेशमें कांसेकी थाली वजानेकी बहुधाचालहै, और शीतलजल अथवा गरमजलको इसके मुखपर छिडके कि जिस्सैं गर्भके क्लेशसैं घबडाया हुआ बालक स्वस्थ होवे जबतक बालक को होस नहोवे तबतक इसको कृष्णकपालि सूर्यकरके धारणकरे. जब होसमें आयजावे तब स्नान आदि कर्मकरे चरक लिखताहै कि बालककी नालको तीखेधारवाले सोनें, चांदी, और लोहेके टूकसैं छेदनकरे. यदि नाडी वेडौंल टूटजावेतो लोध, महुआ, फूल. प्रियंगु, दारहलदी, इन्केकल्कसैंसिद्धहुएतेलसैंसेककरे, और तैलकी औषध उसजगे लगावे, अविधिपूर्वक नाडीके काटनेसैं आयमत्तण्डी, पिपीलिका, विनामिका, विजृंभिका; आदिरोगोंसैं बालकको भय होताहैं. । यदि पूर्वोक्तरोग होवे तो वातपित्त प्रशमक अविदाही ऐसे अभ्यंग आछादन और परिषेक आदिसैं दूरकरे. ।

ततोनन्तरंजातकर्म्मकार्यम् ।

अर्थ–तदनंतर जातकर्मकरे जातकर्ममें घृत, और सहत मिलाय उसमें थोडा सोना डाल अनामिकासैं चटावे, परंतु आजकल कहींकहीं नालच्छेदनके पूर्व मधुघृत चटातेहै, जातकर्म होनेके अनंतर बलाके तेलसैं अथवा वटादि क्षीर वृक्षोंके काढेसैं अथवा सर्व प्रकारके गंधोदकोंसैं शरीर चुपड सुवर्ण अथवा चांदी तपाय पानीमें बुझाय उस पानीको कुछ गरम कर उस मंदोष्ण पानीसैं उस बालकको न्हलावे, इस कर्ममें कालका अतिक्रम न होनेदेवे, तथा वातादि दोषोंमें जिसका प्राबल्य होवे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उसी उसी दोषकी नाशक औषधोंके काढे मिलायकर न्हिलावे, जैसा अपना वैभव होवे तत्सदृश सर्व सुगंधोदक करके न्हिलावे ।

वृद्धवाग्भटमेंऔरहीप्रकारसैंप्राशनविधिकहीहै.

ऐन्द्रीशङ्खपुष्पीवचाकल्कंमधुघृतोपेतंहरेणुमात्रंकुशेना
भिमन्त्रितंसौवर्णेनाश्वत्थपत्रेणमेधायुर्बलजननंप्राशयेत्
तद्वत्ब्राह्मीवचानन्ताशतावर्यन्यतमचूर्णंचेति ।

अर्थ–ऐंद्री, संखाहूली, वच इनके कल्कमें सहत घृत मिलाय गुंजा प्रमाण लेकर कुशासैं अभिमंत्रितकर सुवर्ण मिलाय पीपलके पत्ते पर धरके चटावे. यह मेधा आयुष्य, बल, इनको देयहै उसीप्रकार ब्राह्मी, वच, दूध, और शतावर, इनमेंसैं किसी एकका चूर्णमें घृतसहत मिलाय चटावे ।

इसकाफल.

धमनीनांहृदिस्थानांविवृतत्वादनन्तरम् ।
चतूरात्रात्रिरात्राद्वास्त्रीणांस्तन्यंप्रवर्तते ॥

अर्थ–स्त्री प्रसूत होनेके पश्चात् उसके हृदय संबंधी धमनियोंके मुखविकसित होकर तीन चार दिवसके अनंतर स्तनोमें दूध उतरताहै । इसीसैं प्रथम दिन सहत और घृतमें १ रत्तीभर सोना उवालकर मंत्रोंसैं अभिमंत्रितकर तीनवार चटावे, इसी प्रकार दूसरे दिन लक्ष्मणा डालकर सिद्धकरा हुआ घृत पिवावे और पूर्वोक्त औषध देवे; तथा रक्षोघ्न औषध हातपैरमें ग्रीवा, मस्तक, इनमें बांधे जलके पूर्णपात्र मंत्रोंसैं अभिमंत्रित इसके समीप स्थापितकरे, आरी, खैर, वेर, पीलू फालसे, इन वृक्षोंकी शाखासैं प्रसूताके सब घरको रक्षित करे, और प्रसूताके घरके चारों तरफ सरसों, अलसी, तिल, जौं, तथा अन्य धान्य विखेर देवे । तथा रक्षोघ्न औषधोंकी पोटली बांध प्रसूताके घरके उत्तर देहलीमें स्थापित करे तथा प्रसूताके घरमें सदैव अग्नि जलती हुई रक्खे । और इसकी शय्याका शिर पूर्वकी ओर रक्खे । और निरंतर दीपक समीप रक्खे तथा सकल गुण चतुरा स्त्री और इसके सुहृद दशदिन वा बारहदिन बराबर जगाकरे । तथा दान, मंगल, आशीर्वाद, स्तुति, गीतगाना, बाजेबजाना, अन्न, पान, और बहुतसे प्रहृष्ट मनुष्यों करके प्रसूताके घरको परिपूर्ण रक्खे । अथर्वणवेदके जाननेवाले ब्राह्मण सायंकाल और प्रातःकालमें शांति हवन करा करे । कि जिस्से प्रसूता और बालककी रक्षारहे तथा फूलमाला आदि जो व्रणवाले पुरुषके पास रखना लिखाहै वो सब प्रसूताके पास रखने चाहियें ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रसूताको भूखलगे तब घृतपिवावे । यदि केवल घृत न भावे तो अन्य पदार्थोंमें मिलायकर देवे तथा पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, और सोंठका चूर्णमें घृत गुड मिलाकर देवे, घृत तैलका देहमें मालिस करे; और बडे वस्त्रसैं इसके पेटको बांध देवे कि, जैसैं वायु कुपित होकर विकारोंको न प्रगट करे, जब घृत, तैल आदि पीयेहुए पचजावे तब पूर्वोक्त पीपल आदि औषध डालकर सिद्धकरी यवागू पिवावे. उसमेंभी घी डालदेवे और यह पतली होवे यदि कुछ दोष बाकी रहगयाहो तो उस स्त्रीको पीपल, पीपरामूल, गजपीपल, चित्रक, अदरख, और चव्यके चूर्णको गुडके जलसैं अथवा गरम जलसैं पीवे, ऐसे दो तीन रात्रिपर्यंत करे जबतक दुष्टरुधिर रहे जब रुधिर शुद्ध हो जावे तब विदारीकंद, और असगंध आदिसैं सिद्ध स्नेहयवागू अथवा क्षीरयवागू तीन रात्रपीवे । और जो कुलथी, कंकोल, करके सिद्ध जांगल रसकेसाथ साठी चावलोंका भात भोजनकरे इसप्रकार डेढमहिने करनेसैं प्रसूताविधानसैं छूटे. धन्वभूमि (मारवाडआदि) की प्रसूतास्त्रीको घृततेलमेंसैं एककीमात्रापिवावे. और पिप्पल्यादि कषायका अनुपान देवे । और नित्य चिकनाई देवे जांगल देशकी प्रसूतास्त्री को उसकी आत्माके अनुकूल घृततेलकी मात्रादेवे । ये सब उपाय बलवान् प्रसूताकेहै और निर्बल प्रसूतास्त्रीको सब औषधोंसैं सिद्धकरी घृतमिली यवागू पिवावे । प्रसूतास्त्री क्रोध, परिश्रम, मैथुन, आदि कर्मको न करे।

प्रसूतास्त्रीकोनियमनपालनेकेदोष

मिथ्याचारात्सूतिकायायोव्याधिरुपजायते ।
सकृच्छ्रसाध्योऽसाध्योवाभवेदत्यर्थतर्पणात् ।

अर्थ–प्रसूताके मिथ्या आहार विहारादिकसे जो व्याधी होतीहै वह कृच्छ्रसाध्य अथवा असाध्य होतीहै । अतएव उस प्रसूताको देश, कालके उचित व्याधिसात्म्य कर्मकरके परीक्षा पूर्वक नित्य उपचार कर्त्तव्यहै । प्रसूताको व्याधि कृच्छ्रसाध्य और असाध्य होनेमें क्या कारणहै सो कहतेहै (गर्भके बढनेसे क्षीण और सिथिल हुईहै सब शरीरकी धातु तथा प्रवहन वेदना पूर्वक रुधिरके निकलजानेसे सर्वदेह शून्य होजाताहै, इसीसे प्रसूताके जो रोगहोतेहै वो कृच्छ्रसाध्य और असाध्य होतेहै।)

ततोदशमेत्वहनिसपुत्रास्त्रीसर्वगंधौषधैर्गौरसर्षपैश्चस्नाता
लघ्वहतवस्त्रपरिहितापवित्रेष्टलघुविचित्रभूषणवतीसंस्पृ
श्यमङ्गलान्युचितामर्चयित्वादेवतांशिखिनःशुक्लवाससो
ऽभ्यङ्गान्ब्राह्मणान्स्वस्तिवाचयित्वाकुमारमहतानाश्वा
ससांचप्राक्शिरसमुदक्शिरसंवासंवेश्यदेवतापूर्वद्विजाति

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भ्यःप्रणमतीत्युक्त्वाकुमारस्यपिताद्वेनामनीकुर्यान्नाक्षत्रिकंनामाभिप्रायिकञ्च

अर्थ—तदनन्तर दशमे दिन सपुत्रास्त्री सर्वगंधौषध और सपेदसरसों करके स्नानकर हलके और विनाफटे वस्त्रोंको धारणकर तथा पवित्र और प्रिय हलके विचित्र भूषणोंसे भूषितहो मंगली गौ आदिका स्पर्शकर उचितदेवता और अग्निका पूजनकर सपेदवस्त्र धारणकरनेवाले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन पढाय कुमारकोभी दिव्यनवीन वस्त्र पेहनायकर पूर्वशिर अथवा उत्तरशिर स्थितकर देवतापूर्व ब्राह्मणोंको प्रणामकर पिता बालकके दो नामकरे । एकतो नाक्षत्रिक अर्थात् जो नक्षत्रसे संबंध रखताहो और दूसरा नाम आभिप्रायिक, परंतु इनमें भी ब्राह्मण अपने बालकका नाम देवशब्दपूर्वक शर्माशब्द रक्खे (जैसे रामचन्द्रदेवशर्मा) और क्षत्री अपनेबालककानाम वर्मा त्रातांत रक्खे (जैसे रामसिंहवर्मा) तथावैश्य गुप्त और भूति रक्खे. और शूद्र अंतमें दासशब्दरक्खे और नामके प्रथम घोषवान् अक्षररक्खे और नामके अंत्यअक्षर दीर्घ. विसर्जनीयरहित होने चाहिये ।

इस जगे यह भी जानलेनाचाहिये कि बालकका अशोभित और अर्थहीन नाम न रक्खे जैसे कि हमारे बहुतसे माथुर आदि प्यारके वस चिरैया, कुत्ती, लुच्ची, बोन्टा, आदि अनर्थ और दुष्ट नाम रखतेहैं । परंतु वंगवासी कैसे सुशोभित और सार्थक रक्खतेहैं (जैसे तारानाथतर्कवागीश, सुरेन्द्रमोहन, तारानाथ तर्कवाचस्पति और शरच्चन्द्रचक्रवर्त्तीविद्योपाध्याय आदि) परंतु नाम दो या चार अक्षरका होना चाहिये और स्त्रियोंकेनाम मनोहर स्पष्टार्थ तथा मंगली होने चाहिये. (जैसे यशोदा, वसुदा, चन्द्रभागा आदि) विशेष विधि धर्मशास्त्रके ग्रंथोसे देखलेना. नामकरणके अंतमें बालककी आयुका निर्णय करे कि यह दीर्घायु होगा वा मध्यायु वा अल्पायु, यह प्रकार हम आगे लिखेगे ।

अथधात्रीपरीक्षा

अथब्रूयात् धात्रीमानयेति समानवर्णां यौवनस्थां त्रिवृत्तामनातुरामव्यंगामव्यसनामविरूपामविजुगुप्सामजुगुप्सितदेशजातेयामक्षुद्रामक्षुद्रकर्मणांकुलेजातांवत्सलां जीवद्वत्सां पुंवत्सां दोग्ध्रीमप्रमत्तामशायिनीकुशलोपचारांशुचिमशुचिद्वेषणीं स्तनस्तन्यसम्पदुपेतामिति

अर्थ—तदनंतर कहेकि धायको लाओ, जो समानवर्णकी (अर्थात्ब्राह्मणको ब्राह्मणी क्षत्रीको क्षत्राणी वैश्यको वैश्यजातिकी और शूद्रको शूद्रास्त्री) हो तथा जवान,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सौशील्य गुणयुक्त, रोगरहित, सर्वांगवाली, व्यसनरहित, रूपवान्, अनिंद्य देशमें प्रगटहोनेवाली, क्षुद्रतारहित, अक्षुद्रकर्म करनेवालीके कुलमें प्रगट, वात्सल्ययुक्त, जीवितसंतानवाली, तथा पुत्रसंतान वाली, अत्यंत दूधवाली, अप्रमत्त, अल्पनिद्रा-वाली, सर्वोपचारोंमें कुशल, पवित्र, अपवित्रतासे द्वेषकरनेवाली स्तन और स्तन्यसंपत्वालीहो, आज कल जाटगूजरआदि हीनजातिही सर्वत्र धाय होतीहै. ।

अथस्तनसम्पत्

तत्रेयंस्तनसम्पत्नात्यूर्ध्वौनातिलम्बौअनातिकृशावनाति पीनौयुक्तिपिप्पलकौ सुखप्रपानौचेतिस्तनसम्पत् ।

अर्थ–तहां स्तनसम्पत् कहतेहै कि, न बहुत ऊंचेहो न बहुत लम्बेहो न बहुत कृशहो न बहुत मोटेहो पीपलके पत्ते सदृश सुडारहो, सुखपूर्वक बालकके पीनेमें आवे । ऐसे धायके स्तनहोवे ।

स्तन्यसम्पत् ।

स्तन्यसम्पत् प्रकृतवर्णगन्धरसस्पर्शमुदपात्रेवदुह्यमानमुदकं व्येतिप्रकृतिभूतत्वात्तत्पुष्टिकरमारोग्यकरं चेतिस्तन्यसम्पत् । अतोऽन्यथाव्यापन्नंज्ञेयम्

अर्थ–स्तन्य (दूध) संपत्कहतेहैं कि, जिस धायका दूध प्रकृत वर्ण गंध रस और स्पर्शवालाहो. तथा जलकेपात्रमें दुहनेसे जलमें मिलजावे कारण यह है कि, जलप्रकृतिभूतहोनेसे उत्तमहोताहै इससे ऐसा दूध बालकको पुष्टिकरे । और आरोग्य कर्त्ता जानना इससेविपरीत दूषित दूध जानना. ।

अथनिषिद्धधायकेलक्षण ।

शोकाकुलाक्षुधार्त्ताचश्रान्ताव्याधिमतीसदा । अत्युच्चानितरांनीचास्थूलातीवभृशंकृशा॥गर्भिणीज्वरिणीचापिलम्बोन्नतपयोधरा । अजीर्णभोजनीचापितथापथ्यविवर्जिता । आसक्ताक्षुद्रकार्येतुदुःखार्त्ताचञ्चलापिच । एतासांस्तन्यपानेनशिशुर्भवतिसामयः ।

अर्थ–शोकाकुल, क्षुधासे व्याकुल, थकीहुई, सदैवरोगिणी, अत्यंत ऊंची, अत्यंत नीची, अतिस्थूल, अतीवकृश, गर्भिणी, ज्वरवाली, लंबे और ऊंचे स्तनवाली, अजीर्णमें भोजनकरनेवाली, तथा पथ्यवर्जिता, तुच्छकर्मोंमें फँसीरहे, दुःखसे आर्त्त, चञ्चल, ऐसी धायके स्तनपीनेसे बालक रोगग्रस्त होजाताहै.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथस्तनपानविधि ।

ततःशिरस्नाताहतवसनोदङ्मुखीउपविश्यधात्रींप्राङ्मुखींचो-पविश्यदक्षिणंस्तनंधौतमीषत्परिस्रुतमभिमंत्र्यमन्त्रेणानेन ।

अर्थ–तदनंतर बालककी माता शिरसहित स्नानकर धुएहुए नवीन वस्त्रोंको पहनकर उत्तरमुख बैठे और धायकोभी स्नानकराय पूर्वाभिमुख बैठालकर उसका दहनास्तन अच्छीरीतिसे धोय कुछ दूधको प्रथम पृथ्वीमें टपकाय पीछे इस मंत्रसे अभिमंत्रित करे. (चरकमें लिखाहै कि जब धायका स्वादु और बहुतसा शुद्ध दुग्धहोवे, तब वामरिष्टा, वाद्यपुष्पी, विष्वक्सेनकांता इनरूखडीन्को धारणकर पूर्वमुखवाले बालकको प्रथम दहना स्तन पिवावे)

अस्रावितदुग्धकेअवगुण ।

अस्रावितंस्तनंबालःपिबन्स्तन्येनभूयसा ।
पूर्णस्रोतावमीकासश्वासैर्भवतिपीडितः ॥

अर्थ–प्रथम स्तनोंसे दूधके विनाटपकाए जो बालक उसदूधको पीताहै, वह पूर्णस्रोतका दूध बहुधा वमन, खांसी और श्वाससे पीडित होताहै ।

अभिमंत्रणकेमंत्र ।

क्षीरनीरनिधिस्तेऽस्तुस्तनयोःक्षीरपूरकः । सदैवसुभगोबालोभवत्येषमहाबलः । पयोमृतसमंपीत्वाकुमारस्तेशुभानने । दीर्घमायुरवाप्नोतुदेवाःप्राप्यामृतंयथा ।

अर्थ–इन मंत्रोंको पिताके स्थानमें ब्राह्मणको पढ़ने चाहिये जबतक मंत्रपाठ होवे तबतक माता वा धाय दहनेहाथसे स्तनका स्पर्शकरे रहे पश्चात् पिवावे ।

अनेकउपमाताहोनेकेदोष ।

अतोऽन्यथानानास्तन्योपयोगश्चासात्म्यवातादिजन्माभवति ।

अर्थ–अनेक उपमाता (धाय) होनेसे उन्होंके दूध बालककी प्रकृतिमें न आनेसे वह वातादि रोगोंसे पीडित होताहै ।

दूधसूखनेकेकारण ।

क्रोधशोकावात्सल्यादिभिश्चस्त्रीणांस्तन्यनाशोभवति ।

अर्थ–क्रोध, शोक, अवात्सल्य आदि कारणोंसे स्त्रीका दूध नष्ट होताहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्षीरउत्पन्नकारकप्रयोग।

अथास्याःक्षीरजननार्थंसौमनस्यमुत्पाद्ययवगोधूमशालीषष्टिकांमांसरससुरासौवीरकपिण्याकलशुनमत्स्यकशेरुकशृंगाटकविषविदारीकंदमधुकशतावरीनालीकालाबूकालशाकप्रभृतीनिविदध्यात्।

अर्थ–इस स्त्रीके दूध प्रगटकरनेको मन संतुष्टकरके जो गेहूंकासत्व (निशास्ता) शाल्योदन, सांठीचावल, मांसरस, मद्य, कांजी, खल, लहसन, मछली, कसेरू, सिंघाडे, विष, विदारीकन्द, मूलहटी, सतावर, नाडीकासाग और कालशाक इत्यादि सुसंस्कृतकरके भोजनको देवे।

सप्तरात्रात्परंचास्यैक्रमशोबृंहणंहितम्।
द्वादशाहेऽनतिक्रान्तेपिशितंनोपयोजयेत्॥

अर्थ–प्रसूता स्त्रीको सातरात्रि व्यतीत होनेपर क्रमसे बृंहण (जिनसे देह पुष्टहोवे) देवे और बारहदिन व्यतीत नहो तबतक मांस खानेको न देवे।

दूधकीपरीक्षा।

अथास्यस्तन्यमप्सुपरीक्षेत। तच्चेच्छीतलममलंतनुशंखावभासमप्सुस्तन्यमेकीभावंगच्छतिअफेनिलमतन्तुमन्नोत्प्लवतेवसीदतिचतच्छुद्धमितिविद्यात्।

अर्थ–तदनन्तर स्त्रीके दूधकी परीक्षा जलमें इसप्रकार करे कि, बालककी माताका दूध अथवा धायका दूध निकलवावे, यदि वह शीतलहो और स्वच्छ, पतला, शंखके समान सपेद, तथा जलमें गेरनेसे एकत्र होजावे, तथा झागरहित और तंतुरहित होकर तैरे नहीं और जलमें बूडे़नहीं उसको शुद्धजाने ऐसे दूधके पीनेसे बालकको आरोग्य, बल और पुष्टी होतीहै।

दुष्टस्तन्यकेविकार।

धात्र्यास्तुगुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा। दोषादेहेप्रकुप्यंतिततःस्तन्यंप्रदुष्यति। मिथ्याहारविहारिण्यादुष्टावाताद्दयःस्त्रियाः। दूषयन्तिपयस्तेनशारीराव्याधयःशिशोः। भवन्तिकुशलास्ताश्चभिषक्सम्यग्विभावयेत्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–धायके गुरु, विषम, दोषकारक, ऐसे रोगोत्पत्ति करनेवाले पदार्थ खानेसे तथा मिथ्या आहार विहार करनेसे उसके शरीरके वातादिदोष कुपितहोकर स्तन्य (दूध) को दूषितकरके बालकके शरीरमें अनेकप्रकारके रोग उत्पन्नकरे हैं। अतएव कुशल वैद्यको विचारकरके उनरोगोंको दूरकरने चाहिये।

कुमारकेरहनेकास्थान।

अतोऽनन्तरंकुमारागारविधिमनुव्याख्यास्यामः।

अर्थ–इसके अनंतर कुमारके गृह (घर) की विधि कहतेहैं। जैसे कि, वास्तुविद्यामें कुशल कारीगरोंने बनायाहो, प्रशस्त और रमणीय, अंधकाररहित, जिस्में बहुत पवन न आतीहो, और ऐसा भी न हो कि बिलकुल हवा न आवे, मज़बूत, और जिस्में पशु डाढावालेजीव, मूसे, पतंग, (मच्छर, मक्खीआदि, नहो) जल, ओखली, मलमूत्रत्योगनेकेस्थान, स्नानकी पृथ्वी, रसोईकाघर, ऋतुसुखकारीघर, तथा ऋतु २ के शयनकरनेकास्थान, बैठक, परदा इनकरके युक्तहोना चाहिये। तथा यथाविहित रक्षाविधान, बलि, होम, मंगल, प्रायश्चित्त, युक्तहो। पवित्र वृद्धवैद्यके अनुरक्त और अनेक मनुष्योंकरके युक्त ऐसा बालकका घर होना चाहिये।

बालकके ओढने बिछाने और पहरनेके वस्त्र, मृदु, हलके, पवित्र और सुगंधवाले होने चाहिये। तथा पसीना, मल, मूत्र, खटमल, आदि जीव और मैले वस्त्रोंको त्यागदेवे। और त्यागनेकी शक्ति न होवे तो उन्हीं मल मूत्र और मैलेवस्त्रोंको अच्छेप्रकार जलसे धोय पवन और धूपसे शुद्ध और सूखे कर कार्यमें लेने चाहिये.

सूतिकाकेकपडेआदिमेंधूनीदेनेकीऔषध।

वस्त्र, शैया, ओढना, बिछैया, और पडदे आदिमें जों, सरसो, अलसी, हींग, गूगल, वच, गठोना, हरड, गोलोमी, जटामांसी, लाख शोकरोहिणी, स्यापकीकांचली, इन सबको कूट घी मिलाकर धूनीदेवे।

बालक मणीन्को धारणकरे, जैंडा, रूरू, हाथी, रोज, बैल, इन जीवतेहुए पशुओंके दहने सींगके अग्रभागको धारणकरे। ऐंद्यादि औषधोंको और जीवक ऋषभसे आदिले और जो रूखडी ब्राह्मण बतावे उन्को धारणकरे। बालकके खेलनेके खिलोने विचित्र और बजने दिखनौट और हलकेहो तथा तीखे न होवे और जो मुखमें न जानेपावे, तथा प्राणहारक न हो, तथा जिनके देखनेसे भय न लगे. ऐसे होनेचाहिये।

बालकको त्रासदेना अच्छा नहींहै। अतएव रोनेसे अथवा भोजन न करनेसे दुःख होताहै. तथा और कार्योंसे उद्विग्न न करे। तथा राक्षस, पिशाच, पूतना आदिका नाम लेकर बालकको न डरपावे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पुनःस्तन्यस्वरूप ।

रसप्रसादोमधुरःपक्वाहारनिमित्तजः । कृत्स्ना
देहात्स्तनौप्राप्तःस्तन्यमित्यभिधीयते ॥

अर्थ–पक्वआहारसे प्रगट हुए रसका मधुर २ सार संपूर्णदेहमेंसे स्तनमें प्राप्तहो दुग्धरूप होताहै, ऐसे विद्वान् कहतेहैं ।

स्तन्यकीप्रवृत्ति ।

पयःपुत्रस्यसंस्पर्शाद्दर्शनात्स्मरणादपि । ग्रहणादप्युरोजस्य
शुक्रवत्संप्रवर्तते । स्नेहोनिरंतरस्तस्यप्रवाहेहेतुरुच्यते ॥

अर्थ–पुत्रके स्पर्शसे, देखनेसे, स्मरणसे, तथा बालकके स्तनपकडनेसे वीर्यके सदृश दूध उतरताहै । पुत्रके ऊपर निरंतर स्नेह रहना यही दूधके प्रवाहमें कारण कहाहै।

स्तन्यकेअल्पहोनेमेंकारण ।

अवात्सल्याद्भयाच्छोकात्क्रोधादत्यपतर्पणात् ।
स्त्रीणांस्तन्यंभवेत्स्वल्पंगर्भान्तरविधारणात् ॥

अर्थ–पुत्रके ऊपर प्रीति न होनेसे, भयसे, शोकसे, क्रोधसे, भूखेरहनेसे, अथवा दूसरे गर्भके रहनेसे स्त्रियोंके दूध थोडाहोताहै ।

स्तन्यवृद्धिकेउपायान्तर ।

कलमस्यतण्डुलानांकल्कंवाक्षीरपेशितंपिबति ।
साभवतिभृशंतरुणीक्षीरभरेणैवतुङ्गकुचयुगला ॥

अर्थ–कलमके चामलोंको दूधमें पीसकर पीवे तो उसके दोनों स्तन दूधकी अधिकतासे निरंतर ऊंचे रहतेहैं ।

कलमधान्यकेलक्षण ।

कलमःकिलविख्यातोजायतेसबृहद्व्रने ।
काश्मीरदेशएवोक्तोमहातण्डुलसंज्ञकः ॥

अर्थ–कलमनामका धान्य बृहद्व्रनमें उत्पन्नहोताहै । उसीको काश्मीरमें महातण्डुल कहतेहैं ।

विदारिकन्दस्यरसंपिबेत्स्तन्यस्यवृद्धये ।
तच्चूर्णंतस्यवृद्ध्यर्थंपिबेद्वाक्षीरसंयुतम् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–विदारीकंदका रस स्त्री, दूधबढनेको पीवे अथवा विदारीकंदका चूर्ण दूधकें साथ स्तन्यवृद्धिके अर्थ पीवे ।

दुष्टस्तन्यकेलक्षण ।

कषायंसलिलप्लाविस्तन्यंमारुतदूषितम् । पित्तादम्लञ्च कटुकंराज्योऽम्भसितुपीतिकाः ॥ कफदुष्टंतुयत्तोयेनिम ज्जतिचापिच्छलम् । द्वन्द्वजंतुद्विलिङ्गंस्यात्रिलिङ्गंसा- न्निपातिकम् ।

अर्थ–स्त्रीका दूध जो जलमें डालनेसे ऊपरही तेरा करे, तथा स्वादमें कषेला होवे, वह वातदूषित जानना और पानीमें डालनेसे जिसमेंसे पीलीपीली कलीसी होजावे, तथा स्वादमें खट्टा और तीखाहोय उसे पित्तदूषित जानना । और पानीमें गेरनेसे जो डूब जावे और चिकना होवे उस दूधको कफसे दूषित जानना । और जिसमें दोदोषके लक्षण मिले वो द्विदोषसे दूषित जानना और तीनदोषोंके लक्षण मिलनेसे त्रिदोषसे दूषित दूध जानना । दुष्टस्तन्यकी शुद्धि प्रथम लिखआएहैं, अब औरभी लिखतेहैं,

दुष्टस्तन्यकाशोधन ।

पटोलनिम्बासनदारुपाठामूर्वागुडूचीकटुरोहिणीच ।
सनागरश्चक्वथितंतुतोयेधात्रीपिबेत्स्तन्यविशुद्धिहेतोः ॥

अर्थ–पटोलपत्र, नीमकीछाल, खेरसार, देवदारू, पाढ, मूर्वा, गिलोय, कुटकी और सोंठ इन सबको पानीमें काढा करके पीवे तो दूधकी शुद्धि होवे ।

बालककेरोगज्ञानकाउपाय ।

अङ्गप्रत्यङ्गदेशेतुरुजायस्यात्रजायते।मुहुर्मुहुःस्पृशतितं स्पृश्यमानेचरोदिति । निमीलिताक्षोमूर्धन्येशिरोरोगेण धारयेत् । बस्तिस्थोमूत्रसंसर्गोरोदिष्यतिचमूर्च्छति । वि ण्मूत्रसङ्गेवैवर्ण्यंछर्द्यार्ध्मानांत्रकूजनैः । कोष्ठेरोगान्विजा नीयात्सर्वत्रस्थांश्चरोदिति । तेषुयथाविहितंमृद्भच्छेदनी यौषधमात्रयाक्षीरपस्यक्षीरसर्पिषाधात्र्यास्तुकेवलमेवावि- दध्यात् । क्षीरान्नादस्यात्मनिधात्र्याश्चअन्नादस्यकषाया दीन्यात्मन्येवनधात्र्याः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-अंग और प्रत्यंग इनमें जिस २ अंग प्रत्यंगोंमें पीडाहोवे उसीउसी अंगको वारंवार बालक स्पर्शकरताहै और स्पर्शकरके रोवे, मस्तकपीडा होनेसे नेत्रमूंद वारंवार मस्तकपटके, बस्तिस्थानमें रोगहोनेसे मूत्रबंद होवे और रोवे तथा मूर्च्छाको प्राप्तहोवे, सर्व कोष्टगत रोगहोनेसे विष्ठामूत्र बंदहोवे, शरीरमें विवर्णता तथा वमनहोवे, पेट फूलजावे, आंतडेन्में विलक्षण शब्द होवे और रुदनकरे, इत्यादि लक्षणोंसे रोग अच्छीरीतिसे जान उसी २ रोगमें यथायोग्य अर्थात् जो जो औषध जिसजिस रोगमें लिखीहै उसीउसी रोगमें देवे, परंतु इसमेंभी यह बात याद रहे कि, तीखी और छेदन कर्त्ता औषध न देवे, तथा कफमेदको दूर करने वाली औषध देनी चाहिये, इनकी मात्रा आगे कहेंगे उसको दूध और घृतमें मिलायकर देवे-बालक केवल दूधही पीताहो उसको घृत दूधमें मिलाय न देवे किंतु दूधमें घोलकर औषधदेवें । और दूध अन्न दोनों सेवनकरनेवाले बालकको देवे तो उसकी धायको भी देनी चाहिये और केवल अन्न खानेवाले बालकको क्वाथआदि औषध उसीको, देवे उसकी माताको न देनी चाहिये ।

बालककीमात्राकाप्रमाणकहतेहैं ।

तत्रमासादूर्ध्वंक्षीरपस्यांगुलिपर्वद्वयग्रहणसम्मितामौष धमात्रांविदध्यात् । कोलास्थिसंमितांकल्कमात्रांक्षीरा न्नादायकोलसंमितामन्नादायेति ।

अर्थ-एक महिनेके अनंतर दूध पीनेवाले बालकको बीचकी ऊंगली और अनामिका एकत्र करके उन दोनोंके आगेके पोरुओंमें अँगूठा धरके पोरुओंके गड्ढेमें जितना कल्क आवे इतनी मात्रा देवे । परंतु वह कल्क सहत, घी, अथवा दूध मिलायकर देवे, तथा दूध और अन्न खानेवालेको अथवा केवल अन्न खानेवाले बालकको कोलप्रमाण मात्रा देनी चाहिये ।

अन्यग्रंथमेंदूसराप्रकारकहाहै, यथा,

प्रथमेमासिजातस्यशिशोर्भैषजरक्तिका । अवलेह्यातुक र्त्तव्यामधुक्षीरसिताघृतैः॥एकैकांवर्द्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत् । ततोर्ध्वंमासवृद्धिःस्याद्यावत्षोडशकाब्दिकेति ॥

अर्थ-एक महिनेके बालकको औषधोंमें दूध और घी मिलाय चाटने योग्यकरके उसकी मात्रा एकरत्तीकी जाननी । तदनंतर १ वर्षपर्यंत प्रतिमास एक २ रत्ती बढावे । और एक वर्षके पश्चात् सोलहवर्षपर्यंत एक २ मासे मात्रा बढानी चाहिये।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकारान्तरकरकेऔषधोपायकहतेहैं ।

येषांगदानांयेयोगाःप्रवक्ष्यन्तेगदङ्करा: ।
तेषुतत्कल्कसंलिप्तौपाययेतशिशुंस्तनौ ।

अर्थ–जिस रोगका जो जो परिहारक औषधोपाय कहाहै उसीउसी औषधका कल्ककरके स्तनोंमें लपेट बालकको पिवाना चाहिये ।

ज्वरविषयमेंविशेषकहतेहैं.

एकंद्वित्रीणिवाहानिवातपित्तकफज्वरे ।
स्तन्यंपयोहितंसर्पिरितराभ्यांयथार्थतः ॥

अर्थ–जो बालक केवल दूध पीनेवालाहै, उसको वातपित्तकफज्वरमें स्तन्य (स्तनसंबंधीदूध) दूध, घी, एक, दो, तीनदिनके अंतरकरके पिवावे । तथा क्षीर और अन्नखानेवाला, तथा केवल अन्नखानेवाले बालकको जैसा प्रयोजनहो उतना घी हितावह होताहै । तथा ज्वरमें तृषाके भयसे बालकको स्तनपान देवे, परंतु विरेक, बस्ति, वमनरूप नाशकारक विकार न होनेसे स्तनपान देवे. *

बालककेतालुवाकाकलटकआनेकाउपाय ।

मस्तुलुङ्गक्षयाद्यस्यवायुस्तालवस्थिनामयेत्।तस्यतृड्दैन्ययुक्तस्य सर्पिर्मधुरकैःशृतम् । पानालेपनयोर्योज्यंसीताम्बुव्यञ्जनंतथा ।

अर्थ–मस्तककी वायु अभ्यन्तर स्नेहका किसी कारणसे क्षय करके तालुएकी हड्डीको नवाय उग्र पीडा उत्पन्न करे, इससे बालक तृषा और दीनता इनकरके युक्तहोताहै । अतएव उसको सहत, घीमें मिलाय भलेप्रकार तपाय कर पिवावे तथा देहमें लगावे, तथा शीतल जल और पंखासे पवन करनी चाहिये ।

बालककीनाभिफूलआवेतथागुदपाकहोजावेउसकाउपाय ।

वातेनाध्मापितांनाभिंसरुजांतुण्डसंज्ञिताम् । मारुतघ्नैः प्रशमयेत्स्नेहस्वेदोपनाहनैः । गुदपाकेतुबालानांपित्तघ्नांक्रियेत्क्रियाम् । रसाञ्जनंविशेषेणपानलेपनयोर्हितम् ।

अर्थ–बालककी नाभी वायुसे वेदनायुक्त फूलकर अत्यन्त बडी होजावे, उसमें वायुनाशक स्नेहादिक उपचार करावे, तथा गुदपाक होनेसे पित्तनाशक उपचार करावे तथा पान लेपन इस विषयमें रसांजन हितकारक होताहै ।

---

* नचतृष्णाभयादत्र पाययेतशिशुंस्तनौ । विरेकबस्तिवमनाद्दतेकुर्यात्तु नात्ययात् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

घृतबालककोसदैवहितकारीहोताहैयहकहतेहैं ।

क्षीराहारायसार्पिःसिद्धार्थकवचामांसीपयस्यपामार्गशता वरीसारिवाब्राह्मीपिप्पलीहरिद्राकुष्ठसैन्धवसिद्धम् । क्षीरान्नादायमधुकवचापिप्पलीमूलकत्रिफलासिद्धम् । अन्नादायद्विपञ्चमूलीक्षीरभद्रदारुमरीचमधुकविडङ्गद्राक्षाद्विब्राह्मीसिद्धं तेनाभ्यङ्गेबालमेधायूंषिशिशोर्भवंति ।

अर्थ–जो बालक केवल स्तनपानही करताहो उसको सरसों, वच जटामांसी, अर्कपुष्पी, ओंगा, सतावर, सारिवा, ब्राह्मी, पीपल, हलदी, कूठ, सेंधानोन, इन औषधोंका कल्क तथा काढ़ाकरके सिद्धकराहुआ घृत पिवावे । और दूध अन्न खानेवालेको मुलहटी, वच, पीपरामूल और त्रिफला इनका कल्क अथवा काढा आदि कर उससे सिद्धकराहुआ घृत पिवावे तथा अङ्गमें लगवावे । और केवल अन्न खाने वाले बालकको द्विपंचमूल (लघुपंचमूल और बृहत्पंचमूल) दूध, तगर, देवदारु, कालीमिरच, मुलहठी, वायविडंग, दाख, ब्राह्मी और मंडूकपर्णी इनसे सिद्धकरा घृत पिवावे । तथा अंगोंमें मालिस करावे, इसकरके बालकके आरोग्य, बल, मेधा और आयुष्यकी वृद्धि होवे ।

अथबालककीपरिचर्याकीविधि ।

बालंपुनर्गात्रसमंगृह्णीयान्नचैनंभर्त्सयेत्सहसावानप्रतिबोधयेत्तद्वित्रासभयात् । सहसानापहरेदुत्क्षिपेद्वावातभयात् । नोपवेशयेत्कौब्ज्यभयात् नित्यंचैनमनुवर्त्तेतप्रियशतैर्नजिघांसुः ।

अर्थ–परिचारक (नोकर) मनुष्य बालकको धीरे धीरे फूलके समान जैसे उसके शरीरको सुखहोवे ऐसे उठावे, तथा इसको धमकावे नहीं. और अकस्मात् जगावे नहीं क्योंकि अकस्मात् जगानेसे बालक भयभीत होजाताहै, वातादिदोषोंके कुपित होनेके भयतें बालकको खींचे नहीं तथा जल्दी शय्यापर गेरेभी नहीं. कुबड़े होनेके भयसे बालकको बहुत देरतक बैठारेभी नहीं और सर्वकाल उसके इच्छानुसार वर्तें, तथा बालकके खेलनेके खिलौने आदि पदार्थ देकर संतोषयुक्त रक्खे, कभी इसको मारे नहीं, तथा औषधका पिवाना, तेल, काजर, उबटना आदि आवश्यक विधिके विना बालकको कभी न रुलावे ।

उक्तपरिचर्याकाफलकहतेहैं ।

एवमव्याहतमापोह्यभिवर्द्धतेनित्यमुदग्रसत्वसम्पन्नोनीरोगःसुप्रसन्नमनाश्चभवति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–इसप्रकार निरन्तर उपचार करनेसे उत्तम वृद्धिहोय, उन्नतसत्वसम्पन्न, निरोगी, तथा सुप्रसन्न अंतःकरण ऐसा होवे ।

बालककीरक्षाकाप्रकार ।

वातातपविद्युत्प्रभापादपलतानागारनिम्न
स्थानगृहच्छायादिभ्योग्रहोपसर्गतश्चबालंरक्षेत् ।

अर्थ–बालकको, अत्यंत हवा, गरमी, बिजली, वृक्ष, वेल, अनेकघर, नीचीजगह, गृहोंकी तथा ग्रहसंबंधी अनेक प्रकारके उपसर्ग इनसे रक्षा करनी चाहिये ।

नाशुचौविसृजेद्बालमाकाशविषमेपिच ।
नोष्णमारुतवर्षेषुरजोधूमोदकेषुच ॥

अर्थ–बालकको अपवित्रस्थान, आकाश, तथा ऊंचेनीचे प्रदेशमें न बैठारे । गरमी, वायु, वर्षा, धूंआ, धूर और जल इनमेंभी बालकको न बैठारे ।

बालककोस्वाभाविकहितवस्तूकहतेहैं ।

अभ्यङ्गोद्वर्तनंस्नाननेत्रयोरञ्जनन्तथा । वसनंमृदुयत्तच्च
थामृद्वनुलेपनम् । जन्मप्रभृतिपथ्यानिबालस्यैतानिसर्वथा ॥

अर्थ–तेलका लगाना, उबटनाकरना, स्नान, नेत्रोंमें अंजन लगाना, नरम २ वस्त्रोंको धारण करना, तथा नरमपदार्थोंका लेपन करना, इतनी वस्तु बालककी जन्म सेही सर्वथा हितकारी है, कोई वसनकी जगे (वमन) ऐसा कहतेहैं अर्थात् नरम वमन करना चाहिये ।

माताकेदूधनहोवेऔरधायमिलेनहींउससमयकी विधिकहतेहैं ।

क्षीरसात्म्यतयाक्षीरमाजङ्गव्यमथापिवा ।
दद्यादास्तन्यपर्याप्तेर्बालानांवीक्ष्यमात्रया ॥

अर्थ–बालकको माताका दूध न मिलनेसे गौ, अथवा बकरी इनमेंसे जिसका आत्मोपयोगी जानपडे उसका दूध आहार देखके देवे, वह दूध यावत्कालपर्यंत स्तनपान योग्यता होवे तबतक देना चाहिये । अंग्रेजी डॉक्टरोंकी रायहै कि, बालकको गधीका दूध अतिहितावह होताहै ।

बालककाअन्नप्राशनकासमय ।

यथोक्तविधिनाबालंमासिषष्ठेऽष्टमेऽपिच ।
अन्नंसंप्राशयेत्किञ्चित्ततस्तद्वर्द्धयेत्क्रमात् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–छटे महिने अथवा आठमें महिने शास्त्रोक्त विधिसे बालकको कुछ अन्न देवे और पीछे अनुक्रमसे बढावे ।

बालककेकवलादिककासमय ।

कवलःपञ्चमाद्वर्षादष्टमान्नस्यकर्मच
विरेकःषोडशाद्वर्षाद्विंशतेश्चैवमैथुनम् ।

अर्थ–बालकको पंचमवर्षसे कवलादि विधिकरे, और आठवर्षका होवे तब नस्य (नास) देवे तथा विरेक (जुल्लाब) सोलह वर्षके होनेपर देना चाहिये और वीसवर्षकी अवस्था होनेपर मैथुनकरना चाहिये । अर्थात् इस समयसे प्रथम ए उक्त कोई क्रिया न करे ।

ग्रहोपसर्गकेलक्षण ।

अथकुमारउद्विजतेत्रस्यतिरोदितिनष्टसंज्ञोभवतिनखदशनै
र्धात्रीमात्मानञ्चपरिद्रुह्यतिदन्तान्खादतिकूजतिजृम्भतेभ्रुवौ
विक्षिपत्यूर्ध्वंनिरीक्षतेफेनमुद्वमतिसंदष्टौष्ठःक्रूरोभिन्नामवर्च्चा
दीनार्त्तस्वरोनिशिजागर्त्तिदुर्बलोम्लानाङ्गोमत्स्यच्छुछुंदरीम
त्कुणगन्धायथापुरास्तनमभिलषतितथानाभिलषतीतिसा
मान्येनग्रहोपसर्गलक्षणमुक्तंविस्तरेणोत्तरेवक्ष्यामः ।

अर्थ–बालक मातृकादि ग्रहोंसे पीडितहोनेसे उद्विग्न होकर क्षण २ में वचके, त्रासको प्राप्तहोवे, रोवे, निश्चेष्टहोवे और नख, तथा दांतोंसे माताको और आपको छेदनकरे, दांतोंको चबावे, कीकमारे अत्यंत जंभाई लेवे, भौहोंको चलावे, ऊपरकी तरफ देखे, मुखसे झागगेरे, होठोंको डसे, क्रूरमालूमहो, वारंवार दस्तजावे, आर्त्तस्वर करे, रात्रिमें जगे, दुर्बल और कुमलायासा होजावे, देहमें मछली, छछूदर और खटमलकीसी दुर्गन्धआवे, पूर्ववत् स्तनपान करे नहीं ये सामान्यग्रहग्रस्त बालकके लक्षण कहेहैं । विस्तारपूर्वक आगे बालककी चिकित्सामें लिखेंगे ।

कुमारकीपुरुषार्थसाधनहेतुभूतक्रियाकहतेहैं ।

शक्तिमन्तञ्चैनंविज्ञाययथावर्णविद्यांग्राहयेत् ।

अर्थ–जब बालक विद्यार्जनक्लेश सहने योग्य होजावे तब ब्राह्मणका बालक होवे तो वेदविद्या शास्त्रविद्या पढावे, क्षत्रीहोवेतो दंडनीति, वैश्य होवे तो उसको हिसाब किताब इसप्रकार विद्याग्रहणकरावे । और पच्चीसवर्षकी अवस्थावालेको बारहवर्षकी स्त्रीसे विवाहकरे यह प्रथमही गर्भाधानके प्रकरणमें लिखआएहैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सहेतुकसप्रतीकारगर्भस्रावकेलक्षण ।

तत्रपूर्वोक्तैःकारणैःपतिष्यतिगर्भेगर्भाशयकटिवंक्षणवस्तिशूलानिरक्तदर्शनञ्च ।

अर्थ–पूर्वोक्त कारण मूढगर्भनिदानमें कहेहै जैसे ग्राम्यधर्म (मैथुन) तथा यानवाहनादि इनकरके गर्भपातहोते समय गर्भाशय, कमर, वंक्षण, और बस्ति इनमें शूलहोवे, तथा योनिके मुखसें रुधिर निकले उसमें शीतलजलका तरडा स्नान आदिशीतोपचार करावे. विशेषविधि वाग्भटसें लिखतेहैं ।

गर्भस्रावकाउपचार ।

गर्भिण्याःपरिहार्याणांसेवयारोगतोऽपिवा । पुष्पेदृष्टेऽथ वाशूलेबाह्यतःस्निग्धशीतलम् । सेव्याम्भोजहिमक्षीरीवल्ककल्काज्यलेपितान् । धारयेद्योनिवस्तिभ्यामार्द्रान्पिचुनक्तकान् ।

अर्थ–गर्भिणीको त्याज्यआहार विहार जो प्रथम कहआएहैं, उन्होंके सेवनकरनेसे अथवा रोगकरके यदि पुष्प (रजोदर्शनकारुधिर) दीखे, अथवा शूलहोवे तो-स्निग्धशीतल ऐसे अन्नपान और परिषेकादि कर्म करने चाहिये, तथा स्त्रीके योनि और बस्तिमें, उसीर, कमलगट्टा, चंदन, और पीपलसैं आदिले क्षीरवालेवृक्षोंका वक्कल इनसैं बनाहुआ कल्कका लेपकर पिचु (रुईके नामे) और नक्तक (कपडे-काटूक) गीले करके रखने चाहिये, सुश्रुतमें लिखाहै कि " जीवनीयादिशृतशीतक्षीरपानैश्च " अर्थात् जीवनीय कहिये कांकोली क्षीरकांकोली आदिका कल्क दूधमें मिलाय अच्छीरीतिसैं तप्तकर शीतलकरके पिवावे ।

शतधौतघृताक्तांस्त्रीतदम्भस्यवगाहयेत् । ससिताक्षौद्रकुमुदकमलोत्पलकेसरम् । लिह्यात्क्षीरघृतंखादेच्छृङ्गाटककसेरुकम् । पिबेत्कान्ताञ्जशालूकबालोदुम्बरवत्पयः । शृतेनशालिकाकोलीक्षीरबलामधुकेक्षुभिः । पयसारक्तशाल्यन्नमद्यात्समधुशर्करम् । रसैर्वाजाङ्गलैःशुद्धिवर्जंचास्रोक्तमाचरेत् ।

अर्थ–हजारवार जलसैं धुलेहुऐ घृतको नाभीसैं नीचे मालिसकर उस स्त्रीको उसजलमें बैठारे, और कमोदनी, कमल, नीलाकमल, इनकी केशर मिश्री औ.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सहत इन सबको घृत और दूधमें मिलायकर पीवे, सिंघाडे और कसेरूओंको खावे, तथा गंधप्रियंगु, कमल, नीलकमल, और कच्चा गूलरका फल, इनको दूधमें ओटाकर पीवे, तथा सांठीचावल, कांकोली, बला, अतिबला, मूलहटी, और ईख इनको दूधमें ओटायकर उस दूधके साथ लालचावल और सांठीचावलोंमें सहतऔर खांड मिलायकर खावे, अथवा देश और आत्माके अनुकूल जंगलीजीवोंके रसके साथ सांठीचावलोंका भात खावे, क्षीरपाककी विधि ग्रंथान्तरोंमें लिखीहै* । तथा शुद्धिको त्याग रक्तपित्तोक्तक्रिया इसजगे करनी चाहिये ।

असंपूर्णत्रिमासायाःप्रत्याख्या
यप्रसाधयेत् । आमान्वयेच ।

अर्थ–जिसगर्भिणीको पूरेतीनमहिने न हुएहो । और उसके कदाचित् रक्तदर्शन होवेतो उसका निश्चयकर यत्नपूर्वक साधनकरे । उसीप्रकार आमानुगत रक्तदर्शन होनेसैं उसको विरुद्धोपक्रमहोनेसैं यत्नपूर्वक साधनकरे ।

अबआमरक्तकेआविरुद्धक्रियाकहतेहै।

तत्रेष्टंशीतंरूक्षोपसंहितम् । उपवासोघनोशीरगुडुच्यरलुधा
न्यकाः । दुरालभापर्पटकचन्दनातिविषाबलाः । क्वथिताःस
लिलेपानंतृणधान्यादिभोजनम् । मुद्गादियूषैरामेतुजितेस्नि
ग्धादिपूर्ववत् ।

अर्थ–आमानुगत रक्तदर्शनमें शीतल अन्नपानादिकोंको बाहर और भीतर योजना करना हितहै । परंतु शीतलवस्तु रुधिरको हितकारीहै और आमको बढानेवाली है, इस्सै कहतेहैं कि (रूक्षोपसंहितम्) अर्थात् तिक्तकषायआदि करके पूर्वोक्त शीतलपदार्थ युक्त होने चाहिये । तथा उपवासकरना हितहै, तथा नागरमोथा, उशीर, गिलोय, श्योनाक, धनिया, जवासा, पित्तपापडा, चन्दन, अतीस, और बला इन्का काढा करके पीना हितहै, तथा तृणधान्य (सामखिया, कोदो) आदिका भोजन हितहै, मूंगकायूष, और आदिशब्दकरके अरहर मसूर आदिशिंबीधान्य हितहोतेहैं. इसप्रकार आमको जीते. जब आमको जीतचुके तब पूर्ववत् स्निग्धादि हितहोतेहैं ।

एवमुपक्रांतायाउपावर्त्तन्तेरुजोगर्भश्चाप्यायते ।

अर्थ–इसप्रकार उपचार करनेसैं संपूर्ण गर्भपातसंबंधी उपद्रव शांतहोतेहै. और गर्भ बढताहै ।

---

* द्रव्यादष्टगुणंक्षीरंक्षीरात्तोयंचतुर्गुणम् । क्षीरावशेषः कर्त्तव्यः क्षीरपाकेत्वयंविधिः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गर्भपातमेंउपचार ।

गर्भेनिपतितेतीक्ष्णंमद्यंसामर्थ्यतःपिबेत् । गर्भकोष्ठविशुद्धच
र्थमार्त्तिविस्मरणायच।लघुनापञ्चमूलेनरूक्षांपेयां ततःपिबेत् ।
पेयाममद्यपाकल्केसाधितांपाञ्चकौलिके । बिल्वादिपञ्चक
क्काथेतिलोद्दालकतण्डुलैः । मासतुल्यदिनान्येवंपेयादिःप
तितेक्रमः । लघुरस्नेहलवणोदीपनीययुतोहितः ।

अर्थ–गर्भिणीका इसप्रकार सेवनकरने परभी अदृष्टवशसे गर्भनिःशेष गिरजावे तो तीक्ष्णमद्य बहुतसापीवे । कारण यहहै कि, मद्यपीनेसे गर्भकी शुद्धि और पीडा-का विस्मरण होताहै । तदनंतर मद्यपीनेके लघुपंचमूलसे बना ऐसा रूक्षपेयाको पीवे । और जो स्त्री मद्य न पीतीहो वह गर्भगिरनेके पश्चात् पंचकोलसे बना पेयाको पीवे मद्यको न पीवे । तथा बृहत्पंचमूलके काढेसे बने पेयाको पीवें । और तिल, उद्दालक (चावलविशेष) और चावलसें जो बनाहुआहो वह पेया जितने महिनेका गर्भगिराहो उतने दिन पीना चाहिये । फिर कैसा पेयाहोकि जिसमें चिकनाई और नोन न होवे, तथा दीपनकर्त्ता (मरिच चित्रक आदि) द्रव्यजिसमें मिलीहोवे ।

यहविधिकिसलियेकरनीचाहियेसोकहतेहैं.

दोषधातुपरिक्लेदशोषार्थंविधिरित्ययम् ।

अर्थ–दोष (पित्तकफ.) और धातुओंके क्लेदसुखानेके अर्थ यहविधि करनी चाहिये. (दोषशब्दकरके इसजगे पित्तकफकाही ग्रहणहै) ।

स्नेहान्नवस्तयश्चोर्ध्वबल्यजीवनदीपनाः ।

अर्थ–दोष धातुके परिक्लेद सुखनेके अनंतर चतुर्विध स्नेहपीनेमेंहितहै. और चि-कना अन्नहितहै । तथा चिकनी बस्ती हितहै । अर्थात् चिकनाई वादीको दूरकरतीहै । स्नेहपान बलकेअर्थहितहै, अन्न जीवनके अर्थ और बस्ती ओजवृद्धि करताहै ।

उपविष्टकगर्भकेलक्षण ।

सञ्जातसारेमहतिगर्भेयोनिपरिस्रवात् । वृद्धिमप्राप्नुवन्गर्भः
कोष्ठेतिष्ठतिसस्फुरः । उपविष्टकमाहुस्तंवर्द्धतेतेननोदरम् ॥

अर्थ–प्राप्तहुआहै बलजिसमें ऐसामर्भ, गर्भिणीके पथ्यापथ्य आदिसे जो स्रावहोवे, अर्थात् कभी रुधिर और कभी अन्य प्रकार स्रवे, इसी कारण गर्भवृद्धीको न पाता फडकताहुआ कोष्ठ (उदर) में ही रहे, उस गर्भको उपविष्टक कहते हैं । इस उप-विष्टकसे गर्भिणीका उदर नहीं बढताहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नागोदरगर्भकेलक्षण ।

शोकोपवासरूक्षाद्यैरथवायोन्यतिस्रवात् । वातेकुद्धेकृशः शुष्येद्भोंनागोदरंतुतत्।उदरंवृद्धमप्यत्रहीयतेस्फुरणंचिरात्॥

अर्थ–शोक, उपवास, रूक्षआदि गर्भ और गर्भिणीके अपुष्टकारके और पवनके कोपकारक हेतुओंसे तथा योनिके अत्यंतस्रवनेसे वातकुपितहोकर गर्भको कृशकरदेवे तथा सुखायदेवे, उस गर्भको नागोदरसंज्ञक कहतेहैं, और कोई आचार्य उपशुष्कक कहतेहै, इस नागोदरसंज्ञक गर्भमें बढाहुआभी उदर घटजाताहै । तथा देरीमें फडकताहै । उपविष्टकगर्भकी तो वृद्धि नहींहोती जैसा का तैसा रहताहै और इस नागोदरमें गर्भ नष्टहोजाताहै ।

उपविष्टकनागोदरगर्भकीचिकित्सा ।

तयोर्बृंहणवातघ्नमधुरद्रव्यसंस्कृतैः । घृतक्षीररसैस्तृप्तिराम गर्भांश्चखादयेत् । तैरेवचसुतृप्तायाःक्षोभणंयानवाहनैः ॥

अर्थ–उनदोनों उपविष्टक और नागोदर गर्भवती स्त्रीकी द्रव्य (घृत दूध) करके संस्कृत ऐसे बृंहण वातघ्न और मधुरद्रव्योंसे तृप्तिकरे, तथा आमगर्भवालीको वैद्य खवावे जब बृंहणादि द्रव्योंसे सिद्धकरे घृत दूधसे गर्भिणी तृप्त होजावे तब उसको रथ हाथी घोडा आदि सवारीमें बैठार वेगसे चलावे इस प्रकार करनेसे गर्भवतीको क्षोभण करना चाहिये ।

वृद्धकाश्यपकेमतसेशुष्कगर्भकेलक्षण ।

गर्भनाड्याह्यवहनादल्पत्वाद्धारसस्यच । चिरेणाप्यायतेगर्भ स्तथैवांकालभोजनात् । आकुक्षिपूरणंगर्भोमन्दस्पन्दनएवच ।

अर्थ–गर्भपोषण करनेवाली शिराओंके न वहनेसे, और माताके शरीरमें रस अल्प होनेसे कुसमय भोजनके करनेसे गर्भ बहुत कालमें पुष्ट होता है, वह गर्भ माताकी कूखको पूर्ण नहीं करे तथा धीरेधीरे पेटमें फिरता है ।

लीनाख्यागर्भकीचिकित्सा ।

लीनाख्येनिस्फुरेश्येनगोमत्स्योत्क्रोशबर्हिजाः । रसाबहु घृतादेयामाषमूलकजाअपि । बालबिल्वंतिलान्माषान्सक्तूं श्चपयसापिबेत् । समद्यमांसंमधुवाकत्यभ्यङ्गःश्रशीलयेत् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-लीनाख्य गर्भमें गर्भिणीको, शिकरा, गौ, मछली, उत्क्रोश (टटाटीहरी) मोर, इनके मांसका रस तथा उडद, मूलीका रस, इनमें बहुतसा घृत मिलायकर देवे, तथा कच्चेबेल, तिल, उरद और सत्तु इनमेंसे किसी एकको दूधमें मिलायकर पीवे अथवा स्निधमांसके साथ दाखकी आसवपीवे, तथा कमरमें तेलकी मालिसकरे, लीनाख्य * गर्भके लक्षण संग्रहमें लिखेहैं ।

उपायांतर ।

हर्षयेत्सततंचैनामेवंगर्भःप्रवर्द्धते । पुष्टो ऽन्यथावर्षगणैःकृच्छ्राज्जायेतनैववा ।

अर्थ-लीनाख्य गर्भवती स्त्रीको बारंवार प्रसन्नकरे, कोई कहताहै कि उपविष्टक, नागोदर और लीनाख्य इनतीनों गर्भवाली स्त्रियोंको प्रसन्नकरे क्योंकि प्रसन्न करनेसे गर्भ बढे है ।

अन्यप्रकारसे अर्थात् रूक्षपदार्थोंके सेवनसे जो गर्भ पुष्टहुआ वह वर्षोंमेंभी बडेकठिनतासे प्रगट होय अथवा न भी होवे ।

गर्भिणीकेउदावर्त्तकायत्न ।

उदावर्त्तन्तुगर्भिण्याःस्नेहैराशुतरांजयेत् । योग्यै श्चवस्तिभिर्हन्यात्सगर्भांसहिगर्भिणीम् ॥

अर्थ-गर्भिणी के उदावर्त्त रोगको चतुर्विध स्नेहकरके शीघ्रजीते, तथा योग्य कहिये तत्कालोचित बस्ती करके जीते, क्योंकि, वह उदावर्त्त गर्भके साथ गर्भिणी को भी नष्ट करे है ।

मृतगर्भास्त्रीके लक्षण.

गर्भेऽतिदोषोपचयादपथ्यैर्दैवतोपिवा । मृतेऽन्तरुदरंशीतं स्तब्धंध्मातंभृशव्यथम् । गर्भास्पन्दोभ्रमस्तृष्णाकृच्छ्रा दुच्छ्वसनंक्लमः । अरतिःस्रस्तनेत्रत्वमावीनामसमुद्भवः ।

अर्थ-वातादि दोषों के सञ्चय होनेसे, अपथ्य करनेसे, दैव (पूर्व जन्मके शुभाऽशुभसे) उदरमें गर्भ मरजावे उस गर्भके मरनेसे गर्भिणीका उदर शीतलहो, तथा निश्चलहो, धोकनीके समान फूलाहुआ हो और अत्यंत वेदनायुक्त होता है । तथा गर्भ फडके नहीं. भ्रम, प्यास, और बड़ी कठिनतासे गर्भिणीको ऊर्ध्वश्वास

* यस्याः पुनर्व्रीतोपसृष्टस्रोतसोलीनो गर्भः । प्रसुप्तो न स्पन्दते तंलीनमित्याहुः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लिया जावे. क्लम, ग्लानि, अरति, नेत्र गिरे पड़े, और आसन्न प्रसवके शूलहोवे नहीं ए मृतगर्भास्त्रीके लक्षण हैं।

मृतगर्भास्त्रीकायत्न.

तस्याःकोष्णाम्बुसिक्तायाःपिष्ट्वायोनिंप्रलेपयेत् । गुडंकि ण्वंसलवणंतथान्तःपूरयेन्मुहुः । घृतेनकल्कीकृतयाशाल्म ल्यतसिपिच्छया । मंत्रैर्योग्यैर्जरायुक्तैर्मूढगर्भोनचेत्पतेत् । अथापृच्छचेश्वरंवैद्योयत्नेनाशुतमाहरेत् । हस्तमभ्यज्ययो निंचसाज्यशाल्मलिपिच्छया । हस्तेनशक्यंतेनैव-

अर्थ–उस अन्तरगर्भ मृतास्त्री की योनिको तत्ते गरम जलसे सुहाता २ सेक-करे, पीछे गुड, चामलकी दारू, और नोन इनको पीसके लेपकरे तथा इसमें सेमर अलसी ए गाडी २ घृतमें कल्ककर पूर्वोक्त औषधमें मिलाय लेपकरे और योनिके भीतर भरे तथा जरायुमें कहेहुये मंत्रोंसे (क्षितिर्जलमित्यादि) अथवा जरायुपातन-के अर्थ अथर्वण वेदमें कहेहुए मंत्रोंका अनुष्ठान करे। यदि इस प्रकार अनुष्ठान करने परभी मराहुआ बालक पेटसे न निकले तो राजाकी आज्ञालेकर वैद्य उसमूढ-गर्भको शीघ्रही गर्भमेंसे निकाले. इसप्रकार कि प्रथम घृतको हाथोंमें चुपड तथाघृत और सेमरके गोंदसे योनिको लेपनकर उस मरेहुए बालकको निकाले।

–गात्रञ्चविषमंस्थितम् ।
आञ्छनोत्पीडसम्पीडविक्षेपोत्क्षेपणादिभिः ।
अनुलोम्यसमाकर्षेद्योनिंप्रत्यार्जवागतम् ।

अर्थ–विषमस्थित गर्भके देहको लंबाकरके ऊपरको चढायकर तथा चारों ओर घुमायकर विशेष ऊपरकी तरफ करके और उत्क्षेपण करके आदिशब्दसें इसी प्र-कार अपनी बुद्धिसें अन्य प्रकार कल्पना कर सीधाकरे और योनिके मुख प्रतिला-यकर निकाले. १८ नम्बरके चित्रोंको देखो।

मूढगर्भकीशस्त्रचिकित्साकहतेहैं ।

हस्तपादशिरोभियोंयोनिंभुग्नःप्रपद्यते । पादेनयोनिमेकेनभु ग्नोऽन्येनगुदंचयः । विष्कम्भोनामतौमूढौशस्त्रदारणमर्हतः ।

अर्थ–कभी हाथकरके, कभी पैरकरके, कभी शिरकरके योनिके प्रति टेढ़ाहोकर मूढगर्भ प्राप्तहोताहै। उसमें एकको विष्कंभनाम कहते हैं. तथा एकपैरकरके योनिके

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रति आवे. और दूसरेपैरसे गुदाकेप्रति टेढाहोकर जो मूढगर्भ आवे वो दूसरा विष्कंभनामक मूढगर्भकहाताहै. ए दोनों मूढगर्भ शस्त्रसे विदीर्णकरनेयोग्यहैं अर्थात् हाथसे नहीं निकलसक्ते इसीसे शस्त्रद्वारा काटने चाहिये ।

शस्त्रकर्म ।

मण्डलाङ्गुलिशस्त्राभ्यांतत्रकर्मप्रशस्यते ।
वृद्धिपत्रंहितीक्ष्णाग्रंनयोनावववचारयेत् ॥

अर्थ–मण्डलाग्र और अंगुलिशस्त्र जो आगे शस्त्राध्यायमें कहेंगे इनसे मूढगर्भोंका छेदन आदि कर्मकरे और वृद्धिपत्र तथा तीक्ष्णाग्रशस्त्र इनको योनिमें कदाचित् न करे ।

मूढगर्भकेछेदनेकीविधि ।

पूर्वंशिरःकपालानिदारयित्वाविशोधयेत् । कक्षोरस्तालु चिबुकेप्रदेशेऽन्यतमेततः ॥ समालम्ब्यदृढंकर्षेत्कुशलोगर्भशंकुना । अभिन्नशिरसंत्वक्षिकूटयोर्गण्डयोरपि ॥

अर्थ–पहले शिरसंबंधी कपालको शस्त्रसे शोधनकर गर्भिणीके पेटसे निकाललेवे. तदनंतर कूख, छाती, तालु, ठोडी इनमेंसे किसीएकदेशको पकड उसे वैद्य गर्भशंकू (गर्भकाढनेके) शस्त्रसे बाहरकी तरफ जोरसे खींचे, तथा जिसका मस्तक न छेदन कराहो उस मूढगर्भका कभी नेत्रोंकाभाग, कभी गालोंको पकडकर गर्भशंकुसे खींचे ।

बाहुंछित्त्वांससक्तस्यवाताध्मातोदरस्यतु ।
विदार्य्यकोष्ठमन्त्राणिबहिर्वासंनिरस्यच ॥
कटिसक्तस्यतद्वच्चतत्कपालानिदारयेत् ।

अर्थ–जो मूढगर्भकेकंधे अटकतेहोवे तो उसको दोनोंभुजाओंका छेदनकरके निकाले और जिसमूढगर्भका बादीसे पेटफूलरहाहो, उसके आमपक्वाश्रितकोठेको विदीर्णकर पेटमेंसे आँतोंको निकाल पीछे उसको खींचे और जो मूढगर्भ कमरकरके अटकरहाहो उसकी कमरके टूकटूक कर गर्भको निकाले ।

मूढगर्भास्त्रीकीसामान्यचिकित्सा ।

यद्यद्वायुवशादङ्गंसज्जेद्गर्भस्यखण्डशः ।
तत्तच्छित्त्वाहरेत्सम्यग्रक्षेन्नारींचयत्नतः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–वातवश मूढगर्भका जो २ अङ्ग अटके उसी २ अंगके खंड २ कर निकाले. संपूर्णशरीरको एकहीसाथ न काढे क्योंकि जोरसे शस्त्रके चलानेसे गर्भिणीके अंगमें न लगजावे इसीसे कहाहै कि (रक्षेन्नारींचयत्नतः) अर्थात् गर्भिणीकी यत्नसे रक्षाकरे, जिस्से उसका थोडाभी अंग नकटनेपावे ।

गर्भस्यहिगतिंचित्रांकरोतिविगुणोऽनिलः ।
तत्राऽनल्पमतिस्तस्मादवस्थापेक्षमाचरेत् ॥

अर्थ–कुपितपवन गर्भकी अनेकप्रकारकी गति (अवस्था) करेहैं, अतएव महाबुद्धिमान्वैद्य उसगर्भकी अवस्थाको विचार उस अवस्थाके अनुसार अपनीबुद्धिसे जो कर्म नहींभी कहा उसको करे ।

जीवितगर्भच्छेदनकेअवगुण ।

छिंद्याद्गर्भंनजीवंतंमातरंसहिमारयेत् ।
सहात्मनानचोपेक्ष्यःक्षणमप्यस्तजीवितः ॥

अर्थ–मरे गर्भके लक्षणोंको न जानने वाला वैद्याभिमानी पुरुष, जीवते गर्भका छेदन न करे । क्योंकि जीवितगर्भ माताको और अपने आपे दोनोंको मारेहैं, परंतु मरेहुए बालकको एक क्षणमात्रभी उपेक्षा न करे ।

त्याज्यमूढगर्भास्त्री ।

योनिसंवरणभ्रंशमक्कल्लश्वासपीडिताम् ।
प्रत्युद्गारांहिमाङ्गींचमूढमर्भांपरित्यजेत् ॥

अर्थ–योनिका आच्छादन, तथा योनिभ्रंश, मक्कल्लक और श्वास इन रोगोंसे पीडित, वारंवार डकार आवे और शीतल देहहो ऐसी मूढगर्भास्त्री वैद्यको त्यागने योगय कहीहै ।

मूढगर्भहरणकेपश्चात्कर्त्तव्यकर्म ।

अथापतंतींमपरांपातयेपूर्ववद्भिषक् । एवंनिर्हृतशल्यां तुसिंचेदुष्णेनवारिणा ॥ वद्यादभ्यक्तदेहायैयोनौस्नेह पिचुंततः । योनिर्मृदुर्भवेत्तेनशूलंचास्याःप्रशाम्यति ॥

अर्थ–मूढगर्भहरणके अनंतर, जिसका जरायु न निकलाहो उसको पूर्वोक्त विधि (हिरण्यपुष्पीमूल इत्यादि) से निकाले । जब जरायूभी निकलचुके तब उस स्त्रीको गरमजलसे सेके, इसप्रकार स्नानकर तैलकी मालिसकरे और इसकी योनिमें तेलका पिचु (फोहा) धरे इसतेलपिचुके देनेसे स्त्रीकी योनि नरमहोवे और पीड़ा नष्ट होय।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दीप्यकातिविषारास्नाहिंग्वेलापंचकोलकान् । चूर्णस्नेहेनक ल्कंवाक्वाथंवापाययेत्ततः।कटुकातिविषापाठाशाकत्वग्घि गुतेजनाः । तद्वच्चदोषस्यन्दार्थंवेदनोपशमायच । त्रिरात्रमे वंसप्ताहंस्नेहमेवततःपिबेत् ॥ सायंपिबेदरिष्टंवातथासुकृत मासवम् । शिरीषककुभक्वाथपिचून्योनौविनिक्षिपेत्।उप द्रवाश्चयेऽन्येस्युस्तान्यथास्वमुपाचरेत् ।

अर्थ–स्नान और अभ्यंग करनेके अनन्तर अजमायन, अतीस, रास्ना, हींग, इलायची और पंचकोल इन सबके चूर्णको घृतकेसाथ यथायोग्य स्त्रीको प्रकृतिके अनुसार पिवावे, अथवा अजमायन आदि औषधोंको जलमें पीस कल्ककर घृतकेसाथ पिवावे, अथवा, क्वाथकरके पिवावे, उसीप्रकार कुटकी, अतीस, पाढ, खरच्छद, दालचीनी, हींग और मालकांगनी इनको चूर्णकर घृतसे कल्ककरे अथवा क्वाथकरके उसस्त्रीके रक्तादि स्रावकेअर्थ और पीडादूरकरनेको तीनरात्रि पिवावे । तीनरात्रिके अनन्तर उसस्त्रीको सातरात्रिपर्यंत घृतही पिवावे और कोई रूक्षादि औषध न पिवावे और सायंकालमें अरिष्ट * पिवावे तथा उत्तमरीतिसे बना ऐसा मद्यपिवावे. और सिरस तथा कोहवृक्षकीछाल इनसे बना क्वाथ उसमें भीगेहुए रुईके गाले योनिमें धरे और उस स्त्रीके जो ज्वरादि उपद्रव होवें उनको उनकी चिकित्साद्वारा दूर करे ।

पयोवातहरैःस्निग्धंदशाहंभोजनेहितम् । रसोदशाहंचपरं लघुपथ्याल्पभोजना । स्वेदाभ्यङ्गपरास्नेहान्बलातैलादि कान्भजेत् । ऊर्ध्वंचतुर्भ्योमासेभ्यःसाक्रमेणसुखानिच ।

अर्थ–पूर्वोक्तविधि आचरणके पश्चात् वातहरणकर्ता औषधोंसे सिद्ध ऐसा दूध दशदिन पिवावे,दशदिन पीछे दूसरे दशाहमें भोजनमें रसका देना हितहै इसके उपरांत अर्थात् बीसदिनकेपश्चात् वहस्त्री हलका, पथ्य और थोड़ा भोजनकरे । और स्वेद, अभ्यंगको करतीहुई बलाआदि तैलोंका सेवनकरे. इसप्रकार आचरण चार महिनेपर्य्यंत करे पीछे निष्क्रांतमूढगर्भास्त्री पांचवे महिनेमें क्रमसे सुखकारी अन्नपान आहारविहारादिकोंका सेवनकरे ।

---

* अरिष्टकेलक्षण आगेआसवोंकेप्रकरणमेंकहेंगे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बलातैलकीविधि ।

बलामूलकषायस्यभागाःषट्पयसस्तथा । यवकोलकुलत्थानां दशमूलस्यचैकतः १ निष्काथभागोभागश्चतैलस्यचचतुर्दशा। द्विमेदादारुमंजिष्ठाकांकोलीशुभ्रचन्दनैः २ सारिवाकुष्ठतगरजीवकर्षभसैंधवैः । कालानुसार्याशैलेयवचागुरुपुननर्नवैः ३ अश्वगन्धावरीक्षीरशुक्लायष्टिवरारसैः । शताह्वाशूर्पपर्ण्येलात्वक्पत्रैःश्लक्ष्णकल्कितैः ४ पक्वंमृद्वग्निनातैलंसर्ववातविकारजित् । सूतिकावालमर्मास्थिक्षतक्षीणेषुपूजितम् ५ ज्वरगुल्मग्रहोन्मादमूत्राघातांत्रवृद्धिजित् । धन्वन्तरेरभिमतंयोनिरोगक्षयापहः ६

अर्थ–बलाकी जडका क्वाथ ६ भाग, दूधके ५ भाग, इन्द्रजो, बेरकीछाल, कुलत्थी, दशमूल, इनके काढेका १ भाग, तैल १४ मां भाग, मेदा महामेदा, देवदारु, मजीठ, कांकोली, सपेदचंदन, लालचंदन, सारिवा (सरिवन्) कूठ, तगर, जीवक, ऋषभ, सेंधानोन, उत्पलसारिवा, शिलाजीत, वच, अगर, सांठ, असगंध, शतावर, क्षीरविदारी, मुलहटी, त्रिफला, बोल, सौंफ, शूर्पपर्णी, इलायची, तज और पत्रज ए प्रत्येक औषध दोदो मासे लेवे; सबको कूट चूर्णकर कल्कबनावे इसकल्कको तथा पूर्वोक्त बलाआदिके काढेको तैलमें मिलाय अग्निपर चढावे. नीचे मंद २ अग्निदेवे जब सबरस जलजावे केवल तैलमात्र शेषरहजावे तब उतारलेवे । यह तैल सर्ववातकेविकार प्रसूतकेरोग, बालककेरोग, मर्म, हड्डी, क्षत (घाव) इनरोगोंसे क्षीण, ज्वर, गुल्म, ग्रहोन्माद, मूत्राघात, अंत्रवृद्धि, इन सबरोगोंको यह दूरकरे । यह धन्वंतरिके अभिमतहै और सर्वयोनिके रोगोंको दूरकरनेवालाहै ।

बस्तिद्वारेविपन्नायाःकुक्षिःप्रस्यन्दतेयदि ।
जन्मकालेततःशीघ्रंपाटयित्वोद्धरेच्छिशुम् ।

अर्थ–यदि गर्भिणीस्त्री प्रसूतकालमें मरजावे और उसका गर्भ जन्मकालमें बस्तिद्वारमें आनेसे कूखफडके उससमय कुशलवैद्य शीघ्र कूखको चीर बालकको निकाललेवे । विशेषचिकित्सा आगे चिकित्सास्थानमें गर्भिणीके प्रकर्णमें कहैं ।

प्रसंगवशअन्नविपाकक्रियाकहतेहैं।

अथान्नविपाकक्रिया ।

हस्तविंशतिसम्माना कलापेशी विनिर्मिता । अन्नपाकक्रि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यार्थाच पाकनाडी प्रकीर्त्तिता १ ऊर्ध्वांशोमुखनामास्य अधोंऽशोगुदनामकः । कण्ठादामाशयंयावदन्ननाडीतिकथ्यते २ ततश्चामाशयस्तस्मात्क्षुद्रान्त्रंस्थूलमन्त्रकम् । आमाशयात्समारभ्यभागप्रथमआन्त्रिकः ३ ग्रहणीचाग्न्यधिष्ठानंबुधैराद्यैःप्रकीर्त्तिता । ततःपक्वाशयःप्रोक्तःपक्वान्नपरिधारणात् ४ स्थूलान्त्रस्याप्यधोभागः सरलोगुदसंज्ञकः । अन्नकिट्टंमलंसर्वं बहिर्निःसारयत्ययम् ५ श्वासनाड्याःस्थितापश्चादन्ननाडचन्नवाहिनी । अधस्तात्कुण्डलीभूतानाडीचोदरमध्यगा६कण्ठादधोगतिर्नाडीभित्त्वावक्षस्थलाश्रयाम् । पेशीमुखद्वयवतीप्रविष्टेयमधोगुहाम् ७

अर्थ—अन्नपरिपाकार्थ वीस हाथकी कला और पेशीद्वारानिर्मित एक एक परिपाकनाडी इसमनुष्यकी देहमें वर्त्तमानहै, इसके ऊपरके भागको मुख और नीचेके भागको गुदाकहतेहैं । इसके भिन्नभिन्न अंश, रूप और क्रियासाधकता भेद, भिन्नभिन्ननामोंसे प्रचलितहैं । सबके ऊपरका भाग मुख, उस्सेपरे कंठसे लेकर आमाशयपर्यंत अन्ननाडी, उसकेआगे आमाशय, उस्सेपरे क्षुद्रांत्र और पश्चात् स्थूलांत्रहै । आमाशयसे लेकर क्षुद्रांत्रके आद्यभागको ग्रहणी अथवा अग्न्यधिष्ठाननाडी कहतेहैं । उस्सेपरे पक्वाशय, अर्थात् आमाशय और ग्रहणी यहां अन्नपरिपाकहोकर इसीस्थानमें उपस्थितहोताहै । स्थूलांत्रके अधःस्थित संपूर्ण अंशको गुदाकहतेहैं । यह गुह्यद्वार अंतमेंहै । इसीकेद्वारा समस्तमल बाहरको गिरताहै ।

श्वासनाडीके पिछाडी अन्ननाडी है । चर्वितअन्न ग्रासादि इसीस्थानमें उपस्थित होतेही इसी नाडीके अधीन पेशियोंके द्वारा तत्क्षण आमाशयमें प्रेरित होता है । पाकनाडीका उदरस्थभाग अतिशय कुण्डलाकृति है । यह मुखद्वयविशिष्ट पाकनाडी कंठदेशसे लेकर नीचेको आनकर वक्षस्थलस्थ पेशीको भेदकर उदरमें प्रवेश करे हैं ।

अन्नंमुखार्पितंदन्तैश्चर्वितंमणिकायुतम् । पिण्डीभूतंचान्ननाडीं प्रापितंपतातिक्षणात् ८ आमाशययकृद्वक्षस्थलपेश्योरधःस्थिते । तत्रप्रकृतितोऽत्यम्लंघूर्णितंप्रकृतेर्बलात् ९ क्षुद्रान्तान्तमुहूर्त्तेनविशेत्सजलपङ्कवत् । आमाशयाद्दक्षिणतःक्षुद्रान्त्रंकुण्डलाकृति १० अस्यैवप्रथमोभागोग्रहणीतिनिगद्य

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ते । असम्यग्जीर्णमन्नंतत्प्रविश्यग्रहणींकलाम् ११ आन्त्र केणरसेनात्रमिलितंपरिपच्यते । तदैवयकृतोनाड्यापित्तको शात्तदङ्गजात् १२ पीतास्तिक्तःपित्तरसोग्रहणीमुपतिष्ठति । अन्नपाकेरसोऽप्येषप्रधानंकारणंमतम् १३ पित्तमेवाग्निना म्नैतन्मुनिभिःपरिकीर्त्तितम् । नकेवलंकालखण्डमन्नपाकप्र योजनम् १४ यतःशोणितसंशुद्धिविदधातिनिरन्तरम् । औदरेदक्षिणेपार्श्वेतदास्तेपर्शुकावृतम् १५ ऊर्ध्ववक्षस्थल स्थास्यापेश्योधस्ताच्चवृक्ककः। यकृद्वत्कारणंक्लोमविज्ञेयंपा ककर्मणि १६ प्लीहक्षुद्रान्त्रयोर्मध्ये मध्यास्तेदीर्घवर्ष्मतत्। आमाशयोऽस्यपुरतोवर्त्ततेऽस्माद्विनिःसृतः १७ रसोनाडी विशेषेणक्षुद्रान्त्रमुपतिष्ठति । प्लीहाप्यन्नस्यपचनेहेतुर्मुनि- भिरीरितः १८ वामतोऽधोगुहायांसवर्त्ततेपर्शुकावृतः । अरु णाभोऽग्रतश्छिद्रैर्बहुभिश्चसमाततः १९ ऊर्ध्ववक्षस्थलस्था स्यपेश्यधोवामवृक्ककः । स्रोतोयंत्रादधोपक्वंश्वेताभंरसमन्न जम् २० शिरामार्गेण निखिलंप्रेरयन्तिहृदालयम् । आमा शयकलाचारिधमनीभिरपोऽखिलाः २१ गृह्णन्तेप्रायशःशेषा अन्त्रस्थाभिरनन्तरम् । आकृष्टद्रवमन्नंतत्किट्टशेषन्तुपङ्क्व त् २२ स्थूलान्त्रंप्रविशेत्पश्चात्पुरीषंतन्निगद्यते। ततःप्राप्यगु दंकाले सर्वथासारवर्जितम् । तद्बहिर्निःसरेद्देहान्नित्यंकल्या णहेतवे ॥ २३ ॥

अर्थ–मुखमें दियाहुआ अन्नका ग्रास दातोंसे चर्वित और लाल (लार) से मिलकर तथा पिंडके समानहो अन्ननाडीमें प्राप्तहो तत्क्षण आमाशयमें जाता है। आमाशययंत्र उदरगह्वरमें यकृत् और वक्षस्थलस्थ पेशियोंके अधोभागमें स्थित है। इसयंत्रमें भुक्त (भोजनकराहुआ) द्रव्यप्राप्तहोनेपर इसजगेसे एकप्रकारका अति-तीव्रअम्लरस निकल भुक्तपदार्थके साथ मिलकर उसपदार्थको जीर्ण करता है अर्थात् पचाता है। आमाशयगतअन्न इसयंत्रकी स्वाभाविकशक्तिद्वारा क्रमागत चलायमान हो आमाशयिक आम्लरसके योगसे और इतस्ततो भ्रमणकरनेसे संपूर्ण भुक्तद्रव्य

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कीचकेसदृश होजाता है, अर्थात् इसका कोईअंश पतला और कोईअंश गाढा रहता है। भुक्तान्न ऐसी अवस्थासे क्षुद्रान्त्रोंमें प्रवेशकरे हैं। आमाशयके दक्षिणस्थ कुण्डलाकृति नाडीका नाम क्षुद्रांत्र है। यह आमाशयके दक्षिणसे लेकर कुछ दूर तिरछेभावमें बाँईतरफ और अधोमुख आयकर अतिशय कुंडलीभूतहोगया है। इसका प्रमाण न्यूनाधिक १२॥ हाथहोवेगा इसका प्रथमभाग अर्थात् तिरछा और अधोगामी अंशको ग्रहणी अथवा अग्न्यधिष्ठान कला कहते हैं, इससे आगेके अंशको पक्वाशय कहते हैं। भुक्तद्रव्य, कुछ द्रवअवस्थाहोकर ग्रहणीमें उपस्थितहो आँतोंसे निकलेहुए एकप्रकारके रसकेसाथ मिलता है। इसीस्थानमें यकृत् जो है सो नाडीविशेषद्वारा तदंगस्थित पित्तकोशसे पित्तरसको लायकर भुक्तान्नकेसाथ मिलाता है। पित्तरस पीलेरंगका और तिक्त (कडुआ) स्वादवाला है। यही अन्नपरिपाक विषयमें मुख्यप्रधान कारण है। इसी पित्तरसको अग्निकहते हैं। यकृत् केवल अन्नपरिपाककाही साहाय्यकरता नहींहै किंतु यह रुधिरशोधनका एक प्रधानयंत्र है। यह यंत्र उदरके दक्षिणपार्श्वमें वक्षस्थल पेशीकेनीचे तथा दक्षिण वृक्कके ऊपर पर्शुकाओंसे आवृत होकर स्थित है। क्लोमनाक और एकयंत्र है वह नाडीविशेषद्वारा तदीयरस क्षुद्रांत्रोंमें प्राप्तहोकर अन्नपरिपाककार्यका निर्वाह करे हैं. यह यंत्र दीर्घाकृति प्लीहा और क्षुद्रांत्रोंके मध्यमें अवस्थित है। इसके सन्मुख आमाशय है. उक्तयंत्रोंके समान प्लीहाभी अन्नपचनेका कारण मुनीश्वरोंने कहा है। यह अरुणवर्ण तथा सन्मुखकी तरफ अनेक छिद्रोंसे व्याप्त है। यह उदरगह्वरके बाँईतरफ वक्षस्थलपेशीके नीचे और वामवृक्कके ऊपर पर्शुकाओंसे व्याप्तहोकर स्थित है। जलविशिष्ट पतले पदार्थ पीनेसे आमाशयिक कलास्थित धमनीगणका जलप्राय समुदायभाग तत्क्षण खींचकर रुधिरकेसाथ मिलता है और अवशिष्टअंश यंत्रस्थधमनीगणोंसे खींचकर इसीजगे रहता है। २० के नंबरका चित्र देखो।

भोजनकरा अन्न इसप्रकार पक्वहोकर श्वेतवर्ण द्रवपदार्थरूप परिणामको प्राप्तहोताहै इसद्रवका देहरक्षणोपयोगी सारांश स्रोतोनाडी समूहद्वारा खींचकर शिरामार्गहो क्रमसे हृत्कोष्ठमें प्राप्तहो रुधिरके स्वरूपको धारणकर देहको रक्षा और पोषण करताहै. । अन्नद्रवकासारहीन कीचके समान जो अंश बचे उसको किट्ट और मल कहते हैं; वह स्थूलांत्रोंमें प्रवेश होता है फिर वही मल यथासमयमें गुदाकेद्वारा पुरीषरूप हो देहके कल्याणार्थ नित्य बाहर निकलता है।

अहोकुशलिनोधातुर्महिमाकोऽयमुल्बणः। विचित्रविधिनापक्व मन्नंसत्वानिजीवयेत्। अन्नग्रासोरदैःपिष्टोलालाक्लिन्नोन्ननाडिकाम्। श्वासरंध्रंनसोरन्ध्रंचातिक्रम्यमुखंविशेत्। निरुणद्धयु

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पजिह्वासा सर्वथाश्वासनाडिकाम् । जिह्वाप्रयातिपश्चाच्च पाकनाडीततोऽभितः । किंचिदूर्ध्वमुखीभूत्वापिंडंग्रसतियत्नतः।आद्यरन्ध्रंप्रविष्टंचेदन्नंकासैर्विनिःसरेत् । द्वितीयगंक्षवथुनाक्षणेनप्रकृतेर्बलात् । अतोनैवातित्वरणंश्रेयःपानान्नकर्मणि । अन्नंवैप्राणिनांप्राणाइतिश्रुतिनिदेशतः । तदन्नंविधिनासेव्यमदोषंप्राणवर्धनम् । अन्नंरसोऽन्नमसृङ्मांसमन्नमपिस्मृतं मेदोऽन्नमस्थ्यमन्नंमज्जान्नंशुक्रमेवच । अन्नंबलमथौजोऽन्नंमनोऽन्नमपिचोच्यते । चराचरेषुनिखिलाःप्रजाश्चान्नसमुद्भवाः । अन्नपानविधिर्यश्चतत्कालेचोचिता क्रिया । क्रियतेविकृतिर्वत्ससंकीर्णेवर्गसंग्रहे ।

अर्थ–कैसी अद्भुत विधाताकी महिमा है कि, विचित्र विधिसे अन्नका परिपाक कर जीवोंको जीवाता है । अन्नकाग्रास दांतोंसे पीसकर और लाला (लार) से आर्द्र होकर पिंडरूप होकर श्वासके छिद्रको और नाकके पिछाडीके छिद्रको त्यागकर अन्ननाडीमें जायकर गिरता है । यह कार्य अतिकौशल्यतासे होता है । अन्नादिक जिससमय गलेसे नीचेको जाता है उससमय पूर्वोक्त श्वास आने जानेका छिद्र उपजिह्वा अर्थात् दूसरी छोटी जो जीभ है उस्से ढकजाता है. उसीप्रकार जिह्वा किंचित् पीछेको जाय और अन्ननाडी कुछ ऊपरको तथा आगेको आती है इस्से नासिकाका पिछाडीका छिद्र रुकजाता है अतएव निर्विघ्न गलाधःकरण कार्य सिद्ध होता है । अन्नादिकका कणिका यदि दैववश प्रथम छिद्रमें चलाजावे तो उसीसमय खासीसे बाहर निकलजाता है. इसीको धांसगई कहते हैं. यदि इस श्वासछिद्रमें गयाहुआ ग्रासादिक अटकजावे तो अवश्य प्राणनाशकी संभावना जाननी । और दूसरे छिद्रमें ग्रासादिक चलाजावे तो छींक आनेसे उसको निकालदेवे, इसीसे जल आदि पीनेमें और भोजनकरनेमें बहुत जल्दी न करनाचाहिये । अन्नही प्राणियोंके प्राण है ऐसा वेदमें लिखा है अतएव उस अन्नको विधिपूर्वक सेवनकरे । दोषवर्जित और बलवर्द्धक अन्न भोजनकरना उचित है. अन्नही रस, अन्नही रुधिर, अन्नहीमांस, अन्नही मेद, अन्नहीहड्डी, अन्नहीमज्जा, इसीप्रकार अन्नही शुक्रको प्रगटकरे है । अन्नही बल, अन्नतेज उसीप्रकार अन्नही मन कहाता है. चराचर जितनी प्रजा हैं सब अन्नसेही प्रगटहोती हैं । अन्नपानविषयक विधि और तात्कालिक कर्त्तव्य क्रिया इत्यादि समुदायका विषय आगे संकीर्ण वर्गमें कहेंगे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भ्रूणजन्मक्रम ।

पुंवीर्यं स्खलितंनार्याधरांविशतिरंहसा । ततोडिम्बाशयंयातित त्ररूपान्तरंव्रजेत् । एकीभूयसमायातो जरायुंडिम्बरेतसी । आवरण्यवृतेतत्रवृद्धिंचेतोनिरन्तरम् । आदौबिन्दुनिभोजीवःशेतेग र्भाशयेस्त्रियाः । वदर्याास्थिनिभोमासाच्चतुरस्रस्ततोभवेत् । त्रिपक्षात्परतःस्याच्चद्विधाभिन्नकलायवत् । मासद्वयाच्चगर्भस्य भवेत्सर्वांगसंस्थितिः । ततःषण्मासपर्यंतंपुष्टिर्भवतिसंतत म् । सप्तमेमासिनयनंभवेत्प्रमुदितंध्रुवम् । मासाष्टमेभवेद्गर्भो ननुतिर्यगवस्थितः । अधोमूर्द्धोर्ध्वचरणोनवमेमासिजायते । कुक्षावुषित्वाचनवमासान्नवदिनाधिकान् । भूमौततःपतेद्गर्भो दशमेप्रकृतेर्वशः ॥

अर्थ–रतिक्रियाद्वारा पुरुषकास्खलितवीर्य अतिवेगसे प्रथमस्त्रीके जरायुमें प्रवेशकरे पीछे डिम्बाशयमें जायकर रूपान्तरको प्राप्तहोताहै । तदनंतर डिम्ब और शुक्र मिलकर जरायुमें प्रवेशकरेहै उसजगे एक आवरनीद्वारा आच्छादितहो निरंतर वृद्धिको प्राप्तहोताहै, जीव प्रथम स्त्रीके जरायुमें बिंदुतुल्य होकर रहताहै, एकमहिनेके अनंतर बेरकी गुठलीकेसमान और चोंकोन होताहै. तीनपक्ष (४५ दिन) के उपरांत दोखंडवाले मटरके सदृशहोकर रहताहै. दोमहिनेके पश्चात् गर्भकेमुख उत्पन्नहोय, किंतु नेत्रमुँदे रहतेहैं. तीनमहिनेमें भ्रूणके सर्वअंग प्रत्यंग स्फुटतरहोय, इस्सैउपरांत छःमहिनेपर्य्यंतक्रमसे उसकी वृद्धिहोतीहै. और इसीसमय यह बालकपेटमें फडकताहै, छःमहिनेके उपरांत बालकके केशोत्पत्तिहोतीहै । तथा सातवेंमहिनेमें बालकके नेत्र खुलतेहैं, और आठवेमहिनेमें भ्रूण पेटमें तिरछाहोकर रहताहै, नवममहिनेमें बालकका नीचेको मस्तक और ऊपरको दोनों पैरकरके निस्सरणोन्मुख होताहै । इसप्रकार बालक नोमहिने और नोदिन गर्भवासकरकेदशवे महिनेमें प्रकृतिवश पृथ्वीमें गिरताहै । २१ नम्बरका चित्रदेखो।

गर्भणीकेप्रतिमासमेंउपचार ।

मधुकंशाकबीजंचपयस्यासुरदारुच । अश्मंतकस्तिलाः कृष्णास्ताम्रवल्लीशतावरी । वृक्षादनीपयस्याचलताचो

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्पलसारिवा । अनन्तासारिवारास्नापद्माचमधुयष्टिका । बृहतीद्वयकाश्मर्यः क्षीरिशृंगत्वचोघृतम् । पृश्निपर्णीबला शिग्रुःस्वदंष्ट्रामधुपर्णिका । शृंगाटकंविसंद्राक्षाकसेरुमधुकं सिता । सप्तैतान्पयसायोगानर्द्धश्लोकसमापनान् । क्रमात्सप्तसुमासेषुगर्भस्रवतियोजयेत् ।

अर्थ–मधुकादि द्रव्योपलक्षित आधे २ श्लोकमें समाप्ति होनेवाले सातयोगोंको गर्भस्रावमें क्रमसे दूधके साथ देनेचाहिये. १ मुलहटी, शाकबीज जीवक और देवदारु. २ अश्मंतक, कालेतिल, ताम्रवल्ली, शतावर. ३ वृक्षादनी पयस्या, लता, कमलगट्टा, और सारिवा. ४ अनन्ता, सारिवा, रास्ना, पद्मा, मुलहटी. ५ दोनोकटेरी, कंभारी, वटादिक्षीरवृक्षोंकीडाली, और छाल, तथा घृत. ६ पृष्टिपर्णी, वरिआरा, सहंजना, गोखरू, मधुपर्णिका. ७ सिंघाडे, विस, दाख, कसेरू, मूलहटी, और मिश्री, इसप्रकार ए सात योग कहेहैं ।

दूसरेउपचार ।

कपित्थबिल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदग्धजैः।मलैःशृतं प्रयुंजीतक्षीरंमासेतथाष्टमे । नवमेमधुकानन्तापयस्यासारिवापिबेत् । योजयेद्दशमेमासिसिद्धंक्षीरंपयस्यया । अथवायष्टिमधुकनागरामरदारुभिः ।

अर्थ–कैथ, वेल, कटेरी, पटोलपत्र, इक्षु, निदग्धिका, इनकी जडको दूधमें औटाय उस दूधको आठवे महिने पिवावे । मुलहटी, अनंता, कांकोली, सारिवा इनको दूधमें, औटायकरनोमेमहिनेमें पिवावे । और दसवे महिनेमें कांकोलीको दूधमें औंटायकर पिवावे । अथवा मुलहटी, सौंठ, और देवदारू इनको दूधमें औटायकर उसदूधको दशमें महिने पिलाना चाहिये ।

मर्यादासेउपरांतगर्भधारणेकदोष ।

निवृत्तप्रसवायास्तुपुनःषड्भ्योवर्षेभ्यऊर्ध्वंप्रसवमानायाःकुमारोल्पायुर्भवति ।

अर्थ–निवृत्तगर्भास्त्री फिर छःवर्षके अनंतर प्रसवहोनेसे उसकी संतान अल्पायु होतीहै . इसीसे छःवर्षके अनंतर स्त्रीको निवृत्तगर्भा कहतेहैं । इसजगे वमनादिक्रिया

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गर्भव्याघातकहै अतएव उसका निषेधहै परंतु प्राणघातक व्याधीकेविषे मृदुद्रव्य बराबर प्रतिप्रसवमें देनीचाहिये सोकहतेहैं. ॥

रोगविशेषकरकेगर्भिणीकोवमनक्रियाकहतेहैं.

अथगर्भिणींव्याध्युत्पत्तावत्ययेछर्दयेत् ।

अर्थ–गर्भिणीके प्राणनाशक रोगहोनेसें वमनकरावे और मधुर, अम्लअन्नकरके अनुलोमक्रियाकरे, तथा संशमनीय मृदु औषध देनी चाहिये, तथा मृदुवीर्य, मधुरप्राय और गर्भकेअनुकूल ऐसे अन्नपान गर्भिणीको देने चाहिये तथा गर्भकेविरुद्ध भी क्रिया मृदुप्राय यथायोग करनीचाहिये ।

गर्भिणीके आहारकानियम ।

सौवर्णसुकृतंचूर्णं कुष्ठंमधुघृतंवचा । मत्स्याक्षिकाशंखपुष्पी मधुसर्पिश्चकाञ्चनम् । अर्कपुष्पीघृतंक्षौद्रंचूर्णितंकनकंवचा। हेमचूर्णानिकैटर्यः श्वेतदूर्वाघृतंमधु । चत्वारोभिहिताः प्राज्ञैयाःश्लोकार्धेषुचतुर्ष्वपि । कुमाराणांवपुर्मेधाबलपुष्टिवि । वर्धनाः ।

अर्थ–सोनेकाचूर्ण, कूठ, मुलहटी, वच इन सब औषधोंको घृतमें उवालके चटावे, यह १ प्रयोग हुआ । ब्राह्मी, शंखपुष्पी, घृत, सहत और सुवर्णकेवर्क यह दूसराप्रयोग । अर्कपुष्पी, घृत, सहत, सुवर्णचूर्ण, और वच, यह तीसरा प्रयोग है । तथा सुवर्णचूर्ण, कटुनिंब, सपेददूब घृत और सहत यह चतुर्थ प्रयोगहै । ए आधेआधे श्लोकमें चारप्रयोग कहेहैं । ये प्रयोग १ वर्षपर्यंत देने चाहिये । इसकरके गर्भकी देह, बुद्धि, बल, पुष्टि, इनकी वृद्धि होवे । किसीकेमतमें १२ वर्षपर्यंत देना ऐसा लिखाहै । परंतु ये औषध बालकको चटाना चाहिये ऐसा कोई कहतेहैं ।

बालकोंकोऔषधप्रमाणविश्वामित्रोक्तकहतेहैं.

विडङ्गफलमात्रन्तुजातमात्रस्यभेषजम् । एतेनैवप्रमाणेनमासिमासिप्रवर्धितः । कोलास्थिमात्रंक्षीरादेर्दद्याद्भैषज्यकोविदः। इति श्रीसौश्रुतशारीरेदशमोध्याय॥१०॥समाप्तोयंशारीरभागः

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–तत्काल हुए बालकको १ वायविडंग प्रमाण औषधी देनीचाहिये, तदनंतर यह मात्रा प्रतिमास एकएक वायविडंगके समान बढानी चाहिये तथा जबतक बालक दूध पीतारहे उसको बेरकी गुठलीके समान औषधिदेवे । और जब अन्न खानेलगे तब गूलरकेसमानमात्रा देनीचाहिये ।

इति श्रीमाथुरकन्हैयालालतनयदत्तरामनिर्मिते बृहन्निघंटुरत्नाकरे भाषाटीकाविभूषिते शारीरस्थानं प्रथमं पूर्णतामियात् ।

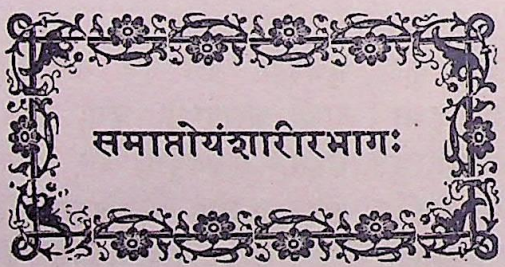

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ शस्त्रचिकित्साप्रारम्भः।

अब शस्त्रचिकित्सा लिखनेका यह प्रयोजन है कि, मूढगर्भके निकालनेमें मंडलांगुलिशस्त्रोंको लिखाहै; दूसरे शिरामोक्ष तथा शारीरकर्ममें विशेषकरके शस्त्रचिकित्साकी प्रत्येक समय आवश्यता रहतीहैं इसीसे विनाशस्त्रचिकित्साके जाने वैद्यको शस्त्रकर्म करना सर्वथा वर्जितहै. अतएव शस्त्रचिकित्साका प्रारंभ करतेहैं।

अथातोअग्रोपहरणीयमध्यायंव्याख्यास्यामः।

अर्थ—अब अग्रोपहरणीयाध्यायकी व्याख्याकरेंगे. (छेद्यादि कर्मके प्रथम यंत्रादि उपस्करको प्रधानकरके जो अध्याय कहीजावे उसको अग्रोपहरणीय कहतेहैं)।

त्रिविधकर्म.

त्रिविधंकर्म पूर्वकर्म्मप्रधानकर्मपश्चात्कर्मेतितद्व्याधिप्रतिप्रत्युपदेक्ष्यामः॥

अर्थ—कर्म तीन प्रकारका है. १ पूर्वकर्म (लंघन विरेचनादि.) २ प्रधानकर्म (पाटनरोपणादि.) ३ पश्चात्कर्म (बलवर्णाग्निजननादि.) ए तीनों प्रकारके कर्म रोगरके प्रति यथास्थलमें लिखेंगे (इसजगे ग्रंथबढनेके भयसे नहींकहे.)

अस्मिञ्छास्त्रेशस्त्रकर्मप्राधान्याच्छस्त्रकर्म्मैवतावत्पूर्वमुपदेक्ष्यामस्तत्सम्भारांश्च।

अर्थ—इसशास्त्रमें शस्त्रकर्मको प्रधान होनेसे प्रथम शस्त्रकर्मकोही कहेंगे, और शस्त्रकर्मके उपस्कर (सामग्री) कोभी कहेंगे।

शस्त्रकर्मकोअष्टविधत्व।

तच्चशस्त्रकर्माष्टविधम्। तद्यथा। छेद्यं भेद्यं लेख्यं वेध्यमेष्यमाहार्यं विस्राव्यं सीव्यमिति॥

अर्थ—वह शस्त्रकर्म आठप्रकारका है. छेद्य, भेद्य, लेख्य, वेध्य, एष्य, आहार्य, विस्राव्य, और सीव्य। तहां बवासीरआदि छेद्य, विद्रधिआदिभेद्य, रोहिणीआदि लेखनीय, शिरा (नस) आदि छोटेशस्त्रसे वेध्य, नाडीआदि एषणीय, शर्कराादिरोग आहरणीय, विद्रधिआदिरोग विस्रावणीय, और मेद समुत्थादिरोग सीव्यकर्म करने योग्यहै।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शस्त्रकर्मकेपूर्वकर्त्तव्य

अतोऽन्यतमं कर्म चिकीर्षतावैद्येन पूर्वमेवोपकल्पयितव्यानि । तद्यथा । यन्त्रशस्त्रक्षाराग्निशलाकाशृङ्गजलौकालाबूजाम्बवोष्ठपिचुप्लोतसूत्रपट्टमधुघृतवसापयस्तैलतर्पणकषायलेपनकल्कव्यजनशीतोष्णोदककटाहादीनिपरिकर्मिणश्च स्निग्धाः स्थिराबलवन्तः ।

अर्थ–छेद्य भेद्यादि कर्ममें किसीकर्मके करनेवाले वैद्यको प्रथम इतनीवस्तु अपनेपास रखलेनी चाहिये । सर्वप्रकारके यंत्र, शस्त्र, खार, अग्नि, सलाई, सिंगी, जोख, तुंबी, जाम्बवोष्ठ (जामनके फलसदृश मुखका अग्रभागहो ऐसी कालेपत्थरकी लंबीसलाई,) रूईकेगाले, खीपड़ा, सूत, पत्ते, बांधनेको कपड़ेकी पट्टी, शहत, घृत, चर्बी, दूध, तेल, तर्पण (जलसंयुक्तसत्तूदूधआदि) कषाय (औषधसंयुक्त औटायाजल) लेप, कल्क, पंखा, शीतल और गरम जल, लोहका कडाव, आदिशब्दसे [मट्टीके कलश, थाली, सोनेकेवास्ते शय्या और आसनआदि जानने] केवल यंत्रादिकही पास न रक्खे किंतु प्रीतवान्, स्थिर और बली परिचारक (सेवक) भी रखने चाहिये ।

शस्त्रकर्म (चीराआदि) लगानेकीविधि ।

ततःप्रशस्तेषुतिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रेषुदध्यक्षतान्नपानरत्नैरग्निविप्रान्भिषजश्चार्चयित्वाकृतबलिमङ्गलस्वस्तिवाचनंलघुभुक्तवन्तंप्राङ्मुखमातुरमुपवेश्ययन्त्रयित्वाप्रत्यङ्मुखोवैद्योमर्मशिरास्नायुसन्ध्यस्थिधमनीः परिहरन्ननुलोमश स्त्रंनिदध्यादापूयदर्शनात् सकृदेवापहरेच्छस्त्रमाशुच ।

अर्थ–शुभ तिथि करण मुहूर्त्त नक्षत्रमें दही, चावल, अन्न, पान और रत्नोंसे अग्नि, ब्राह्मण, वैद्य इनका पूजनकर बलि (भेट) मङ्गल (नृत्यगीत आदि) स्वस्तिवाचन (पुण्याहवाचनआदि) को करके अल्पभोजनकरा ऐसे रोगीको पूर्वमुख बैठाल छेद्यादि कर्मकरे, और वैद्यआप पश्चिममुख बैठे । पीछे मर्मस्थान, नस, नाडी, संधी, हड्डी, और धमनी इनको बचायकर तथा जिधरके बाल पडेहो उसी तरफ नस्तर लगावे [क्योंकि विपरीतलगानेसे शस्त्रकी धार मारीजातीहै, और शस्त्रभौंतरा होजाताहै तथा पीडाहोतीहै.] चीराआदिदेनेमें वैद्य अत्यंतसावधानीके साथ जबतक राध न निकले तहांतक शस्त्रको भीतर प्रवेशकरे, तथा इसरीतिसे चीरादेवे कि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एकहीवार शस्त्रलगानेसे सब राध निकलजावे और बहुतजल्दी चीरादेके शस्त्रको हटायलेवे। * किसीकी यह संमतिहैकि शस्त्रकर्मके पूर्व मिष्टान्न भोजन करावे. यद्यपि मिष्टान्न व्रणवाले रोगीको अपथ्यहै तथापि बलवान् होनेके निमित्त देना चाहिये। जो मद्यपानके अधिकारीहै उनको शस्त्रकी पीडा सहनेकेलिये तीक्ष्णमद्य पिलाना चाहिये। अन्नकेसंयोगसे रोगी मूर्च्छित नहीं होता.।

महत्स्वपिचपाकेषुद्व्यंगुलंत्र्यंगुलंवाशस्त्रपदमुक्तम्
तत्रायतोविशालःसमः सुविभक्तइतिव्रणगुणाः।

अर्थ—अत्यंत पाकवालेभी फोडा फुंसीआदिमें दोअंगुल अथवा तीन अंगुल चीरादेना कहाहै। अब उसके गुण कहतेहैं कि, जो व्रण (चीरा) लंबा, विस्तृत और समान तथा पृथक् २ हो ए उत्तमव्रणके गुणहैं।

आयतश्चविशालश्च सुविभक्तोनिराश्रयः॥
प्राप्तकालकृतश्चापिव्रणःकर्मणिशस्यते॥ १॥
शौर्यमाशुक्रियाशस्त्रतैक्ष्ण्यमस्वेदवेपथू॥
असंमोहश्च वैद्यस्यशस्त्रकर्मणिशस्यते॥ २॥

अर्थ—लंबा विशाल और जिसके अवयव पृथक् २ हों और जो व्रण मर्मोंके आश्रित नहो अर्थात् मर्मोंसे पृथक्हो, तथा प्राप्तकालमें शस्त्रकर्म करा गयाहो ऐसा व्रण शस्त्रकर्ममें प्रसंशनीयहै, [प्राप्तकालके कहनेसे बालवृद्धका परित्यागहै, अर्थात् बालवृद्धोंके शस्त्रकर्म न करे. अथवा प्राप्तकालसे समय लेना चाहिये, जैसे शीतकालमें अग्निसाध्यव्रणका प्राप्तकालहै, और ग्रीष्मऋतुमें उसका अप्राप्तकालहै. कोई आचार्य प्राप्तकालके स्थानमें (युक्ताकालकृति ऐसा पाठ कहतेहैं तहां भलेप्रकार पाक होगयाहो ऐसा अर्थ जानना]

अब वैद्यके शस्त्रकर्ममें कौन २ गुणहोने चाहिये सो कहतेहैं कि, निर्भयहो शीघ्रक्रिया (चीरनेफाडनेमें शीघ्रकारी) जिसके शस्त्र तीक्ष्ण (पैने) हो शस्त्रकर्म करनेके समय पसीने, कंप और मोहजिस्को न होवे। तथा पक्व अपक्व व्रणके जाननेमें और उसकी क्रियाकरनेमें कुशलहो इत्यादि गुणसंपन्न वैद्य शस्त्रकर्मकरनेमें प्रसंशनीयहै।

---

* प्राक्शस्त्रकर्मणश्चेष्टं भोजयेदन्नमातुरम्। पानंपंपाययेन्मद्यंतीक्ष्णंयोवेदनाक्षमः॥१॥नमूर्च्छत्यन्नसंयोगान्मत्तः शस्त्रंनबुध्यते। अन्यत्रमूढगर्भाश्मशुखरोगोदरातुरात् ॥२॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एकेनवाव्रणेनाशुध्यमानेनान्त
राबुद्ध्यावेक्ष्यापरानव्रणान्कुर्यात् ।

अर्थ–कुशलवैद्य एकव्रणकेशुद्धहोनेसे अपनी बुद्धिसे उसको देख उसीप्रकार और व्रणोंको शुद्धकरे, अर्थात् जिसरीतिसे एकफोडामें चीरादेकर शुद्ध और अच्छाकरा उसीप्रकार और भी व्रणोंको शुद्ध और अच्छाकरे ।

यतोयतोगतिंविद्यादुत्सङ्गोयत्रयत्रच ।
तत्रतत्रव्रणंकुर्याद्यथादोषो न तिष्ठति ॥

अर्थ–जिस २ स्थानमें गति (नाडी आदिकी गतिहो) और जिस २ स्थानमें दुष्टरुधिरका समूहहो उसी २ स्थानमें चीरादेना उचितहै । जैसे दोष (राध) अथवा दोषशब्दसे वातादिक शुद्धहोवे ऐसा जानना ।

तत्रभ्रूगण्डशंखललाटाक्षिपुटौष्ठदन्तवे
ष्टकक्षाकुक्षिवङ्क्षणेषुतिर्य्यक्छेदउक्तः ।

अर्थ–तहां, भौंह, कपोल, कनपटी, ललाट, पलक, होठ, मसूढे, कूख, वंक्षण, (ऊरूकीसंधी) इनमें तिरछा चीरा लगना चाहिये ।

चन्द्रमण्डलवच्छेदान्पाणिपादेषुकारयेत् ।
अर्द्धचन्द्राकृतींश्चापिगुदेमेढ्रेचबुद्धिमान् ।

अर्थ–हाथपैरोंमें चन्द्रमण्डलके सदृश गोल चीरादेवे; और गुदा, मेढ्र (भगलिंग) में बुद्धिमान्वैद्यको अर्द्धचंद्रके समान चीरादेना उचितहै ।

विपरीतचीरादेनेकेउपद्रव ।

अन्यथातुशिरास्नायुच्छेदनादतिमात्रंवेदना
चिराद्व्रणसंरोहोमांसकन्दीप्रादुर्भावश्चेति ।

अर्थ–विपरीत शिरास्नायुके छेदनेसे घोरपीडा और बहुकालमें व्रण (घाव) का संरोह कहिये भरना होताहै । तथा मांसकंदी कहिये कंदके सदृश मांसांकुर प्रगटहोतेहैं ।

मूढगर्भोदराशोंऽश्मरीभगन्दरमुखरोगेष्वभुक्तवतः
कर्मकुर्वीत । ततःशस्त्रमवचार्यशीताभिरद्भिरातुर
माश्वास्यसमन्तात्परिपीड्यांगुल्याव्रणमभिमृज्य

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रक्षाल्यकषायेणप्लुतेनोदकमादायतिलकल्कमधु-
सर्पिःप्रगाढमौषधयुक्तांवर्तिंव्रणेदध्यात् ।

अर्थ–पूर्व यह कहआएहैं कि, भोजनोत्तर शस्त्रकर्मकरे परंतु अब कहतेहैं कि, इतनेरोगोंमें भोजनके पूर्व शस्त्रकर्म करे । मूढगर्भ, उदररोग, वक्षासीर, पथरी, भगंदर और मुखरोग, इनमें भोजनके प्रथम शस्त्रकर्म कर्त्तव्यहै.) कदाचित् उक्तरोगोंमें अज्ञानवश हो भोजनोत्तर शस्त्रकर्म करेतो कष्टहो । वातकोप और मरणहोवे । और मुखरोगमें आहारको उंगली डारकर जो वमनकरनाहै सो, घातकारकहै.) शस्त्रकर्मके पश्चात् रोगीको शीतलजलसे सावधान करके राध निकालनेके अर्थ व्रणको चारोंओरसे दबावे जैसे उसके भीतरकी निःशेष राध निकलजावे. तदनंतर उसको क्काथके जलमें भीगेहुए वस्त्रखंडसे धोयडाले पीछे तिलकल्क, सहत, घृत और औषधसंयुक्त बत्ती उसव्रणमें प्रवेशकरे ।

ततःकल्केनाच्छाद्यनातिस्निग्धांनातिरूक्षांघनां
कवलिकांदत्त्वावस्त्रपट्टेनबध्नीयाद्वेदनारक्षोघ्नैर्धूपै
र्धूपयेद्रक्षोघ्नैश्चमन्त्रैरक्षांकुर्वीत । ततोगुग्गुल्वगु
रुसर्ज्जरसवचागौरसर्षपचूर्णैर्लवणनिम्बपत्रव्यामि
श्रैराज्ययुक्तैर्धूपैर्धूपयेत् ।

अर्थ–तदनंतर तिलकल्कसे उसको आच्छादनकर उसके ऊपर न अत्यंत चिकनी और न बहुतरूखी ऐसी मोटी कवलिका (जो भग्नरोगमें ढाक और गूलरकी छालपत्ते आदिसे बनतीहै) देकर कपडेकी पट्टीसे बांधदेवे, पश्चात् पीडाकी नाशक (हींग और लवणादि) तथा राक्षसादिकोंके नाशक (यवसरसोआदि) धूपकी धूनीदेवे- और राक्षसादिकके नाशक मंत्रोंसे रक्षाकरे; तदनंतर गूगल, अगर, राल, वच, सपेदसरसों इनका चूर्णकर नीमकेपत्ते, नोन और घृतमिली ऐसे धूपसे धूनीदेवे, (व्रणमेंही इस धूनीको न देवे किंतु जिसपर रोगी शयनकरे उस शैय्या- की दुर्गंध दूरकरनेको तथा नीलेरंगकी मखियोंके दूरकरनेको धूनीदेवे, क्योंकि व्र- णपर मक्खी बैठनेसे उसमें कृमी पडजातीहैं । अतएव घरमेंभी धूनीदेवे इसधूनीसे म- च्छरभी नष्टहोतेहैं ।)

आज्यशेषेणचास्यप्राणान्समालभेत । उदकु-
म्भाच्चापोगृहीत्वाप्रोक्षयन्रक्षाकर्मकुर्यात्तद्रक्ष्यामः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–धूनीदेनेके अनंतर धूनीदेनेसे बचेहुए घृतसे हृदयादिकोंको तर्पणकरे । तदनंतर वैद्य जलके कलशसे प्रोक्षण कर्त्ताहुआ रक्षाकर्म करे ।

अथरक्षाविधानमन्त्राः ।

कृत्यानांप्रतिघातार्थंतथारक्षोभयस्यच । रक्षाकर्मकरिष्यामिब्रह्मातदनुमन्यताम् १ नागाःपिशाचागन्धर्वाःपितरोयक्षराक्षसाः अभिद्रवन्तियेयेत्वांब्रह्माद्यान्तुतान्सदा २ पृथिव्यामन्तरिक्षेचयेचरन्तिनिशाचराः । दिक्षुवास्तुनिवासाश्चपान्तुत्वांतेनमस्कृताः ३ पान्तुत्वांमुनयोब्राह्म्यादिव्याराजर्षयस्तथा।पर्वताश्चैवनद्यश्चसर्वाःसर्वेऽपिसागराः ४ अग्नीरक्षतुत्वज्जिह्वांप्राणान् वायुस्तथैवच । सोमोव्यानमपानन्तेपर्ज्जन्यःपरिरक्षतु ५ उदानं विद्युतःपान्तुसमानंस्तनयित्नवः। बलमिन्द्रोबलपतिर्मनुर्मन्येमतिंतथा६ कामांस्तेपांतुगंधर्वाःसत्वमिन्द्रोऽभिरक्षतु । प्रज्ञांतेवरुणोराजासमुद्रोनाभिमण्डलम् ७ चक्षुःसूर्योदिशःश्रोत्रेचन्द्रमाःपातुतेमनः । नक्षत्राणिसदारूपंछायांपान्तुनिशास्तव ८रेतस्त्वाप्याययन्त्वापोरोमाण्योषधयस्तथा । आकाशंखानितेपातु विष्णुस्तवपराक्रमम् । पौरुषंपुरुषश्रेष्ठोब्रह्मात्मानंध्रुवौध्रुवौ । एतादेहेविशेषेणतवनित्याहिदेवताः १० एतास्त्वांसततंपान्तुदीर्घमायुरवाप्नुहि । स्वस्तितेभगवान्ब्रह्मास्वस्तिदेवाश्चकुर्वताम् ११ स्वस्तितेचन्द्रसूर्यौचस्वस्तिनारदपर्वतौ । स्वस्त्यग्निश्चैववायुश्च स्वस्तिदेवामहेन्द्रगाः १२ पितामहकृतारक्षास्वस्त्यायुर्वर्द्धतांतव । ईतयस्तेप्रशाम्यन्तुसदाभवगतव्यथः । इतिस्वाहा १३एतैर्वेदात्मकैर्मन्त्रैःकृत्याव्याधिविनाशनैः । मयैवंकृतरक्षस्त्वंदीर्घमायुरवाप्नुहि ।

अर्थ–ए वेदात्मक १४ श्लोकसे वैद्य रोगीकी रक्षाकरे ।

रक्षाकेअनंतरकृत्य।

ततःकृतरक्षमातुरमागारंप्रवेश्याचारिकमादिशेत्।ततस्तू

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तीयेऽहनि विमुच्यैवंबध्नीयाद्वस्त्रपट्टेन। नचैनंत्वरमाणोऽप रेद्युर्मोक्षयेत् द्वितीयदिवसेपरिमोक्षणाद्ग्रथितोव्रणश्चिरा दुपसंरोहतितीव्ररुजश्चभवतिततऊर्ध्वंदोषकालबलादीनवे क्ष्यकषायालेपनबन्धाहाराचारान्विदध्यात्। नचैनंत्वरमा णः सान्तर्दोषंरोपयेत्सचारान्विदध्यात्सह्यल्पेनाप्यपचा रेणाभ्यन्तरमुत्सङ्गंकृत्वाभूयोऽपिविकरोति।

अर्थ–इसप्रकार रोगीकी रक्षाकर उसको घरके भीतर प्रवेशकरके आचारिक (आहार विहार जो व्रणितोपासनीयाध्यायमें कहेहैं) उनको कहे अर्थात् बहुतडोलना दुष्टभोजनआदि जो अहितहैं उनको तथा जो रोगीको हितकारी आहारविहारहै उनको कहिदेवे, तदनंतर तीसरे दिन आहारविहारसे निवृत्त करके और व्रणको औषधोंके काढेसे धोयकर कपडेकी पट्टीसे फिर बांधदेवे, परंतु जल्दीसे दूसरेदिनही इसव्रणको न खोलडाले। कारण यहहै कि, दूसरे दिन व्रण खोलनेसे इसमें गांठ रहजातीहै. और घाव बहुतदिनोंमें पुरताहै, तथा तीव्रपीडा होतीहै। पीछे चौथेदिन दोष, काल और रोगीके बलका विचार करके बुद्धिमान्पुरुष काढा, लेपन, बंधन आहार, विहार आचार आदिकरे परंतु जिसके भीतर दोष होवे उसव्रणको कदाचित् रोपण न करे। कारण कि, वह थोडेसेभी अपथ्य करनेसे वह भीतरसे बढकर फिरभी विकारकरे है।

तस्मादन्तर्बहिश्चैवसुशुद्धंरोपयेद्व्रणम्। रूढेप्यजीर्णव्यायाम व्यवायादीन्विवर्जयेत्।हर्षक्रोधंभयञ्चापियावदास्थैर्य्यसम्भवात् ॥ हेमन्तेशिशिरेचैववसन्तेचापिमोक्षयेत्। त्र्यहाद्व्यहाच्छरद्ग्रीष्मवर्षास्वपिचबुद्धिमान्।अतिपातिषुरोगेषुनेच्छेद्विधिमिमंभिषक्।प्रदीप्तागारवच्छीघ्रंतत्रकुर्य्यात्प्रतिक्रियाम्।

अर्थ–पूर्वोक्त कारणोंसे वैद्य अभ्यंतर और बाह्य शुद्ध (रस, स्थान, वर्ण गंध ए चारों जिस्के शुद्ध होवे ऐसे) व्रणका रोपण करे और व्रण भरभीजावे तथापि जबतक वो स्थिर न होवे तावत्कालपर्यंत अजीर्ण, दंड कसरत, स्त्रीसंग इत्यादि कर्मोंको तथा हर्ष, क्रोध, भय, इन्को त्याग देवे, कोई शंकाकरे कि, सदैव तीसरे २ दिन फस्तखो-

---

१ अंतरशुद्धिलक्षणं वातादिवेदनापगमः।
२ बहिःशुद्धिलक्षणं विशुद्धवर्णस्रावसंस्थानगंधाश्चत्वार इति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ले कि कभी बीचमें भी खोले, इसवास्ते कहतेहैं कि, हेमंत, शिशिर और वसंत इन ऋतुओंमें तीसरे २ दिन शिरामोक्ष (फस्त) खोले (कारण यहहै कि इन ऋतुओंमें अधिक शीतपडनेसे शीघ्रपाकका भय नहीं है) और शरद, ग्रीष्म, तथा वर्षा ऋतुमें दूसरे २ दिन फस्त खोले कारण यह है कि इनऋतुओंमें गरमी अधिक पडनेसे शीघ्रपाकका भय रहता है । (वर्षास्वपिच) इसपदमें चकार धरनेका यह प्रयोजन है कि यह नियम पैत्तिक व्रणमें नहीं है अर्थात् पैतिकव्रणको हेमंत शिशिर ऋतुमें यथानियम मोक्षणकरे; अपिशब्दसे वैशाखको गरम होनेंसे दूसरे दिनभी मोक्षणकरे । अथवा पैत्तिक व्रणको ग्रीष्मऋतुमें दोवार खोले और बंदकरे, परंतु इसका नियम नहीं है, बुद्धिमान्वैद्य अपनी बुद्धिके अनुसार रक्तमोक्षणकरे ।

अब कहते हैं कि यह पूर्वोक्तविधि वैद्यको शीघ्र बढनेवाले रोगोंमें मंतव्य नहीं है क्योंकि जैसे जलतेहुए घरको अनेकउपायोंसे शीघ्रशांति करते हैं उसीप्रकार शीघ्र-बढ़नेवाले रोगोंकी शीघ्र चिकित्सा करे ।

शस्त्रजनितपीडामेंचिकित्सा ।

यावेदनाशस्त्रनिपातजाता तीव्राशरीरंप्रदुनोतिजन्तोः ।
घृतेनसाशांतिमुपैतिसिक्ता कोष्णेनयष्टीमधुकान्वितेन ॥

अर्थ–जो तीव्रपीडा शस्त्रके लगनेसे होती है वो इसप्राणीके देहको अत्यंत दुःख-देती है, वह मुलहटी, महुआ, युक्त गरम घृतके सेकनेसे शांति होती है ।

इति श्रीमदयुर्वेदोद्धारेबृहन्निघंटुरत्नाकरेपंचदशस्तरंगः ॥ १५ ॥

यंत्राध्यायः ।

अथातोयन्त्रविधिमध्यायंव्याख्यास्यामः ॥

अब यंत्रकल्पनाध्याय अथवा यंत्रभेदाध्यायकोकहेंगे ॥

यंत्रोंकीसंख्या ।

यंत्रशतमेकोत्तरं । तत्रहस्तमेवप्रधानतमंयन्त्राणामवगच्छ । किंकारणं? तस्माद्धस्ताद्दतेयंत्राणामप्रवृत्तिरेवतदधीनत्वाद्यन्त्रकर्मणाम् ।

अर्थ–एकसौएक यंत्रहैं उनयंत्रोंमें हस्त (हाथ) को प्रधानता है. कारणकि, हाथके विना सब यंत्रोंकी अप्रवृत्ति है; अर्थात् विनाहाथके यंत्रोंसे कोई कार्य नहीं होता है । अतएव यंत्रकर्मोंको तदधीनत्व है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यंत्रव्यापिलक्षणपरिभाषाको कहते हैं।

तत्रमनःशरीराबाधकराणिशल्यानि, तेषामाहरणो
पायोयन्त्राणि। तानिषट्प्रकाराणि। तद्यथा—स्व
स्तिकयन्त्राणिसन्दंशयन्त्राणितालयंत्राणिनाडीयं
त्राणिशलाकायंत्राणिउपयन्त्राणिचेति।

अर्थ—तहां मन और शरीरको पीडाकरनेवाले शल्य (कांटेखोबरेआदि) हैं. उनके दूरकरनेका उपाय यन्त्र है। वो यंत्र छःप्रकारके हैं, जैसे १ स्वास्तिकयंत्र, २ संदंशयंत्र ३ तालयंत्र ४ नाडीयंत्र ५ शलाकायंत्र और ६ उपयंत्र. इनमें स्वस्तिकयंत्र साथियेके[1], समान चार अवयववाले होते हैं. संदंशयंत्र संडासीके आकार होते हैं; इसीप्रकार औरोंकीभी उनके नामसे आकृति जाननी चाहिये।

स्वास्तिकादियंत्रोंकीसंख्या।

तत्रचतुर्विंशतिःस्वस्तिकयंत्राणिद्वेसंदंशयंत्रेद्वेएवतालयन्त्रेविं
शतिर्नाडयःअष्टाविंशतिःशलाकाःपञ्चविंशतिरुपयन्त्राणि।

अर्थ—पूर्वोक्त १०१ यंत्रसंख्याको दिखाते हैं तहां २४ स्वस्तिकयंत्र हैं, २ संदंशयंत्रहैं, २ तालयंत्र है २० नाडीयंत्रहैं, २८ शलाकायंत्रहैं और २५ उपयंत्रहैं, सबके जोडनेसे १०१ यंत्रहोतेहैं। [द्वेएवतालयंत्रे] इसमें एवशब्दके धरनेसे यह प्रयोजनहै कि शल्यकी आकृति देखकर स्वस्तिकादि यंत्र अधिकभी बनाने चाहिये।

तानिप्रायशोलौहानिभवन्तितत्प्रतिरूपकाणिवातदला
भे। तत्रनानाप्रकाराणांव्यालानांमृगपक्षिणांमुखैर्मुखा
नियन्त्राणांप्रायशःसदृशानि। तस्मात्तत्सारूप्यादागमा
दुपदेशादन्ययन्त्रदर्शनाद्युक्तितश्चकारयेत्।

अर्थ—वे यंत्र प्रायः लोह (सुवर्ण, चांदी, तामा, लोहा, पित्तल) के होतेहैं, तथा सुवर्णादि पंचलोह न मिलनेपर उनको (तत्प्रतिरूपकं) अर्थात् हाथीदांत, सींग, काष्ठ, आदिके बनावे. और इनयंत्रोंके मुखका स्वरूप अनेकप्रकारके व्याल (सिंह-

---

१ गेंहूके चूनसे मंगलकार्योंमें स्त्री कुछचौकौन चार लकीर खींचती है उसका नाम साथिया है.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

व्याघ्रादिहिंसकजीव) मृग (हरिण, ससे, आदि) और काक, गीध आदि पक्षियों-के मुखके समान होना चाहिये । अतएव इनयंत्रोंका स्वरूप शास्त्रसे और वृद्धवैद्यके उपदेशसे तथा अन्ययंत्रोंके देखनेसे वा युक्ति (अकल) से करने चाहिये । तहां शास्त्रमें लिखाहैकि स्वस्तिकयंत्र १८ अंगुलके बनाने चाहिये । और उपदेशके कहनेसे केवल वृद्धवैद्यकाही ग्रहण नहीं है किंतु जो इसकर्मको करते रहतेहैं, ऐसे शिल्पकारोंके कहनेसे बनावे । अन्ययंत्र (चीमटा, संडासी, कैंची, चीमटी, नेहन्नी, आदि प्रत्येकदेशोंमें पृथक् २ आकृतिकी होतीहैं, उनको देखकर बनावे जैसे आजकल यूरोपिअन आदि विलायती मनुष्य बनातेहैं. और युक्तिके कहनेसे यथाप्रयोजन बनानी चाहिये अर्थात् पुरुषके हाथपैरआदि अवयवोंके विचारसे बनावे, जैसे, जो छोटेबालकहै उनकेलिये यंत्रभी छोटे और बडोंको बडेयंत्र बनाने चाहिये ।

समाहितानियन्त्राणिखरश्लक्ष्णमुखानिच ।
सुदृढानिसुरूपाणिसुग्रहाणिचकारयेत् ।

अर्थ–न्यूनाधिक (छोटेबडे) दोषकरके रहित तीक्ष्ण और चिकने मुखके तथा दृढ और सुन्दररूपवाले सुघाट ऐसे यन्त्र बनाने चाहिये । कोईआचार्य कहतेहैंकि कार्यभेदसे किसीयंत्रका मुख तीखाबनावे और किसीका मृदुबनावे तिनमें कंकमुखादिवालेयंत्र खरमुखकहातेहैं. । और सिंहास्यादियंत्र श्लक्ष्णमुखकहातेहैं ।

स्तस्विकयंत्राणि ।

तत्रस्वस्तिकयन्त्राण्यष्टादशांगुलप्रमाणानिसिंहव्याघ्रतरक्ष्वृक्षवृकद्वीपिमार्जारशृगालमृगैर्वारुककाककङ्ककुररचासभासशशघात्युलूकचिल्लिश्येनगृध्रकौञ्चभृङ्गराजाञ्जलिकर्णावभञ्जननन्दिमुखमुखानिमसूराकृतिभिःकीलैरवबद्धानिमूलेंकुशवदावृत्तवाराङ्गाण्यस्थिविनष्टशल्योद्धरणार्थमुपदिश्यन्ते ।

अर्थ–स्वस्तिकयंत्र १८ अंगुललंबे, और सिंह, बघेरा, जरख, रीछ, भेडहा, चीता, बिलाव, स्यारिया (लोमडी) हिरण एर्वारुक (हिरणकाभेद होताहै) ए ९ पशू, तथा काक (कौआ) कंक (लंबीचौचकाबडापक्षीजोमुर्दोंकोभक्षणकर्ताहै अथवा कोई सपेदचीलको कंक कहतेहैं,) कुरर (टटीहरी,) चास (पपैया वा चातक कोई नीलकंठको चास कहतेहैं,) भास (गौओंके झुंडमें रहनेवाला गीधविशेष परंतु कोई घरमें रहनेवाले मुर्गेको भास कहतेहैं,) शशघाती (शशारीनामसे प्रसिद्ध

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कोई वाझको शशारी कहतेहैं) उलूक (वागल–वा चमगिदड) चिल्ल (चील-नामसेप्रसिद्ध) श्येन (शिकरा वा कुई) गीध, क्रौंच (कोची कोचरी नामसे प्रसिद्ध और कोई कुंजनाम पक्षीको क्रौंच कहतेहैं,) भृंगराज (कालीचिडिया) अंजली और कर्णावभंजन (ए दोनामोंका पर्यायवाचीशब्द लोकप्रसिद्धीसे जानना,) और नंदीमुख (पत्राटी) ए १५ पक्षी कहेहैं, इन दोनों पशुपक्षियोंके मुखके समान स्वस्तिक यंत्रोंका मुखबनाना चाहिये और उनयंत्रोंके स्कंध (अर्थात् कंठदेश) मसूरके समानगोल और छोटीकीलोंसे जटित करने चाहिये; (परंतु कोई कहतेहैंकि यंत्रके तीसरे भागमें कील लगावे) और उनयंत्रोंका मूल अर्थात् पकडनेका स्थान अंकुशके समान कुछ नींचा और मुडाहुआ बनावे, ये स्वस्तिकयंत्र टूटीहड्डी जो देहके भीतर छिपीहुई रहतीहैं उसके निकालनेके लिये. कहेहैं !

स्वास्तिकयंत्रोकी तसबीरदेखो

अथसन्दंशयंत्राणि ।

सनिग्रहोनिग्रहश्च सन्दंशौषोडशांगुलौ भवत
स्त्वङ्मांसशिरास्नायुगतशल्योद्धरणार्थमुपदिश्यते ।

अर्थ–संदंशयंत्र दोप्रकारकेहैं, एक सनिग्रह (अर्थात् जिसकामुखबंद रहे) और दूसरा अनिग्रहहै (जिसकामुख खुलारहे) ए दोनों यंत्र १६ अंगुल लंबे होने चाहिये. ये त्वचा, मांस, नस, स्नायुगत, शल्यके निकालनेके वास्ते कहेहैं । संदंशनाम संडासीका है * । २२ नंबरकेचित्रदेखो ।

तालयंत्रम् ।

तालयन्त्रेद्वादशांगुले मत्स्यतालवदेकतालद्वि
तालकेकर्णनासानाडीशल्यानामाहरणार्थम् ।

अर्थ–तालयंत्र दोनोंका विस्तार १२ अंगुलका होताहै, इन्होंका स्वरूप मछलीके तालके आकार एकताल तथा द्वितालक होताहै, तालक लोहेकी पत्तीका नाम है, जिनसे किवाँडकी संधी आपसमें जोडीजातीहै ।

---

१ जिसओरसे कांटेआदिको पकडकर खींचतेहै, उस भागको यंत्रका मुख कहतेहैं ।

* वाग्भट ६ अंगुलका दूसरा संदंशयंत्र नासिकाके बालआदि निकालनेको तथा पलकोंके परवाल तोडनेको कहताहै, उसकानाम मुचुंडीहै । इसके मुखमें छोटे २ दांत होतेहैं, और पकडनेकीजगे छल्लासाहोताहै, इसछल्लेके दाबनेसे काम होताहै । यह गंभीरव्रणोंमेंसे जो अधिमांसहोताहै उसके निकालनेको कहाहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मछलीके तालकहनेसे इसजगे मछलीका कांटालेना अर्थात् जैसा वो पतला होता है ऐसे तालयंत्रोंके मुखजानने ।

नाडीयंत्राणि ।

नाडीयन्त्राण्यनेकप्रकाराण्यनेकप्रयोजनान्येकतोमुखान्यु भयतोमुखानिच, तानिस्रोतोगतशल्योद्धरणार्थंरोगदर्श नार्थमाचूषणार्थं क्रियासौकर्यार्थंश्चेतितानिस्रोतोद्वारपरि णाहानि यथायोगपरिणाहदीर्घाणिच।भगन्दराशोंऽर्बुदव्रण बस्त्युत्तरबस्तिमूत्रवृद्धिदकोदरधूमानिरुद्धप्रकाशसंनिरुद्ध गुदयन्त्राण्यलाबूशृङ्गयन्त्राणिचोपरिष्टाद्वक्ष्यामः ।

अर्थ–नाडीयंत्र अनेकप्रकारके और अनेक प्रयोजनवाले होतेहैं, कोई एकमुख-वाले (जैसे रुधिरके निकालनेको अलाबूयंत्र, भगंदरयंत्र और अर्श यंत्रादि) कोई उभयतोमुख होतेहैं, (जैसे बस्ती, उत्तरबस्ती, और धूमयंत्रादि) ये सब नाडीयंत्र स्रोतोगत शल्यके निकालनेके लिये बवासीर आदि रोगोंके देखनेकेलिये और अ-स्थिगतवायु रुधिर और स्तनसंबंधी दूधके आचूषण (खींचने) के लिये तथा क्रिया (शस्त्रक्षाराग्निआदिक्रिया) ओंके सुखकरणार्थ कहेहैं । इन नाडीयंत्रोंके मुख स्रोतों-के द्वारसदृश छोटेबड़े और गोलहोनेचाहिये । अब उनकेनाम कहतेहैं । भगंदरयंत्र२, एकएकछिद्रका दूसरा दोछिद्रवाला इसीप्रकार अर्शयंत्र २, अर्बुदयंत्र २, व्रणयंत्र १, यह व्रणकी चौडाई लंबाईके समान होनाचाहिये, बस्तियंत्र ४ हैं, कोई ३ प्र-कारके कहतेहैं. उत्तरबस्ती २, मूत्रवृद्धियंत्र १, दकोदरयंत्र १, धूमयंत्र ३, निरुद्ध-प्रकाशयंत्र १, संनिरुद्धगुदयंत्र १, और अलाबूयंत्र १, इन सब यंत्रोंको यथाप्रयोजन यथास्थान में कहेंगे ।

शलाकायंत्राणि ।

शलाकायन्त्राण्यपि नानाप्रकाराणि नानाप्रयोजनानिय थायोगपरिणाहदीर्घाणिच।तेषांगण्डूपदशरपुंखसर्पफण वडिशमुखेद्वेद्वे एषणव्यूहनचालनाहरणार्थमुपदिश्येते।

अर्थ–शलाकायंत्रभी अनेकप्रकारके अनेक प्रयोजनवाले होतेहैं, इनको यथायोग गोल और लम्बे बनाने चाहिये, तिनमें गंडूपद (केंचुआ) के मुखवाले यंत्र २, बाणकीपुंखके आकार मुखवाले यंत्र २, सर्पफणकेतुल्य मुखवाले यंत्र २, बडिश (मच्छीपकडनेकी लोहवंशीके) मुखवाले यंत्र दो बनावे। ये आठयंत्र, एषण (गं-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भीरपाकी व्रणोंसे राधरुधिरआदिका निकालना,) व्यूहन (निर्माणकरना) चालन, और आहरण (निकालने) के अर्थ कहेहैं।

मसूरदलमात्रमुखेद्वे किञ्चिदानताग्रेस्रोतोगतशल्योद्धरणार्थम् षट्कार्पासकृतोष्णीषाणि प्रमार्जनक्रियासु। त्रीण्यन्यानिजाम्बवद्बदनानि । त्रीण्यङ्कुशवदनानि ।

अर्थ–मसूरकीदालके समानमुखवाले दोयंत्र बनावे वो अग्रभागमें कुछ नवेहुए-होवे, ये स्रोतोगत शल्योंके निकालनेके अर्थहै* छः यंत्रोंके अग्रभाग रूईसे लिपटे-हुए झाडने पोछनेआदि क्रियाके अर्थ कहेहैं, तीनयंत्र कलछीके आकार मुख और नीचेमुखवाले क्षार औषधोंके प्रयोगार्थ कहेहैं, तीनयंत्र जामनफलके सदृश मुखवाले तीनयंत्र अंकुशके मुखसमान मुखवाले।

षडेवाग्निकर्मस्वभिप्रेतानि । नासार्बुदहरणार्थमेकंकोलास्थिदलमात्रमुखंखल्लतीक्ष्णोग्रम् । अञ्जनार्थमेकंकलायपरिमण्डलमुभयतोमुकुलाग्रम्। मूत्रमार्गविशोधनार्थमेकंमालतीपुष्पवृंताग्रप्रमाणपरिमण्डलमिति।

अर्थ–ये छःयंत्र अग्निकर्म (दागने) में अभीष्टहैं। नासार्बुदहरणार्थ एक बेरकीगुठलीके अर्धदलप्रमाणमुख बीचमें नीचा और अंतमेंतीखा ऐसा यंत्र होताहै, नेत्रोंमें अंजनआँजनेकेअर्थ १ यंत्र मटरकेसमानगोल और दोनों प्रान्त फूलकी कलीके समान होतेहैं। मूत्रमार्ग विशोधनार्थ एकयंत्र मालतीपुष्पकेवृन्त (जिसमें फूललटकाकरेहै उसडांठरेको वृंतकहतेहैं) उसके समान बनावे। इन शलाकायंत्रोंका विस्तार आठ अंगुलका होनाचाहिये; शलाकानाम सलाईकाहै।

उपयंत्राणि।

उपयन्त्राण्यपिरज्जुवेणिकापट्टचर्मान्तबल्कललतावस्त्राष्ठीलाश्ममुद्गरपाणिपादतलाङ्गुलिजिह्वादन्तनखमालाश्वकटकशाखाष्ठीवनप्रवाहणहर्षायस्कान्तमयानिक्षाराग्निभेषजानिचेति।

---

*स्रोतोगत शल्यकानिकालनादिखातेहैं, जैसे नासाशल्य कंठमें जायकर अटकजावे उस-समय वैद्य मुखमें नाडीयंत्रडाल तत्तीलोहकी सलाईसे शल्यको खींचलेवे. वाग्भट लिख-ताहैकि कंठशल्यके देखनेको १० अंगुललंबा और ५ अंगुल चोडा नाडीयंत्रहोताहै और कमलककडीके सदृश ऊपरके भागमें होवे और १२ अंगुललंबा होनाचाहिये।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-अब उपयंत्रोंको कहतेहैं. मूंजकी रस्सी-वेणीका (तिवलीरस्सी) पट्ट (पट्टी) चामके टुकडे, (पट्टेआदि) ढाक, और गूलरकीछाल (यह टूटेहुए हाड आदिके ऊपरबांधनेको कामआतीहै) लता, कपडा, लंबा और गोल ऐसा पत्थर, मुद्गर, (काष्ठआदिकाबनागुरज) हथेली, पैरकेतलुए, उंगली, जीभ, दांत, नख, (नाखून) बाल, घोडा, वृक्षकीशाखा, थूकना, प्रवाहन (वमन, विरेचन, आंसू, ए क्रमसे कफपित्त और नेत्रमें रजआदि शल्यदूरकरनेंको) हर्ष (प्रसन्नता) अयस्कांत (आकर्षक, द्रावक, चुम्बक, भ्रामक, आदिभेदवाला पाषाणविशेष) के बनेहुएपदार्थ, क्षार, अग्नि और अनेकप्रकारकी औषध ए सब उपयंत्रकहातेहैं ॥

एतानिदेहेसर्वस्मिन्देहस्यावयवेतथा ।
सन्धौकोष्ठेधमन्याञ्चयथायोगंप्रयोजयेत् ॥

अर्थ-ए पूर्वोक्त यंत्र सर्वदेहमें तथा देहके संपूर्णअवयवों (हाथपैरों) में तथा संधिकोष्ठ, धमनीआदिमें यथायोग वरतने चाहिये ।

अथयन्त्रकर्माणि ।

यन्त्रकर्माणिनिर्घातनपूरणबन्धनव्यूहनप्रवर्तनचालन
विवर्त्तनविवरणपीडनमार्गविशोधनविकर्षणाहरणाञ्छ
नोन्नमनविनमनभञ्जनोन्मथनाचूषणैषणदारणर्जुकरण
प्रक्षालनप्रधमनप्रमार्जनानिचतुर्विंशतिः ।

अर्थ-अब यंत्रोंकेकार्यकहेतेहैं. । निर्घातन (इतस्ततश्चलायमानकरके निकालना) पूरण (तेल, आदिसे बस्तिनेत्रादिकोंको पूरणकरना) बांधना, व्यूहन (उठेहुएकोकाटकरनिकालना) विवर्त्तन (कमतीबढतीकोगोलकरना) चालन, विवर्त्तन (कानकी पवनके निकालनेको यंत्रको कानमें फिराना) विवरण (मांसरुधिरआदिमेंछिपेशल्यको प्रकाशितकरना) पीडन (दाबना) मार्गविशोधन (मूत्र, पुरीष, आदि रुकेहुएमार्गोंका शोधनकरना) विकर्षण (गडेहुएशल्यको पकडकर खींचना) आहरण (निकालना) आञ्छन (कुछव्रणके मुखपर शल्यको लाना) उन्नमन (अधःस्थितोंको ऊपरलाना) विनमन (नीचेकोकरना) भंजन (शिर, कान, आदिका मीडना) उन्मथन (प्रनष्टशल्य के मार्ग में शलाई डालकर मथनकरना)आचूषण (विषदुष्टस्तनसंबंधी दूध और रुधिरमें सींगी, तूंवीआदि लगाकरचूसना) एषण (जोखआदिसे खींचना) दारण (शिरकर्णआदिके दो टूककरना) ऋजुकरण (टेढोंको सीधा करना) प्रक्षालन (धोना) प्रधमन (नासिकामें नाडीयंत्रद्वारा [illegible]) और प्रमार्जन (पोंछना)ए २४ [illegible]

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अबअनेकशल्याकारकर्मोंको बाहुल्यहोनेसेपूर्वोक्तसंख्याका आनियमदिखातेहैं।

स्वबुद्ध्याचापिविभजेद्यन्त्रकर्माणिबुद्धिमान्।
असंख्येयविकल्पत्वाच्छल्यानामितिनिश्चयः॥

अर्थ–बुद्धिमान् पुरुष अपनीबुद्धिसे भी यंत्रकर्मोंको करे क्योंकि शल्योंको असंख्येयविकल्पत्व है, अर्थात् अनेकप्रकारके शल्यहैं, उनके निकालनेके उपायभी अनेकहैं, अतएव केवल लिखेहुएपरही न रहे, किंतु कुछ स्वबुद्धि चातुरीसे भी कर्मकर्तव्यहैं यहनिश्चितहैं।

अथयंत्रोंकेदोष।

तत्रातिस्थूलमसारमतिदीर्घमतिह्रस्वमग्रा
हिविषमग्राहिवक्रंशिथिलमत्युन्नतंमृदुकीलं
मृदुमुखंमृदुपाशमितिद्वादशयन्त्रदोषाः।

अर्थ–जो यंत्र अत्यंत स्थूलहो. और अशुद्धलोहसे बनाहो, जो अत्यंत लंबाहो, बहुतछोटाहो, जिसकामुख विकृतहो, और जो एकजगेसे न पकड़े, तथा टेढाहो, शिथिलहो, अर्थात् जो ठीक दाबेनहीं, जिसकी कीलआदि ऊपरको ऊठरहीहो, तथा जिसमें मृदुकील लगीहो, अथवा ढीलीकीलहो, और जिसकामुख नरमहो, तथा विकृतपाश कहिये जिसयंत्रके मुखसे शल्य न पडनेमेंआवे, ये यंत्रोंके १२ दोषहैं॥

एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्तंयन्त्रमष्टादशांगुलम्।
प्रशस्तंभिषजाज्ञेयंतद्धिकर्मसुयोजयेत्॥

अर्थ–उक्तदोषरहित, अठारेअंगुललंबा यंत्र, वैद्यउत्तमकहतेहैं, उनको चीरने फाडने आदिकर्ममें योजनाकरे अर्थात् कार्यमेंलावे।

स्वस्तिकयंत्रोंकाविषयभेददिखातेहैं।

दृश्यांसिंहमुखाद्यैस्तुगूढंकंकमुखादिभिः।
निर्हरेत्तुशनैःशल्यंशस्त्रयुक्तिव्यपेक्षया॥

अर्थ–जो शल्य दृश्य (दीखते) हैं उनको सिंहमुखादि यंत्रोंसे निकाले, और जो छिपेहुए हैं, उनको कंकमुखादि यंत्रोंसे धीरे २ निकाले, तथा शस्त्रयुक्तिके अनुसार निकाले।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कंकमुखयंत्रकोप्रधानताकहतेहैं ।

निवर्त्ततेसाध्ववगाहतेचशल्यंनिगृह्योद्धरतेचयस्मात् ।
यन्त्रेष्वतःकङ्कमुखंप्रधानंस्थानेषुसर्वेष्वविकारिचैव ॥

अर्थ–भलेप्रकार प्रवेशहोता है और निकलता है तथा शल्यको पकडकर खींचेहै अतएव सर्वयंत्रोंमें कंकमुखनामक यंत्र प्रधान (श्रेष्ठ) है, और ये सर्वसन्धि धमनी आदिमें अविकारी है अर्थात् विकार नहींकरे है ।

इतिश्रीबृहन्निघंटुरत्नाकरेपंचदशस्तरङ्गः ।

अथातःशस्त्रावचारणीयमध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब शस्त्रावचारणीय अर्थात् जिसमें शस्त्रोंके बनाने और वर्त्तनेकी विधिहै उस अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

शस्त्रोंकीसंख्या ।

विंशतिः शस्त्राणि । तद्यथा मण्डलाग्र करपत्र वृद्धिपत्र नखशस्त्रमुद्रिकोत्पलपत्रकार्द्धधारसूचीकुशपत्राटीमुखशरारीमुखान्तर्मुखत्रिकूर्चककुठारिकाव्रीहिमुखारावेतसपत्रकबडिशदन्तशङ्कैषण्यइति ।

अर्थ–शस्त्र वीसप्रकारकेहैं, जैसे १ मण्डलाग्र* २ करपत्र, (करोत) ३ वृद्धिपत्र, ४ नखशस्त्र, ५ मुद्रिका, ६ उत्पलपत्रक, ७ अर्द्धधार, ८ सूची, ९ कुशपत्र, १० आटीमुख, ११ शरारिमुख, १२ अन्तरमुख, १३ त्रिकूर्चक, १४ कुठारिका, १५ व्रीहिमुख, १६ आरा, १७ वेतसपत्र, १८ बडिश, १९ दन्तशंकू, और २० एषणी ।

शस्त्रोंकेअष्टविधकर्म ।

तत्रमण्डलाग्रकरपत्रेस्यातांछेदनेलेखनेच । वृद्धिपत्रनखशस्त्रमुद्रिकोत्पलपत्रकार्द्धधाराणि छेदनेभेदनेच । सूचीकुशपत्राटीमुखशरारीमुखान्तर्मुखत्रिकूर्चकानिविस्रावणे। कुठारिकाव्रीहिमुखारावेतसपत्रकाणिव्यधने।सूची

* मंडलाग्रशस्त्र छुराके आकारहोताहै, करपत्रको भाषामें करोत कहतेहैं. । वृद्धिपंत्रको छुराकहतेहैं । नखशस्त्रको नहन्नी, वा नाखूनतरास कहतेहैं । शरारी शस्त्रको कतरनी अथवा कैंची कहतेहैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चबडिशोदन्तशंकुश्चाहरणे। एषण्येषणे आनुलोम्येच। सूच्यः सेवने । इत्यष्टविधेकर्मण्युपयोगः शस्त्राणांव्याख्यातः।

अर्थ–तहां मण्डलाग्र और करपत्र इनदोनों शस्त्रोंको छेदन और लेखन कर्ममें लेने चाहिये। वृद्धिपत्र, नखशस्त्र, मुद्रिका, उत्पलपत्र, और अर्द्धधारा ए शस्त्र छेदन भेदनमें ग्रहणकरनेचाहिये। सूची, कुशपत्र, आटीमुख, शरारीमुख, अंतरमुख, और त्रिकूर्चक, ए शस्त्र स्रावकरानेमें लेने, कुठारिका, व्रीहिमुख, आरा, वेतसपत्रक, और सूचीशस्त्र, ए वेधनेमें लेनेउचितहैं। बडिश, दंतशंकु, ए शस्त्र निकालनेमें लेनेचाहिये। एषणीशस्त्र चूसनेमें और अनुलोमन कर्ममें लेने चाहिये और सूचीशस्त्र सीनेमें लेना. इसप्रकार शस्त्रोंके अष्टविध कर्मकी विधिकहीहै।

तेषामथ यथायोगं ग्रहणसमासोपायः कर्मसुवक्ष्यते। तत्रवृद्धिपत्रंवृन्तफलसाधारणेभागेगृह्णीयात् भेदनान्येवं सर्वाणिवृद्धिपत्रंमण्डलाग्रञ्चकिंचिदुत्तानपाणिनालेखने बहुशोवचार्यंवृन्ताग्रेविस्रावणानि। विशेषेणबालवृद्धसु कुमारतरुणनारीणांराज्ञांराजपुत्राणाञ्चत्रिकूर्चकेनविस्रावयेत्। तलप्रच्छादितवृन्तमंगुष्ठप्रदेशिनीभ्यांव्रीहिमुखम्।कुठारिकांवामहस्तन्यस्तामितरहस्तमध्यमांगुल्यांगुष्ठविष्टब्धयाभिहन्यात्।आराकरपत्रैषण्योमूलेशेषाणितुयथायोगंगृह्णीयात्।

अर्थ–शस्त्रकर्ममें इनशस्त्रोंके योग ग्रहण (पकडने) का उपाय कहतेहैं। तहां वृद्धिपत्रको डंडीके और फलकके बीचमें पकडना चाहिये। इसीप्रकार भेदनेके सर्वशस्त्रोंमें जानलेना। वृद्धिपत्र और मंडलाग्र इनको ऊपरकी तरफसे पकड लेखनकर्ममें बहुधा इसको कार्यमेंलावे। और इन्ही वृद्धिपत्र और मंडलाग्रोंको डंडीके अग्रभागमें पकड राध रुधिरआदि के स्रावकर्मकर्तव्यहैं। विशेषकरके बाल वृद्ध सुकुमार तरुण स्त्री राजा महाराजा तथा राजपुत्रोंको त्रिकूर्चक शस्त्रद्वारा स्रावकर्तव्यहै. । हथेलीसे वृन्त (वैंटा वा डंडी) को दाब अंगूठा और तर्जनीउंगलीसे व्रीहिमुखशस्त्रको पकडे। कुठारीके डंडेको बाँएहाथसे पकड दहनेहाथकी मध्यमांगुली और अँगूठेसे दाबके चलावे। आरा करोत और एषणी इन शस्त्रोंको जडमेंसे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पकडने चाहिये। और बाकीके शस्त्रोंको यथायोग्य अर्थात् किसीको बैंटेकी जडमें किसीको बैंटेके मध्यमें किसीको बैंटेके अग्रभागमें ग्रहण करने चाहिये।

शस्त्रोंकीआकृति।

तेषांनामभिरेवाकृतयःप्रायेणव्याख्याताः।

अर्थ–मंडलाग्रआदि शस्त्रोंका स्वरूप उनकेनामसेही प्रायः कहाहै, विशेषकहतेहैं.

तत्रनखशस्त्रैषण्यावष्टांगुले। सूच्योवक्ष्यन्ते। बडिशो दन्तशंकुश्चानताग्रेतीक्ष्णकण्टकप्रथमयवपत्रमुखे। एषणीगण्डूपदाकारमुखी। मुद्रिकादेशिन्यग्रपर्वप्रदेशप्रमाणमुद्रिका। दशांगुलाशरारीमुखीसाकर्त्तरीतिकथ्यते। शेषाणि तुषडंगुलानि।

अर्थ–नखशस्त्र (नेहन्नी) और एषणीशस्त्र ए आठअंगुल लंबे होतेहैं। और सूचीशस्त्र (सुई) का प्रमाण आगे (अष्टविधकर्मीयाध्यायमें) कहैंगे. बडिशशस्त्र और दन्तशंकू इन दोनोंका अग्रभाग कुछ नवाहुआ और तीक्ष्णकंटक (जिसकाकाँटापैनाहो) तथा प्रथमोत्पन्नयवपत्रके समान होना चाहिये। एषणी शस्त्र कैचुएके सदृश मुखवालाहोता है। मुद्रिकाशस्त्र प्रदेशिनी (अगलीउंगली) के आगेके पोरुआके समान होनाचाहिये। शरारीमुख शस्त्रको कैंचीकहतेहैं। वो दशअंगुल लंबी होनीचाहिये। बाकीके शस्त्र छः २ अंगुललंबे होनेचाहिये।

अब शस्त्रोंका प्रमाण औरभी ग्रंथांतरोंसे लिखतेहैं। मंडलकेसमान गोल जिसका अग्रभागहो उसको मंडलाग्रशस्त्रकहतेहैं। वो दोप्रकारकाहै. एकतो वहहै कि जिसकी गुलाई उसके छटेभागपर्यंतहो और दूसरा छुराके आकारहो इन दोनोंका प्रमाण (लंबाव) छःअंगुलका होताहै। करपत्र (यह कांटेदार होतीहै इसको क्रोत वा आरी कहतेहैं) परंतु कोई १२ अंगुलका करपत्र कहतेहैं। वृद्धिपत्र दोप्रकारकाहै। एक अंचिताग्र दूसरा प्रयताग्र. इनमें अंचिताग्र वृद्धिपत्रको छुरा कहतेहैं। दोनों सातअंगुल लंबे पंचांगुलवृत्त और ढाईअंगुलका अग्रभागहोना चाहिये। नखशस्त्रको नेहन्नी कहतेहैं। इसका अग्रभाग २ अंगुल लंबा १ अंगुल विस्तृत और अर्धअंगुलकीधार होनी चाहिये। अर्द्धधाराशस्त्र ८ अंगुल लंबा १ अंगुल विस्तृत और चक्रके समान धारवाला होना चाहिये। कुशपत्रकेसमान कुशपत्रशस्त्रहोताहै। ३ अंगुल

---

१ षड्भागे मण्डलं वृत्तं क्षुरसंस्थानमेव वा। मण्डलाग्रस्य जानीयात्प्रमाणन्तु षडंगुलम्।
२ अंगुलै रुचकं विद्यादंगुलं फलमुच्यते। वृत्तंस्याद्द्व्यंगुलं मध्ये कुशपत्रस्य लक्षणम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

डंडी १ अंगुलका अग्रभाग और २ अंगुलबीचमें कुछ गोल होती है । आटीमुख शस्त्रकी डंडी ७ अंगुल और अँगूठेके समान उसका अग्रभाग होनाचाहिये । आटीनाम आडीपक्षीको कहतेहैं, उसके मुखसमान जिसका मुखहो उसको आटीमुख शस्त्र जानना । शरारीनाम लंबीचोंचके पक्षीको कहतेहैं. वो दोप्रकारका होताहै एकतो जिसके कंधे सपेदहो दूसरा लालमस्तकवाला होताहै. धवल (सपेद) कंधे वालेको शरारी कहतेहैं । उसके मुखके सदृश मुखजिसका उसको शरारीशस्त्र कहतेहैं । इसीको भाषामें कैंची कहतेहैं । यह १२ अंगुलकी और दोनोंपल्ले चलायमान होनी चाहिये । शरारीको भाषामें बगलाकहतेहैं अंतर्मुखशस्त्रका मुख भीतरहोताहै । वह ८ अंगुल लंबा और अर्द्धचंद्राकारहोना चाहिये ।

त्रिकूर्चकशस्त्र ८ अंगुलका तिधारा और ३ अंगुलका अग्रभाग होनाचाहिये, और तीनों कांटोंमें चामल २ भरका फरक रहना चाहिये । इसकी डंडी ५ अंगुलकीकरे और इसके ऊपर छल्ला २ से आकारसे भूषितकरे । ४ कुंठारिकायंत्र का-बैंटा ७॥ अंगुललंबा उसका अग्रभाग आधेअंगुलका होना चाहिये, उसको गोदंतसदृश बनावे, व्रीहिमुखशस्त्रका प्रमाण, भोज इसप्रकार लिखताहै कि, ६ अंगुललंबा और दोअंगुलकी उसकी डंडी और ४ अंगुलका अग्रभागहोना चाहिये, और इसकामुख चावलके समानहो, यह अटकेहुए कांटेके निकालनेके अर्थ कहाहै, आरा यह चमारोंका शस्त्रहै। इसको १६ अंगुल लंबा और तिलकेसमान अग्रभाग तथा पूर्वअंकुर विस्तृत इसका बैंटा गोपुच्छकेसदृश होना चाहिये, वेतसपत्रयंत्रका विस्तार १ अंगुलका तीक्ष्णहोनाचाहिये, और ४ अंगुललंबा तथा ४ अंगुलका बैंटा होनाचाहिये । यहभी भोजकाप्रमाणहै । बडिशयत्र ६ अंगुलकेलंबे दोनोंका एकमुख इन दोनोंका बैंटा ५॥ अंगु-

---

१ वृन्तं सप्तांगुलं विद्यात्तस्याग्रे फलमिष्यते । आटीमुखप्रकारोहि फलमंगुष्ठमायतम् । २ अष्टांगुल प्रमाणेन जिह्वा धामविधारकं । शस्त्रमन्तर्मुखं नाम चन्द्रार्द्धमिवचोद्धृतम् । ३ अंगुलानि तथाष्टौच शस्त्रं कार्यं त्रिकूर्चकम् । फलैरन्तर्मुखाकारैरंगुलैरन्वितं त्रिभिः । एकैकस्यफलस्यैषामन्तरं व्रीहिसम्मितम् ॥ वृत्तं पचांगुलायामं कार्यं रुचकभूषितम् । ४ कुठारिकाया वृन्तंस्यात् सार्द्धसप्तांगुलायतम् । फलमर्धांगुलायामं गोदन्तसदृशं समम् ५ शस्त्रं व्रीहिमुखंकार्यं मंगुलानि षडायतम् । द्व्यंगुलं तस्य वृन्तेष्टांस्यात् तत्फलं चतुरंगुलमम् । तन्मुखं व्रीहिविस्तारं तत्तुसंमूढकंटकम् ६ आरा द्व्यष्टांगुलायामा कर्त्तव्यातु विशाम्पते । तिलप्रमाणन्तुफलंतस्याः कार्यसमाहितं । पूर्वांकुरपरीनाहं वृत्तंगोपुच्छसन्निभम् ७ तीक्ष्णमंगुलविस्तारं चतुरंगुलमायतम् । अंगुलानि तु चत्वारि वृन्तंकार्यं विजानता । ८ बडिशौ चापिकर्त्तव्यौ प्रमाणेन षडंगुलैः । स्थानतस्तुतयोरेक एको नात्ययितोभवेत् । अर्द्धपंचागुलंवृन्तं शेषंकार्यं मुखंतयोः । अर्धचन्द्राकृतिं वक्त्रं कार्यं नात्यानतस्यतु । स्वाननस्यानतं तस्मात् बडिशस्यभिषग्वरैः । वृन्ताग्रयोरन्तरंस्यात् यावदर्द्धांगुलंमतम् । एवं हिक्रियते एतौदशशंकुर्विजानता।शंकुवच्चमुखंतस्य कार्यमर्धांगुलायतम् । चतुरस्रं समञ्चैव ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लका आर शेषइसका मुखहोनाचाहिये, एकबडिशयंत्र अर्धचन्द्राकृति और नवाहुआ होताहै । इसका विस्तार नीचेके श्लोकसे देखो एषणीयंत्र व्रणके विस्तार माफिक होताहै । उसका मुख कैंचुएके समान होनाचाहिये ।

उत्तमशस्त्रकेलक्षण ।

तानिसुग्रहाणिसुलोहानिसुधाराणिसुरूपाणिसुस
माहितमुखाग्राण्यकरालानिचेतिशस्त्रसम्पत् ।

अर्थ–इन शस्त्रोंको सुघाट, श्रेष्ठलोहके, उत्तमधारवाले, सुहामने, सुंदरमुखवाले और अकराल, अर्थात् उन्में कोई फांस नहो, अथवा विकरालरूपवाले न होय, ए उत्तमशस्त्रके गुणहैं ।

शस्त्रोंकेदोष ।

तत्रवक्रंकुण्ठंखण्डंखरधारमतिस्थूलमत्यल्पमतिदीर्घमति
ह्रस्वमित्यष्टौशस्त्रदोषाः । अतोविपरीतगुणमाददीतान्य
त्रकरपत्रात् । तद्धिखरधारमस्थिच्छेदनार्थम् ।

अर्थ–टेढा, भौतरा, खंडित, कठोरधार, अत्यंतमोटा, अतिपतला, अत्यंत लंबा, अत्यंत छोटा, ए शस्त्रके आठ दोषहैं । इसीसे एक करपत्र (करोत) को छोडकर अन्य इससे विपरीत गुणवान् शस्त्र लेने उचितहैं । खरधारावाला शस्त्र हड्डी काटनेको कहाहै । इसीसे करोत खरधारावाली लेनी ।

शस्त्रोंकीधार ।

तत्रधाराभेदनानांमासूरी, लेखनानामर्द्धमासूरी, व्यधनानां
विस्रावणानाञ्चैकैशिकी, छेदनानामर्धकैशिकीति ।

अर्थ–भेदनेके निमित्त वृद्धिपत्र और नखशस्त्र आदिकी धार मसूरकी दालके समान पतली करनी चाहिये, लेखनके अर्थ मंडलाग्र आदि शस्त्रोंकी धार मसूरदालकी आधी होनी चाहिये । वेधनेकेलिये कुठारी आदिकी धार और विस्रावणके निमित्त सूची, कुशपत्र आदिकी धारा केश (बालकेसमान) पतली होनी चाहिये । यदि उक्त वृद्धिपत्रादिकोंको छेदनेके अर्थ प्रयोगकरे तो उनकी धार आधेबालके समान होनी चाहिये ।

शस्त्रोंकीपायना ।

तेषांपायनात्रिविधाक्षारोदकतैलेषु । तत्रक्षारपायितंशरश

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ल्यास्थिच्छेदनेषु। उदकपायितंमांसच्छेदनपाटनेषु। तैल पायितंशिराव्यधनस्नायुच्छेदनेषु। तेषांनिशानार्थंश्लक्ष्ण शिलामाषवर्णाधारासंस्थापनार्थंशाल्मलीफलकमिति।

अर्थ–उनशस्त्रोंकी पायना (पानीचढाना) तीनप्रकारकीहै, यह लुहारोंमें प्रसिद्धहै। एक क्षारपायना, दूसरीजलपायना और तीसरी तैलपायना, तहां क्षारपायना अर्थात् क्षारोंमें बुझायकर जो वाड धरीजातीहै, वो बाण, शल्य और हड्डीके काटनेमें कहीहै। और जलपायना मांसकेछेदन पाटनमें जाननी। और तीसरी तैलपायना शिरावेध स्नायुच्छेदनेमें कहीहै। अब कहतेहैं कि, यदि बीचमें धार भौंतरी होजावे उसके घिसनेके लिये साफ चिकनी उडदके रंगकी ऐसी पाषाण (पत्थर) की शिल्ली लेनी चाहिये। और धारके संस्थापनार्थ (ठीककरनेको) सेमरका पट्टा (अथवा चामकापट्टा) होता है। ये शिल्ली और पट्टा बहुधा नाऊ (हज्जामों) के पास होते हैं।

शस्त्रकोश।

स्यान्नवांगुलविस्तारःसुघनोद्वादशांगुलः। क्षौमपत्रोर्णकौशेयदुकूलमृदुचर्मजः। विन्य स्तपाशःसुस्यूतःसांतरोर्णार्थंशस्त्रकः। शला कापिहितास्यश्चशस्त्रकोशःसुसंचयः।

अर्थ–शस्त्रोंके रखनेका कोश ९ अंगुल चौडा और १२ अंगुल लंबा तथा सघन और क्षौम (जोवक्कलसे बनता है) पत्ता, ऊन, रेसम, वस्त्र, और नर्मचमडेका बनाहुआ होनाचाहिये, जिसमें पृथक् फांसेके सदृश खनहो तथा शस्त्रोंके बीच २ में उनका कपडा लगरहाहो, उस कोशका मुख शलाईसे ढकाहुआ और अनेक शस्त्रोंका संग्रहजिसमें ऐसा सुंदरकोश नाईकी पेटीके समान होना चाहिये।

धारकी परीक्षा।

यदासुनिशितंशस्त्रंरोमच्छेदिसुसंस्थितम्। सुगृहीतंप्रमाणेनतदाकर्मसुयोजयेत्।

अर्थ–जब शस्त्रबालोंको कांटडाले और देखनेमेंभी उत्तम दीखे तब जाने कि धार चढगई। और उन पूर्वोक्त शस्त्रोंके पकडनेका स्थानभी उत्तमहो तथा यथाप्रमाणहो, ऐसे शस्त्रोंको छेदन भेदनादि कर्मोंमें योजना करना चाहिये।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अनुशस्त्र ।

अनुशस्त्राणितुत्वक्सारस्फटिककाचकुरुविन्दजलौकाग्नि क्षारनखगोजीशेफालिकाशाकपत्रकरीरबालांगुलयइति ।

अर्थ–अब बालकआदि जो अशस्त्रावचरणीयहै, अर्थात् जिनको शस्त्रकर्मकरना वर्जितहै अथवा शस्त्रकर्मके समय शस्त्र न मिलनेसे उसकर्मको अन्यद्रव्यद्वारा करना, उनद्रव्योंको अनुशस्त्र कहतेहैं; जैसे, त्वक्सार (वांस) स्फटिक, कांच(शीसा) कुरुविन्द (पत्थरकी जातविशेष अर्थात् शिल्ली) जोख, अग्नि, खार, नख, (नाखून) गोजी (गोभी, कोई सहोडा कहतेहै) शेफालिका (जिसकी डंडी लाल होतीहै और शरद्ऋतुमें खिलताहै) शाकपत्र (महावृक्ष जिस्के कठोरपत्ते होतेहैं) करील, बाल, और ऊँगली, ए अनुशस्त्र अर्थात् हीनशस्त्रहैं, अथवा शस्त्रोंके तुल्य है ।

अनुशस्त्रोंकेविषय ।

शिशूनांशस्त्रभीरूणांशस्त्राभावेचयोजयेत् ।
त्वक्सारादिचतुर्वर्गंछेद्येभेद्येचबुद्धिमान् ॥
आहार्यच्छेद्यभेद्येषुनखंशक्येषुयोजयेत्।वि
धिःप्रवक्ष्यतेपश्चात्क्षारवह्निजलौकसाम् ।
येस्युर्मुखगतारोगानेत्रवर्त्मगताश्चये।गोजी
शेफालिकाशाकपत्रैर्विस्रावयेत्तुतान्।एष्वे
ष्वेषण्यलाभेतुबालांगुल्यंकुराहिता ।

अर्थ–उक्त ही शस्त्रोंको बालक और शस्त्रोंसे डरपनेवाले, तथा शस्त्रउपस्थित न होनेसे कार्यमें लेनेचाहिये । तथा इन्में प्रथमके चार अनुशस्त्रोंको (बाँस, स्फटिक, कांच, और कुरविंदको) छेदन भेदन कर्ममेंलेवे, और नखशक्य आहार्यछेद्य भेद्योंमें नखशस्त्र योजनाकरे । क्षारकर्म, वह्निकर्म और जोकलगानेकी विधि आगे कहेंगे । मुखरोग और नेत्रके कोएन्में होनेवाले रोगोंमें गोजीशस्त्र, शेफालिका, और शाकपत्र शस्त्रद्वारा स्राव कराना चाहिये । और एष्य (खींचनेयोग्य) शल्योंमें एषणीशस्त्रके उपस्थित न होनेपर बाल अंगुली और अंकुरादि अनुशस्त्रकार्यमें लानेचाहिये ।

अब शस्त्रगुणसंपत्कारणकहतेहैं ।

शस्त्राण्येतानिमतिमान्शुद्धशैक्यायसानितु ।
कारयेत्करणैःप्राप्तंकर्म्मारंकर्मकोविदम् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–ए पूर्वोक्त मंडलाग्रादि शस्त्रोंको शुद्ध और तीक्ष्णलोहके बुद्धिमान् वैद्य स्वकर्ममें निपुण और पंडित ऐसे लुहारसे बनवावे । कोई कहताहै कि इनशस्त्रोंको खेडी लोहके और जिस लुहारकेपास सब बनानेके ओंजारहो उस्से बनवावे ।

शस्त्राभ्यासकरनेकेगुण ।

प्रयोगज्ञस्यवैद्यस्यसिद्धिर्भवतिनित्यशः । त
स्मात्परिचयःकार्यःशस्त्राणामादितःसदा ॥

अर्थ–शस्त्रका पकडना चलाना आदि प्रयोगके जाननेवालेवैद्यको सिद्धि (आरोग्यसंपादन) सदैवहोतीहै । इसीसे वैद्यको उचितहै कि शस्त्रपरिचय (शस्त्रग्रहणका अभ्यास) प्रथमसेंही करनाचाहिये ।

इतिश्रीमदायुर्वेदोद्धारेबृहन्निघंटुरत्नाकरेसप्तदशस्तरङ्गः ॥१७॥

अथातोयोग्यासूत्रीयमध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अबयोग्यासूत्रीय अध्यायकी व्याख्या करेंगे । योग्या कहिये उत्तमकर्माभ्यास अथवा योग्या कहिये योग्यकास्थापक, उसका सूत्र जिस अध्यायमें हो उसकी व्याख्याकरेंगे ।

अधिगतसर्वशास्त्रार्थमपिशिष्यंयोग्यांङ्कारयेत्
छेद्यादिषुस्नेहादिषुचकर्मपथमुपदिशेत् ।
सुबहुश्रुतोऽप्यकृतयोग्यःकर्मस्वयोग्योभवति ।

अर्थ–सर्वशास्त्रोंके अर्थ पढभीगयाहो तथापि गुरु शिष्यको कर्ममार्गमें योग्यकरे और उसशिष्यको छेद्य (आदिशब्दसे भेद्य वेध्यादि कर्मजानने) और स्नेह (आदिशब्दसै अनुवासन, वमन, विरेचन, स्वेदन आदिका) कर्ममार्ग बतलाना चाहिये अर्थात् इसप्रकार छेदन, इसप्रकार भेदन, इसप्रकार वमन, और विरेचनआदि कर्मकराने चाहिये । यह विधि गुरु शिष्यको बतावे इसका यह कारणहैं कि बहुत पढा और बहुश्रुतभी है परंतु जबतक छेद्यभेद्यादि कर्मोंका अभ्यासनहींकरे अर्थात् अपनेहाथसे चीराफाडी आदि करके नहीं देखे तावत्कालपर्यंत इसकर्ममें योग्य नहींहोवे ।

शिष्यकोदिखानेयोग्यकर्म ।

तत्रपुष्पफलालाबूकालिन्दकत्रापुषैर्वारुककर्कारुक
प्रभृतिषुच्छेद्यविशेषान्दर्शयेदुत्कर्त्तनपरिकर्त्तनानिचो
पदिशेत् । दृतिवस्तिप्रसेवकप्रभृतिषूदकपङ्कपूर्णेषुभे
दयोग्याम् । सरोम्णिचर्मण्याततेलेख्यस्य ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–तहां कहते हैं कि पेठा, घीया, तरबूज, खीरा, ककडी, कौंला आदिमें छेद्य दिखावे (अर्थात् कहींका कहीं हाथ न चलाजावे इसलिये प्रथम हाथ साधनेको पेठे तरबूजके ऊपर छेद्यकर्मोंको दिखावे) तथा कतरना और परिकर्त्तन कहिये चारों ओरसे कतरना दिखावे (अर्थात् ऐसे रोगमें इतनाटुकडा कतरे और ऐसे रोगोंमें इसप्रकार चारोंतरफसे कतरना यह दिखावे । तथा उसीप्रकार शिष्यके हाथसेभी कतरावे कि जिससे उसको काटने और कतरनेका अभ्यास होजावे)और दाति (भस्त्रा वा धोंकनी) पशूआदिका मूत्राशय, प्रसेवक (बीणाकेनीचे अधिक शब्दहोनेके अर्थ जो चमडेसे मढातूंबा होताहै) इत्यादिकोंमें जल, कीच, भरकर भेदकर्म (जैसे मूत्रमार्गरुकनेमें सलाई डालकर खोलनाआदि) दिखावे । रोमयुक्तचमडेमें लेखनकर्मको दिखावे ।

मृतपशुशिरासूत्पलनालेषुचवेध्यस्य । घूणोपहत
काष्ठवेणुनलनालीशुष्कालाबूमुखेष्वेष्यस्य । पनस
बिम्बीबिल्वफलमज्जामृतपशुदन्तेष्वाहार्यस्य । मधू
च्छिष्टोपलिप्तेशाल्मलीफलकेविस्राव्यस्य । सूक्ष्म
घनवस्त्रान्तयोर्मृदुचर्मान्तयोश्चसीव्यस्य ।

अर्थ–बकरीआदि मरेपशूकी नसोंमें तथा कमलकीनालमें वेध्यकर्म करके दिखावे । घुनेहुए काष्ठमें पोलेबांसमें, नरसलकीडंडीमें, सूखीघीया इनके मुखपर एष्यकर्म (खीचनेयोग्योंको) दिखावे । कटहर, कंदूरी, बेलफल, इनकी मज्जामें और मृतपशुओंके दातोंमें आहार्य (उखाडनेयोग्य) कर्मोंको दिखावे । मधुकेछत्तेमें अथवा सहतलिपटे हुए सेमरके पट्टेपर विस्राव्यकर्मोंको दिखावे । पतले मजबूतवस्त्रके छोरोंपर तथा नरम चमडेके किसीभागमें सीव्य (सीनेयोग्य) कर्मोंको दिखावे ।

पुस्तमयपुरुषाङ्गप्रत्यङ्गविशेषेषुबन्धयोग्याम् ।
मृदुमांसपेशीषूत्पलनालेषुचकर्णसन्धिबन्धयोग्याम् ।
मृदुषुमासखंडेष्वग्निक्षारयोग्यांमुदकपूर्णघटपार्श्वस्रो
तस्यलाबुमुखादिषुचनेत्रप्रणिधानबस्तिव्रणबस्तिपी
डनयोग्यामिति ।

अर्थ–वस्त्रनिर्मित मनुष्यके अंग और प्रत्यंगविशेषोंपर बंधन (बांधनेयोग्य) कर्मोंको दिखावे । नम्रचर्म, मांसपेशी, और कमलनालमें कर्णसंधिबन्धन योग्य क-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मोंको दिखावे। नम्रमांसके टुकडोंमें अग्निकर्म और क्षारयोग्य कर्मोंको दिखावे। जलपूर्णघटपार्श्वोंके छिद्रोंमें और घीयाआदिके मुखमें नेत्रप्रवेशन तथा व्रणबस्तिपीडन योग्य कर्मोंको दिखावे।

एवमादिषुमेधावीयोग्याहेंषुयथाविधि।
द्रव्येषुयोग्यांकुर्वाणोनप्रमुह्यतिकर्मसु॥
तस्मात्कौशलमन्विच्छन्शस्त्रक्षाराग्निकर्मसु।
यस्ययत्रेहसाधर्म्यंतत्रयोग्यांसमाचरेत्॥

अर्थ–इसीप्रकार बुद्धिमान् पुरुष औरभी पुष्प फलादिकोंमें योग्यकर्मोंको अपनीबुद्धिसे बतलावे। इसप्रकार द्रव्योंमें अभ्यासकरानेसे वहशिष्य चीरने फाडने आदिकर्ममें मोहको नहीं प्राप्तहोवे इसीसे कुशलहोनेकी इच्छा जिसके उसको शस्त्र, क्षार, और अग्नि इत्यादि कर्मोंके यथायोग्य अर्थात् जिसद्रव्यमें जैसी समानता पाई जावे उसको उसीमें शिक्षादेवे।

इतिश्रीबृहन्निघंटुरत्नाकरेअष्टादशस्तरंगः॥ १८॥

अथातोऽष्टविधशस्त्रकर्मण्यमध्यायंव्याख्यास्यामः।

अर्थ–अब अष्टविधशस्त्रकर्म जिसमें ऐसीअध्यायकी व्याख्याकरेंगे।

छेद्यकर्मकेयोग्य।

छेद्याभगंदराग्रन्थिःश्लैष्मिकस्तिलकालकः। व्रणवर्त्मार्बुदा
न्यर्शश्चर्मकीलोऽस्थिमांसगम्। शल्यंजतुमणिर्मांससंघातो
गलशुण्डिकाः। स्नायुमांसशिराकोथेवल्मीकशतपोनकः।
अधुषश्चोपदंशाश्चमांसकन्द्याधिमांसकः।

अर्थ–भगंदरादिरोग, कफजन्यगांठ, तिलकालक, व्रणवर्त्मरोग, अर्बुद, ववासीर, चर्मकीलक, हड्डी, और मांसगतशल्य, लहसन, मांससमूह, गलशुंडिका, स्नायुमांस, और नाडी आदिकापचन (सडजाना) बल्मीक, शतपोनक, अधुष, उपदंश, मांसकंदी, और अधिमांसक, इतनेरोग छेद्य (छेदनेयोग्य) हैं।

भेदनेकेयोग्य।

भेद्याविद्रधयोऽन्यत्रसर्वजाग्रंथयस्रयः। आदितोयेविसर्पा
श्चवृद्धयःसविदारिकाः। प्रमेहपिडिकाशोफस्तनरोगावम

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

न्थकाः।कुम्भिकानुशयीनाड्योवृन्दोपुष्करिकालजी। प्रायशःक्षुद्ररोगाश्चपुप्पुटौतालुदन्तजौ। तुण्डकेरीगिलायुश्च पूर्वयेचप्रपाकिणः। बास्तिस्तथाश्मरीहेतोर्मेदोजायेचकेचन।

अर्थ–सन्निपातकी विद्रधिकेविना, और सबविद्रधि, तीनप्रकारकीगांठ, प्रथमसेही बढनेवाली विसर्पवृद्धि, विदारिका, ग्रन्थिहपिडिका, सूजन, स्तनरोग अवमंथक, कुंभिका, अनुशयी, नाडीव्रण, वृन्द, पुष्करिका, अलजी, क्षुद्ररोग, तालुपुप्पुट, दंतपुप्पुट, तुंडकेरी, गिलायु, और जो पूर्वपाकी रोगहै, बस्ति, और पथरीकेहेतुरूपजो रोगहै तथा मेदासे उत्पन्नहोनेवालेरोग ए सब भेदनेयोग्यहैं।

लेख्ययोग्य।

लेख्याश्चतस्रोरोहिण्यःकिलासमुपजिह्विका। मेदोजोदंतवैदर्भौग्रंथिवर्त्माधिजिह्विका। अर्शांसिमण्डलंमांसकंदीमांसोन्नतिस्तथा।

अर्थ–चारप्रकारकी रोहिणी, किलास, उपजिह्विका, मेदसेप्रगट दंतवैदर्भ, और गांठ, वर्त्मरोग, अधिजिह्वा, ववासीर, मंडल, मांसकंदी, मांसोन्नति, इतनेरोग लेख्य हैं। अर्थात् ऊपरसे छीलने योग्यहैं।

वेध्यऔरएष्य।

वेध्याशिरावहुविधामूत्रवृद्धिदकोदरम्। एष्या नाड्यःसशल्याश्चव्रणाउन्मार्गिणश्चये।

अर्थ–अनेकप्रकारकीशिरा (नस वा रग) मूत्रवृद्धि, और दकोदर ए रोग वेध्य हैं। सशल्यनाडीव्रण और उन्मार्गिव्रण ए रोग एष्य (चूसकरखींचनेयोग्य) हैं।

आहार्यऔरस्राव्य।

आहार्याःशर्करास्तिस्रोदन्तकर्णमलाश्मरी। शल्यानिमूढगर्भाश्चवर्चश्चनिचितंगुदे। स्राव्याविद्रधयः पञ्चभवेयुःसर्वजाद्दते। कुष्ठानिवायुः सरुजः शोफोयश्चैकदेशजः।

अर्थ–त्रिविधशर्करा रोग, दन्तमल, कर्णमल, पथरी, शल्य, मूढगर्भ, गुदामें मलकासमूह, एरोग आहार्य अर्थात् निकालने योग्य हैं। संनिपातकी को त्यागकर पांच विद्रधि, कोढ, पीडासहित वायुरोग, एक अंगकी सूजन।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पाल्यामयाः श्लीपदानिविषजुष्टस्यशोणितम्। अर्बुदानिविसर्पाश्चग्रंथयश्चादितस्तुये। त्रयस्त्रयश्चोपदंशाःस्तनरोगाविदारिका। शौषिरोगलशालूकंकण्टकाः कृमिदन्तकः।दन्तवेष्टः सोपकुशःशीतादोदन्तपुप्पुटः।पित्तासृक्कफजाश्चोष्याःक्षुद्ररोगाश्चभूयशः।

अर्थ—कर्णपालीके रोग, श्लीपद, विषदूषित रुधिर, अर्बुद, विसर्प, वातकी पित्तकी और कफकी गांठ, उपदंश, स्तनरोग, विदारिका, शौषिर, गलशालूक, कंटक, कृमिदंतक, मसूढेके रोग, उपकुश, शीताद, दंतपुप्पुट, पित्तरक्त, कफसे होनेवाले होठोंके विकार, और बहुतसे क्षुद्ररोग ए सब रोग स्राव्य हैं।

सीव्यरोगए।

सीव्यामेदःसमुत्थाश्चभिन्नासुलिखितागदाः।
सद्योव्रणाश्चयेचैवचलसंधिव्यपाश्रयाः।

अर्थ—मेदसे होनेवाले रोग, चिरेहुए लिखित (छिलेहुए) सद्योव्रण और जो चलसंधिके आश्रित हैं, ए रोग सीव्यहैं अर्थात् सीने लायक हैं।

नक्षाराग्निविषैर्जुष्टानवामारुतवाहिनः। नांतर्लोहितशल्याश्च तेषुसम्यग्विशोधनम्। पांशुरोमनखादीनिचलमस्थिभवेच्च यत्। अहृतानियतोऽमूनिपाचयेयुर्भृशंव्रणम्।रुजश्चविविधाः कुर्य्युस्तस्मादेतान्विशोधयेत्। ततोव्रणंसमुन्नम्यस्थापयित्वा यथास्थितम्।

अर्थ—जो व्रण क्षार, अग्नि और विषसंयुक्त हैं उनका सीव्य कर्म न करे। तथा जो पवनके वहनेवाले, तथा जिनके भीतर लोहितशल्य है, उनकाभी सीव्यकर्म न करे किंतु ऐसे व्रणोंका शोधन कर्म करे। जिनमें धूल, बाल, नख, आदि होवे और जिसमें चलायमान हड्डी होवे, इन सबको निकाल कर व्रणको, शुद्धकरे यदि पूर्वोक्त धूलवाल न निकाले तो वे व्रणको पचाय अनेक प्रकारकी पीडा करते हैं अतएव व्रणसे धूल आदिका विशोधन अवश्य करे, पीछे उसको नरमकर यथास्थित स्थापन करे।

सीव्येत्सूक्ष्मेणसूत्रेणवल्केनाश्मन्तकस्यवा। शणजक्षौमसूत्रा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भ्यांस्नाय्वावालेनवापुनः । मूर्वांगुडूचीतानैर्वासीव्येद्वेल्लित कंशनैः॥सीव्येद्गोफणिकांवापिसीव्येद्वातुन्नसेविनीम् । ऋजु ग्रंथिमथोवापियथायोगमथापिवा ।

अर्थ–जब व्रण शुद्ध हो जावे तब उसको बहुत बारीक डोरेसे अथवा वल्कलके सूतसे अथवा पटसन वा सन अथवा रेसम, तात, बाल इनसे सीना चाहिये । अथवा मूर्वा और गिलोयके टेढतंतूओंसे व्रणके दोनों प्रान्त मिलायकर धीरे २ सीना चाहिये । गोफणिका, तुन्नसेवनी, अथवा नम्रग्रंथी ए तीन प्रकार अथवा औरभी जो सीनेके योग्य हैं उनको जंहा जैसी चाहिये ऐसे सिलाई करे ।

अथसूची (सुई).

देशेऽल्पमांसेसन्धौचसूचीवृत्तांगुलद्वयम् । आयताऽयंगु लात्र्यस्रामांसलेवापिपूजिता । धनुर्वक्राहितामर्मफलको शोदरोपरि । इत्येतास्त्रिविधाः सूचीस्तीक्ष्णाग्राःसुसमा हिताः । कारयेन्मालतीपुष्पवृन्ताग्रपरिमंडलाः ।

अर्थ–थोडे मांसवाले प्रदेशमें और सन्धिमें दो अंगुल लंबी और गोल सुई होनी चाहिये, और तीन अंगुल लंबी और कुछ त्रिकोण सूई मांसल प्रदेश अर्थात जहां अधिक मांस होवे उस जगेकेलिये उत्तम है और धनुषके समान टेढी ऐसी सुई मर्मफल कोश, और उदरके ऊपर हितहै । ए तीन प्रकारकी सुईओंके अग्र-भाग तीक्ष्ण और मालतीपुष्पके डाँठरेके समान आगेको गोल होनी चाहिये ।

बहुतदूरऔरबहुतसमीपटाँकेलगानेकेदोष ।

नातिदूरेनिकृष्टेवासूचिकर्मणिपातयेत् । दूराद्रुजोव्रणौष्ट्यस न्निकृष्टेऽवलुञ्चनम् । अथक्षौमपिचुच्छन्नंसुस्यूतंप्रतिसारयेत् । प्रियङ्ग्वञ्जनयष्ट्याह्वरोध्रचूर्णैःसमन्ततः । शल्लकीफलचूर्णैर्वा क्षौमध्यामेनवापुनः । ततोव्रणंयथायोगंबद्धाचारिकमादिशेत्

अर्थ–जिस समय वैद्य किसी घावको सीवे तो अत्यंत पास २ तथा बहुत दूर २ टांके न देवे । दूर २ टाँके देनेसे पीडा होती है । और व्रण भरनेसे रहजाताहै । और बहुत पास २ टांके देनेसैं सब आपसमें मिलजाते हैं । इस प्रकार यथायोग्य टांके देकर उन टांकोंके ऊपर पटवस्त्र तथा रूईके गालेद्वारा आच्छादन करे । तथा प्रियंगु, सुरमा, मूलहटी, लोध और शल्लकी फल आदिके चूर्णद्वारा प्रतिसारण

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करे। तदनंतर नियमितरूप व्रणबंधन करिके रोगीको कर्त्तव्य कर्म बतलावे अर्थात् अमुक कर्म करना तुमको पथ्यहै और अमुक कर्म अपथ्य है।

एतदष्टविधंकर्मसमासेनप्रकीर्तितम्।चिकित्सितेषुकात्स्न्यें नविस्तरस्तस्यवक्ष्यते। हीनातिरिक्तंतिर्यक्चगात्रच्छेदन मात्मनः। एताश्चतस्रोऽष्टविधेकर्मणिव्यापदः स्मृताः।

अर्थ—इस जगे यह आठ प्रकारका शस्त्रकर्म संक्षेपसे कहाहै, इसको विस्तारपूर्वक आगे चिकित्सास्थानमें कहेंगे। इस आठ प्रकार शस्त्र क्रियाका हीनता, अतिरिक्तता, तिर्यक्छेद, और अपने देहका छेद होना ये अष्टविध शस्त्रकर्ममें चार प्रकारकी व्यापादि (व्याधि) कहीहै। ये चार प्रकारके दोष रहित वैद्य होना चाहिये।

कुशस्त्रचलानेके अवगुण।

अज्ञानलोभाहितवाक्ययोगभयप्रमोहैरपरैश्चभावैः। यदाप्रयुंजीतभिषक्कुशस्त्रंतदासशेषान्कुरुतेविकारान्॥ तंक्षारशस्त्राग्निभिरौषधैश्चभूयोऽभियुञ्जानमयुक्तियुक्तम्। जिजीविषुर्दूरतएववैद्यंविवर्जयेदुग्रविषाग्नितुल्यम्॥ तदेवयुक्तंत्वतिमर्मसंधीन्हिंस्याच्छिरास्नायुमथास्थिचैव। मूर्खप्रयुक्तंपुरुषंक्षणेनप्राणैर्वियुंज्यादथवाकथंचित्॥

अर्थ—अज्ञानसे, लोभसे, अहितवाक्यके कहनेसे, भय, मोह और अन्यभावसे यदि वैद्य खोटेशस्त्रका प्रयोगकरे तो वो शस्त्र अनेक विकारोंको करेहैं। जो चिकित्सक अयौक्तिक अर्थात् युक्तिरहितहो, क्षार, शस्त्र, अग्नि और औषधको वारंवार प्रयोगकरे उसवैद्यको जीवनेकी इच्छावाला रोगी दूरसेही त्यागदेवे। मर्म और संधिस्थान इनका अतिक्रम करके शस्त्रादि प्रयोग करनेसे शिरा, स्नायु और अस्थिपर्यंतका क्षय होकर रोगीका जीवन विनाश होवे।अथवा अनेक क्लेशोंसे प्राण न बचे इसीसे मूर्खवैद्यसे शस्त्रकर्म कदाचित् नहीं करना चाहिये।

मर्मविद्धकेलक्षण।

भ्रमः प्रलापः पतनंप्रमोहोविचेष्टनंसंलपनोष्णताच। स्रस्ताङ्गतामूर्च्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रारुजोवातकृताश्चतास्ताः॥ मांसोदकाभंरुधिरंचगच्छेत्सर्वेन्द्रियार्थोपरमस्तथैव। दशार्धसंख्येष्वपिहिक्षतेषुसामान्यतोमर्मसुलिङ्गमुक्तम्॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–पंच मर्मस्थानमें शस्त्र लगनेसे भ्रम, प्रलाप, गिरजाना, मोह, दुष्टचेष्टा, पुकारना, गरमी, अंगोंमें शिथिलता, मूर्च्छा, ऊर्ध्ववात, वातकी तीव्रपीडा, मांसके धोनेसे जैसा जल निकलेहै ऐसा रुधिर निकसे, तथा सर्वइन्द्रियोंकी शक्तिका लोपहोना ए लक्षण होते हैं ।

छिन्नभिन्नशिराके लक्षण ।

सुरेन्द्रगोपप्रतिमंप्रभूतंरक्तंस्रवेद्वैक्षततश्चवायुः । करोति
रोगान्विविधान्यथोक्तान्छिन्नासुभिन्नास्वथवाशिरासु ॥

अर्थ–शिरा (रग) के छिन्न भिन्न होनेसे जो घाव होजावे उसमेंसे अत्यंत अधिक वीरबहूटीके समान लाल रुधिर और वायु निकले तथा अनेक प्रकारके रोग होतेहैं ।

स्नायुविद्धके लक्षण ।

कौब्जंशरीरावयवाङ्गसादःक्रियास्वशक्तिस्तुमुलारुजश्च ।
चिराद्व्रणोरोहतियस्यचापितंस्नायुविद्धंमनुजंव्यवस्येत् ॥

अर्थ–स्नायुविद्धहोनेसे शरीका कुबडा होना, तथा सर्व अवयवोंका रहजाना, सर्व कार्यमें अशक्ति तथा अत्यंत पीडाहो और घावके भरनेमें बहुत दिन लगतेहैं ।

सन्धिस्थानमेंक्षतहोनेकेलक्षण ।

शोफातिवृद्धिस्तुमुलारुजश्चबलक्षयः पर्वसुभेदशोफौ ।
क्षतेषुसन्धिष्वचलाचलेषुस्यात्सन्धिकर्मोपरतिश्चलिङ्गम् ॥

अर्थ–सन्धिस्थानमें घाव होनेसे सूजनकी अतिवृद्धिहो, प्रबलपीड़ा, दुर्बलता, पर्वस्थलोंमें टूटेके समान पीड़ा और सूजन तथा संधिकर्मका उपराम अर्थात् अंगचालन विषयमें सामर्थ्यका न होना ए लक्षण होते हैं ।

अस्थिविद्धके लक्षण ।

घोरारुजोयस्यनिशादिनेषुसर्वास्ववस्थासुनशान्तिरस्ति ।
तृष्णाङ्गसादौश्वपथुश्चरुक्चतमास्थिविद्धंमनुजंव्यवस्येत् ॥

अर्थ–अस्थि विद्धहोनेसे दिन रात्र घोरतर पीड़ा, प्यास, अंगोंका रहजाना, सूजन और वेदना उपस्थित होवे । अस्थिविद्ध व्यक्तिको वैद्य किसी अवस्थामें आराम नहीं करसकता ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मांसमर्मविद्धकेलक्षण।

यथास्वमेतानिषिभावयेयुर्लिङ्गानिमर्मस्वभिताडितेषु। स्पर्शंन्नजानातिविपाण्डुवर्णोयोमांसमर्मस्वभिताडितःस्यात्॥

अर्थ–मांसमर्ममें घाव होनेसे स्पर्शज्ञानका अभाव, तथा शरीरका पांडुवर्ण हो।

शस्त्रकर्ममेंकुवैद्यकीनिन्दा।

आत्मानमेवाथजघन्यकारीशस्त्रेणयोहन्तिहिकर्मकुर्वन्।
तमात्मवानात्महनंकुवैद्यंविवर्जयेदायुरभीप्समानः॥

अर्थ–जो कुवैद्य शस्त्रक्रियाकालमें अपने अंगकोही शस्त्रसे छेदलेवे ऐसे आत्महननकर्त्ता कुवैद्यसे आयुकी कामनावाले रोगीको कदाचित् शस्त्रकर्म न कराना चाहिये।

तिर्यक्प्रणिहितेशस्त्रेदोषाः पूर्वमुदाहृताः।
तस्मात्परिचरन्दोषान्कुर्याच्छस्त्रनिपातनम्॥

अर्थ–तिरछे शस्त्रके लगनेसे जो दोष प्रगट होते हैं वो प्रथम लिखआए हैं। वो उक्त दोष जैसे न होवे उस रीतिसे सावधानीके साथ शस्त्रपात करना चाहिये।

आगे जो चार श्लोक हैं वे वैद्यपरीक्षामें कहेंगे।

इति श्रीमदायुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे एकोनविंशस्तरंगः।

इतिशस्त्रचिकित्साविधिः समाप्तः।

(इसके आगे दूसरा भाग देखो)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष - ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रीः

बृहन्निघंटुरत्नाकर

(हिन्दीटीकासहित)

द्वितीय भाग

टीकाकार
श्री० दत्तराम श्रीकृष्णलाल माथुर

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
बम्बई-४

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संस्करण : जुलाई २०११, संवत् २०६८

मूल्य : २५० रुपये मात्र।

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

© सर्वाधिकार : प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रीः ।

अनुक्रमणिका.

आयुर्वेदोद्धार बृहन्निघण्टुरत्नाकरके दूसरे वर्षकी

विषय	पत्र
क्षारपाक.	
क्षारशब्दकी निरुक्ति	३८१
क्षारके गुण....	,,
क्षारके भेद (प्रतिसारणीय क्षारके गुण)	३८२
पानीय क्षारके गुण	,,
क्षारकरके वर्जितमनुष्य	,,
पानीयक्षार निर्माणकी विधि	३८३
प्रतिसारणीय क्षारकी विधि	,,
क्षारयोग्य औषध उखाडनेमें मंत्र	,,
प्रतिवाप	३८५
सप्तरात्रानंतर क्षारयोजना....	३८६
बलीरहनेके अर्थ क्षारमें जल प्रक्षेप	,,
क्षारके दशगुण	,,
क्षारके दशदोष	३८७
अनुभवद्वारा क्षारके गुण	,,
प्रतिसारणीयविधि.	
सम्यक् दग्धके लक्षण	३८८
क्षारके शांति करनेकी विधि	,,
लेपकी विधि....	,,
क्षार शांति होनेमें शास्त्रार्थ	,,
उत्तम हीन और अतिदग्धके लक्षण	३८९
क्षारकृत्य वर्जनीय मनुष्य	,,
वर्जितस्थान	३९०
गुदाआदि अति दग्धके अवगुण....	,,
क्षारसाध्यरोगोंमें भी असाध्यत्व	,,
विद्वान् और मूर्ख वैद्योंकरके प्रयोग करेहुए क्षारके गुणागुण	३९०
अग्निकर्म.	
अग्निकर्मका माहात्म्य (प्रशंसा)	३९१
दहनोपकरण (दहनकर्मकी सामग्री)	,,

विषय	पत्र.
अन्युपकरणराशित्रयकाप्रत्येकविषय	३९१
शिरा आदिमें अग्निकर्मका निषेध	३९२
सापवाद अग्निकर्मका काल	,,
सर्वाग्निकर्माङ्गविधि	३९३
अग्निकर्ममें एकमत	,,
त्वचादिकोंमें दग्धके लक्षण	,,
रोगविशेषमें पृथक् अंगोंमें दागना	३९४
दागनेके भेद	,,
वैद्यको रोगकेसंस्थानादि ज्ञानानंतर अग्निकर्मका अधिकार	,,
सम्यक् दग्धकी चिकित्सा....	,,
अग्निकर्म वर्जित मनुष्य	,,
चतुर्विध अग्निदग्ध	३९५
चिकित्सार्थ विशिष्ट प्लुष्ट दोषोंकी दुष्टी....	३९६
दग्धकी शान्तिके वास्ते चिचित्सा	,,
दुर्दग्धकी क्रिया	३९७
सम्यक् दग्धकी चिकित्सा....	,,
अतिदग्धकीचिकित्सा	,,
सर्वअग्नि दग्धोंके रोपणार्थचिकित्सा	३९८
स्नेहदग्धकी चिकित्सा	,,
धूमोपहतके लक्षण	,,
धूमोपहतकी चिकित्सा	३९९
दग्धसदृशोंकी चिकित्सा	,,
जलौकावचारणविधि.	
जोखोंका विषय	४००
प्रसंगवस सिंगी तूँबीके विषय....	,,
वातादि दुष्टतामें सहेतु शृंगादि अवचारण....	४०१
जलायुका शब्द और जलौकस शब्दकी निरुक्ति....	४०१
चिकित्सोपयोगी जोखोंकी संख्या	,,
सविष जोखोंकी आकृति	४०२

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सविष जोखोंके काटनेसे उपद्रव ४०२
निर्विषजोख ४०३
प्रत्येक जोखकी परीक्षा .... ,,
निर्विष जोख होनेके स्थान.... .... ,,
तथा सविष निर्विष जोखहोनेकी भूमि ४०४
शुभजोख .... ,,
जोखोंके पकडने और पालनेकी विधि .... ,,
विशैल जोख.... .... ४०५
जोख लगानेकी विधि .... ,,
जोख लगनेके लक्षण ४०६
शुद्ध रुधिर पीतीहुई जोखोंके लक्षण ,,
जोख छूटनेके पश्चात् कर्म .... ,,
शोणितावसेचनमें उत्तरकर्म ... ४०७
जोखोंके क्षेत्रादिके जाननेकी आवश्यकता ४०८

शोणितवर्णनीयाध्यायः ।

तहां प्रथम रसका वर्णन .... ,,
रसके स्थानादि ४०९
रसके कर्म .... ,,
अनुमानपूर्वक रसकी गतिका ज्ञान ,,
रसको सौम्यत्व .... ,,
रससे रुधिर और रजका अवस्थान्तर.... .... ४१०
आर्त्तवको आग्नेयत्व .... ,,
रुधिरको पांचभौतिकत्व .... ,,
रसको प्राधान्यता .... ,,
रसशब्दकी निरुक्ति... .... ४११
रससे रुधिर धातुप्रगट होनेमें कालसंख्या ४१२
दृष्टांतत्रयकरके शरीरमें रसकी त्रिविध गति .... ,,
रससे शुक्र होनेमें शंकासमाधान ,,
वातपित्तकफदूषित रुधिरके लक्षण ४१४
त्रिदोष और द्विदोषदूषित रुधिरके लक्षण .... ,,
शुद्ध रुधिरके लक्षण.... .... ,,
अविस्राव्य मनुष्य .... ,,
द्विविधस्रावका वर्णन ४१५
रुधिर न निकलनेके कारण .... ,,
दुष्ट रुधिरके अवगुण .... ,,
अतिरुधिर निकलनेका कारण ४१६
अतिरुधिर निकलनेसे अवगुण .... ,,
उक्तदोषोंमें हेतु .... ,,
शुद्धरुधिरके लक्षण.... .... ,,
सम्यग्विस्रावित रुधिरके लक्षण .... ,,
रुधिरनिकलवानेके गुण ४१७
अप्रवृत्त रक्तका यत्न.... .... ,,
अतिरुधिरनिकलताहो उसका यत्न ,,
रुधिरस्रावमें पथ्य ४१८
रक्तस्रावजनित अग्निमांद्यचिकित्सा ४१९
रुधिररोकनेके चतुर्विध यत्न .... ,,
रुधिरको प्राधान्यता .... ,,
शोणितावशेषमें पश्चात्कर्म.... .... ४२०

दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीयो०

प्रकृतिस्थवातके लक्षण ४२०
प्रकृतिस्थ पित्तके लक्षण ४२१
प्रकृतिस्थ कफके लक्षण .... ,,
प्रकृतिस्थसातधातुओंके सामान्यकर्म .... ,,
मलोंके प्राकृतकर्म ४२२
क्षीणलक्षण .... ,,
वातादिक्षीणहोनेके लक्षण .... ,,
रसादिक्षीणधातुओंके लक्षण ४२३
मलमूत्र क्षीणके लक्षण ४२४
उपधातुक्षीणके लक्षण .... ,,
अतिवृद्ध दोषधातुमलोंके लक्षण ४२५
अतिवृद्धरसादिधातुओंके लक्षण ,,
अतिवृद्धमल और उपधातुओंके लक्षण ४२६
मतांतरसे क्षीणवृद्धधातुओंके लक्षण ४२७
वातक्षीणके लक्षण .... ,,
वातक्षीणवर्धन .... ,,
पित्तक्षयके लक्षण .... ,,
पित्तक्षीणवर्द्धन .... ,,
कफक्षयके लक्षण ४२८

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कफक्षीणवर्द्धन ४२८
रसक्षीणके लक्षण .... ,,
रसक्षीणवर्द्धन .... ,,
रक्तक्षीणके लक्षण .... ,,
रुधिरक्षीणकी वृद्धि.... .... ४२९
मांसक्षीणके लक्षण.... .... ,,
मांसक्षयवर्द्धन .... ,,
मेदक्षयके लक्षण .... ,,
मेदक्षीण वर्द्धन .... ,,
अस्थिक्षयके लक्षण.... .... ४३०
अस्थिक्षीणवर्द्धन ... . ,,
मज्जाक्षयके लक्षण ४३०
मज्जाक्षयवर्द्धन .... ,,
शुक्रक्षीणके लक्षण .... ,,
शुक्रक्षीणाभिवर्द्धन ४३१
ओजक्षयके लक्षण .... ,,
पुरीषक्षयके लक्षण.... .... ,,
मलक्षीणवर्द्धन .... ,,
मूत्रक्षयके लक्षण .... ,,
मूत्रक्षीणाभिवर्द्धन ४३२
स्वेदक्षयके लक्षण .... ,,
स्वेदक्षीणाभिवर्द्धन .... ,,
आर्तवक्षयके लक्षण .... ,,
स्तन्यक्षयके लक्षण .... ,,
स्तन्यक्षयवर्द्धन ४३३
गर्भक्षयलक्षण.... .... ,,
गर्भक्षयवर्द्धन.... .... ,,
बल और बलक्षयके लक्षण.... .... ,,
बलके प्राकृतकर्म ४३४
ओजके लक्षण.... .... ,,
बलक्षयके कारण .... ,,
दूषितओजके लक्षण ४३५
बलकी व्यापद विस्रंसन और क्षय
ए तीन प्रकारकी बिकृति .... ,,
चिकत्सा ४३६
बलक्षीणका चिकित्सान्तर.... .... ,,
बलवान्के लक्षण .... ,,
तेजके लक्षण और गुण .... ,,
तेजका विस्रंसन ४३७
तेजकी व्यापत्ति .... ,,
तेजका क्षय ४३७
चिकित्सा .... ,,
दोषधात्वादिक्षीणमें स्वयोनिवर्द्धमद्रव्यकी कांक्षा .... ,,
क्षीणपुरुषेच्छित द्रव्यदेनेसे क्षीणताका क्षय .... ,,
असाध्य .... ,,
स्थूलहोनेका कारण.... .... ४३८
स्थूलताके दोष .... ,,
उत्पन्न मेदकी चिकित्सा ४३९
कार्श्यहोनेका कारण.... .... ,,
अति कार्श्यके उपद्रव ४४०
चिकित्सा .... ,,
मध्यमदेह होनेका कारण .... ,,
मध्यमदेहकी प्रशंसा.... .... ४४१
दोषोंको धातुमलक्षयकारकत्व .... ,,
दोषधातुमलादि मानकी अनवस्थिति .... ,,
दोषधात्वादिकी समानताका ज्ञान ४४२
अनुमानसे समानताका निर्णय .... ,,
स्वाध्यके लक्षण .... ,,
स्वस्थका पालन .... ,,

दोषवर्णनीयाध्यायः।

तहां वातादिदोषोंको देहके धारणमें मुख्यत्व ४४३
दूषितदोषोंका देहनाशकत्व .... ,,
वातपित्तकफ और रुधिरको देहका धारणत्व .... ,,
वातपित्त और कफशब्दकी व्युत्पत्ति ,,
दोषोंकी संख्या ४४४
उनको देहमें और दिनरात्रिके विभागोंमें व्यापित्वकथन .... ,,
दोषशब्दकी निरुक्ति .... ,,
धातुशब्दकी निरुक्ति ४४५
दृष्टांतदेकर कफपित्त और वातको देहधारणमें मुख्यता .... ,,
मलशब्दकि निरुक्ति .... ,,
वायुको श्रेष्ठत्व .... ,,
अविकृतवायुके कर्म.... .... ४४६

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तथा ४४६
वातके स्थान .... ,,
पांच पवनोंके नाम ४४७
उन पांच पवनोंके कर्म .... ,,
वातकीपंचविधचेष्टा ४४८
क्रुद्धवातके उपद्रव.... .... ,,
पित्तका स्वरूप .... ,,
पांच पित्तोंके नाम ४४९
पांचकादि स्थान .... ,,
उन पित्तोंके कर्म .... ,,
पंच महाभूतोंके अग्निमें चरकका प्रमाण .... ,,
वाग्भटकाप्रमाण .... ,,
वाग्भटके प्रमाणसे पाचक पित्तको श्रेष्ठत्व ४५०
अग्निरूप पित्तकीही भ्राजकादि पांच संज्ञाओंमें वाग्भटका प्रमाण ,,
अग्नि और पित्तके भिन्नभिन्नगुण ४५१
प्रमाणान्तर .... ,,
मधुकोषका प्रमाण ४५२
रसप्रदीपका प्रमाण.... .... ,,
पांच पित्तोंके पृथक् पृथक्कार्य.... ४५३
कफका स्वरूप .... ,,
कफके नाम .... ,,
क्लेदनादिकफोंके स्थान .... ,,
क्लेदनकफोंके कर्म ४५४
अवलंबनकफके कार्य .... ,,
रसनकफके कार्य .... ,,
स्नेहकफके कार्य .... ,,
अविकृतदोषोंके स्थानोंकी समाप्ति ,,
प्रसंगवसरुधिरके स्थान ४५५
रुधिरके गुण.... .... ,,
संचितदोषोंके लक्षण .... ,,
वातकोपके कारण .... ,,
वातकोप होनेका काल ४५६
पित्तकोपके कारण .... ,,
पित्तकोप होनेका काल ४५७
कफकोपकारण .... ,,
कफकोप होनेका काल .... ,,
रुधिरकोपका कारण ४५८
रुधिर कुपित होनेकाकाल .... ,,
वु पितदोषोंके लक्षण .... ,,
दोषोंके प्रसर .... ,,
प्रसरहोनेमें दृष्टान्त.... .... ४५९
प्रसरकी संख्या .... ,,
कुपितदोषोंका विकारकारित्व .... ,,
अल्पदोष विकारकारी नहीं होते ४६०
दोषोंका दोषान्तर स्थानमें जानेसे उसका उसीस्थानानुसारचिकित्सा कर्तव्यकथन .... ,,
प्रसरवान् और कुपितदोषोंमें पृथक् पृथक् उपद्रव.... .... ,,
दोषोंका स्थानसंश्रय ४६१
व्याधिदर्शन ४६२
वैद्यको दोषोंका संचयप्रकोपादि जाननेकी आवश्यकता .... ,,
कुपितदोष प्रकुपितदोषका अनुगामी होताहै ४६३
संसर्ग सन्निपातकी चिकित्सा ४६४

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चर्य्याचन्द्रोदयप्रारम्भः ।

ऋतुचर्याध्यायः

प्रथम कालका वर्णन ४६५
कालके अहोरात्रादि विभाग .... ,,
संवत्सरनिमेषादिका वर्णन ४६६
ऋतुकथन .... ,,
ऋतुओंके पृथक् पृथक् विभाग ४६७
अयन .... ,,
दक्षिणायनमें चन्द्र और अम्ललव-
णादिकोंको बलिष्ठत्वकथन .... ,,
उत्तरायणमें सूर्य और तिक्तकटुका-
दि रसोंको बली होना.... .... ४६८
ऋतुपरत्वमनुष्योंको बली और नि-
र्बली होना.... .... ,,
चन्द्र और सूर्यके आश्रयसे पवन
जगतको पालन करतीहै .... ,,
संवत्सर युग और कालचक्रका
वर्णन ४६९
आयुर्वेदशास्त्रके मतसे ऋतुवर्णन ,,
छःऋतुओंका मासपरत्वनाम .... ,,
प्रावृट् और वर्षाऋतुमें मतांतर.... ४७०
पित्तादि दोषोंका सहेतुक संचय
और प्रकोप तहां प्रथम पित्तका ,,
कफका संचय और प्रकोप ४७१
वातका संचय और प्रकोप .... ,,
संचितदोषोंका यत्न ४७२
छओं ऋतुओंका अहोरात्रमें परि-
वर्त्तन .... ,,
अव्यापन्न ऋतुओंके गुण ४७३
व्यापन्न (दूषित) ऋतुओंके अव-
गुण.... .... ,,
प्रमाणान्तर .... ,,
दूषित ऋतुओंकी चित्किसा ४७४
कदाचित् उत्तम ऋतुमें महामारी
आदि होनेका कारण .... ,,
दुष्टपवनके अवगुण.... .... ,,
प्रमाणान्तर ४७५
कालकी दृष्टी.... .... ,,
दुष्टदेशकेलक्षण ४७६
दुष्टजलके लक्षण ४७७
दुष्टपवनके लक्षण ४७८
ऋतुव्यापदादिकृतरोगोंकी चि-
कित्सा ४७९
प्रसन्न ऋतुओंका वर्णन और उनके
आहार विहार आदिका वर्णन
तहां हेमन्तऋतुका वर्णन ४८०
गद्यसे कहेको फिर पद्यसे कथन ,,
हेमन्तऋतुकी उत्तमता ४८१
हेमन्तऋतुकी चर्या.... .... ४८२
प्रमाणान्तर .... ,,
व्यायामांतके भोजनमें प्रमाण ४८४
वस्त्रादिका और धूपका सेवन ४८५
ग्रन्थान्तरके मतसे हेमन्तचर्या ४८६
हेमन्तऋतुमें अपथ्य.... .... ४८८
शिशिरऋतुचर्या .... ,,
शिशिरऋतुके गुण ४८९
ग्रन्थान्तरके मतसे वर्णन .... ,,
क्षेमेंद्रका प्रमाण .... ,,
हेमन्तऋतुमें शयनक्रम ४९०
वसंतऋतुवर्णन ४९१
आत्रेयके मतसे वर्णन ४९२
वाग्भटके मतसे चर्या ४९३
कफनाशक यत्न .... ,,
वसंतमें मध्याह्नचर्या.... .... ४९४
वैद्यसारसंग्रहकी रीतिसे वर्णन .... ,,
रात्रिमें शयनक्रम .... ,,
ग्रन्थान्तरका प्रमाण.... .... ४९५
वसंतऋतुमें अपथ्य ४९७
ग्रीष्मऋतुचर्या ४९८
वाग्भटके मतसे वर्णन .... ,,
ग्रीष्ममें रात्रिचर्या ४९९
मध्याह्नक्रम ५००
पुनः रात्रिक्रम .... ,,
वैद्यसारसंग्रहका प्रमाण ५०१
मन्थ (सत्तू).... .... ,,
ग्रन्थान्तरका प्रमाण.... .... ५०२
ग्रीष्मऋतुमें अपथ्य ५०४
वर्षाचर्या ५०५
वर्षाऋतुवर्णन ५०६

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रावृषि पथ्यम् ५०८
अपथ्य ५०९
वर्षाऋतुमें अपथ्य ५१३
शरदऋतुवर्णन ५१४
शरदऋतुचर्या .... ,,
हंसोदकके लक्षण ५१६
ग्रन्थान्तरके मतसे शरदऋतुमें पथ्य वस्तु ५१७
शरदऋतुमें अपथ्य ५१८
संक्षेपसे ऋतुचर्या ५१९
ऋतुसंधिमें कर्त्तव्यकर्म .... ,,
ग्रन्थान्तरका प्रमाण.... .... ,,
ऋतुओंके अति-हीन-मिथ्यागुण होनेसे प्रगटरोगोंकी चिकित्सा ५२०
देशपरत्व विकार ५२१

दिनचर्याध्यायः ।

स्वास्थ्यताकी आवश्यकता.... .... ५२३
स्वस्थके लक्षण .... ,,
प्रातःकृत्य ५२४
व्यासोक्त प्रातःस्मरणीय .... ,,
अन्य प्रातःस्मरण ५२५
जगकर प्रथम देखने योग्य वस्तू.... ,,
प्रमाणान्तर ५२६
मलादि विसर्जन .... ,,
मलबाधारोकनेके अवगुण.... .... ,,
अधोवातरोकनेके अवगुण .... ,,
मूत्रवेगधारणके उपद्रव .... ,,
मलबाधामें अन्यकार्य न करना और बलपूर्वक मलत्यागका निषेध तथामनकेवेग धारणकी आज्ञा.... ५२७
शौचादिके गुण ५२७
शौचप्रयोग .... ,,
कालपरत्व शौचकी आज्ञा.... .... ५२८
हस्तपादप्रक्षालन ५२९
कंगेसे बालोंका सुधारना.... .... ,,
दांतनकरनेकी विधि .... ,,
मधुरादि रसयुक्तदांतनोंके पृथक्२फल५३०
दांतनकरनेके गुण ,,
दांतनकरनेके काष्ठकेपृथक्२ गुण .... ,,
निषिद्ध दांतन ५३१
दांतनकरना निषेध .... ,,
दांतनग्रहणमें जपनीय मंत्र .... ,,
सुगंधित दांतनकरनेके गुण .... ,,
जातिपरत्व दांतन ५३२
जिभीकरनेको धातुपट्टी .... ,,
जिभीका परिमाण .... ,,
जिभीपूर्व अथवा उत्तरमुखकरे और दांतनके अभावमें २२कुल्ले करनेकी आज्ञा .... ,,
कुल्लेकरनेकी विधि .... ,,
कालपरत्व गंडूषकी आज्ञा ५३३
गरमजलके कुल्ले ... . ,,
कुल्लेकरना निषेध .... ,,
मुखप्रक्षालन .... ,,
नस्यविधि तथागुण.... .... ,,
अंजन आंजना ५३४
स्रोतोंजन (कालेसुरमे) केगुण .... ,,
सुरमा लगाना निषेध .... ,,
ताम्बूलभक्षण ५३५
यथाधिकारपर अधिकारीनूको नियुक्तकरना .... ,,
क्षौरकृत्य .... ,,
(क्षौरकरानेका मुहूर्त्त) .... ,,
नासिकाके बालउखाडनेका निषेध ,,
बालोंकेशोधनका गुण ५३६
दर्पनदेखना .... ,,
व्यायाम (दंडकसरत) केगुण .... ,,
बलार्द्धके लक्षण ५३७
व्यायामवर्जित मनुष्य .... ,,
अतिव्यायामकरनेसे उपद्रव .... ,,
अभ्यंग (मालिस) के गुण .... ,,
पिष्टादिपदार्थोंसे तैलकोउत्कृष्टत्व ५३८
तैलाभ्यंगमें श्रीपतिका प्रमाण .... ,,
वर्जितवारका परिहार .... ,,
तैलमालिसके गुण .... ,,
सुगंधित तैलकरण .... ,,
मस्तकमें तेलडालके गुण .... ,,
कानोंमें तेलडालनेकेगुण ५३९
पादाभ्यंग ....

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अभ्यंगके अयोग्यमनुष्य ५४०
उवटनाकरनेके गुण .... ,,
मुखलेप .... ,,
स्नानके गुण .... ,,
स्नानसे जठराग्निकी प्राबल्यता ५४१
शीतलऔर उष्णजलका स्नान .... ,,
उष्णजलके गुणागुण .... ,,
(जलवासित करनेकीविधि) .... ,,
चारवस्तु पथ्य ५४१
आमलेके मालिससैं स्नानमें हरिश्चन्द्रका वाक्य .... ,,
स्नाननिषेध ५४२
(नरपतियोग्य शिरःस्नान) .... ,,
अंगमार्जन .... ,,
चतुर्वर्णको चारप्रकारके अहतवस्त्रधारण कीआज्ञा .... ,,
(पट्टवस्त्रके गुण) .... ,,
ऋतुपरत्व वस्त्रधारण .... ,,
रेसमीवस्त्र .... ,,
कषाय (गेरुआ) वस्त्र ५४३
सफेद वस्त्र .... ,,
नवीन और उज्ज्वल वस्त्रकी प्रशंसा ,,
मलिनवस्त्रकी निंदा .... ,,
सुगंधिलेप ५४४
कालपरत्व चंदनधारन .... ,,
चंदनलगानेके गुणागुण .... ,,
संध्यावंदन और इष्टदेवअर्चन ५४५
ब्राह्मणादिपूजन ५४६
पुष्पधारण .... ,,
पृथक्२ पुष्पोंके धारणमें योग .... ,,
किसकालमें कौनसा पुष्प धारणकरना ५४७
ग्रीष्मऋतुमें धारणीय पुष्प .... ,,
शीतकालमें धारणीय पुष्प .... ,,
वर्षाकालमें धारणीय पुष्प .... ,,
प्रत्येक पुष्पधारणकी अवधी ५४८
पुष्पोंके पृथक् पृथक् गुण .... ,,
ऋतुपरत्व पुष्पधारण ५४९
भूषणधारण .... ,,
रत्नाभरण .... ,,
मोतींके हारोंके नाम .... ,,
नवग्रहोंकेरत्न ५५०
नवग्रहोंकीप्रसन्नार्थमूल (जडी) धारण ५५१
वस्त्ररत्नादिके गुण .... ,,
मंगलधारण .... ,,
मंगलपदार्थ दर्शन ५५२
मंगलीक वस्तु .... ,,
पादुकारोहण .... ,,
चतुर्विध इच्छा .... ,,
भोजनकी इच्छारोकनेके अवगुण.... ,,
तृषारोकनेके अवगुण ५५३
निद्रारोकनेके अवगुण .... ,,
कामवेग रोकनेके अवगुण.... .... ,,
भोजनका काल .... ,,
भोजनविधान ५५४
आहारके गुण .... ,,
रसादिकोंका पाकज्ञान ५५५
भोजन स्थान .... ,,
प्रमाणांतर .... ,,
भोजनस्थानका वर्णन .... ,,

पाकविधान. ५५६

रसोई करनेका स्थान ५५७
सूपकार (रसोय्या) के लक्षण .... ,,
तथा .... ,,
विषदूषितान्नकी परीक्षार्थ सद्वैद्य-स्थापन ५५८
महानसोपयोग्योपकरण ५५९
उपस्कर ५६०
पात्रोंके पृथक् पृथक् गुण .... ,,
पाकविधि .... ,,
चासनी ५६१

मोदक.

दहींके लड्डू ५६२
बिन्दु (बूंदी) के लड्डू .... ,,
मुक्तामोदक (मोतीचूर) के लड्डू... ५६३
रत्नमोदकाः ५६४
सेविकामोदक (सेवके) लड्डू .... ,,
समिका मोदक (मगद) के लड्डू ,,
द्रावक मोदक .... ,,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चूरमोदक (चूरमा)के लड्डू ५६५
मुद्गादि मोदक (मूग)के लड्डू .... ”
होलक मोदक ५६६
बीजमोदक (बीजके) लड्डू ५६७
शालूक मोदक .... ”
क्षीरशाका ५६८
निष्पंद .... ”
पलल (तिलभुग्गा) .... ”
तिलमोदक ५६९
मुद्गदल (मूगदल) के लड्डू .... ”
पायस (खीर) .... ”
नालिकेरपायस ५७०
लप्सिका (सीरा) .... ”
भैमी लप्सिका ५७१
चन्द्रहासा लप्सिका.... .... ”
फेनिका (फैनी) .... ”
अन्यप्रकार ५७२
शकट ५७३
पत्रफेनिका .... ”
गेंहूकी पत्र फेनीके गुण .... ”
तंतुफेनिका .... ”
गुलोरिका (सक्करपूरी) ५७४
दुग्धकूपिका (गुलाबजामुन) ५७५
शालिपूप (अंदरसे) .... ”
अपूप (पूआ) ५७६
दधिपूप .... ”
चिरमंठ .... ”
खाजा (खजला) ५७७
मल्लपूप (मालपूआ) ५७८
कुंडलिनी (जलेबी) ५७९
द्वितीयप्रकार ५८०
तृतीय प्रकार.... .... ”
घृतपूर (घेवर) .... ”
नालिकेर घृतपूर ५८१
क्षीर घृतपूर .... ”
शालिपिष्टादि घृतपूर .... ”
(कसेरु घेवर) .... ”
आम्ररस घृतपूर ५८२
द्वितीयप्रकार .... ”
संयाव (गूझागुझिया) ५८३
अथान्य प्रकार ५८३
कर्पूरनालिका ५८४
अर्थेंदुरसा (अँदरसे) .... ”
द्वितीयप्रकार ५८५
शर्करापालिका .... ”
शंखपाल (मीठे सकलपारे) ५८६
मंठ (मठरी) .... ”
सेविका (सैंमई) .... ”
शष्कुली (पूडी) ५८७
माषगर्भा (कचोरी) .... ”
दुग्धाम्र ५८८
शिखरिणी .... ”
माक्षिकाशिखरणी ५८९
मंडक ५९०
द्रव्ययोजना .... ”
वेशवार (मसाला).... .... ५९१
भक्त (भात) की विधि .... ”
मढमढाभातकी विधि ५९२
भुनेचावलका भात .... ”
गुणान्तर ५९३
कच्चेचावलोंका भात.... .... ”
ताजेजलमेंकरेहुएभातके गुण .... ”
बासेजलका भात ५९४
कांजीआदिमें बनेहुए भातके गुण.... ”
अन्यमिश्रित भक्तके गुण .... ”
जवके गुण .... ”
अथ अन्न ५९५
परमान्न .... ”
हरिद्रान्न .... ”
दध्यन्न (दध्योदन).... ....५९६
खिचडी .... ”
गुडान्न .... ”
मुद्गान्न ५९७
कृशरा .... ”
प्रकारान्तर .... ”
द्विदलान्नके गुण ५९८
तापहरी (ताहरी).... .... ”
शाकौदन ५९९
तिलमाषादिसिद्धअन्नके गुण .... ”
नवान्न .... ”

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कोष्णान्न (किंचित् गरमअन्न) ५९९
शीतौदनके गुणदोष ६००
अतिशीतोष्ण क्लिन्नशुष्कान्न .... ,,
मण्डविधि .... ,,
लालचावलोंका भात ६०१
सपेद चावलोंका भात .... ,,
वाद्यमंड और लाजमंड .... ,,
गोधूमादिमंडके गुण ६०२
विलेपी .... ,,
पेया .... ,,
यूषविधि ६०३
कृताकृतौ यूषौ .... ,,
मुद्गयूष .... ,,
द्वितीय मुद्गयूष .... ,,
मसूरादि यूष.... .... ६०४
शुकधान्य .... ,,
मूलक यूष .... ,,
पंचामृत यूष.... .... ६०५
मुद्गपर्णी यूष.... .... ,,
कुलित्थ (कुलथीका) यूष .... ,,
आढकी (अरहर) का यूष .... ,,
चणक यूष .... ,,
मसूर यूष ६०६
माषयूष (उडदका यूष).... .... ,,
निष्पाव .... ,,
पंचमुष्टिक यूष .... ,,
नवांगयूष .... ,,
दाडिमामलकयूष ६०७
खलयूष .... ,,
कांबलिक यूष .... ,,
अथ अम्लिकासार .... ,,
अगस्त्यसार ६०८
अगस्त्यसारके गुण.... .... ,,
सूप (धोवादाल).... .... ६०९
सूपपाकविधि .... ,,
संस्कारभेदसै दालके गुण .... ,,
मुद्गसूपके गुण ६१०
चणकसूप .... ,,
तुवरीसूप .... ,,
माषसूप ६११
(अरहलकी दालकी भाषाविधि) ,,
वैपुटसूप (खिसारीकी दाल) .... ,,
मकुष्ट सूप .... ,,
चौराकी दाल .... ,,
मटरकी दाल.... .... ६१२
कुल्थीकी दाल .... ,,
मसूरकी दाल .... ,,
मिलीहुई दाल .... ,,
विनाछिलकाऔर छिलकेकी दाल ,,
कुल्माष (घूंघरी) ६१३
उरदकी घूंघरी .... ,,
क्वथिता (कढी) .... ,,
सूखा दही बनानेकी विधि .... ,,
चणकवटी (चनेकीवरी).... .... ६१५
क्वथिता (कढी) के गुण .... ,,
पंचकोलादि कढी .... ,,
क्वाथली ६१६
अलीकमत्स्य (पानवडी) .... ,,
अलीकमत्स्योंके गुण ६१७
रसाराज्या ६१८
माषरंगी ६१९
पत्रवटिका ६२०
माषेंडरी .... ,,
वटिका (मरिचभरी) ६२१
माषवटिका .... ,,
खंडवटिका ६२२
वटका (वडे) ६२३
अन्यविधि .... ,,
कांजिकवटका ६२४
तक्रवटिका .... ,,
पानकवटिका ६२५
मुद्गवटक .... ,,
सूरणवटक .... ,,
कूष्माण्डवटक .... ,,
प्रकारान्तर ६२६
पर्पटाः (पापड) .... ,,
मुद्गपर्पट ६२७
तण्डुलपर्पट ६२८
भस्त्रि (भरता) .... ,,
पोलिका (प्रामठे).... .... ६२९

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्विदलपोलिका (पुरतदार प्रामठे) ,,
पूलिका (मेदाकी पूडी) ६३०
करपट्टिका (रोटी) .... ,,
अंगारकर्कटी (बाटी) ६३१
बलभद्रिका गर्गरी ६३२
पिष्टी (पिट्ठी) .... ,,
वेढमिका (वेढई) .... ,,
भ्राष्ट्जा (खापरपोली) ६३३
वेष्टनी (कचवल्ली) .... ,,
पूरनगर्भा पूलिका ६३४
चाणकी (चनाकी रोटी) ६३५
रागः .... ,,
खांडव ६३६
रागखांढव (मुरब्बा) .... ,,
फलरागखांडव ६३७
अन्यप्रकार .... ,,
आम्रलेह .... ,,
फलवृष्या ६३८
पानक .... ,,
पंचसाराभिधपानक ६३९
वर्द्धमानसट्टक .... ,,
सोमसट्टक ६४०
प्रमोदसट्टक .... ,,
कांजिक .... ,,
दुग्धगुण ६४१
गोदुग्धके गुण .... ,,
गौकी जातिपरत्व दूधके गुण ६४२
भैसके दूधके गुण ६४३
बकरीके दूधके गुण .... ,,
विशेषकथन .... ,,
गरम तथा गरमकरके शीतल करा
इत्यादि दूधके गुण ६४४
कालविशेषमें गुण .... ,,
दुग्धाहारवर्ज्यरोग ६४५
द्रव्यसंयोगसैं गुणदोष ... . ,,
भोजनकुतूहलसैं सुषेणका वाक्य ६४६
मथितक्षीरगुण .... ,,
क्षीरपाकपात्र (अर्थात् दूध औंटानेके
पात्र) .... ,,
मलाईके गुण ६४७
दहीके गुण ६४८
गौ भैस आदिके दहीके गुण .... ,,
तत्तेदूधका और कच्चेदूधसैंजमेहुएद-
हीके गुणागुण ६४९
विनामलाईवालेदूधसैंबनेहुएदही-
केगुण .... ,,
संयोगविशेषसैं गुणविशेष .... ,,
मस्तुकेगुण ६५०
दहीकी मलाईके गुण .... ,,
तक्र (घोल मथित तक्र और उद-
श्वित्) तथा छच्छिकाकेगुण .... ,,
तक्रकेविशेषगुण ६५१
तक्रपीनेका काल और रोगविशेष ,,
तक्रपाननिषेध ६५२
तक्रकोप्राधान्यता .... ,,
गौभैसआदिकी छाछके पृथक्
पृथक् गुण .... ,,
नवनीत (मक्खन) के गुण .... ,,
पृथक् पृथक् गुण ६५३
घृतके गुण .... ,,
पृथक् पृथक् गुण ६५४
नवीनघृतकी प्रशंसा और रोग-
प्रति वर्जितघृत .... ,,
सक्तु (सत्तू) बनानेकी विधि .... ,,
यवसक्तू (जोका सत्तू) ६५५
सक्तुके द्रव्यसंयोगसैं गुण तहां प्र-
थम मंथकी विधि ६५६
सत्तूखानेवाले मनुष्य १० कर्मवर्जित ,,
धानाकृति ६५७
लाजा (खील) बनानेकी विधि .... ,,
पृथुक (चिरवा) ६५८
ओलंबी .... ,,
होलक (होरा) ६५९
चणक (चना) .... ,,
कुंकुमौदन (केशरियाभात) की
विधि ६६०
इक्षुरसौदन (ईखके रसका भात) ६६१
(अकवरा) .... ,,
(थालीपीट) .... ,,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शाककृति अर्थात् शाकबनानेकी विधि ६६२
सौरभ (मसाला).... .... ६६३
एलादिवेसवार (इलायची आदिका मसाला).... .... ,,
केशरादिवेसवार .... ,,
फलादिशाकोका शोधन और करनेकी विधि ६६४
पत्ताआदिशाकोंकी विधि.... .... ,,
हलुआकी विधि ६६५
पेडाकी विधि.... .... ६६६
(भुनीमलाई) .... ,,
(मठरी) ६६७
बरफीबनानेकी विधि .... ,,
मीठीपूरी ६६८

अमानुषीयभक्षण।

पलगर्भापूलिका .... ,,
मांसकी विधि ६६९
अन्यप्रकार ६७०
शाकामिष (शाकमिलामांस) ६७१
शूलपक्कमांसकी विधि ६७२
शूलपक्कमांसकी दूसरी विधि .... ,,
खंडितखगामिषकी विधि.... .... ६७३
मांसवटक (मांसके वडे) .... ,,
मत्स्य (मछली) पकानेकी विधि ६७४
मत्स्यवटी (मछलीकी वडी) ६७५
मत्स्यौदन (मछलीका भात) ६७६
मांसौदन (मांसमिलाभात) .... ,,

इति पाकविधिः।

भोजनकेसमय वर्जितदृष्टि.... .... ६७७
शुभदृष्टी .... ,,
विषमिले अन्नकी परीक्षा ६७८
दूसरी परीक्षा .... ,,
दृष्टिनिवारणोपाय ६७९
भोजनपात्र .... ,,
पात्रोंके पृथक् पृथक् फल .... ,,
तथा ६८०
जलपात्र .... ,,
भोजनके पूर्वभक्षणीय ६८१
सैंधवलवणके गुण ६८१
अदरखके गुण .... ,,
भोजनमें जलपानके गुणागुण .... ,,
भोजनोत्तर गुरुपिष्टादिपदार्थोंका निषेध और घृतलुतादिपदार्थोंका पूर्वभक्षणमें क्रम ६८२
स्वादु अन्नके लक्षण.... .... ,,
स्वादुअन्नके गुण .... ,,
योग्यायोग्य अन्न .... ,,
त्रिविधगुरुअन्नका वर्जन ६८३
आहारको षड्विधत्व.... .... ,,
गुरुआदिअन्नका परिमाण ६८४
केवलशुष्कान्नके दोष .... ,,
चतुर्विधअग्निपरत्वभोजन .... ,,
स्त्रीके समक्षमें और कुटुंबके मनुष्योके संगभोजनकरे ६८५
चारवर्णको चौका लगाना .... ,,
थालका परिमाण .... ,,
थालमें पदार्थ रखनेकाक्रम.... .... ,,
भोजनके समय हस्तपादप्रक्षालनादि और गोग्रासादिनिवेदन.... ,,
प्रथमभोजनके अधिकारी .... ,,
भोजनसमयके नियम ६८६
भोजनक्रम .... ,,
सक्तु (सत्तू) भक्षणमें निषेध .... ,,
विषमाशनके लक्षण.... .... ६८७
अल्प किंवा अधिक भोजनके दोष ,,
अकालभोजनका निषेध .... ,,
प्रथम अन्नरस भक्षणमें प्रमाण .... ,,
भोजनका प्रमाण ६८८
जलका प्रमाण .... ,,
क्षुधातृषामें विपरीतताका निषेध ,,
भोजनान्तमें दूध पीनेका निर्णय.... ६८९
भोजनमें एकहीरस सेवन न करे इसमें ब्रह्मांडपुराणका प्रमाण ,,
मधुर पदार्थसैं भोजनका निर्णय.... ,,
प्रमाणान्तर ६९०
अन्यप्रमाण .... ,,
भोजनोत्तर जलादिद्वारा मुखशोधन ,,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कतिपयपदार्थोंको भक्षण करके जल नहीं पीना.... .... ६९१
भोजनानंतरक्रिया .... ,,
भोजनांतमें अगस्त्यादि ऋषियोंका स्मरण .... ,,
अंगारकादि पांचोंका स्मरण ६९२
भोजनान्तमें शर्याति और सुकन्या-का स्मरण.... .... ,,
भोजनांतमें मनोनुकूलशब्दस्पर्शा-दिकोंका सेवन .... ,,
भोजनोत्तर दोषवृद्धि ६९३
कफप्रतीकार.... .... ,,
ताम्बूलभक्षणके गुण .... ,,
ताम्बूलसंज्ञा .... ,,
पानके सत्ताईस गुण ६९४
चूनाकत्थाके न्यूनाधिकमें कथन.... ,,
चूनेकत्थेआदिका प्रमाण .... ,,
वीडा खानेका समय ६९५
नए और पुराने पानके गुण .... ,,
सुपारीके गुण .... ,,
चिकनी सुपारीके गुण .... ,,
कत्थेचूने और पानके मिले गुण.... ,,
पानके त्याज्य अंडा.... .... ६९६
पानकी पीकके गुणागुण .... ,,
विनापानके सुपारी खाना निषेध ,,
तांबूलका निषेध .... ,,
शतपदगमन.... .... ६९७
शयनक्रम .... ,,
वामपार्श्व (वाईकरवट) सोनेका कारण .... ,,
खट्वादिके गुण ६९८
श्रेष्ठशय्याके गुण .... ,,
पादसंवाहन .... ,,
शयनोत्तर पवन खाना निषेध .... ,,
हवा खानेका काल.... .... ,,
पूर्वदिशाकी पवन ६९९
दक्षिणकी पवन .... ,,
पश्चिमकी पवन .... ,,
उत्तरकी पवन .... ,,
आग्नेयादिविदिशाकी पवनके गुण ७००
अनेकदिशाकीमिली पवनके गुण ७००
पंखेकी पवनके गुण.... .... ,,
दिनमें सोना निषेध.... .... ,,
दिनमें सोनेकी आज्ञा .... ,,
स्वाधीननिद्राके गुण ७०१
भोजनोत्तर निद्राके गुण .... ,,
भोजनोत्तर अन्यवस्तुवर्जित ७०२
अश्यादितापनेके निषेधमें प्रमाण.... ,,
अजीर्णमें भोजनका विधिनिषेध .... ,,
अजीर्णमें कर्त्तव्य .... ,,
रात्रिका भोजनविना परिपक्वभए दिनमें दोवार भोजन न करे .... ,,
अजीर्ण होनेके दैहिक कारण ७०३
अजीर्ण होनेमें मानसिक कारण .... ,,
अध्यशनके लक्षण .... ,,
दिनमें स्त्रीगमननिषेध और बैठने-के गुण .... ,,
मार्गसेवन .... ,,
उष्णीष (पगडी) के गुण.... .... ७०४
उपानह (जोडा) धारण .... ,,
जोडा न पहननेके अवगुण.... .... ,,
छत्रधारण .... ,,
दण्डधारण ७०५
शिबिकारोहण .... ,,
नौकायान .... ,,
हस्तियान.... .... ,,
अश्वयान .... ,,
धूप और छायाके गुण ... . ,,
वर्षाके गुण ७०६
अग्निके गुण .... ,,
धूम (धूंए) के गुण .... ,,

इन्द्रियोपक्रमणीयाध्याय।

इन्द्रियादिपंचक .... ,,
चेष्टा और सत्व ७०७
सत्वके लक्षण .... ,,
इन्द्रियोंको मनके आधीनत्व .... ,,
पंचेन्द्रिय .... ,,
पंचेन्द्रियाधिष्ठान .... ,,
पंचेन्द्रियार्थ और बुद्धि ७०८

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अध्यात्मद्रव्यगुणसंग्रह ७०८
इन्द्रियोंका वासस्थान .... ,,
जो इन्द्रीजिस तत्वसैं प्रगट है वो उ-
सीको ग्रहण करती .... ,,
उनइन्द्रियोंके घात होनेका कारण ,,
तथा उनके यथास्थितिका कारण ७०९
अर्थ कथन और उसका वि-
कृति होना .... ,,
समनस्कइन्द्रियोंका प्रकृतिभावमें
लानेका यत्न .... ,,
सद्वृत्त (सदाचार) .... ,,

रात्रिचर्या ।

संध्याकालके नियम ७२२
पंचकर्मवर्जनमें हेतु.... .... ७२३
चांदनीके गुण.... .... ,,
हिमके गुण .... ,,
अंधकारके गुण .... ,,
रात्रिभोजन (व्यालू) की विधि.... ,,
स्वापविधि .... ,,
तथा ७२४
पूर्वरात्रिव्यतीतानंतरस्त्रीकेपासजाय ,,
शय्याके लक्षण .... ,,
निंदितशय्याके लक्षण .... ,,
पर्य्यंक (पलंग) के लक्षण ७२५
तालादिकोंका प्रमाण .... ,,
व्यवायविधि.... .... ,,
प्रशस्तस्त्रीविचार .... ,,
स्त्रीजाति ७२६
पुरुषजाति .... ,,
(देवापद्मिनी).... .... ,,
(अप्सरा चित्रिणी) .... ,,
(शंखिनी यक्षिणी) .... ,,
(हस्तिनी राक्षसी) .... ,,
(कृत्या) .... ,,
(सुरपुरुष-मृग) ७२७
(गंधर्व-अज) .... ,,
(यक्ष-वृष).... .... ,,
(रक्ष-हय).... .... ,,
(पिशाच-रासभ).... .... ,,
(स्त्रियोंकी हरणी आदि जाति और
पुरुषोंकी मृगादिजाति) ७२७
परस्त्रीगमननिषेध .... ,,
परस्त्रीगमनके दोष .... ,,
ऋतुपरत्व स्त्रीविचार ७२८
सद्यप्राणदायकषट्पदार्थ .... ,,
सद्यःप्राणनाशकषट्पदार्थ.... .... ,,
तरुणस्त्रीकी प्रशंसा.... .... ,,
स्त्रीसेवनमें काल ७२९
देशपरत्व स्त्रीकी प्रकृति तहां वर्षा
और वसंतमें सेव्य स्त्री.... .... ,,
हेमंत और शिशिरऋतुमें सेवनी-
य स्त्री .... ,,
शरद और ग्रीष्मऋतुसेवनीयस्त्री ७३०
ऋतुपरत्वस्त्रीगमनमें सुश्रुतका प्र-
माण .... ,,
ऋतुपरत्व कामस्थान .... ,,
निषेधकाल .... ,,
स्त्रीसेवनविधि ७३१
संभोगअयोग्यस्थान.... .... ,,
विहितप्रदेश .... ,,
संभोगसमयवेष ७३२
अयोग्यपुरुष .... ,,
वर्जितमैथुनपुरुष .... ,,
(सुगंधितवर्त्ती) .... ,,
(अथांगवास) .... ,,
(अथधूप) .... ,,
योग्यस्त्री ७३३
अनुरक्तस्त्रीके लक्षण .... ,,
विरक्तस्त्रीके लक्षण.... .... ७३४
स्त्रीणां नाशहेतुः .... ,,
दुष्टस्त्रियोंकी दूती ७३५
स्त्रियोंके संकेत .... ,,
त्याज्यस्त्री .... ,,
दुस्साध्यास्त्री.... .... ७३६
मैथुननिषेध .... ,,
रजस्वलागमननिषेध .... ,,
अगम्यास्त्री .... ,,
स्त्रीणां वैराग्यहेतुः ७३७
विरक्तस्त्रीके लक्षण.... .... ,,
(स्त्रीवशीकरण) .... ,,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रीति ७३८
नैसर्गिकीप्रीति .... ,,
विषयजा और समप्रीतिके लक्षण ,,
अभ्यासकी प्रीति .... ,,
योनिस्वरूप .... ,,
कामांकुश ७३९
मन्मथछत्र .... ,,
सुखसाध्यास्त्री .... ,,
शुक्रवेगरोकनेका फल ७४०
स्त्रीकापतिसमीपजानेका नियम ... ,,
वातपित्तकुपितहोनेमें मैथुनवर्जित ,,
मैथुनानन्तरकर्म .... ,,
मैथुनान्तमें हितवस्तु ७४१
दूधपीनेमें प्रमाण .... ,,
अतिमैथुनका दोष .... ,,
रात्रिमें जागनेके दोष .... ,,
निद्राके गुण .... ,,
निद्राके पूर्वभक्षणीयद्रव्य ७४२
प्रातःकाले जलपानम् .... ,,
तन्त्रांतरका प्रमाण .... ,,
उषःपानगुण .... ,,
नासिकाद्वाराजलपान ७४३
प्रामाणांतर .... ,,
उषःपानकरना वर्जित .... ,,

इति चर्य्याचंद्रोदयः ।

विशिखानुप्रवेशनीयाध्यायः ।

कर्ममार्गप्रवेशके योग्य वैद्यके लक्षण ७४५
वैद्यके कर्म .... ,,
श्रोत्रइन्द्रियविज्ञेयरोग ७४५
स्पर्शनेन्द्रियविज्ञेय .... ,,
दर्शनेन्द्रियविज्ञेय .... ,,
रसनेन्द्रियविज्ञेय ७४७
घ्राणेन्द्रियविज्ञेय .... ,,
प्रश्नविज्ञेयरोग .... ,,
मिथ्यादृष्टादिविकारवैद्यको मोहदायक होतेहै ७४८
साध्यसाधनअसाध्यपरिवर्जन .... ,,
कतिपयरोगियोंकी साध्य व्याधिभी असाध्यहोतीहै ७४८
वैद्यके प्रति शिक्षा. ७४९

अष्टविधपरीक्षा ।

दूतपरीक्षा .... ,,
दूतकी चेष्टाका फल ७५०
दूतसंज्ञा .... ,,
असत्दूत .... ,,
दूतोंका वेष ७५१
दूतके निमित्त .... ,,
समय.... .... ७५२
पित्त कफ रोगमें गर्हित और प्रशस्त दूत.... .... ,,
दूतद्वारा शकुनज्ञान ७५४
दूतद्वारा शकुनज्ञान .... ,,
शुभ दूतोंके लक्षण ७५५
शकुन देखनेका कारण ७५६
दूतके शकुन.... .... ,,
दिशाओंकी दग्धादिसंज्ञा.... .... ,,
दग्धादि दिशाओंका फल ७५७
दूतके प्रश्नाक्षरोंपर फल .... ,,
प्रकारांतर .... ,,
वैद्यको देखने योग्य दूतके चिन्ह ,,
चलतेसमय वैद्यको शुभाशुभ शकुन.... .... ७५८
अप्रशस्त दर्शन ७५९
निमित्त ७६०
रोगीके जीवन मरणकी परीक्षा ७६२
प्रकारान्तर ७६३

अथ स्वप्नप्रकाशिका ।

सप्तविध स्वप्न ७६५
तहां पंचविध स्वप्न निष्फल .... ,,
स्वप्न देखनेका कारण ७६६
प्रमाणान्तर .... ,,
तत्रादौ रोग भावि स्वप्न ७६७
रक्तपित्तसंभव .... ,,
रक्त रोग ... . ,,
गुल्म रोग .... ,,
कुष्ठ रोग .... ,,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रमेह रोग ७६८
उन्माद रोग .... ,,
अपस्मार रोग ७६९
बहिरायाम रोग .... ,,
अनेक रोगोंमें विविध स्वप्न .... ,,
अथ अशुभ स्वप्न ७७०
सुश्रुतके मतसे अशुभ स्वप्न ७७२
विष्णुपुराणके मतसे अशुभ स्वप्न ७७३
वराह ७७४
मार्कंडेय .... ,,
दुःस्वप्नका परिहार.... .... ७७७
ग्रन्थान्तरे .... ,,
पराशरस्मृतौ .... ,,
सुश्रुते ७७८
चरके .... ,,
अथ शुभस्वप्न ७७९
बृहद्यात्राग्रंथमें वराहका प्रमाण ७८०
आचारमयूखे.... .... ७८२
बृहस्पतिके मतसे ७८४
पराशरसंहिता ७८५
निष्फल स्वप्न ७८७
तथाच.... .... ,,
प्रकृतिजन्य स्वप्न .... ,,
स्वप्नका प्रहरपरत्व फल .... ,,
स्वप्नदर्शनकी विधि ७८८
शयनके समय जपनीय मंत्र .... ,,
शयनके नियम ७८९
स्वप्नप्रकाशिकाके पाठका फल .... ,,

नाडीदर्पणप्रारंभः

मंगलाचरण ७९१
वागभट .... ,,
रोगोंके आठस्थान ७९२
वैद्योंके सुखार्थ ग्रंथनिर्माण.... .... ,,
नाडीको मुख्यत्व .... ,,
नाडीज्ञानकी आवश्यकता.... .... ७९३
नाडीज्ञानविना वैद्यकी अप्रतिष्ठा.... ,,
नाडीज्ञानविना वैद्यको अधमत्व.... ,,
सर्व रोगमें प्रथम नाडी देखना .... ,,
नाडीज्ञानके विना धन धर्म और यशकी अप्राप्ति .... ,,
नाडी मूत्रादि ज्ञानके पश्चात् औषध देना .... ,,
नाडी देखनेमें वीणातन्तुका दृष्टांत ७९४
नाडीज्ञानविना निदानद्वारा रोग-निर्णयकर्त्ता वैद्यको अधमत्व ,,
निदान और नाडीके लक्षण मिलाकर चिकित्सा करनेकी आज्ञा ,,
वैद्यके प्रति आज्ञा .... ,,
नाडीपरीक्षाकथन .... ,,
नाडीज्ञानकी परिपाटी .... ,,
नाडीज्ञानकी उत्कृष्टता ७९५
नाडीदर्पण पढनेका कारण .... ,,
परीक्षाको मुख्यत्व .... ,,
नाडीपरीक्षामें अभ्यासकारण .... ,,
योगाभ्यासके तुल्य नाडीज्ञानकथन ,,
जलस्थलजीवोंकी गतिके अनुसार नाडीकी गति परीक्षणीय ७९६
सद्गुरुद्वारा नाडीकी गति पठनीय ,,
नाडीको कालपरत्व विलक्षणता.... ,,
आरोग्य और स्वस्थावस्थामें नाडीको विलक्षणत्व ७९७
नाडीकी अवस्था सर्वदा ज्ञातव्यत्व ,,
नाडीके स्पन्दनका कारण .... ,,
नाडीके नाम.... .... ७९८
नाडीके भेद .... ,,
सुषुम्नानाडीका वर्णन ७९९
नाभिमें गोपुच्छसमान नाडियोंका कथन .... ,,
साडेतीनकरोड नाडी .... ,,
नाडियोंके साडेतीनकरोड मुख .... ,,
तिनमें एकहजार और बहत्तर स्थूल नाडी .... ,,
सातसों नाडी और उनके कर्म .... ,,
यह देह नाडीयोंसे मृदंगके तुल्य मढाहै ८००
चोवीस नाडियोंको मुख्यत्व .... ,,
देहधारियोंके कूर्मकी स्थिति और धमनी नाडियोंकी गणना .... ,,
स्त्रीके वामभागकी और पुरुषोंके दक्षिणभागकी नाडी देखना ८०१

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

छ नाडी द्रष्टव्य .... ,,
नाभी आदिकी नाडी देखना .... ,,
सोलह नाडीन्के देखनेकी आज्ञा.... ८०२
कंठ नाडी .... ,,
नासा नाडी .... ,,
उक्तनाडियोंका प्रमाण .... ,,
जीवको नाडीके अधीनत्व कथन ,,
परीक्षणीय ८०३
परीक्षणीय नाडीज्ञानका समय .... ,,
निषिद्ध काल.... .... ,,
नाडी देखनेयोग्य वैद्य ८०४
मूढ वैद्य .... ,,
नाडी देखनेयोग्य रोगी .... ,,
नाडी दर्शनमें अयोग्य .... ,,
परीक्षाप्रकार.... .... ८०५
दूसरा प्रकार.... ... . ,,
जीवनाडी ८०६
स्त्रियोंके वामहाथ पैरकी और पुरुषोंके दहनेहाथ पैरकी नाडी रत्नके समान परीक्षाकरे.... .... ,,
अंगुष्टमूलकी नाडी परीक्षणीयहै ,,
स्वस्थप्राणीकी नाडीपरीक्षा ८०७
स्पर्शनादिको मुख्यत्व होनेसे उनका वर्णन .... ,,
गुरुद्वारा नाडीके परीक्षाका प्रकार ,,
शास्त्र और पवनप्रवाहके अनुसार तथा गुरुकी अज्ञानुसार नाडीपरीक्षा ८०८
त्रिवार नाडीपरीक्षा करनेकी आज्ञा ,,
तीन उंगलियोंसे नाडीपरीक्षाका क्रम.... .... ,,
रोगरहित मनुष्यकी नाडी.... .... ,,
नाडीके देवता .... ,,
नाडीन्के वर्ण ८०९
नाडीन्का स्पर्श .... ,,
कालपरत्व नाडीकी गति.... .... ,,
वातादिस्वभावक्रम .... ,,
उक्तश्लोकका विरोधी वचन .... ,,
नाडीचक्र ८१०
उक्तश्लोकका पुष्टिकर्त्ता दृष्टांत .... ,,
ग्रंथकारका मत ८११
वातादिकोंकी क्रमसे गति ८१३
वातादिकोंकी विशेषगति .... ,,
द्वंद्वज नाडीकी चाल ८१४
प्रकारान्तर .... ,,
त्रिदोषकी नाडी ८१५
सामान्यतापूर्वक सुखसाध्यत्व ८१६
असाध्यत्व .... ,,
असाध्यत्वमें प्रमाणान्तर ८१७
असाध्यनाडीका परिहार .... ,,
प्रसंगवश कालनिर्णय ८१८
मासांतमें मरणकी नाडी ... . ,,
चतुर्थदिवस मृत्युज्ञान ८१९
तृतीयदिवस मृत्युज्ञान .... ,,
एकदिवसमें मृत्यु .... ,,
तथा .... ,,
असाध्य नाडी ८१९
द्वितीयदिवस मृत्युका ज्ञान ८२०
सप्तरात्रिमें रोगीकी मृत्युका ज्ञान ,,
एकपक्षमें मरणका ज्ञान .... ,,
त्रिरात्रि जीवनका ज्ञान .... ,,
नाडीद्वारा अन्य असाध्य लक्षण.... ,,
एकप्रहरमें मृत्युका ज्ञान ८२१
द्वितीयदिन मृत्युका ज्ञान.... .... ,,
बारेप्रहरमें मृत्युका ज्ञान .... ,,
ज्वालावधि जीवनका ज्ञान .... ,,
अर्धप्रहरके उपरांत मृत्यु ८२२
द्वितीय प्रहरमें मृत्यु .... ,,
तीसरे दिन मृत्यु .... ,,
पंचमदिवस मृत्यु .... ,,
नाडीद्वारा आयुका ज्ञान .... ,,
नाडीद्वारा भोजनका ज्ञान.... .... ८२३
नाडीद्वारा रसोंका ज्ञान .... ,,
मांसादि लक्षणकी नाडी ८२४
उपवास और संभोगकी नाडी .... ,,
कुपथ्यवस नाडीकी चाल .... ,,
ज्वरके पूर्वरूपमें नाडीकी चाल.... ८२५
ज्वरके रूपमें.... .... ,,
वातज्वरमें .... ,,
पित्तज्वरमें ८२६

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कफज्वरमें .... ,,
द्वंद्वज नाडीकी गति.... .... ,,
रुधिरकोपजा नाडी.... .... ,,
आगंतुक रूपभेद ८२७
तथा विषमज्वरमें .... ,,
ज्वर उद्वेग क्रोध काममें नाडीकी गति .... ,,
प्रसंगवसव्यायाम भ्रमणादिकी नाडी .... ,,
अजीर्णरूप .... ,,
पक्वाजीर्ण रुधिरपूर्ण और आमवातकी नाडी ८२८
दीप्ताग्नि मंदाग्नि क्षीणधातु और नष्टअग्निमें नाडीकी गति .... ,,
ग्रहणीरोगमें .... ,,
ग्रहणी अतिसार विलंबिका और अतिसाररोगमें नाडीकी गति ,,
विषूचिकाज्ञान ८२९
आनाह मूत्रकृच्छ्रमें .... ,,
शूलरोगमें .... ,,
प्रमेहरोगमें .... ,,
गुल्मरोगमें .... ,,
भगंदररोगमें ८३०
वान्तादि ज्ञान .... ,,
नाडीस्पन्दन संख्या.... ... . ,,
प्राण पल दंड आदि संज्ञा.... .... ,,
मतांतरसे स्पन्दनसंज्ञा .... ,,
नाडीस्पन्दनमें कारण ८३२
अति क्षीणनाडीका कारण... .... ,,
तेजपुंजादि नाडीकी गति.... .... ,,
चंचला और तेजपुंजा गति .... ,,
दुर्बला और क्षीणनाडी .... ,,
सुखीपुरुषकी नाडी .... ,,
युक्ति और अनुमानादिद्वारा नाडीको जानना ८३४
नाडीदर्शनानंतर हस्तप्रक्षालन.... ,,
तथाच.... .... ,,
यूनानीमतानुसार नाडीपरीक्षा ८३५
हयवानी नप्सानी नाडी .... ,,
सुरियान् नाडी .... ,,
असव नाडी ८३६
चार उंगलियोंसे नाडीपरीक्षण .... ,,
नाडीकी गिजाली गति .... ,,
मौजी गति .... ,,
दूटी गति .... ,,
उमली गति ८३७
मिन्शार गति.... .... ,,
जन्वलफार गति .... ,,
माली गति .... ,,
जुल्फिकरत् गति .... ,,
मुर्त्तइद गति सौदावी .... ,,
मुर्त्तइस(सौदासफरा विशिष्ट)नाडी ८३८
मुमूतिला गति .... ,,
मुनूखफिज गति .... ,,
शाहक् वुलन्द गति .... ,,
दराज और तवील गति .... ,,
कसीर अमीक और अरीज गति ,,
गल्वे कसूर अरक्कात .... ,,
वाकियुत्वस्त नाडी ८३९
यूनानीमतानुसार नाडीचक्र .... ,,
नब्ज कहनेका कारण .... ,,
नाडी देखनेके नियम ८४०
इम्वसात और इनूकि बाजगतियोंका वर्णन और चक्र.... .... ,,
खिल्त वर्णन.... .... ,,
प्रत्येक दोषमें दो दो गुण.... .... ,,
चक्रद्वारा इम्वसातके भेद.... .... ८४१
दूसरा चक्र ८४२
कुतर अर्थात् प्रस्तार ८४३
नाडीनूका प्रस्तार चक्र .... ,,
अथैंग्लंडीयमतेन नाडीपरीक्षा .... ,,
पलसंज्ञा और उसका भेद ८४४
उठने बैठने आदिमें नाडीका विचार ,,
अफीम आदि उष्णभोजनमें नाडीकी गति .... ,,
नाडी देखनेकी विधि .... ,,
आरोग्यावस्थाकी नाडी ८४६
अवस्थानुसार नाडीगतिचक्र ८४७
रोगावस्थाकी नाडी .... ,,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इंग्रजी संज्ञा.

फ्रीक्वेंट गति ८४८
इन् फ्रीक्वेंट गति .... ,,
रेग्यूलर गति.... .... ,,
इरेग्यूलर गति .... ,,
इन्टरमीटेंट गति .... ,,
इस्माल गति.... .... ,,
थ्रेडीपल्स गति ८४९
हार्ड गति ८४९
साफ्ट गति.... .... ,,
क्रीक गति .... ,,
स्लो गति .... ,,
नाडीदर्शक यंत्र अर्थात स्फिग्मोग्राफका वर्णन ८५०
स्फिग्मोग्राफ लगानेकी विधि .... ,,
डाक्टरी मतानुसार नाडीचक्रम् ८५१

इति संज्ञानामनुक्रमणिका समाप्ता ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,
" श्रीवेङ्कटेश्वर " छापाखाना-मुंबई.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

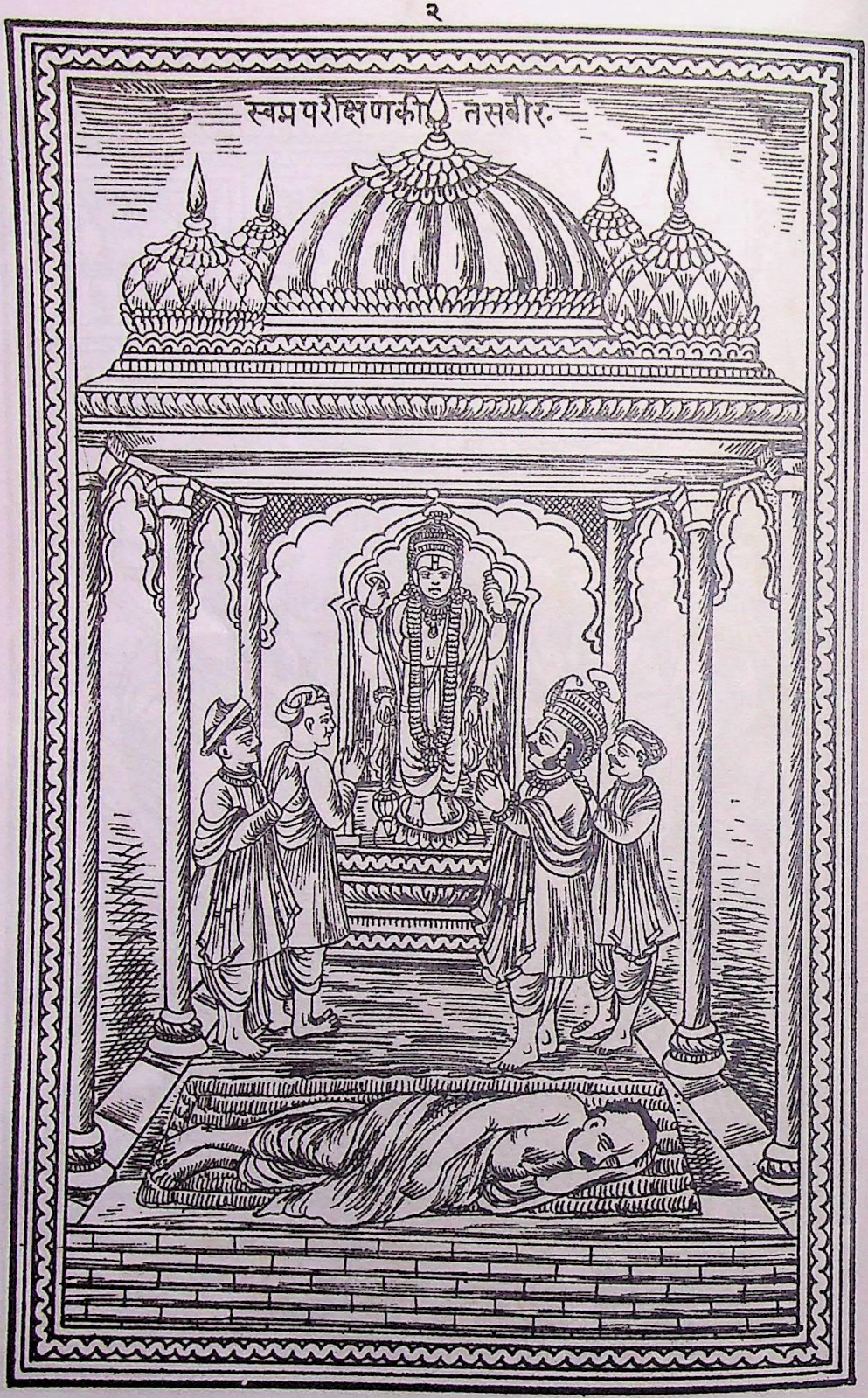

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्फिग्मोग्राफ यंत्रका स्वरूपः

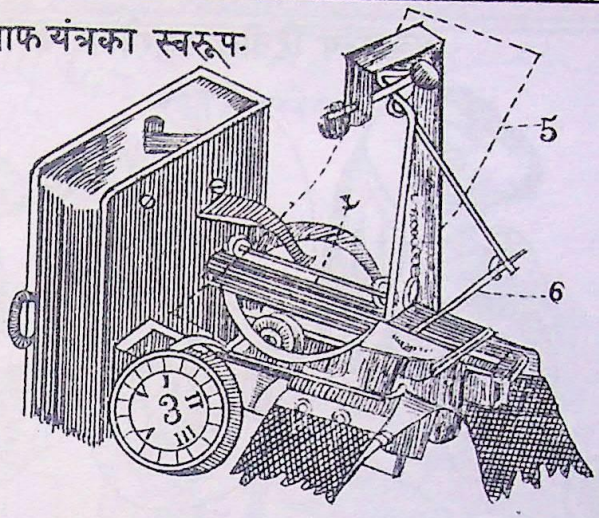

नाडीकी अक्स पडनेका स्वरूपः

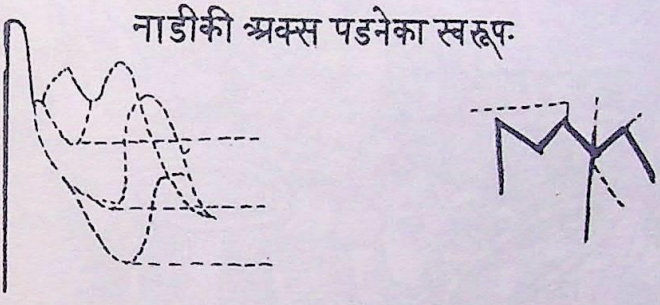

मूत्रजन्य पदार्थः

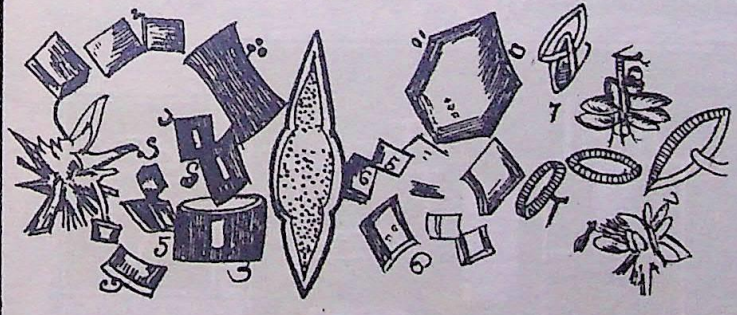

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मूत्रजन्य द्वितीय प्रकारके पदार्थ.

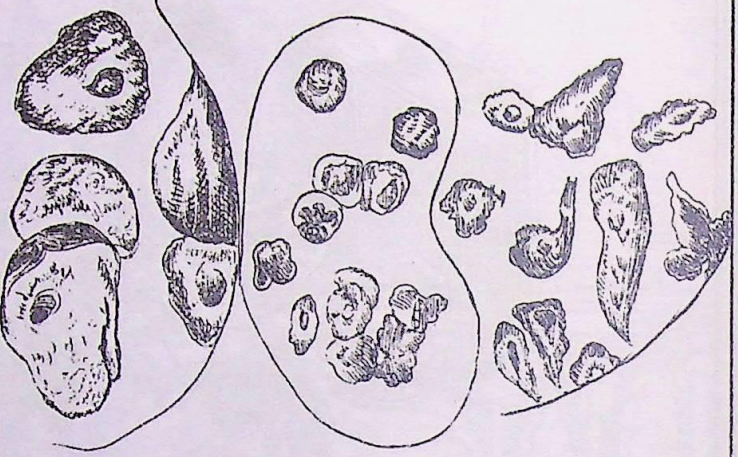

खुर्दबीन.

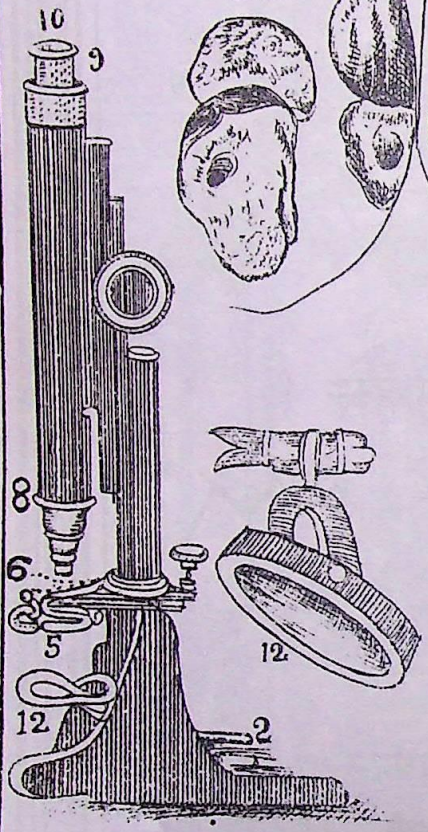

मूत्रदर्शक खुर्दबीन.

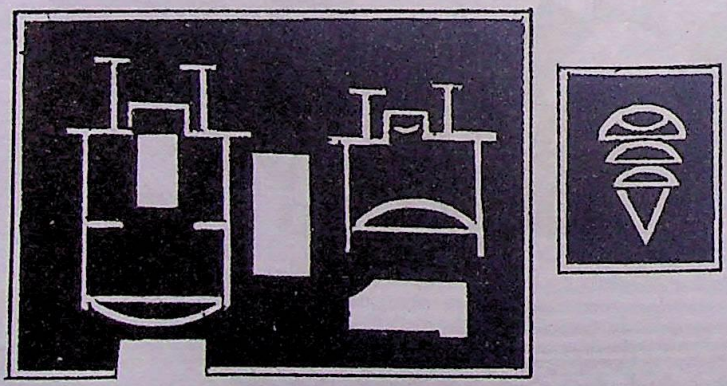

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

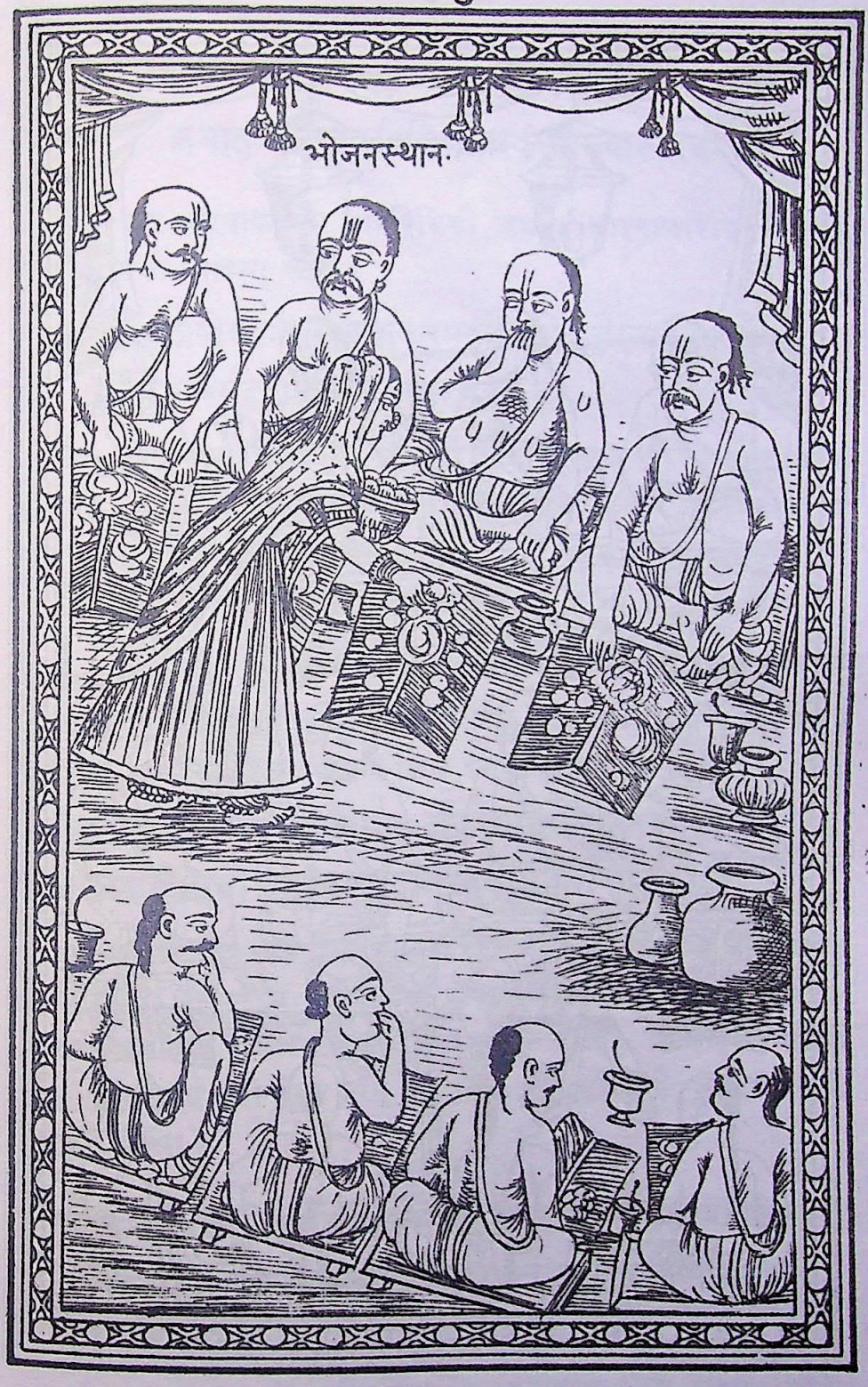

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

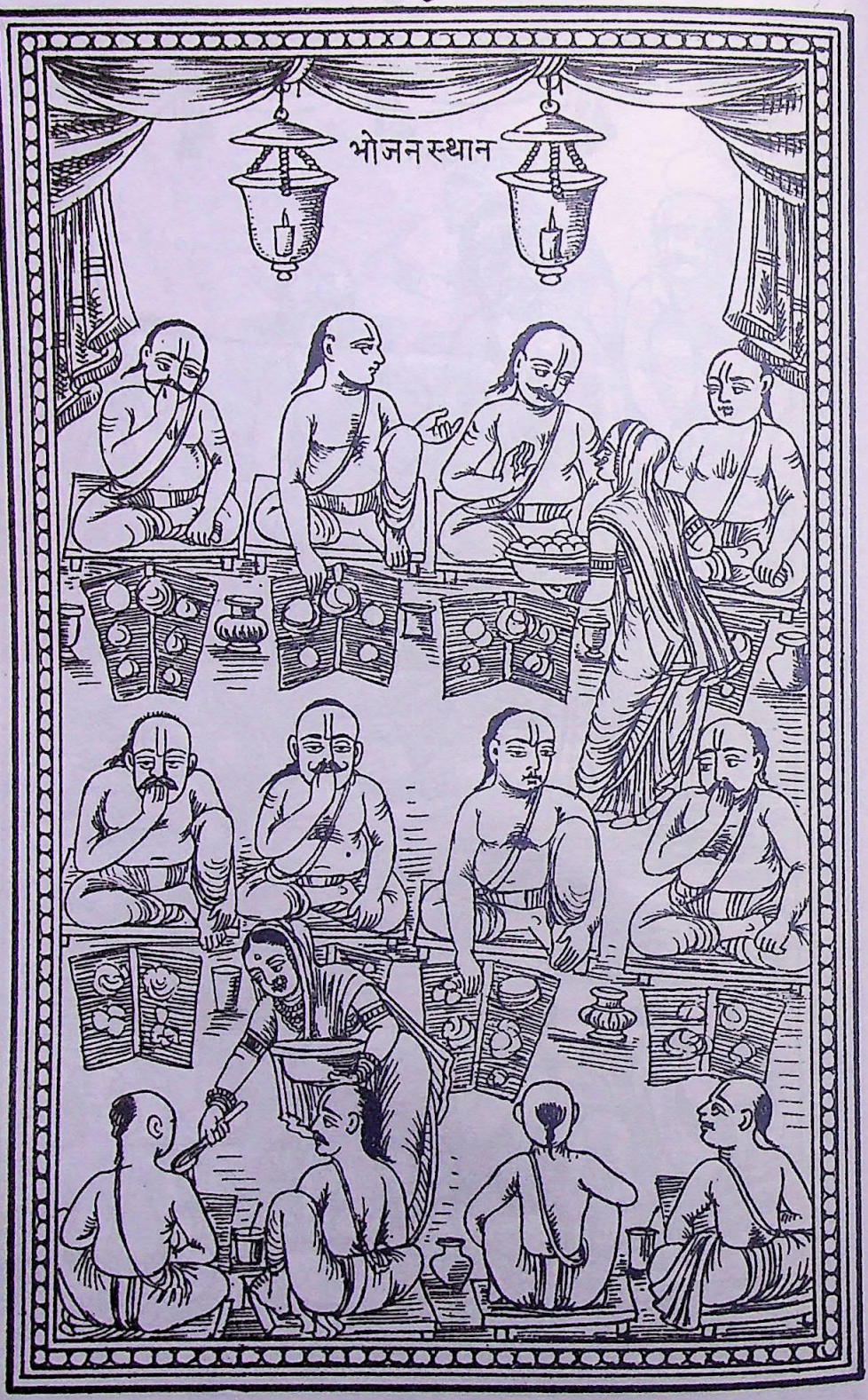

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रीः ।

अथातःक्षारपाकविधिमध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब क्षारपाक और क्षारविधिकी अथवा क्षारपाकविधि जिसमें ऐसीअध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

शस्त्रानुशस्त्रेभ्यःक्षारःप्रधानतमश्छेद्यभेद्यलेख्यकरणात् त्रिदोषघ्नत्वाद्विशेषक्रियावचारणाच्च ।

अर्थ–छेद्य, भेद्य, लेख्य करनेसे और त्रिदोषनाशक होनेसे तथा विशेषक्रियाके परिश्रम बचानेसे सर्व शस्त्र (मंडलाग्रादि) और अनुशस्त्र (त्वक्सारादिकों) में क्षार प्रधानतम है ।

क्षारशब्दकी निरुक्ति ।

तत्रक्षरणात्क्षणनाद्वाक्षारः ।

अर्थ–दुष्ट त्वङ्मासादिकोंके चालनसे और नष्ट करनेसे इसको क्षार कहते हैं । कोई [क्षपणात्] इस प्रकार लिख इसका शोधनअर्थ करते हैं ।

नानौषधिसमवायात्त्रिदोषघ्नः शुक्लत्वात्सौम्यस्तस्यसौम्यस्यापिसतो दहनपचनदारणादिशक्तिरविरुद्धा ।

अर्थ--अनेक औषधोंके संयोगसे इस क्षारको त्रिदोषघ्नता है और सपेद होनेसे इसको सौम्यता है, परंतु सौम्य होनेपर भी दहन पचन और दारणादि शक्ति अविरुद्ध है । अर्थात् जो द्रव्य सौम्य होतीहै वो दाहक पाचक और विदीर्णकर्त्ता नहीं होती परंतु वो शक्ती इस क्षारमें है अतएव इसको अविरुद्ध लिखा है ।

क्षारके गुण ।

सखल्वाग्नेयौषधिगणभूयिष्ठत्वात् कटुकउष्णस्तीक्ष्णःपाचनो विलयनः शोधनोरोपणःशोषणःस्तंभनोलेखनःकृम्यामकफकुष्ठविषमेदसामुपहन्तापुंस्त्वस्यचातिसेवितः ।

अर्थ–इस क्षारको आग्नेय औषधिगणोंके बहुतायास करके उत्पन्न होनेसे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यह कटुक, उष्ण, तीक्ष्ण, पाचक, विलयन, शोधन, रोपण, शोषण, स्तंभन और लेखन है, तथा कृमि, आमवात, कफ, कोढ; विष और मेदरोगको नष्ट करे हैं और अत्यंत सेवन करनेसे यह मनुष्यको नपुंसक करदेताहै । अथवा पुंस्त्वकाहिये शुक्रका नाशक है ।

क्षारके भेद ।

सद्विविधःप्रतिसारणीयः पानीयश्च । तत्रप्रतिसारणीयः कुष्ठकिटिभदद्रुकिलासमण्डलभगंदरार्बुददुष्टव्रणनाडीचर्मकीलतिलकालकन्यच्छव्यङ्गमशकवाह्यविद्रधिकृमिविषार्शःसूपदिश्यते सप्तसुच मुखरोगेषूपजिह्वाधिजिह्वोपकुशदन्तवैदर्भेषुतिसृषुच रोहिणीष्वेतेषुचैवानुशस्त्रप्रणिधानमुक्तम् ।

अर्थ-क्षार दो प्रकारका है[1] प्रतिसारणीय (लगाने योग्य) और दूसरा पानीय (पीने योग्य क्षारोदक) तहां प्रतिसारणीय क्षार कुष्ठ, किटिभ, दाद, किलास, मंडल, भगंदर, अर्बुद,दुष्टव्रण, नाडी, चर्मकील, तिलकालक, (तिल) न्यच्छ, व्यंग (ए दोनों क्षुद्ररोगमें हैं) मस्सा, बाहरीविद्रधि, कृमि, विष और बवासीर, इन रोगोंमें ग्राह्य है । तथा सात प्रकारके मुखरोगोंमें तहां मुखरोंगोंको कहतेहैं । उपजिह्वा, अधिजिह्वा, उपकुश, दंतवैदर्भ और तीन प्रकारके रोहणीरोग, इनमें अनुशस्त्रकरके क्षारकोही लगाना कहा है ।

पानीयस्तुगरगुल्मोदराग्निशूलाजीर्णारोचकानाहशर्कराश्मर्य्यभ्यन्तरविद्रधिकृमिराविषार्शःसूपदिश्यते ।

अर्थ--पानीयक्षार, जहर, गोला, उदररोग, मंदाग्नि, शूल, अजीर्ण, अरुचि, आनाह, शर्करा, पथरी,भीतरकी विद्रधि, कृमिरोग, दूषीविष और बवासीर इन रोगोंमें देना चाहिये ।

वर्जितमनुष्य ।

अहितस्तुरक्तपित्तज्वरितपित्तप्रकृतिबालवृद्धदुर्बलभ्रममदमूर्च्छातिमिरपरीतेभ्योऽन्येभ्यश्चैवंविधेभ्यः ।

---

१ इस जगे योगशक्तिके प्रभावसे क्षारको तिलयवकल्कके सदृश शोधनरोपणमें विरुद्धता नहीं है,जब क्षारसे शुद्ध होजावेगा वह स्वयंरोपण कहिये भरजावेगा ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–रक्तपित्ती, ज्वरवान्, पित्तप्रकृतिवाला, बालक, वृद्ध, दुर्बल और भ्रम, मद, मूर्च्छा, तिमिर, इनकरके व्याप्त मनुष्योंको तथा इसी प्रकारके और रोगियोंको क्षार देना अहित है।

पानीयक्षारकी विधि संक्षेपसे कहते हैं।

तच्चेतरक्षारवद्दग्ध्वापरिस्रावयेत्तस्यविस्तारोऽन्यत्र।

अर्थ–तहां पानीयक्षारकोभी प्रतिसारणीयक्षारके समान काष्ठसे दाहकर छःगुने पानीमें पाक करे जब तीन भाग शेष रहे तब उस जलको चुवायलेवे, क्षारभस्मकी मात्रा उत्तम १ पलकी मध्यम ३ कर्षकी और अधम अर्धपलकी होतीहै। इसके देनेकी विधि गुल्मरोगाध्यायमें विस्तारपूर्वक कही है।

प्रतिसारणीयक्षारकीविधि।

अथेतरास्त्रिविधोमृदुर्मध्यस्तीक्ष्णश्च तं चिकीर्षुः शरादि गिरिसानुजं शुचिरुपोष्यप्रशस्तेऽहनि प्रशस्तदेशजातमनुपहतंमध्यमवयसंमहान्तमासितमुष्ककमधिवास्यापरेद्युः पाटयित्वाभिमन्त्र्यानेनमंत्रेण।

अर्थ–अथेतरकहिये प्रतिसारणीयक्षार तीन प्रकारका होताहै। मृदु, मध्य, और तीक्ष्ण कहिये करडा, तहां इसको बनानेवाला मनुष्य शरदऋतुमें पर्वतोंमें होनेवाली अथवा जांगलदेशमें होनेवाली औषधोंको पवित्रतापूर्वक सिंचनादिसे उसकी रक्षा करे और जो उत्तमदेशमें उत्पन्न हुई हो, कीडा दावानल शरदी आदिसैं जो दूषित न हो मध्यम अवस्थाकी लंबावमें बडी हो, ऐसे मोखावृक्षको उत्तमदिनमें उसका मंत्रोंसे पूजन कर और मंत्रपठनपूर्वक उसको उखाडे, अब अभिमंत्रणका मंत्रकहते हैं।

मंत्र

अग्निवीर्यमहावीर्यमातेवीर्यप्रणश्यतु। इहैवातिष्ठकल्याणमकार्यकारिष्यसि। ममकार्येकृतेपश्चात्स्वर्गलोकंगमिष्यसि। श्वेतपुष्परक्तपुष्पसहस्रंजुहुयात्। खण्डशःप्रकल्प्यावपाक्य निर्वातेदेशेनिचितंकृत्वासुधाशर्कराश्चप्रक्षिप्यतिलनालैरंदीपयेत्।

अर्थः–इसप्रकार (अग्निवीर्यमहावीर्य) इत्याद्यादि मंत्रोंसे अभिमंत्रण करके

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पीछे फूल तथा लाल पुष्प एकहजार अग्निमें हवन करे, कोई आचार्य कहताहै कि पूर्वमुख स्थितहो वृक्षसे सूत लपेट तथा निमंत्रणकर हाथजोडकर (निवसन्तीहभूतानि) इत्यादि मंत्रोंसे अधिवासन करे, पीछे दूसरे दिन उसवृक्षको उखाडकर ले आवे और उसके बहुतसैं टुकडे करे, उनको एकत्र चिनकर उसमें कच्चा चूनेका पाषाण गेरके तिलकी नालसे अग्नि प्रज्वलित करे (तिलनालद्वारा अग्नि लगानेसे क्षारमें उत्कृष्ट शक्ति होतीहै)

अथोपशान्तेग्नौ तद्भस्मपृथग्गृह्णीयाद्भस्मशर्कराश्च । अथानेनविधानेन कटुजपलाशाश्वकर्णपारिभद्रकविभीतकारग्वधतिल्वकार्कस्नुह्यपामार्गपाटलानक्तमालवृषकदलीचित्रकपूतीकेन्द्रवक्षास्फोताश्वमारकसप्तच्छदाग्निमन्थगुञ्जाश्वतस्रश्च कोशातकीसमूलफलपत्रशाखा दहेत् ।

अर्थ–जब अग्नि शीतल होजावे तब जिस वृक्षकी भस्म करी है वो पृथक् लेवे और भस्मशर्कराको पृथक् ग्रहण करे इसी प्रकार कूडा, ढाक, अश्वकर्ण, (पूर्वमें गंधमुंड इस नामसे प्रसिद्ध पीपलके समान वृक्ष होताहै) देवदारु, बहेडा, अमलतास, तिल्वक, आक, थूहर, ओंगा, पाढल, कंजा, अडूसा, केला, चीता, पूतीकरंज, इन्द्रवृक्ष (कुटज दो प्रकारका होताहै जिसका बडा फल सफेद फूल और चिकने पत्तेहो वो पुरुषसंज्ञक है । और छोटा फल छोटीडंडी, काला तथा लाल पुष्पवाला स्त्रीसंज्ञक होताहै ।) सारिवा, कनेर, सतोना, अरनी, घूंघची, और चारप्रकारकी कोशातकी (बडे फलवाली, छोटे फलवाली, पीले फूलकी, और सपेद फूलकी) इन सबको जड पत्ते फल और शाखासहित पत्थरपर भस्म करना चाहिये ।

क्षारद्रोणमुदकद्रोणैः षड्भिरालोड्यमूत्रैर्वा यथोक्तैरेकविंशतिवारान्विस्राव्य महतिकटाहेशनैर्दर्व्याविघट्टयन्विपचेत् सयदा भवत्यच्छो रक्तस्तीक्ष्णः पिच्छलश्च तमादाय महतिवस्त्रेपरिस्राव्येतरं विसृज्य च, पुनरग्नावधिश्रयेत् ।

अर्थ–क्षारद्रोण (अर्थात् सुष्कभस्मके दो भाग और कुटजादि भस्मका १ भाग इनको मिलावे उसको क्षारद्रोण कहतेहैं) उस क्षारद्रोणको १ द्रोण लेवे और जल ६ द्रोण लेवे अथवा दुंदुभिस्वनीय अध्यायके लेखके अनुसार गोमूत्र मिलाय २१ वार उसको किसी दूसरे पात्रमें निचोडलेवे, पीछे बडे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भारी लोहके कढावमें उसको ओंटावे, धीरे २ कडछीसे चलाताजाय इस-प्रकार पचावे जब निर्मल लाल तीक्ष्ण और पिच्छिल होजावे तब उतारलेवे (परंतु निर्मलादिक गुण जब तीसरा हिस्सा बाकी रहताहै तब होतेहैं) पीछे उसको एक बडे वस्त्रसे छानलेवे, तदनंतर दूसरे लोहपात्रमें भरके फिर अग्नि देवे।

ततएवचक्षारोदकात्कुडवमध्यर्द्धं वापनयेत्। ततःकटशर्करामस्मशर्कराक्षीरपाकशंखनाभीरग्निवर्णाः कृत्वायसेपात्रे तस्मिन्नेवक्षारोदके निषिच्य पिष्ट्वा तैर्नवद्विद्रोणेऽष्टपलसंमितं शंखनाभ्यादीनां प्रमाणं प्रतिवाप्यसततमप्रमत्तश्चैनमघट्टयन्विपचेत्। सयथा नातिसान्द्रोनातिद्रवश्चभवातितथाप्रयतेत।

अर्थ–उस क्षारोदकमेंसे कुडव ८ पल अथवा १२ पल जलको सुखायदेवे, तदनंतर कटशर्करा (गांगेष्टी) भस्मशर्करा, सीप और शंख इनको अग्निमें लाल करके पूर्वोक्त क्षारके जलमें बुझावे, इस प्रकार तबतक करे कि जबतक उनकी भस्म न होवे। जब भस्म होजावे तब उसी क्षारोदकमें मिलाय देवे, परंतु इस जगे दो द्रोण जलमें आठ पल शंखआदिकी भस्म डालनी चाहिये, कोई कटशर्करादिक प्रत्येकके दो २ पल डालना लिखता है। पीछे निरंतर सावधानीके साथ कलछीसे चलाकर पक्व करे जैसे अत्यंत गाढा और अत्यंत पतला न रहे इस प्रकार क्षारपाक करना उचित है। इसमें केवल शंखनाभ्यादिकही न डाले किंतु औरभी वस्तु डालनी चाहिये उनको लिखते हैं।

श्लक्ष्णंशकृद्दक्षशिखिगृध्रकंककपोतजम्।चतुष्पात्पक्षिपित्तालमनोह्वालवणानिच। परितःसुतरांचातोदर्व्यातमवघट्टयेत् सबाष्पैश्च यदोत्तिष्ठेद्बुद्बुदैर्लेहवद्घनः। अवतार्यततः शीतो यवराशावयोमये। स्थाप्योयंमध्यमः क्षारोनतु पिष्ट्वाक्षिपेन्मृदौ। निर्वाप्यापनयेत्तीक्ष्णेपूर्ववत्प्रतिवापनम्।

अर्थ–मुरगा, मोर, गीध, कंक और कपोत, (पिंडुकिया) इनकी वीठको पीसके उस क्षारोदकमें डाले गौसे आदिले चौपाए और पक्षीओंके पित्ते,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हरताल, मनसिल, सैंधवादि नोन, इनको पीसकर उसमें डाले । और कलछीसे चारोंतरफसे चलाताजाय जब धूएँकेसाथ बबूले अवलेहके समान गाढे उठनेलगे और वह कलछीसैं अवलेहके समान लिपटनेलगे तब शीतल होजावे तब लोहके पात्रमें भरके मुख बंदकर जवकी राशिमें अथवा धानकी राशिमें गाड़देवे यह मध्यम क्षार है । परंतु मृदुक्षारमें पूर्वोक्त औषध पीसकर न डाले किंतु सावतही पटकेदेवे । और तीक्ष्णक्षारमें मध्यमक्षारके समान सब पीसकर डालनी चाहिये । औरभी प्रतिवाप औषध लिखतेहैं ।

प्रतिवापेयथालाभंदन्तीद्रवन्तीचित्रकलांगलकीपूतिकप्रवालतालपत्रीविडसुर्वर्चिकाकनकक्षीरार्हिंगुवचाविषाः समाः श्लक्ष्णचूर्णाःशुक्तिप्रमाणाःप्रतिवापः ।

अर्थ–प्रतिवाप (द्रवद्रव्यमें जो द्रव्यांतर पीसके डालीजावे) उसको यथालाभ डाले जैसै कि दंती, द्रवन्ती, चित्रक, कलियारी, पूतिकरंजके पत्ते, मूसली, विड, सज्जी, कनकक्षीरी, हींग, वच, और अतीस, ए सब बराबर ले प्रत्येक आधे २ पल डारे ।

सप्तरात्रात्परंतुसः ।
योज्यस्तीक्ष्णोऽनिलश्लेष्ममेदोजेष्वर्बुदादिषु ।
मध्येष्वेव च मध्योऽन्यपित्तास्रगुदजन्मसु ।

अर्थ–इसक्षारको सात रात्रिके पश्चात् कार्यमें लाना चाहिये । इसप्रकार त्रिविध क्षार कहकर अब उनके विषय कहतेहैं । तहां तीक्ष्ण क्षारको वातकफमेदसे उत्पन्न होनेवाले अर्बुदादि रोगोंमें वर्त्ते । और येही अर्बुदादिरोग यदि मध्यबली होवेतो मध्यम क्षार देना चाहिये, और पित्तास्रसे प्रगट अर्शरोगमें मृदुक्षार योजना करे इनमें व्यत्यय न करे । अर्थात् तीक्ष्णरोगोंमें मध्य मृदु न लेवे; और मृदु मध्य रोगोंमेंभी लेखानुसार लेना चाहिये ।

बलार्थंक्षीणपानीयेक्षाराम्बुपुनरावपेत् ।

अर्थ–यदि क्षारका पानी सूखकर गाढा होजावे तो उसमें बली होनेके अर्थ क्षारविधिसे निकालाहुआ पानी डालना चाहिये ।

क्षारके दशगुण ।

नातितीक्ष्णो मृदुःश्लक्ष्णःपिच्छलःशीघ्रगःसितः । शिखरी-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सुखनिर्वाप्यो न विष्पंदीन चातिरुक्। क्षारोदशगुणःशस्त्र-तेजसोरपि कर्मकृत्।

अर्थ–क्षार अति तीक्ष्ण नहीं है, नअति मृदु है, न अत्यंत अकर्कश है, न बहुत पिच्छल है, शीघ्र फैलनेवाला पिटकाओंको उत्पन्न करनेवाला, सुख-पूर्वक कांजीआदिसे शीतल होता है। स्रवणशील नहीं है, न अत्यंत पीडा-कर्त्ता है, ए क्षारमें दशगुणहै। सुश्रुत क्षारमें आठ गुण मानतेहैं, इस जगे प्रतिशब्द प्रत्येक तीक्ष्णादिकोंके साथ लगताहै, क्षार, शस्त्रके कर्म (छेदन भेदन आदि) और अग्निकर्मोंकोंभी करनेवालाहै।

क्षारके दश दोष।

अत्युष्णोऽतिशीतोऽतितीक्ष्णोऽतिमृदुरतितनुरतिघनोऽति-पिच्छलोऽतिविसर्पी हीनौषधो हीनपाकश्चेति।

अर्थ–अति उष्ण, अति शीतल, अति तीक्ष्ण, अति मृदु, अति हलका, अति सघन, अति पिच्छल, अत्यंत फैलनेवाला, हीन औषधौसें बना और हीनपाक, ए क्षारके दश दोष संग्रहमें लिखेहैं। सुश्रुत ९ दोष कहताहै।

अनुभवद्वारा क्षारके गुण।

आचूषन्निवसंरंभाद्गात्रमापीडयन्निव। सर्वतोनुसरन्दोषानु-न्मूलयतिमूलतः। कर्मकृत्वागतरुजःस्वयमेवोपशाम्यति।

अर्थ–क्षोभसे मानो देहको चूसैंही लेताहै, तथा देहको चारों औरसें मानो पीडितही करताहै। और देहमें सर्वत्र जायकर शस्त्रसाध्य दोषोंको मूलसे उखाडकर पटकदेताहै। तथा अपने दाहादि कर्मोंको करके जब मनुष्यका रोग निवृत्ति होजावे तब विनाही यत्नके शांत होजाताहै।

क्षारप्रतिसारणीयविधि।

तत्रक्षारसाध्यव्याधिव्याधितमुपवेश्यनिर्वातातपदेशेऽसम्बा-धेग्रोपहणीयोक्तेनविधानेनोपसंभृतसम्भारंततोऽस्यतमव-काशंनिरीक्ष्यावघृष्यावलिख्यप्रच्छयित्वाशलाकयाक्षारंपात यित्वावाक्छतमात्रमुपेक्षेत।

अर्थ–तहां क्षारकरके साध्य ऐसी व्याधिकरके पीडित मनुष्यको, पवन, और धूपरहित तथा खुलासा स्वच्छस्थानमें स्थितकर, अग्रोपहरणीयाध्यायमें

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लिखेअनुसार प्रशस्त तिथिनक्षत्रमुहूर्त्तमें, संपूर्ण यन्त्रशस्त्रक्षाराग्निशलाकादि सामग्री समीप धरके, पश्चात् उस रोगीका अंग देखकर अर्थात् उस रोगीका रोग और जहां क्षार लगानाहो वह स्थानको प्रथम देखे पित्तदूषितस्थानको घिसकर, वातदूषितको छीलकर, कफदूषितस्थानको कुछ कुरेदकर सलाईसे क्षारको लगावे और १००सौं वाक्पर्यंत लगारहनेदेवे (जितने समयमें दीर्घ अक्षर बोलाजावे उतने समयको वाक् कहतेहैं)

सम्यग्दग्धके लक्षण ।

तस्मिन्निपतितेव्याधौकृष्णतादग्धलक्षणम् ।

अर्थ–क्षारके लगनेसे वह ठौर काली पडजावे तब जानेकी दग्धहोगया ।

अभिष्पंदीनिभोज्यानि भोज्यानि क्लेदनायच ।

अर्थ–क्षारदग्धस्थानकेक्लेदनार्थ अभिष्पन्दी (उडददहीआदि) पदार्थभोजनको देवे कारणकि क्षारदग्धस्थान गीला होकर उत्तमरीतिसे (शांतिहोता)है-

क्षारके शांतिकरनेकी विधि ।

तत्राम्लवर्गःशमनःसर्पिर्मधुकसंयुतः । अथचेत्स्थिरमूलत्वात्क्षारदग्धंनशीर्यते । इदमालेपनंतत्रसमग्रमवचारयेत् ।

अर्थ–तहां अम्लवर्ग और घृत सहत मिलाय कर लगानेसे क्षारकी दाहकशक्ति शांतिहोतीहै । कदाचित् स्थिरमूलहोनेसे क्षारदग्ध शीतल न होवे तो यह समग्र लेप करना चाहिये ।

लेपकी औषध ।

अम्लकांजिकबीजानितिलान्मधुकमेवच । प्रपेष्यसमभागानि तेनैवमनुलेपयेत् । तिलकल्कः समधुकोघृताक्तो व्रणरोपणः । रसेनाम्लेन तीक्ष्णेनवीर्योष्णेनच योजितः ।

अर्थ–खटाई, कांजी अथवा कांजीके नीचे जो तरी रहजातीहै, वो लेकर उसमें तिल और मुलहटी ए समान मिलाय पीसकर लेप करे । अथवा तिलकल्कमें मुलहटी और घृत मिलायकर लगानेसे क्षारदग्धका घाव भरजाताहै । तथा तीक्ष्ण, अम्ल और उष्णवीर्य औषध अन्नादिक देने चाहिये ।

आग्नेयेनाग्निनातुल्यःकथंक्षारःप्रशाम्यति । एवंचेन्मन्यसेवत्स प्रोच्यमानंनिबोधमे । अम्लवर्ज्यान्रसान्क्षारे सर्वानेव विभावयेत् । कटुकस्तत्र भूयिष्ठोलवणानुरसस्तथा । अम्लेन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सह संयुक्तः सतीक्ष्णोलवणोरसः। माधुर्यंभजतेऽत्यर्थंतीक्ष्ण-
भावंविमुच्यते । माधुर्याच्छममाप्नोतिवह्निराद्भिरिवाप्लुतः ।

अर्थ--कदाचित् सुश्रुत प्रश्न करे कि अग्नितुल्य क्षारका वेग आग्नेय तीक्ष्ण-गुणवाली औषधोंसे कैसे शांति होताहै? इसलिये श्रीधन्वंतरि कहते हैं कि, हेवत्स सुश्रुत उक्तशंकाका मैं उत्तर देता हूं तू सुन; अम्लवर्जित सम्पूर्ण रसों-को क्षारमें भावनादेनेसे लवण रस सबमें उत्कृष्ट रहताहै, और कटुरस कुछ इस्से न्यून रहताहै, परंतु वह तीक्ष्ण भी लवणरस अम्ल (खट्टे) रसमें मि-लानेसे स्वादिष्ठ होजाताहै । और अपने तीक्ष्ण भावको त्याग देताहै । फिर माधुर्यतासे समान होजाताहै। जैसे जलके डालनेसे अग्नि शांति होजातीहै ।

उत्तम हीन और अतिदग्धके लक्षण।

तत्र सम्यग्दग्धेविकारोपशमोलाघवमनास्रावश्च । हीनद-
ग्धे तोदकण्डूजाड्यानि व्याधिवृद्धिश्च । अतिदग्धेदाहपाक-
रागस्रावाङ्गमर्दक्लमपिपासामूर्च्छाःस्युर्मरणं वा। क्षारदग्धव्र-
णन्तुयथादोषंयथाव्याधिचोपक्रमेत् ।

अर्थ--तहां उत्तम दग्ध होनेसे विकारकी शांति होवे, और देह हलका तथा वह व्याधि चुचाय नहीं । हीनदग्ध होनेसे पीडा खुजली जडता और व्याधिकी वृद्धि होतीहै तथा अतिदग्ध होनेसे दाहहो, वह दग्धस्थान पक जावे, लालहो, स्रवे, अंगटूटे, क्लम, प्यास, मूर्छा, और मरण, ए लक्षण होते-हैं । क्षारदग्ध व्रणको दोषानुसार और यथा रोगके चिकित्सा करे--यद्यपि क्षा-रदग्धोंके लक्षण प्रथम कह आएहैं तथापि चिकित्सार्थ फिर लिखेगएहैं.

क्षारकृत्यमें वर्जित मनुष्य ।

अथ नैतेक्षारकृत्याः। तद्यथा । दुर्बलबालस्थविरभीरुसर्वा-
ङ्गशूनोदरिरक्तपित्तगर्भिण्यृतुमतीप्रवृद्धज्वरिप्रमेहोरःक्षतक्षी-
णतृष्णामूर्च्छोपद्रुतक्लीवापवृत्तोद्वृत्तफलयोनयः।

अर्थ--दो प्रकारकाभी क्षार जिन मनुष्योंके लगाना निषेध है उनको कह-ते हैं । जैसे दुर्बल, बालक, वृद्ध, डरपोक जिस्का सर्व देह शून्य होयगया हो, उदररोगी, रक्तपित्ती, गर्भिणी, ऋतुमती, अधिक ज्वरवाला, प्रमेह, उरः-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्षत, क्षीण, तृष्णापीडित, मूर्च्छित, नपुंसक और ऊर्ध्वगत अंड जिसके और स्थानसे ऊर्ध्वगत योनि जिसकी इतने रोगवालेको क्षारकर्म निषेध हैं.

तथा मर्माशिरास्नायुधमनीसन्धितरुणास्थिसेवनीगलनाभी-
नखान्तरशेफस्स्रोतःस्वल्पमांसेषुचप्रदेशेष्वक्ष्णोश्च न दद्याद-
न्यत्रवर्त्मरोगात् ॥

अर्थ--व्याधित पुरुषोंका निषेध लिखकर अब प्रदेश विशेषोंको कहते हैं जैसे कि मर्म, शिरा, स्नायु, धमनी, सन्धि, तरुणास्थि (नासिका, कान, नाड, और नेत्रकी हड्डी), सातसेवनी, गला, नाभी, नख, लिंग, स्रोत और जिस जगे अल्प मांस है. तथा पलकोंके सिवाय नेत्ररोगोंमें क्षारकर्म न करे

गुदे विशेषाद्विण्मूत्रसंरोधोतिप्रवर्त्तनम् ।
पुंस्त्वोपघातोमृत्युर्वागुदस्यशातनाद्ध्रुवम् ॥

अर्थ--प्रसंगवश गुदाआदिके अतिदग्ध होनेके लक्षण लिखतेहैं । जैसे कि गुदाके अतिदग्ध होनेसे विशेष करके मलमूत्रका संरोध होवे, कभी मलमूत्रका अति प्रवर्तन होवे, विशेष शब्द कहनेसे पूर्वोक्त रक्तस्रावादिकभी जानने । पुरुषार्थका नाश अथवा गुदाके अति दग्ध होनेसे कदाचित् मरणभी होताहै.

नासायां नासिकावंशदरणाकुंचनोद्भवः ।
भवेच्चविषयाज्ञानं तद्वच्छ्रोत्रादिकेष्वपि ।

अर्थ–नासिकामें अतिदग्ध होनेसे नाकके वांसका गलना, संकोच, और विषयोंका ज्ञान न होना, इसीप्रकार कानआदि अतिदग्ध होनेसे रोग होते हैं ।

क्षारसाध्य रोगोंमें असाध्यत्व.

तत्रक्षारसाध्येष्वपिव्याधिषुशूलगात्रमस्थिशूलिनम-
न्नद्वेषिणं हृदयसन्धिपीडोपद्रुतं क्षारोनसाधयति ।

अर्थ–तहां क्षारसाध्यभी व्याधियोंमें जिसका देह शून्य होगया हो, जिसके हड्डीमें शूल होता हो, अन्न रुचे नहीं, हृदय और संधियोंकी पीडासें पीडित मनुष्योंको क्षार नैरोग्य नहीं करसकता है ।

विषाग्निशस्त्राशनिमृत्युकल्पक्षारोभवत्यल्पमातिप्रयुक्तः ।
सधीमतासम्यगनुप्रयुक्तो रोगान्निहन्यादचिरेण घोरान् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–मूढवैद्यका प्रयोग कराहुआ क्षारकर्म विष, अग्नि, शस्त्र और वज्र इनकी मृत्युके समान होता है. यदि वही क्षार विद्वान् वैद्य करके प्रयोग कराहुआ हो तो तत्काल घोर रोगोंको नष्ट करे हैं.

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे विंशतितमस्तरङ्गः २०

अथातोऽग्निकर्मविधिमध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ–क्षारविधिके अनंतर अब अग्निकर्मविधिनामक अध्यायकों कहेंगे । अग्नि करके जो कर्म करा जावे अथवा अग्निसंबंधी जो कर्म है उसको अग्निकर्म कहते हैं.

अग्निकर्मका माहात्म्य कहते हैं।

क्षारादग्निर्गरीयान् क्रियासुव्याख्यातस्तद्दग्धानां रोगाणाम-
पुनर्भावाद्भेषजशस्त्रक्षारैरसाध्यानां तत्साध्यत्वाच्च ।

अर्थ–क्षारगुरुत्वसे अग्निको गुरुतरत्व है अर्थात् क्षारसे अग्नि श्रेष्ठ है. [परंतु यह श्रेष्ठता क्रियामें है किंतु क्षारके गुणोंसे अग्निके गुणोंको श्रेष्ठत्व नहीं है, क्यों कि त्रिदोषघ्न छेद्य, भेद्य, लेख्य करणादिकमें क्षारही श्रेष्ठ है. इस कहनेसे यह दिखाया कि अपने २ कृत्यमें दोनोंको मुख्यता है] अब उक्त अग्निके गुरुत्वसाधक हेतु कहते हैं, जैसे कि अग्निदग्धरोगोंको अपुनर्भाव है अर्थात् जो रोग अग्निकरके दग्ध हुए हैं वो फिर कदाचित् नहीं होते, तथा जो रोग औषध, शस्त्र और क्षार करके असाध्य है वो इस अग्निकर्म करके साध्य है, इसीकारण क्षारसे अग्निकर्मको श्रेष्ठता है ।

अथ दहनोपकरण।

अथेमानिदहनोपकरणानि। तद्यथा । पिप्पल्यजाशकृद्गो-
दन्तशरशलाकाजाम्बवौष्ठेतरलोहाः क्षौद्रगुडस्नेहाश्च ।

अर्थ–अथ अग्निकर्म करनेके उपकरण कहते हैं। जैसे कि पीपल बकरीकी विष्ठा गोदन्त शरशलाका जाम्बवौष्ठसे भिन्न अन्यप्रकारका लोह सहत गुड और स्नेहद्रव्य (घृततैलआदि) ये सब दागनेकी सामग्री है.

अग्न्युपकरणराशित्रयका प्रत्येक विषय दिखाते हैं.

तत्रपिप्पल्यजाशकृद्गोदन्तशरशलाकात्वग्गतानाम् । जा-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

म्बवौष्ठेतरलोहानि मांसगतानां क्षौद्रगुडस्नेहाः शिरास्नायुसन्ध्यस्थिगतानाम् ।

अर्थ–तहां पीपल बकरीकी मेंगनी, गोदन्त और शरशलाका ए त्वग्गत रोगोंमें ग्राह्य हैं अर्थात् त्वचामें जो वातकफकृत त्वचासुप्त्यादि रोग होते हैं उनमें पीपलआदि द्रव्यसे दागना चाहिये । मांसगतरोगोंमें जाम्बवौष्ठसे इतर लोहकरके दागे और शिरा स्नायु संधि हड्डीगतरोगोंमें सहत गुड स्नेह आदिसे अग्निकर्म करे.

क्योंजी काश्यपमुनीने तो शिरादिकमें अग्निकर्म करनेका निषेध करा है जैसे लिखा है यथा–

न शिरास्नायुसन्ध्यस्थिमर्मस्वपिकथञ्चन ।
दंशस्योत्कर्तनं कार्यं दाहोवाभिषजाऽग्निना ॥

अर्थ–वैद्यको शिरा, स्नायु, संधी, हड्डी, मर्म इनमें लगे हुए दंशका उखाडना तथा अग्निकरके दागना कदाचित् न करना चाहिये। इस वाक्यसे शिरादिकोंमें अग्निकर्म निषेध है फिर इस जगे शिरादिकोंमें अग्निकर्म करना कैसे लिखा है.यह विरोध होता है इसलिये कहते हैं कि, इसजगेभी शिरा, स्नायु, सन्धि, हड्डीके छेद होनेसे जब अत्यंत रुधिर निकलने लगे उसके बंद करनेको लिखा है किंतु शिरादि गतरोगोंके छेदनार्थ नहीं कहा । कारण यह है कि, मांसदाहके होनेसे शिरादिरोगोंको उच्छेद होता है इसमें शौनकका प्रमाण है यथा ।

त्वङ्मांससंश्रितो वायुस्त्वग्दाहेनैवशाम्यति ।
मांसेदग्धेहि शाम्यन्ति शिरास्नाय्वास्थिसंधिजाः ॥ इति ।

अर्थ–त्वचा और मांससंश्रित वायु त्वचाके दाह करनेसेही शांति होती है और शिरा, स्नायु, अस्थि तथा संधिमें होनेवाले रोग मांस दग्ध होनेसे शांति होते हैं.

सापवाद अग्निकर्मका काल कहते हैं.

अत्राग्निकर्मसर्वर्तुषु कुर्य्यादन्यत्रशरदग्रीष्माभ्याम् । तत्राप्यात्यधिकेऽग्निकर्मसाध्येव्याधौतत्प्रत्यनीकंविधिंकृत्वा ।

अर्थ–शरद और ग्रीष्म ऋतुको त्यागकर अन्य सर्व ऋतुओंमें अग्निकर्म

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कर्त्तव्य है. कदाचित् अतिआवश्यक रोगमें शरद और ग्रीष्म ऋतुमेंही अग्नि कर्म करनेकी आवश्यकता होवे तो उसकी प्रत्यनीक विधि अर्थात् विपरीत विधि (शीतल आच्छादन और शीतकर्त्ता पदार्थोंका भोजनादि) करके फिर अग्निकर्म करना चाहिये ।

सर्वाग्निकर्माङ्गविधि ।

सर्वव्याधिषु ऋतुषु च पिच्छलमन्नं भुक्तवतः कर्मकुर्वीत मूढगर्भाश्मरीभगंदरार्शोमुखरोगेष्वभुक्तवतः ।

अर्थ--सर्व प्रकारकी व्याधिमें और सब ऋतुमें पिच्छल अन्न भोजन करके अग्निकर्म करे और मूढगर्भ पथरी, भगंदर, बवासीर और मुखरोग उन्होंमें विनाभोजनके अग्निकर्म करे । इन रोगोंमें भोजनोत्तर कर्म करनेसे ऊर्ध्व अधो वेगद्वारा कर्मका विघात होताहै ॥

अग्निकर्ममें एक मत ।

तत्रद्विविधमग्निकर्माहुरेके त्वग्दग्धं मांसदग्धञ्चइहतु शिरास्नायुसंध्यस्थिष्वपि न प्रतिषिद्धोऽग्निः ।

अर्थ--तहां कोई आचार्य द्विविध अग्निकर्म कहते हैं. एक त्वग्दग्ध दुसरा मांसदग्ध परंतु इस ग्रंथका यह सिद्धान्त है कि शिरा, स्नायु, संधि और हड्डियोंमेभी दागना वर्जित नहीं है, परंतु यह आवश्यक व्याधिमेंही जानना.

त्वगादिकोंमें दग्धके लक्षण।

तत्रशब्दप्रादुर्भावो दुर्गंधतात्वक्संकोचश्च त्वग्दग्धे । कपोतवर्णताल्पश्वयथुवेदनाशुष्कसंकुचितव्रणता च मांसदग्धे कृष्णोन्नतव्रणता स्रावसन्निरोधश्चशिरास्नायुदग्धे । रूक्षारुणता कर्कशास्थिरव्रणताच सन्ध्यस्थिदग्धे ।

अर्थ--तहां त्वचाके दग्धहोनेसे शब्दका प्रादुर्भाव दुर्गंधका आना और त्वचाका संकोच होता है । मांसदग्ध होनेसे कपोत (पिंडुकियाकासा) वर्ण स्वल्प सूजन पीडा व्रणका सूखना और संकोच होना होवेहै शिरा स्नायु दग्ध होनेसे काले और ऊंचे व्रण और स्रावका न होना । संधि हड्डीके दग्ध होनेसे रूक्ष लाल त्वचाका वर्ण होजावे कर्कश और कठिन व्रणोंका होना ए लक्षण होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रोगविशेषमें शरीरविशेषमें दागना ।

तत्राशिरोरोगाधिमन्थयोर्भ्रूललाटशंखप्रदेशेषु दहेत् वर्त्मरोगेष्वार्द्रालक्तकप्रतिच्छन्नां दृष्टिं कृत्वा वर्त्मरोमकूपान्दहेत् त्वङ्मांसशिरास्नायुसन्ध्यस्थिस्थितेऽत्युग्ररुजे वायावुच्छ्रितकठिनसुप्तमांसे व्रणेग्रन्थ्यर्शोऽर्बुदभगन्दरापचीश्लीपदचर्मकीलतिलकालकांत्रवृद्धिसन्धिशिराछेदनादिषु नाडीशोणितातिप्रवृत्तिषु चाग्निकर्मकुर्यात् ।

अर्थ–शिरोरोग अधिमंथ (नेत्रका रोग) इनमें भौंह ललाट और कनपटीको दागना चाहिये।पलकोंके रोगमें पलकोंको और दृष्टिको गीले कपडेसे ढककर पलकोंके रोमकूपोंको दागे।त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु, संधी, अस्थि, इनमें वायु करके अत्यंत पीडा होनेसे उच्छ्रित कठिन और सुप्त मांसमें व्रण, गांठ, बवाशीर,अर्बुद, भगंदर, अपची, श्लीपद, चर्मकीलक, तिलकालक, अंत्रवृद्धि, संधिशिरा छेदनादिकोंमें नाडीव्रण, और शोणितकी अतिप्रवृत्तिमें अग्निकर्म करना चाहिये.

दागनेके भेद ।

तत्ररोगाधिष्ठानभेदादग्निकर्मचतुर्धाभिद्यते । तद्यथा । वलयबिन्दुरेखाप्रतिसारणानीतिदहनविशेषाः ।

अर्थ–रोगके अधिष्ठान (स्थान) भेद करके अग्निकर्मके चार भेद हैं–जैसे वलय, बिन्दु, रेखा, और प्रतिसारण ए दहनविशेष है ।

रोगस्य संस्थानमतोविदित्वानरस्यमर्माणि बलाबलञ्च ।
व्याधिं चतुर्थञ्च समीक्ष्यसम्यक्ततोव्यवस्येद्विषगग्निकर्म ॥

अर्थ–रोगका संस्थान (लंबा व चौडा व आदिआकार) मनुष्यके मर्म और रोगीका बलाबल, व्याधि और ऋतु इनको भले प्रकार विचारकर तदनंतर अग्निकर्म करना चाहिये.

सम्यक् दग्धकी चिकित्सा ।

तत्र सम्यद्दग्धे मधुसर्पिर्भ्यामभ्यङ्गः ।

अर्थ–तहां सम्यक् दग्ध होनेपर सहत और घृतका अभ्यंग करना चाहिये,

अग्निकर्म वर्जित मनुष्य ।

अथेमानग्निनापरिहरेत् । पित्तप्रकृतिमन्तःशोणितं भिन्नको-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ष्ठमनुद्धृतशल्यं दुर्बलं बालं वृद्धं भीरुमनेकव्रणपीडितमस्वेद्यांश्च ।

अर्थ–इतने मनुष्योंको अग्निकर्म करना वर्जित है पित्त प्रकृतिवाला भीतर रुधिर और भिन्नकोष्ठ तथा अनुद्धृतशल्य (जिस्के भीतर शल्यहो) दुर्बल, बालक, वृद्ध, भयभीत अनेक व्रणोंसे पीडित और जिनको स्वेदन संस्कार-वर्जित हो अथवा जिनके पसीने न आते हो ऐसे मनुष्योंके अग्निकर्म न करे अथवा अस्वेद्य (पांडु प्रमेही रक्तपित्ती और तृषार्त आदि) जानने.

अतऊर्ध्वमितरथा दग्धलक्षणं वक्ष्यामः । तत्रास्निग्धं रूक्षं वाश्रित्यद्रव्यमग्निर्दहति । अग्निसन्तप्तो हिस्नेहः सूक्ष्मशिरानुसारित्वात्त्वगादीननुप्रविश्याशुदहति । तस्मात्स्नेहदग्धेऽधिकारुजोभवंति ।

अर्थ–अब इसके उपरांत दुष्ट दग्धोंके लक्षण कहेंगे । तहां स्निग्ध द्रव्य (घृतआदि) और रूक्ष द्रव्य (काष्ठ पाषाण लोष्टादि) के आश्रय करके अग्नि, वैद्यके दोषसे दहन करे है । अग्निकरके संतप्त जो चिकनाई है सो सूक्ष्म शिरानुसारित्व होनेसे त्वचाआदिमें प्रवेशहो तत्क्षण पजारता है । इसीसे स्नेहदग्धमें अधिक पीडा होती है.

चतुर्विध अग्निदग्ध ।

तत्रप्लुष्टं दुर्दग्धं सम्यग्दग्धमतिदग्धं चेति चतुर्विधमग्निदग्धम् । तत्रयद्विवर्णं प्लुष्यतेऽतिमात्रं तत्प्लुष्टम् । यत्रोत्तिष्ठन्ति स्फोटास्तीव्राश्चोषदाहरागपाकवेदनाश्चिराच्चोपशाम्यन्ति तद्दुर्दग्धम् । सम्यग्दग्धमनवगाढं तालफलवर्णं सुसंस्थितं पूर्वलक्षणयुक्तंच । अतिदग्धे मांसावलंबनं गात्रविश्लेषः शिरास्नायुसंध्यस्थिव्यापादनमतिमात्रं ज्वरदाहपिपासामूर्च्छाश्चोपद्रवाभवन्ति व्रणश्चास्यचिरेण रोहति रूढश्च विवर्णो भवति । तदेतच्चतुर्विधमग्निदग्धलक्षणमात्मकर्मप्रसाधकं भवति ।

अर्थ–तहां प्लुष्ट, दुर्दग्ध, सम्यग्दग्ध और अतिदग्ध ए चतुर्विध अग्निदग्ध

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

है । तहां दग्धस्थानका विवर्ण हो और अत्यंत दाह हो उसको प्लुष्ट कहते हैं। जिसमें तीव्र फोडे प्रगट होवे और खींचनेकीसी पीडा, दाह, राग (रक्तता) पाक और ओषादि दाह होवे तथा बहुत देरमें जो शांति होवे उसको दुर्दग्ध कहते हैं। जो अतिदग्ध लक्षणकरके रहित हो तथा पकेहुए तालफलके समान वर्ण होवे और अत्यंत ऊंचा तथा अत्यंत नीचा इत्यादि दोषरहित हो और जो पूर्व लक्षण (त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु,संधी, अस्थि दाहलिंग) युक्त हो उसको सम्यग्दग्ध कहतेहैं । अतिदग्ध होनेके ये लक्षण हैं कि, मांसका अवलंबन, देहका विघट्टन, शिरा, स्नायु, संधी, और अस्थि इनका हिंसन, अत्यंत ज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छा इत्यादि उपद्रव होवे तथा व्रण बहुत दिनमें भरे और भरजावे तबभी वह स्थान विवर्ण हो जावे. यह चतुर्विध अग्निकर्म वैद्यको आत्मकर्म (चिकित्सा) का प्रसाधक होता है.

चिकित्सार्थ विशिष्टदुष्ट दोषोंकी दुष्टी ।

अग्निनाकोपितंरक्तं भृशंजन्तोः प्रकुप्यति । ततस्तेनैववेगेन पित्तमस्याप्युदीर्यते ॥ तुल्यवीर्यैउभेह्येते रसतोद्रव्यतस्तथा । तेनास्यवेदनास्तीव्राः प्रकृत्याचविदह्यते ॥ स्फोटाःशीघ्रं प्रजायन्ते ज्वरस्तृष्णा च वर्द्धते ॥

अर्थ--अग्निकरके कोपित रक्त मनुष्यके निरंतर कुपित होता है, तदनंतर कुपित होता है, तदनंतर उसी अग्नि और रक्तके वेगसे इस प्राणीका पित्त उदीर्ण होता है. ये पित्त और अग्नि दोनों रससे और द्रव्यसे तुल्य वीर्य हैं (अर्थात् दोनों उष्णवीर्य और कटुक है) अतएव अग्निदग्ध मनुष्यके तीव्र पीडा होती है, और स्वतःस्वभाव दाह होता है. तथा उक्त रक्तपित्तके कुपित होनेसे शीघ्र फोडे, और ज्वर होता है और तृषा बढती है.

दग्धकीशांतिकेवास्ते चिकित्सा ।

दग्धस्योपशमार्थायचिकित्सा सम्प्रचक्ष्यते । प्लुष्टस्याग्निप्रतपनं कार्यमुष्णं तथौषधम्॥शरीरेस्विन्नभूयिष्ठे स्विन्नं भवति शोणितम् । प्रकृत्याह्युदकंशीतं स्कन्दयत्यतिशोणितम् ॥ तस्मात्सुखयतिह्युष्णं नतुशीतं कथंचन ।

अर्थ--दग्धके उपशमार्थ (शांतिके अर्थ) चिकित्सा अब कही जाती है, कि जो प्लुष्टदग्ध है उसको अग्निसे तपाना चाहिये और औषधभी गरम देनी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चाहिये अर्थात् लेप पानादिकभी उष्णही करने चाहिये । कदाचित् कोई शंकाकरे कि, अग्निदग्ध उष्णहै उसमें उष्णही क्रिया करना तो हमारी समझमें नहीं आती इसवास्ते कहते हैं कि, शरीर अत्यंत गीला होनेसे रुधिरभी आर्द्र हो जाता है और जल प्रकृतिसेही शीतलहै जब देहकेआर्द्रतासे रुधिर आर्द्र होजाताहै तब चलनेसे रह जाता है. उस रक्तसे सब रक्तके मार्ग रुद्ध हो जाते हैं इसीसे वायु और ऊष्माभी देहकी निकलनेसे बंद हो जाती है अत एव क्षुष्टदग्धमें शूल शोफादिक पीडा होती है, इसीसे ऊष्माके निकलनेको और वातके संचार होनेको उष्णक्रिया कही है और इसीहेतुसे उष्णक्रिया क्षुष्टदग्ध मनुष्यको सुखकारी होती है और शीतल क्रिया नहीं होती

दुर्दग्धकी क्रिया ।

शीतमुष्णं च दुर्दग्धे क्रियांकुर्याद्भिषक्पुनः ।
घृतालेपनसेकांस्तु शीतेनैवास्यकारयेत् ।

अर्थ--दुर्दग्धमें शीतल और उष्ण दोनों क्रिया वैद्यको करनी चाहिये और पीछे घृतका लेप और सेक आदि शीतलही करने चाहिये, इसप्रकार रोगी सुखी होता है. कोई कहता है कि, अति दाहमें शीतल क्रिया करे और उष्णक्रिया कदाचित् न करे.

सम्यग्दग्धकी चिकित्सा ।

सम्यग्दग्धेतुगाक्षीरीप्लक्षचन्दनगैरिकैः । सामृतैः सर्पिषा स्निग्धैरालेपं कारयेद्भिषक् ॥ ग्राम्यानूपौदकैश्चैनं पिष्टैर्मांसैः प्रलेपयेत् । पित्तविद्रधिवच्चैनं सन्ततोष्माणमाचरेत् ॥

अर्थ--सम्यक्दग्धमें वंशलोचन (अथवा कोई तुगाक्षीरीके कहनेसे वंशलोचनके समान पार्थिव द्रव्य विशेष कहते हैं) पाखर, लालचंदन, और गिलोय इन सबको घृतमें मिलाय लेप करे यह लेप पित्तको शांति करता है. अब वातके शांतिकेलिये ग्राम्य (बकरा महिष आदि) अनूप (वाराह आदि) और औदक (मत्स्यकूर्मादिक) इनके पिष्टमांसका लेप तथा पित्तविद्रधिके समान इस सम्यग्दग्धका निरंतर गरम उपचार करे.

अतिदग्धे विशीर्णानि मांसान्युद्धृत्य शीतलाम् ।
क्रियां कुर्याद्भिषक्पश्चाच्छालितण्डुलकण्डनैः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तिन्दुकीत्वक्कषायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत्। व्रणं गुडूचीपत्रैर्वा छादयेदथवोदकैः॥ क्रियाश्च निखिलां कुर्याद्भिषक् पित्तविसर्पवत्॥

अर्थ–अतिदग्धमें विखरेहुए मांसको निकालकर वैद्य शीतल क्रिया करे पीछे सांठी चावलोंकी कणकी करके तेंदूकी छालके काढेमें घृत मिलाय लेप करे अथवा गिलोयके पत्तोंसें व्रणको आच्छादन करे। अथवा पद्मोत्पलादि पत्रोंकरके आच्छादन करे तथा पित्तकी विसर्पमें जो क्रिया लिखी है वो सब इस अतिदग्धमें कर्तव्य है. * कोई कषाय शब्द करके तिंदुकीका चूर्ण ग्रहण करते हैं * अथवा कषाय जिनसे बनती है ऐसे वृक्षोंके चूर्ण करके लेपविधि कर्तव्य है.

सर्व अग्निदग्धोंके रोपणार्थ चिकित्सा।

मधूच्छिष्टं समधुकं रोध्रं सर्जरसं तथा। मञ्जिष्ठां चन्दनं मूर्वां पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत्। सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रोपणमुत्तमम्।

अर्थ–सहत, मुलहटी, लोध, राल, मजीठ, चंदन, मूर्व्वा, इनको पीस घृतमें मिलायकर पाचन करे, यह घृत संपूर्ण अग्निदग्धोंके रोपण करनेमें उत्तम प्रयोग है.

स्नेहदग्धकी चिकित्सा।

स्नेहदग्धं क्रियां रूक्षां विशेषेणावचारयेत्।

अर्थ–स्नेहदग्ध (अर्थात् जो घृत तैल आदिसे जलगया हो) उस पुरुषकी रुक्ष चिकित्सा करे उसीप्रकार रूक्षदग्धमें अनुक्तभी स्निग्ध क्रिया कर्तव्य है.

धूमोपहतके लक्षण।

अतऊर्द्धं प्रवक्ष्यामि धूमोपहतलक्षणम्। श्वासितिक्षौतिचात्यर्थमत्याधमतिकासते। चक्षुषोः परिदाहश्चरागश्चैवोपजायते। सधूमकंनिःश्वसिति श्रेयमन्यन्नवेत्ति च। तथैव च रसान्सर्वाञ्छृतिश्चास्योपहन्यते। तृष्णादाहज्वरयुतः सीदत्यथ च मूर्च्छति॥धुमोपहत इत्येवम्।

अर्थ–अब इसके उपरांत धूमोपहत (अर्थात् अग्निकर्म करतेसमय कंठनासादिकोंमें धूआं चला जावे उसके) लक्षण कहेंगे. धूमोपहत पुरुष श्वास

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ले अत्यंत हिचकी आवे. अफराहो, खांसे, नेत्रोंमें दाह होवे. तथा नेत्र लाल पीले हो बडीबडी श्वास लेवे और धूमोपहत सुगंध, दुर्गंधको नहीं जाने उसीप्रकार उसको किसी प्रकारका जिह्वासे स्वाद न आवे, कानोंसे सुने नहीं, नेत्रोंसे देखे नहीं, तथा तृषा, दाह, ज्वर हो, कर्म करनेमें असमर्थ हो और मूर्च्छित हो; इसप्रकार धूमोपहतके लक्षण जानने.

धूमोपहतकी चिकित्सा।

शृणुतस्यचिकित्सितम्।सर्पिरिक्षुरसंद्राक्षां पयोवाशर्कराम्बु वा। मधुराम्लौ रसौ वापि वमनायप्रदापयेत् । वमनःकोष्ठ-शुद्धिःस्याद्धूमगन्धश्चनश्यति । विधिनानेनशाम्यंति सद-नक्षवथुज्वराः । दाहमूर्च्छातृडाध्मानःश्वासःकासश्चदारुणः। मधुरैर्लवणाम्लैश्चकटुकैःकवलग्रहैः । सम्यग्गृह्णातीन्द्रिया-र्थान्मनश्चास्यप्रसीदति । शिरोविरेचनंतस्मैदद्याद्योगेन शास्त्रवित् । दृष्टिर्विशुध्यतेचास्यशिरोग्रीवंचदेहिनः । अवि दाहिलघुस्निग्धमाहारंचास्यकल्पयेत् ।

अर्थ--अब धूमोपहतकी चिकित्सा कहतेहैं. घृत ईखका रस अथवा दाख, दूध अथवा मिश्रीका सर्वत अथवा मधुर और खट्टेरस ए वमनके अर्थ देने चाहिये, वमन करानेसे कोठेकी शुद्धि होतीहै और धूमगंध नष्ट होवे। इस विधिके अनुष्ठानसे क्रियोपराम छिक्का, ज्वर, दाह, मूर्च्छा, प्यास, अफरा, श्वास और दारुण खांसी ए सब रोग नष्ट होवे । मधुर, नोनके, खट्टे, और कटुक केवल ग्रहोंकरके रोगी भलेप्रकार सर्व इंद्रियोंके विषय ग्रहण करताहै. और मन प्रसन्न होताहै. तथा शास्त्रवेत्ता वैद्य इस धूमोपहतरोगीको योगके साथ शिरोवि-रेचन देवे. ऐसा करनेसे इस रोगीकी दृष्टि शुद्ध होवे, और शिर तथा ग्रीवा शुद्ध होवे. और इस रोगीको अविदाही हलका चिकना ऐसा आहार देना चाहिये ।

दग्धसदृशोंकी चिकित्सा ।

उष्णवातातपैर्दग्धेशीतः कार्योविधिःसदा। शीतवर्षानिलहत उष्णंस्निग्धंचशस्यते । तदातितेजसादग्धेसिद्धिर्नास्तिकथं-चन । इन्द्रवज्राग्निदग्धेऽपिजीवति प्रतिकारयेत्॥स्नेहाभ्यङ्ग-परीषेकैःप्रदेहैश्चतथाभिषक् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-अब दग्धचिकित्साके प्रसंगकरके दग्धके समान जो मनुष्यहै उनकी चिकित्सा कहतेहैं. जिसको गरमीकीऋतुमें उष्ण पवन (लूँ) लगईहो-अथवा गरमीकी तथा शरद्ऋतुसंबंधी धूप लगीहो ऐसे रोगीकी शीतल चिकित्सा कर्त्तव्यहै[1] और जो हिम (बर्फ) और वर्षाकी पवनके मारेहुएहै. उनका उष्ण और स्निग्ध उपचार कर्त्तव्यहै. और जो अतितेजकरके अर्थात् बिजली आदिके मारेहुएहैं वो अच्छे नहीं होते. कदाचित् बिजलीका मारा तथा उल्कापात माराहुआ मनुष्य जीता रहे तो उसकीभी चिकित्सा स्नेह (घृत तैलादि) परिषेक और प्रदेहकरके कर्त्तव्यहै ।

इतिश्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे एकविंशतितमस्तरङ्गः ॥ २१ ॥

अथातो जलौकावचारणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ-अब जलौकावचारणीय अर्थात् जोख लगाने विधि जिस अध्यायमें उसकी व्याख्या करेंगे ।

जोखोंका विषय ।

नृपाढ्यबालस्थविरभीरुदुर्बलनारीसुकुमाराणामनुग्रहार्थंपर-मसुकुमारोऽयंशोणितावसेचनोपायोभिहितोजलौकसः ।

अर्थ-राजामहाराजा, सेठसाहूकार, बाल, वृद्ध, भीरू, दुर्बल, स्त्री और जो सुकुमारहै उनके कल्याणार्थ यह जोख लगाकर रुधिर निकालना परम सुकुमार अर्थात् प्रधान मृदु यत्नहै इस लिखनेका यह तात्पर्यहै कि शृंग तुंबीसैं रुधिर निकालना सुकुमार उपायहै और जोखकरके रुधिर निकालना परमसुकुमार उपायहै और फस्त खोलना अति सुकुमारोपायहै ।

अब प्रसंगवश सिंगी और तूंबीके विषयको दिखाते हैं ।

तत्रवातपित्तकफदुष्टशोणितं यथासंख्यंशृंगजलौकालाबुभि-रवसेचयेत् स्निग्धशीतरूक्षत्वात्सर्वाणिसर्वैर्वा ।

अर्थ-तहां वातपित्त कफकरके दुष्ट शोणितको यथाक्रम सिंगी, जोख, तुंबीसे निकाले क्योंकि सिंगी, जोख और तुंबी इनको स्निग्ध, शीतल और

---

१ जिस मनुष्यको लूँ मारजावे उसकेलिये हम अपना अनुभव करा यत्न लिखते हैं. यद्यपि यह नुस्खा बहुतसे मनुष्योंको याद है तथापि सर्व साधारणोंके हितार्थ लिखतेहैं. कि कच्ची अंबियांका भुरताकर उसमें भुनाजीरा कालीमिर्च और सैंधानिमक डाल पानी मिलाय रसाबनाकर तीन दिन पिलानेसे अवश्य यह रोगशांति होतीहै.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रूक्षत्वहै अतएव इनसे रुधिर निकाले अथवा सर्व प्रकारके दुष्ट रुधिरको सब सिंगी, तुंबी आदिसे निकाले ।

वातादिदुष्टतामें सहेतु शृंगाद्यवचारण दिखातेहैं।

उष्णंसमधुरंस्निग्धंगवांशृङ्गंप्रकीर्तितम् । तस्माद्वातोपसृष्टे तुहितंतदवसेचने । शीताधिवासामधुराजलौकावारिसम्भवा। तस्मात्पित्तोपसृष्टेतुहितासात्ववसेचने । अलाबुकटुकंरूक्षं तीक्ष्णंचपरिकीर्तितम् । तस्माच्छ्लेष्मोपसृष्टेतुहितंतदवसेचने ।

अर्थ–गौका सींग मधुर, स्निग्ध और गरमहै. अतएव वह वातजनित रोगमें रुधिरनिकालनेकेलिये हितहै । शीतल गृह और मधुर, जलकी जोखहै अतएव पित्तजनित रोगमें रुधिर निकालनेमें हितहै । तुंबी कटुरूक्ष और तीखी है अतएव कफके रोगमें तुंबीद्वारा रुधिर निकालना हितहै ।

तत्रप्राच्छितेतनुवस्त्रपटलावनद्धेनशृङ्गेणशोणितमवसेचयेदा-चूषणात् । सान्तर्दीपयाऽलाब्वा ।

अर्थ–तहां महीनवस्त्रके पटलकरके आच्छादित सिंगीसे जबतक वह रुधिर खींचे तावत्कालपर्यंत रुधिर निकाले और भीतर दीप्तरोगहै उनका तुंबी-द्वारा रुधिर निकाले । सिंगी और तुंबीका आकार भालुकी संहितामें लिखाहै।

जलायुका वा जलौकसशब्दकी निरुक्ति ।

तत्रजलायुकावक्ष्यन्ते । जलमासामायुरितिजलायुका-जल-मासामोकः इतिजलौकसः ।

अर्थ–तहां जोखोंको कहतेहैं इसमेंभी जलायुकाकी वा जलौकस शब्दकी निरुक्ति कहतेहैं. जल इनकी आयु होनेसे जोखोंको जलायु कहतेहैं. और जल रहनेका स्थान होनेसे इनका नाम जलौकसहै ।

चिकित्सोपयोगी जोखोंकी संख्या ।

ताद्वादशतासांसविषाःषट्तावत्यएवनिर्विषाः । तत्रसविषाःकृ-ष्णाकर्बुराअलगर्दा इन्द्रायुधासामुद्रिकागोचन्दनाचेति ।

अर्थ–वो जोख बारह प्रकारकी है;उन्होंमें छः विषैलहैं, और छः ही निर्वि-

---

१ विषाणं श्वेतगोबिंदुचक्रं सप्ताङ्गुलायतम् ॥ क्षिप्तान्तःपिचुपेशीकं योज्यं वातयुजेऽसृजि । अंगुष्ठमूलवन्मूले छिद्रमग्रेस्य मुद्रवत् । इति अष्टांगुलपरीणाहा चतुरंगुलनालसंमिता मुमुखी कृष्णमृदालिप्ता तनुः श्रेष्ठा रक्तावसेचनेऽलाबुरिति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ष हैं, तहां विषैलजोखोंके नाम कहतेहैं–कृष्णा, कर्बुरा, अलगर्दा, इन्द्रायुधा, सामुद्रिका, और गोचन्दना ।

विषजोखोंकी आकृति ।

तास्वञ्जनचूर्णवर्णापृथुशिराःकृष्णा । वर्मिमत्स्यवदायताछिन्नोन्नतकुक्षिःकर्बुरा । रोमशा महापार्श्वाकृष्णमुख्यलगर्दा । इन्द्रायुधवदूर्ध्वराजिभिश्चित्राइन्द्रायुधा । ईषदसितपीतिकाविचित्रपुष्पाकृतिचित्रासामुद्रिका । गोवृषणवद्दोर्भागेद्विधाभूताकृतिरणुमुखीगोचन्दनेति ।

अर्थ–तिनमें कज्जलके समान काली और बडे मस्तवाली जोख कृष्णा कहातीहै । वर्मीमछलीके समान लंबी और छिन्न तथा जिसकी कूखभाग कुछ ऊंचेहोवे उसको कर्बुरा कहतेहैं । महापार्श्ववाली जोख जिसके बडे २ बाल हो तथा कालेमुखकी अलगर्दा कहातीहै । इन्द्रधनुषके समान जिसके ऊपर चित्रविचित्ररेखाहोवे उसको इन्द्रायुधा कहते हैं । कुछ काली और पीली विचित्रपुष्पके समान आकृति अर्थात् अनेक प्रकारकी बिन्दुओंसे अंकित और विचित्र सामुद्रिका कहातीहै । जो बैलके अंडसदृश नीचेके भागमें दोभागहोरहीहो और छोटामुखहो उनको गोचन्दना कहतेहैं ।

सविषजोखोंके काटनेसे उपद्रव ।

ताभिर्दष्टेपुरुषे दंशश्वयथुरतिमात्रं कण्डूमूर्च्छाज्वरोदाहश्छर्दिर्मदःसदनमितिलिङ्गानिभवन्ति । तत्रमहागदः पानालेपननस्यकर्मादिषूपयोज्यः । इन्द्रायुधादष्टमसाध्यमित्येताःसविषाःसचिकित्सिताव्याख्याताः ।

अर्थ–उक्त सविष जोखोंके काटनेसे पुरुषके दंशस्थानमें सूजन अत्यंत खुजली, मूर्च्छा, ज्वर, दाह, वमन, मद, अंगोंका रहजाना, ए लक्षण होतेहैं । तहां महागद अर्थात् जोख काटनेसे यदि अधिक रोगवृद्धि होवेतो उसको विषनाशक पान, लेप, नस्य आदि, कर्मोंसे शांति करना चाहिये. इन सविष जोखोंमें इन्द्रायुधानामक जोख असाध्यहै । अर्थात् इसका काटा अच्छा नहींहो इसके लक्षण असाध्य सर्पके काटनेके समान जानने । इसप्रकार विषैल जोख चिकित्सासहित वर्णन करी अब निर्विष जोखोंको कहतेहैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निर्विषजोख।

अथ निर्विषाः कपिला पिङ्गला शङ्कुमुखी मूषिका पुण्डरीकमुखी सावरिकाचेति ।

अर्थ–कपिला, पिंगला, शंकुमुखी, मूषिका, पुण्डरीकमुखी, सावरिका, ए-छः प्रकारकी जोख निर्विषहै ।

प्रत्येककी परीक्षा।

तत्रमनःशिलरञ्जिताभ्यामिवपार्श्वाभ्यांपृष्ठेस्निग्धमुद्गवर्णाकपिला । किञ्चिद्रक्तवृत्तकायापिङ्गाशुगाचपिङ्गला । यकृद्वर्णा शीघ्रपायिनीदीर्घतीक्ष्णमुखीशङ्कुमुखी । मूषिकाकृतिवर्णाऽनिष्टगंधाचमूषिका । मुद्गवर्णापुण्डरीकतुल्यवक्त्रापुण्डरीकमुखी । स्निग्धापद्मपत्रवर्णाष्टादशाङ्गुलप्रमाणासावरिकासाचपश्वर्थे इत्येताअविषाव्याख्याताः ।

अर्थ–तहां मनसिलके रंगसे मानो दोनों पार्श्वरंगेसे हों और पीठस्निग्ध और मूंगके वर्णहो उसको कपिला कहतेहैं । तथा कुछ लाल, गोल, और पीली तथा शीघ्रचलनेवाली जोखको पिंगला कहतेहैं । जिसका यकृत्के अर्थात् नीला और लोहितवर्ण, शीघ्र रुधिर पीनेवाली लंबी और तीखेमुखकी जोखोंको शंकुमुखी कहतेहैं । आकारमें और वर्णमें मूसेके समानहो तथा जिसमें दुर्गंध आतीहो उसको मूषिका कहतेहैं । मूंगके समान हरी और कमलके समानमुखवाली पुंडरीकमुखी कहातीहै । और जो स्निग्ध कमलकेपत्तेके वर्णसदृशवाली वर्ण १८ अठारह अंगुलकी लंबी सावरिका जोख कहलातीहै। यह हाथी घोडे बैल आदि पशुओंके लिये कहीहै । ए छः प्रकारकीजोख निर्विषकही ।

निर्विषजोखोंके होनेके स्थान ।

तासां यवनपांड्यसह्यपीतनांदीनि क्षेत्राणि । तेषुमहाशरीराबलवत्यः शीघ्रपायिन्योमहाशना निर्विषाश्चविशेषेण भवन्ति ।

अर्थ–तहां यवन (तुरकिस्तान) पांड्यदेश (देहलीके पश्चिम और कंबोज-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देशके दक्षिणमें जो देशहै[1]) सह्यदेश (नर्मदाके पार दक्षिणके देश) पीतन (मथुराके इलाकेके देश) इनसे आदिले अन्यदेशोंमें निर्विष जोख होतीहै । इनदेशोंमें प्रगटहोनेवाली जोख बडेदेहकी बलवान्, शीघ्रपीने वाली, महाभोजनवाली ऐसी निर्विष विशेषकरके होतीहै ।

तथासविषनिर्विष जोखकी भूमि ।

तत्रसविषमत्स्यकीटदर्दुरमूत्रपुरीषकोथजाताःकलुषेष्वम्भः-सुचसविषाः । पद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगन्धिककुवलयपुण्ड-रीकशैवालकोथजाता विमलेष्वम्भःसुचनिर्विषाः ।

अर्थ–तहां विषैल मछली, कीट (छः बिंदुकाआदि) और विषैल मेंडका इनके मूत्र मल, अथवा इनके सडेहुए देहसे जो प्रगट हुईहो तथा दूषित जलमें विषैल जोख रहतीहै । और पद्म (कुछ सपेद कमल) उत्पल (कुछ नीलाई लिये होताहै) नलिन (किंचित्लालकमल) कुमुद (कमोदनी) सौगंधिक (गर्दभपुष्प कहतेहैं) यह चंद्रोदय होनेपर खिलताहै और अत्यंत सुगंधवाला होताहै । कुवलय (लालकमल) पुंडरीक (सपेदकमल) और शैवाल (सिवारवाकाई) इनके सडनेसेजो जोख प्रगट होतीहै वो निर्विष जाननी ।

शुभजोख ।

क्षेत्रेषुविचरन्त्येताः सलिलेषु सुगंधिषु ।
नचसंकीर्णचारिण्यो नच पङ्केशयाःसुखाः ॥

अर्थ-ए निर्विष जोख सुगंधितजलोंमें और उत्तम क्षेत्रोंमें विचरतीहै । इनमें संकीर्णचारिणी तथा कीचमें रहनेवाली उत्तम नहीं होती ।

इनके पकडनेकी और पालनेकी विधि ।

तासांप्रग्रहणमार्द्रचर्मणान्यैर्वाप्रयोगैर्गृह्णीयात् । अथैनां नवेमहतिघटे सरस्तडागोदकपङ्कमावाप्यनिदध्यात् भक्ष्यार्थंचासामुपहरेच्छैवलंवल्लूरमौदकांश्चकन्दांश्चूर्णीकृत्य शय्यार्थंमौदकानिचपत्राणि । द्व्यहात्त्र्यहाच्चान्यज्जलंभक्ष्यंचदद्यात् सप्तरात्रात्सप्तरात्राच्चघटमन्यंसंक्रामयेत् ।

अर्थ–जोखोंको शरद्ऋतुमें गीले चर्मकरके पकडनी चाहिये, अथवा तत्कालमारेहुए जीवका मांस, पेशी, मक्खन, घृत और दूधमिला भात

१ काम्बोजाद्दक्षभागेतु इन्द्रप्रस्थाच्चपश्चिमे । पाण्डचदेशोमहेशानि महाशूरत्वकारक इति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इत्यादि करके पकडनी चाहिये। इन पकडीहुई जोखोंको नए और कोरे बडे घडेमें सरोवर वा तालावका जल, और कुछ कीच भरके उसमें रखनी चाहिये। और इनके खानेके लिये सिवार (काई) सूखामांस और जलमें होनेवाली वस्तु तथा कंदोंका चूर्ण करके डालना चाहिये। तथा इनके बैठने और सोनेके लिये तृण, तथा जलमें होनेवाले कमलआदिके पत्ते उन घडोंमें डालने चाहियें। दूसरे वा तीसरे दिन उस घडेका जल निकाल नवीन भरना चाहिये और भोजनको उक्तवस्तू डाले, तथा सातवे २ दिन घडेको पलटना चाहिये।

विषैल जोख।

स्थूलमध्याःपरिक्लिष्टाःपृथ्व्योमन्दविचेष्टिताः। अग्राहिण्योऽल्पपायिन्यः सविषाश्चनपूजिताः।

अर्थ–जो बीचसे स्थूल, अन्योन्य मिलीसी दीखे, मोटी, मंदचलनेवाली और जो स्थानको ग्रहण न करे तथा थोडा रुधिर पीवे एसी विषैल जोख त्यागने योग्यहै।

जोख लगानेकी विधि।

अथजलौकाऽवसेकसाध्यव्याधितमुपवेश्य संवेश्य वा विरूक्ष्यचास्यतमवकाशंमृद्गोमयचूर्णैर्यद्यरुजःस्यात्।

अर्थ–जोख लगानेयोग्य साध्यरोगीको बिठला अथवा सुलायकर यदि इस रोगीके देहमें कोई घाव नहोवे तो जहां जोख लगानी होवे उस जगे मिट्टी गोमयचूर्णसे धोवे, फिर जोख लगावे परंतु घावमें जोख नहीं लगानी चाहिये क्योंकि घावमें जोख लगानेसे अधिक पीडाकी वृद्धि होतीहै।

गृहीताश्चताःसर्षपरजनीकल्कोदकप्रदिग्धगात्रीःसलिलसरकमध्येमुहूर्तस्थिता विगतक्लमाज्ञात्वा ताभिः रोगं ग्राहयेत्।

अर्थ–पकडीहुई पूर्वोक्त जोखोंको सरसों हलदीके कल्कके जलसे भिगो और जलके पात्रमें दोघडी स्थित करे जब वो विगतक्लम (हरारत रहित) होजावे तब उनको रोगीके अभीष्ट स्थानमें लगावे।

सूक्ष्मशुक्लार्द्रपिचुप्रोतावच्छन्नांकृत्वा मुखमपावृणुयादगृह्णंत्यैक्षीरबिन्दुं शोणितबिंदुंवादद्याच्छस्त्रपदानिवाकुर्वीतयद्येवमपिनगृह्णीयात्तदान्यांग्राहयेत्।

CC-0. Kheti Vikas Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-जिससमय जोखोंको लगावे उससमय पतला सपेद और गीले कपडेसे जोखोंको ढकलेवे और उनका मुख खुला रहने देवे फिर लगावे, यदि वो जोख उसस्थानको न पकडे तो उनको दूधकी अथवा रुधिरकी बूंद उसस्थानमें डालकर लगावे, अथवा शस्त्रसे रुधिर निकालकर फिर जोख लगावे, यदि इसप्रकार करनेपरभी वो न लगे तो उसको हटाकर दूसरी लगावे ।

जोख लगनेके लक्षण ।

यदाचनिविशतेऽश्वखुरवदाननंकृत्वोन्नम्यचस्कन्धं तदाजानीयाद्गृह्णातीति गृह्णन्तीमार्द्रवस्त्रावच्छन्नांधारयेत्सेचयेच्च ।

अर्थ-जब जोख लगजातीहै तब घोडेके खुरके सदृश मुखकर और अपने कंधोंको ऊंचे उठाय लेतीहै। इन लक्षणोंसे जाने कि जोख लगगई और रुधिरको पीतीहै । रुधिर पीतीहुईको गीले कपडेसे ढकदेवे और उस कपडेके ऊपर थोडा २ पानी डालता जावे । गीले कपडेके ढकनेसे वो सुखपूर्वक शीघ्र रुधिरको पीतीहै । जोख अपने आत्मप्रभाव करके प्रथम दूषितरुधिरको पीतीहै जैसे हंस दूधजल मिलेमेंसैं दूधको पीताहै ।

शुद्ध रुधिर पीतीहुई जोखोंके लक्षण ।

दंशे तोदकण्डूप्रादुर्भावैर्जानीयाच्छुद्धमियमादत्ते इतिशुद्धमाददानामपनयेत् । अथ शोणितगन्धेननमुञ्चेन्मुखमस्याः सैन्धवचूर्णेनावकिरेत् ।

अर्थ--जोख लगीहुई ठौरमें यदि पीडा और खुजली होवेतो जाने कि, अब शुद्ध रुधिर पीतीहै । उसको छुडाय लेना चाहिये । यदि रुधिरकी गंधसे कदाचित् न छोडे तो जोखके मुखपर सैंधानिमक लगावे, तो तत्काल छोडदेवे कोई [शोणितगन्धेन] इसजगे [शोणितगद्धेनेति] ऐसा पाठ लिखताहै इसका यह अर्थ हुआकि रुधिरकी कांक्षा करके यदि जोख न छोडे तो सैंधानिमक लगावे ।

अथपतितां तण्डुलकण्डनप्रदिग्धगात्रीं तैललवणाभ्यक्तमुखींवामहस्ताङ्गुष्ठाङ्गुलीभ्यांगृहीतपुच्छां दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठाङ्गुलीभ्यांशनैःशनैरनुलोममनुमार्जयेदामुखाद्वामयेत्तावद्यावत्सम्यग्वान्तलिङ्गानीति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–जब छूटकर जोख गिरपडे उसको चामलकी किनकीमें लपेट तैल, और नोन उसके मुखपर लगाय बाँए हाथके अँगूठे और उंगलीसे उसका पिछला भाग दबाय दहने हाथकी उंगली अंगूठेसे धीरे २ उसको मुखपर्यंत मूते जबतक संपूर्ण रुधिर न निकल जावे।

सम्यग्वान्तासलिलसरकन्यस्ताभोक्तुकामासतीचरेत्। या सीदति न चेष्टते सा दुर्वान्ता तां पुनः सम्यग्वामयेत्।दुर्वान्तायाव्याधिरसाध्यइन्द्रमदोनामभवति। अथसुवान्तांपूर्ववत्सन्निदध्यात्।

अर्थ–जो भलेप्रकार रुधिरको वमन कर चुकीहो उसको जलके पात्रमें गेरके उसके भोजनको डाले यदि खानेलगेतो जानेकि अब इस्मेंसें रुधिर निकलगया, और जो सुस्त जहां की तहां जलमें रहजावे, कुछ हलनाचलना आदि चेष्टा न करे उसको जानेकि इसमेंसे सम्पूर्ण रुधिर नहीं निकला उसको फिर पकडकर पूर्वोक्तरीतिसे वमन करावे, जो दुर्वात होतीहै उसके असाध्य इन्द्रमदनामक व्याधि होतीहै। इसकी व्याधीके लक्षण शास्त्रमें नहीं कहे इसीसे त्याग दियेहै। अब जो भले प्रकार वमनकर चुकीहै उसको पूर्वोक्तविधि अर्थात् नवीन घडेमें उत्तम जलभरकर स्थापन करे।

शोणितावसेचनमें उत्तरकर्म दिखातेहैं।

शोणितस्य च योगायोगानवेक्ष्यजलौकोव्रणान्मधुनावघट्टयेच्छीताभिरद्भिश्चपरिषेचयेद्वधीत वा व्रणंकषायमधुरस्निग्धशीतैश्चप्रदेहैः प्रदिह्यात्।

अर्थ–रुधिरका योग और अयोग[1] विचारकर जोखके व्रणको सहतसे रोक-

---

१ रुधिरका योग कहिये यथार्थ निकलना, अयोग न्यूनाधिक निकलना कहाताहै, यह योग तीन प्रकारकाहै १ हीनयोग २ अतियोग ३ मिथ्यायोग तहां यथार्थयोगमें सौंवार धुलेहुए घृतका मालिस करावे, अथवा सौंवार धुलेहुए घृतमें रुईके फोहोको भिगोकर धरे, हीनयोगमें सहत लगावे, अतियोग अर्थात् अत्यंत रुधिर निकलता होवे तो शीतल जलका तरडादेवे तो रुधिर निकलता बंद होजावे, और मिथ्यायोगमें अर्थात् यथार्थ रुधिर न निकले सो ऊपर लिखेहुए कषायका लेप करना चाहिये, कषैले काढेका लेप शेष दुष्टरुधिरके शुद्धकरनेके वास्तेहै, मधुरद्रव्यके काढेका लेप अनुमानसे अधिक रुधिर निकलगयाहो उसके बढानेके लिये कहाहै। अन्यआचारी कहेतेहैं कि मधुर और कषैले काढेका जो लेप करना कहाहै सो मूर्छादि उपद्रव दूरकरनेके वास्ते लिखाहै।

रुधिरका जोखकरके निकालनामी मनुष्यके बलप्रमाण दोषबलप्रमाण (अर्थात् वातादि जनितव्याधिके बलप्रमाणके अनुसार करना) तो रुधिरकी उत्तम शुद्धि होवे (अर्थात् जितने रुधिर निकलवानेसें

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवे, अथवा शीतल जलका तरडा देवे, अथवा उसको बांध देवे, अथवा उस जोख काटनेकी ठौरको मधुर चिकनी और शीतल कषायसें लेपन करे ।

क्षेत्राणिग्रहणंजातीः पोषणंसावचारणम् ।
जलौकसांचयोवेत्ति तत्साध्यान्सजयेद्गदान् ॥

अर्थ--जो वैद्य जोखोंके क्षेत्र, ग्रहणविधि, जाती, पोषण, और जोख लगानेकी विधिको जानताहै वह जलौकावसेकसाध्य व्याधिको जीतताहै। तहां क्षेत्र यवन पांड्यादि जानने ग्रहण (तासां ग्रहणमार्द्रचर्मणा) जाती (सविष औरनिर्विषजानना) पोषण (नवीन बडे घडेमें स्थापन आदि) अवचारण (अथजलौकावसेकसाध्यव्याधितमुपवेश्य इत्यादि) और चकारसे पश्चात्कर्म जनना अर्थात् इतनीवस्तुओंको जो जानताहै वह जोख लगानेसे जो रोग दूरहो सक्तेहैं उनको जीतताहै ।

इति श्रीमदायुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे द्वाविंशतिस्तरङ्गः ॥ २२ ॥

अथातः शोणितवर्णनीयमध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ--अब शोणित (रुधिर) का वर्णनजिस्में ऐसी अध्यायकी व्याख्या करेंगे.

तत्रपाञ्चभौतिकस्य चतुर्विधस्यषड्रसस्य द्विविधवीर्यस्याष्टविधवीर्यस्य वानेकगुणस्योपयुक्तस्याहारस्यसम्यक्परिणतस्ययस्तेजोभूतःसारःपरमसूक्ष्मःसरसइत्युच्यते ।

अर्थ--रुधिरकी उत्पत्ति रसके अधीनहै, अतएव प्रथम रसका वर्णन कर-

---

रोगशांति होजावे उतना निकलवावे) तथा रोगाशय जानके रुधिर निकलवावे जैसे तुच्छ रोगमें थोडा रुधिर निकलवावे, और भारीरोगमें रुधिर अधिक निकलवावे, रुधिरको निकाल अर्थात् इसजगे पलोंके अनुमानसे रुधिर निकलवाना चाहिये (इसजगे पकीहुई ७ गुंजाका माषा होताहै, इस हिसाबसे पलकी तोल लेनी चाहिये, और साडेतेरह पलका १ प्रस्थहोताहै) एकएक शिरामेंसे १ एकप्रस्थ रुधिर निकालना चाहिये परंतु इतना रुधिर दोदिनमें निकाले यह उत्तम मात्राहै. और अर्धप्रस्थकी मात्रा मध्यमहै (एक कर्ष और छपलका अर्धप्रस्थ होताहै) इतनाभी रुधिर दो दिनमें निकाले, और कुडवकी मात्रा अधमहै (आठ मासे अधिक तीन पलका १ कुडव होताहै.) इतनाभी रुधिर दो दिनमें निकालना चाहिये, यह कर्ममार्ग प्रसिद्धहै. ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तेहैं। तहां पांचभौतिक वा चतुर्विध वा षड्रसयुक्त वा द्विविधवीर्यवाला वा अष्टविधवीर्यवाला अथवा अनेकगुणयुक्त ऐसे आहारका भलेप्रकार परिणामको प्राप्तहोनेसे जो परमसूक्ष्म तेजोभूत सारहोताहै उसको रस ऐसे कहते हैं।

तस्यचहृदयंस्थानं सहृदयाच्चतुर्विंशतिधमनीरनुप्रविश्योर्द्ध्वगादशदशचाधोगामिन्यश्चतस्रस्तिर्यग्गाःकृत्स्नंशरीरमहरहस्तर्पयति वर्द्धयतिधारयतियापयतिजीवयतिचाहृष्टहेतुकेनकर्मणा।

अर्थ–उस रसका हृदय स्थानहै, इसीसे वह रस हृदयसे २४ चौवीस धमनी नाडियोंमें प्रवेश होताहै, तहां दश धमनी ऊर्ध्वगामिनीहै, दश अधोगामिनीहै, और चार धमनी तिरछी गमनकरनेवालीहै, इनमें वह रस गमनकरता संपूर्ण देहको नित्य दिनरात तृप्तकरताहै, बढाताहै, धारणकरताहै, प्राप्त करता है और जीवताहै, यह अदृष्टहेतु कर्मकरके संपूर्ण कर्म होताहै अर्थात् इसका कारण नहीं कहसक्ते।

तस्यशरीरमनुधावतोऽनुमानाद्गतिरुपलक्षयितव्या क्षयवृद्धिवैकृतैः।

अर्थ–तहां शरीरमें विचरनेसे उस रुधिरकी क्षयवृद्धिवैकृतिकरके अनुमानसे गति जानीजातीहै।

तस्मिन्सर्वशरीरावयवदोषधातुमलाशयानुसारिणिरसेजिज्ञासा किमयंसौम्यस्तैजसइति।

अर्थ–सर्वशरीरके अवयव और दोष धातु मलाशयानुसारी रसमें यह जानेकी इच्छा हुई कि यह रस सौम्य (शीतल) है वा तैजस (गरम) है।

अत्रोच्यते सखलुद्रवानुसारीस्नेहनजीवनतर्पणधारणादिभिर्विशेषैःसौम्य इत्यवगम्यते। सखल्वाप्योरसोयकृत्प्लीहानौप्राप्यरागमुपैति।

अर्थ–तहां कहतेहैं कि, उस रसको द्रव (पतला) होनेसे जीवन, तर्पण

---

१ पृथ्वी तेज वायु जल आकाशके द्रव्यभेदकरके. २ भक्ष्यभोज्यलेह्यचोष्यादि भेदकरके. ३ मधुर अम्लादि भेदकरके. ४ शीतोष्णके भेदकरके. ५ शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, विषद, पिच्छल, मृदु, तीक्ष्णोंके भेदसे. ६ शीतादि द्रवादि गुणभेदसे वीस प्रकारका होनेसे.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

और धारण आदि विशेषणोंकरके सौम्य (शीतल) जाना जाताहै सो जल संबंधी रस यकृत् और प्लीहामें जायकर राग (रंग) को प्राप्त होताहै ।

रञ्जितास्तेजसास्त्वापःशरीरस्थेनदेहिनाम् । अव्यापन्नाःप्रसन्नेनरक्तमित्यभिधीयते । रसादेवस्त्रियारक्तंरजःसंज्ञंप्रवर्तते । तद्वर्षाद्द्वादशादूर्ध्वंयातिपञ्चाशतःक्षयम्।

अर्थ--देहधारियोंके शरीरस्थ रंजक पित्तकरके रंगको प्राप्तहो अदूषित और स्वच्छ ऐसेजो आप (रस) सो रक्त अर्थात् रुधिर कहातेहैं । उसी रससे स्त्रियोंके रजःसंज्ञक रुधिर होताहै, वह बारहवर्षसें निकलताहै और पंचाशद्वर्षकी अवस्थामें क्षयको प्राप्तहोवेहै ।

आर्त्तवंशोणितंतत्त्वाग्नेयमग्नीषोमीयत्वाद्गर्भस्यपांचभौतिकञ्चापरेजीवरक्तमाहुराचार्याः ।

अर्थ--आर्तवसंबंधी रुधिर आग्नेयहै अर्थात् गरमहै, क्योंकि गर्भको अग्नीषोमीयत्वहै अर्थात् स्त्रीका रज गरमहै और पुरुषका वीर्य शीतल इनदोनोंके मिलाप होनेसे गर्भ रहताहै । कोई आचार्य कहतेहैं कि पांचभौतिक जीवकेतुल्य रुधिरहै।

रुधिरका पांचभौतिकत्व स्पष्टकरतेहैं ।

विस्रताद्रवतारागःस्यन्दनंलघुतातथा ॥ भूम्यादीनांगुणाह्येते दृश्यन्तेचात्रशोणिते । रसाद्रक्तंततोमांसंमांसान्मेदःप्रजायते । मेदसोऽस्थिततोमज्जामज्ज्ञःशुक्रस्यसम्भवः ।

अर्थ- कच्चीगंध पृथ्वीका गुणहै, पतलापन जलकागुणहै, इसमेंजो रंगहै सो अग्निका गुणहै, कुछचलना पवनका गुणहै, और हलकापना आकाशका गुणहै, रससे रुधिर, रुधिरसे मांस, मांससे मेद, मेदासे हड्डी, हड्डीसे मज्जा, मज्जासे शुक्र प्रगट होताहै[1] ।

रसको प्राधान्यता दिखाते है ।

तत्रैषांधातूनामन्नपानरसः प्रीणयिता रसजंपुरुषंविद्याद्रसंरक्षेत्प्रयत्नतः । अन्नात्पानाच्चमतिमानाचरेच्चाप्यतन्द्रितः ।

अर्थ--उक्त षड्धातुओंको अन्नपानका सारभूत रस पोषणकर्ताहै । यह पुरुष

---

१ कोई शंका करेकि, यदि रससे रुधिर, रुधिरसे मांस आदि प्रगट होताहै, तो पूर्व २ धातुओंकी हानी होनी चाहिये और उत्तर २ धातुओंकी वृद्धि होनी चाहिये, इसलिये

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रससे प्रगट होताहै, अतएव बुद्धिमान् पुरुष अन्नसे पान (पीनेके पदार्थोंसे) सावधानीके साथ रसकी रक्षा करे। और अन्नपानका सेवन करे।

रसशब्दकी निरुक्ति।

तत्ररसगतौधातुरहरहर्गच्छतीत्यतोरसः। सखलुत्रीणित्रीणिक-लासहस्राणिपञ्चदशचकलाएकैकस्मिन्धातावतिष्ठत एवंमा-सेनरसःशुक्रीभवतिस्त्रीणाञ्चार्त्तवमिति।

अर्थ—तहां रसशब्द रसगतौ धातुसे सिद्ध होताहै। अर्थात् निरंतर गमन करनेसे इसको रस कहतेहैं। यह रस एकएक धातुमें तीनतीन हजार और पंद्रहकला रहता है। इसप्रकार रस १ महिनेमें शुक्र होताहै। और स्त्रियोंके आर्त्तव (शुक्र) होता है। दशकलाकी एक घडी होतीहै. इसहिसाबसे३०१५ कलाओंके पांच दिनहोते हैं। इसको इसप्रकार समझना चाहिये कि भोजन कराहुआ अन्न एकदिनमें रस होताहै फिर यहरस प्रत्येकधातु (अर्थात् रुधिर, मांस, मेद, हड्डी, मज्जा, और शुक्र) में पांचपांच दिन रहकर भावांतरको प्राप्त होताहै। जैसे पांचदिन रुधिररूप रहकर छठेदिन मांस होताहै, फिर ग्यारवेदिन मेदा होताहै, सोल्हवेदिन हड्डी, इक्कीसवेदिन मज्जा और छब्बी-सवेदिन शुक्र होता है। एकमहीनेमें संपूर्णरसका शुक्र होजाताहै। इसजगे आर्त्तवशब्द करके शुक्रकाही ग्रहणहै अर्थात् स्त्रीकेभी १ महिनेमें रस शुक्र

कहतेहैं कि, उन रसादिधातुओंका मलस्थलानुभागविशेषकरके त्रिविध परिणाम होताहै, जैसे अन्नके पचनेसे स्थूलभाग मल और सूक्ष्मभाग रस प्रगटहोताहै इनका जो दूषित भाग रहताहै उस्से मलमूत्र होताहै। कफके स्थूलभागसे रस, सूक्ष्म भागसे रुधिर, अग्नि-पक्करक्तसे मल प्रगट होताहै, पित्तके स्थूलभागसे शोणित और सूक्ष्मभागसे मांस बन-ताहै, उसमें आत्मपावककरके पच्यमान होनेसे नाक कान नेत्रआदिके मल प्रगट होतेहैं उसका स्थूलभाग मांस और सूक्ष्मभाग मेदा प्रगट होतीहै और बाकीका पक्कहोकर स्वेदादिक होतेहैं. स्थूलांशमेद और सूक्ष्मभाग हड्डी तहां मज्जा अपनी अग्निसे पक्कहो नेत्र, पुरीष, और त्वचामें चिकाईरूप मल प्रगट करतीहै. स्थूलभाग-मज्जा सूक्ष्मभाग शुक्र इसके पचनेसे मल प्रगट होताहै और कोई वस्तु नहींहोती; जैसें सोनेको हजारवारतपानेंसे केवलमलही प्रगटहोताहै और कोईवस्तू नहींहोती. इसमें सूक्ष्मभाग ओज जानना. अब उक्तधातुओंके संगृहीत श्लोक कहतेहैं।

---

१ स स्थूलांशमलैः सर्वैर्भिद्यन्तेधातवस्त्रिधा। सस्थूलोऽशःपरंसूक्ष्मो विण्मलं यांतितन्मलाः। स्वाग्निभिः स्वमानेषुमलः षट्सु रसादिषु। नशुक्रेपच्यमानेऽपि हेमनीवाक्षयेमलेइति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

होताहै कदाचित् ऐसा न मानोंगे तो स्त्रियोंके छधातुहीं माननी होवेगी, परंतु कोई आचार्य कहतेहैं कि रज रसकेसदृश सातवेदिन प्रगट होता है, और कोई आचार्य पुनः आर्त्तवग्रहणसे यह कहतेहैंकि एक महिनेमें आर्त्तव होताहै और (स्त्रीणांचार्त्तवम्) इसपदमें जो चकारहै इस्सेशुक्रभीहोताहै ऐसा जानना इसमें पूर्वोक्त प्रमाण जैसे (यदानार्यावुपेयातां वृषस्यंत्यौ कथंचन । मुंचंत्यौशुक्रमन्योन्यमनस्थिस्तत्रजायते)

अष्टादशसहस्राणि संख्याह्यस्मिसन्मुञ्चये ।
कलानांनवतिः प्रोक्ता स्वतंत्रपरतन्त्रयोः ॥

अर्थ–इसग्रंथमें १८०९० अठारहजार और नब्वै कला अर्थात् १ महिना शुक्रहोनेमें कहाहै, यह इसशास्त्र तथा अन्यशास्त्र (औरभ्र गोपुररक्षितकेमत) सेभी है ।

दृष्टान्तत्रयकरके शरीरमें रसकी त्रिविधगति दिखातेहैं,–

सशब्दार्चिर्जलसन्तानवदणुनाविशेषेणानुधावत्येवंशरीरं केवलम् ।

अर्थ–सो रस शब्दसंतान अग्निसंतान और जलसंतानके सदृश सूक्ष्मप्रकारकरके सर्वदेहमें विचरताहै अर्थात् शब्दसंतानकरके रसको तिर्यग्गामित्व और अर्चि (अग्नि) संतानकेकहनेसे ऊर्ध्वगामित्व तथा जलसंतानके कहनेसे अधोगामित्व सूचनाकरी । कोईआचारी कहताहै कि इन तीनदृष्टांतोंसे मंद, मध्य और तीक्ष्ण अग्नि कहीहैं । अर्थात् शब्दसंतानवत् तीक्ष्णअग्निवालोंके रससंचार करेहै । अग्निसंतानवत् मध्यअग्निवालोंके और जलसंतानवत् मंदाग्निवालोंके रससंचारकरेहै, इससे यह दिखाया कि तीक्ष्ण अग्निवालोंके आठदिनमें रससे शुक्र होजाताहै और मंदाग्निवालोंके एकमहिनेमें परंतु इसमतका खंडन गयदासने अत्यंत कराहै, क्योंकि दीप्ताग्निवालेके कुछ न्यून एकमाहिनेमें शुक्रहोताहै । और मंदाग्निवालेके कुछअधिक एकमासमें, यदि १ महिनेमें रसकाशुक्र होवेतो वाजीकरण औषधोंकेप्रयोगोंको निष्फलत्वहै, इसलिये कहतेहैं ।

वाजीकरण्यस्त्वौषधयः स्वबलगुणोत्कर्षाद्विरेचनवदुपयुक्ताः शुक्रं शीघ्रं विरेचयन्ति ।

अर्थ–वाजीकरण औषधी (जिनकेसेवनसे पुरुषस्त्रीके भोगनेमें घोडेके स-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मानपुरुषार्थको प्राप्तहोवे) उन्होंके स्वबलाधिक्य तथा स्वगुणाधिक्यसे विरेचनवत् उपयोगकरनेसे शुक्रको तत्काल विरेचन करतीहै । यदि महिनेमें रस शुक्र होताहै तोबालकोंके विना पतनहोनेके भी क्योंनहीदीखे इसलिये कहतेहैं ।

यथाहि पुष्पमुकुलस्थोगन्धोनशक्यमिहास्तीतिवक्तुंनैवनास्तीत्यथवास्ति सतांभावानामभिव्यक्तिरितिकृत्वा केवलं सौक्ष्म्यान्नाभिव्यज्यते सएवगन्धोविवृतपत्रकेशरैः कालान्तरेणाभिव्यक्तिंगच्छत्येवंबालानामपिवयःपरिणामात् शुक्रप्रादुर्भावोभवतिरोमराज्यादयोऽथार्त्तवादयश्च विशेषा नारीणां रजसि चोपचीयमानेशनैःशनैःस्तनगर्भाशययोन्यभिवृद्धिर्भवति ।

अर्थ–जैसे पुष्पकलीकी गंधको कोईभी यह नहीं कहसकता कि इसमें गंधहै अथवा नहींहै, परंतु वास्तविक दृष्टिसे देखोतो उसमें गंध अवश्यहै । इसमें युक्ति कहतेहैं कि जो भाव पूर्वहीहै वोहीपश्चात् हेतुको प्राप्तहोकर प्रगटहोताहै, [जैसे तिलोंसे तैल आदि] परंतु वे अतिसूक्ष्महोनेसे प्रतीत नहीं होते परंतु वही पुष्पके जब पत्र और केशर बढजातीहै तब कालांतरकरके प्रकटहोतीहै इसीप्रकार बालकोंके शुक्र अवश्यहै परंतु अतिसूक्ष्म होनेसे प्रतीत नहीं होताहै, जब उनकी अवस्थाका परिणाम होताहै तब शुक्र प्रगट होताहै; उसीप्रकार डाढी मूंछ आदि प्रगट होतेहैं, और स्त्रियोंके आर्त्तव आदि जानने । स्त्रियोंके बहुधा रजके संग्रहहोनेसे धीरेधीरे स्तन, गर्भाशय, और योनिकी वृद्धिहोतीहै ।

सएवान्नरसोवृद्धानांजरापरिपक्वशरीरत्वान्नप्रीणनोभवति। तएतेशरीरधारणाद्धातवइत्युच्यन्ते तेषांक्षयवृद्धीशोणितनिमित्तेतस्मात्तदधिकृत्यवक्ष्यामः ।

अर्थ–वोही अशेषधातुपोषक अन्नकारस वृद्धोंके जरापक्वशरीर होनेसे पोषणकर्त्ता नहींहोता [परंतु ईषत् अर्थात् जीवन्मात्र कर्त्ता होताहै] इन्हीं रसरुधिरआदिके शरीरधारण करनेसे धातु कहतेहैं । उनधातुओंकी क्षयवृद्धि शोणितनिमित्तकरकेहैं, अतएव उस रुधिरकोप्रधानकरके वर्णनकरतेहैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वातपित्तकफदूषितरुधिरकेलक्षण ।

तत्र फेनिलमरुणंकृष्णंपरुषंतनुशीघ्रगमस्कन्दि चवातेनदुष्टम् । नीलंपीतंहरितंश्यावंविस्रमनिष्टं पिपीलिकामक्षिकानामस्कन्दिश्चपित्तदुष्टम् । गैरिकोदकप्रतीकाशंस्निग्धंशीतलंबहलंपिच्छलंचिरस्राविमांसपेशीप्रभंश्लेष्मदुष्टं च ।

अर्थ--जो झागदार, लाल, काला, रूखा, धीरे २ चलनेवाला, और जो घनत्वभावको प्राप्त न होवे वो रुधिर वातदूषित जानना और जो नीला,पीला,हरित, काला, अनिष्टदुर्गंधवाला (आमगंधविशिष्ट) मक्खी चेटी आदिको अप्रिय अर्थात् जिसमें बैठेनहीं और घनत्वहीन वो पित्तदूषितरुधिरजानना और जो गेरूकेजलके समान लाल, चिकना, शीतल, सघन, मलाईदार और देरमें निकले तथा मांसपेशीके समानहो वो रुधिर कफदूषित जानना ।

त्रिदोषऔरद्विदोषदूषितरुधिरके लक्षण ।

सर्वलक्षणसंयुक्तं कांजिकाभं विषतोदुर्गन्धि च संनिपातदुष्टं पित्तवद्रक्तंनातिकृष्णञ्च द्विदोषालिङ्गं संसृष्टम् । जीवशोणितमन्यत्रवक्ष्यामः ।

अर्थ–पूर्वोक्त तीनोंदोषोंके लक्षण संयुक्तहो और कांजीकेसमान रंगमें होवे, और दुर्गंधवाला होवे वो रुधिर संनिपातदुष्ट जानना । पित्तकेसमान लाल और अत्यंतकाला नहो वो द्विदोषजदूषितजानना । जीवशोणितके लक्षण आगे कहेंगे ।

शुद्धरुधिरके लक्षण ।

इन्द्रगोपप्रतीकाशमसंहतमविवर्णं च प्रकृतिस्थं जानीयात् विस्राव्यान्यत्र वक्ष्यामः ।

अर्थ--इन्द्रगोप (इन्द्रवधू वा वीरवधूटी) के समान लालरंगका न अत्यंतगाढा न बहुतपतला और अविवर्ण (अर्थात् कपडेमें लगनेसे धोनेपर भी जिसका विवर्ण नहो) ऐसा रुधिर शुद्धजानना । रुधिरनिकालनेकी विधि अष्टविध शस्त्रकर्माध्यायमें लिखआएहैं ।

अविस्राव्यमनुष्योंको कहतेहैं ।

अथाऽविस्राव्याःसर्वाङ्गशोफःक्षीणस्य चाम्लभोजननिमित्तः पाण्डुरोग्यर्शसोदरिशोपिगर्भिणीनाञ्चश्वयथवः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ--सर्वाङ्गसोथवाला, क्षीण, खटाई खानेसे जिसके सूजन हुईहो, पांडुरोगीकी सूजन, बवासीरवालेकी सूजन, उदररोगी, शोषरोगी और गर्भिणी, इनकी सूजनसे रुधिर नहीं काढना चाहिये।

द्विविधस्रावका वर्णन।

तत्र शस्त्रविस्रावणंद्विविधं प्रच्छान्नं शिराव्यधनं च। तत्र ऋज्वसंकीर्णं सूक्ष्ममसममनवगाढमनुत्तानमाशुच शस्त्रं पातयेन्मर्मशिरास्नायुसंधीनांचानुपघाति।

अर्थ--शस्त्रविस्रावण दोप्रकारकाहै एक प्रच्छान्न (त्वक्मांसविद्धकरता) दूसरा शिराव्यधन अर्थात् शिरावेधद्वारा जो रुधिरनिकालाजावे वो शिराव्यधन कहलाताहै। तहां नम्रतापूर्वक असंकीर्ण छोटामुखवाला, जिस्में समानरेखाहो, अदूरगतिक अर्थात् उसकी रेखा दूरतक नगईहो, मांसका स्पर्श नकरे, तथा शिरा, स्नायु, और सन्धी, इनको बचायकर बहुतजल्दी हलकेहाथसे शस्त्रपात करना चाहिये।

रुधिरननिकलनेके कारण।

तत्रदुर्दिने दुर्विद्धेशीतवातयोरस्विन्नेऽभुक्तवतः स्कन्नत्वाच्छोणितंनस्रवत्यल्पंवास्रवति।

अर्थ--दुष्टदिनमें, दुर्विधहोनेमें शीतवातके योगसे विनास्वेदनकरे, विनाभोजनकरे और स्कन्नत्व (अर्थात् भलेप्रकार विद्धनहोनेसे) रुधिर नहीं स्रवे। और स्रवे तो थोडा स्रवताहै।

मदमूर्च्छाश्रमार्त्तानां वातविण्मूत्रसङ्गिनाम्।
निद्राभिभूतभीतानां नृणां नासृक्प्रवर्त्तते।

अर्थ--मद (विषमद्यजविकार) मूर्छित, श्रमसेआर्त्त, जिनके अधोवायु, मल, मूत्रका वेग होरहाहो और निद्राआरहीहो तथा भयलगरहाहो, ऐसे मनुष्योंके रुधिर नहीं निकलताहै।

दुष्टरुधिरके अवगुण।

तदुष्टं शोणितमनिर्ह्रियमाणं कण्डूशोफरागदाहपाकवेदना जनयेत्।

अर्थ--दुष्टरुधिर अथवा आर्तवके न निकलनेसे खुजली, सूजन, चकरो दाह, पाक, और पीडाको करे हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अतिरुधिर निकलनेका कारण ।

अत्युष्णातिस्विन्नातिविद्धेष्वज्ञैर्विस्रावितमतिप्रवर्त्तते ।

अर्थ–अत्यंत गरमीसे अत्यंत स्वेदनकरनेसे अत्यंत विद्ध होनेसे तथा मूर्ख पुरुषके विस्रावकरनेसे रुधिर अत्यंत निकलताहै ।

अतिरुधिर निकलनेसे अवगुण ।

तदातिप्रवृत्तं शिरोभितापमान्ध्यमधिमन्थं तिमिरप्रादुर्भावं धातुक्षयमाक्षेपकंपक्षाघातमेकाङ्गविकारं तृष्णादाहौहिक्कां कासंश्वासंपांडुरोगंमरणंचापादयति ।

अर्थ–रुधिरके अत्यंत निकलनेसे मस्तकशूल, अंधापना, नेत्रदूखना, तिमिररोग, धातुक्षीण, आक्षेपक रोग, पक्षाघात, एकअंगका विकार, प्यास, दाह, हिचकी, खांसी, श्वास, पांडुरोग, और मरण इत्यादि विकार होतेहैं ।

उक्तदोषोंमें हेतु कहतेहैं ।

तस्मान्नशीतेनात्युष्णे नास्विन्नेनातितापिते ।
यवागूंप्रतिपीतस्य शोणितं मोक्षयेद्भिषक् ।

अर्थ-पूर्वोक्त दोष होनेके कारण,अत्यंत सरदीमें,तथा न बहुत गरमीमें न बहुत स्वेदितके तथा जो सूर्यादिके तापसे तापितहो ऐसे रोगीका रुधिरमोक्षण नहीं करना, तथा जो यवागू पीचुकाहो उसका रुधिर निकालना चाहिये यवागूकरके इसजगे तिलयवागू जाननी, क्योंकि तिलयवागू सद्यस्नेहनी है । और रुधिरको उत्क्लेदकारी है ।

शुद्ध रुधिरके लक्षण ।

सम्यग्गत्वायदारक्तं स्वयमेवावतिष्ठते ।
शुद्धंतदा विजानीयात्सम्यग्विस्रावितंतुतत् ।

अर्थ–दुष्ट रुधिर संपूर्ण उत्तम रीतिसे निकलकर अपने आप बंद होजावे तब जाने कि अब रुधिर शुद्ध है । और उत्तम स्राव हुआ । कोई आचारी अन्यथा व्याख्यान करते हैं[1] ।

सम्यग्विस्रावित रुधिरके लक्षण ।

लाघवं वेदनाशान्तिर्व्याधेर्व्वेगपरिक्षयः ॥
सम्यग्विस्रावितेलिङ्गं प्रसादो मनसस्तथा ।

---

१ न चातिवेगदुष्टानां सम्यग्गत्वाविनिःसृतम् । विहाय स्वेदरूपेण न तथा ह्यवतिष्ठते । प्रयत्नमनपेक्ष्यास्रक् तदा शुद्धं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–देहमें हलकापना, पीडाकी शांति, व्याधीके वेगकी शांति और मनका प्रसन्न होना, ये सम्यग्विस्रावितरुधिरके लक्षण है।

रुधिर निकलवानेके गुण।

त्वग्दोषाग्रन्थयःशोफा रोगाःशोणितजाश्चये।
रक्तमोक्षणशीलानां न भवन्ति कदाचन॥

अर्थ–त्वचाके रोग (कुष्ठ, न्यच्छ, नीलिकाआदि) गांठ, सूजन, और रुधिरके विकार, (रक्तगुल्म विद्रधि, विसर्पादि) ये रोग रक्तमोक्षणशीलोंके अर्थात् जे फस्त, जोखआदिसे रुधिर निकलवातेहैं उन्होंके कदाचित् नहीं होते।

अप्रवृत्त रक्तका उपाय।

अथ खल्वप्रवर्त्तमानेरक्ते एलाशीतशिवकुष्ठतगरपाठाभद्रदारुविडंगचित्रकत्रिकटुकागारधूमहरिद्राकाकुरनक्तमालफलैर्यथालाभं त्रिभिश्चतुर्भिः समस्तैर्वाचूर्णीकृतैः सर्षपतैललवणप्रगाढैर्व्रणमुखमवघर्षयेदेवंसम्यक्प्रवर्त्तते।

अर्थ–यदि फस्त खोलनेसे रुधिर न निकले तो इलायची, कपूर, कूठ, तगर, पाढ, देवदारू, वायविडंग, चित्रक, त्रिकटु, (सोंठ मिरच पीपल) घरका धूंआ, हरदी, आकके पत्ते, बडा कंजाका फल, इनमेंसे उससमय तीन या चार अथवा समस्त औषधोंका चूर्णकर सरसोंका तेल और सैंधा निमक मिलायकर जहां शस्त्रलगायाहो उसजगे उस व्रणके मुखको धीरे २ घिसे इसप्रकार करनेसे रुधिर भलेप्रकार निकलता है।

अतिरुधिरनिकले उसका उपाय।

अथातिप्रवृत्ते रोध्रमधुकप्रियंगुपतंगगैरिकसर्जरसरसाञ्जनशाल्मलीपुष्पशंखशुक्तिमाषयवगोधूमचूर्णैःशनैर्व्रणमुखमवचूर्ण्यांगुल्यग्रेणावपीडयेत्।

अर्थ–फस्त खोलनेपर अथवा अन्यकारणसे रुधिर अधिक निकले तो लोध, पठानी, मुलहटी, फूलप्रियंगु, पतंग, (लाल चंदन) गेरू, राल, सुरमा, सेमरका फूल, शंख, सीप, उडद, जव, गेहूं, इनका चूर्णकर व्रणके मुखपर धीरे२ मालिसकर उँगलीसे दाब देवेतो रुधिर निकलता हुआ बंद होजावे।

सालसर्ज्जार्जुनारिमेदमेषशृंगधवधन्वनत्वग्भिर्वा चूर्णिताभिः

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्षौमेण ध्मापितेन समुद्रफेनलाक्षाचूर्णैर्वायथोक्तैर्व्रणबन्धन-द्रव्यैर्गाढं बध्नीयात् । शीताच्छादनभोजनागारैः शीतैःपरि-षेकप्रदेहैश्चोपाचरेत् क्षारेणाग्निनावादहेद्यथोक्तव्यधनादन-न्तरंवातामेवातिप्रवृत्तांशिरांविध्येत् ।

अर्थ–साल, राल, कोह, अरिमेद, (अरिमंज भाषांतर) मेढासिंगी, धौं धामन, इनकी छालका चूर्णकर और कपडछानकर इसचूर्णको उसव्रणके मुखपर लगावे,अथवा समुद्रफेन और लाखके चूर्णको लगावे,और उंगलीसे दबा वेतो रुधिर निकलना बंद होवे पीछे इसव्रणको व्रणके बांधनेके क्षौम,कपास और वस्त्रआदिसे दृढ बांधे । पीछे शीतल भोजन, शीतल ओढना बिछोना, शीतल घर, शीतलही जलकी धारा देना, शीतल प्रदेहआदि करने चाहिये । अथवा क्षार, वा अग्निसे दहन करे जब यथोक्त व्यधन होचुके तब पूर्वोक्त शिराका वेध करे ।

कांकोल्यादिक्काथं वा शर्करामधुमधुरंपाययेत् ।

अर्थ–रक्तस्रुतीमें भीतरके विद्ध होनेसे उसका उपाय कहतेहैं कि कांको-ल्यादिके काढेमें मिश्री सहत करके मधुर पिवाना चाहिये ।

पथ्य कहते हैं ।

एणहरिणोरभ्रशशमाहिषवराहाणां वा रुधिरंक्षीरयूष-रसैः सुस्निग्धैश्चाश्नीयादुपद्रवांश्च यथास्वमुपाचरेत् ।

अर्थ–एण (काला हरिण) हरिण (लाल हरिण) मेंढा, शशा, भैंसा, शूकर, इनका रुधिर रक्तस्रुतिवाले रोगीको पिलाने चाहिये । दूध, और मूंगका यूष तथा मांसरस इनमें घृत मिलायकर यथायोग्य दोषोंमें देना चाहिये । और इसके ऊपर दूधभात खाना चाहिये । बहुत वैद्य घृतप्लुत मोहनभोग (हलुआ) खानेको देतेहैं । कोई कहतेहैं कि, पित्त दुष्टरक्तकी अतिप्रवृत्तिमें क्षीरभोजनको देवे । अथवा पित्तप्रकृतिवालेको दूध देना चाहिये कफदुष्टरक्तकी अतिप्रवृत्तिमें यूषभोजन देवे । अथवा कफप्रकृतिवालेको यूष-भोजन देवे वातदुष्टरक्तवाले रोगीको अथवा वातप्रकृतिवालेको मांसरसभो-जन देना चाहिये । कोई कहता है कि, मन्द, मध्य, तीक्ष्ण अग्निवाले रोगि-योंको क्षिरादि सिक्त ओदन (भात) भोजन देना । और रक्तस्रुतिवाले रोगीके यदि मस्तकशूल आदि रोग होवे तो यथायोग्य चिकित्सा कर्त्तव्य है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रक्तस्रावजनित अग्निमांद्यचिकित्सा।

धातुक्षयात्क्षुतेरक्तेमंदःसञ्जायतेनलः। पवनश्चपरंकोपंयाति-यस्मात्प्रयत्नतः। तन्नातिशीतैर्लघुभिः स्निग्धैःशोणितव-र्द्धनैः। ईषदम्लैरनम्लैर्वाभोजनैः समुपाचरेत्।

अर्थ–रक्तमोक्षणके अंतमें धातुक्षय होनेसे जठराग्नि मंद होती है, और पवनपरमकोपको प्राप्त होती है इसीसे यत्नपूर्वक ऐसे रोगीका न बहुत शीतल, हलके स्निग्ध, और रुधिरके बढानेवाले, किंचित् खट्टे, अथवा खटा-ईरहित, ऐसे आहार करके उपचार कर्त्तव्य है।

रुधिर रोकनेके चतुर्विध यत्न।

चतुर्विधं यदेतद्धिरुधिरस्य निवारणम्। सन्धानं स्कंदनंचैव पाचनंदहनंतथा। व्रणंकषायः सन्धत्तेरक्तंस्कन्दयतेहि-मम्। तथा सम्पाचयेद्भस्म दाहःसङ्कोचयेच्छिराः। अस्क-न्दमानेरुधिरेसन्धानानिप्रयोजयेत्। सन्धानेभ्रश्यमानेतु पाचनैः समुपाचरेत्।

अर्थ–रुधिरका निवारण अर्थात् रोकनेके चार उपाय हैं। जैसे १ संधान, २ स्कंदन, ३ पाचन, और ४ दहन इनमें कसेली (लोध, हरीतकीआदि) औषध व्रणको संधान करती है। शीतल वस्तु रुधिरको गाढा करती है। और भस्म व्रणको पाचन करे है। और दाहकर्म शिराका संकोच करे है। यदि रुधिर शीतल कर्मसे घनीभावको न प्राप्त होवे तो संधान द्रव्योंका प्रयोग करै। यदि संधान करनेपरभी रुधिर न रुके तो पाचनोपचार करने चाहिये (अर्थात् रेसमकी भस्म वा मोरपंखोंकी भस्मआदि भरनी चाहिये।

कल्पैरेतैस्त्रिभिर्वैद्यः प्रयतेतयथाविधि। असिद्धिमत्सुचैतेषु दाहःपरम इष्यते। सशेषदोषरुधिरेनव्याधिरतिवर्त्तते। सावशेषेततःस्थेयं नतु कुर्यादतिक्रमम्।

अर्थ–उक्तात्रिविध उपायोंसे वैद्य रुधिरको रोके यदि इन तीनों उपायोंके करनेपरभी रुधिर बंद न होवे तब क्षतस्थानको दाह करना चाहिये। थोडा दोष शेष रहा जिस्में ऐसा रुधिर देहमें रुकनेसे रोगोंको नहीं कर्ता है। इसीसे दुष्टरक्त समस्त निःशेष नहीं निकालना चाहिये। किंतु उसकी रक्षा करनी चाहिये इस्से विपरीत करनेसे दुःख होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देहस्यरुधिरंमूलं रुधिरेणैवधार्य्यते । तस्माद्यत्नेनसंरक्ष्यं रक्तंजीवइतिस्थितिः ।

अर्थ–देहका रुधिरही कारण है, और इसी रुधिरकरके यह देह धारण कराजाता है। इसीसे इस रुधिरकी यत्नपूर्वक रक्षा करे क्योंकि रक्त है सोई जीव है ।

शोणितावशेषमें पश्चात्कर्म ।

सुतरक्तस्यसेकाद्यैःशीतैःप्रकुपितेऽनिले ।
शोफंसतोदंकोष्णेनसर्पिषापरिषेचयेत् ॥

अर्थ–रक्तस्रावके अंतमें शीतल सेचनादि क्रियाद्वारा वायु कुपित होकर सोथ उत्पन्न करती है उसको किंचित् उष्ण घृत सेचनद्वारा निवारण करनेकी चेष्टा करे ।

इति श्रीमदआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे त्रयोविंशतितमस्तरङ्गः ॥ २३ ॥

अथातोदोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीयाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब दोषधातुमलक्षयवृद्धि विज्ञानीयाध्यायको कहेंगे, तहां दोष (वातपित्तादि) धातु (रसरक्तादि) मल (पुरीषादि) इनका क्षय और वृद्धिका विज्ञान जिस अध्यायमें उसको कहेंगे ।

दोषधातुमलमूलंहिशरीरं तस्मादेतेषांलक्षणमुच्यमानमुपधारय ।

अर्थ–दोष, धातु, मल, मूल यह शरीर है। अतएव इनके लक्षण मैं कहताहूं इनको तुम धारण करो। अर्थात् सावधान होकर सुनो।

प्रकृतिस्थ वातके लक्षण ।

तत्र प्रस्पन्दनोद्वहनपूरणविरेकधारणलक्षणवायुः पञ्चधाप्रविभक्तःशरीरंधारयति ।

अर्थ–तहां प्रस्पन्दन, उद्वहन, पूरण, विरेक, धारण, लक्षणयुक्त वायु पांच विभागोंमें प्राप्त हो देहको धारण करती है। तिनमें प्रस्पन्दन (शरीरका चलायमान होना) व्यानवायुका कर्म है। उद्वहन (इन्द्रियार्थोंका धारण) उदानवायुका कर्म है। पूरण (आहारद्वारा परिपूर्ण करना) प्राणवायुका कर्म है। विरेक (मलमूत्ररसका पृथक्करण) समान वायुका कर्म है, धारण (शुक्रमूत्रादिकोंके वेगका त्याग और अवेगके समय धारण) ये अपानवायुका कर्म है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकृतिस्थपित्तके लक्षण ।

रागपक्त्योजस्तेजोमेधोष्मकृत्पित्तं पंचधाप्रविभक्तमाग्निकर्मणानुग्रहंकरोति ।

अर्थ–पित्त-पाचक, रंजक, साधक, आलोचक, और भ्राजक, इन पांच भागोंमें विभक्त होकर राग, पक्ति, ओज, तेज, मेधा, और उष्णताको करे है । और अग्निके कर्म करके शरीरका उपकार करे है । तहां राग (रक्तवर्णताजनन) यह रंजक पित्त करता है। पक्ति (आहारका पचाना) यह पाचक पित्त करता है। ओज (देहमें सुभगता) साधक पित्त करेहैं। तेज (दृष्टी) यह आलोचक पित्त करे है । और ग्रंथपठनकी और धारणकरनेकी शक्तिभी साधकपित्त करे है और ऊष्मा (देहमें गरमीका होना) यह भ्राजक पित्त करता है ।

प्रकृतिस्थ कफके कर्म ।

सन्धिसंश्लेषणस्नेहनरोपणपूरणबलस्थैर्यकृच्छ्लेष्मापञ्चधाप्रविभक्त उदककर्मणानुग्रहंकरोति ।

अर्थ–कफ-क्लेदन, अवलंबन, रसन, स्नेहन तौर श्लेष्मण इन भेदोंसे पांच विभागोंमें प्राप्त होकर संधिसंश्लेषण, स्नेहन, रोपण, पूरण, और बलको स्थिर करे है । तथा उदकके कर्म करके देहका पालन करे है।

प्रकृतिस्थ सात धातुओंके सामान्य कर्म ।

रसःप्रीणयतिरक्तपुष्टिंचकरोति । रक्तंवर्णप्रसादंमांसपुष्टिंजीवयतिच । मांसंशरीरपुष्टिमेदसश्च । मेदःस्नेहस्वेदौदृढत्वंपुष्टिमस्थ्नांच । अस्थिदेहधारणंमज्ज्ञःपुष्टिंच।मज्जाप्रीतिंस्नेहंबलंशुक्रपुष्टिंपूरणमस्थ्नाञ्चकरोति । शुक्रंधैर्यच्यवनंप्रीतिंदेहबलंहर्षबीजार्थंच ।

अर्थ–रस-पालन और रुधिरकी पुष्टि करे है । रुधिर-वर्णको उज्ज्वल, मांसकी पुष्टि, और जीवोंको जिवाता है । मांस-शरीरकी पुष्टि और मेदाकी पुष्टी करे है । मेदा-स्नेहन (चिकनाई) पसीने, दृढता, और हड्डीकी पुष्टता करे है । हड्डीकी-देहधारण, और मज्जाकी पुष्टि करे है । मज्जा:स्त्रीमें प्रीति, स्नेह, बल, और शुक्रकी पुष्टि तथा हड्डियोंको पूरण करे है । शुक्रधातु-स्त्रियोंमें धीरज न होना, और प्रीति तथा देहमें बल, हर्ष और बीजके अर्थ है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ मलोंके प्राकृत कर्म ।

पुरीषमुपस्तम्भं वाय्वग्निधारणञ्च । वस्तिपूरणविक्लेदकृन्मूत्रम् । स्वेदःक्लेदत्वक्सौकुमार्यकृत् । रक्तलक्षणमार्त्तवंगर्भकृच्च । गर्भोगर्भलक्षणं । स्तन्यंस्तनयोरापीनत्वजननंजीवनञ्चेति । तेषांविधिवत्परिरक्षणंकुर्वीत ।

अर्थ–पुरीष (विष्ठा) अवष्टंभ, और वायु अग्निको धारण करे है । वस्तीका पूरण, और विक्लेद, (आर्द्रता) यह मूत्र करता है । पसीने-देह आर्द्र, और त्वचाको सुकुमार करे है । अब उपधातुओंके कर्म कहते हैं । आर्तवमें रुधिरके लक्षण है, और गर्भ करे है । चकारसे रक्तके कर्म जीवनकोभी करे है । गर्भ-गर्भके लक्षण (स्तनोंके मुखपर श्यामता होना इत्यादि) करे है । स्तन्य (स्त्रीका दूध) स्तनोंको पुष्ट करे है और बालकको जीवन देता है । इसीसे उक्त वातादिकोंका विधिपूर्वक रक्षण करना चाहिये ।

क्षीणलक्षण ।

अतऊर्ध्वमेषांक्षीणलक्षणंवक्ष्यामः । क्षयःपुनरेषामतिसंशोधनातिसंशमनवेगविधारणासात्म्यान्नमनस्तापव्यायामानशनातिमैथुनैर्भवति ।

अर्थ–इसके उपरांत उक्त दोष, धातु, मलादिकोंके क्षीणलक्षण कहेंगे । तहां अति संशोधन (वमनविरेचनादि) अत्यंत शमन, वेगोंका धारण, अहृद्य अन्नका भक्षण, मनको पीडा होनेसे, व्यायाम (दंडकसरत) भूखे रहना और अत्यंत मैथुन करनेसे, उक्त दोष धातु मलादिकोंका क्षय अर्थात् क्षीणता होती है । परंतु इनमें वातकी वृद्धि जाननी । कोई आचारी इसपाठको क्षेपक मानते हैं ।

वातादि क्षीण होनेके लक्षण ।

तत्र वातक्षयेमन्दचेष्टताऽल्पवाक्त्वमल्पहर्षोमूढसंज्ञताच । पित्तक्षयेमन्दोष्माग्नितानिष्प्रभत्वंच । श्लेष्मक्षयेरूक्षतान्तर्दाह आमाशयेतराशयशिरसांशून्यतासंधिशैथिल्यं तृष्णा दौर्बल्यं प्रजागरणञ्चातत्रस्वयोनिवर्द्धनद्रव्याण्येवप्रतीकारः ।

अर्थ–वातक्षीणमनुष्यकी सर्वचेष्टा मंद होती है, मंद बोले, अल्प हर्ष और मूढ संज्ञा होती है । पित्तक्षीण होनेसे मंद गरमी, और मंदाग्नि तथा प्रभा-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हीनताहोवे । कफक्षीण होनेसे देहमें रूखापन देहके भीतर दाह, आमाशय और ऊरू, कंठ, शिर, संधी, और मस्तकमें शून्यता, संधि शिथिल हो जावे, तृषा अधिक, दुर्बलता, और रात्रिमें जागरण करनाए लक्षण होते हैं। इनमें स्वयोनिवर्द्धक वस्तू अर्थात् जो वस्तु जिस जिस दोष क्षीणको पुष्ट करे वोही वो शीतरूक्षादि औषध सेवन करनी चाहिये । परंतु स्वयोनिवर्द्धक कटुकादि औषधोंका सेवन करना वर्जित है । क्योंकि कटुकादि औषध अन्य दोषों-कोभी कुपित करती है ।

रसादिक्षीण धातुओंके लक्षण ।

रसक्षयेहृत्पीडाकम्पःशून्यतातृष्णा च । शोणितक्षयेत्वक्-पारुष्यमम्लशीतप्रार्थनाशिराशैथिल्यञ्च । मांसक्षयेस्फिग्ग-ण्डौष्ठोपस्थोरुवक्षःकक्षापिण्डकोदरग्रीवाशुष्कतारौक्ष्यतो-दौगात्राणांसदनंधमनीशैथिल्यञ्च । मेदःक्षयेप्लीहाभिवृद्धिः सन्धिशून्यतारौक्ष्यंमेदुरमांसप्रार्थना च । अस्थिक्षयेऽस्थि-तोदोदन्तनखभङ्गोरौक्ष्यञ्च । मज्जाक्षयेअल्पशुक्रतापर्वभेदोऽ-स्थिनिस्तोदोऽस्थिशून्यता च । शुक्रक्षये मेदवृषणवेदनाऽ-शक्तिर्मैथुनेचिराद्वाप्रसेकः प्रसेकेचाल्परक्तशुक्रदर्शनञ्च । तत्रापिस्वयोनिवर्द्धनद्रव्योपयोगः प्रतीकारः ।

अर्थ–मनुष्यकी देहमें रसक्षीण होनेसे हृदयमें पीडा, कम्प, शून्यता, और प्यास ये लक्षण होते हैं । रुधिर क्षीण होनेसे त्वचामें कठोरता, खट्टे रसपर और शीतल वस्तुकी इच्छा होना, तथा शिरा (रग) शिथिल होती हैं। मांस क्षीण होनेसे कूले, गाल, होठ, लिंग, योनि, ऊरू, वक्षस्थल, कूख, पिंडिका (घोटू टकनोका वीच) उदर, और ग्रीवा (नाड) इन्होंका शुष्क होना, देहमें रूखापन, पीडा, देहका जडत्व, और धमनी नाडियोंका शैथि-ल्य होना ये लक्षण होते हैं । मेदाके क्षीण होनेसे प्लीह(तापतिल्ली)का बढना सन्धियोंमें शून्यता, त्वचामें रूक्षता, चिकनी वस्तु खानेकी और मांस खानेकी इच्छा । अस्थि (हड्डी) के क्षीण होनेसे हड्डियोंमें पीडा दांत और नखका टूटना, तथा रूखापन । मज्जाके क्षीण होनेसे अल्पशुक्रता, गांठोंमें पीडा,

१ वातक्षयेशीतरूक्षैर्नत्वन्यैः कटुकादिभिः । पित्तक्षयेपिकटुकैरुष्णैर्नलवणादिभिः । क्षीरादिभिः स्निग्ध-शीतैःप्रतिकुर्यात्कफक्षये इति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हड्डीमें पीडा, तथा हड्डियोंमें शून्यता होती है । शुक्रके क्षीण होनेसे लिंग और पोतोंमें पीडा होना, मैथुन करनेकी शक्ति न रहे, यदि स्त्रीसंग कराभी तो बहुत देरमें वीर्य पतन हो, और स्खलित होनेमें अल्प रुधिर वा शुक्र निकलता है । इन सब क्षीण धातुओंका स्वस्वयोनिवर्द्धक औषधपानद्वारा वृद्धि करनी चाहिये ।

मलमूत्रक्षीणके लक्षण ।

पुरीषक्षयेहृदयपार्श्वपीडासशब्दस्य च वायोरूर्ध्वगमनं कुक्षौ संचरणं च । मूत्रक्षये बस्तितोदोऽल्पमूत्रताच । अत्रापिस्वयोनिवर्द्धनद्रव्याण्येवप्रतीकारः ।

अर्थ–मल क्षीण होनेसे हृदय और पसवाडोंमें पीडा हो । शब्दयुक्त वायुका ऊपरको गमन और संचारहोता है । मूत्र क्षीण होनेसे बस्तीमें पीडा अल्प मूत्रका उतरना ए लक्षण होते हैं । इस जगेभी जो वस्तु मलमूत्रको बढावे ऐसी औषध खाना चाहिये ।

उपधातु क्षीणके लक्षण ।

स्वेदक्षयेस्तब्धरोमकूपतात्वक्शोषः स्पर्शवैगुण्यं स्वेदनाशश्च तत्राभ्यंगःस्वेदोपयोगश्च । आर्त्तवक्षयेयथोचितकालादर्शनमल्पतावायोनिवेदना च । तत्रसंशोधनमाग्नेयानांचद्रव्याणांविधिवदुपयोगः । स्तन्यक्षयेस्तनयोर्म्लानतास्तन्यासम्भवोऽल्पतावा तत्रश्लेष्मवर्द्धनद्रव्योपयोगः । गर्भक्षयेगर्भास्पन्दनमनुन्नतकुक्षिताच तत्र प्राप्तबस्तिकालायाः क्षीरबस्तिप्रयोगोमेध्यान्नोपयोगश्चेति ।

अर्थ--इस मनुष्यकी देहमें स्वेद क्षीण होनेसे रोमांचोंका स्तब्ध होना और त्वचाका शुष्क होना तथा स्पर्शहानी और स्वेद (पसीने) न आवे । इस रोगमें उबटना और जैसे पसीने आवे वो चिकित्सा करनी चाहिये । आर्त्तव क्षीण होनेसे आर्त्तवका यथोचित कालमें न निकलना और अल्प निकले तथा योनिमें पीडा होवे । इस रोगमें वमन विरेचनद्वारा शोधन करना चाहिये परंतु कोई आचार्य कहता है कि, आर्त्तव नष्ट होनेमें वमन करावे, विरेचन न करावे क्योंकि विरेचन करानेसे पित्त क्षीण होकर आर्त्तव क्षीण होता है । तथा आग्नेयद्रव्य (तिल, उरद, और मद्य आदि) का सेवनकराना चाहिये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्तनसम्बन्धीदूधके क्षय होनेसे स्तन कुम्हलाये हुयेसे होजावे, और स्तनोंमें दूध न रहे, अथवा थोडा रहे । इस रोगमें कफवर्धक द्रव्य सेवन करना चाहिये । गर्भ क्षीण होनेसे गर्भ (गर्भका बालक) फडके नहीं. और कूखऊंची न होवे तहां अष्टम महीना प्राप्त होनेसे क्षीरवस्तीका करना और पवित्र अन्नका भक्षण हित है ।

अतऊर्ध्वमतिवृद्धानांदोषधातुमलानांलक्षणंवक्ष्यामः ।

अर्थ–अब इसके उपरांत अतिवृद्ध दोष धातुमलोंके लक्षण कहैंगे ।

वृद्धिःपुनरेषांस्वयोनिवर्द्धनाभ्युपसेवनाद्भवति । तत्रवातवृद्धौत्वक्पारुष्यंकार्श्यंकार्ष्ण्यंगात्रस्फुरणमुष्णकामितानिद्रानाशोल्पबलत्वंगाढवर्च्चस्त्वञ्च । पित्तवृद्धौ पीतावभासतासन्तापःशीतकामित्वमल्पनिद्रतामूर्च्छाबलहानिरिन्द्रियदौर्बल्यंपीतविण्मूत्रनेत्रत्वंच । श्लेष्मवृद्धौशौक्ल्यंशैत्यंस्थैर्यंगौरवमवसादस्तन्द्रानिद्रासन्ध्यस्थिविश्लेषश्च ।

अर्थ–वातादि दोषोंकी वृद्धि इनके स्वयोनिवर्धक द्रव्यसेवनसे होती है । तहां वातवृद्धीके ये लक्षण हैं । त्वचाका कठोर होना, कृश होना, काली होना, देहका फडकना, गरमीकी इच्छा, निद्रानाश, अल्पबल, गाढा दस्त उतरे । पित्तकी अति वृद्धिसे देहमें पिलाई, संताप, शरदीकी इच्छा, थोडी निद्रा, मूर्च्छा बलहानि, इन्द्रियोंका दुर्बल होना,मलमूत्र, और नेत्र पीले होवे । कफकी अति वृद्धि होनेसे देह सपेद हो, शीतल हो, जिकडासा और भारी हो अवसाद (चित्त देह दोनोंमें ग्लानि) तन्द्रा, निद्रा, सन्धी और हड्डियोंका आपसमें मिलजाना ये लक्षण होते हैं ।

अतिवृद्ध रसादि धातुओंके लक्षण।

रसोतिवृद्धौहृदयोत्क्लेदंप्रसेकंचापादयति । रक्तंरक्ताङ्गक्षतांशिरापूर्णत्वं च । मांसंस्फिग्गण्डौष्ठोदरस्थोरुबाहुजंघासु वृद्धिंगुरुगात्रताञ्च । मेदःस्निग्धाङ्गतामुदरपार्श्ववृद्धिंकासश्वासादीन्दौर्गन्ध्यञ्च । अस्थिअध्यस्थीन्यधिदन्तांश्च । मज्जासर्वाङ्गनेत्रगौरवम् । शुक्रंशुक्राश्मरीमतिप्रादुर्भावञ्च ।

अर्थ–देहमें रसकी अतिवृद्धि होनेसे हृदयोत्क्लेद, (हल्लास अथवा वमन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

होना) तथा मुखसे लार वहे । रुधिरकी-अतिवृद्धिसे देह और नेत्र लाल होवे, तथा रुधिरसे नसोंका परिपूर्ण होना होवे । मांसकी-अतिवृद्धीसे स्फिक् (कूले) गाल, होठ, लिंग, भग, जांघ, बाहु, और पीडरी, इनकी वृद्धि तथा देहका भारी होना होवे । मेदकी-अतिवृद्धीसे देहमें चिकनापना, उदर और पसवाडोंकी वृद्धि, खांसी, श्वास आदिरोग और देहमें दुर्गंध आना ये विकार होते हैं । हड्डीकी अतिवृद्धी होनेसे, हड्डीकी आधिक्यता और दांतोंकी आधिक्यता होती है । चकारसे केश नखकी वृद्धी जाननी । मज्जाकी अति-वृद्धि होनेसे सर्वांग, और नेत्र ए भारी होते हैं । देहमें शुक्रकी अति वृद्धि होनेसे अत्यंत शुक्र और पथरीका प्रादुर्भाव होता है ।

अतिवृद्ध मल और उपधातुओंके लक्षण ।

पुरीषमाटोपं कुक्षौशूलञ्च । मूत्रं मुहुर्मुहुःप्रवृत्तिंबस्तितोदमा-ध्मानञ्च । स्वेदस्त्वचोदौर्गन्ध्यंकंडूं च । आर्त्तवमंगमर्दमति-प्रवृत्तिदौर्बल्यञ्च । स्तन्यंस्तनयोरापीनत्वंमुहुर्मुहुःप्रवृत्तितो-दञ्च । गर्भोजठराभिवृद्धिंशोथञ्च । तेषांयथास्वंसंशोधनंक्षपणं च । क्षयादविरुद्धैःक्रियाविशेषैःप्रकुर्वीत ।

अर्थ–पुरीष (मल) के बढनेसे अफरा, और कूखमें शूल होता है । मूत्रके अत्यंत बढनेसे वारंवार मूत्र उतरे, बस्तिस्थानमें पीडा और अफरा होवे । पसीनेके अत्यंत बढनेसे त्वचामें दुर्गंध आवे और खुजली चले । आर्त्तवके अत्यंत बढनेसे अंग टूटे तथा आर्तवकी अत्यंत प्रवृत्ति और दुर्बलता होवे । स्तनसंबंधी दूधके बढनेसे स्तनोंका पुष्ट होना और वारंवार स्तनोंसे दूधका निकलना और पीडा होवे । गर्भके बढनेसे पेटका बढना और सूजन होती है. इन अतिवृद्ध मल और उपधातुओंका जिस २ वस्तुसे शोधन और शमन लिखा है वो करना चाहिये परंतु क्षयसे अर्थात् जिनके सेवनसे उक्त मल उपधातु क्षीण न हो ऐसी क्रिया करनी चाहिये ।

पूर्वःपूर्वोऽतिवृद्धत्वाद्बर्द्धयेद्धिपरंपरम् ।
तस्मादतिप्रवृद्धानांधातूनांह्रासनंहितम् ।

---

१ तत्र स्वयोनिद्रव्याणमवबोधनार्थं धातुमलोपधातुषु श्लोकाः कथ्यन्ते । तद्यथा । यद्यपि पंचभूतानां वाच्यः पाकोद्विधा पुनः । तथाप्यपां प्रधानत्वाद्रसः सौम्योभिधीयते । अतिरिक्ता गुणारक्ते वह्नमासेषु पार्थ-वाः । मेदस्यम्बुभुवोर्वह्निपृथिव्यनिलतेजसाम् । मज्जाशुक्रे च सौम्यस्य सूत्रेषु निखिलागणाः । भुवोबिश्वार्त्त-वेत्वग्नेः प्रस्वेदस्तन्ययोरपाम् । इतिधातुमलेषूक्ता गुणाः प्राधान्यतःस्थिताःप्रायेणभूगुणागर्भस्तोकाद्यनुग्रहइति॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–पूर्वपूर्व कहिये पहिली २ धातुओंके बढनेसे वो परपर कहिये आगेआगेकी धातुओंकी वृद्धि करती है । अर्थात् रसके अत्यंत बढनेसें रुधिरकी और रुधिरके अत्यंत बढनेसे मांसआदिकी वृद्धि होती है । इसीसे अत्यंत बढी हुई धातुओंका ह्रास (समान) करनाही हित है । पूर्वपूर्व कहना केवल उपलक्षणमात्र हैं किंतु आगे २ की बढी हुई धातुभी पिछली धातुकी वृद्धि करे हैं और क्षीण होनेसे हानी करे है । जैसे रुधिर आगेकीधातु पिछलेरसकी इसीप्रकार औरभी जानो ।

मतांतरसें क्षीण वृद्ध धातुओंके लक्षण ।

असात्म्यान्नसदाक्रोधशोकचिंताभयश्रमैः । अतिव्यवायानशनात्यर्थसंशोधनैरपि । वेगानांधारणाच्चापिसाहसादभिघाततः । दोषाणामथधातूनांमलानांचक्षयोभवेत् ॥

अर्थ–धातु, दोष, और मल इनका-शरीरको अहित अन्न, पान, और क्रोध, शोक, चिंता, भय, श्रम, अतिमैथुन, अनशन (उपवास), रेचक, वेगधारण साहस कर्म, और अभिघात, इनसे क्षय होता है ।

वातक्षीणके लक्षण ।

वातक्षयेल्पचेष्टात्वंमंदवाक्त्वंविसंज्ञता ।

अर्थ–वायुके क्षय होनेसे अल्प चेष्टा, मंद २ बोलना, और चेतनाका नाश होता है ।

वातक्षीणवर्द्धन ।

कषायकटुतिक्तानिरूक्षशीतलघूनिच ।
यवमुद्गप्रियंगूंश्चवातक्षीणोभिकांक्षति ।

अर्थ–वातक्षीण रोगी कषेले, चिरपरे, कडुए, रूखे, शीतल हलके, ऐसे अन्नपान तथा यव, मूँग, प्रियंगू, इनकी इच्छा करता है ।

पित्तक्षयके लक्षण ।

पित्तक्षयेऽधिकःश्लेष्मावह्निर्मन्दःप्रभाक्षयः ।

अर्थ–पित्तक्षीण होनेसे कफकी वृद्धि होवे, और अग्नि मंद होकर कांतीका क्षय होय ।

पित्तक्षीणवर्द्धन ।

तिलमाषकुलत्थादिपिष्टान्नविकृतिंतथा । मस्तुसूक्ताम्लतक्राणिकांजिकंचतथादधि । कट्वम्ललवणोष्णानितीक्ष्णंक्रोधं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विदाहिच । समयंदेशमुष्णंचापित्तक्षीणोऽभिकांक्षति ।

अर्थ–पित्तक्षीणरोगी तिल, उरद, कुल्थी, पिष्टान्न, (पीठीके पदार्थ) दहीका तोर कांजीका भेद (सिरका) कांजी, छाछ, दही, कटु, अम्ल, नोनका, तीखा, ऐसे पदार्थोंकी इच्छा करे, क्रोध करे, और विदाही पदार्थ दाह होनेवाला समय, उष्णदेश, और गरमी इनकी इच्छा करता है ।

कफक्षयके लक्षण ।

सन्धयःशिथिलामूर्च्छारौक्ष्यदाहःकफक्षये ।

अर्थ–कफक्षीण होनेसे संधियोंका शिथिल होना, मूर्च्छा, देहमें रूक्षता और दाह, ये रोग होते हैं ।

कफक्षीणवर्द्धन ।

मधुरास्निग्धशीतानिलवणाम्लगुरूणिच ।
दधिक्षीरंदिवास्वप्नंकफक्षीणोभिकांक्षति ।

अर्थ–कफक्षीण रोगी, मधुर, चिकने, शीतल, खारे, खट्टे, भारी पदार्थ, दही, दूध, और दिनमें सोनेकी इच्छा करे है ।

रसक्षीणके लक्षण ।

हृत्पीडाकण्ठशोषश्चत्वक्शून्यातृट्रसक्षये ।

अर्थ–रसधातुक्षीण होनेसे कंठशोष, त्वचाका बधिरपना, और तृषा ये लक्षण होते हैं ।

रसक्षीणवर्द्धन ।

रसक्षीणोनरः कांक्षत्यम्भोतिशिशिरंमुहुः ।
रात्रिनिद्रांहिमंचन्द्रंभोक्तुंचमधुरंरसम् ।

अर्थ–रसक्षीण रोगी अत्यंत शीतल जल वारंवार पीनेकी, रात्रिनिद्रा, हिम, चंद्र और मीठादही इत्यादि भोगनेकी इच्छा करता है ।

रक्तक्षीण ।

शिराश्लथाहिमाम्लेच्छात्वक्पारुष्यंक्षयेऽसृजः ।

अर्थ–रुधिरके क्षीण होनेसे शिरा शिथिल, तथा शीतल होती है । त्वचा कठोर होती है, तथा अंग खरदरा होवे, और खटाईपर चित्तका चलना ये लक्षण होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रुधिरक्षीणकी वृद्धि।

इक्षुमांसरसंमंथंमधुसर्पिर्गुडोदकम्। द्राक्षादाडिमसुक्तानिस-
स्नेहलवणानिच । रक्तसिद्धानिमांसानिरक्तक्षीणोऽभिकां-
क्षति।

अर्थ–रक्तक्षीण पुरुष ईख, मांसरस, मंथ (खांड, दाख, और ईखका रस मिलाकर जो पदार्थ बनाते हैं उसको मंथ कहते हैं.) सहत, मक्खन, गुड, पानी, दाख, वलायती अनार, सिरका, (अथवा कंद, मूल, फल, स्नेह, और नोन मिलाकर पदार्थ बनाते हैं उसको सुक्त कहते हैं) रक्तसिद्धपदार्थ, और मांस इनकी इच्छा करता है।

मांसक्षीणके लक्षण।

गण्डोष्ठकंधरास्कंधवक्षोजठरसन्धिषु । उपस्थप्रोथापि-
ण्डीषुशुष्कतागात्ररूक्षता।तोदोधमन्यःशिथिलाभवेयुर्मांस-
संक्षये।

अर्थ–मांसका क्षय होनेसे गाल, और होठ, नाड, कंधे, वक्षस्थल, पेट, संधी, उपस्थ, कूला और घोंटूटकनेका वीच, इनमें शुष्कपना, देहमें रूखा-पन पीडा, धमनी नाडीनकी शिथिलता ए लक्षण होतेहैं।

मांसक्षयवर्द्धन।

अन्नानिदधिसिद्धानिखांडवांश्चबहूनपि ॥
स्थूलक्रव्यादमांसानिमांसक्षीणोभिकांक्षति ॥

अर्थ--मांसक्षीण पुरुष दधिसिद्ध अन्न, (दहीवडा) श्रीखंड (सिखरन) इत्यादि पदार्थोंका अत्यंत सेवन और स्थूल, जड, ऐसे क्रव्यादमांस इनकी इच्छा करे हैं।

मेदःक्षयलक्षण।

प्लीहाभिवृद्धिसंधीनांशून्यतातनुरूक्षता।
प्रार्थनास्निग्धमांसस्यलिंगंस्यान्मेदसःक्षये।

अर्थ–मेदा (चरबी) क्षय होनेसे प्लीहा (तापतिल्ली) बढे, अंगकी संधी शून्यहो शरीरमें रूक्षता और स्निग्धमांस खानेकी इच्छा ए मेदक्षीणके लक्षण हैं।

मेदक्षीणवर्द्धन।

खांडवामधुराम्लादिरससंयोगपाचिताः। मेदःसिद्धानिमां-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सानिग्राम्यानूपौदकानिच । सक्षाराणिविशेषेणमेदःक्षीणोऽभिकांक्षति ।

अर्थ--मेदक्षीण रोगी श्रीखंड (सिखरण) मधुर, खट्टे, इत्यादि रसोंके संयोगसे बनेपदार्थ, मेदसिद्ध मांस, ग्रामके जीवोंका मांस, जलसमीप रहनेवाले जीवोंका मांस जलके जीवोंका मांस, और विशेष करके क्षार मिले मांसोंकी इच्छा करता है ।

अस्थिक्षयके लक्षण ।

अस्थिशूलंतनौरौक्ष्यंनखदंतभ्रुटिस्तथा ।

अर्थ–अस्थिक्षय होनेसे हाड दूखे, शरीर रूखा हो जावे, नख दांत ये टूटे ये अस्थिक्षीणके लक्षण है.

अस्थिक्षीणवर्द्धन ।

अस्थिक्षीणस्तथामांसंमज्जास्थिस्नेहसंयुतम् ।

अर्थ–अस्थिक्षीण पुरुष मांस, मज्जा, और हड्डी स्नेहयुक्त अन्नकी इच्छा करताहै ।

मज्जाक्षयके लक्षण ।

शुक्राल्पत्वंपर्वभेदस्तोदःशून्यत्वमस्थिनि ।
लिंगान्येतानिजायंतेनराणांमज्जसंक्षये ।

अर्थ–मज्जाका क्षय होनेसे शुक्र (वीर्य) अल्प हो, संधियोंमें पीडा, हड्डी दूखे, और शून्य होवे, ए लक्षण होते हैं ।

मज्जाक्षीणवर्द्धन ।

स्वाद्वम्लसंयुतंद्रव्यंमज्जाक्षीणोऽभिकांक्षति ।

अर्थ–मज्जाक्षीणपुरुष स्वादु, और खट्टे, रसमिले पदार्थोंकी इच्छा करताहै ।

शुक्रक्षीणके लक्षण ।

शुक्रक्षयेरतेशक्तिर्व्यथाशेफलिमुष्कयोः ।
चिरेणशुक्रसेकःस्यात्सेकेरक्ताल्पशुक्रता ।

अर्थ–शुक्रक्षीण होनेसे मैथुनविषयमें अशक्तता लिंग, और वृषण, (पोते) इनमें पीडा और रतिकालमें बहुत देरमें थोडा शुक्र तथा रुधिर निकले, ऐसे लक्षण होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शुक्रक्षीणाभिवर्द्धन।

शिखिनःकुक्कुटस्याण्डंहंससारसयोस्तथा।
ग्राम्यानूपौदकानांचशुक्रक्षीणोभिकांक्षति।

अर्थ-शुक्रक्षीण पुरुष, मोरके मुरगेके अंडे उसीप्रकार हंस, सारस, इनके अंडे और मांस तथा गामके समीप रहनेवाले (बकरी मेढा आदि) जलके समीप रहनेवाले तथा जलमें रहनेवाले जीवोंके मांस खानेकी इच्छा करताहै।

ओजक्षयके लक्षण।

ओजःसंक्षीयतेकोपाच्चिंताशोकश्रमादिभिः। रूक्षतीक्ष्णोष्ण-कटुकैःकर्षणैरपरैरपि। बिभेतिदुर्बलोभीक्ष्णंचिन्तयेद्व्यथितेन्द्रियः। दुश्छायोदुर्मनारूक्षःक्षामःस्यादोजसःक्षये।

अर्थ-क्रोध, क्षुधा, चिंता, शोक, श्रम, इन करके तथा रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्ण, कटु, इनकरके अथवा अन्य कृशकर्त्ता पदार्थोंसे ओजक्षय होनेसे अत्यंत दुर्बलता, भय, चिंता, इन्द्रियोंमें व्यथा, कांतिनाश, कालौच, इत्यादि करके रूक्ष होता है। तथा कृश होवे ए लक्षण होते हैं।

पुरीषक्षयके लक्षण।

पुरीषस्यक्षयेपार्श्वेहृदयेचव्यथाभवेत्।
सशब्दस्यानिलस्योर्द्धगमनंकुक्षिसंवृतिः।

अर्थ-पुरीष (मल) क्षय होनेसे पसवाडोंमें हृदयमें पीडा हो, सशब्द वायुकी ऊर्ध्वगती और कुक्षि कहिये उदरका संकोच होवे।

मलक्षीणवर्द्धन।

यवान्नंयावकान्नंचशाकानिविविधानिच।
मसूरमाषयूषंचमलक्षीणोऽभिकांक्षति।

अर्थ-मलक्षीण पुरुष यवके पिष्टान्न, तथा यवके बनेपदार्थ, और अनेक प्रकारका शाक मसूर, उरद, इनके यूष इत्यादि पदार्थोंकी इच्छा करता है।

मूत्रक्षयके लक्षण।

मूत्रक्षयेऽल्पमूत्रत्वंबस्तौतोदश्चजायते।

अर्थ-मूत्रक्षीण होनेसे अल्प मूत्र उतरे तथा बस्तीमें दुःख होवे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मूत्रक्षीणवर्द्धन ।

पेयमिक्षुरसंक्षीरंसगुडंबदरोदकम् ।
मूत्रक्षीणोऽभिलषतित्रपुसैर्वारुकानिच ।

अर्थ–पेय (शरबतआदि) ईखका रस, दूध, गुड, बेर, जल, खीरा, ककडी, इत्यादि पदार्थोंकी मूत्रक्षीण पुरुष इच्छा करता है ।

स्वेदक्षयके लक्षण ।

स्वेदनाशस्त्वचोरौक्ष्यंचक्षुषोरपिरूक्षता ।
स्तब्धाश्चरोमकूपास्युर्लिंगंस्वेदक्षयेभवेत् ।

अर्थ–स्वेद (पसीनो) का क्षय होनेसे पसीने न आवे, त्वचा और नेत्र रूखे होवे, और रोमांच खडे रहे, ए लक्षण होते हैं ।

स्वेदक्षीणाभिवर्द्धन ।

अभ्यङ्गोद्वर्त्तनेमद्यंनिर्वातशयनासने ।
गुरुप्रावरणंचैवस्वेदक्षीणोभिकांक्षति ।

अर्थ–स्वेदक्षीण पुरुष अभ्यंग उबटने मद्य निर्वातस्थानमें शयन और बैठना एवं भारी ओढनेके इच्छा करता है ।

आर्त्तवक्षयके लक्षण ।

आर्त्तवस्यस्वकालेनाभावस्तस्याल्पताथवा ।
जायतेवेदनायोनौलिंगंस्यादार्त्तवक्षये ।

अर्थ–स्त्रियोंका रजक्षीण होनेसे उचित समयमें रजोदर्शन न होवे । कदाचित् होवे तो अल्प होय, और योनिमें पीडा हो ए लक्षण होते हैं ।

आर्तवक्षीणाभिवर्द्धन ।

कट्वम्ललवणोष्णानिविदाहीनिगुरूणिच ।
फलशाकानुपानानिस्त्रीवांच्छत्यार्त्तवक्षये ।

अर्थ–स्त्रियोंके आर्तव नष्ट होनेसे कटु अम्ल लवण उष्ण दाहक भारी ऐसे अन्न फल शाक और पने आदिकी इच्छा करे हैं ।

स्तन्यक्षयके लक्षण ।

अभावःस्वल्पतावास्याःस्तन्यस्यभवतस्तथा ।
म्लानौपयोधरावेतल्लक्षणंस्तन्यसंक्षये ।

अर्थ–स्त्रियोंके दूध नष्ट होनेसे स्तनोंमें दूध न रहे अथवा अल्प होवे तथा उस स्त्रिके स्तन कुम्हला ऐसे होवे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्तन्यक्षयवर्द्धन।

सुराशाल्यन्नमांसानिगोक्षीरंशर्करान्तथा।
आसवंदधिहृद्यानिस्तन्यक्षीणाभिवांछति।

अर्थ–स्त्रियोंके (स्तन्य) दूध क्षीण होनेसे मद्य सांठी चावल मांस गौका दूध मिश्री आसव और प्रिय ऐसे अन्नादिकोंकी इच्छा करती है।

गर्भक्षयलक्षण

अनुन्नसोभवेत्कुक्षिर्गर्भस्यस्पन्दनंतथा।
इति गर्भक्षयेप्राज्ञैर्लक्षणंसमुदाहृतम्।

अर्थ–गर्भक्षय होनेसे कूख ऊंची नहीं होती तथा कूखमें गर्भ फिरे नहीं इसप्रकार गर्भक्षयके लक्षण पंडितोंने कहे हैं।

गर्भक्षयवर्द्धन।

मृगाजाविवराहाणांगर्भान्वांछतिसंस्कृतान्।
वसाशूल्यप्रकारादीन्भोक्तुंगर्भपरिक्षये।

अर्थ–गर्भक्षय होनेसे हरिण बकरी भेड सूअर इनके गर्भ पाचनादि क्रिया करके तथा वसा शूल्यमांस इत्यादि प्रकार इनके भक्षणकी इच्छा करे हैं।

बललक्षणं बलक्षयलक्षणमतऊर्ध्ववक्ष्यामः।

अर्थ–अब इसके उपरांत बलके लक्षण और बलक्षयलक्षणोंको कहेंगे।

तत्ररसादीनांशुक्रान्तानांधातूनांयत्परंतेजस्तत्स्नेहोजस्तदेवबलमित्युच्यते स्वशास्त्रसिद्धान्तात्।

अर्थ–तहां रससे लेकर शुक्रपर्यंत धातुओंका जो परम उत्कृष्ट तेज है अर्थात् संपूर्ण धातुओंका स्नेह है उसको ओज तथा बल कहते हैं, कोई आचारी सर्व धातुका सार उसको ओज और बल है ऐसा अर्थ करते हैं। यह विवादोक्ती चिकित्साके ऐक्यार्थ है। वास्तवसे बल और ओज पृथक् २ हैं सर्व धातु स्नेहभूत उपचय लक्षणवान्को ओज कहते हैं। इससे देहमें रूप, रस, शूरता, और वीर्यादिक होते हैं। और बलसे बोझेका उठानाआदि कर्म होते हैं। इसी ग्रंथकी प्रथमाध्यायमें कहा है यथा (प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णौजसांचेति)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बलके प्राकृत कर्म ।

तत्र बलेनास्थिरोपचितमांसतासर्वचेष्टास्वप्रतिघातःस्वरवर्णप्रसादोबाह्यानामाभ्यन्तराणाञ्चकरणानामात्मकार्यप्रतिपत्तिर्भवति ।

अर्थ–तहां बलकरके मांसका स्थिर होना और एकत्र होना होता है, यह ओजसे होता है । तथा सर्व चेष्टा (अर्थात् देह वाणी मनका व्यापार) निर्विघ्न होना ये बलसे होता है । तथा स्वर वर्णकी निर्मलता यह ओज और बल दोनोसे होताहै । तथा बाह्य करण (कर्मेन्द्री) और अभ्यन्तरकरण (बुद्धीन्द्रिय) इनके स्वकीय कार्यका अवरोध होता है । कोई कहता है कि, इन बाह्य और अभ्यंतर इन्द्रियोंका चिरानुष्ठान होता है । तहां बाह्यइन्द्री (वाणी, हाथ, पैर, गुदा, लिंग) इनके कार्य वचन, आदान, गमन, विसर्ग, और आनन्द जानने । अभ्यंतरइन्द्री (कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, और नासिका, इनके कर्म (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधग्रहण) जानने इन सबका कारणभूत बल है ।

ओजःसोमात्मकंस्निग्धंशुक्लंशीतंस्थिरंसरम् । विविक्तंमृदुमृत्स्नंचप्राणायतनमुत्तमम् । देहस्यावयवस्तेनव्याप्तोभवति देहिनाम् । तदभावाच्चशीर्यतेशरीराणिशरीरिणाम् ।

अर्थ–ओज सोमात्मक कहिये (सौम्य है) स्निग्ध और श्वेत है[1], शीतवीर्यवाला है, स्थिर है, अर्थात् देहके अवयवोंको स्थिर कर्त्ता है, और फैलनेवाला है, श्रेष्ठ गुणयुक्त, कोमल और पिच्छल है, तथा प्राण (अग्निसोमादिकों) का, उत्तम स्थान है इस ओजसे मनुष्यके देहके संपूर्ण अवयव उत्पन्न होते हैं । और इस ओजके अभावसे मनुष्योंके देह नष्ट होते हैं ।

बलक्षयके कारण ।

अभिघातात्क्षयात्कोपाच्छोकाद्ध्यानाच्छ्रमात्क्षुधः । ओजः संक्षीयतेह्येभ्योधातुग्रहणनिःसृतम् ॥ तेजःसमीरितंतस्माद्विस्रंसयतिदेहिनः ।

---

१ चरकमें लिखा है कि (हृदि तिष्ठति यच्छुद्धं रक्तमीषत्सपीतकम्) इससे प्रतीत होता है कि, ओजमें शुक्ल पीत और लाल तीन वर्ण हैं.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ--चोट लगनेसे धातुओंके क्षीण होनेसे, क्रोधसे, शोकसे, ध्यानसे, श्रम और भूखे रहना इन कारणोंसे ओजपदार्थका क्षय होवे । इसीसे सर्व धातु परंपरा स्नेहरूप निकला हुआ तेजसंपत्ति वातसे प्रेरित हृदयसे च्युत होता है ।

दूषितओजके लक्षण ।

तस्यविस्रंसोव्यापत्क्षयइतिलिंगानिव्यापन्नस्यभवन्ति । सन्धिविश्लेषोगात्राणांसदनंदोषच्यवनंक्रियासन्निरोधश्च-विस्रंसे । स्तब्धगुरुगात्रतावातशोफोवर्णभेदोग्लानि स्तन्द्रानिद्राचव्यापन्ने । मूर्च्छामांसक्षयोमोहःप्रलापो-मरणमितिक्षये ।

अर्थ--तहां दूषित ओजके विस्रंस, व्यापत, और क्षय, ये तीन लक्षण होते हैं । तहां संधियोंका विभाग, देह जिकडीसी हो जावे, दोषोंका स्वस्थानसे च्यवन, और क्रियाओंका संनिरोध, ये ओजके विस्रंस होनेसे होते हैं । स्तब्ध, ता, अर्थात् घोटुआदिका न मुडना, देहमें भारीपना, वातसोफ, वर्णभेद, ग्लानि, तन्द्रा, निद्रा, ये लक्षण ओजके व्यापन्न होनेसे होतेहैं । मूर्च्छा-मांसक्षय, मोह, प्रलाप, और मरण ये लक्षण ओजके क्षीण होनेसे होते हैं ।

त्रयोदोषाबलस्योक्ताव्यापद्विस्रंसनक्षयाः । विश्लेषसादौगा-त्राणांदोषविस्रंसनंश्रमः । अप्राचुर्य क्रियाणांच बलविस्रंस-लक्षणम् ।

अर्थ--बलकी तीन विकृति होती है १ व्यापद् २ विस्रसन ३ क्षय तिनमें गात्रोंका विश्लेष और जिकडजाना, दोषोंका स्वस्थानसे च्यवन; श्रम, क्रियाओं-का संनिरोध, ये बलविस्रंसके लक्षण हैं ।

गुरुत्वं स्तब्धतांगेषु ग्लानिर्वर्णस्यभेदनम् । तन्द्रानिद्रावातशोफोबलव्यापदिलक्षणम् ।

अर्थ--देह भारी हो और जिकडीसे होवे, ग्लानि, वर्णकी विकृति, तन्द्रा, निद्रा, वातशोफ, ये बलव्यापदिके लक्षण हैं ।

मूर्च्छामांसक्षयोमोहःप्रलापोऽज्ञानमेवच । पूर्वोक्तानिचलिंगानिमरणं च बलक्षये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ--मूर्च्छा, मांसक्षय, मोह, प्रलाप,अज्ञान, और पूर्वोक्त विश्लेषादि चिह्न तथा मरण ये बलक्षयके लक्षण हैं ।

चिकित्सा ।

तत्रविस्रंसेव्यापन्नेचक्रियाविशेषैराविरुद्धैर्बलमास्थापयेत् ।
नष्टसंज्ञामितरञ्चवर्जयेत् ।

अर्थ–तहां विस्रंस और व्यापदि बलमें अविरुद्ध क्रिया विशेषोंकरके बल-स्थापन करे, अर्थात् रसायन वाजीकरणादि क्रिया जो उक्तरोगोंके विरुद्ध न हो वो कर्त्तव्य है, और इतर कहिये क्षीण बलवाले रोगीको त्याग देवे ।

बलक्षीणका चिकित्सांतर ।

दोषसाम्यकरंयत्तुवह्निसाम्यकरंचयत् ।
धातुपुष्टिकरं द्रव्यंबलंतदभिवर्द्धयेत् ।

अर्थ--जो दोषोंको समान करे व अग्निको समान करे व धातुको बढावे पुष्टि करे ऐसी द्रव्य बलको बढाती है ।

बलवान्के लक्षण ।

कृशोपिबलवान्कश्चित्स्थूलोप्यल्पबलोयतः ।
तस्माच्चेष्टापटुत्वेनबलवंतं विदुर्बुधाः ।

अर्थ–कोई कृश पुरुष भी बलवान् होता है, तथा कोई स्थूल होकर भी अल्पबली होवे है, इसीसे चेष्टाके कुशलत्व करके पंडित बलको जानते हैं ।

तेजोप्याग्नेयंक्रमशःपच्यमानानां धातूनामभिनिवृत्तमन्तर-स्थंस्नेहजातंवसाख्यं स्त्रीणांविशेषतोभवति।तेनमार्दवसौकु-मार्यमृद्वल्परोमतोत्साहदृष्टिस्थितिपक्तिकान्तिदीप्तयोभ-वन्ति । तत्कषायतिक्तशीतरूक्षविष्टंभिवेगविघातव्यवाय-व्यायामव्याधिकर्षणैश्चविक्रियते ।

अर्थ–तेजभी आग्नेय है, क्रमसे धातुओंके पचनेसे उपरांत निवृत्त हो अंतरस्थ स्नेहरूप वसासंज्ञक कहता है । यह विशेष करके स्त्रियोंके होता है, इसीसे नम्रता, सुकुमारता, मृदु और अल्परोमांच, उत्साह, दृष्टिकी स्थिति, पक्ति (पकना) कांति, और दीप्ती होती है ।
यह तेज कसेले, तीखे, शीतल, रूखे, विष्टंभी, पदार्थोंके सेवनसे, और मलमूत्रादि वेग विधारणसे अत्यंत मैथुन, व्यायाम, और व्याधिके होनेसे दूषित होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तस्यापि पारुष्यवर्णभेदतोदनिष्प्रभत्वानि विस्रंसने भवन्ति।

अर्थ–उस तेजके भी विस्रंसन होनेसे कठोरता, वर्णभेद, पीडा, निष्प्रभत्वादि विकृति होती है ।

कार्श्यमन्दाग्नितादस्तिर्यक्च्युतिर्व्यापत्तौ ।

अर्थ–तेजकी व्यापत्ती होनेसे मन्दाग्नि, कृशता, ऊपर नीचेको उसका निकलना होताहै ।

दृष्टचग्निबलहान्यनिलप्रकोपमरणानिक्षये ।

अर्थ–तेजके क्षय होनेसे दृष्टी, अग्नि, और बलकी हानि हो वात प्रबल, और मरण होवे ।

चिकित्सा ।

तत्रापिस्नेहपानाभ्यङ्गप्रदेहपरिषेकस्निग्धलघ्वन्नानिक्षयेविदधीत।

अर्थ–इस तेजके क्षीण होनेपर स्नेहपान, अभ्यंग, प्रदेह, परिषेक, चिकना और हलका अन्नआदि तेजवर्द्धक वस्तू सेवन करना चाहिये ।

दोषधातुमलक्षीणोबलक्षीणोपिवानरः।
स्वयोनिवर्द्धनंयत्तदन्नपानंप्रकांक्षति ॥

अर्थ–दोष, धातु, मलक्षीण, बलक्षीण, पुरुष स्वयोनिवर्द्धन अर्थात् जिस अन्नपानसे जो जो धातु बढती है उसी उसीकी कांक्षा करता है ।

यद्यदाहारजातंहिक्षीणःप्रार्थयतेनरः।
तस्यतस्यसलाभेतुतंतंक्षयमपोहति ॥

अर्थ–क्षीणपुरुष जिस जिस आहारको इच्छा करे उसको वोही वोही आहार मिलनेसे तत्तत् धातुमलादिककी क्षीणताको दूर करता है ।

असाध्यमाह ।

यस्यधातुक्षयाद्वायुःसंज्ञांकर्म च नाशयेत् ।
प्रक्षीणश्चबलंयस्यनासौशक्यश्चिकित्सितुम् ॥

अर्थ–जिसमनुष्यके धातुक्षीण होनेसे वायु संज्ञा और कर्मका नाश करे, तथा उक्त रोगीका बल क्षीण होगयाहो वह चिकित्सा करने योग्य नहीं है, किंतु त्याज्य है ।

रसनिमित्त ही स्थूल और कृशता तथा मध्यम शरीर होनेका कारण है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
CC-0. Kashmir Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

फिर वह एकही रस परस्पर विरोधी स्थूलता और कृशताको किसप्रकार करता है; इसलिये कहते हैं ।

रसनिमित्तमेवस्थौल्यंकार्श्यञ्च तत्र श्लेष्मलाहारसेविनोऽध्यशनशीलस्याव्यायामिनोदिवास्वप्नरतस्यचामएवान्नरसो मधुरतरश्चशरीरमनुक्रामन्नतिस्नेहान्मेदोजनयति तदातिस्थौल्यमापादयति ।

अर्थ–स्थूलता और कृशताका निमित्त रस है । तहां कफकारी पदार्थोंके सेवनसे अध्यशनशील (भोजनके ऊपर फिर शीघ्रभोजन करना)और देहसे परिश्रम न करे दिनमें शयन करनेवाला ऐसे पुरुषके कच्चाही मधुरतर रस शरीरमें विचरता हुआ अति स्नेह होनेसे मेदाको प्रगट करे है । वह मेदा मनुष्यको अत्यंत [१] स्थूल करती है ।

अति स्थूलताके दोष ।

तमतिस्थूलंक्षुद्रश्वासापिपासाक्षुत्स्वप्नस्वेदगात्रदौर्गन्ध्यकथनगात्रसादगद्गदत्वानिक्षिप्रमेवाविशान्तिसौकुमार्य्यान्मेदसः सर्वक्रियास्वसमर्थः कफमेदोनिरुद्धमार्गत्वाच्चाऽल्पव्यवायो भवत्यावृतमार्गत्वादेवंशेषाधातवोनाप्यायंतेऽत्यर्थमतोऽल्पप्राणोभवति । प्रमेहपिडकाज्वरभगंदरविद्रधिवातविकाराणामन्यतमंप्राप्यपंचत्वमुपयातिसर्वएव चास्यरोगाबलवन्तोभवन्त्यावृतमार्गत्वात्स्रोतसामतस्तस्योत्पत्तिहेतुंपरिहरेत् ।

अर्थ–उस अतिस्थूल पुरुषके क्षुद्रश्वास, प्यास, क्षुधा, निद्रा, पसीने, देहमें दुर्गंध, सोतेसमय कंठमें घर्रघर्र शब्द, (अथवा अकस्मात् श्वासका

---

[१] कदाचित् कोई शंका करे कि, जो मेदस्वी पुरुष दीप्ताग्निवाले हैं उनके कच्चा रस कैसे रहता है इसवास्ते कहते हैं कि, दीप्ताग्निवालोंकेभी अध्यशनदोषसे कच्चाही रस प्रगट होता है, कदाचित् वादी शंका करे कि यदि आप कच्चा मानते हो तो फिर उसकी रससंज्ञा नहीं हो सकती इसलिये कहते हैं कि, यद्यपि जठराग्नि करके रस प्रगट होगया परंतु जबतक धातुओंकी अग्निसे पक्व नहीं हो तबतक कच्चाही कहाता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रुकना) अंगोंका रह जाना, और गद्गद वाणी इत्यादि रोग शीघ्र इसकी देहमें प्राप्त होते हैं । मेदको सुकुमार होनेसे यह मेदस्वी पुरुष सर्व क्रियामें असमर्थ और कफमेदसे संपूर्ण पवनादि संचारके मार्ग रुकनेसे अल्पमैथुनी होताहै, और मार्गोंके रुकनेसे शेषधातु पुष्ट नहीं होती इसीसे यह प्राणी अल्पप्राण होता है।तथा प्रमेह पिडका, ज्वर, भगंदर, विद्रधि, वातके विकार इनमेंसे कोईसा रोग होकर मरणको प्राप्त होवे । और मेदस्वी पुरुषके मार्गोंके रुकनेसे तथा छिद्रोंके रुकनेसे सर्व रोग बलवान् होते हैं, इसीसे मेदकी उत्पत्तिको दूर करे अर्थात् जैसे मेद प्रगट न होवे सो उपाय करना चाहिये ।

उत्पन्नमेदकी चिकित्सा ।

उत्पन्नेतु शिलाजतुगुग्गुलुगोमूत्रत्रिफलालोहरजोरसाञ्जनमधुयवमुद्गकोरदूषकश्यामाकोद्दालकादीनांविरूक्षणच्छेदनीयानां च द्रव्याणांविधिवदुपयोगोव्यायामोलेखनबस्त्युपयोगश्चेति ।

अर्थ–यदि मेदरोग प्रगट होवे तो शिलाजीत, गूगल, गोमूत्र, त्रिफला, लोहभस्म, रसोत, सहत, जव, मूंग, कोदो, सामखिया, उद्दालक (वनकोदो) इत्यादिकोंका सेवन, तथा विलक्षण (मेदनाशक) और छेदनीय (स्रोतोंको शुद्धकर्त्ता) द्रव्योंका विधिपूर्वक सेवन दंडकसरत और लेखनबस्तीका[1] सेवन करना चाहिये ।

कार्श्यरोग होनेके कारण ।

तत्र पुनर्वातलाहारसेविनोऽतिव्यायामव्यवायाध्ययनभयशोकध्यानरात्रिजागरणपिपासाक्षुत्कषायाल्पाशनप्रभृतिभिरुपशोषितोरसधातुःशरीरमनुक्रामन्नल्पत्वान्नप्रीणयतितस्मादतिकार्श्यंचभवति ।

अर्थ–रूक्ष आहार सेवनसे तथा अत्यंत व्यायाम; अत्यंत मैथुन, अत्यंत पढना, अत्यंत भय, शोकसे, अत्यंत ध्यान; (एकाग्र चित्त करके किसीकार्यकी तरफ लगाना) रात्रिमें जागरण अत्यंत प्यास रोकनेसे, क्षुधाके रोकनेसे, कषेली वस्तुके सेवनसे, और बहुत अल्प भोजन आदि कारणोंसे रस धातु सूखकर शरीरमें गमन न करनेसे अल्पताके कारण शरीरको पुष्ट नहीं करे (अर्थात् किंचित् पुष्ट करे है) इसीसे धातुशोषीपुरुषके अति कार्श्यता होती है ।

---

१ त्रिफलाक्वाथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमन्विताः । उषकादिप्रतीवापावस्तयोलेखनाः स्मृताः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अतिकार्श्यके उपद्रव ।

सोतिकृशःक्षुत्पिपासाशीतोष्णवातातपवर्षभारादानेष्वसहिष्णुः वातरोगप्रायोऽल्पप्राणश्चक्रियासुभवतिश्वासकासशोषप्लीहोदराग्निसादगुल्मरक्तपित्तानामन्यतमंप्राप्यमरणमुपयातिसर्वएवचास्यरोगाबलवन्तोभवन्त्यल्पप्राणत्वादतस्तस्योत्पत्तिहेतुंपरिहरेत् ।

अर्थ–अत्यंत कृश मनुष्य भूख, प्यास, सरदी, गरमी, पवन, वर्षा, भार इनको नहीं सहसके । उसके प्रायःवातके रोग बहुत होते हैं और वह अल्पप्राण तथा संपूर्ण क्रियामें असमर्थ होता है । तथा श्वास, खांसी, शोष, तापतिल्ली, उदर, मंदाग्नि; गुल्मरोग, और रक्तपित्त इनमें कोईसा रोग होकर मृत्युको प्राप्त होवे । कृशपुरुष अल्पप्राण होनेसे इनके संपूर्ण रोग बलवान् होतेहैं। इसीसे इस कार्श्यरोगकी जैसे उत्पत्ति न होवे ऐसा उपाय करना चाहिये ।

चिकित्सा ।

उत्पन्नेतु पयस्याश्वगंधाविदारीगन्धाशतावरीबलातिबलानागबलानां समधुराणामन्यासाञ्चौषधीनामुपयोगः क्षीरदधिघृतमांसशालिषष्टिकयवगोधूमानांचदिवास्वप्नब्रह्मचर्याव्यायामबृंहणबस्त्युपयोगश्चेति ।

अर्थ--कृशता उत्पन्न होनेपर क्षीरकांकोली, असगंध, विदारीकंद, कचूर, शतावर, बला, नागबला और अतिबला इनके काढेमें सहत मिलायकर अथवा अन्य औषधीके काढेमे सहत मिलाकर पीना चाहिये । तथा दूध, दही, घी, मांस, चावल, सांठीचावल, जव, गेहूं, दिनमें निद्रा ब्रह्मचर्य, परिश्रम न करना, और बृंहणबस्तीका सेवन करना कृश मनुष्यको हित है ।

मध्यम देह ।

यः पुनरुभयसाधारणान्युपसेवेत तस्यान्नरसःशरीरमनुक्रामन् समान्धातूनुपचिनोतिसमधातुत्वान्मध्यशरीरीभवति सर्वक्रियासुसमर्थःक्षुतपिपासाशीतोष्णवर्षातपसहोबलवांश्च स सततमनुपालयितव्यइति ।

अर्थ–जो उभयसाधारण अर्थात् न बहुत रूक्ष और न बहुत स्निग्ध

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पदार्थोंका सेवन करता है. उसके अन्नरस शरीरमें विचरताहुआ समान धातुओंको करे हैं, वह मनुष्य समानधातु होनेसे मध्यशरीरवाला (न बहुत स्थूल न बहुत कृश) होता है। और वह सर्व क्रिया (कायिक वाचिक मानसिक) करनेमें समर्थ होता है। भूख, प्यास, शरदी, गरमी, वर्षा, धूपआदिका सहनेवाला होता है इसीसे इस मध्यम शरीरका सर्वथा पालन करना चाहिये अर्थात् जैसे अत्यंतस्थूल और कृश न होवे सो उपाय करे।

मध्यदेहकी प्रशंसा।

अत्यंतगर्हितावेतौसदास्थूलकृशौनरौ।
श्रेष्ठोमध्यशरीरस्तुकृशःस्थूलात्तुपूजितः।

अर्थ-स्थूल, और कृश ए दोनों सदैव निंदित है, इनसे मध्यमदेहवाला उत्तम है, परंतु अतिस्थूलसे कृश मनुष्य उत्तम कहाहै।

दोषोंको धातुमलक्षयकारकत्व।

दोषःप्रकुपितोधातून्क्षपयत्यात्मतेजसा।
इद्धःस्वतेजसावह्निरुखागतमिवोदकम्।

अर्थ-कुपितदोष अपने तेजकरके धातुओंको क्षीणकरेहैं जैसे स्थालीगत जलको अपने तेजकरके बढी अग्नि सुखाती है। इस जगे धातुका तो उपलक्षण है किंतु मलादिकोंकोभी दोषही क्षीण करतेहैं। तहां पित्त, उष्णत्वसे धातुक्षीण करेहै वात शोषणहेतुसे और कफमार्गावरोधकत्वसे धातुक्षीण करता है।

दोषधातुमलादिमानकी अनवस्थिति।

वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायित्वात्तथैवच।
दोषधातुमलानांतु परिमाणंनविद्यते।

अर्थ-शररिोंके विलक्षण[1] और अस्थायी[2] होनेसे दोष धातु और मलादि-

---

१ विलक्षणता दिखाते हैं। जैसे वातादिप्रकृति रसरक्तादिभारसहन दीर्घकृशादिदेहके भेदकरके विलक्षण है।

२ अस्थायीकहनेसे यह प्रयोजन है कि, काल दोप्रकारका है एक नित्यग और दुसरा आवस्थिक तहाँ नित्यगकालमें प्रातःकाल कफ कुपित होता है। मध्यान्हमें पित्त और सायंकालमें वात कुपित होता है। और प्रत्यह आह्निकचर्यादि भेदकरके तथा हेमंतमें कफसंचय होताहै। ग्रीष्ममें वायु और शरदऋतुमें पित्त। उसीप्रकार आवस्थिक काल जानना। जैसे बाल्यअवस्थामें कफ बढताहै, तथा बाल्यअवस्थामें शुक्र अल्प होताहै। युवावस्थामें पित्त, और वृद्धावस्थामें बादी संचित होती है। इसीसे शरीरको अस्थायित्व कहाहै।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कोंका परिमाण नहीं है। कोई किसी किसीका प्रमाण कहताहै सबका प्रमाण नहीं होवे।

यदि आप पलादिमान न मानोंगे तो विनामानके समानता कैसे जानी-जावेगी इसलिये कहते हैं।

एषांसमत्वंयच्चापिभिषग्भिरवधार्यते ।
नतत्स्वास्थ्याद्दतेशक्यंवक्तुमन्येनहेतुना ।

अर्थ–इनदोषोंका समानत्व वैद्य विना स्वास्थ्यताके अन्य किसीप्रकारसे नहीं जानसकता अर्थात् नैरोग्यतासेही दोषोंकी समानता मालूम हो सकती है सोभी वैद्योंकोही हो सकतीहै, अन्यको नहीं ।

अनुमानसे समानताका निर्णय ।

दोषादीनांत्वसमतामनुमानेनलक्षयेत् ।
अप्रसन्नेन्द्रियंवीक्ष्यपुरुषंकुशलोभिषक् ।

अर्थ–कुशलवैद्य-पुरुषको अप्रसन्नेन्द्रियवान् देखकर उसके देहमें दोषादिकोंकी असमानता अनुमानसे जाने । अर्थात् उसरोगीमनुष्यका वर्ण, चेष्टा देख धात्वादिकोंके क्षयवृद्धिका निश्चयकरना चाहिये ।

स्वस्थके लक्षण ।

समदोषःसमाग्निश्चसमधातुमलक्रियः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाःस्वस्थइत्यभिधीयते ।

अर्थ–जिसके देहमें दोष, अग्नि, धातु, मल , और क्रिया ए समान हों तथा, आत्मा, इन्द्री, और मन, जिसेक प्रसन्नहो उसको स्वस्थ अर्थात् नैरोग्य कहतेहैं ।

तथा स्वस्थका पालन कहतेहैं ।

स्वस्थस्यरक्षणंकुर्यादस्वस्थस्यतुबुद्धिमान् । क्षपयेद्बृंहयेच्चापिदोषधातुमलान्भिषक् ॥ तावद्यावदरोगःस्यान्नरोरोगसमन्वितः ।

---

१ यद्यपि दोषसाम्यकेकहनेसेही अग्न्यादिकोंको समानत्व प्रतीतहोगई फिर पृथक् क्यों कहे इसका समाधान श्रीमाधवने इसप्रकार कराहै ।

" लब्धाश्चसमदोषत्वेसमाग्नित्वादयस्तथा । पृथगुक्ताः किमर्थं ते भक्तमेतन्निरर्थकम् ॥१॥ समाधानमाह–दोषेभ्यस्तेयतोभिन्नाःपृथगुक्ताअतस्तुते । प्रकृत्या तादृशाः केचिदत्यर्थं वानदूषितम् ॥२॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ--बुद्धिमान्वैद्य स्वस्थपुरुषकी रोगोंसे रक्षाकरे और अस्वस्थ (रोगी) के दोषधातुमलादिकोंको घटावे बढावे, जबतक रोगीमनुष्य रोगरहित न होवे ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे चतुर्विंशतितमस्तरंगः ॥ २४ ॥

अथदोषवर्णनीयाध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ--अब दोषवर्णनीयाध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

वातपित्तश्लेष्माणएवदेहसम्भवहेतवःतैरव्यापन्नैरधोमध्योर्ध्व-सन्निविष्टैःशरीरमिदंधार्यतेऽगारमिवस्थूणाभिस्तिसृभिरतश्च त्रिस्थूणमाहुरेके ।

अर्थ--वात, पित्त, और कफ इन्होंका साधारण नाम दोष, येही तीनों दोष देहोत्पत्तिके कारण हैं। येही अविकृत होकर यथाक्रम देहके अधोभाग मध्य-भाग और ऊर्ध्वभागमें स्थितहोकर देहको धारण करतेहैं । जैसे तीनखम्भेसे घर खडारहताहै । उसीप्रकार इन तीनोंदोषोंसे यहदेह खडाहै। इसीकारण इस देहको कोई आचार्य त्रिस्थूण कहतेहैं ।

तएवच व्यापन्नाःप्रलयहेतवस्तदेभिरेवशोणितचतुर्थैः सम्भवस्थितिप्रलयेष्वप्यविरहितंशरीरंभवति ।

अर्थ--इन्हीं दोषोंके विकृतहोनेसे देह नष्ट होवे, येही तीनों दोष और रुधिर ए चारों पदार्थ देहके उत्पन्न स्थिति और नाशके सर्वसमय अविकृत वा विकृ-तभावसे शरीरमें परिवर्तनकरते रहतेहैं ।

नत्वेदेहःकफादस्तिनपित्तान्नचमारुतात् ।
शोणितादपिवा नित्यं देहएतैस्तुधार्यते ।

अर्थ--यहदेह विनाकफ-विनापित्त-विनावात और विनारुधिरके नहींहै किंतु इन चारों वस्तुओंसे यह देह धारण करीजातीहै ।

वातपित्त और कफशब्दकी व्युत्पत्ति ।

तत्र वा गतिगन्धनयोरितिधातुः तप सन्तापेश्लिषआलिङ्गने एतेषांकृद्विहितैःप्रत्ययैर्वातःपित्तं श्लेष्मेतिच रूपाणि भवन्ति ।

अर्थ--तहां वा गतिगंधनयोः तपसंतापे और श्लिषआलिंगने इनधातुओंसे कृदंतविहितप्रत्यय लानेसे क्रमपूर्वक वात, पित्त, और श्लेष्मा ये रूप होतेहैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दोषोंकी संख्या ।

वायुःपित्तंकफश्चेतित्रयोदोषाः समासतः ।
विकृताविकृतादेहंघ्नन्तितेवर्द्धयन्ति च ।

अर्थ--वात पित्त और कफ ए संक्षेपसे[1] तीन दोष हैं, ये विकारको प्राप्त हो देहको नष्ट करतेहैं, और अविकृत कहिये निर्विकार होनेसे देहको बढातेहैं । तीन दोषके कहनेसे यह प्रयोजनहै कि इनसे व्यतिरिक्त चतुर्थ दोष नहींहै । बहुतसे आचार्य रुधिरकोभी दोषोंमें गिनते हैं। सो असत्है कारण कि वातादि दोषही इस रुधिरको दूषित करते हैं ।

तेव्यापिनोऽपिहृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः ।
वयोहोरात्रिभुक्तानांतेन्तमध्यादिगाःक्रमात् ।

अर्थ–वे दोष यद्यपि सर्वत्रव्यापीभीहैं तोभी विशेषकरके हृदय और नाभी इनके नीचे मध्यमें और ऊपर रहतेहैं । तथा अवस्था, दिन, रात्रि, और भोजनका काल इनके अन्त, मध्य, और आदिमें गमन करतेहैं इसका अभिप्राय यह है कि, नाभीके नीचे वायुका स्थानहै । हृदय और नाभीके मध्यमें पित्तका और हृदयके ऊपर कफका स्थानहै । उसी प्रकार पुरुषकी पिछली अवस्था अर्थात् वृद्धावस्था वायुकोप होनेका काल है मध्यअवस्था पित्तका और प्रथम-अर्थात् बाल्यअवस्था कफकुपितहोनेका काल है । उसीप्रकार दिनका अंत्यभाग, वातका मध्यभाग पित्तका और प्रथमभाग कफका उसीप्रकार रात्रिका अंत्यभाग वातका मध्यभाग पित्तका और प्रथमभाग कफका है उसीप्रकार भोजनके पचनेके समय वातका काल. मध्यमें अर्थात् विदाहावस्थापित्तका और भोजनकी पूर्वअवस्था जिसमें आहार मधुरभावको प्राप्त होताहै वह कफकोपका काल है । ए तीनों अवस्था अपने अपने कर्मको दिखातीहै ।

दोषशब्दकी निरुक्ति ।

धातवश्चमलाश्चापिदुष्यन्त्येभिर्यतस्ततः ।
वातपित्तकफाएते त्रयोदोषा इतिस्मृताः ॥

अर्थ–धातु मलआदिके दूषित करनेसे वात पित्त और कफ ये तीनोंको दोष ऐसे कहाते हैं ।

---

१ विस्तरतस्तु संसर्गसन्निपातक्षयसमतादिभेदभिन्नास्तारतम्यपरिकल्पनयाचकल्प्यमानाआनंत्यं यान्ति ।

२ फेनीभूतंकफंयातं विदाहादम्लतां ततः । पित्तमामाशयात्कुर्याज्ज्यवमानंच्युतंपुनः । अग्निनाशोपि तंपक्वं पिंडितंकटुमारुतम् ॥ इति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तेधातवोपिविद्वद्भिर्गदितादेहधारणात् ।

अर्थ–इन्हीं दोषोंको देह धारण करनेसे पंडितजन धातुभी कहते हैं । इसमें सुश्रुतका प्रमाण ।

विसर्गादानविक्षेपैःसोममूर्त्यानिलायथा ।
धारयन्तिजगद्देहंकफपित्तानिलास्तथा ।

अर्थ–जैसे चंद्र सूर्य और पवन विसर्ग (त्यागना) आदान (ग्रहण) और विक्षेप (इतस्ततो चालन) करनेसे जगत्को धारण करतेहैं, उसी प्रकार कफ पित्त और वायु इस देहको धारण करते हैं अर्थात् जैसे चन्द्र जगत्में आर्द्रता करता है, सूर्य उस आर्द्रताको खींचता है, और पवन उसको इतस्ततो चालन करे हैं उसी प्रकार कफ पित्त और वात इस देहमें कार्य करते हैं ।

मलाश्चतेरसादीनां मलिनीकरणान्मताः ।

अर्थ–रसरक्तादि शुक्रान्तोंको मलिन (दूषित) करनेसे उन दोषोंको मल ऐसा कहतेहैं ।

वायुको श्रेष्ठत्व ।

स्वयंभूरेषभगवान्वायुरित्यभिशब्दितः । स्वातंत्र्यान्नित्यभावाच्च सर्वगत्वात्तथैवच ॥ सर्वेषामेवसर्वात्मासर्वलोकनमस्कृतः । स्थित्युत्पत्तिविनाशेषुभूतानामेषकारणम् ।

अर्थ–यह स्वयंभू अर्थात् स्वयं होनेवाला, भगवान् वायु इसप्रकार कहाताहै, इसको स्वतंत्र नित्यभाव, और सबमें सर्वगतहोनेसे तथा सबकी आत्मा होनेसे यह पवन सर्वलोकनमस्कृत है । तथा प्राणीनके स्थिति, उत्पत्ति और विनाशका यही कारण है ।

अव्यक्तोव्यक्तकर्मा च रूक्षःशीतोलघुःखरः । तिर्यग्गोद्विगुणश्चैव रजोबहुलएव च ॥ अचिंत्यवीर्योदोषाणां नेता रोगसमूहराट् । आशुकारी मुहुश्चारीपक्वाधानगुदालयः ॥ देहे विचरतस्तस्य लक्षणानिनिबोधमे ॥

अर्थ–अव्यक्त (देहरहित) है, और व्यक्तकर्मा अर्थात् देह धारियोंकेसे कार्यको करेहै, रूखा है, शीतल है, हलका है, और तीक्ष्ण है, तिरछागमन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करनेवाला, दोगुण (रजोगुण और तमोगुण) वालाहै, इसमें रजोगुण बहुल है, अचिंत्यवीर्य, दोषोंका नेता (स्थानान्तरमें प्राप्त करनेवाला) रोगसमूहोंका राजा, शीघ्रकर्त्ता, वारंवार संचार करनेवाला, पक्वाशय, और गुदा इनमें निवास करनेवाला, इसप्रकार देहमें विचरनेवाले वायुके लक्षणोंको सुनो ।

अविकृत वायुके कर्म ।

उत्साहोच्छ्वासनिश्वासचेष्टावेगप्रवर्त्तनैः । सम्यग्गत्याचधातूनामिन्द्रियाणांचपाटवैः ॥ अनुगृह्णात्यविकृतोहृदयेन्द्रियचित्तधृक् ।

अर्थ--उत्साह, उच्छास (ऊर्ध्वश्वास) और श्वास, चेष्टा (हलना चलना) वेग (मलमूत्रादि) का प्रवृत्त करना, उत्तम गतिसे धातु और इन्द्रियोंमें कुशलता, हृदय और चित्तको धारण करता इत्यादि गुणविशिष्ट अविकृतपवन अर्थात् जो विकारको न प्राप्त हुई आहो वह जानना ।

अन्यच्च ।

रजोगुणमयः सूक्ष्मःशीतोरूक्षोलघुश्चलः । खरोमृदुर्योगवाहीसंयोगादुभयार्थकृत् ॥ दाहकृत्तेजसायुक्तःशीतकृत्सोमसंश्रयात् । विभागकरणाद्वायुः प्रधानंदोषसंग्रहे ।

अर्थ-रजोगुणवाला, सूक्ष्म, शीतल, हलका, चलायमान, खर, मृदु योग, वाही (जिसके साथमिले उसीकेसे गुण करे) संयोगसे दोनों कार्यकरता, तेजकेसाथ दाहकरे और शीतलकेसाथ मिलनेसे शरदीको करता है (जैसे ज्येष्ठ वैशाखमें सूर्यकी तप्तकिरणके साथ मिलनेसैं ऐसाहोजाता है कि कदाचित् लूं देहमें लगजावेतो तत्काल मनुष्य विकलता और मरणको प्राप्त होवे, और पौषमाघमें ऐसा शीतल होजाता है कि, निर्बलपुरुष पक्षी पशु वनस्पति आदिका प्राणहारक होता है) और विभाग अर्थात् पृथक् पृथक् करनेसे दोषोंमें वायुको प्रधानताहै ।

वातके स्थान ।

पक्वाधानंकटीसक्थीश्रोतोऽस्थिस्पर्शनेन्द्रियम् । स्थानंवातस्यतत्रापिपक्वाधानंविशेषतः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-पक्वाधान, कमर, जांघ, छिद्र, हड्डी, और स्पर्शनेन्द्रिय, ये वातके स्थान हैं। इनमेंभी पक्वाशय विशेष करके है।

पंचपवनोंके नाम।

उदानस्तदनुप्राणःसमानोऽपानएव च।
व्यानश्चैतानिनामानिवायोःस्थानप्रभेदतः।

अर्थ-उदान, प्राण, समान, अपान, और व्यान, ए स्थानभेदसे वायुके नाम कहे हैं।

उनके कर्म।

उदानोनामयस्तूर्ध्वमुपैतिपवनोत्तमः। तेनभाषितगीतादि-प्रवृत्तिःकुपितस्तु सः॥ ऊर्ध्वजत्रुगतान्रोगान्विदधातिविशेषतः॥१॥योवायुःप्राणनामासौमुखंगच्छतिदेहधृक्। सोऽन्नंप्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते। प्रायशःकुरुतेदुष्टोहिक्काश्वासादिकान्गदान्॥ २॥ आमपक्वाशयचरः समानोवह्निसञ्ज्ञकः। सोऽन्नंपचतितज्जांश्चविशेषान्विविनक्तिहि॥ सदुष्टोवह्निमान्द्यातिसारगुल्मान्करोतिहि॥ ३॥ पक्वाशयालयोऽपानकालेकर्षतिचाप्ययम्। समीरणः शकृन्मूत्रशुक्रगर्भार्त्तवान्यधः॥ ४॥ क्रुद्धस्तुकुरुतेरोगान्घोरान्बस्तिगुदाश्रयान्। शुक्रदोषप्रमेहांश्चव्यानापानप्रकोपजान्॥ ५॥ कृत्स्नदेहचरोव्यानोरससंवाहनोद्यतः। स्वेदाऽसृक्छ्रावणश्चापिपंचधाचेष्टयत्यपि॥ ६॥ गत्यपक्षेपणोत्क्षेपनिमेषोन्मेषणादिकाः। प्रायःसर्वाःक्रियास्तस्मिन्प्रतिबद्धाःशरीरिणाम्।

अर्थ-जो पवनोंमें उत्तम उदाननामक पवन है सो ऊपरके देशमें अर्थात् कंठमें विचरे है। इससे गाना, बोलना आदि कर्म होते हैं। यदि यह पवन कुपित होवे तो कंठसे ऊपरके और हँसलीके रोगोंको करे है।

जो प्राणनामक वायु है वो प्राणियोंके मुखमें गमनकरती है। वह भोजनकरेहुए अन्नको भीतरप्रवेशकरती है। और प्राणोंको अवलंबनकरे है। यह कुपित होकर हिचकी श्वासादि रोगोंको करे है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आमाशयमें विचरनेवाला वह्निसंज्ञक समानपवन अन्नको पचाता है और तज्जन्य अर्थात् अन्नसे प्रगट रस मल मूत्रादिकोंको पृथक् पृथक् करे है यह दुष्टहोकर मंदाग्नि, अतिसार, गोला, आदिरोगोंको करे है।

पक्वाशयमें विचरनेवाला अपानसंज्ञक पवन यथासमय अधो वायु, मल, मूत्र, शुक्र, गर्भ, और आर्त्तवको खींचकर बाहर गेरता है। यह कुपितहोकर घोरबस्ति, गुदाश्रय रोगोंको शुक्रदोष और प्रमेह तथा व्यान अपानप्रकोपज रोगोंको करे है।

सर्वदेहमें विचरनेवाला व्यानपवन रसको बहता है और स्वेद (पसीने) रुधिरका स्राव करे हैं। तथा गमन, अपक्षेपण (अंगोंका नीचेनवाना) उत्क्षेप (अंगोंका ऊपरउठाना) निमेष (नेत्रोंका मींचना) और उन्मेषण (नेत्रोंका खोलना) येपांचप्रकारकी चेष्टा करेहैं। आदिशब्दसे जंभाई, अन्नका आस्वादन, और विशोधनादि, कर्मकोभी करेहै। प्रायः मनुष्योंकी संपूर्णक्रिया इस वायुके अधीन है।

वातकी पंचविध चेष्टा।

प्रस्पन्दनञ्चोद्वहनंपूरणंचविरेचनम् ।
धारणंचेतिपंचैताश्चेष्टाःप्रोक्तानभस्वतः ।

अर्थ–प्रस्पंदन, उद्वहन, पूरण, विरेचन, और धारण, ये पवनकी पांच चेष्टा हैं।

क्रुद्धःसकुरुतेरोगान्प्रायशः सर्वदेहगान् ।
युगपत्कुपिताएतेदेहंभिन्द्युरसंशयम् ।

अर्थ–यदि व्यानपवन कुपितहोवे तो सर्वदेहमें होनेवाले रोगोंको करेहै, यदि ये पांचोंपवन एकही समयमें कुपितहोवे तो निश्चय देहका नाशकरे।

अथ पित्तस्य स्वरूपमाह।

पित्तमुष्णंद्रवंपीतंनीलंसत्वगुणोत्तरम् ।
सरंकटुलघुस्निग्धंतीक्ष्णमम्लंतुपाकतः ।

अर्थ–पित्त गरम, पतला, पीत (आमरहित) नील (आमसहित) सतोगुणप्रधान, सर (दस्तावर) कटु, लघु, स्निग्ध, और तीक्ष्ण है। पाकसे खट्टा होजाताहै।

एक पित्त वातके सदृश नाम स्थान और कर्मभेदकरके पांचप्रकारका है

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उनपित्तोंके नाम।

पाचकंरञ्जकञ्चापिसाधकालोचकेतथा ।
भ्राजकंचेतिपित्तस्यनामानिस्थानभेदतः।

अर्थ--पाचक, रंजक साधक, आलोचक, और भ्राजक ए पित्तके स्थानभेदसे' पांच नाम हैं।

पाचकादिकोंके स्थान।

अम्याशयेयकृत्प्लीहौ हृदयेलोचनद्वये।
त्वचिसर्वशरीरेषुपित्तंनिवसतिक्रमात् ।

अर्थ--अम्याशय, यकृत्प्लीहा, हृदय, दोनोंनेत्र, और सर्वदेहकी त्वचामें क्रमसे पांचों पित्त रहतेहैं। अर्थात् अम्याशयमें पाचकपित्त रहताहै। यकृत् और प्लीहामें रंजक, हृदयमें साधक, दोनोंनेत्रोंमें आलोचक और देहकी सर्वत्वचामें भ्राजकपित्त रहताहै।

उनके कर्म।

पाचकंपचतेभुक्तंशेषाग्निबलवर्द्धनम्।
रसमूत्रपुरीषाणिविरेचयतिनित्यशः।

अर्थ--पाचकपित्त आमपक्वाशयके मध्यमें स्थितहो भक्ष्य, भोज्य, चर्व्य लेह्य, चुष्य, और पेय ये छःप्रकारके आहारको पचाताहै। और रस मलमूत्रादिकोंको न्यारा न्यारा करताहै। वो अम्याशयमें स्थितपाचकपित्त अपनी-आत्मशक्तिकरके रसका रंगना, हृदयस्थ कफके अंधकारका दूरकरना, रूपग्रहण, प्रभाप्रकाशन, अभ्यंगलेपनादि और पाचनआदि अग्निके कर्मकरके शेष पित्तके स्थानोंको पोषण करेहैं। और शेषअग्नि पृथिव्यादि महाभूतोंकी है उनके बलको बढाताहै।

पंचमहाभूतोंकी अग्निमें चरकका प्रमाण।

भौमाप्याग्नेयवायव्याःपञ्चोष्माणःसनाभसाइति ।

अर्थ--पृथ्वी, जल, अग्नि, वायव्य और आकाश ए पांच तत्त्वोंकी पांच अग्नि हैं।

वाग्भटका प्रमाण।

दोषधातुमलादीनामूष्मेत्यात्रेयशासनम् ।

अर्थ--दोष धातु और मलादिकोंकी ऊष्माहै वही अग्नि है यह आत्रेयऋषिकी आज्ञाहै।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इसीसे पूर्वोक्त पाचकपित्त रसादिधातुगत सप्त अग्नियोंके बलको बढाताहै इसमें दृष्टान्तहै कि जैसे घरमें धरेहुए रत्नभी समीपमें खद्योतके समान प्रकाशकरनेवाले होतेहैं यदि उनपर दीपकका प्रकाश पडे तो दूरतक प्रकाशकरने वाले होतेहैं । उसीप्रकार अग्याशयस्थ पाचकअग्निके तेजकरके संपूर्णअग्नि बलवानहोतीहैं ।

इसमें वाग्भटका प्रमाण ।

अन्नस्यपक्तासर्वेषांपक्तॄणामधिकोमतः ।
तन्मूलास्तोहितद्वृद्धिक्षयवृद्धिक्षयात्मकाइति ।

अर्थ–अन्नके पचानेवाला अग्नि सर्वअग्नियोंमें अधिकहै क्योंकि अन्य अग्नियोंके क्षयवृद्धि होनेका कारण यही अग्नि है ।

शिष्य–पित्तसे अग्नि पृथक्है कि पित्तही अग्नि है इससंदेहको आप दूर करो.

गुरु–पित्तको उष्णादिगुणसे आहारका पाचन, रंजन, दर्शनादि कर्म करनेसे पित्तही अग्नि है । पित्तसे पृथक् अन्य अग्नि नहीं है । अतएव अग्निरूप पित्तकीही स्थानभेदसे पाचक, रंजक, साधक, आलोचक और भ्राजकसंज्ञाहै । इसमें–

वाग्भटका प्रमाण ।

पाचकंतिलमानंस्यात्काठिन्यान्नस्यदोषता ।
अनुगृह्णात्यविकृतंपित्तंपाकोष्मदर्शनैः ॥
क्षुत्तृड्रुचिप्रभामेधाधीशौर्यतनुमार्दवैः ।
पित्तंपंचात्मकंतच्चपक्वामाशयमध्यगम् ॥
पंचभूतात्मकत्वेपियत्तैजसगुणोदयम् ।
त्यक्तद्रवत्वंपाकादिकर्मणानलशब्दितम् ॥
पचत्यन्नंविभजतेसारकिट्टौपृथक्पृथक् ।
तत्रस्थमेवपित्तानांशेषाणामप्यनुग्रहम् ॥
करोतिबलदानेनपाचकंनामतत्स्मृतम् ।

अर्थ–पाचक पित्त तिलके समानहै, अन्नकी यह कठोरताको दूरकरताहै, अविकृतहोनेसे पाक, ऊष्मा, और दर्शन करके पित्तोंको अनुगृहीत करताहै । तथा क्षुधा, तृषा, रुचि, प्रभा, मेधा, धी, शूरता, और देहके मृदुता करके उक्तपित्तोंको अनुग्रह करताहै । पंचात्मकपित्त पक्वाशय और आमाशयके

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बीचमें स्थितहै; पंचभूतात्मकत्वभी होनेपर तैजस अर्थात् तेजगुणके आधिक्यतासे द्रवत्वगुणरहित और कठिनहोकर तथा सहकारिकारणोंकरके पाचनक्रिया आदिसे अनलशब्दवाच्य जो पित्तहै उसीको पाचकपित्त कहतेहैं. यह पाचकपित्त अन्नको पचाताहै, तथा सारकिट्ट (मलमूत्रादिकों) को पृथक् पृथक् करेहैं । तथा आमाशय और पक्वाशयके बीचस्थितहो शेष जो रंजकादि धातुस्थपित्तहै उनपर बलदानदेनेकरके उपकार करेहैं । इसीसे इसको पाचकपित्त कहतेहैं इसमें डेढ श्लोक प्रथम वाग्भटका नहींहै ।

शिष्य–यदि पित्त और अग्निका अभेदहै तो घृत पित्तको कैसे शांतिकरताहै, और अग्निको दीप्तकरताहै । तथा मछली पित्तको करेहै, परंतु अग्निको दीप्त नहीं करतीहै । और पित्ताधिक्यसे तीक्ष्णाग्नि होतीहै, यह वार्त्ता फिर कैसे बनेगी तथा " समदोषःसमाग्निश्च " यहभी नहीं बनसके, तथा " द्रवं स्निग्धमधोगंच पित्तं वह्निरतोन्यथा " अर्थात् पित्त पतलाहै, चिकनाहै, और नीचेको गमनकरनेवालाहै, तथा अग्नि इससे विपरीतहै अर्थात् घन, रूक्ष है, और ऊर्द्धगमनशीलहै । इत्यादि वाक्योंकी कैसे गति होगी ।

गुरु--इसका उत्तर यह है कि, पित्त निरंतर अग्निके रहनेका स्थान है, जैसे ग्रंथान्तरोंमें लिखाहै.

अग्निर्भिन्नगुणैर्युक्तःपित्तंभिन्नगुणैस्तथा ।
द्रवंस्निग्धमधोगंचपित्तंवह्निरतोऽन्यथा ॥
तस्मात्तेजोमयंपित्तं पित्तोष्मायःसशक्तिमान् ।
ससञ्चरतिकुक्षिस्थः सर्वतोधमनीमुखैः ॥
सकायाग्निःसकायोष्मासपक्तासचजीवनम् ।
अनन्यगतिरित्येवंदेहकायाग्निरुच्यते ॥

अर्थ–अग्निके पृथक् गुणहै और पित्तके गुण भिन्नहै, जैसे द्रवस्निग्ध और अधोगमनवाला पित्तहै, और अग्निकेगुण इससे विपरीतहै अतएव पित्त तेजोमय है, और पित्तकी शक्तिमान् जो ऊष्मा सो कूखमें स्थितहो धमनीके द्वारा सर्वत्र संचारकरेहै । उसीको कायाग्नि कायोष्मा, पक्ता, जीवन, और अनन्यगति, ऐसेदेहमें उसीपित्तकी ऊष्माके अनेक नामहैं ।

अन्यच्च ।

वामपार्श्वाश्रितंनाभेःकिञ्चित्सोमस्यमण्डलम् ।
तन्मध्येमंडलंसौर्य्यं तन्मध्येऽग्निर्व्यवस्थितः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जरायुमात्रप्रच्छन्नःकाचकोशस्थदीपवत् ।

अर्थ–नाभीके किंचित् वामपार्श्वमें चंद्रमंडलहै, उसके बीचमें सूर्य और उसके बीचमें अग्नि व्यवस्थित है वह जरायुमात्रसे ढकीहुईहै, जैसे कांचकी फानूसमें दीपक होताहै ।

तथाच मधुकोषे ।

द्रवतेजःसमुदायात्मकस्यापि पित्तस्यतेजोभागोऽग्निरिति तेनपित्तमप्यग्निवन्मन्यते अतितापितायोगोलकवत् । परमार्थस्तु अग्निःपित्ताद्भिन्नएवेतिसिद्धान्तः ।

अर्थ–द्रवतेज समूहात्मक पित्तका तेजोभाग अग्नि कहाताहै, इसीसे पित्तभी अग्निके समान मानाजाताहै । जैसे अति तपायाहुआ लोहका गोला अग्निही मानाजाताहै । परंतु वास्तवसे विचारा जायतो अग्नि पित्तसे पृथक् है । यह प्रमाण रसप्रदीपमें इसप्रकार लिखा है ।

जाठरोभगवानग्निरीश्वरोऽन्नस्यपाचकः।सौक्ष्म्याद्रसानाददानो विवेक्तुंनैवशक्यते॥नाभौमध्येशरीरस्यविशेषात्सोममण्डलम् । सोममंडलमध्यस्थंविद्यात्सूर्यस्यमंडलम् । प्रदीपवत्तत्रनृणां स्थितोमध्येहुताशनः । सूर्योदिवियथातिष्ठंस्तेजोयुक्तैर्गभस्तिभिः॥ विशोषयतिसर्वाणिपल्वलानिसरांसि च । तद्वच्छरीरिणांभुक्तंज्वलनोनाभिमाश्रितः॥ मयूखैःपचतेक्षिप्रंनानाव्यञ्जनसंस्कृतम् । स्थूलकायेषुसत्वेषुयवमात्रप्रमाणतः॥ ह्रस्वकायेषुसत्वेषुतिलमात्रोस्तिसर्वथा । कृमिकीटपतंगेषु वालमात्रोऽवतिष्ठते॥

अर्थ–जठरसंबन्धी अग्नि भगवान् ईश्वर अन्नका पाचक रसोंका ग्रहण करताहुआ अतिसूक्ष्महोनेसे उसको नहीं जानसकतेहैं । शरीरके मध्यनाभिमें विशेष चंद्रमंडलहै । सोममंडलके बीचमें सूर्यमंडलहै तहां दीपककेतुल्य मध्यमें अग्निस्थितहै । जैसे तेजवान् किरणोंकरके सूर्य आकाशमें स्थित होकर तालतलैयाआदिके जलका शोषण करेहैं । उसीप्रकार मनुष्योंके नाभिमें रहनेवाला अग्नि अनेकप्रकारके सिद्धकरेहुए पदार्थोंको अपनी किरणोंसे पचाताहै । जो छोटीदेहवाले प्राणी हैं, उनके तिलके समान अग्निहै, और जो हाथी-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आदि बडी देहवाले जीव हैं, उनके जबकेतुल्य मोटी अग्नि रहतीहै । तथा कृमि, कीट, और पतंगआदि बहुतछोटेजीवोंके बालके बराबर अग्नि वास करेहैं इनसेभी जो छोटे हैं उनके इससेभी छोटीअग्नि रहतीहै ।

प्रकृतमनुसरामः ।

रंजकंनामयत्पित्तंतद्रसंशोणितंनयेत् । यत्तुसाधकसंज्ञंतत्कुर्याद्बुद्धिधृतिंस्मृतिम् ॥ यदालोचकसंज्ञंतद्रूपग्रहणकारणम् । भ्राजकंकान्तिकारीस्याल्लेपाभ्यंगादिपाचकम् ।

अर्थ–बीचमें झगडेको कहकर अब फिर उन्हीं शेषपित्तोंका वर्णनकरतेहैं । तहां रंजकपित्त आहारजन्य रसको रुधिरकरताहै । और साधकपित्त बुद्धि, धृति मेधा और स्मृतिको करताहै । तथा आलोचकनामकपित्त नेत्रोंमें रहकर रूप (कालापीलाआदि) को ग्रहणकरताहै । और भ्राजकपित्त त्वचामें स्थितहोकर कान्तिको करेहैं तथा देहमें करेहुए लेप, उबटना आदिको पचाताहै ।

अथ कफका स्वरूप ।

श्लेष्माश्वेतोगुरुःस्निग्धःपिच्छलःशीतलस्तथा ।
तमोगुणाधिकःस्वादुर्विदग्धोलवणोभवेत् ।

अर्थ–कफका रंग सपेद है, भारी चिकना, और पिच्छल (मलाईके सदृश) है, शीतलहै, इसमें तमोगुण आधिक्यहै, और स्वादुहै, विदग्ध अर्थात् अधकच्चारहनेसे खारी होताहै ।

एक कफ वातपित्तके सदृश नाम स्थान और कर्मभेदकरके पांचप्रकारकाहै ।

कफके नाम ।

कफस्यैतानिनामानिक्लेदनश्चावलंबनः ।
रसनःस्नेहनश्चापिश्लेष्मणःस्थानभेदतः ।

अर्थ–स्थानभेदसे कफके इतने नामहैं जैसे, क्लेदन, अवलंबन, रसन, स्नेहन, और श्लेष्मण ।

क्लेदनादिकफोंके स्थान ।

आमाशयेथहृदयेकंठेशिरसिसन्धिषु ।
स्थानेष्वेषुमनुष्याणांश्लेष्मातिष्ठत्यनुक्रमात् ।

अर्थ–आमाशय, हृदय, कंठ, शिर और सन्धि इनस्थानोंमें मनुष्योंके क्रमपूर्वक कफ वास करताहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[एषु स्थानेषु] इस बहुवचनधरनेका यह प्रयोजनहै कि, सकलदेहव्यापी दोषोंकेभी पांचपांच ही स्थानहैं । इस बाहुल्याभिप्रायसे बहुवचन धराहै ।

कफोंके कर्म ।

क्लेदनःक्लेदयत्यन्नमात्मशक्त्यापरानपि ।
अनुगृह्णातिचश्लेष्मस्थानान्युदककर्मणाम् ।

अर्थ--आमाशयस्थ क्लेदनसंज्ञककफ भोजनकरेहुए अन्नको आर्द्र करताहै इसीसे इकट्ठाअन्न भेदको प्राप्तहोताहै, और अपने अंशकरके हृदयादिस्थानोंमें प्राप्तहोकर उसीउसीजगे हृदयावलंबन, त्रिकसंधारण, रसग्रहण, समस्तेन्द्रियतर्पण, और सन्धिसंश्लेषण, आदि कार्योंको उदककर्मकरके उपकार करेहैं ।

अवलंबनकफके कार्य ।

रसयुक्तात्मवीर्येणहृदयस्थावलंबनम् ।
त्रिकसंधारणंचापिविदधात्यवलंबनः ।

अर्थ--हृदयमें स्थित अवलंबनसंज्ञक कफ अपने आत्मवीर्य करके हृदयका अवलंबन और त्रिक (शिर और दोनोंभुजाकी सन्धि) को संधारण करता है ।

रसनकफके कार्य ।

उभावपिततःसौम्यौतिष्ठतश्चांतिकेयतः ।
यतोरसान्विजानातिरसनारसनौसमौ ।

अर्थ--रसना जीभ और रसन (रसनकफ) ए दोनों सौम्यहै, तथा दोनों समीप रहतेहैं, और इन्हींसे रसोंको जानताहै, अतएव रसना और रसनकफ सदृश है ।

स्नेहनकफके कार्य ।

स्नेहनःस्नेहदानेनसमस्तेन्द्रियतर्पणः ।
श्लेष्मणःसर्वसन्धीनांसंश्लेषंविदधात्यसौ ।

अर्थ--स्नेहनकफ स्नेहदान करके संपूर्ण इन्द्रियोंको तर्पण करताहै । और श्लेष्मणनामक कफ सर्व सन्धीनको आपसमें संश्लेष कहिये मिलाता है अर्थात् इसीकफसे जोड जहांके तहां मिलेहुएहैं ।

इतिप्रायेणदोषाणांस्थानान्यविकृतात्मनाम् ।
व्यापिनामपिजानीयात्कर्माणि च पृथक्पृथक् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–इसप्रकार अविकृतदोषोंके स्थान कहेहैं इसीप्रकार व्यापीदोषोंके स्थान और कर्म वैद्यजाने अर्थात् उक्तस्थान और कर्म स्वस्थानस्थितदोषोंके कहे इसीप्रकार सकलशरीर चारी दोषोंके स्थान और कर्म वैद्य जाने।

प्रसंगवशरुधिरके स्थान।

शोणितस्यस्थानंयकृत्प्लीहानौतच्चप्रागभिहितं तत्रस्थमेवशोणितस्थानानामनुग्रहंकरोति।

अर्थ–रुधिरके यकृत् और प्लीह स्थानहै, यह शोणितवर्णनीयाध्यायमें कह आएहैं। वह रुधिर उसजगे स्थितहो शेष रुधिरके स्थानोंको अनुग्रह अर्थात् पोषण करेहैं।

अनुष्णशीतंमधुरंस्निग्धंरक्तंचवर्णतः। शोणितंगुरुविस्रंस्याद्विदाहश्चास्यपित्तवत्।

अर्थ--रुधिर–अनुष्ण, शीतल, मीठा चिकना, लाल रंगका, भारी, अनिष्ट गंधवालाहै। और यह पित्तके तुल्य विदाह करताहै।

एतानिखलुदोषस्थानान्येषुसंचीयंतेदोषाः। प्राक्संचयहेतुरुक्तः।

अर्थ--ये दोषोंके स्थान कहेहैं, इनमें दोषोंका संचय होता है। दोषोंके संचय होनेका कारण प्रथम ऋतुचर्याध्यायमें कहआएहैं, परंतु इसग्रंथमें ऋतुचर्या आगे कहेंगे।

तत्रसंचितानांदोषाणांस्तब्धपूर्णकोष्ठतापित्तावभासतामंदोष्णताचाङ्गानाम् गौरवमालस्यं चयकारणविद्वेषश्चेतिलिङ्गानिभवंति तत्रप्रथमःक्रियाकालः।

अर्थ- संचितदोषोंके ए लक्षण होतेहैं। पेटका स्तब्ध और पूर्ण होना, पीलाईका दीखना, अंगोंमें मंदगरमी, गौरव, आलस्य, चयकारणसे द्वेष अर्थात् जिसवस्तुके खानेलगानेसे जो दोष कुपित होवे उससे उसी वस्तुमें इच्छा नहीं रहती, तहां प्रथमक्रियाकालजानना।

अतऊर्द्धंप्रकोपणानिवक्ष्यामः।

अर्थ–अब इसके उपरांत दोषोंके प्रकोपोंको कहेंगे।

वातकोपके कारण।

तत्रबलवद्विग्रहातिव्यायामव्यवायाध्ययनप्रपतनप्रधावनप्रपीडनाभिघातलंघनप्लवनतरणरात्रिजागरणभारहरणगजतु-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रङ्गरथपदातिचर्याकटुकषायातिक्तरुक्षलघुशीतवीर्यशुष्कशाकवल्लूरवरकोद्दालककोरदूषश्यामाकनीवारमुद्गमसूराढकीहरेणुकलायनिष्पावानशनविषमाशनाध्यशनवातमूत्रपुरीषशुक्रच्छर्दिक्षवथूद्गारबाष्पवेगविघातादिभिर्विशेषैर्वायुःप्रकोपमापद्यते ।

अर्थ--बलवानसे विरोध (युद्धादि) करनेसे, अत्यंत कसरत करनेसे, अतिमैथुनसे, अत्यंत पढनेसे, गिरनेसे, दौडनेसे, दबनेसे, चोट लगनेसे, लंघन करनेसे उछलने कूदनेसे, नदीमें तैरनेसे, रात्रिमें जागनेसे, बोझको लेजानेसे, हाथी, घोडा, रथमें बैठकर डोलनेसे, पैरोंसेही डोलना, तथा कटु, कषैले, तिक्त, रूक्ष, हलके, शीतद्रव्य, सूखे शाक, सूखा मांस,वरक (धान्यविशेष) वन, कोदो, कोदोधान्य, सामखिया, नीवार (मुनिअन्न) मूंग, मसूर, अरहर, हरेणु (वाटाना इति दक्षिणे प्रसिद्धः) मटर, सैम, इत्यादि सकलद्रव्योंके खानेसे उपवास, विषमाशन (कभी थोडा, कभी बहुत, कभी जल्दी कभी अवेरी अथवा अजीर्णमें भोजन) इसीप्रकार अधोवायु, मूत्र, मल, शुक्र, वमन, छींक, डकार, और आंसु, इन सबके उपस्थितवेगके रोकनेसे इत्यादिकारणोंसे वायु कुपित होता है ।

सशीताभ्रप्रवातेषुघर्मान्तेचविशेषतः ।
प्रत्यूषस्यपराह्णेतुजीर्णेन्नेचप्रकुप्यति ।

अर्थ--बहवायु, शीतकालमें बद्दलहोनेपर वायुके चलनेके समय वर्षाकालमें, प्रत्यूष (प्रातःकाल जिससमय गौ छोडीजातीहै) अपराह्ण और अन्नपरिपाक होनेके उपरांत कुपित होताहै ।

पित्तकोपके कारण ।

क्रोधशोकभयायासोपवासविदग्धमैथुनोपगमनकटूम्ललवणतीक्ष्णोष्णलघुविदाहितिलतैलपिण्याककुलत्थसर्षपातसीहरितशाकगोधामत्स्याजाविकमांसदधितक्रकूर्चिकामस्तुसौवीरकसुराविकाराम्लफलकट्वारार्कप्रभृतिभिःपित्तंप्रकोपमापद्यते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–क्रोध, शोक, भय, श्रमजनककर्म, उपवास, अग्निदाह, मैथुन, दौड करना, कटु, अम्ल, नोनका, और तीखा, गरम, हलका, विदाहीपदार्थ, तिलतेल, खल, कुलथी, सरसो, अलसी, हराशाक, गोह, मछली, बकरी, मेढा, इनके मांस खानेसे दही और तक्रकूर्चिका (जो छाछ और दूधके पकानेसे बनतीहै) दहीका जल, सौवीर (कांजी मद्यके विकार, खट्टाफल, कट्वर (जिसमेंसे मक्खन न निकालाहो ऐसी छाछ) और सूर्यकिरण इत्यादि पदार्थोंके सेवनसे पित्त कुपित होताहै।

तदुष्णैरुष्णकालेचमेघान्तेचविशेषतः।
मध्याह्नेचार्धरात्रेचजीर्यत्यन्नेचकुप्यति।

अर्थ–उष्णद्रव्यका, उष्णकालमें, शरदृतुमें मध्याह्नमें, अर्धरात्रमें, और भुक्तअन्नके समय पित्त कुपित होताहै।

कफकोपकारण।

दिवास्वप्नव्यायामालसमधुराम्ललवणशीतस्निग्धगुरुपिच्छलाभिष्यन्दिहायनकयवकनैषधोत्कटमाषमहामाषगोधूमतिलपिष्टविकृतिदधिदुग्धकृसरपायसेक्षुविकारानुपोदकमांसवसाविसमृणालकशेरुकशृंगाटमधुरवल्लीफलसमशनाध्यशनप्रभृतिभिःश्लेष्माप्रकोपमापद्यते।

अर्थ–दिनमें सोनेसे, परिश्रम नकरना, आलस्य, मधुर, अम्ल, लवणरस, शीतल, स्निग्ध, गुरु, पिच्छल, और अभिष्यंदीद्रव्य, हायनक, (व्रीहिविशेष) यव, नैषध (घासविशेष) तज, उडद, बडेउडद, गेंहू, तिल, पिष्ट (मेदाआदि) दही, दूध, खिचडी, पायस (खीर) ईखकेविकार अर्थात् गुडआदि, उसीप्रकार अनूपदेशमें और जलमें रहनेवाले जीवोंका मांस, और वसा, कमलकी डंडी, कसेरु, सिंघाडे, मिष्ट, वेलके फल, (खरबूजा, तरबूज, पेठाआदि) अधिकभोजन, अजीर्णमें भोजन, इत्यादि कककोपके कारण जानने।

सशीतैःशीतकालेचवसन्तेचविशेषतः।
पूर्वाह्णेचप्रदोषेचभुक्तमात्रेप्रकुप्यति।

अर्थ–शीतलद्रव्यद्वारा, शीतलकाल, वसंतकाल, पूर्वाह्ण, और प्रदोषमें तथा आहारके करतेही कफ कुपित होताहै।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रुधिरकोपके कारण ।

पित्तप्रकोपकारणैरेवचाभीक्ष्णं द्रवस्निग्धगुरुभिश्चाहारैर्दिवा स्वप्नक्रोधानलातपश्रमाभिघाताजीर्णविरुद्धाध्यशनप्रभृतिभिरसृक्प्रकोपमापद्यते ।

अर्थ--जिन जिन कारणोंसे पित्त कुपित होताहै उसी २ कारणोंसे रुधिरभी कुपित होताहै । उसीप्रकार निरंतर द्रव, स्निग्ध और भारी द्रव्यके भोजन करनेसे दिवानिद्रा, क्रोध, अग्निसंताप, धूप, परिश्रम, अभिघात, अजीर्ण, विरुद्धद्रव्यभोजन तथा अजीर्णमें भोजन, इत्यादि कारणोंसे रुधिर कुपित होता है ।

यस्माद्रक्तंविनादोषैर्नकदाचित्प्रकुप्यति ।
तस्मात्तस्ययथादोषं कालंविद्यात्प्रकोपणे ।

अर्थ--विनादोषोंके कदाचित् रुधिर कुपित नहीं होता, अतएव उस रुधिरका यथा दोषके सदृश कुपित होनेका काल जानना ।

कुपितदोषोंके लक्षण ।

तेषांप्रकोपात्कोष्ठतोदसंचरणाम्लिकापिपासापरिदाहान्नद्वेषहृदयोत्क्लेदाश्चजायन्ते तत्राद्वितीयक्रियाकालः ।

अर्थ--उक्तदोषोंके कुपित होनेसे कोठेमें पीडा, खट्टीडकारका आना, प्यास, देहमें दाह, अन्नमें अरुचि, तथा वमनकीसी भ्रांति, ए सब लक्षण उपस्थित होते हैं । यह अवस्था चिकित्साका दूसरा काल है ।

अतऊर्ध्वं प्रसरं वक्ष्यामः ।

अर्थ--अब दोषोंके प्रसर अर्थात् कुपितदोष संपूर्णोंका स्वस्थानसे स्थानांतरगमनका विषय लिखा जाता है ।

दोषोंके प्रसर ।

तेषामेभिरातङ्कविशेषैःप्रकुपितानांपर्य्युषिताकिण्वोदकपिष्टसमवायइवोद्रिक्तानांप्रसरोभवतितेषांवायुर्गतिमत्त्वात्प्रसरणहेतुः सत्यप्यचैतन्येसहिरजोभूयिष्ठोरजश्चप्रवर्त्तकंसर्वभावानाम् ।

अर्थ--वातपित्त और कफ इनका पूर्वोक्तबलवत् विग्रहादिकारणोंकरके कुपितहो अत्यंत बढकर वेगकरते हैं इसमें दृष्टांत है कि, जैसे सुराबीज (मद्यके

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बनानेकी औषध) जल और पिष्टकहिये तंदुलपिष्ट इनके संयोगद्वारा अन्योन्यगुणानुप्रवेशकरके जैसे मध्यमें प्रसरणगुण प्रगट होता है उसीप्रकार दुष्टहेतुके संयोग होनेसे वातादिकोंकी वृद्धि अर्थात् वेग होताहै । उनमें वायुको गतिमान् होनेसे मुख्य प्रसरणका हेतु वायुहीहै । यद्यपि चैतन्यता रहितभी वायुको रजोगुणबहुल होनेसे सर्वपदार्थोंका रजोगुण प्रवर्त्तक है सो रजोगुण पवनमें रहताहै ।

यथामहानुदकसंचयोऽतिवृद्धःसेतुमवदार्यापरेणोदकेन व्यामिश्रःसर्वतःप्रधावति एवंदोषाःकदाचिदेकशोद्विशःसमस्ताः शोणितसहितावानेकधाप्रसरन्ति ।

अर्थ–दोषोंके प्रसारमें दूसरा दृष्टांत देकर समझातेहैं कि जैसे बडाभारी जलका संचय अत्यंत बढकर सेतु (बंध) को तोडकर दूसरे जलसे मिलकर चारोंतर्फ विचरताहै । उसीप्रकार वातादिदोष कदाचित् एक, दो, वा समस्त तथा रुधिरकके संयुक्तहो अनेप्रकारसे विचरतेहैं ।

तद्यथा॥वातः-पित्तं-श्लेष्मा-शोणितं-वातपित्ते-वातश्लेष्माणौ-पित्तश्लेष्माणौ-वातशोणिते-पित्तशोणिते-श्लेष्मशोणिते-वातपित्तशोणितानि-वातश्लेष्मशोणितानि-पित्तश्लेष्मशोणितानि-वातपित्तकफा-वातपित्तकफशोणितानि-इत्येवंपञ्चदशधाप्रसरन्ति ।

अर्थ–जैसे, १ वात, २ पित्त, ३ कफ, ४ शोणित, ५ वातपित्त ६ वातश्लेष्म, ७ पित्तश्लेष्म, ८ वातशोणित, ९ पित्तशोणित, १० श्लेष्मशोणित, ११ वातपित्तशोणित, १२ वातश्लेष्मशोणित, १३ पित्तश्लेष्मशोणित, १४ वातपित्तकफ, १५ वातपित्तकफ और शोणित इत्यादि, १५ प्रकारके प्रस्तार होतेहैं ।

कृत्स्नेऽर्धेवयवेवापियत्राङ्गेकुपितोभृशम् ।
दोषोविकारंनभसिमेघवत्तत्रवर्षति ।

अर्थ–वातादिदोष संपूर्ण अथवा आधे अंगके किसी अवयवमें कुपित होनेसे विकारकी वर्षा करतेहैं । अर्थात् रोगोंको प्रगट करतेहैं जैसे आकाशमें मेघ वर्षतेहैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नात्यर्थंकुपितश्चापिलीनोमार्गेषुतिष्ठति ।
निष्प्रत्यनीकः कालेनहेतुमासाद्यकुप्यति ।

अर्थ–अब कहतेहैं कि प्रभूतदोषभी अल्पकोपहोनेसे विकारकर्त्ता नहीं होताहै जैसे कि जो दोष अत्यंत कुपित नहीं वह मार्गोंके एकदेशमें स्थित रहताहै, वही दोष कालकरके निष्क्रियहो हेतुप्राप्तहोकर कुपित होताहै ।

तत्र वायोः पित्तस्थानगतस्य पित्तवत्प्रतीकारः पित्तस्यकफस्थानगतस्यकफवत् कफस्यचवातस्थानगतस्यवातवत् एषक्रियाविभागः ।

अर्थ–प्रसर होकर दोषोंको अन्यस्थानगत होनेसे दोषस्थानवत् प्रतीकार करना चाहिये यह कहते हैं, जैसे कि वायुको पित्तस्थानगत होनेसे पित्तके समान चिकित्सा करनी चाहिये । पित्तको कफस्थानगत होनेसे कफके समान और कफको वातस्थानगत होनेसे वातवत् चिकित्सा कर्त्तव्यहै । इसका निष्कृष्टार्थ यह है कि जबतक जो दोष अपने स्थानपर स्थित है तबतक जिस दोषकी जो चिकित्सा कही है सो कर्त्तव्य है, परंतु वेही दोष अपने स्थानको त्यागकर दूसरेके स्थानमें जाते हैं तब उनकी जिसके स्थानमें गए उसके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ।

एवं प्रकुपितानां प्रसरतां च वायोर्विमार्गगमनाटोपौ । उषाचोषपरिदाहधूमायनानिपित्तस्य । अरोचकाविपाकांगसादच्छर्दिश्चेतिश्लेष्मणोलिंगानिभवंतितत्र तृतीयः क्रियाकालः ॥

अर्थ–इसप्रकार प्रकुपित और प्रसरणवाले दोषोंमें प्रकुपित और प्रसरणवायुका विमार्गगमन अर्थात् गुदा, कंठ आदिस्थानोंको छोड दूसरे मार्ग होकर निकलना तथा पीडासहित पेटका फूलना ए लक्षण होते हैं । तथा ओष (अंगके एकदेशमें दाह) चोष (चूसनेकीसी पीडा) दाह, और धूआंकीसी वमनकरना ए कुपित और प्रसरणशील पित्तके लक्षण हैं । अरुचि, भुक्तअन्नका अपाक, अंगग्लानि, और वमन ए कुपित और प्रसरणशील कफके

---

१ प्रकोप और प्रसरणमें क्या भेदहै यह कहतेहैं, जैसे-घृतको औटानेसे प्रथम अग्निलगनेसे घीचलायमान होताहै उस चलायमानअवस्थाको प्रकोप कहतेहैं, और उसी घीमें अत्यंत अग्निके लगनेसे झागरूप हो उफनकर बाहरकी तर्फ जब वेगसे चलताहै. उस अवस्थाको प्रसरण कहतेहैं. यही प्रकोप और प्रसरणमें भेदहै.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लक्षण होते हैं। तहां क्रियाका तीसरा काल जानना। दोषोंका प्रसर जानना वैद्यको अतिआवश्य है परंतु आजकल इस सूक्ष्मवस्तुको कौन जानसकता है क्योंकि आजकलके वैद्योंको स्थूलदोषोंकी तो परीक्षा होही नहीं सकती फिर प्रसर जानना तो एक बडी दुर्लभ बात है।

अतऊर्ध्वंस्थानसंश्रयंवक्ष्यामः। एवंकुपितास्तांस्ताञ्छरीर-प्रदेशानागत्यतांस्तान्व्याधीञ्जनयंति। तेयदोदरसंनिवेशं कुर्वन्तितदागुल्मविद्रध्युदराग्निसङ्गानाहविषूचिकातीसारप्रभृतीञ्जनयन्ति। बस्तिगताः प्रमेहाश्मरीमूत्राघातमूत्रदोषप्रभृतीन्। मेढ्रगतानिरुद्धप्रकाशोपदंशशूकदोषप्रभृतीन्। गुदगताभगन्दरार्शःप्रभृतीन्। वृषणगतावृद्धिः। ऊर्ध्वजत्रुगतास्तूर्ध्वजान्। त्वङ्मांसशोणितस्थाः क्षुद्ररोगान्कुष्ठानि विसर्पांश्च। मेदोगताःग्रन्थ्यपच्यर्बुदगलगण्डालजीप्रभृतीन्। अस्थिगताविद्रध्यनुशयीप्रभृतीन्। पादगताःश्लीपदवातशोणितवातकण्टकप्रभृतीन्। सर्वाङ्गगताज्वरसर्वाङ्गरोगप्रभृतीन्॥

अर्थ—अब इसके उपरांत सर्व दोषोंके स्थानसंश्रयको कहेंगे। इस प्रकार कुपितदोष देहके जिस प्रदेशमें आनकर स्थितहों उसी उसी अंगकी व्याधियोंको प्रगट करते हैं। जब उक्तदोष उदरमें आनकर प्राप्त होते हैं तब गुल्मरोग, विद्रधि, उदररोग, मंदाग्नि, अनाह, विषूचिका, अतिसारआदि रोगोंको करते हैं। बस्तीमें प्राप्त होनेसे प्रमेह, पथरी, मूत्राघात, और मूत्रदोषआदि रोगोंको करे हैं। मेढ्रगत होनेसे निरुद्धप्रकाश, उपदंश, (गरमी) और शूकदोषआदि रोगोंको करे हैं। गुदामें प्राप्त होकर भगंदर, बवासीर, आदिको करे हैं। वृषण (अंडकोश) गत होकर अंडवृद्धिरोग करते हैं। ऊर्ध्वजत्रुगत होनेसे ग्रीवामूलके रोगोंको करे हैं। त्वचा मांस रुधिरगत होनेसे क्षुद्ररोग कुष्ठ विसर्प आदि रोग होते हैं मेदोगत होकर ग्रन्थी (गांठ) अपची, अर्बुद, गलगंड, और अलजी प्रभृतिरोगोंको करे हैं। अस्थिगत होनेसे विद्रधि अनुशयी आदिरोगोंको करे हैं। पादगत होकर श्लीपद, वातशोणित और वातकंटक आदि रोगोंको करे हैं। और उक्तदोष सर्वांगगत होनेसे ज्वर और सर्वांगरोग आदिको प्रगट करते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तेषामेवमभिनिविष्टानांपूर्वरूपप्रादुर्भावस्तत्प्रतिरोगंवक्ष्यामः । तत्रपूर्वरूपगतेषुचतुर्थःक्रियाकालः ।

अर्थ–इसप्रकार उनदोषोंका देहके विशेष २ स्थानमें आश्रय करनेसे व्याधिका पूर्वरूप जो प्रगट होता है। वो रोग २ के प्रति पृथक् २ कहेंगे । किंतु प्रति दोषका चयादिलक्षणके सदृश नहीं कहेंगे । इसप्रकार पूर्वरूप ज्ञान होनेपर क्रियाका चतुर्थकाल जानना ।

अतऊर्ध्वंव्याधिदर्शनंवक्ष्यामः । शोफार्बुदग्रन्थिविद्रधिविसर्पप्रभृतीनांप्रव्यक्तलक्षणता ज्वरातिसारप्रभृतीनाञ्च । तत्र पंचमक्रियाकालः ॥

अर्थ–अब इसके उपरांत व्याधिदर्शन अर्थात् व्याधिका पूर्वरूप अवस्थासे पररूप शोफादि ज्वरादिकोंके प्रगट लक्षण कहते हैं । जैसे शोफ, अर्बुद, ग्रन्थि (गांठ) विद्रधि और विसर्प-आदि व्याधिके तथा ज्वर और अतिसार प्रभृतिरोगोंके लक्षण समस्त प्रकृष्टरूपसे व्यक्त होते हैं इस अवस्थाको व्याधिका रूप कहतेहैं । यह चिकित्साका पंचमकाल है ।

अतऊर्ध्वमेतेषामवदीर्णानांव्रणभावमापन्नानां षष्ठः क्रियाकालः ॥ ज्वरातिसारप्रभृतीनांचदीर्घकालानुबन्धः । तत्रप्रतिक्रियमाणेऽसाध्यतामुपयान्ति ।

अर्थ--अब इसके उपरांत उक्तअवस्थाके परउक्तशोथादिरोग विदीर्ण होकर क्षत (घाव) होय है यह क्रियाका छटा कालहै । ज्वर और अतिसार आदिरोग दीर्घकालपर्यंत स्थित रहते है। यदि इस समयमें चिकित्सा न करीजावे तो समस्त रोग असाध्य हो जाते हैं ।

सञ्चयञ्चप्रकोपञ्चप्रसरंस्थानसंश्रयम् ।
व्यक्तिभेदं च योवेत्तिदोषाणांसभवेद्भिषक् ।

अर्थ--जो दोषोंका संचय, प्रकोप, प्रसर, स्थानसंश्रय (व्याधिकी पूर्वरूपावस्था) और व्यक्ति (व्याधिका रूपदर्शन) भेदको जानता है । वही वैद्य होता है ।

संचयेऽपह्नतादोषालभन्तेनोत्तरागतिः ।
तेतूत्तरासुगतिषुभवंतिबलवत्तराः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-प्रथम प्रतीकारालपत्व और पश्चात् प्रतिकारबाहुल्य दिखाते हैं। यदि दोषोंके संचय होनेपर अपहरण कराजाय तो वे दोष उत्तरगतिको नहीं प्राप्त होते हैं। अर्थात् बहुत दोषसंचय होगया हो उसमें शोधन करे और मध्यदोषमें लंघनपाचन करावे और अल्पदोषमें संशमनादि औषधी देनी चाहिये। यदि आलस्यवश वे दोष उत्तरगतिको प्राप्त हो जावे तो बली हो जाते हैं।

सर्वैर्भावैस्त्रिभिर्वापिद्वाभ्यामेकेनवापुनः।
संसर्गेकुपितःक्रुद्धंदोषंदोषोऽनुधावति॥

अर्थ-संपूर्ण भाव (रूक्षोष्णस्निग्धादि) करके तथा तीन वा दो अथवा एक दोषके संसर्ग करके कुपित दोष प्रकुपित दोषका अनुगामी अर्थात् प्रधानदोषका मार्गानुगामी होता है. इसकरके सर्वभावक्रुद्ध प्रधानभूतव्यक्त लिंगको अनुबन्ध्य दोष कहतेहैं। इस अनुबन्ध्यदोषकी चिकित्सा करनी चाहिये इसके शांति होनेसे अप्रधान अनुबंधभूतदोषकी शांति स्वयं होजाती है। और जिस समय सर्व भाव करके दोष कुपित होतेहैं तब सबही प्रधानभूत और अनुबंधभूत कहाते हैं इस प्रकारके सन्निपातावस्थामें होतेहैं। अन्यआचारी भावशब्दकरके रसगुण वीर्य विपाक चार भाव मानते हैं। द्रव्य गुण कर्म ये तीन भाव हैं ऐसे चरकके व्याख्याकरनेवाले भट्टारक और हरिश्चन्द्रप्रभृति कहतेहैं। कोई कहतेहैं कि रूक्ष, लघु, विशद, विष्टंभ, ये वातके भागहैं। तीक्ष्ण, द्रव, पूती, नील, पीत ये पित्तके हैं। और शीत, गुरु, पिच्छल, स्निग्धादि कफके भाग जानने। तहां वातादि यदि सर्वभाग वा तीन, दो, एक भागकरके कुपितहोवे तो उतनेही उससे विपरीतभागोंकरके चिकित्सा कर्त्तव्यहै। जैसे कफके क्षीणहोनेसे बलवानसे विग्रहादि करनेपर यदि वातका रूक्षभाग कुपित होवे तो स्निग्ध एकही भाग उस वातके विरोधीकरके चिकित्सा कर्तव्यहै। यदि रूक्षशीत दोभाग कुपित होवे तो उसके विपरीत रूक्ष और उष्ण दो भागोंकरके चिकित्साकरे। इसीप्रकार सर्वभागोंसे जानना।

---

१ दोषसंचयका हरण करना कुछ कठिन नहीं है परंतु फिरभी हम देखते हैं तो वैद्य यह नहीं विचारते कि, इस रोगीके देहमें अल्पसंचय है. वा मध्य अथवा अत्यंत है सबको लंघन और गरमजल पीना बताते हैं और हकीमलोग तथा डॉक्टर सबको जुल्लाब और भोजन बताय देतेहैं. परंतु यह नहीं जानते कि, अत्यंतसंचयमें जुल्लाबआदि शोधन देना और मध्यमसंचयमें लंघनादिकराने और अल्पदोषसंचयमें पाचनादि औषध देनी रोगीका भाग्य, उनको तो अपने पैसे लेनेसे प्रयोजन, है परंतु उनको यह महान् अधर्म है.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

[संसर्गे] इस कहनेसे दोषद्वयका संयोग जानना । इसको इसप्रकार समझना कि, जब कुद्धदोष कुपितदोषके प्रति जाताहै तब संसर्ग होताहै । वह संसर्ग दोप्रकारकाहै, पहला प्रकृतिसमवेत दूसरा विकृतिविषमसमवेत कहाताहै ।

जिससमय वातपित्तका संसर्ग होताहै उससमय शोषणात्मक स्वभावसदृश पित्तकरके वायु समवेतसमहै इसीसे प्रकृतिसमवेत संसर्ग कहातीहैं । और जिससमय पित्तकफका संयोग होताहै उससमय पित्त उष्ण शीतलकफकरके युक्त होताहै वह कफ उष्णपित्तके स्वभावसे विपरीतहै अतएव विपरीतसमवेतहै इसीसे विकृतिविषमसमसमवेत कहाताहै । इसश्लोकका संप्राप्तिरूपनिदानमें अधिक काम पडताहै ।

संसर्गसन्निपातकी चिकित्सा ।

संसर्गेयोगरीयान्स्यादुपक्रम्यस्तवैभवेत् ।
शेषदोषविरोधेनसन्निपातेतथैवच ॥

अर्थ--संसर्गमें जो दोष बली होवे उसकी चिकित्सा कर्तव्य है । परंतु इसप्रकार चिकित्सा करे कि जैसे अन्यदोष कुपित न होवे । और इसीप्रकार सन्निपातमेंभी चिकित्सा कर्त्तव्यहै । कदाचित् ऐसा कहोगे तो " शमयेत्पित्तमेवादौज्वरेषु समवायिषु । दुर्निवारतमन्तद्धिज्वरार्त्तेषु विशेषतः ॥ " अर्थात् समवायीज्वरोंमें प्रथम पित्तका शमन कर्त्तव्यहै । क्योंकि पित्तही दुर्निवारहै । और ज्वरार्त्तमें तो विशेष ध्यान देना चाहिये तथा और जगेभी लिखाहै कि, "समवायेहि दोषाणां पूर्वंपित्तमुपाचरेत् । ज्वरेचैवातिसारेच सर्वत्रान्यत्रमारुतमिति " अर्थात् दोषोंके समूहमें प्रथम पित्तकी चिकित्सा करे ज्वरमें तथा अतिसारआदि सर्वरोगमें यह विधि है परंतु वातमें नहीं है अर्थात् वातके रोगमें प्रथम वातकी चिकित्सा कर्त्तव्यहै । यह बात कैसे सिद्ध होगी ? इस बातको कहतेहैं कि, यह जो नियम कराहै सो समसन्निपातमें जानना अन्यत्र यह नियम नहींहै । अर्थात् विषमसन्निपातमें जो दोष प्रबल होवे उसीका पूर्व यत्न करना चाहिये ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे पंचविंशतितमस्तरंगः २५

अथातऋतुचर्याध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ--अब ऋतुचर्याध्यायकी व्याख्या करेंगे--ऋतुऋतुका आचरण जिसमें

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उसको ऋतुचर्या कहतेहैं, कोई आचारी चरधातुको गति और भक्षण अर्थ होनेसे उसका यह अर्थ करतेहैं कि, ऋतुओंकी चर्याकहिये आहार विहारकी व्याख्या करतेहैं। इसजगे ऋतुचर्याध्याय कहनेसे यह संबंध है कि, पिछाडी दोषवर्णनीयाध्यायमें यह कहआएहैं कि, इन दोषोंके संचय होनेका कारण आगे कहेंगे, अतएव अब ऋतुचर्याध्यायका वर्णन करतेहैं।

प्रथमकालका वर्णन।

कालोहिनामभगवान् स्वयंभूरनादिमध्यनिधनोऽत्ररसव्यापत्सम्पत्तीजीवितमरणे च मनुष्याणामायत्तेससूक्ष्ममपिकलांनलीयत इतिकालः संकलयति कालयतिवाभूतानीतिकालः।

अर्थ–तहां जिसके अंगभूत छःओं ऋतु हैं, उसकालको प्रथम स्वगुणकर्म निरुक्ति करके दिखातेहैं। जैसे कि--कालनामसे प्रसिद्ध भगवान् स्वयंभू (स्वयंहोनेवाला) और आदि, मध्य, अंत, करके रहित है। इसप्रकार स्वधर्मकरके कालको कहकर कर्म करके चिकित्सोपयोगता कहतेहैं कि, मधुरादिरसोंका द्रव्योंमें न होना और होना, तथा मनुष्योंका जीवन, मरण इसीकालके आधीन है यह काल आपने सूक्ष्मभागकोभी लीन नहीं करता, क्योंकि गतिमान् है अथवा सर्वप्राणीमात्रका संहार कर एक राशी करता है इसीसे इसको काल कहतेहैं। अथवा प्राणियोंको सुखदुःखकरके योजना करताहै इसीसे इसको काल कहतेहैं। अथवा संपूर्णप्राणिमात्रको मृत्युके समीप प्राप्तकरे इसीसे इसको काल कहतेहैं।

शिष्य–एककालसे जीवन मरण और व्यापत् संपत्ति कैसे होतीहै? क्योंकि जीवनमरण परस्पर विरुद्ध है एकही अग्निसे शीत और उष्णता नहीं होसकती। अथवा एक दीपकसे प्रकाश और अंधकारभी नहीं बनसकते।

गुरु–तुम्हारा कहना ठीकहै परंतु कालशब्दकरके इसजगे कालत्वोपाधि शीतादिभेदभिन्नशिशिरादि ऋतु जाननी। उसको उत्तम मिथ्याकरके अन्योन्यविरुद्धकार्य होना संभव होसकताहै, इसीसे जीवितमरण कालके आधीन जो कहा यह निर्दोष है।

तस्यसंवत्सरात्मनोभगवानादित्योगतिविशेषेणाक्षिनिमेषकाष्ठाकलामुहूर्त्ताहोरात्रपक्षमासर्त्वयनसंवत्सरयुगप्रविभागं करोति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–उस संवत्सरस्वरूप कालके भगवान् आदित्य अपनी गतिविशेषकर-के अक्षिनिमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, अहोरात्रि, पक्षि,मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, और युगादि प्रविभाग अर्थात् टुकडे करेहैं। इसजगे सूर्यका तो उपलक्षण मात्र है किंतु चंद्रमाभी उदयास्तादि होनेसे कालके पृथक् पृथक् विभाग करताहै ।

संवत्सरनिमेषादिकोंको कहतेहैं ।

तत्र लघ्वक्षरोच्चारणमात्रोऽक्षिनिमेषः । पञ्चदशाक्षिनिमे-षाःकाष्ठा । त्रिंशत्काष्ठाःकला । विंशतिकलोमुहूर्त्तःकला-दशभागश्च । त्रिंशन्मुहूर्त्तमहोरात्रम् । पञ्चदशाहोरात्राणिप-क्षः । सचद्विविधःशुक्लःकृष्णश्च । तौमासः ॥

अर्थ–तहां जितने समयमें लघु अक्षरका उच्चारणहोवे उस समयको अक्षि-निमेष वा निमेष कहतेहैं । १५ अक्षिनिमेषकी १ काष्ठा होतीहै,[परंतु कोई १८ निमेषकी काष्ठा कहताहै] ३० काष्ठाकी १ कला होतीहै, [१॥ काष्ठा-की १ विपल होतीहै और २० विपलकी १ कला होतीहै] २० कला और कलाके वीसवे भागका अर्थात् २० $\frac{1}{2}$ का मुहूर्त्त होताहै, [३ कलाका १ पल और १० पलोंका १ क्षण होताहै] ३० मुहूर्त्तका १ अहोरात्रि अर्थात् दिनरात्रि होताहै, [६ क्षणकी १ घडी और दोघडीका १ मुहूर्त्त और ३० मुहूर्त्तका एक अहोरात्रि] १५ अहोरात्रका १ पक्ष, सो दोप्रकारका है। एकशुक्ल और दूसरा कृष्णपक्ष [अहोरात्रिका आठवाँ भाग १ प्रहर होताहै। और तीस अहोरात्रिका १ मास (महीना) होताहै[9] ।]

ऋतुकथन ।

तत्र माघादयोद्वादशमासा द्विमासकमृतुंकृत्वाषड्-ऋतवोभवन्तितेशिशिरवसन्तग्रीष्मवर्षाशरद्धेमन्ताः ।

---

१ कालोवैभगवान् साक्षात्स्वयंभूर्नवयौवने । आदिमध्यान्तरहितः सचसूक्ष्मो महानपि १ सूक्ष्मः कालो निमेषादिः कल्पादिश्चमहानिति । कथितोमुनिभिः कांते तत्त्वज्ञैः सूक्ष्मबुद्धिभिः २ लघ्वक्षरसमुच्चारं कालंप्रा-हुर्निमेषकम् । अष्टादशनिमेषैस्तु काष्ठास्यान्नवयौवने. ३ सार्द्धैकयातयाकांते विपलंपरिकीर्त्तितम् । कला-निधिमुखि प्रोक्ता कलाविंशतिकैश्चतैः ४ तिसृभिश्चकलाभिश्चपलमेकं भवेत्प्रिये । तथैवमृगशावाक्षि पलानांद-शभिः क्षणः ५ क्षणैः षड्भिर्घटीमाहुः प्रियेताभ्यां मुहूर्त्तकम् । अहोरात्रंचतैस्त्रिंशन्मितैरंबुजलोचने ६ अहोरा-त्राष्टमोभावः प्रहरः परिकीर्त्तितः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–तहां माघसे आदिले बारहमहिनोंसे दो दो महिनोंकी ऋतुकरके छः ऋतु होतेहै । वो शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, और हेमंत जानने ।

ऋतुओंके पृथक् पृथक् विभाग ।

तेषांतपस्तपस्यौशिशिरः-मधुमाधवौवसन्तः-शुचिशुक्रौग्रीष्मः-नभोनभस्यौवर्षा-इषोर्जौशरत्-सहसहस्यौहेमन्तःइति ।

अर्थ–तिनमें माघ फाल्गुन यह शिशिरऋतुहै, चैत्र वैशाख वसंत, ज्यष्ठ आषाढ ग्रीष्म, श्रावण भाद्रपद ये वर्षा, आश्विन कार्त्तिक शरद, और मार्गशिर तथा पौष ये दो महिने हेमंतऋतु कहातेहैं । कोई आचार्य कहते हैं कि, यह ऋतुव्यवहार गंगाके उत्तरके देशोंमेंही है । क्योंकि जैसे चेरापूजी जो आसामके मुल्कमेंहै उसजगे आठ आठ महिने पर्यंत वर्षा होतीहै, और इतनी वर्षा होतीहै कि, ऐसी अन्य किसी मुल्कमें न होतीहोगी । उसी प्रकार उत्तरखंडमें बर्फानदेशमें सदैव शरदी पडतीहै, उसी प्रकार आफ्रिकाके मुल्कमें तथा हवसके मुल्कमें अत्यंत गरमी पडतीहै इसकारण यह ऋतुव्यवहार प्रायः गंगाके उत्तरके देशोंमें अधिक है । परंतु गयदास आचारीने इसबातका अत्यंत खंडन कराहै ।

तएतेशीतोष्णवर्षलक्षणाश्चन्द्रादित्ययोःकालविभागकरत्वादयनेद्वेभवतोदक्षिणमुत्तरञ्च ।

अर्थ–तहां ये ऋतु शरदी, गरमी, और वर्षाके लक्षणोंकरके जानीजाती है, [इनमें वायुकरके शरदी, सूर्यकरके गरमी, और चंद्रमाकरके वर्षा होती है, कोई और वर्षा दोनों चंद्रकरके होतीहै ऐसा कहतेहैं] इनउक्तशीतोष्णवर्षालक्षणऋतुओंसे चंद्र और सूर्यके कालविभाग करनेसे दो अयन होतेहैं एक उत्तरायण दूसरा दक्षिणायन ।

तयोर्दक्षिणंवर्षाशरद्धेमन्तास्तेषु भगवानाप्यायतेसोमोऽम्ललवणमधुराश्चरसाबलवन्तोभवन्त्युत्तरोत्तरञ्चसर्वप्राणिनांबलमभिवर्द्धते ।

अर्थ–उन दोनों अयनोंमें वर्षाशरद और हेमन्त इन तीन ऋतुका दक्षिणायन होताहै, इसमें भगवान् चन्द्रमाका बल क्रमसे बढताहै, तथा अम्ल (खट्टा) लवण, और मधुर ये तीनों रस क्रमपूर्वक बली होतेहैं । तथा संपूर्ण प्राणियोंका

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बल उत्तरोत्तर बढताहै[1] इन तीनों ऋतुओंको विसर्गकाल कहतेहैं । यह चरकमें लिखाहै । इस ऋतुको सौम्यहोनेसे चंद्र बली होताहै क्योंकि तदाश्रित रात्रियोंको बडी होनेसे, और सूर्य क्षीण होताहै क्योंकि तदाश्रित दिन घटतेहैं, इसकालमें मेघोंकी वर्षा, पवन और शीतलताके प्रभावसे पृथ्वीका ताप शांत होजाताहै । अथवा शीतल कहना तो उपलक्षण मात्र है किंतु यह विसर्गकाल मृदु और स्निग्ध होनेसे पृथ्वी शांति होतीहै ।

उत्तरश्चशिशिरवसन्तग्रीष्मास्तेषुभगवानाप्यायतेऽर्कस्तिक्त-कषायकटुकाश्चरसाबलवन्तोभवन्त्युत्तरोत्तरञ्चसर्वप्राणिनांबलमपहीयते ।

अर्थ–शिशिर, वसन्त, और ग्रीष्म इन तीन ऋतुका उत्तरायण होताहै, इन ऋतुओंमें भगवान् सूर्यका बल क्रमसे बढताहै, तथा तिक्त, कषाय और कटुरस बली होतेहैं । और संपूर्ण प्राणियोंका बल क्रमसे घटताहै। इस उत्तरायणको आदानकाल कहतेहैं और वाग्भट लिखताहै कि, इस आदानकालमें सूर्य उत्तरगोलार्द्धावलंबी होनेसे सूर्य और पवन अत्यंत तीक्ष्ण, उष्ण, और रूखे होकर पृथ्वीके सौम्य (शीतल) गुणोंको नाश करतेहैं । इसीसे आदानकाल आग्नेय जानना ।

शीतेष्वंवृष्टिघर्मेऽल्पंबलंमध्यन्तुशेषयोः ।

अर्थ–हेमंत शिशिर ऋतुमें मनुष्योंमें उत्तमबल होताहै । और वर्षाग्रीष्मकालमें अल्पबल होताहै बाकी शरद और वसंत ऋतुमें मध्यमबल रहताहै. [उत्तरायणसे दक्षिणायनकाल श्रेष्ठ है क्योंकि उत्तरायण ऋतु बलनाशक है और दक्षिणायन बलकारी है ।]

शीतांशुःक्लेदयत्युर्वींविवस्वाञ्शोषयत्यपि ।
तावुभावपिसंश्रित्यवायुःपालयतिप्रजाः ।

---

१ उत्तरोत्तरकहनेका यह प्रयोजनहै कि, दक्षिणायनमें चंद्रमाका और मनुष्योंका बल क्रमसे बढताहै जैसे वर्षाऋतुकी अपेक्षा शरदृतुमें और शरदृतुकी अपेक्षा हेमंतऋतुमें बल विशेष बढताहै तथा वर्षाऋतुमें अम्लरसका शरदऋतुमें लवणरसका और हेमंतऋतुमें मिष्टरसका बल बढताहै इसीप्रकार उत्तरायणमें सूर्यका क्रमसे बल बढताहै और मनुष्योंका बल क्षीण होताजाताहै जैसे शिशिरकी अपेक्षा वसंतमें और वसंतकी अपेक्षा ग्रीष्मऋतुमें सूर्यका बल बढताहै और मनुष्योंके बलका ह्रास होताहै क्योंकि जैसे जैसे सूर्यका तेज प्रबल होताजाताहै तैसेही तैसे गरमी अधिक बढतीहै जैसे जैसे गरमी बढे उसी उसी क्रमसे मनुष्य हीनबल होजातेहैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–चंद्र पृथ्वीको आर्द्र करताहै। सूर्य उसको सुखाता है। और चंद्रसूर्य दोनोंका आश्रय लेकर पवन प्रजाका पालन करता है। पवन चंद्रके आश्रयसे पुष्टता करे है, और सूर्यके आश्रयसे शुष्क करेहै, तदनंतर रसाभिनिवृत्ति होनेसे प्रजाको बढावे है।

अथखल्वयनेद्वेयुगपत्संवत्सरोभवति तेतुपंचयुगमितिसंज्ञां लभन्ते। स एषनिमेषादियुगपर्यन्तः कालश्चक्रवत्परिवर्त्तमानःकालचक्रमुच्यतइत्येके।

अर्थ–दो अयनोंका १ संवत्सर (वर्ष) होता है, और ५ वर्षका एक युग होता है। यह युगोंकी पारिभाषिकी संज्ञा है। [अन्यशास्त्रोंके मतसे ४३२००० तेतालीस लाख और बीसहजार वर्षोंका एक युग होता है। ऐसे हजारयुगोंका ब्रह्मदेवका दिवस होता है,] वास्तवसे येही सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग सत्य है, इसी निमेषादियुगपर्यंत कालको चक्रवत्परिवर्त्तमान अर्थात् चक्रके सदृश फिरनेसे कोई आचारी कालचक्र ऐसा कहते हैं।

आयुर्वेदशास्त्रकेमतसे ऋतुवर्णन।

इहतुवर्षाशरद्धेमन्तवसन्तग्रीष्मप्रावृषः षडृऋतवोभवन्तिदोषोपचयप्रकोपोपशमनिमित्तम्।

अर्थ–इस अध्यायमें दोषोंके संचय प्रकोप और उपशमके निमित्त वर्षा, शरद, हेमन्त, वसन्त, ग्रीष्म, प्रावृष ये छःऋतु होते हैं।

छःऋतुओंके मासपरत्वनाम।

तेतुभाद्रपदाद्येनद्विमासिकेनव्याख्याताः। तद्यथा। भाद्रपदाश्वयुजौवर्षा। कार्त्तिकमार्गशीर्षौशरत्। पौषमाघौहेमन्तः। फाल्गुनचैत्रौवसन्तः। वैशाखज्येष्ठौग्रीष्मः। आषाढश्रावणौप्रावृडिति।

अर्थ–वो छःऋतु भाद्रपदादि दोदो महिनेकरके होती है, जैसे भाद्रपद और आश्विनकी वर्षाऋतु, कार्तिक मार्गशिरकी शरद, पौषमाघकी हेमंत, फाल्गुन चैत्रकी वसंत, वैशाखज्येष्ठकी ग्रीष्म, और आषाढश्रावण महिनेकी प्रावृट् ऋतु होती है। दोषोंके चय कोप और शमन इन्हीं ऋतुओंके अनुसार होते हैं। अतएव वैद्यको उचित है कि, यदि वमनविरेचन देवे तो इन्हींऋतु-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ओंके अनुसार देवे पूर्वक्रम आयुर्वेदशास्त्रमें मंतव्य नहीं है । इस मतमें प्रावृ-ड्ऋतु कही है और शिशिरऋतुको इन्हींके अन्तर्गत मानी है ।

यथा ।

गंगायादक्षिणेदेशेवृष्टेर्बहुलभावतः । उभौमुनिभिराख्यातौ प्रावृड्वर्षाभिदावृतू । तस्याएवोत्तरेदेशेहिमप्रचुरभावतः । एतावुभौसमाख्यातौहेमन्तशिशिरावृतू ।

अर्थ--गंगाके दक्षिणदेशोंमें अत्यन्तवर्षा होनेसे मुनीश्वर प्रावृट् और वर्षा-ऋतु कहतेहैं । और गंगाके उत्तरदेशोंमें अत्यन्त शरदी पडनेसे इन्हीं दोनों ऋतुओंको हेमन्त और शिशिरऋतु कहीहै ।

अब पित्तादिदोषोंका संचय और प्रकोपोंका वर्षादि ऋतुओंमें सहेतुक होना दिखाते है ।

तत्रवर्षास्वोषधयस्तरुण्योऽल्पवीर्याआपश्चाप्रसन्नाःक्षितिम-लप्रायास्ताउपयुज्यमानानभसिमेघावृतेजलप्राक्लिन्नायांभू-मौक्लिन्नदेहानांप्राणिनांशीतवातविष्टब्धाग्नीनांविदह्यन्ते वि-दाहात्पित्तसञ्चयमापादयन्ति ससञ्चयःशरदिप्रविरलमेघेवि-यत्यपशुष्यति पङ्केऽर्ककिरणप्रविलापितःपैत्तिकान्व्याधी-ञ्जनयति ।

अर्थ--तहां वर्षाऋतुमें औषधी (गेहूं, जव, चनाआदि) तरुण और हीन-वीर्य होतीहै[1] । जल दूषित अर्थात् गदले होतेहैं । पृथ्वी मलप्राय (तृण, पर्ण, रसकषायादि मलबहुल) अर्थात् सर्वत्र पत्ते तिनका कीच कादोसे दूषित होती है । ऐसे दूषित औषध जल और पृथ्वीके सेवन करनेसे तथा आकाशमेघ (बद्दल) करके व्याप्तहों वर्षाके जलसे आर्द्र पृथ्वीमें आर्द्र देहवाले प्राणियोंके शीत करके कुपितवात उसकरके मंदवेग जठराग्नि होतीहै । ऐसी मंदाग्निके प्रभावसे वर्षाऋतुमें भोजन करेहुए अन्नजल विदाहको प्राप्त होतेहैं ।

---

१ शिष्य--वर्षाऋतुमें गेहूं चना चावल आदि पुराने होते हैं. फिर आप तरुण अर्थात् अभिनव कैसे कहत हो ।

गुरु--तुम्हारा कहना ठीक है परंतु गेहूं चना चावलआदिके भीतर सूक्ष्मजल प्रवेश होनेसे नम्र हो ऊगनवाले होकर कुछ शक्ती बढकर पुराने होनेपरभी तरुण अर्थात् नए कहलाते हैं और शाकादितो नवीन सवन करनेमें आतेही हैं, और जल भी नए होनेके कारण दूषित होते हैं.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थात् अम्लपाकहोताहै, उस अम्लपाकहोनेसे पित्त इकट्ठा होताहै, अथवा स्वस्थानमें बढ़ताहै, संचीयमानभी पित्त शीतलऋतुहोनेके कारण वर्षाहीमें कुपित नहीं होता किंतु वह पित्तका संचय शरदऋतुमें क्वचित् क्वचित् मेघ रहनेसे और आकाश शुष्कहोनेसे तथा सूर्यकी किरणोंकरके पृथ्वीकी कीच शुष्कहोनेपर पित्तजनित व्याधियोंको उत्पन्न करेहैं ।

ताएवौषधयःकालपरिणामात्परिणतवीर्याबलवत्योहेमन्तेभवन्त्यापश्च प्रसन्नाः स्निग्धाअत्यर्थंगुर्व्यस्ताउपयुज्यमानामन्दकिरणत्वाद्भानोः सतुषारपवनोपस्ताम्भितदेहानांदेहिनामविदग्धाःस्नेहाच्छैत्याद्गौरवादुपलेपाच्चश्लेष्मणः सञ्चयमापादयन्ति ।

अर्थ--वेही पूर्वोक्त गेहूं चना चावल आदि औषधी हेमंतऋतुमें कालके परिपाकहोनेसे परिणतवीर्य (अर्थात् शक्तिसंपन्न) और बलवान्होतीहै, तथा जल स्वच्छ चिकने और भारी होतेहैं (पृथ्वीके मल निवृत्तहोनेसे जल स्वच्छ होतेहैं कोई ऐसाकहतेहैं.) इस हेमंतऋतुमें उक्त औषध और जलके खानेपीनेसे उससमय सूर्यकी मंदकिरण होनेसे तथा तुषार (हिम) सहितपवनकरके स्तंभितदेह जिनकी ऐसे मनुष्योंके अविदग्धअन्न, चिकने, शीतल, भारी, और उपलेपी होनेसे कफका संचय करतेहैं परंतु यह कफ इसीहेमंतऋतुमें कुपित नहीं होता ।

स सञ्चयोवसन्तेऽर्करश्मिप्रविलापित ईषत्स्तब्धदेहानां देहिनांश्लैष्मिष्कान्व्याधीञ्जनयति ।

अर्थ–वह कफका संचय वसंतऋतुमें सूर्यकी किरणोंसे पिगलकर किंचित् स्तब्धदेहवाले प्राणियोंके कफकी व्याधियोंको प्रगट करेहैं ।

ताएवौषधयोनिदाघेनिस्साराःरूक्षाअतिमात्रंलघ्व्योभवन्त्यापश्चताउपयुज्यमानाःसूर्यप्रतापोपशोषितदेहानांदेहिनांरौक्ष्याल्लघुत्वाद्वैशद्याच्चवायोःसञ्चयमापादयन्ति ।

अर्थ–वोही पूर्वोक्त गेहूं चावल आदि औषधि ग्रीष्मऋतुमें निस्सार (दुर्बलवीर्य) रूक्ष और अत्यंत हलके होतेहैं।तथा जलभी निस्सार रूक्ष और हलके होतेहैं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऐसे औषध और जलके खानेपीनेसे उसकालमें सूर्यप्रताप करके उपशोषित देह जिन्होंकी ऐसे प्राणियोंके रूक्ष, लघु, और विशद गुणप्राबल्य होनेके कारण वायुका संचय होता है ।

यद्यपि शीतलवायुका उष्ण (ग्रीष्मसमयमें) संचय नहीं होना चाहिये परंतु संपूर्ण वातके गुणोंमें रौक्ष्यगुण प्रधानहै अतएव औषधियोंको अत्यन्त रूक्ष होनेसे रूक्षवायुका ग्रीष्मऋतुमेंभी संचय होताहै ।

स सञ्चयःप्रावृषिचात्यर्थजलोपक्लिन्नायां भूमौक्लिन्नदेहानांप्राणिनांशीतवातवर्षैरितोवातिकान्व्याधीञ्जनयति । एवमेषदोषाणांसंचयप्रकोपहेतुरुक्तः ।

अर्थ–यह वातका संचय प्रावृषिऋतुमें अत्यन्त जलसे आर्द्र देहवाले पुरुषोंके शीतवात और वर्षाका प्रेरित वातके रोग प्रगट करेहैं ।

इसप्रकार यह दोषोंका संचय और कोपका हेतु कहा है ।

प्रकोपमें यथाअवसर संशोधनकरना यह कहतेहैं ।

तत्रवर्षाहेमंतग्रीष्मेषुसञ्चितानांदोषाणांशरद्वसन्तप्रावृट्सु चप्रकुपितानांनिर्हरणं कर्त्तव्यम् ।

अर्थ–तहां वर्षा हेमंत और ग्रीष्मऋतुओंमें संचितहुए दोष शरदादि ऋतुओंमें कुपित होतेहैं, अतएव उन्होंका शरद्, वसंत, और प्रावृट्ऋतुमें वमनविरेचनद्वारा निर्हरण (शोधन) करना चाहिये ।

तत्रपैत्तिकानांव्याधीनामुपशमोहेमन्ते श्लैष्मिकाणांनिदाघे वातिकानांघनात्यये स्वभावत एव । त एते सञ्चयप्रकोपोपशमाव्याख्याताः ॥

अर्थ–पैत्तिकव्याधियोंकी शांति हेमंतऋतुमें । कफजनितरोगोंकी शांति ग्रीष्मऋतुमें । और वातजनितरोगोंकी शांति शरदऋतुमें स्वयंही होजाती है । यह संचय प्रकोप और उपशम कहे हैं ।

छःओं ऋतुओंका एक दिनमें परिवर्त्तन ।

तत्रपूर्वाह्णेवसन्तस्यलिङ्गं-मध्याह्नेग्रीष्मस्य- अपराह्णेप्रावृषः-प्रदोषेवार्षिकं-शारदमर्द्धरात्रे-प्रत्युषसिहेमन्तमुपलक्षयेत् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एवमहोरात्रमपिवर्षामिवशीतोष्णवर्षलक्षणंदोषोपचयप्रकोपोपशमैर्जानीयात् ॥

अर्थ-अब दिनरात्रिमें छःओं ऋतु वर्त्ततीहै,यह कहते हैं तहां दिनके पूर्वाह्नमें वसंतके लक्षण होतेहैं, मध्याह्नमें ग्रीष्मऋतुके, अपराह्न अर्थात् दिनके अंत्यभागमें प्रावृट्ऋतुके, प्रदोषमें वर्षाके अर्धरात्रिमें शरदऋतुके, और प्रत्यूष (चारघडीके तडके) हेमन्तऋतुके चिह्न होतेहैं, इसप्रकार अहोरात्र (दिनरात्रि) मेंभी वर्षके समान शीत उष्ण वर्षाके लक्षण दोषोंके संचय प्रकोप और शमनकरके जानने चाहिये ।

अव्यापन्नऋतुओंके गुण ।

तत्राव्यापन्नेष्वृतुष्वव्यापन्नाओषधयोभवन्त्यापश्चताउपयुज्यमानाःप्राणायुर्बलवीर्यौजस्कर्योभवन्ति ।तेषांव्यापदोऽदृष्टकारिता ।

अर्थ-तहां अदूषितऋतुओंमें दोषरहित औषधी (गेहूं चावलआदि) और जल होतेहैं । ऐसे अन्नजलके सेवन करनेसे प्राण, आयु, बल, वीर्य और ओजको वृद्धि कर्त्ता होताहै । उन ऋतुओंका दूषित होना अर्थात् शीत, उष्ण, वायु, वर्षाका विपरीत होना अदृष्टकारितहै । अर्थात् संपूर्ण मनुष्योंके अधर्मसे होताहै ऐसा जानना, कोई अदृष्टकरके ईश्वरका ग्रहण करतेहैं अर्थात् ईश्वरकी इच्छासे होतीहै ।

व्यापन्नऋतुओंको अवगुण ।

शीतवातवर्षाणिखलुविपरीतान्योषधीर्व्यापादयन्त्यापश्चतासामुपयोगाद्विविधरोगप्रादुर्भावोमरकोवाभवेदिति ।

अर्थ-शरदी, गर्मी और वर्षाके विपरीत होनेसे अर्थात् हीन मिथ्या अतियुक्त होनेसे औषधी और जल दूषित होतेहैं उन औषधी और जलके सेवन करनेसे अनेकप्रकारके रोग और महामारी आदि उत्पन्न होतेहै ।

माणान्तरम् ।

तत्रशीतोष्णवर्षाणांहीनमिथ्याधिकेनच । जलानामौषधादीनांविपरीतोगुणोभवेत् ॥ १ ॥ तस्योपरोधाद्विविधरोगाणांचाशुसम्भवः । तस्माद्वैद्यैर्बुद्धिमद्भिःसम्यगृतुषुसं-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ग्रहम् ॥ २ ॥ अपांवाह्यौषधीनां च कारयेच्चप्रयोजयेत् । अनुत्पत्तौयतंतेयेतेवैद्यास्तेचमंत्रिणः ॥ ३ ॥ विपाकंकोवि-जानातिगदानांविपदामपि ।

अर्थ–तहां शीत, उष्ण और वर्षाके हीन मिथ्या और अधिक होनेसे जल और औषधादिकोंमें विपरीत गुण होतेहैं । अर्थात् जो गुणकारी औषधी होती है वो अवगुणकारी होजातीहै, उन औषधादिके सेवनसे अनेक प्रकारके रोगोंकी तत्काल उत्पत्ति होती है । अतएव वैद्यको उचितहै कि, उत्तम ऋतुओंमें जल और बाहरकी औषधियोंका संग्रहकरलेना चाहिये । जो रोग और विपत्ति आनेके पूर्वही यत्न करतेहैं वोही वैद्य और मंत्री कहातेहैं क्योंकि रोग और विपत्ति आनेके समयको कौन जानताहै । अर्थात् वैद्यको तो उचित है कि जिसवर्षमें उत्तमऋतु होवे उसी समयमें सब औषधोंका और जलका संग्रहकर रक्खे और राजाके मंत्रीको उचित है कि, जबतक कोई शत्रु प्रगट नहो उस्से पूर्वही सेनाआदिका प्रबंध अच्छीरीतिसे करे।

दूषितऋतुओंकी चिकित्सा ।

तत्राव्यापन्नानामोषधीनामपाञ्चोपयोगः ॥

अर्थ–दूषितऋतुओंमें शुद्धअन्न जलका सेवन करना चाहिये । चकारसे पवनका ग्रहणहै अर्थात् दुष्टऋतुमें शुद्धपवनका अवश्य सेवन करना चाहिये ।

कदाचिदव्यापन्नेष्वप्यृतुषु कृत्याभिशापरक्षःक्रोधाधर्मैरुपद्रव-स्यन्तेजनपदाः ।

अर्थ–कभी कभी उत्तम ऋतुओंमेंभी कृत्या (मंत्रसे उत्पन्नराक्षसीविशेष) अभिशाप (गुरू, मातापिता, ब्राह्मण सिद्ध आदिके शापसे) राक्षसोंके क्रोध और अधर्म इन करके लोक पीडित होतेहैं ।

विषौषधीपुष्पगन्धेनवायुनोपनीतेनाक्रम्यतेयोदेशस्तत्रदोष-प्रकृत्यविशेषेण कासश्वासवमथुप्रतिश्यायशिरोरुग्ज्वरैरुप-तप्यन्ते ग्रहनक्षत्रचरितैर्वा गृहदारशयनासनयानवाहनम-णिरत्नोपकरणगर्हितलक्षणनिमित्तप्रादुर्भावैर्वा ।

अर्थ–जिस देशमें विषैल औषधकी पुष्पगन्धको पवन लेजायकर प्राप्त करती है उस जगे दोषप्रकृतिके विनाभी लोक खांसी, श्वास, वमन, मस्तक-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पीडा, और ज्वरसे तपायमान होतेहैं । कोई आचार्य "कासश्वासप्रतिश्याय-गन्धाज्ञानभ्रमशिरोरुग्ज्वरमसूरिकाभिरुपतप्यंते" ऐसा पाठ लिखकर व्याख्या करते हैं कि,श्वास लेनेसे जो नाकके छिद्रद्वारा विषैल पवन जातीहै उस्से खांसी श्वास प्रतिश्याय (सरेकमा) गंधका ज्ञान न होना, भ्रम, और मस्तकपीडा आदि रोग होते हैं । और वही विषैल पवन त्वचामें लगनेसे ज्वर, शीतलआदिके रोग होते है । तथा शनैश्चरादि दुष्ट ग्रहोंको दुष्टस्थानमें स्थित होनेसें और अश्विन्यादि नक्षत्रोके उल्कापातादि चरित्रसें जन्मनक्षत्रादि विद्ध होनेसे । तथा घर, स्त्री, शय्या, सिंहासन वा चोकीमूढाआदि यान (रथ वग्घी घोडा हाथी पालकी नालकी पित्रसआदि) मणि (स्फटिकादि) रत्न (हीरा पन्ना माणिक आदि) उपकरण (कलस, घडा, पीढा, सूप थाली आदि) इन सबके दुष्ट लक्षणरूप कारणकरके उत्पत्ति जिन्होंकी ऐसी व्याधियों करके लोक पीडित होते हैं ।

प्रमाणान्तर ।

कालोदेशोजलोवायुश्चैतेदुष्टाविलक्षणाः । कुर्यर्जुनपदध्वंसमेकरूपेणयक्ष्मणा ॥ कोर्थःसर्वेषांशीतज्वरादिरूपेणेत्यर्थः । राजाधर्मंपरित्यज्ययदाधर्मंप्रवर्त्तयेत् । अधर्मंमनुवर्त्ततेतद्देशपुरवासिनः ॥ उत्क्रान्तधर्ममर्यादांप्रजांवायद्युपेक्षते । सराजंतंजनपदंसंत्यजन्तीहदेवताः । उत्क्रान्तधर्ममर्यादां तांप्रजांत्यक्तजीविताम् । विध्वंसयंतिविकृताःकालदेशांबुमारुताः ॥

अर्थ–काल, देश, जल और वायु ये विलक्षणतासे दुष्टहो लोकोंको एकरूप यक्ष्माकरके अर्थात् शीतज्वरादिरूपकरके पीडितकरतेहैं । जिससमय राजा धर्मको त्यागके अधर्मको प्रवृत्त करताहै । उससमय उसके देश और पुरवासी प्रजा धर्ममर्यादाको उल्लंघन करतीहै, जब इसप्रकार राजा और प्रजा दोनों अधर्मी होजातेहैं, तब उस राज और जनपदोंको देवता त्याग देतेहैं, अर्थात् ग्रामदेव, और कुलदेव त्याग देतेहैं, उस समय उन अधर्मीप्रजाओंको काल, देश, जल, और पवन विध्वंस करतेहैं ।

कालकी दुष्टि ।

ग्रहनक्षत्रसंस्थानप्रमाणजनवैकृतौ । तयोरधर्मात्संप्राप्तेकालो व्यापद्यतेध्रुवम् ॥ कालःसंवत्सरःशीतोघर्मवर्षश्चलक्षणम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सहीनातिविपर्य्यस्तस्वलिंगोदुष्टउच्यते ॥ शीतेतिवाततापशीतमथवास्याविपर्ययः । तथाचोष्णेचवर्षेच कालव्यापदिलक्षणम् ॥

अर्थ–अधर्मसे ग्रह, नक्षत्रोंके स्थान प्रमाण और जनोंकी विकृती होनेसे काल दूषित होताहै, वह संवत्सरात्मककाल शरदी, गरमी और वर्षालक्षणात्मक होताहै फिर वह काल अपने लक्षणोंसे हीन, अत्यंत और विपरीत होनेसे दुष्ट कहलाताहै, शीतकालमें अत्यंत पवन वा अत्यंत शीत अथवा शरदीमें गरमीकाहोना दुष्टता कहातीहै इसी प्रकार गरमी और वर्षाऋतुके दुष्टलक्षण जानने ।

देशदुष्टके लक्षण ।

प्रकृत्याविकृतस्पर्शगंधवर्णरसाश्रयः । तृणोलुपलतागुल्मजालव्रततिसंकुलः॥मक्षिकादंशमशककृमिकीटाद्युपद्रुतः । शुकाखुशलभोलूकश्वमशानिकमृगद्विजैः ॥ पीडितोवातनिर्घातकंपोल्काशनिवृष्टिभिः।निःश्रीकपुष्पोपवनोनष्टसस्यौषधीफलः ॥ संशुष्कोदीर्घसंक्षुब्धघोरस्वनजलाशयः । नीलिकादिभिराच्छन्नोवाप्यादीनांवचोद्गमः॥ घोरनादाकृमिर्वायुर्मेघच्छन्ननभस्तलः । अकालपुष्पफलवान्गर्भाद्भुतदर्शनः॥ निस्तन्यइवनिःश्रीकस्तपोद्भ्रांतमृगद्विजः । अजस्रसंभ्रमाद्भ्रान्तउत्कृष्टश्वगणोभृशम् ॥ भैरवाद्भुतसंत्रासीरुदितानिष्टनिस्वनः । द्विपादीनांवचोत्पत्तिरश्वादीनांद्विधालकाः ॥ प्रासादानांप्रपातश्चअकस्माच्चैवजायते । त्रासश्चगोवृषादीनामश्वानांचपलायनम् ॥ भवेद्धर्मार्जवादीनांनाशःसत्यौजसांतथा । उत्पातैस्तद्विधैश्चान्यैःप्रदुष्टोदेशउच्यते ।

अर्थ–जिससमय गंध वर्ण, रसाश्रयवस्तुओंका प्रकृतिकरके विपरीतस्पर्श हो (अर्थात् सुगंधवस्तुओंमें दुर्गंध और दुर्गंधवालीवस्तुओंमें सुगंधी आवे, उत्तमरंग दुष्ट और दुष्ट रंग उत्तम प्रतीत होवे, उसी प्रकार कटु कषेले रस मिष्ट और मिष्टरस कटु प्रतीत हो) तृण, उलूप (लताका भेद) लता,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गुल्म (जवासे आदि) जाल, और वेल इनसे जो व्याप्त हो, तथा मक्खी, डास, मच्छर, कृमि, कीट, आदिसे उपद्रवयुक्त हो, तोता, मूसे, टीडी, घूघू, तथा श्मशानमें रहनेवाले मृग (स्यारिया विज्जू भिटहा, जरखआदि) और पक्षी (गीध, कंक, कुई, वाझ, शिकरा, चील काकआदि) इनकरके पीडित तथा पवन (आंधी भभूरा आदि) भूचाल, उल्का, अशनि (वज्रपात) और वर्षा इन करके पीडित, तथा शोभारहित पुष्प जिन्होंमें ऐसे उपवन वागवगीचे नष्टसस्य (दूब) औषधी (गेहूं चना चावल आदि) और वृक्ष फलहीन हो, सूखे और अत्यंत क्षुभित तथा घोर शब्द करनेवाले और नीलिका आदि (शिवारआदि) से आच्छादित जलाशय होते हैं । बावडी, कूआ, आदिका गूंजना घोर शब्दके करनेवाली और कृमिसंयुक्त पवन होवे, आकाश नित्यप्रति बादलोंसे ढका रहे, कुसमय वृक्षोंमें फलफूलोंका प्रकट होना (अर्थात् जो वृक्ष शरदीमें फले फूले वो गरमीमें फलफूलयुक्त होने लगे और जो चातुर्मास्यमें फलने फूलनेवाले हैं वो शर्दीगर्मीमें फलफूल देने लगे) गर्भोंसे अद्भुत बालक प्रगट हो (अर्थात् नेत्र खुले, हँसते हुए, दांतयुक्त, दो मूडके, छः उंगलीके दो जुडे हुए, विना मस्तकके, तथा मनुष्यके बकरी घोडा, सर्पके तुल्य बालक प्रगट हो, घोडेके गधेकासा, गधेके घोडेकासा, वा बकरीकासा बच्चा होना इत्यादि औरभी जानने) दूधरहित और शोभारहित अत्यंत गर्मीसे पीडित पशु (गौ, भैंस, मृग, ससे, व्याघ्रादि) और पक्षी, हो, तथा पक्षी और पशुओंके झुंड निरंतर संभ्रमसे भ्रांत हो घोर और अद्भुत त्रासयुक्त रुदन करे और अशुभ वाणी बोले हाथीआदि पशुओंका बोलना, और घोडोंआदिको द्विधालक होना अकस्मात् पक्के और दृढ मकानका गिर पडना, गौ बैल आदिको त्रासका होना तथा घोडा हाथी आदि अपने स्थानको त्यागकर भागना तथा धर्म, नम्रता, आदिका और सत्य तथा ओजका नाश होना, उसीप्रकारके अन्य उत्पात होनेसे दुष्ट देश कहता है। अर्थात् जिस देशमें ऐसे उत्पातहोने लगे तब जान लेवे कि अब यह देश दुष्ट हो गया ।

दुष्टजलके लक्षण ।

स्वभावविरसस्पर्शगन्धवर्णरसोदितम् । आगंतुभिःकृमिक्लेदपैच्छिल्यैश्चाप्युपद्रुतम् । परित्यक्तंजलचरैरकस्माद्वापिसेवितम् । पातस्तटद्रुमानां च क्षीयमाणंजलाशयम् । अनारोग्यकरं चाम्बुप्राणिनां दुष्टमुच्यते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–जो जलके रस, स्पर्श, गंध, और वर्ण कहे हैं वो स्वभावसे हीन होवे, (अर्थात् स्वाद खारी हो दुष्टस्पर्श कहिये जिसके शरीरमें स्पर्श होतेही खुजली चल उठे, चकत्ते पडजावे, दुर्गंध आतीहो और दीखनेमें बुरा मालुम हो) तथा गिरकर कोई पशुपक्षी मरगया हो कीडे पडगये हो, पत्ते, तिनका-मिट्टी, पत्थरसे अट रहा हो, गाढा हो वा ऊपर मलाईसी जम रही हो, इत्यादि उपद्रवयुक्त हो, और जिसको जलचर (चकवा चकवी, सारस, जल मुरगा, बतक, और कछुआ, मेडक आदि) त्यागगए हो अथवा जिसमें कोई जलचर नहीं रहताथा उसमें अकस्मात् रहने लगे (मच्छी मरजावे) तटके वृक्ष गिरपडे वा जलाशय शुष्क होगया हो ऐसा मनुष्योंको रोगका करनेवाला दुष्टजल कहाता है ।

दुष्टपवनके लक्षण ।

वित्रासकःकुण्डलिकश्चण्डघोरजवस्वनः । अतिशीतोष्णरूक्षोतिपरुषोऽतिबलःखरः । असात्म्यगंधासिकतापांशुधूमरजोवहः । अथर्त्तुविपरीतश्चप्रदुष्टोवायुरुच्यते ।

अर्थ–जो पवन त्रासदायक, भभूरेके रूपमें, प्रचंड घोरवेग और शब्दवाला, अत्यंत शीतल, अतिउष्ण, अतिरूक्ष, अतिकठोर, अत्यंत बलवान् और खर, दुष्टगंध, रेत, और धूल, तथा धूआँ आदिको बहनेवाला और ऋतुविपरीत पवन दुष्टकहाताहै ।

ऋतुकालप्रदेशेनवायुर्मुह्यतिवायुना।सलिलंसलिलेनोर्वीतैःसर्वैश्चोद्भिदोगणः।कालदेशाम्बुमरुतांदुष्टानांधर्मसंक्षये।एषांदुःपरिहार्यत्वात्पूर्वःपूर्वोभवेद्बली । अकालमृत्युतस्तस्मात्संरक्षेज्जीवितंबुधः । रसवीर्यविहीनानामौषधीनांचवर्ज्जनम् । सम्यगृतुप्रभूतानांगृहीतानां च सेवनम् । जलानामौषधीनांच व्रतचर्यांचकारयेत् ।

अर्थ–ऋतुकाल और प्रदेशकरके पवन पवनसे दूषित होताहै, और जल जलसे तथा पवनजलसे पृथ्वी दूषितहोतीहै । और ऋतु, काल, प्रदेश, पवन, जल और पृथ्वीके दूषित होनेसे उद्भिदगण (वृक्षौषधादि) दूषितहोतेहैं । इसप्रकार काल, देश, जल और पवन दूषितोंका धर्म क्षीण होनेसे ये दुःख परिहार्य अर्थात् यत्नरहितहो पूर्वपूर्वसे उत्तर उत्तर बली होतेहैं अर्थात् कालसे देश प्रबल, देशसे जल, और जलसे अधिक बली रोगकारक पवन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

होतीहै। अतएव बुद्धिमान् पुरुषको उचितहै कि, अकालमृत्युसे अपनेजीवनकी रक्षाकरे, इसप्रकार कि, रस वीर्य विहीन औषधोंका परित्याग करना और उत्तमऋतुमें होनेवाले और उत्तम ऋतुगृहीत औषध जल आदिका सेवनकरना और व्रतचर्याआदिके करनेसे देह रक्षाकरे।

अबऋतुव्यापदादिकृत रोगोंकी चिकित्सा।

तत्रस्थानपरित्यागशांतिकर्मप्रायश्चित्तमङ्गलजपहोमोपहारेज्याञ्जलिनमस्कारतपोनियमदयादानदीक्षाभ्युपगमदेवताब्राह्मणगुरुपरैर्भवितव्यमेवंसाधुभवति।

अर्थ–अब दूषित ऋतुकृत रोगोंकी सामान्य रीतिसे चिकित्सा कहते है। तहां जिस स्थानमें रोगादि उपद्रव होतेहो उसको त्याग दूसरे स्थानमें चला जाना शांतिकर्म (इन्द्रीनको जीतना अर्थात् जिससमय महामारी आदि रोग होवे उससमय खरबूजा तरबूज आदि दूषित वस्तु नखाना, बहुत स्त्रीसंग न करना,दुष्टशब्द न सुनना, इत्यादि इन्द्रियोंके व्यापारोंको न करे) अथवा वेदोक्तमंत्रोंसे ग्रहशांति आदि करे। प्रायश्चित्त (कर्मविपाककी रीतिसे चांद्रायणादि व्रत करना) अथवा प्रायनाम तपकाहै और चित्तनाम निश्चय को कहतेहैं। इन दोनों तप और निश्चयको एकत्रकरनेको प्रायश्चित्त कहते हैं। मंगल (उत्तम औषधी और मणि आदिका धारण करना) जप (ओंकार और व्याहृतिपूर्वक गायत्री मंत्रका जप करना वा वेदोक्त मृत्युंजयादि मंत्रोंका जाप करना परंतु दुष्ट रचित मद्यमांसभक्षण जिनमें ऐसे तंत्रोक्त मंत्र कदाचित् न जपने) होम (हवन) उपहार (देव ब्राह्मणादिकोंके अर्थ गौ, घोडा पाक आदि देना) कोई नास्तिक अधर्मी शूद्र पशुबलिदान कहतेहैं परंतु ऐसी वार्त्ताको मनमेंभी चिंतवन न करना क्योंकि "अहिंसा परमोधर्मः" ऐसी वेदकी आज्ञाहै[1]

---

१ कदाचित् कोई कहे कि, वेदमें गोमेध, अश्वमेधादि यज्ञोंमें प्रत्यक्षहिंसाकरना लिखाहै उनसे हमारा यही कथनहै कि, वेद ईश्वरकी आज्ञाहै, वह ईश्वर हमारी तुम्हारी तरह अज्ञानी नहींहै कि, कहीं तो चोरी करना उत्तम लिखे और कहीं उसको वर्जित करे, कदाचित् कोई कहे कि, यज्ञकी हिंसा नहीं कहलाती और जो जीव माराजाता है उसको अक्षय स्वर्ग होताहै. तो फिर यज्ञकर्त्ता यह अलब्धपद अपने पिताको वा भाईपुत्रको मारके क्यों नहीं देता. हा च्छी ऐसे पामरोंसे भाषण कदाचित् न करना चाहिये। कहीं कहीं भक्तमालआदि ग्रंथोंमें लिखाहै कि, भक्तचोरी अन्याईकरके भी वैष्णव और भगवान्की सेवा करे परंतु यह आज्ञा उन्हीं दुष्टोंकीहै. ईश्वर अवश्य ऐसे दुष्टोंको घोरनरकमें गेरेगा इसजगे ग्रंथ बढनेके भयसे हमने इतनाही लिखाहै.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इज्या (यज्ञकरना) अंजली (भक्तिपूर्वक हाथ जोडना) नमस्कार (देव-गुरुब्राह्मणोंको मनदेहवाणीसे प्रणाम करना) तप प्रसिद्धहै, नियम (शास्त्रोक्तमौनादि) दया (सर्वजीवोंका हित इच्छा करना) दान यथाशक्ति अनाथोंको देना परंतु हृष्टपुष्ट बकवृत्ति और बिडालवृत्तिवालोंको देना वर्जितहै) दीक्षा (गुरूसे सेवापूर्वक गायत्र्यादिमंत्रोंको ग्रहण करना) अभ्युपगम (गुरु आदिके सत् वाक्योंको अंगीकार करना) तथा देवता ब्राह्मण और गुरु इनकी सेवा करना, इत्यादि सर्वकर्मकरनेसे ऋतुजनित महामारी आदि उपद्रवोंकी शांति होतीहै ।

इसके अनंतर अब वसन्तआदिऋतुओंका वर्णन और उनमें आहार विहार आदि का वर्णन कराजाताहै । तहां प्रथम-

हेमन्तऋतुवर्णनम् ।

यत्र तुषारगिरिविनिर्गतजनितजाड्यजनपदसंदीपितहुताशनधूमधूलीधूसरदर्पितखड्गकुञ्जरमहिषमेषवायसमथ लोध्रप्रियङ्गुपुन्नागपुष्पराजिविराजितदमनकमरुबकरससमुत्थितबहलपरिमलपवनरमणीयोद्यानः स हेमन्त इति जानीयात् ।

अर्थ-जिस ऋतुमें हिमालयपर्वतसे प्रगट (हिम) करके जडताको प्राप्त ऐसे जनपदों करके संदीपित हुताशनकी धूम और धूलीकरके धूसर आकाश तथा गैंडा, हाथी, भैंसे, मेंढा, कौआ ये हर्षितहों, तथा लोध, प्रियंगु, पुन्नागपुष्पोंकी पंक्तिसे शोभित और दोनामरुआके रससे प्रगट अत्यंत सुगंधी जिसमें मिली ऐसी पवन उसकरके रमणीय उद्यान कहिये बागबगीचे जिसमें उसको हेमंत ऋतु जाननी ।

गद्यकरके कहे अर्थको पुनः पद्यकरके कहतेहैं ।

वायुर्वात्युत्तरः शीतो रजोधूमाकुलादिशः ।
छन्नस्तुषारैः सविता हिमानद्धा जलाशयाः ॥
दर्पिता ध्वांक्षखड्गाह्वमहिषोरभ्रकुञ्जराः ।
[विस्तीर्णशालिकेदारा नीलधान्योज्ज्वलामही ।]
लोध्रप्रियंगुपुन्नागाः[1] पुष्पिता हिमसाह्वये ।

---

१ धूमधूम्रा रजोमन्दास्तुषाराविलमंडलाः । दिगादित्या मरुच्छैत्यादुत्तरो रोमहर्षणः । लोध्रप्रियंगुपुन्नागलवल्यः कुसुमोज्ज्वलाः । दृप्ता गजाजमहिष्याजितायसशूकराः ॥ इति पाठांतरम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-हेमंतऋतुमें अत्यंतशीतलरोमांचोंको प्रगटकरता उत्तरका पवन चलताहै रज और धूएँसे व्याप्त अर्थात् धूसरी दिशा होतीहै, तुषार (कोहल) से आच्छादित सूर्यमंडल होताहै तथा जलाशय (नदी तालाब आदि) हिम (बर्फ) से ढकेहुए होतेहैं, ध्वांक्ष (कौआ) खड्गाह्व (गेंडा) भैंसा, उरभ्र (मेंढा) और कुंजर (हाथी) ये इस हेमंतऋतुमें हर्षित होतेहैं, [तथा शूकर, घोडा, और बकरी येभी हर्षित होतीहैं] खेतोंमें बढेहुए चावल तथा नीलधान्यों (गेहूंचनाआदि) से शोभित पृथ्वी होतीहै, लोध्र प्रियंगु, पुन्नाग, [और लवली] ये वृक्ष पुष्पित कहिये फूलते हैं।

हेमंतऋतुकी उत्तमता वर्णन।

दीर्घप्रचारसुरता किल यत्र रात्रिः
सुशीतलं वारि विना च यत्नात्।
यः प्रेयसीकुचयुगं परिरभ्य शेते
स्वर्गोऽपि तस्य हृदये तृणवद्विभाति ॥ १ ॥

अर्थ--जिस हेमंतऋतुमें बहुकालपर्यंत मैथुन योग्यरात्रि, और विनायत्नके शीतल जल रहताहै, ऐसे समयमें अपनी प्रियाके दोनों स्तनोंको आलिंगनकर जो शयन करताहै उस पुरुषको स्वर्गसुखभी तृणके समान प्रतीत होताहै।

पृथुजघनकुचाभियौवनोन्मादनीभिर्नवमृगमदमिश्रैः
कुंकुमैश्चर्चिताभिः। भवतिशिशिरशान्तिःस्त्रीभिरालिंगिता-
भिर्निशिनिशिपुरुषाणां जन्मसाफल्यभाजाम् ॥

अर्थ--जोबनमदमाँती पुष्टहै जंघा और छाती नव कस्तूरीमिली केशर जिन्होंने लगायरक्खी ऐसी नववालाको दुसालामें दबकाय जो पुरुष आलिंगनकर शीतके पालाके कसालाको नित्यप्रति रात्रियोंमें दूर करतेहैं उन्हींका जन्म सफलहै।

हेमन्तेबहुदोषाढ्येद्वौगुणौसर्वसंमतौ।
अयत्नशीतलंवारिसुरतंस्वेदवर्जितम् ॥

अर्थ--अनेक दोषयुक्त हेमंतऋतुमें दो गुण सर्व संमतहै, जैसे कि, एक तो विनायत्नके शीतलजल रहताहै, और पसीनेरहित स्त्रीसंग होताहै।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हेमन्तेदधिदुग्धसर्पिरशनामाश्लिष्टवासोभृतः
काश्मीरद्रवलिप्तचारुवपुषःखिन्नाविचित्रैरतैः ॥
वृत्तोरुस्तनकामिनीजनकृताश्लेषागृहाभ्यन्तरे
ताम्बूलीदलपूगपूरितमुखाधन्याःसुखंशेरते ॥

अर्थ–दही, दूध, घृतका भोजन और लालरंगके वस्त्र धारण कर, केशरकी कीचसे देहको लिप्तकर चित्रविचित्र रतिकरके थकित और गोलहै स्तन जंघा जिन्होंकी ऐसी कामिनीयोंने घरोंके भीतर कीनाहै आलिंगन जिन्होंका तथा पान सुपारीका बीडासे पूरितहै मुख जिन्होंका ऐसे बडभागी पुरुष इस हेमंतऋतुमें सुखपूर्वक शयन करतेहैं[1] ।

हेमन्तऋतुकी चर्या ।

बलिनः शीतसंरोधाद्धेमन्तेप्रबलोऽनलः । भवत्यल्पेंधनो धातुःसपचेद्वायुनेरितः ॥ अतोहिमेऽस्मिन्सेवेतस्वाद्वम्लल वणान्रसान् ।

अर्थ–बलीपुरुषके हेमंतऋतुमें शीतके प्रभावसे संरोधको प्राप्तहो जठराग्नि प्रबल होताहै, यदि इससमयमें इसको भोजनादि इंधन न प्राप्त होवे तो यह वातप्रेरित रसरक्तादि धातुओंको पचाताहै अतएव इसऋतुमें स्वादु, अम्ल, (खट्टे) और लवणरसोंका सेवन करना चाहिये ।

प्रमाणांतर ।

उष्माबहिः प्रतिहतोहिमशीतवातैरंतःशरीरविवरंप्रतिपद्यमानः । स्वस्थानपिंडितवपुर्भवतिप्रचण्डःशीतेऽनिलानलहरोविधिरिष्यतेतः ।

अर्थ–हिमशीत और वायुकरके बाहर आनेवाली गरमी रुककर शरीरके भीतर छिद्रमें प्राप्तहो अपने स्थानमें पिंडितहो प्रचंड होतीहै, अतएव इस हेमंतऋतुमें पवन और अग्निके हरणकारक विधि कहीहै । अर्थात् बादीदूरहो और प्रबल अग्नि शांतहो ।

---

१ अपि दिनमणिरेष क्लेशितः शीतसंघैरथनिशिनिजभार्यागाढमालिंग्यदोर्भ्याम् । स्वपितिपुनरुदेतुंसालसाङ्गस्तु तस्मात्किमुन भवतुदीर्घा हैमिनीयामिनीयम् ॥ १ ॥ तुषारजालैः पिहितानियत्रशष्पाणिनीराणिमुखानिभानुः । प्रातःप्रसन्नानिकरैःकरोतिदिशांवधूनामिव खण्डितानाम् ॥ २ ॥ प्रियंगुपुन्नागकलोप्ररेणुव्रजैर्त्रभो वातिहिमाद्रिवायुः । आच्छादयन्धूमवितानलीढं विद्याद्दुतं हिमनामधेयम् ॥ ३ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दैर्घ्यान्निशानामेतर्हिप्रातरेवबुभुक्षितः।
अवश्यकार्यसंभाव्ययथोक्तंशीलयेदनु।

अर्थ–इस हेमंतकालमें रात्रियोंको बडीहोनेसे प्रातःकाल क्षुधित मनुष्यको अवश्यकार्य (मलमूत्रोत्सर्गादि तथा दिनचर्योक्त कामोंसे) निवृत्तहो प्रथम भोजन करना चाहिये, भोजनकरे पश्चात् तैलाभ्यंगादि कर्म करे क्योंकि भूखेमनुष्यको प्रथम भोजन करना फिर अन्यकार्य करने चाहिये, जैसे लिखाहै--

आहारकालेसंप्राप्तेयोनभुंक्तेबुभुक्षितः।
तस्यसीदतिकायाग्निर्नैरिंधनइवानलः॥

अर्थ-क्षुधावान् पुरुष भोजनके समयमें भोजन न करे तो उसकी जठराग्नि नष्ट होती है जैसे विना इंधनक अग्नि नष्ट होतीहै इसीसे लिखाहै "शतं विहाय भोक्तव्यम्"

शिष्य–अन्यकालमेंभी भूखेको भोजन करना कहा है अतएव उक्तश्लोकमें बुभुक्षितशब्द न धरना चाहिये।

गुरु–इसजगे बुभुक्षितशब्द जो धरा है सो ठीक है क्योंकि और कालमें जठराग्नि अग्निके छायानुकारी होतीहै, अतएव जठराग्निका उपचार अग्निके समान करे। जैसे लिखा है--

मुहुर्मुहुरजीर्णेपिभोज्यान्यस्योपहारयेत्।
निरन्धनोन्तरंलब्ध्वायथैनंननिपादयेत्॥

अर्थ--वारंवार अजीर्णमेंभी भोजन देवे क्योंकि जैसे विनाइंधनके अंतरको प्राप्तहो अग्नि नष्ट होजाती है उसीप्रकार कदाचित् जठराग्नि नष्ट न होजावे।

वातघ्नतैलैरभ्यङ्गंमूर्धितैलविमर्दनम्।

वातघ्न (नारायण प्रसारणीविषगर्भादि) तैलोंको देहमें मालिस करना तदनंतर मस्तकमें तेल लगाना परंतु अभ्यंगके पश्चात् मस्तकमें तेल लगाना अनुचित है क्योंकि मस्तक उत्तमांग है अतएव प्रथम मस्तकमें तेल डालना चाहिये, यह प्रयोगपारिजातग्रंथमें लिखा है।

मस्तकाभ्यङ्गशेषेणकचिन्नोद्वर्त्तयेत्तनुम्।
पुण्यहानिरलक्ष्मीःस्यात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत्॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–अर्थात् मस्तक अभ्यंगसे जो तेल बाकी रहै उसको देहमें नहीं लगाना चाहिये क्योंकि मस्तकशेष तेलको देहमें लगानेसें पुण्यकी हानि और अलक्ष्मी होतीहै इसीसे न लगावे इस प्रमाणसे यह सिद्ध हुआकि प्रथम मस्तकमें लगावे परंतु उसके शेषको देहमें न लगावे ।

नियुद्धंकुशलैःसार्द्धंपादाघातंचयुक्तितः ।

अर्थ–इस हेमंतऋतुमें कुश्ती लड़नेके दावपेंच जाननेवाले कुशल पुरुषोंके साथ कुश्ती लडे, और दंड कसरत करे; परंतु अर्धशक्ति पर्यंत करे [अर्धशक्तिके लक्षण आगे दिनचर्यामें कहेंगे] दंड कसरत और कुश्तीका लडना तैलमालिसके पूर्व करना उचित है । इसमें प्रमाण ।

पादाघातस्तैलयुक्तोदीपनोदेहपुष्टिकृत् ।
शुक्रौजस्तेजसांवृद्धिकरःश्रोत्रविशोधनः ॥
दृष्टिकोद्धर्षणंवर्ण्यंकंडूकोष्ठमलापहः ।

अर्थ–तैलकी मालिसयुक्त दंडकसरतका करना दीपन है, देहको पुष्ट करे शुक्र ओज और तेजकी वृद्धि तथा कर्णोंको शुद्ध करे हैं नेत्रोंकी ज्योतको बढावे देहका वर्ण उत्तम करे खुजली और कोष्ठमलको दूर करे है ।

कषायापहृतस्नेहस्ततःस्नातोयथाविधि ।
कुंकुमेनसदर्पेणप्रदिग्धोऽगुरुधूपितः ॥

अर्थ–तेलकी चिकनाईको कषाय (लोधआदिके उवटनों) से दूर कर तदनंतर शास्त्रोक्तविधिसे स्नान करे, फिर कस्तूरी मिली केशरको देहमें लगावे, और अगरकी धूनी लेनी चाहिये ।

व्यायामादौतदन्तेचकल्कंवामुद्गमाषजम् ।

अर्थ–दंडकसरतके प्रथम वा अंतमें मूंगका अथवा उरदोंके कल्कका सेवन करना चाहिये ।

रसान्स्निग्धान्बलंपुष्टं गौडमच्छसुरांसुराम् ।
गोधूमपिष्टमाषेक्षुक्षीरोत्थविकृतीःशुभाः ॥

अर्थ–स्निग्ध मांसरस तथा पुष्टमांस भक्षण करे, गौड सुरा (जो गुडसे बनतीहै) अच्छसुरा (सुरामंड) और सुरा (मदिरा) इनका सेवन करे, तथा गेहूंके पदार्थ (पूडी, कचौरी, मठरीआदि) पिष्ट (पिट्ठीके पदार्थ पकोडी चीलेआदि) उडदके पदार्थ (पापड वडीआदि) ईखके पदार्थ (मिश्री

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लड्डू बतासेआदि) और दूधके (दही मक्खन बर्फी पेडा खडी मलाई- आदि) इन सब पदार्थोंका सेवन करना चाहिये ।

प्रमाणांतर ।

औदकानूपमांसानिगोरसंनवमोदनम् । गोधूमतिलमाषेक्षुविकारान्विविधान्रसान् ।भुंजीतपश्चात्साधूनिमधूनिचपिबेन्नरः । [नवमन्नं वसां तैलं शौचकार्येसुखोदकम्] तैलाभ्यंगश्चशिरसःसशरीरस्यमर्दनम् ।

अर्थ–जलके जीवोंका मांस, जलके समीप रहनेवाले पक्षियोंका मांस, गोरस, नवीन भात, गेहूं, तिल, उडद, और ईखके विकार एवं अनेक प्रकारके रसोंका भोजन करे, तहां तिलके विकार (गजक, तिलकुटा, तिलवरी आदि) फिर भोजनके पश्चात उत्तम मद्योंको पीवे, [नवीन अन्न, वसा तैलका सेवन और शौचकर्ममें सुखोदक लेना चाहिये]मस्तकमें तेल लगाना और सब देहमें मालिस करना ।

लघूष्णमम्बरंसेव्यं चन्दनागुरुधूपितम् । तथाच । प्रावाराजिनकौशेयप्रवेणीकौचवास्तृतम् । उष्णस्वभावैर्लघुभिः प्रावृतःशयनंभजेत् ॥

अर्थ–लघु (हलके) और गरम तथा चंदन अगरकी धूनीसे धूपित वस्त्र धारण करने चाहिये । वाग्भट लिखते हैं कि प्रावार (सौडतोसक रिजाई दगला गद्दाआदि) अजिन (मृगचर्म व्याघ्रचर्मआदि) कौशेय (रेसमी कपडा पीतांबर आदि) प्रवेणी (सूचीवाण नामसे प्रसिद्ध) कौचवस्त्र (जो पशुमात्रके रोमसे बने ऐसे साल धुस्सा वनात कंबलआदि) वस्त्रोंका और उष्ण स्वभाववाले और हलके ऐसे पडदोंसे आच्छादित ऐसे मकानमें शयन करे ।

युक्त्यार्ककिरणान्स्वेदं पादत्राणं च सर्वदा ।

अर्थ–युक्तिपूर्वक सूर्यकी किरण, और पसीनेलेवे, अर्थात् अत्यंत धूमखानेसे और पसीने लेनेसे ग्लानी आदि रोगोंको करे है, तथा पैरोंमें जोडीतो सदैव रखनी चाहिये,पादत्राणनाम करके मोजे और खडाऊ आदिकाभी ग्रहण है ।

सेवनंसूर्यरश्मीनांहुताशस्यचमात्रया । यथारुचिस्तुकिरणान्निर्धूमंचहुताशनम् ॥ पृष्ठतोऽर्कनिषेवेतजठरेणहुताशनम् । नात्युष्णशीतसलिलैः शौचंकुर्यात्प्रयत्नतः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-सूर्यकी किरण, और अग्निका सेवन करे यथारुचि धूप और धूआँर-हित अग्निका सेवन करना चाहिये, सूर्यकी किरणोंको पीठ करके सेवन करे, और अग्निको पेटके आगे धरके तापे, तथा अत्यंत गरम और न अत्यंत शीतल ऐसे जलसे शौचादि विधि करनी चाहिये ।

पीवरोरुस्तनश्रोण्यः समदाःप्रमदाः प्रियाः ।
हरंतिशीतमुष्णांग्यो धूपकुंकुमयौवनैः ॥
अंगारतापसंतप्तगर्भभूवेश्मचारिणः ।
शीतपारुष्यजनितोनदोषोजातुजायते ॥

अर्थ-पुष्ट है उरू स्तन और श्रोणीभाग जिन्होंके तथा जोबनमदमाती वा मद्य पीनेसे मदमाती, और अगरआदिकी धूनीसे तथा कुंकुम लेपसे तथा सहज जोबनकी अग्निसे उष्ण है शरीर जिन्होंके ऐसी प्यारी नारी शीतकी लाचारीको दूर करतीहै । तथा प्रज्वलित अंगीठीके तापसे संतप्त है भीतरकी पृथ्वी और मकान ऐसे मकानमें रहनेवाले पुरुषको कठोर शीतजनित दुःख कदाचित् बाधा नहीं करे । अतएव [ऐसे निर्वात और अगर मृगमद धूपित उष्ण घरमें रहना चाहिये, जैसे लिखा है"अलंनिर्वातशयनं भजेदगरधूपितम्"

ग्रंथांतरके मतसै हेमंतचर्या ।

शिवःशिवाऽब्धिजाफलंहरीतकीगुडान्विता बिभीतमज्जका-
र्द्रकंजयाचविश्वभेषजम्॥लवङ्गमाम्रमाममञ्जलोचनेकपित्थ-
कं कणाशताह्विकाचमेथिकाऽरविन्दबीजकम् ॥ १ ॥
पयोदनादमारिषोमरीचधान्यबाल्हिकं घृतंचपायसंसुराज-
शाशहारिणानिवै । फलानिवार्त्तिराब्दरावतैत्तराणिचाङ्गने
पटोलकंरसोनकोहिताअमीहिमाह्वये ॥ २ ॥

अर्थ-आमरे, हरड, बेलफल, गुडयुक्तहरड, बहेडेकीमिंगी, अदरख, भांग, सोंठ, लोंग, कच्ची अँबिया, कैथ, पीपर, सौंफ, मेथी, कमलगट्ठा, चौंलाईका और मारिशकासाग, कालीमिरच, धनियां, हींग, घृत, दूधकी खीर, मद्य, और बकरा, ससा, हरिण, लवा, मोर, तीतर, इनके मांस, तथा परवलका साग, और लहसन, ए पदार्थ हेमंतऋतुमें हितावह होतेहैं ।

सैन्धवमेलाचित्रकशाकं जातिफलं चचूदाधितक्रम् ।
शूरणकंद्राक्षामपिकान्ते कुण्डलिकामान्याचहिमाह्वे ॥ ३ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ--सैंधानिमक, इलायची, चीतेकी छाल, जायफल, चूकाका साग, दही, छाछ, जमीकंद, दाख और जलेबी, ये पदार्थ हेमंतऋतुमें पथ्यकारकहैं।

कौशेयास्तरणेशयनं च श्यामास्त्रीसुरतंशुचिगंधम् ।
ताम्बूलंबहुभोजनमिष्टं हेमन्तेहितमाहुरितीदम् ॥

अर्थ--रेशमी वस्त्रोंके बिछैयेपर शयनकरना, सुंदर सोलहवर्षकी स्त्रीसे संभोग, सुगंध, बीडा, इच्छित बहु भोजन, ये हेमंतऋतुमें पथ्यकर हैं।

पक्वं कालिङ्गं त्रपुसं च पक्वं कोशातकीवास्तुकमुद्गतैलम् ।
क्षुद्राझषाश्छागपयोऽग्निसेवा हेमंतकेऽमी सुहिताश्चनित्यम्॥

अर्थ–पकातरबूज, खीरा तोरई, वथुआ, मूंग, तेल, छोटी मछली, बकरीका दूध, और अग्निसे तापना ये सब हेमन्तऋतुमें हितकारकहै।

क्वाथलीक्वथितासुध्रुजम्बीरं दाडिमीफलम् ।
जीवनं नैर्झरं दिव्यं वाप्यं कौप्यं च सारसम् ॥
व्यायामं जीर्णगोधूमाः षष्टिकारक्तशालयः ।
हेमन्तेऽमीहिताबाले पीनोत्तुङ्गपयोधरे ॥

अर्थ–मूलीआदि सागकी कथली, जंभीरी, विलायती अनार [अंगूर, सेव, अखरोट,] झरनेका, वर्षाका, बावडीका, कूएका, तथा तालावका पानी, कसरत करना, पुरानेगेहूं, और सांठीका तथा लाल चावलोंका भात, ये हेमंतऋतुमें हितकारकहैं।

प्रातर्भोज्यंनवंचान्नमम्लं घर्मांतिलश्रमान् ।
अभ्यंगंचप्रशंसंतिहेमंतेभिषगुत्तमाः ॥

अर्थ–प्रातःकाल भोजन, नवीन अन्न, खट्टेपदार्थ, सूर्यके किरण, तिल, परिश्रम, और अंगमें तेल लगाना ये हेमंतमें हितकारक हैं। ऐसे उत्तमवैद्य कहते हैं[1]। हेमंतऋतुमें सोंठका चूर्ण मिलाकर हरडसेवन करनी चाहिये।

---

१ हेमंतकालेलवणंरसाम्लंस्निग्धंदाधिक्षारकदुष्णभोज्यम् । सर्पिर्युतंभोजनकं समांसं तीक्ष्णाग्निपानानिरसं भजेत १ हरीतकीशुंठियुताचसेव्यासंलेपनंचागुरुकुंकुमाभ्याम् । स्याद्वह्निसेवा सततं मनोज्ञास्त्रीकामिनीपीनकुचाचसेव्या २ कठोरपीनस्तनभारनम्रा सुमध्यमाचञ्चलखंजनाक्षी । हेमंतकालेरमितानयेन वृथागतंतस्यनरस्य जीवनम् ३ हेमंतेहिमकरबिंबचारुमुख्या रामायामृदुभुजपंजरेशयानाः । येकालं परमसुखंनयंति तेषां शीतांकं लगतिजगत्प्रकंपकारि ४

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हेमंतऋतुमें अपथ्य ।

हेमन्तःशीतलः स्निग्धःस्वादुर्जठरवह्निकृत् ।
अतिशीतास्ततत्याज्याः पदार्थानवयौवने ।

अर्थ-हेमंतऋतु यह, शीतल, स्निग्ध, स्वादु, तथा जठराग्नि प्रदीप्तकरनेवाला है, इसीसे इसमें अतिशीतल पदार्थसेवन वर्जित है ।

कसेरुंनाडिकाशाकंशृंगाटंकदलीफलम् । आलुकं खाखसंमाषा राजकोषातकीप्रिये । नादेयंपाल्वलंनीरंकैदारंमाहिषंपयः । राजमाषायवामेषस्यामिषं च मकुष्टकम् । दिवानिद्रापुराणान्नंकुभोजनमभोजनम् । लघुपाकिचशैत्यान्नं शीतनीरावगाहनम् । प्रवातंनियताहारमुदमंथंहिमागमे । कषायकटुतिक्तानिरूक्षाणिचलघूनिच । वर्जयेच्छीतसंस्पर्शांश्शीतान्युपवनानिच । वह्निसंतप्तहेमाभे हेमन्तेऽमूनिसंत्यजेत् ॥

अर्थ-कसेरू, नाडीका साग, सिंघाडे, केलाकी फली, आलू, खसखस, उडद, गलकातोरई, नदीका, छोटे तलाव (तलैया) का, तथा खेतोंका पानी, भैंसकादूध, वडे, उडद, जौ, मेंढेका मांस, मटर, दिनकी निद्रा, पुराना अन्न, निंदित भोजन, लंघन, लघुपाकि और शीतल अन्न तथा शीतलजलसे स्नान, पवनका खाना, एक समयका भोजन, सत्तुआदि, एवं कषेले, कडुए, तीखे, रूक्ष और हलके पदार्थ, यथा शीतलवस्तूका स्पर्श करना, और शीतल बगीचे अर्थात् जिनबगीचोंमें धूप न आतीहो इत्यादि सर्व वस्तुओंका सेवन हेमंतऋतुमें वार्जित है ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे हेमंततौ पथ्यापथ्यवर्णनं समाप्तम् ॥

शिशिरचर्यामाह ।

शिशिरेशीतमधिकं वातवृष्ट्याकुलादिशः ।
शेषंहैमन्तवत्सर्वं विज्ञेयंलक्षणंबुधैः ॥

अर्थ-शिशिरऋतुमें शीत अधिक होता है, और वात तथा वृष्टी (अकालवर्षा) करके दिशा व्याप्त होती है, शेष सर्व लक्षण हेमंतके समान जानने ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिशिरके गुण ।

बहुलशिशिरवातात्किञ्चिदुद्धूतसस्या भवतिवसुमतीयंपक्व
सस्यैस्तुपीता । कथमपितुहिनंस्याल्लिंगवैशेषिकंस्यात् प-
वनकफविकारोजायतेशैशिरेच ।

अर्थ–अत्यंत शिशिरवातसे, किंचित् घास उठरही तथा यह पृथ्वी पकेतृणोंसे पीली होती है तथा कुहल (बर्फका भेद) अधिक होता है, तथा इसऋतुमें वातकफके विकार प्रगट होते हैं यह आत्रेयमें लिखा है ।

ग्रन्थान्तरोंके मतसे वर्णन ।

यत्र शीताद्भयंभवतिचन्द्रचरणनिचयरुचिरतरतुषारसंकुश-
लसलिलाशयोयःसशिशिर इतिविजानीयात् ।

अर्थ--जिसऋतुमें शीतसे भयहो तथा उज्ज्वलचन्द्रकिरणोंसे प्रगट तुषारसंकुल जलाशय जिसमें उसको शिशिरऋतु जानना ।

सर्वं हिमोक्तं शिशिरेप्रयोज्यंपथ्याकणातुल्यतमाचसेव्या ।
आभुज्यसेवेतजलंसुखोष्णंकान्तायुतोवासगृहेवसेत्तु ॥
वाराहबन्धान्सुकृतान्प्रलेहान्स्यात्सूरणं वैवटकाश्चभक्ष्याः ।
पिष्टान्नमन्नंवरभोजनानिसेवेतसर्वानितिशीतकाले ।

अर्थ–जो हेमंतऋतुमें वस्तु वर्णन करीहै, वो सब शिशिरऋतुमें देनी चाहिये, और इसऋतुमें पीपलका चूर्ण मिलायकर हरड सेवन करनी, बँधेहुए वाराहकेमांस और उत्तमरीतसे बने ऐसे प्रलेह, तथा जमीकंदका साग वडी [मगौरी पापड पकोडी गुलगुले-चीले आदि] पिष्टान्न (मेदाके पदार्थ) और उत्तमभोजन [बरफी, पेडा, खुरचन, मलाई, मोहनभोग, मोहनथाल, मेवावाटी, खासापूडी आदि] ये सर्व पदार्थ शीतकालमें सेवन करने चाहिये ।

क्षेमेन्द्रात् ।

सार्द्रकार्द्रासुसंधानासवाह्लीकासुसैंधवा ।
सस्नेहाकामिनीचेयंकृशराशिशिरेहिता ।

अर्थ–अदरखके साथ पानीका आचार, (आमका, लिसोडेका, ठैंटीका, छुहारा, अचारी, आदि) तथा हींग और सैंधानिमक मिले घृतप्लुत पदार्थ,

१ यत्रामृतद्युतिकरव्रजसंनिकाशैर्व्याप्तादिशश्च विदिशश्च तुषारजालैः । रुद्धंनभश्चसमुदीक्ष्यततोभियेव वह्नेर्दिशंसभजतेशिशिरे विवस्वान् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तथा प्रीतिकेसाथ कामिनी और खिचडी ये सब वस्तू शिशिरऋतुमें हितहै. खीचडीमेंभी अदरख हींग आदि मसाले पडेहो तथा ताजा घृत खूबपडाहो और दही पापडभीहो क्योंकि किसीने कहाहै [इसाखिचडीके चारयार, घी पापड और दही अचार] अथवा धनुर्मासमें जो चनाकीदाल, चावल, मेवा, घी मिश्री, और दूध मिलाकर खिचडी बनतीहै वो सेवन करनी चाहिये ।

मत्तेभकुम्भपरिणाहिनिकुङ्कुमार्द्रकान्तापयोधरतटेरतिभार-खिन्ने । वक्षोनिधायभुजपञ्जरमध्यवर्त्तीधन्यःक्षपांक्षपयति क्षणवत्सधन्यः ।

अर्थ-मतवारे हाथीके कुंभस्थलको तिरस्कृत करनेवाले केशरसे आर्द्र और रतिभारसे थकित ऐसे कान्ताके स्तनोंको दोनो भुजपंजरोंके मध्यमें ले छातीसे छाती मिलाय जो पुरुष रात्रिको क्षणवत् व्यतीत करतेहैं वो धन्यहैं ।

मन्दं मन्दं दिनान्तेज्वलतिहुतवहःपृष्ठतःपार्श्वतो वा धन्यो लोकस्तरुण्याःस्तनजघनपरीरंभसंभोगसंगी । उच्चैस्तूली-विलासंसुललितशयनंक्वापितैलंसुगन्धंताम्बूलंतप्तभोज्यंतरु णिविरचितंवासरेशैशिरेऽस्मिन् ।

अर्थ-सायंकालमें मंद मंद अग्नि प्रज्वलित आगे पीछे होरहीहै ऐसे समयमें धन्य पुरुष तरुणीके स्तन जघनका आलिंगनकर संभोग करतेहैं, ऊँचे ऊँचें रुईके गदोंपर विलास और सुन्दरशयन तथा कहीं तैलकी मालिस, कहीं अत्तरोंसे तरवतरहोना, बीडेका चबाना और नवीना स्त्रीके बनाए गरमागरम भोजन इस शिशिरऋतुमें हितावह होतेहैं, [तरुणिविरचितं] के कहनेसे यह प्रयोजनहै कि, इसऋतुमें वृद्धास्त्रीके बनाए पदार्थ हितकारक नहीं होतेहैं।

इति शिशिरऋतुचर्या समाप्ता ।

---

१ शीतार्त्ता इवसंकुचन्तिदिवसानैवाम्बरं शर्वरी नायंमुञ्चतिकिञ्चिदेव हुतभुक्कोणंगतो भास्करःत्वञ्चानङ्ग-हुताशभाजिहृदये सीमन्तिनीनांगतो नास्माकं वसनं न चाग्नियुवतीराजन् क्रयामोवयम् ॥ १ ॥ कस्यचित्कवेर्नर-पतिसंमुखे इत्थमुक्तिः । प्रावरणैरङ्गारैर्गर्भगृहे स्तनतटैश्चदयितानाम् संतर्जितमाद्यानां निपततिशीतं दरिद्रस्य ॥ २ ॥ द्वारंगृहस्यपिहितंशयनस्य पार्श्वेवह्निर्ज्वलत्युपरि तूलपटोगरीयान् । अङ्गानुकूलमनुरागवशंकलत्रमित्थं करोति किमसौ स्वपतस्तुषारः ॥ ३ ॥ पीनोत्तुङ्गपयोधरः परिलसत्संपूर्णचन्द्राननाः कान्तानैवगृहे गृहेनचहृदं जात्यंनकाश्मीरजम् । ताम्बूलं न च तलिका नचपटी तैलंनगन्धाविलं सद्योगोघृतपाचितान्घटकाः शीतंकथं गम्यते ॥ ४ ॥ अद्यशीतं वरीवर्त्ति सरीसर्त्तिसमीरणः । अपत्नीकोमरीमर्त्ति तरीतर्त्तिकुचोष्मवान् ॥ ५ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वसन्तऋतुवर्णनम् ।

यत्रबकुलतिलकनवमल्लिकाकुरबकमुचकुंदसमूहसमुत्थसद्रा-
क्षामोदान्मत्तकोकिलकूजितान्याकर्ण्यमकरकेतुशरनिकरपु-
ञ्जर्ज्जरीकृतविरहिणीसंघातोमुहुर्मुहुर्मोहमुपैति अपिचम-
लयाचलवातचलितचूतमञ्जरीनिचयनिपतितरेणुरञ्जितशरी-
रषट्पदकुलकोलाहलाकुलितवनान्तोयः सवसन्तइतिवि-
जानीयात् ।

अर्थ–जिस ऋतुमें बकुल (मौलसरी) तिलक वृक्ष, चमेली, कुरुबक, (लालपुष्पका कोरांटा) मुचकुंद, इनपुष्पोंसे प्रगट तथा दाखकी सुगंधी करके मतवारी कोयलोंका कूजना उसके सुननेसे प्रगट कामदेवके बाणसमूहसे जर्ज्जरीकृत विरहिणियोंके समूह वारंवार मोहको प्राप्तहोतेहैं, तथा मलयाचलकी शीतल मंद सुगंध पवन करके चलायमान आम्रमंजरीके समूहसे पतित रेणु उसकरके रंगेहुए शरीरजिन्होंके ऐसी भ्रमरावलीके कोलाहल तिसकरके आकुलित वनान्त जिसमें उसको वसंत ऋतु जाननी ।

दिशोवसन्तेविमलाःकाननैरुपशोभिताः । किंशुकाम्भोज-
बकुलचूताशोकादिपुष्पितैः ॥ कोकिलाषट्पदगणैरुपगीता
मनोहराः । दक्षिणानिलसंवीताःसुमुखाःपल्लवोज्ज्वलाः ॥

अर्थ–वसंतऋतुमें दिशा रमणीय और वनोंकरके शोभित होतीहै, किंशुक (केसू-वा-टेसू) कमल, बकुल (मौलसरी) आम, और अशोक आदिपुष्पोंसे पुष्पित होतीहै, कोकिल, और भौंराओंके झुंडोंसे शब्दायमान मनके हरण करनेवाली होतीहै, दक्षिणकी पवनकरके व्याप्त और सुंदर अवकाशवाली तथा नवीन लहलहाती पातियोंसे अर्थात् नए पत्तोंकरके शृंगारवाली ऐसी दिशा होतीहै ।

मल्लीवल्लीसमूहेसमुदितकुसुमामोदमत्तालिमालामूर्च्छाझंका-
रनादाकुलपथिकजनोव्याकुलप्रोषितास्त्री ॥माकन्दानन्दमा-
द्यन्मधुरपिककुलालापदर्पोमनोजःप्राप्तःकांतोवसन्तस्त्रिभुवन-
विजयी प्राणबन्धुःस्मरस्य ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ—मल्ली (चमेली) की वेलोंके समूहोंमें खिलेहुए फूलोंकी गंधसे मतवारी भौरोंकी पंक्ती उनके मूर्छित झंकार शब्दकरके आकुल पथिकजन तथा व्याकुलहै प्रोषितास्त्री (जिनके पति परदेशमेंहो) और आम्रके फूलनेसे उत्पन्न आनन्द तिसकरके मतवाले और प्यारे ऐसे कोकिलोंके झुंड उनके बोलनेसे दर्पित कामदेव जिसमें और कामदेवका प्राणबन्धु ऐसा त्रिलोकीको जीतनेवाला यह वसंतऋतु प्राप्त हुआहै ।

आत्रेयः ।

मुदितकोकिलकूजितकाननं मदनशोचितकिंशुकशोभितम्।
कुसुमसौरभरञ्जितभूधरंक्वणितमत्तमधुव्रतलालसम् । मकरकेतनवाससमाकुलंमुदितमेवसमस्तमिदंजगत् । मलयमारुततुर्यगुणान्वितं कफकरोहिवसन्तऋतुर्भवेत् ॥

अर्थ—मुदित कोकिलोंकरके कूजित और मदन शोचित ऐसे पलासके पुष्पोंकरके शोभित वन, पुष्पोंकी वाससे वासितहै पर्वत तथा गुंजार करनेवाले भौराओंसे व्याप्त तथा कामदेवके वासकरके समाकुल और यह संपूर्ण जगत् हर्षित, शीतल, मंद, सुगंध, और अनुकूल ऐसे चतुर्विध गुणयुक्त मलयाचलकी पवन जिसमें ऐसा कफकर्त्ता वसंतऋतु जानना ।

कदलीदलनीलकोकिलाभिःकृतकोलाहलकाकलिप्रपंचः ।
मलयानिलमत्तवारणस्थोमदनश्चात्रचकारजैत्रयात्राम् ॥

अर्थ—कदलीदलसदृश नीलकोकिलाओंकरके करा कोलाहल काकलीप्रपंच, तथा मलयाचलकी पवनरूप मतवारे हाथीपर स्थित ऐसा कामदेव आज इस वसंतऋतुके प्रारंभमें दिग्विजय यात्राको पधारेहै।जैसे राजाकी चढाईमें सेना घोरशब्द करतीहै, ऐसे मदननरेशके पधारनेमें कोकिला शब्द कररहाहै और जैसे राजा मतवाले हाथीपर विराजमान होताहै, ऐसे कामदेव नरपति मलयाचल पवनरूप हस्तीपर बैठाहै।इस श्लोकमें रूपकालंकार दिखायाहै।

---

१ वारस्त्रीववनस्थलीनवनवांशोभांबभारान्वहं पान्थान्पीडयतिस्मतस्करइवक्रूरैः शरैर्मन्मथः । शृङ्गारः सगुणक्षमापतिरिवप्राप्तः प्रतिष्ठांपरां रात्रिःस्वीकुरुतेस्ममुग्धललनालज्जेवकाश्यंक्रमात् १ पान्थानांप्रमदाइवप्रतिदिनंदैन्यंह्रदिन्योययुर्दृश्यन्तेस्मदिगम्बराइववनेपत्रोज्झिताःपादपाः । निःश्वासाइवदुःसहाविरहिणंवाताववुः सर्वतः पायंपायमिवप्रियाधररसंपांथःपपुःप्राणिनः ॥ २ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वाग्भटः ।

कफश्चितोहिशिशिरेवसन्तेऽर्कांशुतापितः ।
हत्वाग्निंकुरुतेरोगानतस्तंत्वरयाजयेत् ॥ ११ ॥

अर्थ–शिशिरऋतुमें संचितहुआ कफ वसन्तऋतुमें सूर्यकीकिरणोंसे तापित जलके समान पतला हो जठराग्निको नष्टकर अनेक रोगोंको प्रगट करताहै, अतएव इस दुष्टकफको शीघ्रजीते ।

कफनाशकयत्न ।

तीक्ष्णैर्वमननस्याद्यैर्लघुरूक्षैश्चभोजनैः।व्यायामोद्वर्त्तनाघातै-
र्जित्वाश्लेष्माणमुल्बणम् । स्नातोऽनुलिप्तःकर्पूरचन्दनागरु-
कुंकुमैः । पुराणयवगोधूमक्षौद्रजाङ्गलशूल्यभुक् । सहका-
ररसोन्मिश्रानास्वाद्यप्रियया र्पितान् । प्रियास्यसङ्गसुरभी
न्प्रियानेत्रोत्पलाङ्कितान् । सौमनस्यकृतोहृद्यान्वयस्यैःस-
हितःपिवेत् । निर्गदानासवारिष्टसीधुमार्द्वीकमाधवान् ॥

अर्थ--प्रबल कफको तीक्ष्ण वमन, नस्य, विरेचनादि करके तथा लघु और रूक्ष भोजन करके एवं व्यायाम उद्वर्तन और कुश्ती लडने करके जीते ।

तदनंतर (कफजीतनेके पश्चात्) स्नानकर कपूर, केसर, अगर, मिले चंदनको लगावे, और पुराने जौ, गेहूं, सहत, जंगलीजीवोंका भुना मांसको भक्षण करे तदनंतर जिनमें अमरस मिलाहो और अपनी प्राणप्यारीने कुछपी-कर दीनेहो तथा प्रियाके मुखलगनेसे सुगंधितहो, तथा प्रियाके नेत्रकमलों-करके शोभित, चित्तको प्रसन्न करता, और हृदयको हितकारी ऐसे आसव, अरिष्ट, सीधु, मार्द्वीक, और माधवको बराबरके मित्रोंके साथ पीवे । आसव उसको कहतेहैं जो औषधोंके चुआनेसे बनताहै । सीधु ईखके रससे बनताहै अरिष्ट उसे कहतेहैं कि जो अधिक मादकद्रव्योंसे तथा मदिरासे बनताहै । मार्द्वीक उसे कहतेहैं कि, जो दाख अंगूर आदिसे बनताहै । और माधव उसे कहतेहैं जो सहतके संस्कारसे बनतीहै ।

शृङ्गवेराम्बुसाराम्बुमध्वम्बुजलदाम्बुवा ।

अर्थ–तथा शुंठीका ओंटायाहुआ जल तथा खैरसार चंदन आदि सारको मिलाकर ओंटाया जल तथा सहत मिला जल वा नागरमोथा डालकर ओंटाया जलको पीवे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दक्षिणानिलशीतेषु परितोजलवाहिषु।अदृष्टनष्टसूर्येषु मणि-कुट्टिमकान्तिषु ॥ परपुष्टविघुष्टेषुकामकर्मान्तभूमिषु । वि-चित्रपुष्पवृक्षेषु काननेषुसुगन्धिषु।गोष्ठीकथाभिश्चित्राभिर्म-ध्याह्नंगमयेत्सुधीः ॥

अर्थ--दक्षिणकी पवन करके शीतल, जिनमें चारोंतरफ जलोंके धरोरा बह-रहे, कहीं वृक्षोंकी छायासे सूर्यकी झांई मारे और कही अत्यंत वृक्ष संघट्ट होनेसे सर्वथा न दीखताहो तथा हीरा पन्ना आदिके जारी झरोखावाले महलोंकी पृथ्वीसे शोभित और कोयल कूक रहीहो तथा रमण करनेके निमित्त स्थान जिन-में हो और चित्रविचित्र पुष्प खिलरहें हो तथा झुकझुक झूमझूम भूमिको चूम रहे वृक्षोंकरके शोभित और क्रीडा कथा करके चित्रित ऐसे बागबगीचोंमें स्थित हो मध्यान्हको व्यतीत करे ।

तथा च वैद्यसारसंग्रहे ।

रूक्षं कषायंकटुकंचतिक्तंताम्बूलकर्पूरमनोज्ञवेषम् ।
क्षौद्रेणपथ्यासहसेवनीया स्नेहेनतिष्टेद्वनितासहायः ॥

अर्थ—रूखे, कषेले, तीखे और कडुए रस, एवं पान, कपूर, तथा सहतमि-ला हरडका चूर्ण सेवन करना चाहिये । उज्ज्वल वेष रखना, और प्रीत सहित स्त्रीके साथ रहना चाहिये ।

गीतान्तरेचविधिवत्सुरतंनिषेव्यंदोलाविलासशयनेहरिणेक्ष-णाभिः। संवाहितोरणझणत्करहस्ततालैर्धन्यःस्वहर्म्यसमये विचिनोतिनिद्राम् ।

अर्थ—प्रथम गान सुने पश्चात् गानके विधिपूर्वक स्त्रीसंग करे, तथा स्त्रीके साथ झूलना और शयनमें चलायमान और शब्दायमान हस्ततात जिसके ऐसी स्त्री करके इस वसंतऋतुमें धन्यपुरुष अपने महलोंमें निद्राको लेते हैं।

स्निग्धश्चन्दनकुंकुमप्रभृतिभिःकर्पूरसंमिश्रितैःशय्यां धूपितधौतवस्त्ररचितामास्थायरम्येगृहे । गाढालिङ्ग-नचुम्बनादिरचितैः संवर्द्धयन्मन्मथंसेवेत्तांप्रमदांवसन्त-समयेश्लेष्मक्षयार्थंपुमान् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ--कपूरमिश्रित चंदन और कुंकुम आदिसे स्निग्ध, अगरकी धूनीसे धूपित और उज्ज्वल दूधके झागसदृश सपेदवस्त्रोंसे रचित शय्या ऐसे रमणीक घरमें स्थित हो तथा गाढ आलिंगन चुंबनादि व्यवहारोंसे कामोद्दीपन करताहुआ वसंतऋतुमें कफक्षयके अर्थ पुरुष स्त्रीका सेवन करे इस ऋतुमें स्त्रीके साथ जलविहारभी करना चाहिये क्योंकि लिखा है "व्यायामःपयसः क्रीडा प्रियाभिः परिचेष्टतेति"

ग्रंथान्तरेपि ।

उद्वर्त्तनं वान्तिविरेकनस्यान्येयेप्रियेचंक्रमणंव्यवायम् ।
व्यायाममेणाक्षिवसन्तकालेबालेहितान्याहुरमूनिवैद्याः ॥

अर्थ–हेबाले! अंगमें उवटना करना, वमन करना, रेचन, नस्यकर्म। डोलना, फिरना, मैथुन, कसरत करना, ये कर्म वसन्तऋतुमें हितकारक है।

काश्मीरकृष्णागरुचन्दनैश्चकृतोविलेपोविहितोहिताय ।
अभ्यानिशावासकमातुलानीकटुत्रयंग्रंथिकमश्वगंधा ॥
यवानिकाजीरकमार्द्रकञ्चपुनर्नवामूलकपोतिकापि ।
कूष्मांडकंरामठमेथिकेच हितायतुम्बीत्रपुसंसुपक्वम् ॥

अर्थ–केशर, कृष्णागरु, और चंदन इनको एकत्र घिसके लेप करना, त्रिफला, हलदी, अडूसा, भांग, त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) पीपरामूल, असगंध, अजमायन, जीरा, अदरख, पुनर्नवा (सांठ) (इसको पूनेके जिलेमें सुपारीकी भाजी ऐसा कहते है) मूली, पोईका साग, पेठा, हींग, मेथी, तूंबा और पकाहुआ खीरा ये पदार्थ वसंतऋतुमें हितावह है।

दुग्धिका वास्तुकः कांचनारोद्भवः कुङ्मलःस्याद्धितायै-
व नृणां प्रिये । तंडुलीयःपटोलस्तथा सूरणो मारिषःकारवे-
ल्लं च कोशातकी ॥

अर्थ–उसीप्रकार बडी छोटी दुद्धी, वथुआ, कचनारकी कली, चौंलाई, परवल, जमीकंद, मरसेका साग, करेले और घीया ये पदार्थ वसन्तऋतुमें हितकारी है।

---

१ यत्रागस्त्यहरित्प्रवृत्तपवनव्याधूतचूतव्रजारामोद्दामपरागपुञ्जपिहितव्योमानिशंराजते । छत्रंरेणुचयैरिवस्म रविभोर्यात्रोद्धतैरिच्छतो जेतुंसर्वजगन्ति सस्मरसखोज्ञेयोवसन्तोदयः ॥ १ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मागधीक्षौद्रयुक्तातथापूतनाजांगलानांपलंषष्टिकासर्षपाः ।
वाजिमन्थोमकुष्ठोयवोमुद्गकोवर्त्तुलश्चाढकीकोद्रवाःस्युर्हिताः ॥

अर्थ–सहतयुक्त पीपल तथा सहतयुक्त हरड,जंगली जीवोंका मांस, सांठीचावल,सरसो, चने,मटर,जौं, मूँग,केलाई, अरहर, और कोदों येभीहितकारक हैं।

तृणधान्यंवरारोहेमसूरीरक्तशालयः । राजिकाजुर्णलीचंचूशिग्रुःपक्वंकलिङ्गकम् ॥ वृन्ताकंशिग्रुपुष्पाणिरसोनंरसिकप्रिये । लघुरूक्षंकटूष्णंयद्धितंतत्कुसुमागमे ॥

अर्थ–तृणधान्यकहिये सामखिया, पसाई, इत्यादि, मसूर, लाल चावल, राई, ज्वार, चूकाका साग, सहजना, पका तरबूज, बैंगन, सहजनेके फूल, लहसन, और जो लघु, रूक्ष, कटु और उष्ण पदार्थहैं वोभी सब हितकारीहैं।

रसस्तीक्ष्णःकषायश्चक्षारश्चारुष्करंतथा । स्वेदनंधूमपानं चगंडूषः प्रतिसारणम् ॥ प्रावरणंप्रधमनं हस्त्यश्वैर्गमनंभृशम् । नियुद्धं माक्षिकंमद्यंजीर्णमुष्णंगवांपयः ॥ ताम्बूलमञ्जनंलाजाश्चैताजागरणंश्रमः । वसंतेचगणोगुण्योवासंतीसुमकोमले ॥

अर्थ--तीक्ष्ण, कषैले, और क्षार ये रस, मिलाए, स्वेदन कहिये पसीने निकालना, धूम्रपान, (हुक्कापीना) गंडूषविधि (कुरले करना) प्रतिसारणकर्म, आवरण कहिये सोड, रिजाई पडदा आदि, प्रधमन (नस्यविशेष) हाथी, घोडा इनपर सवारी करना, कुश्ती लडना, सहत, पुराना मद, गरमागरम गौका दूध, तांबूल, नेत्रोंमें अंजन करना, खीलोको खाना; चिंताकरना, रात्रिमें जागना, श्रम करना, ये वसंतऋतुमें हितकारी है ।

पानीयं नैर्झरं वाप्यं कौप्यं हंसोदकंवरम् । गोधूमाश्चेत्समश्नीयात्तदावर्षौषितानपि ॥ कफामयहरीख्यातातत्राप्यंगारकर्कटी । नटीवानन्ददानाट्यचेतालान्तेचलकुण्डला ॥

अर्थ–झरनेका वा बावडीका-व-कूएका पानी हंसोदक पुराने गेहूं गेहूंकी अंगाकर वेश्याका नृत्य देखना ये वसंतऋतुमें पथ्य हैं ।

व्योषक्षारयुतंतक्रं क्वथिताक्काथलीतथा । शशाजहरिणंमांसं तैत्तिरंवार्त्तिकंवरम् ॥ गृहचटकस्यचमांसंनीरदरावस्यचामि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

षंमत्स्याः ॥ नादेयास्ताडागाश्चौंडचाःश्रेष्ठाश्चमत्स्यकाः क्षुद्राः ॥

अर्थ-त्रिकुटा और जवाखारयुक्त छाछ, कढी, उसीप्रकार सागयुक्त कढी (कथलीतिप्रसिद्ध) ससा,हरिण, बकरा, तीतर, लवा, घरकाचिडा, मोर, इनके मांस, और नदी, तालाव, इत्यादिकोंमें उत्पन्नहोनेवाले मत्स्य, और छोटी मछली ये वसंतकालमें हितकारकहैं।

स्नातःकवोष्णनीरैराभूषितोनिजकान्तया ।
सार्द्धंगत्वोपवनेपश्येद्रमेच्चतत्रैवानिर्जनेदेशे ॥

अर्थ-मंदोष्णजलसे स्नानकरके वस्त्रालंकारसे भूषितहो अपनीप्रियाके साथ बगीचेमें जायकर क्रीडाकरे इति ।

वसन्तमें अपथ्य ।

नाडिकाषोदिकाराजकोशातकीमाषदध्यालुकानीक्षुशृङ्गाटकौ । राजमाषांश्चनीवारकुल्माषकान्होलकंमेषमांसंत्यजेत्कौक्कुटम् ॥

अर्थ-अब वसंतऋतुमें जो अपथ्य वस्तु है उनको कहते हैं, जैसे नाडीका साग, पोईका साग, गलका तोरई, उडद, दही, आलू, ईख, सिंघाडे, बडेउरद, समापसाईके चावल, घूंगरा, होला, मेंढा, और मुरगेका मांस ये वस्तु वसंऋतुमें त्याज्य हैं ।

कृशरापृथुकेक्षुविकारमयेमाहिषीभवदुग्धमुरोजघने ।
वटकानपिमाषकृतांश्चपलाण्डुमितीह वसन्तउशंत्यहितम् ॥

अर्थ--कृशरा (तिल और चावलमिली अथवा दालचावलमिली खिचडी) चिरवा ईखके विकार (खांडमिश्री आदि) भैंसका दूध, उडदके वडा, प्याज, ये पदार्थ वसंतऋतुमें अहित हैं ।

अम्लंस्निग्धं दिवास्वापंदुर्जरंभोजनंप्रिये ।
त्याज्यमाहुरयेवैद्यावसंततौंहितेप्सुभिः ॥

अर्थ--खट्टे पदार्थ, तथा स्निग्ध पदार्थ, दिनमें निद्रा, दुर्जर भोजन, ये वसंतऋतुमें सेवन न करे कोई शीतल, मीठे पदार्थकोभी त्यागना कहता है । इति ॥

इति वस तर्तुचर्या ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ ग्रीष्मऋतुचर्या ॥

तीव्रतरदिनकरसंजातसंतापसंतापितशरीरपान्थसार्थसंसेवितमार्गपादपच्छायोंविपुलपिपासाविधुरमृगयूथमरुस्थलीस्थानपरुषतरविचलितमारुतानिकटतटिनीतटतरुपत्रनिकरकलुषितसलिलाशयोयः सनिदाघइतिविजानीयात् ।

अर्थ–तीव्रतर सूर्यसे प्रगट संतापसे संतापित शरीर ऐसे पथिकोंके समूहों करके संसेवित मार्गके वृक्षोंकी छाया तथा अत्यंतपिपासासे व्याकुल मृगोंके यूथ जिनमें ऐसे मरुस्थली स्थान (मारवाडके देश) अत्यंत कठोर विचलित पवन जिसकरके नदीतटके वृक्ष तिनके समूहकरके कलुषित (दूषित) सलिलाशय जिसमें उसको निदाघ अर्थात् ग्रीष्मऋतु कहते हैं ।

ग्रीष्मेतीक्ष्णांशुरादित्योमारुतोनैर्ऋतोऽसुखः । भूस्तप्तासरितस्तन्व्योदिशःप्रज्वलिताइव॥ भ्रान्तचक्राह्वयुगलाःपयःपानाकुलामृगाः ॥ ध्वस्तवीरुत्तृणलताविकीर्णाङ्कित [क्षिति] पादपाः ॥ बहवोमारुतावर्त्ताःपत्राम्बरविभूषिताः । वसंतस्य वियोगेन तापसाइव शोभिताः ॥

अर्थ–ग्रीष्मऋतुमें सूर्य तीखीकिरणवाला होता है, और दुखदाई पवन नैर्ऋत्यकोणका चलता है, पृथ्वी तप्त और नदी सूखकर प्रवाहरहित होजातीहै । दिशा प्रज्वलितसी होजातीहै । चकवा चकवी जलाशयके ढूंढनेको पृथक् पृथक् दिशामें विचरने लगते हैं, जल पीनेको व्याकुल मृगमंडली जिसमें तथा वीरुध (गुल्म) तृण और लता सूखकर गिरजाते हैं । और बडे बडे वृक्ष पत्ररहित होजातेहैं, अथवा मारे आँधीके पत्र टूटकर गिरनेसे पृथ्वी पत्रोंसे आच्छादित होजाती है, और बहुतसे वृक्ष, आंधी भभूरेके पत्ररूप वस्त्रोंसे व्याप्त हो ऐसी शोभा देतेहैं मानो वसंतऋतुके वियोगसे तपस्वी बनबैठे है [तथा मारे आँधीके बडेबडे वृक्ष उखडके पृथ्वीमें गिरपडते हैं, और आक तथा जवासे आदि वृक्ष यौवनअवस्थाको प्राप्त होते हैं]

वाग्भटः ।

तीक्ष्णांशुरतितीक्ष्णांशुर्ग्रीष्मेसाक्षिपतीवयत् ।

---

१ यत्रप्रचंडतरचंडकरप्रतापः संशोषितद्रुमलतातृणवारिपूरः ।
उज्जृम्भतेपवनवेगविकीर्णरेणुच्छन्नाभवंति च दिशः सनिदाघकालः ॥ १ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रत्यहंक्षीयतेश्लेष्मातेनवायुश्चवर्द्धते ॥

अर्थ--ग्रीष्मऋतुमें सूर्य तीक्ष्णकिरणवाला होकर जगत्की चिकनाईको दूर करता है अतएव नित्यप्रति कफक्षीण होता है, और वातकी वृद्धि होती है।

अतोस्मिन्पटुकट्वम्लव्यायामार्ककरांस्त्यजेत् । भजेन्मधुरमे-
वान्नंलघुस्निग्धंहिमंद्रवम् । सुशीततोयैःसिक्ताङ्गोलेह्यात्सक्तू-
न्ससर्करान् ।

अर्थ--इसीसे इस ग्रीष्मऋतुमें नोनके, चरपरे, खट्टे रसोंको और दंडकसरत, तथा सूर्यकी धूपका सेवन त्याज्य है, इसऋतुमें मधुर अन्न, लघु, चिकने, शीतल, और पतले पदार्थ सेवन करे, शीतल जलसे स्नान कर मिश्री मिले सत्तुओंको भोजन करे ।

कुन्देन्दुधवलंशालिमश्नीयाज्जाङ्गलैःपलैः ।
पिबेद्रसं नातिघनंरसालां रागखांडवौ ॥
पानकंपंचसारं वा नवमृद्भाजनेस्थितम् ।
मोचचोचदलैर्युक्तं साम्लंमृन्मयशुक्तिभिः ॥

अर्थ--कुन्दपुष्प और चंद्रके समान उज्ज्वल चावलोंका भात जंगली जीवोंके मांसके साथ भक्षण करे, और जो बहुत गाढे न हो ऐसे मांसरस पीवे, रसाला (सिखरन) और रागखांडव (मुरब्बा) पानक (पने) और पंचसारक (जो दाखखजूरआदिसे बनता है) इनको नवीन मट्टीके पात्रमें स्थितकर तथा केला और फनसके पत्रकरके युक्त और कुछ तिंतडीककी खटाईसे मिश्रितोंको मट्टीकी सराई सरोकोंसे पीवे (अथवा चीनीके पात्रमें करके पीवे)

पाटलावासितंचाम्भःसकर्पूरंसुशीतलम् ।
शशांककिरणान्भक्ष्यान्रजन्यांभक्षयन्पिबेत् ॥
ससितंमाहिषंक्षीरं चन्द्रनक्षत्रशीतलम् ।

अर्थ--चन्द्रमाकी चांदनीके सेवन करता हुआ कपूरसंयुक्त शीत गुलाबज-

१ सितामध्वादिमधुरारागास्तत्राच्छकान्तयः । तेसाम्लाःखांडवालेह्याःपेयाश्चांशुकगालिताः । स्वाद्वम्लपटुकट्वाद्याः प्रलेहास्तत्रखाण्डवाः । गुडदाडिममांसाद्यारागाश्चांशुकगालिताः । हृद्यावृष्यारुचिकराग्राहिणोरागखांडवा इति । तथा । द्राक्षामधुककर्जूरकाश्मर्यैः सपरूषकाः । तुल्यांशैःकल्पितंपूतंशीतंकर्पूरवासितम् । पानकं पंचसाराख्यं दाहतृष्णानिवर्त्तकम् । अन्यत्रचोक्तम् । यथा । गुडदाडिमादियुक्ताविज्ञेयारागखांडवः । त्रिजातमरिचाद्यैस्तु संस्कृ ताः पानकास्तथा ॥ इति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लोंको अथवा पाढरपुष्पवासित जलोंको पीवे, तथा रात्रिमें कर्पूरमिश्रित तरावट करनेवाले पदार्थोंको भक्षण कर (व्यारूकरके) मिश्रि मिला चंद्र और तारागणोंकरके शीतल अर्थात् रात्रिमें शीतल करनेको धराहुआ ऐसा भैंसका दूध पीवे ।

अभ्रंकषमहाशालतालरुद्धोष्णरश्मिषु । वनेषुमाधवीश्लिष्ट-द्राक्षास्तवकशालिषु ॥ सुगंधहिमपानीयसिच्यमानपटालि-के। कायमानेचितेचूतप्रवालफललुम्बिभिः॥कदलीदलकल्हार मृणालकमलोत्पलैः । कल्पितेकोमलैस्तल्पेसहसत्कुसुमल्ल-वे । मध्यंदिनेऽर्कतापार्त्तः स्वप्याद्धारागृहेऽथवा । पुस्तस्त्री-स्तनहस्तस्यप्रवृत्तोशीरवारिणि ॥

अर्थ-आकाशको स्पर्श करनेवाले ऐसे बडे २ शाल और ताल वृक्षोंकरके रुकी सूर्यकी गरम किरण जिन्होंमें तथा द्राक्ष (अंगूर) के गुच्छोंमे लिपटरही माधवीकी लता तिनकरके श्लाघा करने योग्य बनोंमें और वांसकी लकडी आदिसे बना छपरखट अर्थात् बंगला जिसके चारोंतरफ सुगंधित और शीतल गुलाबजलसे छिडके हुए वस्त्रोंके पडदोंसे शोभित और आमके नवीन पत्ते और आमके गुच्छे जिसमें चारोंतरफ लटक रहे तथा केलाके प-त्ता (केलाका गाभा) कल्हार (सुगंधित कमल) मृणाल (कमलकंद) कमल और उत्पल (कमोदनी) इनके कोमल पत्तोंसे रची शय्या, तथा खिले हुए फूलोंके घमले जिन्में धरे हुए और पुत्तलियोंके स्तन, हाथ, और मुखसें खस सुगंधित फुहारे छूट रहे ऐसे धाराघरमें सूर्य तापसे आर्त्त मनुष्यको मध्याह्नमें शयन करना चाहिये ।

निशाकरकराकीर्णे सौधपृष्ठेनिशासुच । आसना स्वस्थ-चित्तस्यचन्दनार्द्रस्यमालिनः ॥ विवृत्तकामतंत्रस्यसुसू-क्ष्मतनुवाससः । जलार्द्रास्तालवृन्तानिविस्तृताः पद्मिनी-पुटाः ॥ उत्क्षेपाश्चमृदूत्क्षेपाजलवर्षिहिमानिलाःकर्पूरमल्लि-कामालाहाराःसहरिचन्दनाः । मनोहरकलालापाःशिश-

---

१ सुगंधितजलकरणविधिः । परिपेलवयातुल्यागुरुगुलुर्मुस्तकाः खलु । चूर्णिताःशशिनोपेतानवभाजनधूप-नम् । कुष्ठमुस्तकसंयुक्तैः पेलवोशीरवालकैः । मृदितामृत्सुपिष्टैस्तैः खदिराङ्गारपाचिताः । सहकाररसाभ्य-क्ताश्चम्पकोत्पलवालकैः । पद्मकुञ्जककुंदैश्चयथालाभाधिवासिताः । श्रेष्ठःसलिलवासोयंस्मृतः सर्वर्तुकोबुधैः॥१॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वःसारिकाःशुकाः । मृणालवलयाःकान्ताः प्रोत्फुल्लकमलो-
ज्ज्वलाः । जंगमा इवपद्मिन्योहरन्तिदयिताःक्लमम् ॥

अर्थ--चन्द्रमाकी किरणोंसे व्याप्त ऐसे महलोंकी छतपर रात्रिमें निवास करना चाहिये, तथा चंदनसे आर्द्र और माला धारण कर रक्खी, कामतंत्र अर्थात् क्रीडासे निवृत्त बहुत पतले और उज्ज्वल वस्त्र (मलमलआदि) को धारण करनेवाला जलसे आर्द्र ऐसे मोरपंखके बने तालवृंतके जिनका नम्र उत्क्षेप अर्थात् हिलातेही तुरत मुडजावे जलकी फुहार जिनसे झरे और अतिशीतल पवन निकले ऐसे पंखोंसे पवन करी जावे, कपूरकी माला, चमेलीकी माला, हरिचंदन मिले मोतियोंके हीरा पन्ना आदिके, हारोंको धारण करना, चुरानेवाले मीठे शब्द और ध्वनि जिनकी ऐसे बालक, तोता, मैना आदिका बोलना, और कमलके अतिकोमल तंतूओंके भूषण जिनके ऐसी रमणीय और प्रफुल्लित कमलको उज्ज्वलताकरके तिरस्कार करनेवाली तथा जंगम अर्थात् विचरनेवाली मानो कमलनी है ऐसी स्त्री, ये सर्व पदार्थ स्वस्थचित्तपुरुषके क्लमको हरण करतेहैं । क्लमके लक्षण शारीरकी चतुर्था-ध्यायमें लिख आएहैं ।

तथा च वैद्यसारसंग्रहे ।

सरांसिवापीसरितोवनानिस्रक्चन्दनं शीतगृहं च सेव्यम् ।
गुडेनपथ्यासहसेवनीयामन्थः प्रयोज्यःकिलघर्मकाले ॥

अर्थ--सरोवर, बावडी, नदी, वन, फूल, माला, चंदन और शीतल घर, (तहखाने आदि) और गुडकेसाथ हरडका चूर्ण, तथा मंथ ए सब वस्तू ग्रीष्मऋतुमें सेवन करनी चाहिये ।

मन्थ ।

सक्तवःसर्पिषाभ्यक्ताःशीतोदकपरिप्लुताः ।
नातिद्रवानातिसान्द्रामन्थइत्यभिधीयते ॥

अर्थ--घृतमिले और शीतल जलसे परिप्लुत न बहुत द्रव न अत्यंत गाढे सत्तुओंको मंथ ऐसा कहतेहैं ।

स्रोतोनिदाघसमयेसितसूक्ष्मवासो हेमाह्वचम्पकनिपीडित-
केशपाशः। श्रीखंडतोयमृगनाभिविकुंठिताङ्गोधन्यःक्षपांक्षप
यतेक्षणलब्धनिद्रः ॥ अतिशीशिरपयोभिःक्षालितेसौधपृष्ठे
सुराभिकुसुमयुक्तांसम्यगास्थायशय्याम् । शशधरकिरणौ-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

घैर्मारुतैश्चप्रसक्तैः प्रशमितपरितापोऽग्लानियोग्यंशयीत ॥

अर्थ—देहके छिद्रोंमें जिससमय गरमी प्रवेश करतीहै उससमय सपेद और महीन वस्त्रको धारण करे सौनजुही और चंपाके फूलसे गुँथा केशपाश जिसका तथा कस्तूरिका चंदनसे लिप्त अंग जिसका ऐसा पुरुष इस ग्रीष्म ऋतुमें क्षणमात्र लब्धनिद्रहो रात्रिको व्यतीत करताहै वह धन्यहै । अतिशीतल जलसे धुलेहुए महलोंकी छत जिनमें ऐसे सपेदीसें पुतेहुए महलोंके ऊपर सुगंधित फूलोंकी सज्या विछी और चंद्रमाकी चांदनी जिसका स्पर्शकरे और जहां किसीप्रकारकी ग्लानि आती न हो ऐसी शय्यापर दूरहुआहै ताप जिसका ऐसे पुरुषको शयन करना चाहिये ।

वर्जयेल्लवणाम्लोष्णंकटुव्यायाममैथुनम् । धारयेदुरसाहारंसूक्ष्मवस्त्रधरोभवेत् ॥ प्राप्तेमध्याह्नसमयेउशीरस्योपवीजनम्। शयीतभूगृहंगच्छेदथवारुचिरंवनम् ॥

अर्थ—इस ग्रीष्मऋतुमें नोनका, खट्टा, गरम और चरपरा पदार्थ भोजन नहीं करनाचाहिये हृदयपर फूलोंके और मोती आदिके हार धारणकरे।मलमलआदि बहुतपतले वस्त्रोंको पहने, मध्याह्न समयमें आर्द्र खसके पंखे ले तहखानोंमें अथवा वनमें जायकर शयन करे ।

मद्यंनपेयं पेयं वा स्वल्पंसुबहुवारि वा ।
अन्यथाशोफशैथिल्यदाहमोहान्करोतितत् ॥

अर्थ—इस ग्रीष्मऋतुमें मद्य नहीं पीना चाहिये यदि वातकफकी प्रकृतिवाला वातक्षयार्थ पीवेभी तो अल्पपीवे और कफपित्तकी प्रकृतिवाला कफ नाशनार्थ बहुतसा जलमिलाय कर पीवे इस विधिके विपरीत पीनेसे सूजन, शिथिलता दाह मोह, आदिको करताहै ।

ग्रन्थान्तरेच ।

शालयः षष्टिकाग्रीष्मकालेयवाजुर्णलीमुद्गनीवारगोधूमकाः ।
वर्तुलश्चाढकीकोद्रवावल्लकाः खंडिकाःस्युर्हितावैमसूरीप्रिये ॥

अर्थ—शाली चावलोंका और साठीचावलोंका भात, जव, ज्वार, मूंग, नीवार, गोधूम, मटर, अरहर, कोदों, चौरा, मटरकी दाल, और मसूर ये पदार्थ ग्रीष्मकालमें हितकारकहैं ।

---

१ गीष्मेगृह्णन्मयूखैरखिलजलमयं चण्डधामा निकामं नित्यं दाहोपशांत्यै प्रभवतिहिविधिश्चित्तजन्मात्ति जन्मा । दंपत्योश्चन्दनाद्यैरुपचितवपुषोः शीततुल्ये सुतल्पे कर्पूराम्भःसुसिक्तव्यजनपरिलसद्वायुरायुःस्वरूपः॥१॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कालिङ्गं स्यादपक्वं त्रपुसमपितथाकर्कटीचाप्यपक्वाकूष्मां-
डंकारवेल्लंघनकुचरुचिरेवास्तुकोमेघनादः । चञ्चूतुम्बीपटो-
लंदधिमधुरमयेशर्करामिश्रितंवै तद्वत्तक्रंसिताढ्यंनवनलिन-
करेग्रीष्मकालेहिताःस्युः ॥

अर्थ–कच्चा तरबूज, कच्ची ककडी, कच्चे खीरे, पेठा, करेले वथुआ, चौंलाई, चूका, घीया, परवल, शर्करा मिला गाढा और मलाईवाला मीठा दही, उसीप्रकार मिश्रीमिली छाछ, ये पदार्थ ग्रीष्मऋतुमें पथ्यहैं ।

प्रियेकोशातकीश्रेष्ठामारिषश्चाप्युपोदिका ।
ग्रीष्मर्त्तौसुहितौबालेशृङ्गाटककसेरुकौ ।

अर्थ–गलका तोरई, मारिषका साग, पोईका साग, सिंघाडे, और कसेरू, ये पदार्थ ग्रीष्मऋतुमें हितकारीहैं ।

पानीयंनैर्झरंवाप्यंकौप्यंश्रेष्ठंनिदाघके ।
सिताचेक्षुगणोबालेपूजितस्तद्रसोऽपि च ॥

अर्थ–झरनेका, बावडीका, तथा कूएका, जल । मिश्री, वा बारीक खांड, ईख, ईखका रस, ये ग्रीष्मऋतुमें हितकारक है ।

स्याद्रसालारसालेहिताग्रीष्मके पायसंपूपसंयावकौलप्सिका ।
मोदकाः फेनिकाछागकंहारिणं शाशकंवार्त्तिरंतैत्तिरंचामिषम् ॥
गृहचटकभवंमांसंमायूरंवैकपोतकस्यापि। घृतपूरोऽतिहितः
स्यादयिविधुवदनेनिदाघकेनित्यम् ॥

अर्थ–सिखरन, खीर, मालपूआ, सेमई, लप्सी, लड्डू फेनी, ये पदार्थ और बकरा, हरिण, ससा, लवा, तित्तर, घरकाचिडा, मोर, कबूतर इनके मांस, और घेवर, ये पदार्थ ग्रीष्मऋतुमें हितकारीहैं ।

क्षुद्रमस्यावराग्रीष्मेनादेयाश्चतडागजाः । हितोमांसरसः
सकुर्मधुरश्चरसःप्रिये ॥ सेविकाःसितयासार्द्धंभक्षिताःसुहिता
मताः । शृतशीतंपयोनीरंशीतलंपानकंहितम् ॥

अर्थ–छोटी मछली, तथा नदीकी और तालावकी मछली, मांसरस, उसी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकार सत्तू, तथा मिष्टरस चिनीमिले सेव, औटा और शीतल दूध, तथा शीतल, जल, और पने ये पदार्थ ग्रीष्मकालमें हितकारी होतेहैं ।

चन्द्रपादादिवास्वप्नंचन्दनंतरणंचके । लघुस्निग्धंद्रवंपथ्यंकाय-स्थासगुडाहिता ॥ उशीरैश्छादितंगेहंसिक्तैर्नीरैः सुगन्धिभिः । शीतलंचतरुच्छायाद्राक्षाचोशीरवीजनम् ॥ दुग्धांधश्चप्रसूनानिबालायाअधरामृतम् । हितान्याहुरयेवालेग्रीष्मेवेद्याइमानिहि ॥

अर्थ-चांदनी, दिनमें सोना, चंदन लगाना, जलमें तैरना, लघु स्निग्ध और पतले ऐसे पदार्थोंका सेवन, गुडयुक्त हरडका भक्षण, सुगंधित जलसे छिडके खसके पडदोंसे आच्छादित घरमें रहना, शीतल पदार्थ वृक्षोंकी छाया, दाख, खसके पंखे, दूध, भात, फूल और १६ वर्षकी अवस्थावाली स्त्रीका अधरामृत ये ग्रीष्मऋतुमें हितकारकहै ।

ग्रीष्मऋतुमें अपथ्य ।

क्षाराम्लकटुघर्माणिमद्यंतीक्ष्णंपटुप्रिये । लघूष्णतिलतैलानित्याज्यान्याहुर्भिषग्वराः ॥ वृन्ताकंचकलिंगञ्चपक्वंशिग्रुश्चगृजनंमाषाःनिष्पावकंगुकृशराभयशुक्रक्रोधाइमेऽहिताग्रीष्मे॥

अर्थ-क्षार, खट्टा, चरपरा, सूर्यकी धूप, मद्य, तीक्ष्णपदार्थ, नोन, लघुतथा गरमपदार्थ, और तिलोंका तेल, ये पदार्थ ग्रीष्मकालमें त्याज्यहैं बैंगन, पके तरबूज, सहजना, लहसन, उरद, चौरा, कांगनी, खिचडी, ये पदार्थ और भय शोक तथा क्रोध ये ग्रीष्ममे अहितकारक हैं ।

सर्षपाराजिकामस्तुवटकामाषसंभवाः । क्वथितामेषमांसंच विदग्धान्नं च मैथुनम् ॥ उपवासोपगमनमायासोदधिपिण्याकमतसिकाकान्ते । कथितंवाइदमहितवाले अयिगोधापिशितमपीत्थंस्यात् ॥

अर्थ-हे कान्ते सरसो, राई, दहीका तोर, उडदके बडे, कढी, मेंढेका मांस, जराहुआ अन्न, मैथुन, उपवास, रस्ता चलना, परिश्रम, दही, तिल आदिकी खल, अलसी, और गोहका मांस, ये पदार्थ ग्रीष्मऋतुमें अहित कारक होतेहैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उन्निद्रतामग्निसेवांत्यजेत्तीव्रंसमीरणम् ।
सूर्यतप्तजलस्नानंग्रीष्मकालेघटस्तानि ॥

अर्थ--रात्रिमें जागना अग्निसे तापना, अत्यंत पवन, और सूर्यकिरणसे तप्त जलसे स्नान ये सब वस्तु ग्रीष्मऋतुमें अहितकारक हैं ।

इति श्रीवृहन्निघण्टुरत्नाकरे ग्रीष्मचर्य्यावर्णनम् ।

अथ वर्षाचर्य्यावर्णनम् ।

अभिनवतमालपल्लवनीलजलधरध्वनितमुदितमयूरसंघट्ट-
विस्तारस्वमुखरितकाननगहनकेताकिकदम्बकुसुमनिचया-
तिशयसुगंधरमणीयमारुतसंदीपितमदनदावानलदाहवेद-
नाविधुरितविरहिजननिकरोगगनतलपतितविपुलसलिल-
परिपूर्णबहलजलकल्लोलसंघट्टघटितसंवाहिनीसंघातोयःसव-
र्षाइतिविजानीयात् ।

अर्थ--अभिनव श्यामतमालके पल्लव (पत्र) वत् नीलजलधर (बदल) की ध्वनिसे मुदित मोर संघट्ट (समूह) विस्तार करके शब्दायमान कानन गहन तथा केतकी, कदंब, कुसुमों (फूल) के अतिशय समूह सुगंधसे रमणीय मारुत तिस करके संदीपित काम दावानलके दाह वेदनाविधुर विरही जनोंके पुंज तथा गगनतलसे पतित विपुल जलकरके परिपूर्ण अत्यंत जलकल्लोल संघट्ट घटित संवाहिनी (नदियोंके) समूह जिसमें उसको वर्षाऋतु जाननी ।

प्रावृष्यम्बरमानद्धं पश्चिमानलकर्षितैः । अम्बुदैर्विद्युदुद्योत-
प्रस्तुतैस्तुमुलस्वनैः ॥ कोमलश्यामशष्पाढ्याशक्रगोपो-
ज्ज्वलामही । कदम्बनीपकुटजसर्जकेताकिभूषिता ॥

अर्थ--सुश्रुतके मतसे प्रथम प्रावृट्ऋतुका वर्णन करते हैं, प्रावृट्ऋतुमें पश्चिमकी पवन करके कर्षित विजली जिन्में चमक रही जलको त्यागकर रहे और अत्यंत तुमुल गर्जनाके करनेवाले ऐसे बादलोंकरके आकाश व्याप्त होता है । तथा कोमल श्याम (हरी) घाससे व्याप्त, और इन्द्रधूटी (वीरबहूटी) करके उज्ज्वल पृथ्वी होती है कदंब नीप (धूलीकदंब) कुडा, रालके वृक्ष, और केतकी इनके पुष्पोंसे भूषित पृथ्वी होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुर्वद्भिश्चातकान्हृष्टान्हंसान्मानसगामिनः ॥ भीमसंतमस प्रायेपथिदुर्गमकर्दमे॥जघनोद्वहनक्लान्ताः प्रमृष्टासारमंडलाः। तडित्प्रभाहृतालोकनिमीलनयनोत्पलाः ॥ गर्जितध्वनिना त्रस्तहृदयाश्चाभिसारिकाः । भेकाकपोतसंकाशैर्मेघैरुच्चाम्बु भूषणैः ॥ जितहंसावलीकांतिबलाकापंक्तिसारितैः । केकागर्भ गलोद्ग्रीवनृत्यबर्हिणवीक्षितैः ।

अर्थ—चात्रिकोंको प्रसन्नकरती और हंसोंको मानससरोवर जानेवाले करती घोर अंधकारप्राय जगत् तथा मार्ग कीच पानी करके दुर्गम अर्थात् चलने योग्य नहीं, और जघनके उद्वहनसे थकित तथा ऊज्ज्वल आसार (धाराओंका पडना) जिसमें तथा बिजलीकी प्रभासे हरण करा देखना जिसमें अतएव निमीलित है नयनोत्पल जिसमें तथा गरजनकी ध्वनिकरके त्रासित हृदय जिनके ऐसी अभिसारिका स्त्री और मंडूक, कबूतरोंके सदृश चित्राविचित्र रंगके मेघउच्च और जलकरके भूषित जिसमें तथा बलाका (बगलाओंकी) पंक्तिके आकाशमें उडनेसे जीती है हंसपंक्ति जिसमें तथा मधुरध्वनि और उच्चग्रीव तथा नाचतेहुए मोरोंकरके वीक्षित ऐसी यह प्रावृट् ऋतु हैं ।

गर्जद्भीमाम्बुवाहःक्षणरुचिरुचिराचुम्बिचंचद्दिगन्तः
कामंकूजत्कलापीनिशितरुशिखरद्योतखद्योतपोतः ।
धारासम्पातजातश्रवणसुखलसद्भेकभेरीनिनादः
प्रावृट्कालागमोऽयंकुसमशरसुहृद्भृंगसंगीतसंगी ॥

अर्थ—भयंकर बादलोंकी गर्जनक्षणरुचि करके सुंदर, तथा बिजलीकी चमक करके आचुम्बित है दिशाओंके प्रान्त जिसमें, यथेष्ट मोरोंका बोलना और रात्रिमें वृक्षोंके ऊपर प्रकाशित है खद्योत (पटवीजनाओंके) झुंड जिसमें, धाराओंके पडनेसे प्रगट श्रवणसुखवाले दादुर, भेरी शब्द जिसमें और भौंराओंका संगीतसंगी-हेमित्र ! यह कामदेवका परमसुहृद प्रावृट्कालका आगम है ।

वर्षाऋतुवर्णन ।

तत्रवर्षासुनद्यम्भःपुरोभग्नतटद्रुमाः । वाप्यःप्रोत्फुल्लकुमुद नीलोत्पलविराजिताः ॥ भूरव्यक्तस्थलश्वभ्रा बहुसस्योप शोभिता । नातिगर्जन्त्स्रवन्मेघनिरुद्धार्कग्रहंनभः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-तहांवर्षाऋतुमें[1] अत्यंत जलके प्रवाहसे उखाडे और बहाए तटके वृक्ष जिन्होंने ऐसी नदी होती है,प्रफुल्लित कमोदनी और नीलकमल जिन्होंमें ऐसी बावडी [तालाव तलैयाआदि] होती है अदृश्यस्थलगर्भा पृथ्वी होजाती है । अर्थात् बडे बडे कुवा गड्ढे जलसे ढगढे जाते हैं और बहुत हरित घाससे हतहो शोभित होती है अत्यंत गर्जनारहित ऐसे वर्षनेवाले मेघोंसे आच्छादित सूर्य और तारागणवाला आकाश होता है ।

सघनवारिदवारिसमाकुलविमलसत्प्रवरोदकपूजिताः ।
समदवातकराहिदिशोदशप्रमुदिताःकृमिकीटभृतामही ॥
नीलशस्यहरितोज्ज्वलामही स्वल्पका सलिलसंप्लुतामही ।
इन्द्रगोपकविराजराजिता पंचभूषणविभूषितावहु ॥

अर्थ-सघन बादलोंके जल करके समाकुल और विमल प्रवरोदक करके पूजित मदसहित वातकारी दशोदिशा और कृमी कीटको धारण करनेवाली पृथ्वी होती है । तथा हरीदूबसे हरित और उज्ज्वल तथा कहीं कहीं विना जलके संप्लुत पृथ्वी होती है एवं इन्द्रगोप (वीरबहूटी) के शोभासे शोभित और पंचभूषण विभूषित होती हैं ।

उन्मत्तभूतांकुरभूधरंस्याद्वेजेवनंवामधुरंविकूजत् ।
मृगामयूराजलदस्यघोषाः सर्वेपिजीवाजलमाप्नुवंति॥

अर्थ--उन्मत्त भूत और अंकुर जिसमें ऐसा पर्वत तथा मृग, मोर बादलोंकी गर्जना सुनकर मधुर बोलरहै तिनसे वन शोभित होरहा इस वर्षाऋतुमें संपूर्ण जीव जलको प्राप्त होते हैं ।

केकीकूजतिकानने च सरसीम्लानाम्बुपूर्णातथा-
हंसामानसमाव्रजंतिकमलानिम्लानतांयान्ति च ।
गर्ज्जन्मेघमहीध्रकन्दरदरीशस्यावृताश्यामला
भात्येवंपवनस्यकोपनकरीवर्षाऋतुश्रेयसी ॥

अर्थ-वनमें मीठीध्वनिसे मोर बोलरहा है सरोवर गदले जलसे परिपूर्ण और हंस मानस सरोवरको गमन करते हैं कमलकुम्हलाएसे होजाते हैं गर्जित मेघके ध्वनिसें पर्वतकी कंदरा और गुफाओंमें प्रतिध्वनि होरहीहै ।

---

१ यत्रव्योमचित्तं चयैर्जलमुचांभूमिर्नवैः शाद्वलैः क्वापिक्वापितु नूतनाम्बुदजलच्छन्नोच्चनिम्नस्थली ।
भेकैः पक्वपलाण्डुखण्डरुचिभिस्तोयाशयाः सेविता नीपैः सर्वदिशश्च सोस्तुजगतो हर्षायवर्षागमः ॥ १ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृथ्वी घाससे हरी इसप्रकार वातके कोप करनेवाली कल्याणकारी यह वर्षाऋतु शोभा देती है।

किंचिद्गर्भोद्भवानिस्युःशस्यानिदृढतांशनैः। शिलीन्ध्रच्छत्रसंयुक्ताभूरव्यक्तजलस्थला॥ कदंबनीपकुटजसर्जकेतकिभूषिता। एवंगुणसमायुक्ताभातिवर्षाऋतुःशुभा॥

अर्थ-गर्भसे उद्भव मनुष्य और घास धीरे धीरे दृढताको प्राप्त होते हैं, शिलीन्ध्रछत्र (छतोना जो वर्षाऋतुमें काष्ठके फूलनेसे प्रगट होता है) तिसकरके संयुक्त और अप्रकटजलस्थला पृथ्वी होती है। कदंब, नीप, (जलकदंब) कुटज, रालके वृक्ष और केतकी इनके पुष्पोंसे भूषित होते हैं ऐसे गुणयुक्त वर्षाऋतु अतिशुभ नहींहै किंतु मध्यम है क्योंकि वर्षाऋतुमें सर्व कार्य रुकजाते हैं।

प्रावृषि पथ्यम्।

गोधूमाः षष्टिकामाषाः कुलित्था रक्तशालयः।राजिकाप्रावृषिश्रेष्ठाऽतसीसिद्धार्थ इत्यपि॥कूष्माण्डंत्रपुसंपक्वंतथापक्वं कलिंगकम्। कोशातकीचवृन्ताकंवास्तुकोमारिषोपि च॥ चञ्चूपटोलौलशुनः पलांडुःससैन्धवंतक्रमुपोदिकाच।मद्यंसिताशिग्ररयेरसालाचौंड्यंप्रियेसारसमम्बुपथ्यम्।

अर्थ-गेहूं, सांठीचावल, उरद, कुलथी, लालचावल, राई, अलसी, सरसों, पकापेठा, और खीरा, तथा पकातरबूज, गलकातोरई, बैंगन, वास्तुक, मारिषका साग, चूका, परवल, लहसन, प्याज, सैंधानिमक मिली छाछ, पोईका साग, मद्य, चीनी, सेहजना, सिखरन, ये पदार्थ तथा चौंड्य, और सरोवरका जल पीना प्रावृट्ऋतुमें पथ्य हैं।

सगुडंदधिचेक्षुगणंकृशराघृतपूरकपायसकंसवृतम्। क्वथिता हरिणाजकपोतपलंशशतित्तिरवार्त्तिरमांसमपि। लप्सिकाफेनिकेपूपसंयावकौमोदकंचामिषंकौक्कुटंकाच्छपम्। क्षुद्रमत्स्यान्हितान्प्रावृषि प्रेयसिप्राहुरंभोजनेत्रेभिषक्सत्तमाः॥

अर्थ-गुडमिला दही, ईख, खिचडी, घेवर, घृतपडी दूधकी खीर, और हरिण, बकरा, कबूतर, ससा, तीतर, बटेर, इनके मांस, लापसी, फेनी, माल-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पूआ, सेमई, लड्डू, मुरगेका मांस, कछुएका मांस, छोटी मछली, ये प्रावृट् ऋतुमें हितकारी हैं ।

अपथ्यानि ।

आमांकर्कटिकांतुंबीमामंचत्रपुसंयवान् । राजकोशातकींनाडींडिंडिशंकारवेल्लकम् ॥ कर्कोटकंचपालक्याशृङ्गाटंचकसेरुकम् । आलुकंमाहिषंक्षीरं प्रावृट्कालेविवर्जयेत्॥निष्पावं वर्त्तुलंकंगुंराजमाषंमकुष्टकम् । त्रिपुटांश्चणकान्मुद्गान्मसूरीमाढकींत्यजेत् ॥

अर्थ–कच्चीकाकडी, सपेदधीया, कच्चाखीरा, जौं, घीयातोरई, नाडीका साग, ढेंडस, करेले, बनकरेले, पालक, सिंघाडे, कसेरू, आलू, भैंसका दूध, ये पदार्थ प्रावृट्कालमें त्याज्यहै । तथा चौरा, वर्त्तुल, कांगनी, राजमास, मोंठ, त्रिपुट (मटर) चना, मूंग, मसूर, और अरहरकीदाल, ये पदार्थ प्रावृट्कालमें सेवन न करे ।

वल्लूरंकोद्रवाञ्श्यामेश्यामाकंजुर्णलीमापि । नीवारंलंघनंचैव कुल्माषानापिवर्जयेत् ॥ अतिव्यवायमेणाक्षिबलवद्विग्रहंतथा ॥ अतिव्यायामकंचैवाध्यशनंपरिवर्जयेत् ॥

अर्थ–सूखा मांस, कोदों, सामखिया, ज्वार, पसाई, अर्ध पक्व यव, लंघन, कुल्माष, ये पदार्थ और अत्यंत मैथुन बली पुरुषसे विरोध अत्यंत व्यायाम और अध्यशन ये प्रावृट्ऋतुमें वर्जितहैं ।

प्रधावनंप्रतपनमभिघातंप्रपीडनम् । प्लवनं तरणंरात्रिजागरं विषमाशनम् ॥ भारप्रहरणं वातमूत्रवर्चोनिरोधनम् । क्षवथूद्गारबाष्पाणां निरोधंछर्दिशुक्रयोः ॥ शीतवीर्यकषायं च कटुतिक्तलघूनिच । रूक्षं च शुष्कशाकंच वर्जयेत्प्रावृषिप्रिये ॥ मायूरमामिषंचर्योगजाश्वरथपत्रकैः । एतानिवर्जयेन्नित्यं प्रावृट्कालेशुभानने ॥

अर्थ–वेगसे दौडना, तापना, ऊँचेसे कुलाँच मारना, जिस कार्यसे धक्का लगे ऐसा करना, देहको पीडाहो ऐसा कार्य करना, जलमें तैरना, उझलना कूदना, रात्रिमें जागना, अनियमित भोजन करना, बोझालेकर चलना,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अधोवायु और मलमूत्र छींक, डकार, आंसू, वमन और शुक्र, इनके वेगको रोकना, शीतल, कषेले चरपरा, कडुए हलके, और रूक्ष, तथा सूखे साग इनको तथा मोरका मांस भक्षण, और हाथी, घोडा, और रथ, इनमें सवारी करना ये सर्व वस्तू प्रावृट् ऋतुमें वर्जित कहीहै ।

वर्षासुगेहं निचितंसुयुक्तंपानेजलं सारसमावृतं वा ।
स्यात्पञ्चकोलंसततं च सेव्यं तैलंतिलानामपियोजनीयम् ॥
स्निग्धंतथाम्लंपिशितं च सेव्यंपथ्याचसेव्यासहसैंधवेन ।
धूपप्रयुक्तंशयनं च कुर्यादुद्वर्तनं कौंकुमकंरजन्या ॥

अर्थ—वर्षाऋतुमें अनेकप्रकारके पदार्थोंसे चित्रविचित्र उत्तम भवनमें रहना चाहिये । और पीनेको जलढके हुए सरोवर या बावडीका पीना चाहिये। पंचकोल और तिलका तेल सेवन तथा चिकना, खट्टा पदार्थ, मांस, और सैंधानिमकमिला हरडका चूर्ण सेवन करना चाहिये । तथा अगर मृगमदआदिकी धूनी रक्खीहो ऐसे स्थानमें शयनकरना तथा हलदी और केशरकी देहमें मालिस करना उचितहै ।

मानंविधायपरिहृत्यपराङ्मुखीभिः कादम्बिनीसमयगार्जित-
कातराभिः । आलिङ्गितोऽतिरभसातुरकामिनीभिर्धन्यः
स्वहर्म्यसमयेविचिनोतिनिद्राम् ॥

अर्थ—मानकरके विमुख माननी अपने प्यारेको परित्यागकरके बैठी फिर मेघमालके उमडघुमड कर गर्जनसे कातर (कायर) ऐसी कामिनियोंने आतुर होकर शीघ्र आलिंगन करा इसप्रकार अपनी प्यारीन्को छातीसे छातीको लगाय इस वर्षाऋतुमें अपने महलोंमें निद्रा लेतेहैं वो धन्यहै ।

जलधरजलधारासीकराणामगम्यं
शिशिरपवनपृथ्वीबाष्पसंसर्गयुक्तम् ॥
धवलनिलयपृष्ठंनित्यमारुह्यातिष्ठे-
दगरुसुरभिवस्त्रप्रावृताङ्गोमनुष्यः ॥

अर्थ—जलधर जलधाराके वोछार (जो कणकासे उडतेहैं) जहां जाने न पावे एवं शीतलपवन, और वाफके संसर्गयुक्त पृथ्वी होतीहै, अतएव उज्ज्वल महलोंके ऊपर रहना चाहिये । तथा मनुष्यको अगरकरके सुगंधित वस्त्रोंसे अंगोंको ढका रखना चाहिये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आदानग्लानवपुषामग्निःसन्नोपिसीदति । वर्षासुदोषैर्दुष्यन्तितेम्बुलम्बाम्बुदेऽम्बरे ॥ सतुषारेणमरुतासहसाशीतलेन च । भूबाष्पेणाम्लपाकेनमलिनेनचवारिणा ॥ वह्निनैवचमन्देनतेष्वित्यन्योऽन्यदूषिषु । भजेत्साधारणं सर्वमूष्मणस्तेजनंचयत् ॥

अर्थ--आदान कालके परिवर्त्तनसे ग्लानयुक्त देह जिन्होंके ऐसे पुरुषोंके अग्नि मंदहोकर शांति होतीहै, वर्षाऋतुमें जब मेघ जलके भारसे लंबायमान होतेहैं उस समय दोषदूषित होतेहैं, अतएव अग्निशांति होतीहै तथा सतुषार पवनका एकसाथही शीतल होनेसे अभ्यंतरवायु दूषित होतीहै, तथा पृथ्वीकी गरमीके निकलनेसे और जलोंके अम्लपाक होनेसे पित्त दूषित होताहै, तथा जलोंके गदले होनेसे (अर्थात् लूतादि तंतु मलमूत्रादिके मिलापसे वर्षाका जल दूषित होताहै, और कालके स्वभावसे) मंदाग्निकरके कफ दूषित होताहै, इसप्रकार इस वर्षाऋतुमें वातपित्त कफ एकही कालमें परस्पर दूषित होतेहैं । इसीसे अन्योन्य दूषितहोनेवाले दोषोंके एकही साथ प्रशमनकर्त्ता सब साधारण वस्तु और जो जठराग्निको प्रबल कर्ता पदार्थहै उनका सेवन करे, इसमेंभी अग्निदीपन करना मुख्यहै[1] ।

आस्थापनंशुद्धतनुर्जीर्णधान्यंरसान्कृतान् । जाङ्गलंपिशितंयूषान्मध्वरिष्टंचिरंतनम् ॥ मस्तुसौवर्चलाढ्यं वा पंचकोलावचूर्णितम् ॥ दिव्यंकौपंशृतंचाम्भोभोजनंत्वतिदुर्दिने ॥ व्यक्ताम्ललवणस्नेहं संशुष्कंक्षौद्रवल्लघु ।

अर्थ–वमन विरेचनादिसे शुद्धदेह जिसका ऐसा पुरुष आस्थापन (निरूहण बस्तीका) सेवन करे तथा पुराने यव गेहूं आदि धान्य, स्नेह शुंठ्यादि युत मांसरसोंका तथा जंगली हरिण ससे आदिके मांसका, यूषोंका, तथा पुराने मधु और अरिष्ट (मद्यके भेद) कालानिमक और पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, और सोंठका चूर्ण) मिली छाछ, आकाशसे वर्षा और कूआका ओटाहुआ जल इतनी वस्तुओंका सेवन वर्षाऋतुमें करे तथा जिसदिन बादलोंसे आकाश घिराहो उसदिन खट्टेनोनके और

---

१ शान्तेमौम्रियतेयुक्तेचिरंजवित्यनामयः । रोगीस्याद्विकृतेमूलमग्निस्तस्मात्रिरुच्यते इति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चिकिने ऐसे भोजन प्रधान जिसमें तथा शुष्क और सहतमिले तथा हलके ऐसे पदार्थ सेवन करने चाहिये ।

अपादचारीसुरभिः सततंधूपिताम्बरः ।
हर्म्यपृष्ठेवसेद्वाष्पशीतशीकरवर्जिते ॥

अर्थ-इस वर्षाऋतुमें मनुष्य पैरोंसे न विचरै किंतु सवारीमें बैठकर आवे-जाय, सुंदर गंधयुक्त जलसे स्नानशीतलहो, सुगंधित वस्त्रोंको धारण कर्ता, तथा भाप, शीत और शीकर (वोछार) रहित ऐसे महलोंके ऊपरले भागमें रहना चाहिये ।

नदीजलोदमन्थाहःस्वप्नायासातपांस्त्यजेत् ।

अर्थ--नदियोंका जल, जलमें भीगे और घृतमिले सत्तू (किंतु तक्रादि-संयोगसे सत्तूखाने चाहिये) निद्रापरिश्रम और धूपमें डोलना त्यागदे ।

ग्रन्थान्तरेतु ।

अथेबालेभजेन्नारींप्रौढांमेघेसुगर्जति । कायस्थांद्राविडींगौरीं रसालांनवयौवने ॥ शिवमुष्णोदकंस्नानंघृतपानंपरूषकम् । चारमज्जादनंद्राक्षांप्रशंसंतिविचक्षणाः ॥

अर्थ-वर्षाऋतुमें जिससमय मेघ गर्जनाकरे उसी समय प्रौढास्त्रीसे रमण करना, हरड, इलायची। हलदी, और सिखरनका सेवन करना, तथा आमला गरमजलसे स्नान, घृतपीना, फालसें चिरोंजी और दाख इनका सेवन हितहै ।

भजेच्छिवांगुडेनसैंधवंयथेष्टभोजनम् । पटोलमौद्भिदंजलं कपित्थदाडिमीफले ॥ उपोदिकापलांडुनारिकेलतैलसट्टकान् । सितोपलामयेशरत्सरोजलोचनेप्रिये ॥

अर्थ-हे प्रिये वर्षाऋतुमें गुडयुक्त हरडका सेवन, सैंधव नोन, यथेष्ट भोजन परवल औद्भिद जल, कैथ, अनार, पोईका साग, काँदे, सट्टक, गिरीका तेल मिश्री, ये पदार्थ सेवन करने चाहिये ।

शृतंदुग्धंचधान्याकमग्निसेवाचवास्तुकः । पद्मबीजंचखर्जूरं बीजपूरश्चमारिषः ॥ महाकोशातकीचञ्चुसुपक्वंकरमर्दकम् । तूतमञ्जीरकंपक्वंसुपक्वंबदरीफलम्॥आम्रमामंतथापक्वंनारिके-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लंगवांपयः । दुग्धमाज्यंजलंदिव्यंपनसःकदलीफलम्॥दधि-
कोशातकीखंडंतक्रगोधूममुद्गकाः । पायसंलप्सिकापूपः
षष्टिकारक्तशालयः । कुंडिलीपोलिकाफेनीमोदकास्तैत्त-
रंपलम् । वार्त्तिकंहारिणंशाशंछागंचैवामिषंवरम् ॥ क्षुद्रम-
त्स्यास्तथाहर्म्येशयनललनोत्तमे । मनुष्याणांहितायैतेवर्ष-
र्तौस्युरहर्निशम् ॥

अर्थ–गरमकरा दूध, धनियां, अग्निके पास देह सेकना, वथुएका साग, कमलगट्टा, खजूर, विजोरा, मारिष साग, गलकातोरई, चूकाका साग, पकेहुए करोंदा, सहतूत, अंजीर, पके बेर, कच्चा आम, वा पकाआम, नारियल, गौका दूध, बकरीका दूध, वर्षाका जल, पनस, गहर, दही तोरई, खांड, छाछ, गेहूं, मूँग, दूधकी खीर, लप्सी, पूआ, सांठीचावल लाल चावल, जलेबी, पूरी, फेनी, लड्डू, तीतरका, बटेरका, हरिण, शशा, बकरी इनका मांस, छोटीमछली, और घरमें शयनकरना, ये वर्षाऋतुमें हितकारक जानने ।

वर्षाऋतुमें अपथ्य ।

गोजिह्वांडिंडिसंचामंमनसंचिर्भटंगुडम् । मकुष्टंकर्कटीं पक्वां
भंगांचित्रफलंतथा ॥ वृन्ताकंत्रपुसंपक्वंपक्वंचापिकलिंगकम् ।
तौषारंपाल्वलंनीरंकैदारंतटिनीभवम् ॥ दिवानिद्रांचमायूरं
मांसंपौर्वसमीरणम् । वृष्टिघर्मश्रमावूक्षंशीतंचैवाशनंप्रिये ।
वर्जयेदरविन्दाक्षिवर्षर्त्तौमनुजोऽनिशम् ।

अर्थ–गोभी, ढेंडस, कच्चा पनस, चिर्भट (चिरवा) गुड, मोठ, पकी काकडी (फूट) भांग. चित्रफल, (सैंध) बैंगन, पके आर्याकी फूट, पका तरबूज, तुषारका किंवा छोटी तलैयाका पानी, खेतका पानी नदीका पानी, दिनमें सोना, मोरका मांस, पूर्वकी पवन, वर्षामें खडा रहना, धूपमें खडा रहना, परिश्रम करना, रूखा और शीतल पदार्थका भोजन ये वर्षाऋतुमें वर्जितहै ।

इति श्रीबृहन्निघंटुरत्नाकरे वर्षर्तुवर्णनं समाप्तम् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शरदृतुवर्णनम् ।

उद्यच्चण्डचण्डतरकिरणनिकरपरिशुष्ककर्दमनिचयविगत-
धाराधरसंरोधशशधरधामधवलितसकलभुवनतलविरलज-
लकल्लोलकंपितकमलकुमुदकह्लारमनोरमतडागभूषितत
लोयःसशरदितिविजानीयात् ।

अर्थ-उदित चंड सूर्यकी चंडतर किरणसमूहोंकरके शुष्ककर्दम (कीच) के स्थल और दूरहुआहै धाराधर (बादलोंका) संरोध अतएव चंद्रमाकी चांदनीसे धवलित सकल भुवनतल कहीं कहीं जलकल्लोलसे कंपित कमल, कुमुद, कह्लार करके मनोहर तालाव तिनकरके भूषित पृथ्वी जिसमें उसको शरद्ऋतु जानना ।

बभ्रुरुष्णःशरद्यर्कःश्वेताभ्रविमलंनभः।तथासरांस्यम्बुरुहैर्भा-
न्तिहंसांसघट्टितैः॥ पङ्कशुष्कद्रुमाकीर्णानिम्नोन्नतसमेषुभूः।
बालसप्ताह्वबन्धूककाशासनविराजिताः ॥

अर्थ-शरदऋतुमें सूर्य पीला और उष्ण होताहै, आकाश सपेद बादलयुक्त और स्वच्छ होताहै, तथा सरोवर हंसोंके स्कंधोंसे चालित कमलोंकरके शोभित होतीहै, निम्नोन्नत अर्थात् उँची नीची पृथ्वी क्रमसे कीच और वृक्षोंसे व्याप्त होतीहै, तथा वृक्षोंमें बमईके करनेवाली छोटी चैंटी (कीडी) होती है, पीयाबासा, सतवन, बंधूक (बादली वा मजनिया) कांस और असन (साल) इन वृक्षोंकरके शोभित होता है, अर्थात् इतने वृक्ष शरदऋतुमें प्रफुल्लित होते हैं ।

मेघाःसूर्यशिलासमानरुचयोह्यल्पस्वनाः सारसाहंसालीजल-
जालिमण्डितजलंपद्माकरंशोभनम्।तीव्रास्तिग्ममयूखइन्दुवि-
मलासानन्दनीकौमुदीचित्राघर्मविपक्वतोयसरसीस्यान्निर्मलं
पुष्करम् ।

अर्थ-शरदऋतुमें मेघ सूर्यमणिके समान उज्ज्वल कांतिवाले होते हैं, और

१ यत्रोज्ज्वलाजलमुचोलसदिन्दुबिंबतारंनभोविकचनीरजकैरवाणि । नीराणिमानससमानिसतांविभांति स्वच्छानिकाशकुसुमानि च साशरत्स्यात् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अल्पशब्द करनेवाले सारस होते हैं । तथा हंसोंकी पंक्ती और कमलोंकरके सरोवर शोभित होताहै, तथा तीव्रकिरणवाले चंद्रमाकी आनंददायक चांदनी होतीहै, और चित्रा नक्षत्रगत सूर्यकी गरमीकरके पक्व जलवाले सरोवर तथा निर्मल आकाश होताहै ।

दर्शयन्तिशरन्नद्योपुलिनानिशनैःशनैः ।
नवसङ्गमसव्रीडाजघनानीवयोषितः ॥

अर्थ–शरदृतु नदियोंके पुलिनोंको धीरे धीरे दिखातीहै, उसकी उपमा श्रीवाल्मीक महर्षि देतेहैं कि, जैसे नवीन संगममें लज्जायुता स्त्री अपने प्राणप्यारेको धीरे धीरे जंघा दिखलातीहै ।

संशुष्यत्पङ्कशङ्काखरकिरणरुचाफुल्लराजीवराजीराजत्कह्लारवल्लीकुसुमचयमिलद्वासनावासिताशा।दुग्धाम्भोधेस्तरङ्गद्युतिरिवविकसत्काशपुष्पप्रकाशंचञ्चच्चन्द्रांशुशोभासकलजनमुदेशारदीरात्रिरेषा ।

अर्थ--तीव्र किरणोंकरके दूर हुईहै कीचकी शंका तथा प्रफुल्लित कमलोंकी पंक्ति तथा कह्लार (सुगंधवान् कमल) और चमेलीके पुष्पसमूहकी सुगंधसे सुगंधित दिशा विदिशा जिसमें तथा क्षीरसमुद्रकी तरंगके सदृश फूलेहुए काशपुष्पोंका प्रकाश जिसमें और चंचल चंद्रमाकी चांदनीकी शोभा जिसमें ऐसी संपूर्ण मनुष्योंको हर्षके देनेवाली यह शरदसंबंधी रात्रि है ।

पित्तेनसान्द्रंरुधिरंशरत्सुवृद्धिंसमागच्छतिसूर्यरश्मिभिः ।
तदाशुरक्तंपरिमोक्षणीयंपानेजलंसारसमुद्दिशन्ति ॥ १ ॥
भोज्याःसदालोहितशालिमुद्गागव्यंघृतंचंद्रकराश्चसेव्याः ।
इक्षोर्विकारामरिचैश्चभक्ष्याःपथ्यासिताव्याकिलसेवनीया ॥ २ ॥
स्थितिःप्रवर्तैरजनीषुकार्याघर्मश्चनित्यंपरिवर्जनीयः । छाया
च सेव्याहरितद्रुमाणां श्रमं नकुर्यात्प्रयतोमनुष्यः ॥ ३ ॥

अर्थ--पित्तकरके गाढा रुधिर शरदृतुमें सूर्यकी किरणोंकरके वृद्धिको प्राप्त होता है, अतएव शीघ्र रुधिरमोक्षण अर्थात् फस्तखोलनी चाहिये, और इसऋतुमें सरोवरका जल पीना चाहिये । लाल चावल, मूंग, गौका घी, ईखके विकार (गुड मिश्री बूराबतासेआदि) और मिरचमिले पदार्थ भोजन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करना चाहिये । तथा मिश्रीमिला हरडका चूर्ण सेवन करना और चंद्रमाकी चांदनी सेवन करनी चाहिये । मेरी समझमें आता है कि, यही कारण शरद् रात्रिको ठाकुर शरदमें बैठारनेका है । रात्रिमें छएहुए मकानमें स्थिति करना और धूप न खानी चाहिये, तथा हरित वृक्षोंकी छाया सेवन करनी तथा इसऋतुमें परिश्रम करना चाहिये ।

भूयान्नरःशरदिचन्दनलिप्तगात्रः स्त्री शर्कराक्वथितदुग्धयु-
ताचसेव्या । कर्पूरपूगपरिपूर्णमुखींचकान्तामाचुम्ब्यशीतल-
कुचांपरिरभ्यशेते ॥

अर्थ- शरदऋतुमें मनुष्यको चंदन लगाय मिश्री मिला औटाया दूध पीकर स्त्रीसेवन करना तथा कर्पूर सुपारीयुक्त बिडा जिसने चबाय रक्खा ऐसा प्यारीके मुखका चुंबन कर और शीतल कुचोंका आलिंगन कर शयन करना चाहिये ।

चन्दनोशीरकर्पूरमुक्तास्रग्वसनोज्ज्वलः ।
सौधेषुसौधधवलांचन्द्रिकारजनीमुखे ॥
श्यामारामारतंशस्तंसेव्याक्षौद्रहरीतकी ।
स्नानपानावगाहेषुहितमंशूदकंहितम् ॥

अर्थ--चंदन, खस, कपूर, मोती, फूलोंकी माल और वस्त्र इनकरके उज्ज्वल हो, ऐसे उज्ज्वल घरकी छत्तपर प्रदोषमें चांदनीका सेवन करे (अन्य समय न करे) तथा १६ वर्षकी स्त्रीसे रमण करना तथा सहत और हरडका सेवन करना तथा स्नान और पानमें हंसोदकका सेवन करना हित है ।

हंसोदकके लक्षणगुण ।

तप्तंतप्तांशुकिरणैःशीतंशीतांशुरश्मिभिः । समंतादप्यहोरा-
त्रमगस्त्योदयनिर्विषम् ॥ शुचिहंसोदकंनामनिर्मलंमलजि-
ज्जलम् । नाभिष्यंदिनवारूक्षंपानादिष्वमृतोपमम् ॥

अर्थ--सूर्यकी किरणोंसे सबदिन तप्त हुआ हो और चंद्रमाकी किरणोंसे सर्व रात्रि शीतल हुआ हो तथा अगत्स्योदयसे निर्विष हुआ हो और जो पवित्र हो उस निर्मल और मल (वातकफ) को जीतनेवाले जलको हंसोदक कहते हैं, यह अभिष्यन्दि और रूक्ष नहीं हैं । पीनेमें आदिशब्दसे स्नानादिकमें अमृतके तुल्य हैं यह विधि वर्षाके जलमें है कूआ बावडी आदिके जलमें नहीं हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सितायुक्ताशिवावालेसितायुक्तःशिवोऽपि च । गुडयुक्ताच कायस्थाधान्याकंसैन्धवंशिवः ॥ गोजिह्वापद्मबीजानिमृणालंगोस्तनीघृतम्।नालिकेरंहितायस्युःशरत्कालेदिवानिशम् ॥

अर्थ–खांडके साथ हरडका चूर्ण अथवा खांडके साथ आमलोंका चूर्ण गुडयुक्त हरड, धनिया, सैंधानिमक, आमले, गोभी, कमलगट्टे, भसेडे, मनुक्का, घृत, नारियल ये पदार्थ शरदऋतुमें हितकारी हैं ।

रसालंतथामंरसालंकपित्थं कलिंगंतथैवामकंतण्डुलीयम् । पटोलंपलाण्डुंसितामाजदुग्धंशरद्याहुरेतानिवैद्याहिताय ॥ वास्तुकोपोदिकानाडिकामारिषाः पायसंपानकंशालयः षष्टिकाः । कुण्डलीफेनिकाजम्बुरम्भाफलंस्युःशरद्यङ्गनेमानवानांमुदे ॥

अर्थ–सिखरन, हरेआम, कैथ, हरातरबूज, चौलाई, परवल, कांदे, खांड, बकरीका दूध, बथुआ पोईका साग, नाडीका साग, मारिष, दूधकी खीर, पने, शाली और सांठीचावल, जलेबी फेनी, जामून, केलाकी गहर ये पदार्थ शरदऋतुमें हितावह हैं ।

चञ्चूकोशातकीबालेशृङ्गाटंदाडिमीफलम्।मातुलुंगोप्ययेकान्तेशरद्येतेहितावहाः ॥ कसेरुकंजलंदिव्यंतौषारंसारसंप्रिये । हंसोदकंचगोधूमाःसोमालीहारिणंपलम् ॥ वार्त्तिरंतैत्तिरंमांसंशाशमाजंचरेचनम्। क्षुद्रमत्स्याःशरत्कालेहितायस्युरहर्निशम् ॥

अर्थ–चूकेका साग, तोरई, सिंघाडे, अनार, विजोरा, कसेरू, वर्षाका जल बर्फका पानी, सरोवरका पानी, और हंसोदक, गेहूं, सुहारीनामक पक्कान्न, तथा हरिण, लवा, तीतर, ससा, और बकरा, इन्होंका मांस तथा छोटी मछली, ये पदार्थ और जुलाबलेना, शरदऋतुमें हितकारी है ।

कषायकंस्वादुरसंचशीतलंपटुप्रियेसाञ्जसरोऽवगाहनम् । लघुप्रियंभोजनमम्बुजाक्षिकेशरद्ययेजाङ्गलमामिषंहितम् ॥

अर्थ–कसेला, स्वाद, शीतल, नमकीन, ऐसे रस, कमलयुक्त सरोवरमें

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्नान, और लघु प्रियकर्ता ऐसे भोजन, तथा जंगली पक्षियोंकी मांसभक्षण ये शरदऋतुमें हितकारक है।

विश्रामंसुहृदां गणेषुमधुरावाचः सुमाल्यंप्रियेनादेयंसलिलं तथाबलवतः शस्तंशिरामोक्षणम् । लोलाक्षि प्रमदोत्तमेहितकराण्याहुःसुवैद्यानृणांसन्नामोंऽघ्रिसरोजयोरिवहरेःप्राणप्रिये सन्मते ॥

अर्थ-सुहृदोंमें रहना, मधुर वाक्य, सुंदर फूलोंकी माला, नदीका पानी और बलवान्की फस्त खोलकर रुधिर निकालना, ये शरदऋतुमें हितकारक है।

शरदि अहितानि ।

शरदुष्णापित्तकर्त्रीनृणांमध्यबलावहा । तस्मात्पित्तकरंसर्वं त्यजेन्नित्यंप्रयत्नतः ॥ पिप्पलीमरिचंभंगांशतपुष्पांरसोनकम् । चिर्भटंरामठंतक्रंवृन्ताकंकृशरां दधि ॥ क्वथितंसार्षपंतैलंमद्यंचित्रफलंतथा । अम्लंतीक्ष्णंकटूष्णंचातपंव्यायामकं गुडम् ॥ दिवानिद्रातिसुरतंमाषान्नंरात्रिजागरम् । मत्स्यंक्रोधं त्यजेद्यत्नाच्छरद्यम्बुरुहेक्षणे ॥

अर्थ-शरदऋतुमें, गरम, पित्तकर्त्ता, और मध्यम बलदायक है, अतएव इसमें पित्तकारक वस्तुओंका त्याग करना चाहिये, जैसे-पीपल, मिरच, भाँग, सौंफ, लहसन, चिर्भट, हींग, छाछ, बैंगन, खिचडी, दही, कढी, सिरसोंका तेल, मद्य, चित्रफल, खट्टा, चरपरा, कडुआ, गरम, धूपमें डोलना, कसरत करना, गुड, दिनमें सोना,अति मैथुन,उरदके पदार्थ, रात्रिमें जागना, बडी मछली, और क्रोध ये शरदृऋतुमें यत्नपूर्वक त्याज्य है।

पक्वंकलिङ्गं त्रपुसं च पक्वं त्यजेत्तथाकर्कटिकांचपक्वाम् । मांसंप्रिये मेषमयूरयोश्चशरद्ययेकुंडलशोभितास्ये ॥

अर्थ-पका तरबूज, खीरा, ककडी और मोर, तथा मेंढा इनका मांस शरदऋतुमें वर्जित है ।

इति श्रीबृहन्निघण्टुरत्नाकरे शरदृतुचर्य्या समाप्ता ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संक्षेपसे ऋतुचर्या ।

शीतेवर्षासुचाद्यांस्त्रीन्वसन्तेऽन्त्यान्रसान्भजेत् । स्वादुं निदाघेशरदिस्वादुतिक्तकषायकान् ॥ शरद्वसन्तयोरूक्षंशीतंघर्मघनान्तयोः । अन्नपानं समासेनविपरीतमतोऽन्यदा । नित्यंसर्वरसाभ्यासःस्वस्वाधिक्यमृतावृतौ ।

अर्थ–हेमंत शिशिर और वर्षामें आद्यरसों [मधुर, अम्ल, और लवण] का सेवन करना और वसंत ऋतुमें तिक्त कटु और कषैले रस सेवन करने चाहिये । ग्रीष्मऋतुमें मिष्टरस और शरदऋतुमें स्वादु तिक्त और कषायरस सेवन करने चाहिये । शरद वसंत ऋतुमें रूक्ष अन्नपान सेवन करे। इस्से विपरीत अर्थात् स्निग्ध पदार्थ हेमंत शिशिर ग्रीष्म और वर्षाऋतुमें सेवन करे । तथा शीतल अन्न पान ग्रीष्म और वर्षाकालमें तथा इस्से विपरीत अर्थात् उष्ण पदार्थ हेमन्त शिशिर वर्षा और वसंत ऋतुमें सेवन करने चाहिये ।इस मनुष्यको चाहिये कि, सब रसोंका अभ्यास सदैव रक्खे, परंतु ऋतुऋतुमें जो वस्तु सेवन करना लिखा है वह उसीउसी ऋतुमें अधिक सेवन करना ऐसा जानना, परंतु यह नियम समधातु और साधारणदेशमें जानना, किंतु जांगलदेश अनूपदेश और विषमधातुवाले पुरुषके प्रति यह नियम नहीं है । विषमधातुवाले पुरुषको धातु साम्यता करनेके अर्थ देश देहके अनुसार अनुक्त ऋतुकेभी आहाराचार कर्तव्य है ।

ऋतुसंधिमें कर्त्तव्य ।

ऋत्वोरन्त्यादिसप्ताहावृतुसंधिरितिस्मृतः । तत्रपूर्वोविधिस्त्याज्यःसेवनीयोऽपरःक्रमात् ॥ असात्म्यजाहिरोगाःस्युः सहसात्यागशीलनात् ।

अर्थ–ऋतु (शिशिर, वसंत, और ग्रीष्म वर्षा आदि) के आदि अंतके सात सात दिन जो होते हैं वो ऋतुसंधि कहाती है, इस ऋतुसंधीमें प्रथम ऋतुकी विधिक्रमसे त्याग करे और आगेकी ऋतुमें जो विधि लिखी है उसका क्रमसे सेवन करना चाहिये क्योंकि सहसा विधित्यागकरनेसे असात्म्यजरोग प्रगट होते हैं ।

ग्रन्थान्तरेच ।

चयप्रकोपोपशमादोषाणांहिद्वयोरपि । सन्धौसाधारणावत्स

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भविष्यद्वर्त्तमानयोः ॥ ऋतुसंधौतुदोषाणांबहुधापरिकल्पना । एवंप्रकाराव्याख्यातुंविधिंवक्ष्याम्यतःपरम् ॥ ह्रासयेदल्पशोऽभ्यस्तंवर्त्तमानर्त्तुकंविधिम् ॥ भविष्यद्धेतुकश्चापि यतेताभ्यासकारणात् । यावदभ्यासयेत्पूर्वंतावत्तंसभजेत्परम् ॥ स्यूरोगास्त्यागयोगाभ्यांसहसासात्म्यसेवनात् । तस्माद्यथोक्तमभ्यस्येदृतुसन्धिविधिंनरः ॥

अर्थ-हे वत्स ! भविष्यत् और वर्त्तमान अर्थात् आनेवाली और वर्तमान दोनों ऋतुओंकी संधियोंमें दोषोंके चय प्रकोप और शान्ति साधारण रीतिसैं होते हैं । फिर ऋतुसंधिमें दोषोंकी अनेक परिकल्पना होतीहै अब इसके उपरांत अन्यविधि कहते हैं मनुष्यकों चाहिये कि जब ऋतुसंधि आवे तबहीसे वर्त्तमान ऋतुकी अभ्यास करीहुई विधिको धीरेधीरे घटावे और आनेवाली ऋतुकी विधिका थोडाथोडा अभ्यासके अर्थ साधन करे । जबतक आगेकी विधिका अभ्यास करे तबतक पिछलीविधिका सेवन करता रहे क्योंकि सहसा असात्म्य सेवनसे त्याग और योग करके रोग प्रगट होते हैं अतएव मनुष्यको उचित है कि यथोक्त ऋतुसंधिकी विधिको अभ्यास करना चाहिये ।

स्वगुणैरतियुक्तेषुविपरीतेषुवापुनः । विषमेष्वपिवादोषाःकुप्यन्त्यृतुषुदेहिनाम् ॥ हरेद्वसन्तेश्लेष्माणं पित्तंशरदिनिर्हरेरेत् । वर्षासुशमयेद्वायुं प्राग्विकारसमुच्छ्रयात् ॥

अर्थ-ऋतुओंके जो जो गुण कहे हैं उन्होंके अत्यंत होनेसे (जैसे हेमंत और शिशिरऋतुमें अत्यंत शरदी पडना गरमीयोंमें अत्यंत गरमी और वर्षामें अत्यंत वर्षाका होना इत्यादि) तथा ऋतुके विपरीत गुण होनेसे (जैसे शरदीकी ऋतुमें गरमी और गरमियोंमें शरदी पडना इत्यादि) तथा ऋतुओंकी विषमता होनेसे (जैसे वर्षाके लक्षण शरदमें शरद ऋतुके लक्षण हेमंतऋतुमें इत्यादि) इन अत्यंत विपरीत और विषमलक्षण होनेसे मनुष्योंके वात पित्त कफ दोष कुपित होते हैं तहां ऋतुओंके स्वगुणातियोगसे छः व्यापत्ति (व्याधि) होतीहै । तथा विपरीत होनेसे छः और ऋतुओंके विषम होनेसेभी छः व्यापत्ति होती है इसप्रकार ऋतुओंकी १८ व्यापत्ती कहीहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वसंतऋतुमें कफको शरदऋतुमें पित्तको और वर्षाऋतुमें वादीको वमन विरेचनादिद्वारा शमन कर्त्तव्य है। परंतु यह विधि जबतक कोई ऋतुविकार न उत्पन्न हो उस्से पूर्वही करना चाहिये।

देशपरत्वविकार।

मत्स्याम्लभोजिनःप्राच्यांनित्यंचानूपसेविनः । श्लीपदो-गलगण्डश्चप्रायस्तेषुभवन्तिहि ॥ १ ॥ निम्नतो-यगतान्मस्यान्भक्षयन्तिसमुद्रजान् । प्रायशःकुष्ठि-नस्तेनमनुष्यादाक्षिणात्यजाः ॥ २ ॥ तैलाम्लभोजिनोनि-त्यंगोधूमविदलाशिनः । भूयिष्ठमर्शसास्तेनखञ्जाश्चावन्ति-जानराः ॥ ३ ॥ मांसकामाःसुराकामाःस्त्रीकामाः साहसे रताःमागधास्तेनभूयिष्ठंदृश्यन्तेराजयक्ष्मिणः ॥ ४ ॥ ती-क्ष्णान्नानिनिषेवन्तेबाल्हीकास्तुविशेषतः । अभिष्यन्दीनि मांसानितथाधान्योदकानि च ॥ ५ ॥ प्रकृत्याचाप्यभिष्य-न्दान्सेवन्तेमानुषाःसदा । तेनबाल्हीकदेशेषुप्रायोव्याधिर्ब-लासकः ॥ ६ ॥ नानादेशस्वभावायेनानाहारास्तथैवच । नानाचारानैकसत्त्वाधार्मिणोऽधर्मिणस्तथा ॥ ७ ॥ तेषांसा-त्म्यं च सत्वं च ऋतुकालंचलक्षयेत् । भैषज्यन्तुततःकुर्या-द्देवंविज्ञायदेहिनाम् ॥ ८ ॥ यस्यदेहस्ययत्सात्म्यं यच्चास्य चरितंभवेत् । तेनभेषजसंयुक्तंभैषज्यमुपकल्पयेत् ॥ ९ ॥ आरोग्यंतेनवर्णौजोबलंवीर्यं च जायते। वर्जनाद्दतुसाम्यानां कृशोनित्यंसुदुर्बलः ॥ १० ॥ नित्यंरोगाभिभूतश्चपुमान्सा-त्म्यविवर्ज्जनात् । तस्मात्सात्म्यंनिषेवेतअसात्म्यंपरिवर्ज्ज-येत् ॥ ११ ॥ सात्म्यसेवीजितक्रोधीनित्यंचापिजितेन्द्रियः। जीर्णभोजीमितःस्वप्नःसुखंजीवत्यनामयः ॥ १२ ॥ ऋतवः प्राग्विनिर्दिष्टाबलयोगस्वभावतः । तेषुगर्भानिषिक्तास्तुत-थारूपास्तथायुषः ॥ १३ ॥ तान्विज्ञाययतोबुद्ध्याप्रश-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्तान्निन्दितानपि । ततोऽस्याहारसंयुक्तं भेषजंवावचारयेत् ॥ १४ ॥ ततोस्यारोगतादेहेबलंवीर्यंचवर्द्धते ।

अर्थ-पूरवके देश (बंगालगडियाआदि)में मनुष्य नित्य अनूपदेशमें रहनेसे और नित्य मछलीको खाते है, अतएव उन्होंके प्रायःश्लीपद (पीलपाउ) और गलगंड (घैंघा)का रोग बहुत होता है । दक्षिणदेश (मुंबई मुंदराज आदि प्रान्त)के मनुष्य जलके नीचे रहनेवाले समुद्रके मच्छोंको भक्षण करते हैं अतएव उन्होंके प्राय कुष्ठका रोग बहुधा होता है । अवन्तीदेश (मालवा मेवाडआदि) में मनुष्य तेल खटाई मिरच गेंहूं दाल आदिका अत्यंत सेवन करते हैं अतएव उनके बवासीर और खंज (पैरोंका रोग) बहुधा होता है । मगधदेश (गया पटनाआदि)के मनुष्य मांस, मद्य, स्त्रीका सेवन और साहसी होते हैं अतएव उन्होंके प्रायः खईका रोग बहुत होता है । बाल्हीकदेशके मनुष्य तीक्ष्ण अन्नपानका सेवन करते हैं तथा अभिष्यंदी (दही आदि) मांस, धान्योदक, तथा प्रकृति करके अभिष्यंदी पदार्थोंका सेवन करनेसे उनके बलासक रोग होता है । विविध देशोंमें विविध स्वभावके और अनेकप्रकारके आहार आचार अनेक प्रकार सत्ववाले कोई धर्मशील और कोई अधर्मी होते हैं उन्होंके सात्म्य (आत्माके अनुकूल पदार्थ) सत्व और ऋतुकालको विचार फिर वैद्यको चिकित्सा करनी चाहिये । जिस मनुष्यको जो आत्माके अनुकूल पदार्थहो और जैसा उसका चरित्रहो उसको उसीके साथ औषध मिलाकर देवे जैसे पूरवके मनुष्य मछली भात खाते हैं तो उनको उसीके साथ औषध देवे जो अत्यंत मद्यपीताहै उसको मद्यके साथ भांगपीनेवालेको भांगके साथ मांस खानेवाले को मांसके साथ अफीम खानेवालेको अफीमके साथ औषध देनी चाहिये।अर्थात् जो मनुष्य जिस वस्तुका सदैव सेवन करता है उसको वह वस्तु प्रथम देकर फिर औषध देवे या उसीमें मिलाकर देनी चाहिये । इसप्रकार करनेसे आरोग्य, वर्ण, ओज, बल और वीर्यकी वृद्धि होती है । अतएव ऋतुसात्म्य और आत्मसात्म्यके परित्याग करनेसे मनुष्य कृश, दुर्बल, और नित्य रोगग्रस्त रहता है । इसीसे मनुष्यको उचित है कि आत्मसात्म्य और ऋतुसात्म्यका सेवनकरे तथा असात्म्यवस्तुका परित्याग करे । जो मनुष्य सात्म्यवस्तुका सेवन करता, क्रोध जीतनेवाला, नित्य जिह्वा उपस्थआदि इन्द्रियोंका जीतनेवाला है, जीर्णभोजी अर्थात् पूर्वभुक्त आहार पचनेके उपरांत भोजन करनेवाला और अनुमानकी निद्रालेनेवाला है वह रोगरहित सुखपू-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वैक पूर्णआयुको प्राप्त होता है बलयोगस्वभावसे पूर्व कहीहुई ऋतुओंमें जो गर्भस्थापना हुए है उन गर्भोंसे उन्ही ऋतुओंके अनुसार रूप और आयुष्यवाले बालक प्रगट होते हैं। अतएव वैद्यको उचित है कि उनमनुष्यका उत्तम और निंदित रूप आयु बलको जानकर उसीके अनुसार आहारके साथ औषधी देनी चाहिये। इसप्रकार आहार विहार सेवन करनेसे इस मनुष्यको नैरोग्यता और देहमें बलवीर्यकी वृद्धि होती है।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे ऋतुचर्यावर्णनं नाम षट्विंशतितमस्तरंगः २६

अथातो दिनचर्याध्यायं व्याख्यास्यामः।

अर्थ–ऋतुचर्याध्याय कहनेके अनंतर अब दिनचर्याध्यायको कहतेहैं। दिनदिनमें जो आचरण कराजावे उसको दिनचर्या कहतेहैं।

मानवोयेनविधिनास्वस्थस्तिष्ठतिसर्वदा । तमेवकारयेद्वैद्यो यतःस्वास्थ्यंसदीप्सितम् ॥ १ ॥ दिनचर्यानिशाचर्यामृतुचर्यायथोदिताम्।विहरन्पुरुषःस्वस्थःसदातिष्ठतिनान्यथा॥२॥

अर्थ–वैद्यको उचितहै कि मनुष्य जिसरीतिसे सर्वकाल स्वस्थरहे ऐसा उपचार करना चाहिये क्योंकि निरोगता सर्व प्राणियोंको सदैव वांछितहै, अतएव दिनचर्या रात्रिचर्या ऋतुचर्या इनमें जैसा जैसा कर्म कहाहै तैसा तैसा आचरण करनेसे सर्वकाल स्वस्थ रहताहै।

स्वस्थके लक्षण।

समदोषःसमाग्निश्चसमधातुबलक्रियः । प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाःस्वस्थइत्यभिधीयते ॥ ३ ॥

अर्थ–दोष, अग्नि, धातु, बल, और कर्म ये जिसके समान हो तथा इन्द्रीमन देह ये प्रसन्न हो उसको स्वस्थ कहतेहैं। कदाचित् कोई शंका करे कि दोष धातु आदिका समानता किसप्रकार जाने इसलिये कहतेहैं।

यत्समत्वंहिदोषाणांभिषग्भिरवधार्यते । नतत्स्वास्थ्यंविनावक्तुंशक्यमन्येनहेतुना ॥ ४ ॥

अर्थ–जिसको वैद्य दोषसमत्व कहते हैं, वह शरीरस्वास्थ्यके विना दूसरे कारण करके कहनेमें नहीं आता अतएव निरोगी पुरुषकोही दोषसमत्व कहसकते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रातःकृत्य।

ब्राह्ममुहूर्त्तेबुद्धचेतस्वस्थोरक्षार्थमायुषः ।
तत्रसर्वाघशान्त्यर्थंस्मरेच्चमधुसूदनम् ॥

अर्थ—प्राणीको उचित है कि रात्रिकी चार घडी बाकी रहनेपर उठकर आयुके रक्षणार्थ तथा संपूर्ण पातकनाशनार्थ मधुरिपू जो विष्णु तिनका स्मरण करना चाहिये ।

प्रातःस्मरणीयमाह व्यासः ।

महर्षिर्भगवान्व्यासःकृत्वेमांसंहितांपुरा ।
श्लोकैश्चतुर्भिर्धर्मात्मापुत्रमध्यापयच्छुकम् ॥ १ ॥
मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।
संसारेष्वनुभूतानियांतियास्यन्तिचापरे ॥ २ ॥
शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसेदिवसेमूढमाविशन्तिनपण्डितम् ॥ ३ ॥
ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोतिमे ।
धर्मादर्थश्चकामश्चसकिमर्थंनसेव्यते ॥ ४ ॥
नजातुकामान्नभयान्नलोभाद्धर्मंत्यजेज्जीवितस्यापिहेतोः ।
धर्मोनित्यःसुखदुःखेत्वनित्येजीवोनित्योहेतुरस्यत्वनित्यः ॥५॥
इमांभारतसावित्रींप्रातः प्रातःपठेत्तुयः ।
सभारतफलंप्राप्यपरंब्रह्माधिगच्छति ॥ ६ ॥

अर्थ—महर्षि भगवान् व्यास पूर्व इस चतुःश्लोकी संहिताको बनाके धर्मात्मा शुकपुत्रको पढाते हुए । यह बात अनुभव करीहुई कि हजारों मातापिता और सैंकडो पुत्र स्त्री इससंसारसे गए और आगे जायँगे अर्थात् पूर्वजन्म और इसजन्मके गए तथा जो शेष है अथवा आगे होनेवाले जन्मके जो मातापिता और स्त्रीपुत्रादि है वो जायँगे [यह निश्चय है इस्से उचित है कि इनमें मोह नहीं करना] शोकके स्थान हजार और भयके स्थान सैंकडों हैं । वो दिनदिनमें मूढ पुरुषको प्राप्त होते हैं पंडितको नहीं होते, अर्थात् हजारोंवार्त्ता ऐसी हैं जिनसे यह मनुष्य शोकाकुल होता है और सैंकडों वार्ताओंसे भयको प्राप्त होता है परंतु यह मूर्खोंके वास्ते है पंडितजनोंको न

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

किसीबातका शोक और न किसीसे डर है क्योंकि पंडित पुरुष शोक भय होनेके कारणोंको अच्छीरीतिसे मिथ्या जानते हैं ॥ ३ ॥ श्रीव्यासभगवान् कहते हैं कि मैं ऊंचे हाथ उठाकर पुकारता हूं परंतु कोई नहीं सुनता मैं कहताहूं कि भाईहो धर्मकरो, धर्मसे धनकी प्राप्ति होवेगी और धनसे संपूर्ण कामना होती है । अतएव धर्मको क्यों नहीं सेवन करते हो अर्थात् धनकामनाकी जड धर्म है अतएव उसीका सेवन सर्वप्राणियोंको कर्त्तव्य है । इस मनुष्यको कामसे भयसे लोभसे और जीवनके लिये धर्मपरित्याग नहीं करना चाहिये क्योंकि धर्म नित्य है और सुखदुःख अनित्य है तथा जीव नित्य है और इसके हेतु (अर्थात् जिनसे यह देह बना है) सो अनित्य है ॥ ४ ॥ ५ ॥ इस भारतसावित्रीको जो मनुष्य नित्य प्रातःकाल उठकर पाठ करता है वो संपूर्ण भारतके पाठका फल प्राप्त हो देहान्तमें परब्रह्मको प्राप्त होता है ।

कस्यचित् ।

स्मृतेसकलकल्याणभाजनंयत्रजायते । पुरुषस्तमजंनित्यंव्रजामिशरणंहरिम् ॥ १ ॥ पुण्यश्लोकोनलोराजापुण्यश्लोकोयुधिष्ठिरः । पुण्यश्लोकाचवैदेही पुण्यश्लोकोजनार्दनः ॥ २ ॥ अश्वत्थामाबलिर्व्यासोहनूमांश्चविभीषणः । कृपःपरशुरामश्चसप्तैते चिरजीविनः ॥ ३ ॥ सप्तैतान्संस्मरेन्नित्यंमार्कण्डेयमथाष्टमम् । जीवेद्वर्षशतंसोपिसर्वव्याधिविवर्जितः ॥ ४ ॥ अहल्याद्रौपदीसीता तारामन्दोदरीतथा । पञ्चकंनास्मरेन्नित्यंमहापातकनाशनम् ॥ ५ ॥

अर्थ–इस प्रकार इस मनुष्यको प्रातःकाल उठकर स्मरण कर्त्तव्य है परंतु यदि वेदोक्त मंत्रोंका पाठ करे तो अति उत्तम है ।

जगकर प्रथम देखने योग्यवस्तू ।

दध्याज्यादर्शसिद्धार्थबिल्वगोरोचनस्रजम् । वाजिवारणगोविप्रहरिद्राशतपर्वणाम् ॥ दर्शनंस्पर्शनंकार्यप्रबुद्धेनशुभावहम् ॥ स्वमाननंघृतेपश्येद्यदीच्छेच्चिरजीवितम् ।

अर्थ–प्राणीको प्रातःकाल उठकर प्रथम दही, घृत, दर्पण, सपेद सरसों, बेल, गोरोचन, फूलमाला, घोडा, हाथी, गौ, ब्राह्मण, हलदी, और बांस, वा दूब, इनका दर्शन और स्पर्श करना शुभ है । इस लिखनेका यह प्रयोजन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

है कि दुष्ट अधर्मी स्त्रीपुरुषका और कुत्ता, बिल्ली आदिको न देखे यदि इनमें-से कोई वस्तु समीप न होवेतो अपने प्रियका दर्शन करे या अपने हाथोंका दर्शन करे। तथा जिसको बहुत जीनेकी इच्छा होवे उसको अपना मुख घृतमें देखना चाहिये। तदनंतर पृथ्वीसे (समुद्रवसने देवि०) इस प्रकार प्रार्थना कर शय्यासे उठना चाहिये।

ईक्षेततततउत्थायवह्निंगांश्रोत्रियंशुभम्।
हित्वाचान्धंच पापिष्ठं नग्नमुत्कृत्तनासिकम्॥

अर्थ—तदनंतर प्रातःकाल उठकर अग्नि देव गौ वेदपाठीब्राह्मण और मंगली पदार्थोंका दर्शनकरे तथा अंधा अधर्मी नंगा नकटा इत्यादि अमंगलीकोंको न देखे।

आयुष्यमुषसिप्रोक्तंमलादीनांविसर्जनम्।
तदंत्रकूजनाध्मानोदरगौरववारणम्॥

अर्थ—प्रातःकाल उठकर मलमूत्र आदिका त्याग करनेसे आयुष्य बढे और आंतडोंमें वायुका शब्द, पेटका फूलना, तथा पेटका भारीपना, इनका नाश होता है।

मलबाधारोकनेके अवगुण।

आटोपशूलौपरिकर्त्तिकाचसङ्गःपुरीषस्यततोर्ध्ववातः।
पुरीषमार्गादथवानिरेतिपुरीषवेगेऽभिहतेनरस्य।

अर्थ—पेटमें गुडगुडाहटशब्द, शूल, तथा गुदामें कतरनेकेसी पीडा, मलरोध बहुत डकारोंका आना, अथवा मुखमार्गहो मलका निकलना ये लक्षण मलकी बाधा रोकनेवाले मनुष्यको होतेहैं।

वातमूत्रपुरीषाणांसङ्गोऽध्मानंक्लमोरुजा।
जठरेवातजाश्चान्येरोगाःस्युर्वातनिग्रहात्॥

अर्थ—अधोवायु, मल मूत्रका न उतरना, अफरा, क्लम, पेटमें पीडा तथा पेटमें अनेकप्रकारके वातजन्यरोग ये अधोवायुका वेग रोकनेसे होतेहैं।

मूत्रवेगधारणके उपद्रव।

बस्तिमेहनयोःशूलंमूत्रकृच्छ्रंशिरोरुजा।
विनामोवंक्षणानाहःस्याल्लिङ्गंमूत्रनिग्रहे॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–मूत्रवेगके रोकनेसे बस्ति तथा मूत्रमार्ग इनमें शूल, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकशूल, शरीरका नवजाना, बद होनेकी जगह खींचनेकीसी पीडा ये लक्षण होतेहैं ।

नवेगितोऽन्यकार्यःस्यान्नवेगानीरयेद्बलात् ।
कामशोकभयक्रोधान्मनोवेगान्विधारयेत् ॥

अर्थ--मलमूत्रके वेगमें दूसरा और कार्य न करे किंतु प्रथम मलमूत्रको त्यागकरे। और यदि मलमूत्रआदि वेगोंके त्यागनेकी इच्छा न हो तो उनको जबरदस्ती न निकाले। कदाचित् कोई शंका करे कि, काम क्रोधादिके वेगभी न रोकने चाहिये इस वास्ते कहतेहैं कि काम, शोक, भय, क्रोध, और मन इनके वेगोंको यत्नपूर्वक धारणही करे । क्योंकि इनके रोकनेसे अनेक गुण हैं ।

शौचादिके गुण ।

गुदादिमलमार्गाणांशौचंकान्तिबलप्रदम्।
पावित्र्यकरमायुष्यमलक्ष्मीकलिपापहृत् ॥

अर्थ–गुदादि मलमार्गोंकी जलमृत्तिकासे शुद्धि करना । कांति और बलकरे, तथा पवित्रकरे आयुष्य बढे और अलक्ष्मी कलि और पातक इनका नाश करताहै ।

शौचप्रयोगः ।

पूर्वोक्तब्राह्मेमुहूर्त्तेउत्थायाचम्येष्टदेवतानमस्कृत्यप्रातःस्मरणं विधायरविंगुरून्नमस्कृत्यग्रामाद्बहिर्नैर्ऋत्यामिषुक्षेपात्येशुद्धमृत्तिकांससिकतांजलपात्रंचादायकीटादिरहितस्थलं गत्वामृज्जलपात्रेनिधायाऽयज्ञियैरनार्द्रैस्तृणैर्भूमिमाच्छाद्य प्रावृताशिराःपृष्ठतःकण्ठलम्बितयज्ञोपवीत एकवस्त्रश्चेदक्षिणकर्णेनिहितयज्ञोपवीतोमौनीघ्राणाऽऽस्येपिधायदिवोदङ्मुखोरात्रौदक्षिणामुखोमूत्रपुरीषेउत्सृज्यलोष्टादिनागुदंपरिमृज्यगृहीताशिश्नउत्थायपूर्वंगृहीतमृज्जलपात्रेगृहीत्वार्द्रामलकमात्रमृज्जलैर्द्विवारंलिङ्गशौचंकृत्वार्धप्रसृतितदर्धार्धमृज्जलैस्त्रिवारमपानंसंशोध्यपुनर्जलैरेवलिङ्गगुदेप्रक्षाल्यशुद्धमृत्तिकयैक

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वारंहस्तंप्रक्षाल्यशुद्धभूमिमागत्यान्यमृज्जलैर्दशवारंवामकरंप्रक्षाल्यततःकरद्वयंसप्तवारंतावद्भिरेवमृज्जलैः प्रक्षाल्यवामदक्षिणपादौप्रत्येकंत्रिःप्रक्षाल्यान्यजलेनद्वादशगण्डूषान्वामभागे कृत्वाजलपात्रंत्रिःपर्युक्ष्यजलबिन्दूञ्जलेनिक्षिप्योपवीतीद्विराचामेत् ।

अर्थ–पूर्वोक्त ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठ आचमन और इष्टदेवको प्रणामकर प्रातः स्मरणकरके सूर्य और गुरु देवको नमस्कार कर [अपने मातापिता आदि वृद्धोंको नमस्कार कर] यदि ग्राममें रहताहो तो ग्रामसे जितनी दूरमें वीरके हाथका छोडा हुआ बाण गिरताहै इतनी दूर जावे और शुद्धमट्टीका पात्र मट्टीका डेला और जलका पात्र साथ लेजावे जहां चैंटी मकोडा आदि जीव न हों उसजगे मट्टी और जलपात्र धरकै अयाज्ञिय अर्थात् जिनको यज्ञमें नहीं लेते ऐसे सूखे घास फूस पत्तेसे पृथ्वीको ढ़ककर मस्तकको बांध पीठकी तरफसे कंठलंबित यज्ञोपवीत करके यदि एक वस्त्रही समीप होवे तो दहने कानपर यज्ञोपवीत चढाय मौनहो नासिकाको और मुखको बंदकर दिनमें उत्तरकी तरफ और रात्रिमें दक्षिणकी तरफ मुख करके मलमूत्र परित्याग करने चाहिये । पश्चात् मिट्टीके ढेलेसे गुदाको शुद्धकर लिंगपकड उसजगेसे खडाहो मट्टीजलके पात्रको ले गिली आमलेके प्रमाण मट्टीजलसे २ वार लिंग धोवे, और अर्द्धप्रसृति (आधापस्सा) उससे आधे मट्टीजलसे तीनवार गुदाको शुद्धकर फिर केवल जलसेही गुदालिंगको धोयकर शुद्ध मट्टीसे १ वार हाथको धोय शुद्ध पृथ्वीमें दूसरे जलमट्टीसे १० वार बायाँहाथ धोवे, तदनंतर दोनों हाथोंको सात २ वार मट्टी जलसे शुद्ध करे । और वामदक्षिणपैरमें तीन तीन बार मिट्टी लगाकर धोवे । फिर अन्य शुद्ध जलसे बाँईतर्फ १२ कुल्लेकर जलपात्रको ३ वार प्रोक्षणकर अँगोछेको कंधेपर रखकर जलकी बिंदू जलमें डालकर २ वार आचमन करे ।

यदि केवल मूत्रमात्रकरेवो एकवार लिंगको धोय बाँएहाथको तीनवार धोवे फिर दोनों हाथोंको दोवार धोवे एक २ वार पैरोंमें मट्टी लगाकर धोवे चार कुल्लेकर आचमन करे ।

दिवायद्विहितंशौचंतदर्धंनिशिकीर्त्तितम् । तदर्धमातुरेप्रोक्तमातुरस्यार्धमध्वनि॥स्त्रीशूद्रादेरशक्तानांगंधलेपक्षयोभवेत् । तथाशौचंप्रकर्त्तव्यंचुलुकेननधारया ॥ परस्यशोणितस्पर्शे-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रेतोविण्मूत्रजेतथा । चतुर्णामपिवर्णानांद्वात्रिंशन्मृत्तिकाः स्मृताः ॥

अर्थ–जितना शौच दिनमें करना कहाहै उस्से आधा रात्रिमें करे और रात्रिसे आधा रोगीको करना और रोगीसे आधा मार्गमें चलनेवाले (पथिक वा वटोही) मनुष्योंको कर्त्तव्य है और स्त्रीशूद्रादि अशक्तोंको जितनेमें दुर्गंध चली जावे इतना शौच करे परंतु गुदा प्रक्षालन चुल्लू भरके करे जलकी धारसे न करे यदि किसी अन्यपुरुषका रुधिर अथवा वीर्य देहमें लग्गया हो तो उसजगे चारोंवर्णोंको ३२ वार मृत्तिका लगाकर जलसे धोना चाहिये ।

हस्तपादप्रक्षालन ।

प्रक्षालनंमृदापाण्योःपादयोःशुद्धिकारकम् ।
मलश्रमहरंवृष्यंचक्षुष्यंराजसापहम् ॥

अर्थ–हाथ पैरोंको मट्टीलगाकर धोनेसे शुद्धी होतीहै । और मल श्रम और रजोगुण इनको नाश करे । तथा वृष्य और नेत्रोंको हितकारक है ।

शरीरशुद्धिंनिर्वर्त्यकृतशौचाविधिर्न्नरः । केशपाशेप्रकुर्वीत प्रसाधन्यादिशोधनम् ॥ ततोहिदन्तनिर्ल्लेखंप्रकुर्याद्विधिना स्मृतम् ।

अर्थ–शरीरकी शुद्धिसे निवृत्तहो और शौचविधिके पश्चात् कंगीसे बालोंको सम्हारना चाहिये । (यह विधि कायस्थादि वर्णोंके वास्ते है क्योंकि ब्राह्मणको बालोंका राखना निषेध है) तदनंतर विधिपूर्वक दंतधावन करना ।

दाँतन करनेकी विधि ।

भक्षयेद्दन्तपवनंद्वादशांगुलमायतम्।कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलमृज्वग्रन्थितथाव्रणम् ॥ एकैकंघर्षयेद्दन्तंमृदुनाकूर्चकेनच । दन्तशोधनचूर्णेनदन्तमांसान्यबाधयन् ॥ क्षौद्रत्रिकटुकाक्तेन तैलसिंधुभवेनवा । चूर्णेनतेजोवत्याश्चदन्तान्नित्यंविशोधयेत् ॥

अर्थ–दाँतन १२ अंगुल लंबी और कनिष्ठिका उंगलीके प्रमाण मोटी, नरम जिसमें गांठ न हों और छिद्र न हों उसको चबायकर आगेसे कूंचीके

१ दंतकाष्ठस्यसुगंधीकरणं–सप्ताहंगोमूत्रे हरीतकीचूर्णसंयुते क्षिप्त्वा गंधोदकेचभूयोविनिक्षिपेद्दन्तकाष्ठानिगंधोदकलक्षण एकात्वक्पत्राअनमधुमारिचैर्नागकुष्ठश्च गंधाम्भः कर्त्तव्यंकिंचित्कालं स्थितान्यस्मिन् जातीफलपत्रैलार्कपूरैः कृतयमैकाशिखिभागैः अवचूर्णितानिभानोर्मरीचिभिः शोषणीयानि ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सदृशकर उस्से धीरे धीरे एक एक दाँतोंको घिसे तथा दाँतके मांसको बचाकर दंतशोधन चूर्णसे दाँतोंको शुद्ध करे दंतशोधन चूर्ण सहत सोंठ मिरच पीपल तेल सैंधानिमक इनकरके तथा तेजवल्कलके चूर्णसे नित्य दाँतोंको रगडे।

मधुकोमधुरेश्रेष्ठःकरञ्जःकटुकेतथा। निम्बःस्यात्तिक्तकेश्रेष्ठः कषायेखदिरस्तथा। समयं च तथालोक्यदोषं च प्रकृतिं तथा। यथोचितैरसैर्वीर्यैर्युक्तंद्रव्यंप्रयोजयेत् ॥

अर्थ-मधुर वृक्षोंमें महुआ, तीखी द्रव्योंमें कंजा, कडुए रसोंमें नीम, और कषेली द्रव्योंमें खैर, श्रेष्ठ जानना, इनमें समय, दोष, प्रकृति, इनको देख यथोचित रसवीर्ययुक्त द्रव्यकी दाँतन करनी चाहिये।

दाँतन करनेके गुण।

तेनास्यमुखवैरस्यगंधाजिह्वास्यजागदाः। रुचिवैशद्यलघुतानभवन्तिभवन्ति च।

अर्थ-इसप्रकार दाँतनके करनेसे इस प्राणीके मुखकी विसरता, मुखकी दुर्गंध, तथा मुखके रोग नहीं होते और रुचि, विशदता (स्वच्छता) और हलकापन ए गुण होते हैं।

दाँतन करनेके काष्ठके पृथक् पृथक् गुण।

अर्केवीर्यंवटेदीप्तिःकरंजेविजयोभवेत् । प्लक्षेचैवार्थसंपत्तिर्बदर्यांमधुरोध्वनिः॥खदिरेमुखसौगन्ध्यंबिल्वेतुविपुलंधनम्। उदुम्बरेतुवाक्सिद्धिराम्रेत्वारोग्यमेवच ॥ कदम्बेतुधृतिर्मेधाचम्पकेतुदृढामतिः। शिरीषेकीर्त्तिसौभाग्यमायुरारोग्यमेवच ॥ अपामार्गेधृतिर्मेधाप्रज्ञाशक्तिस्तथाध्वनिः। दाडिम्यांसुंदराकारःककुभेकुटजेतथा॥ जातीतगरमन्दारैर्दुःस्वप्नंचविनश्यति।

अर्थ-आककी दांतन करनेसे वीर्य प्राप्तहो, वडकी दीप्तिकर, कंजेकी जय देनेवाली, पाखर (पीपरी) की अर्थ और संपत्ति देवे, बेरकी मधुरध्वनि करे, खैरकी मुखसुगंधीकरे, बेलकी विपुलधन देवे, गूलरकी वाक्सिद्धी करे आमकी निरोग करे कदंबकी धैर्य और बुद्धि करे चम्पाकी दृढमति

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करे, सिरसकी दाँतन कीर्त्ती सौभाग्य, आरोग्य, और आयुष्यको देयहै ओंगाकी दाँतन धैर्य बुद्धि, पाठशक्ति तथा उत्तम ध्वनि करे । अनार, धौं, और कूडाकी दाँतन शरीरको सुंदर करे तथा जाही, तगर, और मंदारकी दाँतन करनेसे दुःस्वप्न नाश होताहै ।

निषिद्ध दाँतन ।

गुवाकस्तालहिंतालौकेतकश्चबृहत्तृणः । खर्जूरंनारिकेरं च सप्तैतेतृणराजकाः ॥ तृणराजसमुत्पन्नंयःकुर्यादन्तधावनम् । नरश्चाण्डालयोनिःस्याद्यावद्गङ्गांनपश्यति ॥

अर्थ--सुपारी, ताल, हिंताल, केतक, बृहत्तृण (वांस) खजूर, और नारियल ये सात वृक्ष तृणराज कहतेहैं । जो मनुष्य तृणराजकी दांतन करताहै वह चांडालयोनिको प्राप्त होताहै जबतक गंगा न देखे अर्थात् स्नान न करे ।

दाँतनकरना निषेध ।

नखादेद्गलतालवोष्ठजिह्वादन्तगदेषुतत् । मुखस्यपाकेशोथे चश्वासकासवमीषुच ॥ दुर्बलोऽजीर्णभुक्तश्चहिक्कामूर्च्छामदान्वितः । शिरोरुजार्त्तस्तृषितःश्रान्तोयानःक्लमान्वितः ॥ अर्दितःकर्णशूलीच नेत्ररोगीनवज्वरी । वर्जयेदन्तकाष्ठन्तुहृदामयायुतोपि च ॥

अर्थ--गल, तालु, होठ, जीभ, दांतरोगी, मुखपाक, सूजन, खांसी, श्वास, वमन, तथा दुर्बल, अजीर्णरोगी, भोजनकरा हुआ, हिचकी, मूर्च्छा, मद, मस्तकशूल, तृषित, श्रमकर चुकाहो, रास्तामें चलता हुआ, ग्लानयुक्त, अर्दितवायुवाला, कर्णशूली; नेत्ररोगी, नवीन ज्वरवाला, और हृदयरोगी इनको दाँतन करना निषेधहै ।

दाँतन ग्रहणमें जपनीय श्लोक ।

आयुर्बलंयशोवर्च्चःप्रजाःपशुवसूनिच । ब्रह्मप्रज्ञांचमेधांचत्वन्नोदेहि वनस्पते ॥ इत्यादिस्तुतिवाक्येनयेगृह्णन्तिवनस्पतिम्॥ तत्प्रयच्छंतिसंस्कर्तुरायुर्धीश्रीयशःस्थितीः ।

---

१ सुगंधित दांतन करनेकेगुण । वर्णप्रसादं वदनस्य कांतिंवैशद्यमास्वस्य सुगंधितां च । संसेवितुः श्रोत्रमुखं च वान्तं कुर्वन्ति काष्ठान्यसकृद्रवानाम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-हेवनस्पते! मेरे अर्थ आयु, बल, यश, तेज, संतति, पशु, ब्रह्मप्रज्ञा, और मेधाको तू दे। इत्यादि स्तुतिवाक्योंसे जो वनस्पतिको ग्रहण करतेहैं उसको आयु, धी, श्री और यशकी प्राप्ति हो

जातिपरत्व दाँतन ।

द्वादशाङ्गुलंविप्राणां क्षत्रियाणांदशांगुलम् । अष्टांगुलंतुवैश्यानां शूद्राणांतुषडंगुलम् ॥ दन्तकाष्ठन्तुगृह्णीयात्स्त्रीणांतच्चतुरंगुलम् ।

अर्थ--ब्राह्मणको बारह अंगुलकी, क्षत्रीको दशअंगुल, वैश्यको आठ, शूद्रको छःअंगुल, औरस्त्रीको चारअंगुली दाँतनकरनी चाहिये यह टोडरानन्द लिखताहै ।

जिभीकरनेको धातुपट्टी ।

जिह्वानिर्लेखनंहैमंराजतन्ताम्रजंतथा ।
पाटितंमृदुतत्काष्ठंमृदुपत्रमयन्तथा ॥

अर्थ-जीभि अर्थात् जीभसे मैल उतारनेकीपट्टी सोना, चांदि, तांमेकी बनावे, अथवा चिरी हुई नम्र दाँतनसे अथवा नम्र पत्रसे जीभका मैल उतरना चाहिये ।

दशांगुलंमृदुस्निग्धंतेनजिह्वांलिखेत्सुखम् ।
तज्जिह्वामलवैरस्यदुर्गन्धजडताहरम् ॥

अर्थ-दशअंगुललंबी नरम और स्वच्छ जिभीसे जीभका मैल उतारना चाहिये। जिभी करनेसे जीभका मैल, मुखकीविरसता, दुर्गंध, और जडता दूर हो।

जिह्वानिर्लेखनंकुर्यात्प्राङ्मुखोवाउदङ्मुखः । अभावेदन्तकाष्ठस्यानिषिद्धादिवसेषुच । अपांद्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिर्विधीयते ।

अर्थ-जिह्वानिर्लेखन अर्थात् जिभी पूर्वमुख अथवा उत्तर मुख होकर करना यदि दांतन न मिले तथा कोई पर्वदिन होवे तो उसदिन दांतनके प्रतिनिधि बारह कुल्ले करनेसे मुखकी शुद्धि होतीहै ।

गण्डूषविधि ।

गण्डूषमथकुर्वीतशीतेनपयसासुधीः ।
कफतृष्णामलहरंमुखान्तःशुद्धिकारकम् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–दाँत घिसनेके और जिभीकरनेके उपरांत शीतल जलके वारंवार कुल्ले करे, कुल्ले करनेसे कफ, तृष्णा, मल, ये नष्ट होवे, मुखकी भीतरसे शुद्धि होवे ।

कुर्याद्द्वादशगण्डूषान्पुरीषोत्सर्जनेततः ।
मूत्रोत्सर्गेतुचतुरोभोजनान्तेतुषोडश ॥

अर्थ–मलपरित्यागके पश्चात् इस मनुष्यको १२ कुल्ले करने और केवल मूत्रके त्यागमें ४ कुल्ला एवं भोजन करके १६ कुल्लाकरने चाहिये ।

गरमजलके कुल्ले ।

सुखोष्णोदकगण्डूषः कफारुचिमलापहः ।
दन्तजाड्यहरश्चापिमुखलाघवकारकः ॥

अर्थ–सुखोष्णोदक अर्थात् कुछ गरम जलके कुल्ले करनेसे कफ [वात] अरुचि, मुखका मैल, दांतोंका जिकडना तथा मुखको हलका करनेवालाहै [चिकना करेहै और मुखके समस्त दोष दूर करे] बहुत गरम जलके कुल्ले करना निषेधहै ।

कुल्लाकरना निषेध ।

विषमूर्च्छामदार्त्तानांशोषिणांरक्तपित्तिनाम् ।
कुपिताक्षिमलक्षीणरूक्षाणांसनशस्यते ॥

अर्थ–विष, मूर्च्छा, मद्यसे पीडित, शोषी, रक्तपित्ती, नेत्ररोगी, मलक्षीण तथा रूक्ष रोगी इनको कुल्ला नहीं करना चाहिये । परंतु भावमिश्रके मतसे यह निषेध गरमजलकाहै ।

मुखप्रक्षालन ।

मुखप्रक्षालनंशीतपयसारक्तपित्तजित् । मुखस्यपीडिकाशो-
षनीलिकाव्यङ्गनाशनम् ॥ कुर्याद्वापिकदुष्णेनपयसास्य
विशोधनम् । कफवातहरंस्निग्धंमुखशोथविनाशनम् ॥

अर्थ–शीतल जलसे मुखका धोना रक्तपित्त, मुहांसे, मुखशोष, नीलिका रोग, और झांई इनको नाशकरे तथा गरम जलसे मुखप्रक्षालन करना कफ-वातको हरण करे, मुखकी सूजन नाश करे और स्निग्धहै ।

नस्यविधि तथा गुण ।

कटुतैलादिनस्यार्थंनित्याभ्यासेनयोजयेत् । प्रातःश्लेष्माणि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मध्याह्नेपित्तेसायंसमीरणे ॥ सुगन्धिवदनाःस्निग्धनिःस्वना
विमलेन्द्रियाः। निर्वलीपलितव्यङ्गभवेयुर्नस्यशीलिनः ॥

अर्थ—नस्यके अर्थ कडुआ तेल आदिकी नस्यका सदैव अभ्यास रक्खे वह कफके रोगमें प्रातःकाल, और पित्तकी व्याधिमें मध्याह्न समय, वातके रोगमें सायंकालको नस्य देनी चाहिये, इसप्रकार नस्यलेनेसे मुखमें सुगंधी आवे। सुंदर सुस्वर भाषण, और इन्द्रियोंकी स्वच्छताहो, तथा उसमनुष्यको वली (गुजलट) और पलित (सपेदबाल) और व्यंगरोग कदाचित् नहीं होते।

अञ्जन।

सौवीरमंजनंनित्यंहितमक्ष्णोस्ततोभजेत् ।
लोचनेभवतस्तेन मनोज्ञेसूक्ष्मदर्शने ॥

अर्थ—सौवीराञ्जन अर्थात् सपेदसुरमा नेत्रोंको सदैव हितहै, अतएव नित्य लगाना चाहिये। सपेद सुरमाके लगानेसे नेत्र सुंदर और सूक्ष्म वस्तुदर्शक होतेहैं।

स्रोतोञ्जन।

स्रोतोञ्जनंमतंश्रेष्ठंविशुद्धंसिन्धुसम्भवम्। दृष्टेःकण्डूमलहरं
दाहक्लेदरुजापहम् ॥ अक्ष्णोरूपावहंचैवसहतेमारुतातपौ।
नेत्ररोगानजायन्तेतस्मादञ्जनमाचरेत् ॥

अर्थ—सिंधुदेशमें उत्पन्न हुआ जो शुद्ध काला सुरमा वह नेत्रकी खुजली मल, दाह, और क्लेद आदि पीडाको दूर करे,नेत्रोंको शोभित करे, तथा इसके लगानेसे नेत्र पवन और धूपको सहनशील होतेहैं. तथा इस्के लगानेसे कोई नेत्ररोग नहीं होते अतएव अंजन अवश्य लगाना चाहिये। यह विना शोधेभी लगावे तोभी कुछ अवगुण नहीं करे । कोई कोई औषधोंका बना कज्जल लगातेहैं।

सुरमालगाननिषेध।

रात्रौजागरितःश्रान्तश्छर्दितोभुक्तवाँस्तथा।
ज्वरातुरःशिरःस्नातोनाक्ष्णोरञ्जनमाचरेत् ॥

अर्थ—रात्रिमें जगाहुआ, थका, वमन होनेके उपरांत, भोजनानंतर, ज्वरी; मस्तकसे स्नान कराहो, ऐसे मनुष्योंको सुरमा नहीं लगाना चाहिये।

औषधंचात्रसेवेतसद्वैद्यप्रतिपादितम् ।
जातरोगनिवृत्त्यर्थमाग्नेयंबलवर्द्धनम् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–तदनंतर उत्तम वैद्यकी बनाई अथवा बताई हुई रसायन आदि औषध उत्पन्न रोगकी निवृत्तीके अर्थ और जठराग्निके बल बढानेको सेवन करनी चाहिये । यदि रोग न होवे तोभी सेवन करे कि कदाचित् दोष दुष्ट होकर कोई रोग प्रगट न होवे ।

ताम्बूलभक्षण ।

ताम्बूलंभक्षयेत्पश्चाद्द्विजशेषंतुशोभनम् ।
तीक्ष्णोष्णंकफवातघ्नंमुखेवैशद्यकारकम् ॥

अर्थ--इसप्रकार हाथ मुख धोयके पश्चात् तांबूल भक्षण करे अर्थात् बीडीखाय, यह दांतोंको सुन्दर करे तीक्ष्ण है । उष्ण है । कफवातको हरण करे तथा मुखको स्वच्छकरे हैं। विशेषविधि भोजनके प्रकरणमें कहेंगे ।

ततोऽधिकारिणः सर्वेस्वाधिकारेषु योजयेत् ।

अर्थ–तदनंतर जिसका जो अधिकार है उसको उसी उसी कार्यपर नियुक्त करे अर्थात् जिसको झाडूका अधिकार है उसको झाडूपर, जिसको जलपर हो उसको जलपर, जिसको रसोईका हो उसको रसोईपर जिसको हिसाब किताबका हो उसको हिसाब किताबपर सावधान करने चाहिये ।

क्षौरकृत्य ।

पंचरात्रान्नखश्मश्रुकेशरोमाणिकर्त्तयेत् । केशश्मश्रुनखादीनांकर्त्तनंसम्प्रसाधनम् ॥ पौष्टिकंधनमायुष्यंशौचकान्तिकरंपरम् ।

अर्थ–पांच पांच दिनके अनंतर नख, मूछ, डाढी, और मस्तकके बाल कटाने चाहिये, अर्थात् हजामत बनवानी चाहिये, केश, डाढी मूंछ, और नखोंका कटाना शोभाकारक है, पुष्टिकर, धन, आयुष्य, शौच और कांतिकारक है ।

नासिकाके बाल उखाडनेका निषेध ।

उत्पाटयेन्नलोमानिनासायांनकदाचन ।
तदुत्पाटनतोदृष्टेर्दौर्बल्यंत्वरयाभवेत् ॥

अर्थ–नासिकाके बाल कदाचित् न उखाडे क्योंकि नासिकाके बाल उखाडनेसे दृष्टि शीघ्र मारी जाती है ।

---

१ क्षौरकरानेकामुहूर्त्त । दन्तक्षौरनखक्रियात्रविहिताचौलोदितेवारभेपातङ्ग्यारवीन्विहायनवमं घस्रं चसंध्यांतथा । रिक्तांपर्वनिशांनिराशनवनग्रामप्रयाणोद्यतस्नाताभ्यक्तकृताशनैर्नहिपुनःकार्याहितप्रेप्सुभिः ॥ राजकार्यनियुक्तानांनटानांरूपजीविनाम् । श्मश्रुरोमनखच्छेदेनास्तिकालविशोधनम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

केशपाशेप्रकुर्वीतप्रसाधन्याप्रसाधनम् ।
केशप्रसाधनं केश्यं रजोजन्तुमलापहम् ॥

अर्थ-कंगेसे वा (कंघी) से बालोंको सुधारने चाहिये, केशोंका प्रसाधन बालोंका उत्तम करे तथा रज (धूल) जंतू (जूंआ-लीक) और मलको दूर करे है ।

दर्पन देखना ।

आदर्शालोकनंप्रोक्तंमाङ्गल्यंकान्तिकारकम् ।
पौष्टिकं बल्यमायुष्यंपापालक्ष्मीविनाशनम् ॥

अर्थ-प्रातःकाल दर्पण (आईना) देखना मंगल और कांतिकारक है; पुष्टी, बल और आयुकर है । तथा पाप और अशोभाका नाशक है ।

व्यायाम (दंडकसरत) के गुण ।

लाघवंकर्मसामर्थ्यंविभक्तघनगात्रता । दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते ॥व्यायामदृढगात्रस्यव्याधिर्नास्तिकदाचन । विरुद्धं वाविदग्धं वा भुक्तंशीघ्रं विपच्यते ॥ भवंति शीघ्रं नैतस्यदेहेशिथिलतादयः । नचैनंसहसाक्रम्यजरासमधिरोहति । न चास्तिसदृशंतेनकिञ्चित्स्थौल्यापकर्षकम् । ससदागुणमाधत्तेबलिनांस्निग्धभोजिनाम् ॥ वसन्ते शीतसमये सुतरांसहितोमतः । अन्यदापिचकर्त्तव्योबलार्द्धेनयथाबलम् ॥

अर्थ-प्रातःकाल दंडकसरत और कुश्ती लडनेसे देहमें लघुता, कर्म करनेकी सामर्थ्य, देहका सौष्ठव और दृढता तथा शैथिल्य निवारण होता है । दोष (वातपित्तकफ) क्षय, और जठराग्निकी प्रबलता होती है व्यायाम करके दृढगात्र जिसके ऐसे पुरुषके रोग कदाचित् नहीं होते और विरुद्धआहार तथा विदग्धाजीर्णमें भोजन कराहुआ भी शीघ्र पाचन होवे, नियमितरूप व्यायाम करनेसे शीघ्र देहमें शैथिल्य तथा सहसा जरा (बुढापा) अवस्था नहीं प्राप्त होवे व्यायामके समान स्थौल्य (मोटापन) नाशक दूसरा अन्य उपाय नहीं है । अर्थात् यही स्थूलताको दूर करता है बलवान् तथा स्निग्ध भोजन करनेवाले इनको सदैव गुणकारी है । व्यायाम वसंतऋतुमें तथा शीतकालके दिनोंमें विशेष उपकारी होता है । अन्य (ग्रीष्मादि) ऋतुमेंभी व्यायाम करे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

परंतु जिसमें जितना बल होवे उसका बलार्ध अर्थात् अर्द्धशक्ति करनी चाहिये । गरमीकी ऋतुमें संपूर्ण बलयुक्तव्यायाम करनेसे बलक्षयादि अनेक प्रकारके रोग प्रगट होतेहैं ।

बलार्द्धके लक्षण ।

हृदयस्थोयदावायुर्मुखंशीघ्रंप्रपद्यते । मुखं च शोषंलभतेत-
द्बलार्द्धस्यलक्षणम्॥किंवाललाटेनासायांगात्रसंधिषुकक्षयोः ।
यदासंजायतेस्वेदोबलार्द्धंतुतदादिशेत् ॥

अर्थ–हृदयकी वायु जिस समय मुखमें प्राप्त हो अर्थात् जल्दी जल्दी श्वास चलने लगे और मुख सूखने लगे तो बलार्द्धके लक्षण जानने । अथवा ललाट, नासिका, देह, और संधि, अथवा, गात्रसंधि, और काख इनमें पसीने आयजावे उसको बलार्द्ध कहते हैं ।

व्यायामवर्जित मनुष्य ।

भुक्तवान्कृतसम्भोगःकासीश्वासीकृशः क्षयी ।
रक्तपित्तीक्षतीशोषीनतंकुर्यात्कदाचन ॥

अर्थ–भोजन करेहुएको, स्त्रीसंगके पश्चात्, खांसी, श्वासी, कृश, क्षयी, रक्तपित्ती, क्षत, (व्रण) और शोष (धातुशोषी) इतने रोगियोंको व्यायाम करना निषेध है ।

अतिव्यायामकरनेसे उपद्रव ।

अतिव्यायामतःकासोज्वरश्छर्दिःश्रमःक्लमः ।
तृष्णाक्षयःप्रतमकोरक्तपित्तञ्चजायते ॥

अर्थ–अत्यंत दंडकसरत कुश्ती लडनेसे खांसी, ज्वर, वमन, परिश्रम, क्लम, प्यास, क्षय, प्रतमक, श्वास, और रक्तपित्त इत्यादि संपूर्ण रोग उपस्थित होते हैं ।

अभ्यंगविधि ।

अभ्यङ्गंकारयेन्नित्यं सर्वेष्वङ्गेषुपुष्टिदम् ।
शिरःश्रवणपादेषुतंविशेषेणशीलयेत् ॥

अर्थ–नित्य संपूर्ण देहमें तेलका मालिश करे, उसमेंभी मस्तक, कान और पैरोंमें अच्छी रीतिसे मर्दन करे । तेल मालिश करनेसे संपूर्ण अंग पुष्ट होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पिष्टाद्दशगुणंमांसंमांसाद्दशगुणंपयः ।
पयसोष्टगुणंतैलंखादयेन्नतु मर्दयेत् ॥

अर्थ-पिष्टपदार्थसे दशगुनाबल मांसमें है मांससे दशगुण दूधमें, दूधसे आठ गुणाबल तेलमें है इसीसे तैलको खाय नहीं किंतु मालिश करे ।

तैलाभ्यंगमें श्रीमतिका प्रमाण ।

रविस्तापंकार्न्तिवितरतिशशीभूमितनयोमृतिंलक्ष्मींसौम्यः
सुरपतिगुरुर्वित्तहरणम् । विपत्तिंदैत्यानांगुरुरखिलभोगा-
नुगमनं नृणांतैलाभ्यङ्गात्सपदिकुरुतेसूर्यतनयः ॥

अर्थ-रविवारको तेल लगानेसे ज्वर, चंद्रको कांति, मंगलको मृत्यु, बुधवारको लक्ष्मीप्राप्ति, बृहस्पतिवारको धननाश, शुक्रको विपत्ति, और शनिवारको तेल लगानेसे मनुष्योंकी अखिल भोगोंको प्राप्ति होती है ।

वर्जित वारका परिहार ।

सार्षपं गन्धतैलञ्चयत्तैलंपुष्पवासितम् ।
अन्यद्द्रव्ययुतंतैलंनदुष्यतिकदाचन ॥

अर्थ-सरसोंका तेल, पुष्पवासित (फुलेल आदि) और गंधतेल (अगर, हिना, अंबर मुष्क, संदल आदिके अतर) अथवा पुष्पवासित (गुलाब, केवडा, आदिका अतर) तथा अन्यद्रव्य मिलाहुआ तेल, अर्थात् (नारायण तेल, प्रसारणि तेल, और चंदनादि तेल) ए तेल दूषित नहींहै इनको वर्जित वारमेंभी लगावे तो दोष नहींहै परंतु देहमें तेल या फुलेलही लगाना हितकारी कहाहै ।

तैलमालिसके गुण ।

अभ्यङ्गोवातकफहृच्छ्रमंशांतिंबलंसुखम् ।
निद्रावर्णमृदुत्वायुःकुरुतेदृढपुष्टिकृत् ॥

अर्थ-अभ्यंग करना वात कफको हरण करे परिश्रम दूर होवे शांति, बल, सुख, निद्रा लाताहै। और वर्णको उज्ज्वल करे । देहको नम्र करे। और आयु दृढ, तथा पुष्टिहोतीहै ।

मस्तकमें तेल डालनेके गुण ।

अभ्यङ्गःशीलितोमूर्ध्निसकलेन्द्रियतर्पणः । दृष्टिपुष्टिकरोह-

---

१ मंजिष्ठयाव्याघ्रनखेनशुक्त्यात्वचासकुष्ठेनरसेनचूर्णः । तैलेन युक्तोर्कमयूखतप्तःकरोतिसंश्वंपकगन्धतैलम् ॥ इति सुगंधितैलम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

न्तिशिरोभूमिगतान्गदान् ॥ केशानांबहुतांदाढर्यंमृदुतांदी-
र्घतांतथा । कृष्णतांकुरुतेकुर्य्याच्छिरसः पूर्णतामपि ॥

अर्थ–मस्तकमें तेल डालकर मालिश करनेसे समस्त इन्द्रियोंकी तृप्ति होवे, दृष्टिको अर्थात् देखनेकी शक्तिको पुष्टकरे,शिरोभूमिगत रोगोंका ध्वंस, बालोंकी बाहुल्यता, दृढता, नम्रता, लंबे, तथा कालेहो । और मस्तकमें पूर्णता इत्यादि गुण होते हैं ।

कानोंमें तेल डालनेके गुण ।

नकर्णरोगोनमलोनचमन्याहनुग्रहः । नोच्चैःश्रुतिर्नवाधिर्य्यं
स्यान्नित्यंकर्णपूरणात् ॥ रसाद्यैःपूरणंकर्णेभोजनात्प्राक्प्रश-
स्यते । तैलाद्यैःपूरणंकर्णेभास्करेऽस्तमुपागते ॥

अर्थ–कानोंमें नित्यप्रति तेल डालनेसे कभी कानके रोग नहींहों, तथा कानमें मैल, मन्यानाडीका जिकडना ठोडीका जिकडना,ऊंचा सुनना, तथा बेहरापना, ए रोग कदाचित् नहीं होतेहै । यदि कानमें रसादि डालने हो तो प्रातःकाल भोजनके पूर्व डाले, और तेल रात्रिमें डालना कहाहै ।

पादाभ्यंग ।

पादाभ्यङ्गःस्तुतत्स्थैर्यंनिद्रादृष्टिप्रसादकृत् । पादसुप्तिश्रम-
स्तम्भसंकोचस्फुटनप्रणुत्॥ व्यायामक्षुण्णवपुषंपद्भ्यांसम-
र्दितंतथा।व्याधयोनोपसर्पंतिवैनतेयमिवोरगाः॥ रोमकूपशि-
राजालधमनीभिःकलेवरम् । तर्पितंबलमाधत्तेस्नेहयुक्तोऽ
वगाहने ॥ अद्भिःसंसिक्तमूलानांतरूणांपल्लवादयः । वर्धते
च तथानृणांस्नेहसंसिक्तधातवः ॥

अर्थ–पैरोंमें तेलकी मालिश करनेसे पैर स्थिर होतेहैं, निद्रा और दृष्टिकी प्रसन्नता करेहैं, तथा पैरोंका सोना, श्रम, स्तंभ, संकोच और फटना दूरहो । व्यायाम, (दंडकसरत) करके श्रमित और पैरोंमें तेलका मालिश करने-वाले मनुष्यके पास रोग इसप्रकार नहीं आते जैसे--गरुडके पास सर्प नहीं आते । अनुवासनप्रयुक्त तेल रोमकूप शिराजाल और धमनीकरके संपूर्ण देहके भीतर प्रवेशहोकर देहकी तृप्ति और बलवृद्धिकरे है । अतएव स्नानके समय देहमें तेल लगाना उचित है।जैसे जडमें जल सींचनेसे वृक्षके डाली, पत्ते आदि बढते हैं उसीप्रकार अनुवासनबस्तिद्वारा मनुष्यके धातु (अंग) बढते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अभ्यङ्गायोग्यमनुष्य ।

तरुणज्वरीह्यजीर्णीचनाभ्यक्तव्यःकदाचन । तथाविरक्तोवान्तोवानिरूढोयश्चमानवः ॥ पूर्वयोःकृच्छ्रताव्याधेरसाध्यत्वमथादिवा । शेषाणां तादिहप्रोक्तावह्निसादादयोगदाः ।

अर्थ–तरुणज्वरमें अजीर्णमें तथा वमनविरेचन और निरूहणक्रिया करनेके पश्चात् स्नेहाभ्यंग अर्थात् तेलकी मालिश करना निषेध है नवज्वरमें तथा अजीर्णमें अभ्यंग करनेसे कृच्छ्रसाध्य वा असाध्य पीडा प्रगट होती है उसीप्रकार शेषोक्त अर्थात् वमनविरेचन और निरूहण क्रियावालोंको तेल लगानेसे अग्निमांद्य आदि रोग होते हैं ।

उवटना करनेके गुण ।

उद्वर्त्तनङ्कफहरंमेदोघ्नंशुक्रदम्परम् ।
बल्यंशोणितकृत्कान्तित्वक्प्रसादमृदुत्वकृत् ॥

अर्थ–तेल लगानेके पश्चात् उद्वर्त्तन (उवटना) करना कफ और मेदको हरण करे हैं और शुक्रकी वृद्धि बलोत्पत्ति रक्तवृद्धि तथा त्वचाको उज्ज्वल और नम्र करे है [आटा हलदीका चूर्ण चिरोंजी आदिको एक कर जलमिलाय प्रथम लेपकर पीछे छुडाय डालते हैं उसको उवटना कहते हैं] इसीप्रकार औरभी जानो ।

मुखलेप ।

मुखलेपाद्दृढंचक्षुःपीनोगण्डस्तथाननम् ।
कान्तमव्यङ्गपिडिकंभवेत्कमलसन्निभम् ॥

अर्थ–मुखलेप (तेल लगाय फिर उवटना करने) से नेत्र दृढ हो गाल पुष्ट हो तथा मुख कान्तियुक्त झांई और मुहांसे रहित कमलके समान सुंदर होवे।

स्नान ।

दीपनंवृष्यमायुष्यंस्नानमोजोबलप्रदम् ।
कण्डूमलश्रमस्वेदतन्द्रातृड्दाहपापनुत् ॥

अर्थ–स्वस्थ और बलवान् पुरुषको नित्य प्रति स्नान करना चाहिये, स्नान करनेसे अग्नि दीप्त हो, तेजकी वृद्धि, आयुप्रतिपालन, बलोत्पत्ति, और वृष्य है । तथा खुजली, मैल, परिश्रम, पसीने, तन्द्रा, प्यास, दाह, और पाप [दुष्टता] इनको दूर करे हैं ।

---

१ चूर्णं कुष्ठमुरानागकेशराणां घृतान्वितम् । मधुपीतं करोत्यंगं सौरभं सततं नृणाम् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्नानसे जठराग्नि कैसे दीप्त होती इसलिये कहतेहैं

बाह्यैश्चसेकैःशीताद्यैरुष्णान्तर्यातिपीडितः ।
नरस्यस्नातमात्रस्यदीप्यतेतेनपावकः ॥

अर्थ–शीतल जलादि करके देहके बहिर्भागसिक्त होनेसे देहकी गरमी प्रतिहत (अर्थात् बाहर निकलनेसे रुककर) देहके भीतर प्रवेश कर जठराग्निको प्रबल करे इसीसे स्नानानंतर क्षुधा लगती है ।

शीतल और उष्ण जलस्नान ।

शीतेनपयसास्नानंरक्तपित्तप्रशान्तिकृत् ।
तदेवोष्णेनतोयेनबल्यंवातकफापहम् ॥

अर्थ– शीतल जलसे स्नान रक्तपित्तको शांति करे है । वही स्नान गरम जलसे करे तो बल करे और वातकफको दूर करे है । परंतु अति शीतल देश (काश्मीर काबूल आदिमें) शीतल जलसे स्नान सर्वथा त्याज्य है और गरम जलसेभी कभी कभी करना चाहिये । परंतु अति शीतल और अत्यंत गरम जलसे स्नान करना सर्वत्र वर्जित है ।

उष्ण जलके गुणागुण ।

शिरःस्नानमचक्षुष्यमत्युष्णेनाम्बुनासदा ।
वातश्लेष्मप्रकोपेतुहितंतंतच्चप्रकीर्तितम् ॥

अर्थ–अति गरम जलसे मस्तकस्नानकरना नेत्रोंको और बालोंको सदैव अहित है "अत्युष्णेनोत्तमाङ्गस्य बलहृत्केशचक्षुषाम्" परंतु वातकफके कोपमें गरम जल मस्तकपर डालना हित कहा है ।

चार वस्तु मनुष्यको सदैव पथ्य है ।

अशीतेनाम्भसास्नानंपयःपानंनवाःस्त्रियः ।
एतद्धोमानवाःपथ्यंस्निग्धमल्पं च भोजनम् ॥

अर्थ–हे मानवहो ! गरम जलसे स्नान, दुग्धपान तरुण स्त्रीसै रमण, तथा स्निग्ध और अल्प भोजन ये चार वस्तु सदैव हित है ।

हरिश्चन्द्रः ।

यःसदामलकैःस्नानं करोति सविनिश्चितम् ।
वलीपलितनिर्मुक्तोजीवेद्वर्षशतंनरः ॥

---

१ सूक्ष्मैलाकस्तूरीकुष्ठत्वक्पत्रचंदनैःसुतनु । मलयानिलजलवासं रचय महीपालतिलकानाम् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-जो नित्य आमलेके कल्कको देहमें लगाकर स्नान करताहै वह वलीपलितसे निर्मुक्तहो सौवर्ष जीवे ।

स्नाननिषेध ।

स्नानंज्वरेतिसारेचनेत्रकर्णानिलार्त्तिषु ।
आध्मानपीनसाजीर्णभुक्तवत्सुचगर्हितम् ॥

अर्थ-ज्वर, अतिसार, नेत्ररोग, कर्णरोग, वादीका रोग, अफरा, अजीर्ण, और भोजनके उपरांत स्नान करना वर्जित है ।

अङ्गमार्जन ।

स्नानस्यानन्तरंसम्यग्वस्त्रेणतनुमार्ज्जनम् ।
कान्तिप्रदंशरीरस्यकंडूत्वग्दोषनाशनम् ॥

अर्थ-स्नान करके अंगोछेसे अच्छी तरह देह पूछना शरीरमें कांति करे और खुजली तथा त्वचाके दोष नाश करे ।

सितंमांजिष्ठपीतंचनीलंब्राह्मणतःक्रमात् । अष्टहस्तंनवंश्वेतं सदशंनान्यधारितम्।अहतंतद्विजानीयात्सर्वकर्मसुपावनम्॥

अर्थ--सफेत लाल पीला और नीला वस्त्र क्रमसे ब्राह्मणादिकोंको धारण करना चाहिये अर्थात् ब्राह्मण सफेद, क्षत्री लाल, वैश्य पीला और शूद्रको नील रंगका वस्त्र धारण करना चाहिये । तथा आठ हाथका नवीन सफेद विना फटा और किसी दूसरेने धारण न कराहो उसको अहतवस्त्र कहते हैं, यह पवित्रवस्त्र सर्व कर्ममें धारण करना चाहिये ।

ऋतुमें वस्त्रधारण ।

शीतकालेतुकौशेयंकषायंघर्मवासरे ।
वर्षासुश्वेतवस्त्रंस्यादेवंवस्त्राणिधारयेत् ॥

अर्थ--शीतकालमें रेशमी वस्त्र, गरमीमें गेरुआ वस्त्र, और वर्षामें सपेद वस्त्र धारण करना चाहिये ।

रेशमी वस्त्र ।

कौशेयंचित्रवस्त्रञ्चरक्तवस्त्रंतथैवच ।
वातश्लेष्महरंतत्तुशीतकालेविधारयेत् ।

---

१ पट्टवस्त्रंत्रिदोषघ्नं त्वच्यंचानन्दकीर्तिदम् । वशीकरं पवित्रं च शुक्रपुष्टिबलप्रदम् ।
२ त्वक्कुष्ठरेणुनलिकास्पृक्कारसतगस्वालुकैस्तुल्यैः । केशरपत्रविमिश्रैर्नरपतियोग्यांशिरःस्नानम् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–कौशेय (रेसमी पीताम्बर, सनिया टसर आदि) रंगीन वस्त्र वा चित्रविचित्र रंगका वस्त्र अथवा लाल वस्त्र ये वातकफनाशकहै अतएव शीत कालमें धारण करने चाहिये, कोई चित्रवस्त्रके स्थानमें ऊनीवस्त्र बनात, लोई धुसा शाल, कंबल आदिका ग्रहण करतेहैं ।

कषायवस्त्र ।

मेध्यंसुशीतंपित्तघ्नंकषायंवस्त्रमुच्यते ।
तद्धारयेदुष्णकालेतत्रापिलघुशस्यते ॥

अर्थ–पवित्र, शीतल और पित्तनाशक कषायवस्त्र (कोकई वा गेरुआ रंगका) होताहै उसको गरमियोंमें धारण करे परंतु कोकई वा गेरुआ वस्त्रभी बहुत पतला होना चाहिये ।

सपेदवस्त्र ।

शुक्लंतुशुभदंवस्त्रंशीतातपनिवारणम् ।
नचोष्णंनचवाशीतंतत्तुवर्षासुधारयेत् ॥

अर्थ–शुभ्र (सपेद) वस्त्र शीत, गरमीको निवारण करताहै, और यह न गरमहै न शीतलहै अतएव उसको वर्षाऋतुमें धारण करना चाहिये । हमारी समझमें तो यह आताहै कि सदैव सपेद वस्त्र धारण करना चाहिये ।

नवीन और उज्ज्वल वस्त्रकी प्रशंसा ।

यशस्यंकाम्यमायुष्यंश्रीमदानन्दवर्द्धनम् ।
त्वच्यंवशीकरंरुच्यंनवनिर्मलमम्बरम् ॥

अर्थ--नवीन वस्त्र यशकर्त्ता, कामोद्दीपक, आयुष्यकर्त्ता, लक्ष्मी और आनंदका बढानेवाला, त्वचाको हितावह, वशीकरणकर्त्ता और रुचि प्रगट करे ये नए वस्त्र और ऊजले वस्त्रके गुणहैं । इसीसे सब मनुष्योंको ओढना बिछैया और पहननेमें उज्ज्वलवस्त्र रखना हितकारीहै[1] ।

मलीनवस्त्रकी निन्दा ।

कदापिनजनैःसद्भिर्धार्यंमलिनमम्बरम् ।
तत्तुकण्डूकृमिकरंग्लान्यलक्ष्मीकरंपरम् ।

अर्थ–बुद्धिमान् पुरुषोंको मलिन (मैला) कपडा कभी नहीं धारण करना चाहिये, क्योंकि मैलावस्त्र खुजली, कृमि, ग्लानि, और अलक्ष्मी (दरिद्र

१ स्त्रीधृतं वसनंशौर्यहानिदौर्भाग्यदायकम् । संधितंत्रुटितं चैव दग्धं चान्यधृतं तथा । दारिद्र्यकारकं प्रोक्तंरोगकृच्चमतंबुधैः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा अशोभा) को करता है, अर्थात् मैलसे खुजली होवे जुँए पडजावे जिसके पास जावे या बैठे उसको ग्लानि हो इसीसे धनकी अप्राप्ति होनेसे दरिद्री होवे है ।

कदाचित् कोई शंका करे कि, जिसके पास नवीन वस्त्र धारण करनेकी शक्ति न होवे वो क्या करे ? इसका यह उत्तर है कि, यदि जो गरीब है उसको पुराने वस्त्रही उज्वल रखने चाहिये धुलानेकी शक्ति न होवे तो आपही धोलिया करे ।

सुगन्धलेपन ।

कुंकुमंचन्दनंचापिकृष्णागरुविमिश्रितम् ।
उष्णंवातकफध्वंसिशीतकालेतादिष्यते ॥

अर्थ--केशर चंदन अथवा काली अगर मिला हुआ चंदन उष्ण और वात कफ नाशक है, अतएव इसको शीतकालमें लगाना चाहिये ।

चंदनंघनसारेणवालकेनचमिश्रितम् ।
सुगंधिपरमंशीतमुष्णकालेप्रशस्यते ॥

अर्थ--कपूर और नेत्रवाला मिला चंदन सुगंधकारक परम शीतल है, अतएव इसको गरमियोंमें लगाना चाहिये ।

चन्दनंघुसृणोपेतंमृगनाभिसमायुतम् । नचोष्णंनचवाशीतंवर्षाकालेतदिष्यते ॥ गंधेनोद्वर्त्तनंचादौततोलेपंप्रकारयेत् ॥

अर्थ--केशर कस्तूरीमिला चंदन न गरम है न शीतल अर्थात् मध्यम है, इसीकारण इसको वर्षाकालमें लगाना शुभ है । इसप्रकार गंध लगाकर फिर लेप करे ।

चंदन लगानेके गुणागुण ।

अनुलेपस्तृषामूर्च्छादुर्गंधश्रमदाहजित् । सौभाग्यतेजस्त्वग्वर्णप्रीत्योजोबलवर्द्धनः ॥ स्नानानर्हमनुष्याणामनुलेपोऽपिनोहितः ।

अर्थ--सुगंधानुलेपन तृषा, मूर्च्छा, दुर्गंध, श्रम, दाह, इनको नाश करे । और सौभाग्य (सुंदरता) तेज, त्वचाका रंग, प्रीति, ओज और बलको बढाताहै । जिन मनुष्योंको स्नान करना निषेधहै उनको चंदनादि अनुलेपन करनाभी निषेध है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संध्यावन्दनम् ।

कुलाचारंतुकुर्वीतसन्ध्योपासनमादृतः ।
सूर्योपास्तिततःकुर्यादिष्टदेवस्यचार्चनम् ॥

अर्थ–स्नान करने और गंधधारणके अनंतर अपने कुलाम्नायके अनुसार संध्योपासनकर्म करना तदनंतर सूर्योपस्थान करे । इसप्रकार संध्या आदि पंचकर्मसे निवृत्त हो अपने इष्टदेवका आराधन करना चाहिये ।

इस जगे इतना हमको लिखना आवश्यकहै कि, कुलाचार वोही गिनाजायगा जो वेदविहित श्रौतस्मार्त कर्महो मद्य मांसभक्षी मातृगामी कौलधर्मको कुलाचार नहीं कहसक्ते क्योंकि यह तो कपोलकल्पित तांत्रिकोंने प्रजाको वर्णसंकरी करनेके अर्थ और अपने सुखके लिये बनाय लिया है हा खेद ! कि अपने स्वार्थको कैसे अधर्मके श्लोक रचकर शिवका नाम बदनाम इन दुष्टोंने कराह । वेदेंम लिखाहै कि " अहिंसापरमोधर्मः " परंतु ये दुष्ट इसवाक्यको कोहेको मानेंगे हाय ! ईश्वरने अन्न केवल मनुष्योंहीके भक्षणके लिये निर्माण कराहै, परंतु ये पामर शीघ्र कहदेते हैं कि मांस मद्य सेवन करना वेदमें लिखाहै और झटपट कृत्रिम श्रुतिको बकने लगते हैं परंतु ऐसी श्रुति हमको अनादरणीयहै क्योंकि बुरीवस्तु सबकोही बुरीहै जैसे देखो मांस मद्य सेवन शास्त्रप्रमाणोसें और युक्तिसे दुष्टही कहलातेहैं परंतु इन्होंने वे वस्तु शुभमान रक्खी है ।

कदाचित् कोई प्रश्न करे कि तुम इनकी कहीहुई श्रुतियोंको अप्रमाण बतलातेहो इसका क्या प्रमाण है ? तौ उनको हम प्रत्यक्ष युक्ति प्रमाण यही देते हैं कि सर्व प्राणिमात्रसे पूंछो कि असत्य बोलना, चोरी करना, अन्याई करना, ये वस्तुउत्तम है ? या बुरी है ? इसमें क्या हिन्दु क्या मुसलमान क्या ईसाई क्या बौध क्या आर्य सब यही कहैंगे कि ये वस्तु पापरूप है, परंतु किसी झूटे अन्याई चोरने इन्ही वस्तुओंकी श्रुतिबनाकर कहीं तो आप उसको प्रमाण मानेंगे या अप्रमाण? इसीतरह शास्त्रसे और युक्तियोंसे मद्य मांस प्रत्यक्ष पापरूप सिद्धि होता है, परंतु इन कौलरूप चोर मांसहारी और मातृगामियोंने जो जो श्रुति कपोलकल्पित बनाई है वो प्रमाण किसप्रकार हो सकती है; कदाचित् तुम कहोगे कि फिर तुम्हारे पुरखे क्यों मानते चले आते हैं तो हम यही कहेंगे कि हमारे पुरखे उनके दुष्टही मानते आए हैं । जो चोरी करना उत्तम समझे वो चौर कर्ममें प्रवृत्त हुए और हम तथा औरभी सत्पुरुष उस चोरकर्मको महान् पापरूप समझते हैं अतएव हम सर्व

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सत्पुरुषोंसे प्रार्थना करते हैं कि, अपने मूलरूप श्रौत स्मार्तकर्मसे विमुख मत हो [किमधिकं विद्वद्वरेषु]

ब्राह्मणादि पूजन ।

दत्वादानंचविप्रेभ्योगृह्णीयात्तेभ्यआशिषम् । देवगोविप्रवृद्धानांगुरूणांचैवपूजनम् ॥ आयुष्यंवृद्धिदंपुण्यमलक्ष्मीकलिनाशनम् ।

अर्थ-संध्यावंदनके अनंतर ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दान देकर उन्होंसे आशीर्वाद ग्रहण करना चाहिये । देव, गो, ब्राह्मण, वृद्ध, और गुरु (मातापिता तथा गायत्रीका उपदेश दाता आदि) इनका पूजन आयुको बढावे पुण्यकर और अलक्ष्मी तथा कलहका नाश करता है ।

पुष्पधारण ।

सुपुष्पाणिसुगन्धीनिनित्यंशीर्षेप्रधास्यते । सुगंधिपुष्पपत्राणांधारणंकांतिकारकम् ॥क्लेदायाससमुद्भूतस्वेददुर्गन्धनाशनम् । चक्षुष्यंदाहशमनंसौमनस्यंचजायते ॥

अर्थ-सुन्दर गुलाब आदिके सुगंधित पुष्पोंको नित्य मस्तकपर धारण करे तथा सुगंधित पुष्पपत्रोंका धारण कांतिकारक क्लेद परिश्रमसे प्रगट स्वेद और दुर्गंधिका नाशक है । नेत्रोंको हितकारी, दाहनाशक तथा पुष्पोंके धारणसे मन प्रसन्न होता है । इस जगे पुष्पोंके कहनेसे पुष्पोंकी माला, हार, आदि जानने इनको यथायोग्य अंगमें धारण करे अर्थात् माला, वनमाला, हार आदिको कंठमें धारण करे गजरेको हाथोंमें, पुष्पोंके मुकट किरीट आदिको मस्तकपर धारण करे बहुतसे देशमें स्त्री फूलोंके कलीसी मस्तक गूंथतीहै ।

पृथक् पुष्पोंके धारणमें योग ।

तीक्ष्णाग्रलुनंकेतक्याः कोमलंधारयेद्दलम् ।

अर्थ-तीखे अग्रभाग तोडकर कोमल केतकीका पत्र धारणकरे ।

जातीपुष्पंतथावेलाजाम्भजंकुटजंतथा । पाटलंचबृहत्पुष्पं बकुलंचंपकंतथा ॥ श्रीखंडंचैवगौलालंकस्तूर्य्यासहधारयेत् ।

अर्थ-चमेली, वेला, नारंगी, कुडा, गुलाब, कूजा, मौलसिरी, चंपा, चंदन, गुलाला, इन पुष्पोंको कस्तूरीके साथ धारण करे । अर्थात् कस्तूर्या चंदन लगायकर इनपुष्पोंके हार आदि धारण करे इसीप्रकार सर्वत्र जानना ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मन्दारमरुवंचैवनीलोत्पलकुमुद्वतम् ।
रक्तोत्पलंयूथिकां च कर्पूरैःसहधारयेत् ॥

अर्थ–मंदार, मरुआ, नीलकमल, कमोदनी, लालकमल, और जुही इनपुष्पोंको कपूरके साथ धारण करे ।

किसकालमें कौनसापुष्प धारण करे ।

अस्नातैर्मल्लिकाधार्यासुस्नातैर्जातिबिल्वजम् ।
अभ्यङ्गेकेतकीधार्याधार्यंचोत्पलकंसदा ॥

अर्थ–स्नानके पूर्व चमेलीका पुष्प धारण करे । और स्नान करके जुही तथा बिल्वका पुष्प धारण करे । तैलादिकके अभ्यंगमें केतकीका पुष्प तथा कमलको सर्वकालमें धारण करना चाहिये ।

ग्रीष्मऋतुमें धारणीय पुष्प ।

जातीकुन्दंचनैपालंश्रीखण्डंबिल्वमल्लिकम्। मकरन्देनसंयुक्तं शिरसाधारयेन्नरः ॥ सर्वाण्येतानितुल्यानिरसतोवीर्य्यतस्तथा । त्रिदोषशमनायैवसर्वकालेप्रधारयेत् ॥

अर्थ–पीली चमेली, कुंद, वासंती (नेवारी) चंदन, बेल, चमेली, इन पुष्पोंको पराग सहित मस्तकपर धारण करना चाहिये । ये संपूर्ण पुष्प रससे और वीर्यसे समान गुणवाले हैं । त्रिदोष नाशक हैं अतएव सर्वदा धारण करने चाहिये परंतु ग्रीष्मऋतुमें विशेषकरके धारण करे ।

शीतकालमें धारणीय पुष्प ।

कैतकंवकुलंपुष्पंश्रीखंडंशतपत्रकम् । गौल्लालकंचंपकं च वातश्लेष्महरंपरम्॥उष्णवीर्यंचतत्प्रोक्तंशीतकाले प्रधार्यते ।

अर्थ–केतकी, मौलसिरी, चंदन, कमल, गुल्लाला और चंपा ये पुष्प वात कफका हरण करताहै और उष्णवीर्यहै अतएव शीतकालमें धारण करने चाहिये ।

वर्षाकालमें धारणीय पुष्प ।

श्रीबकंमरुवंचैवनीलोत्पलसवत्सकौ । कुब्जकंपाटलंचैवश्रीखंडंचतथैवच ॥ नात्युष्णंनचवाशीतंसर्वदोषनिबर्हणम् । निर्मलंनेत्रदोषघ्नंवर्षाकालेप्रधारयेत् ॥

अर्थ–बेल, बक, मरुआ, नीलकमल, कुडा, कुब्जक, गुलाब वा (पाढर)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

और चंदन इनके पुष्प न बहुत शीतल और न बहुत गरमहै. तथा सर्व दोष नाशक, निर्मल, नेत्रदोषनाशकहै, इसीसे, वर्षाकालमें धारण करनें चाहिये ।

प्रत्येकपुष्पधारणकी अवधि ।

षडचामंजातिकुसुमंनैवारंद्विमुहूर्त्तकम् । त्रिरात्रमुत्पलंचैव पंचरात्रन्तुकेतकी ॥ द्विरात्रंशतपत्रञ्चअर्द्धरात्रंतुमल्लिका । अहोरात्रंचंपकंतुयूथिकांद्विमुहूर्त्तकम् ॥ श्रीखंडमेकरात्रन्तु बकुलंमाधवींतथा । श्रीपर्णंयावदाहारंतावत्कालंतुधारयेत्॥ मन्दारमरुवंचैवदामनं च सुपाटलम्।यावत्कालंभजेद्गन्धंता-वत्कालंप्रधारयेत् ॥

अर्थ-जाईका फूल ६ प्रहर, निवारका ४ घडी, तीन रात्रि उत्पल (कमल) दो रात्रि शतपत्र (गुलाब) अर्द्धरात्र चमेली, एकदिनरात्र चंपा, ४ घडी जुही, एक रात्र चंदनका पुष्प, मौलसिरी माधवी (वसंती) और श्रीपर्ण इतने पुष्प जबतक सुहाय तबतक धारण करे । मंदार, मरुआ, दोना और पाढर इतने पुष्प जबतक सुगंध रहे तबतक धारण करे ।

पुष्पोंके पृथक् पृथक् गुण ।

त्रिदोषशमनीजातीमहादाघविनाशनी । सुगंधंदोषशमनंगौ-ल्लालंपुष्पमुच्यते ॥ पित्तहृद्विशदंचैवचक्षुष्यंचोत्पलंस्मृ-तम् । श्लेष्मवातप्रशमनमुष्णवीर्यंचनिर्मलम् ॥ पुष्पाणांप्रव-रंचैवकेतकीपुष्पमुच्यते । ईषदुष्णंसुगन्धंचसुशीतंदृष्टिदाय-कम् ॥ शिरोभ्रमविनाशार्हंशतपत्रंसुशोभनम् । अधार्यंम-ल्लिकापुष्पंदृष्टिहानिकरंपरम्॥चंपकंवातशमनंचक्षुष्यंविशदं शुभम् । पाटलंचमहाशीतंश्लेष्मवातप्रवर्द्धनम् ॥ मंदाग्नि-पित्तदोषघ्नंकर्णव्याधिविनाशनम् । पाटलंधारयेद्यस्तुसम्पद्या ससमन्वितम् ॥ ज्वरमूर्च्छापिपासघ्नमायुष्यंदाहनाशनम् ।

अर्थ-जाईका पुष्प त्रिदोष और घोर दाह नाशक है । गुल्लालेका पुष्प सुगंधवान् और दोषोंको शांति करे है । पित्तहरणकर्त्ता, सपेद, और नेत्रों-को हित कफ वातका नाशक उष्णवीर्य और निर्मल ऐसा कमल जानना । सब पुष्पोंमें केतकीका पुष्प उत्तम है । कुछ उष्ण, सुगंधित. शीतल और

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दृष्टिको बढानेवाला है। मस्तकभ्रमको नाशक शतपत्र जानना चमेलीक पुष्प दृष्टिको हानि करे इसीसे उसे धारण न करे ॥ चंपाका फूल, वात-नाशक, नेत्रोंको हितावह और शुभ है। पाटलका पुष्प अति शीतल है। कफवातको बढानेवाला है तथा मंदाग्नि, पित्तके दोष, और कानकी पीडा को दूर करे है जो मनुष्य पाटलके पुष्पको धारण करताहै वह द्रव्यवान् होता है ज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छाको दूर करे और आयुको बढावे है। पाटल-नाम गुलाबकाभी है।

ऋतुपरत्व पुष्पधारण।

हेमन्तेशिशिरेचैवशतपत्रंतुशोभनम्। वसंतेकेतकीधार्याघर्मे नैपालमालती ॥ प्रावृट्सुपाटलंधार्यंचम्पकंशरदिस्मृतम्।

अर्थ–हेमंत और शिशिरऋतुमें कमल धारण करे। वसंत ऋतुमें केतकीका पुष्प, गरमियोंमें नेवारका पुष्प और मालतीका, चातुर्मास्यमें पाटलका पुष्प और शरदऋतुमें चंपाका पुष्प धारण करना चाहिये।

भूषण धारण।

भूषणैर्भूषयेदङ्गंयथाविभवसारतः।
शुचिसौभाग्यसंतोषदायकंकांचनंस्मृतम् ॥

अर्थ–यथाविभवके अनुसार भूषणोंसे अपने अंग भूषित करे तहां सुवर्णके भूषण (कटक कुंडल मुद्रिकादि) का धारण पवित्र, सुभगताकारक, और संतोषदायक जानना।

रत्नाभरण।

ग्रहदृष्टिहरंपुष्टिकरंदुःस्वप्ननाशनम्।
पापदौर्भाग्यशमनंरत्नाभरणधारणम् ॥

अर्थ–सूर्यादि नवग्रहोंकी क्रूरदृष्टिनाशक. पुष्टिप्रकाशक, दुःस्वप्नहरण कर्त्ता पाप दुर्भाग्य शमन कर्त्ता ऐसा रत्नोंका भूषण (अर्थात् हीरा पन्ना मोती आदि रत्नजटित गहना जानना)

मोतीके हारोंकेनाम।

सुरभूषणंलतानांसहस्रमष्टोत्तरंचतुर्हस्तम् । इन्द्रच्छन्दोनाम्नाविजयच्छन्दस्तदर्धेन ॥ १ ॥ शतमष्टयुतंहारोदेवच्छन्दोद्वयशीतिरेकयुता। अष्टाष्टकोऽर्धपारोरश्मिकलापश्चनवषट्कः ॥ २ ॥ द्वात्रिंशतातुगुच्छोविंशत्याकीर्त्तितोऽर्धगुच्छा-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ख्यः । षोडशभिर्माणवकोद्वादशभिश्चार्धमाणवकः ॥ ३ ॥ मन्दरसंज्ञोऽष्टाभिःपंचलताहारफलकमित्युक्तम् । सप्तावींश-तिमुक्ताहस्तोनक्षत्रमालेति ॥ ४ ॥ अंतरमणिसंयुक्तामणि-सोपानंसुवर्णगुलिकैर्वा॥ तरलकमणिमध्यंतद्विज्ञेयंचाटुकार-मिति ॥५॥ एकावलीनामयथेष्टसंख्याहस्तप्रमाणामणिविप्र-युक्ता । संयोजितायामणिनातुमध्येयष्टीतिसाभूषणवि-द्भिरुक्ता ॥ ६ ॥

अर्थ-एक हजार एकसौ आठ ११०८ लडका और चार हाथ लंबा मोति योंका हार देवताओंके लिये बनाते हैं। उस हारको इन्द्रछन्द कहतेहैं । इस्से आधे लडका अर्थात्५०४लडकेहारको विजयछन्द कहते हैं।१०८ लडका और २हाथ लंबा अथवा ८१ लडका और २ हाथ लंबे हारको देवछन्द कहते हैं । ६४ लडका हार अर्द्धसंज्ञक है, ५४ लडका हार रश्मिकलापसंज्ञक जानना । ३२ लडका हार गुच्छसंज्ञक २० लडका हार अर्द्धगुच्छक १६ लडका हार माणवकसंज्ञक ८ लडका हार मंदरसंज्ञक ५ लडका हार फलकसंज्ञक २७ मोतियोंका और १ हाथ लंबे हारको नक्षत्रमालासंज्ञक कहते हैं । उसी नक्षत्रमालाके बीचबीचमें रत्नहो या सुवर्णके दानेहो तो उसे मणिसोपान-संज्ञक कहते हैं । और इसीके बीचमें मणि (धुकधुकी) होवे तो उसीको चाटुकार कहतेहैं।जिस्से अपनी इच्छानुसार मोतियोंसे एक हाथकी बनाई हो उस मालाको एकावलीनामक कहते हैं । यदि इसीमें हीरापन्नाआदि मणि पडीहोवे तो उसको भूषणके जाननेवालोंने यष्टीसंज्ञक कहा है । इसीप्रकार किरिट, मुकट, कडे, बाजुबंद, चौकी, बेढा, मूँदरी, पहुची, कोंधनी (तागडी) जंजीर, तथा स्त्रियोंके भूषण बनानेकी विधि और उनके धारणके शुभाशुभ फल स्वर्णकारोंके और रत्नपरीक्षक (जोहरी) योंके वास्ते जो ऋषियोंने ग्रंथ बनाए उनमें विस्तारपूर्वक लिखेथे परंतु कालके परिवर्त्तन होनेसे ६४ कलाओंके सब ग्रंथ नष्ट होगए हैं । केवल पेट भरनेके ग्रंथ ज्योतिष वैद्यक और पुराणआदि ब्राह्मणोंको याद है । चौंसठ कलाओंके नाम भागवत दशमस्कंध पूर्वार्धमें ४५ अध्यायकी टीकामें और शुक्रनीतिमें लिखे हैं सो देखलेवे ।

नवग्रहोंके रत्न ।

माणिक्यंतरणेःमुजात्यममलंमुक्ताफलंशीतगोर्महेयस्यच

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विद्रुमोनिगदितः सौम्यस्यगारुत्मतम्।देवेज्यस्य च पुष्पराग्मसुराचार्य्यस्यवज्रंशनेर्नीलंनिर्मलमन्ययोश्चगदितंगोमेदवैदूर्य्यके ॥ १ ॥

अर्थ-माणिक मणि सूर्यकी, मोती चंद्रमाका, मूंगा मंगलका, पन्ना बुधका, बृहस्पतिका पुखराज, शुक्रका हीरा, शनिकी नील, राहूकी गोमेद, और केतुकी वैदूर्य मणि कहीहै । इसप्रकार रत्नधारणसे उसी उसी ग्रहकी शुभ दृष्टि होतीहै ।

नवग्रहोंकी प्रसन्नार्थ नवमूलधारण ।

मूलंधार्यंत्रिशूल्याःसवितरिविगुणेक्षीरिकामूलमिन्दौजिह्वाहेर्भूमिपुत्रेरजानिकरसुतेवृद्धदारोश्चमूलम् । भार्ङ्गीजीवेथशुक्रे भवतिशुभकरंसिंहपुच्छस्यमूलंविच्छोलंचार्कपुत्रेतमसिमलयजंकेतुदोषेऽश्वगन्धा ॥

अर्थ--सूर्यकी प्रसन्नार्थ बेलकी जड धारण करनी, चंद्रमाके लिये खिरनीकी जड, मंगलके लिये नागजिह्वाकी जड, बुधके प्रसन्नार्थ विधायरेकी जड, गुरुके अर्थ भारंगीकी जड, शुक्रके अर्थ अंडकी जड, शनिकी प्रसन्नार्थ विच्छोल (विछुआ)की जड, राहुको चंदनकी जड, और केतुदोष दूरकरनेको अश्वगंधकी जड धारण करनी चाहिये । ये परिहार उनके लियेहैं जो सर्वथा निर्धनहै ।

वासःस्रग्गंधरत्नानांधारणंप्रीतिवर्द्धनम् ।
रक्षोघ्नमर्थ्यमायुष्यंसौभाग्यकरमुत्तमम् ॥

अर्थ--सुंदरवस्त्र, फूलमाला, चंदन, अतर आदि गंध और हीरा, पन्ना, माणिकआदि रत्नोंका धारण करना प्रीति प्रगट करे तथा राक्षसादि दुष्टोंका नाशक, आयु और सौभाग्यकर जानना ।

मङ्गलधारण ।

सततंसिद्धमन्त्रस्यमहौषध्यास्तथैवच । रोचनासर्षपादीनां माङ्गल्यानां च धारणम् ॥ आयुर्लक्ष्मीकरंरक्षोहरंमङ्गलदंशुभम् । हिंस्रादिभयविध्वंसिवशीकरणकारकम् ॥

अर्थ-निरंतर सिद्धमंत्रका (अथर्वणवेदके मंत्रोंका न कि तांत्रिक मंत्र) महौषधी (ऐन्द्री, ब्राह्मी, शतवीर्या, अमोघा आदि) और गोरोचन सर्षप-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सरसोंआदिका धारण करना आयुको बढावे, लक्ष्मीकी प्राप्ति होवे, तथा राक्षसोंका भय, हिंसक प्राणियोंका भय, इनको नाशक तथा उनको वशीकरण करताहै मंगलदाता शुभहै ।

मंगलपदार्थदर्शन ।

ततोभोजनवेलायांकुर्य्यान्मङ्गलदर्शनम् ।
तस्यप्रदक्षिणंनित्यमायुर्धर्मविवर्धनम् ॥

अर्थ-तदनंतर भोजनके समय मंगलीवस्तुओंका दर्शन करना चाहिये । और इनकी प्रदक्षिणा करे तो आयु, और धर्म, बढे ।

मंगलीकवस्तु ।

लोकेस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणोगौर्हुताशनः ।
हिरण्यंसर्पिरादित्यआपोराजातथाष्टमः ॥

अर्थ-इस लोकमें आठवस्तू मंगलीहै, उनको कहतेहैं कि ब्राह्मण, गौ, अग्नि, सुवर्ण, घृत, सूर्य, जल, और अष्टमराजा इन सबका दर्शन और प्रदक्षिण कर्त्तव्यहै ।

पादुकारोहण ।

पादुकारोहणंकुर्यात्पूर्वंभोजनतःपरम् ।
पादरोगहरंवृष्यंचक्षुष्यंचायुषेहितम् ॥

अर्थ-भोजनके पूर्व अथवा भोजनोत्तर पादुका (खडाऊँ) पहरनी चाहिये, खडाऊँ पहरनेसे पैरके रोग नष्ट हो । वृष्य है, नेत्रोंको गुणकारक, और आयुष्यको बढावे है ।

चतुर्विध इच्छा ।

शरीरेजायतेनित्यंवांछानृणांचतुर्विधा ।
बुभुक्षा च पिपासा च सुसुप्तासुरतस्पृहा ॥

अर्थ-स्वतः स्वभावसे इस देहमें मनुष्योंके चारवस्तुकी इच्छा होती है, जैसे भोजनकीइच्छा, पीनेकी इच्छा निद्राभिलाष, और मैथुनेच्छा ।

भोजनेच्छारोधके अवगुण ।

भोजनेच्छाविघातात्स्यादङ्गमर्दोऽरुचिःश्रमः ।
तन्द्रालोचनदौर्बल्यंधातुदाहोबलक्षयः ॥

अर्थ-भोजनके समय भोजन न मिलनेसे अंगोंका टूटना, अरुचि, श्रम,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तन्द्रा, नेत्रोंमें दुर्बलता, धातु (रुधिर मांसादि धातु) ओंका दाह, और बलक्षय होता है ।

तृषारोकनेके अवगुण ।

विघातेनापिपासायाःशोषःकण्ठास्ययोर्भवेत् ।
श्रवणस्यावरोधश्चरक्तशोषोहृदिव्यथा ॥

अर्थ--प्यासरोकनेसे कंठसूखे, मुखसूखे, श्रवणशक्तिका घटना, रुधिरका शोष और हृदयमें व्यथाहो ।

निद्रारोकनेके अवगुण ।

निद्राविघाततोजृम्भाशिरोलोचनगौरवम् ।
अंगमर्दस्तथा तन्द्रास्यादन्नापाकएव च ॥

अर्थ–निद्रारोकनेसे जंभाई, मस्तक और नेत्रोंका भारीहोना, अंगोंका टूटना, तन्द्रा, और अन्नका न पचना ये अवगुण होते हैं ।

कामवेग रोकनेके अवगुण ।

अव्यवायान्मेहमेदोवृद्धिःशिथिलतातनोः ।

अर्थ–एकसाथ मैथुनेच्छारोकनेसे प्रमेह, मेदोवृद्धि, और देहमें शिथिलता होती है ।

बुभुक्षितोनयोश्नातितस्याहारेन्धनक्षयात् । मन्दीभवति कायाग्निर्यथाचाग्निर्निरन्धनः ॥ आहारंपचतिशिखीदोषा-नाहारवर्जितःपचति । दोषक्षयेचधातून्पचतिचधातुक्षये प्राणान् ॥

अर्थ–जो मनुष्य क्षुधा लगनेपर भोजन नहीं करता उसके आहाररूप ईंधन क्षीण होनेसे जठराग्नि मन्द होती है । जैसे विना ईंधनके बाहरकी अग्नि शीतल होती है । आहार मिलनेसे जठराग्नि प्रथम आहारको पचाती है । जब आहार पचानेको नहीं रहता तब वही जठराग्नि वात कफ दोषों-को पचाती हैं । जब दोषभी पचजाते हैं तब रस रुधिर मांसादि धातुओं-को पचाती है । और धातुपचनेके अनंतर प्राणोंको नष्ट करे है ।

भोजनकाल ।

याममध्येनभोक्तव्यंयामयुग्मंनलंघयेत् । याममध्येरसोत्प-त्तिर्यामयुग्माद्बलक्षयः ॥ क्षुत्संभवतिपक्वेषुरसदोषमलेषुच । कालेवायदिवाकालेसोऽन्नकालउदाहृतः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–एक प्रहरमें दोबार भोजन न करे। और दो प्रहरतक भूखा न रहे क्योंकि प्रथमप्रहरमें भोजन करनेसे उत्तम रसकी उत्पत्ति होती है। और दोप्रहरतक भोजन न करनेसे बलक्षय होता है। तथा रसदोष मल इनके पक्व होनेसे इस प्राणीको भूख लगती है। वह क्षुधा किसी समय लगे जिस समय क्षुधा लगे वही भोजनका समय है [किसीका यह मत है कि, प्रथम प्रहरमें भोजन न करे और दिनके दोप्रहर व्यतीत न होनेदेवे। कारण यह है कि, प्रथम प्रहरमें रसकी उत्पत्ति होतीहै इसी कारण प्रहरके भीतर कराहुआ भोजन अच्छीरीतिसे परिपक्व नहीं होता। और दो प्रहर उपरांत भोजन करनेसे बलक्षय होता है]

भोजनविधान।

यथोक्तगुणसंपन्नमुपसेवेतभोजनम् । विचार्यदोषकालादी न्कालयोरुभयोरपि ॥ सायंप्रातर्मनुष्याणामशनंश्रुतिनोदितम्। नान्तराभोजनंकुर्य्यादग्निहोत्रसमोविधिः ॥

अर्थ–मनुष्यको प्रातःकाल तथा सायंकालमें दोष व काल इनका विचार करके जो शास्त्रमें गुण कहे हैं उनको देख भोजन करना चाहिये। सायंकाल तथा प्रातःकाल दोनों समय भोजन करना वेदोंकी आज्ञा है इन दोनों समयके विना बीचमें भोजन नहीं करना इसकी विधि अग्निहोत्रके सदृश है, अर्थात् जैसै यथोक्तकालमें हीं अग्निहोत्र करतेहैं उसीप्रकार भोजनके समयही भोजन करना चाहिये।

आहारकेगुण।

आहारोबलतृप्तिकान्तिसुखदोदेहस्यसंधारकोधैर्योत्साहविवर्धनःस्मृतिकरःस्वर्योरसालस्वरे। यत्कान्तेऽस्तिजगत्त्रयेकिमपितच्चाहारकेसंस्थितंतस्मादस्यविधिंगुणांश्चनियतंज्ञातव्यमित्थंबुधैः।

अर्थ–आहार बल, तृप्ति, कांति, और सुख, इनको देनेवाला है तथा देहका संरक्षक, और धैर्य, तथा उत्साह, इनको बढानेवाला और स्मृति (स्मरणशक्ति) तथा सुंदरस्वर इनका देनेवालाहै। जो कुछ इस जगत्में है वो संपूर्ण आहारसे प्राप्त होनेवाला ऐसा जानना, अतएव इस आहारकी विधि और गुण वैद्योंको निश्चय जानने चाहिये।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रसादीनां पाकज्ञानमाह ।

उद्गारशुद्धिरुत्साहोवेगोत्सर्गोयथोचितः ।
लघुताक्षुत्पिपासाच जीर्णाहारस्यलक्षणम् ॥

अर्थ--उत्तम डकारका आना, उत्साह, मलमूत्रादि वेगोंका यथोचित समयपर अच्छेप्रकार त्याग होना, देह हलका हो, और भूख प्यास प्रगटहो ये जीर्णआहारके लक्षणहैं ।

भोजनस्थान ।

आहारोविजनेकुर्यान्निर्हारमपिसर्वदा ।
उभाभ्यांलक्ष्म्युपेतःस्यात्प्रकाशेहीयतेश्रिया ॥

अर्थ--मनुष्यको आहार (भोजन) तथा निर्हार (मलमूत्रका त्यागकरना) ये एकांतमें करने चाहिये इस्से धनी होता है तथा इनको सर्व जनोंके आगे करनेसे लक्ष्मीरहित होताहै ।

तथाच ।

आहारनिर्हारविहारयोगाःसदैवसद्भिर्विजनेविधेयाः ।

अर्थ--भोजन, मलमूत्रपरित्याग, और स्त्रीसंभोग, ये विद्वानोंको सदैव एकांतमें करने चाहिये ।

स्थानका वर्णन ।

स्वच्छंव्यवकरांलिप्तंगोमयाद्यैर्मनोहरम् । सुधाधवलितंसम्यक्प्रतिमाद्यैर्विचित्रितम् ॥ गीतैःकलपदैर्जुष्टंपुष्पंवृक्षैःसुशोभितम् । दुष्टशब्दादिरहितंतच्छस्तंभोजनालयम् ॥

अर्थ--अब भोजनका स्थान कैसा होना चाहिये, उसको कहतेहैं । प्रथम झरा बुहारा गोबर मिट्टीसे लिपा रंगवल्ली जिसमें कढरही, सर्वत्र ऊपर नीचे सपेदीसे पुतरहा चित्र विचित्र देवता मनुष्योंके तथा प्रिय पक्षी पशु आदिके चित्र जिसमें कढरहेहों, आदिशब्दसे झाड फन्नूस, बडे बडे, दर्पण जिसमें लगरहे, सुंदर झीलकंठसे मीठे शब्दकरके गान होरहा हो चारोंतरफ पुष्पितवृक्षोंके घमले धरेहो (तथा अपने प्रिय मित्र पुत्र कलत्रादि युक्त) और जहां खोटे पुरुष स्त्रियोंकी दृष्टि और व्यथा जनक दुष्टशब्दरहित आदिशब्दसे सुगंधित और सर्व इन्द्रियोंको तथा मनको आनंददायक ऐसा भोजन करनेका स्थान होना चाहिये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पाकविधान ।

शिष्य-अब कुछ रसोई बनानेकी विधि कहिये ।

गुरु-रसोई बनानेकी विधि हमारे सूपशास्त्र ग्रंथोंमें विस्तारपूर्वक लिखीहै परंतु इसजगेमें तुम्हारे आगे संक्षेपसे जो इस मध्यदेशमें बहुधा प्रचलितहैं इसको कहताहूं ।

शिष्य-प्राचीन पाक बनानेके कौन कौनसे ग्रंथहै और पाक कितने प्रकारके हैं ।

गुरु-प्राचीन कालसे इस भारतवर्षमें जैसे ज्योतिष, वैद्यक, न्याय, सांख्य, वैशेषिक, और व्याकरण आदि ग्रंथोंकी उन्नतीथी इसीप्रकार इस पाकशास्त्रकी भी अत्यंत उन्नती थी और इसके अनेक ग्रंथ थे जैसे प्राचीन ग्रंथोमें नलपाक, भीमपाक, सीतापाक, कृष्णापाक, और अर्वाचीन ग्रंथोंमें भोजपाक, वीरपाक, पाकसुधाकर, रुचिवधूरत्नमाला, पाकशेखर, तथा क्षेमकुतूहल इत्यादि ।

और तुमने जो प्रश्न करा कि पाक कितनेप्रकारकेहैं सो हे प्रियपुत्र! इसकी संख्या मैं नहीं कहसकता क्योंकि पाक देश देशमें भिन्न भिन्न और उनके बनानेकी विधीभी पृथक् पृथक्है, जैसे वल्लभकुली गोकुलस्थी गुसाइयोंके छप्पन भोगमें एकही अन्नके ५६ छप्पन प्रकारके पदार्थ बनातेहैं और उनके नामभी पृथक् पृथक् है फिर बंगाली, गुजराथी कर्नाटक, पंजाबी, आदिके पाकोंकी संख्या तो लिखना दूरहै अतएव पाक अनंतहैं ।

परंतु इसजगेमें संक्षेपसे थोडेसे पाक लिखते हैं । विशेष देखनेकी इच्छा होवे तो उक्त प्राचीन ग्रंथोंको देखो ।

शिष्य-प्रथम रसोईका काल, और रसोईके बनानेका स्थान, सूपकारके लक्षण और रसोईके उपस्कर अर्थात् रसोई करनेमें किस किस वस्तुको रसोइया अपने पास रक्खे यह सब यथाक्रमसे कहो ।

गुरु-सुनो-प्रियवर रसोई करनेके दो समयहैं, प्रथम प्रातःकालमें और दूसरा सायंकाल । प्रातःकालमें जो पदार्थ करतेहैं उसको रसोई कहतेहैं और सायंकालमें जो करते हैं उसको व्यालू कहतेहैं ।

प्रातःकालकी रसोई प्रहर दिन चढेसे दो प्रहर दिन चढेतक करनी उचित है जैसे लिखाहै कि " याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लंघयेत्" और इसीप्रकार सायंकालमें चारबजेसे लेकर रात्रिके नो बजेतक व्यालू करनेका समयहै । इस्से उपरांत भोजनका निषेधहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रसोईकरनेका स्थान ।

आग्नेय्यांदिशिकर्तव्यमावासस्यमहानसम्।गवाक्षजालमार्गाद्यमर्द्धमित्युपलेपितम् । अग्नेःस्थानंयतस्तत्रभोक्तुरन्नन्तुवर्द्धते । चुल्हिस्तत्रप्रकर्त्तव्यापूर्वपश्चिममायता । मृन्मयादीनिभाण्डानिक्षालितानि च वारिणा । तेषुयत्पच्यतेद्रव्यंगुणवत्सर्वसंमतम् ।

अर्थ–वैद्यको उचितहै कि राजभवनमें जहां रसोईका स्थान हो उस स्थानमें अग्निकोणमें चूल्हा बनावे और रसोईका स्थान परमोत्तम होना चाहिये । जिसमें जाली झरोखा गोखा मोखा तथा आले अलमारी युक्त तथा गोबर मिट्टी आदिसे आधी आधी भीत लीपी पोती हुई हो उसजगे अग्निस्थानमें भोजन करनेसे भोजन करनेवालेका अन्न शीघ्र पचैहैं । और उस रसोईमें पूर्वपाश्चिममें विस्तृत मट्टी बनानी चाहिये ।

उस रसोईमें मिट्टी (चीनी आदि) के पात्र जलसे शुद्धकरके रखने चाहिये और पित्तल तामे आदिके पात्रोंको मिट्टी और खटाईसे माँज जलसे धोयकर रखने चाहिये । ऐसे शुद्ध पात्रोंमें बनाहुआ अन्न सर्वगुणसंपन्न और सर्वसंमतहै ।

सूपकारकेलक्षण ।

पितृपैतामहोदक्षः शास्त्रीयो मिष्टवाचकः ।
शौचवानतिभक्तश्चसूपकारःसउच्यते ।

अर्थ–जिसके कुलमें परंपरासे रसोई करनेका व्यवहार चला आयाहो, और चतुरहो, (अर्थात् जो वस्तु एकवार देखी या सुनीहो उसको करलेवे) तथा सूपशास्त्रके ग्रन्थपढाहो [मूर्ख नहो] मीठे वाक्यका बोलनेवाला अथवा " मिष्ट पाचक " अर्थात् रुचिकारी पदार्थको करे [ऐसा न करे कि किसीमें नोन अधिक और किसीमें मिरच किसीमें खटाई] तथा स्नान वस्त्रादिसे पवित्र रहताहो, और अपने स्वामिका भक्तहो ऐसा सूपकार (रसोइया) उत्तम कहाहै ।

तथाच ।

भवेयुर्धार्मिकाःस्निग्धाःसूपकाराःक्रमागताः । धृतोष्णीषाश्च शुचयस्तथावैद्यवशेस्थिताः । नृपामित्रद्विषोदक्षाबलिष्ठाः कुलसम्भवाः । सर्वपाकेषुनिष्णातादयावन्तोविचक्षणाः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अन्येपितत्रयेकेचिच्चरन्तिपरिचारकाः । तेपिचैवंविधायोज्या-
स्तदध्यक्षोपितादृशः । सूपकारपतिस्तत्रप्रायोवैद्यगुणान्वि-
तः । क्षणंनविश्वसेत्तांस्तुतत्त्वज्ञस्तत्प्रशासनः । जीवनंजी-
विनामन्नमृतूक्तंविधिपाचितम् । तदेवाविधिनाभुक्तंपरिणामे
विषोपमम् । ऋतूनांलक्षणंज्ञात्वाततस्तद्विधिमाचरेत् ।

अर्थ-धर्मनिष्ठ, प्रीतिवाले, क्रमागत रसोईकी विद्या, पगडीके धारण करनेवाले, पवित्र, वैद्यके वशीभूत राजाके शत्रुओंसे द्वेष करनेवाले, चतुर, बलिष्ठ उत्तम कुलमें जन्म जिन्होंका, सर्व प्रकारके पाकोंको बनायचुकेहो, दयावान्, और विचक्षण एतादृश लक्षणवान् सूपकार होना चाहिये [हमारी समझमें तो नवीना स्त्री जो चतुर हो और अपनेसे परम प्रीति रखतीहो उसके हाथकी रसोई इस पृथ्वीमें अमृतके तुल्य है] तथा अन्य पुरुष जो पाकघरमें रहनेवाले नौकर हो वोभी सूपकारके समान लक्षणवाले होने चाहिये और उनका अध्यक्ष (अफसर) भी तादृश होना चाहिये । परंतु जो रसोइयोंके ऊपर अफसर हो वो वैद्यके गुणवाला हो और उन पाककारोंका क्षणमात्रभी विश्वास न करे तत्त्वज्ञहो प्रत्येक समय उन रसोईयोंको शिक्षा देता रहे। जो जो पदार्थ प्रत्येक ऋतुमें सेवन करने कहे हैं वो यथाविधि पक्व करा हुआ अन्न जीवोंका जीवन है यदि वोही अन्न अविधिसे कराजावे और अविधिसे भोजन करा हुआ परिणाममें विषतुल्य होता है। अतएव वैद्यको उचित है कि, ऋतुओंके लक्षण विचार कर तदनंतर भोजनपानकी विधि करनी चाहिये । ऋतुओंके लक्षण प्रथमही ऋतुचर्याध्यायमें कहआएहैं ।

विषदूषितान्नपरीक्षार्थंसद्वैद्यस्थापनम् ।

राजाराजगृहासन्नेप्राणाचार्यंनिवेशयेत् । सर्वदासभवत्येव
सर्वत्रप्रतिजागृविः । अन्नपानंविषाद्रक्षेद्विशेषेणमहीपतेः ।
योगक्षेमौयदायत्तौधर्माद्यायत्रिबंधनाः । तस्माद्वैद्येनसततंवि-
षाद्रक्ष्योनराधिपः ।

अर्थ-राजा राजगृहके समीप वैद्यको स्थापित करे वह सदैव और चारोंतर्फसे सावधान रहे और विशेष करके विष मिले अन्नपानसे नरपतिकी रक्षा करे क्योंकि योग (अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्तवस्तुका

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रक्षण) राजाके आधीन है तथा उन योगक्षेमके वशीभूत धर्मादिक है अतएव वैद्य राजाकी विषसे सदैव रक्षा करे। वैद्यके लक्षण आगे कहेंगे।

महानसयोग्योपकरण।

वस्तूनिभोजनार्हाणिविविधानिपुनःपुनः।
सर्वाणिगुणयुक्तानिस्थापितानिमहानसे॥

अर्थ--भोजनके योग्य अनेक प्रकारकी सामग्री संपूर्ण गुणयुक्त रसोईके समय चूल्हेके समीप रक्खे।

उपस्कर।

दास्यःसंमार्जनीवाटापूतहंडीसुकूर्चिका । घर्षणीवैणवंपात्रं जलपूर्णमलिञ्जरः। वह्निसंजननग्रावा कुद्दालःसकुठारकः। दारुखण्डानिशुष्काणिहस्तमात्राणिचेन्धनम्। अजीर्णान्यगुरूणीह कीटवर्ज्यानिसंचितः। तितउश्चल्लनीपीठंमुसलंचाप्युलूखलम्। शिलाशिलासुतःशूर्प चतुरस्रा च पट्टिका। संदंशके च दर्व्यश्चवस्त्रखंडचतुष्टयम्। नलिकाछुरिकाचैव शूलानिचकटाहकम्। वह्निसंचालनार्थायदीर्घादीर्घासुलोहजा। इत्यादिवस्तुजातैःस्याद्गुणाढ्यंतुमहानसम्।

अर्थ–दासी [दास] संमार्जनी (झाडू) वांटतराजू पवित्र हांडी सुकूर्चिका [मूंजकी कूंची] घर्षणी [जिस्से मांझनेके समय पात्रोंको रगडते हैं] बांसकी पिटारी, जलका भरा पूर्णपात्र, [मांठ या तमिया] चमकपत्थर, कुदारी, कुठारी, [ईंधन तोडनेको] एकएक हाथकी हलकी और सूखी लकडी, पुराने हलके कीडेरहित ऊपले, चलनी,चलना, पटा या आसन, मूसल, ओखली, सिल, लोढा, सूप, चौकोन पट्टी, सडासी (चीमटा) कलछी, चार कपडेके टूक, फूकनी, छुरी, चक्कू, कांटा (वा कौंचा) अग्निके चलानेको बडे बडे चीमटा, इत्यादि वस्तुओंसे गुणयुक्त महानस (चूल्हा) होता है।

आदि शब्दसे इतनी वस्तु औरभी रखनी चाहिये। दियासलाई, अंगीठी, सिगडी, तवा, कढैया, कढाव, डोही, कलसा, लोटा, घंटी, गिलास, प्याले, थाली, रकेवी, परात, तमंगा, तामडी तपेली, तपेला, वटला, देग, देगची, चकला, वेलन, उदला, झाल, टोकरा, डलिया, कटोरा, कटोरी, झंझरी, पौना, घीयाकस, कूडी, कूल्हडे, सकोरे, सराई, तोला, कमोरी, पत्तल, दोना, केलाके पत्ते, सादापत्ते, इत्यादि।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मैंदा, चून, दाल, चामल, नोन, तेल, घी, मसाला, दूध,दही, बूरा, मिश्री, बेसन, इत्यादि सर्व वस्तू रसोई करनेवालेको अपनेपास धर लेनी चाहिये। और दो चार जवान और चतुर मनुष्यभी अवश्य रसोइयेको अपने पास रखने चाहिये।

पात्रोंके पृथक् पृथक् गुण।

मृदभावेपचेल्लोहे चक्षुरर्शोविकारनुत्। कांस्यजेपाचितंयद्धितद्धितंमतिदंशुचि।यत्तुताम्रमयेसिद्धमरुच्यम्लपित्तकृत्। सौवर्णेराजतेपाच्यमाढ्येभूमिभृतांगृहे। मृत्पात्रंसर्वदोषघ्नंधिषणोत्सवदंसदा। संकीर्णेपात्रसंभारेमार्गेवाग्रामवर्जिते।

अर्थ-वैद्यको उचितहै कि, रसोईके लिये मृत्तिकाके पात्र लेने चाहिये, यदि मिट्टीके पात्र न मिले तो लोहके पात्रमें रसोई करे लोहके पात्रमें पककरा अन्न नेत्ररोग और बवासीर आदि रोगोंको दूर करताहै। काँसेके पात्रमें सिद्ध करा अन्न बुद्धिदायक पवित्र और हितकारीहै। एवं तामेके पात्रमें सिद्ध करा अन्न अरुचि और अम्लपित्तको करेहै। यदि तामेकेही पात्रमें रसोई करनी होवे तो उसमें कलई कराय लेवे और कोई कोई पीतलके पात्रमेंभी कलई कराना कहतेहैं तथा राजा महाराजा और धनाढ्योंके घरमें सुवर्ण और चांदीके पात्रमें रसोई करनी चाहिये।परंतु सर्व दोष नाशक और बुद्धिको प्रफुल्लित करनेवाला ऐसा सदैव मृत्तिकाका पात्र कहाहै। जहां पात्र नहो अथवा ग्रामरहित मार्गहो तहां मट्टीके पात्रमेंही रसोई करनी चाहिये।

पाकविधि।

स्थापयेद्गुरुवत्सूदःसिद्धान्नंपात्रकान्तरे।भक्तंस्वपात्रकेस्थाप्यंक्वथितापात्रकान्तरे। घृतंकाष्ठायसेस्थाप्यंमांसंमांसरसौपुनः। स्थापयेद्राजतेहैमेपात्रेलोहेऽथकाष्ठजे। पत्राद्यं षड्विधंशाकंस्थाप्यंकाष्ठाश्मलोहजे।पक्वान्नपिष्टजंभक्ष्यंस्थाप्यंकांस्येथदारुजे। शृतंक्षीरंस्थापनीयंपात्रेकाष्ठस्यवामृदः। पानीयं पायसंतक्रंमृन्मयेष्वेवधारयेत्। कांचनेस्फाटिकेवाथवैदूर्यादिविचित्रिते। धारयेत्सर्वदापात्रेरागखांडवसक्तुकान्। एतेषुस्थापितंद्रव्यंपात्रेषुगुणदंभवेत्। सर्वदासुखदंत्वद्यमन्यथादोषकारकम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–सिद्धअन्नको चतुर रसोईया अन्य पात्रमें स्थापन करे । भातको जिस पात्रमें कराहो उसीमें रहने देवे, और कढीको दूसरे पात्रमें घृतको काष्ठके पात्रमें या लोहके पात्रमें रक्खे, मांस और मांसरसको सोने चांदी लोहा अथवा लकडीके पात्रमें रक्खे, पत्रके छः प्रकारके शाकको लकडी पत्थर अथवा लोहके पात्रमें धरे, पक्वान्न (लड्डू, गूँझा, सोहनथाल, आदि) और पिष्टज पदार्थ (पूडी, कचोडी, पापड, सुहार, मट्ठे, आदि) को कांसेके पात्रमें या लकडीके पात्रमें धरने चाहिये । ओंटा शीतल दूधको काष्ठके अथवा मट्टीके पात्रमें धरना [परंतु ओटाहुआ दूधको कांसीके उत्तम कटोरेसे पीना चाहिये] जल, खीर, छाछ ये पदार्थ मट्टीके पात्रमेंही रखने चाहिये । और मुरब्बा (पने, चटनी, सिखरन, अमरस, आदि) एवं सत्तु इनको सुवर्णके पात्रमें अथवा स्फटिकमणि तथा वैदूर्यमणि आदि जडे हुए पात्रमें धरने चाहिये । इन पात्रोंमें उक्त क्रमपूर्वक पदार्थ धरनेसे गुणदायी होते हैं और सदैव सुखदायक एवं चित्तको प्रिय होते हैं । अन्यथा अर्थात् विपरीत क्रमसे धरे तो विकारकारी होते हैं ।

" मधुरेणसमारभ्य मधुरेणसमापयेत् " अर्थात् भोजनको मिष्ट पदार्थसे आरंभ कर मिष्ट पदार्थसेही समाप्ति करे इस वाक्यके अनुसार प्रथम मिष्ट पदार्थोंको कहते हैं परंतु मिष्ट पदार्थ चासनीकी विशेष अपेक्षा रखते हैं । अत एव आदिमें प्रथम चासनीकी विधिसे आरम्भ करते हैं ।

चासनी ।

उत्तम सहांजहांपुरी चिनी कढाईमें चढाय उसमें तृतीयांश अर्थात् तीनसेरमें १ सेर जल मिलाय अत्यंत तेज आंच देओ जब उसका गाद उठने लगे तब उसमें मंद आंच देओ और उस रसके चारोंतर्फ दूधमें जल मिलाकर वारंवार गेरते जाओ और धीरेधीरे झरनेसे उसका गाद निकालते जाओ जब जानोकि, संपूर्ण मैल ऊपर आगया तब एक पात्र लो उसपर दो लकडी धर एक डलिया धरो और उस डलियामें स्वच्छ वस्त्र धुला हुआ बिछाय उससें उस रसको डोहीसे भरभरके डालो तो उस चीनीका रस उस डलियामेंसे चुचाकर नीचेके पात्रमें गिरेगा इस रसको वक्खर कहते हैं । फिर इस रसको दूसरे पात्रमें भर अग्निपर चढाओ और धीमीआंचदो जब कलछुलेसे लगकर एक धार गिरे उसको इकतारी चासनी कहते हैं । और इस्सेभी अधिक गाढा हो, दो तार गिरे उसको दुतारी चासनी इसीप्रकार इससे कुछ अधिक गाढा होकर रस सपेद वर्ण होगा उसको उंगलीसे घिसकर देखो यदि रवा बँधे तो उसको तितारी चासनी कहते हैं । इस्से कुछ गाढा हो तो साढेतीन तारी चासनी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जाननी । इसप्रकार जिस पाकमें जैसी चासनी लेनी लिखी है उसी तरहकी लेवे ।

अथमोदकानाह ।

तत्रतावद्दहित्रमोदकाः ।

प्रस्थमानंविशालाक्षिगोधूमजंचेत्सुपिष्टंघृतंतार्हिमुष्टिद्वयंच । मिश्रयित्वाचनीरेणतावत्प्रियेमुष्टिबद्धंचलोलाक्षियावद्भवेत् । मुष्टिबद्धानिपिंडानिभित्त्वाततःपाचयेत्कुंकुमाभांइछनैःसद्घृते। तानिसंकुट्यकृत्वातुचूर्णंपुनःशर्कराज्यंपृथक्प्रस्थमानंनवम्।द्रा-विडीवल्लिजंकोलमानंपृथक्चारवादामबीजंपलंखंडितम्।सर्व-मेकत्रकृत्वाचसंमिश्रयेद्बद्धयेन्मोदकांश्चाम्रमानांस्ततः । तेद-हित्राभिधामोदकाःशीतलावातापित्तापहाश्चाग्निमांद्यप्रदाः । श्लेष्मलाःशुक्रलाबल्यवृष्याहिताः सारकाश्चापिस्निग्धागरि-ष्टाप्रियाः ।

अर्थ–अब लड्डू बनानेकी विधि कहतेहैं उसमें प्रथम दहित्रमोदक अर्थात् मुठियाके लड्डू बनानेकी विधि और उसके गुणदोष कहतेहैं । गेहूंकी चून १ सेर लेकर उसमें ८ तोले घीका मोहन डाले, जब मुट्ठी बँधने योग्य होजावे तब पानीसे, उसने, फिर उसमेंसे मुट्ठीभर भर के तोडकर घीमें डाले, और धीमी आंचसे सेके, जब केसरके समान लाल रंग होजावे तब निकासले, फिर उनको कूटकर चूर करे फिर उसमें १ सेर सपेदबूरा और कुछ कंद तथा १ सेर घी और इलायचीके दाने आधेतोले मिरच आधेतोले बदाम ४तोले खसखस ४ तोले इनका चूरा डाल अच्छीरीतिसे मिलाय फिर लड्डू बांधे इसको दहित्रमोदक वा मुठियाके लड्डू कहतेहैं) ये लड्डू शीतल वातपित्त नाशक, अग्निमांद्यकरता, कफकारी, वीर्य बढानेवाले, बलकर, वृष्य, सारक, स्निग्ध, तथा भारीहै ।

अथबिंदुमोदकाः ।

प्रस्थैकंवेसनंपिष्टंतंडुलानांपलंप्रिये । द्विपलंचघृतंसम्यग्घ-स्ताभ्यांपरिमर्दयेत् । लोड़ायित्वाततश्चाद्रिर्गाढंमाक्षीकस-न्निभम्।ततश्चुल्ल्यांसुप्रज्वाल्यवह्नौन्यस्यकटाहकम्।ततोदं-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

डंकटाहस्थसघृतस्योपरिन्यसेत् । सूक्ष्मछिद्रान्वितंतस्यो-परिसन्न्यस्यझर्झरं । तत्फणायांचतन्न्यस्यशनैःसंहत्यपातये-त् । विंदूंस्तेकुंकुमाकारायदास्युश्चतदाद्भुतम् । तानन्येनच निष्कास्यझर्झरेणविचक्षणे । विस्तीर्णामत्रकेन्यस्यततःकु-र्यादमुंविधिम्। त्रिप्रस्थायाःसितायाश्चपाकंकृत्वात्रितारकम्। कर्पूरैलादिसंयुक्तंतस्मिंस्तान्विन्दुकान्क्षिपेत्। दर्व्यासंचाल्य बहुशःसत्युष्णेचविबंधयेत्। मोदकान्बिल्वतुल्यांस्तुतेवृष्या धातुवर्द्धकाः। शीतलालघवोरूक्षामधुरास्तृप्तिकारकाः। त्रि-दोषघ्नाःस्मृताःपूर्वैराचार्यैर्बिंदुमोदकाः।

अर्थ–अब बिंदुमोदक अर्थात् बूंदीके लड्डू बनानेकी विधि तथा गुण दोष कहतेहैं। बहुत बारीक बेसन १ सेर उसमें चामलकी चून ४ तोले घी ८ तोले मिलावे, फिर उसमें इतना पानी डाले कि, वह सन जावे, फिर उसको हाथोंसे खूब मथे तदनंतर कढाईमें घीभर भट्टीपर चढावे जब वो गरमहो जावे तब उस कढाईपर एक लकडी आडी धरे, और उसपर बारीक छिद्रकी झँझरी धरे उसमें मथा हुआ बेसन भरके उसको धीरे-धीरे उस लकडी पर ठोंकें तो उस झँझरीमेंसे मोतीके समान बेसनकी बूंद निकलकर घीमें पडे उनको सिकनेपर निकालले फिर १ सेर कंदकी तीन तारी चासनीकर उसमें उन बूँदियोंको डाल देवे और उसमें कपूर, इलायची, आदि सुगंधिद्रव्य मिलाय बहुत देरतक पौनासे उलटता पल-टता रहे फिर इसके चार चार तोले या अधिक बडे लड्डू बनावे। ये बूंदीके लड्डू वृष्य, धातुवर्धक, शीतल, हलके, रूक्ष, मधुर, तृप्ति-कारी, और त्रिदोषनाशक हैं। ये कुछ गरम रहनेपरही बांधे शीतल होने-पर नहीं बँधते।

अथमुक्तामोदकाः (मोतीचूरकेलड्डू)

मुद्गपिष्टंससर्पिष्कंमंथयित्वांबुनाततः । कुर्यादन्यंचसकलं बिंदुमोदकवद्विधिम्।स्यान्मुक्तामोदकः स्वादुर्लघुर्ग्राहीत्रिदो-षनुत्। चक्षुष्योज्वरदृद्बल्यः शीतस्तृप्तिरुचिप्रदः।

अर्थ–मूंगके चूनमें घृतका मोयन देके और पानी डालके मथे फिर बूंदीके लड्डूकी विधिसे बनाय लेवे इसको मुक्तामोदक अर्थात् मोती-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चूरके लड्डू कहतेहैं । ये हलके, मलग्राही, त्रिदोषनाशक, नेत्रोंको हितकारी, ज्वरनाशक, बलदायक, शीतल और तृप्ति तथा रुचि इनको देतेहैं।

अथरत्नमोदकाः।

मुक्तामोदकवत्कृत्वामाषजानपिमोदकान् ।
ईषत्समगुणामाषैः प्रोक्तास्तेरत्नमोदकाः ॥

अर्थ-उडदके चूनके जो लड्डू बनतेहैं उनको रत्नमोदक कहतेहैं इनको मोतीचूर लड्डुओंके समान बनावे इनके गुण उडदोंकेसेहैं।

सेविकामोदकाः (सेवके लड्डू)

घृताक्तांसमितांमर्द्यकृत्वातंतूञ्जलेनच । शनैस्तान्भर्जयेदाज्येसितापंकेविमिश्रयेत् । ततस्तान्मोदकान्कृत्वातेगुणैर्मठकाइव । सेविकामोदकानाम्नाकीर्त्तिताःशास्त्रवेदिभिः ।

अर्थ-मैदामें मोयनदेके पानीसे मलकर उसके सेव बनाने फिर उन सेवोंको घीमें तलके मिश्रिकी चासनीमें मिलाय लड्डू बनावे, इनको सेवके लड्डू कहतेहैं। इनके गुण मठरीके समान है।

अथसमितामोदकाः।

समिताप्रस्थमेकांतेघृतंक्षिप्त्वाशरावकम्।वर्णव्यत्ययतायावत्तावद्भर्ज्याथशर्कराम्।प्रस्थैकांचविनिःक्षिप्यततश्चोत्तार्यशीतले। एलालवंगमरिचंपृथक्कोलंविनिःक्षिपेत् । मोदकान्त्रचयेत्तस्यारुच्यामारविवर्द्धनाः।समितामोदकानामपित्तघ्नाः प्रीतिकारकाः।

अर्थ-मैदा १ सेर उसमें ४ तोले घी डालके भूने, जब मैदाका रंग कुछ लालहो तब उतार लेवे उसमें १ सेर सपेदबूरा और इलायची, लोंग, काली मिरच इनका चूरा आधे आधे तोला मिलाय लड्डू बाँधे ये लड्डू रुचिकारी क ामवर्द्धक पित्तनाशक, तथा प्रीतिकारक है। इसको समितामोदक अर्थात् मगदके लड्डू कहतेहैं।

अथद्रावकमोदकाः।

समितादुग्धकिट्टं च सर्पिःप्रस्थमितंपृथक्। हस्ताभ्यांमर्दयित्वातच्चैकीभूतंविभर्जयेत्। अर्द्धपक्वेपुनःसर्पिःप्रस्थैकंक्षिप्यभर्जयेत्। सम्यक्पक्वेचद्विप्रस्थांसितांतत्रविमिश्रयेत् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शीतस्थानेततोधृत्वाशीतीभूतेचकल्पयेत् । मोदकाद्राव-
कारव्यास्तेलवंगैलादिसंभृताः ॥ वृष्यावल्याश्चपित्तघ्नारुच्याः
कामविवर्द्धनाः । श्लेष्मलास्तर्पणाद्ध्यावातघ्नागुरवःस्मृताः॥

अर्थ--मैदा १ सेर, खोहा १ सेर, और घी १ सेर, इन तीनोंको मिलाय हाथोंसे मलके एकजीव करे फिर इसको भूने जब अर्द्धपक्व होजावे फिर इसमें १ सेर घी मिलावे और भूने जब अच्छी रीतिसे पक्व होजावे उसमें २ सेर सपेद बूरा मिलाय उतारलेवे फिर इसमें लोंग, इलायची, आदि मिलाय कलछीसे चलायदेवे और इसको शीतलस्थानमें धरदेवे जब शीतल होजावे तब लड्डू बँधावे इसको द्रावकमोदक कहतेहैं यह द्रावकमोदक वृष्य, बल-कारी, पित्तघ्न, रुचिकारी, कामवर्धक, कफकारक, तृप्तिकारी, हृदयशोधक, वातघ्न और भारी है।

अथ चूरमोदकाः (चूरमाके लड्डू)

घृताक्तंमर्दयेदीषदंबुनातिघनंप्रिये । पिष्टंगोधूमजंतस्यकुर्या-
दंगारकर्कटीः ॥ चूर्णयित्वातुतास्तत्रशर्करांचघृतंसमम् ।
संक्षिप्येलादिकंकुर्यान्मोदकान्मठवद्गुणैः ।

अर्थ--गेहूंके चूनमें घीका मोयन देके पानीसे करडा उसने फिर उसकी अँगाकर दो अंगुलमोटी करे उनको अंगारोंमें सेके जब सिकजावे तब उसका चूर्ण करे फिर उसमें बराबरका घी और बूरा तथा इलायची आदि मिलायके लड्डू बाँधे इसके गुण मठरीके समानहै।

अथ मुद्गादिमोदकाः ।

मुद्गचूर्णंप्रियेप्रस्थंप्रस्थेसार्पिषिभर्जयेत् । ततश्चोत्तारयेत्पात्रं
वह्नेर्भूमौनिधापयेत् ॥ पाकार्थंऽत्रसिताग्राह्याद्विप्रस्थामलव-
र्जिता । ततःकृत्वाचतत्पाकंचतुस्तारंमनोरमम्॥तस्मिन्सं-
मिश्रयेच्चेदंवक्ष्यमाणंगणंक्षिपेत् । लवंगमेलामरिचंवादामंच
निकोटकम् ॥ इदंकृत्वापृथक्छाणंखंडशोऽतीवशोभनम् । मो-
दकानस्यलोलाक्षिकल्पयेदाम्रमानकान् । इत्येवंमाषपिष्टस्य
कल्पयेल्लड्डुकानपि । वेसनस्याप्यतोवक्ष्येपृथक्कृत्वागुणा-
नहम्॥लघवोवातपित्तघ्नाःशीतवीर्याहिमुद्गजाः । सेवितास्त-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रुणैरेते वातघ्नास्तृप्तिकारकाः ॥ चाणकावातलारूक्षाःशीता विष्टंभिनोमताः । रोचकालघवोबालेपित्तरक्तकफापहाः ॥

अर्थ–मूंगकी बारीक चून ६४ तोलेको घी ६४ तोलेमें भूने फिर २ प्रस्थ खाँडकी चौतारी चासनीकर उसमें वो भुनाहुआ मूंगका चून और लोंग इलायचीके बीज, काली मिरच, बादाम, और पिस्ता, इनके टुकडे करके मिलावे और चार चार पांच पांच तोलेके अनुमान लड्डू बांधे, इसीप्रकार उडदके चूनके और चनेके चूनके बेसनी लड्डू करे । अब इनके पृथक् पृथक् गुण कहतेहैं । मूंगके मुक्तामोदक हलके वातपित्तनाशक, और शीतवीर्यहैं । माषमोदक कहिये उडदके लड्डू गरम, वृष्य, भारी, स्निग्ध, बलकारी, तरुण पुरुषके सेवन करनेसे वातघ्न तथा तृप्तिकर है । बेसनी लड्डू वातकारक, रूक्ष, तथा शीतल, मलस्तम्भकारक, रुचिकारी तथा हलके होनेसे पित्तरक्त और कफसंबंधी रोगोंको नाश करता जानने ।

अथ होलकमोदकाः ।

होलकंचणकादीनांशोषयेदातपेततः । स्थूलंपिष्ट्वातुप्रस्थैके घृतंप्रस्थंविनिःक्षिपेत् ॥ द्विप्रस्थांश्शर्करामेववादामादीन्यथारुचि । बंधयेन्मोदकांस्तस्यामिश्रयित्वाऽश्रमानकान् ॥ दुर्जरागुरवःशीतावातमेदःकफप्रदाः । श्रमघ्नाग्राहिणोरूक्षाइमे होलकमोदकाः ॥

अर्थ–चनाके बूंट आदि फलीके धान्योंको धूपमें सुखाय चाकीसे मोटापीस एक सेरमें घी एकसेर डालके भूने फिर २ सेर बूरा और बदामकी मिंगी आदि मसाला डारकर लड्डू बनावे ये लड्डू दुर्जर, भारी, तथा शीतल, एवं वात मेद तथा कफ इनको करेहैं । और श्रमनाशक, मलग्राही, और रूक्षहैं ।

एवमुंड्याश्चकर्तव्यामोदकागुरवोहिते ।
वृष्याःश्लेष्मप्रदाःप्रोक्ताबल्याःपित्तानिलापहाः ॥

अर्थ–बूंटके लड्डूके सदृश अन्य कच्चे अन्नके लड्डू करने चाहिये ये भारी, वृष्य, कफकारी, बलकारक, और वात तथा पित्त रोगनाशक हैं ।

अथ बीजमोदकाः ।

कूष्मांडकारिबीजानिनिस्तुषीकृत्यभर्जयेत् । घृतेचापिसि-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तापंकेक्षिप्त्वाकुर्याच्चमोदकान् ॥ तेबीजमोदकावृष्याःशीतलागुरवोमताः । शुक्रलामधुरावल्याःस्थौल्यवर्णकफप्रदाः ॥ रक्तदोषंतथावातंपित्तंसन्नाशयंत्यये । वालेभुक्त्वापिनारीणां तोषकोनाभवेद्ध्रुवम् ॥

अर्थ--अब बीजमोदक अर्थात् बीजोंके लड्डू बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं । पेठा, तरबूज, घीया इत्यादिके बीजोंको छील घीमें भूने फिर खांडकी चासनीमें डाल लड्डू बनाय लेवे ये लड्डू वृष्य, शीतल, भारी, वर्यिवर्द्धक, मधुर और बलकारी एवं स्थूलता, कांति, तथा कफ, इनको करे और रक्तदोष वायु और पित्त इनको नाश करेहैं ।

अथ शालूकमोदकाः ।

शालूकंनिस्त्वचंकृत्वापाचयेदंबुनाशनैः । संपेष्यवटकान्कृत्वापाचयेत्तान्घृतेप्रिये । ततःसंचूर्णीयित्वातुसितापाकेविमिश्रयच । बंधयेन्मोदकांस्तस्यविष्णवेतान्समर्पयेत् ॥ किंवासंपाच्यसंपेष्यकृत्वातंतून्घृतेपचेत् । संक्षिप्यशर्करापाकेमोदकान्रचयेत्प्रिये ॥ शालूकमोदकारूक्षादुर्जराःकफनाशनाः । किंचित्कषायाःपित्तघ्नाःशूलाध्मानकरामताः । विष्टंभकरणाःख्याताःशीतसंनाशनास्तथा । एवंशृंगाटकादीनां मोदकान्रचयेत्प्रिये ॥ गुणाःकंदानुमानेनकल्पयेच्चनिघंटुतः । ग्रंथभूयस्त्वभीतोहंनब्रवीमिविधिंपृथक् ॥

अर्थ--अब शालूक (कमलकंद) के लड्डूओंकी विधि कहतेहैं कमलकंदके ऊपरके छिलकेको चाकूसे दूरकर उनको सिजावे जब सीज जावे तब उनको पीसके बडे करे उनको घीमें सेके फिर उसको कूटकर चासनीमें मिलाय लड्डू बनाय लेवे । अथवा कमलकंदको सिजाय और पीसकर सेव करे उन सेवोंको चासनीमें तलके लड्डू बनावे । ये लड्डू रूक्ष, दुर्जर, कफनाशक, कषैले, पित्तनाशक, शूल करता, अफराकारक, मलस्तंभकारी, और शीतनाशकहैं । इसीप्रकार कसेरू, सिंघाडे, आदिके लड्डू करने चाहिये उनके गुण उसी उसी कंदके समान जानने जिनको इनके गुण देखनेकी इच्छा होय वो इस ग्रंथके निघंटुभागमें जो पीछे छपेगा उसमें देखलेना इसजगे ग्रंथविस्तारके भयसे नहीं लिखे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ क्षीरशाकाकृतिगुणाः ।

दुग्धंवादधिवातक्रेसमभागेनमेलयेत् । ततोयावद्भवेत्पिंडंता-
वदेवविपाचयेत् ॥ शर्करापूरणेनैवतस्यकार्याचचक्रिका ।
घृतेसंपाचितासातुक्षीरशाकेतिकथ्यते ॥ कफदापुष्टिदागु-
र्वीवृष्याहृद्याप्रकीर्तिता । वाताग्निनाशनीचोक्तादीप्ताग्नी-
नांहितामता ॥ व्यवायिनामनिद्राणांसुहितेपरिकीर्त्तिता ।

अर्थ–दूध अथवा दहीको छाछमें समान भाग मिलाय अग्निपर पचावे जब औटते औटते गोला होजावे तब उसमें बूरा मिलाय टिकिया करे और उनको घीमें तले इसको क्षीरशाका कहतेहैं । यह क्षीरशाका कफ और पुष्टिको करे, भारी, वृष्य हृदयको बल देनेवाली, और वायु तथा जठराग्नि इनको नाश करे उसीप्रकार जिनकी जठराग्नि तीव्रहो उनको और जो निरंतर मैथुन करनेवालेहैं उनको और जिनको निद्रा नहीं आतीहो उनको हितकारीहै ।

अथ निष्पंदः ।

दधिदुग्धेसमेकृत्वापचेदर्द्धावशेषकम्।तस्मिंस्तिलांस्तंडुलां-
श्चारकंपनसास्थिच ॥ मातुलुंगस्यखंडानितस्मिन्दुग्धसमं
घृतम् । सितांनिक्षिप्यविपचेत्तस्मिन्व्योषंसचंद्रकम् ॥ निक्षि-
प्योत्तार्यनिष्पंदोधातुवृद्धिकरोगुरुः । हृद्यश्चवातपित्तघ्नो-
मुनिभिःपरिकीर्तितः ॥

अर्थ--दही और दूध समभाग एकत्र कर अर्धशेष रहनेतक औटावे फिर उसमें तिली, चावल, चिरोंजी, पनसकी गुंठली, बिजोरेके टुकडे तथा दूधके समान घी और बूरा डालकर जबतक नरम खोहा न होय तबतक औटावे औटते समय उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, और कपूर डालके उतार लेवे इसको निष्पंद कहतेहैं । यह निष्पंद धातुवर्द्धक, भारी, हृदयको बलकर एवं वातपित्त संबंधी रोगोंको दूर करे ।

अथ पललम् ।

पललंतुसमाख्यातमैक्षवंतिलपिष्टकम्।पललंमलकृद्वृष्यंवात-
घ्नंकफपित्तकृत् ॥ बृंहणंपौष्टिकंस्निग्धंगुरुमूत्रनिवर्त्तकम् ।

अर्थ--तिल और गड इन दोनोंको एकत्र कर कूटे फिर उसके लड्डू बाँधे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इनको संस्कृतमें पलल और भाषामें तिलकुट वा तिलभुग्गा कहते हैं। यह मलवर्द्धक, वृष्य, वातनाशक, कफपित्तकारक, धातुवर्द्धक, पुष्टिकारी, स्निग्ध तथा भारी एवं मूत्रनाशक है।

अथ तिलमोदकाः।

वितुषान्सुतिलान्भर्ज्यगुडपाकेनमोदकान् ।
कृत्वातेचसमीरघ्नावीर्यपुष्टिबलप्रदाः ॥

अर्थ--तिलका छिलका दूर कर भूने और उसमें गुडकी चासनी मिलाय लड्डू बाँधले ये तिलके लड्डू वातनाशक और वीर्य पुष्टि और बलको देते हैं।

अथ मुद्गदलमोदकाः (मूंगदलके लड्डू)

समाज्यशर्कराःकांतेमुद्गसक्तुविनिर्मिताः। एलादिचूर्णसंयुक्ता घर्मर्त्तौहितकारकाः॥प्रियेमुद्गदलाख्यास्तेमोदकाःपरिकीर्त्तिताः।

अर्थ--अब मुद्गदल मोदककी विधि कहते हैं, भूनेहुए मूंगके चूनमें बराबरका घी और बूरा तथा इलायचीके दाने आदि मसाला मिलाय लड्डू बाँधे, इसको मुद्गदलके लड्डू कहते हैं। ये मूंगदलके लड्डू उष्णकाल अर्थात् गरामियोंमें हितकारी हैं।

अथ पायसमाह।

दुग्धेषोडशप्रस्थेसुतंडुलानांप्रस्थैकंकांते।अथवाप्रस्थद्वितयं मंदवह्निनाविपाचयेच्छनकैः॥ नातिद्रवंघनकुचेनातिघनंभो यदामधुसमंस्यात्। उत्तारयेत्कदुष्णोसिताऽष्टमांशाप्रक्षेप्या- पयसः॥ घृतंसितार्धंबहुलारजःपलैकंमृद्वीकाष्टपला। वादा- मस्यशरावांक्षेपेत्पायसेहिखंडशःकृत्वा ॥ तत्पायसंनितंबि- निधातुवर्द्धकंचदुर्जरंबल्यम्।विष्टंभ्यरुचिकफकरंमेदोवृद्धिप्र- दंचगुरुकांते ॥ कुरुतेचअग्निमांद्यंलोहितपित्तप्रणाशनंख्या- तम्। हरतेपित्तंवातंहरयेसततंनिवेदयेच्चततः॥

अर्थ--अब चामलकी खीरके बनानेकी विधि कहते हैं, दूध १६ शेरमें १ शेर अथवा २ शेर चावल डालकर उसको मंदमंद अग्निसे पक्क करे, पक्क करते समय कौंचासे बारबार चलाताजाय तदनंतर सहतके समान गाढी हो जावे तब उतारकर उसमें २ शेर बूरा, १ शेर घी, चार तोले इलाइची- का चूर्ण, आठ पल किसमिस, बदामके टुकडे ८ पल डालके कौंचासे चलाय

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवे इसको पायस कहते हैं। यह पायस धातुवर्द्धक, दुर्जर, भारी, बलदायक तथा विष्टंभी, एवं अरुचि, कफ, मेद, और आमिमांद्य इनको करे हैं। उसी-प्रकार रक्तपित्त तथा वादीको दूर करे।

अथ नालिकेरपायसगुणाश्च।

दुग्धेचनालिकेरंसूक्ष्मंकृत्वाविपाचयेच्छनकैः। नातिद्रवंघ-नंवासिताज्यबहुलागोस्तनिकादियुतम्॥ तत्स्निग्धंचशीतलं गुर्वतिमधुरंसुपौष्टिकंवृष्यम्। वातंचरक्तपित्तंतथाम्लपित्तंवि-शेषतोजयति॥

अर्थ-अब नारियलकी खीर बनानेकी विधि कहते हैं,नारियलकी गिरीको बारीक कतर अथवा उसको घीयाकसमें कसके पूर्वोक्त विधिके समान दूध आदि लेकर खीरकरे यह खीर स्निग्ध, शीतल, भारी, अत्यंत मधुर, पौष्टिक तथा वृष्य होकर वात, रक्तपित्त, और अम्लपित्त इनको नाश करे।

अथ लप्सिका (सीरा)

प्रस्थैकासमिताकांतेतत्समंसर्पिरंगने। भर्जयित्वायदापश्ये-त्कणशश्चघृतंपृथक्॥ भर्जितेतिविजानीयात्तदेयंसमिताप्रि-ये। ततःकृत्यंप्रवक्ष्यामित्वंशृणुष्वसमाहिता॥ प्रस्थैकासा-र्द्धंप्रस्थावाद्विप्रस्थावासुशर्करा। त्रिप्रस्थेक्षीरकेनीरेवाविपा-च्याप्रयत्नतः॥ मलमुत्तार्यतन्नीरंतत्कटाहेविनिक्षिपेत्। यत्रसासमितापक्काज्वलच्चुल्युपरिस्थिता॥ततःसंचालयेद्दर्व्या यावदाज्यंनदृश्यते। मरिचश्रीसुमैलानांततश्चूर्णंविमिश्रयेत्॥ ततःसंचालयित्वातुसमुत्तार्यानिधापयेत्। प्रोक्तासालप्सिका गुर्वीवृष्यास्निग्धाबलप्रदा। धातुश्लेष्मकराचापिमधुरारसपा-कतः। वातापित्तप्रशमनीकमनीयगुणालये॥

अर्थ-इसको कोई सीरा और कोई देशके मनुष्य इसको मोहनभोग कहते हैं गेहूंका चून १ शेर ले उसको शेरभर घीमें भूने जब भूनतैं भूनतैं उस चूनके कि-नका पृथक् पृथक् और कुछ लाल हो जावे तथा उनमेंसे घी बाहर निकलने लगे तब जानेकी चून भुनगया, पीछे उसी प्रकार एक अथवा डेढ किंवा दोशेर बूरा तीनशेर दूध अथवा पानीमें भिगोकर ओंटावे जब ऊपर उसके मैलकी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मलाई आवे उसको निकालडाले इसप्रकार दूध प्रथम तयार कर उस भुने हुए चूनमें मिलावे। और कौंचासे चलाताजाय जब चलाते चलाते कुछ घी पृथक् दीखने लगे तब उसमें काली मिरच, लोंग, छोटी इलायची, इनका चूर्ण करके डाले सबको मिलाय कढैयाको उतार लेवे। यह मोहनभोग भारी, वृष्य, स्निग्ध, बलदायक, धातु तथा कफवर्धक, रसकालमें तथा पाककालमें मधुर और वातपित्तनाशक है।

अथ भैमीलप्सिका।

प्रियेभैमीलप्सिकायाविधिरन्यस्तुपूर्ववत् । समानाशर्करा पिष्टादंबुजाक्ष्यपरंशृणु ॥ नालिकेरस्यमज्जानंसूक्ष्मंखर्जूरमंगने। द्राक्षामेलांत्वचंविश्वंमरिचंकृत्यखंडशः ॥ निःक्षिप्य चालयेद्द्रव्यांसमुत्तार्यनिधापयेत्।इयंगुणैर्लप्सिकेवशीतकाले हितावहा ॥

अर्थ–इस भैमीलप्सिकाकी विधि मोहनभोगके समान है, परंतु इसमें बूरा चूनके समान लेना चाहिये तथा बारीक कतरे हुए गिरी, छुहारे, दाख, इलायची, दालचीनी, सोंठ काली मिरच, इनके टुकडे कर डाले तो भैमी लप्सिका बने इसके गुण लप्सिकाके समान है। परंतु यह शीतकालमें विशेष सुखदायक है।

अथ चंद्रहासा लप्सिका।

चंद्रहासालप्सिकायाःपाकंकुर्याद्विपूर्ववत्। घृतंपिष्टसमंक्षीरं द्वयोस्तुल्यंसितापिच।कर्पूरमेलांमरिचंक्षिप्त्वासंचालयेत्ततः। समुत्तार्यभजेद्देषावृष्यावल्याकफप्रदा । धातुसंवर्द्धिनीगुर्वी वातपित्तहरामता ॥

अर्थ–चंद्रहासा लप्सिकाकी विधि पूर्वोक्त प्रमाण है, विशेषता इतनी है कि, इसमें घी सूजीके समान और दूध दोनोंके समान तथा बूरा दूधके समान डालना चाहिये, जैसे-सूजी १ भाग, घी १ भाग, दूध २ भाग, और बूरा २ भाग, उसीप्रकार भीमसेनी कपूर, इलायची, काली मिरच, इनका चूर्ण करके डाले यह चंद्रहासा लप्सिका वृष्य, बलदायक, कफकरता, धातुवर्धक, तथा भारी है। और वातपित्तनाशक है।

अथ फेनिका।

समितामरविंदाक्षिकिंचिदाज्यविमिश्रिताम्। मर्दयेदंबुनागाढां

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कारयेद्वर्त्तिकास्ततः ॥ सन्निधायसजूःसर्वाःकाष्ठदंडेतुवेष्ट-
येत् । ताश्चच्छुरिकयाखंड्यपुनःस्थाप्यसुपट्टके ॥ घृतनीर-
युतेनैवशालिचूर्णेनलेपयेत् । पुनःसंवृत्यचैतासांलोम्नींसम्य-
क्प्रकल्पयेत् ॥ वेल्लयेत्तांततःस्थूलामंगुलोत्सेधकांपचेत् ।
घृतेपक्कांसमुद्धृत्यसितापाकेनवेष्टयेत् ॥साज्यैषाफेनिकागुर्वी
बृंहिणीबलपुष्टिदा । मधुरादीपनीरुच्यावातपित्तहरास्मृता ॥

अर्थ-मैदामें घीका मोयन देकर उसको गाढी उसने फिर घृत लगाकर अच्छी रीतिसे जबतक नरम न होवे तावत्कालपर्यंत उसका मर्दन करे फिर उसकी सैमईके समान बत्ती करे उन सबको एक लकडीसे लपेट देवे पश्चात् छुरीसे कतर टुकडे कर फिर उन टुकडोंको पटेपर धरके उनमें चामलोंकी चून घी और पानी समान भाग मिलाकर लेपकरे और गोलाकर एक अंगुल मोटा वेले फिर घृतमें सेके जब पक्कहोजावे तब उनको निकाल एकतारी चासनीमें पाग लेवे इसको फैनी ऐसे कहतेहैं । यह फेनी भारी, धातुवर्धक बलकर, पुष्टिकारक, मधुर, दीपन, रुचिकारी, तथा वातपित्तहरहै ।

अन्यः प्रकारः ।

समितांपूर्ववन्मर्द्यकारयेद्वर्तिकाश्चताः । घृताक्ताःसंहताःस-
र्वाःपीठस्योपरिधारयेत्॥वेल्लयेद्वेल्लनेनैतायथैकापर्पटीभवेत्।
शकटंलेपयेत्तस्यांततःशस्त्रेणखंडयेत् ॥ एकीकृत्यततोलो-
म्नींकल्पयेद्वेल्लयेत्ततः।एवंवारत्रयंकृत्यवेल्लयेदंगुलोच्छ्रिताम्॥
ततस्तांपाचयेदाज्येफेनिकांपूर्ववद्गुणाम् ।सुगंधयाशर्करयात-
दुद्वलनमाचरेत् ॥

अर्थ-फेनीकी दूसरी विधि कहतेहैं । मैदाको पूर्वोक्त रीतिसे उसनकर उसकी बत्तीकर उसमें घी लगाय एकसे एक मिलाय मैदाके ऊपर धर देवे, और चकलावेलनसे वेल उनकी एक पापडीकरे फिर उसके ऊपर सकट (सांठा) लगाय छुरीसे टुकडे करे उन टुकडोंको एकके ऊपर दूसरा धरे फिर उनको वेलें इसप्रकार तीन बार करे तथा एक अंगुलभर मोटी वेलकर घीमें सेंके फिर इसके ऊपर खांडकी चासनी चढावे; इसके गुण पूर्वोक्त फेनीके समान जानने।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शकट ।

शकटंवदकंजाक्षशृणुकंजविलोचने ।
शालिचूर्णंघृतंनीरंमथितंशकटंभवेत् ॥

अर्थ–हे प्राणप्रिय! आप सकट कहो हे कुंजविलोचने ! चावलोंका चून, घी, और पानी इन तीनों पदार्थोंको समान लेकर मिलनेको सकट कहतेहैं ।

अथ पत्रफेणिका ।

धौततंदुलजंपिष्टंमर्दितंपयसाद्रवम्।निशिपर्युषितंप्रातःपुनर्नीरेणमर्दयेत् । वटादिपत्रकेतच्चपत्रवत्परिलेपयेत् । किंचित्तोयान्वितेभांडेतृणगर्भेविपाचयेत् । लघ्वीवृष्याकषायेयं वातघ्नीपत्रफेनिका ।

अर्थ–धुले हुए चामलोंके चूनको रात्रिमें पानीमें भिगोकर धरदेवे तथा प्रातःकाल थोडा पानी डालकै मथे फिर वडके पत्तेपर अथवा दूसरे पत्तेपर उसका पतला लेप करे फिर एक पात्रमें थोडा पानी भरके उस बर्तनको आधा तिनकोसे भरदेवे उन तिनकोंके ऊपर पूर्वोक्त लेप करे हुए पत्तोंको धरके अग्निसे पक्क करे जब उस पत्तेपर वह चामलका चून पक्क होजावे तब उस पत्तेपरसे उचेल घृतमें पक्क करे इसको पत्रफेनी कहते हैं । यह पत्रफेनी हलकी, वृष्य, कषेली, और वातनाशक है ।

गोधूमसंभवालघ्वीछर्दिघ्नीपत्रफेनिका । रुच्यावल्याऽम्लपित्तघ्नीदाहघ्नीचप्रकीर्त्तिता । माषजाबृंहणीगुर्वीस्निग्धाबल्या चशुक्रला । स्त्रीषुहर्षप्रदाकांतेकीर्तितापत्रफेनिका ।

अर्थ–गेहूंकी पत्रफेनी हलकी, वांतिनाशक, रुचिकारी, व बलकारी, एवं अम्लपित्त और दाह इनको नाश करे उडदकी पत्रफेनी, भारी, धातुवर्द्धक, स्निग्ध, बलकारी, वीर्यवर्द्धक, और वृष्य है ।

अथ तंतुफेनिका ।

ईषत्सैंधवसंयुक्तांसमितामलिकुंतले । घनंसंमर्द्यसंकुट्यकृत्वामृदुतरांततः । सेविकारचयेत्तस्यास्ताभिःकंजविलोचने । विचित्ररचयेद्गुच्छमुष्णीषाकारमेवच । तस्योपरिघृतं लिंपेन्माथितंनवनीतवत्॥पुनःसवेष्टयेत्ताभिःकिंचिदाकर्ष्यव-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

र्द्धयेत्।घृतेसंपाचयेत्तस्यांपचंत्यांसंविचालयेत् । सूक्ष्माभि-श्चशलाकाभिःसुपक्कांतुसमुद्धरेत् । अन्यपात्रेतुसंस्थाप्यंसि-तामुपरिनिःक्षिपेत्। बृंहणीग्राहिणीवृष्याशुक्रलाचत्रिदोषहा। लघ्वीचमधुरापाकेतन्वंगिरुचिकारिका । बालेबलवतिप्रो क्तावल्यैषातंतुफेनिका।

अर्थ-मैदामें थोडासा सैंधानिमक मिलाय फिर पानीसे उसने और मुक्की देकर उसको नम्र करे पीछे उसके सेवसे बनाय पगडीके समान लपेटा देकर गोल करे फिर उसके ऊपर पानीमें घी मथकर जब मक्खनके समान होजावे तब लगावे फिर उसको मालाके समान लंबी करे और फिर उसीप्रकार छोटीसी घडी करे उसको घृतमें तले और तलतेसमय बारीक काँटेसे चलाताजाय जब परिपक्क होजावे तब उतारकर वक्खरमें डाल खांड चढा-यकर निकास लेवे यह तंतुफेनी अर्थात् तारफेनी सप्तधातुवर्द्धक, मलकों बाँधनेवाली, वृष्य, वीर्यवर्द्धक, त्रिदोषनाशक, हलकी, पाकके समय मधुर, रुचिकारी और बलदायक है।

अथ गुलोरिका (शक्करपूरी)

समितातोऽष्टमंभागंघृतंसम्यग्विमिश्रयेत् । घनंनीरेणसंमर्द्द्य कुर्याच्चैवातिकोमलाम् । ततःपिचुमितांनीत्वाकृत्वालोम्नींम-ठाकृतिम् । शर्करांपूरयेत्तस्यांमुद्रयेत्तन्मुखंदृढम् । ततस्तां वेल्लयेद्वालेवर्तुलांपूलिकाकृतिम् । मंदाग्नौपाचयेदाज्येसाच ख्यातागुलोरिका । गुर्वीयंललनेवृष्याधातुसंवर्द्धिनीमता । वातपित्तप्रशमनीकारयेच्चगुडेनवा ।

अर्थ-गेहूंकी मैदामें आठवाँ हिस्सा घी डालके गाढी उसने फिर कुछ जलके छींटे देकर और मुक्की देदे कर नम्रकरे फिर उसमेंसे अनुमान १ तोलेकी लोई तोड मूंसके समान कर उसमें मिश्रीका महीन चूराभर और मुखबंदकर उसको चकला वेलनसे चंद्रमाके समान गोल वेलकर तत्ते घीमें छोडदेवे जब सिकजावे तब निकासले इसको गुलोरिका अर्थात् शक्कर भरी पूरी कहतेहैं। यह गुलोरिका भारी वृष्य सप्तधातुको बढानेवाली और वात्तपित्तनाशकहै इस गुलोरिकाको गुडकीभी करतेहैं इसीप्रकार मेवाकी पूडी बनातेहैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ दुग्धकूपिका (गुलाब जामुन)

दुग्धमम्लेनसंभेद्यपाचयेन्मंदवह्निना । गाढीभूतेप्रियेतस्मि-न्पिष्टंतंदुलजंसमम् । मिश्रयित्वा च रचयेत्कूपिकांजंबुसन्नि-भाम् । अतीवरम्यीयांचपाचयेद्घोघृतेततः । घनंसम्यक्छृ-तंदुग्धंतस्यामेवप्रपूरयेत् । पश्चात्तेनैवपिष्टेनमुखंतस्याविमु-द्रयेत् । पुनस्तस्यामुखंयुक्त्यापाचयेद्घृतेततः । चतुस्तारे सितापाकेप्लावयित्वासमुद्धरेत् । अथवाजंबुसदृशंकृत्वापिं-डंविपाचयेत् । तस्यमध्यंतुशस्त्रेणयत्नान्निष्कास्यपूर्ववत् । दुग्धेनपूरयेद्रंध्रंमुद्रयेत्पिष्टकेनच। पाचयेद्घृतेयत्तद्वत्सितापा-केनशोभनम् । सादुग्धकूपिकाख्यातागुर्वीबल्याचशीतला । वातपित्तहराख्याताशुक्रलातृप्तिपुष्टिदा ।

अर्थ–प्रथम दूधमें इमली आदि खटाईका रस डालकर कुछ गरम करे जब फटजावे तब फिर खूब अग्निदेवे जब जानेकि अब थोडी देरमें खोहा होनेवालाहै उससमय बराबरका चांवलका चून मिलावे फिर उसमेंसे थोडा चून लेकर उसकी जामुनके समान पोली कुप्पीसी बनाय तत्ते घीमें छोडदेवे जब वो सिकजावे तब निकाल उनके भीतर गाढा गाढा दूध भरे और उनका मुख उसी चूनसे बंद करदेवे फिर उनके केवल मुखमात्रको घीमें सेक निकासलेवे, फिर खांडकी चौतारी चासनीमें उनको भिगोकर निकास लेवे, अथवा उस पूर्वोक्त खोहेकी जामुनके समान गोली बनाय घीमें सेकलेवे फिर उनको निकाल छुरीसे चीरके उनके भीतरसे खुर-चके पोली करे और उनमें गाढा गाढा दूध भर मुख, बंद कर घीमें तलके निकासले उनपर चासनी चढावे इसको दुग्धकूपिका कहतेहैं और भाषामें उनको गुलाबजामुन कहतेहैं । ये गुलाबजामुन, भारी बलकारी, शीतल, वातपित्तनाशक, वीर्यवर्द्धक तृप्तिकर और पुष्टिकारकहै ।

अथ शालिपूपकृतिगुणाः (अँदरसे)

धौततंदुलजंपिष्टंघृतमिश्रंगुडांबुना । संमर्द्यापूपकंकृत्वात-स्यैकांगेचखाखसम्।लग्नंकृत्वाततश्चाज्येपाचयेच्छालिपूपकम्। शालिपूपोरुचिकरोवृष्यःस्निग्धश्चशीतलः । अतीसारप्रशम-नोमतःशुक्राभिसारिके ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–धूलेहुए चावलके चूनमें थोडा घी मिलायकर फिर गुडके पानीसे उसने फिर उसकी लोई तोडकर पूडीके समान वेले और उसके एक ओर खसखसके दाने लगायके घीमें सेकै इसको शालिपूप कहतेहैं। कोई अँदरसे कहतेहैं। ये शालिपूप रुचिकारी वृष्य, स्निग्ध, तथा शीतल है। एवं अतिसाररोगका नाशक है।

अथाऽऽपूपकृतिगुणाः (पूआ)

समितामितानंदेमर्दयित्वागुडांबुना । घृताक्तांचततोनीत्वाबिल्वंबिल्वपयोधरे। वेल्लनेनतुसंवेल्यचंद्रमंडलसन्निभम्। वर्त्तुलंपाचयेदाज्येसिद्धंज्ञात्वासमुद्धरेत् । आपूपोयंविलोलाक्षिपुष्टिदोऽतिगुरुस्तथा । वातपित्तहरोबल्योहृद्योवृष्यो रुचिप्रदः।

अर्थ–मैदाको गुडके पानीसे उसनकर उसमेंसे चार तोले लेकर पूडीके समान वेलकर घीमें सेके इसको अपूप (पूआ) कहतेहैं। ये अपूप पुष्टिकारी, भारी, वातपित्तनाशक, बलकारी, हृदयको बलदेनेवाले वृष्य, और रुचिदायकहै। इसीप्रकार खांडके पूआ बनतेहैं। और कोई मैदाकी प्रतिनिधी गेहूंका चून डालते हैं।

अथ दधिपूपकृतिगुणाः।

घनदध्नाघनंमर्द्यशालिपिष्टंघनस्तानि । कारयेद्वटकाकारानाज्येसंपाचयेत्ततः । चतुस्तारेसितापाकेमज्जयित्वासमुद्धरेत्। दधिपूपाइमेवृष्यारुच्याधातुप्रवर्द्धनाः । अग्निमांद्यप्रदाबल्याःश्लेष्मलादाहतृड्हराः।वातपित्तहराहारलसत्पीनपयोधरे।

अर्थ–चावलके चूनको दहीमें उसनकर उसके वडे बनावे उनको घीमें सेक खांडकी चौतारी चासनीमें तले ये दहीके पूआ वृष्य, रुचिकारी, धातुवर्द्धक, मंदाग्निकारक, बलकर्त्ता, तथा कफकारक, एवं दाह, तृषा, वात, और पित्त इनको नाश करतेहैं।

अथ चिरमंठकृतिगुणाः।

समितामितानंदेसर्पिषाक्तांविमर्दयेत् । घनामद्रिर्घनोरोजेततःकुर्यादमुंविधिम्।किंचित्किंचिज्जलंदत्वामर्दयेद्धिपुनःपुनः । सुचिरंकोमलांकृत्वाकोमलांगिमनोहरे । ततःपूगामि-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तंनीत्वावेल्यकृत्वाचपर्पटीम् । सूक्ष्मांपत्रनिभामेवंबह्वीःकृत्वानिधापयेत् । आज्यलिप्तास्ततस्तास्तुस्थापयेदुपर्य्यूपरि। यावद्द्व्यंगुलमुत्सेधंततःकिंचिच्चवेल्लयेत् । ततःशस्त्रेण संखंड्यत्र्यंगुलोन्मानकानि च । खंडान्येवपुनर्वेल्यतनूकृत्यप्रयत्नतः । चतुःकोणान्पचेदाज्येशर्कराढ्यांश्चभक्षयेत् । चिरमंठाइमेबल्यावृष्याधातुप्रवर्द्धनाः । गुरवोवातपित्तघ्नाः पुष्टिदाःपरिकीर्त्तिताः ।

अर्थ–मैदामें थोडासा मोयन देकर मिलावे फिर उसे पानी डालकर भिजोवे तदनंतर थोडा पानी देकर वारंवार उसनकर नरमकरे फिर उसमेंसे सुपारीके समान लोई तोड गोलकर चकलापर वेलनीसे पतली पत्तेके समान वेले इसप्रकार बहुतसी पापडी वेलके उनमें घृतलगाय एकके ऊपर दूसरी धरे इसप्रकार धरनेसे जब दो अंगुलके अनुमान मोटी घडी होजावे तब उसको फिर कुछ वेलकर छुरीसे तीन तीन अंगुलके टुकडेकरे उन प्रत्येक टुकडोंको वेलकर घीमें सेंकै इनको बूरेके साथ खाय ये चिरमंठ बलदायक, वृष्य, धातुवर्द्धक, भारी, वात पित्तनाशक और पुष्टिदायकहै । इनको महाराष्ट्रभाषामें चिरोटे कहते हैं।

अथ खाजा (खजला)

अंभसित्रिदिनंप्लाव्यतंडुलांस्त्रिःप्रमार्जयेत् । शोषयेदातपेतेषांपिष्टंवस्त्रविगालितम् । तत्समंचघृतंगाढंमिश्रयित्वाप्रमंथयेत्।स्थापयेत्तच्छुभेपात्रेततःकुर्यादमुंविधिम्।समितामुभयोस्तुल्यामंभसामर्दयेद्दृढम् । कांतेचातिघनांकिंचिदाज्यालिप्तंविकुट्टयेत् । भूयोभूयःप्रयत्नात्तद्गोलकंदृषताऽश्मनि । यावन्मृदुतरंपश्चाच्छलायांसंप्रसार्यच। तत्रगर्त्तान्यंगुलीभिःकल्पयित्वाप्रपूरयेत् । साज्यंतत्पिष्टकंयावद्गर्तपूरंमनोहरे। ततस्तद्द्विगुणीकृत्यकुट्टयेच्चापिपूर्ववत् । एवंवारत्रयंकृत्वाततोनीत्वाऽक्षकंपृथक् । किंचिद्विस्तार्यांगुलीभिःकृत्वागर्तानिपाचयेत् । घृतेखाजेतिविख्याताभुक्ताशर्करयानरैः । स्त्री-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

षुहर्षकरीह्येषागुर्वीपित्तानिलापहा । शुक्रलामधुराकांतेमधु-
राधरपल्लवे ।

अर्थ—चामलोंको ३ दिन पानीमें भिजोवे, फिर तीन दिनके उपरांत तीन वार जलसे धोय शुद्धकर धूपमें सुखावे, फिर उनको पीस उनके चूनको कपडे में छानलेवे, फिर चावलके चूनके समान गाढा घी मिलावे, फिर इनदोनोंको खूब मथकर एक उत्तम पात्रमें भरिकै धरदेवे, तदनंतर उसके समान गेहूंकीमैदा लेकर उसको पानीसे उत्तम रीतिसे सानकर उसको ओखलीमें डाल मूसलके वारंवार घी लगाकर कूटे इसप्रकार कूटकर नरम करे, तदनन्तर उस कुटी-हुई मैदाको एक स्वच्छ पट्टेपर रोटीके समान करके फैलाय देवे,उसमें पांचो उँगलियोंसे गड्ढा करे, और ऊपर कहाहुआ चावलका चूनके लेपसे उन गड्ढोंको भरदेवे फिर उसकी घडी करके और गोल करके कूटे, ऐसे ३ वार करे उसमेंसे फिर सुपारीके समान लोई ले हाथोंसे चपटी करके उसमें पांचों उँगलियोंसे गड्ढाकर घृतमें सेके इसको खाजा अर्थात् खजला ऐसे कहते हैं। इसको बूरेके [अथवा दूध बूरेके] साथ भोजन करनेसे वृष्य, भारी, वात तथा पित्तनाशक धातुवर्द्धक और मधुर है ।

अथ मल्लपूपः (मालपूआ)

गोधूमपिष्टकंप्रस्थंगुडंपादोनप्रस्थकम् । शर्कराचेत्समानीरे
घोलयेत्तेनवारिणा । पिष्टंविलोडयेत्तावज्जलंदत्वापुनःपुनः ।
यावन्माक्षीकतुल्यंस्यात्ततःकृत्वात्विमंविधिम् । लोहमय्यांत-
प्तिकायांशरावैकंघृतंक्षिपेत् । तस्मिंस्तप्तेतुतद्घोलमाम्रमानं
चनिःक्षिपेत् । विस्तृतंचंद्रबिंबाभंघृतोपरितरेद्यदा । तदाप्र-
वर्त्तयेत्पश्चात्सिद्धंज्ञात्वासमुद्धरेत् । मल्लपूपइतिख्यातोवा-
तपित्तहरोगुरुः । बल्योऽयंमधुरोवृष्योहृद्योरुच्यः कफप्रदः।

अर्थ—गेहूंका चून १ शेर, तथा गुड तीनपाव, यदि खांड होवे तो चूनके बराबर ले, तदनंतर गुड अथवा खांडको पानीमें भिगोवे उस पानीमें चून डालके खूब मथे इसप्रकारकी उस पानीको मथते मथते सहतके समान पतला होजावे तब चूल्हेपर तई चढावे जब तईका घी खूब गरम होजावे तब उस मथे हुए पानीमेंसे चार चार तोले लेकर उस घीमें छोड देवे,वो फैलके घीके ऊपर आय जावेगा उसको पानीसे पलट कर दूसरी ओरसे सेकै जब अच्छी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रीतिसे सिकजावे तब उसको निकासले इसको मल्लपूप अर्थात् मालपूआ कहते हैं । ये मालपूए वातपित्तनाशक, भारी, बलकारी, मधुर, वृष्य, हृदयको बल देनेवाले, रुचिकारी, और कफकारक हैं। यद्यपि इसको चातुर्मास्य आदि महिनोंमें सदैव करते हैं परंतु पुरुषोत्तम महिनेमें तो प्रत्येक ग्रहस्ती करता है । इनीको अपूप और सहस्रछिद्र कहते हैं इस जगे तईका पैंदा चपटा होना चाहिये ।

अथ कुंडलिनी (जलेबी)

लोलाक्षिसमिताप्रस्थंप्रस्थक्षीरेणमंथयेत् । नवीनेमार्त्तिकेभां डेक्षिपेद्बद्धाचतन्मुखम्। आतपेस्थापयेत्तावद्यावदम्लत्वमाव्रजेत् । ततोऽन्यपयसालोड्यकुर्यान्माक्षीकसन्निभम् । सच्छिद्रेनालिकेरस्यपात्रेकृत्वांऽगुलीतले । तप्तिकायांघृतेतप्ते पृथक्कृत्वांगुलींततः । द्विधावापित्रिधातत्रभ्रामयित्वाऽतिशीघ्रतः । रेखैकामुपरिन्यस्यचोत्थितांवर्तयेत्ततः । सुपक्वां कुंडलाकारांसितापाकेविनिःक्षिपेत् । मधुतुल्येततोनीत्वा स्थापयेत्पंचभाजने । एषाकुंडलिनीवृष्याद्वद्याधातुविवार्द्धनी । तर्पणींद्रियवर्गाणांपुष्टिकांतिबलप्रदा ।

अर्थ–१ शेर मैदाको शेरभर दूधमें मिलायके नए मिट्टीके बर्तनमें भरके उसका मुख बंदकर भीतरकी मैदा खट्टी होनेकेवास्ते धूपमें धरे तदनंतर छिद्रयुक्त नरियलके पात्रमें अथवा मिट्टीके पात्रमें उसकी पैंदीमें छिद्र कर उसमें वो भीगी हुई मैदा भरके उसको तईके गरम घीमें उस छिद्रके द्वारा गेरैं, इसप्रकार कि दो अथवा तीन फेरे गोलगोल फिराकर उसके ऊपर जल्दीसे एक आडी रेखाके समान फिरावे फिर उस छिद्रको शीघ्र उँगलीसे बंद कर लेवे जब वो घीको ऊपर तैर आवे तब उसको पलट देवे जब सिक जावे तब उसे निकाल इकतारी चासनीमें भिगोकर थोडी देरमें निकास लेवे । यह जलेबी वृष्य, हृदयको बलदायक, धातुवर्द्धक, तथा इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाली एवं पुष्टि, कांति, और बल इनको देनेवाली है ।

---

१ परिभ्राम्यघृतेतप्तेपचेत्तन्मंदवह्निना ।सुपक्वां कंकणाकारां सितालेहे विनिक्षिपेत् । सातुकुंडलिका नाम्ना क्वचिच्चजलवल्लिका । जलवल्ली सरावृष्याबृंहणी दृष्टिपुष्टिदा । धातुस्तन्यकरीहृद्याविशेषाद्बलतुष्टिदा ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्वितीयः प्रकारः ।

समितायांघृतंतावन्मिश्रयेद्घनितावरे । यावत्स्यान्मुष्टिकाबद्धंततोनीरेणलोडयेत् । स्थापितंचाम्लतांप्राप्तंपुनर्दुग्धेनमंथयेत् । पूर्ववत्सकलंकृत्वाविधिंचापिगुणैःसमा ।

अर्थ—मैदामें इतना घी मिलावे कि, जिसमें मुट्ठीमें लेनेसे बंधजावे, फिर उसको पानीसे मथकर जबतक खट्टी न होवे तबतक धरी रहनेदे, फिर दूधसे मथकर पूर्वरीतिके अनुसार जलेबी तयार करलेवे इसके गुणभी पूर्वोक्त जलेबीसमानहै ।

अथ तृतीयःप्रकारः ।

नूतनंघटमानीयतस्यांतःकुशलोजनः । प्रस्थार्द्धपरिमाणेन दध्नालिप्तेनलेपयेत् । द्विप्रस्थांसमितांतत्रदध्यम्लंप्रस्थसंमितम् । घृतमर्धशरावंचघोलयित्वाविनिःक्षिपेत् । आतपे स्थापयेत्तावद्यावद्यातितदम्लताम् । पूर्ववत्त्वखिलंकृत्यंगुणाज्ञेयाश्चपूर्ववत् ।

अर्थ—नवीन मटका लेकर उसके भीतर आधसेर दहीका लेप करे फिर मैदा २ सेर तथा दही १ सेर और घी आधसराव डाल सबको मिलायदेवे फिर जबतक खट्टी नहीं हो तबतक धूपमें धर देवे तदनंतर पूर्वोक्त प्रकारसे जलेबी बनाय लेवे इसके गुण पूर्वोक्त जलेबीके समान जानने ।

अथ घृतपूरः (घवर)

पादांशसर्पिषामिश्रांसमितामितप्रभे । घोलयेत्पयसाकृत्वाघोलंमाक्षीकसन्निभम् । तप्तिकोपरिसंन्यस्यातिर्यग्दंडंसुकाष्ठजम् । तस्योपरिदृढंन्यस्यझर्झरंधातुनिर्मितम् । तद्घोलंतत्फणायांचधृत्वाहस्तेनघर्षयेत् । तच्छिद्रैर्निःसृतंघोलंतप्तायांतप्ते घृतेपतेत् । द्व्यंगुलोत्सेधकंयावद्भवेत्तावन्निपातयेत् । ततः पक्वंसुविज्ञायप्रियेशीघ्रंसमुद्धरेत् । संक्षिपेच्छर्कारापाकेमधुतुल्येसुशोभने । ततउद्धृत्यचान्यस्मिन्न्यसेत्पात्रेसुविस्तृते । घृतपूरोगुरुर्वृष्यो ह्यबल्यःकफप्रदः । मांसलोहितशुक्राणां वर्द्धनश्चाप्रियोमतः । सेवितोनाशयत्याताशुवंपित्तंक्षतंक्षयम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–मैदामें चतुर्थांश घी मिलाय तदनंतर दूध डाल सहतके समान पत ला कर हाथोंसे मथे फिर तईपर एक सीधी लकडी धरके उसपर झझरी धरके उसमें वो मथीहुई मैदा भरके हाथोंसे रगडे इसप्रकार करनेसे झझरी-के छिद्रोंसे वो मैदा निकल कर तईमें पडने लगतीहै इसप्रकार दो अंगुल मोटा घेवर होनेतक गेरे, फिर बंद करके उसको पचावे, जब वह अच्छी रीतिसे परिपक्व होजावे तब उसको निकाल एकतारी चासनीमें गेर देवे थोडी देर उसमें राख कर निकास लेवे यह घेवर भारी, वृष्य, हृद्य, बलकारी, तथा कफकरता, एवं मांस, रक्त, और वीर्य इनको बढावे, तथा प्रिय है। उसीप्रकार वात, पित्त, क्षत, और क्षीण इनका नाशक है। इस घेवरमें कपूर, मिरच, और मिलावे जैसे लिखा है " घृतपूरोयमुद्दिष्टः कर्पूरमरिचान्वितः "

अथ नारिकेलजघृतपूरः।

नारिकेलफलंस्वार्द्रंसूक्ष्मंयत्नेनकर्त्तयेत् । सूक्ष्मंगोधूमचूर्णंतु शर्करामपिमिश्रयेत्।दुग्धेनालोडयप्राग्वच्चकारयेद्घृतपूरकम्।

अर्थ–मैदामें बूरा और कतरी हुई गीली नारियलकी गिरी मिलाय दूधमें मथके पूर्वोक्त प्रकार घेवर बनाय लेवे।

अथ क्षीरघृतपूरः।

दुग्धंसंपाचयेद्गाढंपिंडंकृत्वासशर्करम्।ततआम्रद्वयंनीत्वाकृत्वेंदुमंडलाकृतिम्। फलाकारंतुवाकृत्वापचेदाज्येप्रयत्नतः। मज्जयेच्छर्करापंकेघृतपूरंमनोरमे।

अर्थ–दूधका खोहा कर उसमें मिश्री मिलाय फिर उसमेंसे आठ आठ तोले ले वडेके समान अथवा फलके समान करके घृतमें सेकै फिर इसको चासनीमें तलके निकास लेवे, तो दूधका घेवर सिद्ध हो।

अथ शालिपिष्टादिघृतपूराः।

दुग्धमर्द्धंश्रृतंकृत्वाशालिपिष्टंसशर्करम्। संमिश्रयवटकंकृत्वा पाचयेच्चापिपूर्ववत् । शृंगाटककसेर्वादिपिष्टजंचविचक्षणे। अनेनविधिनाकुर्याद्घृतपूरंसुशोभनम्।

अर्थ--अधोटा दूध करके उसमें घुलेहुए चावलका चून कपडछान कराहुआ और खांडमिलायके परातमें उसने पीछे वडीके सदृश करके घीमें सेकै फिर उनको उक्तविधिके समान चासनीमें तलके तयार कर ले इसे चाव

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लका घेवर कहतेहैं इसीप्रकार सिंघाडे तथा कसेरू इत्यादिकोंका घेवर बनाने चाहिये ।

अथाम्ररसघृतपूरः ।

पक्काम्रस्यरसंकांतेघृतयुक्तंविपाचयेत् । घनीभूतंसमुत्तार्य कारयेद्वटकाकृतीन्।ततःसंपाचयेदाज्येसितापाकेचपूर्ववत् । रोचनादीपनाबल्याश्चृतजाघृतपूरकाः । हृद्यावृष्याश्चगुरवो वातपित्तप्रणाशनाः ।

अर्थ-पके हुए आमके रसमें घी मिलाय एकत्र करे उसको अग्नि देकर गाढा करे, फिर उसके वडेके समान घेवर बनाय घीमें सेके, और ऊपर कही विधिके अनुसार चासनीमें तलके काढलेवे ये घेवर रुचिकारी, दीपन, बलदायक , हृदयको बल देनेवाले, वृष्य, भारी, और वातपित्त इनको नाश करनेवाले हैं ।

अथ द्वितीयःप्रकारः ।

पक्काम्रस्यघृतेनवेसुविपचेन्मंदाग्निनायत्नतो यावत्स्यात्सुघनस्तथापुनरयंपाच्यःसितापंकके । संजातेचघनेततःपृथुतरेविस्तीर्णपात्रेतुतं संलिंपेत्तुयथांगुलंघनतरंतंखंडशःकर्त्तयेत्।सोयंचाम्ररसोद्भवोघृतपुरोहृद्योगुरुर्दीपनोरुच्यःपित्तमरुत्प्रणाशनकरोबल्योऽतिवृष्योभवेत् । एवंचान्यपदार्थजोघृतपुरस्तत्तद्गुणैरन्वितो भीमेनप्रियभोजनेनचपुराकृष्णार्थमुत्पादितः ।

अर्थ-पके आमके रसमें घी मिलाय मंदाग्निसे पक्व कर गाढा करे, फिर उसको खांडकी चासनीमें डालके अच्छी रीतिसे उलटपलट उतार लेवे, और पट्टेपर घी चुपड इसको १ अंगुलके अनुमान मोटा ढाल देवे जब शीतल होजावे तब इसकी कतली कतर लेवे इसको आम्ररस घृतपूर कहते हैं। यह घेवर हृदयको बलदायक, भारी, दीपन, रुचिकारी, वातपित्तनाशक, बलकारी, और वृष्य है । इसप्रकारके घेवर भीमसेनने श्रीकृष्णकेवास्ते तय्यार करे हैं इसी प्रकार दूसरे पदार्थका घेवर करते हैं।

---

१ अथ कसेरुघेवर । कसेरुचूर्णे निक्षिप्यपाकंपिंडीकृतं पयः । कसेरुघेवरं कुर्यात्पूर्ववत्खंडमंडितम् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ संयावः (गूझा गुझिया)

गोधूमचूर्णकंकांतेभर्जयेत्सर्पिषाततः । शर्करामिश्रितंकृत्वा लवंगैलामरीचकम्।सचंद्रंचूर्णयेत्तास्मिन्मिश्रयेच्चततःप्रिये । घृताक्तांसमितामन्यांमर्दयेत्पयसाघनाम्।ततःपूगमितांनीत्वा वेल्लयकृत्वासुपर्पटीम्।तस्यांतत्पूरयेच्चूर्णसंपुटीकृत्यमुद्रयेत्। मुखमस्याःप्रगुंथ्यापिकुर्यात्कंकणचिह्नवत् । पाचयेच्चघृतेपक्वंसितापंकेनलेपयेत् । संयावोऽयंगुरुर्वृष्योहृद्योधातुप्रवर्द्धनः । मधुरोवातपित्तघ्नोभग्नसंधानकृत्सरः ।

अर्थ--संयाव (गुझिया) बनानेकी विधि कहतेहैं । गेहूंका चून घृतमें भून उसमें मिश्री और लौंग, इलायची, कालीमिरच, और कपूर इनका चूरा-मिलाय धररक्खे, फिर मैदामें मोयन दे दूधमें उसने फिर उसमेंसे सुपारी-के समान लोई तोडकर पापडी वेले, उसमें पूर्वोक्त चूर्ण (अर्थात् भुनाहुआ मिश्री आदि मिला चून) भरे, फिर उसको लंबीकर उसके मुखको नखसे कंकणके समान गूंथे फिर इसको घीमें सेंके, इसको संयाव अर्थात् गुझिया कहतेहैं, और दूसरा संस्कृत नाम इसका गुह्यकहै, जैसे लिखाहै " गुह्य-को बृंहणो वृष्यो हृद्यःपित्तानिलापहः " यह भारी, वृष्य, हृदयको बलकारी, धातुवर्द्धक, मधुर, वातपित्तनाशक भग्नसंधानकारक और सारक है ।

अथान्यः प्रकारः ।

शुद्धतंदुलजंपिष्टंसूक्ष्मंवस्त्रावगालितम्।यत्पात्रप्रमितंपिष्टंतत्पात्रप्रमितंजलम्।जलमग्नौप्रताप्यैवततःकुर्यादमुंविधिम्।किंचित्किंचित्क्षपन्पिष्टंदर्व्यासंचालयेन्मुहुः । घनीभूतंसमुत्तार्यैकृत्वासीतेचपर्पटीः । तासांमध्येन्यसेत्पूर्णंश्रीफलैलासितोद्भवम् । सिताधान्याकजंचूर्णंकिंवाविश्वगुडोद्भवम् । ततोद्विगुणितांगुंथेन्नखेनार्द्धेंदुसन्निभाम् । पाचयेच्चघृतेसम्यक्संयावोयंचकीर्तितः । तृणगर्भेऽथवाभांडेसनीरेस्वेद्यपाचयेत् । संयावोऽयंगुरुर्वृष्योविष्टंभीतृप्तिकारकः । श्लेष्मलोवातपित्तघ्नोघनपीनपयोधरे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-धुलेहुए चावलोंको पीस कपडेमें छानलेवे, फिर इस चूनके समान पानी चूल्हेपर चढावे, जब वो पानी खौलने लगे तब उसमें चावलका चून थोडा थोडा डालता जाय और कलछीसे चलाता जाय इसप्रकार सब चूनको उसमें डालके पक्व करे जब अच्छी रीतिसे परिपाक हो गाढा होजावे तब उतारले, जब शीतल होजावे तब इसके पतले पतले पापड करे, उनमें मिश्रीसंयुक्त गोलाका खीस और छोटी इलायचीका चूर्ण भरे, अथवा गुड और सोंठका चूर्ण मिलाकर भरे, फिर उसको गुझियाके समान नखोंसे गूथ अर्धचंद्रके आकार बनायले फिर उसको गरम घीमें छोडदेवे, अथवा विस्तीर्ण पात्रमें थोडा पानी भर और उसमें तृण भर उसमें धरके सेकैं जब सिकजावे तब चासनीमें तल लेवे, ये संयाव (गूझा) भारी, वृष्य, विष्टंभी कहिये-मलस्तंभक, तृप्तिकारक, कफकारी, और वातपित्तनाशक है।

अथ कर्पूरनालिका।

घृताक्तांसमितांकांतेमर्दयेदंबुनाचिरम्। ततःपूगमितंनीत्वा रचयेन्नलिकांशुभाम्।तत्रैलोषणचंद्रश्रीयुतांसंपूरयेत्सिताम्। मुद्रयेत्तन्मुखंचाज्येपचेत्संयाववद्गुणा। कर्पूरनालिकातज्ज्ञैः कीर्त्तितासुभगालके।

अर्थ-मैदामें घीका मोयन दे पानीसे उसने और उसको मुक्की देकर नम्र करे फिर उसमेंसे सुपारीके समान लोई लेकर बांसकी नलीके समान पोली करे, तदनन्तर मिश्रीमें छोटी इलायची, काली मिरच, भीमसेनी कपूर (बरास) और लोंग इनका चूर्ण मिलाय उस नलीमें भरे फिर उस बत्तीका मुख बंदकर घीमे सेके इसके गुण गूंझाके समान है। इसको संस्कृतमें कर्पूरनालिका कहते हैं।

अथेंदुरसाः (अँदरसे)

त्रिप्रस्थंषष्टिकाचूर्णप्रस्थैकाशर्कराप्रिये। घनंदध्नाचसंमर्द्यकृत्वापिंडंमनोहरे। ततश्चैकादिनंस्थाप्याद्वितीयेऽह्नोवोनर्मयेत्। अपूपांश्चंद्रबिंबाभांस्तदैकांगेसितांस्तिलान्। लग्नान्कृत्वापचेदाज्येविष्णवेसान्नेवेदयेत्। इमाइंदुरसाबल्याःशरार्देदुनिभानने। कफवातहराह्यआतिशीताश्चपुष्टिदाः।

अर्थ-चावलका चून ३ शेर ले उसमें १ शेर मिश्री मिलावे पीछे थोडा दही मिलायके अच्छीरीतिसे मर्दन कर १ दिन धरारहनेदे दूसरे दिन उसके

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चन्द्रमंडलके समान पतले वडेकर उसके एक तरफ सपेद तिल लगाय घीमें सेकै इनको अँदरसा कहतेहैं, यह बलकारी, कफवातहर, हृदयको बलदायक, अतिशीतल, और पुष्टिदायक है ।

अथ द्वितीयः प्रकारः ।

प्रक्षाल्यतंदुलान्सम्यक्चूर्णयेत्तानुलूखले । समयासितया योज्यमर्दयेच्चविचक्षणः । यदापिंडीभवेत्पिष्टंतदालोड्गींविधायच । वेल्लयित्वातदेकांगेलग्रान्कृत्वाप्रयत्नतः । अहिफेनस्यबीजानिनिस्तुषान्वातिलांस्ततः । पाचयेद्घृतेसम्यक्ताःस्युरिंदुरसाःप्रिये । इमाइंदुरसावृष्याहृद्याधातुप्रवर्द्धनाः । पित्तघ्नागुरवोरुच्याःपुष्टिकांतिबलप्रदाः । सेविताःसततंयुक्तयासकलेंद्रियतर्पणाः ।

अर्थ--अब दूसरा प्रकार कहतेहैं । चावलोंको अच्छी रीतिसे धोयकर ओंखलीमें कूटकर चूनकरे, फिर जितना चूनहो उतनी मिश्री पिसी डालकर मर्दनकर जलसे गाढा गोलाकरे उसमेंसे थोडाले गोलीसी कर चकला वेलनसे वेल पूरीबनावे, और उसके एकतरफ खसखसके अथवा तिली लगायकर घीमें तले ये अँदरसे वृष्य है, हृदयशोधक, धातुवर्द्धक, पित्तनाशक, भारी, तथा रुचिकारी एवं पुष्टि, कांति, और बल इनको देवे इनको नित्य सेवन करनेसे इन्द्रियोंको तृप्तिदायक होतेहैं ।

अथ शर्करापालिका ।

समानंपिष्टतःसर्पिःसार्द्धभागाचशर्करा । भर्जितंशर्करापाकेपिष्टकंसघृतंक्षिपेत् । लवंगैलादिकंक्षिप्त्वातच्चदव्यांविचालयेत् । यावद्घटकयोग्यंस्यात्ततःस्थाल्यांप्रसारयेत् । कवोष्णंखंडशःकृत्वाशीतेसीताधवायच । अर्पयेच्छर्करापालीस्निग्धाःकिंचिच्चपित्तलाः । श्लेष्मलागुर्व्यरोचघ्नीर्वातविष्टंभनाशनीः ।

अर्थ--चूनके समान घी लेकर उसमें उस चूनको भूने फिर चूनसे डयोढी मिश्रीका पाकर उसमें भुनाहुआ चून मिलादे और लोंग, इलायची, आदिका चूर्ण डालकर कौचेसे उलट पलट करता रहे, जब उलटते पलटते वडे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

होने लायक होजावे तब परातमें उतार कर फैलाय देवे, जब शीतल होजावे तब उसके छुरीसे चौकोन टुकडे कतर लेवे इनको सकल पारे कहतेहैं। ये साखरपारे स्निग्ध किंचित् पित्तकारी, कफकारी, एवं भारी, अरुचि, वात, मलस्तंभ, इनको नाश करतेहैं।

अथ शंखपालः (मीठे सकलपारे)

घृतक्तांसमितांमर्द्यदुग्धेनचजलेनवा । संवेल्लयरोटिकांकुर्यादुत्सेधामंगुलार्द्धिकाम्। शृंगाटाकृतिकान्यस्याःकांतेखंडानि कारयेत् । घृतेसंपाच्यसंलिंपेत्सितापंकेनयुक्तितः । शंखपालाइतिप्रोक्ताबृंहणाबलपुष्टिदाः । मधुराःपित्तवातघ्नागुरवोरुचिकारकाः।

अर्थ-अब दूसरे प्रकारके सकलपारोंकी विधि कहतेहैं मैदामें घीका मोयन देकर दूधसे या पानीसे करडी उसन लोईकर आधअंगुल मोटी रोटी करे फिर छुरीसे तिकोने टुकडे कर घीमें छोड़देवे जब सिक जावे तब निकाल चासनीमें तल लेवे ये शंखपाल धातुवर्द्धक, बलकारी, पुष्टिदायक, मधुर पित्त तथा वातनाशक, भारी और रुचिकारीहै। इसीप्रकार निमकीन सकलपारे बनतेहैं।

अथ मंठः (मठरी)

द्विप्रस्थांसमितांसर्पिर्मिश्रयित्वाचतुःपलम् ।ततोनीरेणसंमर्द्य कारयेद्वटकान्दृढान् । पाचयित्वावृतेकांततःकुर्यादिमंविधिम्।एलालवंगकर्पूरमरीचाद्यैःसुशोभनम्।सितापंकंविधायैवयुक्त्यामंठेषुलेपयेत्। तेमंठाबृंहणाबल्याःपौष्टिकागुरवस्तथा । वातपित्तहरारुच्यामधुरामधुराधरे।

अर्थ-दोशेर मैदामें पावभर घीका मोयन दे पानीसे करडा उसन उसके वडेकर घृतमें सेकै, फिर इलायची, मिरच, लोंग कपूर आदि मसालेसे सुवासित ऐसी मिश्रीकी चासनीमें पागकर निकाल लेवे, ये मठरी सप्तधातुवर्द्धक, बलकर, पुष्टिदायक, भारी, वातपित्तनाशक और रुचिकारकहै।

अथ शेविकाः (सेमई)

समितामितादेघनंक्षीरेणमर्दयेत् । मृद्वींकुर्यात्पुनर्मर्द्य तस्यास्तंतून्विनिर्मयेत् । शोषयित्वातपेचैतानीषदाज्येवि-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भर्ज्यच । क्षिपेदुत्कलितेनीरेक्षणेनोत्तारयेद्रुतम् । पृथक्कोयं सुनिःसार्यसिताज्याभ्यांनिषेवयेत् । अथवाशर्करादुग्धसंयुक्ताश्चटिमिश्रिताः । सेवयेत्सेविकाबल्याभग्नसंधानकारिकाः। गुर्व्यस्तृप्तिकरारुच्याग्राहिण्यःपित्तहामताः ।

अर्थ–मैदाको दूधसे उसनकर अति नम्र करावे फिर किसी बडेपात्र (गागर, मटके) की पैदी पर महीन सूतके समान बटकर बनावे, उनको धूपमें युक्तिसे सुखाय लेवे, फिर इनको घीमें भून खलभलाते जलमें पक्क करावे, थोडीदेरमें उतार उसका पानी निकाल डाले, फिर इसमें घी, बूरा, अथवा दूध बूरेके साथ भोजन करना चाहिये । ये सेमई बलकारी टूटेहुए भागको जोडनेवाली, भारी, तृप्तिकारी, रुचिकारी, मलग्राहक और पित्तनाशक है ।

अथ शष्कुली (पुंडी)

घृताक्तांसमितामद्भिर्मर्दयित्वाचिरंततः । मृद्वींकृत्वाततोनीत्वानिंबुमानंहिगोलकम् । वेल्यकृत्वाचतांतन्वींचंद्रमंडलसन्निभाम् । घृतेसंपाचयेदेषाशष्कुलीफेनिकागुणा ।

अर्थ–अब पूडी बनानेकी विधि कहते हैं । मैदामें या चूनमें घीका मोयन दे उसनकर नम्र करे, फिर उसमेंसे नींबूके समान लोई ले गोल चंद्रके समान पतली वेलकर घीमें सेंके इसको शष्कुली अर्थात् पूडी कहते हैं । इसके गुण फेनीके समान है ।

अथ माषगर्भा (कचौरी)

निस्तुषांमाषजांदालीमाद्रांमश्मनिपेषिताम् । तांपिष्टिंप्रवदंतिस्मपाकशास्त्रविचक्षणाः । तत्पिष्टचामार्द्रकंहिंगुलवणंतु विमिश्रयेम् । अथवैलादिकंकांतेवेशवारंविमिश्रयेत् । निधायामत्रकेकांतेततःकुर्यादमुंविधिम् । घृताक्तांसमितामद्भिर्मर्दयित्वाघनंततः । किंचित्किंचिज्जलंदत्वामर्दयित्वापुनःपुनः । कृत्वामृदुतरामक्षंततोनीत्वाप्रकल्पयेत् । मूषिकामक्षकांतत्रापिष्टिंपूर्यविमुद्रयेत् । संवेल्लयपोलिकांकृत्वाघृतेतां

१ पृथुशशिसमकांतिश्चारुगोधूमजातावितरतिमुदमुच्चैःपोलिकाकस्यनेह । अतुलबलविधात्रीकोष्ठसंशुद्धिकर्त्री नासीजज नयित्री वातपित्तापहंत्री ॥ १ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भर्जयेच्छनैः । गुर्वीयंमाषगर्भाख्यास्निग्धारुच्यावलप्रदा । स्वाद्वीनेत्रहितोष्णाचपित्तरक्तविशोधनी । तैलेनेत्राहिताप-क्कारक्तपित्तविदूषणी ।

अर्थ-अब कचौडी बनानेकी विधि और गुण कहते हैं । जलसे धुली हुई छिलकारहित उडदकी भीजी हुई दालको सिल लोढासे पीसे इसको पिट्ठी कहते हैं, इस पिट्ठीमें हींग, अदरख, मिरच, धनिया, जीरा, आदि कुटा मसाला मिलाय तयार रक्खे फिर मोयनपडी मैदाको पानीसे उसन खूब नरम करे फिर इसमेंसे एकएक तोलेकी लोई तोड मूसके समान कर उसमें उक्त उडदकी पिट्ठी भर मुख बंद करदेवे, और कुछ वेलकर गरम घीमे छोडदेवे, जब सिक जावे तब निकाल लेवे, इसको माषगर्भा आर्थात् कचौरी कहतेहैं । यह कचौरी भारी, स्निग्ध, रुचिकारी, बलदायक, स्वादु, नेत्रोंको हितकारक, और उष्ण एवं पित्त तथा रक्त इनको शुद्धकरे, परंतु तेलमें तले तो नेत्रोंको अहित होती है, और रक्त व पित्त इनको बिगाडे है ।

अथ दुग्धाम्रम् ।

पक्काम्रस्यरसंप्रस्थंश्रृतंदुग्धंचतत्समम्।प्रस्थैकाशर्कराचाज्यं प्रस्थार्द्धंसंविमिश्रयेत् । एलाजातीफलादीनांचूर्णंचेद्राविमिश्रयेत् । तद्दुग्धाम्रमितिख्यातंस्वादुशीतंचपौष्टिकम् । गुरुवर्णकरंरुच्यंबल्यंधातुविवर्द्धनम्।वातापित्तहरंवृष्यंभुक्तंमध्यमदोद्भवैः ।

अर्थ-पकेहुए आमका रस ६४ तोले और औंटाहुआ दूध ६४ तोले, सपेद बूरा ६४ तोले, और घी ३२ तोले, एकत्र मिलाय इसमें इच्छा होय तो इलायची, जायफर आदि मसालेका चूर्ण मिलावे, इसको दुग्धाम्र कहतेहैं यह स्वादु शीतल, पौष्टिक, भारी, कांतिकर, रुचिकर, बलकारी, धातुवर्द्धक, वातपित्तनाशक, और वृष्य है ।

अथ शिखरिणी ।

दधिद्विप्रस्थंभोजलविरहितंकंजवदनेसिताचप्रस्थैकामधुघृतमयेबिल्वमबले । पृथक्कोलंचैलात्वचमपिगजंपत्रजमुत द्विकर्षंविश्वंवैमरिचमपिलोलाक्षिचपृथक् । पटेसूक्ष्मेबालाकरविगलितंचेतिसकलं तदाविख्यातेयंमतिमतिरसालाशिखरि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

णी । इयंस्निग्धावृष्याकफरुचिकराकांतिजननी मतागुर्वीब ल्याश्रमपवनपित्तप्रशमनी । विशालास्येपुष्टिंवितरतिच शुक्रंवितनुते जनानांशंदात्रीसुतनुजघनांभोजसुभगे । कुरुश्रीरामार्यार्पणमवनिपुत्र्यैचसततंमनोर्थस्तेसिद्धोझटिति भविताकुंददशने ।

अर्थ–अब शिखरनके गुणदोष कहतेहैं । पानी निकाला हुआ दही २ सेर सपेद बूरा १ सेर, सहत छटांक, गौका मक्खन छटांकभर, इलायची, दालचीनी, नागकेशर और पत्रज ये प्रत्येक आधा आधा तोला सोंठ २ तोले, कालीमिरच २ तोले, इन सबको एकत्र करके महीन वस्त्रमें बालास्त्रीकरके छानागया इसको रसाला सिखरन कहतेहैं । यह स्निग्ध, वृष्य, कफकारी, रुचिकारी, कांतिदायक, भारी, एवं बलकारी होनेसे श्रम वात पित्त इनको नाशक और पुष्टि तथा वीर्यकारक है । इसका छंदभी शिखरिणी है ।

अथ मञ्जिकाशिखरिणी ।

आयिदधिमस्तुविहीनंद्विप्रस्थंवैप्रस्थैकाचासिता । सर्पिः पलं मधुपलंपलंचार्द्रकंमरिचंचार्द्धपलम् । त्वक्पत्रंगजमेलापृथग-क्षैकंकृत्वाचैकध्यम् । चंद्रवासितेभांडेप्रिये मार्तिकेतरुणीनि-मंथयेत् । सामञ्जिकाशिखरिणीबालेबल्यारुचिप्रदावृष्या । कांतिकारिणीस्निग्धाशुक्रपुष्टिदागुर्वीश्लेष्मकरी । प्रतिश्याय वातार्तिश्रमपित्तघ्नीनितंबभारभरे । तरुणकमलदलनयनेको-किलवयनेप्रकटितकामकले ।

अर्थ–पानी निकलाहुआ दही १२८ तोले सपेद बूरा ६४ तोले घृत, सहत, अदरख, ये प्रत्येक चार चार तोले, कालीमिरच दोनतोले, और दालचिनी, तमालपत्र, नागकेशर, इलायची ये प्रत्येक एक एक तोले ले इसप्रकार सर्व पदार्थ एकत्र करके कपूरसे सुगंधित करेहुए पात्रमें तरुणी स्त्री उसको मथे इसको मञ्जिका शिखरण कहतेहैं । यह बलकारी, रुचिकारी, वृष्य, कांतिकर स्निग्ध, वीर्य, तथा पुष्टिदायक, भारी, तथा कफकारक होकर सरेकमाँ, वायु, श्रम, और पित्त इनको नाश करेहैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ मंडककृतिगुणानाह ।

समितामंबुनामर्द्यघनांकृत्वातिकोमलाम् । तल्लोन्नींरचयित्वा तुहस्ताभ्यांपरिवर्द्धयेत्।संतप्तेखर्परेचुल्ल्यांमृन्मयेऽधोमुखेततः । संक्षिपेदरविंदाक्षिपाचयेच्चशनैःशनैः । मंडकःसाहिविज्ञेयोदुग्धखंडेनभक्षयेत् । दुग्धाज्यशर्कराभिर्वाकिंवामांसरसेनाहि । वातक्रवटकैश्चैनंमधुरोऽयंत्रिदोषनुत् । रुच्योग्राही लघुःपाकेबृंहणोबलपुष्टिदः ।

अर्थ–गेहूंकी मैदा पानीसे उसन कर फिर जलके छींटे देकर नम्र करे, तदनंतर उसमेंसे थोडी लोई ले गोलाकर हाथोंसे बढाकर गरम मट्टीके उलटे खिपडेपर सेंके, इसको मंडक कहते हैं। यह दूधखांडके साथ अथवा दूध खांडमें घी डालके किंवा मांसरसयुक्त अथवा छाछके वडोंके साथ भोजन करे यह मंडक मधुर, त्रिदोषनाशक, रुचिकारक, ग्राही, हलके, धातुवर्द्धक, बलकारी और पुष्टिदायक है ।

अथ द्रव्ययोजना ।

सूपादौलवणंबालेप्रस्थेमुष्टिमितांक्षिपेत् ।
कौलैकंमारिचंचूर्णवेशवारंचतत्समम् ॥

अर्थ–प्रथम लवणादिक द्रव्यकी योजना कहतेहैं । दाल कढी आदिमें नोन ऽ१ सेरमें एकऽ–छटांक डाले । और मिरच एक कोल अर्थात् सेरभर दालमें आधा तोला डालनी चाहिये । और वेसवार अर्थात् मसाला एक कौल अर्थात् आध तोले डाले ।

गुंजैकंरामठंबालेधूपनार्थंघृतेक्षिपेत् । राजिकाजीरकंचात्रमेथिकालशुनादिकम्।पृथक्टंकमितंक्षिप्त्वादृष्टेधूमेचधूपयेत् ।

अर्थ--हेबाले वघार देनेको एक प्रस्थ प्रमाण दालमें १ रत्ती हींग घृतमें भूनकर डालनी चाहिये । राई, जीरा, मेथी, और लहसन ये पृथक् पृथक् एक एक टंक कहिये पाव पाव तोले घीमें भूनकर वघार देवे । परंतु जब घीमें अच्छी रीतिसे धूंआ निकलने लगे तब वघार देवे, लहसनका वघार इतर जातीके वास्तेहै या रोगीकोहै ।

टंकैकंरजनीचूर्णमम्लंशुक्तिमितंक्षिपेत् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आर्द्रकंहिपलंकर्षधान्याकंसूक्ष्मचूर्णितम् ॥

अर्थ--दाल आदि सेर भरमें ४ मासे हलदी, अमचूर आदि खटाई २ अर्थात् दो तोले डाले, अदरख एकपल अर्थात् ४ तोले डाले, और धनिया पिसाहुआ एक कर्ष अर्थात् एक तोले डालना चाहिये ।

अथ वेसवार (मसाला)

एलात्वक्पत्रमरिचश्रीसुमश्यामजीरकैः ।
वेशवारःसधान्याकैरेलादिःकथ्यतेबुधैः ॥

अर्थ--इलायची, दालचीनी, तमालपत्र अथवा पत्रज, काली मिरच, लौंग, काला जीरा, और धनिया इनके चूर्णको एलादि वेसवार कहतेहैं, आदिशब्दसे सपेद जीरा वगैरह जानने ।

माषमुद्गादिजेसूपेनिस्तुषेचामिषेतथा ।
वटिकामाषगर्भादौवेशवारंप्रयोजयेत् ॥

अर्थ--उडद, तथा मूंगकी धुलीहुई दालमें और मांस तथा वडी कचोरी आदिमें यह उक्त मसाला डालना चाहिये ।

भक्तविधिगुणांश्चाह ।

तंडुलान्निर्मलाञ्छद्मांस्त्रिधाधौतान्वराङ्गने । नीरेपंचगुणेक्षिप्त्वावसुनिघ्नेतुवाप्रिये । दिग्गुणेत्वथवाकांतेचतुर्दशगुणेऽपि वा । पचेदर्द्धशृतेमंडंस्रावयेदतियुक्तितः । षोडशांशंघृतंतस्मिन्संक्षिप्यच्छादयेत्ततः । निर्धूमांगारकेन्यस्यक्षणादुत्तारयेद्भुतम्।नस्याद्यदाषोडशांशंयथालाभंघृतंक्षिपेत् । नीरसंस्कारभेदेनयथोत्तरगुणाधिकः ।

अर्थ--अब भात बनानेकी विधि कहते हैं। वीने फटके निर्मल शुद्ध चांमलोंको तीनवार पानीसे धोयकर शेरभरको पांचशेर अथवा आठशेर अथवा १० शेर किंवा १४ शेर पानीवटलेमें भर चामल डालकर पचावे, जब आधे अ-

---

१ कोष्णंपङ्कजचक्षुषस्तनइवस्वच्छंशरच्चन्द्रमोरोचिर्वन्मिलितंमियोनचयथा चाण्डंसपत्नीजनः । सुस्निग्धं तरुणीकपोलवदलं कान्ताङ्गवत्कोमलं भक्तंभुक्तमनेकदोषशमनं लघ्वग्निकृद्बृंहणम् । सद्यःशालेयमन्नंशशिकरनिकरप्रोज्ज्वलंसिद्धसारं भ्राम्यद्वाष्पच्छलेनत्रिदशपुरसुधाधेयमाधुर्य्यधुर्य्यम् । अन्योन्यंनैवलभं परिमलभरितागारवेदीविभागं संप्राप्नोतिप्रसन्नः प्रथमपरिवृढोयस्यपुंसःसदास्यात् ॥ १ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

थवा कुछ थोडे कच्चे रहे तब चूल्हेसे उतारकर मांठ निकाल डाले और उनमें एक पल घृत डालकर अंगारोंके ऊपर धरके बर्तनके मुखको ढकनेसे ढक देवै, इसप्रकार उसको आधघडीपर्यंत धरारक्खे तो भात बनकर तयार हो. यदि एक पल घी न मिसलके तो जितना प्राप्त हो उतनाही डाले । यह भात पानीकी आधिक्यतासे यथोत्तर आधिकाधिक गुणवाला होता है । जैसे पांच गुने पानीमें पक्क भातसे आठ गुने जलमें पक्क भात श्रेष्ठ है । इसप्रकार जानना परंतु १४ गुने पानीसे आधिक पानी चामलोंमें नहीं चढाना चाहिये ।

मढमढा भातकी विधि ।

चेदश्रावितभक्तंकुर्याद्वालेविधिस्तदायंस्यात् । यदितंडुला हिसूक्ष्माःकेविपचेद्वैतुसार्द्धकेभागे। स्थूलाश्चेद्विगुणेकेस्थूलतराश्चेत्सार्द्धद्विभागिके । सपादकेकेसाध्याःसूक्ष्मतरावैसुतंडुलाललने। अयमस्रावितभक्तोगुरुश्चशीतोरुचिप्रदोवृष्यः । शुक्रवर्द्धनोमधुरोवातकफघ्नोग्राहीतृप्तिकरः । क्षयरोगघ्नश्चापिप्रफुल्लपद्माननेवरारोहे ।

अर्थ--अब बैठेहुए भातकी विधि कहतेहैं । उत्तम वीने फटके चावलोंको तीनबार धोकर शेर भरोंको डेढशेर पानीमें चढावे परंतु यह विधि महीन चावलोंकी है यदि चावल मोटे होवे तो दूने पानीमें पचावे, यदि बहुत मोटे चावल होवे तो ढाईगुने पानीमें चढाकर पचावे और यदि बहुतही महीन चावल होवे तो सवाए पानीमें चढायकर पचावे जब सब पानी जरजावे कुछ थोडा शेष रहे तब उतारकर अंगारोंपर धरदेवे तो यह मढमढा भात बने । यह भात भारी, शीतल, रुचिकारक, वृष्य, वीर्यवर्द्धक, मधुर, वात व कफनाशक, ग्राही, तृप्तिकारक, और क्षयरोगकाभी नाश करनेवाला जानना ।

भुने चावलोंके भातकी विधि ।

जीवनेऽर्द्धशृताञ्छालीन्भर्जयेच्छोषयेत्ततः । कंडयेत्तंडुलानेनांस्त्रिधाधौतान्विपाचयेत् । तद्भक्तोदीपनःपथ्यस्तृप्तिकृन्मूत्रलःस्मृतः। लघुःस्वच्छश्चरुच्योऽयंवातश्लेष्मामयापहः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उष्णवीर्यश्चसंप्रोक्तस्ततःपित्तामयेऽहितः । दद्याद्दोषबलंदृष्ट्वा भोजनायविचक्षणः ।

अर्थ–अब उबले हुए चावलोंका भात करनेका प्रकार कहते हैं । प्रथम धानोंको पानीमें सिजावे जब आधा सीज जावे तब कुछ भूनकर सुखाय देवे तदनंतर चावलोंको फटक चामल निकाल इनको भातकी विधिसे बनावे, यह भात अग्निदीपन तथा पथ्य, तृप्तिकारक, मूत्रवर्द्धक, हलका, स्वच्छ, रुचिकारक , वात, व कफसे होनेवाले रोगोंको नाशक, तथा उष्णवीर्य है। अतएव यह पित्तरोगीको अपथ्य है । इसको वातादि दोष और रोगीका बलाबल विचार करदेना चाहिये ।

तथा गुणान्तर ।

भर्जिततंडुलभक्तःसुगंधिरुष्णोलघुस्तथारुच्यः । आस्थापने चवमनेविरेचनेचप्रशस्तउक्तोऽयम्।गलामयघ्नश्चहितःकफमरुचिंचैविनाशयेदबले । यथात्वदीयाप्रीतिःपरांगनायारतिं प्रियेश्रेष्ठा ।

अर्थ–भुने हुए चावलोंका भात सुगंधवान्, गरम हलका, और रुचिकारक होताहै । आस्थापन, वमन और विरेचन इनमें यह भात पथ्यकरहै । और यह गलेके रोगोंका नाशक, हितकारक और कफ तथा अरुचि इनको नाश करे है ।

कच्चे चावलोंका भात ।

तंडुलान्कंडयेदामानंबुनाक्षालयेत्रिधा । विपाच्यस्रावयेन्मंडंतद्भक्तोऽतिमनोहरः । दीपनश्चत्रिदोषघ्नोबृंहणःपथ्यईरितः। लघुःप्रीतिप्रदोनित्यंकीर्तितस्तद्विदांवरैः।

अर्थ–हरे चावलोंको अच्छी रीतिसे वीनफटक तीनवार जलसे धोयके सिजावे जब चावल सीज जाय तब मांढ निकाल डाले, यह भात अति श्रेष्ठ जठराग्निदीपक, त्रिदोषनाशक, धातुवर्द्धक, पथ्यकर, हलका और भोजनमें प्रीतिकारक ऐसा है ।

ताजे जलमें करेहुए भातके गुण ।

सद्यनीरजृतोभक्तोलघुःशीघ्रंविपच्यते । शीतपित्तज्वरेदेयः सितायुक्तोमनोहरे । तथाश्लेष्मज्वरेदेयोमुद्गयूषसमन्वितः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–ताजे जलमें पक्व हुआ भात हलका तथा शीघ्र पचनेवाला होताहै। यह शीतपित्तज्वरवाले रोगीको खांडकेसाथ और कफज्वरवालेको मूंगके यूषके साथ देना चाहिये।

बासेजलका भात।

उशितांबुशृतोरूक्षोमूत्रलोमलकारकः।
मेदःस्वेदकफक्लेदप्रदश्चापिप्रकीर्तितः॥

अर्थ–बासेजलमें कराहुआ भात रूक्ष, मूत्रवर्द्धक, मलकारक, तथा मेद पसीने कफ और ग्लानि इनको उत्पन्न करनेवाला जानना।

कांजिआदिसे बने भातके गुण।

धान्याम्लसिद्धोरुचिदोलघुश्चैवाग्निदीपनः। तक्रेसिद्धःप्रियः स्वादुःशीतलश्चाग्निदीपनः॥ पाचनःपुष्टिदोरुच्यःशूलामग्रहणीप्रणुत्। अर्शोघ्नश्चश्रमघ्नश्चनिशिभुक्तोविशेषतः।

अर्थ–धान्याम्लमें कराहुआ भात रुचिदायक हलका और जठराग्निको दीपन करनेवाला है। छाछमें सीजाहुआ भात प्रिय, स्वादु, शीतल, अग्निदीपन, पाचन, पौष्टिक, और रुचिकारक एवं शूल, आम, बवासीर, और संग्रहणी श्रम इनका नाशक जानना। यह भात रात्रिमें खानेसे अधिक गुण करे है।

अथान्यद्रव्यमिश्रितभक्तके गुण।

मथितेनयुतोभक्तःशीतःस्वादुःप्रियस्तथा। पौष्टिकः पाचनोरुच्योदीपनोऽर्शोघ्नएवच।श्रमामग्रहणीशूलनाशनःपरिकीर्तितः। यदारात्रौभक्षितश्चेद्रुच्यस्तृप्तिकरोमतः।

अर्थ–विना जल पडेहुए छाछके साथ भात खानेसे शीतल, स्वादु, प्रिय पौष्टिक, पाचन, रुचिकारी, व दीपन, जानना उसीप्रकार बवासीर, श्रम आम, संग्रहणी और शूल इनको नाश करे। इस भातको रात्रिमें खानेसे रुचिकारक, तथा तृप्तिदायक होता है।

जवके और गुण।

यावकश्चमृदुःस्वादुर्गुरुर्वृष्यःप्रकीर्तितः।
यौगंधरोघनःकासश्वासघ्नश्चगुरुर्मतः॥

अर्थ–जोका भात नम्र, स्वादु, भारी और धातुवर्द्धक है। ज्वारका भात कठिन तथा खांसी श्वास इनका नाशक और भारी है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्यामाकोदीपनोरूक्षोलघुर्वातप्रकोपनः।कृच्छ्रमेहगलातंकह-
रोरुचिबलप्रदः । नैवारोदीपनोरुच्योलघुर्वातप्रकोपनः ।
यकृत्प्लीहव्रणश्वासामामयघ्नःप्रकीर्तितः ।

अर्थ--सामखियेका भात दीपन, रूक्ष, हलका, तथा वातरोगका कोप कर नेवाला, और मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, गलेके रोग इनको नाश करे और बल करे। पसाईका भात दीपन, रुचिकारक, हलका तथा वातप्रकोपकारक होकर यकृत, तिल्ली, व्रण, श्वास, तथा आमविकार इनको नाश करे ।

अथान्नान्याह ।

परमान्नंहरिद्रान्नंदध्यन्नंकृशरान्नकम् ।
गुडान्नंचापिमुद्गान्नमित्यन्नंषड्विधंस्मृतम् ॥

अर्थ--अब अन्नकी कृति तथा गुण दोष कहते हैं--एक परमान्न, दूसरा हरिद्रान्न, तीसरा दध्यन्न, चौथा कृशरान्न, पांचवा गुडान्न, छटवाँ मुद्गान्न, ऐसे अन्नके छः प्रकार कहे हैं ।

परमान्न ।

तंडुलान्त्रिगुणंदुग्धंतदर्द्धंजीवनंप्रिये । तदर्द्धंतुगुडंकांतेपाचि-
तंपरमान्नकम् । परमान्नंबल्यंवृष्यंवातापित्तप्रणाशनम् । कफ-
प्रकोपनंबालेतृप्तिकृच्चप्रकीर्तितम् ।

अर्थ--अब परमान्नके गुणदोष कहते हैं । चावलोंसे तिगुना दूध तथा दूधका अर्द्धभाग पानी तथा पानीका अर्द्धभाग गुड ये सब पदार्थ एकत्र पक्व करनेसे इसको परमान्न कहते हैं । यह परमान्न बलदायक, वृष्य, तथा वातपित्तका नाशक और कफकोपकारक तथा तृप्तिकारक है ।

हरिद्रान्नम् ।

आढकंमथितंगव्यंतंडुलानांचप्रस्थकम् । कर्षैकंमारिचंचूर्णं
कोलैकंजीरकंप्रिये । निशाटंकमितासर्वंकृत्वैकध्यंविपाच-
येत् । पलमेकंपटुक्षिप्त्वाहरिद्रान्नमितीरितम् । पाचनंहिह-
रिद्रान्नंदीपनंरुचिकारकम् । वातपित्तकफातंकनाशनंपरि-
कीर्तितम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-अब हरिद्रान्नकी विधि और गुणदोष कहते हैं । गौकी विना जल मिली छाछ ४ प्रस्थ, काली मिरचका चूर्ण १ कर्ष, जीरा आधा कर्ष हलदी १ टंक, नोन ४ कर्ष, इन सबको एकत्र कर पक्क करनेसे हरिद्रान्न सिद्ध होता है । यह हरिद्रान्न पाचन, दीपन, तथा रुचिकारक, और वात पित्त कफ संबंधी रोगोंका नाशक है ।

दध्यन्नम् ।

प्रस्थैकांस्तंडुलान्कांतेपाचयेद्विधिवत्ततः । नात्यम्लमधुरंतत्रदधिद्विप्रस्थमुत्तमम् । कोष्णेसंमिश्रयेद्दक्तेकोलैकंमारिचंरजः । सुष्टचैकंलवणंचाम्रंशृंगवेरंप्रयोजयेत् । इदंदध्योदनंबल्यंरुच्यंवातघ्नदीपनम् ।

अर्थ-१ शेर चावलोंको जलमें विधिपूर्वक पचन करावे जब भात होजावे तब इस भातको अंगारोसे उतारके धरलेवे, पीछे एक दूसरा पात्र चूल्हेपर चढाय उसमें घी डाल जीरा हींग भूने, पीछे उक्त भातमें न बहुत मीठा न बहुत खट्टा, ऐसा दही दो शेर मिलाय उक्त भातको छौंक देवे, इसको दध्योदन कहते हैं, प्रायः द्राविडी मनुष्य इसको बहुत करते हैं यह बलदायक, रुचिकारक, वातघ्न और दीपन है ।

खिचड़ी ।

द्विप्रस्थंतंडुलंमुद्गप्रस्थैकंसंविपाचयेत् । कर्षैकंमारिचंचूर्णं तिलचूर्णपलंक्षिपेत् । सुष्टचैकंलवणंकांतेपचत्यास्मिन्विमिश्रयेत् । इदंवैकृशरान्नंस्याद्बलवीर्यविवर्द्धनम् । पित्तश्लेष्मकरंचैवगुरुविष्टंभिदुर्जरम् । पुष्टिकृच्चवरारोहेमलमूत्रविवर्द्धनम् ।

अर्थ-अब कृशरान्न अर्थात् खिचडी बनानेकी विधि कहते हैं । चावल २ शेर, तथा मूंगकी दाल १ शेर, इन दोनोंको एकत्र कर पक्क करे (पकावे) तथा सीजतेसमय इसमें काली मिरचका चूरा १ कर्ष डाले, ४ कर्ष तिलोंका चूरा, नोन १ पल डारे, इसको कृशरान्न कहते हैं । यह बल वीर्यको बढावे, और पित्तकफको करे है, तथा भारी, विष्टंभी, दुर्जर पुष्टिकारक तथा मलमूत्रको यह बढाती है ।

गुडान्नम् ।

तंडुलानांहिप्रस्थैकंदुग्धंप्रस्थत्रयोन्मितम् । दुग्धार्धंतुजलं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कांतेनीरतुल्यंगुडंमतम्। गुडादर्द्धंघृतंसर्वंपाचयेद्विधिपूर्वक-
म् । तद्गुडान्नमितिप्रोक्तंतृप्तिकांतिबलप्रदम् ।

अर्थ–अब गुडान्नकी विधि कहते हैं । चावल १ शेर,दूध३ शेर पानी १॥ शेर, गुड १॥ शेर घृत तीनपाव, इन सबको एकत्र कर इसकी खीर करे इस को गुडान्न कहते हैं । परन्तु मध्यदेशके मनुष्य दूधमें गुड नहीं मिलाते उन को बूरा डालना चाहिये, इसको गुडान्न कहते हैं । यह तृप्ति, कांति और बल करे है ।

मुद्गान्न ।

त्रिप्रस्थंतंडुलंमुद्गंप्रस्थंतुल्याचशर्करा । मुद्गान्नमेवंरंभोरुपौ-
ष्टिकंबलवीर्यकृत् । घृतमस्मिन्क्षिपेत्प्रस्थंसिद्धेकंजविलोच-
ने ॥ इतिषड्विधान्नम् ।

अर्थ–अब मुद्गान्नकी विधि और गुण कहते हैं । चावल ३ शेर, मूंग १शेर, इन दोनोंको मिलायकै रांधे, जब सीज जावे तब बूरा ४ शेर और घृत १ शेर मिलावे इसको मुद्गान्न कहते हैं । यह पुष्टि करता तथा बल वीर्य इनको उत्पन्न करे है । यह षड्विधान्न कहा ।

अथकृशरा ।

तिलाःप्रस्थमिताबालेतत्तुल्यास्तंडुलाःप्रिये । कुडवैकंघृतं
चाम्रंसैंधवंपाचयेदियम् । कृशरेतिसमाख्यातादीपनीपाचनी
मता । बलवीर्यप्रदाश्लेष्मश्वासकासप्रवर्द्धिनी । नातिमूत्रक-
राप्रोक्तावातघ्नीपित्तकोपिनी ।

अर्थ–अब कृशरा (साधारण खिचडी) के बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं । तिल १ शेर, चावल १ सेर, घृत १ कुडव, और नोन ४ तोले,इन सबको मिलाकर खिचडी करावे उसकौ कृशरा कहतेहैं । यह खिचडी दीप-न पाचन होकर बल, वीर्य, कफ श्वास; और खांसी, इनको बढावे और मूत्र को कमीकरे, वातनाशक तथा पितवर्द्धकहै ।

अथान्याकृशरा ।

तंडुलानांचप्रस्थैकंमुद्गसूपंचतत्समम्। पाचयेल्लवणस्याम्रमार्द्रं-

---

१ पाठांतरम् तंदुलैर्मौक्तिकाकारैः कंडितैर्न्न च खंडितैः । सस्नेहा कामिनीवेयं कृशरा शिशिरे हिता ॥ चतुर्थभागैर्माषस्य वैदलैः परीमिश्रितैः । कृशरा दुर्जरान्या गुर्व्वी वातविनाशिनी । यथोचिताम्बुसंसिद्धैः सर्हि-गुल्वणार्द्रकैः । बलपुष्टिमलश्लेष्मापत्तिरेतःप्रदासरा ॥ इति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कस्यपलंक्षिपेत् । शरावैकंघृतंचैषाकृशराहरिवल्लभा । अर्पयेद्धरयेतस्माद्धनुर्मासेविशेषतः । बलवीर्यप्रदागुर्वीकफपित्तविवर्द्धिनी । दुर्जरापुष्टिविष्टंभमलमूत्रकरीमता ।

अर्थ-अब कृशराकी दूसरी विधि कहतेहैं । चावल १ सेर, मूंगकी दाल १ सेर, इनकी खिचडी करे, पीछे इसमें नोन १ पल डारे, और अदरख १ प्रस्थ, घृत आध सेर डाले, इसको कृशरा कहतेहैं । यह भगवान्को अत्यंत प्रियहै इसीसे धनकी संक्रांतसे लेकर मकरकीसंक्रांतिपर्यंत भोग लगावे यह खिचडी बलवीर्य बढावे, भारीहै, कफ तथा पित्त इनको वृद्धीकरे, दुर्जरहै, पुष्टिकारक, विष्टंभकारक और मल मूत्रको बढानेवाली है ।

इसको दही, पापड और आम नीबू निसोरे आदिके आचारके साथ भोजन करनी चाहिये, एक खिचडी धनुर्मासमें चनेकी दाल और चावलकी बनतीहै ।

द्विदलान्नमितिप्राहुःकृशरामपिकेचन ।
शिंबिधान्यप्रभेदेनतद्गुणान्प्रवदाम्यहम् ॥

अर्थ-कितनेक आचार्य कृशराको द्विदलान्न कहतेहैं । अतएव द्विदल कहिये फलीसे उत्पन्नहुए जो उडद मूंग आदि धान्य उन द्विदलान्नोंके गुण मैं कहताहूं ।

माषान्नंगुरुवृष्यंचवातघ्नंमांसवर्धनम् । कफपित्तकरंबालेदुर्जरं परिकीर्तितम् । आढक्यन्नंविशेषेणगुरुपित्तकफापहम्।वातलं चवरारोहेपीनोत्तुंगपयोधरे । पाकेतीक्ष्णंकुलित्थान्नंरुक्षमुष्णं चदीपनम् । कषायंमधुरंपित्तकारकंलघुकीर्तितम्।कफवातकृमिश्वासनाशनंनववयौवने ।

अर्थ-उडदकी खिचडी भारी धातुवर्द्धक, वातघ्न, मांसवर्द्धक तथा कफ पित्तको करेहै और दुर्जरहै । अरहरकी खिचडी भारी तथा पित्त कफ नाशकहै और वातकारक जाननी । कुलथीकी खिचडी पाकके समय तीक्ष्ण तथा रूक्ष, गरम, दीपन, कसेली, मीठी, पित्त करके तथा हलकीहै तथा कफ वात, और उदरकी कृमि और श्वास इनको नाश करे ।

तापहारी (ताहरी)

घृतंभांडेनिशायुक्तंक्षिप्त्वाचुल्ल्यांप्रतापयेत्।तस्मिन्माषवटीः

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्षिप्त्वाभर्जयेदतियत्नतः । सुधौतांस्तंडुलांश्चापितत्समान्सु-
विभर्जयेत् । तान्भ्रष्टानितिविज्ञाययथायोग्यंजलंक्षिपेत् ।
पाचयेदर्द्धपक्केऽस्मिँल्लवणंहिंगुचार्द्रकम् । संक्षिपेदनुमानेन
सिद्धातापहरीस्मृता । वल्यातापहरीरुच्याश्लेष्मघ्नीपुष्टिदा
मता । धातुसंवर्द्धिनीबालेगुर्वीसंतर्पिणीतिच ।

अर्थ--अब ताहरीके बनानेकी विधि और गुणदोष कहतेहैं--एक वटलेमें घृत और हलदी डालकर चूल्हेपर धरे, जब घृतमें धूआँ उठनेलगे तब उसमें उडदकी अथवा मूंगकी वडी और उतनेही चावल गेरके भूने । जब दोनों भून जावे तब उसमें इतना पानी डाले कि, जिसमें वो दोनों सीजजावे, जब अर्द्धपक्व हो जावे तब नोन, हींग, और अदरख अनुमान माफिक डाले फिर अच्छीरीतिसे सिजावे इसको ताहरी कहतेहैं । यह बलदायक, रुचिकारक-कफनाशक, पुष्टिदायक धातुवर्द्धक भारी तथा तृप्ति करताहै ।

शाकौदनम् ।

रूक्षंशाकौदनंचोष्णंलेखनंपरिकीर्तितम् ।
फलान्नं गुरुरुच्यंचतत्तत्फलगुणागुणम् ॥

अर्थ--शाकयुक्त पकाहुआ भात रूक्ष, गरम, तथा लेखन कहिये कृश करनेवालाहै । उसीप्रकार फलयुक्त सीजाहुआ भात भारी तथा रुचिकारक और फलोंके गुण दोषोंके अनुसार गुणदोष करनेवाला जानना ।

तिलमाषपयोदुग्धसाधितान्नंमनोहरे ।
बल्यंतृप्तिकरंधातुवर्धनंपरिकीर्तितम् ॥

अर्थ--तिल, उरदकी दाल, दूध और पानी इनसे सिद्ध कराहुआ अन्न बल और तृप्ति तथा धातु इनकी वृद्धि करनेवालाहै ।

नवान्नंमधुरंस्निग्धंगुरुश्लेष्मप्रवर्द्धनम् ।
वातलोहितपित्तघ्नंमलावष्टंभकारकम् ।

अर्थ--नवीन कहिये नवीन उत्पन्न होनेवाला धानका अन्न यह मधुर, स्निग्ध, भारी, कफवर्द्धक, वात, रक्त, और पित्त इनका नाशक तथा मलावरोधकारक जानना ।

कोष्णान्नगुणाः ।

कोष्णान्नंलघुदीपनंकृमिहरंश्वासकासापहंहिक्काध्मानकगु-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ल्मजाज्यहरणंपानात्यययातंककृत्।पित्तासृग्भ्रममेहरोगजननं वातामयध्वंसनंश्लेष्मघ्नंक्षतकासनाशनमयेलोलाक्षिभक्तप्रिये ।

अर्थ–अब किंचित् गुनेगुने अन्नके गुणदोष कहतेहैं । किंचित् उष्ण अन्न हलका, दीपन, पेटकी कृमिनाशक, तथा श्वास, खांसी, हिचकी, पेटफूलना गोला और शरीरका जडत्व इनको हरण करताहै । पानात्ययरोग, रक्तपित्त भ्रम, प्रमेह, इनको करेहै । तथा वात, कफ और क्षत, खांसी इनको नाश करेहै ।

शीतौदनगुणदोषाः ।

शीतौदनंशीतवीर्यंरक्तपित्तप्रमेहनुत् । पानात्ययभ्रमच्छर्दि-मूर्च्छाघ्नं चाङ्गनोत्तमे । वाताग्निसादहृल्लासश्वासकृच्चापिकी-र्तितम् ।

अर्थ–अब शीतौदन कहिये शीतल अन्नके गुणदोष कहतेहैं । शीतलहुआ अन्न शीतवीर्य होकर रक्तपित्त, प्रमेह, पानात्ययरोग, भ्रम, वमन, मूर्च्छा इनका नाशक है और वातसंबंधी रोग, मंदाग्नि, हल्लास कहिये मुखसे पानी छूटना तथा श्वास इनको उत्पन्न करताहै ।

अतिशीतोष्णक्लिन्नशुष्कान्नगुणाः ।

अतिशीतान्नंदुर्जरंचात्युष्णंबलनाशनम् । अतिक्लिन्नंग्लानि-करंचातिशुष्कंहिदुर्ज्जरम्।नातिशीतंनचात्युष्णंनातिशुष्कंन चार्द्रकम् । अतोऽन्नंसंभजेत्कांतेसुखेप्सुर्मनुजोऽनिशम् ।

अर्थ–अब अतिशीतल अन्न तथा अत्यंत गरमागरम तथा अति पतला अन्न इनके गुणदोष कहतेहैं । अतिशीतल अन्न शीघ्र नहीं पचे, और अति गरम अन्न बलनाशकहै, अत्यंत पतला अन्न ग्लानि करेहै, इसीसे सुखकी इच्छा करनेवाले पुरुषको अत्यंत गरम और अति शीतल न होवे ऐसा मध्यम अन्न सेवन करना चाहिये ।

अथ मण्डविधिगुणाः ।

मंडश्चतुर्दशगुणोसिद्धस्तोयेत्वसिक्थकः । सचग्राहीलघुःशी-तोदीपनोधातुशाम्यकृत् । स्वेद्योमार्दवकृच्चापिपाचनःश्रम-वातनुत् । त्रिदोषज्वरतृट्पित्ताश्मरीश्लेष्मातिसारहा ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–१ पल चावलको १४ पल पानीमें पक्व कर उसमेंसे जो मांढ निकलता है उसको मंड कहते हैं । यह मंड ग्राही, हलका, शीतल, दीपन, समधातुकर, पसीने लानेवाला, शरीरको कोमल करनेवाला, तथा पाचन होकर श्रम, वात, त्रिदोषज्वर, प्यास, पित्त, पथरी, कफ और अतिसार इनका नाशक है ।

रक्ततंडुलजोग्राहीवातलोमधुरोहिमः ।
अश्मरीमेहपित्तानांनाशनःपरिकीर्तितः ।

अर्थ–लाल चावलोंका मांढ ग्राही, वातकारक मधुर, तथा शीतल होकर पथरी, प्रमेह, और पित्तका नाशक कहा है ।

श्वेततंडुलजोग्राहीवातलःशीतलःस्मृतः ।
किंचिच्छ्लेष्मकरःशोषाश्मरीमेहप्रणाशनः ॥

अर्थ–सपेद चावलोंका भात ग्राही वातल, शीतल, और किंचित् कफकारी है तथा शोषरोग, पथरी, प्रमेह, इनको दूर करे ।

वाद्यमंड और लाजामंड ।

वाद्यमंडोयवैर्भ्रष्टैर्लाजामंडस्तुशालिभिः । वाद्यमंडःकषायोष्णःपाचनोदीपनोलघुः । ग्राहीत्रिदोषविष्टंभशूलानाहप्रणाशनः । पटोलपिप्पलीयुक्तस्त्रिदोषज्वरनाशनः । हितोयंकथितोबालेतरुणामनवज्वरे । लाजामंडोलघुर्ग्राहीप्रियःपाचनदीपनः । वातानुलोमनोबालेविरिक्तस्यहितावहः । आमयघ्नोविशेषेणविश्वकृष्णासमन्वितः ।

अर्थ–अब वाद्यमंड और लाजामंडको कहते हैं । भुने हुए जौके मंडको वाद्यमंड कहतेहैं । तथा चावलकी खीलोंके माँढको लाजामंड कहते हैं । वाद्यमंड कषेला, गरम, पाचन, दीपन, हलका, ग्राही होकर, त्रिदोष, विष्टंभ, शूल, और आनाह इनका नाशक है । यदि पटोलपत्र और पीपल इसमें मिला तो वात, पित्त, कफ ज्वर इनका नाशक है उसीप्रकार तरुणज्वर, आमज्वर, और नवज्वर इनको हितकारी है ।

लाजामंड लघु, ग्राही, प्रिय, पाचन,दीपन,वातानुलोमन करता, और जुलाब लियाहो ऐसे मनुष्योंको हितकारी है । यदि इस मंडमें शुंठी और पीपल मिलाकर देवे तो विशेष रोगनाशक होय ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गोधूममंडोमधुरोलघुपाकोमनोहरे । उष्णःपित्तप्रशमनोय-
थाकांताऽधरामृतम् । जूर्णलीमंडकोग्राहीमूत्रलःकफवात-
कृत् । पित्तप्रणाशनोबालेकामकेलिविशारदे । अतिवातक-
रोमंडःक्षुद्रधान्यसमुद्भवः । कोद्रवोग्लानिकृच्छीघ्रंतथामू-
र्च्छाकरोऽहितः ।

अर्थ–गेहूंका मंड मधुर, शीघ्र पचनेवाला, उष्ण व पित्तनाशक है। ज्वारका मंड ग्राही, तथा मूत्र, कफ, वात इनको करनेवाला और पित्त-नाशक है। क्षुद्रधान्य कहिये समा पसाई आदिका मंड अतिवातकारक है। कोदोंका मंड तत्काल, ग्लानि लानेवाला तथा मूर्च्छाकारक है। इति मंडगुणागुणाः ।

अथ विलेपी ।

चतुर्गुणजलेसिद्धाविलेपीघनसिक्थका । साचाग्निदीपनीब-
ल्याहृद्यासंग्राहिणीमता । आमशूलहरीस्वाद्वीलघ्वीपुष्टि-
रुचिप्रदा । व्रणाक्षिरोगिणांपथ्यातर्पणीतृड्ज्वरापहा ।

अर्थ–अब विलेपी कहिये पतले भातके गुणदोष कहते हैं चौगुने पानीमें चावलोंको सिजावे, जब चावल सीज जावे तब ज्योंका त्यों रहने दे अर्थात् इसका मांड न निकाले इसको विलेपी कहते हैं। यह विलेपी अग्निदीपन, बलकारक, हृदयशोधक, ग्राही, आमशूलनाशक, स्वादु, लघु, पुष्टि तथा तृप्तिदायक व्रणरोगी तथा नेत्ररोगी इनको पथ्य और तृषा तथा ज्वर इनको नाश करनेवाली है ।

अथ पेया ।

पेयासिक्थान्विततोयेचतुर्दशगुणेकृता । साचकुक्षिगदक्लां-
तिज्वरस्तंभातिसारहा । रुच्यासंदीपनीलघ्वीमलदोषानुलो-
मिनी । अस्वेदिनांस्वेदकरीस्मरस्वेदलसन्मुखे ।

अर्थ–एक भाग चावलोंको चौदहगुणे पानीमें सिजावे उसको पेया कहते हैं। यह पेया कूखके रोग, मुखसे पानीगिरना, ज्वर, स्तंभ, तथा अतिसार इनको नाश करे तथा रुचिकारक, जठराग्निदीपन, लघु, मल तथा वातादि दोष इनको अनुलोमन करनेवाली और जिन्होंके पसीने नहीं आतेहो उनको पसीने आवे इति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ यूषविधिगुणाः ।

अष्टादशगुणेनीरेनिस्तुषान्द्विदलान्पचेत् ।
वस्त्रपूतंचतुर्थांशंयूषंविद्धिवरांगने ॥

अर्थ–एक भाग धुली हुई दाल अठारह गुने जलमें सिजावे और जब पानी चतुर्थांश रहे तब वस्त्रमें छानलेवे इसको यूष कहतेहैं । इसीको दाल-का पानी कहते हैं ।

अथ कृताकृतौ यूषौ ।

व्योषाज्यसैंधवैःसिद्धःसयूषःकृतसंज्ञकः ।
एतैर्हीनोऽकृतोयूषःक्रमात्कांतेगुरुर्लघुः ॥

अर्थ–जिस यूषमें सोंठ, मिरच, पीपल, घृत और सैंधानिमक डालके सिद्ध करे उसको कृतयूष कहते हैं । और जो केवल दालकाही यूष कहते हैं उसको अकृतयूष कहते है इनमें कृतयूष गुरू है तथा अकृतयूष हलका है ।

यूषस्तक्रेणसंसिद्धोधान्याम्लेनचवातथा । फलाम्लेनवरा-
रोहेगुरुःप्रोक्तोयथोत्तरम् । रुच्यावातहराश्चेमेसर्वेयूषाघटस्तनि ।

अर्थ–छाछमें सिद्ध करा तथा धान्याम्लमें सिद्ध करा तथा फलाम्लमें सिद्ध करा यूष ये एकसे दूसरा भारी है, और ये तीनों यूष रुचिकारक तथा वातनाशक है ।

मुद्गयूष ।

मुद्गयूषस्तुमधुरोहृद्यःसंदीपनोहिमः । रक्तपित्ततृषादाहज्व-
रिणांहितकारकः । कफव्रणशिरोरोगयुक्तानांचहितावहः ।
अयंसर्वोत्तमोयूषोयथात्वंवनितोत्तमा ।

अर्थ–मूंगका यूष मधुर, हृदयको बलदायक, अग्निदीपक तथा शीतल होकर रक्तपित्त, तृषा, दाह, ज्वर, कफ, व्रण और मस्तकसंबंधी रोगोंको हितावह है । यह मुद्गयूष सर्वोत्तम कहिये संपूर्ण यूषोंमें उत्तम है ।

अथ द्वितीयमुद्गयूष ।

मुद्गानांप्रसृतिंकांतेद्विप्रस्थेसलिलेक्षिपेत् । चतुर्थांशावशेषेतु
सूक्ष्मवस्त्रेणगालयेत् । तस्मिन्सैंधवधान्याकदार्डिंवत्वङ्मम
हौषधम् । पिप्पलीजीरकंचापिक्षिपेट्टंकंपृथक्पृथक् । कोष्णं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पीत्वाजयेत्पित्तंकफातंकंनसंशयः । तवाधरसुधापानसुर-
क्ताभ्यामिमाविव ।

अर्थ-अब मूंगके यूषकी दूसरी विधि कहतेहैं मूँगकी धुईहुई दाल एक प्रसृति लेवे, दो प्रस्थ पानीमें सिजावे जब चौथाई जल बाकी रहे तब महीन वस्त्रमें छान सैंधा नोन, धनिया, अनारकी छाल, सोंठ पीपर तथा जीरा ये पदार्थ एक २टंक ले चूर्ण कर उसमें डाले तो यह यूष किंचित् उष्णरहै इसको गरमागरम पीनेसे पित्त और कफको दूर करेहै ।

मसूरादि यूष ।

मसूरमुद्गगोधूमकुलित्थसैंधवैःकृतः । यूषोवातहरःश्लेष्मापि-
त्तयोश्चविवर्धनः । एषैवदाडिमीद्राक्षासंयुक्तोरुचिकारकः ।
पाकेतीक्ष्णश्चहृद्यश्चदीपनोवातनाशनः ।

अर्थ-अब मसूरादि यूष कहते हैं । मसूर, मूंग, गेहूं, कुलथी और सैंधानिमक इनसे बनाहुआ यूष वातनाशक, और कफ तथा पित्त इनको बढानेवाला है । यह यूष अनारदाना, और दाखके मिलानेसे रुचिकारक होताहै । और पाकके समय तीक्ष्ण, हृदयको बलदायक दीपन और वात-नाशक होवे ।

अथ शूकधान्ययूष ।

एकोभागःपटोलस्यत्रिभागाःशूकधान्यतः।द्वौभागौपारिभद्र-
स्यपचेद्यूषंविधानतः । एषसंदीपनोहृद्यःकफमेदोगदापहः ।
कृमिज्वरहरश्चैवपित्तकुष्ठप्रणाशनः ।

अर्थ-जब इत्यादिक धान्य जिन्होंमें कांटे होतेहैं उनको शूकधान्य कहतेहैं। इसके यूषकी विधि कहतेहैं । परवल एकभाग, शूकधान्य तीन भाग, और नीमकी छाल दो भाग, ये सर्व एकत्र कर इनका यूष करे । यह यूष दीपन, तथा हृदयको बलदायक होकर कफ, मेद, कृमि, ज्वर, पित्त और कुष्ठ इनका नाशक है ।

अथ मूलकयूष ।

मेदोवृद्धिंप्रतिश्यायंकफंकासंगलग्रहम् ।
ज्वरारोचकहृल्लासाञ्जयेन्मूलकयूषकः ।

अर्थ-अब मूल, (जड) इनके यूषोंके गुण कहतेहैं । यह मूलकयूष मेदो-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वृद्धि, सरेकमां, कफ, खांसी, गलग्रह, ज्वर, अरोचक, और हल्लास कहिये सूखी रद्द इनका नाशकरे ।

अथ पंचामृतयूषः ।

कुलित्थमाषनिष्पावमुद्गाढकिसमुद्भवः । दीपनःपाचनोयूषोरुच्योधातुविवर्धनः । अंगमर्दज्वरश्लेष्मशयानांनाशनःस्मृतः । अयंपञ्चामृतोयूषःकथितोभिषगुत्तमैः ॥

अर्थ–अब पंचामृत यूष कहतेहैं । कुलथी, उडद, चौरा, मूंग, अरहर इनका यूष दीपन, पाचन, रुचिकारक, तथा धातूकी वृद्धि करनेवाला है तथा अंगोंका टूटना, ज्वर, कफ, और क्षय, इनका नाशक है ।

अथ मुद्गपर्णीयूषः ।

वनमुद्गभवोयूषोवृष्योधातुविवर्धनः ।
रक्तपित्तंज्वरंकृच्छ्रंपित्तंसंतापकंजयेत् ।

अर्थ–वनमूंग (मौठ)का यूष वृष्य तथा धातु बढानेवाला होकर रक्तपित्त, ज्वर, मूत्र कृच्छ्र, पित्त, और संताप इनको नाश करताहै।

अथ कुलित्थयूषः ।

कुलित्थसंभवोयूषःकषायोमधुरोमतः । वीर्योष्णोदीपनोबालेतथावातानुलोमनः । गुल्मार्शकफवातघ्नोमेदोमेहनिकृंतनः । अश्मरीश्वासकासघ्नः प्रतितूणीप्रणाशनः ।

अर्थ–कुलथीका यूष कषेला, मधुर, वीर्योष्ण, दीपन और वातानुलोमन करनेवाला, तथा गुल्म, बवासीर, कफ, वात, मेद प्रमेह, पथरी, श्वास, खांसी इनको नाश करेहै ।

आढकी (अरहरका) यूषः ।

आढकीसंभवोयूषोबालेस्वादुःकषायकः । नाशयेत्पीनसंश्वासंत्रिदोषंकसनंज्वरम्।रक्तंदोषंकृमीन्हन्यात्त्वंयथामदनव्यथाम्।

अर्थ–अरहरका यूष स्वादु तथा कषाय होनेसे पीनस, श्वास, त्रिदोष, कास ज्वर, रक्तदोष और कृमि इनका नाशकहै ।

चणकयूषः ।

चाणकःशीतलोयूषस्तिक्तश्चैवकषायकः ।
कासश्वासप्रतिश्यायरक्तदोषत्रिदोषनुत् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-चनेका यूष शीतल कडुआ, तथा कषेला होनेके कारण खांसी, श्वास, सरेकमा, रक्तदोष और त्रिदोष इनको नाश करताहै ।

मसूरयूषः ।

मासूरोमधुरोयूषोग्राहीमेहप्रणाशनः ।
धातुसंवर्द्धनःप्रोक्तःपीनोत्तुंगपयोधरे ॥

अर्थ-मसूरका यूष शीतल, ग्राही, प्रमेहनाशक और धातुवर्धकहै ।

अथ माषयूषः (उरदका यूष)

माषयूषोगुरुर्वृष्यःकिंचित्पित्तप्रकोपनः । वातातंकहरःकांते कफरोगप्रवर्धनः । मलाधिक्यकरश्चायंप्रस्फुरत्करकंकणे ।

अर्थ-उरदोंका यूष भारी, वृष्य, किंचित् पित्तकारक, वातरोगोंका नाशक कफसंबंधी रोगोंका बढानेवाला और मलवर्द्धकहै ।

निष्पावयूषः ।

निष्पावयूषकोबालेस्त्रीणांस्तन्यविवर्धनः ।
दृष्टिरोगकफातंकनाशनःपरिकीर्तितः ।

अर्थ-निष्पाव (चोराओं) का यूष स्त्रियोंके दूध बढानेवालाहै एवं नेत्रसंबंधी रोग, कफरोग इनको नाश करनेवालाहै ।

अथ पंचमुष्टिकयूषः ।

यवबदरकुलित्थमुद्गमूलैर्मुष्टिमितैःपृथगञ्जलोचने । अयितुर्यगुणेजलेसुसिद्धंयूषमुशंतिहिपंचमुष्टिकम् । ज्वरपवनकफां श्चशूलगुल्मौपित्तंश्वासमपिक्षयंचकासम् । अपहरतिमनोहरे प्रयुक्तोयूषोयंनलिनाक्षिचंद्रवक्त्रे ।

अर्थ-जब, बेर, कुलथी, मूंग, और मूल ये पांचोंवस्तु एक एक पल लेवे, इनसे चौगुने जलमें यूष सिद्ध करे, इसको पंचमुष्टिक यूष कहतेहै । यह ज्वर वात, कफ, शूल, गोला, पित्त, श्वास, क्षय, तथा खांसी, इनको नाश करेहै।

नवांगयूषः ।

मूलकंबदरंविश्वंमुद्गकृष्णाकुलित्थकम् । यवतंडुलकंधात्रीफलंनीरेचतुर्गुणे । एतेषांसाधितोयूषोनवांगःपरिकीर्तितः । कफपित्तहरश्चायंकीर्तितोभिषगुत्तमैः ।

अर्थ-मूला, बेर, सोंठ, मूंग, पीपल, कुलथी, जव, चामल, तथा आमरे ये

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नौ पदार्थ एकत्र कर चौगुने पानीमें यूष करे इसको नवांगयूष कहतेहैं । यह कफ और पित्तको नाशकरे ।

दाडिम्बामलकयूषः ।

दार्डिबामलकैर्यूषःप्रियःसंशमनोलघुः ।
दीपनोवातपित्तघ्नोमदमूर्च्छानिवारणः ।

अर्थ–अनार, और आमले इनका यूष प्रियहै । वातादि दोषोंको शमन करनेवाला हलका, तथा दीपन होनेसे वात, पित्त, मद, और मूर्च्छा, इनका नाशक है ।

खलयूषः ।

कपित्थचिंचामरिचाग्निबिल्वाजाजीकृतोयूषकएषहृद्यः ।
वातामयंश्लेष्मभवंविकारंछर्दिंनिहन्यात्खलसंज्ञकोऽयम् ।

अर्थ--कैथ, इमली, मिरच, चीतेकी छाल, बेलगिरी और जीरा इनका यूष हृदयको बलदायक तथा वात, कफ, उलटी, इनका नाशक इसको खलयूष कहते हैं ।

कांबलिकयूषः ।

दध्यम्ललवणस्नेहतिलमाषप्रसाधितः ।
यूषःकांबलिकोहृद्यश्छर्दिंवातकफप्रणुत् ॥

अर्थ–दही, आमरे, नोन, तेल, अथवा घृत, तिल तथा उरद, इनका जो यूष उसको कांबलिक यूष कहतेहैं । यह हृदयको बलदायक होनेसे ओकारी, वातरोग और कफरोग इनका नाश करताहै ।

अथ सारमाह ।

सारंभोजनसारंसारंसारंगलोचनाऽधरतः।
पिबकिलवारंवारंनोचेद्वृथाभवतिसंसारः ॥

अर्थ–भोजनमें सार सारहै । अथवा स्त्रीका अधरामृत सार है, इस लिये हे मित्र! तू वारंवार पी अन्यथा संसारमें जन्मलेना वृथाहै ।

अम्लिकायाःफलंपक्वंकुडवैकंविनिःक्षिपेत्।प्रस्थेनीरेपचेत्स-
म्यग्रसज्ञेसारकप्रिये । अर्द्धाऽवशिष्टेपूतेचमरिचंद्व्यक्षकंप्रिये ।
सैंधवंजरणंहिंगुयथायोग्यंविपोषितम् । श्लक्ष्णंपिंडीकृतंसर्वं
चार्द्रकुस्तुंबरीयुतम्।तस्मिन्क्वाथेविनिक्षिप्यपाचयेच्चक्षणंपुनः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अम्लिकासारमञ्जाक्षिवातातंकप्रणाशनम् । पित्तश्लेष्मकरं किंचित्सुरुच्यंवह्निबोधकम् ॥

अर्थ-अब इमलीके सारकी विधि और गुणदोष कहते हैं। पकी इमली १६ तोले ले, ६४ तोले पानीमें ओंटावे, जब आधा जल शेष रहे तब महीन वस्त्रमें छानकर धरदेवे, पीछे दो तोले काली मिरच, सैंधानिमक जीरा हींग तथा हराकोथमीर, इन सबको अनुपानके माफिक ले पीसकर गोलाकरके उसको उस इमलीके रसमें गेरदेवे फिर एक क्षणमात्र उसे चूल्हेपर धरके पचावे इसको अम्लिका सार कहते हैं। यह वातरोगका नाशक, किंचित् पित्त और कफकर और रुचिकर तथा अग्निदीपन करता है। इसे दक्षिणी लोग भातके साथ बहुत खातेहैं ।

अगस्त्यसार ।

अगस्त्यकुसुमंकांतेसारेस्मिन्सांक्षिपेद्यदा ।
अगस्त्यसारकंप्राहुःसूपशास्त्रविदस्तदा ॥

अर्थ-यदि इसी इमलीके सारमें अगस्तियेके फूल डालदेवे तो इसीको अगस्त्यसार कहते है ।

अगस्त्यसारके गुण ।

अगस्त्यसारंसुस्वादुतिक्तंवातकफापहम् ।
पांडुशोफारुचिप्लीहगुल्मशूलगदप्रणुत् ॥

अर्थ-अगस्त्यसार-स्वादु, तथा तिक्त होनेसे वात, कफ, पांडुरोग सूजन, अरुचि, प्लीहा, कहिये तिल्ली गोला और शूल इनका नाश करनेवालाहै ।

वदसूपविधिंविद्वन्भोजनेऽस्यविशेषतः ।
सूपयोगोऽस्तिनैवात्रविनानेनरुचिर्भवेत् ।

अर्थ-कविकी स्त्री प्रश्न करती है कि, हे विद्वन् ! आप सूपकी (दालकी) विधि मेरेको कहो, भोजनमें इसकी विशेष आवश्यकता रहती है, कारण कि, सूपके विना अन्य भोजनोंसे रुचि नहीं होती ।

रसज्ञेप्रवदाम्येवशृणुसूपविधिंप्रिये ।
गुणज्ञेतद्गुणांश्चापिसूपशास्त्रप्रमाणतः ॥

अर्थ-कवि उत्तर देता है कि, हे रसज्ञे ! सूपशास्त्रके अनुसार मैं सूपकी विधि तथा गुण तेरे आगे कहता हूं सो सुन ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कांचनसूप (धोवादाल)

कृष्णसर्षपतैलाक्तांशिंबीधान्यंवरांगने । शोषयेदातपेचाश्म-
यात्राचैवविदालयेत् । उलूखलेततःपश्चात्कंडयेच्छोधयेत्ततः।
शूर्पेणकांचनःसूपःकथितोयंविदांवरैः । दध्याज्यरजनीभिर्वा
लिप्तांबालेसुदालिकाम्।संपीड्यस्थापयेद्भांडेनिशैकांशोषयेत्ततः
आतपेकंडयेत्तत्तांशोधयेच्छूर्पकेणच।अयमप्यरविंदास्येसूपः
काञ्चनसंज्ञकः ।

अर्थ–काली सरसोंके तेलमें शिंबीधान्य (मूंग उडद आदि) को चुपड-कर धूपमें धरदेवे; जब सूखजावे तब दरेतासे दरके दाल करे । पीछे इस दालको ओखरीमें डालकर मूसलसे छरडाले और सूपसे फटककर स्वच्छ करे । इसको कांचनसूप अर्थात् धोवादाल कहते हैं । और मालवे देशमें इसको मोगर कहते हैं ।

अथवा दालमें दही, घृत और हलदी लगाय एक पात्रमें भर१रात्रि दबा-कर धरदेवे, प्रातःकाल होतेही धूपमें धरे फिर ओखलीमें कूट सूपसे फटक स्वच्छ करलेवे इसकोभी कांचनसूप कहते हैं ।

अथ सूपपाकविधि ।

रसज्ञेकांचनंसूपंप्रस्थैकंसुमनोहरम्।पचेदब्धिगुणेतोयेचार्द्ध-
सिद्धेविनिःक्षिपेत् । हरिद्रांरामठंसर्पिर्लवणंचयथोचितम्।ना-
तिद्रवोघनोवापिससूपोरुचिकारकः । पाचनोदीपनःस्नि-
ग्धःपथ्योबल्योवरांगने । कफवातहरश्चान्नंविनानेनवृथा
भवेत् ।

अर्थ–अब धोवादालके बनानेकी विधि कहतेहैं एक प्रस्थ धोवादाल ले चौगुने पानीमें सिजावे जब आधी सीजजावे तब इसमें हलदी, हींग, घृत और निमक परिभाषामें कहे अनुसार डाले । पीछे अत्यंत पतली न हो न बहुत गाढी हो ऐसी सिजावे, यह दाल रुचिकारक पाचन, अग्निदीपन, स्निग्ध, पथ्य तथा बलदायक, होकर कफ और वात इनकी नाशक है । इसके विना अन्नमें रुचि नहींहो ।

अबसंस्कारभेदसे दालके गुण ।

भ्रष्टानांशिंबिधान्यानांनिस्तुषाणांमनोहरः । शीघ्रपाकी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भवेत्सूपोरुचिकृच्चलघुर्मतः । सतुषाणामभ्रष्टानांजराकृच्च गुरुर्मतः ।

अर्थ--भुनेहुए उडद आदिकी निस्तुष दाल मनोहर जल्दी पचनेवाली, रुचिकारी, तथा हलकी है ।

हरे मूंग उरद आदिकी छिलकेवाली दाल बुढापेको लानेवाली और भारीहै ।

अथ मुद्गसूपगुणाः ।

मुद्गसूपोलघुर्ग्राहीशीतःस्वादुःकषायकः । नेत्ररोगेहितश्चायं प्रियेतृप्तिकरोमतः । संतापंरक्तपित्तंचज्वरंवातंकफंजयेत् । ग्लानिंपित्तंचलोलाक्षिवेतंडवरगामिनि ।

अर्थ-मूंगकी दाल हलकी, ग्राही, शीतल, स्वादु, कषेली, नेत्ररोगमें हित, तथा तृप्तिकारक होकर संताप, रक्तपित्त, ज्वर, वात, कफ, ग्लानि, और पित्त इनको दूर करेहै ।

अथ चणकसूपः ।

रसज्ञेचाणकःसूपःपाचनोरुचिकारकः । किंचिद्वातकरोरूक्षो बल्योबलवतिप्रिये । रक्तदोषंकफंपित्तंरक्तपित्तंतुनाशयेत् ।

अर्थ--चनेकी दाल-पाचन, रुचिकारक, किंचित् वातकर, रूक्ष, तथा, बलकारक होकर रक्तविकार, कफ पित्त, और रक्तपित्त इनको नाशकरे ।

अथ तुवरीसूपः ।

आढकीसंभवःसूपःशीतलोऽल्पकषायकः । रुचिवातकरो रूक्षःकफपित्तप्रणाशनः । यदिचाज्ययुतःसिद्धःस्निग्धःकंजविलोचने । पित्तश्लेष्मसमीराणांशामकःपरिकीर्तितः ।

अर्थ-अरहरकी दाल-शीतल, थोडी कषेली, रुचिकर, वातकारक, रूक्ष,

अरहरकी दाल--अरहरकी दाल १ शेर, घी पावभर, दही आदपाव, अदरख २ तोले, धनिया १तोला मिरच साढेचार आनेभर निमक ४ तोला, लोंग दो आनेभर, केशर एक आनेभर, छोटी इलायची दो आनेभर, दालचीनी दोआनेभर, जल चार शेर, प्रथम बीनीहुई शुद्धदालको किसी हांडीमें पानी भर चूल्हेपर चढाओ जब बोलने लगे तब दाल छोडदो, और ढकदो, जब दाल सिजजावे तब उस दालका यूष किसी दूसरे पात्रमें निकाललो और दालको अलग करलो फिर दालमें दही अदरखका रस और आधा-निमक मिलाओ सब मिलाकर एक स्वच्छ पात्रमें ४चार दंड ढाककर रक्खो चार दंडके पश्चात् हांडीमें १ छटांक घी डाल दाल छोडके उसको भूनोंजब भुनजावे तब पहले धरेहुए यूषमें धनिया पिसा और बाकीका नमक छोडदो जब दाल अच्छी रीतिसे सिद्ध होजावे तब गरम मसाला और केशर पीसके उस दालमें

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कफ और पित्त इनकी नाशक है । यदि यह घृत डालकर सिद्ध करी जावे तो स्निग्ध तथा वात, पित्त, कफ इनको शमन करेहै ।

माषसूपः ।

माषसूपोगुरुर्वृष्यउष्णःस्निग्धोबलप्रदः । स्वादुस्तृप्तिकरोबा-
लेकीर्तितोरुचिकारकः । कफपित्तकरोधातुवर्द्धनोवातनाश-
नः । भर्जितानांलघुःकिंचिन्माषाणांसूपईरितः ।

अर्थ--उरदकी दाल भारी, वृष्य, गरम, स्निग्ध, बलदायक, स्वादु, तृप्तिकर, रुचिकर, और कफ, पित्त, धातु, इनको बढानेवाली तथा वातनाशकहै। और भुनी उडदकी दाल किंचित् लघुहै ।

त्रैपुटसूपः ।

वातलस्त्रैपुटःसूपःस्वादुश्चाध्मानकारकः ।
शूलसंजनकश्छर्दिरक्तपित्तारुचिप्रणुत् ।

अर्थ--खिसारीकी दाल वातकारक, तथा स्वादु होकर अफरा, और शूल, इनको करे । और छर्दि (उलटी) रक्तपित्त, अरुचि, इनका नाशकारक है ।

मकुष्ठसूपः ।

माकुष्ठःपाचनोवृष्योलघुर्नेत्रहितावहः । दीपनोल्पबलोबाले
बृंहणःपरिकीर्तितः । कफंपित्तंरक्तदोषंहंतिकुञ्जरगामिनि ।
तवाधरसुधेवाशुमारज्वरमिहस्फुटम् ।

अर्थ--मोठकी दाल, पाचन, वृष्य, हलकी, नेत्ररोगीको हितावह, दीपन, किंचित् बलकारक तथा मांसादिकोंकी बढानेवाली है । कफ, पित्त, रक्तदोष, इनकी नाशक है ।

चौराकी दाल ।

राजमाषभवःसूपोरूक्षःस्वादुःकषायकः ।
रुचिवातकरोग्राहीगुरुःस्तन्यविवर्द्धनः ॥

अर्थ--चौराकी दाल रूक्ष, स्वादु, कषेली, रुचिकारी, वातकारी, ग्राही, भारी, स्त्रियोंके दूधको बढाती है ।

डालदो फिर कलछीसे मिलाय किसीपात्रमें निकासलो और हांडिमें धोकर उसमें बाकी सब घी छोडकर उसमें लोंगका वघार देके दाल छोडेदो थोडीही देरतक आंच दे कलछीसे चलायकर उतारलो तो परमोत्तम अरहरकी दाल बने ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निष्पावसंभवःसूपोगुरुरुष्णश्चशुक्रहृत् ।विदाहीचसरःपित्त-रक्तमूत्रविवर्द्धनः। श्लेष्मस्तन्यमरुच्छोफवर्द्धनश्चप्रकीर्तितः।

अर्थ-शिंबीधान्यमात्रकी दाल-भारी, गरम, धातुनाशक, दाहकारक, तथा रेचक होकर पित्त, रक्त, मूत्र, कफ, दूध, वात और सोफ इनके बढानेवालीहै.

मटरकी दाल ।

कलायसंभवःसूपःपाकेस्वादुःप्रकीर्तितः। मेध्योरूक्षोलघुर्ग्रा-हीशीतलःसित्कृतिप्रिये । अरोचकंकफंपित्तंरक्तदोषंव्यपोहति।

अर्थ-मटरकी दाल-पाकके समय स्वादु होनेसे बुद्धिवर्द्धक, रूक्ष, लघु ग्राही, तथा शीतल है और अरुचि, कफ, पित्त, रक्तविकार इनकी नाशकहै।

पाकेतिक्तःकुलित्थानांसूपश्चापिकषायकः । पित्तरक्तकरः श्वासकासवातकफापहः। अश्मरीनाशनश्चापेकीर्तितस्तद्वि-दैर्जनैः ।

अर्थ-कुलथीकी दाल पाककालमें कटु, तथा कषेली, पित्तरक्तकारक है । श्वास, खांसी, बादी, कफ, और पथरी इनको नाशकारक है ।

मंगल्यासंभवःसूपोलघुर्ग्राहीचशीतलः । वातलोमधुरःपाके रूक्षश्चापिप्रकीर्तितः । कफंपित्तंतथारक्तंहंतिस्वादुर्मनोहरे ।

अर्थ-मसूरकी दाल, लघु, ग्राही, शीतल, वातकारक, पाककालमें मधुर, तथा रूक्ष है, और कफ, पित्त, रक्त इनकी नाशक है तथा स्वादु है ।

मिश्रितानांचदालीनांसूपोबलकफप्रदः । गुरुश्चमधुरःपाके शुक्रलोवातनाशकः । अरोचकहरोबालेसर्वदाप्रीतिवर्द्धनः ।

अर्थ-दो चार मिली हुई दाल-बलकारक, भारी, पाककालमें मधुर, वीर्य-वर्द्धक, वात, और अरुचि, इनके नाशक और सर्वकाल प्रीतिको बढानेवाली जाननी ।

विना छिलकाकी और छिलकेकी दाल ।

रसज्ञेनिस्तुषःसूपःकफारोचकनाशकः । ज्वरक्षयहरोबालेल घुःपाकविचक्षणे । तथैवसतुषःसूपोगुरुराध्मानकारकः ।

अर्थ-छरीहुई धांसकी दाल कफ, अरुचि, ज्वर, और क्षय इनकी नाशक है लघु है, और साधारण (जिसमें छिलकाहो ऐसी) दाल भारी, और अफरा करनेवाली है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ कुल्माषः (घूंघरी)

हिंगुसैंधवसंयुक्तंधान्यंनीरेविपाचयेत् । अर्द्धस्विन्नंयदात-
त्स्यात्तंकुल्माषंविदुर्बुधाः। किंवांबुप्लावितंधान्यंधूपयेद्रामठा-
दिना । सैंधवादियुतंसिद्धंकुल्माषंतद्विदोविदुः । कुल्माषो
वातलोरूक्षोगुरुश्चमलभेदकः । मंदाग्निकफमेदोरुक्पुष्टिशुक्र
बलप्रदः ।

अर्थ–हींग सैंधानिमक, डालकर चने इत्यादि धान्यको पानीमें सिजावे जब आधे सीज जावे तब चूल्हेसे उतार लेवे, इसको घूंघरी कहते हैं । अथवा भीजेहुए चनाआदि धान्योंको घृत और हींगसे छोंक दे मसाला डाल सिजावे, तो घूंघरी सिद्ध हो । यह वातकारक, रूक्ष, भारी, मलको भेदन करनेवाली, मंदाग्नि, कफ, मेदरोग, पुष्टि, वीर्य और बल इनको बढानेवाली है ।

कुल्माषोमाषजोबालेमाषसूपसमोगुणैः ।
मुद्गसूपसमोमौद्गश्चान्येसर्वेस्वरूपवत् ॥

अर्थ--उडदकी घूंघरीमें उडदकी दालके समान गुण है । इसीप्रकार अन्य धान्यकी घूंघरी उसी उसी धान्यके गुणसदृश गुण करनेवाली है ।

अथ क्वथितामाह (कढी)

नात्यम्लमधुरेतक्रेचतुःप्रस्थेविमिश्रयेत् । वेसनंकुडवंसूक्ष्मं
मरीचलवणान्वितम्।ततस्ताम्रादिजंभांडंवंगलिप्तंबृहन्मुखम्।
चुल्ल्यांनिधायवह्निंतुकृत्वातप्तेचभांडके । क्षिपेदाज्यंतुतत्तप्ते
मेथिकांरामठंतुवा।जरिकंराजिकांवापिक्षिपेद्रक्तांमरीचिकाम्।
यथारुचिरुचिप्रेष्ठसर्ववातुरसोनकम्। क्षणंचैवान्यपात्रेणछाद-
येत्सुप्रयत्नतः । दृष्ट्वातुनिःसृतंधूमंशनैरुद्धाट्यसंक्षिपेत् ।
अर्धसवेसनंतक्रंद्रुतमाच्छादयेत्ततः । पलादुद्धाट्यशेषंतुक्षि-
पेद्दर्व्याप्रचालयेत् । ततोमंदानलेनैवपाचयेदतियुक्तितः ।
अर्द्धशेषेत्रिपादेवासमुत्तार्यनिधापयेत् ।क्वथितामितितांप्राहुः
सूपशास्त्रविशारदाः ।

अर्थ--अब कढी अथवा झोरकी विधि कहते हैं । न अत्यंत मीठा और न

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अत्यंत खट्टा ऐसा दही[1] ४ प्रस्थ लेवे, और बेसन अर्थात् चनेका बारीक चून १ कुडव मिरच और निमक उसमें अनुमानसे मिलायके सबको घोल देवे पीछे कलईके पात्र या स्वच्छ कढाईको चूल्हेपर धरे जब गरम होजावे तब उसमें घृत डाले जब घृत तपजावे तब उसमें मेथी, हींग, जीरा, राई, अथवा लाल मिरच कोईसी वस्तु डालके अथवा कहीहुई सर्व वस्तु डाले अथवा लहसन डाले और क्षणमात्र उसको ढक देवे पीछे उसमें धूआँ निकलने लगे तब युक्तिसे उसको उघाड उसमें दही बेसनमिलाहुआ पानी आधा डाल देवे, और ढक देवे फिर थोडी देरमें उघाड शेष आधेकोभी डाल देवे, कलछीसे चलाय देवे जब वह औंटकर पौन अथवा आधा रहे तब उतार लेवे इसको कढी कहते हैं और माथुर जन इसको झोर कहते हैं। इसमें इतनी वस्तू और अनुमान माफिक डाले जैसे धनिया दोनों जीरे सोंठ, लोंग, इलायची, दालचीनी काली मिरच, तेजपात, इनको कूट पीसकर डाले, इस कढीको ब्रजवासी राँडकढी कहते हैं।

क्षिपेत्तस्यांवटीर्वापिचाणकीर्घृतसाधिताः । तैलसिद्धास्तु वाकांतेतत्कृतिंप्रवदाम्यहम् ।सुसूक्ष्मंचाणकंपिष्टंपानीयेनविलोडयेत् । लवणंमरिचंजीरंहरिद्रामत्रनिःक्षिपेत् । नातिद्रवंघनंवापिहस्तेनैवप्रमंथयेत् । निःक्षिप्यभुवनेदृष्ट्वायदावारितरंभवेत् । तदाहस्तेनतन्नीत्वाघृतेतैलेऽथवाप्रिये । कोलंकोलंक्षिपेत्तत्रेप्रफुल्लास्तुविचालयेत् । कुंकुमाभायदाताःस्युर्दुतंनिष्कासयेत्तदा । तावटीःकथितामध्येक्षिपेद्वाकेवलाभजेत् ।

अर्थ-यदि इस कढीमें बेसनकी पकौरी या टेटी डाले तो इसको सुहागिलकढी कहते हैं। तहां पकौरी बनानेकी विधि कहतेहैं कि, महीन बेसनमें नोन, मिरच, जीरा, और हलदी डालके फिर पानीसे इसको गाढा गाढा मथे, (परंतु बहुत गाढाभी न हो) जब खूब मथ चुके तब इसमेंसे थोडासा ले जलमें डाले यदि वह जलमें तैरने लगे तब जानेकि, पकोडी तोरने

---

१ सूखा दही बनानेकी विधि. दहीको किसी महीन कपडेमें छाने, जब उसका बिल्कुल पानी निकल जावे तब उस दहीकी छोटीछोटी वरी तोड़देवे, फिर उनको छायामें सुखाय अपनेपास धर रक्खे ये परदेशमें काम देती है जिससमय दहीकी अपेक्षा हो उसीसमय उन दहीकी वडीन्को निकाल किसी मट्टी या पत्थरके पात्रमें थोडी देर भिगोनेसे वांछित दही बनजावेगा, परंतु जैसे खट्टे या मीटे दहीकी वरी तोडोंगे वैसेही स्वादका दही स्वादमें बनेगा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लायक होगया, फिर उस मथे बेसनकी आधे आधे तोलेकी पकौरी घृत अथवा तेलकी कढाईमें छोडे, जब वो फूलकर सिक जावे अर्थात् केसरी रंगकी होजावे तब निकास लेवे इसप्रकार बनीहुई पकौरी उस कढीमें डाले इसको पकौरीका झोर कहते हैं । और यदि बेसनकी नुकती घृतमें बनाकर डाले तो नुकतीका झोर कहताहै । और बेसनमें मोयन डाल गाढा उसन हाथोंसें टैंटीके माफिक बटकर घृतमें तलके यदि कढीमें डाले तो उसको टेटिका झोर कहते हैं ।

अथ चणकवटीगुणाः ।

चाणकीवटिकाबल्यापुष्टिदारुचिकारिका ।
विष्टंभकारिणीकांतेकीर्तिताशास्त्रकोविदैः ।

अर्थ--बेसनकी पकौरी (मगोरी) बलदायक तथा पुष्टिदायक और रुचिकारी तथा मलको रोकनेवाली ऐसे सूपशास्त्रज्ञोंने कहा है ।

अथ क्वथितागुणाः ।

क्वथितापाचनीरुच्यादीपनीप्रीतिकारिणी । लघ्वीषत्पित्तलावातविबंधकफनाशिनी । तक्राभावेप्रियेचान्येनाम्लवर्गेण साधयेत् । अर्पयेद्धरयेप्रीत्यासकांतायततोभजेत् ।

अर्थ--केवल कढी पाचक, रुचिकारक, जठराग्निदीपनी, प्रीतिकारक, हलकी तथा किंचित् पित्तकारक, और वात, मलावरोध और कफ इनकी नाशक है यदि कहीं दही न मिलता होवे तो उसजगे इमलीआदि दूसरा खट्टा पदार्थ लेकर उसकी कढी करे और परमात्माके अर्पण करके पश्चात् आप भोजन करे ।

क्वथितालालनेसवटीसुखदा कथिताहिनटीवसुनृत्यविधौ ।
मृदुहास्यविलासकलाकुशलापरभृत्स्वरमंजुलगानपरा ।

अर्थ--हे प्रिये ! जैसे मंदहास्य करनेवाली तथा विनोदमें कुशल होकर नाचनेके समय कोकिलस्वर करके मनोहर गान करनेवाली ऐसी नटी अत्यंत सुखके देनेवाली होती है उसीप्रकार पकोडी पडी हुई कढी अत्यंत सुखदायक होती है ।

अथ पंचकोलाद्याक्वथिता ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ।यवानीमरिचंधान्यं सैंधवंजीरकद्वयम् । दार्डिबामलकंपथ्यारामठंमाषकंपृथक् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हरिद्रांलवणंचैवनिःक्षिपेदनुमानतः । वेसनंकुडवैकंचतक्र-माढकसम्मितम् । पंचकोलादिकासिद्धाकथितैतैर्मनोहरा । हृद्यासंदीपनीवातंवातगुल्मंकफंतथा । शूलमामातिसारंच कासंश्वासंप्रणाशयेत् ।

अर्थ--पीपल, पीपलीमूल, चव्य, चीता, सोंठ, अजवायन, कालीमिरच, धनिया, सैंधानिमक, जीरा, कालाजीरा, अनारदाना, आमरे, हरड, और हींग, ये प्रत्येक पदार्थ मासे २ भर ले और हलदी तथा नोन अनुमानके माफिक तथा वेसन १६ तोले और दही २५६ तोले ये सब पदार्थ एकत्र कर कढी करे इसको पंचकोलादि कढी कहते हैं। यह हृदयको वलदायक, तथा जठराग्नि दीपन करनेवाली वातरोग, वातगुल्म, कफ, शूल, आमाति-सार, खांसी और श्वास इनका नाश करे ।

अथ क्वाथली (कथली)

तक्रादिसाधितंयत्स्याच्छाकमात्रंवरांगने । फलंमूलंतुपत्रंवा सुमंपद्मसुमप्रभे । क्वाथलीतिसमाख्यातादीपनीपाचनीम-ता। हृद्याप्रीतिप्रदारुच्यालघ्वीवातकफापहा। त्यक्त्वास्वी-यांश्चशाकस्यगुणानेतद्गुणाभवेत् । पीनोत्तुंगघनोरोजशालि-न्यग्रसरेप्रिये ।

अर्थ–कथली कहिये दहीमें पक्क करा साग, फल, अथवा मूल, तथा पत्र, किंवा फूल, इनमेंसे किसी एक सागको दही वेसनमें ओटानेसे उसको कथली कहते हैं । यह कथली जठराग्निको दीपन करे पाचन है, हृदयको वलदायक, प्रीति तथा रुचिको करे,और हलकी है।वात कफ इनका नाश करे,यह सागकी कढी पूर्वोक्त अपने कढीके गुणोंको त्याग ऊपर कहे गुणोंको करती है अर्थात् जैसे जैसे सागके साथ बनती है उसी उसीकेसे गुणोंको करतीहै ।

अलीकमत्स्याः ।

(पानवडी)

वेसनाश्चामसेयाश्चालीकमत्स्याद्विधामताः । शृणुवेसनचा-मस्योःकृतिंतेप्रवदाम्यहम्। माषाश्चमंथास्त्वग्घीनाःपृथग्या-त्रासुपेषिताः । चामसीमाषपिष्टंस्याद्वेसनंचाश्वमंथजम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–अब अलीकमत्स्य कहते हैं। तहां कहते हैं कि, अलीकमत्स्य दो प्रकारके हैं. एक बेसनके दूसरे चामसीके इनमें प्रथम बेसन और चामसी बनानेकी क्रिया कहते हैं। छिलकारहित उडद अथवा चनेकी दालको पीसे । चनेकी दालके चूर्णका बेसन, और उडदके चूर्णको चामसी कहते हैं।

चामसींवेसनंवापिमंथयेदंबुनासमम् । तत्रैवैलादिकंकांतेवेसवारंविमिश्रयेत् । नागवल्लीदलानीषत्पक्वान्येवततःप्रिये । लेपयेत्तेनपिष्टेनसूपशास्त्रविशारदः । वेष्टयेच्चप्रयत्नेनततः कुर्यादिमंविधिम् । किंचिन्नीरयुतंभांडंतृणैरर्द्धविपूरयेत् । तस्योपरिन्यसेत्तानिपाचयेन्मंदवह्निना । यदितानिघनानि स्युर्भांडान्निष्कासयेत्पृथक् । तेषांशस्त्रेणखंडानिमत्स्यानामिवकल्पयेत् । घृततैलेऽथवातानिपाचयेन्नवयौवने ।

अर्थ–चामसी अथवा बेसनको पानीमें सानकर उसमें परिभाषामें कहा एलादिक वेसवार डालकर खूब मथे, फिर नागरवेलके पके पानोंमें मथी. हुई पीठी लगावे फिर एक पात्रमें थोडा पानी डाल उसमें आधे भागमें तिनका भरके उसमें वो लिपटेहुए पान भरे फिर उस पात्रके मुखपर कढना देकर चूल्हेपर मंद मंद अग्नि देवे, कुछ देरमें वो पान सीजकर कठोर हो जाते हैं। तब उस पात्रमेंसे काढलेवे फिर छुरीसे टुकडे करके घृतमें अथवा तेलमें तल लेवे, इसको अलीकमत्स्य कहते हैं। और लौकिकमें इनको पानवडे कहते हैं।

अलीकमत्स्योंके गुण।

प्रियास्तेऽलीकमत्स्याःस्युर्बल्यावृष्यारुचिप्रदाः। ईषत्पित्तकराःपुष्टिप्रदाधातुविवर्द्धनाः। वातार्दितहनुस्तंभहराःकोष्ठविशोधकाः। क्वथितायांक्षिपेद्वापितथाप्येतद्गुणाःस्मृताः । एवमन्यस्यशाकस्यपत्रपुष्पादिकस्यचायुक्त्याकुर्याद्गुणैस्तुल्याअलीकामत्स्यकाः प्रिये।

अर्थ–ये अलीकमत्स्य प्रिय, बलकारक, धातुवर्द्धक, रुचिकर, किंचित पित्तकारक, पुष्टिदायक, तथा वृष्य हैं उसीप्रकार वातरोग, आर्दित, तथा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हनुस्तंभ, इनके नाशक,और कोष्ठको शुद्ध करनेवाले हैं इनको कढीमें डालकर भोजन करनेसेभी उक्त गुणोंको करे हैइसप्रकार बैंगन, मूली, पालक, आदि किसी फल पत्र पुष्प आदिके अलीकमत्स्य बनावे उनके गुण जो ऊपर कहे हैं वो होते हैं। परंतु हमारे मध्यदेशमें इनको चंद्रसेनी कहते हैं । इतना भेद है कि, अलीकमत्स्योंको पात्रमें घासके ऊपर धरके सेकते हैं और यहांके मनुष्य फल फूल आदिको गाढे बेसनमें लपेटकर घीमें छोड देते हैं जब पक्क होजाते हैं तब निकाल लेते हैं ।

अथ रसाज्याः ।

प्रस्थैकंचाणकंपिष्टंप्रसृतैकंघृतंतथा । एकीकृत्यतुसंमर्द्यपचेन्नीरेचतुर्गुणे । यावद्गाढंभवेत्पश्चात्स्थाल्यांकृत्वाप्रसारयेत् । कनिष्ठिकामितोत्सेधंशीतेखंडानिकल्पयेत् । दीर्घाणिशिंबिकातुल्यान्याज्येतानिविपाचयेत् । फुल्लानिकुंकुमाभानिदृष्ट्वा निष्कासयेद्द्रुतम् । रसाज्याइतिसंप्रोक्ताः सूपशास्त्रविशारदैः । रसनातलकेहीमानर्त्तक्यःसुखदायकाः ।

अर्थ-अब रसाज्याकी विधि कहतेहैं । चनाका बेसन ६४ तोले तथा घृत ८ तोले एकत्र मिलाय चौगुने पानीमें पक्क करे जब सीजकर गाढा होजाय तब उसको कांसेकी स्वच्छ थालीमें १ अंगुल मोटी रहे इस तरह फैलाय देवे जब शीतल होजावे तब छुरीसे सेवके समान लंबे २ टूक कतर लेवे उन टूकोंको गरम घृतमें छोडदेवे, जबकि फूलकर केशरके समान रंग होजावे तब उनको निकाल ले इनको सूपशास्त्रमें रसाज्या कहते हैं ।

चेदिमाललनेक्षित्वादध्यादावतिशंप्रदाः । ससितेमथितेवापिक्षिपेत्तक्रेसितान्विते । अम्लिकापानकेवापिक्वथितायांविनिःक्षिपेत् । राजिकाजाजिधान्याकमरीच्यादियुतेषुच । सपटुषुक्षिपेद्वापिद्रवेषूक्तेषुशोभनाः । रसाज्याःपुष्टिदारुच्याबल्यावीर्यकफप्रदाः । वातपित्तहराःख्याताअम्लेक्षिप्ताःकफापहाः । ईषत्पित्तकराबालेवातघ्नाः परिकीर्तिताः ।

अर्थ-इन रसाज्याओंको दही आदि पदार्थमें भिगोकर भोजन करनेसे अति सुखदायक होतीहै । सो इसप्रकार कि-दहीको मथकर उसमें सपेद बूरा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

डालके अथवा बूरेको छाछमें मिलायके उसमें इनको डालदेवे, अथवा इमलीके पनेमें बूरा डालके भिजोदेवे, अथवा कढीमें किंवा राई, जीरा, धनिया, मिरच, और निमक इन सबको मथेहुए दहीमें डालके भिजोकर भोजन करनेसे उत्तम गुणकारी होताहै । यह रसाज्या पुष्टिदायक, रुचिकारक, बल वीर्य तथा कफ इनको बढानेवाला है । और वात पित्त इनको नाशकरनेवाला है, और खट्टेपदार्थोंमें भिगोनेसे कफनाशक, तथा किंचित् पित्तकारक और वातनाशकहै ।

अथ माषरंगी ।

माषकान्दलितान्नीरेक्षिप्त्वारात्रौचतुर्गुणे । प्रातस्तान्निस्तुषान्कृत्वाप्रक्षाल्याद्भिःप्रयत्नतः ।ततस्तान्पेषयेत्सम्यक्पिष्टिकृत्वाश्मनाऽश्मनि । तस्यांपिष्टचांहिलवणंजीरकंमरिचंनिशाम् । रामठंचानुमानेनवेसवारंतुवाप्रियेक्षिपेदेलादिकंपश्चान्मंथयेद्दृशमेवच । कोलंकोलंक्षिपेत्तत्तेघृतेसंपाच्यतूद्धरेत् । तच्छेषांपिष्टिकामद्भिर्घोलयित्वाऽष्टभागके ।क्काथलीमिवसंपाच्यक्षिपेदेलादिकंततः। वेसवारंचलवणंतत्रेमावटिकाःक्षिपेत्। ततोदद्यात्क्षणंवह्निंसिद्धामेवसमुद्धरेत् । एषाप्रोक्ताप्रियेतज्ज्ञैर्माषरंगीतिनामतः । माषसूपसमाज्ञेयागुणैरंबुरुहेक्षणे । मुद्गसूपसमातद्वद्गुणैर्मौद्गीविचक्षणे ।

अर्थ--अब माषरंगी (मगौरी) के बनानेकी विधि और गुणदोष कहतेहैं । उडदकी (या मूंगकी) दाल रातको चौगुने पानीमें भिजोवे (परंतु गरमियोंमें बहुत देर भीजनेसे खट्टी होजातीहै इसीसे तडकाउ भिजोवे) प्रातःकाल उसको धोकर उसके छिलके दूर करे, और सिल लोढेसे महीन पीसे फिर इसमें नोन, जीरा, मिरच, हलदी, तथा हींग, ये पदार्थ उस पीठीमें गेरके उस पीठीको मथे अथवा एलादि वेसवार डालके मथे पीछे बेरके प्रमाण गोलकर तप्त घृतमें तललेवे, तदनंतर उसी पीठीमेंसे थोडीसी बाकी राखे उसको अठगुने पानीमें मिलाय कढीके समान तयार करके उसमें तलीहुई मगोडी डालदेवे, पीछे वेसवार और नोन उसके अनुमान माफिक डाल एक क्षणभर और ओंटावे, इसको सूपशास्त्रमें माषरंगी कहतेहैं यदि यह माषरंगी उडदके होनेसे उडदकी दालके समान गुण करेहै । और मूंगकी होवे तो मंगकी दालके समान गुणकारी जाननी ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पत्रवटिकाः ।

सुसूक्ष्मेचाणकेपिष्टेप्रियेरक्तांमरीचिकाम् । धान्याकंवल्लिजंहिंगुजीरकंपत्रकंत्वचम्।नालिकेरस्यमज्जानंकंकोलंचलवंगकम्। मरीच्यादिगणंसर्वंतैलभ्रष्टंसुपेषितम् ॥ लवणंचानुमानेनसंक्षिप्याप्सुविलोडयेत् । नातिद्रवंघनंवापिघनपीनपयोधरे ॥ वेसनेनदलंतेननागवल्ल्यादिजंदिहेत् । वेष्टयेत्पाचयेद्युक्त्या तांयुक्तिंप्रवदाम्यहम् ॥

अर्थ–अब पानके वडेकी दूसरी विधि कहतेहैं । महीन बेसनमें (मिरच, धनिया, जीरा, लाल मिरच, हींग, पत्रज, दालचीनी, गिरीका चूर्ण, कंकोल, लोंग, आदि सर्व पदार्थ तेलमें बारीक पीसे) तथा नोन इसमें अनुमानके माफिक मिलाय पानी डालके मथे, फिर उस पीठीको नागरवेल अथवा आलू आदि में लपेटकर युक्तिसे सिजावे वो प्रकार इसरीतिपर है ।

किंचिदंबुयुतंभांडंतृणैरर्द्धंप्रपूरयेत् । तत्तृणोपरिसंस्थाप्य तानिपत्राणियत्नतः । मंदाग्निनाघनीभूतान्यरंनिष्कासयेद्बहिः। ततोऽच्छूरिकयाखंडेद्वचंगुलोन्मानतःस्फुटम् । घृतेतैलेऽथवाकांतेपाचयेन्मंदवह्निना । ताःपत्रवटिकारुच्याःशुक्रलाबुद्धिकांतिदाः । स्थौल्यवह्निप्रदाबल्यावातापित्तकफापहाः ।

अर्थ–एक पात्रमें थोडासा जल डालके उसमें अर्धपात्रको तिनकोंसे भरदेवे और उन तिनकोंके ऊपर उन पत्रोंको अथवा आलू आदि बेसन लिपटी हुई पकोडीन्को धरे तथा मंद मंद अग्निदेकर सिजावे जब वो कठोर होजावे तब उतारकर छुरीसे टुकडे कर गरम तेल या घीमें तल लेवे इनको पत्रवटिका कहतेहैं । ये वडी रुचिकारक तथा धातु, बुद्धि, शरीरकी कांती, स्थौल्य, जठराग्नि, तथा बल इनको देतीहै । और वात, पित्त, और कफ इनकी नाशकहै ।

अथ मांषंडरी ।

आर्द्रंकलवणंहिंगुजीरकंमाषपिष्टके । मिश्रयित्वातुनीरेणमर्दयेत्कठिनंततः । तत्पिष्टवटिकाःकृत्वापचेत्पत्रवटीरिव । गुर्वीमाषंडरीबल्याशुक्रलापौष्टिकीप्रिये । नाशयेदर्दितंवातमरोचकमसंशयम् । एवमल्पबलामौद्गीलघ्वीकंजविलोचने ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ--अब मांषेंडरी (उडदकी वरी) की विधि तथा गुण कहतेहैं अदरख, नोन, हींग, तथा जीरा, ये पदार्थ एकत्र पीस उडदके चूर्णमें मिलाय उसमें जल मिलाय भलेप्रकार मथे फिर उसकी वडी कर पानवडीके समान सिजाय टुकडे कर घृतमें या तेलमें तले ये मांषेंडरी भारी, बलदायक, धातुवर्द्धक, तथा पुष्टिकारक है । और अर्दितरोग, वातरोग, अरुचि इनको नाश करे, इसीप्रकार मूंगकी मांषेंडरी इससे किंचित् न्यून गुणकारी और हलकी होतीहै ।

अथ वटिकाः (मरीच भरी)

माषाश्वमंथतुवरीतंडुलादीन्विपेषयेत् । कुस्तुंबरुचवाह्लीकलवणंचानुमानतः । नातिद्रवंघनंपिष्टंमंथयेच्चभृशंततः । मरीचिगर्भावटिकाःकृत्वाचणकसन्निभाः। शोषयेदातपेचाज्येपाचयेद्रुचिकारिकाः । वातगुल्महराःख्याताभोजनेप्रीतिदायकाः । एवंमुद्गादिकानांचवटिकाःपरिकल्पयेत् । इमामरीचगर्भाख्याःकीर्तितावटिकाःप्रिये । एताएवांबुनापक्काअत्यंतं प्रीतिकारिकाः । यदिचैवाम्लवर्गेणपाचिताःकिमुतब्रुवे ।

अर्थ–उडद, चना, अरहर, अथवा चामल इत्यादिक जो धान्य ले, महीन पीस उसकी पीठी करे, उसमें कोथमीर, हींग और निमक अनुमान माफिक मिलाय फिर उस पिट्ठीको मथकर प्रत्येकमें एक एक मिरच भरके वरी तोडदेवे, प्रमाणमें चनेकी बराबर फिर उनको धूपमें सुखाय घृतमें तललेवे । ये मरीचिगर्भा बडी रुचिकारक, वातगुल्मनाशक, और भोजनविषयमें प्रीति उत्पन्न करनेवालीहै । इसीरीतिसे मूंग, मोठ आदिकी वडी करनी चाहिये ये वडी पानीमें पक्क करनेसे अत्यंत प्रीतिकारकहै । और यदि खटाई आदि पदार्थमें सिजानेसे उसके गुण कहनेमें नहीं आवे अर्थात् बहुत गुण करे ।

अथ माषवटिकाः ।

माषान्विदलितान्नीरेप्लावयेत्प्रहरद्वयम् । ततस्तोयेनसंक्षाल्य कारयेदपिनिस्तुषान् । शिलायांपेषयेत्पश्चादश्मनासूक्ष्मकं ततः । तत्पिष्टचामनुमानेनलवणार्द्रकरामठम्।संमिश्रयमंथयेत्तावद्यावन्नीरतरंभवेत् । ततोवस्त्रेप्रकल्पेतचणकप्रमिता वटीः । शोषयेदातपेसम्यगिमामाषवटीःप्रिये । किंचिदाज्ये-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नसंभर्ज्यपाचयित्वांबुनाभजेत् । रुच्यामांषवटीहन्यात्कंप-
वातंतथार्दितम् । वातरुक्सर्पिणीचेयंकफपित्तविवर्द्धिनी ।
मुद्गसूपगुणामौद्गीचान्याःस्वान्नगुणाःस्मृताः ॥

अर्थ-अब उडदकी वरी बनानेकी विधि और गुण कहतेहैं । उडदकी दाल दो प्रहरपर्यंत भिजोवे; पीछे उसको धोकर छिलका दूरकर बारीक पीसे, फिर निमक, अदरख, और हींग, इनको अनुमान माफिक मिलाय फिर थोडा पानी डारके मथे पीछे इसकी चनेके समान वडी एक बडे स्वच्छव-स्त्रपर तोड देवे । इनको धूपमें सुखाय धर रक्खे, फिर उसमेंसे कार्यके समय जितनी चाहिये उतनी लेकर घीमें तलके पानीमें सिजावे, ये वडी रुचिका-रक, कंपवात, अर्दितवात, और वातविकार इनको नाश करे और कफ तथा पित्तको बढावे इसीप्रकार मूंगकी वरीके गुण मूंगकी दालके समान जानने और अरहरकी, मटरकी, मोठकी इत्यादिकी वडी अपनी २ दालके समान गुणकारी जाननी ।

अथ खंडवटिकाः ।

सुपिष्टंचाणकंनीरेसमानेसंविपाचयेत् । मरिचंलवणंहिंगुधा-
न्याकंशर्वरींक्षिपेत् । सुसूक्ष्मंनालिकेरस्यमज्जानंचापिसंक्षि-
पेत् । घनीभूतंसमुत्तार्यघृताक्तेकाष्ठपट्टके । संक्षिप्यघृतलिप्ते
नहस्तेनैवशनैःशनैः । वर्द्धयेत्तारपाकारंशीतेखंडानिकल्प-
येत् । चतुष्कोणानिशस्त्रेणशृंगाटकनिभानिवा । ततःसंपा-
चयेदाज्येखंडाख्यावटिकाःस्मृताः । इमावल्याःशुक्रलाश्च
कांतिपुष्टिकफप्रदाः । विष्टंभकारिकारुच्यागुव्यौवातहराः
स्मृताः । रक्तदोषंतथापित्तंनाशयंत्यपिभक्षिताः । अकीर्ति
मपलोकंचयथाधर्माःसुरक्षिताः ।

अर्थ-अब खंडवटिकाकी विधि कहतेहैं । बेसन और जल बराबर लेकर सिजावे, सिजतेसमय उसमें लाल मिरच, निमक, हींग, धनिया, हलद, तथा गिरीका चूर्ण, ये पदार्थ बारीक पीसके डालदेवे, जब वो बेसन सीज-कर गाढा होवे तब उतारकर घी चुपडे पट्टेपर गेर बराबर हाथसे धीरे धीरे फैलाय देवे, जब शीतल होनेसे जमजावे तब छुरीसे बरफीसमान टुकडे कतरके गरम घीमें सेक लेवे,इनको खंडवटिका कहतेहैं । ये खंडवटिका बल

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वीर्य, कांति, पुष्टि, कफ, विष्टंभ और रुचि इनको करेहै । भारी है, तथा वात-रोग रक्तदोष और पित्त इनको नाश करेहै ।

अथ वटकाः (वडे)

माषकान्विदलीकृत्याक्षिपेन्नीरेद्वियामकम् । संक्षाल्यनिस्तुषान्कृत्वापेषयेदश्मनाश्मनि । पलैकंचपटुप्रस्थेशृंगवेरंपलं तथा । टंकैकंरामठंभृष्टंजीरकंचद्विषाणकम् । कोलैकंमरिचं कृत्वाचैकध्यंमंथयेत्ततः । भवेन्नीरतरंयावत्ततोनीत्वापलंपृथक् । कृत्वाचंद्रसमाकारंशरच्चंद्रप्रभानने । मध्यच्छिद्रंततश्चाज्यैतैलेवापाचयेच्छनैः । कुकुमाभान्निरीक्ष्यैवपृथक्कृत्वानिधापयेत् । माषाणांवटकारुच्याःकफवातविवर्द्धनाः । कंपवातमरुत्पक्षाघातकार्श्यहराःस्मृताः ।

अर्थ--अब वडे बनानेकी विधि और गुण कहते हैं । उडदकी दालको दो प्रहर पानीमें भिजोवे फिर उसको धोय छिलके दूरकर महीन पीसे फिर १ प्रस्थ दालमें १ पल निमक डाले, १ पल अदरख, १ टंक भुनी हींग, २ टंक, जीरा तथा दो टंक मिरचका चूरा इन सबको मिलाय फिर उस पीठीको अच्छीरीतिसे मथे फिर उसमेंसे एक एक पल पिठी ले गोल गोल चंद्रके समान हाथोंसे चुपडकर वडे बनावे, उसके बीचमें एक छिद्रकर गरम घीमें अथवा तेलमें छोड देवे, जब पक्व हो केशरके समान लाल रंगहो तब निकास जलमें गेर देवे, इसको वडा कहते हैं । ये उडदके वडे रुचिकारक कफ और पित्त इनको बढावे और कंपवात,वातरोग, पक्षाघात, तथा कृशत्व इन रोगोंको नाश करे हैं ।

अथैतेषामन्यां कृतिमाह ।

त्वग्घीनांमाषजांदालींयात्रासूक्ष्मांविपेषयेत् । दध्नातत्पिष्टकंमथ्यकृत्वातद्वटकान्प्रिये । गोघृतेपाचितावल्यास्तेहिताःस्त्रीप्रसंगिनाम् । वातघ्नाःशुक्रलाःश्लेष्मरक्तपित्तप्रकोपनाः ।

अर्थ--उडदके दालके चूनको दहीमें मथकर उसके वडे बनावे उनको गौके घीमें सेके, ये वडे बलदायक, स्त्रीप्रसंग करनेवालोंको परम हितकारी, वातनाशक, तथा धातुबढानेवाले एवं कफ और रक्तपित्त इनको कुपित करनेवाले हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ कांजिकवटिकाः ।

मृद्भांडंकटुतैलाक्तंधूपयेद्रामठाज्यतः । तत्रकोष्णोदकंजीरं राजिकांपटुविश्वकम् ।संक्षिप्यवटकांस्तत्रक्षिपेत्सम्यग्विमुद्रयेत् । त्रिदिनानंतरंभांडात्समुद्धृत्यनिषेवयेत् । कांजिकावटकारुच्याःकफपित्तविवर्धनाः । वातदाहप्रशमनाःशूलाजीर्णविभंजनाः ।

अर्थ--अब कांजीके वडेन्की विधि कहते हैं । माटीके पात्रमें कडुआ तेल चुपड उसमें हींग और घीकी धूनी देवे, फिर उस पात्रको आधा गरम जलसे भरे, फिर उस पानीमें जीरा, राई, निमक, और सोंठ इनका चूर्ण अनुमान माफिक डालकर उसमें उडदके वडे भिजोय देवे, फिर उस पात्रका मुख बांध तीन दिन पर्यंत धरा रहने दे, फिर उसमेंसे जितने वडे निकालने हो उतने निकाल फिर उसपात्रका मुख बांधकर धरदेवे ये कांजिक वडे रुचिकारक, तथा कफ पित्तको बढानेवाले और वात, दाह, शूल, और अजीर्ण इनके नाशक है ।

अथ तक्रवटकाः ।

मृद्भांडंकटुतैलाक्तंधूपयेद्रामठाज्यतः । तत्रतक्रंसलवणंसाजाजीशुंठिराजिकम् ।संक्षिप्यवटकांस्तत्रधौतानुष्णोदकेनच। मुद्रयित्वाष्टयामांतंस्थापयेच्चततोभजेत् । तेहृद्याःशुक्रलाबल्याःपौष्टिकालघवःस्मृताः । वातातंकप्रशमनारक्तपित्तकफप्रदाः ।

अर्थ--अब छाछके वडेन्के गुणदोष कहते हैं । माटीके पात्रके भीतर कडुआ तेल चुपडकर उसको हींग और घीकी धूनी दे उसको छाछसे आधा भर देवे उस छाछमें निमक, जीरा, और सोंठ तथा राई इनको पीसके डाले, फिर वडोंको गरम जलसे धोयकर उस छाछमें भिजोय देवे तथा उसपात्रका मुख बांधकर आठ प्रहरतक धरा रहने देवे फिर उसमेंसे वडा निकाल भोजनमें लेने चाहिये । ये वडे हृदयको बलदायक, धातुवर्द्धक, बलकारी, पुष्टिकर्ता, हलके, तथा वातनाशक है । और रक्तपित्त तथा कफ इनको बढानेवाले हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पानकवटकाः ।

अम्लिकापानकेकांतेप्लावितावटकायदि ।
लोलाक्षिगुणतःप्रोक्तास्तत्कार्द्रवटकाइव ।

अर्थ--इमलीके पनेमें भीजेहुए वडे--छाछमें भीगेहुए वडान्के समान गुणकारी जानने ।

मुद्गवटकगुणाः ।

मुद्गानांवटकारुच्याःपौष्टिकाःकफकारकाः । कोमलागुरवो बल्याःशुक्रलाःसुरतप्रियेरक्तदोषप्रहरणावातपित्तहराःस्मृताः ।

अर्थ-मूंगके वडे रुचिकारक, पुष्टिकर, कफकारक, कोमल तथा भारी एवं बल वीर्य इनको बढानेवाले और रक्तदोष, वात तथा पित्त इनके नाशक है ।

अथ सूरणवटकाः ।

सूरणंखंडशःकृत्वापाचयेत्पेषयेत्ततः । लवणंमरिचंतत्रराम-ठंजीरकंतुवा । संक्षिप्यमंथयेत्पश्चात्पाचयेद्वटकान्घृते । तेचाग्निदीपनारुच्याअर्शोवातविभंजनाः ।

अर्थ-अब सूरण (जमीकंद) के वडेन्की विधि और गुणदोष कहते हैं जमी कंदके टुकडे कर उनको इमलीके पानीमें भिगोवे. और उनमें नीमक हींग, अथवा जीरा डालकर पीसे फिर हाथोंमें घृत चुपड खूब मथे पीछे इसके वडे बनाय घृतमें तल लेवे, ये वडे जठराग्निदीपक तथा रुचिकारी एवं बवासीर तथा वातरोग इनको नाश करते हैं ।

अथ कूष्मांडवटकाः ।

कूष्मांडंखंडशःकृत्वासूक्ष्मंतच्चापिवाससा । निष्पीड्यनिर्जलंकृत्वाततस्तस्मिन्विमिश्रयेत् । बेसनंमाषपिष्टंवानिशाधान्याकरामठम्।लवणंमरिचंसर्वंमंथयेद्वटिकाद्वयम् । ततः संरचयेत्तस्यवटकानतिशोभनान् । शोषयित्वातपेचैतान्पाचयेद्घृतभर्जितान् । लवणंत्वनुमानेनक्षिपेदंबुप्रमाणतः । कूष्मांडवटकारुच्यावातातंकविनाशनाः ।

अर्थ-कुम्हडा (पेठे) के वडे बनानेकी विधि कहते हैं । पेठेके बारीक टुकडे कर (अथवा घीयाकसमें कसके) उसको कपडेमें बांधके खूब

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निचोड लेवे, फिर उसमें बेसन अथवा उडदका चून मिलावे और हलदी धनिया, हींग, निमक, और मिरच ये पदार्थ मिलाय उसको दो घडीपर्यंत खूब मथे फिर उसके वडे करके उनको धूपमें धरदेवे, जब सूखजावे तब उठायकर धर रक्खे जब वडे करने हो तब उनको घीमें सेक पानीमें भिगोदेवे और उनमें पानीके प्रमाण निमक डाले ये कुम्हडेके वडे रुचिकारक तथा वातनाशक है।

अथैतेषामन्यां कृतिमाह।

कूष्मांडंनिस्त्वचंसूक्ष्मंखंडितंनिर्जलीकृतम्। तत्समंमाषजं पिष्टंमिश्रयित्वावरांगने । मरिचंलवणंधान्यंहरिद्रांचतिलानपि। प्रमाणेनक्षिपेन्मथ्यकारयेद्वटकान्प्रिये । संशुष्कानातपेचाज्येभर्जितान्केविपाचयेत् । पूर्ववच्चगुणांश्चैवपूर्ववद्विद्धिसुंदरि। एवमन्यफलादीनांशाकार्हाणांघनस्तनि। मारलोलविशालाक्षिकारयेद्वटकान्प्रियान्।

अर्थ-अब वडीकी दूसरी विधि कहतेहैं। पेठेको छील उसके छोटे छोटे टुकडे कर उनका पानी निकाल डाले फिर उस पेठेकी बराबर उडदका चून या पिट्ठी मिलाय मिरच, निमक, धनिया, हलदी, और तिल ये इसके अनुमान माफिक लेकर उसमें मिलावे पीछे हाथोंसे खूब फैटकर इसकी वडी तोडदेवे, उनको धूपमें सुखाय धररक्खे, जब कामहो तब पूर्वोक्तविधिके अनुसार पानीमें सिजावे इसके गुण पूर्वगुणोंके समान जानने। इसीप्रकार अन्यशाककी और फलादिकोंकी वरी बनानी चाहिये इनको पेठेकी वरी कहतेहैं।

अथ पर्पटाः। तत्रमाषपर्पटकृतिमाह।

निस्तुषाणांचमाषाणांपिष्टंवस्त्रविगालितम्। लवणंमरिचंजीरं किंवारामठकंक्षिपेत्।क्षारांबुमर्दितंगाढंनिशायामुषितंततः। कुट्टयेदश्मनासम्यक्पाषाणेकोमलंयथा। ततस्तद्वर्तिकांकृत्वामृणालसदृशींशुभाम्।शुक्तिमानानिखंडानितस्याःकुर्याच्चतंतुना। वेल्लयेत्पर्पटांस्तेषांचंद्रमंडलसन्निभान्। सूक्ष्मान्स्नेहेऽथवांगारेभर्जयेत्तांश्चशोषितान्। पर्पटामाषजाबल्या दीपनारुचिकारकाः। कफकांतिप्रदाःकांतेपाचनावातनाश-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नाः । सारकागुरवःपुष्टिरक्तपित्तप्रवर्द्धनाः । चेदाज्येपाचिता स्तेचन्यूनाःस्युर्गुणतस्ततः ।

अर्थ–अब पापडोंकी विधि कहतेहैं। उज्ज्वल और छिलका रहित उडदोंकी दालके चूर्णको किसी वस्त्रमें छान उस चूनके प्रमाण माफिक निमक, काली मिरच, जीरा, और हींग, ये पदार्थ पीसकर मिलाय देवे, पीछे पापडखार अथवा और किसी क्षारके पानीमें उस चूनको उसन कर रात्रिभर धरा रहने देवे, प्रातःकाल ओंखली मूसलसे कूटे जब कूटते कूटते अतिनम्र होजावे तब इसकी कमलकंदके सदृश लंबी बत्ती करे उसबत्तीमें डोरीसे दो दो तोलेके गँडेरीके समान टुकडे करे, फिर चकला और वेलनमें कुछ तेल लगाकर उस टुकडेन्को बहुत पतला वेलकर गोल पत्रके समान करे और उनको धूपमें सुखाता जावे, फिर इनको घीमें तलके अथवा अंगारोंपर भूनकर भगवान्के भोग धरे । ये उडदके पापड बलकारक जठराग्निदीपन, रुचिकारी, कफकारक, तथा कांतिदायक, पाचन, वातनाशक, किंचित् रेचक, तथा भारी, एवं पुष्टता और रक्तपित्त इनको बढातेहैं घृतके भुने पापड अंगारोंपर भुने पापडोंकी अपेक्षा अल्पगुणवालेहैं ।

अथ मुद्गपर्पटानाह ।

निस्तुषाणांचमुद्गानांपिष्टंवस्त्रविगालितम् । मरिचंलवणंहिंगु जीरकंवात्रमिश्रयेत् । मर्दयेत्क्षारनीरेणपूर्ववत्कुट्टनंविना । वर्तिकादीनिकृत्यानिकुर्यात्संवेल्लयेत्ततः । घृताक्तेपट्टकेकांतेवेल्लनेनेंदुबिंबवत् । शोषयेदातपेसम्यग्मृद्भांडेसन्निधापयेत् । तेंऽगारभर्जिताःश्रेष्ठामध्यमाघृतभर्जिताः । मुद्गानांपर्पटाःस्निग्धागुरवश्चज्वरेहिताः । त्रिदोषशमनाःप्रोक्ताहिताःकर्णाक्षिरोगिणाम् ।

अर्थ–अब मूंगके पापडोंकी विधि और गुणदोष कहतेहैं, छिलका रहित मूंगकी दालको पीस कपडेमें छान उसमें निमक, काली मिरच, जीरा, और हींग पीसके मिलावे, और पापडखार अथवा कोई दूसरा खारके पानीमें उसन कर मले जब मलते मलते नम्र हो जावे तब उडदके पापडोंकी विधिके समान उसकी आकृतिकर चकलापर वेलनेसे वेलकर पत्तेके समान पतले पापड बनावे, और धूपमें सुखायलेवे, फिर इनको अंगारोंपर भूनके अथवा घीमें तलकर भोजन करे, अँगारोंपर भूनेहुए पापड घृतमें तलेहुए

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पापडोंकी अपेक्षा गुणोंमें अधिक श्रेष्ठहै । ये पापड स्निग्ध, भारी, ज्वर-रोगीको-पथ्य, तथा त्रिदोषनाशक, एवं कान और नेत्रसंबंधी रोगोंको अत्यंत हितकारी है ।

अथ तंडुलपर्पटाः ।

धौतानांतंडुलानांचपिष्टंनीरेविपाचयेत् । मरीचपटुबाह्लीकं मिश्रयेदनुमानतः । पर्पटास्तद्भवामिष्टाबल्यावृष्यारुचिप्रदाः । धातुसंवर्धनाहृद्यागुरवःपाचनाःसराः । त्रिदोषशमनाःख्यातामंजुकोकिलभाषिणि । अंगारभर्जिताःश्रेष्ठामध्यमाघृतभर्जिताः । अस्यैववटकाकाराःकृताश्चाज्येविभर्जिताः । गुणैर्गुणवतिज्ञेयाहृद्यावातकफापहाः ।

अर्थ-अब चामलके पापडोंकी विधि कहतेहैं।शुद्ध धुलेहुए चावलके चूनको पानीमें पक्करे और पकतेसमय काली मिरच, निमक और हींग इनका चूरा प्रमाण माफिक डाले, पीछे शीतल होनेपर उसके पापड करे, ये पापड मीठे, बलदायक, वृष्य, रुचिकारी, धातुकी वृद्धि करनेवाले, हृदयको बल देनेवाले, भारी पाचन, रेचक, तथा त्रिदोषनाशकहै । अँगारोंपर भुनेहुए पापड श्रेष्ठ और घृतमें तले मध्यम होतेहैं । यदि इसी सिजेहुए चामलके चूनकी वडी करके घृतमें तलकर खावे तो हृदयको बलदायक और वात तथा कफ इनकी नाशक जाननी ।

अथ भरित्रं (भरता)

वृंताकादिफलंवापिकंदंचांगारभर्जितम्।यत्नात्तन्निस्त्वचं कृत्वाहस्तेनैवविमर्दयेत् । आर्द्रकुस्तुंबरुंतत्रपटुरक्तांमरीचिकाम् । हरितामपिवाकांतेभर्जितंहिंगुमिश्रयेत्।तद्भरित्रस्य लोलाक्षिगुणास्तत्तत्फलैःसमाः ।

अर्थ-अब भरित्र (भरते-) की विधि कहते हैं । वैंगनसे आदि ले फल अथवा कोईसा कंद ले मंदाग्नीसे भून उसका छिलका निकाल डाले पीछे उसको हाथोंसे मीडके उसमें अदरख, कोथमीर, निमक, लाल मिरच, अथवा हरी मिरच, और भूनी हींग मिलावे इसको भरता कहते हैं । जिस फलका अथवा कंदका भरता होता है उसके गुण उसी फल कंदके प्रमाण होते हैं । कोई कहता है इस भरताको घीमें भून फिर मसाला मिलावे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पोलिकाः (प्रामठे)

अथिगोधूमपिष्टकंजलेनगाढंविमर्दयेत्कांते । किंचित्किंचिन्नीरंततश्चदत्वाविमर्दयेद्भूयः । यावन्मंजुतरंस्यान्मदनसमानंमदनकलाकुशले । तस्यपोलिकांकृत्वाचंद्रबिंबाच्चपत्रमिवसूक्ष्माम् । आज्याविलिप्तांबालेलोहतप्तकेविपाचयेच्छनकैः । पुनःपुनर्लीलाक्षिप्रवर्त्तयित्वोत्तारयेच्चपक्काम् । अर्पयेच्चहरयेतांमदनवर्द्धनींबल्यांपित्तघ्नीम् । कोष्ठशुद्धिकर्त्रीमपिवातनिहंत्रींभजेत्ततःसततम् ॥

अर्थ–अब प्रामठे बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं । गेहूंके चूनको पानीसे कुछ गाढा उसनकर थोडा जल छिडककर थोडी देर भीजने दे फिर उसमें थोडे थोडे जलकी छींटा देकर मुक्की मारके उसने जब नरम होजावे तब उसकी लोई तोड उसको चकलेपर पलोथन लगायकर वेलनसे गोल और पतली वेले फिर उसमें घी लगाकर गरम तवेपर डालदेवे जब सिकजावे तब दूसरी तरफ घृत लगाकर उलट देवे जब दोनों तरफसे सिक जावे तब उतारकर परमात्माको अर्पण करे । इसको प्रामठे उपरांमठे, कत्योंरा, मंजेडोरे, पलेटा, आदिभी मथुरा दिल्ली आगरेवाले कहते हैं । यह प्रामठे कामदेवको बढावे, बलदायक, पित्तघ्न कोष्ठशोधक, और वातनाशकहैं.

अथ द्विदलपोलिका (पुरतदार प्रामठे)

गोधूमपिष्टकंपूर्वमष्टमांशाज्यमिश्रितम् । मर्दयेत्पूर्ववच्चैनंकृत्वैतस्यैवपोलिकाम्।ततश्चाज्येनसंलिप्यकृत्वातांचचतुर्गुणाम्। पुनश्चंद्रसमाकारांवेल्लयकृत्वाप्रपाचयेत् । पुनःपुनःप्रवर्त्त्यैवलघुहस्ताविचक्षणा । पक्कामुत्तारयेदेनांपोलिकेवगुणैरियम्।

अर्थ–अब पुरतदार प्रामठे बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं । गेहूंके चूनमें अष्टमांश घी मिलाय उसको पूर्वोक्त विधिके अनुसार उसने और उसके प्रामठे करे, फिर उसमें घी लगाय चौपट घडी करे पीछे वेलकर तवेपर डालदेवे और वारंवार हलके हाथसे उलट पुलट कर सेके इसके गुणभी पूर्वोक्त प्रामठेके समान हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पूलिका तत्रतत्कारणभूतांसमितांप्रथममाह।

गोधूमान्धवलान्धौतान्कुट्टयेषच्छोषयेत्ततः।शूर्पेणप्रोक्षयेद्धा
लेयंत्रेणापिप्रपेषयेत्। तत्पिष्टंसूक्ष्मवस्त्रेणगालितंसमितामता।

अर्थ-अब पूरी बनानेकी क्रिया कहते हैं। परंतु प्रथम जिस्से पूडी बनती है ऐसी मैदाके बनानेकी विधि कहते हैं उत्तम सपेद गेहूंओंको धोय ओखली-में छरे, फिर धूपमें कुछ सुखाय सूपसे फटक डाले फिर उनको चक्कीसे म-हीन पीस बारीक वस्त्रमें छान लेय इसको समिता (मैदा) कहते हैं।

समितापोडशमांशंघृतंविधिज्ञोविमर्दयेत्सम्यक्। गाढंतत-श्चांबुनाविमर्दयेत्तांरचयेत्तल्लोम्नीं। शुक्तिमितांवास्वेष्टांततश्च क्रिकांकृत्वातल्लोम्न्याः।संवेल्लयतांचसूक्ष्मांविपाचयेद्वैकटाह-केसघृते। सापूलिकेतिकथितास्निग्धागुर्वीमरुत्पित्तहर्त्री। शुक्रवर्द्धिनीकांतेतथादुर्जराजरापहाचापि। सैषैवाघृतमिश्रे-णगोधूमपिष्टकेनच। कृतालघ्वीगुणैःख्यातापूर्ववत्पूल्लिकाप्रिये।

अर्थ--मैदामें सोलहवाँ हिस्सा घी मिलाय फिर पानी डाल धीरेधीरे खूब उसने जब नरम होजावे तब उस लूँडमेंसे दोदो तोलेकी लोई करे फिर उन-मेंसे एक एक ले वेलनसे वेल बहुत पतली पत्तेके समान गोल पूरी करे उस-को गरम घीके कढावमें छोडता जावे जब फूलकर सिकजावे तब उतारकर झालमें धरता जाय, ये मैदाकी पूरी स्निग्ध, भारी, वातघ्न, पित्तनाशक, धातु-वर्द्धक, और वृद्धको तरुणता देनेवाली ऐसी है।यदि इसी पूरीको विना घीका मोयन दिये करे तो हलकी तथा पूर्ववत् गुणकारी होती है।

अथ करपट्टिका [रोटी]

गोधूमचूर्णकंकांतेमर्दयेदंबुनाघनम्। किंचित्किंचिज्जलंदत्वा मर्दयेच्चपुनःपुनःयावन्मृदुतरंकुर्यात्ततोलोम्नींपलोन्मिताम्। पश्चात्तच्चक्रिकांकृत्वाहस्ताभ्यांतांविवर्द्धयेत्। संवेल्लयवर्द्धये-द्वापिचंद्रमंडलसन्निभाम्। तांक्षिपेल्लोहजेतप्तेक्षणेकेनप्रवर्तये-त्। पुनरंगारचक्रेचक्षिपेन्निर्धूमकेहिता। प्रफुल्लांवैयदादृष्ट्वा तदाशीघ्रंसमुद्धरेत्। सर्पिषालिप्यतांसम्यक्स्थापयेद्राज-नेशुभे। अर्पयेद्धरयेवल्यांरुच्यांपुष्टिप्रदांप्रिये। धातुसंवर्द्धि-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नींगुर्वीश्लेष्मलांवातनाशिनीम् । भक्षयेत्सनरश्चैनांयस्याग्निः प्रबलोभवेत् ।

अर्थ--अब गेहूंकी रोटी बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं । गेहूंके चूनको पानीसे गाढा उसन थोडा थोडा जल डालकर वारंवार मर्दन करे इसप्रकार करनेसे चून नरम होजाता है । फिर उस चूनकी चारचार तोलेकी अनुमान लोई बना हाथोंसे गोलकर चकला वेलनसे वेल तवेपर डालदेवे अथवा हाथोंसे रोटी करके तवेपर डाले, थोडी देरमें इसको उलट देवे, जब चित्ती पडजावे तब तवेपरसे उतार चूल्हेके अंगारोंपर रख देवे, जब फूलकर सिकजावे तब अंगारोंसे उतार झाडकर उनपर घी चुपडकर पात्रमें धर देवे इसको संस्कृतमें कर पट्टिका और भाषामें रोटी कहते हैं । कोई इसको फुलका, चपाती, ऐसे कहते हैं । ये रोटी बलकरता, रुचिकारक, पुष्टिदायक, धातुवर्द्धक, भारी, कफकारक, वातनाशक है । जिसकी जठराग्नि प्रबल हो उसको ये रोटी भोजन करनी चाहिये । परंतु यह नियम दक्षिणी बंगाली आदिको है मध्यदेश आदिके रहनेवालोंको नहीं है ।

अथांगारकर्कटीमाह ।

गोधूमचूर्णकेपूर्वंकिंचिदाज्यंविमिश्रयेत् । मर्दयेदंबुनासम्यक्पूर्ववच्चातियत्नतः । ततोनिंबुमितांलोष्ठींकृत्वांगुष्ठेनपीडयेत् । निर्धूमेगोमयांगारचक्रेसंपाचयेच्चताम् । प्रवर्त्त्यबहुधाप-श्चादंगारैश्छादयेद्दृढम् । क्षणादुद्धृत्यतद्वद्भौपूर्ववत्परिवर्त्तयेत् नीत्वाविकसितांपक्कांस्फोटयित्वाघृतेक्षिपेत् । सांगारकर्क-टीबल्यापौष्टिकीशुक्रवार्द्धनी । अग्निसंदीपनीलघ्वीकफातं-कप्रणाशिनी । कासश्वासप्रहरणीपीनसातंकनाशिनी ।

अर्थ–अब अंगारकर्कटी अर्थात् वाटी और अंगाकरकी विधि और गुणदोष कहते हैं । गेहूंके चूनमें घृतका मोमन देकर फिर जलसे करडा उसन फिर जल डालकर थोडी देर भीजने देवे, फिर जलके थोडेथोडे छींटा देकर हाथोंसे गूंदे, जब अत्यंत नम्र होजावे तब उसमेंसे बडे नींबूके सदृश लोई तोड कुछ चपटी कर उसके बीचमें अँगूठेसे दबाय गड्ढा कर फिर निर्धूम अंगारोंपर डालकर उलट पुलट करकै सेके, जब सिकजावे तब उनको इकट्ठी कर गरम राखमें दाब देवे, फिर उसमेंसे निकाल राखमें उलट पुलट

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करके सेंके जब सिकते २ फुंटके माफिक एक तरफसे फटजावे तब जाने कि सिकगई, इसको मुट्टीसे दाबे जब खिलजावे तब घृतमें डबोयकर धरदेवे इसको अंगारकर्कटी (वाटी) कहतेहैं यह बलकर, पौष्टिक, वीर्यवर्धक, अग्नि, दीपक, तथा हलकी है, एवं कफ, श्वास, और पीनस इनको दूर करे है। परंतु अंगाकर करडे चूनकी मठरीके समान चपटी और गोल बनती है।

अथ बलभद्रिकागर्गरीकृतिगुणानाह।

माषपिष्टकृताकांतेरोटिकाबलभद्रिका । माषाणांनिस्तुषाणांचेत्पिष्टजागर्गरीमता। रूक्षोष्णावातलाबल्याकीर्त्तिताबलभद्रिका। गर्गरीवातलाकिंचित्कफपित्तहरास्मृता।

अर्थ—अब बलभद्रिका और गर्गरी इनके बनानेकी विधि तथा गुणदोष कहते हैं। उडदके चूनकी रोटीको बलभद्रिका और उडदकी धुलीहुई दालके चूनकी रोटीको गर्गरी कहते हैं। इनमें बलभद्रिका रूक्ष, उष्ण, वातकारक, तथा बलदायक, एवं कफ, तथा पित्त इनको नाशक है।

अथ वेढमिकाकृतिगुणानाह।

तत्रपूर्वंपिष्टीमाह।

माषकान्विदलीकृत्यप्लावयेदंबुनिप्रिये । संक्षाल्यनिस्तुषीकृत्यपेषयेदश्मनाऽश्मनि । सापिष्टीतिसमाख्यातासूपशास्त्रविचक्षणैः।

अर्थ—अब बेढईके बनानेकी विधि कहते हैं। परंतु ये बेढई विना पिट्ठीके हो नहीं सकती इस कारण प्रथम पिट्ठीके बनानेकी विधि कहते हैं। उडदकी दाल पानीमें भिगो उसके छिलके दूर कर फिर उसको बारीक पीसे इसको सूपशास्त्रज्ञ पिष्टी अर्थात् पिट्ठी कहते हैं।

पिष्टचामेलादिकंकांतेवेसवारंविमिश्रयेत् । शृंगवेरंचलवणं रामठंजीरकंतथा । ततोगोधूमजंपिष्टमंबुनामर्दितंभृशम् । तन्मध्येपिष्टिकांन्यस्यतन्मुखंचविमुद्रयेत् । ततश्चंद्रसमाकारांकृत्वासंवेल्लयत्नतः। पाचयेल्लोहजेतप्तेत्वंगारेहिविधूमके। प्रफुल्लामुद्धरेदाशुमतावेढमिकाहिसा । बल्यावेढमिका वृष्यारुच्योष्णातृप्तिकारिणी। गुर्वीपुष्टिप्रदाधातुमेदःस्तन्य-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विवर्द्धिनी । परिणामभवंशूलंगुदकीलंमरुद्व्यथाम् । अर्दितं श्वसनंहंतिभेदिनीकफपित्तकृत् ।

अर्थ--उडदकी पिट्ठीमें एलादिक वेसवार (मसाला) और अदरख, निमक, हींग, और जीरा मिलाय फिर गेहूंके चूनको पानीसे उसन उसमेंसे लोई तोड मूसके समान बनावे, उसमें पीठी भर मुख बंद कर गोल करे, फिर चकला वेलनसे गोल चन्द्रमाके आकार वेले फिर इसको तवेपर गेरके सेकै जब दोनों ओरसे सिकजावे तब तवेसे उतार चूल्हेके अगाडी अंगारोंपर सेके जब फूलजावे तब निकास साफ कर घीसे चुपड देवे इसको वेढई कहते हैं । वेढई बलदायक- वृष्य, रुचिकारक, गरम, तृप्तिकारक, भारी, तथा पुष्टिदायक है । एवं धातु, मेद, और स्त्रियोंके दूध बढानेवाली उसीप्रकार परिणामशूल, बवासीर, वातरोग, अर्दित रोग, तथा श्वास, इनकी नाशक मलभेदक, और, कफ तथा पित्त इन्होंको करे है ।

भ्राष्ट्रजा (खापरपोली) ।

धौतानांतंदुलानांहिपिष्टंवस्त्रविगालितम् । ततोऽष्टमांशकंसर्पिर्मिश्रयेदंबुनाततः । मंथयित्वाचतद्धोलंमृन्मयेखर्परेशुभे । शुद्धभस्मप्रलिप्तेचमंदवह्निप्रतापिते । क्षिप्त्वाप्रसारयेच्छीघ्रमुत्सेधमंगुलोन्मितम् । पूर्णचंद्रसमाकारांपाचयेन्मंदवह्निना । छादितामन्यपात्रेणसुपक्कांतुसमुद्धरेत् । सच्छिद्रां तांक्षिपेदुष्णांततेक्षीरेसशर्करे । भाष्ट्रजैषास्मृताकांतेसूपशास्त्रविचक्षणैः । प्रोक्तैषादुर्जरागुर्वीवृष्योष्णाधातुवर्द्धिनी ।

अर्थ--अब भ्राष्ट्रजा (चावलकी रोटी) विधि तथा गुणदोष कहतेहैं । धुलेहुए चावलोंका चून वस्त्रसे महीन छान उसमें आठवाँ भाग घीका मोमन दे पानीसे सानलेवे, फिर उसको मथकर राख लगेहुए मट्टीके खिपडेंमें उस उसने हुए चूनका १ अंगुल मोटा लेप करे, पीछे उसके ऊपर दूसरा माटीका खीपरा ढकके अग्नि देवे, उसमें जगे जगे बहुत छिद्र पडनेसे जाने कि, अब पक्क होगई फिर उसको निकाल मिश्री मिले दूधमें भिगों देवे इसको भ्राष्ट्रजा कहतेहैं । यह खापरपोली दुर्जर, जड, वृष्य, उष्ण और धातुवर्द्धक है ।

अथ वेष्टनी ।

माषपिष्टेहिलवणंशृंगवेरंचरामठम् । मिश्रयेदनुमानेनमर्दयेदं-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बुनाघनम्। तस्यामोचाफलाकारांचर्पटामर्द्धचंद्रवत् । वेष्टनीं रचयेद्रम्यांरमणीयेसुलोचने । किंचिन्नीरयुतंभांडंतृणैरर्द्धप्रपूरयेत् । तत्तृणोपरिसंस्थाप्यपाचयेदतियत्नतः । वेष्टनीशुक्रलागुर्वीबल्यापित्तकफप्रदा । पाककालेचमधुरामार्गस्थानांहितावहा । वातरुग्नाशिनीचैषाघृतेपक्कायदाभवेत् । कचवल्लीतितत्रख्याातागुर्वीबल्याचपौष्टिकी । वृष्यातृप्तिप्रदातेजःश्लेष्मापित्तप्रवर्द्धिनी । वातघ्नैषातुमुद्गानांगोधूमानां भवत्यपि ।

अर्थ-अब वेष्टनीकी कृति और गुणदोष कहतेहैं । उडदके चूनमें निमक, अदरख, और हींग मिलाय पानी डालके उसने, फिर उसका स्वरूप केलाकी फलीके आकार बनावे, फिर मिट्टीके पात्रमें थोडा जलभर आधेमें तिनका भरे, उसके ऊपर उन फलेन्को धरे और सिजवावे जब सिक जावे तब निकास लेवे, इसको, वेष्टनी कहतेहैं । ये वेष्टनी वीर्यवर्द्धक, भारी, बलदायक, पित्तकरता, कफकारी, पाकके समय मधुर, रस्तागीरोको हितकारी, तथा वातनाशकहै यदि येही फली घीमें तललीनी जावे तो इनको कचवल्ली कहतेहैं यह कचवल्ली भारी, बलकारक, पौष्टिक, वृष्य, तथा तृप्तिकारक एवं तेज, कफ, और पित्त नइको बढावे तथा वातघ्न है ये गेहूं और मूंग इत्यादिकीभी करतेहैं ।

अथ पूर्णगर्भापूलिका (पूरनपोली) ।

प्रस्थैकंचाणकंसूपमाढकीसंभवंतुवा । पाचयेत्केप्रियेतावद्यावदंगुलिमार्दितम् । ज्ञात्वानीरंपृथक्कृत्यसंक्षिप्यपाककोविदः । गुडंप्रस्थंसपादंवाशर्करांसार्द्धप्रस्थिकाम् । क्षणादुत्तार्य वामोरुपेषयेदश्मनाश्मनि । यत्नतोललनेरम्येशुभेऽमत्रेनिधापयेत् । ततोगोधूमजंचूर्णमर्दयेदंबुनाभृशम् । तस्मान्निंबुमितंपिष्टंपृथङ्नीत्वाविचक्षणे । कृत्वाचमूषिकाकारंतन्मध्येतुप्रपूरयेत् । तत्पूर्णमुद्रयेत्तस्यमुखंकृत्वासुगोलकम् । चंद्रवत्पूलिकांतस्यकृत्वातप्तेविपाचयेत् । किंचिदाज्यसमालिप्तेभूयोभूयःप्रवर्त्तयेत् । पक्कांज्ञात्वासमुत्तार्यभूमिजापत-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

येऽर्पयेत् । पूर्णगर्भापूलिकेयंलघ्वीस्वाद्वीचशीतला । दीपनीराजयक्ष्मघ्नीप्रमेहघ्नीचकीर्तिता । सैषैवसर्पिषापक्वावेशेषेणगुणोत्तमा ।

अर्थ–अब पूरणपोलीकी विधि कहते हैं । एक प्रस्थ चनेकी अथवा अरहरकी दाल जबतक सीजे नहीं तबतक जलमें पचावे जब दाल उँगलीके दाबनेसे पिसने लगे तब चूल्हेसे उतार इसके पानीको निकाल डाले और इसमें गुड एक अथवा सवाप्रस्थ और खांड डेढप्रस्थ डालकर फिर थोडी सिजावे, तदनंतर उतारकर बारीक पीसे इसको पूरण कहते हैं, जब पूरण तयार होजावे तब गेहूंका बारीक चून पानीसे उसनकर तयार करे फिर उसकी लोई तोड उसके भीतर पूरणको भर मुख बंदकर गोल करे, फिर उसको चंद्रमाके समान गोल वेलकर पूरनपोली करे,इसको तवेपर सेककर उतार ले, इसको घीसे चुपडे यह पूरनपोली हलकी, स्वादु, शीतल, तथा दीपन एवं राजयक्ष्मा और प्रमेह, इनको नाश करे । यदि यह पूरनपोली घीमें तलीजावे तो विशेष गुणयुक्त होवे ।

चाणकीरोटिकारूक्षाकफासृक्पित्तनाशिनी ।
स्मृताविष्टंभिनीगुर्वीहितावैनेत्ररोगिणाम् ।

अर्थ–चनेकी रोटी रूक्ष, कफपित्तनाशक, विष्टंभकारक, भारी, और नेत्ररोगीन्को हितकारी है ।

अथ रागः ।

अम्लिकांतुल्यनीरेणमर्दयेद्ग्राहयेद्रसम् । तत्समंमातुलुंगस्य क्षोदंसिंधूद्भवंसिताम्।क्षोदंपरूषकस्यापिजृंभनीरंचराजिकाम्। अनुमानेनचैकध्यंकृत्वारागोयमीरितः । कांतेरुचिप्रदोहृद्यः शुक्रलश्चमुखप्रियः । पौष्टिकस्तिक्तकःस्वादुःक्षारश्चाम्लःप्रकीर्त्तितः । मुखजिह्वाशुद्धिकरोरक्तपित्तप्रकोपनः । नेत्रयोरहितोवृष्यःकफकुष्ठप्रकोपनः । जडोऽतऊर्द्वगःकुर्यात्कफमाध्मानकारकः । तृषांमूर्छांभ्रमच्छर्दिंमेददोषंचनाशयेत् ।

अर्थ–पकी इमलीमें समानभाग पानी मिलाय उसका रस काढे, फिर उसमें समभाग विजोरेका जीरा डाले और सैंधानिमक, चूरा, कूटेहुए फलसे, जंभीरीका रस, तथा राई ये पदार्थ अनुमानमाफिक लेकर, पीसकर

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मिलावे, इसको राग ऐसा कहते हैं। यह राग रुचिकारी, हृद्य, वीर्यवर्द्धक, मुखप्रिय, पौष्टिक, कडुआ, स्वादु, खट्टा, खारी, मुख, जिह्वा इनको शुद्धि करता, रक्तपित्तवर्द्धक, नेत्रोंको अहितकर, अवृष्य, कफ और कुष्ठ इनको कुपित करनेवाला और भारी है। इसीसे कफको ऊर्द्धगामी करे है उसीप्रकार अफराकारक होनेसे प्यास, मूर्च्छा भ्रम, ओकारी, और भेदरोग, इनको नाश करे है।

अथ खांडवः ।

बीजपूराम्रदार्डिबचिंचादधिफलादिकाः । एषामन्यतरस्यापिचिकीर्षाखांडवंप्रति । तद्गृहीत्वाविनिःक्षिप्यतत्रसैंधवशर्करे । गुडंवाहिंगुसहितंदृषदाचविपेषयेत् । कथितोसुनिभिर्वैद्यैः खांडवोरागवद्गुणैः ।

अर्थ-विजोरा, अमचूर, अनारदाना, इमली, कैथ इनमेंसे जिसका खांडव करना हो उसको ले उसमें काली मिरच, सैंधानिमक, हींग, तथा गुड, अथवा खांड डालके शिलाके ऊपर पीसकर उसकी चटनी करे इसको खांडव अर्थात् चटनी कहते हैं इसके गुण रागके समान जानने।

अथ रागखांडवः (मुरब्बा)

आम्रमामंसमीचीनंत्वगष्टीरहितंप्रिये । द्विधात्रिधाचतुर्द्धावाफलमानेनखंडयेत् । एवंप्रस्थंरसालानांखंडानांमधुरप्रिये। सर्पिषाभर्ज्यतानीषन्मृत्पात्रेचानिधापयेत् । प्रस्थत्रयसितापाकेत्रितारेतानिसंक्षिपेत् । अंगुलीद्वितयेपश्चात्पाकंनीत्वानिरीक्षयेत् । भूयोभूयःप्रयत्नेनचैकतंतुर्यदाद्वयोः । अंगुल्योरंतरेपश्येज्जानीयाच्चैकतारकम्।यदितंतुर्नदृश्येतार्किंचिदन्यांसितांक्षिपेत् । दृष्ट्वातंतुंसमुत्तार्यमरीचैलादिभावितम्। कृत्वासुशीतलंपश्चात्काचपात्रेनिधापयेत् । अथवामार्तिकेपात्रे लाक्षालिप्तांतरेप्रिये । अयंहिपौष्टिकःस्निग्धोगुरुःस्वादुर्बलप्रदः । तृप्तिदश्चवरारोहेवातपित्तारुचिप्रणुत् । हंतिरक्तविकारंचादुरक्तेरागखांडवः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–उत्तम छिले और भीतरकी गुठली निकली पकी अँबियाके दो तीन किंवा चार टुकडे करे, इसप्रकार ६४ तोले टुकडेन्को घीमें कुछ भून मिट्टीके कुंडमें धरे, तदनंतर १९२ तोले खांडकी तितारी चासनी करे उसमें उन अँबियाके टुकडेन्को डालके कुछ देरतक चूल्हेपरही रहने देवे, फिर चुटकीसे देखे यदि एक तार न निकलता होवे तो उसमें कुछ थोडीसी खांड मिलायके देखे जब एक तार निकलने लगे तब इसमें काली मिरच, और छोटी इलायची, इनका चूर्ण करके गेरे, फिर उतार लेवे जब शीतल होजावे तब कांचके पात्रमें अथवा ईमरतवानमें या चीनीके पात्रमें भरके धर रक्खे यह रागखांडव अर्थात् मुरब्बा पुष्टि करे, स्निग्ध, भारी, स्वादु, बलकारी तथा तृप्तिदायक, ऐसा है। उसीप्रकार वात, पित्त, अरुचि और रुधिरविकार इनको नाश करे।

अथान्यफलरागखांडवविधिः।

फलान्यामलकादीनांभित्त्वाकंटकतोभृशम्।त्रुटिनीरेसुमग्नानित्रिरात्रंस्थापयेत्ततः। सुधौतान्यन्यनीरेणतानीषत्स्वेदयेत्प्रिये। आम्रवच्चक्रियाशेषातत्तुल्याश्चगुणामताः।

अर्थ–यदि आमले आदि छोटे फलोंका मुरब्बा बनाना होवे तो उन फलोंको कांटेसे खूब गोदकर तीन दिनतक फिटकरीके पानीमें डुबोयकर धरदेवे, फिर दूसरे पानीसे धोय किंचित् सिजावे फिर आमके मुरब्बेके सदृश तयार कर लेवे इनके गुण आम्रके अथवा अपने फलके समान होते हैं। इसीप्रकार सर्व प्रकारके मुरब्बा बनाय लेवे।

अथान्यप्रकारः।

आमंयष्टित्वचाहीनंकृत्वाम्रंपेषयेद्भृशम्। तत्समंचगुडंकिंचित्तैलंविश्वंचमिश्रयेत्। स्थापयेन्मार्तिकेपात्रेरसज्ञेरागखांडवः। किंचिन्न्यूनगुणःपूर्वात्कीर्तितोभिषगुत्तमैः।

अर्थ–कच्ची अमियाको छील बीज निकाल बारीक पीसे और उसमें उसके समभाग गुड तथा किंचित् तेल और सोंठ मिलावे, इनको रागखांडव कहते हैं। यह गुणोंमें पहलेके समान कुछहीन है।

अथाम्रलेहः।

भर्जयेत्तरुणंस्वाम्रंतद्रसेचविमिश्रयेत्। शर्करांसुगुडंवापित-त्समंमधुराधरे। ततोविंशांशकंचूर्णंपटुवल्लिजहिंगुजम्।आ-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अलेहोऽयमब्जाक्षिहृद्यस्तृप्तिप्रदोगुरुःस्निग्धोरुचिप्रदः कांते मधुरोमधुरस्वरे। मीनलोलविशालाक्षिप्रियेबिल्वफलस्तनि ॥

अर्थ- उत्तम आमको भूनकर उसका रस निकाल उसमें उसके समान सपेद बूरा अथवा गुड मिलावे उसीप्रकार रसका बीसवाँ भाग नोन, काली मिरच, तथा भुनी हींग इनका चूर्ण मिलावे, इसको आम्रलेह कहते हैं। यह लह हृद्य, तृप्तिकारक, भारी, स्निग्ध, रुचिकारी, तथा मधुर है।

अथ फलवृष्याशिखारिणी।

प्रियेपक्कांचिंचामायिसुदातिमर्दैत्समजले सिताद्वाभ्यांतुल्या त्रुटिमरिचचूर्णैतदुचितम्। विमिश्रयैतद्भांडेसकलमपिमार्त्तें सुललिते जनैर्विख्यातेयंजगतिफलवृष्याशिखरिणी। इयंवृष्याकांतेसुभगजघनेकंकणकरे सराद्यागुर्वीसुगुरुकुचयुग्मेसुरुचिदा। अतःश्रीरामायार्पयझटितिमांदेहिचततोवरारोहेभुंक्ष्वत्वमपिरसिकेकंजवदने।

अर्थ-उत्तम पकी इमलीको समभाग पानीमें मर्दन करके रस निकाले फिर उस रसमें उस रसके समान सपेद बूरा तथा इलायची, काली मिरच, आदि मसाला उसके अनुमान माफिक डाले, और अच्छी रीतिसे मिलाय मट्टीके बर्तनमें भरके धरदेवे, इसको फलवृष्य शिखिरणी कहतेहैं। यह वृष्य, सारक, हृद्य, भारी तथा रुचिकारक ऐसी है।

अथ पानकान्याह (पने)

द्राक्षाम्लिकापरूषादिफलान्यंबुरुहेक्षणे। नीरेसप्तगुणेक्लिन्नान्यब्जहस्तेविमर्दयेत्। वस्त्रपूतेक्षिपेत्तस्मिञ्छर्करांद्रव्यतःसमाम्।विंशांशंपत्रमरिचत्वगार्द्रैलागजोद्भवम्। सकर्पूरंक्षिपेच्चूर्णपानकंतत्प्रकीर्तितम्।पानकंमूत्रलंहृद्यंतृप्तिकृत्तृण्मदापहम्। वातवांतिश्रमग्लानिघ्नंमूर्च्छापित्तदाहनुत्। तद्विधाम्लंचमधुरंगुणैस्तुल्यौप्रकीर्तितौ। द्राक्षायाःपानकंदाहश्रमग्लानितृषापहम्। रक्तपित्तंचमूर्च्छांचनिहन्यादब्धिजानने। विष्टंभकारकंहृद्यंबादरंचपरूषजम्। अम्लिकाफलसंभूतंपानकंच

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रमापहम्।दाहच्छर्दितृषावातकृमिभ्रांतिनिवारणम् । कंठता-
लूद्भवंशोपंनाशयेदितिकीर्तितम् ।

अर्थ–दाख, इमली, फालसे इत्यादि फलोंको सातगुने पानीमें कुचल उस पानीको वस्त्रमें छानले, तथा फलके समान मिश्री मिलावे, तथा फलोंका बीसवाँ भाग पत्रज, काली मिरच, दालचीनी, अदरख, इलायची, नागकेसर, तथा कपूर इनका चूर्ण, उस रसमें डाले, सबको मिलाय ले इसको पानक कहतेहैं। यह पानक मूत्रल, हृद्य, तथा तृप्तिकारक होनेसे तृषा, मद, वात, वांती, श्रम, ग्लानि, मूर्च्छा, पित्त, और दाह इनका नाश करे । इसमें खट्टा और मिष्ट ऐसे दोप्रकारका रस है । परंतु उनके गुण समानही है। अब प्रत्येकके विशेष गुण कहतेहैं । दाखका पनादाह, श्रम, ग्लानि, तृषा, रक्तपित्त, तथा मूर्च्छा इनको नाश करे बेरके और फालसेका पन्हा विष्टंभकारक तथा हृद्य है । एवं इमलीका पना श्रम, दाह, हल्लास, तृषा, वायु, कृमि, भ्रांति, कंठशोष और तालुशोष इनको नाश करेहै ।

अथ पंचसाराभिधं पानकम् ।

द्राक्षापरूषखर्जूरदार्डिंबबदरोद्भवम् । गुडेक्षुरसकर्पूरचातुर्जा-
तोषणैर्युतम् । पंचसाराभिधंपानंतृप्तिकृद्गुरुमूत्रलम्। विष्टंभ-
कारकंहृद्यंश्रमग्लानितृषापहम् ।

अर्थ–दाख, फालसे, खजूर, अनार, बेर, तथा गुड इनका ईखके रसमें पन्हे करके उसमें कपूर, दालचीनी, तमालपत्र, इलायची, और नागकेसर, इनका चूर्ण डाले इसको पंचसारक पन्हा कहते हैं । यह तृप्तिकर, भारी, मूत्रल, विष्टंभकारक, तथा हृद्य ऐसा है। उसीप्रकार श्रम, ग्लानि, तृषा इनका नाशकरे।

अथ वर्द्धमानसट्टकः ।

घनंदधिप्रियेप्रस्थंप्रस्थार्द्धंशुभ्रशर्करा । व्योषाजाजीभवंचूर्णं
कर्षैकंमदिरेक्षणे । पक्वदार्डिंबबीजानिचतुराम्राणिमिश्रयेत् ।
हस्तेनालोडयेत्सिद्धःसट्टकोऽयमुदाहृतः । वर्द्धमानाभिधो-
बल्योदीपनोरुचिकारकः ।गुरुस्तृप्तिकरःस्वर्यःश्रमग्लानितृ-
षापहः । वातापित्तहरःपीनोरोजकेमधुराधरे ।

अर्थ–गाढा दही १ सेर, सपेद बूरा आद सेर, तथा सोंठ, मिरच, पीपल, जीरा इनका चूर्ण १ तोला, और पके अनारके दाने पावभर, इन सबको

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एकत्र करके मिलावे और हाथसे मथकर तयार करे इसको वर्द्धमानसट्टक कहतेहैं । यह बलकारी, अग्निदीपन करता, रुचिकर, स्वरशोधक, भारी, तथा तृप्तिकर, एवं श्रम, ग्लानि, तृषा वात, और पित्त इनका नाशक है ।

अथ सोमसट्टकः ।

घनंदध्याढकंकांतेसिताद्धाढकसंमिता । त्रिकट्वग्निभवंचूर्णं पलैकंचविमिश्रयेत् । गालयेत्सूक्ष्मवस्त्रेणततोभांडेनिधापयेत् । पक्वदाडिंबबीजानिप्रस्थैकानिघनस्तानि । मिश्रायित्वाजनैःख्यातःसोमास्येसोमसट्टकः । वर्द्धमानकवच्चायं गुणैर्गुणवतिप्रिये ।

अर्थ-गाढा दही २५६ तोले, सपेद बूरा १२८ तोले,और सोंठ मिरच, पीपल, तथा चित्रक, इनका चूर्ण ४ तोले, ये सब एकत्र मिलाय बारीक कपडेमें छाने फिर इसमें पके अनारके दाने ६४ तोले मिलाय किसी उत्तम पात्रमें भरकर धरदेवे इसको सोमसट्टक कहतेहैं । यह गुणोंमें वर्द्धमान सट्टकके समानहै ।

अथ प्रमोदसट्टकः ।

सुघनांहिदधिप्रस्थंप्रस्थार्द्धंशर्करांप्रिये । चंद्रव्योषलवंगानां चूर्णकर्षप्रमाणकम् । मिश्रयेद्गालयेच्चापिसूक्ष्मवस्त्रेणयत्नतः । पक्वदाडिंबबीजानिचतुर्बिल्वानिमिश्रयेत्।स्थापयेन्मृन्मयेभांडेप्रमोदायनृणामयम्।प्रमोदसट्टकःख्यातोवर्द्धमानसमोगुणैः।

अर्थ-गाढा दही ६४ तोले, खांड ३२ तोले, और कपूर, सोंठ, मिरच, पीपल तथा लवंग इनका चूरा १ तोला ये सब एकत्र मिश्रितकर बारीक वस्त्रमें छान लेवे और उसमें पकेहुंए अनारके दाने १६ तोले मिलाय मिट्टीके बरतनमें भरकर धरदेवे इसको प्रमोदसट्टक कहतेहैं ।

अथ कांजिका ।

यवाद्यंनिस्तुषंधान्यंप्रावयेदंबुनिःत्र्यहम् । तन्नीरंतुपृथङ्नीत्वालवणंतत्रनिःक्षिपेत् । राजिकाजीरमरिचहिंगुचूर्णंप्रमाणतः । तदेवात्यम्लतांप्राप्तंकांजिकंपरिकीर्तितम् । एवंकुर्याद्वरारोहेयुक्त्यामंडतुषोदयोः । कांजिकंपाचनंरुच्यंभेद्युष्णंच

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लघुस्मृतम् । वातश्लेष्महरंपीतंदेहेदिग्धंचदाहनुत् । ज्वरघ्नं चभवेन्नूनमंगलघ्नंनसंशयः ।

अर्थ–छिलका रहित जौ इत्यादि धान्योंको ३ दिन पानीमें भिगो देवे, फिर उनमेंसे पानीनिकाल ले उस पानीमें निमक, राई, जीरा, मिरच, और हींग, इनका चूर्ण अनुमानमाफिक मिलावे, और इसको मट्टीके बरतनमें भरकर धर रक्खे, तो यह अत्यंत खट्टा होजावे इसको कांजी कहतेहैं । इसीप्रकार मंड और तुषोदककीभी कांजी बनातेहैं । यह कांजी पीनेसे पाचन रोचन, भेदक, उष्ण, हलकी, वातहर, कफनाशक है । और इसका देहमें लेप करनेसे दाह, तथा ज्वर इनका नाश होय ।

अथ दुग्धगुणानाह ।

गव्यंमाहिषमाजंचकारभस्त्रैणमाविकम् ।
औष्ट्रमेकशफंचेतिदुग्धमष्टविधंस्मृतम् ॥

अर्थ–दूध गौका, भैंसका, बकरीका, हाथिनीका, स्त्रीका, भेंडाका, ऊंटनीका, और घोडी इत्यादि एक नखवाले जनावरोंका ऐसे आठ प्रकारकाहै ।

दुग्धंतुमधुरंस्निग्धंसद्यःशुक्रकरंमतम् ।पौष्टिकंचसरंशीतंसर्वेषांचहितावहम् । बलप्रदंजीवनंचधातुवृद्धिकरंमतम् ।वयसःस्थापनंचैववाजीकरणमुत्तमम् । रसायनंकांतिकरंक्षुधितेबालवृद्धयोः । अतिव्यवायेक्षीणेचक्षतक्षीणेहितावहम् ।

अर्थ–साधारणसर्वप्रकारका दूध-मधुर, स्निग्ध तत्काल वीर्यकारक, पौष्टिक, सारक, शीतल सबको हितकारी, बलप्रद, जीवन, सप्तधातुवर्द्धक, वयःस्थापक, वाजीकरण, रसायन, तथा कांतिकारक है । उसी प्रकार क्षुधित, बाल, वृद्ध, अतिमैथुन करनेसे जो क्षीण होगया हो और क्षतक्षीण इनको हितकारी है ।

गोदुग्धके गुण ।

गोदुग्धंमधुरंशीतंगुरुत्वद्ध्यंरसायनम् । वयसःस्थापनंस्वादुस्निग्धंपथ्यतमंमतम्।रुच्यंबल्यंशुक्रलंचमेध्यंपुष्टिप्रदायकम्। कांतिकृत्तुष्टिजनकंवातेपित्तेविषेभ्रमे । रक्तपित्तेवातरक्तेदाहे चैवातिसारके । उदावर्त्तेमदेकासेश्वासेजीर्णज्वरेतृषि । उदरेमूत्रकृच्छ्रेचगुल्मेशूलेऽम्लपित्तके । आधावर्शस्यपस्मारेक्षये

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पांडावतिश्रमे । योनिरोगेगर्भपातेनेत्ररोगेहितावहम् । पथ्यं प्रवाहिकायांचप्रवदंतिभिषग्वराः ।

अर्थ-गौका दूध-मधुर, शीतल, भारी, हृद्य, रसायन, वयःस्थापक, स्वादु, स्निग्ध, अति पथ्यकर, एवं वात, पित्त, विष, भ्रम, रक्तपित्त, वातरक्त, दाह, अतिसार, उदावर्त, मद, खांसी, श्वास, जीर्णज्वर, तृषा, उदर, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म, शूल, अम्लपित्त, मनोविकार, बवासीर, अपस्मार, क्षय, पांडुरोग, अतिश्रम, योनिरोग, गर्भपात, नेत्ररोग, और प्रवाहिका, इन रोगोंपर पथ्य है ।

गौकी जातिपरत्व दूधके गुण ।

कृष्णायागोर्वरंक्षीरंवातपित्तकफप्रणुत् । पीतायावातपित्तघ्नंरक्तायावातरक्तपरम् । वातघ्नंचित्रवर्णायाःश्वेतायाःकृफकृद्गुरु । बालवत्साविवत्सानांगवांक्षीरंत्रिदोषकृत् । वष्कयण्यास्त्रिदोषघ्नंतर्पणंबलदंपयः । पिण्याकाम्लान्नभोक्तृणां क्षीरंगुरुकफप्रदम् ।निद्रारेतोबलस्थौल्यवह्निमांद्यकरंहिमम् । गवांपलालभोक्तृणांदुग्धंयवसभोक्तृणाम् ।कथितंमुनिभिर्वैद्यैः सर्वरोगेहितावहम् ।तरुणीनांगवांदुग्धंमधुरंचरसायनम् । त्रिदोषनाशकंचैववृद्धायादुर्बलंस्मृतम् ।सगर्भायाःसमुद्दिष्टंत्रिमासोर्ध्वंचपित्तलम् ।क्षारंचमधुरंचैवस्मृतंवैशोषकारकम् । धारोष्णंतुगवांदुग्धंवृष्यंधातुविवर्द्धनम् । निद्राकांतिकरंस्निग्धं पथ्यंस्वाद्वग्निदीपनम् ॥अमृतेनसमंप्रोक्तंसर्वातंकविनाशनम् । सपादप्रहरादूर्ध्वंत्रिदोषजनकंभवेत् ।

अर्थ-काली गौका दूध श्रेष्ठ तथा वात, पित्त, कफ, इनका नाशक है । पीली गौका दूध-वातपित्तनाशक, लाल गौका दूध वातनाशक, चित्रवर्ण गौका दूध वातनाशक, सपेद गौका दूध कफकारक, और भारी, बालवत्सा कहिये दो महिनेके भीतर व्याई हुई तथा विवत्सा कहिये जिसका बछडा मरगयाहो ऐसी गौका दूध त्रिदोषकारक है। जिसको व्याये हुये १ वर्ष होगयाहो ऐसी गौका दूध त्रिदोषनाशक,तृप्तिकर,बलकर है खल, और खट्टा अन्न खानेवाली गौका दूध भारी एवं कफ, निद्रा, वीर्य, बल, स्थूलता, तथा अग्नि मान्द्य इनको करे है, और शीतल है कडवी, फटेरे, घास इत्यादि खानेवाली

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गौका दूध सर्व रोगोंमें हितकारी है । तरुण गौका दूध मधुर, रसायन, तथा त्रिदोषनाशक है । वृद्ध गौका दूध दुर्बल है, और गाभिन गौका तीन महिने उपरांतका दूध पित्तकर, खारी, मधुर, और शोषकारक है । धारोष्ण दूध वृष्य, धातुवर्द्धक, निद्राकारक, कांतिकर, स्निग्ध, पथ्यकर, स्वादु, अग्निदीपन, और अमृतके तुल्य सर्व रोग नाशक है दूधको काढके धरदेनेसे वह सवापहरके उपरांत त्रिदोषकारक होता है ।

भैंसके दूधके गुण ।

महिष्यामधुरंदुग्धंपाकेशीतंचपौष्टिकम् । स्निग्धंनिद्राकरंबल्यं गुरुवृष्यंचशुक्रलम् । पित्तदाहश्रमघ्नंचकफालस्यरुचिप्रदम् । अभिष्यंदिचसंप्रोक्तमाग्निमांद्यकरंमतम् ।

अर्थ–भैंसका दूध-मधुर, पाककालमें शीतल, पौष्टिक, स्निग्ध, निद्राकारक, बलकर, वृष्य, गुरु, व वीर्यप्रद, एवं पित्त दाह तथा श्रम, इनका नाशक है । उसीप्रकार कफ, आलस्य, रुचि, इनको करता अभिष्यन्दी और अग्निमांद्यकारक है ।

बकरीके दूधके गुण ।

आजंगव्यगुणंग्राहिविशेषाद्दीपनंलघु । क्षयार्शोऽतिसृतींहन्यात्रिदोषास्रश्रमज्वरान् । अजानामल्पकायत्वात्कटुतिक्तनिषेवणात् । अल्पांबुपानाद्व्यायामात्सर्वदोषहरंपयः ।

अर्थ–बकरीका दूध गुणोंमें गौके दूधके समान है, परंतु विशेष करके अग्निदीपनकारक होकर क्षय, बवासीर, अतिसार, त्रिदोष, रक्तविकार, भ्रम, तथा ज्वर इनका नाश करे । बकरीका छोटा शरीर होनेसे वह कटु और तीखी ऐसी वनस्पति भक्षण करती है और पानी थोडा पीती है, और व्यायाम अर्थात् परिश्रम अधिक करतीहै इसी कारण उसका दूध सर्व दोषनाशक है ।

अथ विशेषः ।

धाराशीतंमहिष्यास्तुधारोष्णंचगवांपयः । शृतशीतमजादुग्धंकेपिश्रेष्ठंवदंतिहि । अन्यच्च । शृतोष्णंकफहृत्प्रोक्तंशृतशीतंतुपित्तहृत् । अतस्तंदोषलंप्रोक्तंभोजनेत्वौषधंविना । अन्यच्च । गवांदुग्धंहिपूर्वाह्णेमहिष्यास्त्वपराह्णके । तत्तुशर्करायायुक्तंहितमाजंतुसर्वदा ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-भैंसका धाराशीत अर्थात् काढकर शीतलकरा, गौका धारोष्ण और बकरीका औटायकर शीतल ऐसा दूध श्रेष्ठहै । गरम करके जो दूध पीया जाय वो कफको नाश करेहै । और गरम कर फिर शीतल कराहुआ दूध पित्तका नाशक है । और विना औटाया दूध औषधके विना अन्य भोजनमें दोषकारक है, पूर्वाह्नमें गौका दूध, व अपराह्नमें भैंसका दूध, और बकरीका दूध, सर्वदा हित है, परंतु कोईसा दूध हो उसमें खांड मिलाकर पीना चाहिये, और यदि मिश्रीगेरके पीवेतो बहुतही उत्तमहै क्योंकि आगे कहेंगे ।

आविकादिकदुग्धानामुपयोगोनप्रायशः ।
भोजनेदृश्यतेऽस्माकंततोनोक्ताहितद्गुणाः ।

अर्थ-मेंढी (भेड) इत्यादिकोंके दूधका उपयोग अपने आर्यलोग भोजनमें नहीं करते इसीकारण उनके गुणदोषभी यहां नहीं कहे ।

शृतोष्णंकफवातघ्नंपित्तघ्नंशृतशीतलम् । अर्द्धोदकंक्षीरशिष्टंशृतंलघुतरंहितत् । आमंसपादप्रहरंशृतंसार्द्धद्वियामकम् । दुग्धंपथ्यमधश्चोर्ध्वमम्लत्वाद्धिविर्निंदितम् ।

अर्थ-ओंटाया हुआ दूध पीना कफ, तथा वायु इनको नाश करेहै, और ओंटाकर शीतल कराहुआ दूध पित्तका नाश करेहै, दूधमें अर्धभाग जलमिलाय ओंटावे जब दूधमात्र शेष रहे तब उतार कर शीतल करे यह हलका तथा अति हितावह है । विना ओंटा दूध सवाप्रहर और ओंटा दूध ढाईप्रहरपर्यंत पथ्यहै, उपरांत खट्टा होजाताहै ।

अथ कालविशेषणगुणाः ।

बल्यंबृंहणमग्निवृद्धिजनकंपूर्वाह्णकालेपयोमध्याह्नेबलदायकं रतिकरंकृच्छ्राश्मरीनाशनम् । बालेष्वग्निकरंक्षयेबलकरंवृद्धेचरेतःप्रदंरात्रौक्षीरमनेकदोषशमनंसेव्यंततोमानवैः ।

अथ कालविशेषकरके गुण कहतेहैं ।

प्रातः कालमें पीयाहुआ दूध बलकर बृंहण तथा अग्निवर्द्धक है, मध्याह्नकालमें सेवन करा हुआ बलदायक तथा प्रीतिकर एवं मूत्रकृच्छ्र और पथरी इनको नाश करे, रात्रिमें सेवन कराहुआ दूध बालकोंकी जठराग्निको बढावे, क्षयरोगीके बलको बढावे, बुड्ढे मनुष्यके वीर्यको बढावे, और सर्व दोषोंका नाशक है इसीसे मनुष्योंको सर्वकाल दूध सेवन करना चाहिये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ दुग्धाहारवर्ज्यरोगाः ।

नवज्वरेचाग्निमांद्येकुष्ठेचैवामदोषके ।
प्रशस्तंनपयःपानंकृमिरोगेविशेषतः ॥

अर्थ–नवीन ज्वर, अग्निमांद्य, कुष्ठ, आमदोष, और कृमिरोगी इनको दूध अपथ्यकारक है ।

अथ द्रव्यसंयोगेन गुणदोषाः ।

शर्करासहितंक्षीरंरुचिकृद्वातनाशनम्।तथासितोपलायुक्तंशुक्रदंदोषनाशकम् । सगुडंमूत्रकृच्छ्रघ्नंपित्तश्लेष्मकरंमतम् ।

अर्थ–अब पदार्थोंके संयोगसे दूधके गुणदोष कहतेहैं । खांडमिला दूध रुचिकर तथा वातनाशक है । मिश्री मिला दूध वीर्यवर्द्धक और त्रिदोषनाशक है । गुडमिला दूध मूत्रकृच्छ्रनाशक और पित्त तथा कफको नष्ट करे ।

दक्कमाम्रंसुमधुरंगोस्तनीमाक्षिकंघृतम् । नवनीतंशृंगवेरंश्यामाचश्यामभूषणम्।सिताशिवाचपृथुकापटोलंनागराशिवाः । क्षीरेणसहसंसेव्याहिताःस्युःसेविताइमे ।

अर्थ–पक्व मीठा आम, दाख, सहत, घी, मक्खन, अदरख, पीपल, कालीमिरच, खांड, हरड, चिरवा, परवल, सोंठ और आंवले, ये पदार्थ दूधके साथ भक्षण करनेसे हितकारी होतेहैं ।

मत्स्यमांसपटुमुद्गमूलकैःकुष्ठमावहतिसेवितंपयः। शाकजांबवसुरादिकैस्तथामारयत्यबुधमाशुसर्पवत् । नैकध्यंपयसाऽश्नीयात्सर्वमुष्णंद्रवाद्रवम् । तैलंकपित्थंजंबीरंपनसंमातुलुंगकम्।वांशंकरीरंबदरंकदल्यम्लंचदाडिमम् । फलमीदृग्विधंचान्यंतद्वद्विल्वफलानिच । जनःक्षीरविरुद्धानिभुंजीयाच्चेद्धितत्सह । बाधिर्य्यंमूकतांचैववैरूप्यंचाग्निमंदताम् । मरणं चाप्यवाप्नोतिकरकंकरकादिव ।

अर्थ–मछली,मांस,निमक, मूंग और, मूली इन पदार्थोंके साथ सेवन करा हुआ दूध कुष्ठरोग उत्पन्न करेहै । शाक कहिये बैंगन इत्यादिक और जामुन, तथा मद्य इनके साथ सेवन कराहुआ दूध मृत्युके समान अथवा बहुत सेवन करे तो अवश्य सर्पके समान मृत्यु करे । सर्वप्रकारके पतले तथा घट्ट पदा-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

र्थ उनको गरमागरम दूधके साथ न भक्षण करे । तेल, कैथ, नींबू, पनस, बिजोरा, वंशके अंकुर (अर्थात् बांसके कोंपल) करील, बेर, हरेकेला, खट्टा अनार तथा इसीप्रकारके दूसरे फल और बेलफल ये पदार्थ क्षीरविरुद्ध हैं । इसीसे जो पुरुष ये पदार्थ दूधके साथ खाताहै उसके बहरापना गूंगापना कुरूपता तथा अग्निमांद्य ये व्याधि प्राप्तहो और अतिभक्षण करनेसे अंतमें मृत्युको करेहै ।

अथ भोजनकुतूहलात्सुषेणवाक्यम् ।

क्षीरंनभुंजीतकदाप्यतप्तंतप्तंचनैतल्लवणेनसार्द्धम् ।
पिष्टंनसंधानकषायमुद्गकोशातकीकंदफलादिकैश्च ।

अर्थ—भोजनकुतूहलनामक ग्रंथमें ग्रंथकारने दूधके विषयमें सुषेणका वाक्य इसप्रकार लिखा है कि विना ओंटा दूध किसीकालमें न पीवे, और ओंटे हुए दूधमें निमक डालकर न पीवे उसीप्रकार पीठीके पदार्थ (कचौडीआदि) संधान (अचार) कषेले पदार्थ मूंग तोरई, कंद, तथा फल इनके साथ दूध न पीवे ।

अथ मथितक्षीरगुणाः ।

क्षीरंगव्यमथाजंवाकोष्णंदंडाहतंभवेत् ।
लघुवृष्यंज्वरहरंवातापित्तकफापहम् ॥

अर्थ—गौका अथवा बकरीके दूधको तपाय कुछ गरम रहते उसको रई डालकर मथनेसे यह दूध हलका, तथा वृष्य, एवं ज्वर, वात, पित्त, और कफ इनका नाशक होता है ।

अथ क्षीरपाकपात्रगुणाः ।

ताम्रेतापहरंपात्रेसौवर्णेपित्तनाशनम् । रौप्येश्लेष्महरंप्रोक्तंकांस्येरक्तप्रसादनम् । आयसेतुश्रृतंक्षीरंकृमिपित्तकफप्रणुत् । कांतसारमयंश्रेष्ठंत्रिदोषघ्नंरसायनम् ।कुष्ठप्रमेहपिडिकाकृमिगुल्मास्रशूलनुत् । मृत्पात्रेतुश्रृतंक्षीरंताम्रपात्रश्रृतंयथा ।

अर्थ—तांबेके पात्रमें तपाया हुआ दूध तापनाशक होता है । सोनेके पात्रमें तपाया हुआ दूध पित्तनाशक, चांदीके पात्रमें तपाया हुवा दूध कफनाशक, कांसेके पात्रमे औटाया हुआ दूध रक्तशोधक, लोहके पात्रमें औटाया हुआ दूध कृमि, पित्त, तथा कफ इनको दूर करे । कांतिसारके पात्रमें

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तपायाहुआ दूध त्रिदोषनाशक, तथा रसायन होनेसे कुष्ठ, प्रमेह, पिडिका, कृमि, गुल्म, रक्तदोष, और शूल इनका नाशक । तथा मट्टीके पात्रमें औटायाहुआ दूध तापनाशक जानना, तामेके पात्रमें दूधका औटाना बहुतसे मनुष्य वर्जित कहते हैं ।

दुग्धसंतानिकास्निग्धारुच्यावल्याचशुक्रला । तर्पणीवातपित्तघ्नीदाहपित्तास्रनाशिनी । स्वाद्वीपाकेरसेगुर्वीदीपनीकफवर्द्धिनी ।

अर्थ--दूधकी मलाई स्निग्ध, रुचिकारी, बलप्रद, वीर्यवर्द्धक, तथा तृप्तिकर, ऐसी होनेसे वात, पित्त, दाह, तथा रक्तपित्त, इनको नाश करे उसीप्रकार रस कालमें और पाककालमें स्वादु, भारी, अग्निदीप्तकर तथा कफवर्द्धक है ।

प्रियेसद्यःप्रसूतानांशृतेक्षीरेतुयद्भवेत् । पीयूषंतद्भवादीनांपीयूषमधुराधरे । दुग्धेचातिशृतेयत्स्याद्घनंकिट्टंतदुच्यते । किलाटंविकृतेक्षीरेभृतेगाढतरंतुयत् । यच्चामंविकृतंक्षीरंक्षीरशाकंतदेवहि । विकृतस्यचदुग्धस्यनीरंमोरटमुच्यते।प्रोक्तमेतद्गणंसर्वपौष्टिकंधातुवर्द्धनम् । गुरुश्लेष्मकरंबल्यंदीप्ताग्नीनांहितावहम् । वातपित्तहरंह्रद्यंनिद्रासंजननंपरम् । हितंमैथुनशक्तानांसुजंघेमोरटंविना । मोरटस्तुलघुर्बल्योरोचकःससितोपलः । आस्यशोषतृषादाहरक्तपित्तज्वरापहः ।

अर्थ–हे प्रिये ! नई व्याईहुई गौ भैंस इत्यादिकोंके दूधको औटाकर गाढा करते हैं उसको पीयूष कहते हैं । तथा दूधको अत्यंत ओंटाकर जो खोहा करते हैं उसको संस्कृतमें किट्ट कहते हैं । उसीप्रकार दूधको फाडकर जो खोहा करते हैं उसको संस्कृतमें किलाट कहते हैं । और कच्चे फटे दूधको क्षीरशाक कहते हैं । और फटे दूधके जलको मोरट कहते हैं । ये पीयूषादिक पदार्थ पौष्टिक, धातुवर्द्धक, भारी, कफकर, बलकारी, दीप्ताग्निमनुष्यको हितकारी, वातपित्तनाशक, हृद्य तथा निद्राको प्रगट करता है । उसीप्रकार मैथुनासक्त पुरुषको मोरटके विना सर्व पदार्थ हितकारी हैं मिश्रीमिला मोरट हलका, बलकारी, तथा रोचक होनेसे मुखशोष, तृषा, दाह, रक्तपित्त और ज्वर इनका नाशक है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ दधिगुणानाह ।

दधिपंचविधंप्रोक्तंमंदंस्वादुसुभाषिते । स्वाद्वम्लमम्लंचात्य-म्लंशरच्चंद्रनिभानने।मंदंकिंचिद्घनंस्वादुदुग्धवच्चप्रकीर्तितम्। मूत्रलंचसरंदाहित्रिदोषजनकंमतम् । दधिस्वादुघनंजातरसं मेदःकफप्रदम्।अत्याभिष्यंदिपाकेचमधुरंपवनापहम् ।पुष्टिदं प्रेयसिप्रोक्तंरक्तपित्तविशोधनम्।घनंस्वाद्वम्लकंप्रोक्तंमधुरंस-कषायकम् ।तदुष्णंदीपनंस्निग्धंपाकेऽम्लंगुरुकीर्तितम्।ग्राह्य-तीसारशमनंरक्तपित्तकफप्रदम् । मेदःशोथकरंबालेबलवीर्य-विवर्द्धनम्।मूत्रकृच्छ्रप्रतिश्यायशीतांगविषमज्वरान् । नाश-येदरुचिंकाश्यंपीनोत्तुंगपयोधरे । यत्त्वम्लंदीपनंतत्स्याद्र-क्तपित्तप्रकोपनम् । श्लेष्मलंसुरतस्वेदप्रोल्लसन्मुखपंकजे । अत्यम्लंदीपनंचैवरोमहर्षप्रदंमतम् । दंताम्लतारक्तपित्तकं-ठदाहकरंभवेत् ।

अर्थ--अब दहीके गुण कहते हैं । १ मंद, २ स्वादु, ३ स्वाद्वम्ल, ४ अम्ल ५ अत्यम्ल, ऐसे दही पांचप्रकारका है । जो दही किंचित् गाढा तथा जिसका स्वाद दूधके समान हो उसको मंद कहते हैं । यह मूत्रल, सारक दाहकारक, तथा त्रिदोषकारक है । जो गाढा तथा मीठा दही हो उसको स्वादु कहते हैं । यह मेद तथा कफ इनको उत्पन्न करे है । और अति अभिष्यंदकारक है । पाककालमें मधुर, वातनाशक, पुष्टिकर, तथा रक्तपि-त्तशोधक है। जो दही गाढा तथा मधुरतायुक्त खट्टा, होय उसको स्वा॰ द्वम्ल कहते हैं । यह मधुर कषेला, उष्ण, दीपन, स्निग्ध, पाककालमें खट्टा, भारी, ग्राहक, तथा अतिसारनाशक, होकर रक्तपित्त, कफ, मेद, सूजन, बल, और वीर्य इनको बढावे, और मूत्रकृच्छ्र, सरेकमाँ, शीतांग, विषमज्वर, अरुचि, और कृशता, इनको नाश करनेवाला है ४ अम्ल क-हिये खट्टा दही दीपन, रक्तपित्तको कुपित करनेवाला, और कफकारी है ५ अत्यम्ल कहिये अत्यंत खट्टा दही दीपन, रोमहर्षकारक, तथा दांतोंको खट्टा करनेवाला होकर रक्तपित्त तथा कंठदाह, इनको उत्पन्न करता है ।

गव्यंदध्युत्तमंबल्यंपाकेस्वादुरुचिप्रदम् । दीपनंपौष्टिकंग्राहि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शीतलंवातनाशनम् । माहिषंदधिसुस्निग्धंश्लेष्मलंवातपित्तनुत् । स्वादुपाकमभिष्यंदिवृष्यंगुर्वस्रदूषणम्।आजंदध्युत्तमंग्राहिलघुदोषत्रयापहम् । प्रशस्तंश्वासकासार्शःक्षयकार्श्येषुदीपनम् ।

अर्थ–गौका दही उत्तम बलकारी, पाककालमें मधुर, रुचिकर, दीपन, पौष्टिक, ग्राहक, शीतल, तथा वातनाशक, ऐसा है । भैंसका दही स्निग्ध और रक्तदूषक है । बकरीका दही उत्तम ग्राहक, हलका, लघु, तथा त्रिदोषनाशक होनेसे श्वास, खांसी, बवासीर, क्षय, और कृशता इन रोगोंको पथ्यकर और दीपन है ।

तत्तदुग्धोद्भवंप्रोक्तंदधिस्निग्धंरुचिप्रदम्। सर्वधातुबलाग्नीनांवर्द्धकंचगुणोत्तमम्।वातपित्तहरंचैवकीर्त्तितंमुनिसत्तमैः । ततो हीनगुणंग्राहुरामदुग्धोद्भवंदधि ।

अर्थ–औटाहुआ दूधका दही स्निग्ध, रुचिकारी, तथा सर्वधातु, बल,अग्नि इनको वढानेवाला, गुणोंमें उत्तम और वातपित्तनाशक है । कच्चे दूधका दही उस दहीकी अपेक्षा गुणोंमें न्यून है ।

हीनसांतानिकोत्पन्नंदधिशीतंलघुस्मृतम् । विष्टंभवातलंग्राहिदीपनंमधुरंमतम्।रुच्यमीषत्पित्तलंचप्रदिष्टंभिषगुत्तमैः ।

अर्थ–औटाकर मलाई निकाले हुए दूधका दही शीतल, हलका, विष्टंभी, वातल, ग्राहक, दीपन, मधुर, रुचिकारी, और किंचित् पित्त करता है ।

अथ संयोगविशेषगुणानाह ।

सशर्करंदधिश्रेष्ठंतृष्णापित्तास्रदाहनुत् । सगुडंवातजिद्वृष्यं बृंहणंतर्पणंगुरु ।

अर्थ–बूरा मिला दही श्रेष्ठ एवं प्यास, रक्तपित्त, तथा दाह इनको नाश करे । गुड मिला दही वातनाशक, वृष्य, बृंहण, तृप्तिकर, तथा गुरु ऐसा है।

मूत्रकृच्छ्रेप्रतिश्यायेशीतगेविषमज्वरे । अतिसारेऽरुचौकार्श्येदिवाचदधिशस्यते ।शस्यतेदधिनोरात्रौशस्तंचांबुघृतान्वितम् । रक्तपित्तकफोत्थेषुविकारेषुनशस्यते ।

अर्थ–मूत्रकृच्छ्र, सरेकंमा, शीतसे उत्पन्न विषमज्वर, अतिसार, अरुचि,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तथा कृशता, इन रोगोंमें दिनमें दही खाना उत्तम हैं। रात्रिमें दही खाना वर्जित है। यदि रात्रिमेंही दही खाना होय तो पानी और घी डालके खाय, रक्तपित्त और कफके रोगोंमें दही खाना सर्वथा अहितकारी है।

दध्नस्तूपरियत्तोयंतन्मस्तुपरिकीर्तितम्।मस्तुक्लमहरंबल्यंल-घुभक्ताभिलाषकृत् । स्रोतःशोधनमाह्लादिकफतृष्णानिला-पहम् । अवृष्यंप्रीणनंशीघ्रंभिनत्तिमलसंग्रहम् ।

अर्थ—दहीके पानीको मस्तु कहते हैं। यह मस्तु ग्लानिनाशक, बलकर, लघु, भोजनमें रुचिकारक, इन्द्रियशोधक, आनंदकारक, तथा कफ, तृषा, वातके रोग इनको नाश करे, अवृष्य, तृप्तिकर। और मलसंग्रहभेदक, ऐसा है।

दध्नस्तूपरिसांतानीसरइत्यभिधीयते। सरःस्वादुर्गुरुर्वृष्योवा तवह्निप्रणाशनः । साम्लोबस्तिप्रधमनःपित्तश्लेष्मप्रवर्द्धनः ।

अर्थ—दहीके ऊपरकी मलाईको सर कहते हैं। यह स्वादु, गुरु, वृष्य, वायु तथा अग्नि, इनको नाश करे। खट्टी, मूत्राशयको अहित, और पित्त तथा कफ इनको बढानेवाली है।

अथ तक्रगुणानाह ।

घोलंमथितमुदश्वित्तक्रमाहुश्चतुर्विधम् । सरसंनिर्जलंघोलंम-थितंरसवर्जितम्।तक्रंपादजलंप्रोक्तमुदश्विच्चार्द्धजीवनम्।के-चित्तुच्छच्छिकांप्राहुर्बहुनीरांहिपंचमीम्।वातपित्तहरंघोलंमथि-तंकफपित्तनुत् । तक्रंत्रिदोषशमनमुदश्वित्कफकारकम्।छ-च्छिकाश्रमपित्तघ्नीशीतातृड्वातनाशिनी । गुर्वीश्लेष्मप्रदाप्रो-क्तादीपनीलवणान्विता ।

अर्थ—अब तक्रके गुण कहते हैं। छाछ चार प्रकारकी है, जैसे १ घोल, २ मथित, ३ उदश्वित्, ४ तक्र जो पानीके विना मथते है परंतु उसमेंसे मक्खन नहीं निकालाहो उसको घोल कहते हैं, और पानीके विना मथके मक्खन निकालते हैं उसको मथित कहते हैं, जिसमें चौथा भाग पानी डालके मथे उसको तक्र, और अर्द्धभाग पानी मिलाय मथते है उसको उदश्वित्, ऐसे कहते हैं, इसके शिवाय जिसमें बहुत पानी मिलायके मथते है, उसको कोई छच्छिका कहते हैं। यह पांचवां प्रकार है । घोल वातपित्तनाशक, मथित

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कफ पित्तनाशक, तक्र त्रिदोषनाशक, उदश्वित् कफकारक, और छच्छिका यह भ्रम तथा पित्तनाशक है, शीतल, वात, तथा तृषानाशक, कफकर, और गुरु है, इसमें निमक डालनेसे दीपक होती है ।

अथ तक्रविशेषगुणानाह ।

तक्रंग्राहिकषायाम्लंस्वादुपाकेरसेलघु । वीर्योष्णंदीपनंप्रोक्तं पौष्टिकंवातनाशनम् । ग्रहण्यादिकरोगेषुतक्रंपथ्यतमंमतम् । राजिकालवणाजाजीरामठैःसंयुतंयदि । पाचनंदीपनंरुच्यं विशेषादुदरापहम् । वातेम्लसैंधवोपेतंपित्तेस्वादुसशर्करम् । पित्तेतक्रंकफेरूक्षंव्योषक्षारसमन्वितम् । मूत्रकृच्छ्रेतुसगुडंपांडुरोगेसचित्रकम् । हिंगुजीरयुतंघोलंसैंधवेनावधूलितम् । तद्भवेदतिवातघ्नमर्शोऽतीसारनाशनम् । सुरुच्यंपुष्टिदंबल्यंबस्तिशूलहरंमतम् ।

अर्थ–अब तक्रके विशेष गुण कहते हैं । तक्र ग्राहक, कषेला, खट्टा, पाककालमें तथा रसकालमें स्वादु, लघु, वीर्यकालमें उष्ण, दीपन, पौष्टिक, वातनाशक, तथा संग्रहणी, इत्यादि रोगोंमें अति पथ्यकर है । यदि तक्र (छाछ)में भुना जीरा भुनी हींग डाले तो विशेषकरके पाचन, दीपन, रुचिकारी, तथा उदरविकारनाशक, होय है । वादीके रोगमें खट्टी छाछमें सैंधानिमक डालके देवे, पित्तके रोगमें मीठी छाछमें बूरा डालके देवे, कफके रोगमें रूक्ष अर्थात् जिस छाछमें मक्खनका लेश भी न होवे उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, तथा जवाखार डालके देवे, मूत्रकृच्छ्रमें गुड मिलायके देय, पांडुरोगमें चित्रककी छाल डालके देय, घोल इसमें भूनी हींग, जीरा, तथा सैंधानिमक, डालके देय तो यह अतिवात, बवासीर, तथा अतिसार, इनको नाश करे । रुचिकर, बलकर, पौष्टिक, और वस्ति शूल, नाशक ऐसा है ।

शीतकालेऽग्निमांद्येचकफवातामयेषुच । अरुचौस्रोतसांरोधे तक्रंस्यादमृतोपमम् । तक्रंतुलवणोपेतंदीपनंग्रहणीगदे । लवणेनविनायत्तद्ग्रहण्यर्शोविवर्द्धनम् ।

अर्थ–शीतकालमें तथा अग्निमांद्य, कफ, वात, अरुचि, और नाक, कान, इत्यादि इन्द्रियोंके अवरोध इन रोगोंमें तक्र अमृतके तुल्य है, निमक पडी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

छाछ संग्रहणी रोगमें अग्निदीपक है, और निमक विना संग्रहणी और बवासीरको बढातीहै ।

नमूर्च्छाभ्रमदाहार्तोरक्तपित्तीक्षतीनरः ।
दुर्बलोऽद्यान्नवैतक्रमुष्णकालेपिनिंदितम् ॥

अर्थ-मूर्च्छा, भ्रम, दाह, तथा रक्तपित्त, इन रोगवाले पुरुषोंको तथा दुर्बलको तक्र (छाछ) नहीं पीना चाहिये, और उष्णकालमें तो किसीकोही तक्र नहीं पीना चाहिये ।

स्वर्गेसुराणाममृतंयथास्तितक्रंनराणांभुवितद्वदेव ।
तक्रप्रदग्धानपुनर्भवेयूरोगानतक्राद्व्यथतेकदाचित् ॥

अर्थ-जैसे स्वर्गमें देवताओंको अमृत प्रधानहै, उसीप्रकार पृथ्वीमें मनुष्योंको तक्र है । तक्रसे जो दग्धहुए रोग वो फिर नहीं होते और तक्र सेवन करता पुरुष बहुधा रोगी नहीं हो । " तक्रमत्तीति तक्रात् "

गव्यंतुदीपनंतक्रंमेध्यंश्वित्रत्रिदोषजित् । कुष्ठगुल्मातिसारघ्नंप्लीहार्शोग्रहणीप्रणुत् । माहिषंश्लेष्मलंतक्रंसांद्रंशोफकरंगुरु । सुस्निग्धंछागलंतक्रंलघुदोषत्रयापहम् । गुल्मार्शोग्रहणीशोफपांडुरोगप्रणाशनम् ।

अर्थ-गौकी छाछ दीपन तथा बुद्धिवर्द्धक होकर श्वेतकुष्ठ, त्रिदोष, गलित कुष्ठ, गुल्म, अतिसार, प्लीहा, अर्श, और संग्रहणी इनको नाश करे । भैंसकी छाछ कफकर स्निग्ध, शोथकर, तथा गुरु है । बकरीकी छाछ स्निग्ध तथा लघु होनेसे त्रिदोष, गुल्म, अर्श, संग्रहणी, सूजन, और पांडुरोग इनका नाश करे ।

अथ नवनीतगुणानाह ।

नवनीतंहितंगव्यंवृष्यंवर्णबलाग्निकृत् । संग्राहिवातापित्तास्रक्षयार्शोऽर्दितकासजित् । तद्बालेसुहितंवृद्धेविशेषादमृतंशिशोः । वीर्यसंवर्द्धनंयूनांरोचकंचप्रकीर्तितम् ।

अर्थ-गौकी लौनी (मक्खन) हितकर, वृष्य, वर्णकारक, बलकर, जठराग्निदीपक, तथा ग्राहक हो वात, पित्त, रक्तविकार, क्षय, अर्श, अर्दित, वायु, और खांसी, इनका नाश करता है । उसीप्रकार वृद्धमनुष्योंको

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हितकारक, बालकोंको अमृतके समान, और तरुणोंको वीर्यवर्द्धक, तथा रुचिकारी है ।

माहिषंनवनीतंतुवातश्लेष्मकरंगुरु । दाहपित्तश्रमहरंमेदः-शुक्रविवर्द्धनम् । आजंत्रिदोषशमनंनवनीतंतयोर्वरम् ।क्षीरोत्थंमंथजंश्रेष्ठमतिस्निग्धंबलप्रदम् । चक्षुष्यंमधुरंवृष्यंशीतं ग्राह्यस्रापित्तनुत् । नवनीतंतुसद्यस्कंस्वादुग्राहिहिमंलघु । मेध्यंकिंचित्कषायाम्लमीषत्तक्रांशसंभवात् । श्लेष्मलंगुरुमेदस्कंनवनीतंचिरंतनम् । सक्षारंकटुकाम्लत्वाच्छर्व्यर्शःकुष्ठकोपनम् ।

अर्थ–भैंसकी लोनी वातकारक, कफकर, तथा भारी, एवं दाह, पित्त, श्रम, इनकी नाशक और मेद, वीर्य, इनको बढावे । बकरीकी लोनी त्रिदोषनाशक, तथा गौकी लोनी भैंसकी लोनीकी अपेक्षा श्रेष्ठ है । दूधमेंसे निकाली हुई लोनी श्रेष्ठ अतिस्निग्ध बलदायक, नेत्रोंको हितकारक, मधुर, वृष्य, शीतल, और ग्राहक होनेसे रक्तपित्तनाशकहै । दूधसे अथवा दहीसे निकाली ताजी लोनी स्वादु, ग्राहि, शीतल, लघु, वृद्धिवर्द्धक छाछके योगसे कुछ कषेली, तथा खट्टी ऐसी है । बहुत दिनोंकी लोनी कफकर, भारी, मेदवर्द्धक, किंचित् चरपरी, तथा खट्टी ऐसी है । इसीसे उसमें क्षारांश उत्पन्न होता है । यह वमन बवासीर इनको कुपित करे है ।

अथ घृतगुणानाह ।

गव्यंस्नेहवरंघृतंगुरुहिमंवृष्यंसुराणांप्रियंमेध्यंनेत्रहितंविपाकमधुरंमांगल्यमारोग्यदम् । ओजःपुष्टिकरंरसायनवरंबल्यं वपुःस्थैर्यदंतेजःकांतिविवर्द्धनंस्मृतिकरंरुच्यंसुधास्पर्द्धकम् । स्वर्यंवह्निविवर्द्धनंश्रमहरंवातंचपित्तंविषंहन्यादेवकफं सरोजवदनेग्लानिंत्वलक्ष्मीमपि । नातःश्रेष्ठतरंवदंतिमुनयोलोकत्रयेमन्मतेगव्यंसर्पिरथोऽधरामृतमयेतुल्यंकुरंगीदृशाम् ।

अर्थ–गौका घी सर्वस्नेह पदार्थोंमें श्रेष्ठ भारी, शीतल, वृष्य, देवताओंको प्रिय, बुद्धिदायक, नेत्रोंको हितकर, पाककालमें मधुर मंगलीक, आरोग्यदायक, इन्द्रियोंको बल, तथा पुष्टि देनेवाला, श्रेष्ठ रसा-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यन, बलकर, शरीरको स्वस्थता देनेवाला, तेज तथा कांति इनको बढानेवाला, स्मृतिकारक, रुचिकर, अमृतके समान स्वरकारक, और अग्निवर्द्धक, ऐसा है उसी प्रकार श्रम, वातपित्त, विष, कफ, ग्लानि तथा अलक्ष्मी इनको नाश करे।

आज्यंमाहिषमग्निदीपनमपिस्निग्धंचहृद्यंहिमंनेत्र्यंस्वादुरसायनंगुरुमतंसौख्यप्रदंबुद्धिदम्। धैर्यश्लेष्मबलप्रदंरुचिकरं कांतिप्रदंपौष्टिकंवर्ण्यंपित्तमरुद्भ्रमग्रहणिकाश्रांत्यस्रपित्तप्रणुत्। अर्शोघ्नंमहिषीभवंचकथितंत्वग्दोषसंनाशनमाजंचाज्यमथोऽग्निकृल्लघुमतंवृष्यंचपाकेकटु । नातिस्वादुरसे दृशोर्हितकरंबल्यंकफार्शःप्रणुत्कासश्वासविनाशनंक्षयहरंपूर्णेंदुबिंबानने।

अर्थ—भैंसका घी अग्निदीपक, स्निग्ध, हृद्य, शीतल, नेत्रोंको हितकारी, स्वादु, रसायन, भारी, सुखदायक होकर बुद्धि, धैर्य, कफ तथा बल इनको बढावे। रुचिकारी, कांतिकारक, पौष्टिक, वर्णकारक, ऐसा है उसीप्रकार पित्त, वात, भ्रम, संग्रहणी, श्रम, रक्तपित्त, और बवासीर संबंधी रोग इनको नाश करे बकरीका घी अग्निदीपक, लघु, वृष्य, पाककालमें तीक्ष्ण, रसकालमें अल्पस्वादु, नेत्रोंको हितकारी, तथा बलकारी है। उसीप्रकार कफ, अर्श, खांसी, श्वास, और क्षय इनको नाश करे।

योजयेन्नवमेवाज्यंभोजनेतर्पणेश्रमे । बलक्षयेपांडुरोगेकामलानेत्ररोगयोः। राजयक्ष्मणिबालेचवृद्धेश्लेष्मगदान्विते । सामेरोगेविषूच्यांचविबंधेचमदात्यये । नवज्वरेऽग्निमांद्येच नसर्पिर्बहुमन्यते ।

अर्थ—भोजनमें, तर्पणमें, तथा श्रम, बलक्षय, पांडुरोग, कामला, नेत्ररोग इनमें नवीन घी लेना चाहिये। परंतु राजयक्ष्मा (खई) बालक, वृद्ध, कफरोगी, आमरोग, विषूचिका, विबंध, मदात्यय, नवीन ज्वर, तथा अग्निमांद्य इनरोगोंमें घी हितकारी नहीं है।

अथ सक्तुकृतिगुणाः।

धान्यानांभ्राष्ट्रभृष्टानांपिष्टंसक्तुरुदाहृतः। शीतलःसारकोरूक्षोलघुश्लेष्मविवर्द्धनः। कफश्रमग्लानिदाहभ्रमपित्तापहारकः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-अब सत्तू अर्थात् भुनेहुए अन्नके चूनकी विधि तथा गुणदोष, कहते हैं । प्रथम गेहूं चना आदि धान्यको भाड़में भूने फिर चक्कीसे पीसे उस चूनको सत्तू ऐसा कहतेहैं । यह सत्तू शीतल, सारक, रूक्ष, बलकारी, तथा वीर्यवर्द्धक हो कफ, श्रम, ग्लानि, दाह, भ्रम, तथा पित्त इनका नाश करे है सत्तू काशी पटना आदि प्रांतोंमें उत्तम बनताहै ।

चाणकाःसक्तवःशीतारूक्षास्तृप्तिकरामताः । ग्राहिणोवात-
लाश्चैवरक्तशुद्धिकराअपि ।पित्तघ्नाश्चकफघ्नाश्चस्मृताःपाक-
विदुत्तमैः । सक्तुर्लाजोद्भवःशीतोलघुर्ग्राहीत्रिदोषजित् ।
छर्दिरक्तप्रशमनःपथ्यस्तृप्तिप्रदायकः ।

अर्थ-चनेका सत्तू शीतल, रूक्ष, तृप्तिकर, मलग्राहक, वातल, रक्तशोधक तथा पित्तकफनाशक है, और खीलोंका सत्तू शीतल, हलका, ग्राहक, तथा त्रिदोषनाशक ऐसा होकर वमन तथा रक्तविकार इनको नष्ट करे । और पथ्यकर तथा तृप्तिकारक है ।

अथ यवसक्तुगुणाः ।

यवसक्तुर्विलोलाक्षिसितानीरप्रसेवितः । हंतिपित्तंकफंबाले
शीतलोदीपनोलघुः। लेखनोरेचनोरूक्षोबल्योधातुविवर्द्धनः।
मधुरोभेदनोरुच्यःक्षुत्तृषाश्रमनाशनः। घर्मदाहप्रहरणःकर्ण-
नेत्रामयापहः । मार्गव्यायामखिन्नानांहितःपीतोनभक्षितः ।

अर्थ-जौका सत्तू मीठेके साथ पानीमें सानकर खानेसे पित्त तथा कफ इनका नाश करे, उसीप्रकार शीतल अग्निदीपक, हलका, लेखन कहिये शरीरका मल शुष्क कर छुडायके काढनेवाला, रेचन, रूक्ष, बलकर धातु बढानेवाला, मधुर, भेदन, तथा रुचिकारी है । उसी प्रकार क्षुधा तृषा, श्रम, पसीने दाह, कर्णरोग, और नेत्ररोग, इनका नाशक तथा मार्ग किंवा दंडकसरतसे जो क्षीणहुए उनको हितकारी यह सक्तू पानीमें घोलकर पीनेसे उत्तम है। परंतु गाढा करके भक्षण कराहुआ अव-गुण करे है ।

सक्तवःशालिसंभूतावह्निदालघवोहिमाः ।
मधुराग्राहिणोरुच्याःपथ्याश्चबलशुक्रदाः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ--चावलाका सत्तू अग्निदीपक लघु, शीत, मधुर, ग्राहक, रुचिकारी, तथा पथ्यकारी हो बल वीर्य इनको उत्पन्न करे है ।

अथ सक्तूनांद्रव्यसंयोगेनगुणाः ।

तत्रप्रथमतोमंथकृतिगुणाः ।

सक्तून्घृतेमिश्रयित्वाजलेनसहघोलयेत् । नातिद्रवंनातिघनं समंथोबलदःस्मृतः । परिणामेबलहरोमधुरःशीतलस्तथा । वर्णपुष्टिस्थैर्यकारीदाहतृट्छमछर्दिहा । प्रमेहक्षयकुष्ठानां नाशकःपरिकीर्तितः ।

अर्थ--अब सत्तूमें दूसरा पदार्थ डालकर उसके साथ भक्षण करनेसे उसके गुण कहते हैं । तिनमें प्रथम मंथकी कृति और गुणदोष कहते हैं. सत्तूको उत्तम घीमें मिलाय फिर पानी डाल न बहुत पतला न बहुत गाढा ऐसा करे । इसको मंथ ऐसा कहते हैं । यह बलकारी, परिणाममें बलहरणकर्त्ता, मधुर तथा शीतल ऐसा होकर, वर्ण, पुष्टि, स्थैर्य इनको देनेवाला तथा दाह, तृषा, भ्रम, वमन, प्रमेह, क्षय, तथा कुष्ठ, इनको नाश करे ।

सगुडाम्लघृतैःसार्द्धंभक्षितोमूत्रकृच्छ्रहा । उदावर्तहरश्चैवस-सितेक्षुरसैर्युतः । द्राक्षाभिर्भक्षितोनित्यंवातरक्तविनाशनः । पित्तस्यनाशकश्चोक्तःसद्राक्षामधुनासह । जलेनघोलितश्चा-त्तःकफनाशकरोमतः । अम्लेक्षुघृतसीताभिर्मधुद्राक्षागुडैः सह । भक्षितश्चमलान्दोषान्यथामार्गेणवाहकः । सक्तुश्च शर्करासर्पिर्युक्तोग्रीष्मेऽतिपूजितः । शुक्रलश्चलघुर्बल्यःशीत स्तृप्तिरुचिप्रदः ।

अर्थ--गुड, इमली, घी इनके साथ सत्तू भक्षण करनेसे मूत्रकृच्छ्रका नाश करे । खांड और ईखके रसकेसाथ भक्षण करे तो उदावर्त्त दूर होय । दाखके साथ भक्षण करनेसे वातरक्तका नाश करे । दाख और सहतके साथ पित्तनाशक केवल पानीमें मिलायकर भक्षण करनेसे कफनाशक होता है । खटाई, घृत, खांड, ईखका रस, सहत, दाख, गुड, इनके साथ भक्षण करनेसे वातादि दोष और मल इनको यथामार्गकरके लानेवाला होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

परंतु इस कहेहुए सर्व योगोंमें पानी मिला लेना उचित है । खांड तथा घी, युक्त सत्तू ग्रीष्मऋतुमें अतिश्रेष्ठ धातुवर्द्धक, लघु, बलकारी, शीतल, तृप्तिकारी, तथा रुचिकारी है ।

सक्तुसेवीजनःकांतेदशकर्माणिवर्जयेत् । तान्यहंतेप्रवक्ष्यामि शृणुकंजविलोचने । एकस्मिन्दिवसेसक्तून्भुक्त्वानाद्यात्पुनःक्वचित् । केवलान्नरदैरिछत्त्वासामिषापयसानिशि । भोजनांतेवहूँश्चोष्णमश्नन्कंनापिवेत्पृथक् ।

अर्थ–हे कान्ते ! सत्तू खानेवाले मनुष्यको आगें कहेहुए दशप्रकारके आचरण वार्जित हैं । एक दिनमें एक वार सत्तू भक्षण करके फिर नहीं खाना चाहिये विना पानीके न खाय, दांतोंसें चवायकर न खाय, मांसके साथ दूधके साथ. रात्रिमें, भोजन करनेके पश्चात्, वहुत गरम करके, तथा सत्तू भक्षण करतेसमय पृथक् पानी न पीवे ।

अथ धानाकृतिगुणाः ।

धानाभृष्टयवागुर्व्योमेदश्छर्दिकफापहाः । लेखनादुर्जरारूक्षावातलास्तृप्तितृट्प्रदाः । मलबंधकराःख्यातारूपशीलधनाग्रगे ॥

अर्थ–अब धाना (बोहरी) की कृति तथा गुण कहते हैं । भूनेहुए जौंको धाना वा वोहरी कहते हैं । ये धाना भारी होकर मेदरोग, वमन, कफ, इनका नाशक लेखन कहिये शरीरके धातु तथा मलको शुष्क करके काढनेवाले दुर्जर कहिये शीघ्र न पचे,रूक्ष, वायुकारक, तृप्तिकर, तृषादायक, और मलबंधक है ।

अथ लाजाकृतिगुणाः ।

शालयःसतुषाभृष्टाःप्रफुल्लानिस्तुषीकृताः । लाजाख्यामधुरालघ्व्योरूक्षाःसंदीपनाहिमाः । स्वल्पमूत्रमलावल्यादाहपित्तकफापहाः । छर्द्यतीसारतृण्मेदोरक्तमेहापहाश्चताः ।

अर्थ–अब लाजा कहिये खील इनकी विधि और गुण कहते हैं । जिनके चावल होते हैं । ऐसे शालीधानको छिलकासहित भूने जव भूनकर फूल जावे तब उनका छिलका दूर करे इनको लाजा अर्थात् खील कहते हैं यह मधुर, लघु, रूक्ष, दीपन, शीतल, किंचित् मूत्रकारक, बलकारी, तथा दाह

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पित्त, कफ, इनको नाशक, और वमन, अतिसार, मेदरोग, तृषा, रक्त-प्रमेह, इनकोभी नाश करे है । दिवालीके दिन सर्व गृहस्थी इनसें लक्ष्मीका पूजन करते हैं।

अथ पृथुककृतिगुणाः।

वालुकायांसुतप्तायामार्द्रांश्छालीन्विभर्जयेत् । शीघ्रमुष्णां-स्ततःकुट्टेदुलूखलगतान्भृशम् । चर्पटास्तुयदातेस्युस्तदा शूर्पेणशोधयेत् । अभावेचार्द्रशालीनामत्युष्णंबुनिसिंक्षिपेत्। शालीपर्य्युषितान्नीत्वाजलाद्वस्त्रेनिपीड्यच । निर्जलान्भ-र्ज्यसंकुट्यशूर्पेणैवचशोधयेत् । तेस्मृताःपृथुकाःकांतेगुरुवःक फकारकाः । वातातंकहराश्चापिविशेषमपरंशृणु । सितादु-ग्धान्वितावल्याःसारावृष्याश्चशुक्रलाः । वातघ्नाःकफलाः प्रोक्ताःपृथुकाःपृथुकान्विते । वालुकायांपुनर्भृष्टाश्चिपिटास्ते प्रफुल्लिताः । स्वादुपाकास्त्रिदोषघ्नाविशेषाद्रुचिकारकाः ।

अर्थ-अब पृथुक काहिये चिरवा इनकी विधि तथा गुणदोष कहते हैं। लाल साटी चावल इत्यादि जातीके नवीन कच्चे चावल खिपडेमें वालू डालकर भूने, और गरमागरमोंको ओखलीमें डालकर कूटे, कूटतेकूटते जब पतले चिरवा होजावे तब सूपमें डालके फटककर धर रक्खे, यदि कच्चे चावल न मिले तो सूखेही चावलोंको अत्यंत गरम जलमें एक दिन भिजोवे दूसरे दिन काढकर कपडेमें दाबकर निचोडे फिर उनको भाडमें भुनायकर ऊपर कहीहुई विधिके अनुसार चिरवा करलेवे, ये चिरवा जड, कफकारी, और वातनाशक है । दूध बूरेकेसाथ चिरवा खानेसे बलकारी, रेचक, वृष्य, धातुवर्द्धक, वातहर, और कफकारी होते हैं यदि ये चिरवा फिर वालूमें भूनके चुरमुरा करनेसे पाककालपें स्वादु, त्रिदोषनाशक, और विशेष करके रुचिकारक होते हैं।

अथौलंबीकृतिगुणाः।

गोधूमान्वायवानार्द्रानर्द्धपक्वान्समाहरेत् । सनालान्कूर्चिकां बद्धानालेग्राह्यविभर्जयेत् । तृणप्रज्वालितायांचज्वालाया-मतियत्नतः । तन्मंजरीश्चयुतान्नासात्तस्मिन्नग्नौचपूरयेत् । क्षणादुद्धृत्यसंमर्द्यशूर्पेणचविशोधयेत् । सौलंबीवातापित्तघ्नी गुर्वीश्लेष्मबलप्रदा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–अब ओलंबी कहिये कच्चे नाजको भूनकर जो पदार्थ बनता है उस के गुणदोष कहते हैं । गेहूं किंवा जौ अधपके और हरे जडसहित ले उनकी गुच्छी बांध जड पकडके युक्तिसे भूने भुनते भुनते जब वो जडसे पजरकर गिरपडे उनको थोडी देर उनी तिनकोंमें रहने देवे फिर काढकर हाथोंसे मीड मसलकर उनदानेनको सूपसे न्यारे फटक लेवे, इसको संस्कृतमें ओलंबी कहते हैं यह ओलंबी वातपित्तहर, भारी, कफकरता, और बलदायक है ।

अथ होलककृतिगुणाः ।

समूलान्यर्द्धपक्वानिशिंबिधान्यानिचाहरेत् । तृणाग्नौभर्जयेत्तानितदग्नौचप्रपूरयेत् । क्षणादुद्धृत्यशूर्पेणशोधयेद्धोलको मतः । होलकोदुर्जरःशीतोवातमेदःकफंकरः । श्रमघ्नश्चगुरूरूक्षोमलावष्टंभकारकः । यद्यद्धान्यकृतश्चायंतत्तद्धान्यगुणोभवेत् ।

अर्थ–अब होलक कहिये होरा इनकी विधि तथा गुणदोष कहते हैं । शिंबिधान्य कहिये बूंटआदि अधपके लावे, फिर तिनका इकट्ठे कराय ऊपर कहे प्रमाण उनको भूनकर एक क्षण उसी तिनकाकी आगमें रहने देवे फिर निकालकर सूपसे फटक भूनेहुए दानेनको इकट्ठे करलेवे इनको होलक कहते हैं और भाषामें होरा कहते हैं । ये होरा दुर्जर, शीतल, तथा वात, मेद, कफ, इनको उत्पन्न करनेवाले, श्रमनाशक, भारी रूक्ष, और मलका अवरोध करनेवाले इसप्रकार जिसजिस धान्यके होलक कहिये होरा करे जावें उनके गुण उसी उसी धान्यके समान होते हैं ।

अथ चणकगुणाः संस्कारभेदात् ।

वाजिमंथोहिमोऽपक्वोरोचनस्तर्पणस्तथा । तृषादाहाश्मरीमेदोदोषघ्नश्चकषायकः ।ईषत्कफकरोऽकालेशुक्लःपरिकीर्तितः । सचांगारैश्चसंभृष्टस्तैलभृष्टश्चतद्गुणः । आर्द्रभृष्टोबलकरोरोचनश्चप्रकीर्तितः । शुष्कभृष्टोऽतिरूक्षःस्याद्वातकुष्ठप्रकोपनः । स्विन्नःपित्तकफौहन्याद्गुरूरूक्षश्चवातलः । आर्द्रोऽतिकोमलोरुच्योरक्तपित्तहरोहिमः ।

अर्थ–अब संस्कारका भेद करके चनाके गुणदोष कहते हैं । कच्चे चना शीतल, रोचन, तथा तृप्तिकारी हैं । तृषा, दाह, पथरी, मेदरोग, इनके नाशक

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हैं । तथा कषेले हैं । उसीप्रकार किंचित् कफकर और वीर्यवर्द्धक हैं । ये चने अंगारोंपर भूनेहुए अथवा तेलमें भुने होय तोभी पूर्वोक्तगुणकारी जानने । यदि ये चना गीले भूने तो बलकारी, रुचिकारक होते हैं । यदि बालूमें भूने जांय तो अति रूक्ष और वातपित्त इनको कुपित करनेवाले जानने । सीजे हुए चना पित्त कफ इनके नाशक, भारी, रूक्ष, तथा वातल हैं और गीले होनेसे हरे और अति नम्र होय तो रुचि करे एवं रक्तपित्तनाशक जानने ।

अथ कुंकमौदनकृतिगुणाः ।

रसिकेशरसज्ञोसिब्रूह्यतोमधुरप्रिय।कथंकुर्यामहंकांतत्वात्प्रियंकुंकुमौदनम्।शृणुलोलाक्षिवक्ष्येऽहंकुरुत्वंमधुराधरे। अर्पयस्वारविंदाक्षिलक्ष्मीकांतायसत्वरम्।प्रस्थैकंतंदुलानांभोजीर्णानामलिकुंतले । सूक्ष्माणामाढकेनीरेपाचयस्वशनैःशनैः। अर्धपक्वेचविस्राव्यततश्चेमंविधिंकुरु । तंडुलांस्तान्बृहत्पात्रे कृत्वादव्यांप्रसार्यच।बादामंकुडवंद्राक्षाकुडवैकंसुशोधितम्। सार्द्धप्रस्थांसितांशुद्धांकुडवैकंनिकोचकम्।कुंकुमंनीरसंपिष्टं सर्वंयत्नाद्विमिश्रय।भांडमन्यत्ततश्चुल्ल्यांतप्तंकृत्वाघृतंक्षिप । सार्द्धप्रस्थंघृतेतप्तेकोलंदेवसुमंक्षिप । क्षणमाच्छाद्यचोद्धाव्य यद्द्रव्यंतंदुलादिकम् । तत्सर्वंचघृतेतस्मिन्क्षिप्त्वासंचाल्यझंपय । ततःशीघ्रंसमुत्तार्यनिर्धूमांगारकेन्यस । यावन्मृदुतताश्चान्येविस्तीर्णेभाजनेकुरु।तत्रपुष्पासितांकांतेकुडवैकांकणाकृतिम् । कर्षमेलारजःकोलंलवंगंचविमिश्रय। इदंबल्यंस्वादुवृष्यंपुष्टिदंकुंकुमौदनम् ।

अर्थ-अब केशरिया भातकी विधि तथा गुणदोष कहते हैं । एक प्रस्थ काहिये ६४ तोले बहुत उत्तम बारीक और पुराने चावल लेकर स्वच्छ धोयकर २५६ तोले पानीमें सिजावे, जब अधपक्व होजावे तब उनका मांढ निकाल डारे, और उसको परातमें करके कलछीसे बराबर फैलाय देवे, फिर इसमें १६ तोले बादामकी मिंगी, गिरी १६ तोले, दाख १६ तोले, पिस्ते १६ तोले, शुद्ध सपेद बूरा ३२ तोले, और ४ तोले, पानीमें घुटीहुई केशर १ तोला, इन सबको एकसाथ समान डालके फिर उलट पलट कर एकसा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मिलाय देवे, फिर एक बडा बर्तन चूल्हेपर चढाय उसमें ९६ तोले घी डालके अच्छीरीतसे तपावे जब खूब गरम होजावे तब ६ मासे कुटी हुई लोंग डाल थोडी देर ढक देवे फिर उसमें वो सब सामान मिलाहुआ भात डालके कलछीसे चलाय देवे, और ढकनासे ढक देवे, फिर जल्दी उतार अंगारोंपर धरदेवे जब चावल सीजजावे तब एक बडी परातमें निकाल लेवे, और उसमें कंदका चूरा १६ तोले इलायचीके दानेका चूरा १ तोला, और लोंगका चूरा आधे तोला मिलावे, इसे केशरियाभात कहते हैं। यह बलदायक, स्वादु, वृष्य, और पुष्टिकारक है।

अथेक्षुरसौदनकृतिगुणाः ।

तंदुलानांसुधौतानांप्रस्थैकमैक्षवेरसे । पाचयत्वंवरारोहेपक्के तूत्तारयेद्घृतम् । कुडवैकंघृतंतत्रकर्षमेलाभवंरजः । मिश्रयित्वाततःकोष्णंभूमिजापतयेऽर्पय । इदंबल्यंचवृष्यंचरुच्यमिक्षुरसौदनम् । विश्वचूर्णयुतंचेत्स्यादामदोषहरंभवेत् ।

अर्थ--अब इक्षुरसौदनकी कृति कहते हैं। उत्तम धुलेहुए चावल ६४ तोले लेकर ईखके रसमें सिजावे और उसमें १६ तोले घी तथा १ तोला इलायचीके दानेकी चूर मिलावे इसको इक्षुरसौदन कहतेहैं । यह बलकर, वृष्य, तथा रुचिकारी है। यदि इसमें सोंठका चूरा मिलाय दीया जाय तो यह आमदोषनाशक होता है।

अकबरी--चावलका आटा १ शेर घी तीनपाव चीनी १ सेर, दही पावभर प्रथम आध सेर घीको किसीपात्रमें हाथोंसे खूब मथो जब मथतेमथते सपेद होजावे तब उसमें आटा और दही मिलाकर सानकर चारगोला बनाकर पानीमें रक्खो जब वह पानीमें तरने लगे तो जलसे निकाल डेढ डेढ तोलेके अन्दाजकी टीकरी बनावे फिर घी मधुरी आंचपर चढावे जब तयार हो जावे तब उसटीकरीको छोडदेवे और बडी सावधानीसे टिकरीको भूने आंच नेकभी तेज होजायगी तो मठरी करडी पडजावेगी इसीसे मध्यम आंचपर भूनकर साढेतीन तारी चासनीमें भिगोकर निकाल ले यह परमोत्तम वालू साई बनैगे।

थालीपीट दक्षिणी--गेहूं १ सेर, बाजरी १ सेर, चनाकी दाल २॥ पाव उडदकी दाल आध सेर, यह सब पृथक् पृथक् भुनवाकर पिसवाओ फिर धनिया जीरा मिरच इनके चूर्णको कुछ थोडा थोडा भून पीसकर उसी चूनमें मिलाय देउ, हींग और निमकभी अनुमानमाफिक मिलाओ पीछे दूध या जलमें रोटीके आटेकी भांति

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सानकर कढाईमें घी चढाय गरम होनेपर उसकी हथेलीसे पतली रोटीके भांति बना कर डालदेवे जब केसरकेसमान लाल होजावे तब निकाललो।

अथ शाककृतिमाह।

शाकपाकविधिंवक्ष्येशृणुपाकविशारदे । पत्रंपुष्पंफलंनालं कंदंसंस्वेदजंतथा । शाकंषड्विधमुद्दिष्टंगुरुविद्याद्यथोत्तरम् ।

अर्थ–हे पाकविशारदे ! शाककी विधि कहता हूं तू सुन--शाक छःप्रकारका है। जैसे पत्र, पुष्प, फल, नाल, मूल, और संस्वेदज, तिनमें पत्रका चौंलाई, वथुआ आदि, पुष्प केलाका फूल अगास्तियाका फूल इत्यादि,फल-बैंगन करेला आदि, नाल-मूली आदि, कंद-जमीकंद अरई आदि, संस्वेदज छतोना आदि, इन शाकोंमें अनुक्रमसे एकसे दूसरा भारी है।

दीपनार्थंहिपत्रेषुजीरकंलशुनंमतम्। रक्तामरीचिकाचापिरा-मठंवाविचक्षणे । पुष्पेषुराजिकाहिंगुजीरकंचरसोनकम्। म-रीचिकातथारक्तादीपनेमादिरेक्षणे । चतुर्ष्वपिफलाद्येषुपृ-थ्वीकाऽजाजिमेथिकाः । रसोनंराजिकाहिंगुवातुरक्तामरी-चिका।

अर्थ–पत्रशाक अर्थात् पालिक, मेथी चौंलाई, आदिमें जीरा, लहसन, लाल मिरच, तथा हींगका छौंक देवे। फूलके शाकमें राई, हींग, जीरा, लहसन, तथा लाल मिरचका छौंक देवे। और फलादिक चार शाकोंमें कलौंजी, जीरा, मेथी, लहसन, राई, हींग, तथा लालमिरचका छौंक देना चाहिये।

धूपनार्थंघृतंश्रेष्ठंतैलमेवाधमंमतम् । लवणंहिपलंप्रस्थेवेस-वारमुदुंबरम्। तदप्येलादिकंवापिसौरभंचयथारुचि। टंके-कांरजनींक्षिप्त्वासाम्लंवानम्लमेवच । सगुडाम्लंतुवाकांते लसन्नीलनिचोलके । सजलंनिर्जलंवापिपाचयेन्मंदवह्निना ।

अर्थ–छौंक देनेमें घी उत्तम है। और तेल अधम है। ६४ तोले सागमें ४ तोले निमक, एलादि वेसवार अथवा सौरभ वेसवार इनमेंसे जो अपने-को प्रिय होय वो १ तोले, हलदी ३ मासे डाले, इस शाकमें खटाई डाले अथवा विना खटाईकी अथवा खटाई और गुड डालके रसेदार या गाढी जैसी इच्छा हो ऐसी करे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सौरभमाह ।

षट्पलंधान्यकंप्रोक्तंराजिकाश्चद्विकार्षिकाः । त्रिपलंरक्तमरिचंत्रिकर्षंवेल्लजंमतम् । निशात्रिकार्षिकाप्रोक्ताकंकोलंदेवपुष्पकम् । शिलाजंत्वक्चिरफलंप्रत्येकंचार्द्धकार्षिकम् । नारिकेलफलंशुष्कंबहुशःसूक्ष्मखंडितम् । हिंगुशाणमितंग्राह्यंकिंचिदेरंडजात्वचा । तैलभृष्टंचतत्सर्वंपाषाणेसूक्ष्मपेषितम् । सौरभाख्यमिदंप्रोक्तंवृंताकादिषुयोजयेत् ।

अर्थ–धनिया २४ तोले, राई २ तोले, मिरच १२ तोले, हलदी २ तोले, कंकोल, लौंग, पत्थरका फूल, दालचीनी, चिरफल, ये प्रत्येक आधे आधे तोला लेवे एक सूखेगोलेका बारीक टुकडा, हींग ३ मासे, और थोडी अंडकी जडकी छाल, ये सबको तेलमें तलके महीन पीसे इसको सौरभ अथवा गरम मसाला कहते हैं । यह बैंगन आदि सागमें डालना चाहिये ।

अथैलादिकवेसवारमाह ।

एलात्वक्पत्रमरिचश्रीसुमश्यामजीरकैः ।
वेसवारःसधान्याकैरेलादिःकथ्यतेबुधैः ॥

अर्थ–इलायची, दालचीनी, तेजपात, मिरच, लौंग, काला जीरा और धनिया, इन सबको पीस बारीक चूर्ण करे इसको एलादि वेसवार कहतेहैं ।

अथ केसरादि वेसवार ।

केशरत्रिकटुधान्यजीरकैस्त्वक्तिलत्रुटिशताह्वपत्रकैः । कासमर्ददलधर्मपत्तनैरामठारुणमरीचिकान्वितैः । दाडिमीरजनिनालिकेरकैराजिकातरुणमूलमासुमैः । चूर्णितैरपिनवाज्यभर्जितैर्वेसवारइतिकेशरादिकः ।

अर्थ–अब केशरादि वेसवार कहतेहैं । नागकेशर, सोंठ, मिरच, पीपल, धनिया, जीरा, दालचीनी, तिल, इलायची, सौंफ, तेजपात, कसोंदीके पत्ते, मिरच, हींग, लाल मिरच, खट्टा अनार दाना, हलदी, नरियलका गोला, राई, अंडकी जड, और लौंग, ये पदार्थ घीमें भूनकर चूर्ण करे । इसको केशरादि वेसवार कहते हैं ।

उक्तेष्वपिचशाकेषुपुष्पादिष्वेवयोजयेत् ।
वेसवारान्भवेत्तेनशाकंदोषविवर्जितम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-ऊपर कहे पुष्पादि शाकोंमें इनमेंसे कोईसा एक मसाला डाले तो साग निर्दोष होय।

विशेषंचप्रवक्ष्यामिशृणुपद्मविलोचने । वृंताककारवेल्लादि फलमर्द्धविदीर्यच । तत्रेदंपूरयेत्सर्ववक्ष्यमाणंनिबोधमे । रसोनस्यपलंहिंगुभार्जितंकोलसंमितम्।धान्याकंद्विपलंभृष्टंजीरकस्यचतिंदुकम्।अम्लवर्गपलैकंचपलांरक्तांमरीचिकाम्।नातिसूक्ष्मीकृतंसर्वकर्षाष्टलवणान्वितम्। वृंताककारवेल्लादिद्विप्रस्थेपूरयेदिदम् । ततःसूत्रेणसंबध्यघृतेतैलेऽथवाप्रिये। युक्त्या संपाचयेच्छुष्कंरसार्थंवाजलान्वितम्।

अर्थ-अब सागकी विधि कुछ कहते हैं। बैंगन, करेला, इत्यादि फल खडे एक तरफसे चीरकर उनमें उक्त मसालेको भरे लहसन ४ तोले, भुनी हींग ६ मासे, भुनाहुआ धनिया ८ तोले, भुना जीरा एक तोले, अमचूर ४ तोले लाल मिरच ४ तोले, तथा निमक ८ तोले, ये सब पदार्थ कुछ बारीक कूटकर १२८ तोले करेलेमें यह कुटा मसाला भरे, फिर डोरेसे उनको बांध घीमें अथवा तेलमें तले यदि रसेदार बनाने होय तो तलकर फिर जल डालके सिजावे।

पटोलादिफलेष्वेवमिदंसंपूर्यपाचयेत् ।
पाचनंदीपनंतत्स्याद्भोजनेसुरुचिप्रदम् ॥

अर्थ-जो विधि करेला बैंगन आदिमें मसाले भरने आदिकी है उसी रीतिसे परवल आदिमें मसाला भरके सिजानेसे दीपन, पाचन, तथा रुचिकारी होता है।

पर्णशाकेविशेषंचकंजास्येशृणुसांप्रतम् । येनस्याद्रुचिरंस्वादु भोजनेप्रीतिवर्द्धनम्।रामठंदीपनेदद्यात्तथारक्तांमरीचिकाम्। रसोनंचपलांडुंवानिःक्षिप्यच्छादयेत्ततः । धूम्रंदृष्ट्वासमुद्धाव्यशाकंनिःक्षिप्यछादयेत् । क्षणादुद्धाव्यप्रस्थंचेच्छाकंपटुपलार्द्धकम्।यथारुचितुवाकांतेधान्यकादिरजःक्षिपेत् । तथा कुस्तुंबरुंचार्द्रांक्षिपेज्ज्वालामरीचिकाः । हरिताअरुणावापिकृताःशस्त्रेणखंडशः । अम्लवर्गंचनिःक्षिप्यपक्वमुत्तारयेच्चहि ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–अब पर्णशाक कहिये पत्ताके साग जिसप्रकार करनेसे रुचिकारी और स्वादु होवे ऐसे प्रकारकी विशेषविधि कहते हैं । हींगका छौंक देकर उसमें मिरच, लहसन, और कांदा आदि गेर उस पात्रका मुख ढकदे, फिर थोडी देरमें उघाड, ६४ तोले सागमें २ तोले अथवा रुचिप्रमाण निमक डाले, तथा धनिया आदिका चूरा, कोथमीर, हरी अथवा सूखी लाल मिरचके टुकडे, और अमचूर आदिकी खटाई डाले जब पक्क होजावे तब उतार ले ।

अथ हलुवादिकानाह ।

हलुवावरफीपेडालोकेख्याताःसुशोभनाः ।
तेषांकृतिमहंवक्ष्येशृणुकुंजरगामिनि ॥

अर्थ–हे प्रिये ! हलुआ, बर्फी, और पेडा ये पदार्थ लोकमें प्रसिद्ध हैं इसीसे उनके बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं ।

अथ हलुवाकृतिमाह ।

गोधूमान्प्लावयेन्नीरेत्रिदिनंवाचतुर्दिनम् । ततःकराभ्यांसंमर्द्य पृथक्कृत्वाजलाच्चतान् । तन्नीरंवाससागाल्यानिःशेषंस्थापयेत्ततः । स्थिरीभूतेजलंयत्नात्पात्रान्निष्कासयेच्छनैः । अन्यमंबुविनिःक्षिप्यास्थिरीभूतेतुपूर्ववत् । जलंनिष्काशयेदेवंयावद्यातिविगंधताम् । तावत्पुनःपुनर्नीरंदत्वानिष्कास्यशोधयेत् । पिष्टवद्यद्धितत्पात्रंभवेत्तत्सत्वमीरितम् ।

अर्थ–गेहूं तीन किंवा चार दिन पानीमें भिगोवे फिर उनको हाथोंसे मसलकर छिलका दूर करे और उसके सत्वको वस्त्रसे छानलेय, जब वो छनेहुए पानीका गाद नीचे बैठजाय और जल तरने लगे तब उस जलको नितारकर फेंक देवे, और नया पानी डारके हाथसे चलाय देवे जब गाद बैठजाय तब ऊपरके पानीको फैंकदेवे, इस प्रकार उस गेहुंके चूनकी वास जबतक रहे तबतक धोता रहे जब जानेकि अब इसमें वास नहीं है तब उसको निकाल धूपमें सुखाय चूर्ण करके धर रक्खे इसको गेहूंका सत्व और उर्दू बोलीमें इसीको निशास्ता कहते हैं ।

---

१ अदरखका हलुआ–अदरख १ शेर, घी ॥ शेर, चीनी १॥ शेर, मैदा १ छटांक प्रथम अदरखको उबाल उसी जलमें पीस (कि जिसमें उबाला जायगा) मैदा मिलाकर आंचपर चढाकर भूनो पश्चात् १ तारबंध चासनीमें छोडदो और नरम आंचपर भलेप्रकार पचाओ जब पक्क होजावे तो उसको उतारलो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सार्द्धभागांहिसत्वस्यासितांनीरेसमेपचेत् । द्वितारेचसितापाकेतत्सत्वंचशनैःशनैः । क्षिपन्संचालयेद्दर्व्यायावद्गाढंभवेत्प्रिये । ततस्त्वाज्यंक्षिपन्युक्त्याचालयित्वातिवेगतः । सिद्धंज्ञात्वासमुत्तार्यघट्टयेच्चभृशंदृढम्।तत्रबादामखंडानिचैलाचूर्णादिकंक्षिपेत् । हलुवेतिजनैःख्यातःपौष्टिकोयंबलप्रदः । गुरुःश्लेष्मकरोहंतिवातपित्तेरुचिप्रदः ।

अर्थ—सत्वसे ड्योढी खांड लेकर उसमें बराबरका पानी मिलाय उसकी चासनी करे, जब दुतारी चासनी होजावे तब पूर्वोक्त सत्वको थोडा थोडा डालता जाय और चलाता जाय जबतक गाढा न होय, जब गाढा होने लगे तब उसमें थोडा थोडा घी डाल युक्तिसे जल्दी जल्दी चलावे जब तयार होजावे तब चूल्हेसे उतारलेय, खूब उलटे पलटे जब विशेष गाढा होय तब बादामके टुकडे और इलायचीदानेका चूरा मिलावे इसको हलुआ कहते हैं । यह हलुआ पौष्टिक, बलकारी, भारी, कफकारी, वातपित्तनाशक तथा रुचिकारी है ।

अथ पेडाकृतिगुणाः ।

दुग्धकिट्टेसितांक्षिप्यषोडशांशंचभर्जयेत् । यावच्छुष्कंभवेत्तावद्घृतमीषदपिक्षिपेत् । ततःकिट्टसमांकिट्टेशुभ्रांपुष्पासितांप्रिये । मिश्रयित्वाचतस्याशुरचयित्वाहिपिंडकान् । लोकेपेडाइतिख्यातावातपित्तहरामताः ॥ धातुसंवर्द्धनाःकांते वृष्यावल्याःकफप्रदाः ।

अर्थ—अब पेडा बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं । दूधके खोहामें खोहाका ६ वाँ हिस्सा बूरा मिलाय भुनावे भूनतेसमय थोडा घी डाल जब अच्छी रीतिसे भुनजावे तब उसकी बराबरका बूरा मिलाय उसके गोल गोल पेडे बनावे ये पेडा वातपित्तनाशक, धातुवर्द्धक, वृष्य, बलकारी, और कफकारक है ।

भुनीमलाई—दूध ४ शेर, चीनी ॥ शेर, घी पावभर, प्रथम दूध कढाईमें रख आगपर ओंटाओ जब गाढा होजावे तब गरमागरमकोही मथनियासे उसी कढाईमें धीरेधीरे मथो इसप्रकार मथनेसे अत्यंत झाग निकलेंगे फिर उस दूधके

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

फेनसमेत अंगारोंपर रखदो थोडी देरमें उस दूधमें गाढी मलाई पडजावेगी उसको झरनेसे थाली आदिमें उतारलो फिर उसको छुरीसे कतरकर चौकोन बनाओ पश्चात् कढैयामें घी भर उसको आगपर चढाओ जब घी खूब गरम होजावे तब उसमें उस मलाईको छोडदो जब भुनजावे तब उतारकर एकतारी चासनीमें छोडदो थोडी देरमें किसी पात्रमें निकाललो फिर इसके ऊपर छोटी इलायचीका चूरा बुरकादेवे तो परम स्वादिष्ठ बने ।

मठरी (सकलपारे)–मैदामें घीका मोमन दे जीरा, अजमायन हींग, और निमक मिला जलसे खूब करडा सानलो फिर चकलेपर वेलकर चौखूटे कतर ले पश्चात् घी की कढाईमें छोड दो और मंद मंद आंचसे सेको और उलत्ते रहो जब सिककर लाल रंग होजावे तब उतारलो ।

यदि चुटकीसे इसी मैदाको तोड तोड कर और अँगूठेसे दबा दबा कर घीमें छोड देवे तो इनकोभी मठरी कहतेहैं परंतु ये छःमासेके अनुमान होनी चाहिये और इसी मैदाकी लोई तोड पूडीके माफिक वेलकर घीमें सेकनेसेभी मठरी कहातीहै ।

अथ बर्फीकृतिगुणाः ।

दुग्धकिट्टेसितांक्षिप्यषोडशांशघृतान्विताम्।भर्जयेल्ललनेताव-द्यावच्छुष्कतरंभवेत्।किट्टतुल्यांसितांशुद्धांपाचयित्वाविधा-नतः । त्रितारेचापितत्पाकेतत्किट्टंमिश्रयेत्ततः । समुत्तार्य द्रुतंदर्व्याघट्टयेच्चातिवेगतः । यदापाकेकणान्दृष्ट्वातदाशीघ्रं विनिःक्षिपेत्।घृताक्तेविस्तृतेपात्रेयुक्त्यातंचप्रसारयेत्।द्वयंगु लोत्सेधकंशीतेकृत्वाखंडान्ययेप्रिये।चतुष्कोणानिखंडानिव-रफीतिजनैरियम्।विख्यातापौष्टिकीवृष्यावल्यादोषत्रयापहा।

अर्थ–अब बर्फीके बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं। दूधके खोहा-में उस खोहाका १६ वाँ हिस्सा बूरा और थोडा घी डालके भूने फिर इसके समान खांडकी तितारी चासनी कर उसमेंसे यह भुनाहुआ खोहा डाले और कौचासे खूब चलावे, जब चलाते चलाते उसमें रवाके समान कण दीखने लगे तब एक परात घी चुपडीमें निकाल समान करदेवे, और शीतल होनेपर इसके चौकोने टुकडे कतर लेवे, इसको बर्फी कहते हैं । यह बर्फी पुष्टिकारी, वृष्य, बलकरता, और त्रिदोषनाशक है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जैपुरमें इसमें कंदके टुकडे और सुगंधित वस्तु डालतेहैं और इसको कलाकंद कहते हैं ।

मीठी पूरी-मैदा १ सेर, घी डेढपाव, मिश्री पावभर, पिस्ता आधपाव, बदाम आधपाव, अदरखका रस २ तोले, दालचीनी दो मासे, लोंग २ मासे प्रथम मिश्रीका रवा पीसकर उसमें बादाम और पिस्तेके टुकडे टुकडे करके और लोंग तथा अदरखका रस मिलाकर तयार रक्खो फिर मैदेमें आधपाव घीका मोमन देकर मलके गरम जलसे सानलो जब अच्छीरीतिसे सानलो तब चूल्हेपर कढाई चढाय घी छोडदो, फिर उस सनीहूई मैदाकी लोइ तोड उस लोईके भीतर उक्त मिश्री मेवा आदिके चूर्णको भर कचोरीके सदृश वेलकर घीमें छोडदो जब सिक जावे तब उतारलो ।

अमानुषीयभक्षण ।

अथ पलगर्भापूलिका ।

पलंनिरस्थिप्रस्थैकंकृतंसूक्ष्मतरंनवम्। पलैकमार्द्रकक्षोदमाम्र माम्रस्यचूर्णकम्। भृष्टधान्यरजश्चाम्रमर्द्धाम्रंचरसोनकम्।सा-र्द्धाम्रंलवणंप्रस्थंघृतंटंकंमरीचकम्।समितांप्रस्थैकमितांचतु राम्रंपलांडुतः । कर्षमेलादिकंसर्ववेसवारंसमाहरेत् । चु ल्लयांतप्तेक्षिपेद्भांडेघृतस्यकुडवत्रयम्। घृतेतप्तेक्षिपेत्तत्रसूक्ष्मं खंड्यपलांडुकम्। ताम्रीभूतेपलांडौचपलंक्षिप्याविचालयेत् । शृंगवेरंचलवणमाम्रचूर्णरसोनकम् । मरिचंवेसवारंचधान्यकं पाचयेच्छनैः । शुष्केमांसरसेनीरंक्षिपेत्तत्रानुमानतः । केशु ष्केचपलेपक्केकुर्याच्छीतंमनोहरे । ततोघृताक्तांसमितांमर्दये दंवुनाभृशम् । तस्याअर्द्धपलंनीत्वाकूपिकांरचयेत्प्रिये । त-न्मध्येपूर्यतन्मांसंमुद्रयित्वाचवेल्लयेत् । तांपूलिकांपचेदाज्ये पलगर्भाहिसास्मृता । बल्यापुष्टिप्रदावृष्यारुच्यावातहरामता ।

अर्थ--अब यहाँसे आगे राक्षसीभक्षण पदार्थ लिखते हैं तहां पलगर्भा पूडीकी विधि और गुणदोष कहते हैं । हड्डी रहित उत्तम मांस शस्त्रकरके

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रथम बारीक कराहुआ ६४ तोले लेय, बारीक कुटाहुआ अदरख ४ तोले, अमचूर ४ तोले, भुनाहुआ धनियेका चूरा ४ तोले, लहसन २ तोले निमक ६ तोले, घी ६४ तोले, और एलादिक वेसवार एक तोले, ये सब समान तयार करके फिर एक पात्र चूल्हेपर धर नीचे आग जलावे जब पात्र गरम होजावे तब उसमें ४८ तोले घी डालके तपावे फिर उसमें कांदेके टुकडे करके गेरे जब वो लाल होजावें तब उसमें अदरखआदि जो ऊपर कह आए वो सर्व वस्तू मांसमें मिलायके गेरे और कलछीकी दंडीसे बराबर चकाय देवे, जब मांसका रस सूखजावे तब उसमें अनुमानमाफिक जल गेरके सिजावे; जब पानी सूखके मांस पकजावे तब उसको चूल्हेसे उतार लेवे फिर गेहूंकी मैदाको उसन उसकी दो तोलेकी लोईमें वो मांस भरके चकला वेलनसे वेलकर पूरी करे, उसको घीमें सेके तो इसको पलगर्भा पूडी कहते हैं। यह बलकारी, पुष्टिकारक, वृष्य, रुचिकर, और वातनाशक है।

अथ मांसकृतिगुणाः ।

प्रस्थैकमामिषंसर्पिःसद्यस्कंचशरावकम्।कुडवैकःपलांडुःस्या-
द्विपलेचरसोनतः । पलमेकंचलवणंशृंगवेरंपलंमतम्।दाधिप्र-
स्थार्द्धंकंकांतेसंतानीतुचतुःपला । द्राविडीश्रीप्रसूनंचका-
श्मीरंधर्मपत्तनम् । पृथक्टंकमितंचैववादामंकुडवोन्मितम्।
मांसखंडानिसंक्षाल्यत्रिधानीरेणयत्नतः । लवणंशृंगवेरांबुद-
धितत्रविनिःक्षिपेत्।घृतंभांडेसुसंताप्यतत्रक्षिप्त्वापलांडुकम् ।
ताम्रवर्णंचतद्दृष्ट्वातदामांसादिकंक्षिपेत् । भर्जयेद्भर्जनेकाले
क्षिपेन्नीरंरसोनजम् । किंचित्किंचिन्मुहुस्तावद्यावत्स्याद्घृत-
शेषकम्।लवंगैलामरीचानांकिंचिन्नीरंततःक्षिपेत् । आमिषंच
मृदुंदृष्ट्वावादामापिष्टकंक्षिपेत् । संतानिकांचतत्सार्द्धंक्षिपेदंबु
रुहेक्षणे । पंचनिंबुकनीरेणसंपिष्टंकुंकुमंक्षिपेत् । अंगारेषुक्षणं
न्यस्यसमुत्तार्यनिषेवयेत् । इदंबल्यंचवृष्यंचगुरुकांतिकफ-
प्रदम् । वातघ्नंरुचिकृत्कांतेकिंचित्पित्तकरंमतम् । सूपशास्त्र-
विधानज्ञैःकीर्तितंललनोत्तमे ।

अर्थ–अब मांसकी विधि और गुणदोष कहते हैं। मांस ६४ तोले, घी ३२ तोले, प्याज १६ तोले, लहसन ८ तोले, निमक ४ तोले, अदरख ४

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तोले, दही ३२ तोले, दूधकी मलाई १६ तोले, इलायचीके दाने तीन मासे, लोंग तीन मासे, केशर ३ मासे, मिरच ३ मासे, और बादाम १६ तोले, ये सब वस्तू तयार करके धर रक्खे, फिर मांसके टुकडेनको पानीसे तीन दफे धोय उनमें निमक, अदरखका रस, और दही मिलायकर धर रक्खे, फिर चूल्हेपर देग चढाय उसमें घी डालके तपावे, जब घीमें धूंआ उठने लगे तब लहसनके टुकडे गेरे जब वो लाल होजावे तब मांस गेरके भूने, भूनते समय उसमें थोडा थोडा लहसनका रस बारंबार डारे जबतक घी शेष रहे तबतक चलावे फिर लोंग, इलायची, मिरच, ये पानीमें पीस उसमें गेरे और सिजावे जब मांस सीजकर नरम होजावे तब बादाम पीसके और उसमें मलाई मिलायके डाले, पीछे पांच नींबुओंका रस काढके उस रसमें केशर पीसके उस मांसमें मिलावे फिर अंगारोंपर आध घडी धरकर उतार लेवे यह मांस बलकारी, वृष्य, भारी, कांति, और कफ करता, वातनाशक, रुचिकर, और किंचित् पित्तकारी है ।

अथान्यप्रकारमाह ।

प्रस्थैकमामिषंसद्यंक्षालयेदंबुनात्रिधा । कुडवैकंघृतंभांडेता-
पयेत्तत्रनिःक्षिपेत् । पलांडुद्विपलंक्षुण्णंतत्पक्वेचामिषंक्षिपेत्।
टंकमेकंहरिद्रातोलवणंपलसंमितम्।भर्जत्यस्मिन्नसोनस्यक
षैकस्यजलंपलम्। किंचित्किंचित्क्षिपंस्तत्रचालयेच्चशनैःश
नैः । घृतशेषंभवेद्यावत्ततोनीरजलोचने । तप्तंनीरंक्षिपेत्त-
त्रसार्द्धप्रस्थप्रमाणकम् । धान्यकस्यपलंधन्येभर्जितस्यार्द्र-
कंपलम्। कोलैकंमरिचंपत्रंत्वचंचैलांलवंगकम्। पृथक्टंकंव
रारोहेपेषयित्वाविनिःक्षिपेत् । मृद्वीभूतंसमुत्तार्यभजेद्बल्यंरु
चिप्रदम् ॥

अर्थ—अब मांसकी दूसरी विधि कहते हैं मांस ६४ तोले लेकर उसको तीनवार जलसे धोय धर देवे, फिर चूल्हेपर देग चढाय १६ तोले घी डालके तपावे और उसमें ८ तोले कांदेके बारीक टुकडे करके डाले जब वो लाल होजावे तब मांस डालके उसमें पाव तोला हलदी डाले, तथा चार तोला निमक, डाल कलछीसे चलाता जाय तथा उसमें १ तोला लहसन, ४ तोले पानीमें पीसके थोडा थोडा वारंवार गेरे, इस प्रकार जब पानी जरके

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

घी बाकी रहे तबतक भूने, और चलाता रहे फिर ९६ तोले गरम पानी डाल उसमें भूनाहुआ धनियाका चूरा ४ तोले, अदरख ४ तोले, मिरचका चूरा आध तोला, तथा तेजपात, दालचीनी, इलायचीके दाने और लौंग इनका चूरा प्रत्येक पाव पाव तोला डालके सिजावे, जब नरम हो जाय तब उतार लेवे यह बलकारी, तथा रुचिकारक है ।

अथ शाकामिषकृतिगुणाः ।

आमिषंप्रस्थकंसर्पिःसद्यस्कंचशरावकम् । पलांडोःकुडवैकं स्याद्रसोनस्यपलद्वये । लवणंचपलंकांतेशृंगवेरंपलंप्रिये । निंबुकाःपंचलोलाक्षिदधिप्रस्थार्द्धमेवच । मरिचंकुंकुमंचैव पृथक्टंकंमनोहरे । धान्यकंपलमेकंचहरिद्राकोलसंमिता । यच्चेष्टपत्रपुष्पादिशाकंकंदादिकंतुवा । प्रस्थंशस्त्रेणसंशोध्य पृथक्पात्रेनिधापयेत् । त्रिधानीरेणसंक्षाल्यचामिषंसुप्रयत्नतः । शृंगवेरांबुलवणंदधिधान्याकमेवच । आमिषेसकलंकांतेमिश्रयित्वानिधापयेत् । ततस्ताप्यघृतंभांडेक्षिपेत्तत्तेपलांडुकम्।ताम्रीभूतेपलांडौचक्षिपेत्तत्रविभावरीम् ।ततःक्षिप्रंक्षिपेत्तत्रयत्सर्वंचामिषादिकम् । भर्जयन्संक्षिपेत्तत्ररसोनांबुपुनःपुनः । केशुष्केचक्षिपेच्छाकंभर्जयेच्चततःपुनः । किंचिन्नीरंविनिःक्षिप्यपाचयेच्चशनैःशनैः । पक्वंज्ञात्वाक्षिपेत्तत्रनिंबुनीरं सकुंकुमम् । समुत्तार्यनिषेवेतवीर्यवृद्धिकरंपरम् । शाकामिषमिदंकांतेकांतिदंरुचिकारकम् ।

अर्थ–अब शाकामिषकी विधि तथा गुणदोष कहते हैं । मांस ६४ तोले, घी ३२ तोले, कांदा १६ तोले लहसन आठ तोले, निमक, ४ तोले अदरख ४ तोले, नींबू ५ तोले, दही ३२ तोले, मिरच, तथा केशर पाव पाव तोले, भूना धनिया ४ तोले, हलदी आधे तोले, और जो शाक, पत्र फूल, अथवा कंद अपनेको प्रिय होय वो बनराहुआ ६४ तोले, इसप्रमाण सर्व पदार्थ न्यारे तयार करके धर देवे फिर मांसको तीनवार पानीसे धोयकर उसमें अदरखका पानी, निमक, दही, और धनिया मिलायकै धरे,फिर चूल्हेपर देगची चढाय घी डालके गरम करे जब घी गरम होजावे तब उसमें प्याजके कतरे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हुए टुकडे डाले जब वो लाल होजावे तब उसमें हलदी डाले फिर मांसादि सर्व वस्तू डाल देवे, और कलछीसे चलावे, भूनते वख्त उसमें थोडा थोडा लहसनका पानी वारंवार डालता जाय और चलाता जाय जब पानी सूखजाय तब उसमें शाक (भाजी) डाल मंद आंचसे सिजावे जब पकजावे तब निंबूका रस निचोड उसमें केसर पीसके डाल देवे, और उतार कर धर देवे यह शाकामिष धातुवर्द्धक, कांतिकारक, और रुचिकारक है।

अथ शूलपक्कमांसकृतिगुणाः।

आमिषंशस्त्रसंक्षुण्णंप्रस्थैकंलवणंपलम्। शृंगवेरंशरावार्द्धंव-ल्लिजंशुक्तिसंमितम्। धान्यकंचपलंबालेपलांडुर्द्धिपलोन्मि-तः। दधिप्रस्थार्द्धकंटंकंकुंकुमंचलवंगकम्। संतानिकाचस-र्पिश्चबादामंकुडवंपृथक्। टंकमेलारजोबालेरसंनिंबुचतुष्क-जम्। धान्याकंभर्जितंपिष्ट्वाचान्यत्सर्वमभर्जितम्। वस्त्र-बद्धविनिर्मस्तुदध्निसर्वंविमिश्रयेत्। लेपयित्वात्विदंशूलेत-तःसूत्रेणवेष्टयेत्। निर्द्धूमांगारकेशूलंसन्निधायविपाचयेत्। शूलपक्कमिदंमांसंधातुपुष्टिकरंमतम्। बल्यंवृष्यंतथारुच्यं कफकांतिविवर्द्धनम्।

अर्थ—अब शूलपक्कमांसकी विधि और गुणदोष कहते हैं। शस्त्रसे बारीक काटाहुआ मांस ६४ तोले, निमक ४ तोले, अदरख १६ तोले, मिरच २ तोले, धनिया ४ तोले, प्याज ८ तोले, दही ३२ तोले, केशर तीन मासे, लौंग ३ मासे, दूधकी छाछ १६ तोले, घी १६ तोले, बादाम १६ तोले, इलायचीके दाने ३ मासे और चार निंबुओंका रस ये सर्व वस्तु तयार करके धरे, फिर इनमेंसे धनियेको भूनके पीसे, और बाकीकी सब जिनस बिना भूनी पीसे, फिर इन सब वस्तुओंको एकत्र कर पानीरहित दहीमें डालके मिलायले और लोहेके कांटेपर इसका एक अंगुल मोटा लेप करे और डोरासे लपेट देवे, फिर अंगारोंपर भूने यह शूलपक्कमांस धातुपुष्टिकारक, बलकर, वृष्य, तथा रुचिकर हो, कफ, तथा कांति, इनको बढानेवाला है।

शूलपक्कस्यान्यो विधिः।

पिशितंशस्त्रसंक्षुण्णंप्रस्थैकंलवणंपलम्। शृंगवेरंपलांडुश्चधान्य-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कंचपलंपृथक् । सद्यमाज्यंचकर्षार्धंसर्पिषोद्विगुणंदधि । कोलैकंमरिचंसर्वंमिश्रयित्वाचपूर्ववत् । पाचयेच्चगुणैश्चापिकिंचिन्न्यूनंहिपूर्वतः । शूलपक्वमिमंचापिमांसंतद्विद्धिरीरितम् ।

अर्थ–अब शूलपक्वमांसकी दूसरी विधि कहते हैं । छुरेसे बारीक टुकडा कराहुआ मांस ६४ तोले, निमक ४ तोले, अदरख, प्याज, धनिया, ये प्रत्येक चार चार तोले घी ८ तोले, दही १६ तोले, और मिरच ६ मासे, ये सब वस्तु लेकर ऊपर कहीहुई विधिके अनुसार बनाय ले इसकोभी शूलपक्व मांस कहते हैं ।

अथाखंडितखगामिषकृतिगुणाः ।

अंत्रेणरहितंशुद्धंतित्तिरंनिर्दलीकृतम्।भृशंशूलेनसंभेद्यस्थापयेत्तंचभाजने । शृंगवेरंपलंधान्यंकुडवार्द्धंसुभर्जितम् । लवंगंद्राविडीबीजंमाषमात्रंपृथक्प्रिये । द्विपलंदधिनिर्नीरंपलांडुः पलसंमितः । संतानिकाचतुःकर्षाकर्षैकश्चरसोनकः । कर्षद्वयंसुलवणंलेपयित्वाविधानतः । तित्तिरंपाचयेदाज्येत्रिदोषापहमुत्तमम् । बलवर्णप्रदंवृष्यंप्रमदामदगंजनम् । एवमन्यंखगंपक्त्वागुणास्तत्तत्खगोद्भवाः । संप्रोक्तंनामतश्चेदमखंडितखगामिषम् । खंडितंपाचयेद्युक्त्यासामान्यामिषवत्प्रिये ।

अर्थ--अब अखंडित पखेरूके मांसकी विधि तथा गुणदोष कहते हैं आंतडे तथा पंख कटेहुए तीतरको ले उसको कांटेसे जगेजगेपर गोंदे, एक बासनमें धरे फिर अदरख ४ तोले. भूनाहुआ धनिया ८ तोले, लोंग, इलायची दाने, प्रत्येक एक एक मासे पानी निकलाहुआ दही ८ तोले, कांदा ४ तोले, दूधकी मलाई ४ तोले, लहसन १ तोला और निमक २ तोले, ये सर्व पदार्थ एकत्र मिलाय इसका तीतरके ऊपर लेप करे तथा घीमें तले यह खगामिष त्रिदोषनाशक है, इसीप्रकार और कोई दूसरे प्रकारके पक्षीको पकाना चाहिये उसके गुण उसीउसी पक्षीके समान होते है । इसको अखंडित खगामिष कहते हैं, अथवा इच्छा होय तो टुकडे करके सामान्य मांसके सदृश पचावे ।

अथ मांसवटककृतिगुणाः ।

सूक्ष्मंशस्त्रेणसंक्षुण्णमामिषंद्विशरावकम्।लवणंपलमेकंचशुं-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गवेरंचतुःपलम्।पलांडोर्द्विपलंकोलंवाल्छिजस्यवरांगने । द्राविडीश्रीसुमंटंकंपृथग्धान्यंपलोन्मितम् । शरावंदधिलोलाक्षि संतानीतुचतुःपला । बादामंकुडवंशुद्धंटंकमेणाक्षिकुंकुमम् । र्पिष्ट्वातिसूक्ष्मकंसर्वंमिश्रयित्वासकुंकुमम्।वस्त्रबद्धंप्रयत्नेनदधीहनिर्जलीकृतम् । तत्संतानिकयासार्द्धंमिश्रयेत्सकलंपले। एतस्यवटकान्कृत्वातप्तेसंपाचयेद्घृते।कुंकुमाभान्सुनिष्कास्य स्थापयेद्भाजनेशुचौ । मांसस्यवटकाबल्यावृष्याःकांतिरुचिप्रदाः ।

अर्थ—अब मांसके वडान्की विधि तथा गुणदोष कहते हैं । शस्त्रसे बारीक कतरा हुआ मांस ६४ तोले, निमक ४ तोले, अदरख १६ तोले, कांदा ८ तोले, मिरच ६ मासे, इलायची ३ मासे, लोंग ३ मासे, धनिया ४ तोले, दही ३२ तोले; दूधकी मलाई १६ तोले, बादाम १६ तोले, तथा केसर ३ मासे, इस प्रमाण सब वस्तु ले इनमें जो पीसनेलायक हो उनको पीस पानी निकले हुए दहीमें मलाईकेसाथ सब मांसादिक मिलाय देवे फिर उस मांस के वडे करे और घीमें उनको सेक लेवे ये बलकारी, वृष्य, कांतिकारी और रुचिकारी है ।

अथ मत्स्यपाककृतिगुणाः ।

मत्स्यमांसंशरावैकंद्विपलंस।पैरुत्तमम्।शृंगवेरंद्विकर्षंचपलांडुश्चपलार्द्धकः । संतानिकापलमिताकुडवंनिर्जलंदधि । धान्यकंचद्विकर्षंस्याद्वेसनस्यपलंमतम्।टंकैकंमरिचंचैलालवंगं माषकंपृथक्।कोलैकंलवणंचाम्लंपलमेकंघटस्तानि । मत्स्य खंडानिशूलेनभित्त्वातेषुचयत्नतः । बेसनंदिह्यसंक्षाल्यभूयो नीरेणचत्रिधा । ततःसंपेषितंसूक्ष्मंशृंगवेरंमदोद्धते । धान्यकंभर्जितंपिष्टंमरिचादिविचूर्णितम् । दध्निसंतानिकायांचसर्वं चूर्णंविमिश्रयच । लेपयेन्मत्स्यखंडेषुततःकुर्यादमुंविधिम् । चुल्ल्युपरिस्थितेभांडेतप्तेसद्यंघृतंक्षिपेत् । घृततप्तेपलांडुंच

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संक्षिपेत्खंडशःकृतम् । ताम्रीभूतेपलांडौचमत्स्यखंडानि संक्षिपेत् । संवर्त्यपाचयेत्सम्यग्वल्यंवृष्यंरुचिप्रदम् ।

अर्थ–अब मत्स्य अर्थात् मछलीके बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं । मछलीका मांस ३२ तोले, घी ८ तोले, अदरख २ तोले, कांदा २ तोले, दूधकी छाछ ४ तोले, पानी निकला दही १६ तोले, भूना धनिया २ तोले, बेसन ४ तोले, मिरच ३ मासे, इलायचीके दाने १ मासा, लोंग १ मासा, निमक २ तोले, और खटाई ४ तोले, इस प्रमाण सब वस्तु तयार रक्खो फिर मछलीके टुकडोंको कांटेसे गोंद उसमें बेसन लगाय पानीसे तीन बार धोवे, फिर अदरख, भूना धनियां, मिरच आदिका चूरा, दही, तथा मलाई, इनको मिलाय उसको मछलीके टुकडेपर लेप कर धरदेवे, फिर चूल्हेपर बरतन चढाय उसमें घी डाले जब वो गरम होजावे तब उसमें कांदेके टुकडे गेरे जब वो भुनकर लाल होजावे तब मछलीके टुकडे डालके कलछीसे बराबर चलायकर भूने ये मछलीका मांस बलकारी, वृष्य, और रुचिकारक है ।

अथ मत्स्यवटीकृतिगुणाः ।

ईषद्बेसनलिप्तानिमत्स्यखंडान्ययेप्रिये । क्षालयेदंबुनासम्यक्त्रिधापात्रेन्यसेत्ततः । प्रस्थंचेन्मत्स्यखंडानामार्द्रकस्यपलं तदा । पलमेकंपलांडोश्चरसोनस्यैकमक्षकम् । दध्यर्द्धकुडवंरात्रीटंकैकाचात्रसंमता । कुडवार्द्धमसूरस्यपिष्टंवाचणकस्यच । तंदुलानांतुवाकांतेलवणस्यपलार्द्धकम् । शृंगवेरादिकंसर्वसूक्ष्मंपिष्ट्वाविमथ्यच । गाढंनीरेणलोलाक्षिमत्स्यखंडेषुलेपयेत् । घृतेतैलेऽथवायुक्त्यापाचयेद्विकटाहके । मत्स्यवट्यइमावृष्याःशुक्रलारुचिपुष्टिदाः । कफापित्तकरा यर्हितैलपक्वाघटस्तनि ।

अर्थ–अब मत्स्यवटी अर्थात् मछलीकी वडी बनानेकी विधि और गुणदोष कहते हैं मछलीके टुकडे कर उनमें थोडा बेसन चुपड तीन वार जलसे धोकर ६४ तोले ले, अदरख ४ तोले, कांदा ४ तोले, लहसन १ तोला, दही ८ तोले, हलदी पाव तोला, मसूरका अथवा चनेका किंवा चावलका चून ८ तोले, निमक २ तोले, ये सर्व वस्तु लेकर उनमें जो कूटनेके लायक हा,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उनको कूट सबको एकत्र कर पानीसे मथे फिर उन टुकडोंपर लेप कर गरम घी या तेलमें सेके, ये मछलीके वडे वृष्य, वीर्यदायक, और रुचि तथा पुष्टिको देते हैं। परंतु यदि तेलमें तलेजावे तो कफ और पित्त इनको उत्पन्न करता होते हैं।

अथ मत्स्यौदनम्।

प्रस्थैकंमत्स्यजंमांसंप्रस्थैकंतंडुलंप्रिये । पाचयेत्तैलसंयुक्त-मिदंमत्स्यौदनंमतम् । अयिमत्स्योदनंबालेत्रिदोषामयका-रकम् । वह्निमांद्यप्रदंतद्वद्विशेषात्कफकारकम् ।

अर्थ-सेर १ मच्छीका मांस तथा एक सेर चावल इन दोनोंको प्रथम तेलमें भून फिर भातकी विधिसे इसको बनावे इसको मत्स्यौदन कहतेहैं। यह मत्स्योदन त्रिदोषसंबंधी रोग मंदाग्नि और कफ इनको करेहै।

अथ मांसौदनम्।

तंडुलानांसुसूक्ष्माणांप्रस्थंप्रस्थंनवंघृतम् । छागमांसंतथा प्रस्थंलवणंपलसंमितम् । द्राविडीश्रीप्रसूनंचपृथक्टंकंवरां-गने । पृथक्कोलंवरारोहेवल्लिजंकृष्णजीरकम् । दधिमिष्टंशरा वैकंसंतानीतुचतुःपला । कुडवैकंप्रियेदुग्धंपलांडुस्तत्समो मतः । शृंगवेरंपलंकांतेतत्समोहिरसोनकः । मांसखंडानिसं-क्षाल्यसप्तधावारिणाभृशम् । तंडुलांश्चत्रिधाधौतान्स्थापये-त्पृथगंबुनि । लवणार्द्धंपृथक्पेष्यमांसखंडानिसंदिहेत् । शे-षार्धलवणंनीरमार्द्रकस्यरसोनकम् । क्षिपेन्मांसेमिश्रयित्वा स्थापयेद्राजनेशुचौ ।

अर्थ-अब मांसौदनकी कृति तथा गुणदोषको कहतेहैं महीन चावल १ सेर नवीन घृत १ सेर, नोन १ पल, इलायची, और लोंग ये प्रत्येक एक २ टंक, काली मिरच और काला जीरा आधे २ कर्ष, मीठा दही आधसेर, दूधकी मलाई १६ कर्ष, दूध १६ कर्ष, प्याज १६ कर्ष, अदरख १ पल, और लहसन १ पल, ये पदार्थ तयार करके धरे प्रथम मांसके टुकडे पानीसे सात-वार धोवे, और चावल ३ बार धोकर भीजने देवे पीछे २ कर्ष पिसा नोन मांसमें मिलावे और दोकर्ष नोन अदरखका रस और लहसन ये उसमें मिलाय शुद्ध बटलोई या देगमें चढाय देवे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

घृतंभांडेसुसंताप्यक्षिपेत्तत्रपलांडुकम्। ताम्रवर्णंचतंदृष्ट्वामांसंतत्रविनिःक्षिपेत् । भर्जयेद्घृतशेषंतंदुग्धसंतानिकांततः । वस्त्रपूतंक्षिपेत्तत्रतंडुलांश्चविचक्षणः । लवंगादिभवंकल्कंततंकंप्रस्थकद्वयम्। क्षिपेद्वह्निंशनैर्दत्वासिद्धमंगारकेन्यसेत् । क्षणादुत्तार्यसंस्थाप्यभजेत्कोष्णं वरानने । तेनवीर्यंबलंकांतिंकफंप्राप्नोतिमानवः । वातातंकविमुक्तःसन्रामयेद्रमणीं भृशम् । इदंमांसौदनंस्निग्धंगुरुतज्ज्ञैःप्रकीर्तितम् ।

अर्थ--प्रथम उक्त भांडमें घृतको तप्तकर उसमें कांदेके टुकडे डाले जब वो लाल होजावें तब उसमें मांसको गेरे पीछे उसमेंसे पानीको सुखाता हुआ जबतक घृत शेष रहे तबतक करछीसे धीरे धीरे भूने, तदनंतर दूध और दूधकी मलाई वस्त्रसे छानके उसमें डाले पीछे चावल डाले और लौंग वगैरह पानीमें पीसके डाले तथा दोसेर गरमजल उसमें गेरे पीछे मंदाग्निपर पकायकर अंगारोंपर धरदेवे,फिर एकक्षणमें उतार किंचित् किंचित् गरमागरमको भोजनकरे इस्से वीर्य, बल, कांति, तथा कफको मनुष्य प्राप्त होवे, और वातसंबंधी रोगोंसे छूट अनेक स्त्रीभोगनेकी सामर्थ्यको प्राप्तहोवे, यह मांसौदन स्निग्ध और भारी है । इति भोजनविधिः ।

भोजनके समयवर्जित दृष्टि ।

हीनदीनक्षुधार्त्तानांपापपाखंडरोगिणाम् ।
कुक्कुटाहिशुनांदृष्टिर्भोजनेनैवशोभना ।

अर्थ--हलके मनुष्य, भिखारी, भूखा, पापी, पाखंडी, रोगी, मुरगा, सर्प, और कुत्ता, इनकी दृष्टि भोजनपर गिरनेसे उत्तम नहीं है । इसीसे मनुष्यको उचित है कि, इनकी दृष्टि बचायकर भोजन करे । तथा बिल्ली घुघु और शत्रु आदिकीभी दृष्टि उत्तम नहींहै ।

शुभ दृष्टि ।

पितृमातृसुहृद्वैद्यपाककृद्धंसबर्हिणाम् ।
सारसस्यचकोरस्यभोजनेदृष्टिरुत्तमा ।

अर्थ--माता, पिता, सुहृद (भाई, मित्र, और संबंधी) वैद्य, रसोय्या, हंस, मोर, सारस, और चकोर [तथा मृग, खबूतर, तोता, मैना आदि) की दृष्टि भोजनके समय पडना उत्तम है । परंतु बहुत भूखे होतो इन-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कीभी दृष्टि वर्जित है । और किसी किसी दुष्ट माता पिता भाई आदिकीभी दृष्टि दुष्ट होती है । राजा महाराजा और सेठ साहूकारोंको विषमिश्रित अन्नकी प्रथम परीक्षा कर फिर भोजन करना चाहिये सो लिखते हैं ।

विषमिश्रित अन्नकी परीक्षा ।

ध्वांक्षःस्वरान्विकुरुतेऽत्रपिकात्मजश्चबभ्रुःशिखंडितनयश्चभ-
वेद्विद्विष्टः । क्रौंचःप्रहृष्यतिविरौतिचताम्रचूडश्छर्दिशुकः
प्रकुरुतेविलपन्तिकीशाः । हंसाःस्खलन्तिगतिषुप्रसभंचको-
रोधत्तेविरक्तिमचिरेणविलोक्यदृष्ट्वा । अन्नाद्विषेणकलिता-
दतएवतेभ्योदत्वाऽल्पमन्नमथपात्रगतात्ततोद्यात् ।

अर्थ-विषमिश्रित अन्नके भक्षणसे कौएका शब्द बिगड जाता है, और कोकिल, नौला, मोर ये विष मिले अन्नको खायकर प्रसन्न होते हैं । क्रौंच-पक्षी आनंदित होता है । मुरगा विष मिले अन्नको खायकर पुकारता है । तोता वमन करता है । और बन्दर विलाप करतेहैं । हंस विषमिश्रित अन्न भक्षणसे गमन करना भूल जावे । और चकोरपक्षी विष मिले अन्नको देख अत्यंत विरक्तताको धारण करता है इसीसे मनुष्यको उचित है कि, भोजनके थालमेंसे कुछ थोडा अन्न प्रथम इनको देकर फिर आप भोजन करे ।

विषमिश्रित अन्नकी अन्य परीक्षा ।

भक्तंपर्युषितोपमंविषयुतंसूपोहरित्फेनिलोमांसंनीरसनीलरा-
जिझटितिव्याशुष्यतिव्यंजनम् । क्षीराद्यन्तुपिशंगपीतत-
तियुक्पुष्पंविगन्ध्यंबरंश्यामंचांबुनिचान्यदेवमुदितंवैरस्यवै-
वर्ण्ययुक् ।

अर्थ-विष मिलाहुआ ताजा भात-बासेके समान होजाता है, विष मिली दाल हरी, और झागदार होजाती है, ताजा मांस विषके मिलनेसे तत्काल रसहीन नीली रेखाओंसे व्याप्त होजाता है । आर्द्र व्यंजन विषके मिलापसे सूख जाता है । दूध आदि पदार्थमें विषके मिलाप होनेसे कुछ पिलास अथवा हलदीके समान पीली रेखाओंसे व्याप्त होजाता है । फूलमें विषके मिलापसे दुर्गंध और कालौच आय जाती है । इसीप्रकार सूखा अन्न, फल, नल, बीडी, आदिमें विष (जहर) मिलनेकी परीक्षा करे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दृष्टिदोषनिवारणोपायः ।

अन्नंब्रह्मारसोविष्णुर्भोक्तादेवोमहेश्वरः ।
इतिसंचिंत्यभुंजानोदृष्टिदोषैर्नलिप्यते ॥

अर्थ–अन्न ब्रह्मा, रस विष्णु, और इसका भोजन कर्त्ता महेश्वरदेव है । इस प्रकार मनमें चिंतवन करके भोजन करनेसे फिर दृष्टि नहीं लगे ।

अंजनीगर्भसम्भूतंकुमारंब्रह्मचारिणम् ।
दृष्टिदोषविनाशायहनुमन्तंस्मराम्यहम् ॥

अर्थ–अंजनीके गर्भसे प्रगट कुमारअवस्थासेही ब्रह्मचारी ऐसे हनूमानका दृष्टिदोषनिवारणार्थ मैं स्मरण करताहूं ।

भोजनपात्र ।

हैमेवाराजतेकांस्ये आयसेकाचनिर्मिते ।
पात्रेपत्रमयेवापिनरःकुर्वीतभोजनम् ॥

अर्थ–सुवर्ण, चांदी, कांसा, लोह, और कांचके पात्रमें तथा पत्तलमें भोजन करना चाहिये ।

पात्रोंका पृथक् पृथक् फल ।

दोषघ्नंदृष्टिदंपथ्यं हैमंभोजनभाजनम् । रौप्यंभवतिचक्षुष्यं पित्तघ्नंकफवातकृत् । कांस्यंबुद्धिप्रदंरुच्यं रक्तपित्तप्रसादनम् । पैत्तलंवातकृद्रूक्षमुष्णंकृमिकफप्रणुत् । आयसेकाचपात्रेचभोजनंसिद्धिकारकम् । शोथपाण्डुहरंबल्यं कामलापहमुत्तमम् । शैलजेमृन्मयेपात्रे भोजनंश्रीनिवारणम् । दारुद्रवंविशेषेण रुचिदंश्लेष्मकारिच । पात्रंपत्रमयंरुच्यंदीपनंविषपापनुत् ।

अर्थ–भोजनके पात्र (थाली, कटोरी, आदि) यदि सुवर्णके होवे तो त्रिदोषनाशक, दृष्टि बढानेवाले और पथ्य ऐसे जानने । चांदीका भोजनपात्र नेत्रोंको हितकारी, पित्त हरणकर्त्ता, तथा वात कफकारी जानना । कांसेका पात्र बुद्धि बढावे, रुचि प्रगट करे, और रक्तपित्तको शांति करे । और पीतलका पात्र वातकारक, रूखा, तथा शूल, कृमि और कफका नाशक है । लोहेका पात्र वा चुंबक इनका पात्र सिद्धिकारक, तथा सूजन, पांडुरोग, इनका नाशक और बलकारक तथा कामलानाशक है । पत्थरके पात्रमें वा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मट्टीके पात्रमें भोजन करना लक्ष्मीनाशक जानना परंतु चीनीका पात्र इतर जातको शुभ है । लकडीका पात्र विशेष करके रुचि कर्त्ता, और कफकारक जानना । ढाक आदिके पत्तोंकी पत्तलमें भोजन करना रुचिकारी, दीपन और विष, पापको नाश करता जानना ।

तथा च ।

रम्भापत्रेऽशनंहृद्यंरुच्यंवृष्यंबलाग्निदम् । विषश्रमानिलास्रेषु हितंपाण्डौनशस्यते । पालाशपत्रंचमरुच्छ्लेष्मगुल्मोदरकृमीन् । निहन्यात्पीनसंकासंज्वरंचैवातिदारुणम् । अर्कपत्रं स्मृतंरूक्षंकृमिघ्नंपित्तकृत्परम् । गुल्मशूलविषश्वासपांडुकुष्ठकफानिलान् । हन्यात्परमचक्षुष्यंदीपनंपाचनंलघु । पत्रन्तुक्षीरवृक्षाणांतृष्णादाहास्रपित्तनुत् । नलिनादिदलंरूक्षं निंदितंभोजनेहिमम् ।

अर्थ-केलाके पत्तेपर भोजन करना रुचिकारक, हृद्य, वृष्य, बल और अग्निको देनेवाला जानना । तथा विष, श्रम, वातरक्त रोगमें हित है । परंतु पांडुरोगमें वर्जित है । ढाकके पत्तेकी पत्तलमें भोजन करना वात, कफ, गुल्म, उदर, कृमि, पीनस, खांसी, और अतिदारुण ज्वरको नाश करता है । आकके पत्ते रूखे हैं, कृमिको दूर करे और पित्तकर हैं । तथा गोला, शूल, विष, श्वास, पांडुरोग, कुष्ठ, कफ और वातको नाशकर नेत्रोंको परम हित, दीपन, पाचन और हलका है । क्षीरवृक्ष (गूलर वड, आदि) के पत्तोंकी पत्तलमें भोजन करना तृषा, दाह, और रक्तपित्तको दूर करे है । कमलके पत्ते रूक्ष और भोजनमें निंदित कहे हैं ।

जलपात्रमाह ।

जलपात्रंसुवर्णस्यतदभावेतुरौप्यकम् । तदभावेचताम्रस्य तदभावेतुपैत्तलम् । इतिचत्वारिपात्राणिबलबुद्धिप्रदानिच । पवित्रंशीतलंपात्रंवैदूर्यस्फाटिकोद्भवम् । तद्वत्काचभवंप्रोक्तंसर्वाभावेतुमृन्मयम् ॥

अर्थ-पानी पीनेके पात्र (लोटा, झारी, अमृखोरा, गिलास, घंटी आदि) सुवर्णका वा चांदीका तांबेका वा पीतलका ये चारही पात्र उत्तम हैं, इन्हीं को एकके अभावमें दूसरा लेना चाहिये । ये चारों पात्र बल बुद्धिके देनेवा-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लेहैं । वैदूर्यमणि अथवा स्फटिक अथवा कांचका पात्र ये पवित्र तथा शीतल हैं । इनमेंसे कोई न मिले तो इनकी एवजी मट्टीका पात्र (कुल्हडा आदि) लेना चाहिये ।

भोजनके पूर्व भक्षणीय ।

भोजनाग्रेसदापथ्यंलवणार्द्रकभक्षणम् ।
रोचनंदीपनंवह्निजिह्वाकण्ठविशोधनम् ॥

अर्थ–भोजन आरंभ करनेके पूर्व सैंधानिमक और अदरख खाना पथ्य है। रुचिकर, अग्निसंदीपक, तथा जीभको और कंठको शोधन करे है ।

शिष्य–लवणको पित्तकरता होनेसे और अदरखको कटुत्व करके पित्तकारी कहाहै । और क्षुधित पुरुषके प्रथमही पित्त प्रबल होता है, फिर लवणार्द्रक भक्षण कैसे लिखा है ?

गुरु–इस जगे त्रिदोषनाशक सैंधव लवणका ग्रहण है । यथा–

सैंधवंलवणंस्वादुदीपनंपाचनंलघु ।
स्निग्धंरुच्यंहिमंवृष्यंसूक्ष्मंनेत्र्यंत्रिदोषहृत् ।

अर्थ--सैंधानिमक स्वादु, दीपन, पाचन, हलका, स्निग्ध, रुचिकर, शीतल, वृष्य, सूक्ष्म, नेत्रोंको हितावह और त्रिदोषनाशक है, अतएव भोजनके पूर्व इसका ग्रहण है ।

उसी प्रकार आर्द्रक कटुकभी है परंतु मधुरपाकी होनेसे पित्तका विरोधी नहीं है ।

यथा ।

आर्द्रिकाभेदनीगुर्वीतीक्ष्णोष्णादीपनीचसा ।
कटुकामधुरापाकेरूक्षावातकफापहा ।

अर्थ–अदरख मलको तोडनेवाला, भारी, चरपरा, गरम, दीपन, कटुपाकके समय मधुर और रूक्ष है । तथा वात कफ नाशक है ।

दूसरे संयोगस्वभावसेभी पित्तविरोधी नहीं है अतएव " भोजनाग्रे सदा पथ्यं " यह श्लोक लिखा है, " लवणं सैंधवंज्ञेयं चन्दनं रक्तचंदनम् "

द्रवाद्यन्नंतुचेत्सेवेत्तत्राम्बुनपिबेद्बहु । मध्येतुकठिनेभक्ष्येयथेष्टंशस्यतेजलम् । तथाचभोजनस्यान्तेपीतमम्बुबलप्रदम्। परन्तुतन्मुहूर्तेनवातदर्द्धेनचेत्पिबेत् । द्रवप्रधानभुक्तान्तेतत्रापिमात्रयापिबेत् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ—पतले पदार्थ खायकर बहुत जल नहीं पीना चाहिये । कठिन पदार्थ खानेके समय बीच बीचमें यथेष्ट जल पीना चाहिये । उसीप्रकार भोजन के अंतमें जल पीना बलदायक जानना । परंतु वह भोजन करनेके दो घडी अथवा एक घडीके बाद पीवे, यदि पतले (कढी आदि) पदार्थ खानेके पीछे प्यास लगे तो थोडा पानी पीये ।

गुरुपिष्टमयंद्रव्यंतण्डुलान्पृथुकानपि । नजातुभुक्त्वान्खादेन्मात्रांखादेद्बुभुक्षितः । घृतंपूर्वंसमश्नीयात्कठिनंप्राक्ततोमृदु । अन्तेपुनर्द्रवाशीतुबलारोग्यंनमुञ्चति ।

अर्थ—भारी पदार्थ, पिसे अन्नके, अथवा पिट्ठीके पदार्थ, चावल, और चिरवा इनको भोजन करके न खावे । यदि अति क्षुधित होवे तो थोडे खाने चाहिये । भोजनमें प्रथम रोटी इत्यादि कठिन पदार्थ, घृतसे चुपडे, या घृत मिले खाने चाहिये । पीछे मृदु भात, मूंग, खाय । और पीछे छाछ, दही, दूध, पीवे इसप्रकार भोजन करनेसे इस पुरुषको बल और आरोग्य कभी नहीं छोडते किंतु सदैव बने रहते हैं ।

स्वादु अन्नके लक्षण ।

यद्यत्स्वादुतरंतद्धिविदध्यादुत्तरोत्तरम् ।
भुक्त्वायत्प्रार्थ्यतेभूयस्तदुक्तंस्वादुभोजनम् ।

अर्थ—जो जो पदार्थ अति स्वादु होवे उसी उसीको उत्तरोत्तर भोजन करे । जो पदार्थ वारंवार भोजन करकेभी इच्छित होवे उसको स्वादु भोजन कहते हैं ।

स्वादु अन्नके गुण ।

सौमनस्यंबलंपुष्टिमुत्साहंरसनासुखम् ।
स्वादुसञ्जनयत्यन्नमस्वादुचविपर्य्ययम् ।

अर्थ—स्वादु पदार्थ मनको आनंद, बल, पुष्टि, उत्साह, और जिह्वाको सुख करे है और कडुआ पदार्थ मनको दुःख, निर्बलता, कृशता, अनुत्साह, और जीभको दुःख प्रगट करे है ।

योग्यायोग्य अन्न ।

अत्युष्णान्नंबलंहन्तिशीतंशुष्कंचदुर्जरम् । अतिक्लिन्नंग्लानि-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करंयुक्तियुक्तंहिभोजनम् । अतिद्रुताशितोहारोगुणान्दोषान्नविन्दति । भोज्यंशीतमदृब्धंचस्याद्विलंबितमश्नतः ।

अर्थ–अति गरम अन्न बलका नाश करता है, तथा शीतल और सूखा अन्न दुर्जर होता है अर्थात् बडी कठिनतासे पचे है । और अत्यंत गीला अन्न ग्लानि करता है । इसीसे युक्तायुक्त विचार करके भोजन करना चाहिये । अत्यंत जल्दी और अत्यंत देरीमें भोजन नहीं करना चाहिये, जल्दी भोजन करनेसे बडा भारी यही दोष है कि, उस भोज्य पदार्थका गुणदोष मालूम नहीं होता है, उसीप्रकार वह अच्छीरीतिसे चर्वित नहीं होता इसीसे शीघ्र जीर्ण नहीं होवे । और विलंब पूर्वक भोजन करनेसे भोज्य पदार्थ शीतल और स्वादरहित होजाता है ।

त्रिविध गुरु अन्नका वर्जन ।

मन्दानलोनरोद्रव्यंमात्रागुरुविवर्जयेत् । स्वभावतश्चगुरुयत्तथासंस्कारतोगुरुः । मात्रागुरुस्तुमुद्गादिर्माषादिःप्राकृतो गुरुः । संस्कारगुरुपिष्टान्नंप्रोक्तमित्युपलक्षणम् ।

अर्थ–जिन्होंकी मंदाग्नि है उनको भारी (गरिष्ठ) भोजन नहीं भक्षण करना चाहिये, मात्रा, स्वभाव, और संस्कार, इन तीन भेद करके भारी पदार्थ तीन प्रकारका है, मूंग मोठ इत्यादि मात्रा गुरु है अर्थात् अधिक खानेसे भारी होती है । उडद आदि स्वभावसेही भारी है, और पिष्टान्न (चून, मैदा, सूजी आदि) संस्कार गुरुहोते हैं । अर्थात् जब उसकी पूडी रोटी आदि करो तब गरिष्ठ होता है ।

आहारको षड्विधत्व ।

आहारंषड्विधंचोष्यंपेयंलेह्यंतथैवच ।
भक्ष्यंभोज्यंतथाचर्व्यंगुरुविद्याद्यथोत्तरम् ॥

अर्थ--आहार छः प्रकारके हैं, १ चोष्य (जो चूसा जावे जैसे ईख, आम्र आदि) २ पेय है, (जो पीया जावे जैसे पने शर्बत आदि) ३ लेह्य है, (जो लेईके माफिक उंगलियोंसे लिपट जावे जैसें ल्हपसी, सिखरन, कढी आदि) ४ भक्ष्य (जो भक्षण करा जावे जैसे लड्डू, पेडा, बर्फी, आदि) ५ भोज्य (जो भोजन करा जावे जैसे भात मूंग आदि) ६ चर्व्य (जो चबाये जावे जैसे चने, चिरवा, पापड आदि) ये उत्तरोत्तर भारी है

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थात् चोष्य पदार्थसे पेय, पेयसे लेह्य, लेह्यसे भोज्य, भोज्यसे भक्ष्य, और भक्षसे चर्व्य, पदार्थ अधिक भारी अर्थात् अधिक गरिष्ठ है।

गुरुआदिअन्नका परिमाण।

गुरूणामर्धसौहित्यंलघूनांतृप्तिरिष्यते । द्रवोद्रवोत्तरश्चापि नमात्रागुरुरिष्यते । पेयलेह्यादिभक्ष्याणांगुरुंविद्याद्यथोत्तरम् । द्रवाढ्यमपिशुष्कन्तुसम्यगेवोपपद्यते ।

अर्थ-भारी अन्नसे मनुष्यको अर्ध तृप्ति अर्थात् जितने खानेकी इच्छा हो उससे आधा खावे, और हलके पदार्थ पेटभर खाने चाहिये, द्रवपदार्थ कढी, पेयादि भोजन कर पश्चात् तक्रादि अधिक भक्षण कराहुआभी है परंतु उनकी मात्रा बहुत नहीं माननी चाहिये, क्योंकि पीनेके सब पदार्थ हलके हैं, पेय लेह्य इत्यादि भोजन करनेमें उत्तरोत्तर भारी जानने, और, जो पदार्थ शुष्क है उसको आर्द्र पदार्थ मिलायकर भोजन करनेसे उत्तम रीतिसे पाचन होते हैं।

केवल शुष्कान्नके दोष।

विशुष्कमन्नमभ्यस्तंनपाकंसाधुगच्छति । पिण्डीकृतमसंक्लिन्नंविदाहमुपगच्छति । शुष्कंविरुद्धंविष्टंभिवह्निव्यापदकृद्भवेत् ।

अर्थ-शुष्क अन्न वारंवार भोजन करनेसे अच्छे प्रकार पाकको नहीं प्राप्त होता, वह शुष्क पदार्थ उदरमें पिंडीके सदृश विना आर्द्रताके विदग्ध होजाता है। अतएव शुष्क पदार्थ न खाय, सूखे पदार्थके दोष कहते हैं कि, सूखा अन्न (चिरवा, आदि) विरुद्ध पदार्थ (दूध मछली आदि) और विष्टंभि पदार्थ (चना मसूर आदि) इनके खानेसे ये मंदाग्नि करता होते हैं।

चतुर्विधअग्निपरत्व भोजन।

मन्दस्तीक्ष्णोविषमःसमश्चवह्निश्चतुर्विधःपुंसाम् । लघुमन्देगुरुतीक्ष्णेस्निग्धंविषमेसमेसमंभोज्यम् ॥

अर्थ-मंद, तीक्ष्ण, विषम, और सम ऐसे पुरुषोंके चार प्रकारकी जठराग्नि होती है, इसलिये मंदाग्निवालोंको हलके पदार्थ, तीक्ष्णाग्निवालेको भारी, विषमाग्निवालेको स्निग्ध पदार्थ, और समान अग्निवालेको समान अर्थात्, जो न भारी हो न हलके हो ऐसे पदार्थ भोजन करने चाहिये।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पत्नींविहितशृङ्गारांप्राप्यभोजनमण्डपम् । यथाचाग्निबलं वीक्ष्यकुर्याद्भोजनकंनरः।एकएवनभुंजीतयदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः । द्वित्रिभिर्वबुभिःसार्द्धंभोजनन्तुदिवानिशम् ।

अर्थ–भोजन मंडपमें शृंगारयुक्त अपनी प्राणप्रियाको प्राप्त हो यथाग्नि बलको देखकर मनुष्यको भोजन करना चाहिये । यदि अपने कल्याणकी इच्छा होवे तो अकेला भोजन कदाचित् न करे दो तीन अथवा बहुतसे कुटुम्बके या अन्य पुरुषोंको लेकर दिन और रात्रिमें भोजन करना चाहिये ।

उपलिप्तेशुचौदेशेचतुरस्त्रंत्रिकोणकम् ।
वर्त्तुलंचार्धचन्द्रंचविप्रादीनांचमण्डलम् ।

अर्थ–लिपाहुआ पवित्रस्थानमें ब्राह्मणको चौकोन, क्षत्रीको त्रिकोन, वैश्यको गोल, और शूद्रको अर्धचंद्रके आकार चौका लगाना चाहिये ।

पञ्चाशत्पलिकंकांस्यंस्थापयेत्तत्रराजतम् ।
सौवर्णवाथपत्रैर्वानिर्मितंभाजनंशुभम् ॥

अर्थ–भोजन करनेको ५०पलका, कांसेका थाल, वा चांदीका वा सुवर्णका अथवा पत्रनिर्मित पत्तल शुभ है ।

शाकादीन्पुरतःस्थाप्यभक्ष्यंभोज्यंचकामतः ।
अन्नंमध्येप्रतिष्ठाप्यदक्षिणेघृतपायसौ ।

अर्थ–भोजन करतेसमय शाकादि (साग, चटनी, मुरब्बा आदि) को आगे धरे और भक्ष्य भोज्य पदार्थोंको यथा इच्छानुसार अगल बगल धरे, और अन्न (भात दाल) आदिको थालके बीचमें धरे, और घी तथा खीरको पात्रमें दहनी तरफ धरने चाहिये ।

हस्तौपादौतथैवास्यंप्रक्षाल्यान्नंप्रणम्यच ।
ततोग्रासान्समुद्धृत्यगवांचविनिवेदयेत् ॥

अर्थ--हाथ पैर और मुखको धोय शुद्ध हो भोजनको बैठे उस समय अन्नको प्रणामकर [परमात्मासे प्रार्थना करे कि इसीप्रकार अन्न हमको नित्य मिला करे] इसप्रकार कहकर फिर गोग्रास निकालकर आप भोजन करे ।

बालसुवासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः ।
संभोज्यातिथिवृद्धांश्चदंपत्योःशेषभोजनम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-प्रथम बालक, नवविवाहिता वधू वृद्ध, गर्भवती, रोगी, कन्या, अतिथी और अपनेसे बडोंको भोजन कराके फिर गृहस्थी स्त्रीपुरुष आप भोजन करे।

भोजनसमयके नियम।

भुंजानोनबहुब्रूयान्ननिन्देदपिकञ्चन ।
जुगुप्सितकथांनैवशृणुयादपिवावदेत् ॥

अर्थ-भोजन करतेसमय बहुत बोले नहीं (न हँसे, न शोक करे, न जँभाई, और छींक लेवे) न किसीकी निन्दा करे। तथा निंदित बातको सुनेभी नहीं, और न आप निंदित कथा कहे। अन्नकी स्तुति करताहुआ भोजन करे।

भोजनक्रम।

अश्नीयात्तन्मनाभूत्वापूर्वन्तुमधुरंरसम् । मध्येऽम्ललवणौप-श्चात्कटुतिक्तकषायकान्। फलान्यादौसमश्नीयाद्दाडिमादी-निबुद्धिमान् । विनामोचाफलन्तद्वद्वर्जनीयाचकर्कटी । मृणालबिसशालूककन्देक्षुप्रभृतीनिच । पूर्वमेवहिभोज्यानि नतुभुक्काकदाचन ।

अर्थ-भोजनकेसमय भोजनकी तरफ मन लगायकर प्रथम मिष्ट रस भोजन करना चाहिये भोजनके मध्यमें खट्टे रस और निमकीन पदार्थ खाने चाहिये पीछे कडुए चरपरे, और कषैले रसके पदार्थ खाने चाहिये। परंतु मंदाग्निवालेको प्रथम लवण आदिकेही पदार्थ भोजनीय हैं। परंतु इनमेंभी अनार, अमरूद आदि फल प्रथम खाने चाहिये। किंतु मोचाफल (केला) और ककडी प्रथम खाना वर्जित है। मृणाल (कमलकी नाल) बिस (भसीडे) और शालूककंद, तथा ईख इत्यादि पदार्थ भोजनके पूर्वही खाने चाहिये। भोजनके पश्चात् नहीं खावे।

सक्तु (सत्तू) भक्षणमें निषेध।

नभुक्तानरदैश्छित्त्वाननिशायांनवावहून् । नजलान्तरिता-न्नद्यिःसक्तूनद्यान्नकेवलान् । पुनर्दानंपृथक्पानंसामिषंपय-सानिशि । दन्तच्छेदनमुष्णंचसप्तसक्तुवर्जयेत् ।

अर्थ--भोजन करके, दांतोंसे चाबकर, रात्रिमें बहुतसा, तथा जलान्तरित, अथवा विना जलके केवल सत्तू न खाय, तथा सत्तू खायकर फिर सत्तू न

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

खाय, एकवार देकर फिर दूसरे देना, भोजनसे पृथक् सत्तू पीना, मांसके साथ दूधके साथ, रात्रिमें, दांतोंसे छेदन और गरम ये सात प्रकार सत्तू खानेमें वर्जित है ।

विषमाशनके लक्षण ।

बहुस्तोकमकालेवाज्ञेयंतद्विषमाशनम् ।

अर्थ--कुसमय, बहुत वा थोडे भोजनको विषमाहार कहते हैं ।

अल्प किंवा अधिक भोजनके दोष ।

आलस्यगौरवाटोपशब्दांश्चकुरुतेभृशम् ।
हीनमात्रंतनोःकार्श्यंकरोतिचबलक्षयम् ॥

अर्थ–बहुत अन्न भक्षण करनेसे आलस्य, देहमें भारीपना, पेटमे गुड-गुडाहट शब्द, ये होतेहैं । उसीप्रकार अल्प भोजन करनेसे देहमें कृशता और बलक्षय होता है ।

अकाल भोजनका निषेध ।

नाप्राप्तकालंभुंजीतहीनाधिकमथापिवा । अप्राप्तकालेभुंजानोअसमर्थतनुर्नरः । तांस्तान्व्याधीनवाप्नोतिमरणंचाधिगच्छति । कालेतीतेश्रतोजंतोर्वायुनोपहतेनले । कृच्छ्राद्विपच्यतेभुक्तंनस्याद्वोकुंपुनःस्पृहा । तस्मात्सुसंस्कृतंयुक्त्या दोषैरेतैर्विवर्जितः । सुखासन्नोगुणैर्युक्तमुपसेवेतभोजनम् । दौर्मनस्यंभयंक्रोधंभुंजानःपरिवर्जयेत् ।

अर्थ–विनाकालके थोडा या बहुत भोजन न करे, क्योंकि विना समयके भोजन करनेसे देह सामर्थ्यरहित होता है, तथा शिरोव्यथा, अतिसार, विलंबिका, अलसक, इत्यादि अनेक प्रकारकी व्याधि होती हैं । यदि वो व्याधि शांति न होवे तो यह प्राणी मरणदशाको प्राप्त होता है । और भोजनकाल व्यतीत होनेपर भोजन करनेसे वातके कोपसे जठराग्नि मन्द होती है । और भोजन कराहुआ अन्न बडी कठिनतासे पचन होता है । तथा फिर भोजन करनेकी इच्छा नहीं होती है । अतएव उक्तदोषरहित, सुसंस्कृत तथा उपयुक्त गुणसंपन्न आहार भोजनकरे तथा सुखपूर्वक बैठकर आहार करे । भोजन करते समय दौर्मनस्य, भय, क्रोध, इत्यादि सर्व वस्तु त्यागदेनी चाहिये ।

रसेनान्नस्यरसनाप्रथमेनोपतर्पिता ।
नतथास्वादमाप्नोतिततःसेव्यंतुनान्तरा ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-जिह्वा प्रथम अन्नरस करके तृप्त होती है ऐसी इतर पदार्थोंकरके तृप्त नहीं हो इसीसे एकपदार्थके साथ दूसरा पदार्थ सेवन न करे ।

भोजनका प्रमाण ।

कुक्षेर्भागद्वयंभोज्यैस्तृतीयंवारिपूरयेत् ।
वायोःसंचारणार्थायचतुर्थमवशेषयेत् ।

अर्थ-मनुष्य कूखके दो भाग अन्नसे पूर्ण करे, तथा तीसरा भाग जलकरके पूर्ण करे और चतुर्थ भाग वायुके संचारणार्थ खाली रहने देवे ।

जलका प्रमाण ।

अत्यम्बुपानान्नविपच्यतेन्ननिरम्बुपानाच्चसएवदोषः । तस्मान्नरोवह्निविवर्द्धनायमुहुर्मुहुर्वारिपिबेदभूरि । भुक्तस्यादौजलं पीतंकार्श्यमन्दाग्निदोषकृत् । मध्येग्निदीपनंश्रेष्ठमन्तेस्थौल्यकफप्रदम् ।

अर्थ-अत्यंत जल पीनेसे अन्न परिपक्व नहीं हो तथा विना जलके पीनेसे भी वही दोष होता है अर्थात् अच्छीरीतिसे परिपाक नहीं होता अतएव मनुष्य अग्नि बढानेके अर्थ वारंवार थोडा थोडा जल पीवे । भोजनके आदेमें जल पीना कृशता, और मंदाग्नि आदि दोष करे हैं । भोजनके मध्यमें पीनेसे अग्नि संदीपन करे और भोजनान्तमें जल पीना स्थूलता और कफप्रद जानना ।

तृषाक्षुधामें व्यत्यय उपचारका निषेध ।

तृषितस्तुनचाश्नीयात्क्षुधितोनपिबेज्जलम् ।
तृषितस्तुभवेद्गुल्मीक्षुधितस्तुजलोदरी ।

अर्थ- तृषामें भोजन न करे, और क्षुधामें प्रथम जल न पीवे, कारण कि प्यासमें भोजन करनेसे गोलेका रोग होवे है, और भूखमें जल पीनेसे जलंधरका रोग होता है ।

शिष्य--शिष्टपुरुष भोजनके अंतमें दूध पीते हैं सो यह अनुचित है, क्योंकि भोजनकालके तीन भाग करनेसे भोजनका प्रथमकाल वातका है, दूसरा पित्तका और तीसरा कफका इसीसे लिखा है । यथा " अश्नीयात्तन्मना भूत्वापूर्वंतुमधुरंरसम् । मध्येम्ललवणौ पश्चात्कटुतिक्तकषायकान् " इसका यह तात्पर्य है कि, भोजनके पूर्व मधुर रस भोजन कराहुआ बुभुक्षित मनुष्यके वातपित्तका शमन करता होता है । और भोजनके मध्यमें खट्टे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

और निमकीन रसोंके खानेसे वो पित्ताशयमें जठराग्निकी वृद्धि करतेहैं तथा भोजनके अंतमें भक्षण करेहुए कटु तिक्त और कषेले रस कफको शमन करते हैं, अतएव हे गुरो ! मेरी यह प्रार्थना है कि, भोजनके अंतमें कफका काल है उसमें कफकारी दुग्ध पीना तो सर्वथा अनुचित है, फिर क्यों पीते हैं ? जैसे दूधके गुण लिखे हैं " दुग्धंस्वादुरसंस्निग्धमोजस्यं धातुवर्द्धनम् । वातपित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलं गुरुशीतलमिति "

गुरु–तुम्हारा कहना बहुत ठीक है परंतु भोजनके अंतमें दूध पीनेका यह कारण है ।

विदाहीन्यन्नपानानियानिभुंक्तेहिमानवः ।
तद्विदाहप्रशान्त्यर्थंभोजनान्तेपयःपिबेत् ॥

अर्थ--भोजनके समय मनुष्य विदाही अन्न और पने आदि पीता है उनके विदाहशांति करनेको भोजनके अंतमें अवश्य दूध पीवे, यदि केवल मिष्ट पदार्थ आदि भोजन करा होवे तो अंतमें दूध पीनेकी कुछ आवश्यकताभी नहीं है । परंतु भोजनमें एक रसही न खावे जैसे ।

ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है ।

नचैकरससेवायांप्रसज्येतकदाचन । एकैकशःसमस्तान्वानाप्यश्नीयाद्रसान्सदा । कुर्यात्क्षीरान्तमाहारंनदध्यन्तंकदाचन ॥ लवणाम्लकटूष्णानिविदाहीन्यत्तियानितु । तद्दोषंहर्त्तुमाहारंमधुरेणसमापयेत् ।

अर्थ--प्राणीको उचित है कि, निरंतर एकही प्रकारके रसयुक्त द्रव्य अथवा एकवारमें अनेक प्रकारके रस मिलायकर भोजन न करे (किंतु कभी मीठा, कभी खट्टा, कभी निमकीन, आदि रसोंको भोजन करे) और यहभी स्मरण रहे कि,क्षीरान्त भोजन करे, दध्यन्त भोजन न करे, अर्थात् भोजनके अंतमें दूध पीवे तो अनेक गुण होते हैं और भोजनके अंतमें दही खानेसे अनेक प्रकारकी व्याधि होती है (परंतु आरंभमें दही खाना लिखा है) नोनके, खट्टे, चरपरे, गरम, और जो विदाहकारी रस खाये हैं उनकी शांतिके लिये मधुर रससे भोजकनी समाप्ति करनी चाहिये ।

अथवा दूसरा उत्तर यह है कि, भोजनके अंतमें दुग्धादि मधुर भोजन करके बढा जो कफ सो लवणाम्ल कटु भोजनजनित पित्तकी वृद्धिको नाश करे है । पित्तकी वृद्धि नाश होनेसे कफकी अतिवृद्धि स्वयं क्षीण हो जाती

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

है। अतएव क्षीण कफ वृद्धि अग्निमांद्यादि व्याधि उत्पन्न करनेको समर्थ नहीं होवे।

शिष्य-हे गुरो! शत्रुनाश होनेपर शत्रुहन्ताकी वृद्धि होती है, क्षीणता नहीं होती फिर आप पित्तनाश होनेसे कैसे कफकी क्षीणता कहते हो?

गुरु-इसका यह उत्तर है कि बलवान् शत्रुके मारनेसे मारनेवालेकी क्षीणता होती है। जैसे लिखा है "नाशनात्प्रत्यनीकस्य स्वयंचक्षीयते यथा। वह्निसंतप्तलोहस्य तप्तनाशनाज्जलम्" इस श्लोकका यह अर्थ है कि, दूसरेको नाश करनेसे आप क्षीण हो जाता है। इसमें दृष्टान्त है कि, जैसे अग्निमें तपेहुए लोहकी उष्णता शांति करनेसे जल क्षीण हो जाता है, अर्थात् गरम लोहपर शीतल जल डालोगे तो प्रथमतो शीतत्व गुण नष्ट हो कर गरम हो जाता है दूसरे वो जल वाफरूप होकर उडजाता है तो तोलमेंभी कम होता है इसीप्रकार यहां जानो।

कदाचित् तुम ऐसा मानो कि भोजनके अंतमें कटु तिक्त कषाय रसोंके सेवनेसे कफकी शांति हो वात प्रबल होयगी तो उसका यह प्रत्युत्तर है कि, कट्वादि रस क्षीण शक्ति होनेसे वात प्रबल नहीं करसकते जैसे लिखा है।

यदेकंनाशयेद्दोषंतदन्यंवर्द्धयेत्कुतः।
नाशनेह्येकदोषस्ययतस्तत्क्षीणशक्तिकम्॥

अर्थ-जो दोष एक दोषको नष्ट कर चुकाहै वो दूसरेको कैसे बढावेंगा क्योंकि एक दोषके मारनेसे वह दोष क्षीण शक्ति होजाता है।

वास्तवसे यह सिद्धांत है कि, यह प्राणी जिस रसको अधिक भोजन करता उसी रसके अन्य सब रस वशीभूत हो जाते हैं।

जग्धाःसर्वेऽपिगच्छन्तिबलिनोवश्यतांरसाः।
यथाप्रकुपितादोषावशंयान्तिबलीयसः।

अर्थ-संपूर्ण भक्षण करेहुए रसोंमें जो अधिक रस होता है उसीके वश अन्य सब रस होजाते हैं अर्थात् अधिक रसकाही गुण होता है। उसीप्रकार कुपितदोष बलवान् दोषके वशीभूत हो जातेहैं।

एवंभुक्तासमाचामेदन्तग्रहणपूर्वकम्।भोजनेदन्तलग्नानिनिर्हृत्याचमनंचरेत्। दन्तान्तरगतंचान्नंशोधनेनाहरेच्छनैः। कुर्यादनिहृतंतद्धिमुखस्यानिष्टगन्धताम्। दन्तलग्नमनिर्हार्यं लेपंमन्येतदन्तवत्। नतत्रबहुशःकुर्याद्यत्नंनिर्हरणंप्रति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–इसप्रकार भोजन करके आचमन करे फिर जलसे हाथमुखको धोवे और कुरले करे जिस्से दांतोंमें अटकाहुआ अन्न बाहर निकल जावे फिर आचमन करे । यदि कुरले करनेसे भी दांतोंमें अटकाहुआ अन्नादि न निकले तो उसको तिनके आदिसे निकालना चाहिये, क्योंकि दांतोंमें लगेहुये अन्नको न निकालनेसे मुखमें दुर्गंध आने लगती है । यदि कोई वस्तु दांतोंमें ऐसी अटक जावे कि निकालनेसे भी न निकले तो उसको बहुत यत्नभी न करे क्योंकि बहुत कुरेदनेसे मसूढेन्को हानी पहुँचती है । उस अटके पदार्थको दांतोकेही समान जानना उसका कुछ दोष नहीं है । कहीं दंतग्रहणपूर्वकी जगे " दूक्षमहणपूर्वकम् " ऐसा पाठांतर है ।

द्राक्षादीनिफलानीक्षून्पयोमूलंघृतंदधि ।
ताम्बूलमौषधंपत्रंहविर्भुक्तापिनाचमेत् ।

अर्थ–दाखसे आदि ले फल, ईख, दूध, कंद, घृत, दही, तांबूल, औषध, पत्र, और हविष्यपदार्थको भोजन करनेपर भी आचमन न करना चाहिये क्योंकि इनके ऊपर आचमन करनेसे श्वास कासादि रोग प्रगट होते हैं ।

भोजनानन्तर क्रिया ।

आचम्यजलयुक्ताभ्यांपाणिभ्यांचक्षुषीस्पृशेत् । भुक्तापाणि-तलेघृष्ट्वाचक्षुषोर्यादिदीयते । आचिरेणैवतद्वारितिमिराणि व्यपोहति ।

अर्थ–इसप्रकार हाथोंको धोय गीले हाथोंसे नेत्रोंकों स्पर्श करे इस विषयमें ऐसा लिखा है कि भोजन कर हाथ धोवे फिर हाथसे हाथ मलकर नेत्रोंपर फेरनेसे उन हाथोंका पानी नेत्रोंमें लगाहुआ शीघ्र नेत्ररोगोंको नाश करे है ।

भुक्ताचसंस्मरेन्नित्यमगस्त्यादीन्सुखावहान् । विष्णुरात्मा तथैवान्नंपरिणामश्चवैयथा । सत्येनतेनमेभुक्तंजीर्यत्वन्नमि-दन्तथा ।

अर्थ–भोजन करनेके पश्चात् सुखदायक अगस्त्यादि ऋषियोंका स्मरण करे, इसप्रकार कि, भोजनकर्त्ताभी विष्णु है और अन्नभी विष्णु है तथा उस अन्नका परिणाम जो है वोभी विष्णुही है, यदि यह सत्य है तो मेरा भोजन करा हुआ यह आहार पाचन होउ ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अगस्तिरग्निर्वडवानलश्चभुक्तंसमानंजरयंत्वशेषम् ।
सुखंचमेतत्परिणामसम्भवंयच्छत्वरोगंममचास्तुदेहम् ।

अर्थ—अगस्ति, अग्नि, और वडवानल, ये मेरे भोजन करेहुए अन्नको पाचन करो, उस अन्नके परिणामसे जो सुख होता है वह मुझको देउ, और मेरी देह नैरोग्य होओ ।

अङ्गारकमगस्तिञ्चपावकंसूर्यमश्विनौ ।
पंचैतान्संस्मरोन्नित्यंभुक्तंतस्याशुजीर्यति ।

अर्थ—मंगल, अगस्त्यऋषि, अग्नि, सूर्य, और अश्विनीकुमार, इन पांचोंका जो पुरुष नित्य स्मरण करता है उसका भोजन कराहुआ शीघ्र पच जाता है।

अगस्तिंकुंभकर्णंचशनिंचवडवानलम् । आहारपाचनार्थाय स्मरेद्भीमञ्चपञ्चमम् । शर्यातिंचसुकन्यांचच्यवनंशक्रमश्विनौ। भुक्तमात्रःस्मरेद्यस्तुचक्षुस्तस्यनहीयते ।

अर्थ—अगस्त्य, कुंभकर्ण, शनिदेव, वडवानल, और पंचम भीमसेन इनकों मैं आहार पचनेके अर्थ स्मरण करताहूं । जो मनुष्य भोजन करके शर्याति, सुकन्या, च्यवन, इन्द्र और अश्विनीकुमार इनका स्मरण करता है, उसके नेत्र कभी नष्ट नहीं होते ।

इत्युच्चार्यस्वहस्तेनपरिमार्ज्यतथोदरम् । अनायासप्रदायीनिकुर्यात्कर्माण्यतन्द्रितः । "अतन्द्रितः" निरंतरंजागृतस्तिष्टेन्नतुसुप्यात् । कुतः "भुक्तमात्रस्यतुस्वप्राद्धन्त्यग्निंकुपितःकफः ।"

अर्थ—[शर्याति]इस श्लोकको त्याग कर बाकीके श्लोकोंका उच्चारण करता हुआ पेटपर हाथ फेरे तथा जिससे परिश्रम न होवे, ऐसे कर्मोंका अनुष्ठान करे (अतन्द्रितः) इस पदके कहनेका यह प्रयोजन है कि भोजन करके निरन्तर जगा करे सोवे नहीं क्योंकि सोनेंसे कफ कुपितहो मंदाग्निको प्रगट करता है ।

शब्दान्स्पर्शाश्चरूपाणिरसान्गंधान्मनःप्रियान् । भुक्तवान्साधुसेवततेनान्नंसाधुतिष्ठति । शब्दःस्पर्शस्तथागन्धोरसोरूपं जुगुप्सितम् । भुक्तमप्रयतस्यान्नमतिहासंचवामयेत् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–भोजनके पश्चात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये मनको आनंददायक ऐसे पांच विषय सेवन करने चाहिये, इसप्रकार करनेसे भोजन कराहुआ अन्न स्वस्थानमें भलेप्रकार स्थित होता है। परंतु निंदित शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, और अति हास्य इनके योग करके वमन हो जातीहै इसीसे सुंदर गीत, बाजे, आदिको सुने। सुंदर वस्तु आदिको देखनी चाहिये।

भोजनोत्तर दोषवृद्धि।

जीर्णेऽन्नेवर्द्धतेवायुर्विदग्धेपित्तमेधते ।
भुक्तमात्रेकफश्चापिक्रमोऽयंभोजनोपरि।

अर्थ–अन्न पचनेपर वात बढती है, और अन्न पचतेसमय पित्त बढता है, और भोजन करतेही कफ बढता है। यह क्रम भोजनकरनेके उपरांत जानना।

कफप्रतीकार।

धूमेनापोह्यमुद्यैर्वाकषायकटुतिक्तकैः। कंफचभक्षयेद्युक्तंताम्बूलंक्रमुकादिभिः। पूगकर्पूरकस्तूरीलवंगसुमनंफलैः। फलैः कटुकषायैर्वामुखवैशद्यकारिभिः। ताम्बूलपत्रसहितैःसुगंधैर्वाविचक्षणः।

अर्थ–भोजनके पश्चात् मुखशोधन करके बाद धूमपान आदि करके अथवा कषैले चरपरे और कडुए रसोंके सेवन करके कफको नष्टकर तदनंतर सुपारी आदि करके युक्त ताम्बूल (बीडा) खाना चाहिये।

ताम्बूलभक्षणके गुण।

कामंप्रदीपयतिरूपमभिव्यनक्तिसौभाग्यमावहतिवक्त्रसुगन्धिताञ्च। ऊर्जंकरोतिकफजांश्चनिहन्तिरोगांस्ताम्बूलमेवमपरांश्चगुणान्करोति।

अर्थ–कामोद्दीपन करे, रूपको उज्ज्वल करे, तथा सुभगता और मुखको सुगंधित करे, बल करे, तथा कफजन्य रोगोंको दूर करे इसीप्रकार अन्य गुणोंकोभी ताम्बूल भक्षण करना करता है।

चन्द्रश्चन्द्रनिभाननेचखदिरंपत्रंत्वगेलासुधाजातीपत्र्ययिपत्रयुक्तवदनेकङ्कोलजातीफलम्। कस्तूरीचलवङ्गमौणिनयनेबाह्लीकपुगीफलंद्रव्यैरेभिरपित्रयोदशमितैस्ताम्बूलमित्युच्यते।

अर्थ–कपूर, कत्था, तमाखू, दालचीनी, छोटी इलायचीके बीज, चूना, जा-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वित्री, कंकोल, जायफल, कस्तूरी, लोंग, केशर, और सुपारीके वर्क इन १३ पदार्थोंको बीडाके पानमें धरके तांबूल कहते हैं उसको बीडा बनायकर भक्षण करना चाहिये ।

पानके सत्ताईस गुण ।

ताम्बूलंकटुतिक्तमुष्णमधुरंक्षारंकषायंसरंरुच्यंवीर्यकरंलघुप्रियतमंवैशद्यसौगन्ध्यकृत् । आस्यस्याभरणंप्रसेकशमनंदौर्गन्ध्यहृच्छुद्धिकृज्जन्तुश्लेष्ममरुद्गलामयहरंकान्तिप्रदंवश्यकृत् । वृष्यंदन्तविरञ्जनंश्रमहरंसौभाग्यदंकीर्त्तितंजिह्वाजाड्यगदापहंमुनिवरैर्नक्षत्रगुण्यंमतम् ।

अर्थ-ताम्बूल चरपरा, कडुआ, गरम, मीठा खारी, कषेला, दस्तावर, रुचिकर, वीर्यकारक, लघु,स्वच्छताकारक, सौगन्ध्यकारक, मुखको शोभित करता, मुखसे जो लार गिरती है उसको रोकनेवाला, मुखकी दुर्गंधतानाशक, शुद्धिकर, और कृमिनाशक, तथा कफ, वायु, गलरोग, इनका नाशक कांतिकर, वशीकरणकरता, वृष्य, दांतोंको रंगनेवाला, श्रमनाशक, सौभाग्यदायक, और जीभकी जडता नाशकारक, ऐसे ताम्बूलमें २७ गुण हैं ।

चूनाकत्थाके न्यूनाधिकमें कथन ।

युक्तेनचूर्णेनकरोतिरागंरागक्षयंपूगफलातिरिक्तम् । चूर्णाधिकंवक्त्रविगंधकारिपत्राधिकंसाधुकरोतिगंधम् । पत्राधिकंनिशिहितंसफलंदिवाचप्रोक्तान्यथाकरणमस्यविडम्बनैव । कंकोलपूगलवलीफलपारिजातैरामोदितंमदमुदामुदितंकरोति ।

अर्थ-उचित चूनेसे बीडा मुखमें रंग करता है। और बीडेमें सुपारी अधिक होवेतो रंगका नाश होता है । यदि पानमें चूना अधिक लगायाजाय तो मुखमें दुर्गंध करता है। ओर पत्राधिक होयतो सुगंध करे रात्रिमें पत्राधिक बीडा खाना हित है, और दिनमें सुपारी सहित खाना हित है, इस्से विपरीतबीडा खाना केवल विडंबन मात्र हैं । कंकोल, सुपारी, लोंग जायफल, इनसे सुगंधित ताम्बूल मनुष्यको मदोन्मत्त आनन्दसे आनंदित करता है ।

चूनेकत्थेआदिका प्रमाण ।

गुंजार्द्धचूर्णकंचैवतत्समंखदिरंमतम् । माषैकंक्रमुकंसर्वकर्पूरादिगणंचयत् । मिश्रितंपूगतुल्यंस्यात्ताम्बूलेमानमीरितम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–चूना और कत्था आध आध रत्ती लगावे, सुपारीका चूरा ६ रत्ती और कपूर लोंग आदिका चूर्ण ६ रत्ती इस प्रमाणसे बीडा बनाना चाहिये ।

बीडाखानेका समय ।

रतौसुप्तोत्थितेस्नातेभुक्तेवान्तेचसंगरे ।
सभायांविदुषांराज्ञांकुर्यात्ताम्बूलचर्वणम् ।

अर्थ–स्त्रीसंभोगके समय, शयनसे उठकर, स्नान पूजादिसे निवृत्त होकर, भोजन करके, वमन करके, युद्धमें (कुश्ती, वा संग्राममें) राजा अथवा पंडितोंकी सभामें, इतनी जगह बीडा खाना चाहिये ।

नवंतदेवमधुरंकषायानुसरंगुरु । बलासजनकंप्रायःपत्रशाकसमंस्मृतम् । पर्णंपुराणमकटुक्षुल्लकंतनुपांडुरम् । विशेषाद्गुणवज्ज्ञेयमन्यद्धीनगुणंमतम् ।

अर्थ–नया पान मीठा, कषेला, भारी, कफकारक, और पत्रशाकके समान गुणोंमें है यदि पान पुराने होवे तो चरपरे नहीं हो और हलके, पतले, पीले होते हैं । वो विशेष गुण करते हैं । और कोमल (मुरझे) पान हीनगुण होते हैं ।

सुपारीके गुण ।

पूगंगुरुहिमंरूक्षंकषायंकफपित्तनुत् ।
मोहनंदीपनंरुच्यमास्यवैरस्यनाशनम् ॥

अर्थ–सुपारी भारी, शीतल, रूखी, कषेली, कफपित्तनाशक, मोहकर्त्ता, दीपन, रुचिकारी, और मुखकी विरसताको नाश करे हैं ।

पूगंस्याद्दृढमध्यंयत्स्विन्नंवापित्रिदोषनुत् ।
सरसंगुर्वभिष्यन्दितद्दृशंवह्निनाशनम् ॥

अर्थ–सुपारी जो बीचमें कठोर तथा सिजायकर तयार करी अर्थात् चिकनी सुपारी त्रिदोषनाशक, स्वादिष्ठ, भारी, लार बहानेवाली और वह्निनाशक है ।

कत्थे चूने और पानके मिलेहुए गुण ।

खदिरःकफपित्तघ्नश्चूर्णंवातबलासनुत् ।
संयोगतस्त्रिदोषघ्नःसौमनस्यंकरोतिच ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–कत्था कफपित्तको नाश करता है, चूना वातकफको दूर करे, इन कत्थे चूने और पानके मिलनेसे त्रिदोषघ्न होजाता है । और मनको प्रसन्न करे है। यदि बीडीमें चूनेकी अधिकतासे मुख फटजावे तो उत्तम कत्थेका चूर्ण उस फटे स्थानमें बुरकनेसे अच्छा होता है कोई कोई चूने कत्थेको गुलाबजल आदिमें भिजोकर सुगंधित करते हैं।

पानके त्याज्य अंग।

आयुरग्रेयशोमूलेलक्ष्मीर्मध्येव्यवस्थिता। तस्मादग्रंतथामूलंमध्यंपर्णस्यवर्जयेत्। पर्णमूलेभवेद्व्याधिःपर्णाग्रेपापसंभवः। चूर्णपत्रंहरत्यायुः शिराबुद्धिविनाशिनी।

अर्थ–पानके अग्रभागमें आयुष्य, मूलमें यश, मध्यभागमें लक्ष्मी रहती हैं। इसीसे पानका मूल मध्य, और अग्रभाग त्यागकर भक्षण करना चाहिये। पानका मूल भक्षण करनेसे व्याधि प्रगट हो, अग्रभाग खानेसे पाप हो, तथा पानका चूरा करके खानेसे आयुष्य नष्ट हो, और शिरायुक्त (पानकी लकीर होती है उनके बिना निकाले) खानेसे बुद्धिका नाश होता है।

पानकी पीकके गुणागुण।

आद्यंविषोपमंपीकंद्वितीयंभेदिदुर्जरम्।
तृतीयादितुपातव्यंसुधातुल्यंरसायनम्॥

अर्थ–बिडी चबायकर उसकी प्रथम पीक थूक देवे, यह विषके समान मारक है। और दूसरी पीक रेचक और दुर्जर है। तथा तीसरी पीक न थूके उसको निगल जावे यह अमृतके तुल्य हितकारक है। तथा जरा व्याधि इनको नाशक है।

बिना पानके सुपारीखाना निषेध।

अनिधायमुखेपर्णपूगंखादतियोनरः।
दशजन्मदरिद्रःस्यात्ततश्चाधोगतिंव्रजेत्॥

अर्थ–बिडीके पान विना जो मनुष्य सुपारी खाता है वह दशजन्म दरिद्रीहो फिर अधोगतिको जाता है। परंतु यह निषेध बिडी खानेवालेके प्रति है अन्यको नही हैं।

ताम्बूलनिषेध।

ताम्बूलंनातिसेवेतनविरिक्तोबुभुक्षितः। देहदृक्केशदन्ताग्नि-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रोत्रवर्णबलक्षयः । शोषःपित्तानिलास्रंस्यादतिताम्बूलभक्षणात् । ताम्बूलंनहितंदन्तदुर्बलेक्षणरोगिणाम्। विषमूर्च्छामदार्त्तानांक्षतिनांरक्तपित्तिनाम् ।

अर्थ–जिसको विशेष दस्तहुये हो, तथा भूख लग रहीहो इनको बीडा नहीं खाना चाहिये, यदि खाय तो देह, दृष्टि, केश, दांत, अग्नि, कान, कांति और बल इनका क्षय हो । तथा शोष, पित्त, वातरक्त, ये विकार होते हैं और जिसके दांत दुर्बल हो नेत्ररोग, विष, मूर्च्छा, मद, इनसे पीडित उरःक्षती, तथा रक्तपित्ती, इनको तांबूलभक्षण अहितकारी जानना ।

शतपदगमन ।

भुक्त्वाशतपदींगच्छेच्छनैस्तेनतुजायते । अन्नसंघातशैथिल्यंग्रीवाजानुकटीसुखम् । भुक्तोपविशतस्तुन्दंशयानस्यतु पुष्टता । आयुश्चंक्रममाणस्यमृत्युर्धावतिधावतः ।

अर्थ–भोजनानंतर धीरे धीरे सौंपैड (सौकदम) चलना चाहिये, इस्से अन्न समूह शिथिल होता है और ग्रीवा (नाड) जानु और कमर इनको सुख होता है । जो मनुष्य भोजन करतेही बैठ जाता है उसकी थौद छिटक पडती है । सोनेसे मेद बढकर पुष्टता होती है । और धीरे धीरे डोलनेसे आयु बढती है । तथा भोजनकरके दौडनेसे उसके साथ, मृत्यु दौडती है ।

शयनक्रम ।

श्वासानष्टौसमुत्तानस्ताव्द्विःपार्श्वेतुदक्षिणे ।
ततस्तुद्विगुणान्वामेपश्चात्सुप्याद्यथासुखम् ॥

अर्थ–भोजनानंतर सौ कदम डोलकर आठश्वासपर्यंत चित्त लेट जावे, फिर सोलहश्वास दहनी करवट सोवे फिर ३२ श्वास निकले इतनी देरतक बाँई करवट सोवे पीछे अपनी इच्छानुसार चाहिये जिधरकी करवटसे सोवे ।

वामपार्श्वशयनका कारण ।

वामदिशायामनलोनाभेरूर्ध्वोस्तिजंतूनाम् ।
तस्मात्तुवामपार्श्वेशयीतभुक्तप्रपाकार्थम् ॥

अर्थ–बांई तरफ नाभीके ऊपर अग्नि स्थान है, इसीसे भोजन करे हुए मनुष्यको अन्नके परिपाकार्थ बांई करवट शयन करनी चाहिये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

खट्टादिके गुण ।

त्रिदोषशमनीखट्वातूलीवातकफापहा । भूशय्याबृंहणीतृष्या काष्ठपट्टीतुवातला । मतान्तर । भूशय्यावातलातीवरूक्षा पित्तास्रनाशिनी ।

अर्थ–खाट (चरपाई) त्रिदोषको शमन करती है, और रूई वातकफको नाश करती है । पृथ्वीमें शयन करना स्थूलता और वृष्यताको करे है । लकडीकी पट्टीपै (मैज कौच) आदिपर सोना वादी करे है । किसीके मतसे पृथ्वीमें शयन वादीकरे, और अतीव रूक्ष तथा रक्तपित्तको नाश करे है ।

श्रेष्ठ शय्याके गुण ।

सुशय्याशयनंह्लद्यंपुष्टिनिद्राधृतिप्रदम् ।
श्रमानिलहरंवृष्यंविपरीतमतोऽन्यथा ॥

अर्थ–सुंदर सेजपर शयन करना प्रियकारक तथा पुष्टि, निद्रा, और धैर्यको करे है । तथा श्रम और वायु इनका नाश करे तथा स्त्रीविषयमें बँधेज करे इस्से विपरीत अर्थात् दुष्टशय्या होय तो इस्से विपरीत गुण करे अर्थात् अप्रिय तथा कृश, अनिद्रा, और धैर्यच्युति, तथा श्रम और वायुको प्रगट करे ।

पादसंवाहन ।

संवाहनंमांसरक्तत्वक्प्रसादकरंपरम् ।
प्रीतिनिद्राकरंवृष्यंकफवातश्रमापहम् ।

अर्थ–पैरोंका दबाना मांस, रक्त, और त्वचा इनको स्वच्छ करे, तथा प्रीति, निद्रा, इनको उत्पन्न करे, और कफ, वायु, श्रम, इनका नाश करे हैं ।

शयनोत्तर पवन खाना निषेध ।

प्रवातंरौक्ष्यवैवर्ण्यस्तम्भह्रद्दाहपित्तनुत् ।
स्वेदमूर्च्छापिपासाघ्नमप्रवातमतोऽन्यथा ।

अर्थ–निद्रा लेकर हवा खाना रूक्ष है, तथा विवर्णता, स्तंभ, इनको करे है । और दाह, पित्त, पसीने, मूर्च्छा, प्यास, इनको नाश करे तथा हवा न खानेसे उक्तगुण विपरीत होते हैं ।

हवा खानेका काल ।

सुखंप्रवातंसेवेतग्रीष्मेशरदिचान्तरा ।
निर्वातमायुषेसेव्यमारोग्यायचसर्वथा ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–गरमीकी ऋतुमें तथा शरदऋतुमें सुखपूर्वक हवा खानी चाहिये। परंतु आयु और आरोग्यकेलिये निर्वात स्थानही सेव्य है। निर्वात कहनेसे अत्यंत पवनका निषेध है क्योंकि हवादार मकानमें रहना इसमें सबकी संमति है।

पूर्वदिशाकी पवन।

पूर्वोनिलोगुरुःसोष्णस्निग्धःपित्तास्रदूषकः। विदाहीवातलः श्रांतिकफशोषवतांहितः। स्वादुःपटुरभिष्यन्दीत्वग्दोषा र्शोमुखकृमीन्। सन्निपातज्वरंश्वासमामवातंचकोपयेत्।

अर्थ–पूर्वकी वायु भारी, गरम, स्निग्ध, और पित्त तथा रक्तको कुपित करनेवाली, दाहक, वातकर, ऐसा है। तथा श्रमी, कफवाला, और शोषी इनको हितकारी है। स्वादु, खारी, पुष्टिकारक, त्वचाके दोष, बवासीर, दांतोंमें कीडा, सन्निपात, ज्वर, श्वास, तथा आमवात इनको कुपित करता है।

दक्षिणपवनके गुण।

दक्षिणःपवनःस्वादुःपित्तरक्तहरोलघुः। वीर्येणशीतलोबल्यश्चक्षुष्योनतुवातलः।

अर्थ--दक्षिणकी पवन स्वादु, रक्तपित्तका नाशक, वीर्य करके शीतल, बलकारक, नेत्रोंको हितकारी और अवातल है। अर्थात् बादी नहीं करे इसीसे बहुतसे मनुष्य प्रातःकाल इसका सेवन करते हैं।

पश्चिमपवनके गुण।

पश्चिमःपवनस्तीक्ष्णःशोषणोबलहृल्लघुः। मेदापित्तकफध्वंसीप्रभंजनविवर्द्धनः।

अर्थ--पश्चिमकी पवन तीक्ष्ण, और शोषण, (अर्थात् सर्व वस्तुओंको सुखानेवाली) बलहरणकर्त्ता, और हलकी है। तथा मेद, पित्त, और कफनाशक, तथा वातबढानेवाली है।

उत्तरपवनके गुण।

उत्तरोमारुतःशीतःस्निग्धोदोषप्रकोपकृत्। क्लेदनःप्रकृतिस्थानां बलदोमधुरोमृदुः।

अर्थ–उत्तरकी पवन शीतल, स्निग्ध, और दोषोंको कुपित करता है। वातप्रकृतिवालोंको ग्लानिकारक और बलकारक, मधुर तथा नम्र है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आग्नेयादि विदिशाकी पवनके गुण ।

आग्नेयोदाहकृद्रूक्षोनैर्ऋतोनचदाहकृत् ॥
वायव्यस्तुभवेत्तिक्तऐशानःकटुकःस्मृतः ।

अर्थ--अग्निकोणकी पवन दाहकर्त्ता और रूक्ष है, नैर्ऋतकी दाह नहीं करे वायव्यकी पवन कडुई है । और ईशानकी हवा चरपरी है ।

अनेक दिशाकी संयुक्तपवनके गुण ।

विष्वग्वायुरनायुष्यःप्राणिनांबहुरोगकृत् ।
अतस्तंनैवसेवेतसेवितःस्यान्नशर्मणे ।

अर्थ–अनेक दिशाकी पवन मिलीहुई आयुष्यनाशक, तथा प्राणियोंके अनेक रोग करनेवाली है इसीसे ऐसी पवन कभी नहीं सेवन करनी । यदि सेवन करे तो सुख नहीं हो किंतु दुःख हो ।

पंखेकी पवनके गुण ।

व्यजनस्यानिलोदाहस्वेदमूर्च्छाश्रमापहः । तालवृन्तभवो वातस्त्रिदोषशमनोमतः । वंशव्यजनजस्तूष्णोरक्तपित्तप्रकोपनः । चामरोवस्त्रसंभूतोमायूरोवेत्रजस्तथा । एतेदोषजिता वातःस्निग्धाह्लद्याःसुपूजिताः ।

अर्थ–पंखेकी पवन दाह, पसीने, मूर्च्छा, और श्रम, इनका नाशक है । ताडके पंखेकी पवन त्रिदोषनाशक जानना । बाँससे बना पंखा गरम और रक्तपित्तको कुपित करनेवाला जानना, तथा चमर, कपडेका पंखा मोरपंखकी पंखी, वा मोरछल, और वेतका पंखा, इनकी पवन त्रिदोषनाशक, स्निग्ध, प्रिय और उत्तम जानना इसीप्रकार हाथीदांत आदिकी पंखियोंके गुण विचार लेने ।

दिनमें सोनानिषेध ।

दिवास्वापंनकुर्वीतयतोसौस्यात्कफावहः ।
ग्रीष्मवर्ज्येषुकालेषुदिवास्वापोनिषिध्यते ।

अर्थ--दिनमें नहीं सोना चाहिये, क्योंकि दिनमें सोना कफ करता है, परंतु ग्रीष्मऋतुको त्याग कर अन्य ऋतुमें दिनका सोना निषेध है । गरमियोंमें तो अवश्य मध्याह्नमें सोवे ।

दिनमें सोनेकी आज्ञा ।

उचितोहिदिवास्वापोनित्यंयेषांशरीरिणाम् । वातादयःप्रकु-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्यन्तितेषामस्वपतांदिवा । व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतान्क्लांतानतीसारिणः शूलश्वासवतस्तथापरिगतान्हिक्कामरुत्पीडितान् । क्षीणान्क्षीणकफाञ्छिशून्मदहतान्वृद्धांस्तथाजीर्णिनोरात्रौजागरितान्नरान्निरशनान्कामंदिवास्वापयेत्।

अर्थ–जिनके दिनमें न सोनेसे वातादिक दोष कुपित होतेहो उन प्राणियोंको दिनमें सोना उचित है इसजगे [वातादयः] इस पदमें जो आदि शब्द है वो पित्तका बोधक है कफका नहीं है ।

दंडकसरत, स्त्रीसंग, और मार्ग चलनेसे जो थकित हैं, तथा सवारीमें बैठनेवाले, ग्लान, अतिसारी, शूलवाला, श्वास, हिचकी, वात, क्षीण, और क्षीणकफवाला इतने रोगियोंको तथा बालक, मादक पदार्थ भक्षण करनेवाला, वृद्ध, अजीर्णरोगी, रात्रिमें जगाहुआ, और जिसने उपवास कराहो इतने रोगियोंको दिनमें यथेच्छ सुलाना चाहिये ।

स्वाधीननिद्राके गुण ।

दिवावायदिवारात्रौनिद्रासात्मीकृतातुयैः ।
नतेषांस्वपतांदोषोजाग्रतांचोपजायते ।

अर्थ–दिनमें या रात्रिमें जिन मनुष्योंने निद्रा अपने आधीन कर रक्खी है, उनको दिनमें सोना न सोना तथा रात्रिमेंजागना न जागना दोषकारी नहीं होता ।

भोजनोत्तर निद्राके गुण ।

भोजनानन्तरंनिद्रावातंहरतिपित्तकृत् । कफंकरोतिवपुषःपुष्टिंसौख्यंतनोतिहि । शयनंपित्तनाशायवातनाशायमर्दनम् । वमनंकफनाशायज्वरनाशायलंघनम् । आसीनघूर्णितंयत्तु नाभिष्यंदिनरूक्षणम् ।

अर्थ–भोजनके पश्चात् शयन करना वातहरण करे, और पित्तको बढावे, कफ करे, देहको पुष्ट करे, और सुख करे । जैसे किसीने लिखा है कि–पित्तनाशके अर्थ निद्रा, वात नाशनार्थ तेल आदिका मर्दन, कफके दूर करनेको वमन, और ज्वर नाशनार्थ लंघन करना चाहिये । यदि बैठे बैठे निद्रा लेवे तो वह पुष्टि और रूक्षताको नहीं करे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भोजनोत्तर अन्य वस्तु वर्जित ।

शयनंचासनंचातिनभजेन्नद्रवाधिकम् । नाग्न्यातपौनप्लवनं नयानंनापिवाहनम् । व्यायामंचव्यवायंचधावनंयानमेवच। युद्धंगीतंचपाठंचमुहूर्त्तंभुक्तवांस्त्यजेत् ।

अर्थ-अत्यंत निद्रा, अति भोजन, अत्यंत पतले पदार्थोंका भक्षण, अग्नि धूपखाना, जलमें तैरना, मार्ग चलना, सवारीपर बैठना, व्यायाम करना, स्त्रीगमन, दौडना, चलना. युद्ध (कुश्ती) करना, गान करना, और पढना ये भोजनकरके दो घडीपर्यंत न करे ।

अग्न्यादि तापनेके निषेधमें प्रमाण ।

अग्न्यातपप्लवनयाननिषेवणैश्चव्यायाममैथुनविधावनयुद्ध-गीतैः । एभिश्चतत्क्षणकृतैर्विषमाशनाच्चह्यन्नंनपाकमुपया-त्यपिजागराच्च ।

अर्थ-अग्निसेवन, धूपमें बैठना, उछलना, कूदना, सवारी, दंडकसरत, मैथुन, दौडना, कुश्ती, तथा गाना, ये भोजन करनेपर तुरंतही करनेसे तथा विषमाशन और जागरण इनके करनेसे अन्न परिपाक नहीं होता ।

अजीर्णमें भोजनका विधिनिषेध ।

प्रातराशेत्वजीर्णेपिसायमाशोनदुष्यति । सायमाशेह्यजीर्णेचप्रातर्भुक्तंविषोपमम् ।

अर्थ-प्रातःकालमें भोजन करा अन्न यदि न पचाहोय तथापि सायंकालमें भोजन करे तो कुछ दोष नहीं है । परंतु सायंकालका भोजन न परिपक्व भ-याहो और प्रातःकाल भोजन करे तो वह विषके समान जानना ।

भवेद्यदिप्रातरजीर्णशङ्कातदाभयांनागरसैन्धवाभ्याम् । विचूर्णितांशीतजलेनभुक्ताभजेत्ततोऽन्नंमितमन्नकाले ॥

अर्थ--यदि प्रातःकाल अजीर्णकी शंका होवे तो छोटी हरड, सोंठ और सैंधानिमक, इनका चूर्ण शीतलजलसे लेय, और भोजनके समय परिणाम का भोजन करे ।

प्राग्भुक्तेत्यनलेमन्देद्विरह्नोनसमाहरेत् । पूर्वभुक्तेविदग्धेऽन्नेभुंजानोहंतिपावकम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–रात्रिका भोजन न पचाहोय तो दिनमें दोवार न भोजन करे, और सायंकालके अजीर्णमें दूसरे दिन भोजन करनेसे मंदाग्नि होती है ।

तथा अन्य कारण ।

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्चसंधारणात्स्वप्नविपर्ययाच्च ।
कालेऽपिसात्म्यंलघुचापिभुक्तमन्नंनपाकंभजतेनरस्य ॥

अर्थ–अत्यंत जल पीनेसे, भोजनके ऊपर भोजन करनेसे मलमूत्र आदि वेगोंको धारण करनेसे निद्राके विपरीततासे अर्थात् निद्राके समय जागना और जागनेके समय सोनेसे, इन उक्त कारणोंकरके समयपर मनवांछित और हलकाभी भोजन कराहुआ अन्न अच्छेप्रकार नहीं पचता । इसप्रकार दैहिक कारण कहकर अब मानसिक कारणोंको कहते हैं ।

ईर्ष्याभयक्रोधपरिप्लुतेनलुब्धेनरुग्दैन्यनिपीडितेन ।
विद्वेषयुक्तेनचसेव्यमानमन्नंनसम्यक्परिपाकमेति ।

अर्थ–ईर्ष्या, भय, क्रोध, इनकरके युक्त पुरुषोंके तथा लोभी, रोगी, दीनता करके पीडित और द्वेषयुक्त चित्त जिसका ऐसे पुरुषोंके सेवन कराहुआ अन्न भलेप्रकार परिपाक नहीं होता ।

अध्यशनके लक्षण ।

अजीर्णेभुज्यतेयत्तुतदध्यशनमुच्यते ।

अर्थ–अजीर्णमें फिर दूसरे भोजन करनेको अध्यशन कहते हैं ।

दिनमें स्त्रीगमननिषेध ।

आयुःक्षयभयाद्विद्वान्नाह्निसेवेतकामिनीम् ।
अवशोयदिसेवेततदाग्रीष्मवसन्तयोः ।
आस्यावर्णकफस्थौल्यसौकुमार्यसुखप्रदा ।

अर्थ–विद्वान् पुरुषोंको आयुक्षयके भयसे दिनमें स्त्रीसेवन नहीं करना चाहिये । यदि इन्द्रियोंके वश होकर करेभी तो ग्रीष्मऋतु, और वसंतऋतुमें करे । तथा बैठना वर्ण, कफ, स्थूलता, सुकुमारता, और सुख इनको देय है ।

मार्गसेवन ।

अध्वावर्णकफस्थौल्यसौकुमार्यविनाशनः । यत्तुचङ्क्रमणं नातिदेहपीडाकरंभवेत् । तदायुर्बलमेधाग्निप्रदमिन्द्रियबोधनम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ—मार्ग चलना कफ, स्थूलता, सुकुमारता, इनका नाश करे है। और बागोंमें डोलना फिरना देहको पीडाकारी नहीं है। किंतु आयुष्य, बल, बुद्धि, अग्नि इनको बढाता है। और इन्द्रियोंको चैतन्य करे है।

उष्णीष (पगडी) के गुण।

उष्णीषंकांतिकृत्केश्यंरजोवातकफापहम्।
लघुतच्छस्यतेयस्माद्गुरुपित्ताक्षिरोगकृत्।

अर्थ—पगडीका धारण करना कांति करे, बालोंको हित, धूल, वायु, कफ, इनको नाश करे परंतु पगडी हलकी हो, यदि भारी होवे तो पित्त, और नेत्ररोग करती है। परंतु दक्षिणी ब्राह्मणोंने कदाचित् यह श्लोक न सुना होगा।

उपानह (जोडा) धारण।

उपानद्धारणंनेत्र्यमायुष्यंपादरोगहृत्।
सुखप्रचारमोजस्यंवृष्यंचपरिकीर्तितम्।

अर्थ—पैरोंमें जोडा अथवा मौजा पहरना नेत्रोंको हित है, आयु बढे, तथा पैरोंके रोग नष्ट हों, और सुखपूर्वक फिरना होता है, ओज बढे और वृष्य है। परंतु जाडोंके दिनोंमें तो अवश्य मोजा पहन कर फिर जोडा धारण करने चाहिये। जोडा पहननेमें अपनी अपनी रुचि है कोई देशी, कोई पंजाबी और कोई अंगरेजी जोडा पसंद करता है।

जोडा नपहननके अवगुण।

पादाभ्यामनुपानद्भ्यांसदाचङ्क्रमणंनृणाम्।
अनारोग्यमनायुष्यमिन्द्रियघ्नमदृष्टिदम्।

अर्थ—सदैव विना पैरोंमें जोडा पहनने डोलनेसे रोग करे, अनायुष्य करे, और इन्द्रियोंको नष्ट करे तथा नेत्रकी ज्योति मंद करे है।

छत्रधारणगुण।

छत्रस्यधारणंवर्षातपवातरजोपहम्।
हिमघ्नंहितमक्ष्णोश्चमाङ्गल्यमपिकीर्तितम्।

अर्थ—डोलतेसमय मस्तकपर छत्रीका लगाना वर्षा, धूप, हवा, शीत, और धूलीको नाश करे। और नेत्रोंको हितकारक तथा मांगल्यकारक जाननी। राजे महाराजेन्के योग्य छत्रधारणका निर्णय बृहत्संहिताकी ७२ अध्यायमें लिखा है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दण्डधारण ।

सत्वोत्साहबलस्थैर्यधैर्यवीर्यविवर्द्धनम् ।
अवष्टम्भकरंचापिभयघ्नंदण्डधारणम् ।

अर्थ–बाहर फिरनेके समय हाथमें लकडी रखनी चाहिये, इसके रखनेसे सत्व, उत्साह, बल, स्थिरता, धैर्य, वीर्य, इनको बढावे । तथा आश्रय देवे और भयको दूर करे है ।

शिबिकारोहण ।

ऊर्ध्वाच्छादनसंयुक्ताशिबिकासर्ववल्लभा ।
तस्यामारोहणंनृणांत्रिदोषशमकंमतम् ।

अर्थ–जिसके ऊपर पडदा पडाहो ऐसी पिन्नस या पालकीमें बैठना सबको प्रिय है । यह त्रिदोषको दूर करती है ।

नौकायान ।

वातश्लेष्मगदार्त्तानामहिताभ्रमकृत्तरी ।

अर्थ–नावमें बैठकर दर्यावकी सैर करना वातकफवाले रोगियोंको अहित है । क्योंकि इनको भ्रम करे है ।

हस्तियान ।

पित्तानिलकरोहस्तीलक्ष्म्यायुःपुष्टिवर्धनः ।

अर्थ–हाथीकी सवारी वातपित्त करे है । और लक्ष्मी, आयुष्य, तथा पुष्टि इनको बढावे है ।

अश्वयान ।

घोटकारोहणंवातपित्ताग्निश्रमकृन्मतम् ।
मेदोवर्णकफघ्नंचाहितंतद्बलिनांवरम् ।

अर्थ–घोडेकी सवारी वातपित्त, अग्नि, और श्रमको करे है । तथा मेद, वर्ण, और कफ इनका नाश करे । परंतु घोडेपर चढना बलीपुरुषोंको कहा है । और बलीपुरुषोंको हितकारक जानना ।

धूप और छायाके गुण ।

आतपःस्वेदमूर्च्छास्रपित्ततृष्णाक्लमश्रमान् ।
दाहंविवर्णतांकुर्यादेतांश्छायाव्यपोहति ।

अर्थ–धूप, पसीने, मूर्च्छा, रक्तपित्त, तृषा, ग्लानि, श्रम और दाहको करती है । तथा वर्णको पलट देती है और छाया इन सब विकारोंकोनाश करती है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वर्षाके गुण ।

वृष्टिर्वृष्याहिमावल्यानिद्रालस्यविधायिनी ।
भयावहामोहकरीकुवृष्टिःकफवातला ।

अर्थ–मेघोंकी वृष्टि–वृष्य, शीतल, बलकारी, निद्रा, और आलस्य इनको देती है । तथा अतिवृष्टि, भय, मोह और कफ वातको करे है । कोई यह गुण कुहरेके कहता है ।

अग्निगुण ।

अग्निर्वातकफस्तंभशीतवेपथुनाशनः ।
आमाभिष्यन्दशमनोरक्तपित्तप्रकोपनः ।

अर्थ–अग्नि–वायु, कफ और अंगके जिकड जानेको, शीत, तथा शरदीके योगसे कंप, आम,और अभिष्यन्द (नेत्ररोग)इनका नाशक है । तथा रक्तपित्तको कुपित करनेवाला है ।

धूम (धूँए) के गुण ।

सद्यःश्लेष्मकरोधूमोनेत्रयोरहितोभृशम् ।
शिरोगौरवकृच्चापिवातंपित्तंचकोपयेत् ।

अर्थ–धूआं सद्य कफकारी है और नेत्रोंको अत्यंत अहित है, मस्तकको भारी करनेवाला तथा वात पित्तको कुपित करनेवाला ऐसा है ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारेबृहन्निघंटुरत्नाकरे दिनचर्यावर्णनंनाम सप्तविंशतितमस्तरंगः ॥ २७ ॥

अब सदाचार कहनेके अर्थ इन्द्रियोपक्रमणीय अध्यायको चरकसे लिखते हैं ।

अथात इन्द्रियोपक्रमणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब इन्द्रियोपक्रमणीय अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

इहखलुपञ्चेन्द्रियाणि, पञ्चेन्द्रियद्रव्याणि, पञ्चेन्द्रियाधिष्ठानानि, पञ्चेन्द्रियार्थाः, पञ्चेन्द्रियबुद्धयोभवन्तीत्युक्तमिन्द्रियाधिकारे। अतीन्द्रियं पुनः मनः सत्वसंज्ञकञ्चेत्याहुरेके तदर्थात्मसम्पत्तदायत्तंचेष्टम् ।

अर्थ–इस आयुर्वेदशास्त्रमें पांचइन्द्री, पांच इन्द्रियोंकी द्रव्य, पांच इन्द्रियोंके अधिष्ठान, पांच इन्द्रियोंके अर्थ, और पांचही इन्द्रियोंकी बुद्धि होती है

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यह इन्द्रियाधिकारमें कहा है । और कोई आचार्य मनको इन्द्रियोंसे अतिरिक्त सत्वसंज्ञक कहते हैं । उसीमनके अर्थ आत्मसम्पत् है । और उसीके आधीन संपूर्ण देहकी चेष्टा कही है ।

चेष्टा और सत्व ।

चेष्टाप्रत्ययभूतमिन्द्रियाणाम् । स्वार्थेन्द्रियार्थसङ्कल्पव्यभिचाराणाञ्चानेकमेकस्मिन्पुरुषेसत्वम् ।

अर्थ–इन्द्रियोंके प्रत्ययभूत (अर्थात् इन्द्रियोंको प्रतीतभूत)को चेष्टा कहते हैं । तथा स्वार्थ (अपना प्रयोजन) इन्द्रियार्थ (इन्द्रियोंका विषय) संकल्प और व्यभिचार ये एकपुरुषमें अनेक सत्व होते हैं ।

रजस्तमःसत्वगुणयोगाच्चनचानेकत्वंनानेकंह्येककालमनेकेषु प्रवर्त्तते । तस्माच्चानेककालासर्वेन्द्रियप्रवृत्तिः । यद्गुणंचाभीक्ष्णंपुरुषमनुवर्त्ततेसत्वंतत्सत्वमेवोपदिशंतिऋषयोबाहुल्यानुशयात् ।

अर्थ–रजस्तमःसत्वगुणयोगसेही सत्वको अनेकत्व है । परंतु अनेकत्व और अनेक सत्व एक कालमेंही अनेक वस्तुओमें प्रवृत्त नहीं होता है । इसीसे अनेक काल इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति है । जिस गुणका सत्व वारंवार पुरुषमें वर्त्ते उसकी बाहुल्यतासे ऋषीश्वर उस पुरुषमें तद्गुणसत्व कहते हैं ।

मनःपुरस्सराणीन्द्रियाण्यर्थग्रहणसमर्थानिभवंति ।

अर्थ–मनहै अग्रगामी जिन्होंमें ऐसी इन्द्री अर्थको ग्रहण करनेको समर्थ होती है । अर्थात् प्रथम जिसवस्तुको मन ग्रहण करता है, उसीको पीछे इन्द्रीगण ग्रहण करे है ।

पंचइन्द्री ।

तत्रचक्षुःश्रोत्रंघ्राणंरसनंस्पर्शनमितिपंचेन्द्रियाणि ।

अर्थ–तहां नेत्र, कान, नासिका, जीभ, और त्वचा ए पांच इन्द्री हैं ।

पंचेन्द्रियद्रव्याणिखंवायुर्ज्योतिरापोभूरिति ।

अर्थ–आकाश, पवन, अग्नि, जल, और पृथ्वी ये पांच इन्द्रियोंकी द्रव्यहैं ।

पञ्चेन्द्रियाधिष्ठानान्यक्षिणीकर्णौनासिकेजिह्वात्वक्चेति ।

अर्थ–ये पांच इन्द्रियोंके रहनेके अधिष्ठान हैं । दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों नासिकाके रंध्र, जीभ और त्वचा ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पञ्चेन्द्रियार्थाःशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः। पञ्चेन्द्रियबुद्धयश्च-क्षुर्बुद्ध्यादिकास्ताः।

अर्थ--शब्द, स्पर्श, रूप,रस, गंध, ये पांच इन्द्रियोंके अर्थ अर्थात् विषय हैं। और पांचही इन्द्रियोंकी बुद्धि हैं। वो चक्षु बुद्धि, कर्णबुद्धि, नासिकाबुद्धि। आदि जाननी।

पुनरिन्द्रियेन्द्रियार्थस्वत्वात्मसन्निकर्षजाः क्षणिकानिश्चया त्मिकाश्चेत्येतत्पञ्चपञ्चकम्।

अर्थ–वोही बुद्धि, इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ और सत्व इनके आत्मसन्निकर्षसे पैदा होती है।

मनोमनोर्थोबुद्धिरात्माचेत्यध्यात्मद्रव्यगुणसंग्रहः। शुभाशुभवृत्तिनिवृत्तिहेतुश्चद्रव्याश्रितंकर्मयदुच्यतेक्रियेति।

अर्थ–मनोर्थ, बुद्धि, आत्मा, यह अध्यात्मद्रव्य गुणसंग्रहवाला मन शुभा-शुभ कर्ममें प्रवृत्तिनिवृत्तिका हेतु है। जिस द्रव्यके आश्रित जो कर्म है उसीको क्रिया कहते हैं।

तत्रानुमानगम्यानांपञ्चमहाभूतविकारसमुदायात्मकानाम-पिसतामिन्द्रियाणां तेजश्चक्षुषीश्रोत्रेखंघ्राणेक्षितिरापोर-सनेस्पर्शनेऽनिलोविशेषेणोपदिश्यते।

अर्थ–तहां अनुमानगम्य पंचमहाभूतविकार समुदायात्मक इंद्रियोंका नेत्रमें तेज, कानोंमें आकाश, नाकमें पृथ्वी, जिह्वामें जल, और त्वचामें पवनका वास है।

तत्रयद्यदात्मकमिन्द्रियंविशेषात्तदात्मकमेवार्थमनुधावति तत्स्वभावाद्विभुत्वाच्च।

अर्थ–तत्स्वभाव और उस तत्वके प्रबल होनेसे जो इन्द्री जिस तत्वात्मक है वो विशेषकरके तदात्मक तत्वार्थको ग्रहण करती है।

तदर्थातियोगायोगमिथ्यायोगात्समनस्कमिन्द्रियम्। विकृतिमापद्यमानंयथास्वबुद्धयुपघातायसम्पद्यते।

अर्थ–वो इंद्रियोंके अर्थ अनियोग, अयोग, और मिथ्यायोगसे मनस

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हित इन्द्रियोंको विकृतित्वको प्राप्त होकर अपनी अपनी बुद्धिके उपघातके अर्थ होते हैं ।

समयोगायोगात्पुनःप्रकृतिमापद्यमानः
यथास्वंबुद्धिमाप्याययति ।

अर्थ--फिर वही इन्द्रियोंके अर्थ समान योग और अयोगद्वारा प्रकृतिको प्राप्त हो उसीप्रकार अपनी बुद्धियोंको बढाते हैं।

मनसस्तुचिन्त्यमर्थः । तत्रमनसोबुद्धेश्चतएवसमानातिहीनामिथ्यायोगाःप्रकृतिविकृतिहेतवोभवन्ति ॥

अर्थ--मनकरके जिसका चिंतवन कराजाय उस वस्तुको अर्थ कहते हैं तहां मन और बुद्धिके अर्थ समान, अति, हीन, और मिथ्या योग प्रकृति और विकृतिके हेतु होते हैं ।

तत्रेन्द्रियाणांसमनस्कानामनुपतप्तानामनुपतापायप्रकृतिभावेप्रयतितव्यमेभिर्हेतुभिः ।

अर्थ--तहां पीडारहित मनसहित इंद्रियोंको पीडाके बचानेको इन हेतुओं करके प्रकृतिभावमें लानेका प्रयत्न करना चाहिये ।

तद्यथासाम्येन्द्रियार्थसंयोगेनबुद्ध्यासम्यगवेक्ष्यावेक्ष्यकर्मणां सम्यक्प्रतिपादनेनदेशकालात्मगुणविपरीतोपसेवनेनचेति ।

अर्थ--वो प्रकृतिभावमें समनस्क इन्द्रियोंको लानेका यह उपाय है कि साम्य और इन्द्रियार्थ संयोगकरके अपनी बुद्धिसे भलेप्रकार देखदेख कर और कर्मोंको भली भांति करनेसे, तथा देश, काल, और आत्मगुण इनके विपरीत औषधान्नविहारादिकोंके सेवन करनेकरके प्रकृतिभावमें लाना चाहिये ।

तस्मादात्महितंचिकीर्षतासर्वेणसर्वसर्वदास्मृतिमास्थायसद्वृत्तमनुष्ठेयम् । तद्धचनुष्ठानंयुगपत्सम्पादयत्यर्थद्वयमारोग्यमिन्द्रियविजयश्चेति । तत्सद्वृत्तमखिलेनोपदेक्ष्यामः ।

अर्थ--इसीसे आत्महितेच्छू सबको संपूर्ण और सदैव बुद्धिका आश्रय लेकर सत्पुरुषोंके आचरणका अनुष्ठान करना चाहिये । यह अनुष्ठान आरोग्य और इन्द्रियोंका विजय इन दोनों अर्थोंका एकही साथ संपादन करता है । उस संपूर्ण सद्वृत्तको कहते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सदाचार।

तद्यथा। देवगोब्राह्मणगुरुवृद्धसिद्धाचार्यानर्चयेत्। अग्निमनुचरेत्। औषधीःप्रशस्ताधारयेत्। द्वौकालावुपस्पृशेत्। मलायतनेष्वभीक्ष्णंपादयोश्चवैमल्यमादध्यात्।

अर्थ-देव, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, सिद्ध इन्होंका अर्चन करना चाहिये। अग्निहोत्र करे, दिव्य औषधोंको धारण करे, दोनों कालमें अर्थात् सायंकाल और प्रातःकालकी संध्या करनी चाहिये। जिनमें मल होवे ऐसे नाक, मुख, गुदा, आदिको और पैरोंको सदैव उज्ज्वल रखने चाहिये।

त्रिपक्षास्यकेशश्मश्रुलोमनखान्संहारयेत्। नित्यमनुपहतवासाःसुमनःसुगन्धिःस्यात्। साधुवेशःप्रसाधितकेशोमूर्द्धश्रोत्रपादतैलनित्योधूमपःस्मितपूर्वाभिभाषीसुमुखः।

अर्थ-पांचवेंदिन क्षौरकर्म अर्थात् बाल, मूंछ, डाढी, रोम और नखोंको कटाकर सुधारता रहे। सदैव विना फटा वस्त्र, प्रसन्नचित्त, और सुगंधका लगाने वाला साधुवेश, कंगेसे बालोंको सम्हारना, मस्तक, कान, और पैर, इनमें तैल नित्य डाले और लगाता रहे। धूम्रपान (हुक्केका पीना) तथा सुंदर मुखसे मंदमुसकानके साथ प्रथम बोलनेवाला इस मनुष्यको होना चाहिये।

दुर्गेष्वभ्युपपत्ता होता यष्टा दाता चतुष्पथानांनमस्कर्त्ता बलीनामुपहर्ताऽतिथीनांपूजकः पितृणांपिण्डदःकालेहितमितमधुरार्थवादी।

अर्थ-किलोंका रक्षा करता, हवन करता, यजन करता, दाता, और चौराहेओंको नमस्कारका करनेवाला, बलिदानका देनेवाला, अतिथियोंका पूजक, पितृयोंको पिंड देनेवाला, तथा बोलनेके समय हित भरा अनुमानका मीठा अर्थयुक्त वचन बोले।

वश्यात्माधर्मात्माहेतावीर्ष्यःफलेनेर्षुः निश्चिन्तोनिर्भीकोधीमान्ह्रीमान् महोत्साहः दक्षः क्षमावान् धार्मिकः आस्तिकः विनयबुद्धिः विद्याभिजनवयोवृद्धसिद्धाचार्याणामुपासिता।

अर्थ-आत्माको वशीभूत करनेवाला, धर्मात्मा, और हेतुपर ईर्ष्या कर-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नेवाला (अर्थात् अमुक मनुष्य कौन कारणसे धनाढ्य हुआ वही यत्न मैंभी करूंगा) और फलपर ईर्षाका त्यागनेवाला (अर्थात् पराई द्रव्यादिकी इच्छाका त्यागनेवाला) चिंतारहित, भयरहित, बुद्धिवान्, लज्जावान् महोत्साही, चतुर, क्षमावान्, धार्मिक, आस्तिक, विनय, बुद्धि, विद्या, अभिजन और अवस्था इनकरके वृद्ध ऐसे पुरुषोंका तथा सिद्ध और आचार्योंकी उपासना करनेवाला होना चाहिये ।

छत्रीदण्डीमौनीसोपानत्कोयुगमात्रदृक्विचरेत् । मङ्गलाचारशीलःकुचेलास्थिकण्टकामेध्यकेशतुषोत्करभस्मकपालस्नानबलिभूमिनांपरिहर्त्ताप्राक्छ्रमाद्व्यायामवर्जीस्यात् ।

अर्थ–छत्री लकडीको ले मौनहो, पैरोंमें जूती जोडे पहन, मार्गको प्रथम देखकर चले,मंगलाचारका करनेवाला, पुराने और मलिन वस्त्र, हड्डी, कांटे खोबरे, अमेध्य (मलमूत्रादि) बाल, तुष, उत्कर, (धानआदिके तिनके) राख,कपाल, स्नानकी पृथ्वी, और बलिदानकी पृथ्वीका परित्याग करनेवाला और श्रमके प्रथमही दंडकसरतका त्यागनेवाला होना चाहिये ।

सर्वप्राणिषुबन्धुभूतःस्यात् । क्रुद्धानामनुनेता । भीतानामाश्वासयिता । दीनानामभ्युपपत्ता । सत्यसंधः । सामप्रधानः । परपरुषवचनसहिष्णुःअमर्षघ्नः । प्रशमगुणदर्शी । रागद्वेषहेतूनांहन्ता ।

अर्थ–सर्व प्राणियोंमें बांधवकीसी प्रीति करनेवाला । क्रोधियोंको शांति करनेवाला । भयभीतोंको आश्वासन कहिये धीरज देनेवाला । दीनोंका रक्षक । सत्यसंध । सामप्रधानः (अर्थात् जो कार्यकरे उसको एक राहके साथ करे)औरोंके खोटे वचनोंको सहनकरनेवाला, क्रोधको जीतनेवाला, प्रशमगुण (शांतिकोही गुणका देखनेवाला) तथा रागद्वेष जिनसे उत्पन्न हो उनहेतुओंको जीतनेवाला होना चाहिये ।

नानृतंब्रूयात् । नान्यस्वमाददीत । नान्यस्त्रियमभिलषेत् । नान्यश्रियंनवैरंरोचयेत् । नकुर्य्यात्पापंनपापेऽपिपापीस्यात् । नान्यदोषान्ब्रूयात् । नान्यरहस्यमागमयेत् । नाधार्मिकैर्ननरेन्द्रद्विष्टैःसहासीत ।

अर्थ–झूठ न बोले, दूसरेका धन न हरणकरे, तथा अन्यस्त्रीकी इच्छा न

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करे, दूसरेकी श्री और वैरसे रुचि न करे, पाप न करे, पापियोंके साथ आप पापी न हो, दूसरेके दोषोंको न कहे, तथा दूसरेकी रहस्यवार्ताको प्रकाशित न करे, अधर्मि, और राजद्रोहीके साथ न बैठे ।

नोन्मत्तैर्नपतितैर्नभ्रूणहन्तृभिर्नक्षुद्रैर्नदुष्टैःनदुष्टयानान्यारोहेत् । नजातुसमंकठिनमासनमध्यासीत । नानास्तीर्णमनुपहितमविशालमसमं वा शयनंप्रपद्येत । नगिरिविषममस्तकेष्वनुचरेत् ।

अर्थ-उन्मत्त पतित, भ्रूणहत्यारा, क्षुद्र, और दुष्टोंके साथ नहीं रहना तथा दुष्ट घोडा हाथी आदि सवारियोंपर न बैठे तथा घोट्टओंके बराबर कठोर आसनपर न बैठे । तथा विनाबिछी विना बिछोनेके छोटी और ऊंची नीची शय्यापर न सोवे । पर्वत, विषमस्थल इनके ऊपर न डोले ।

नद्रुममारोहेन्नजलोग्रवेगमवगाहेत् । कूलच्छायांनोपासीत । नाग्युत्पातमभितश्चरेत् । नोच्चैर्हसेत् । नशब्दवन्तंमारुतं मुञ्चेत् । नासंवृतमुखोजृम्भांक्षवथुंहास्यंवाप्रवर्त्तयेत् ।

अर्थ-वृक्षके ऊपर न चढे । अत्यंत उग्रवेगवाली नदीमें स्नान न करे । (किंतु जहां जलका वेगहो वहां पर उसमें धसे भी नहीं) किनारेके वृक्षके नीचे न बैठे । जहांअग्नि लगरहीहो वहांपर न जावे । उच्चशब्दसे न हँसे शब्दवान् पवन अर्थात् अत्यंत शब्दके साथ अधोवायु नहीं छोडनी । विना मुखढके जंभाई, छींक, हास्य, आदि न करे ।

ननासिकांकुष्णीयात् । नदन्तान्विघट्टयेत् । ननखानङ्गांश्च वावादयेत् । नास्थीन्यभिहन्यात् । नभूमिंविलिखयेत् । नछिंद्यात्तृणम् । नलोष्टंमृद्नीयात् । नविगुणसङ्गैःश्चेष्टेत । ज्योतींष्यग्निञ्चामेध्यमशस्तञ्चनाभिवीक्षेत । नहुंकुर्याच्छवम् ।

अर्थ-हरदफे नासिकाको न कुरेदे । दांतोंको न चबायाकरे । नख और अपने अंगोंको न बजायाकरे, अपनी हड्डियोंमें प्रहार न करे, हाथसे या पैरसे पृथ्वीको न लिखाकरे, तिनके न तोडाकरे, मट्टीके डेलेको न तोडाकरे, निर्बुद्धियोंके साथ न रहाकरे, ज्योतिवाले पदार्थ(सूर्य चंद्र बिजलीआदि) और अग्नि, अपवित्र और बुरीवस्तु [वमन, राध, रुधिर आदिको] न देखे । और मुर-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देको देखकर हुंकार न करे । अर्थात् इसप्रकार मरतेई रहतेहैं इसप्रकार तिरस्कार न करे, क्योंकि इसीप्रकार आपकोभी मरना है ।

नचैत्यध्वजगुरुपूज्याशस्तच्छायामाक्रामेत् । नक्षपास्वमरसदनचैत्यचत्वरचतुष्पथोपवनश्मशानायतनान्यासेवेत । नैकशून्यगृहंनचाटवीमनुप्रविशेत् । नपापवृत्तान्स्त्रीभृत्यान्भजेत् ।

अर्थ–चैत्य (बौद्धोंका मंदिर अथवा गामके बाहर देवताकी भावना करके स्थापित वृक्ष) मंदिरकी ध्वजा, गुरु, पूज्य, और अशस्त वस्तु (मलमूत्रादि) इनकी और छायाको उल्लंघन न करे । रात्रिमें देवमंदिर, चैत्य, चौंराहा, बगीचा, श्मशान (जहां मुरदे जलतेहों वा गढतेहों) इन स्थानोंमें नहीं रहना चाहिये सूने घरमें अकेला न रहे । तथा वनमेंभी अकेला न जावे । पापकरता स्त्री और भृत्य (नोकर) को न रक्खे ।

नोत्तमैर्विरुध्येत । नावरानुपासीत । नजिह्मंरोचयेत् । नानार्यमाश्रयेत् । नभयमुत्पादयेत् । नसाहसातिस्वप्नजागरस्नानपानाशनान्यासेवेत । नोर्ध्वजानुश्चिरंतिष्ठेत् । नव्यालानुपसर्पेत् । नदंष्ट्रिणः नविषाणिनः । पुरोवातातपावश्यायातिप्रवाताञ्जह्यात् ।

अर्थ–उत्तम पुरुषोंसे विरोध न करे । ओछे पुरुषोंकी उपासना न करे । कपट करनेको प्रसन्न न करे । अनार्य पुरुष (जो वेदमार्ग त्यागकर अन्यमार्गका आश्रयलेनेवाले हैं) उनका आश्रित न हो । अत्यंत साहस, अतिस्वप्न- अत्यंत जागना, अति स्नान, अति पान, और अत्यंत भोजन न करे । घोटुओंके बल बहुत देरपर्यंत न खडारहे । साँप, विच्छु आदिके पास न जावे । डाढावाले (कुत्ता, सिंह, व्याघ्र, वृकआदि) और सींगवाले (गौ भैंस आदि) इनके भी पास न जावे । सन्मुखकी पवन, धूप, तुषार, और अत्यंत पवन त्यागदेवे ।

कलिंनारभेत् । नानिभृतोऽग्निमुपासीत । नोच्छिष्टोनाधः कृत्वाप्रतापयेत्।नाविगतक्लमोनानाप्लुतवदनोननग्नमुपस्पृशेत् । नस्नानशाट्यास्पृशेदुत्तमाङ्गम्।नकेशाग्राण्यभिहन्यात्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-कलह न करे। जो अपने वशीभूत न हो ऐसी अग्निका सेवन न करे उच्छिष्ट मुखसे तथा अपने नीचे रखकर अग्निसे न तापे। जबतक विगतक्लम और मुखको न धोयाहो तथा नग्नहोकर स्नान न करे। स्नानकी धोतीसे मस्तक न पोंछे बालोंके अग्रभागोंको न तोडे।

नोपस्पृशेत्तएववाससीविधृयात्। नास्पृष्ट्वारत्नाज्यपूज्यमङ्गलसुमनसोऽभिनिष्क्रामेत्। नपूज्यमङ्गलान्यपसव्यंगच्छेत्। नेतराण्यनुदक्षिणम्।

अर्थ-अन्यके स्पर्शकरेहुए वस्त्रको [भोजनके समय] न धारण करे। रत्न, घृत, पूज्य, मंगलीक वस्तु, और पुष्प इनके स्पर्शकरे विना घरके बाहर न जावे। पूज्य, मंगलीक पदार्थोंको अपसव्यहोकर अर्थात् वाम देकर न जावे। और अपूज्य तथा अमंगली पदार्थोंको दहना देकर न जावे।

नारत्नपाणिर्नास्नातोनोपहतवासानाजापित्वानाहुत्वादेवताभ्योनानिरूप्यापितृभ्योनादत्वागुरुभ्योनातिथिभ्योनोपाश्रितेभ्योनापुण्यगन्धोनामालीनाप्रक्षालितपाणिपादवदनोनाशुद्धमुखोनोदङ्मुखोनविमनाभक्ताशिष्टाशुचिक्षुधितपरिचारोनापात्रीष्वमेध्यासुनादेशेनाकालेनाकीर्णेनादत्वाग्रमग्नये नाप्रोक्षितंप्रोक्षणोदकैर्नमन्त्रैरनभिमन्त्रितंनकुत्सयन्नकुत्सितं नप्रतिकूलोपहितमन्नमाददीत।

अर्थ-विना रत्नपाणि अर्थात् सुवर्ण आदि रत्नकी अंगूठी, छल्ला, आदिके धारण विना, विना स्नान करे, फटे वस्त्रोंसे, विना गायत्रीके जप करे। विना हवन करे, विना देवताओंको निवेदन करे। विना पित्रेश्वरोंके दिये, गुरु, अतिथी, उपाश्रित (जो अपने आश्रित हैं) इनको विना दिये, दुर्गधयुक्त, विना माला धारण करे, विना हाथ पैर मुखकी शुद्धिके, और उत्तरमुख अप्रसन्नचित्तके, विना भातके, तथा दुष्ट, अपवित्र, और जिसके भृत्यवर्ग क्षुधितहो विना पात्रोंके तथा अपवित्र पात्रोंमें, विना देशकालके (अर्थात् श्मशानआदि देश और प्रातःकालआदिसमयमें) विना प्रस्फुट स्थानके विना प्रथम अग्निमें आहुति दिये, विना प्रोक्षणके मंत्रोंसे प्रोक्षित करे, विना मंत्रोंसे अभिमंत्रित करे, न निंदा करता हुआ तथा निंदित और अपने प्रतिकूल (वैरी)के लाए हुये इत्यादि गुणविशिष्ट अन्नको नहीं भोजन करना चाहिये।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नपर्युषितमन्यत्रमांसहरितशुष्कशाकफलभक्ष्येभ्यः । नाशेषभुक्स्यादन्यत्रदधिमधुलवणसक्तुसर्पिर्भ्यः । ननक्तंदधिभुञ्जीत । नसक्तूननेकानश्नीयात् । नानिशिनभुक्त्वानबहून्नद्विर्नोदकान्तरितान्नच्छित्त्वाद्विजैर्भक्षयेत् ।

अर्थ–मांस,हरित और शुष्क शाक,फल, और भक्ष्य (लड्डू, पेडे, आदि) इनके विना और वस्तु बासी नहीं खानी चाहिये । दही, सहत, नोन, सत्तू, और घृतके सिवाय और किसी वस्तुको निःशेषकरके न खावे । रात्रिमें दही न खावे । अकेला सत्तू न खाय । तथा रात्रिमें भोजन करके, बहुतसा तथा दोवार सत्तू नहीं खाना चाहिये । तथा जलके विनाभी न खाय तथा दांतों से चबायकर सत्तु भोजन न करे ।

नानृजुःक्षुयान्नाद्यान्नशयीत । नवेगितोऽन्यकार्यःस्यात् । न वाय्वग्निसलिलसोमार्कद्विजगुरुप्रतिमुखंनिष्ठीविकावातवर्चो मूत्राण्युत्सृजेत् । नपन्थानमवमूत्रयेत् । नजनवतिनान्नकाले ।

अर्थ–टेढा होकर छींकना, भोजन, और शयन न करे । जिस समय मल, मूत्र, भूख, प्यास, आदि लग रहेहों उससमय अन्य कार्यको न करे । पवन, अग्नि, जल, चंद्रमा, सूर्य, ब्राह्मण और गुरु इनके सन्मुख थूकना, अधो वायु छोडना, मलमूत्रका परित्याग इत्यादि कर्म न करे । रस्तेमें न मूते । जहां बहुत मनुष्य बैठे हों और अन्न अर्थात् भोजनके समय मूत्र न करे । भोजनके थोडी देर प्रथमही मूत्रादिसे निश्चित होलेवे ।

नजप्यहोमाध्ययनबलिमङ्गलक्रियासुश्लेष्मसिंघाणकंमुञ्चेत् नस्त्रियमवजानीत । नातिविश्रंभयेत् । नगुह्यमनुश्रावयेत् । नार्धिकुर्यात् । नरजस्वलांनातुरांनामेध्यांनाशस्तांनानिष्टरूपाचारोपचारांनादक्षिणांनाकामांनान्यकामांनान्यस्त्रियंनान्ययोनिंनायोनौनचैत्यचत्वरचतुष्पथपवनश्मशानायतनसलिलौषधिद्विजगुरुसुरालयेषुनसंध्ययोर्नातिनानिषिद्धतिथिषुनाशुचिर्नजग्धभेषजोनाप्रणीतसंकल्पोनानुपस्थितप्रहर्षोनाभुक्तवान्नात्याशितोनविषमस्थोनमूत्रोच्चारपीडितोनश्रमव्यायामोपवासक्लमाभिहतोनारहसिव्यवायंगच्छेत् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-जप, होम, अध्ययन (पढना) बलिदान, और मंगलाक्रिया इनमें कफ, तथा देहका मैल न गेरे । स्त्रीका तिरस्कार न करे । न अत्यंत स्त्रीका विश्वास करे । तथा इसके आगे गुह्य (छिपी) वार्ता न कहे । न इसको अनुचित कर्मका अधिकार देवे । तथा रजस्वला, रोगिणी, अपवित्रा, अप्रशस्ता, कुरूप, आचार, और उपचार, गहने कपडे आदि को धारण करनेवाली, अचतुरा, तथा जिसका कामदेव न जागा हो । और जो अन्य पुरुषकी इच्छा करती हो, तथा दूसरेकी स्त्री, तथा अन्य योनि (बकरी कुत्ते आदिकी) तथा अयोनि (गुदाभंजनआदि) और चैत्य, आंगन, चौराहा, अत्यंत पवन लगती हो, श्मशान, यज्ञशाला जलके समीप औषधीस्थान, ब्राह्मण, गुरु इनके समीप, देवस्थान, तथा प्रातःकाल और सायंकालकी संध्यामें तथा अत्यंत मैथुन और निषिद्ध तिथियोंमें अपवित्रतामें विना औषध खानेके तथा विना कामोद्दीपन हुए विना हर्षके विना भोजन और अत्यंत पेट भरेमें तथा विषमस्थित होकर (अर्थात् टेढा वा नीचे सोकर) तथा मूत्रमलकी बाधामें परिश्रम दंडकसरत, उपवास, और ग्लानियुक्त इत्यादि कारणोंसे युक्त और सबके देखते इस पुरुषको स्त्रीगमन नहीं करना चाहिये ।

नसतोनगुरून्परिवदेत् । नाशुचिरभिचारकर्मचैत्यपूज्यपूजाध्ययनमभिनिवर्त्तयेत् । नविद्युत्स्वनार्त्तवीषुनाभ्युदितासुदिक्षुनाग्निसंप्लवेनभूमिकल्पेनमहोत्सवेनोल्कापातेनमहाग्रहोपगमनेननष्टचन्द्रायांतिथौनसंध्ययोर्नमुखाद्गुरोर्नावपातेतंनातिमात्रंनतांतंनविस्वरंनानवास्थितपदंनातिद्रुतंनविलम्बितंनातिक्लीबंनात्युच्चैर्नातिनीचैःस्वरैरध्ययनमभ्यसेत् ।

अर्थ-गुरु और सत्पुरुषोंसे विवाद न करे । अपवित्रतासे अभिचारकर्म, यज्ञशाला, पूज्योंकी पूजा तथा पढना इत्यादि कर्म न करे । बिजलीके चमकनेमें, आर्तववाली और अभ्युदित दिशा जिस समय होवे, तथा अग्निके लगनेमें । भूचाल, महोत्सव (विवाहादि) उल्कापात, महाग्रह (पूछातारे- आदि) के उपगमनमें, अमावास्या, संध्या इनमें बिना गुरुमुखके, अत्यंत लंबेस्वरसे दुष्टस्वरसे, अयथार्थ पदोच्चारणसे, बहुतजल्दी, बहुतधीरे, अत्यंत कायरतासे, अत्यंत उच्चस्वर, अत्यंत नीचेस्वरसे विद्यानहीं पढनी चाहिये । कोई कहता है कि स्वयं और गुरुके मुखसे बिनानिकले पढना निषेधहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नातिसमयंजह्यात् । ननियमंभिन्द्यात् । ननक्तंनादेशेचरेत् । नसंध्यास्वभ्यवहाराध्ययनस्त्रीस्वप्नसेवीस्यात् । नबालवृद्धलुब्धमूर्खक्लिष्टक्लीवैःसहसख्यंकुर्यात् । नमद्यद्यूतवेश्याप्रसङ्गरुचिःस्यात् । नगुह्यंविवृणुयात् । नकञ्चिदवजानीयात् ।

अर्थ–समयको व्यर्थ न व्यतीत करे । जो पढने लिखने या भोजनादिका नियम कर रक्खाहो उसको न तोडे । रात्रिमें और जहां दुष्टस्थलहै उसजगे न डोले । संध्याके समय, भोजन, पढना पढाना, स्त्रीसंग, और निद्रा ये कर्म त्यागदेवे । बालक, वृद्ध, लोभी, मूर्ख, दुःखित और हिजडा, इनके साथ मित्रता न करे । मद्य, जूआ, और वेश्याप्रसंग इनकी इच्छा कभी न करे । जो छिपाने योग्य वार्त्ताहै उसको किसीके आगे न कहे । और किसीकी अवज्ञा न करे ।

नाहंमानीस्यात् । नादक्षोनादाक्षिणोनासूयको नदक्षिणान्परिवदेत् । नगवांदण्डमुद्यच्छेत् । नवृद्धान्नगुरून्नगणान्नृपान्वाधिक्षिपेत् नचातिब्रूयात् । नबान्धवानुरक्तकृच्छ्राद्वितीयगुह्यज्ञान्बहिःकुर्यात् ।

अर्थ–अहंकारी न होवे, मूर्ख न बने, किसीसे टेढा न रहे, किसीकी निंदा न करे, जो चतुर मनुष्य है उनकी निंदा न करे, गौकेऊपर लकडी न उठावे, वृद्ध, गुरु, बहुतसे मनुष्य, और राजा, इनका तिरस्कार न करे । बहुत न बोले । तथा बांधव, स्नेही, दुखिया और अद्वितीय गुह्यज्ञ (अर्थात् जो गुप्तबातको वही जानता हो) इनको बाहर न करे ।

नाधीरोनात्युच्छ्रितसत्वःस्यात् । नाभृतभृत्योनाविश्रब्धास्वजनोनेकसुखी । नदुःखशीलाचारोपचारी । नसर्वविश्रंभी । नसर्वाभिशङ्की । नसर्वकालविचारी । नकार्यकालमतिपातयेत् । नापरीक्षितमभिनिविशेत् । नेन्द्रियवशगःस्यात् ।

अर्थ–धैर्यरहित नहीं होना । सबसे उच्च न बने । भृत्योंका भरणपोषण करता रहे । स्वजनोंमें अविश्वास न करे । अन्य दुःखितोंमें आप अकेला सुखी न बने । दुःखदायक आचार और अपचारोंको सेवन न करे । सबका विश्वासभी न करे । सबकी शंकाभी न करे । प्रत्येक समयमें विचारवान् न

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हो । कार्य करनेके समयको व्यर्थ न खोवे । विना परीक्षा करे किसी नोकर चाकरको न राखे । जिह्वा शिश्नेन्द्री आदिके वशीभूत न होवे ।

नचञ्चलंमनोभ्रामयेत् । नबुद्धीन्द्रियाणामतिभारमादध्यात् । नचातिदीर्घसूत्रीस्यात् । नक्रोधहर्षावनुविदध्यात् । नशोकमनुवशेत् । नसिद्धावुत्सौक्यंगच्छेत् । नासिद्धौदैन्यम् । प्रकृतिमभीक्ष्णंस्मरेत् ।

अर्थ–चंचल मनको भ्रमावे नहीं । बुद्धीन्द्रिय (नेत्र, नाक. कान, आदि) को अति श्रम न देवे । अत्यंत दीर्घसूत्री न हो । क्रोध और हर्षका बहुत ध्यान न करे अर्थात् बहुत न करे । शोकके वशीभूत न हो । कार्य सिद्धहोनेपर बहुत फूल न माने । और असिद्धहोनेपर दीनताभी ग्रहण न करे । और अपने स्वभावको सदैव स्मरण करता रहे । अर्थात् स्वभावको न पलटे ।

हेतुप्रभावनिश्चितःस्यात् । हेत्वारम्भानित्यश्च । नकृतमित्याश्वसेत् । नवीर्यंजह्यात् । नापवादमनुस्मरेत् । नाशुचिरुत्तमाज्याक्षततिलकुशसर्षपैराग्निंजुहुयात् । आत्मानमाशीर्भिराशमानः ।

अर्थ–हेतु करके प्रभाव निश्चित हो । हेतुका आरंभ करता रहे । हमने करालिया ऐसा विश्वास न करे । पराक्रमत्याग न करे । अपवाद (निंदा) का स्मरण न करे । अपवित्रतासे हवन न करे । तथा उत्तम घृत, अक्षत, तिल, कुश, और सरसों करके अग्नि हवन करे । आपको आशीर्वादोंकी इच्छा करता रहे ।

अग्निर्मेनापगच्छेच्छरीरात् । वायुर्मेप्राणानादधातु । विष्णुर्मेबलमादधातु । इन्द्रोमेवीर्यंशिवमांप्राविशस्त्वापः । आपोहिष्ठेत्यपःस्पृशेत् । द्विःपरिमृज्यौष्ठौपादौचाभ्युक्ष्यमूर्द्धनिखानिचोपस्पृशेत्। अद्भिरात्मानंहृदयंशिरश्चब्रह्मचर्यज्ञानदानमैत्रीकारुण्यहर्षोपेक्षाप्रशमपरश्चस्यादिति ।

अर्थ–अग्नि मेरे शरीरसे मतजाओ । पवन मेरे प्राणोंको पोषण करो । विष्णुभगवान् मेरे बलकी रक्षा करो । इन्द्र मेरे वीर्यकी रक्षा करो । जल

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मेरेमें प्रवेश करो । " आपोहिष्ठामयोभुवः " इत्यादि नव मंत्रोंकरके जलका स्पर्श अर्थात् मार्जन करे [और आचमनके मंत्रसे आचमन करे] दोबार होठोंको पोछैं । पैरोंका प्रोक्षण करे । मस्तक और देहके छिद्र (नेत्र, नासिका, आदि) का स्पर्श करे । जलकरके आत्मा और हृदयका स्पर्श करे । ब्रह्मचर्य, ज्ञान, दान, मित्रता, करुणा, आनंद, और शांतिपर अर्थात् इनका सेवन नित्य करे।

सुखार्थाःसर्वभूतानांमताःसर्वाःप्रवृत्तयः ।
सुखंचनविनाधर्मात्तस्माद्धर्मपरोभवेत् ।

अर्थ--संपूर्ण प्राणीमात्रोंके सुखके अर्थ कर्म है, सो सुख धर्मके विना नहींहो अतएव इस मनुष्यको धर्मपर अर्थात् धर्मात्मा होना चाहिये ।

मैत्रींसद्भिरसद्भिश्चकुर्यात्सत्सुतुसर्वथा ।
संसर्गंसाधुभिःकुर्यादसत्सङ्गन्तुवर्जयेत् ।

अर्थ–साधु अथवा दुष्ट सबसे मित्रता करे, तिनमेंभी साधुजनोंसे सर्वथा करनी चाहिये । तथा संसर्ग साधुमहात्माओंकेसाथ करे असंगती त्यागदेवे ।

अपकारपरेऽपिस्यादुपकारपरःपुमान् ।
आत्मवत्सकलान्पश्येद्वैरिणोदूरतोवसेत् ।

अर्थ–कोई अपनेसाथ बुराईकरे परंतु आप उसके साथ उपकारही करता रहे । तथा संपूर्ण प्राणियोंको आत्माके समान जाने अर्थात् जैसे किसीप्रकारका आपको दुःख बुरा लगताहै उसीप्रकार दूसरेको जाने । परंतु वैरीसे दूर रहनाही अच्छाहै ।

नकंचिदात्मनःशत्रुंनात्मानंकस्यचिद्रिपुम् । प्रकाशयेन्नापमानंनचानिस्नेहतांप्रभोः । नात्मानमुदकेपश्येन्ननग्नोप्रविशेज्जलम् । तथानाज्ञातगांभीर्यनहिंस्रप्राणिसेवनम् ।

अर्थ– आपेका शत्रु किसीको न करे अथवा आप किसीका शत्रु न बने, तथा अपना और दूसरेका अपमानको तथा निस्नेह (अप्रीति) कोभी प्रकाशित न करे । अपने प्रतिबिंबको जलमें न देखे । तथा नग्नहो जलमें न धसे । उसीप्रकार जबतक किसी नदी नाला तालाब आदि जलाशयकी थाह मालूम न हो तबतक सहसा उसमें न धसे । क्योंकि जीव जंतु और डूबनेका भय रहताहै । तथा हिंसक जीव (सिंह, व्याघ्र, बाज, बिल्ली) आदिको नपाले ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भुंजीतमधुरप्रायंस्निग्धंकालेहितंमितम् । नरात्रौदधिभुंजीत नचनिर्लवणंतथा । नामुद्गयूषंनाक्षौद्रंनचाप्यघृतशर्करम् ।

अर्थ-भोजनके समय हितपदार्थ और अनुमानका मधुरप्राय भोजन करे । रात्रिको दही न खावे तथा विनानोनका विनामूंग भात, सहत, घी और शक्करके भोजन न करे ।

जलस्याशयमालक्ष्ययोयथापरितुष्यति । तंतथैवानुवर्तेत पराराधनपंडितः । सत्यंब्रूयात्प्रियंब्रूयान्नब्रूयात्सत्यमप्रियम् । सत्यन्तुनानृतंब्रूयादेषधर्मःसनातनः ।

अर्थ-लोकोंका अंतःकरण जानकर जो जिसप्रकार संतुष्ट होवे उसके साथ उसीप्रकार वर्त्ताव करे क्योंकि दूसरेको प्रसन्न करताही पंडित कहाताहै । सत्य और प्रिय बोले परंतु अप्रिय सत्यभी न बोले तथा झूठमिला सत्य न बोले यह सनातन धर्महै ।

दृष्टिपूतंन्यसेत्पादंवस्त्रपूतंपिबेज्जलम् ।
सत्यपूतावदेद्वाचंमनःपूतंसमाचरेत् ॥

अर्थ-दृष्टिसे पवित्र अर्थात् प्रथम मार्गको अच्छीरीतिसे देखकर पैर रखना चाहिये । वस्त्रसे छानाजल पीवे । सत्यकरके पवित्र वाणी बोले और मनसे पूत अर्थात् विचारकर आचरण करना चाहिये ।

वृद्धार्कंहोमधूमंचबालास्त्रीपल्वलोदकम्।आयुष्यंवर्द्धतेतस्य रात्रौचक्षीरभोजनम् । संमार्जनीरजोनैवदेहेदध्यात्कदाचन । ननखेनतृणंछिन्द्यान्नोच्छिष्टोब्राह्मणंस्पृशेत् ।

अर्थ-सायंकालका सूर्य, होमका धूआं, सोलह वर्षकी स्त्री, तलैयाका जल और रात्रिमें दुग्ध पीना ये आयुको बढ़ातेहैं । बुहारी (झाडू) की रज देहके ऊपर कभी नहीं लेनी चाहिये । और नखोंसे तिनका नहीं तोडना, जूठे मुखसे ब्राह्मणका स्पर्श न करे ।

नोपरक्तंनचोद्यन्तंनास्तंयातंदिवाकरम्। सर्वथानसमीक्षेतनजलेप्रतिबिंबितम् । नेक्षेतसततंसूक्ष्मदीप्तामेध्याप्रियाणिच । पौरंदरंधनुर्नैवदर्शयेत्कमपिक्वचित् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–ग्रहण,ऊगतेहुएको और अस्तहोते सूर्यको न देखे। जलमें अपने प्रतिबिंबको कदाचित् न देखे, तथा अत्यंत बारीक वस्तु, अत्यंत प्रकाशवान् अपवित्र और अप्रिय वस्तु इनको न देखे। इन्द्रके धनुषको (जो प्रायः वर्षाऋतुमें होता है.) किसीको न दिखावे न आप देखे।

नेच्छेद्बलवतायुद्धंनभारंशिरसावहेत्। गात्रंनताडयेत्केशान् हस्तेनधुनुयान्नच। नगच्छेत्पूज्ययोर्मध्येदंपत्योरन्तरेणच। रिपोरन्नंनभुंजीतगणिकान्नमपिक्वचित्। प्रतिभूर्नभवेत्क्वापि नचसाक्षीवृथाभवेत्।

अर्थ–बलिष्ठ पुरुषकेसाथ युद्ध (कुश्ती आदि) न करे। बोझेको मस्तक पर धरके न चले। हाथोंसे अंगोंको न बजावे। और बालोंको हाथसे न फटकारे। पूज्य (गुरु माता पिता आदि) के बीचमें होकर न निकले। स्त्री पुरुषके बीचमें होकर न जाय। शत्रु, और वेश्याका अन्न न खाय। किसीकी जामिनी न देय उसीप्रकार झूंटी गवाहीभी न देय।

स्थगंनधारयेज्जातुद्यूतंदूरात्परित्यजेत्। विश्वासंनाचरेत्स्त्रीणांतास्वतंत्राश्चनाचरेत्। रक्षणीयाःसदायत्नाद्यौवनेतुविशेषतः। नभिन्नेशयनेसुप्यान्नानेकविवरेऽपिच। नैकोदेवालयेनैवरात्रौतरुतलेपिच।

अर्थ–कपटको धारण न करे अर्थात् कपटी न होय। जूआ खेलना दूरसेही त्याग देवे। स्त्रियोंका विश्वास न करे। और स्त्रियोंको स्वतंत्र न करे यत्नपूर्वक सदैव इनकी रक्षा करे। परंतु जवानीमें स्त्रीकी विशेष करके रक्षा करनी चाहिये। स्त्रीसे पृथक् दूसरी शय्यापर न सोवे। बहुतस्त्रियोंमें तथा बिलेकेपास भी न सोवे। देवालयमें अकेला न सोवे। तथा रात्रिमें वृक्षके नीचे न सोवे।

आचार्यःसर्वचेष्टासुलोकएवहिधीमतः।
अनुकुर्यात्तमेवातोलौकिकेऽर्थेपरीक्षकः॥

अर्थ–बुद्धिमान् पुरुषको संपूर्ण व्यापारोंमें लोकही आचार्यहै। अतएव उस लौकिक अर्थमें परीक्षक होकर फिरकरे। अर्थात् जैसा लोकमें व्यवहार हो उसी प्रकार आपको वर्तना चाहिये।

हिंसास्तेयान्यथाकामंपैशून्यंपरुषानृते। संभिन्नालापव्यापा-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दमभिध्यादग्विपर्ययम्। पापंकर्मेतिदशधाकायवाङ्मानसैः त्यजेत् ।

अर्थ-हिंसा, चोरी, और अन्याई (गुरुस्त्रीगमनादि) ये तीन देहके पाप हैं । चुगली, कठोर बोलना, असत्य बोलना और अनर्थ बोलना ये चार वाणीके पाप हैं । प्राणियोंके मारनेका चिंतवन, परगुणको न सहना और नास्तिकता ये तीन मानसिक पाप हैं ऐसे सब कायिक वाचिक और मानसिक दशप्रकारके पापोंको त्याग देय ।

आत्मवत्सततंपश्येदपिकीटपिपीलिकाम् ।
प्रवृत्तिव्याधिशोकार्त्तानुवर्तेतशक्तितः ॥

अर्थ-कीडी और चैंटीकोभी आत्माके तुल्य देखे (फिर साधु असाधुको क्या देखना) जिनकी वृत्ति नहीं है और रोगी तथा शोकार्त्तहै । उनको यथाशक्ति जो आपसे बने सो देय परंतु हृष्ट पुष्ट वैरागियोंको न देय ।

एवंदिनानिगमयेत्सदाचारपरःसदा । ततोरात्रिप्रयुक्तानि कुर्यात्कर्माणिमानवः । इत्याचारंसमासेनभाषितंयःसमाचरेत् । सविन्दत्यायुरारोग्यंप्रीतिंधर्मंधनंयशः ।

अर्थ-इसप्रकार सदैव सदाचारयुक्त हो दिनोंको व्यतीतकरे । तदनंतर रात्रिमें करने योग्य कर्मोंको करे । यह मैंने संक्षेपसे सदाचार वर्णन करा है । जो मनुष्य इसको आचरण करेगा वह आयु, आरोग्यता, प्रीति, धर्म, धन और यशको प्राप्त होवेगा ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरे सदाचारवर्णनं नाम अष्टाविंशतितमस्तरंगः ॥ २८ ॥

अथातो रात्रिचर्याध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ-अब रात्रिचर्याध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

तत्रादौ संध्याकालीन नियम ।

एतानिपञ्चकर्माणिसंध्यायांवर्जयेद्बुधः ।
आहारंमैथुनंनिद्रांसंपाठंगतिमध्वनि ।

अर्थ-अब रात्रिचर्याको कहतेहैं । तहां प्रथम संध्याकालके नियमोंको कहतेहैं । जैसे कि भोजन, मैथुन, निद्रा, पढना, और मार्ग चलना, ये पांच कर्मोंको बुद्धिमान् पुरुष सायंकाल (प्रदोषसमय) में त्याग देय ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पंचकर्मवर्जनमें हेतु ।

भोजनाज्जायतेव्याधिर्मैथुनाद्गर्भवैकृतिः ।
निद्रायांनिःस्वतापाठादायुर्हानिर्गतेर्भयम् ।

अर्थ--अब इनके फल कहतेहैं । सायंकालमें भोजन करनेसे रोग होताहै, मैथुन करनेसे बालक विकृतरूपवाला होवे । निद्रालेनेसे दरिद्रता । पढनेसे आयुकी हानि और सायंकालमें मार्ग चलनेसे भय होताहै । अतएव इन पांचों कर्मोंको न करे ।

चांदनीके गुण ।

ज्योत्स्नाशीतास्मरानन्दप्रदातृट्चित्तदाहहृत् ।

अर्थ--चांदनी शीतल, कामदेवके आनंदको देनेवाली तथा प्यास, पित्त, और दाहको हरण करेहै ।

हिम (कोहल) गुण ।

ततोहीनगुणःकुर्यादवश्यायोनिलंकफम् ।

अर्थ--चांदनीसे हीनगुण कुहलमेंहै, तथा वादी और कफको बढाता है ।

अंधकारके गुण ।

तमोभयावहंमोहाद्दिङ्मोहजनकंभवेत् ।
पित्तहृत्कफकृत्कामवर्धनंक्लमकृच्चतत् ।

अर्थ--अंधकार-भयदाता, मोह और दिशाओंका भ्रम उत्पन्न करताहै । पित्तको हरे, कफको करे, कामदेवको बढावे, और क्लमको करे है ।

रात्रिभोजनविधि ।

रात्रौचभोजनंकुर्यात्प्रथमप्रहरान्तरे ।
किंचिदूनंसमश्नीयाद्दुर्जरंतत्रवर्जयेत् ।

अर्थ--रात्रिके प्रथम प्रहरमें भोजन (व्यालू) करे । परंतु कुछ न्यून भोजन करे अर्थात् जितनी भूख हो उस्से थोडा खाय, और दुर्जर अर्थात् कठिनतासे जो पचता है उसको रात्रिमें कदाचित् न खाय ।

स्वापविधिः ।

शुचिदेशंविविक्तंतुगोमयेनोपलेपयेत् । वैदिकैर्गारुडैर्मंत्रै-
रभिमंत्र्यस्वपेत्ततः । माङ्गल्यंपूर्णकुंभंचशिरःस्थानेनिधापयेत् ।

अर्थ--एकांतमें पवित्र स्थानको गोबरसे लीप (उसजगे शय्या बिछाय) गरुडसूक्तके मंत्रोंसे शय्याको अभिमंत्रित करके अर्थात् रक्षाबंधन करके

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

फिर गृहस्थी शयन करे और शयनके समय मंगलीक वस्तु (सरसों, पुष्पादिकों)को और जलके पात्रको सिरहाने धरके सोवे।

उपानद्यौवेणुदण्डमम्बुपात्रंतथैवच । ताम्बूलादीनिरम्यानि समीपेस्थापयेद्गृही। प्राच्यांवादक्षिणायांवाशिरःकृत्वास्वपेद्गृही। नार्द्रवासाश्चनग्नश्चशून्येभ्यक्तश्चखेऽशुचिः।पुस्तकादिदर्शनेनशर्वरीप्रथमभागं नीत्वास्वपेत्।

अर्थ--तथा जूतीका जोडा, बांसकी, लकडी, जलका पात्र, और बीडी आदि रमणीक वस्तुओंको गृहस्थी सोतेसमय अपनेपास धरके सोवे। पूर्वकीतरफ या दक्षिणकीतरफ सिरहाना करके सोवे। परंतु गीले कपडोंसे, तथा नग्न होकर शून्यघरमें, तैलादि लगायकर, अतिउच्च स्थान और अपवित्रतासे नहीं सोना चाहिये। रात्रिका प्रथमभाग पुस्तकादि देखनेकरके व्यतीत कर फिर सोवे।

पूर्वरात्रेव्यतीतेतुसुगच्छेद्रतिमन्दिरम्। पादौप्रक्षालयेत्पूर्वंपश्चाच्छय्यांसमाविशेत्।

अर्थ-जब प्रहरभर रात्रि व्यतीत होजावे तब केलिघरमें (अर्थात् स्त्रीकेपास) जाना चाहिये। तहां जायकर प्रथम पैरोंको धोय और पोछकर फिर शय्यापर बैठे।

शय्याके लक्षण।

चतुरशीतिपर्वाणिदैर्घ्येणपरिकल्पयेत्। षष्टयंगुलानिविस्तारंमंचकंहस्तसंमितम्। एवंशय्याविधातव्यासर्वेषांशयनोचिता। मानाधिक्येदरिद्रःस्यान्यानहीनेसुखक्षयः।

अर्थ-अब शय्याके लक्षण कहते हैं। कि चौरासी पर्व (अंगुल) लंबा और ६० अंगुल चौडा और एक हाथ ऊंचा ऐसा पलंग होना चाहिये। यह सर्व जातके मनुष्योंको उचित है। यदि इस मानसे अधिक लंबी चौंडी और ऊंची बनावे तो दरिद्री होय, और इस मानसे न्यून अर्थात् कम करनेसे सुखका क्षय होता है। अतएव यथा मानही शय्या बनानी चाहिये।

नविशालांनवाभग्नांनासमांमलिनांनच। नचजंतुमयींशय्यामधितिष्ठेदनास्तृताम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–जो बहुत बडी और बहुत छोटी हो, टूटी हो, ऊंची नीची हो मलिन (मैली) हो, तथा जिसमें खटमल आदि जीव हों और जिसपर बिछैया न बिछाहो ऐसी शय्यापर न सोवे ।

पर्य्यङ्कके लक्षण ।

आयामःसप्ततालःस्याच्चतुस्तालंतुविस्तृतम् ।
द्वितालमुन्नतंज्ञेयमेतत्पर्यङ्कलक्षणम् ।

अर्थ–अब पर्यंक (पलंग) के लक्षण कहतेहैं । सात ताल लंबा चार ताल चौडा, और दो ताल ऊंचा, ऐसा पलंग उत्तम कहाहै । परंतु यह एक मनुष्यके सोनेके वास्ते है [अंगूठेसे लेकर बीचकी ऊंगली फैलानेसे जितना बीच होता है उस मानको ताल कहते हैं] जैसे आगे लिखते हैं ।

तालादिकोंका प्रमाण ।

अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तंभवेन्मानचतुष्टयम् ।
प्रादेशस्तालगोकर्णवितास्तिस्तुयथाक्रमम् ।

अर्थ–अँगूठेसे लेकर कनिष्ठिकापर्यंत क्रमसे चार मान होते हैं जैसे प्रादेश, ताल, गोकर्ण और वितस्ती अँगूठे और तर्जनीका प्रादेश, अँगूठा मध्यमाका ताल, एवं अँगूठा अनामिकासे गोकर्ण और अँगूठा तथा कनिष्ठिकासे वितस्ति अर्थात् विलायद (वालिस्त) होता है ।

व्यवायविधिगुण ।

शरीरेजायतेनित्यंदेहिनांसुरतस्पृहा ।
अव्यवायान्मेहमेदोवृद्धिःशिथिलतातनोः ।

अर्थ–देहधारियोंके देहमें नित्य मैथुन करनेकी इच्छा होती है । मैथुनइच्छा रोकनेसे इस प्राणीके प्रमेहरोग, मेदवृद्धि, और देहमें शिथिलता होती है ।

प्रशस्तस्त्रीविचार ।

बालेतिगीयतेनारीयावद्वर्षाणिषोडश । ततस्तुतरुणीज्ञेया द्वात्रिंशद्वत्सरावधि । तदूर्ध्वमधिरूढास्यात्पंचाशद्वत्सरावधि । वृद्धातत्परतोज्ञेयासुरतोत्सववर्जिता ।

अर्थ–सोलह वर्षपर्यंत स्त्रीकी बाला संज्ञा है। तदनंतर३२वर्षकी अवस्थातक तरुणी संज्ञा है । फिर बत्तीसके उपरान्त ५० वर्षकी अवस्थातक स्त्रीकी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अधिरूढा (प्रौढा) संज्ञा है। पचास वर्षकी अवस्थासे उपरांत स्त्री वृद्धा कहाती है। यह मैथुन करनेमें वर्जित कही है।

स्त्रीजाति।

देवीमप्सरसोयक्षकान्ताराक्षसकामिनी।
कृत्यामितिजगुर्नारींयुक्तांतैरेवलक्षणैः।

अर्थ-स्त्री देवी, अप्सरा, यक्षिणी, राक्षसी और कृत्या इनके लक्षण होनेसे वही वही कहाती है। अर्थात् देवताओंके लक्षण मिलनेसे देवी, अप्सराके लक्षणोंसे अप्सरा, यक्षके लक्षणोंसे यक्षिणी, राक्षसकेसे राक्षसी, उसी प्रकार कृत्याके लक्षणकरके स्त्रीको कृत्या कहतेहैं। इनके लक्षण नीचेके संस्कृत श्लोकोंसे जानलेना।

पुरुषजाति।

देवगन्धर्वयक्षाणांयेराक्षसपिशाचयोः।
लक्षणैःसंयुतास्तेस्युर्नरास्तैरेवनामभिः।

अर्थ-जो देव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाचोंके लक्षणोंसे लक्षित हैं वे मनुष्य उसी २ नाम करके कहातेहैं। जैसे देवताके लक्षणसे देवमनुष्य, गंधर्वसे गंधर्व मनुष्य, यक्षके लक्षणोंसे यक्ष मनुष्य, राक्षसके लक्षणसे राक्षस, और पिशाचके लक्षणसे पिशाच मनुष्य कहलाताहै। इनके लक्षण नीचेके श्लोकोंसे जानो।

---

१ चन्द्रमुखीमृगनयनामदनधनुर्भ्रूः शशाङ्कशिशिरायाः। समशिखरसदृशदशना मुखपरिलीनमधुपालिः १ पुंस्कोकिलमधुरोक्तिर्बिम्बोष्ठीकम्बुकण्ठकृतशोभा। कोमलमृणालबाहूरक्तोत्पलसदृशकरचरणा २ श्रीफलसमवक्षोजामध्येक्षीणागभारिनाभिश्च। त्रिभुवनजयरेखाइवयस्यास्त्रिवलीलताभाति ३ पृथुतरानितंबबिंबाहारिणीस्मरसममन्दिरोद्देशा। कामतरोरङ्कुरइवयस्यारोमावलीविभात्युदरे ४ रम्भोरुर्हसगतिःकनकरुचिर्नीलनीरजाभायाः। सुरभक्तापतिमुक्तालज्जालुःसुरभिरतनीरा ५ सितवसनकुसुमनिरतालध्वाहारातिकृष्णघनकबरी। सुचिरकालितपतिरमणादेवीसापद्मिनीश्यामा ६ गीतनृत्यप्रियाकेकावाणीचित्राम्बरैषिणी। सुगन्धवक्त्रभगतिःसुन्दरीमधुरप्रिया७मधुगन्धरतद्रावाकोष्णाङ्गीकठिनस्तनी। गौराश्यामशरीरावासुविशालकटीतटा ८ अजालघुःस्मरावासाबाह्यसम्भोगरागिणी। नारीयाचिंत्रिणीचिह्नासाप्सराजातिरुच्यते ९ स्थूलाङ्गीचातितन्वीगौरीश्यामापिदीर्घकरचरणा। वडवापृथुमदनगृहारक्ताम्बररागिणीकुटिला १० विपुलकुचापृथुजघनासोष्णाङ्गीक्षारगंधरतसलिला। याशंखिनीसमानाहंसरवायक्षिणीसास्यात् ११ दीर्घास्यदन्तनासास्थूलोष्ठीस्थूलहस्तचरणाच। कपिलकचागतलज्जावारणकुम्भाभवक्षोजा १२ कारिमदगन्धरतजलारोमशजंघाकषायकटुरसना। स्थूलपृथुःस्मरगेहाशीतोष्णाङ्गीचखरवचना १३ अरुणाङ्गीश्यामावापतिवर्गद्वेषिणीकुटिलचित्ता। याहस्तिनीसमानासाज्ञेयाराक्षसीनारी १४ कलहप्रियातिदीर्घाखर्वावाश्यामपीतहारीतावा। लम्बोष्ठीलघुनासालम्बशिथिलस्तनविभागाच १५ शुष्ककटिःपृथुजठराविगन्धकायाचकरभिकायोनिः। यद्यस्मराशिवोक्तिःसाज्ञेयाकर्मठा कृत्या १६ अन्योन्यलेक्षणैर्युक्तांनारींसंकीर्णकांविदुः। यानिजैरेवसंयुक्ताचिह्नैस्तांकेवलांविदुः १७

२ दातासत्यवचःशूरोज्ञानीसत्वरतःशुचिः।सुवर्णकान्तिःश्यामोवामहाकायोघनध्वनिः १ आजानुलंबितौबाहूक-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

परस्त्रीगमननिषेध ।

लङ्केश्वरोजनकजाहरणेनवालीतारापहारकतयाप्यथकीच-
कारव्यः । पाञ्चालिकाग्रहणतोनिधनंजगामतच्चेतसापिप-
रदाररतिंनकांक्षेत् ।

अर्थ--जानकीके हरणसे रावण, तारा (रुमा सुग्रीवकी स्त्री) के हरणसे वाली, और द्रोपदीके हरणसे कीचक मारागया अतएव सत्पुरुष परस्त्रीसे रमण करनेकी इच्छा मनकरकेभी न करे ।

उर्वशीसुरतचिन्तयाययौसंक्षयंकिलपुरूरवानृपः ।
रक्षणायनिजजीवितस्यतत्संभजेत्परवधूंनकामतः ।

अर्थ--देखो पुरूरवा राजा उर्वशी अप्सराकी रमणचिंताकरके मारागया, अतएव सत्पुरुष अपने निज जीवनके अर्थ पराई स्त्रीका संग इच्छासेभी न करे।

आयुःक्षतिंविकलतात्युपहास्यताचनिन्दार्थहानिलघुताकुग-
तिःपरत्र । स्यादेवयद्यपिरतेनपराङ्गनायाःप्राहुस्तथाप्यनघ-
मित्यपिकारणेन ।

म्बुग्रीवोबलीचतुर्दशः । भाग्यविधिःपृथुवक्षोलघुमधुराक्षरोचपद्माक्षः २ मलयजगन्धशरीरःकामक्रोधंनिषेवते स्थाने । मृगलिंगःसुरपुरुषोभक्तोविप्रेषुविज्ञेयः ३ सत्वरजोभ्यांयुक्तःश्यामोवाचंपकामोवा । रूपस्वीशुचिवेशोमधुराम्लरुचिर्वदान्यश्च ४ संगीतरक्तप्रमदासुसक्तोदुःखासहोदुन्दुभिधीरघोषः । मध्यप्रमाणोम्बुजगन्धिकायोगन्धर्वजातिःकथितोजलिङ्गः ५ पृथुजठरललाटःपीनकण्ठोबलीयान्विपुलनिबिडकायोरोमशःकुड्मलाक्षः । अचलमीतरमर्षीसिंहघोषोधनाढ्योनवघृतसमगन्धःकान्तरक्तान्तनेत्रः ६ दीनेषुदाताम्लरसालभोजीरजस्तमोभ्यांजनितानुषङ्गः । यत्किञ्चिदाश्यामतनुप्रदिष्टः सयक्षजातिर्वृषलिङ्गलिङ्गः ७ कृष्णोरुणोवाविकृतास्यदंष्ट्रो प्रचंडकायोबलवान्पलाशी । उष्ट्रस्वरःकोपनिधिः सुरापस्तपोमयोवारणदानगन्धिः ८ बिडालाक्षःसुरान्द्रोष्टिनित्यमूर्ध्वशिरोरुहः । रक्षोजातिर्नरोज्ञेयोह्ययलिङ्गाभमेहनः ९ आसवरातिर्बहुभुक्कटुम्लाशीचकर्मठःपिशुनः । स्थूलःकृशोतिदीर्घःखर्वोवाकृष्णपीतोवों १० अतितामसोऽजगन्धिःकाकरवोह्रस्वकूर्चकःपापः । भीरुःकुधीः पिशाचोरासभलिङ्गस्तुविज्ञेयः ११ परस्परगुणान्कांश्चिद्योविभर्त्तिसमिश्रकः । यःस्वैरेवगुणैर्युक्तःसस्वरूपोनिगद्यते १२ ।

हरिणीछागीवडवाकरणीकरभीतिपंचधानार्यः । मृगकुक्कुटवृषतुरगरासभसंज्ञानराःपञ्च १ ऋतुलोकपालपंक्तिर्द्वादशभुवनाङ्कुलोन्मितैर्गुह्यैः । अनुपूर्वतस्तुउक्ताहारिणीहारिणादयोज्ञेया २ दैवींचतुर्थयामेदिनरात्र्योरप्सरोगणंप्रथमे । यक्षींतृतीययामेद्वितीयकेराक्षसींरमयेत् ३ निखिलेष्वपिवाकृत्यांनो वाकृत्यासदाभवेद्दम्या । करभीचिह्नाकृत्याखरःपिशाचस्तयोर्युक्तम् ४

आसनेलालयेद्बालांतरुणांशयनेतथा । उत्थितेप्यतिरूढांचलालनंत्रिविधंस्मृतम् १ नारंभेतरतंतावद्यावन्नोत्कंठिताप्रिया । अन्यथानसुखोत्पत्तिरितिकामानुशासनम् २ पद्मजासनलयेनपद्मिनींनागरेणरमयेतचित्रिणीम् । वेणुदारितपदेनशंखिनीं स्कंधपादयुगलेनहस्तिनीम् ३ व्रजतिरतिसुखार्थंचित्रिणीमप्रयामेभजातिदिनरजन्योर्हस्तिनीचद्वितीये । रमयतिचतृतीयेशंखिनीमार्द्रभावंरमयतिरमणीयांपद्मिनींतुर्ययामे ४

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–परस्त्रीगमनसे क्या क्या अनर्थ होते हैं सो दिखाते हैं आयुकी क्षीणता, विकलता, संसारमें हँसी निंदा, धनकी हानि, तुच्छता, मरनेपर दुर्गती ये होते हैं । अतएव परस्त्रीसंग सर्वथा त्याज्य है ।

ऋतुपरत्वस्त्रीविचार ।

निदाघशरदोर्बालाहितविषयिणीमता । तरुणीशीतसमये प्रौढावर्षावसन्तयोः । नित्यंवासेव्यमानाहिबालावर्द्धयतेबलम् । तरुणीह्रासयेच्छक्तिंप्रौढोद्भावयतेजराम् ।

अर्थ–गरमीकी ऋतु और शरदृऋतुमें बालास्त्रीसे विषय करना अच्छा है । तरुणी स्त्री शीतकालमें हित और प्रौढा वर्षा तथा वसंतऋतुमें हित कही है । नित्य सेवन करनेसे बालास्त्री बलको बढातीहै । तरुणी स्त्रीसे नित्य विषय करनेसे देहशक्ति क्षीण होती है । और प्रौढा स्त्री वृद्धावस्था करे है अतएव इस पुरुषको बालास्त्रीकाही सेवन हितकारी है ।

सद्यःप्राणदायक षट्पदार्थ ।

सद्योमांसंनवंचान्नंबालास्त्रीक्षीरभोजनम् ।
घृतमुष्णोदकस्नानंसद्यःप्राणकराणिषट् ।

अर्थ–ताजा मांस, नवीन अन्न, बाला स्त्री, दूधका भोजन, घी और गरम जलसे स्नान, ये छः वस्तु तत्काल प्राणदायक हैं । अर्थात् इन छः वस्तुओंका सेवन इस प्राणीको नित्य करना चाहिये ।

सद्यःप्राणनाशक षट्पदार्थ ।

पूतिमांसंस्त्रियोवृद्धाबालार्कतरुणंदधि ।
प्रभातेमैथुनंनिद्रासद्यः प्राणहराणिषट् ।

अर्थ–सडामांस, बुड्ढी स्त्री, बालार्क (प्रातःकालीनका सूर्य) ताजा दही प्रातःकाल मैथुन करना और निद्रा लेना ये छः वस्तू तत्क्षण प्राण हरण कर्त्ता हैं । अतएव इन छः वस्तुओंको शुभेच्छू पुरुष सेवन न करे ।

तरुणस्त्रीकी प्रशंसा ।

वृद्धोपितरुणींगत्वातरुणत्वमवाप्नुयात् । वयोधिकांस्त्रियंगत्वातरुणःस्थविरायते । आयुष्मन्तोमन्दजरावपुर्वर्णबलान्विताः । स्थिरोपचितमांसाश्चभवंतिस्त्रीषुसंयताः ।

अर्थ–वृद्ध पुरुषभी तरुण स्त्रीसे गमन करे तो तरुणत्वको प्राप्त होवे । और वृद्ध स्त्रीसे यदि तरुण पुरुष गमन करे तो बुड्ढा होजावे । अतएव पुरुषको

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उचित है कि, वृद्धासे कदाचित् रमण न करे जो पुरुष तरुण स्त्रीसे भोग करते हैं वो आयुष्यवान् अल्प वृद्ध, देह वर्ण बलयुक्त तथा स्थिर और हृष्टपुष्ट होते हैं।

स्त्रीसेवनमें काल।

सेवेतकामतःकामंबलाद्वाजीकृतोहिमे । प्रकामन्तुनिषेवेत मैथुनंशिशिरागमे । त्र्यहाद्वसन्तशरदोःपक्षाद्वृष्टिनिदाघयोः।

अर्थ–हेमंतऋतुमें पुरुष वाजीकरणकी विधिसे यथेष्ट स्त्रीसे रमण करना। और शिशिरऋतुमें जब इच्छाहो तभी रमण करे और वसंतऋतु और शरद्ऋतुमें तीनतीन दिनके अंतरसे स्त्रीगमन करे। और वर्षाऋतु तथा गरमी की ऋतुमें पक्षपक्ष अर्थात् पंद्रह पंद्रह दिनके अंतरसे स्त्रीगमन करना चाहिये।

देशपरत्व स्त्रियोंकी प्रकृति।

रूक्षाङ्गीबहुभोजनाचलमतिर्गीतप्रियावातला । शैलाम्भोनिधिपार्श्वदेशवनिताप्रायोभवेदीदृशी । वर्षायांकुसुमागमे चबहुशःसेव्यापरंप्रीतिदा।

अर्थ–रूखे अंगकी, बहुत भोजन करनेवाली, चपल बुद्धि, गानप्रिय, और वातप्रकृति, ऐसी पर्वत, समुद्रके समीप रहनेवाली स्त्रियां होती हैं। इनको वर्षा और वसंतऋतुमें प्रायः सेवन करे ये इसऋतुमें आनंदकी दाता हैं।

गुर्वाहारसुगंधमाल्यवसनास्निग्धाङ्गरागादिभिः। व्यक्तग्रन्थिरहर्निशंचसकलेगात्रेवहंत्युष्णताम्।अम्भोजप्रसवारुणोत्तमकराशीतालयप्रेयसी । सौराष्ट्राङ्गकलिङ्गसिन्धुयुवतीःकामं भवेत्पित्तला । हेमन्तेशिशिरेनरैरनुदिनंसेव्यायथाकांक्षया।

अर्थ–अत्यंत भोजन करे, सुगंधित माला, वस्त्रोंको धारण करनेवाली, अंगराग (आदिशब्दसे बीडी चबाना, माँग भरना, भूषण धारण करने करके) सुशोभित, जिसके देहमें ग्रन्थि हो। और संपूर्ण देहमें उष्णताको धारण करनेवाली जिसके स्खलित होनेमें कमलकीसी गंध आवे लाल हस्तकमल जिसके, और शीतल स्थान जिसको प्रिय ऐसी सौराष्टदेश, अंगदेश, कलिंगदेश और सिंधकश्मीरदेशकी पित्तप्रकृतिवाली स्त्रियां होती हैं। इनको हेमंत और शिशिरऋतुमें यथेच्छ सेवन करे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ज्ञेयाकोकिलकाकलीमृदुरवानन्दैषिणीशीतला । निद्रालुश्च शिरीषकोमलतनुःस्निग्धाननाश्लेष्मला । वङ्गःश्रीहटकामरू-पतरुणीसुस्निग्धकेशीभवेत् । गंतव्याशरदिप्रदिष्टमदनाग्री-ष्मेऽपिपुंभिर्वरैः ।

अर्थ–कोकिलके समान मिष्टवचनकी बोलनेवाली, आनंदकी इच्छा जिसके और शीतल तथा निद्रालु, और शिरीषपुष्पके सदृश नम्रदेहवाली स्निग्धमुखी और कफप्रकृति ऐसी वंग (बंगाला) श्रीहट (सिलहट) और कामरूदेशकी स्त्री होती हैं। इनके बालभी सटकारे कारे होते हैं। इसी कारण मनुष्यको शरद्ऋतु और ग्रीष्मऋतुमें इनकेसाथ कामक्रीडा करनी चाहिये।

ऋतुपरत्वस्त्रीगमनमें सुश्रुतका प्रमाण।

त्रिभिस्त्रिभिरहोरात्रैःसमयात्प्रमदांनरः ।
सर्वेष्वृतुषुघर्मेतुपक्षात्पक्षाद्व्रजेद्बुधः ।

अर्थ–सुश्रुतमें लिखा है कि, संपूर्ण ऋतुओंमें इस मनुष्यको तीनतीन दिनके अंतरसे मैथुन करना और गरमीकी ऋतुमें पंद्रह पंद्रह दिनके अंतरसे रमण करना चाहिये।

ऋतुपरत्व कामस्थान।

शीतेरात्रौदिवाग्रीष्मेवसन्तेतुदिवानिशि ।
वर्षासुवारिदध्वानेशरत्सुसरसिस्मरः ।

अर्थ--शीतकालमें रात्रिमें गमन करे, गरमियोंमे दिनमें, और वसंतऋतुमें दिन रात्रि दोनोंसमय, तथा वर्षाऋतुमें जिससमय मेघ गर्ज रहाहो अर्थात् वर्षताहो उससमय और शरद्ऋतुमें सरोवरमें कामदेव वास करे है अतएव सरोवरमें या सरोवरके समीपस्थानमें कामक्रीडा करे।

निषेधकाल ।

नोपेयात्पुरुषोनारींसन्ध्ययोर्नचपर्वसु ।
गोसर्गेचार्धरात्रेचतथामध्यंदिनेपिच ।

अर्थ–अब वर्जित समय कहते हैं। दोनों समयकी संध्या, पर्व, जिसमय

---

१ चतुर्दश्यष्टमीचैव अमावास्याचपूर्णिमा । पर्वाण्येतानिराजेन्द्र ! रविसंक्रान्तिरेवचेति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गौ छोडी जाती है, अर्धरात्रि तथा मध्याह्नके समय इस पुरुषको स्त्रीसे रमण नहीं करना चाहिये ।

स्त्रीसेवनविधि ।

विहारंभार्ययाकुर्यादेशेतिशयमावृते ।
रम्येश्राव्याङ्गनागानेसुगन्धेसुखमारुते ।

अर्थ-इस पुरुषको अपनी स्त्रीकेसाथ विहार करना चाहिये । जो देश प्रायः सर्व जनोंको प्रकाशित न हो अर्थात् एकांत हो और रमणीक, जिसमें स्त्री गान कर रही हो सुगंधित और सुखदायक पवन आय रही हो ऐसी जगे संभोग करे ।

संभोगके अयोग्यस्थान ।

देशेगुरुजनासन्नेविवृतेतित्रपाकरे । श्रूयमाणव्यथाहेतुवचने चरमेन्नच ॥ वह्निब्राह्मणपूज्यवर्गनिकटेनद्यांचदेवालये दुर्गा-दौचचतुष्पथेपरगृहेऽरण्येश्मशानेपिवा । संक्रांतौशशिसंक्ष-येथशरदिग्रीष्मेज्वरात्तौव्रते ।संध्यायांचपरिश्रमेषुसुरतंकुर्या-न्नविद्वान्क्वचित् ।

अर्थ-गुरुजनके समीप अर्थात् जहां मातापिता आदिकी समीपता हो । खुलाहुआ, और लज्जाकारक, तथा जहां किसीप्रकारका दुःख और दुःखित शब्द सुनाई देता हो वहां कदाचित् रमण न करे अग्नि, ब्राह्मण पूज्य, इनके समीप, नदीके किनारे, देवालयमें, कोट (किले) आदिमें, चौराहेमें, पराये घरमें घोर वनमें श्मशानमें, दिनमें, संक्रातिमें, अमावस, अत्यंत शरदी, और गरमीमें, ज्वरमें, व्रतमें, संध्या (प्रातःकालकी और सायंकालकी) में इसी प्रकार परिश्रम करके इनमें विद्वान् पुरुषको कदाचित् स्त्रीसेवन नहीं करना चाहिये ।

विहितप्रदेशः ।

विस्तीर्णेसजलेसुधाधवलितेचित्रादिनालङ्कृते रम्यप्रोन्नत-चत्वरेऽगरुमहाधूपादिपुष्पान्विते । सङ्गीताङ्गविराजितेस्व-भवनेदीपप्रभाभासुरे । निःशङ्कंसुरतंयथाभिलषितंकुर्यात्स-मंकान्तया ।

अर्थ-लंबाव और चौडावयुक्त, सजल, सफेदीसे पूतरहाहो, चित्रामसे अलं-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कृत, अथवा तसबीरोंसे शोभित गानके अंग (बाजे नृत्य आदिसे)विराजित दीपकके प्रकाशसे प्रकाशित, अथवा झाड फानूससे प्रकाशित, रमणीक और ऊंचा है आंगन वा छत्त जिसकी, अगरआदि धूनीसे धूपित तथा पुष्पबिछ रहे हों ऐसे परम परमणीक अपने घरमें अपनी प्यारीकेसाथ निःशंक यथेष्ट रमण करे ।

संभोगसमयमें वेष ।

स्नातश्चन्दनलिप्ताङ्गःसुगंधःसुमनोन्वितः । भुक्तवृष्यः सुवस-
नःसुवेषःसमलङ्कृतः । ताबूम्लवदनःपत्न्यामनुरक्तोऽधिक-
स्मरः । पुत्रार्थीपुरुषोनारीमुपेयाच्छयनेशुभे ।

अर्थ–अब संभोग करनेके सयय कैसा पुरुष होय यह कहते हैं । स्नानकर चन्दन लगाया, सुगंधित अतर आदि लगाया रक्खाहो, प्रसन्नचित्त, वीर्यके बढानेवाली औषध भक्षण कर, सुंदर वस्त्र और सुंदर वेष तथा भूषण और पुष्पादिहारोंसे सजकर, बीडा चबाय, अपनी प्राणप्यारीमें अनुरागयुत, कामोद्दीपन होरहाहो, ऐसा पुरुष पुत्रकी इच्छा करके शुभ शय्यापर अपनी स्त्रीकेपास जावे ।

अयोग्य पुरुष ।

अत्याशितोधृतिःक्षुद्रान्सव्यथाङ्गःपिपासितः ।
बालोवृद्धोन्यरोगार्त्तस्त्यजेद्रोगीचमैथुनम् ।

अर्थ–अब अयोग्य पुरुष कहते हैं । जिसने अत्यंत भोजन कराहो, धैर्य-रहित, भूखा, देहमें पीडा होरहीहो, प्यासा हो, बालक, बुड्ढा, गरमी सुजाक आदिसे पीडित, और रोगी ऐसे पुरुषको मैथुन कदापि नहीं करना; यदि पुरुषकी इच्छाभी हो तो स्त्रीको नाहीं करदेना चाहिये ।

वर्जितमैथुनपुरुष ।

क्षुधितःक्षुन्धचित्तश्चमध्याह्नेतृषितोऽबलः। स्थितश्चहार्निशु-

---

१ मार्जारीहिमवालुकापिशुनकं गोशीर्षकंशिल्पिनं वह्नेःप्रीतिकरं तथाम्बुपिशितास्यात्कौशिकौजांगिकम् कल्कंभागविवर्धितंगुडसितासंमूर्च्छितंसर्पिषायुक्तं मन्मथवर्त्तिरित्यभिहितास्याद्भोगिनांसर्वदा १ सुरुदारुमरु-वमस्तकलाक्षागुरुशालचूर्णकर्पूरं । नृपवासदेहगेहयोग्यामनोहरादीपवर्त्तिरियम् २

२ अथांगवासःचूर्णकुष्टमुरानागकेशराणांघृतान्वितम् । मधुपीतंकरोत्यङ्गंसौरभंसततंनृणाम् ॥ प्रातःकुष्ठ-स्यचूर्णलिहेन्मधुघृतान्वितम् । काठिन्यंसौरभंतस्यदेहेस्याच्चिरजीविता ॥

अथधूपाः शशिनखागीरीमदमांसीजलभागोमलयलोध्रयोर्भागौ । मिलितैर्गुडपीरमृदितैर्वल्लघृतादीनिधूप-येच्चतुरः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्रस्य वायोःकोपंचविन्दतिं । व्याधितस्यरुजाग्लीहामूर्च्छा-मृत्युश्चजायते ।

अर्थ–भूखा- क्षोभितचित्तवाला, मध्याह्नमें, प्यासा, बलहीन और स्थित इनको मैथुन नहीं करना, यदि करेतो शुक्रकी हानी, वायुकोप होय और रोगी करेतो उसके पीडा अधिक हो, तापतिल्ली, मूर्च्छा, और मृत्यु होवे ।

योग्य स्त्री ।

भार्यारूपगुणोपेतांतुल्यशीलकुलोद्भवाम् । अभिकामोऽभिकामांतुहृष्टोहृष्टामलंकृताम् । सेवेतप्रमदांयुक्त्यावाजीकरणबृंहितः ।

अर्थ–रूप और गुणयुक्त समान स्वभाव और कुलमें प्रगट दोनोंके रमणकी इच्छा हो, और पुरुष आप प्रसन्न हो एवं प्रसन्नचित्तवाली स्त्री तथा शृंगार कर रक्खाहो और वाजीकरणकारक औषधी सेवन कर पुरुष अपनी भार्याको युक्तिकेसाथ सेवन करे ।

अनुरक्तस्त्रीके लक्षण ।

स्नेहंमनोभवकृतंकथयन्तिभावा नाभीभुजस्तनविभूषणदर्शनानि । वस्त्राभिसंयमनकेशविमोक्षणानि भ्रूक्षेपकंपितकटाक्षनिरीक्षणानि ।

अर्थ–अब अनुरक्त स्त्री अर्थात् जो अपनेको चाहती हो उसके लक्षण कहते हैं । कामदेवके करेहुए भाव स्नेह (प्रीती) को प्रगटकरते हैं । उन भावोंको कहते हैं जैसे नाभी, भुजा, स्तन और भूषणोंको दिखाना वस्त्रोंका संयमन अर्थात् घूंघट आदि अथवा वस्त्रोंको सुधारना, बालोंका छोडना, भौंहके मरोडने करके कंपितकटाक्षोंसे देखना ये अनुरागवती स्त्रीके लक्षण है ।

उच्चैःष्ठीवनमुत्कटप्रहसितंशय्यासनोत्सर्पणम् गात्रास्फोटनजृंभणानिसुलभद्रव्याल्पसंप्रार्थना । बालालिङ्गनचुंबनान्यभिमुखेसख्याःसमालोकनम् दृक्पातश्चपराङ्मुखेगुणकथाकर्णस्यकंडूयनम् ।

अर्थ–ऊंचेसे खकारकर थूकना, अत्यंत हँसना, सेजसे और विछैयेसे हटकर समीप आना अंगोंको बजाना, जँभाई लेना, सुलभ और थोडी द्रव्यकी या-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चना करना, पुरुषको देख अपने बालकको आलिंगन करना और उसका चुंबन करना, अपनी बराबरकी सहेलीके साम्हने देखना, जब पुरुषकी दृष्टी न होय तब दृष्टिका चलाना, और परोक्ष (पिछाडी) बडाई करना,तथा कान-का खुजलाना ।

इमांचविंद्यादनुरक्तचेष्टांप्रियाणिवक्तिस्वधनंददाति । विलो-क्यसंहृष्यतिवीतरोषाप्रमार्ष्टिदोषान्गुणकीर्त्तनेन । तन्मित्र-पूजातदरिद्विषत्वंकृतस्मृतिःप्रोषितदौर्मनस्यम्। स्तनौष्ठदा-नान्युपगूहनंचस्वेदोऽथचुम्बाप्रथमाभियोगः ।

अर्थ--प्रियवचनोंका बोलना, अपनेपाससे धन देना, यदि क्रोधमेंभी बैठी होतो देखतेही क्रोधको छोड प्रसन्न होजावे और उसके गुणकीर्त्तन करके दो-षोंको दूरकरदे, तथा अपने प्यारेके जो मित्रगणहैं उनका सत्कार करना, और जो उसके वैरीहैं उनसे द्रोह करना,तथा जो अपने प्यारेने कुछ सत्कार कराहो उसको याद रखना, उसके परदेशमें रहनेसे अप्रसन्न रहना तथा स्तन-का स्पर्श और ओष्ठोंका चुंबन तथा आलिंगन करना पसीनोंका आना तथा पुरुषका चुंबन करना ये संपूर्ण लक्षण अनुरक्तस्त्रीके प्रथम समागममें होते हैं ।

विरक्तस्त्रीके लक्षण ।

विरक्तचेष्टाभ्रुकुटीमुखत्वंपराङ्मुखत्वंकृतविस्मृतेश्च । असं-भ्रमोदुष्परितोषताचतद्विष्टमैत्रीपरुषंचवाक्यम् । स्पृष्ट्वाथ-वालोक्यधुनोतिगात्रंकरोतिगर्वंनरुणद्धियातम् । चुंबाविरा-मेवदनंप्रमार्ष्टिपश्चात्समुतिष्ठत्तिपूर्वसुप्ता ।

अर्थ--विरक्त कीसी चेष्टाकरे, भौंह चढायेई रहे, कभी सन्मुख न देखे, करे हुए उपकारको न माने, पतिका निरादर करे, किसीप्रकार संतुष्टही नहो, अप-ने पतिके द्वेषियोंसे प्रीति करना, कठोरवचन बोलना स्पर्श करनेसे तथा देखकर पीटनेलगे, गर्वकरे, तथा जातेहुएको रोके नहीं, चुंबन करतेही शीघ्र मुखको पोंछ डाले, पतिसे प्रथम सोवे और पतिके जगनेके पीछे उठे ये विर-क्त अर्थात् जिसकी प्रीति नहींहो उसकी चेष्टा है ।

स्त्रीणां नाशहेतु ।

पितृसदननिवासःसङ्गतेःपुंश्चलीभिः प्रवसनमपिपत्युर्वार्ध-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कंसेर्ष्यताच । वसतिरथचपुंभिर्दुष्टशीलैस्त्ववश्यंक्षतिरपि निजवृत्तेर्योषितांनाशहेतुः ।

अर्थ–स्त्री इनकारणोंसे बिगडतीहै । जैसे पिताके घरमें रहना, दुष्ट स्त्रियोंके पास बैठना उठना. पतिके परदेशमें रहनेसे, पतिके बुड्ढे होनेसे, और ईर्ष्या करनेसे तथा खोटे पुरुषोंमें रहनेसे और निजवृत्तिके नष्ट होनेसे स्त्री व्यभिचारिणी होतीहै ।

दुष्टस्त्रियोंकी दूती ।

भिक्षुणिकाप्रव्रजितादासीधात्रीकुमारिका रजिका।मालाकारीदुष्टाङ्गनासखीनापितीदूत्यः । कुलजनविनाशहेतुर्दूत्योयस्मादतःप्रयत्नेन । ताभ्यःस्त्रियोभिरक्ष्यावंशयशोमानवृद्ध्यर्थम्।

अर्थ–दुष्टस्त्रियोंकी दूती कहतेहैं । भीख मांगनेवाली वैरागिन, दासी, धाय, बालिका, धोबन, मालिन, खोटीस्त्री, सहेली, और नाइन ये दूती हैं । अर्थात् खोटी स्त्री पुरुष इनके द्वारा बातचीत करते हैं। ये कुलजनविनाशकी हेतुहैं। अतएव अच्छे पुरुष इनदुष्टदूतियोंसे अपने घरकी स्त्रियोंकी रक्षा करे ।

स्त्रियोंके संकेत ।

रात्रीविहारजागररोगव्यपदेशपरगृहेक्षणिकाः । व्यसनोत्सवाश्वसङ्केतहेतवस्तेषुरक्ष्याश्च ॥

अर्थ–रात्रिमें घरसे निकल बाहर डोलना रातमें जागना (जैसे रज्जगेमें स्त्री इकट्ठी होती है) रोगका मिषकरके पडी रहना, पराये घरमें बहुतसा उठना बैठना, देवदर्शनका मिष करना, व्यसन (रोगको उत्पन्न करता हेतुको लेकर दुःख सेवन करना) और विवाहादिक उत्सवोंमें जाना ये दुष्टस्त्रीके परपुरुषोंसे मिलनेके संकेतहेतु है अतएव चतुर पुरुष इन संकेतोंसे स्त्रीकी रक्षा करे।

त्याज्य स्त्री ।

रजस्वलामकामांचमलिनामप्रियान्तथा । वर्णवृद्धांवयोवृद्धांतथाव्याधिप्रपीडिताम् । हीनाङ्गींगर्भिणींद्वेष्यांयोनिरोगसमन्विताम् । सगोत्रांगुरुपत्नींचतथाप्रव्रजितामपि । नाभिगच्छेत्पुमान्नारींभूरिवैगुण्यशंकया ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-रजस्वला, अकामा, मलिन, अप्रिय वर्णवृद्ध (अर्थात् शूद्रको वैश्यकी, वैश्यको क्षत्रीकी, क्षत्रीको ब्राह्मणकी) स्त्री, अवस्थामें बडी, रोगसे पीडित, हीन अंगकी, गर्भिणी, वैरीकी स्त्री, योनिरोग (गरमीआदि रोग) वाली, एकही गोत्रकी, गुरुकी पत्नी, संन्यासिन अर्थात् बैरागिन इन स्त्रियोंमें, अनेक अवगुणकी शंका करके पुरुष गमन न करे । कोई द्वेष्याकी जगे वेश्या कहता है ।

दुःसाध्या स्त्री ।

भर्तृस्नेहवतीदृढैकवनिताप्रेम्णाविहीनाभृशं सेर्ष्याभूरिसुता-
त्रपाभरयुतागुर्वादिभीतिस्थिता । प्रायेणार्थवतीतथापरज-
नालापेविरक्तासदा निर्लोभाव्यभिचारकर्मणिबुधैर्दुःखेनसा-
ध्यास्मृता ।

अर्थ-पतिमें अत्यंत प्रेम रखतीहो दृढ एकपुरुषमें आसक्त और निरंतर प्रेमहीना, ईर्षायुक्त, बहुत संतानवाली, अत्यंत लज्जावाली, गुरु (ससुर, सास जेठ) आदिकी भय करतीहो, प्रायः धनकी कांक्षा रखतीहो, तथा परपुरुषसे वार्तालाप करनेमें सदैव विरक्तहो और निर्लोभहो ऐसी स्त्रियां व्यभिचारकर्ममें चतुरोंकरके दुःसाध्य कहीहैं अर्थात् इतनी स्त्री दुष्टपुरुषोंको प्राप्त नहीं हो सकती ।

गर्भिणीसप्तमान्मासादुपरिष्टाद्विशेषतः ।
निषिद्धात्वष्टमेमासेमैथुनंनसमाचरेत् ।

अर्थ-सातवे महिनेसे गर्भिणी स्त्रीसे मैथुन करना निषेध है परंतु अष्टम महिनेमें तो सर्वथा मैथुन करना निषेध है ।

रजस्वलागमननिषेध ।

रजस्वलांगतवतोनरस्यासंयतात्मनः ।
दृष्टचायुस्तेजसांहानिरधर्मश्चततोभवेत् ।

अर्थ-रजस्वला स्त्रीसे गमन करनेसे मनुष्यकी दृष्टि, आयु, तेज, इनकी हानि होतीहै । और धर्मशास्त्राके मतसे अधर्म होताहै, अतएव इस पुरुषका रजस्वला स्त्री सर्वथा त्याज्यहै ।

लिंगिनींगुरुपत्नींचसगोत्रामथपर्वसु । वृद्धांचसंध्ययोश्चापिग-
च्छतोजीवितक्षयः । गर्भिण्यांगर्भपीडास्याद्व्याधितायांव-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लक्षयः । हीनांगींमलिनांद्वेष्यांक्षामांवंध्यामसंवृते । देशेऽभिगच्छतोरेतःक्षीणंम्लानंमनोभवेत् ।

अर्थ–वैरागिन, गुरुपत्नी, गोत्रकी स्त्री, और पर्वमें तथा वृद्धास्त्रीसे और दोनोंसंध्याओंमें गमन करनेसे जीवन नष्ट होताहै । गर्भिणीसे गमन करनेसे गर्भको पीडा होतीहै । रोगवाली स्त्रीके साथ गमनसे बल क्षीण होताहै । हीनअंगवाली, मलिन, शत्रुकी स्त्री, दुर्बल स्त्री, वंध्या स्त्रीसे, और प्रकाशित स्थानमें स्त्री गमन करनेसे वीर्यकी क्षीणता, और मनकी मलिनता होतीहै ।

स्त्रीणां वैराग्यहेतुमाह ।

कार्पण्यादतिमानरोगविरहोद्योगादिपारुष्यतो मालिन्यासममज्ञतादिभयतःशोकाद्दरिद्रादपि । भर्तृणांतनुतादिभिश्चवपुषःकाठिण्यतःशङ्कना दोषाणांचवृथाप्रयांतिवनितावैराग्यमुच्चैःसदा ।

अर्थ–अत्यंत कृपणता (लोभी) अति मानसे, रोगी होनेसे उद्योगादि पुरुषार्थरहित होनेसे, मलिनतासे, असमानतासे, मूर्खताआदिसे भयसे शोकसे दरिद्रतासे, पतिका देह अत्यंत पतला होनेसे, तथा देहके अति कठोर होनेसे, अत्यंत शंका करनेसे, व्यर्थ दोष लगाना इन कारणोंसे स्त्रियोंके मनमें पुरुषसे वैराग्य उत्पन्न होता है ।

विरक्त स्त्रीके लक्षण ।

नाभिपश्यतिभर्त्तारंनोत्तरंसंप्रतीच्छति । वियोगेसुखमाप्नोति संयोगेचातिसीदति । शय्यामुपगताशेतेवदनंमार्ष्टिचुम्बने । तन्मित्रैर्द्वेष्टिमानंचविरक्तानाभिवांछति ।

अर्थ–विरक्त स्त्रीके यह लक्षण हैं कि, पतिके सन्मुख न देखना, पतिकी बातका उत्तर न देना, जब पति कहीं चलाजाय तब प्रसन्न रहैं, और मिलनेसे दुःखी होय प्रथम तो शय्यापर जाय नहीं और जायभीतो सोय

---

१ स्त्रीवशीकरणम् नाभिहृत्कंठदेशेषुददन्श्वासशनैःशनैः । कामंसंसाधयेत्कामीगायत्रींसप्तधापठेत् । अथ कामगायत्री ॐमनोभवायविद्महे पुष्पबाणायधीमहि। तन्नःकामःप्रचोदयात् । व्याजेनचुंबनादीनामुच्छ्वासंपाययेत्प्रियाम् । तेनसावशमायातिनतुतस्याःस्वयंपिबेदिति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रहे, यदि पति चुंबन करे तो तत्काल कपोलको पौंछ डाले। और पतिके मित्रोंसे द्वेष करना तथा पतिके सत्कार करनेको प्रसन्न नहीं करे ।

प्रीतिरुच्यते ।

नैसर्गिकीविषयजासमाचाभ्यासिकीतथा ।
चतुर्विधेतिविद्वद्भिर्दंपत्योःप्रीतिरुच्यते ।

अर्थ-स्त्रीपुरुषोंकी चार प्रकारकी प्रीति होती है। जैसे नैसर्गिकी, विषयजा, समा और अभ्यासकी अब इनके पृथक् पृथक् लक्षण लिखते हैं।

नैसर्गिकी प्रीति ।

अभ्यासविषयासाध्यादंपत्योःसहजातुया ।
सान्द्रानिगडभूताचप्रीतिर्नैसर्गिकीमता ।

अर्थ-अभ्यास विषयमें साध्य और विवाह होतेही जो प्रीति घोर बेडीके समान आपसमें होजावे अर्थात् छुडानेसे जो न छुटे उसको नैसर्गिक प्रीति कहते हैं।

विषयजा और समप्रीतिके लक्षण ।

मालाचन्दनभोज्याद्यैर्विषयैर्वर्द्धितातुया ।
प्रीतिर्विषयजाप्रोक्तासमयोगेसमास्मृता ।

अर्थ-जो माला चंदन भोज्य (मिठाई) आदिके देनेलेनेसे बढे उसको विषयजा प्रीति कहते हैं। और समान योगोंकर बढीहो उस प्रीतिको समा कहते हैं।

अभ्यासिकी प्रीति ।

आखेटदेवपूजादिकेलीसङ्गीतकर्मसु ।
अभ्यासयोगाद्यावृद्धिर्यातिसाभ्यासिकीमता ।

अर्थ-सिकार देवपूजन आदि और मैथुनक्रीडा,गाना बजाना आदिकर्मोंमें अभ्यासयोगसे जो प्रीति बढती है उस प्रीतिको अभ्यासिकी कहतेहैं।

योनिस्वरूपमाह ।

योनेरभ्यंतरेकापिपद्माकिंजल्ककोमला । कापिस्याद्वाटिकाकीर्णाकाचिद्वलिचयाकुला । गोजिह्वाभाखरस्पर्शाकाचिदभ्यन्तरेभवेत् । पूर्वपूर्वतरातासुश्रेष्ठाज्ञेयाविचक्षणैः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–योनि भीतरसे किसीकी कमलपरागसमान कोमल होतीहै । किसीकी योनि गुटकाके आकार संकीर्ण होती है । किसीकी अनेकवली (आंटे) युक्त होती है । किसीकी योनि भीतरसे गौके जीभके समान खरदरी होती है । इनमें पूर्व पूर्व योनि श्रेष्ठ है । और उत्तरोत्तर निंदित है ।

कामांकुश ।

योनिमध्येस्तिनाड्यैकाकामांकुशसमाहिसा ।
लिंगेनक्षोभितासैवमदवारिविमुंचति ।

अर्थ–योनिके बीच एक कमांकुशा नाडी है, यदि उस नाडीको लिंगद्वारा ताडित करीजावे तो वह स्त्री मदवारिको छोडती है । अर्थात् स्त्रीस्खलित होतीहै ।

मन्मथछत्र ।

कामातपत्रात्सृजातिसस्पंदइतिकीर्त्यते । वरांगरन्ध्रर्दूध्वतु नासिकाभंयदस्तितत्।मन्मथच्छत्रमित्याहुराढ्यंमदशिराचयैः ।

अर्थ–अब कहते हैं कि, वह स्त्री मदवारिको कहांसे छोडती तहां मदवारिको कामातपत्र अर्थात् कामदेवके छत्रसे प्रगटकरेहै । उसको सस्पंद कहते हैं । वह वरांगछिद्रके । ऊपर नासिकाके आकारहै । उसको मन्मथछत्र कहते हैं यह मन्मथछत्र अनेक मदशिराओंसे परिपूर्ण है ।

सुखसाध्या स्त्री ।

मार्गादिश्रांतदेहाचिरविरहवतीमासमात्रप्रसूता । गर्भालस्याचनव्यज्वरयुततनुकात्यक्तमानाप्रसन्ना । स्नातापुष्पावसानेनवरतिसमयेमेघकालेवसन्ते । प्रायःसंपन्नरागामृगशिशुनयनास्वल्पसाध्यारतेस्यात् ।

अर्थ–इतनी स्त्री सुखसाध्यहै, अर्थात् सहज प्राप्त हो सकतीहै । जैसे कि–जो मार्ग चलनेसे थकगईहो, बहुतदिनकी विरहवती, महिने भरकी प्रसूता होचुकी हो, गर्भवती, आलसवती, नवीन ज्वरवाली, जिसने मान त्यागदीनाहो , और प्रसन्न तथा रजोदर्शकी समाप्तिमें स्नान करचुकीहो, और नवीन रतिसमयमें, वर्षाके समय, वसंतकालमें और जो सम्यक् अनुरागवतीहो, ऐसी स्त्री रतिसमयमें अल्पसाध्य होती है । अर्थात् सहज प्राप्त हो सकती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शुक्रवेगरोकनेका फल ।

उच्चारितेमूत्रितेचरेतसश्चविधारणे । उत्तानेचभवेच्छीघ्रंशुक्राश्मर्याश्चसंभवः । सर्वमेतत्त्यजेत्तस्माद्यतोलोकद्वयाहितम् । शुक्रंतूपस्थितंमोहान्नसंधार्यंकदाचन ।

अर्थ-मल,मूत्र,वीर्य, इनके वेग रोकनेसे तथा चित्त लेटनेसे इस प्राणीके शुक्राश्मरी अर्थात् वीर्यकी पथरी होजातीहै, अतएव ये संपूर्ण मलमूत्रादिका धारण करना लोकद्वयमें अहित है इसीसे त्याज्यहै । और शुक्रके उपस्थित वेगको तो सर्वथा त्यागनाही हितकारीहै ।

भर्तुःपादौनमस्कृत्यशय्यांनम्राननागता ।

अर्थ-जब स्त्री शयनकरनेको जाय तब प्रथम भर्त्ताके चरणमें प्रणामकर प्रसन्नमुख सेजपर स्थितहो ।

वातपित्त कुपितहोनेमें मैथुनवर्जित ।

प्रत्यूषस्यार्धरात्रेचवातपित्तेप्रकुप्यतः । तिर्यग्योनावयोनौवादुष्टयोनौतथैवच । उपदंशस्तथावायोःकोपःशुक्रसुखक्षयः ।

अर्थ--प्रत्यूष और अर्धरात्रिके समय वातपित्त कुपित होते हैं, अतएव ये दोनों समय त्याज्यहै । तिरछी योनि, और अयोनि (बकरी, कुतियाआदिकी) तथा दुष्टयोनि (गरमी आदिसे दूषित) इनमें गमन करनेसे उपदंशरोग, फिरंगवायु, अथवा बादी और क्षीणवीर्य ये रोग होतेहैं ।

मैथुनानंतर कर्म ।

ऋतौतुमैथुनेस्नायाद्गर्भसंभूतिशङ्कया । अनृतौतदभावाच्च शौचंत्रिर्मूत्रवच्चरेत् । एवंयथायोगंशुद्धःसन्स्वशय्यायां यथासुखंप्रबोधपर्यंतंस्वपेत् ।

अर्थ--ऋतुकालमेंतो स्त्रीको मैथुनकरके गर्भशंकाके कारण स्नान करना और अनृतु अर्थात् अन्य समय मैथुनकरनेसे गर्भ न रहनेके कारण स्नान करना और तीनबार मृत्तिका जलसे शुद्धि करनी चाहिये । इसप्रकार शुद्धहोकर अपनी २ शय्यापर यथा सुखपूर्वक प्रातःकाल जगनेके समयपर्यंत सोना चाहिये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मैथुनान्तमें हितवस्तु ।

स्नानंससर्करंक्षीरंभक्ष्यमैक्षवसंस्कृतम् ।
वातोमांसरसःस्वप्नोव्यवायान्तेहिताअमी ।

अर्थ–स्नानकरना, मिश्रीमिला दूध पीना, खांडके पदार्थ (लड्डू, पेडा, बरफी, मलाई, आदि) पवन मांसरस और शयनकरना ये मैथुनान्तमें हितकारक हैं इसीसे इनका सेवन इस मनुष्यको करना चाहिये ।

दूध पीनेमें प्रमाण ।

सद्योबलहरानारीसद्योबलकरंपयः ।
स्त्रियंगच्छेत्पयःपीत्वातांचत्यक्त्वापुनःपिबेत् ।

अर्थ–स्त्री, पुरुषके बलको तत्काल हरण करतीहै, और दूध इस प्राणीके सद्यही बल करेहै । अतएव यह पुरुष स्त्रीकेपास दूध पीकर जाय और जब मैथुनकर चुके तब फिर दूध पीवे जिस्से फिर बल आयजावे ।

अतिमैथुनकरनेके दोष ।

शूलकासज्वरश्वासकार्श्यपांडामयक्षयः ।
अतिव्यवायाज्जायंतेरोगाश्चाक्षेपकादयः ।

अर्थ–अतिमैथुन करनेसे शूलरोग, खांसी, ज्वर, श्वास, कृशता, पांडुरोग, क्षई, और वातके आक्षेपकादि रोग होतेहैं । इसीसे मनुष्यको उचितहै कि, अतिमैथुन न करे ।

रात्रिमें जगनेके दोष ।

रात्रौजागरणंरूक्षंकफदोषविषार्त्तिजित् ।

अर्थ–रात्रिका जागना रूक्षता करेहै और कफके दोष तथा विषकी पीडाको दूर करेहै ।

निद्राके गुण ।

निद्रान्तुसेविताकालेधातुसात्म्यमतन्द्रितम् ।
पुष्टिवर्णबलोत्साहवह्निदीप्तिंकरोतिच ।

अर्थ–समयपर निद्रा सेवन करनेसे वह निद्रा धातुसाम्य, तन्द्राहीन पुष्टि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वर्ण बल उत्साह और जठराग्निकी दीप्तता करेहै। अतएव निद्राके समय निद्रा अवश्य लेना। अन्यसमय नहीं।

निद्राके पूर्व भक्षणीयद्रव्य।

योलेढिशयनसमयेमधुमिश्रंबीजपूरदलचूर्णम्। सचपीडाकरवातप्रसरनिरोधात्सुखंस्वपिति।

अर्थ—जो मनुष्य शयनकरतेसमय विजोरेके पत्तेके चूर्णको सहतमें मिलायकर चाटताहै, वह पीडाकरता बादीके प्रसरनिरोधसे सुखपूर्वक सोताहै।

प्रातःकाले जलपानम्।

सवितुरुदयकालेप्रसृतीःसलिलस्ययःपिबेदष्टौ। रोगजरापरिमुक्तोजीवेद्वत्सरशतंसाग्रम्। अस्यजलपानस्योपक्रमकालोरात्रेश्चतुर्थप्रहरप्रवेशः।

अर्थ—सूर्यके उदयसमय जो मनुष्य उठकर आठपस्से अथवा आठचुल्लू जल पीताहै। वह रोग और वृद्धावस्थारहितहो सौवर्षसेभी आधिक जीवे। इस जलके पीनेका समय रात्रिके चतुर्थ प्रहरप्रवेशमें जानना। जैसेलिखाहै।

यथा।

पिबतिपर्य्युषितंजलमन्वहंतिमिरिणोचरमेप्रहरेयदा।

अर्थ—जो तिमिरवान् मनुष्य नित्य प्रतिरात्रिके चतुर्थप्रहरमें पर्युषित जल पीताहै।

तथाच तन्त्रान्तरे।

अम्भसःप्रसृतीरष्टौरवावनुदितेपिबेत्। वातापित्तकफाञ्जित्वाजीवेद्वर्षशतंसुखी। सलिलस्यात्रपर्युषितग्रहणंभोजवचनानुरोधात्।

अर्थ—उसीप्रकार अन्य ग्रंथान्तरमें लिखाहै कि, आठप्रसृती जल सूर्यउदयके पूर्व पीवे तो वात पित्त और कफको जीतकर सुखपूर्वक सौवर्ष जीवे यहां भोजवचनके अनुरोधसे गरम जलका ग्रहणहै।

उषःपानगुण।

अर्शःशोथग्रहण्योज्वरजठरजराकोष्ठमेदोविकाराः मूत्राघातास्रपित्तश्रवणगलशिरःश्रोणिमूलाक्षिरोगाः। येचान्येवा-

---

१ पाठान्तरं अम्भसश्चुलकान्यष्टौ। रवावनुदितेपिबेदिति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तपित्तक्षतजकफकृताव्याधयःसंतिजन्तोस्तांस्तानभ्यासयो-
गादपहरतिपयः पीतमन्तेनिशायाः ।

अर्थ–बवासीर, सूजन, संग्रहणी, ज्वर, उदर, कोठेके रोग, मेदके विकार, मूत्राघात, रक्तपित्त, कानके, गलेके, शिरके, कमरकी जडके विकार, नेत्ररोग, और जो वात, पित्त, क्षतज, और कफकृतविकार प्राणीके हैं वो सब रात्रिके अन्तमें जल पीनेके अभ्यास योग करके नष्ट होतेहैं ।

नासिकाद्वारा जलपान ।

विगतघननिशीथेप्रातरुत्थायनित्यं पिबतिखलुनरोयोना-
सिकारन्ध्रवारि । सभवतिमतिपूर्णश्चक्षुषातार्क्ष्यतुल्यो व-
लिपलितविहीनःसर्वरोगैर्विमुक्तः ।

अर्थ–जिसदिन बादल न होय उसदिन रात्रिके व्यतीत होनेपर प्रातःकाल उठकर नित्य जो मनुष्य नासिकाके छिद्रद्वारा जलको पीताहै, वह मतिपूर्ण (बुद्धिवान्) और गरुडके समान दूरपर्यंत देखनेवाला वलीपालितरहित और सर्वरोगोंकरके हीन होताहै। निशीथशब्दकरके इसजगे रात्रिके अंधकारका ग्रहणहै ।

इसका प्रमाण ।

पातव्यंनासयानीरंप्रसृतित्रयमात्रकम् । व्यङ्गंवलीपालित-
घ्नंपीनसवैस्वर्यकासशोथहरम् । रजनीक्षयेम्बुनस्यंरसायनंदृ-
ष्टिसंजननम् ।

अर्थ–इसमें ग्रन्थांतरका प्रमाण देतेहैं कि, तीन पस्से जल इस मनुष्यको नासिकाद्वारा पीना चाहिये । यह व्यंग, वली, पालित, पीनस, स्वरभंग खांसी और सूजन इनको हरण करेहै, रात्रि व्यतीत होनेपर जलकी नास-लेना रसायनहै और दृष्टिको बढावेहै ।

उषःपानकरना वर्जित ।

स्नेहपीतेक्षतेशुद्धावाध्मानेस्तिमितोदरे ।
हिक्कायांकफवातोत्थेव्याधौतद्वारिवारयेत् ।

अर्थ–जिसने स्नेह (तैलघृतादि) पान कराहो, घाववाला, अफरावाला

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आर्द्र मनुष्यको, उदररोगी, हिचकीवाला, कफवातके रोगमें, प्रातःकालमें नासिकाद्वारा पानीपीना वर्जित कहाहै ।

इतिरात्रिचर्यावर्णननामैकोनत्रिंशत्तमस्तरंगः ॥

इति श्रीमाथुरकृष्णलालात्मजदत्तरामपाठकनिर्मितबृहन्निघंटुरत्ना-
करान्तर्गतश्चर्याचन्द्रोदयनामको ग्रन्थः समाप्तः ।
इति चर्य्याचन्द्रोदयः परिपूर्णः ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना.
(मुम्बई.)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथातो विशिखानुप्रवेशनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ–अब विशिखानुप्रवेशनीयाध्यायकी व्याख्या करेंगे कर्ममार्गको विशिखा कहतेहैं । उस विशिखामें प्रवेश होना जिस अध्यायमें उसको कहतेहैं ।

कर्ममार्गप्रवेशके योग्यवैद्यके लक्षण ।

अधिगततन्त्रेणोपासिततन्त्रार्थेनदृढकर्मणाकृतयोग्येन शास्त्रार्थनिगदताराज्ञानुज्ञातेननीचनखरोम्णाशुचिनाशुक्लवस्त्रपरिहितेनछत्रवतादण्डहस्तेनसोपानत्केनानुद्धतवेशेनसुमनसाकल्याणाभिव्याहारेणाकुहकेनबन्धुभूतेनभूतानांसुसहायवतावैद्येनविशिखानुप्रवेष्टव्या ।

अर्थ–अब जैसे वैद्यको इस आयुर्वेदोक्त कर्ममार्गमें प्रवेश करनेका अधिकार है उसको कहतेहैं । पठितशास्त्र और गुरूके उपदेशसे जानेहै तंत्र (ग्रन्थ) के अर्थ जिसने, दृढकर्म जिसके, कृतयोग्य, शास्त्रके अर्थोंको कहनेवाला,राजाकी आज्ञासे (अर्थात् जिसको राजाके समीपसे सार्टीफिकिट मिलचुकाहो) नीच नखरोम (अर्थात् क्षौरकर्म करके उज्ज्वल) स्नानवस्त्रादिकरके पवित्र,स्वच्छ सपेद वस्त्रोंको धारण करता,छत्री,लकडी और जोडाको धारण कर्ता, शुभ साधुवेष (स्वरूप) उत्तम, क्रूरतारहित चित्त जिसका, कल्याणकारी वचनका बोलनेवाला, निष्कपटी, प्राणियोंसे बांधवोंकासा वरताव रखनेवाला, सुन्दर सहायवान् इत्यादि गुणविशिष्ट वैद्य विशिखा (कर्ममार्गमें) प्रवेश करने योग्यहै । अर्थात् उक्तलक्षणसंपन्न वैद्य इसशास्त्रके कर्म करनेका अधिकारीहै अन्य नहींहै ।

वैद्यके कर्म ।

ततोदूतनिमित्तशकुनमङ्गलानुलोम्येनातुरगृहमभिगम्योपविश्यातुरमभिपश्येत्स्पृशेत्पृच्छेच्च । त्रिभिरेतैर्विज्ञानोपायैरोगाः प्रायशोवेदितव्याइत्येके । तत्तुमसम्यक् । षड्विधोहिरोगाणां विज्ञानोपायःतद्यथापञ्चभिःश्रोत्रादिभिःप्रश्नेनचेति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–तदनंतर दूत, निमित्त, शकुन, और मङ्गल इनके उत्तम होनेसे वैद्य रोगीके घर जाय और जायकर थोडी देर बैठे फिर आतुर (रोगी) को नेत्रोंसे देखे, हाथसे स्पर्शकरे और उससे अथवा उसके बांधवोंसे उसका हाल पूछे । (देखना, छूना, और स्पर्शकरना) ये तीन उपायोंकरके प्रायःरोग जानने चाहिये, ऐसे कोई आचार्य कहतेहैं । परंतु सुश्रुत महर्षि कहतेहैं कि, यह ठीक नहींहै, क्योंकि रोग जाननेके उपाय छःप्रकारके हैं । जैसे पांच श्रोत्रादि (कान, नाक, नेत्र, मुख, हाथ) करके और छटा उपाय प्रश्न है । इनको नीचे पृथक् पृथक् करके कहते हैं ।

श्रोत्रइन्द्रीविज्ञेयरोग ।

तत्रश्रोत्रेन्द्रियविज्ञेयाविशेषारोगेषुव्रणास्रावविज्ञानीयादिषु वक्ष्यन्तेसफेनंरक्तमीरयन्ननिलःसशब्दोनिर्गच्छतीत्येवमादयः ।

अर्थ–तहां कर्णइन्द्रिय करके जानने योग्य रोग व्रणास्राव विज्ञानीयाध्यायमें कहेंगे । जैसे पवन झागसहित रुधिरको निकालती हुई शब्दसहित निकलतीहै इत्यादि, तौ शब्दका ज्ञान कर्ण इन्द्रीसे होता है अतएव जिन रोगोंमें शब्द होता हो उनको कर्णेन्द्रीद्वारा जाने ।

स्पर्शनेंद्रियविज्ञेय ।

स्पर्शनेन्द्रियविज्ञेयाःशीतोष्णश्लक्ष्णकर्कशमृदुकठिनत्वादयोज्वरशोफादिषु ।

अर्थ–अब स्पर्शनेन्द्री (हाथ) करके जानने योग्य रोगोंको कहतेहैं कि, ज्वर और सूजन आदि रोगोंमें शीतल, गरम, चिक्कणता, कर्कस, नम्रता, कठोरता, आदि हस्तइन्द्रीसे जाना जायहै । अतएव उनको हाथसे टटोरकर वैद्यको देखने चाहिये । कोई स्पर्शके कहनेसे नाडी देखना आदिकाभी ग्रहण करते हैं ।

दर्शनेन्द्रियविज्ञेय ।

दर्शनेंद्रियविज्ञेयाःशरीरोपचयापचयायुर्लक्षणबलवर्णविकारादयः ।

अर्थ–अब स्पर्शनेन्द्री (नेत्र) करके जानने योग्य रोगोंको कहतेहैं कि, जैसे देहकी पुष्टता, कृशता, आयु, रोगके लक्षण, बल, वर्ण (काला पीला) विकार आदिको वैद्य नेत्रोंसे देखे अर्थात् पीलिया आदि रोग देखनेहीसे जानेजातेहैं कोई देखनेकरके मल, मूत्र, जिह्वा आदि परीक्षाओंकाभी ग्रहण करतेहैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रसनेन्द्रियविज्ञेय ।

रसनेंद्रियविज्ञेयाः प्रमेहादिषुरसविशेषाः ।

अर्थ--अब रसनेन्द्री (जिह्वा) करके जानने योग्य रोगोंको कहतेहैं कि, जैसे मधुप्रमेह आदिमें उस प्रमेहका रस (स्वाद) जिह्वा इन्द्रीसे जानना परंतु यह निंदित कर्मको वैद्य जहां रोगी मूत्रकरे उसपर चैंटीमक्खी आदिके पडने से अनुमान मारा जाने ।

घ्राणेंद्रियविज्ञेय ।

घ्राणेंद्रियविज्ञेयाअरिष्टलिङ्गादिषुव्रणानामव्रणानांचगन्धविशेषाः ।

अर्थ–अब घ्राणेन्द्री (नासिका) करके जानने योग्य रोगोंको कहतेहैं । कि, जैसे अरिष्टके चिह्नजाननेमें जहां कहीं ऐसा लिखाहै कि, व्रण रोगी अथवा अन्यरोगीके देहमें दुर्गंध आतीहो या सुगंध आतीहो तो वो नहीं बचे तौ उस सुगंध और दुर्गंध विशेषको वैद्य नासिकाके सूंघनेकरके जाने ।

प्रश्नविज्ञेयरोग ।

प्रश्नेनचविजानीयादेशंकालंजातिंसात्म्यंवेदनासमुच्छ्रयंवलंदीप्ताग्नि तांवातमूत्रपुरीषप्रवृत्त्यप्रवृत्तिकालप्रकर्षादींश्चविशेषान् ! आत्मसदृशेषुविज्ञानाभ्युपायेषुतत्स्थानीयैर्जानीयात्।

अर्थ–अब प्रश्न (पूछने) करके जानने योग्योंको कहतेहैं । जैसे कि देश, काल, जाती, सात्म्य, पीडाके घटने बढनेका समय, बल दीप्ताग्नि आदि और वात (अधोवायु) मूत्र, मल, इनकी प्रवृत्ति और अप्रवृत्ति अर्थात् मल मूत्र अधोवायु ये होते हैं या नहीं और होते हैं तो कब और कैसे होते हैं । तथा कालप्रकर्षादि अर्थात् यह रोगको प्रगट हुए कितने दिन हुए इत्यादि वार्त्ताओंको वैद्य उसरोगीसे अथवा उसकेपास रहनेवालोंसे पूछकर निश्चय करे । उसीप्रकार दोषके सदृश छः प्रकारके जाननेके उपायोंसे उस दोषोंके स्थान (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) करके जाने । तहां कहते हैं कि, जांगल, आनूप और साधारणके भेदसे देश तीन प्रकारका है । जातिशब्द करके ब्राह्मण क्षत्री आदिका ग्रहण है काल दो प्रकारका है एक नित्यग दूसरा आवस्थिक, तहां ऋतुसंबंधी काल नित्यग कहाता है । और आवस्थिक बालक जवानी आदि जानना । जो आहार विहार अपनी आत्माके अनुकूल हो अर्थात् जिसके सेवनसे सुख होय उसको सात्म्य कहते हैं । कोई देश काल

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जात ऐसा कहते हैं अर्थात् इस रोगीके दोष किस जांगलादि देशमें संचित हुआ और किसमें कुपित हुआ और किस देशमें यह व्याधि उत्पन्न हुई। तथा रोगीके किस स्थानमें यह रोग प्रथम हुआथा इत्यादि वैद्य प्रश्नद्वारा जाने।

पञ्जिकाकार तीन प्रकारकीही परीक्षा मानता है। अर्थात् दर्शन, स्पर्श तथा प्रश्न और जो छः प्रकारकी परीक्षा मानते हैं उनको मूर्ख बतलाता है। परंतु हमारी समझमें छः प्रकारकी परीक्षा ठीक है।

मिथ्यादृष्टाविकाराहिदुराख्यातास्तथैवच ।
तथादुःपरिमृष्टाश्चमोहयेयुश्चिकित्सकम् ॥

अर्थ–अब कहते हैं रोगियोंके जो रोग वैद्य करके अच्छी रीतिसे नहीं देखेगए, अथवा रोगीने उन रोगोंका यथार्थ वर्णन न करा होय, तथा जो रोग समझमें नहीं आए, वो वैद्यको मोहवश करते हैं अतएव जो रोग समझमें न आवे उनको वैद्य त्याग देवे।

एवमभिसमीक्ष्यसाध्यान्साधयेत्। याप्यान्यापयेत्। असाध्यान्नोपक्रमेत्। परिसम्वत्सरोत्थितांश्चविकारान्प्रायशोवर्जयेत्।

अर्थ–इसप्रकार भलेप्रकार निर्णयकर साध्यको साधन करे, याप्य रोगोंको यत्न करके यापन करे, और असाध्यको त्याग देवे। तथा जे रोग एक वर्षके होगयेहों उनको प्रायः वर्जित करे अर्थात् त्यागदे, परंतु प्रायशब्दसे संपूर्ण रोगोंका त्याग नहीं है जैसे रक्तगुल्मरोग जब वर्षादिनका होजावे तब उसका यत्न करे।

ततसाध्याअपिव्याधयःप्रायेणैषांदुश्चिकित्स्यतमाभवन्ति तद्यथा श्रोत्रियनृपतिस्त्रीबालवृद्धभीरुराजसेवककितवदुर्बलवैद्यविदग्धव्याधिगोपकदरिद्रकृपणक्रोधवतामनात्मवतामनाथानाञ्चैवंनिरूप्यचिकित्सांकुर्वन्धर्मार्थकामयशांसिप्राप्नोति।

अर्थ–तहां साध्यभी व्याधि है परंतु इन प्राणियोंकी दुश्चिकित्स्य अर्थात् चिकित्सा करनेके योग्य नहीं होती, जैसे श्रोत्री (वेदपाठी, यह नित्य स्नानादिक करता है इससे इसके व्याधिवृद्धि होती है) राजा [यह स्वतंत्र है यदि कुपथ्य करे तो कोई रोक नहीं सके कोई कहता है कि, राजा परम सुकु-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मार होता है अतएव औषधको नहीं सहन करसकता अतएव त्याज्य है] स्त्री [लज्जा वश है] बाल,वृद्ध, डरपोका, राजसेवक,[राजाके आधीन है]कितव, [यह जूआ खेलनेका व्यसनी है] दुर्बल,वैद्याभिमानी,[इसको वैद्यपनेका अभिमान होनेसे वैद्यके बताए हुए यत्नको अन्यथा करनेसे] और व्याधिको जो रोगी छिपावे, दरिद्री [इसकोऔषधका अभाव है] कृपण [यह लोभवश औषध नहीं खाय] क्रोधी [इसके कोप करनेसे रोगवृद्धि होती है] अनात्मवान् [यह अपथ्य करता है] और अनाथ [यह अकेला है] इतने रोगियोंका वैद्य यत्न न करे इस प्रकार जो विचारकर वैद्य चिकित्सा करता है, वह, धर्म, अर्थ काम और यशको प्राप्त होता है ।

वैद्यके प्रति शिक्षा ।

स्त्रीभिःसहास्यंसंवासंपरिहासञ्चवर्जयेत् ।
दत्तञ्चताभ्योनादेयमन्नादन्यद्भिषग्वरैः ।

अर्थ–वैद्यको उचित है कि, स्त्रियोंकेसाथ एक स्थानमें बैठना, रहना, हाँसी ठठोरी करना त्याग देवे । और अन्नकेसिवाय अन्य वस्तु रोगीके घरकी स्त्रियोंसे न लेवे । कोई संवासंकी जगह " संवाद " ऐसा कहता है । अर्थात् स्त्रियोंकेसाथ वादविवाद न करे ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे त्रिंशत्तमस्तरङ्गः ॥ ३० ॥

अथाष्टविधपरीक्षा प्रारम्भः ।

तत्रादौदूतपरीक्षा ।

दूताधिकारेवक्ष्यामोलक्षणानिमुमूर्षताम् । यानिदृष्ट्वाभिषक्प्राज्ञःप्रत्याख्येयादसंशयम् । दूतदर्शनसंभाषावेषाचेष्टितमेवच । रूक्षवेलातिथिश्चैवनिमित्तंशकुनोऽनिलः । देशोवैद्यस्यवाग्देहमनसाञ्चविचेष्टितम् । कथयन्त्यातुरगतंशुभंवायदिवाशुभम् ।

अर्थ–इसजगे दूतपरीक्षा लिखनेका यह प्रयोजनहै कि,विशिखानुप्रवेशनीयाध्यायमें लिखाहै कि " ततो दूतनिमित्तशकुनमङ्गलानुलोम्येनेति " अर्थात् दूत निमित्त शकुन और शुभमंगल होनेसे वैद्य रोगीके घरजाय, अतएव अब दूतपरीक्षा सिखतेहैं । इस दूताधिकारमें मुमूर्षु (मरनेवाले) रोगीके लक्षण कहेंगे जिनको वैद्य देखकर उसकी मृत्युको निश्चय करलेवे क्योंकि लिखाहै

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कि, दूतदर्शन और उसका भाषण, उसकी चेष्टा, नत्रक्ष, मध्याह्नादि समय, तिथि, निमित्त (सर्पादिदर्शन) शकुन, पवन, देश और देह, मन वाणीकी चेष्टा ये वैद्यको रोगीके शुभाशुभको कथन (सूचना) करतीहै । अर्थात् वैद्यको इन सबका विचार, रोगीके दूतद्वारा करके रोगीका शुभाशुभ परिणाम जानना । जो लिवानेको अथवा रोगीकी ओरसे प्रश्नकरनेको आवे उसीको दूत कहतेहैं ।

दूरादेववथावह्निर्धूमाद्विज्ञायतेजनैः ।
साध्यासाध्यस्तथारोगीज्ञायतेदूतचेष्टया ।

अर्थ--जैसे बुद्धिवान् पुरुष दूरसे धूआंके देखनेसे अग्निको जानतेहैं । उसी प्रकार रोगीका साध्य और असाध्यता वैद्यको दूतकी चेष्टा करके जाना जाता है ।

यश्चिकित्सकमानेतुंयातिदूतःसकथ्यते ।
सचयादृक्समुचितस्तादृगत्रनिगद्यते ।

अर्थ--जो वैद्यके लिवानेको जाता है उसको दूत कहतेहैं । वो दूत जैसा भेजना उचितहै उसको यहांपर कहतेहैं ।

असद्दुत ।

पाषण्डाश्रमवर्णानांस्वपक्षाःकर्मासिद्धये । तएवविपरीताः स्युर्दूताःकर्मविपत्तये । नपुंसकंस्त्रीबहवोनैककार्याअसूयकाः गर्दभोष्ट्ररथप्राप्ताःप्राप्तावास्युःपरम्पराः । वैद्यंयउपसर्पन्तिदूतास्तेचापिगर्हिताः ।

अर्थ–पाषंडी (कापाली) आश्रम (ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी) वर्ण (ब्राह्मणादि) ये अपने पक्षके हो,अर्थात् कापाली रोगीका कापालीही दूत, इसी प्रकार ब्रह्मचारीका ब्रह्मचारी गृहस्थीका गृहस्थी आदि दूत होयतो कर्मके सिद्धकर्त्ताहै यदि विपरीतहो जैसे कापाली रोगीका ब्राह्मण दूत, और ब्राह्मणका कापालिक दूत होयतो वो कर्मके नाशकहै । उसी प्रकार नपुंसक (हिजडा) बहुतसी स्त्री और जो केवल एकही कार्यकेलिये न आयाहो, तथा परस्पर लडते झगडते आएहो और गधे अथवा ऊंटपर बैठकर आयेहो अथवा एकके पीछे दूसरा इसप्रकार आएहो, एक पंक्ति करके आएहो, ऐसे दूत वैद्यकेपास आवेतो वो अशुभहै ।

---

१ सवर्णेतिपाठान्तरम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ दूतोंका वेष ।

पाशदण्डायुधधराः पाण्डुरेतरवाससः । आर्द्रजीर्णापसव्यैक-मलिनध्वस्तवाससः । न्यूनाधिकाङ्गाउद्विग्नाविकृतारौद्ररूपि-णः । रूक्षनिष्ठुरवादाश्चाप्यमाङ्गल्याभिधायिनः । छि-न्दन्तस्तृणकाष्ठानिस्पृशन्तोनासिकांस्तनम् ।

अर्थ–पशुबांधने की बडी रस्सी, दंड और आयुध (तलवार बंदूक) आदिको हाथमें लेकर, काले लाल वस्त्रोंको धारण कर्त्ता तथा गीला, पुराना, उलटा, और एकही वस्त्रके धारण करता न्यून अंगके (लूले लँगडे) अधिक अंगके (छंगाआदि) भयभीत, विकृत, (कोढी, वोना, आदि) घोर भयंकर रूपके, रूक्ष (प्रीतिरहित) कठोर वचनके बोलनेवाले तथा अमंगलीक शब्द (जैसे गया, मरा, नष्टहुआ, रुधिरआदि) को कहतेहुए, तिनका, लकडी, आदिको तोडते हुए, तथा नासिका और स्तनको स्पर्श करते हुए जो दूत वैद्यके पास आवे वो अशुभ है ।

वस्त्रान्तानामिकाकेशनखरोमदशास्पृशः । स्रोतोऽवरोधहृ-द्गण्डमूर्द्धोरःकुक्षिपाणयः ।कपालोपलभस्मास्थितुषाङ्गारक-राश्रये । विलिखन्तोमहींकिंचिन्मुञ्चन्तोलोष्टभेदिनः । तैल-कर्दमदिग्धाङ्गारक्तस्रगनुलेपनाः । फलंपक्वमसारंवागृहीत्वा-न्यच्चतद्विधम् ।

अर्थ–वस्त्रोंका छोर, अनामिका ऊँगली बाल, नख, रोमांच, और फटे वस्त्रके पल्लेनको स्पर्श करतेहुए, नाक कान आदि छिद्र, स्कन्धदेश, हृदय, गाल, मस्तक,छाती, कूख, इन स्थानोंपर हाथ रक्खे हुए, तथा मनुष्यका कपाल पत्थर, भस्म (राख) हड्डी तृषा, और अंगारा ये हाथमें जिनके पृथ्वीको नखसे लिखते हुए, कुछ वस्त्रको पकडकर छोडते हुए, मट्टीके डेलेको फोडते तेल, कीच देहमें लगाय रक्खी, लाल फूलमाला और लाल चंदनको लगानेवाले पकाफल परंतु भीतरसे थोथा उसीप्रकार और भी पकीइईवस्तु और निस्तार लेकर आवे ऐसे दूत अमंगलीक हैं ।

नखैर्नखान्तरंवापिकरेणचरणंतथा । उपानच्चर्महस्तावावि-कृतव्याधिपीडिताः । वामाचारारुदन्तश्चश्वासिनोविकृतेक्ष-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

णाः । याम्यांदिशंप्राञ्जलयोविषमैकपदेस्थिताः।वैद्यंयउपसर्पन्तिदूतास्तेचापिगर्हिताः ।

अर्थ–नखसे नखको, हाथसे चरणको पकड, तथा पैरका जोडा अथवा चमडेको हाथमें लेकर एवं विकृतव्याधि (कुष्ठादि) से पीडित, विपरीत आचरणको करते, रुदन करते, परिश्रमसे श्वास चल रही, बुरे नेत्रके, (फूलेयुक्त नेत्रवाले) दक्षिणकी दिशामें, हाथ जोडकर, टेढे एक पैरसे एक स्थानमें स्थित ऐसे दूत यदि वैद्यके पास आवे तो वोभी अशुभ है ।

दक्षिणाभिमुखंदेशेत्वशुचौवाहुताशनम् । ज्वलयन्तंपचन्तं वाक्रूरकर्माणिचोद्यतम् । नग्नंभूमौशयानंवावेगोत्सर्गेषुवाऽशुचि । प्रकीर्णकेशमभ्यक्तंस्विन्नंविक्लवमेवच । वैद्यंयउपसर्पन्तिदूतास्तेचापिगर्हिताः ।

अर्थ–जिससमय वैद्य दक्षिण मुखकरे बैठा हो परदेशमें हो, अपवित्र देशमें हो, आगको बराय रहा हो, पाक कररहा हो, क्रूरकर्म (पशुवधादिक) करनेको उद्युक्त हो अथवा क्षौरकर्ममें प्रवृत्त हो, नग्न पृथ्वीमें सोयरहा हो, तथा मलमूत्र कर्ममें लग रहा हो, अपवित्र हो उस वैद्यके बाल खुलरहे हो, तैल आदि लगाय रक्खा हो, पसीने निकलरहे हों, विह्वल हो, ऐसे वैद्यके समीप जो दूत जाते हैं वोभी अशुभ हैं ।

वैद्यस्यपैत्र्येदैवेवाकार्य्येचोत्पातदर्शने । मध्याह्नेचार्धरात्रेवा सन्ध्ययोःकृत्तिकासुच । आर्द्राश्लेषामघामूलपूर्वासुभरणीषुच । चतुर्थ्यांवानवम्यांवाषष्ठ्यांसन्धिदिनेषुच । वैद्यंयउपसर्पान्ति दूतास्तेचापिगर्हिताः ।

अर्थ–वैद्यके जिसदिन श्राद्ध हो, अथवा देवसंबंधी कार्य हो, उत्पात होनेमें मध्याह्न, मध्यरात्रि, दोनों संध्या, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, मूल, पूर्वाफा०, पूर्वाषा०, पूर्वाभा० और भरणी इन नक्षत्रोंमें, तथा चौथ, नौमी, छठ, और संधिदिन कहिये देव प्रेतकार्यके दिन जो दूत वैद्यके पास आते हैं वोभी गर्हित हैं ।

पित्तकफरोगमें गर्हित और प्रशस्त दूत ।

स्विन्नाभितप्तामध्याह्नेज्वलनस्यसमीपतः । गर्हिताःपित्तरोगे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

षुदूतावैद्यमुपागताःतएवकफरोगेषुकर्मसिद्धिकराःस्मृताः ।
एतेनशेषंव्याख्यातंबुद्ध्यासंविभजेत्तुतत् ।

अर्थ–जिनके पनीसे आयरहेहो, तपेहुएहो, और जो अग्निके समीपसे, आएहो तथा मध्याह्नमें आवे ऐसे दूत पित्तके रोगोंमें निंदित है, और जो पित्तरोगमें निंदितहै यदि वो कफरोगमें आवेतो सिद्धिकर्त्ता जानने, इसी प्रकार अन्यरोगमें वैद्य अपनी बुद्धिसे विचारले जैसे वातरोगमें शीतल, और पवनके समीपसे आएहो वो अशुभहै। परंतु येही दूत रक्तपित्तमें शुभहैं।

सुप्तेभिषजियेदूताःछिन्दत्यपिचभिन्दति ।
आगच्छतिभिषक्तेषांनभर्त्तारमनुव्रजेत् ।

अर्थ–जिससमय वैद्य सोय रहा हो उससमय, छेदन भेदन करतेहुए, यदि दूत आवे तो वैद्य उनकेसाथ उसके मालिक (रोगी) केपास न जावे ।

कथयन्त्यप्रशस्तानिचिन्तयन्त्यथवापुनः ।
वैद्येदूतामनुष्याणामागच्छतिमुमूर्षताम् ।

अर्थ–जो दूत अप्रशस्त (अशुभ) वाणीको कहते वा अशुभ बातको मनमें चिंतवन करतेहुये आते हैं, वो मरणवाले रोगीके जानने, ऐसे दूतों केसाथ वैद्य न जाय ।

विकारसामान्यगुणेदेशेकालेऽथवाभिषक् ।दूतमभ्यागतंदृष्ट्वा
नातुरंतमुपाचरेत् । अङ्गव्यसनिनंदूतंलिंगिनंव्याधितंतथा ।
संप्रेक्ष्यचोग्रकर्माणंनवैद्योगन्तुमर्हति ।

अर्थ–ज्वरादि विकारके सदृश गुणवाले देशमें, वा कालमें, दूतको सन्मुख आता हुआ देख वैद्य उस रोगीका यत्न न करे । जैसे कफज्वरमें जहां घृतादि पतली वस्तु धरी हो और अनूपदेश होवे और प्रत्यूषकाल होय तो वह दूत अशुभ है । उसीप्रकार पित्तरोगमें अग्निसे संतप्त और गरमदेशमें और मध्याह्नकालमें आया हुआ दूत अशुभ है । उसीप्रकार वातरोगमें कठोर, रूक्ष, धूल, पत्थर रेतीआदि युक्तदेशमें और सायंकालमें आयाहुआ दूत अशुभ है । जिस रोगीको अंगका व्यसन अर्थात् अपने देहको सुधारा करे, तथा जोगी रोगी और घोर कर्मका करनेवाला ऐसा दूत देखकर वैद्य उसकेसाथ न जाय ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पलालबुससीसास्थिकेशलोमनखद्विजान् । मार्जनींमुसलंशू-र्पमुपानद्भग्नविच्युतम् । तृणकाष्ठतुषाङ्गारंस्पृशन्तोलोष्टभ-स्मच । तत्पूर्वदर्शनेदूताव्याहरंतिमुमूर्षताम् ।

अर्थ–करवी (जिस ज्वार बाजरेके तृणमें अन्न न होय) भुस, सीसा हड्डी, बाल, रोआं, नख, दांत, बुहारी, मूसल, सूप, और जूती, इनको स्पर्श करतेहुए तथा टूटीहुई और गिरीहुई वस्तुको स्पर्श करते तथा तृण, काष्ठ, तुष, अंगार, मिट्टीका ढेला, भस्म, (रस्सी, तराजू, फांसी, और कप-डेकी बत्ती) इनको स्पर्श करतेहुए जो दूत आते हैं वो रोगीके मरणकी सूचना करते हैं । ऐसा जानना ।

दूतद्वाराशकुनज्ञान ।

यस्मिंश्चदूतेब्रवतिवाक्यमातुरसंश्रयम् । पश्येन्निमित्तमशुभं तच्चनानुव्रजेद्भिषक् । यथाव्यसनिनंप्रेतंप्रेतालंकारमेववा । भिन्नंदग्धंविनष्टंवातद्वादीनिवचांसिवा । रसोवाकटुकस्ती-व्रोगन्धोवाकौणपोमहान् । स्पर्शोवाविपुलःक्रूरोयद्वान्यदशु-भंभवेत् । तत्पूर्वमभितोवाक्यंवाक्यकालेथवापुनः । दूता-नांव्याहृतंश्रुत्वाधीरोमरणमादिशेत् ।

अर्थ–जिस समय दूत वैद्यके समीप आनकर रोगीकी व्यवस्था आदिका वर्णन करे उस समय दूत वैद्य निमित्तोंको देखे यदि अशुभ निमित्त होयतो वैद्य उस दूतके साथ न जाय अब उन निमित्तोंको कहतेहैं । जैसेकि जो दूत जूआ मद्य आदिका व्यसनीहो, अथवा अंगहीनहो, मुरदाके तुल्य, तथा मरे हुएके वस्त्र आभूषणोंको धारण करता, रस्सीआदि टूटेपदार्थ, वस्त्रादि दग्ध-वस्तु, फूटाहुआ घडाआदि, अथवा जिसकालमें दूत आवे उस समय वैद्य छिन्न, भिन्न, दग्ध, विनष्ट आदि वचनोंको कानोंसे सुने, तथा उस समय कटु तीव्र रसकी वस्तु जैसे मिरच अफीम आदिको देखे, अथवा उस समय कोई नाकमें दुर्गंध आवे, वा दुःसह स्पर्श होय, तो अशुभहै । अथवा इसी प्रकारके कोई अन्य अशुभ निमित्त होय जैसे रुधिर, करवीर, कुसुमादिक शब्द तो अशुभ हैं । ये संपूर्ण निमित्त दूतके कहनेके पश्चात् अथवा उसी समय होवे, तो वैद्य रोगीका कि जिसके लिये दूत आया है उसका मरण कहै, अर्थात् उस दूतके साथ न जाय ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अब शुभ दूतोंको कहते हैं ।

दूताःस्वजातयोऽव्यङ्गाःपटवोनिर्मलांबराः ।
सुखिनोश्ववृषारूढाःशुभवस्त्रफलैर्वृताः ।

अर्थ--रोगीकी ज्ञातिका, उत्तम अंगका, चतुर, स्वच्छवस्त्रोंका धारण करता, सुखी और घोडा, बैल (गाड़ी आदिमें जुतेहुए) पर बैठा, शुभवस्त्र और फल करके युक्तहो वो शुभहै ।

स्वज्ञातिःश्वेतवस्त्रोद्रविणयुतकरःक्षत्रियोब्राह्मणोवा ।
ताम्बूलाढ्यःसुशीलःशुभवचनवदःस्यात्प्रशस्तोत्रदूतः ।

अर्थ--अपनी जातिका, सपेद वस्त्रको धारण करे, कुछ द्रव्यको हाथोंमें लिये हो, अथवा ब्राह्मण, क्षत्री हो, बीडाचाबरक्खाहो, सुशील, शुभवचनोंका बोलनेवाला, ऐसा दूत यदि रोगीके समीपसे आवे तो शुभहै ।

रिक्तपाणिर्नपश्येतराजानंभिषजंगुरुम् ।

अर्थ--दूतको उचितहै कि खालो हाथ वैद्यके पास न जावे, जैसे यह धर्मशास्त्रका वाक्य है कि राजा, वैद्य, और अपने गुरुको रीते हाथोंसे न देखे अतएव जो कुछ फलादिहो सो लेजाय ।

रक्तपित्तातिसारेषुप्रमेहेषुतथैवच । प्रशस्तोजलरोधेषुदूतवैद्यसमागमः । विज्ञायैवंविभागंतुशेषंबुद्ध्येतपण्डितः ।

अर्थ--रक्तपित्त अतिसार, और प्रमेह इन रोगोंमें रुकेहुए जलसमीपसे वैद्यके लिवानेको आयाहुआ दूत शुभहै । उसीप्रकार उदावर्त्त, मुत्रकृच्छ्र, आदि रोगमें जलवेगका दर्शन होना उत्तम है । इसीरीतिसे अन्य रोगोंमेंभी वैद्य अपनी बुद्धिसे बिचारलेवे ।

शुक्लवासाःशुचिर्गौरःश्यामोवाप्रियदर्शनः । स्वस्यांजातौस्वगोत्रेवादूतःकार्यकरःस्मृतः । गोयानेनागतस्तुष्टःपादाभ्यां शुभचेष्टितः । धृतिमान्विधिकालज्ञःस्वतन्त्रःप्रतिपत्तिमान् । अलंकृतोमङ्गलवान्दूतःकार्यकरःस्मृतः ।

अर्थ--सपेद वस्त्र धारण करे, पवित्र, गौरस्वरूप, अथवा श्यामस्वरूप हो परंतु प्रियदर्शन हो (कोई गौरमनुष्यभी भयानक होते हैं) रोगीकी जात और गोत्रका होय, ऐसा दूत कार्यकर्त्ता जानना । जो गोयान । (बैलकी गाडी) में बैठकर आयाहो, प्रसन्नहो अथवा पैदल आयाहो, शुभ चेष्टाका कर-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नेवाला, बुद्धिवान्, विधि और कालका ज्ञाता, स्वतंत्र (किसीका नौकर न हो) ज्ञानी, अथवा प्रगल्भ, अलंकृत (सुंदर वेषवाला) मंगलवान् ऐसा दूत कार्यकर्त्ता जानना चाहिये।

स्वस्थंप्राङ्मुखमासीनंसमेदेशेशुचौशुचिम् ।
उपसर्पतियोवैद्यंसचकार्यकरःस्मृतः ।

अर्थ–नैरोग्य सन्मुख मुख करे बैठा समान देश और पवित्र स्थानमें पवित्रतासे ऐसे वैद्यकेपास जो दूत आते हैं वो कार्यकर्त्ता जानने।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे शुभाशुभदूतवर्णनंनाम एकत्रिंशत्तमस्तरङ्गः ॥ ३१ ॥

शकुन देखनेका कारण ।

साध्यासाध्यत्वमाख्यातिशकुनस्तुशुभाशुभः ।
अतोभिधास्येशकुनंतद्विज्ञातुंरुजावताम् ।

अर्थ–शुभ और अशुभ शकुन क्रमसे साध्यासाध्यको सूचित करे है अतएव रोगवान्को उन शकुनोंके जाननेके लिये मैं शकुनको वर्णन करताहूं।

दूतके शकुन ।

वैद्याह्वानायदूतस्यगच्छतोरोगिणःकृते ।
नशुभंसौम्यशकुनंप्रदीप्तंचसुखावहम् ।

अर्थ–जब दूत रोगीके लिये वैद्यको बुलानेको जाय तब रस्तेमें शांति शकुन होयतो अशुभ है। और यदि दीप्तशकुन होयतो सुखकारी जानने।

दिशाओंकी दग्धादिसंज्ञा ।

दग्धादिग्दिनकृत्यक्ताधूमितायांसयास्यति । दीप्तायत्रास्त्यसौशेषापंचशांताः शुभादिशः । दग्धैशानीसुप्रभातेऐन्द्रीदिक्धूमितानना । प्रत्येकमष्टप्रहरैर्भुक्तेष्टौभास्करोदिशः ।

अर्थ–अब दिशाओंकी दग्धादिसंज्ञा कहते हैं। जैसे कि जिस दिशाको सूर्यने त्याग करीहो वो दग्धा कहाती है। और जिस दिशामें सूर्य जायगा वो दिशा धूमिता कहाती है। और जिस दिशामें सूर्य है वो दिशा दीप्ता कहाती है। बाकीकी पांच दिशा शांत जाननी। जैसे प्रातःकालमें ईशानदिशा दग्धा है, पूर्वदिशा धूमिता है, इसीप्रकार प्रत्येक आठों प्रहरोंमें सूर्य आठों दिशाओंको भोगे है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दग्धादि दिशाओंका फल ।

दिक्षुशान्तासुवक्तारोमधुरंपृष्ठतोनुगाः । वामगादक्षिणावा-
पिशकुनाःकर्मसिद्धिदाः । पुरतोदिक्षुदीप्तासुवक्तारोनात्र-
साधकाः ।

अर्थ–शांत दिशामें बोलनेवाले मधुर वचनके अथवा पिछाडी, वामांगमें, अथवा दहनीतरफ जो शकुन होते हैं वो कर्मको सिद्धि कर्त्ता जानने, और सन्मुख अथवा दीप्तदिशामें बोलनेवाले ऐसे शकुन कार्यसाधक नहीं हैं अर्थात् अशुभ हैं ।

दूतके प्रश्नाक्षरोंपर फल ।

दूतस्योदितवर्णवृन्दमखिलंद्वेधाविभज्यात्रिभिर्भक्ता-
व्योमनिमृत्युमाशुविवदेदन्यत्रसंजीवनम् ।

अर्थ--अब दूतके वाक्यद्वारा रोगीका शुभाशुभ कहतेहैं जैसे कि, दूतके उच्चारण करेहुए अक्षरसमूहोंको दोगुनेकर फिर तीनका भाग देय यदि शून्य बचे तो रोगीका शीघ्र मरण कहै और एक दो बचे तो शुभ कहै ।

प्रकारांतर ।

दूतस्यप्रश्नाक्षरयोगसंख्यात्रिघाष्टभाज्याप्रवदंतिशेषे ।
समेचमृत्युर्विषमेचनैवाविलोक्यवैद्यैःखलुप्रश्नकाले ।

अर्थ--दूतके प्रश्नाक्षरोंकी संख्याको त्रिगुण कर आठका भाग देय यदि सम २-४-६ बचे तो मृत्यु होय और विषम १-३-५-७ बचेतो रोगी नहीं मरे यह वैद्यको प्रश्नकालमें अर्थात् दूत पूछे कि महाराज आप कहो यह रोगी बचेगा या मरेगा तब देखना चाहिये ।

वैद्यको देखनेयोग्य दूतके चिह्न ।

आगत्योपाश्रयेद्योपुरमथनदिशंपश्चिमामुत्तरांवा शंभोःका-
ष्ठांसशस्तोपरदिशिनतुषाङ्गारभस्मादिसंस्थः । रक्तस्रग्गंधव-
स्त्रैस्तृणलगुडदलच्छेदनः पङ्कतैलाभ्यक्तोवक्षोजनासालिक-
निहितकरोयश्चविक्षिप्तकेशः ।

अर्थ--जो दूत वैद्यकेपास आनकर ईशानदिशा, पश्चिमदिशा, वा उत्तरमें

---

१ वस्त्रातपत्रपादत्रव्यसनंव्यसनीक्षणम् । चैत्यध्वजानांपात्राणांपूर्णानांचनिमज्जनम् । कृष्णधान्यगुडोद-
श्चिल्लवणासवचर्मणाम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बैठे इनमें जो दूत ईशानकोणमें बैठे सो उत्तम है। और दिशाओंमें तथा तुष, अंगारेकी भस्म में बैठे तो अशुभ है। उसीप्रकार लाल फूलमाला, लाल चंदन लाल वस्त्रको धारण करेहो और जो तिनका लकडी, पत्तेन्को तोडै कीच तैल जिसने लगाय रक्खाहो और वक्षस्थल, नासिका, इन स्थानोंपर हाथको धरेहो और जिसने माथेके बाल खोल रक्खे हो वो दूत अशुभ है।

सजातयःसुचेष्टाश्चसजीवदिशिसंस्थिताः । भिषजंसमयेप्रास्तारोगिणःसुखहेतवः । यस्यांप्राणमरुद्धातिसादिशाजीवसंज्ञिता ।

अर्थ--रोगीकी जातिका सुंदर चेष्टावान्, जीवदिशामें स्थित और वैद्यको समयपर बुलाने आयाहो वो दूत रोगीके सुखका हेतु जानना, अर्थात् शुभ है। कदाचित् कोई पूंछेकि जीव दिशा किसको कहते हैं? इसलिये कहते हैं कि जिस दिशामें प्राणपवन संचार करे वो दिशा जीवसंज्ञक है।

चलतेसमय वैद्यको शुभाशुभ शकुन।

मांसोदकुम्भातपत्रोविप्रवारणगोवृषाः। शुक्लवर्णाश्चपूज्यन्ते प्रस्थानेदर्शनंगताः। स्त्रीपुत्रिणीसवत्सागौर्वर्द्धमानमलंकृता। कन्यामत्स्याःफलंचामंस्वस्तिकंमोदकादधि। हिरण्याक्षतपात्रंवारत्नानिसुमनोनृपः । अप्रशान्तोऽनलोवाजीहंसश्चापःशिखीतथा। ब्रह्मदुन्दुभिजीमूतशंखवेणुरथस्वनाः । सिंहगोवृषनादाश्चह्रेषितंगजबृंहितम् ।

अर्थ–अब वैद्यको रोगीके घर जाते जो शकुन हो उनको लिखते हैं। जैसे कच्चा मांस, भरा और रीता जलका घडा (अर्थात् जब वैद्य रोगीके घरमें प्रवेश करे तब भरा मिले और जब निकले तब रीता घडा) छत्र, ब्राह्मण, हाथी, गौ, बैल और सपेदवर्णके सर्व पदार्थ शुभ है (परंतु कपास हड्डी, छाछ, भस्म, खार, इत्यादि शुभ नहीं हैं) पुत्रवती स्त्री, बछडेसहित गौ, सराव, शृंगारयुक्त कन्या, मछली, कच्चे फल, मोतियोंकी माला अथवा साथिया जो स्त्री काढती है, लड्डू दही, सुवर्ण, खील, अक्षतका पात्र, रत्न, राजा, प्रज्वलित अग्नि, घोडा, हंस, नीलकंठ, मोर, वेद-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ध्वनि, नगाडेका शब्द, मेघकी गर्जन, शंख, वेणु, रथ, इनका शब्द । सिंह, गौ, बैल, और हाथी इनका हींसना ये संपूर्ण सुंदर चित्तवाले वैद्यको मार्गमें मिलना शुभ है ।

शस्तंहंसरुतंनृणांकौशिकश्चैववामतः ।
प्रस्थानेयायिनःश्रेष्ठावाचश्चहृदयङ्गमाः ।

अर्थ–यात्रिक मनुष्योंको हंसका शब्द और कौशिक (पेचक पक्षी) का शब्द वामदिक्में होय तो शुभ है । तथा मनहरणकर्त्ता वाणीभी यात्रिकको शुभ है ।

पत्रपुष्पफलोपेतान्सक्षीरान्निरुजोद्रुमान् ।
आश्रितावानभोवेश्मध्वजतोरणवेदिकाः ।

अर्थ–पत्र, पुष्प और फलयुक्त, तथा क्षीरयुक्त नैरोग्य वृक्षोंमें । तथा उच्च स्थान, घर, ध्वजा, तोरण, और वेदी इनमें जो शकुन होते हैं वो शुभ हैं ।

अप्रशस्त दर्शन ।

शुष्केऽशनिहतेपत्रेवल्लीनद्धेसकंटके । वृक्षेऽथवाश्मभस्मास्थिविट्तुषाङ्गारपांसुषु । चैत्यवल्मीकविषमस्थितादीप्तखरस्वराः । पुरतोदिक्षुदीप्तासुवक्तारोनार्थसाधकाः ।

अर्थ–शुष्क तथा बिजलीका माराहुआ, वेल लताओंसे आच्छादित और कांटेवाला ऐसा वृक्ष । अथवा पत्थर, भस्म, हड्डी , विष्ठा, तुष, धूल, चैत्य (गामबाहर देवताकी भावना करके स्थापित वृक्ष) बमई, विषमतासे बैठे हुए दीप्त और घोर शब्दसे सन्मुख, और दीप्तदिशाओंमें जो शकुन होते हैं वो कार्यसाधक नहीं होते अर्थात् वो अशुभ हैं ।

पुन्नामानःखगावामाःस्त्रीसंज्ञादक्षिणाःशुभाः । पुन्नामावामतःश्रेष्ठोगजखच्चरवर्जितः । स्त्रीनामादक्षिणेश्रेष्ठाशिवाश्यामाविवर्जिता ।

अर्थ–पुरुषसंज्ञक पक्षियोंका बोलना वामदिक्में अच्छा है और स्त्रीसंज्ञकोंका दहनी तरफसे शुभ है । और हाथी, खिच्चरको त्याग कर बाकी पुरुषसंज्ञक पशुओंका वामभागमें बोलना शुभ है । और शिवा (श्यारिया) तथा श्यामा (श्यामचिडिया) इनको त्याग कर बाकी स्त्रीसंज्ञक पशुपक्षियोंका दक्षिणभागमें बोलना शुभ है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दक्षिणाद्वामगमनंप्रशस्तंश्वशृगालयोः । वामंनकुलचाषाणां नोभयंशशसर्पयोः । भाषकौषिकयोश्चैवनप्रशंस्तंकिलोभयम् । दर्शनंवारुतश्चापिनगोधाकृकलासयोः । दूतैरनिष्टैस्तुल्यानामशस्तंदर्शनंनृणाम् ।

अर्थ--कुत्ता और स्यारियाका दहनी तरफसे वामभागमें जाना शुभहै । और नौला, चाष (नीलकंठ) इनका वामतरफसे दहनी तरफ जाना शुभहै । और ससेका तथा सर्पका दोनों भागमें जाना निषेध है । भाष (सपेदचील) कौषिक (पेचक वा उल्लू) इनका दर्शन और शब्द दोनों अशुभ हैं उसी प्रकार करकैंटा (गिरगट) और गोहकाभी दर्शन और शब्द शुभ नहींहै और जो दुष्ट दूतके लक्षण लिखे हैं इसी प्रकारके मनुष्यके दर्शन अशुभ है ।

मार्गच्छेदोहिमार्जारोगोधासरठवानरैः ।
रोगिद्वाराभिगमने मंगलंतदमङ्गलम् ।

अर्थ--बिल्ली, गोह, दोमुखकी सर्पिणी, और वानर इनका रोगीके घर जाते हुए वैद्यका मार्ग काटना अच्छे शकुनको अमंगल करदेताहै । अर्थात् इनका रास्ता काटना अमंगलीक है ।

कुलत्थतिलकार्पासतुषपाषाणभस्मनाम् । पात्रंनेष्टंतथाङ्गारतैलकर्दमपूरितम् । प्रसन्नेतरमद्यानांपूर्णंवारक्तसर्षपैः । शवकाष्ठपलाशानांशुष्कानांपथिसङ्गमाः।नेष्यन्तेपतितान्तस्थदीनान्धरिपवस्तथा । मृदुशीतोऽनुकूलश्चसुगंधिश्चानिलः शुभः । खरोष्णोऽनिष्टगन्धश्चप्रतिलोमश्चगर्हितः ।

अर्थ--कुलथी, तिल, कपास, तुष, पत्थर, भस्म, तथा अंगारेसे भरा तैलसे भरा, और कीचसे भरा ऐसा पात्र । दुष्ट मद्योंकरके परिपूर्ण पात्र लालसरसो, सुरदा, लकडी, ढाककी सुखी लकडी मार्गमें मिलना तथा पतित घरके भीतर बैठे, दीन, अंधे और शत्रु और तीखी गरम दुर्गंधवाली उलटी पवन इत्यादि मिलेतो वैद्यको शुभ नहींहै । परंतु मृदु, शीतल, अनुकूल और शुभपवन संमुखसे लगना शुभहै ।

निमित्त ।

ग्रन्थ्यर्बुदादिषुसदाछेदशब्दश्चपूजितः । विद्रध्युदरगुल्मेषु

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भेदशब्दस्तथैवच ।रक्तपित्तातिसारेषुरुद्धशब्दःप्रशस्यते ।
एवंव्याधिविशेषेणनिमित्तमुपधारयेत् ।

अर्थ–ग्रन्थी (गांठ) और अर्बुदादि रोगोंमें यदि वैद्यको छेदशब्द होयतो उत्तमहै । विद्रधि, उदररोग और गुल्म रोगमें भेदशब्द होना शुभ है । रक्तपित्त, अतिसार आदि रोगोंमें रुद्ध (रोको) ऐसा शब्द शुभहै । इसीप्रकार प्रत्येक व्याधिमें वैद्य निमित्तोंको जानलेवे ।

तथैवाकुष्टहाकष्टमाक्रन्दरुदितस्वनाः । छर्द्यांवातपुरीषाणां
शब्दोवैगर्दभोष्ट्रयोः । प्रतिषिद्धंतथाभग्नंक्षुतंस्खलितमाहतम् ।
दौर्मनस्यंचवैद्यस्ययात्रायांनप्रशस्यते ।

अर्थ–उसी प्रकार बुरी रीतिसे पुकारना, हाय! कष्टहै ऐसा कहना चिल्लाना, रुदन करना, तथा वमन, अधोवायु, और मलमूत्रका शब्द, तथा गधा ऊंटका डकरना, और छींकना, ये शब्द बुरेहैं । चोटलगना, गिरना, लडाई और दौर्मनस्य ये वैद्यको यात्रामें शुभ नहीं है ।

चिकित्सांरोगिणःकर्तुंगच्छतोभिषजःशुभम् ।
यात्रेयःसौम्यशकुनःप्रोक्तोदीप्तोनशोभनः ।

अर्थ–चिकित्सा करनेको जानेवाले वैद्यको मार्गमें सौम्य (शांत) शकुन शुभहै । और दीप्त शकुन शुभ नहीं है अर्थात् अशुभ है ।

प्रवेशेप्येतदुद्देशादवेक्ष्यञ्चतथातुरे ।
प्रतिद्वारंगृहेवास्यपुनरेतन्नगण्यते ॥

अर्थ–जो शकुन यात्रामें कहेहैं वो प्रवेशमेंभी देखने तथा रोगीके पास जायकरभी देखने तथा उस रोगीके जिस समय घरके द्वारमें प्रवेश कराचाहे तबभी देखे फिर शकुनका फल नहीं गिना जाता ।

केशभस्मास्थिकाष्ठाश्मतुषकार्पासकंटकाः । खट्वोर्ध्वपादामद्यापोवसातैलंतिलास्तृणम् । नपुंसकंव्यङ्गभग्ननग्नमुण्डासिताम्बराः । प्रस्थानेवाप्रवेशेवानेष्यंतेदर्शनंगताः ।

अर्थ–केश, भस्म, हड्डी, पत्थर, तुष, कपास, कांटे, उलटी, खाट, मद्यपी चरबी, तेल, तिल तृण, नपुंसक, अंगहीन, टटे अंगका, नंगा, मुंडित, काले-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रंगके वस्त्रका पहननेवाला इन सबका प्रस्थानमें अथवा प्रवेशमें दर्शन होना अशुभ है ।

भाण्डानांसङ्करस्थानांस्थानात्सञ्चरणंतथा । निखातोत्पाटनंभङ्गःपतनंनिर्गमस्तथा । वैद्यासनावसादोवारोगीवास्यादधोमुखः । वैद्यंसम्भाषमाणोऽङ्गंकुड्यमास्तरणानिवा । प्रमृद्याद्वाधुनीयाद्वाकरौपृष्टांशिरस्तथा। हस्तंचाकृष्यवैद्यस्यन्यसेच्छिरसिचोरसि । योवैद्यमुन्मुखःपृच्छेदुन्मार्ष्टिस्वाङ्गमातुरः । नसाविध्यतिवैद्योवागृहेयस्यनपूज्यते ।

अर्थ–पात्रोंका ओंधे मुख होना, तथा स्थानसे चलायमान होना, पृथ्वी खोदकर गाडना, अथवा पृथ्वीसे उखाडना, वा भंगहोना, पतनहोना, अथवा उनका लेकर निकालना, वैद्यके आसनका विनाशहोना, अथवा रोगीका मुख नीचेको होय। रोगी वैद्यके बोलनेपर अपने अँगोंको भींतसे अथवा बिछयेपर रगडे अथवा पटके उसी प्रकार हाथ, पीठ और शिरको रगडे वा देदे मारे, तथा वैद्यके हाथको पकडकर अपने मस्तक और छातीपर धरे । और जो रोगी वैद्यसे अपना हाल ऊंचा मुख करके पूछे अथवा अपने अंगोंको झाडने पोछने लगे और जिसके घरमें वैद्यका पूजन न हो ऐसा रोगी अच्छा नहीं हो किंतु मरे ।

भवनेपूज्यतेवापियस्यवैद्यःससिद्धयति । शुभंशुभेषुदूतादिष्वशुभंह्यशुभेषुच । आतुरस्यध्रुवंतस्मादूतादींल्लक्षयेद्भिषक् ।

अर्थ–जिसके घरमें वैद्यका पूजन होता है वह रोगी शीघ्र अच्छा होजाता है । शुभ रोगियोंके शुभ दूतादिक होते हैं, और अशुभके अशुभ होते हैं, अतएव वैद्य रोगीके दूतादिककी अवश्य परीक्षा करे आदिशब्दसे शकुन, निमित्तादि जानने अर्थात् इनकीभी परीक्षा वैद्य करे ।

रोगीके जीवनमरणकी परीक्षा ।

ऋतुहरनयनकराम्बुधिमुनिरसवेदाग्निचन्द्रादिग्दुर्गाः । विन्यस्याधोविलिखेदादिहान्तांस्तथावर्णान् । पंचान्त्यस्वरव-

---

१ अशुभं सर्वथोलूकबिडालसरठेक्षणम् । धनुरुन्द्रश्चलालाटमशुभंशुभमन्यतः। आम्रिपूर्णानि पात्राणिभिन्नानि विशिखानिच । दध्यक्षतादिनिर्गच्छन्वक्ष्यमाणं च मंगलम् । वैद्योमरिष्यतांवेश्मप्रविशन्नेवपश्यति । दूतायसाधुदृष्ट्वैवंत्यजेदार्त्तमतोऽन्यथा । करुणाशुद्धसंतानोयत्नतः समुपाचरेदिति वाग्भट्टे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

र्ज्यानथकृत्वाचोहलश्चपृथक् । दूतातुरयोर्नाम्नोर्वसुभिःसंशोधितासुसंख्यासु । जीवत्यधिकेरोगीम्रियतेहीनेसमेव्याधिः ।

अर्थ–ऋतु ६ हरनयन ३ कर २, अम्बुधि ४, मुनि ७, रस ६, वेद ४, अग्नि ३, चंद्र १, दिक् १०, दुर्गा ९, इन अंकोंको एक ऊपरकी सीधी पंक्तिमें लिखे फिर उसके नीचे अकारसे लेकर हकारपर्यंत वर्णोंको लिखे और स्वरमेंसे अंत्यके पांच स्वर त्यागदेवे इसप्रकार चक्रको तयार करके फिर दूत और रोगी दोनोंके नामके अक्षरोंके कोष्ठकाक्षरोंकी संख्या जोडके उसमें आठका भाग देवे यदि रोगीकी संख्या अधिक आवे तो बचे,और न्यून होय तो मरे और समान अर्थात् जितने नामके अक्षर होय उनीके समान संख्या आवे तो रोगी रोग ग्रस्त रहे ।

रोगमुक्तीप्रश्नकोष्टकम् ।

६	३	२	४	७	६	४	३	१	१०	९
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ॡ	ए
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह

प्रकारान्तर ।

वर्णाङ्कात्मनिमण्डलेअइउएओकादिवर्णाल्लिखेत्त्यक्त्वा ङक्षभणंलमप्यथतिथीन्सर्वांश्चपंक्तिक्रमात् । अर्कंग्लौगुरुशुक्रसौरिकुजविच्छून्यान्यधोधःक्रमात् ।पौष्णादीन्यपिसप्तभानिचपुरावत्पञ्चपञ्चाग्रतः । आख्यायाःप्रथमाक्षरंभवतियत्कोष्ठेततःकोष्ठको बालाख्यश्चकुमारकोप्ययुवावृद्धोमृतश्चक्रमात् । भंवारश्चतिथित्रयंप्रभवतिचैतन्मृताख्यंतदा मृत्युर्निश्चयतोऽन्यथाक्वचिदितिप्रोक्तोनृणांनिश्चयः। किञ्चिल्लाभकरोबालःकुमारस्त्वर्धलाभकृत् । सर्वसिद्धिंयुवादत्तेवृद्धो हानिंमृतोमृतिम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-वर्णात्मक तथा अंकात्मक मंडलमें अ इ उ ए ओ और क ख इत्यादि वर्ण लिखे, उनमें ङ क्ष ञ ण ल ये अक्षर छोडदे और १५ तिथि पंक्तिक्रम करके लिखे, और रवि, चंद्र, गुरु, शुक्र, शनि, मंगल, बुध, और शून्य ये लिखे फिर रेवतीसेलेकर प्रत्येक खडी पंक्तीमें प्रथम सात सात नक्षत्र फिर बाकीकी पंक्तिमें पांचपांच इसप्रमाण लिखे । इसप्रकार कोष्ठक तयार करे पीछे दूतके प्रश्नका प्रथमाक्षर जिस कोष्ठकमें होय उस कोष्ठकसे बाल, कुमार, युवा, वृद्ध, और मृत इसक्रमसे नक्षत्र, वार, तिथि, यदि ये मृताख्य कोष्ठकमें आवें तो रोगीकी मृत्यु होय अन्यथा सुख होय । बाल किंचित् लाभकारक, कुमार अर्थलाभ करता, युवा सर्वसिद्धिदाता और वृद्ध हानिकारक एवं मृत मृत्युका दाता जानना ।

ओ	च	ठ	द	ब	ल	ह	५	१०	१५	श	०	श्र	ध	श	पू	उ	०	०	प्रश्नचक्रम्
ए	घ	ट	थ	फ	र	स	४	९	१४	शु	०	अ	ज्ये	मू	पू	उ	०	०	
उ	ग	झ	त	पं	य	ष	३	८	१३	गु	०	उ	ह	चि	स्वा	वि	०	०	
इ	ख	ज	ढ	न	म	श	२	७	१२	चं	बु	पु	पु	आ	म	पू	०	०	
अ	क	छ	ड	ध	भ	व	१	६	११	र	मं	रे	अ	भ	कृ	रो	मृ	आ	

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टुरत्नाकरे शकुनाध्यायवर्णनं नाम द्वात्रिंशस्तरङ्गः ॥ ३२ ॥

---

१ लग्नं वैद्योद्युनं रोगोमध्यंरोगीख १० मौषधम् । तद्बलाबलमादेश्यं सौम्यक्रूरयुतेन्यथा ॥ १ ॥ शुभग्रहाः सौम्यनिरीक्षिताश्चविलग्नसप्ताष्टमपञ्चमस्थाः । त्रिषट्दशायेषुनिशाकरस्याच्छुभंभवेद्रोगनिपीडितानाम् ॥ २ ॥

समरसारे-प्रश्नाझलाश्चप्रमितिः कुयुक्ताभूयो र २ निघ्ना ल २ हृताचशेषे । के १ जीवितं खे २ ऽतिरुजोमृतिर्ने ० भवेच्चतिथ्यांमरणाभिधायाः ३

प्रश्नविनोदे-स्त्रीपुंसोर्नामराश्यैक्यंत्रिभिर्भक्तावशेषकम् । शशि१शून्ये ० पुमान्मृत्युः द्विशेषेस्त्रीविनाशनम् ४ उदयात्घटिकास्त्रिघ्नास्तिथिवारेणसंयुताः । सूर्यैश्चविभजेद्धीमान्विज्ञेयंमृत्युजीवनम् । रामै बाणै रसै सिद्धि नन्दे रुद्रैश्चजीवनेम् । रूप पक्षै युग द्वीपै देश सूर्यैर्नजीवनेम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

श्रीशंवन्दे ।

श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ।

अथ स्वप्नप्रकाशिकाप्रारम्भः ।

स्वप्नाधिपं हरिं नत्वा स्वप्नविज्ञानहेतवे ।
स्वप्नप्रकाशिकां वक्ष्ये सर्वचित्तानुगामिनीम् ॥ १ ॥

अर्थ–स्वप्नाधिप श्रीहरिको नमस्कार कर स्वप्नविज्ञानके लिये सबके चित्तमें गमन करनेवाली अर्थात् सबको प्रिय ऐसी स्वप्नप्रकाशिकाको कहते हैं ।

स्वप्नानतः प्रवक्ष्यामि मरणाय शुभाय च ।
सुहृदो यांश्च पश्यन्ति व्याधितो वा स्वयं तथा ॥ २ ॥

अर्थ–अब मैं स्वप्नोंको कहूंगा कि, जिनको मरणके अर्थ अथवा अच्छा-होनेके अर्थ रोगीके सुहृद् अथवा स्वयंरोगी देखता है ।

सप्तविधस्वप्न ।

दृष्टः श्रुतोऽनभूतश्च प्रार्थितः कल्पितस्तथा ।
भाविको दोषजश्चैव स्वप्नः सप्तविधो विदुः ॥ ३ ॥

अर्थ--तहां कहते हैं कि, स्वप्न सात प्रकारके हैं । १ दृष्ट (जो दिनमें देखा हो उसीको रात्रिको स्वप्नमें देखे) २ श्रुत (जो बात सुनी हो उसीको स्वप्नमें देखे) ३ अनुभूत (जो बात जाग्रत् अवस्थामें अनुभव करी हो उन्हींको स्वप्नमें देखे) ४ प्रार्थित (जो वस्तुकी जाग्रत् अवस्थामें इच्छा की हो उसीको स्वप्नमें देखना) ५ कल्पित (जो दिनमें किसी वस्तुकी कल्पना करे वो स्वप्नमें देखे) ६ भाविक (जो दृष्टश्रुतसे विलक्षण देखे और उसको उसका वैसाही फल हो उसको भाविक जानना) ७ दोषज अर्थात् वात पित्त कफ इनकी प्रकृतिके अनुसार स्वप्न दीखना ।

तत्र पञ्चविधं पूर्वमफलं भिषगादिशेत् । दिवास्वप्नमतिह्रस्वमतिदीर्घं च बुद्धिमान् ॥ ४ ॥ दृष्टः प्रथमरात्रे यः स्वप्नः सोल्पफलोभवेत् । न स्वप्याद्यं पुनर्दृष्ट्वा स सद्यः स्यान्महाफलः ॥ ५ ॥

---

१ तेष्वाद्यानिष्फलाः पंचयथास्वप्नप्रकृतिर्दिवा । विस्मृतोदीर्घस्वप्नोतिपूर्वरात्रेचिरात्फलम् ॥ दृष्टःकरोतित्वच्छंचगोसर्गेतदहर्महत् । निद्रयाचानुपहतःप्रतीपैर्वचनैस्तथा ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ--तिन दृष्टादिक सात स्वप्नोंमें प्रथमके पांच स्वप्नोंको वैद्य निष्फल कहे । तथा दिनका स्वप्न एवं अति छोटा अथवा अत्यंत बडा स्वप्नकोभी वैद्य निष्फल जाने और जो स्वप्न प्रथमरात्रिमें देखा हो वह अल्प फलको देता है । जिस स्वप्नको देखकर फिर न सोवे वह स्वप्न शीघ्र महाफलको देय है ।

१ वाग्भट लिखते हैं कि, जो प्रकृतिसंबंधी स्वप्न अर्थात् जैसे दोषकी प्रकृति हो उसीप्रकारका स्वप्न देखाहुआभी निष्फल है । जैसे वातप्रकृतिवाला वातप्रकृतिके अनुरूप स्वप्न देखे । पित्तप्रकृतिवाला पित्तप्रकृतिके और कफप्रकृति कफप्रकृतिके एवं द्वंद्वजके और त्रिदोषज जो द्वंद्वजके और त्रिदोषज प्रकृतिके अनुरूप स्वप्न देखे तो निष्फल है । और जिस स्वप्नको देखा उसकी विस्मृति होजावे वोभी निष्फल है शेष समान है ।

मनोवहानां पूर्णत्वाद्दोषैरतिबलैस्त्रिभिः ।
स्रोतसां दारुणान्स्वप्नान्काले पश्यत्यदारुणान् ॥ ६ ॥

अर्थ--मनोवह अर्थात् मनके वहनेवाली नाडियोंके छिद्र जिससमय अतिबली तीनों दोषोंसे पूर्ण होजाते हैं उस कालमें यह मनुष्य दारुण (खोटे) और अदारुण (शुभ) स्वप्नोंको देखता है ।

नातिप्रसुप्तः पुरुषः सफलानफलानपि ।
इन्द्रियेशेन मनसा स्वप्नान्पश्यत्यनेकधा ॥ ७ ॥

अर्थ-जिससमय यह पुरुष न अत्यंत सोता हो और न जगता हो उससमय इन्द्रियोंके अधिपति मनकरके सफल और निष्फल अनेकप्रकारके स्वप्नोंको देखता है । जिसमें स्वप्न देखता है उस अवस्थाको स्वप्नावस्था कहते हैं ।

तथाच ग्रन्थान्तरे ।

सर्वेन्द्रियाण्युपरतौ मनोह्युपरतं यथा ।
विषयेभ्यस्तदा स्वप्नं नानारूपं प्रपश्यति ॥ ८ ॥

अर्थ-और ग्रंथान्तरोंमेंभी लिखा है, कि जिससमय संपूर्ण इन्द्री और मन विषयोंसे उपरामको प्राप्त होते हैं, तब यह प्राणी अनेक प्रकारके भले बुरे स्वप्नोंको देखता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तत्रादौ रोगभाविस्वप्नाः ।

श्वभिरुष्ट्रैः खरैर्वापि याति यो दक्षिणां दिशम् ।
स्वप्ने यक्ष्मा तमाविश्य न जीवन्नवसृज्यते ॥ ९ ॥

अर्थ–तहां प्रथम रोग होनहार स्वप्नोंको कहते हैं । जो मनुष्य स्वप्नमें कुत्ता, ऊंट और गधेपर चढके दक्षिणदिशाको जाता है, उसके राजयक्ष्माका रोग होकर मरता है ।

रक्तपित्तसंभवे ।

लाक्षारक्ताम्बराभं यः पश्यत्यम्बरमन्तिकात् ।
स रक्तपित्तमासाद्य तेनैवान्ताय नीयते ॥ १० ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें लाख और लाल वस्त्रके समान आकाशको देखता है वह रक्तपित्तरोगको प्राप्त हो और उसी रक्तपित्तसे मरणको प्राप्त होता है ।

रक्तरोगे ।

रक्तस्रग्रक्तसर्वाङ्गो रक्तवासा मुहुर्हसन् ।
यः स्वप्ने ह्रियते नार्या स रक्तं प्राप्य सीदति ॥ ११ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें लाल फूलमाला और अपने संपूर्ण अंगोंको लाल और लाल वस्त्रोंको धारण करता वारंवार हँसता है, एवं जिसको स्वप्नमें लाल वस्त्र धारण करनेवाली स्त्री खींचती है वह रुधिरके रोगसे मरता है ।

गुल्मरोगे ।

शूलाटोपान्त्रकूटाश्च दौर्बल्यं चातिमात्रया ।
नखादिषु च वैवर्ण्यं गुल्मेनान्तकरो नरः ॥ १२ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यके स्वप्नमें शूलरोग, अफरा, आंतोंका रोग, अत्यंत दुर्बलताका रोग, और जिसके नख दुष्टरंगके होजांय उस मनुष्यकी मृत्यु गुल्मरोगसे होती है ।

लताकण्टकिनी यस्य दारुणा हृदि जायते ।
स्वप्ने गुल्मस्तमन्ताय क्रूरो विशति मानवम् ॥ १३ ॥

अर्थ–जिस स्वप्नमें मनुष्यके हृदयमें घोर कांटेवाली लता (वेल) उत्पन्न होय उसमनुष्यके मारनेको क्रूर गुल्मरोग उसकी देहमें प्रवेश करता है ।

कुष्ठरोगे ।

कायेऽल्पमपि संस्पृष्टं सुभृशं यस्य दीर्यते । क्षतानि च नरो

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हन्ति कुष्ठैर्मृत्युर्हिनास्ति तम् ॥ १४ ॥ नग्नस्याज्यावसिक्त-स्यजुह्वतोऽग्निमनर्चिषम् । पद्मान्युरसि जायन्ते स्वप्ने कुष्ठै-र्मरिष्यतः ॥ १५ ॥

अर्थ–जिसकी देह नेकभी स्पर्श करनेसे फटजावे और घावहोजावे वो मनुष्य कुष्ठकरके मरण पाताहै । यह जाग्रत् अवस्थामें जानना और यही मनुष्य स्वप्नमें नग्नहो घृतको देहमें लगावे । और ज्वालारहित अग्निमें हवन करे तथा उसके हृदयमें कमल प्रगट होय वो कुष्ठकरके मरेगा ऐसा जानना ।

प्रमेहरोगे ।

स्नातानुलिप्तगात्रेऽपि यस्मिन्गृध्यंति माक्षिकाः । स प्रमे-हेण संस्पर्शं प्राप्य तेनैव हन्यते ॥ १६ ॥ स्नेहं बहुविधं स्वप्ने चांडालैः सह यः पिबन् । बध्यते स प्रमेहेण स्पृश्य-तेऽन्ताय माधवः ॥ १७ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्नानकर चुकाहो और तैलआदिका मालिसकर चुकाहो तथापि उसकी देहमें मक्खी आनकर बैठ, वह मनुष्य प्रमेहरोगको प्राप्तहो और उसी प्रमेहरोगकरके मारा जाताहै यह जाग्रत् अवस्थामें जानना । अब कहतेहैं कि वही मनुष्य स्वप्नमें चांडाल (भंगी डोम आदि) के साथ अनेक प्रकारके घृततैलादि स्नेहका पान करता है वो प्रमेहकरके मरताहै । उसको मधुप्रमेह होताहै ।

उन्मादरोगे ।

ध्यानायासस्तथोद्वेगो चोहश्च स्थानसम्भवः । अरतिर्बलहा-निश्च मृत्युरुन्मादपूर्वकः ॥ १८ ॥ आहारद्वेषिणं पश्यन् प्लुतचित्तं मुदार्दितम् । विद्याद्धीनो मुमूर्षुतं उन्मादेनातिपा-तिना । क्रोधनं त्रासबहुलं हन्त्युन्मादः शरीरिणम् ॥ १९ ॥ नृत्यद्रक्षोगणैः साकं यः स्वप्नेऽम्भसिसीदति । स प्राप्य भृ-शमुन्मादं याति लोकमतः परम् ॥ २० ॥

अर्थ–एकठिकाने बहुत देरीतक ध्यानका लगजाना, मनमें उद्वेग और तर्क वितर्क, सर्व वस्तुमात्रमें तर्क करे अरति और बलहानि नौ ये लक्षण उन्मादरोग होनेवाले रोगीकेहैं वह इसी रोगसे मरे । जो मनुष्य भोजन नहीं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करे, निमग्न चित्तसे देखे, तथा आनंदसे पीडित चित्त जिसका अर्थात् अत्यंत आनंदित रहे।एवं जो अत्यंत क्रोधी और जिसको अत्यंत त्रास होय वह अति प्रबल उन्मादरोगसे मरनेवाला जानना ये जाग्रत् अवस्थाके चिह्नहैं । और जिस मनुष्यके ये जाग्रत अवस्था चिह्नहो वह स्वप्नमें राक्षसोंके समूहोंकरके नाचताहुआ जलमें डूबजावे। वह उन्मादरोगको प्राप्त हो मृत्युको प्राप्तहोताहै ।

अपस्माररोगे ।

असत्तमः पश्यति यः शृणोत्यप्यसतःस्वरान् । बहून्बहुविधान्जाग्रन्सोऽपस्मारेण बध्यते ॥ २१ ॥ मत्तं नृत्यन्तमाविध्य प्रेतो हरति यं नरम् । स्वप्ने हरति तं मृत्युरपस्मारपुरःसरः ॥ २२ ॥

अर्थ-- जो मनुष्य जाग्रत् अवस्थामें अकस्मात् अनेक प्रकारके भयानक दुष्ट स्वरूपोंको देखे और अनेक प्रकारके दुष्टशब्दोंको सुने वो अपस्मार (मृगी) रोग प्रगट होकर और इसी रोगसे माराजाय । एवं यही मनुष्य स्वप्नमें उन्मत्तहो नाचने लगे उस नाचते हुएको मृतपुरुष बांधकर लेजाय वो अपस्मारकरके मरे इसमें संदेह नहीं ।

स्तम्भेते प्रतिबुद्धस्य हनूमन्ये तथाक्षिणी।
यस्य तं बहिरायामो गृहीत्वा हन्त्यसंशयम् ॥ २३ ॥

अर्थ–जिस जगतेहुए पुरुषके ठोडी, मन्यानाडी, और नेत्र ये स्तंभितहोजावे उसको बहिरायाम (वादीका रोग) होकर निश्चय मरता है ।

शष्कुलीरप्यपूपान्वै स्वप्ने खादति यो नरः।
स चेत्तादृक्छर्दयति प्रतिबुद्धो न जीवति ॥ २४ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें पूडी, पूआ खायकर फिर उसी प्रकार उलटी कर देवे और जगपडे तो वो नहीं जीवे ।

अनेक रोगोंमें विविधस्वप्न ।

ज्वरितानां शुनासख्यं कपिसख्यन्तु शोषिणाम् । उन्मादे राक्षसैः प्रेतैरपस्मारे प्रवर्त्तनम् ॥ २५ ॥ मेहातिसारिणां तोयपानं स्नेहस्य कुष्ठिनाम् । गुल्मेषु स्थावरोत्पत्तिः कोष्ठे मूर्ध्नि शिरोरुजि ॥ २६ ॥ शष्कुलीभक्षणं छर्द्यां मध्वा-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्वासपिपासयोः ॥ हारिद्रं भोजनं वापि यस्य स्यात्पाण्डु-
रोगिणः । रक्तपित्ती पिबेद्यश्च शोणितं स विनश्यति ॥ २७ ॥

अर्थ–स्वप्नमें ज्वर होनेवाले मनुष्योंकी कुत्तेके साथ प्रीति होतीहै । जिन के शोषरोग होनेवालाहो उनकी बंदरोंके साथ प्रीति होती है । उन्माद होने वालेकी राक्षसोंके साथ, अपस्मार (मृगी) रोग होनेवालेकी प्रेतोंके साथ प्रीति होती है । प्रमेहरोगवाले और अतिसारी स्वप्नमें जलपीते हैं । कुष्ठ होनेवाले तेलपीते हैं गुल्मरोग होनेवालोंके कोठेमें और मस्तकपर वृक्षोत्प-त्तिहो । मस्तकरोग और छर्दिरोग होनेवाला मनुष्य चनेकी तिलमिली पूडी खाता है और श्वासरोग तथा प्यासरोगवाला मार्ग चलता है । पांडुरोग होनेवाला हलदी मिले पदार्थ खाताहै । और जो रक्तपित्ती स्वप्नमें रुधिर पीताहै वो अवश्य मरण पावे ।

एतानि पूर्वरूपाणि यः सम्यगवबुद्ध्यते । स एषामनुव-
न्धञ्च फलञ्च ज्ञातुमर्हति ॥ २८ ॥ इमांश्चाप्यपरान्स्वप्ना-
न्दारुणानुपलक्षयेत् ॥ व्याधितानां विनाशाय क्लेशाय मह-
तेऽपि वा ॥ २९ ॥

अर्थ–जो पुरुष इन रोगोंके पूर्वरूपोंको उत्तमरीतिसे जानताहै वह इन दुष्ट पूर्वरूपोंका यत्न और इनके फलकोभी जानता है। इसप्रकार यह मनुष्य इन को और अन्य दुष्ट स्वप्नोंको रोगीकी मृत्युके अर्थ अथवा घोर कष्टके लिये देखता है ।

अथान्याशुभस्वप्नानि ।

यस्योत्तमाङ्गे जायन्ते वंशगुल्मलतादयः। वयांसि च विली-
यन्ते स्वप्ने मौण्ड्यमियाच्च यः ॥३०॥ गृद्धोलूकश्वकाकाद्यैः
स्वप्ने यः परिवार्यते ॥ ३१ ॥

अर्थ–अब अन्य अशुभ स्वप्नोंको कहते हैं । जैसे कि जिसके मस्तकपर बांसका वृक्ष, गुल्म (छोटा जवासेके सदृश वृक्ष) और लता प्रगटहो, और जिसके देहमें पक्षी प्रवेश करें, तथा स्वप्नमें मुंडित होकर गमन करे, और जिसको गीध, उल्लू, कुत्ता और कौआ आदि त्रासदेवे ।

रक्षप्रेतपिशाचस्त्रीचाण्डालद्रुमडादिकैः । वंशवेत्रलता-
पाशतृणकण्टकसङ्कटे ॥ ३२ ॥ प्रमुह्यन्ति हि यः स्वप्ने

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लगति प्रपतत्यपि। भूमौ पांसूपधानायां वल्मीके वाथ भस्मनि ॥ ३३ ॥ श्मशानायतनश्वभ्रे स्वप्ने यः प्रपतत्यपि। कलुषेऽम्भसि पङ्के वा कूपे वा तमसावृते ॥ ३४ ॥ स्वप्ने मज्जति शीघ्रेण स्रोतसा ह्रियते च यः।

अर्थ—जो मनुष्य स्वप्नमें राक्षस, प्रेत, पिशाच, स्त्री, चांडाल, द्रुमडादिकोंकरके बांस, वेत, लता, फांस, तिनका, और कांटेके संकटमें मोहितहो, लगकर गिरपडे, तथा रेतली पृथ्वीमें तथा सर्पकी बांबीमें राखमें, श्मशानमें देवस्थानमें, गड्ढेमें, दुष्ट जलमें, कीचमें, अंधौए कूएमें गिर और पानीके वेगकरके जो हरण करा जाय अर्थात् वहजावे।

स्नेहपानन्तथाभ्यङ्गःप्रच्छर्दनविरेचने ॥ ३५ ॥ हिरण्यलाभः कलहः स्वप्ने बन्धपराजयौ। उपानद्युगनाशश्च प्रपातःपांसुचर्म्मणोः ॥ ३६ ॥ हर्षस्वप्ने प्रकुपितैः पितृभिश्चावभर्त्सनम्। दन्तचन्द्रार्कनक्षत्रदेवतादीपचक्षुषाम् ॥ ३७ ॥ पतनं वा विनाशोवा स्वप्ने भेदो नगस्य वा।

अर्थ—स्वप्नमें तेलका पीना तथा देहमें लगाना उलटी करना, दस्त होना तथा सुवर्णका मिलना, कलह होना, बंधनमें पडना और हारना, जोडियोंका नाश, पांसू और चमडेका गिरना, तथा स्वप्नमें खुसी होना, और कुपितहुए पित्रेश्वरोंकरके ललकारा जाना, दांत, चंद्र, सूर्य, नक्षत्र, देवता, दीपक और नेत्र इनका गिरपडना अथवा नाश होना तथा पर्वतका टूटना।

रक्तपुष्पं वनं भूमिं पापकर्मालयांचिताम् ॥ ३८ ॥ गुहान्धकारं संबाधं स्वप्ने यः प्रविशत्यपि। रक्तमाली हसन्नुच्चैर्दिग्वासा दक्षिणां दिशम् ॥ ३९ ॥ दारुणामटवीं स्वप्ने कपियुक्तेन याति वा।

अर्थ—जो मनुष्य स्वप्नमें लालपुष्प वन, पृथ्वी, हिंसाघर, गुफा और अंधकार इनमें प्रवेश करे तथा लालमालाको पहन खिलखिलायके हँसता, नंगाहो दक्षिण दिशाको जाय अथवा बंदरको साथ लेकर दारुण वनीमें प्रवेश करे।

कषायिणामसौम्यानां नग्नानां दण्डधारिणाम् ॥ ४० ॥ कृ-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ष्णानां रक्तनेत्राणां स्वप्ने नेच्छंति दर्शनम् । कृष्णा पापा निराचारा दीर्घकेशनखस्तनी ॥ ४१ ॥ विरागमाल्यवसना स्वप्ने कालनिशा मता । इत्येते दारुणाः स्वप्ना रोगीयैर्याति पञ्चताम् ॥ ४२ ॥ अरोगः संशयं गत्वा कश्चिदेव विमुच्यते ।

अर्थ–कोरडाको हाथमें लिये भयंकर रूपवाले नग्न दंडको धारण करनेवाले काले लालनेत्रवाले पुरुषोंका स्वप्नमें दर्शन होना अशुभ है। काली पापिष्ठ अमंगली आचरणवाली तथा केश नख और स्तन जिसके लंबे होय और दुष्ट रंगकी माला तथा वस्त्रोंको धारण करनेवाली ऐसी स्त्रीका स्वप्नमें दीखना कालरात्रि जाननी । ये संपूर्ण दारुण स्वप्न हैं यदि रोगी देखे तो मृत्युको प्राप्त हो, और आरोग्य पुरुष देखे तो संशयको प्राप्त हो, ऐसे दुष्ट स्वप्नोंसे कोईभी पुण्यवान् पुरुष बचता है ।

तथा च सुश्रुते ।

स्नेहाभ्यक्तशरीरस्तु करभव्यालगर्दभैः ॥ ४३ ॥ वराहैर्माहिषैर्वापि यो यायाद्दक्षिणामुखः । रक्ताम्बरधरा कृष्णा हसन्ती मुक्तमूर्धजा ॥ ४४ ॥ यं वा कर्षति बद्ध्वा स्त्री नृत्यन्ती दक्षिणामुखम् । अन्त्यावसायिभिर्य्यो वा कृष्यते दक्षिणामुखः ॥ ४५ ॥ परिष्वजेरन् यं वापि प्रेताः प्रव्रजितास्तथा ।

अर्थ–अब सुश्रुतके मतसे दुष्ट स्वप्न कहते हैं जैसे कि देहमें तेलका लगाना तथा ऊंट, सर्प, गधा, सूकर, और भैंसा इनपर बैठकर जो दक्षिणदिशाको जाय तथा लाल वस्त्रके धारण करनेवाली काली, बाल जिसके खुले रहे ऐसी स्त्री हँसती नाचती जिस मनुष्यको बांधकर दक्षिणदिशाको घसीटे अथवा जो चांडालोंकरके दक्षिणदिशाकों घसीटा जावे अथवा जिसको मृतपुरुष और संन्यासी आलिंगन करे ।

मूर्द्धन्याघ्रायते यस्तु श्वापदैर्विकृताननैः ॥ ४६ ॥ पिबेन्मधु च तैलं च यो वा पङ्केऽवसीदति ॥ पङ्कप्रदिग्धगात्रो वा प्रनृत्येत्प्रहसेत्तथा ॥ ४७ ॥ निरम्बरश्च यो रक्तां धारयेच्छिरसि स्रजम् ।

अर्थ–स्वप्नमें जिसके मस्तकको विकराल मुखके कुत्ते सूंघे और जो सहत

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तेल पीवे, अथवा कीचमें डूबजावे, अथवा जिसके संपूर्ण अंगोंमें कीच लगजाव, नांचे, हँसे, तथा नग्नहो मस्तकपर लाल पुष्पकी माला धारण करे ।

यस्य वंशो नलो वापि तालो वोरसि जायते ॥ ४८ ॥ यं वा मत्स्यो ग्रसेद्यो वा जननीं प्रविशेन्नरः । पर्वताग्रात्पतेद्यो वा श्वभ्रे वा तमसावृते ॥ ४९ ॥ ह्रियते स्रोतसा यो वा यो वा मौढ्यमवाप्नुयात् । पराजीयेत बध्येत काकाद्यैर्वाभिभूयते ॥ ५० ॥

अर्थ–स्वप्नमें जिसकी छातीमें बांसका नरसलका अथवा ताडका वृक्ष उत्पन्न हो, तथा जिसको मछली निगलजावे, अथवा अपनी मातामें प्रवेश करजावे, पर्वतके अग्रभागसे अंधकारयुक्त गड्ढेमें गिरे, अथवा पानीके वेगसे बहिजावे, वा मुंडन हो, तथा शत्रुसे पराजित हो वा बंधनको प्राप्त हो एवं जो काक (चील, गीध, घूघू) आदिसे पीडित होवे ।

यः पश्येद्देवतानां वा प्रकम्पमवनेस्तथा । शाल्मलीकिंशुकं यूपं वल्मीकं पारिभद्रकम् ॥ ५१ ॥ पुष्पाढ्यं कोविदारं वा चितां यो वाधिरोहति । कार्पासतैलपिण्याकलोहानि लवणं तिलान् ॥ ५२ ॥ लभेताश्नाति वा पक्वमन्नं यश्च पिबेत्सुराम् । स्वस्थः स लभते व्याधिं व्याधितो मृत्युमृच्छति ॥ ५३ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें देवप्रतिमाको और पृथ्वीको हिलती देखे, तथा सेमरका वृक्ष, ढाकका वृक्ष, यूप (यज्ञमें पशु मारनेका स्तंभ) बमई, नीमका वृक्ष, और फूलाहुआ कचनारका वृक्षको देखे अथवा अपनेको चितामें बैठा देखे, तथा कपास, तेल, खल, लोहेके पदार्थ, नोन, तिल, ए प्राप्त होय अथवा पक्व अन्न (पूडीकचोडी, लड्डू, आदि) को स्वप्नमें भक्षण करे, दारू पीवे, इत्यादि स्वप्नोंसे स्वस्थ पुरुष रोगीहो और रोगी पुरुषकी मृत्यु होय ।

विष्णुपुराणे ।

देवद्विजादिभूपानां प्रजानां क्रोध एव च । आलिंगनं कुमारीणांप्राणिनां चैव मैथुनम् ॥ ५४ ॥ हानिश्चैव स्वगा-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्राणां वीरकंठमनप्रियान् । दक्षिणाशाभिगमनं व्याधिर्ना-
भिभवस्तथा॥ ५५ ॥ फलापहारश्च तथा शाद्वलानां विशो-
धनम्।काषायवस्त्रधारित्वंतद्वत्क्रीडनके तथा ॥ ५६ ॥ स्ने-
हपानावगाहौ च रक्तं माल्यानुलेपनम् । एवमादीनिचान्या-
नि दुस्वप्नानिविनिर्दिशेत् ॥ ५७ ॥

अर्थ–विष्णुपुराणमें लिखाहै कि स्वप्नमें देव ब्राह्मण आदिका राजाका और प्रजाका क्रोधितहोना, कुमारी (कन्याओंका) आलिंगन करना, पशु-आदि प्राणियोंका मैथुन देखना, अपने देहकी हानी वीर, कंठ और मन-वांछित पदार्थोंका नाश देखना, अपनेको दक्षिणदिशामें जाताहुआ देखे, तथा रोगसे आक्रांत देखे, फलोंका हरण, घासका काटना, तथा गेरुआ कपडे पहने उसीप्रकार अपनेको खेलता तेलपीता तेलसे स्नान करता लाल-पुष्पमाला और लालचंदन धारण करे हुए देखना, इनसे आदिले और बहुतसे दुःस्वप्न जानने चाहिये ।

वराहः ।

हरिणारोहे भ्रमणं मृत्युर्नाचिरेण सूकरारोहे ।
उष्ट्रारोहे व्याधिर्वृद्धिः स्यात्कुञ्जरारोहे ॥ ५८ ॥

अर्थ–वाराहमिहिर लिखते हैं कि, स्वप्नमें हरिणके ऊपर अपनेको बैठा देखे तो भ्रमण करे, और शूकरके ऊपर बैठा देखे तो थोडेही कालमें मृत्युहो उसी प्रकार ऊंटपै बैठनेसे रोग, और हाथीपर बैठनेसे कुटुंबवृद्धिहोय ।

मार्कण्डेयः ।

वांत्यामूत्रपुरीषं तु सुवर्णं रजतं तथा । प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने
जीवेत दशमासिकम् ॥ ५९ ॥ लोहदंडयुतं कृष्णं नरं कृ-
ष्णपरिच्छदम्। स्वप्ने च पार्श्वतो दृष्ट्वा त्रिरात्रान्मृत्युमादि-
शेत् ॥ ६० ॥

अर्थ–मार्कंडेय ऋषि लिखतेहैं कि जो मल, मूत्र, सुवर्ण और चांदीकी वमनको जागते अथवा स्वप्नमें देखे वो मनुष्य दश महिने जीवे । जो मनुष्य स्वप्नमें लोहदंडका धारण करनेवाला और संपूर्ण परिच्छद (हाथी घोडे आदि) जिसके कालेहो ऐसे पुरुषको अपनेपास खडा देखे वो तीन रात्रिमें मरेगा ऐसा जानना ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करालैर्विकटैः कृष्णैः पुरुषैरुद्यतायुधैः ।
पाषाणैस्ताड्यते स्वप्ने सद्यो मृत्युर्भवेन्नरः ॥ ६१ ॥

अर्थ–जो स्वप्नमें कराल, विकट, काले पुरुष, हाथमें शस्त्र ले रक्खे हों तथा पत्थर मारतेहों ऐसा देखे वो शीघ्र मरे।

रक्तकृष्णाम्बरधरा गायन्ती च हसन्ति च।
दक्षिणाशां नयेन्नारी स्वप्ने सोऽपि न जीवति ॥ ६२ ॥

अर्थ–लाल अथवा काले वस्त्रके धारण करनेवाली स्त्री गाती हँसती जिसको स्वप्नमें दक्षिणदिशाको लेजावे वो मनुष्य नहीं जीवे।

यस्तु प्रावरणं शुक्लं स्वप्ने पश्यति मानवः।
कृष्णरक्तमपि स्वप्ने तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ ६३ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें अपने ओढने बिछानेके वस्त्रोंको सपेद वा काले और लाल देखे उसकी मृत्यु उपस्थित है ऐसा जानना।

श्वभ्रे यो निपतेत्स्वप्ने द्वारं चास्य पिधीयते।
नचोत्तिष्ठति यस्तस्मात्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥ ६४ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें गड्ढेमें गिरपडे, जिसके घरके किवाँड लगजावे वो पुरुष जबतक शय्यासे नहीं उठे तबतकही उसका जीवनहै ऐसा जानना।

रक्तगंधप्रलिप्ताङ्गो रक्तमाल्योपशोभितः। तैलाभ्यक्तोऽतिपीतश्च मुंडितो रक्तवस्त्रधृक् ॥ ६५ ॥ खरमारुह्यवेगेन दक्षिणां दिशमाव्रजेत्। स्वात्मा च दृश्यते स्वप्ने स याति यममन्दिरम् ॥ ६६ ॥

अर्थ–रक्तगंध और लालफूलमाला जिसने पहिर रक्खीहो तथा तेलको लगावे तथा पीवे। मुंडितहो लालवस्त्रको धारण कर गद्धेके ऊपर बैठ वेगसे दक्षिण दिशामें जाय इसप्रकार जो मनुष्य अपने आपको स्वप्नमें देखे वह अवश्य यमराजके घरको पधारे।

दंता यस्य विशीर्यन्ते केशा यस्य पतन्ति च।
धननाशो भवेत्तस्य व्याधिपीडाप्यसंशयम् ॥ ६७ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यके स्वप्नमें दांत और बाल गिरजावे उसका धननाश और व्याधिपीडा होय।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अभिद्रवन्ति यं स्वप्ने शृङ्गिणो दंष्ट्रिणोऽथवा ।
वानरा वा वराहा वा तस्य राजकुलाद्भयम् ॥ ६८ ॥

अर्थ–स्वप्नमें जिसके पीछे शींगवाले (बैल, भैंसा, आदि) और डाढावाले (सिंह, वघेरा, कुत्ता आदि) और बंदर तथा सूअर दौडे । उसको राजकुलसे भय होय ।

स्वप्नेभ्यक्तस्तु रजसा तैलेन च घृतेन च ।
स्नेहेन वा तथान्येन व्याधिं तस्य विनिर्दिशेत् ॥ ६९ ॥

अर्थ–जो स्वप्नमें धूल, वा तैल, तथा घीको देहमें लगाता है एवं और प्रकारका स्नेह (चरबीआदि) को लगाता है वह अवश्य रोगी होय ।

रक्ताम्बरधरानारी रक्तगंधानुलेपना ।
अवगूहति यं स्वप्ने तस्य मृत्युं विनिर्दिशेत् ॥ ७० ॥

अर्थ–लाल वस्त्र और लाल चंदनके धारण करनेवाली स्त्री जिस पुरुषका आलिंगन करे उसकी मृत्यु हो ।

कृष्णाम्बरधरानारी कृष्णगन्धानुलेपना ।
अवगूहति यं स्वप्नेऽकल्याणं तस्य निर्दिशेत् ॥ ७१ ॥

अर्थ–काले वस्त्र और काले चंदनके धारण करनेवाली स्त्री जिस पुरुषका आलिंगन करे उसका अकल्याण जानना ।

स्वप्नेषुनग्नान्मुण्डांश्च रक्तकृष्णाम्बरावृतान् । व्यंगांश्च विकृतान्कृष्णान्सपाशान्सायुधानपि ॥ ७२ ॥ बध्नतो निघ्नतश्चापि दक्षिणांदिशमाश्रितान् । महिषोष्ट्रखरारूढान्स्त्रीपुंसोर्यस्तुपश्यति । स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्येवपञ्चताम् ॥ ७३ ॥

अर्थ–स्वप्नमें नंगे, मुंडित, लाल काले वस्त्रके धारण करनेवाले, अंगहीनविकराल, काले फांसी और शस्त्रोंको लिये ऐसे पुरुष बांधते मारते दक्षिण, दिशाको ले जाते तथा भैंसा ऊंट और गधेपर चढेहुए जिस स्त्री पुरुषको दीख वह नैरोग्य रोगी होय और जो रोगी है वह मृत्यु पावे ।

अधोयोनिं पतत्युच्चाज्जलेग्नौ वा विलीयते । श्वापदैर्हन्यते याप मत्स्याद्यैर्गिलितो भवेत् ॥ ७४ ॥ यस्य नेत्रे विली-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

येते दीपो निर्वाणतां व्रजेत्। तैलं सुरां पिबेद्वापि लोहं वा लभते तिलान् ॥ ७५ ॥ पक्वान्नं लभतेऽश्नाति विशेत्कूपं रसातलम्। स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगीयात्येव पञ्चताम् ॥ ७६ ॥

अर्थ--जो मनुष्य स्वप्नमें अपनेको पर्वतवृक्षआदि ऊंचे स्थानसे गिरा हुआ देखे तथा पानीमें डूबा हुआ अग्निमें जलाहुआ तथा कुत्ताने नखोंसे घायल करा हुआ मछलीकर्के भक्षित, अकस्मात् नेत्र जाते रहे, तथा अकस्मात् दीपक बुझा हुआ ऐसा देखे तथा तैल, दारू इनको पीवे लोह, तिल इनका लाभ होय, तथा पक्वान्नका लाभ होकर उसको भोजन करे तथा कूआमें व पातालमें प्रवेश शरे, इस प्रकारके दुष्ट स्वप्न देखनेसे जिसकी प्रकृति स्वस्थ है उसको रोग होय और जो रोगी है वो मरे।

दुःस्वप्नान्येवमादीनि दृष्ट्वा ब्रूयान्न कस्यचित्। स्नानं कुर्यादुषस्येव दद्याद्धेमतिलानयः ॥ ७७ ॥ पठेत्स्तोत्राणि देवानां रात्रौ देवालये वसेत्। कृत्वैवं त्रिदिनं मर्त्यो दुःस्वप्नात्परिमुच्यते ॥ ७८ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त नग्नमुंडादि दुष्ट स्वप्नोंको देखकर किसीसे न कहे और प्रातः काल स्नान कर सुवर्ण और तिलका और लोहका दान करे, फिर दुष्ट स्वप्नको नाशकर्त्ता ऐसे देवताओंके (विष्णुसहस्रनामादि) स्तोत्रोंका पाठ करे। इसप्रकार दिनमें कर रात्रिमें देवमन्दिरमें स्थित हो जागरण करे इसप्रकार तीनदिन करनेसे मनुष्य दुःस्वप्नके फलसे छूट जाता है।

ग्रन्थान्तरे च।

स्तुतिश्च वासुदेवस्य तथा तस्य च पूजनम्।
नागेन्द्रमोक्षश्रवणं ज्ञेयं दुःस्वप्ननाशनम् ॥ ७९ ॥

अर्थ–औरभी ग्रन्थान्तरोंमें लिखा है कि, श्रीवासुदेवकी स्तुति तथा श्रीवासुदेव भगवान्का पूजन और गजेन्द्रमोक्षका श्रवण करनेसे दुःस्वप्नका फल नष्ट होता है।

पराशरस्मृतौ।

देवद्विजाग्निप्रतिपूजनानि मंत्रोपवासादिपवित्रमेव। तिलान्नगोभूमिहिरण्यदानं दुस्वप्नसंदर्शननाशनानि ॥ ८० ॥ अ-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

थाम्बुसंस्पर्शनमंत्रहोमतिलप्रदानं तपनं च भूयः। शांतिर्ज-
पो होमतथान्नदानंदुःस्वप्नहन्तृणि पयश्च गांगम् ॥ ८१ ॥

अर्थ–पाराशरस्मृतिमें लिखा है कि देव ब्राह्मण और अग्नि इनका पूजन, गायत्र्यादि दिव्य मंत्रोंका जप करना, उपवासादि पवित्र कर्मोंका अनुष्ठान तथा तिल, अन्न, गौ, पृथ्वी, और सुवर्णका दान, ये सब दुःस्वप्न देखनेके फलको नष्ट करे हैं। उसीप्रकार जलोंका स्पर्श, मंत्रजापपूर्वक होम, तिलदान तप करना, शांति कराना, जप, होम, अन्नदान और श्रीभागीरथीगंगाके जलका सेवन दुःस्वप्नकी शांति करे है।

सुश्रुते च।

स्वप्नानेवंविधान्दृष्ट्वा प्रातरुत्थाय यत्नवान् । दद्यान्माषां
स्तिलाँल्लोहं विप्रेभ्यः काञ्चनं तथा ॥ ८२ ॥ जपेच्चापि शु-
भान्मंत्रान्गायत्रीं त्रिपदां तथा। दृष्ट्वा च प्रथमे यामे सु-
प्याद्धत्वा पुनः शुभम् ॥ ७३ ॥ जपेद्वान्यतमं देवं ब्र-
ह्मचारी समाहितः । नचाचक्षीत कस्मैचिद्दृष्ट्वा स्वप्नमशो-
भनम् ॥ ८४ ॥ देवतायतने चैव वसेद्रात्रित्रयं तथा।
विप्रांश्च पूजयेन्नित्यं दुःस्वप्नात्परिमुच्यते ॥ ८५ ॥

अर्थ–सुश्रुतमें लिखा है कि पूर्वोक्त अशुभ स्वप्नोंको देखे तो प्रातःकाल उठकर यत्नपूर्वक ब्राह्मणोंको उडद, तिल, लोह और सुवर्णका दान करे। तथा शुभवैदिकमंत्रोंका तथा त्रिपदा गायत्रीमंत्रका जप करे, यदि रात्रिके प्रथमप्रहरमें स्वप्न देखे तो शुभवस्तुका स्मरण कर फिर शयन करे अथवा अपनी इच्छाके अनुसार चाहिये जिस देवताका ध्यान करे और ब्रह्मचर्यमें रहना, दुष्ट स्वप्नको किसीके आगे कहे नहीं और देवमंदिरमें तीन रात्र जागरण करे नित्य ब्राह्मणोंका पूजन कराकरे तो दुःस्वप्नसे छूट जावे।

चरके।

अकल्याणमपिस्वप्नं दृष्ट्वा तत्रैव यः पुनः।
पश्येत्सौम्यं शुभाकारं तस्य विद्याच्छुभं फलम् ॥ ८६ ॥

अर्थ–चरकमें लिखा है कि, यदि यह प्राणी दुःस्वप्न देखे और उसीके पिछाडी शुभस्वप्न देखे तो उसका शुभही फल जानना।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ शुभस्वप्नानाह ।

अत ऊर्द्धं प्रवक्ष्यामि प्रशस्तं स्वप्नदर्शनम् । देवद्विजान्गोवृषभान्जीवतः सुहृदो नृपान् ॥ ८७ ॥ समिद्धमग्निं विप्रांश्च निर्मलानि जलानि च । पश्येत्कल्याणलाभायव्याधेरपगमाय च ॥ ८८ ॥

अर्थ–अब इसके उपरान्त उत्तम स्वप्नदर्शनको कहते है । जैसे कि देवता ब्राह्मण, गौ, बैल, जीवते हुए अपने सुहृद, राजा, देदीप्यमान अग्नि, विप्र, और निर्मल जलोंको यह प्राणी कल्याणके लाभार्थ और व्याधिके दूर होनेकेलिये देखता है ।

मांसं मत्स्यान्स्रजःश्वेता वासांसि च फलानि च ।
लभते धनलाभाय व्याधेरपगमाय च ॥८९॥

अर्थ–मांस, मछली, श्वेत फूलमाला, श्वेत वस्त्र, और फक, इनको यह प्राणी स्वप्नमें धनके लाभार्थ और रोगके दूर होनेके लिये देखता है ।

महाप्रसादसफलवृक्षवारणपर्वतान् ।
आरोहेद्द्रव्यलाभाय व्याधेरपगमायच ॥ ९० ॥

अर्थ–बडा भारी मंदिर, सफल वृक्ष, हाथी और पर्वत, इनपर स्वप्नमें यह प्राणी द्रव्यलाभके और रोग दूर होनेके अर्थ चढता है ।

नदीनदसमुद्रांश्च क्षुभितान्कलुषोदकान् ।
तरेत्कल्याणलाभाय व्याधेरपगमायच ॥ ९१ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें बढेहुए नदी, नद, समुद्र, दूषित जलको तरताहै, अर्थात् इनके पार जाता है, वो कल्याण, लाभ और रोगमुक्तिके अर्थ है ।

उरगो वा जलौको वा भ्रमरो वापि यं दशेत् ।
आरोग्यं निर्दिशेत्तस्य धनलाभं च बुद्धिमान् ॥ ९२ ॥

अर्थ–जिस प्राणीको स्वप्नमें सर्प, जोक, अथवा भौंरामक्खी काटे उसको आरोग्य और धनका लाभ बुद्धिवान् पुरुष कहै ।

एवंरूपाञ्छुभान्स्वप्नान्यः पश्येद्व्याधितो नरः
स दीर्घायुरितिज्ञेयस्तस्मै कर्म समाचरेत् ॥ ९३ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-इसप्रकार जो रोगी मनुष्य शुभ स्वप्न देखता है, उसकी दीर्घायु जाननी इसकी चिकित्सा वैद्यको करनी चाहिये ।

ग्रहनक्षत्रताराणां चन्द्रमंडलदर्शनम्।भास्करोदयनं चैव प्रज्वलंतं हुताशनम् ॥ ९४ ॥ हर्म्येष्वारोहणं चैव प्रासादशिरसोऽपि वा । एवमादीनि संदृष्ट्वा नरः सिद्धिमवाप्नुयात् ९५

अर्थ-ग्रह, नक्षत्र, तारागण, चन्द्रमंडल, सूर्योदय, प्रज्वलित अग्नि, महलके ऊपर चढना, तथा मंदिरके ऊपर चढना इत्यादि अन्य शुभ स्वप्न देखनेसे प्राणीको सिद्धिकी प्राप्ति होती है ।

स्वप्ने तु मादिरापानं वसामांसस्य भक्षणम्।कृमिविष्ठानुलेपं च रुधिरेणाभिषेचनम् ॥ ९६ ॥ भोजनं दधिभक्तस्य श्वेतवस्त्रानुलेपनम्।रत्नान्याभरणादीनि स्वप्ने संदर्शनं शुभम् ॥९७॥

अर्थ-स्वप्नमें मदिराका पीना, वसा (चरवी) मांसका भक्षण करना देहमें कृमि पडजावे तथा सर्व अंगमें विष्ठा लगी प्रतीत हो, तथा रुधिरसे स्नान दहीभातका भोजन, सपेद वस्त्र और सपेद चंदनका लगाना, तथा रत्न, भूषण आदिका देखना शुभ है ।

देवविप्रद्विजच्छत्रतुषपङ्कजपार्थिवान् । शुक्लपुष्पांबरधरांप्रशस्ताभरणाङ्गनाम् ॥ ९८ ॥ वृषभं पर्वतं क्षीरफलवृक्षाधिरोहणम् । दर्पणामिषमाल्याप्तिस्तरणं च महाम्भसा ॥ ९९ ॥ दृष्ट्वा स्वप्नेऽर्थलाभःस्याद्रोगमुक्तिश्च जायते ॥

अर्थ-देवता, ब्राह्मण, (द्विजत्रिवर्ण) छत्र, तुष, कमल, राजा, सपेद पुष्प और सपेद आभूषणके धारण करनेवाली स्त्री, बैल, पर्वत, दूध, फल जिन्में लग रहे ऐसे वृक्षोंपर चढना, दर्पण, मांस और माला इनकी प्राप्ति होना, बडे भारी जलाशयके पार होना, इत्यादि स्वप्नमें देखनेसे धनकी प्राप्ति हो और रोगसे मुक्ति होती है ।

बृहद्यात्रायां वराहः ।

शैलप्रासादनागाश्च वृषभारोहणं हितम् ॥१००॥ चन्द्रतारार्कग्रसनं परिमार्गण एव वा । भूम्यम्बुधीनां ग्रसनं शत्रूणां

---

१ एकप्रकारकी अच्छीमदिराहोतीहै उसका स्वप्नमें पीना शुभहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

च वधक्रिया ॥ १०१ ॥ जयो विवाहद्यूतेषु संग्रामेषु तथा जयः। भक्षणं चैव मांसानां मत्स्यानां पयसस्तथा॥ १०२॥ दर्शनंरुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरस्य च। सुरा रुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य पायसः ॥ १०३ ॥ अत्रैव वेष्टितं भूमौ निर्मलं गगनं तथा। मुखेन दोहनं शस्तं महिषीणां तथा गवाम् ॥ १०४ ॥ सिंहीनां हस्तिनीनां च वडवानां तथैवच। प्रासादो देवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा शुभः ॥ १०५ ॥ अम्भसा त्वभिषेकश्च ज्ञेयं राज्यप्रदं हितत्।

अर्थ–बृहद्यात्राग्रंथमें श्रीवराहमिहिरका वाक्यहै जैसे कि स्वप्नमें पर्वत, मंदिर, हाथी, बैल इनपर चढना। चंद्र, तारागण, और सूर्यको ग्रसना। अथवा स्वप्नमें इनको ढूंढना, पृथ्वी और समुद्रको ग्रसना, शत्रओंका वधकरना, विवाह और जूआ खेलनेमें जीतहोना। तथा लड़ाई वा कुश्तीमें जीत होना। मांस, मछली, और दूधका भक्षण करना, रुधिरका देखना, तथा रुधिरसे स्नान करना, सुरा (दारू), रुधिर, मद्य, दूध, और खीरका भोजन, अथवा इन्हीं दूध खीर आदिसे पृथ्वीमें लिहसजाना, निर्मल आकाशका देखना, मुखमें गौ, भैंस, सिंहिनी, हथनी, घोडी आदिका दूध दूहना। देव, ब्राह्मण, और गुरुओंका मंदिर ये सब स्वप्नमें दीखना शुभहै। तथा स्वप्नमें जल से अभिषेकका देखना राज्य दाता है।

राष्ट्रेभिषेकश्च तथा छेदनं शिरसोऽपि च ॥ १०६ ॥ मरणं वह्निलाभश्च वह्निदाहो गृहादिषु। तथोदकानां तरणं तथा विषमलंघनम् ॥ १०७ ॥ हस्तिनीवडवानां च गवाञ्च प्रसवो गृहे। आरोहणं गजेन्द्राणां रोदनं च तथा शुभम् ॥१०८॥

अर्थ–राज्यमें अभिषेक, मस्तकका काटना, मरण, अग्निका मिलना तथा अग्निसे घरका फुकना, जलाशयोंका तरण, और विषमस्थान (खाई, गड्ढा) आदिका फांदना; हथनी, घोडी, और गौका घरमें व्याहना (अर्थात् बच्चा देना) हाथीपर बैठना तथा स्वप्नमें रुदन करना शुभ है।

परस्त्रीणां तथा लाभस्तथालिंगनमेव च। निगडैर्बन्धनं चैव तथा विष्ठानुलेपनम् ॥ १०९ ॥ जीवानां भूमिपाला-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नांसुहृदामपि दर्शनम्। शुभान्येतानि प्रोक्तानि राज्यलाभकराणि च ॥ ११० ॥

अर्थ-परस्त्रियोंका लाभहोना, तथा परस्त्रियोंका आलिंगन करना हाथपैरोंमें बेडीन्का तथा विष्ठाका देहमें लेप होना, शुभजीव, राजा, और सुहृदोंका दर्शन होना ये संपूर्ण स्वप्न शुभ राज्य लाभकारीहै।

आचारमयूखे।

आरोहणं गोवृषकुञ्जराणां प्रासादशैलाग्रवनस्पतीनाम्।
विष्ठानुलेपो रुदितं मृतं च स्वप्नेष्वगम्यागमनं प्रशस्तम् ॥ १११

अर्थ-स्वप्नमें गौ, बैल, हाथी, मंदिर, पर्वत, वनस्पती (वृक्ष) इनपर चढना, विष्ठाका लेप होना, रुदनकरना, मराहुआ देखना, और अगम्या (भैन, बेटी, आदि) से गमन करना, उत्तम कहाहै।

क्षीरिणं फलिनं वृक्षमेकाकी यः प्ररोहति।
तत्रस्थः स विबुध्येत धनं शीघ्रमवाप्नुयात् ॥ ११२ ॥

अर्थ-दूधवाले फलित वृक्षपर अकेला चढे और उसी जगे यदि जगपरे तो शीघ्र धनकी प्राप्ति होवे।

यस्य श्वेतेन सर्पेण ग्रस्तश्चेद्दक्षिणः करः।
सहस्रलाभस्तस्यस्यादपूर्णे दशमे दिने ॥ ११३ ॥

अर्थ-जिस प्राणीके स्वप्नमें दहने हाथको श्वेत सर्प काटे, उसको दश दिनके भीतर एक सहस्र १००० रुपयोंका लाभ होय।

उरगो वृश्चिको वापि जले ग्रसति यं नरम्।
विजयं चार्थसिद्धिं च पुत्रं तस्य विनिर्दिशेत् ॥ ११४॥

अर्थ-जिस प्राणीको स्वप्नमें जलमें सर्प बिच्छू, डसे उसकी विजय धनकी और पुत्रकी प्राप्ति कहनी चाहिये।

प्रासादस्थस्तु यो भुंक्ते यो वा तरति सागरम्।
अपि दासकुले जातः स राजा नियतं भवेत् ॥ ११५ ॥

अर्थ-जो स्वप्नमें महलपर बैठकर भोजनकरे और जो समुद्रके पार होजाय वह यदि दासकुलमें भी उत्पन्न हुआहो तौभी निश्चय राजा होय।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यस्तु मध्ये तडागस्य भुंक्ते च घृतपायसम् ।
अखण्डे पुष्करे पत्रे तं विद्यात्पृथिवीपतिम् ॥ ११६ ॥

अर्थ–जो प्राणी स्वप्नमें तालावके बीचमें बैठकर साबत कमलके पत्तेपर घृत और खीरका भोजन करे उसको राजा जानना चाहिये। अर्थात् राजा होय।

बलाकां कुक्कुटीं क्रौंचीं दृष्ट्वा यः प्रतिबुध्यति ।
कुलजां लभते चान्यां भार्यां च प्रियवादनीम् ॥ ११७ ॥

अर्थ–जो प्राणी स्वप्नमें बगली, मुरगी, क्रौंची पक्षीको देखकर जगे तो उसको प्रिय बोलनेवाली कुलवान् भार्याकी प्राप्ति होय।

नागपत्रं लभेत्स्वप्ने कर्पूरमगरुं तथा ।
चंदनं पाण्डुरं पुष्पं तस्य श्रीः सर्वतो मुखी ॥११८॥

अर्थ–जिस मनुष्यको स्वप्नमें पान, कपूर, अगर, चंदन, और पीलाफूल मिले उसको धनकी प्राप्ति होय।

क्षीरं पिबति यः स्वप्ने सफेनं दोहने कृते ।
सोमपानं भवेत्तस्य भोक्ता भोगाननेकशः ॥ ११९ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें दुहाहुआ झागसहित दूध पीताहै, उसको यज्ञके सोमपानकी प्राप्तिहो और अनेक भोगोंको भोगे।

दधि दृष्ट्वा भवेत्प्रीतिर्गोधूमांश्च धनागमः ।
यवान्यज्ञागमं विद्याल्लाभः सिद्धार्थकानपि ॥ १२० ॥

अर्थ–स्वप्नमें दही देखनेसे सर्व प्राणियोंको प्रियहोय। गेहूं देखनेसे धनकी प्राप्ति और यव देखनेसे यज्ञका आगम अर्थात् यज्ञ होय और पीलीसरसोंके देखनेसे लाभ होय।

रथं गोवृषसंयुक्तमेकाकी यः प्रारोहति ।
तत्रस्थः स विबुध्येत धनं शीघ्रमवाप्नुयात् ॥१२१॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें बैलजुडे हुए रथमें अकेला बैठता है। और उसी समय नींद खुलजावे तो शीघ्र धनकी प्राप्ति होय।

दधिलाभे भवेदर्थो घृतलाभे ध्रुवं यशः ।
घृतं भक्षेद्ध्रुवं क्लेशो यशस्तु दधिभक्षणे ॥ १२२ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ--स्वप्नमें दहीकी प्राप्ति होनेसे धनकी प्राप्तिहो, घृतके मिलनेसे यश होय स्वप्नमें घृतके खानेसे क्लेश होय, और दही खानेसे यश प्राप्ति होय ।

बृहस्पतिः ।

मानुषस्य तु मांसानि यस्तु स्वप्नेषु भक्षयेत् ।
अपक्वान्येव सर्वाणि शृणु तस्य तु यत्फलम् ॥ १२३ ॥

अर्थ--बृहस्पति लिखतेहैं कि जो मनुष्य स्वप्नमें मनुष्यका अपक्व मांसको भक्षण करताहै, उसके प्रत्येक अंगका मैं फल कहता हूं तू सुन ।

पादं पञ्चशतं लाभः सहस्रं बाहुभक्षणे ।
मस्तकाशनतो राज्यं मंत्रिता हृदयाशनात् ॥ १२४ ॥

अर्थ--पैरके मांस खानेसे ५०० रुपेकी प्राप्तिहो । एवं भुजाके मांस भक्षणसे १००० हजार रुपेकी प्राप्ति, मस्तक भक्षणसे राज्य प्राप्ति, और हृदयके मांसको स्वप्नमें खानेसे मंत्री होय ।

उपानहौ ध्वजं चक्रं लब्ध्वा यस्तु विबुध्यते ।
असिंवा निर्मलं तीक्ष्णामध्वानं तस्य निर्दिशेत् ॥१२५॥

अर्थ--जो मनुष्य स्वप्नमें जूताजोडी, ध्वजा, चक्र, निर्मल और तीक्ष्ण तलवारको प्राप्ति होकर और उसी समय जगपडे तो उसका मार्ग चलना पडेगा ऐसा जानना ।

नावमारोहयेद्यस्तु नदीं वा विपुलां तरेत् ।
प्रवासं नियतं तस्य शीघ्रमागमनं पुनः ॥ १२६ ॥

अर्थ -जो मनुष्य स्वप्नमें नौकापर बैठ बडीभारी नदीको तरताहै । वह अवश्य प्रदेशको जायगा और उसजगसे शीघ्र आगमन होय ।

पीताम्बरधरानारी पीतमाल्यानुलेपना ।
अवगूहति यं स्वप्ने कल्याणं लभते हि सः ॥ १२७ ॥

अर्थ--जो मनुष्य स्वप्नमें पीलेवस्त्र और पीले चंदन फूलमालाके धारण करनेवाली स्त्रीका आलिङ्गन करना देखे तो वो कल्याणको प्राप्त होताहै ।

श्वेताम्बरधरानारी श्वेतमाल्यानुलेपना ।
अवगूहति यं स्वप्ने तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥ १२८ ॥

अर्थ--उसीप्रकार सपेदवस्त्र सपेद चंदन तथा सपेद फूल मालाके धारण

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करनेवाली स्त्री जिसको स्वप्नमें आलिंगन करे. उसको चारोंतरफसे लक्ष्मी-का आगमन होय।

सर्वाणि शुक्लान्यति शोभनानि कार्पासभस्मौदनतक्रवर्ज्यम्।
सर्वाणि कृष्णान्यतिनिन्दितानि गोहस्तिदेवद्विजवाजिवर्ज्यम्।

अर्थ-स्वप्नमें-कपास, भस्म (राख), भात, और छाछको त्यागकर संपूर्ण सपेद वस्तू शुभकारी है। और गौ, हाथी, देव, ब्राह्मण, और घोडा इनको परित्याग कर संपूर्ण कृष्णवस्तू स्वप्नमें दीखना अशुभ है।

देवा द्विजास्तथा गावः पितरो लिङ्गिनो नृपाः।
यद्वदन्ति नरं स्वप्ने तत्तथैव भवेद्ध्रुवम् ॥ १२९ ॥

अर्थ-देव, ब्राह्मण, गौ, पितर, विरक्त पुरुष, और राजा ये स्वप्नमें जो बात कहे वो उसी प्रकार होय, इसमें संदेह नहीं।

आसने शयने याने शरीरे वाहनेऽपि वा।
ज्वलमाने विबुध्येत तस्य श्रीः सर्वतो मुखी ॥ १३० ॥

अर्थ-जो मनुष्य आसन, शय्यापर, सवारीमें, देहमें, और वाहन (घोडा, हाथी आदि) के अपनेको पजरता देखे और उसी वखत जगपरे तो उसको चारोंतरफसें लक्ष्मीकी प्राप्ति होय।

वडवां कुक्कुटीं दोलां लब्ध्वा यस्तु विबुध्यते।
सकामां लभते भार्यां सुभगां प्रियवादनीम् ॥ १३१ ॥

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्नमें घोडी, मुरगी, और हिंडोला इनको प्राप्तहो जग परे तो वह सकामा और प्रिय बोलनेवाली ऐसी स्त्रीको प्राप्त होवे।

निगडैर्बध्यते यस्तु पाशैर्वा बध्यते भृशम्।
सुपुत्रो जायते तस्य सुप्रतिष्ठां च विंदति ॥ १३२ ॥

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्नमें बेडी और फाँसोंसे बँधजावे उसके सुन्दर पुत्र होय और उत्तम प्रतिष्ठाको प्राप्त, होताहै।

पराशरसंहितायाम्।

स्वाङ्गप्रज्वलनं परोपशमनं शक्रध्वजालिंगकृत्संयुक्तोऽपि नरैर्विपत्यच विपत्प्रक्षेपणं दिक्षु च। बद्धो वा निगडै-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ग्रसेच्चदहनं नारीक्षितो बाहुना छत्रं वा द्विरदादिरोहणविधौ-
दिव्योऽपि च ब्राह्मणः ॥ १३३ ॥

अर्थ–पराशरसंहितामें लिखा है कि, स्वप्नमें अपने अंगोंका फुकता देखना शत्रुको जीतना, बिजलीको छूना, विपत्यमेंभी विपत्यका पडना दिशाओंमें फिकना, पैरोंमें बेडी परना, अग्निको ग्रसना, भुजाओंसे शत्रुदमन, छत्र और हाथीपर बैठना तथा दिव्य ब्राह्मणका दर्शन होना ।

दिनकरशशितारा भक्षणस्पर्शनानि विशरणमपिमूर्ध्नः सप्तपं-
चत्रिधा वा । वृषभग्रहनरेन्द्रश्वेतसिंहाधिरोहाग्रसनमुदधि-
भूमौ भूमिराज्यप्रदानि ॥ १३४ ॥

अर्थ–सूर्य, चंद्र, तारागणोंका भक्षण करना, मस्तकके सात, पांच अथवा तीन टूक होना । बैल, घर, राजा इनका दर्शन । सपेद सिंहानपर बैठना तथा समुद्र और पृथ्वीको ग्रस लेना इत्यादि स्वप्न पृथ्वीके राज्यदाता हैं ।

विपुलरणविमर्दद्यूतवादैर्जयश्च पशुमृगमनुजानां लब्धिरध्या-
सनं वा ॥ विवसनपरिलेपोगम्यनारीगमो वा स्वमरणशिखि-
लाभःसस्यसंदर्शनं च ॥ १३५ ॥

अर्थ–स्वप्नमें बडाभारी रण जूआ और वादमें जीत होना, तथा पशु, मृग और मनुष्योंकी प्राप्ति तथा सिंहासनकी प्राप्ति दिव्यवस्त्रोंका और चंदनादिका पहरना लगाना एवं अगम्यास्त्रीसे गमन, अपना मरण देखना. अग्निकी प्राप्ति और हरीहरीघासका देखना ।

सितसुरभिमनोज्ञालेपमाल्यांबराणांद्विजसुरगुरुराज्ञां दर्शनं
ह्याशिषश्च । मणिरजतसुवर्णाम्भोजपात्रेषुभुंक्ते घृतदधिपर-
मान्नं सर्वमेतच्छुभञ्च ॥ १३६ ॥

अर्थ–सुंदर सुगंधित सपेद चंदन आदिका लेप और फूलमाला तथा वस्त्रका धारण करना, ब्राह्मण देवता राजा इनका दर्शन होना, तथा आशीर्वाद देना, तथा मणि, चांदी, सुवर्ण, और कमल आदिके पात्रमें घी, दही, खीरका भोजन इत्यादि स्वप्न देखना शुभ है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निष्फल स्वप्न ।

यथास्वं प्रकृतिस्वप्नो विस्मृतो विहतश्च यः ।
चिन्ताकृतो दिवा दृष्टो भवन्त्यफलदास्तु ते ॥१३७॥

अर्थ–यथा प्रकृतिके अनुसार अर्थात् जैसी जिसकी वातपित्तादिक प्रकृति ऐसा स्वप्न और जो स्वप्न देखा हो उसकी याद भुलगई हो, और जो विहित हो (अर्थात् प्रथम दुष्ट स्वप्न देखे फिर उसके पिछाडी शुभ स्वप्न देखे) और जो चिंतवन कराहुआ तथा दिनका देखा ये स्वप्न निष्फल हैं ।

तथाच ।

आयुस्तृतीयभागे शेषे पतितः प्रकीर्तितः स्वप्नः ।
अतिहासशोककोपोत्साहजुगुप्साभयाद्व्रणोत्पन्नः॥१३८॥
वितथः क्षुधापिपासामूत्रपुरीषोद्भवः स्वप्नः ।

अर्थ–अत्यंत वृद्धावस्थाका स्वप्न, अत्यंत हास्य, शोक, कोप, उत्साह, निंदा, भय इन कारणोंसे तथा जो भूख, प्यास और मूत्र, मलकी बाधामें स्वप्न दीखे वो निष्फलहै ।

प्रकृतिजन्यस्वप्न ।

वाताधिकेऽभ्रं भ्रमतिर्विपश्येत्कृष्णानि वर्णानि प्रचंडवातम् ।
पित्ताधिके काञ्चनरत्नमाल्यदिवाकराग्निज्वलनानिपश्येत्॥१३९॥
श्लेष्माधिकश्चन्द्रभशुक्लपुष्पसरित्सरोम्भोनिधिलंघनानि ।
काले मरुत्पित्तकफप्रकोपः साधारणं स्याद्बलसन्निपातात्१४०

अर्थ–जिस प्राणीकी वातप्रकृति होतीहै वो आकाशमें भ्रमण करे तथा काले रंगके पदार्थोंको देखे तथा प्रचंड पवन (आंधी)को देखताहै । पित्ताधिक प्रकृतिवाला मनुष्य सुवर्ण और रत्नोंकी माला, सूर्य, अग्नि और प्रकाशवान् पदार्थ (बिजली आदिको) देखे । कफाधिक प्रकृतिवाला मनुष्य चन्द्रमाके तुल्य सपेद पुष्प, सरोवर, नदी, समुद्रको तरना इत्यादि स्वप्न देखे और मिश्रित प्रकृतिवाले मनुष्य मिश्रित स्वप्नको देखतेहैं ।

स्वप्नस्य प्रहरपरत्वेन फलम् ।

स्वप्ने तु प्रथमे यामे संवत्सरविपाकिनः । द्वितीये चाष्टाभिर्मासैस्त्रिभिर्मासैस्तृतीयके ॥ १४१ ॥ चतुर्थयामे यःस्वप्नो

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मासेन फलदः स्मृतः । अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलं भवेत् ॥ १४२ ॥ गोविसर्जनवेलायां सद्य एव फलं भवेत १४३

अर्थ--रात्रिके प्रथम प्रहरका देखाहुआ स्वप्न १ वर्षमें फल देताहै । दूसरे प्रहरका स्वप्न आठ महिनेमें फलदेय । तीसरे प्रहरका स्वप्न तीन महिनेमें और रात्रिके चतुर्थ प्रहरमें देखाहुआ स्वप्न १ माहिनेमें अपना शुभाशुभ फल-करे । और जो अरुणोदय (भाकफाटे) स्वप्न देखाहो वह दशदिनमें फल-करे । उसीप्रकार गौ छोडनेके समय जो स्वप्न देखा हुआ स्वप्न तत्काल शुभाशुभ फल देताहै । परंतु जो मनुष्य जिस समय जागताहै उसको उसी समयका देखाहुआ स्वप्न शुभाशुभ फल देताहै ।

स्वप्नदर्शनविधिः ।

दुकूलमुक्तामणिभिर्नरेन्द्राः सामंतदैवज्ञपुरोहिताश्च । तद्देव-तागारमनुप्रविश्य प्रवेशतस्तत्र दिगीश्वरं च॥१४४॥अभ्य-र्च्य मंत्रैस्तु पुरोहितस्तु संयम्य तस्यां भुवि संयतात्मा । ब्राह्मीशपूर्वामथ भागपुष्पं कृत्वोपधानं शिरसि क्षितीशः । तथैकभुग्दक्षिणपार्श्वशायी स्वप्नं परीक्षेत यथोपदेशम्॥१४५॥

अर्थ--अब स्वप्न देखनेकी विधि कहतेहैं।कि राजा-वस्त्र, मोती, मणिकोले और सामंत (सूबेदार) ज्योतिषी,पुरोहित इनको साथले देवताके मंदिरमें जाय और उसजगे गंध पुष्प धूप दीप नैवेद्य तथा वस्त्र रत्नादिकसे मंत्रपाठपूर्वक इष्ट देवका पूजन करे।फिर उस राजाका पुरोहित इन्द्रियोंको जीत उसी मंदिर के पूर्वकी ओर अथवा ईशानकी ओर विस्तराकरकै और पुष्पोंको तथा सुगं-धित वस्तुको अपने सिराने घरके सोवे उसी प्रकार स्वयं राजा एकवार भो-जन करे और दहनी करवट सोवे इसप्रकार यथोपदेश उस मंदिरमें स्वप्नकी परीक्षा करे ।

शयनकेसमयजपनीयमन्त्र ।

नमः शम्भो त्रिनेत्राय रुद्राय वरदाय च । वामनाय वि-रूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥ १४६ ॥ भगवन् देवदेवे-श शूलभृद्वृषवाहन ॥ इष्टानिष्टे ममाचक्ष्व स्वप्ने सुप्तस्य सांत्वतः ॥ १४७ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–जिस समय मंदिरमें सोवे उस समय " नमःशंभो त्रिनेत्राय " इस मंत्रको जपे इसका यह अर्थहै कि त्रिनेत्र, रुद्र, वरद, वामन, विरूप, स्वप्नाधिपके अर्थ नमस्कारहै हेभगवन् ! हेदेवदेवेश ! हेशूलके धारणकर्त्ता! हेवृषवाहन ! निद्रामें मुझको निरंतर इष्ट और अनिष्ट भवितव्यको कहो ।

एकवस्त्रः कुशास्तीर्णे सुप्तः प्रयतमानसः ।
निशान्ते पश्यते स्वप्नं शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥१४८॥

अर्थ–स्वप्नदेखनेकी इच्छा वाला पुरुष एकवस्त्रको धारणकर कुशाके आसनपर मनको एकाग्रकर शयनकरे इसप्रकार करनेसे इसप्राणीको रात्रिके अंतमें जैसा कुछ शुभाशुभ भवितव्यहो ऐसा स्वप्नदीखे ।

एतत्पवित्रं परमं पुण्यदं पापनाशनम् ।
यः पठेत्प्रातरुत्थाय दुःस्वप्नं तस्य नश्यति ॥१४९॥

अर्थ–परम पवित्र पुण्यदायक और पापनाशक इस स्वप्नप्रकाशिका ग्रंथको प्रातःकालउठकर जो पाठ करताहै उसप्राणीका दुःस्वप्न देखाहुआ नष्टहो और शुभफलकी प्राप्तिहो ।

इति श्रीआयुर्वे० मायुरकृष्णलालात्मजेन दत्तरामेण निर्मिता स्वप्नप्रकाशिका नाम त्रयस्त्रिंशस्तरङ्गः ॥ ३३ ॥

समाप्तेयं स्वप्नप्रकाशिका ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इति
स्वप्नप्रकाशिका समाप्ता ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

श्रीशंवन्दे

श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ।

अथ नाडीदर्पणप्रारम्भः ।

मङ्गलाचरणम् ।

श्रीमंतं जगदीश्वरं गदगदाधारञ्च धन्वन्तरि-
मम्बां श्रीजगदम्बिकाप्रतिकृतिं श्रीकृष्णलालाभिधम् ।
तातं कृष्णपरावतारमहिमं नत्वा मुहुः संयतः
श्रीकृष्णांघ्रिसरोरुहद्वयसुधाधारामिलिंदायितः ॥ १ ॥
श्रीमन्माथुरमण्डलाभिजननः श्रीदत्तरामाभिधो
दृष्ट्वा तन्त्रसमूहमूहविधयाऽऽलोड्य स्वयं यत्नतः ।
बालानां सुखहेतवे मतिमतामानन्दसंप्राप्तये
नाडीदर्पणनामधेयकमिमं ग्रन्थं करोम्यादरात्॥२॥युग्मम्॥

अर्थ–श्रीमान् जगदीश्वर रोग और आरोग्यके आधार ऐसे श्रीधन्वन्तरि भगवान् तथा जगन्माता (लक्ष्मी) के तुल्य रमा नामक अपनी माताको तथा कृष्णका परावतार ऐसे श्रीकृष्णलाल (कन्हैयालाल) नामक अपने पिताको वारंवार यत्नपूर्वक नमस्कारकर श्रीकृष्णचरणकमलयुगलामृत धाराको पानकरता भ्रमर और श्रीमधुपुरीमंडल अथवा माथुरद्विज (चौबे) नको मंडल कहिये समूह तामें निवासी जाकों, अथवा जन्म जाको ऐसाजो दत्तराम संज्ञक मैं सो अनेक शास्त्रसमूहको देख और स्वयंविधिपूर्वक यत्नसे मथनकर बालकोंके सुखकेलिये और पंडितोंके आनंदकी प्राप्तिकेअर्थ इस नाडीदर्पण नामकग्रंथको परमआदरसे करताहूं। यहग्रंथ यथानाम तथा गुणोंमेंभी है अर्थात् जैसे दर्पणसे इसप्राणीके संपूर्ण गुणदोष प्रगटहोतेहैं उसी प्रकार इसग्रंथसे नाडियोंके संपूर्ण गुणदोष उत्तम रीतिसे प्रगटहोतेहैं।

वाग्भटः ।

रोगमादौ परीक्षेत तदनन्तरमौषधम् ॥
ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ ३ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–वागभटग्रंथमें लिखाहै वैद्यको उचितहै कि, प्रथम रोगकी परीक्षा करे रोगजाननेके अनंतर औषधकी परीक्षा करे रोग और औषध दोनों जाननेके पश्चात् ज्ञानपूर्वक अर्थात् सावधानीकेसाथ चिकित्साकरे यानी औषध देवे।

लक्षयित्वा देशकालौ ज्ञात्वा रोगबलाबलम् ।
चिकित्सामारभेद्वैद्यो यशः कीर्तिमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

अर्थ–देश और कालका लक्ष करके और रोगको बली और निर्बलित्व जानके जो वैद्य चिकित्साका प्रारम्भ करताहै वह यश और कीर्त्तीको पाताहै।

रुग्णावस्थां ततो तार्डीं भेषजं पथ्यमेव च ।
देशं कालञ्च पात्रञ्च यो जानाति स वैद्यराट् ॥ ५ ॥

अर्थ–जो रोगीकी अवस्था, नाडी,औषध; पथ्य, देश, काल, और पात्रको जानताहै। उसको वैद्यराज कहतेहैं।

रोगोंके आठस्थान ।

रोगाक्रान्तशरीरस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत् ।
नाडीं मूत्रं मलं जिह्वां शब्दस्पर्शदृगाकृतिम् ॥ ६ ॥

अर्थ–वैद्य रोगीमनुष्यके आठ स्थानोंकी परीक्षाकरे, जैसेकि नाडी परीक्षा, मूत्रपरीक्षा, मलपरीक्षा, जिह्वापरीक्षा, शब्दपरीक्षा, स्पर्शपरीक्षा, नेत्रपरीक्षा, आर रोगीकी आकृतिकी परीक्षा ।

नानाशास्त्रविहीनानां वैद्यानामल्पमेधसाम् ॥
नाड्याद्यष्टपरीक्षाश्च सुखार्थं प्रभवन्ति हि ॥ ७ ॥

अर्थ–अनेक शास्त्र पढनेकरके रहित अल्प बुद्धि वैद्योंके लिये यह नाडी आदि अष्टविधपरीक्षा सुखके अर्थ होवेगी ।

आद्यं तावन्नाडिकाविज्ञानादेव वातपित्तकफजनितानामातङ्कानां साध्यासाध्यकष्टसाध्यसभेदकविज्ञानं सुकरत्वेन भिषग्भिरवाप्यतेऽतएव तावन्निरूप्यते ॥ ८ ॥

अर्थ–तहां प्रथम वैद्योंको नाडीके देखनेसे ही वात, पित्त और कफजनित रोगोंका साध्यासाध्य और कष्टसाध्य सभेदविज्ञान सहजमें प्राप्त होसक्ताहै; अतएव प्रथम उसी नाडीपरिक्षाका वर्णन करतेहैं । प्रथम नाडीदेखनेकी आवश्यकता दिखातेहैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नाडीज्ञानकी आवश्यकता।

नाडीज्ञानं विना वैद्यो न लोके पूज्यतां व्रजेत् ॥
अतश्चातिप्रयत्नेन शिक्षयेद्बुद्धिमान्नरः ॥ ९ ॥

अर्थ–नाडीज्ञानके विना वैद्य संसारमें पूज्य (माननीय) नहीं होता अतएव बुद्धिवान् मनुष्यको उचितहै कि नाडीज्ञानको सद्गुरुसे अति यत्नपूर्वक सीखे अर्थात् नाडी देखनेका अनुभव करे।

बोधहीनं यथा शास्त्रं भोजनं लवणं विना ॥
पतिहीना यथा नारी तथा नाडीं विना भिषक् ॥ १०॥

अर्थ–जैसे बोधविना शास्त्रपढनेकी शोभा नहीं, विना लवण भोजनके पदार्थ प्रियनहीं, और पतिके विना स्त्रीकी शोभा नहीं, उसीप्रकार नाडी ज्ञानके विना वैद्यकी शोभा नहींहै।

नाडीजिह्वार्त्तवादीनां लक्षणं यो न विन्दति।
मारयत्याशु वै जन्तून्स वैद्यो न च शोभनः ॥ ११ ॥

अर्थ–जो नाडीपरिक्षा, जिह्वापरीक्षा, और स्त्रीके आर्त्तवकी परीक्षा नहीं जाने वह मूढवैद्य तत्काल रोगियोंको मारताहै, इसीकारण ऐसा मूढवैद्य उत्तम नहींहै।

आदौ सर्वेषु रोगेषु नाडीजिह्वाग्रनेत्रकम् ॥
मूत्रार्त्तवं परीक्षेत पश्चाद्रुग्णं चिकित्सयेत् ॥ १२ ॥

अर्थ–वैद्य प्रथम संपूर्ण रोगोंमें नाडी, जिह्वा, नेत्र, मूत्र और आर्त्तवकी परीक्षा कर फिर रोगीकी चिकित्सा करे।

नाडीज्ञानं विना यो वै चिकित्सांकुरुते भिषक्।
स नैव लभते लक्ष्मीं न च धर्मं न वै यशः ॥ १३ ॥

अर्थ–जो वैद्य विना नाडीपरीक्षाके जाने चिकित्सा करताहै वह धन-धर्म, और यशको नहीं प्राप्तहोता परंच उसको अपयशकी प्राप्ती और मूर्ख कहलाताहै।

नाड्या मूत्रस्य जिह्वायाः कुरु पूर्वं परीक्षणम् ॥
औषधं देहितज्ज्ञाने वैद्य रुग्णसुखावहम् ॥ १४ ॥

अर्थ–हेवैद्य! प्रथम नाडी, मूत्र, और जिह्वाका परीक्षण कर जब नाडी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मूत्र और जिह्वाको परीक्षाद्वारा रोगका निश्चय करलेवे तब रोगीको सुख-, कारी औषधी दे ।

यथा वीणागता तन्त्री सर्वान्रागान्प्रभाषते ॥
तथा हस्तगता नाडी सर्वान्रोगान्प्रकाशते ॥ १५ ॥

अर्थ–जैसे वीणाकी तार संपूर्ण रागोंको सूचना करतीहै, उसी प्रकार हाथकी नाडी सर्वरोगोंको प्रकाशित करतीहै इस श्लोकका तात्पर्य यह है वीणाका तारभी जो बजाने वालेहैं उन्हीको उस तारके रागकी प्रतीत होतीहै उसी प्रकार हाथकी नाडीभी जो नाडीके जानने वालेहैं उन्हींको रोगप्रकाशित करतीहै जैसे मूर्खके वास्ते तारद्वारा राग नहींमालूमहो उसीप्रकार मूर्खवैद्यको नाडीदेखना निष्प्रयोजनहै ।

नाडीलक्षणमज्ञात्वा निदानग्रन्थवाक्यतः ॥
चिकित्सामारभेद्यस्तु स मूढ इति कीर्त्यते ॥ १६ ॥

अर्थ–जो वैद्य नाडीके लक्षण विना जाने केवल निदानग्रंथके वाक्योंसे रोगपरीक्षा कर चिकित्सा करताहै वह मूढ (मूर्ख) ऐसा कहलाताहै ।

निदानपञ्चकादीनांलक्षणं वैद्यसत्तमः ॥
नाडींतु संवलीकृत्य चिकित्सामाचरेत्खलु ॥ १७ ॥

अर्थ–इसीकारण उत्तमवैद्य निदानपंचकादिके लक्षण जानके और उनमें नाडीके लक्षणभी मिश्रित (सामिल) करके चिकित्साका प्रारंभ करे ।

कियत्स्वापि च चिह्नेषु ज्ञातेष्वपि चिकित्सितम् ॥
निष्फलं जायते तस्मादेतच्छृण्वेकचेतसा ॥ १८ ॥

अर्थ–अब कहतेहैं कि बहुतसे चिह्ने जानने परभी चिकित्सा निष्फल होजातीहै, अतएव इसनाडी दर्पणग्रंथमें जो कहा जाताहै उसके हे वैद्य ! तूं एकाग्र चित्तसे सुन ।

तत्रादौ प्रोच्यते नाडीपरीक्षातिप्रयत्नतः ॥
नानातन्त्रानुसारेण भिषगानन्ददायिनी ॥ १९ ॥

अर्थ–तहां प्रथम अनेक ग्रंथोंके अनुसार वैद्योंको आनंददायिनी यत्नपूर्वक नाडीपरिक्षा कहतेहैं ।

क्वचिद्ग्रन्थानुसंधानादेशकालविभागतः ॥
क्वचित्प्रकरणाच्चापि नाडीज्ञानंभवेदपि ॥ २० ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ– अब नाडीज्ञानकी परिपाटी कहतेहैं कि,कहींतो नाडीज्ञान ग्रंथ पढनेसे होताहै, कहीं देश कालके जाननेसे और कहीं प्रकरण वशसे नाडीका ज्ञान होता है. तात्पर्य यहहै कि, वैद्य केवल ग्रंथकेही भरोसे न रहै, किंतु कुछ अपनीभी बुद्धिसे विचारे यह कौन स्थानहै, कौनसा कालहै, और ये रोगी क्या आहार विहार करके आयाहै, इसप्रकार अच्छी रीतिसे विचारकर नाडीको कहे।

सद्गुरोरुपदेशाच्च देवतानां प्रसादतः ॥
नाडीपरिचयः सम्यक् प्रायः पुण्येन जायते ॥ २१ ॥

अर्थ–अब नाडीज्ञानकी उत्कृष्टता दिखातेहैं कि,सद्गुरु अर्थात् सद्वैद्यके बतानेसे और देवताओंकी प्रसन्नतासे तथा पूर्वजन्मके पुण्यकरके नाडीपरिचय होताहै, किंतु अपनेआप पढनेसे और विनादेवकृपाके तथा अधर्मी नास्तिकको नाडी देखनेका ज्ञान नहीं होताहै, अतएव जिसको नाडीज्ञानकी आवश्यकता होवे वो सद्गुरु और देवसेवा तथा धर्ममें तत्पर होय।

नाडीपरिचयो लोके न च कुत्रापि दृश्यते ॥
तेन यत्कथ्यते चात्र तत्समाधेयमुत्तमैः ॥ २२ ॥

अर्थ--नाडीका परिचय अर्थात् नाडीदेखनेका ज्ञान इससंसारमें कहीं नहीं दीखता इसीकारण जो इसग्रंथमें कहाजाताहै वो उत्तमपुरुषोंको अवश्य जानना चाहिये।

परीक्षणीयाः सततं नाडीनां गतयः पृथक् ॥
न चाध्ययनमात्रेण नाडीज्ञानं भवेदिह ॥ २६ ॥

अर्थ–वैद्यको उचितहै कि, निरंतर नाडीकी गतिकी परीक्षा कराकरे क्योंकि केवल पढनेहीसे नाडीका ज्ञान नहीं होता।

न शास्त्रपठनाद्वापि न बहुश्रुतकारणम् ॥
नाडीज्ञाने मनुष्याणामभ्यासः कारणं परम् ॥ २४ ॥

अर्थ–नाडीके ज्ञानमें शास्त्रपढनेसे अथवा बहुतनाडीसंबंधी वार्त्ताओंके सुननेसे नाडीका ज्ञान नहीं होता, किंतु नाडीज्ञानमें मनुष्योंको केवल अभ्यासही परम कारणहै इस्से अभ्यासकरे।

नाडीगतिमिमां ज्ञातुं योगाभ्यासवदेकतः ॥
शक्यते नान्यथा वैद्य उपायैः कोटिशैरपि ॥ २५ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ--वैद्यको इस नाडीकी गति जाननेमें समर्थहोना केवल योगाभ्यासके सदृश नाडीदेखनेके अभ्याससेही होसकता है, अन्य करोडों उपायोंसेभी नाडीज्ञान नहीं होता ।

जलस्थलनभश्चारिजीवानांगतिभिःसह ॥
गतयो ह्युपमीयन्ते नाडीनां भिन्नलक्षणाः ॥ २६ ॥

अर्थ--जल, स्थल, और आकाशमें विचरने वाले जीवोंकी गति (चाल) करके भिन्नलक्षणा नाडियोंकी गति अनुमान करीजातीहै अर्थात् जलचर जीव (जोंक, मेंडक आदि) स्थलचरजीव (सर्प, हंस, मोर आदि) और आकाश चारीजीव (लवा, बटेर आदि, ये जैसे चलतेहैं इनके सदृश नाडी चलतीहै, इनमें जिस दोषकी जैसी चाल नाडीकी लिखीहै उसको उसी प्रकारकी देखकर वैद्य नाडीको वातापित्तादिककी नाडी बतावे, अन्यथा नाडीका ज्ञानहोना कठिनहै ।

कस्य कीदृग्गतिस्तत्र विज्ञातव्या विचक्षणैः ॥
अध्येतव्यं च तच्छास्त्रं सद्गुरोर्ज्ञानशालिनः ॥ २७ ॥

अर्थ--वैद्यहोनेवाले प्राणीको उचितहै कि, उत्तम ज्ञानवान् शास्त्रके ज्ञाता गुरूसे किस जीवकी कैसी गतिहै इसको सीखे और जो इसनाडी विषयके ग्रंथहैं उनको पढे, किसी जगे हमने ऐसा लिखा देखाहै कि, दशवर्षतो वैद्यकके ग्रंथ पढे और गुरूके आगे अनुभव (आजमायस) करे, क्योंकि यह विद्या पढनेका समय बहुत उत्तमहै, इस समय ग्रंथ और रोगी दोनों उपस्थितहैं जो ग्रंथमें पढे उसको गुरूके आगे रोगीपर परीक्षा करे, यदि जो बात समझमें न आवे तो उसको उसीसमय गुरूसे पूछलेय तो संदेह निवृत्तहो जावे, फिर दशवर्ष वनमें रहकर वनवासियोंसे अर्थात् माली, काछी, भील, ग्वारिया आदिसे औषधका नाम और उसके गुण तथा परीक्षा सीखे तब इसको वैद्यक करनेका अधिकार होताहै ।

कल्याणमपि वारिष्टं स्फुटं नाडीप्रकाशयेत् ॥
रुजां कालिकवैशिष्ट्याद्भवेत्सापि विलक्षणा ॥ २८ ॥

अर्थ--कल्याण (शुभ) और अरिष्ट (अशुभ) इन दोनोंको नाडी प्रत्यक्ष प्रकाशित करेहै । तथा कालके वैशिष्ट्य करके रोगके समय नाडी विलक्षण होजातीहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यल्लक्षणा तु नैरुज्ये नोदितायांतथा रुजि ॥
वयः कालरुजां भेदैर्भिन्नभावं विभर्त्ति सा ॥ २९ ॥

अर्थ–जैसी आरोग्य पुरुषकी नाडी होतीहै ऐसी रोगावस्थामें नहीं रहती इसका यह कारणहै कि अवस्था, काल, और रोगोंके भेदकरके नाडी भिन्न भावको धारण करतीहै। अर्थात् विपरीतता ग्रहण करतीहै।

तदवस्थामतः प्राज्ञः सर्वथा सार्वकालिकीम् ।
ज्ञातुं यतेत मतिमान्लक्षणैः सुसमाहितः ॥ ३० ॥

अर्थ–इसीसे चतुर वैद्यको उचितहै कि, उस नाडीके सर्वकालकी सदैव लक्षणोंके जाननेका यत्न सावधानता पूर्वक करता रहै।

नाडीके स्पंदनकाकारण।

परिव्याप्याखिलं कायं धमन्यो हृदयाश्रयाः। वहन्त्यःशोणितस्रोतः शरीरं पोषयन्ति ताः ॥ ३१ ॥ हृदयाकुञ्चनाद्रक्तं कियदुत्क्षुत्य धामनीम्। तत्सञ्चितं तदुत्थञ्च प्रविश्य चापरास्वपि ॥ ३२ ॥ व्रजित्वा निखिलं देहं ततो विशति फुप्फुसम् । फुप्फुसाद्धृदयं याति क्रियैवं स्यात्पुनः पुनः ॥ ३३ ॥ रुधिरोत्प्लववेगेन धमनी स्पन्दते मुहुः। उत्प्लवप्रकृतेर्भेदाद्भेदः स्यात्स्पन्दनस्य च ॥ ३४ ॥ स्थौल्यादिकंधमन्याश्च तत्प्रकृत्यैव जायते। तत्प्रकारान्समासेन ब्रुवे वत्स निशामय ॥ ३५ ॥

अर्थ–अब नाडीके चलनेका कारण कहतेहैं कि,हृदयके आश्रित धमनी नाडी संपूर्णदेहमें व्याप्तहो रुधिरको स्रोतके द्वारा वहन करतीहै। उसी रुधिरके बहनेसे शरीरको पोषण करतीहै। उन संपूर्ण धमनी नाडियोंका आश्रय हृदयस्थ रक्ताधार यंत्रहै, रक्ताधार यह एक स्थूलमांसनलिका ऊपरकी तरफ कुछ उठीहुईहै। यह नली समुदाय धमनी नाडीका मूलभागहै। इसी स्था-

---

१ (वयःकालरुजाभेदैः) इस लिखनेका यह प्रयोजनहै कि जैसी नाडी बाल्य अवस्थामें होतीहै ऐसी यौवन अवस्थामें नहीं और जैसी यौवन अवस्थामें होतीहै ऐसी वृद्धावस्थामें नहीं होती इसीप्रकार प्रातःकाल मध्याह्न और सायंकालमें पृथक् पृथक् भावसे चलतीहै तथा प्रत्येक रोगोंमें नाडीकी गति विलक्षण होतीहै अर्थात् जैसी ज्वरवान्की नाडी होतीहै ऐसी अतिसारवान्की नहीं होती और जैसी अतिसारीकी होतीहै ऐसी ग्रहणीरोगवालेकी नहींहो इत्यादि।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नसे धमनी नाडियोंकी अनेक शाखा प्रशाखा निकलीहैं ये संपूर्ण देहमें व्याप्तहैं । इस समस्त सूक्ष्म नलाकृति मांसनलीका नाम धमनी है धमनी मार्गसे हृदयका संचित रुधिर सकलदेहमें परिभ्रमण करके देहका पोषण करता है ।

हृदययंत्र स्वभावसेही सदैव खुलता मुदता रहताहै, जैसे भिस्तीकी सछिद्र जलपूर्ण मसकको ऊपरसे दाबनेसे उस मुसकके भीतरका जल जैसे छिद्रमें होकर बडेवेगसे निकलताहै उसीप्रकार हृदयके मुदनेसे हृदयस्थ रुधिरका कितनाहीं अंश उछलकर तत्संलग्न स्थूल धमनीमें प्रवेश करेहै । यह आकुंचन अर्थात् हृदयका मुदना जितनी देरमें होताहै उतने कालमें वह उत्प्लुत रुधिर धमनियोंके द्वारा समस्त देहमें परिभ्रमण करके फुप्फुसमें जायकर प्राप्त होताहै, फुप्फुससे फिर दूसरीबार हृदयमें आताहै और उसी-प्रकार जाता है, जीतेहुए देहमें इसीप्रकार यह क्रिया एक नियमके साथ वारंवार होती रहतीहै, इस रुधिरके उत्प्लुव (उछलने) से संपूर्ण धमनी स्प-न्दन कहिये फडकतीहै । रुधिर हृदयमेंसे वारंवार उछलकर धमनीके छिद्र-में प्रवेश होकर वेगके साथ चलताहै, इसी कारण धमनी नाडी भी वारंवार तडफतीहै । यह रुधिरके उत्प्लुव प्रकृति भेदसे धमनीके तडफमें भेद होताहै [अर्थात् यदि रुधिर मंदवेगसे उछले तो नाडी मंद प्रतीत होतीहै, और रुधिर शीघ्र उछले तो नाडीभी शीघ्र चारिणी होतीहै] एवं रुधिरके स्वभा-वानुसार नाडीमें स्थूलता, सूक्ष्मता और कठिनत्वादि धर्म उत्पन्न होतेहैं । अब जो जो अवस्था नाडीसे जैसे जैसे लक्षण होतेहैं उन सबको मैं आगे कहताहूं ।

नाडीके नाम ।

हिंस्रा स्नायुर्वसा नाडी धमनी धामनी धरा ।
तन्तुकी जीवितज्ञाच शिरा पर्यायवाचकाः ॥ ३६ ॥

अर्थ–हिंस्रा, स्नायु, वसा, नाडी, धमनी, धामनी, धरा, तंतुकी, जीवितज्ञा और शिरा, ये नाडीके पर्यायवाचक शब्द हैं, अर्थात् ये नाडीके नामांतरहै ।

नाडीके भेद ।

तत्र कायनाडी त्रिविधा । एका वायुवहा । अन्या मूत्रविडस्थिरसवाहिनी । अपरा आहारवाहिनीति ॥ ३७ ॥

अर्थ–तहाँ देहकी नाडी तीन प्रकारकीहै, एक पवनको बहतीहै दूसरी मल, मत्र, हड्डी और रसको बहतीहै तीसरी आहारको बहती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कन्दमध्ये स्थितानाडी सुषुम्नेति प्रकीर्त्तिता।
तिष्ठन्ते परितः सर्वाश्चक्रेस्मिन्नाडिकास्ततः ॥ ४८ ॥

अर्थ–नाभीके मध्यमें सुषुम्ना नाडी स्थितहै, इसी नाभिचक्र और सुषुम्ना नाडीके चारोंतरफ संपूर्ण नाडी स्थितहै।

नाभिमध्ये स्थितानाडी गोपुच्छाकृतिसर्वतः।
तिष्ठन्ते परितःसर्वास्ताभिर्व्याप्तमिदं वपुः ॥ ३९ ॥

अर्थ–संपूर्ण नाडी नाभिके बीचमें गोपुच्छके सदृश स्थितहो सर्वत्र फैल रही है। जिनसे यह देह व्याप्त होरहाहै, जैसे गौकी पूछ ऊपरके भागमें मोटी होतीहै और नीचेको क्रमसे पतली होतीहै, उसीप्रकार नाडीनको जानना ये सब नाभीसे निकलकर चारोंतरफ फैल गईहैं।

सार्द्धस्त्रिकोट्यो नाड्योहि स्थूलाः सूक्ष्माश्च देहिनाम्।
नाभिकन्दनिबद्धास्तास्तिर्यगूर्ध्वमधः स्थिताः॥ ४० ॥

अर्थ–इन मनुष्योंके देहमें छोटी और बडी सब मिसकर ३५०००००साडेतीन करोड नाडीहैं, वो सब नाभिसे बँधीहुई तिरछी, ऊपर और देहके अधोभागमें स्थितहै।

तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च यानि लोमानि मानुषे।
नाडीमुखानि सर्वाणि धर्मबिन्दून्क्षरन्ति च ॥ ४१ ॥

अर्थ--ऊपरके श्लोकमें जो साढेतीनकरोड नाडी कहीहैं, वो मनुष्यके देहमें जितने रोमहैं वो सब उन नाडियोंके मुखहैं, उनसे पसीना झडता रहता है।

द्विसप्ततिसहस्रन्तु तासां स्थूलाः प्रकीर्तिताः।
देहे धमन्यो धन्यास्ताः पञ्चेन्द्रियगुणावहाः ॥ ४२ ॥

अर्थ–उन साढेतीन करोड नाडियोंमें १०७२ एकहजार और बहत्तर स्थूल नाडीहैं, वो धमनी देहमें पवनको धमातीहैं। और पंचेन्द्रियोंको गुण (शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध) को बहतीहैं।

तासाञ्च सूक्ष्मसुषिराणि शतानि सप्त
स्वच्छानि यैरसकृदन्नरसं वहद्भिः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आप्यायते वपुरिदं हि नृणाममीषा-
मम्भः स्रवद्भिरिव सिन्धुशतैः समुद्रः ॥ ४२ ॥

अर्थ-उन पूर्वोक्त नाडियोंमें छोटे छिद्रवाली स्वच्छ ७०० सातसौ नाडीहैं वो सब अन्नरसके बहनेवालीहैं, उस रसमें संपूर्ण देहका पोषण होताहै जैसे सैकडों नदियोंके जलसे समुद्र तृप्त होताहै ।

आपादतः प्रततगात्रमशेषमेषा-
मामस्तकादपि च नाभिपुरःस्थितेन ।
एतन्मृदङ्ग इव चर्मचयेन नद्धं
कायं नृणामिह शिराशतसप्तकेन ॥ ४४ ॥

अर्थ-नाभिस्थानस्थित सातसौ नाडीन्से मस्तकसेले पैरोंतक संपूर्ण देह व्याप्त हैं जैसे मृदंगमें सर्वत्र चर्मकी रस्सी खिचीहुई होतीहै, उसीप्रकार मनुष्यकी देह इन सातसौ नाडियोंसे बद्ध होरहीहै ।

सप्तशतानां मध्ये चतुरधिकाविंशतिः स्फुटास्तासाम् ।
एका परीक्षणीया दक्षिणकरचरणविन्यस्ता ॥ ४५ ॥

अर्थ--पूर्वोक्त सातसौ नाडियोंमें २४ चौवीस नाडी मुख्यहैं, उनमेंभी पुरुषके दहने हाथ और पैरमें स्थित मुख्य एक नाडीकी परीक्षा करनी चाहिये "चतुरधिका" इसपदके कहनेसे यह प्रयोजनहै कि, धमनी नाडी चोवीसहैं जैसे लिखाहै ।

तिर्यक्कूर्मो देहिनां नाभिदेशे
वामे वक्त्रं तस्य पुच्छन्तु याम्ये ।
ऊर्द्धे भागे हस्तपादौ च वामौ
तस्याधस्तात्संस्थितौ दक्षिणौ तौ ॥ ४६ ॥
वक्त्रे नाडी द्वयं तस्य पुच्छे नाडी द्वयन्तथा ।
पञ्च पञ्च करे पादे वामदक्षिणभागयोः ॥ ४७ ॥

अर्थ-मनुष्योंके नाभिदेशमें तिरछा कूर्म (कछवा) स्थितहै, बांई तरफ उसका मुखहै और दहनी तरफ पूंछहै, ऊपरके भागमें बाँईतरफ हाथहै,

१ शतानि सप्त नाडयस्तु कथिता याः शरीरिणाम् । संभूयाङ्गुष्ठमूले तु शिरामेकामधिष्ठिता ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

और नीचे दक्षिण पैरहै उस कच्छपके मुखमें दोनाडी, पूंछमेंदो और हाथ पैरोंमें दहनी और बांई तरफ पांच पांच नाडी जाननी।

फिर उसी श्लोककी व्याख्या करतेहैं "तासां मध्ये एकेति" इस पद-लिखनेका यह प्रयोजनहै कि, यद्यपि हाथपैरोंमें पांच पांच नाडीहैं परंतु उनमेंभी पुरुषके दहने हाथ पैरकी एक एक नाडी मुख्यहै और स्त्रीके वाम हाथ पैरकी एक एक नाडी मुख्यहै यह अर्थांशसे जाना जाताहै अतएव वैद्यको इन्हींकी परीक्षा करनी चाहिये जैसे लिखाहै।

वामे भागे स्त्रिया योज्या नाडी पुंसस्तु दक्षिणे।
इति प्रोक्तो मया देवि सर्वदेहेषु देहिनाम् ॥ ४८ ॥

अर्थ–स्त्रीके वामभागकी और पुरुषके दहने भागकी नाडी देखे हेदेवि! यह सर्वदेहधारियोंमें देखनेकी विधि मैंने कहीहै, परंतु जो नपुंसक है उनमें प्रथम यह परीक्षाकरे कि यह स्त्री षंढ है या पुरुषषंढ पश्चात् स्त्री षंढकी वामहाथकी और पुरुष षंढके दहने हाथकी नाडी देखे इनमें समानता सर्वथा नहीं होसकती, और कृत्रिम (बनेहुए) हिजडे होतेहैं उनकी नाडी यथा प्रकृतिमें स्थित होतीहै और "चरणेति" इस पदके धरनेसे कोई कहताहै कि, वाम पैरकी नाडीको दहनी गांठके पिछाडीके पार्श्वभागमें देखनी और दहने पैरकी नाडी बांई ग्रंथिके पिछाडीके पार्श्वमें देखनी यह श्रेष्ठ पुरुषोंकी आज्ञाहै कोई छः स्थानोंकी नाडी देखना लिखताहै यथा।

अङ्गुष्ठमूले करयोःपादयोर्गुल्फदेशतः।
कपालपार्श्वयोः षड्भ्यो नाडीभ्यो व्याधिनिर्णयः ॥ ४९ ॥

अर्थ–हाथोंकी नाडी अँगूठेकी जडमें देखे, और पैरोंकी नाडी टकनाओंके नीचे देखे, मस्तककी नाडी दोनों कनपटियोंमें देखे, इसप्रकार इन छः स्थानकी नाडी देखनेसे व्याधिका यथार्थ निर्णय होताहै।

नाभ्योष्ठपाणिपात्कंठनासोपान्तेषु याः स्थिताः।
तासु प्राणस्य सञ्चारं प्रयत्नेन विभावयेत् ॥ ५० ॥

अर्थ–नाभी, होठ, पैर, हाथ, कंठ और नासिकाके समीप भागमें जो नाडी स्थितहै उनमें प्राणोंका संचारको यत्नपूर्वक जाने, अर्थात् इन स्थानोंमें सदैव प्राण पवनका संचार होताहै, इसीसे अत्यंत उपद्रवमें इन स्थानोंकी नाडी देखनी चाहिये।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पाणिपात्कण्ठनासाक्षिकर्णजिह्वान्तमेढ्रगाः ।
वामदक्षिणतो लक्ष्याः षोडश प्राणबोधकाः ॥ ५१ ॥

अर्थ–हाथ, पैर, कंठ, नासिका, नेत्र, कान, जिह्वाका अंत्यभाग और मेढ्र (योनि लिंग) इनके वामभाग और दक्षिणभागमें नाडी देखनी क्योंकि ये १६ नाडी प्राणबोधकहै ऐसा जानना !

कण्ठनाडी ।

आगन्तुकं ज्वरं तृष्णामायासं मैथुनं क्रमम् ।
भयं शोकञ्च कोपञ्च कण्ठनाडी विनिर्दिशेत् ॥ ५२ ॥

अर्थ–आगंतुज्वर, तृषा, परिश्रम, मैथुन, ग्लानि, भय, शोक और कोप इतने रोगोंको कंठनाडी देखकर कहे ।

नासानाडी ।

मरणं जीवनं कामं कण्ठरोगं शिरोरुजाम् ।
श्रवणानिलजान्रोगान्नासानाडी प्रकाशयेत् ॥ ५३॥

अर्थ–मरण, जीवन, कामबाधा, कंठरोग, मस्तकरोग, कानके पवनके रोगोंको नासिकाकी नाडी प्रकाशित करतीहै ।

उक्त नाडियोंका प्रमाण ।

हस्तयोश्च प्रकोष्ठान्ते मणिबन्धेऽङ्गुलिद्वयम् । पादयोर्नाडिकास्थानं गुल्फस्याधोऽङ्गुलिद्वयम् ॥ ५४ ॥ कण्ठमूलेऽङ्गुलिद्वंद्वं नासायामङ्गुलिद्वयम् । एवमप्यङ्गुलिद्वंद्वमग्रतः कर्णरन्ध्रयोः ॥ ५५ ॥

अर्थ–अब अन्यनाडी किस किस भागमेंहैं और वो कितनी बडीहैं यह कहते हैं । तहां दोनों हाथके प्रकोष्ठान्तमें जहां मणिबंध अर्थात् पहुँचाहै उसजगे दो अंगुल नाडी देखनेका स्थानहै और पैरोंमें टकनाके नीचे दो अंगुल नाडीका स्थान है तथा कंठकी जडमें अर्थात् हसलीमें दो अंगुल एवं नासिकामें दो अंगुल नाडीका स्थानहै । इसीप्रकार दोनों कर्णके छिद्रके अग्रभागमें भी दो दो अंगुल नाडीके परिक्षाका स्थानहै । तात्पर्य यहहै कि, जब हाथकी नाडी प्रतीत न होवे तब इन स्थानोंकी नाडी देखनी ।

निस्तुषयव एकस्तत्प्रमाणाङ्गुलं स्यात्
तदुभयमितसङ्ख्यन्येव नाडीप्रचारः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

न भवति यदि तस्मिन्गोहिनो गेहमध्ये
कथमिह गृहमेधी तत्र जीवस्तदा स्यात् ॥ ५६ ॥

अर्थ–छिलका रहित एक यवके प्रमाण इस जगे अंगुल मानाहै। ऐसे दो अंगुल प्रमाण स्थानमें नाडी रहती है यदि देहरूप घरमें नाडीरूप स्त्री न होवे तो जीवरूप जो गृहस्थीहै सो क्याकरे, अर्थात् यावत्काल देहमें नाडी रहतीहै तबतक जीवहै विना स्त्रीके घरमें रहना निंदितहै " धिग्गृहं गृहिणीं-विना " तात्पर्य यहहै, कि जीव, पुरुष, नाडी स्त्री ये अन्योन्य एकके विना दूसरा नहीं रहसकता।

परीक्षणीय।

वातं पित्तं कफं द्वंद्वं सन्निपातं तथैव च।
साध्यासाध्यविवेकञ्च सर्वं नाडी प्रकाशयेत् ॥ ५७॥

अर्थ–वात पित्त कफ द्वंद्वज दोष और सन्निपात एवं साध्यासाध्य (चकारसे कष्टसाध्य) इनकी संपूर्ण विवेचनाको नाडी प्रकाशित करती है।

इति श्रीमाथुरकृष्णलालसूनुना दत्तरामेण सङ्कलिते नाडीदर्पणे प्रथमावलोकः।

नाडीज्ञानसमय।

प्रातः कृतसमाचारः कृताचारपरिग्रहम्।
सुखासीनः सुखासीनं परीक्षार्थमुपाचरेत् ॥ १ ॥

अर्थ–अब नाडी देखनेका समय कहतेहैं कि,चिकित्सक प्रातःकालमें प्रातः-कृत्य समाप्तिके अनंतर नाडीपरीक्षार्थ रोगीके समीप प्राप्त हो रोगीके प्रातः-कृत्य समाप्तिके पश्चात् उसको सुखपूर्वक बैठाकर इसीप्रकार स्वयं आप सुख-पूर्वक बैठकर यथाविधान नाडी परीक्षा करे। इसजगे प्रातःकालका तो उपलक्षण मात्रहै किंतु मध्याह्न और सायंकालमें भी नाडीपरीक्षा करे जैसे लिखाहै " मध्याह्ने चोष्णतान्विता " इत्यादि।

निषिद्धकाल।

सद्यःस्नातस्य भुक्तस्य क्षुत्तृष्णातपसेविनः। व्यायामाक्रान्तदेहस्य सम्यङ्नाडी न बुध्यते ॥ २ ॥ तैलाभ्यक्ते रते[1]रन्ते भोजनान्ते तथैव च। उद्वेगादिषु नाडी च न सम्यगवबुध्यते ॥ ३ ॥

---

१ तैलाभ्यङ्गे च सुप्ते च तथा च भोजनान्तरे। तथा न ज्ञायते नाडी यथा दुर्गतरा नदी ॥ इति। पाठान्तरम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ--तत्काल स्नान करा हो, तत्काल भोजन कराहो, अथवा "सुप्तस्य" अर्थात् निद्रित, क्षुधित, तृषार्त्त, गरमीसे घबडाया हुआ, तथा व्यायामद्वारा थकित देह जिसका ऐसे मनुष्यकी नाडी भलेप्रकार प्रतीत नहीं हो, उसी-प्रकार जिसने तेल लगायाहो, मैथुनान्तमें भोजनके मध्यमें उद्वेग आदि समयमें नाडीकी यथार्थगति निश्चय नहीं हो, अतएव वैद्य इन समयोंसे नाडीपरीक्षा न करे किंतु रोगीका चित्त जिससमय स्वस्थहोय तब नाडी देखे परंतु वातमूर्च्छादिक क्षणिक रोगोंमें यह उक्तनियम नहींहै ।

नाडीदेखने योग्य वैद्य ।

स्थिरचित्तः प्रसन्नात्मा मनसा च विशारदः ।
स्पृशेदङ्गुलिभिर्नाडीं जानीयाद्दक्षिणे करे ॥ ४ ॥

अर्थ–अब नाडी देखने योग्य वैद्य कहते हैं कि जो स्थिरचित्त और प्रसन्न आत्मा तथा मनकरके चतुर ऐसा वैद्य तीन उंगलियोंसे दहने हाथकी नाडीका स्पर्श करके उसकी गतिकी परीक्षा करे ।

मूढ वैद्य ।

पीतमद्यश्चञ्चलात्मा मलमूत्रादिवेगयुक् ।
नाडीज्ञानेऽसमर्थः स्याल्लोभाक्रान्तश्च कामुकः ॥ ५ ॥

अर्थ–जिसने मद्य पीरक्खाहो और चंचलचित्त, मल मूत्र बाधा लग रहीहो, लोभी और कामीहो ऐसे वैद्यको नाडी न दिखावे, क्योंकि यह नाडीके जाननेमें असमर्थ है ।

नाडी देखने योग्य रोगी ।

त्यक्तमूत्रपुरीषस्य सुखासीनस्य रोगिणः ।
अन्तर्जानुकरस्यापि नाडी सम्यक्प्रबुद्ध्यते ॥ ६ ॥

अर्थ–अब नाडी देखनेके योग्य रोगी कहतेहैं,कि जो मलमूत्रका परित्याग करचुकाहो और सुखपूर्वक घोंटुओंके भीतर हाथको करे सावधानीसे बैठा-हो, ऐसे रोगीकी नाडीको वैद्य देखे, क्योंकि ऐसे मनुष्यकी नाडी भली रीतिसे जानी जातीहै ।

नाडीदर्शनमें अयोग्य ।

धूर्त्तमार्गस्थविश्वासरहिताज्ञातगोत्रिणाम् ।
विनाभिशंसनं वैद्यो नाडीद्रष्टा च किल्बिषी ॥ ७ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–अब कहतेहैं कि,ऐसे मनुष्योंकी नाडी वैद्य न देखे कि,जो धूर्तहै तथा मार्गमें गलते चलते दिखाने लगे और जिनको विश्वास नहींहै, तथा जिसकी जातिपाँति वैद्य नहीं जाने और बिनकहे अर्थात् जबतक रोगी अथवा उस रोगीके बांधव न कहे तबतक वैद्य नाडी न देखे, यदि उक्तमनुष्योंकी वैद्य नाडी देखे तो पापभागी होताहै।

परीक्षाप्रकार।

सव्येन रोगधृतिकूर्परभागभाजा
पीडयाथ दक्षिणकरांगुलिकात्रयेण।
अङ्गुष्ठमूलमधिपार्श्वमभागमध्ये
नाडीं प्रभंजनगतिं सततं परीक्षेत् ॥ ८ ॥

अर्थ–अब नाडी परीक्षाका प्रकार लिखते हैं कि, रोगके धारण करने वाली जो पहुँचेमें नाडीहै उसको दहने हाथकी तीन उंगली (तर्जनी, मध्यमा, और अनामिका) से दाबकर तथा रोगीके हाथकी कोहनीको दूसरे हाथसे अच्छी रीतिसे पकडकर उसके अँगूठेकी जडके नीचे वातगति नाडीकी वारंवार परीक्षा करे। तात्पर्य यह है कि, प्रथम दहने हाथसे कोहनीको पकडे फिर वहाँसे हाथको हटाय नाडीको दाबे और बाँए हाथसे रोगीके हाथको साधकर नाडीकी परीक्षा करे।

इसजगे " दक्षिणकरांगुलिकात्रयेण " यह पद केवल उपलक्षण मात्रको धराहै किंतु नाडी वामहाथसे भी देखे यदि ऐसा न मानोगे तो फिर अपनी नाडीका देखना किसप्रकार होगा। और बाजे वैद्य दहने हाथकी नाडी वामहाथसे और वामहाथकी दहनेसे देखतेहैं यह ठीकहै।

कदाचित् कोई शंकाकरे कि, एकही हाथकी नाडी देखनेसे रोग जानाजाताहै फिर दोनों हाथकी देखना व्यर्थहै, इसलिये कहतेहैं कि, बहुतसे मनुष्योंके वामअंगही चेष्टावाले होतेहैं, अतवा ऐसे मनुष्योंके वामअंगकी जबतक यथार्थ ज्ञान नहीं होता। दूसरे दोषोंके भेदसे नाडीके वाम दक्षिणमें भेद होजाताहै, अथवा यह परंपराहै इसीसे लोकविरुद्धभयसे देखतेहैं।

दूसरा प्रकार।

ईषद्विनामितकरं विततांगुलीयं बाहुप्रसाररहितं परिपीडनेन।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ईषद्विनम्रकृतकूर्परवामभागहस्ते प्रसारितसदङ्गुलिसंधिकेच॥९॥
अङ्गुष्ठमूलपरिपश्चिमभागमध्येनाडीप्रभंजनगतिं प्रथमंपरीक्षेत्१०

अर्थ–वैद्य रोगीके हाथको किंचिन्मात्र नवायकर और हाथकी उंगलियों-को एकत्र कर तथा भुजाको बहुत लंबी न होनेदे और हाथ पट्टी आदिसे बँधा न हो क्योंकि पट्टीआदिके बँधनेसे नाडीकीगति रुकजातीहै फिर रो-गीके कूर्पर (कोहनीके वामभाग) को पकड अंगुली और उनकी संधिस-हित हाथको पसार रोगीके अँगूठेके पिछलेभागमें प्रथम वातकी परीक्षा करे, कारण यहहै कि,आदिमें वातका स्थानहै अतएव प्रथम वातकी परीक्षा-करनी चाहिये ।

प्रदर्शयेद्दोषनिजस्वरूपं व्यस्तं समस्तं युगलीकृतं च ।
मूकस्य मुग्धस्य विमोहितस्य दीपप्रभावा इव जीवनाडी॥११॥

अर्थ–यह जीवनाडी गूंगेके मूढके और मोहितषुरुषके पृथक् पृथक् और मिले तथा द्वंद्वज दोषोंका जो निज स्वरूपहै उसको दिखातीहै, जैसे दीपक अपने प्रकाशसे घरमें स्थित पदार्थोंको दिखाताहै ।

स्त्रीणां भिषग्वामहस्ते वामे पादे च यत्नतः । शास्त्रेण संप्र-दायेन तथा स्वानुभवेन च ॥ परीक्षेद्रत्नवच्चासावभ्यासा-देव जायते ॥ १२ ॥

अर्थ–वैद्य स्त्रियोंके वामहाथ और वामपैरमें शास्त्रकी संप्रदायसे और अ-पने अनुभवद्वारा रत्नके समान नाडी परीक्षाकरे,यह परीक्षा केवल अभ्यास साध्यहै तात्पर्य यह है कि, जैसे जोहरी रत्नपरीक्षामें अभ्यास करनेसे रत्नकी परीक्षा करताहै उसीप्रकार इस नाडीका देखनाभी रत्नपरीक्षाके समानहै, अतएव इसके देखनेमें वैद्य अभ्यास करे ।

करस्याङ्गुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी ।
तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः ॥ १३ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रभञ्जनगतिर्यत्र इतिनाडयन्तरनिरासः सततं इति।
सुस्थदशायामपि परीक्षणीया।

अर्थ–तहां नाडीदेखनेका स्थान कहतेहैं,जैसेकि हाथके अँगूठेकी जडमें जो जीवसाक्षिणी धमनी नाडीहै उसकी चेष्टा करके इसप्राणीके देहका सुख दुःख वैद्यजन जाने, ८ के श्लोकमें " प्रभंजनगतिर्यत्र " इस लिखनेसे यह सूच नाकरी कि अँगूठेके संनिकट नाडीको देखनी अन्य नाडियोंको न देखना तथा " सततं " इस पदके धरनेसे यह प्रयोजन है कि, वैद्य रोगावस्थाहीमें नाडी न देखे किंतु स्वस्थ दशामेंभी नाडीकी परीक्षाकरे, कारण कि जिसकी नाडी स्वस्थावस्थामें देखीहै यदि उसके रोग प्रगटहोनेवाला होवेतो उस रोगका निश्चय नाडीद्वारा बहुत सुगमतासे होसकताहै इसीसे लिखाहै यथा।

भाविरोगावबोधाय सुस्थनाडीपरीक्षणम् ॥ १४ ॥

अर्थ–अर्थात् होनहार रोगज्ञानके अर्थ वेगको स्वस्थ (रोगरहित) मनुष्य की नाडीपरीक्षा करनी चाहिये।

स्पर्शनादिभिरभ्यासान्नाडीज्ञो जायते भिषक्। तस्मात्परामृशेन्नाडीं सुस्थानामपि देहिनाम् ॥ १५ ॥ स्पर्शनात्पीडनाद्घाताद्वेदनान्मर्दनादपि। तासु जीवस्य सञ्चारं प्रयत्नेन निरूपयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ–ग्रन्थान्तरोंमें लिखाहै कि, स्पर्शनादिके अभ्याससे अर्थात् प्रत्येककी नाडी देखनेसे यह वैद्य नाडीका ज्ञाता होताहै अतएव यह वैद्य स्वस्थ मनुष्योंकीभी नाडी देखाकरे उस नाडीके स्पर्शसे, पीडन (दाबने) से घातसे ऊंगलियोंमें लगनेसे वेदन [तडफ] से और मर्दनकरना इन कारणोंसे वैद्य उन नाडियोंके जीवसंचारको निरूपण करे।

गुरुतोऽत्र प्रयत्नेन वैद्येन शुभमिच्छता।
ज्येष्ठेनाङ्गुष्ठमूलेन नाडीपुच्छं परीक्षयेत् ॥ १७ ॥

अर्थ–यशेच्छुवैद्य यत्नपूर्वक गुरुसे अर्थात् गुरुद्वारा अँगूठेकी जडमें नाडीपुच्छकी परीक्षाकरे, तात्पर्यार्थ यह है कि, जो वैद्य अपने हितकी चाहना करे

१ यद्यस्ति नाडी सर्वत्र शरीरे धातुवाहिनी। तथाप्यंगुष्ठमूलस्था करस्था सर्वशोभना ॥ १ ॥ विलसति मणिरन्ध्रे ग्रन्थिरंगुष्ठमूले तदधरणमिताभिरंगुलीभिर्निपीड्य। स्फुरणमसकृदेषा नाडिकायाः परीक्षा पदमनुघुटिकाधोऽगुष्ठमूले तथैव ॥ २ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वो गुरुद्वारा नाडीपरीक्षा सीखे स्वयंही न देखनेलगे ज्येष्ठ कहनेसे अँगूठेका बृहन्निम्नभाग जानना।

नाडीं वायुप्रवाहेण शास्त्रं दृष्ट्वा च बुद्धिमान्।
गुरूपदेशं संस्मृत्य परीक्षेत मुहुर्मुहुः॥ १८॥

अर्थ–बुद्धिवान्वैद्य पवनके संचारकरके और शास्त्रके अनुसार तथा गुरूके उपदेशको स्मरणकर वारंवार नाडीकी परीक्षा करे।

वारत्रयं परीक्षेत धृत्वा धृत्वा विमुच्य च।
विमृश्य बहुधा बुद्ध्या रोगव्यक्तिं तु निर्दिशेत्॥ १९॥

अर्थ–वारंवार नाडीपर उँगली रखे और हटायले अर्थात् नाडीको कुछ दबायके ढीली छोडदेवे इसप्रकार करनेसे नाडीकी सबलता और निर्बलता चौडाव लंबाव तथा शीघ्रता और मंदताका ज्ञान होताहै। इस प्रकार तीन वार परीक्षाकर संपूर्ण नाडीकी व्यवस्था अपने मनमें विचार कर फिर रोग व्यक्ति कहे अर्थात् इसरोगीके देहमें अमुक रोगहै ऐसे विना विचारे न कहे।

अङ्गुलित्रितयैः स्पृष्ट्वा क्रमाद्दोषत्रयोद्भवैः।
मन्दां मध्यगतां तीक्ष्णां त्रिभिर्दोषैस्तु लक्षयेत्॥ २०॥

अर्थ–नाडीको तीनउँगलियोंके स्पर्शसे तीनोंदोषोंकरके मन्द, मध्य और तीक्ष्ण गति जाननी, अर्थात् प्रथम उँगलीमें मध्यस्पर्शहोनेसे वातकी और बीचकी उँगलीमें तीक्ष्णस्पर्शहोनेसे पित्तकी और अंतकी उँगली (अनामिका) में स्पर्शहोनेसे कफकी नाडी जाननी।

रोगरहितमनुष्यकी नाडी।

भूलता भुजगप्राया स्वच्छा स्वास्थ्यमयी शिरा।
सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता॥ २१॥

अर्थ–स्वस्थ अवस्थाकी नाडी केंचुआ और सर्पके समान टेढीगतिसे और पुष्ट तथा जडता रहित होतीहै यह नैरोग्य पुरुषकी नाडीके लक्षणहै तथा सुखी पुरुषकी नाडी स्थिर और बलवान् होतीहै।

नाडीके देवता।

वातनाडी भवेद्ब्रह्मा पित्तनाडी च शंकरः।
श्लेष्मनाडी भवेद्विष्णुस्त्रिदेवा नाडिदेवताः॥ २२॥

अर्थ–वातनाडीका ब्रह्मा, पित्तनाडीका शंकर, और कफनाडीका पति विष्णुहै।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नाडीन्के वर्ण।

वातनाडी भवेन्नीला पित्तनाडीतु पाण्डुरा।
श्वेता तु कफनाडी स्यादेवं वर्णानि संवदेत् ॥ २३ ॥

अर्थ--वातकी नाडीका वर्ण नीलहै, पित्तकी नाडीका पीला, कफनाडीका श्वेत, इसप्रकार नाडीके वर्ण कहने चाहिये।

नाडीन्का स्पर्श।

पित्तनाडी भवेदुष्णा कफनाडी तु शीतला।
वातनाडी भवेन्मध्या एवं स्पर्शविनिर्णयः ॥ २४ ॥

अर्थ--पित्तकी नाडी स्पर्शकरनेसे गरम प्रतीत होतीहै,कफकी नाडी शीतल, और वातकी नाडीका स्पर्श मध्यम होताहै इसप्रकार नाडीका स्पर्श जानना।

कालपरत्व नाडीकी गति।

प्रातः स्निग्धमयी नाडी मध्याह्ने चोष्णतान्विता।
सायाह्ने धावमाना च रात्रौ वेगविवर्जिता[1] ॥ २५ ॥

अर्थ--स्वभावसेंही नाडी प्रातःकाल स्निग्ध, मध्याह्नमें उष्ण, सायंकालमें वेगवती, तथा रात्रिमें वेगवर्जित होतीहै

अथ वातादिस्वभावक्रम।

आदौ च वहते वातो मध्ये पित्तं तथैव च।
अन्ते च वहते श्लेष्मा नाडिकात्रयलक्षणम् ॥ २६ ॥

अर्थ--अब वातादिकका स्वभाव क्रम कहतेहैं जिस समय वैद्य कोहनीको पकडताहै। उसके द्वितीयक्षणमें प्रथम वातकी नाडी फिर मध्यमें पित्तकी और अंतमें कफकी नाडी चलतीहै। यह द्वितीयादिक्षणोंमें जाननी कोई कहताहै कि, आदिमें वातकी बीचमें पित्तकी और अंतमें कफकी नाडी चलतीहै यह बात सर्वथा निर्मूलहै क्योंकि स्थानका नियम किसी जगे नहीं करा, विशेष आगे कहतेहैं यथा।

उक्त श्लोककाविरोधीवचन।

आदौ च वहते पित्तं मध्ये श्लेष्मा तथैव च।
अन्ते प्रभञ्जनो ज्ञेयः सर्वशास्त्रविशारदैः ॥ २७ ॥

---

१ चिराद्रोगविवर्जितेति पाठान्तरम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-आदिमें पित्तकी मध्यमें कफकी और अंत्यमें वातकी नाडी सर्वशास्त्रज्ञाता वैद्यों करके जाननी।

नाडीचक्रमिदम् ।			
वात	पित्त	कफ	नाडीके नाम
श्याम हरित	पीत लाल नील	सपेद	नाडीके वर्ण
ब्रह्मा	शिव	विष्णु	नाडीके देवता
न गरम न शीतल किंतु मध्यम	गरम	शीतल	नाडीका स्पर्श
विषम	दीर्घ	ह्रस्व	नाडीमाप
गंधहीन	तीव्रगंध	मध्यमगंध	नाडीका गंध
तिर्यग्गमन	ऊर्ध्वगमन	अधोगमन	नाडीका गमन
हलकी	हलकी	भारी	नाडीकी गुरुता और लघुता
रात्रिदिवाबली	दिवावली	रात्रिबली	नाडीके बलवान होनेका समय

उक्त श्लोककापुष्टिकर्त्ता दृष्टान्त।

तृणं पुरःसरं कृत्वा यथा वातो वहेद्बली। शेषस्थंच तृणंगृह्य पृथिव्यां वक्रगो यथा ॥ २८ ॥ एवं मध्यगतो वायुः कृत्वा पित्तपुरस्सरम्। स्वानुगं कफमादाय नाड्यां वहति सर्वदा ॥ २९ ॥

अर्थ-इस वाक्यको दृष्टान्त देकर पुष्ट करतेहैं, कि जैसे प्रबलवात अर्थात् आंधी, तिनका ओंको अगाडी करके और कुछ पिछाडीके तिनका ओंको लेकर आप बीचमें टेढीहोकर चलतीहै। इसीप्रकार मध्यगत वायु पित्तको अगाडीकर और अपने पिछाडी कफको करके बीचमें आप टेढी होकर चलती है।

अतएव च पित्तस्य ज्ञायते कुटिलागतिः। वक्रा प्रभञ्जनस्यापि प्रोक्ता मन्दा कफस्य च ॥ ३० ॥ पित्ताग्रेऽस्ति ग-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तिः शीघ्रा तृणस्येति विदृश्यताम्। मन्दानुगस्य वक्रा वै मारुतो मध्यगस्य ह ॥ ३१॥ तथात्रैव च ज्ञातव्या गतिर्दोषत्रिकोद्भवा। नान्यथा ज्ञायते स्नायुगतिरेतद्विनिश्चितम् ॥ ३२ ॥

अर्थ–इसीसे नाडीमें पित्तकी गति कुटिलहै और वातकी गति टेढी एवं कफकी मन्दगति प्रतीत होतीहै। पित्तकी शीघ्रगति सो आंधीमें तृणके देखनेसे प्रत्यक्ष होतीहै। और जैसे आंधीमें पिछाडीके तृणकी मंदगति होतीहै उसीप्रकार नाडीमें पिछाडी कफकी मंदगतिहै। और जैसे आंधीके बीचमें पवनकी गति टेढी तिरछी होतीहै। उसीप्रकार इसनाडीके बीचमें वातकी गति टेढी तिरछी प्रतीत होतीहै इसप्रकार ही नाडीकी गति प्रतीत होतीहै। अन्यप्रकारसे नहीं।

परंतु हमको शंकाहैकि, नाडीका और आंधीका क्या संबंधहै, क्योंकि आंधीमें आगे पीछे और बीचमें पवनही कहातीहै, परंतु नाडीमें तो न्यारे न्यारे दोषहैं जैसे वात, पित्त, तथा कफ, और पवनका एकहीकर्महै परंतु इन तीनों दोषोंके कर्म पृथक् पृथक् हैं, इस कारण यह दृष्टान्तही असंभवहै हमारे मनको हरण कर्त्ता नहींहै।

ग्रंथकर्त्ताकामत।

इदानीं कथयिष्यामि स्वमतं शास्त्रसंमतम्। मिथ्यारोपितवादस्य खण्डनं लोकरञ्जनम् ॥ ३३ ॥ वातमग्रेवदन्त्येके पित्तमग्रेच केचन। हास्यास्पदमिदंसर्वं न तु सत्यं मनागपि ॥ ३४ ॥

अर्थ–अब हम शास्त्रसंमत तथा मनुष्योंकी रंजना (प्रसन्नता) को और मिथ्यारोपित वादका खंडनरूप अपने मतको कहतेहैं। जैसे कोई तो वातकी, और कोई पित्तकी नाडीको आगे बतलाताहै यह केवल उनके हास्यका स्थानहै किंतु किंचिन्मात्रभी सत्य नहींहै इसप्रकार माननेसे बडाभारी अनर्थहोताहै जैसे आगे लिखते हैं।

सति पित्तभवे व्याधौ बुद्ध्यतिक्रमतो यदि। वातकोपवशादेवमादौ ज्ञात्वा धरागतिम् ॥ ३५ ॥ प्रददेद्भेषजं ह्युष्णं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तद्दोषविनिवृत्तये । तदा नूनं भवेन्मृत्युः पित्तकोपेन भूयसा ॥ ३६ ॥

अर्थ-कदाचित् किसीरोगीके पित्तकी व्याधिहोवे और वैद्यबुद्धिभ्रमसे वातकोपकी नाडी अग्रभागमें समझकर उस रोगीको दोष दूर करनेको उस उष्ण (शुंठयादि) औषध देय तो कहो एकतो पित्तदोषकी गरमी और दूसरे गरम ही दीनी औषध अब कहो वह रोगी पित्तकी गरमीके मारे मरेगा कि बचेगा? किंतु अवश्यही मरेगा।

सति वातभवे व्याधौ बुद्ध्यति क्रमतो यदि। नाडीगतिं पित्तवशादादौ ज्ञात्वा ततो भिषक् ॥ ७३ ॥ प्रददेद्भेषजं शीतं तद्दोषविनिवृत्तये। तदा नूनं भवेन्मृत्युर्वातकोपेन भूयसा ॥ ३८ ॥

अर्थ-इसीप्रकार रोगीके देहमें वातजन्य रोग होय और वैद्यबुद्धिके भ्रमसे पित्तकी नाडी जानकर यदि उसरोगीको पित्तनाशक शीतल उपचार करे तो कहो अत्यंत शरद औषधसे रोगी शरदीके मारे मरेगा या बचेगा? किंतु अवश्यही मरेगा।

अत्याश्चर्यमिदं लोके वर्त्तते दृश्यतां यथा। वदन्त्येके दिनं रात्रिं केऽपि रात्रिदिनं तथा ॥ ३९ ॥ एवं स्वेच्छाभिलापेन स्वल्पलोभेन मानवाः। रोगिणां सुप्रियान्प्राणान्हरन्ति ज्ञानवर्जिताः ॥ ४० ॥

अर्थ-इस संसारमें अत्यंत आश्चर्यहै देखो कोई दिनको रात्रि और कोई रात्रिको दिन कहताहै। इसप्रकार अपनी अपनी इच्छानुसार बकतेहैं और ये मूर्ख वैद्य थोडेसे लोभके कारण रोगियोंके परमप्रिय प्राणोंको हरण करतेहै। कहो इनसे बढकर कौन पामरहै जो विना विचारे अनर्थ करतेहैं भाई यह वैद्यविद्या खेल नहींहै।

अतएवं मया चित्ते सर्वमानीय तत्वतः। कथ्यते, नास्ति-नास्तीह नाडीस्थानविचारणा ॥ ४१ ॥ किन्तु नाडीगतिः श्रेष्ठा शास्त्रकारैः प्रकीर्त्तिता। न च तत्रहि सन्देहो लेश-मात्रोऽपि विद्यते ॥ ४२ ॥ तत्प्रकारोप्ययं ज्ञेयः सावधानत-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

या किल। यथा स्पर्शजलौकादिगतिर्वातस्य गद्यते॥ ४३॥
न तत्र कुरुते कोऽपि पित्तश्लैष्मभवं भ्रमम्। कुलिङ्गकाक-
मण्डूकगतिः पित्तस्य कीर्त्यते॥ ४४॥ न तत्र कोऽपि कु-
रुते वातश्लेष्मभवं भ्रमम्। कपोतानां मयूराणां हंसकुक्कुटयो-
रपि॥ ४५॥ या गतिः सा च विज्ञेया कफस्यैव गतिर्नृभिः।
न तत्र कोऽपि कुरुते वातपित्तभवं भ्रमम्॥ ४६॥

अर्थ--इन ऊपरकहेहुए सर्वकारणोंको अपने चित्तमें भलेप्रकार विचारकर हम कहतेहैं कि, नाडीके जो आदि मध्य और अंत्य ये स्थान किसीने कहेहैं सो नहीं हैं। तो क्याहै? इसलिये कहतेहैं कि, नाडी की जो गति है वो सत्यहै क्योंकि इसमें सर्वग्रंथकर्त्ताओंकी संमतिहै और इसमें लेशमात्रभी संदेह नहींहै, उसप्रकारको तुम सावधानताकरके सुनो, जैसे सर्प और जोककी गति वातकीहै इसमें कोई भ्रम नहीं करे कि, यह पित्तकी नाडीहै या कफकी उसीप्रकार कुलिंग काक और मंडूककी गति पित्तकीहै इसमें वात तथा कफकी नाडीका कोई भ्रम नहीं करता, इसी प्रकार कपोत, मोर, हंस, और कुक्कुट इनकी जो गतिहै वह कफकीहै इसमें कोई यह नहीं कहे कि, ये गति कफकी नहींहै वातपित्तकी है, इसीसे हमारा तो यही सिद्धांतहै कि, नाडीके स्थान असत्य और गति सत्यहै।

वातादिकोंकीक्रमसेगति।

वाताद्वक्रगता नाडी चपला पित्तवाहिनी।
स्थिरा श्लेष्मवती ज्ञेया मिश्रिते मिश्रिता भवेत्॥ ४७॥

अर्थ--वात तिरछी वहतीहैं, अतएव वातकी नाडी टेढी चलतीहै, अग्नि चंचल हो ऊपरको जातीहै अतएव पित्तकी नाडी ऊपरकी तरफ बहतीहै और चपलहै, जल नीचेको जाताहै इसीसे प्रबल नहींहै अतएव कफकी नाडीभी स्थिरहै और जो मिश्रित नाडीहै उनकी गतिभी मिलीहुई होतीहै। इससे यह दिखाया कि द्विदोषजमें दोदोषके चिह्न होतेहैं, त्रिदोषमें तीनों दोषोंके चिह्न होतेहैं, कदाचित् कोई प्रश्नकरे कि, एकही नाडी चपल और स्थिर कैसे होसकतीहै? इससे कहतेहैं कि, समय भेद होनेसे दोनों गति होसकतीहै।

वातादिकी विशेषगति।

सर्पजलौकादिगतिं वदन्ति विबुधाः प्रभञ्जने नाडीम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पित्ते च काकलावकभेकादिगतिं विदुः सुधियः ॥ ४८ ॥
राजहंसमयूराणां पारावतकपोतयोः ।
कुक्कुटादिगतिं धत्ते धमनी कफसंवृता ॥ ४९ ॥

अर्थ–सर्प और जोखकी गति पंडित जन वातकी नाडीकी गति कहतेहैं, अर्थात् जैसे सर्प और जोख टेढे तिरछे होकर चलतेहैं उसीप्रकार वादीकी नाडी चलतीहै । आदि शब्दसे विच्छूकी गतिका ग्रहणहै । उसी प्रकार पित्तमें काक (कौआ) लावक (लवा) और भेक (मेंडका) की गतिके सदृश नाडी चलती है अर्थात् जैसे कौआ, लवा, और मेंडका भुदकते उछलते चलतेहैं उसी प्रकार पित्तकी नाडी चलतीहै । आदिशब्दसे कुलिंग और चिडा आदिकी गतिका ग्रहणहै । एवं राजहंस (वतक) मोर, खबुतर, कपोत (पिंडुकिया) और मुरगा इन पक्षियोंकीसी अर्थात् ये पक्षी जैसे मंदमंद गति चलतेहैं इसप्रकार कफकी नाडी चलतीहै । आदिशब्दसे हाथी और उत्तम स्त्रीकी चालका ग्रहण है अर्थात् जैसे हाथी और उत्तम स्त्री झूमती हुई मंदमंद चलतीहै इसी प्रकार कफकी नाडी चलती है ।

द्वंद्वजनाडीकी चाल ।

मुहुः सर्पगतिं नाडीं मुहुर्भेकगतिं तथा । वातपित्तद्वयोद्भूतां प्रवदन्ति विचक्षणाः ॥ ५० ॥ भुजगादिगतिश्चैव राजहंसगतिं धराम् । वातश्लेष्मसमुद्भूतां भाषन्ते तद्विदो जनाः ॥ ५१ ॥ मण्डूकादिगतिं नाडीं मयूरादिगतिं तथा । पित्तश्लेष्मसमुद्भूतां प्रवदन्ति महाधियः ॥ ५२ ॥

अर्थ–वारंवार सर्पगति (टेढी) और वारंवार मेंडकाकी गति (उछलती) नाडी चले उसको चतुरवैद्य वातपित्तकी नाडी कहतेहैं । तथा कभी सर्पगति और कभी राजहंसकी गतिसे नाडी चले उसको पंडितजन वातकफकी नाडी कहतेहैं । एवं कभी मेडक और कभी मोरकी चाल चले उस नाडीको पित्तकफकी बुद्धिवान् वैद्य कहतेहैं ।

प्रकारान्तर ।

वातेऽधिके भवेन्नाडी प्रव्यक्ता तर्जनीतले । पित्ते व्यक्ता मध्यमायां तृतीयाङ्गुलिगा कफे ॥ ५३ ॥ तर्जनी मध्यमा-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मध्ये वातपित्ताधिके स्फुटा। अनामिकायां तर्जन्यां व्यक्ता वातकफे भवेत् ॥ ९४ ॥ मध्यमानामिकामध्ये स्फुटा पित्तकफेऽधिके। अङ्गुलि त्रितयेऽपि स्यात्प्रव्यक्ता सान्निपाततः ॥ ९९ ॥

अर्थ–वाताधिक्य नाडी तर्जनीके नीचे चलतीहै। पित्तकी नाडी मध्यमा उंगलीके नीचे और कफकी नाडी तीसरी उंगली अर्थात् अनामिकाके नीचे चलतीहै। वातपित्तकी नाडी तर्जनी और मध्यमाके नीचे चलतीहै। वातकफकी नाडी अनामिका और तर्जनीके नीचे चलतीहै। मध्यमा और अनामिकाके नीचे पित्तकफाधिक नाडी चलतीहै। और तीनों उंगलियोंके नीचे सन्निपातकी नाडी गमन करतीहै।

वक्रमुत्प्लुत्य चलती धमनी वातपित्ततः। वहेद्वक्रञ्चमन्दञ्च वातश्लेष्माधिकं त्वचः ॥ ९६ ॥ उत्प्लुत्य मन्दं चलति नाडी पित्तकफेऽधिके।

अर्थ–वातपित्ताधिक्यसे नाडी टेढी और उछलती हुई चलतीहै। वातकफसे टेढी और मन्दगमनकरतीहै पितकफाधिक्यमें नाडी उछलीहुई मंद गमन करतीहै।

त्रिदोषकीनाडी।

उरगादिलावकादि हंसादीनाञ्च बिभ्रती गमनम् ॥ ९७ ॥ वातादीनाञ्च समं धमनी सम्बन्धमाधत्ते।

अर्थ–वातादि त्रिदोषके समान होनेसे नाडी सर्प, लवा और हंस आदि पक्षियोंके समान गमन करतीहै समके कहनेसे न्यूनाधिक्यका त्यागहै यदि नाडी तीनों दोषोंकी क्रमसे चले तो असाध्य नहींहै।

लावतित्तिरवार्ताकगमनं सन्निपाततः ॥ ९८ ॥ कदाचिन्मन्दगमना कदाचिच्छीघ्रगा भवेत्। त्रिदोषप्रभवे रोगे विज्ञेया हि भिषग्वरैः ॥ ९९ ॥

अर्थ–लवा तीतर और वटेरकी चाल नाडी सन्निपातके कोपसे करतीहै कभी मंदगमन करे, और कभी शीघ्रगमनकरे, ऐसी नाडी त्रिदोषजन्य रोगमें वैद्योंको जाननी चाहिये इस त्रिदोषमें पित्तके क्रमसे साध्यासाध्य

CC-0. J&K Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

और कृच्छ्रसाध्य जानना अर्थात् अधिकपित्तसे साध्य, मध्यसे कष्टसाध्य, और पित्त सर्वथा नाडीमें न होय तो वह रोगी असाध्यहै ।

सामान्यतापूर्वकसुखसाध्यत्व ।

यदा यं धातुमाप्नोति तदा नाडी तथागतिः ।
तथा हि सुखसाध्यत्वं नाडी ज्ञानेन बुध्यते ॥ ६० ॥

अर्थ–नाडी जिसमय जिसधातुमें प्राप्तहोय उससमय यदि उसका प्रकृति अनुसार चलना होय तो पीडा सुखसाध्य ऐसे नाडीज्ञानकरके जानी जातीहै इसका निष्कृष्टार्थ यहहैं कि, अपराह्णादि कालमें वातोल्बणा नाडी प्रथम वातकी गति करके चले, फिर क्रमसे पित्त और कफकी चालचले, किंतु पित्तोल्बणा वातगतिसे न चले तो सुखसाध्य जाननी यदि इस्से विपरीत होय तो विपरीत अर्थात् असाध्य जाननी जैसे किसीने कहाहै " नाडी यथा कालगतिस्त्रयाणां प्रकोपशान्त्यादिभिरेव भूयः" ।

असाध्यत्व ।

मन्दं मन्दं शिथिलशिथिलं व्याकुलं व्याकुलं वा
स्थित्वा स्थित्वा वहति धमनी याति नाशं च सूक्ष्मा ।
नित्यं स्थानात्स्खलति पुनरप्यंगुलिं संस्पृशेद्वा
भावैरेवं बहुविधविधैः सन्निपातादसाध्या ॥ ६१ ॥

अर्थ–जो नाडी कभी प्रखरताराहित मंदमंद गमन करे, कभी स्खलित भावसे कभी व्याकुल व्याकुलवत् [जैसे त्रासित मनुष्य चलताहै) कभी ठहर ठहरेक चले और जो संपूर्ण रूपसे लुप्तहोजाय अथवा बहुत सूक्ष्म वहे अर्थात् यह प्रतीत नहोय कि, यह नाडी चलेहै या नहीं चले और जो नित्यस्थान अर्थात् अंगुष्ठमूलको परित्याग करदे, इसीप्रकार कुछकालमें फिर अपने स्थानमें प्रगटहोय उंगलियोंको आघातकरे, ऐसे अनेक प्रकारके भावोंकरके नाडीको मृत्युकी कारण जाननी ।

महादाहेऽपि शीतत्वं शीतत्वे तापिता शिरा ।
नानाविधगतिर्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ ६२ ॥

अर्थ–जिस प्राणीके देहमें अत्यंत ताप होय परंतु नाडी शीतल होय, एवं देह अत्यंत शीतल होय और नाडी उष्ण प्रतीतहो, तथा जिसनाडीकी अनेकप्रकारकी गति होय उसरोगीकी निश्चय मृत्यु होय, इस श्लोकमें महाशब्द पित्तकृत दाहके निवारणार्थहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्रिदोषे स्पन्दते नाडी मृत्युकालेऽपि निश्चला ॥ ६३ ॥

अर्थ–सन्निपातावस्थामें मृत्युकालमेंभी नाडी सामान्य भावसे चलतीहै क्योंकी अतिसारादि रोगोंमें हाथपैरमें स्वेदादिक करनेसे नाडीका तडफना प्रतीत होताहै।

पूर्वं पित्तगतिं प्रभञ्जनगतिं श्लेष्माणमाबिभ्रतीम्
स्वस्थानभ्रमणं मुहुर्विदधतीं चक्रादिरूढामिव।
तीव्रत्वं दधतीं कलापिगतिकां सूक्ष्मत्वमातन्वतीं
नो साध्यां धमनीं वदन्ति सुधियो नाडीगतिज्ञानिनः ॥६४॥

अर्थ–प्रथम पित्तगतिसे चले (अर्थात् प्रथम वातगति चलना चाहिये सो त्यागदे यह विपरीत क्रम दिखाया) फिर वातगति और फिर कफकी गतिसे चले तथा अपने स्थानको छोड वारंवार अनेक प्रकारसे चक्र (चाक) पर बैठ चाकफेरीके सदृश भ्रमणकरे, कभी तीव्रवेगसे चले और कभी मोरकी गतिके समान उत्तरोत्तर मंद पडजावे ऐसी नाडीको नाडीके ज्ञाता साध्य नहींकहते किंतु असाध्य कहतेहैं।

यात्युच्चा च स्थिरात्यन्ता या चेयं मांसवाहिनी।
या च सूक्ष्मा च वक्रा च तामसाध्यां विदुर्बुधाः ॥ ६५ ॥

अर्थ–जो नाडी अत्यंत ऊंची, अत्यंत स्थिर, और जो मांसवाहिनी कहिये मांसाहारकरनेसे जैसी चले ऐसी चलने लगे और जो अत्यंत सूक्ष्म और टेढीहो उसको वैद्यजन असाध्य कहतेहैं।

असाध्यनाडीकापरिहार।

भारप्रवाहमूर्च्छाभयशोकप्रमुखकारणान्नाडी।
संमूर्च्छितापि गाढं पुनरपि सा जीवनं धत्ते ॥ ६६ ॥

अर्थ–अत्यंत बोझाके उठानेसे, अथवा विषवेग धाराकेबहनेसे, रुधिर देखनेके कारण जो मूर्च्छित होगयाहो राक्षसादि दर्शनकरके भयभीततासे धनपुत्रादि नष्टहोनेके शोकसे जो नाडी अत्यंत स्पन्दरहितभी होगईहो वो फिर भी साध्यताको प्राप्त होतीहै कोई "भावप्रवाह" ऐसा पाठमानताहै सो असत्है।

पतितः सन्धितो भेदी नष्टशुक्रश्च यो नरः।
शाम्यते विस्मयस्तस्य न किञ्चिन्मृत्युकारणम् ॥ ६७ ॥

---

१ भीमत्वंदधतीं कदाचिदपि वा इति पाठांतरम् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–जो उच्चस्थानादिसे गिराहो, हड्डी आदिके जोडनेसे अतिसार रोग वाला, जिसके यक्ष्मा आदि रोगके कारण अथवा रमणकरनेके कारण शुक्रक्षीण होगयाहो, ऐसे मनुष्योंकी यदि नाडी अत्यंत क्षीणभी होगईहो तथापि मृत्युका कारण नहींहै, अर्थात् असाध्यके विस्मयको दूरकरेहै ।

तथा भूताभिषङ्गेऽपि त्रिदोषवदुपस्थिता । समाङ्गा वहते नाडी तथाच न क्रमंगता । अपमृत्युर्नरोगाङ्गा नाडीतत्सन्निपातवत् ॥ ६८ ॥

अर्थ–एवं भूताभिषंग अर्थात् भूतप्रेतबाधामें यदि नाडी सन्निपातके सदृश चले तथा वह नाडी वातपित्त कफ स्वभाव क्रमवालीहो किंतु वे क्रम न होय तौ उस सन्निपातके सदृश नाडीसेभी मृत्युका भय नहींहै ।

स्वस्थानहीने शोके च हिमाक्रान्ते च निर्गदाः । भवन्ति निश्चला नाड्यो न किञ्चित्तत्र दूषणम् ॥ ६९ ॥

अर्थ–उच्चस्थानसे गिरनेसे शोक और हिम (बर्फ कोहल आदिकी शरदी) से यदि नाडी निश्चल होय फिरभी प्रगट होय इस्से मृत्यु शंकाका भय नहींहै । इस श्लोकमें "निर्गदा" जो पदहै सो असंगतहै । क्योंकि निर्गदा नाडीभी निश्चला होतीहै ।

स्तोकं वातकफं जुष्टं पित्तं वहति दारुणम् । पित्तस्थानं विजानीयाद्भेषजं तस्य कारयेत् ॥ ७० ॥

अर्थ–किंचिन्मात्र वातकफयुक्त और पित्त जिसमें प्रबल होय तो उस रोगीका यत्न करना चाहिये, वो असाध्य नहींहै ।

स्वस्थानच्यवनं यावद्धमन्या नोपजायते । तावच्चिकित्सा सत्वेऽपि नासाध्यत्वमिति स्थितिः ॥ ७१ ॥

अर्थ–जबतक नाडी स्वस्थान कहिये अंगुष्ठमूलसे च्युत न होय;तावत्कालतक चिकित्सा करे यह असाध्य नहींहै ।

प्रसङ्गवशकालनिर्णय कहतेहैं ।

भूलता भुजगाकारा नाडी देहस्य संक्रमात् । विशीर्णा क्षीणतां याति मासान्ते मरणं भवेत् ॥ ७२ ॥

अर्थ–कभी नाडी केंचुऐके सदृश कृश और टेढी चले, कभी सर्पके समान

---

१ तत्स्थाचिह्नस्य सत्वेपीति पाठान्तरम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पुष्ट बलयुक्त और तिरछी चले, तथा कभी अलक्ष और अति कृशता पूर्वक गमनकरे एवं कभी देह सूजन आदिसे स्थूल होजावे और कभी कृशहो जाय तो वह रोगी दूसरे महिनेमें मरे।

क्षणाद्गच्छति वेगेन शांततां लभते क्षणात्।
सप्ताहान्मरणं तस्य यद्यङ्गे शोथवर्जितः॥ ७३॥

अर्थ–कभी नाडी जल्दी चले कभी चलनेसे रहि जावे और देहमें शोथ होय नहीं, तो उस प्राणीकी सातदिनमें मृत्यु होय।

निरीक्षा दक्षिणे पादे तदा चैषा विशेषतः।
मुखे नाडी वहेन्नित्यं ततस्तु दिनतुर्यकम्॥ ७४॥

अर्थ–पुरुषके दहने पैरमें और स्त्रीके वामपैरमें यदि नाडी विशेष संचारकरे तथा आदिमें नित्य नाडी चले तो वह रोगी चारदिन जीवे। आदिशब्दसे इस जगे तर्जनी ऊंगली जाननी।

हिमवद्विशदा नाडी ज्वरदाहेन तापिनाम्।
त्रिदोषस्पर्शभजतां तदा मृत्युर्दिनत्रयात्॥ ७५॥

अर्थ--सन्निपात ज्वर दाहसे संतप्त रोगीकी नाडी यदि शीतल और निर्मल होय तो वह रोगी तीन दिनमें मरे।

गतिन्तु भ्रमरस्येव वहेदेकादिनेन तु।
कन्देन स्पन्दते नित्यंपुनर्लगति नाङ्गुलौ॥ ७६।

अर्थ–जिस प्राणीकी नाडी भ्रमरके सदृश गमन करे अर्थात् जैसे भौंरा कुछ दूर उडकर चला जाताहै और फिर उसीजगे आय जाताहै इस प्रकार नाडी चलनेसे उसकी एकदिनमें मृत्यु होय।

मरणे डमरूकारा भवेदेकदिने न तु।

अर्थ–मरणमें नाडी डमरूके आकार होतीहै, वो १ दिनमें मरे।

दृश्यते चरणे नाडी करे नैवाधि दृश्यते।
मुखं विकसितं यस्य तं दूरात्परिवर्जयेत्॥ ७७॥

अर्थ–जिसके चरणमें नाडी प्रतीत होय और हाथमें न मालुमहो, तथा जिसका मुख खुलगयाहो उसे वैद्य त्यागदेय।

वातपित्तकफाश्चापि त्रयो यस्यां समाश्रिताः।
कृच्छ्रसाध्यामसाध्यां वा प्राहुर्वैद्यविशारदाः॥ ७८॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–जिसकी नाडीमें वातपित्त और कफ ये तीनोंदोष होय उसरोगीको बुद्धिवान् वैद्य कृच्छ्रसाध्य अथवा असाध्य कहतेहैं ।

शीघ्रा नाडी मलोपेता शीतला वाथ दृश्यते ।
द्वितीयदिवसे मृत्युर्नाडीविज्ञातृभाषितम् ॥ ७९ ॥

अर्थ–जिस रोगीकी नाडी बहुधा मलदूषित होकर शीघ्र चले, किंवा शीतल प्रतीतहो उस रोगीकी दूसरे दिन मृत्युहोय, इस प्रकार नाडीज्ञान पारंगत वैद्योंने कहाहै ।

मुखे नाडी वहेत्तीव्रा कदाचिच्छीतला वहेत् ।
आयाति पिच्छलस्वेदः सप्तरात्रं न जीवति ॥ ८० ॥

अर्थ–वातनाडी तीव्रगति, तथा कभी मंदबहे तथा अंगमेंसे गाढा पसीना निकले तो वह रोगी सातरात्रि नहीं बचे ।

देहे शैत्यं मुखे श्वासो नाडी तीव्रा विदाहिनी ।
मासार्धं जीवितं तस्य नाडीविज्ञातृभाषितम् ॥ ८१ ॥

अर्थ–शरीरमें शीतलता, मुखसे अत्यंत श्वास छोडे,तथा नाडी तीव्र दाहयुक्त चले, उसका अर्धमास आयुष्यहै, ऐसे नाडीज्ञाताओंने कहाहै ।

मुखे नाडी यदा नास्ति मध्ये शैत्यं बहिः क्रमः ।
यदा मन्दा वहेन्नाडी त्रिरात्रं नैव जीवति ॥ ८२ ॥

अर्थ–जिस कालमें वातनाडी चले नहीं अंतर्गत शीतहो तथा बाहर ग्लानीहो कर मंदमंद नाडी चले तो वह रोगी तीनरात्रि नहीं जीवे ।

अतिसूक्ष्मातिवेगा च शीतला च भवेद्यदि ।
तदा वैद्यो विजानीयात्स रोगी त्वायुषः क्षयी ॥ ८३ ॥

अर्थ--जिस कालमें नाडी अति सूक्ष्म किंवा अतिवेगवान् और शीतल वहे तो रोगी क्षीण आयुहै ऐसे वैद्य जाने

विद्युद्वद्रोगिणां नाडी दृश्यते न च दृश्यते ।
अकालविद्युत्पातेव स गच्छेद्यमसादनम् ॥ ८४ ॥

अर्थ- जिस रोगीकी नाडी कभी२विजलीके समान फडकजावे और फिर अस्तहो जावे, वो रोगी अकस्मात् जैसे बिजली गिरतीहै, इसप्रकार रोगी यमराजके घर जाय ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तिर्यगुष्णा च या नाडी सर्पगा वेगवत्तरा ।
कफपूरितकंठस्य जीवितं तस्य दुर्लभम् ॥ ८५ ॥

अर्थ--नाडी उष्ण वक्रगति तथा सर्पके समान बहुत वेगवानहो, तथा कंठ कफसे घिरजावे ऐसा रोगीका जीवन दुर्ल्लभ जानना ।

चला चलितवेगा च नासिका धारसंयुता ॥
शीतला दृश्यते या च याममध्येच मृत्युदा ॥ ८६ ॥

अर्थ--जिसकी नाडी कांपनेवाली तथा चंचल नासिकाके श्वासोच्छ्वासके आधारसे चलने वाली और शीतल ऐसी प्रतीतहो वो रोगी एकप्रहरमें मरे ऐसा जानना ।

शीघ्रा नाडी मलोपेता मध्याह्नेग्निसमो ज्वरः ।
दिनैकं जीवितं तस्य द्वितीयेऽह्नि म्रियेत सः ॥ ८७ ॥

अर्थ–जिस रोगीकी त्रिदोषयुक्त नाडी बहुतजल्दी चले, तथा जिसको मध्याह्नमें अग्निके समान ज्वर आवे, उस रोगीकी आयु एकदिनकीहै दूसरे दिन मृत्यु होय ।

स्कन्देन स्पन्दते नित्यं पुनर्लंगति नाङ्गुलौ ।
मध्ये द्वादशयामानां मृत्युर्भवति निश्चितम् ॥ ८८ ॥

अर्थ–जो नाडी अपने मूलस्थानमें फडके नहीं और उंगलियोंका स्पर्श न करे उसकी बारह प्रहरमें मृत्युहोय, ऐसा जानना ।

स्थित्वा नाडी मुखे यस्य विद्युद्द्युतिरिवेक्षते ।
दिनैकं जीवितं तस्य द्वितीये म्रियते ध्रुवम् ॥ ८९ ॥

अर्थ–जिस रोगीकी नाडी मूलस्थानके अग्रभागमें ठहरकर बिजलीके सदृश तडफजावे वह एकदिन जीवे, दूसरे दिन निश्चय मरे ।

स्वस्थानविच्युता नाडी यदा वहति वा न वा ।
ज्वाला च हृदये तीव्रा तदा ज्वालावधि स्थितिः ॥ ९० ॥

अर्थ–जिस रोगीकी नाडी अपने स्थानसे विच्युतहो (छूट) कर कभी चले कभी नहीं चले और हृदयमें तीव्र दाह होय तो जबतक हृदयमें ज्वालाहै तावत्काल रोगीका जीवन है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अङ्गुष्ठमूलतो बाह्ये द्व्यंगुले यदि नाडिका ।
प्रहरार्द्धाद्बहिर्मृत्युं जानीयाच्च विचक्षणः ॥ ९१ ॥

अर्थ–अंगुष्ठमूल अर्थात् तर्जनी उंगली धरनेके स्थलमें यदि नाडीकी गति प्रतीत नहो, केवल मध्यमा और अनामिका इन दो अंगुलीसे प्रतीत होय तो उस रोगीकी अर्ध प्रहरके उपरांत मृत्यु होय ।

सार्द्धद्व्याङ्गुलाद्बाह्ये यदि तिष्ठति नाडिका ।
प्रहरैकाद्बहिर्मृत्युं जानीयाच्च विचक्षणः ॥ ९२ ॥

अर्थ–नाडी मूलस्थानसे २॥ अंगुल अंतर अर्थात् यदि केवल अनामिकाके शेषार्द्ध मात्रमें फडके उसकी प्रहरउपरांत अर्थात् दूसरे प्रहरमें मृत्युहोय ।

पादाङ्गुलगता नाडी चञ्चला यदि गच्छति ।
त्रिभिस्तु दिवसैस्तस्य मृत्युरेव न संशयः ॥ ९३ ॥

अर्थ–यदि नाडी तर्जनीको सर्वांश और मध्यमा ऊंगलीके चतुर्थांशमें व्याप्तहो प्रतीति होवे और मध्यमाके अवशिष्ट पादत्रय और अनामिकाके सर्वांशमें न प्रतीत होय तो उस रोगीकी तीनदिनमें मृत्यु होय ।

पादाङ्गुलगता नाडी कोष्णा वेगवती भवेत् ।
पञ्चभिर्दिवसैस्तस्य मृत्युर्भवति नान्यथा ॥ ९४ ॥

अर्थ--नाडी पूर्ववत् तर्जनी और मध्यमाके चतुर्थांशमें व्यापकहो जल्दी जल्दी चले और किंचिन्मात्र गरम प्रतीतहोय तो उसरोगीकी चारदिनमें निश्चय मृत्युहोय ।

पादाङ्गुलगता नाडीमन्दमन्दा यदा भवेत् ।
पञ्चभिर्दिवसैस्तस्य मृत्युर्भवति नान्यथा ॥ ९५ ॥

अर्थ–नाडी पूर्ववत् समग्र तर्जनी और मध्यमाके चतुर्थांशमें व्याप्तहो मन्द मन्द चले तो उसरोगीकी पांचवे दिन मृत्युहोय ।

नाडी द्वारा आयुका ज्ञान ।

वामनाडी दीर्घरेखा बाहुमूले च स्पन्दते ।
जीवेत्पञ्चशतं वर्षं नात्र कार्या विचारणा ॥ ९६ ॥

अर्थ–जिस रोगीकी वामनाडी दीर्घरेखाके आकारसे भुजाकी जडमें तडफे वो १०५ वर्षजीवे इसमें संदेह नहीं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दीर्घाकारा वामनाडी कर्णमूले च स्पन्दते।
जीवेत्पञ्चशतं सार्द्धं धनिको धार्मिको भवेत् ॥ ९७ ॥

अर्थ--जिसकी वामनाडी आकारमें लंबी होकर कानकी जडमें प्रतीत होय वह सार्धपंचशतवर्ष जीवे और धनिक तथा धार्मिक होय।

वामनाडी स्वल्परेखा हनुमूले च स्पन्दते।
पञ्चवर्षाधिकञ्चैव जीवनं नात्रसंशयः ॥ ९८ ॥

अर्थ–जिसकी वामनाडी स्वल्परेखामें हो ठोडीकी जडमें तडफे वो पांच वर्ष अधिक जीवे इसमें संदेह नहीं।

नाडीद्वारा भोजनका ज्ञान।

पुष्टिस्तैलगुडाहारे मांसे च लगुडाकृतिः। क्षीरे च स्तिमिता वेगा मधुरे भेकवद्गतिः ॥ ९९ ॥ रम्भागुडवटाहारे रूक्षशुष्कादिभोजने। वातपित्तार्त्तिरूपेण नाडी वहति निष्क्रमम् ॥ १०० ॥

अर्थ--तैल और गुडके खानेसे नाडी पुष्ट प्रतीत होतीहै, मांसके खानेसे नाडी लकडीके आकार चलतीहै, दूधपीनेसे मंदगतिसे चलतीहै। मधुरआहारसे नाडी मेंडकके समान चलतीहै केला, गुड, वडा, रूक्षवस्तु, और शुष्क द्रव्यादि भोजनसे जैसी वातपित्तरोगमें नाडी चलतीहै उस प्रमाण चलेहै।

अथ रसज्ञानम्।

मधुरे बर्हिगमना तिक्ते स्याद्भूलतागतिः[1]। अम्ले कोष्णात्प्लवगतिः कटुके भृंगसन्निभा ॥ १०१ ॥ कषाये कठिना म्लाना[2] लवणे सरला द्रुता। एवं द्वित्रिचतुर्योगे नाना धर्मवती धरा ॥ १०२ ॥

अर्थ–मिष्ट पदार्थ भक्षणसे नाडी मोरकीसी चाल लचतीहै कडुई द्रव्य भक्षणसे स्थूलगति, खट्टे पदार्थ खानेसे कुछ उष्ण और मेंडकाकीगति होतीहै, चरपरी द्रव्य खानेसे भौंराके आकार गति होतीहै, कसेली द्रव्य खानेसे नाडी कठोर और म्लान होतीहै. निमकीन पदार्थ खानेसे सरल (सीधी) और जल्दी चलने वाली होतीहै, इसीप्रकार भिन्न भिन्न रसके

१ तिक्ते स्यात्स्थूलता गते। २ कषाये कठिनाम्लावा इति वा पाठः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एकही समय सेवन करनेसे नाडी अनेकप्रकारकी गतिवाली होतीहै ।

अम्लैश्च मधुराम्लैश्च नाडी शीता विशेषतः । चिपिटैर्भृष्टद्रव्यैश्च स्थिरा मन्दतरा भवेत् ॥१०३॥ कूष्माण्डमूलकैश्चैव मन्दमन्दा च नाडिका । शाकैश्च कदलैश्चैव रक्तपूर्णेवनाडिका ॥ १०४ ॥

अर्थ–खट्टे पदार्थ अथवा मधुराम्ल (मिष्ट और खट्टामिला) भोजनसे नाडी शीतल होतीहै, चिरवा और भुनीहुई (चना, वोहरी) द्रव्य भक्षणसे नाडी स्थिर और मंदगति चलतीहै पेडा मूली अथवा कंदपदार्थके भक्षणसे नाडी मंद मंद चलतीहै शाक (पत्रपुष्पादिकका) और केलेकी फली भक्षण करनेसे नाडी रक्तपूर्णके सदृश चलेहै ।

मांसात्स्थिरवहा नाडी दुग्धे शीता बलीयसी । गुडैः क्षीरैश्च पिष्टैश्च स्थिरा मन्दवहा भवेत् ॥ १०५ ॥ द्रवेऽतिकठिना नाडी कोमला कठिनापि च । द्रवद्रव्यस्य काठिन्ये कोमला कठिनापि च ॥ १०६ ॥

अर्थ--मांस भक्षणसे नाडी मंदगामिनी होतीहै, दूधके पीनेसे नाडी शीतल और बलवती होतीहै, तथा गुड, दूध, और पिष्टपदार्थ (चूनके, पिठ्ठी आदिके पदार्थ) भक्षणसे नाडी चंचलतारहित मंदगामिनी होतीहै, द्रवपदार्थ (कढी, पने, श्रीखंडआदि) भोजनसे नाडी कठिन होतीहै और कठोर (लड्डू, सुहार, आदि) से नाडी कोमल होतीहै यदि द्रवपदार्थ कुछ कठोर होयतो नाडी कोमल और कठोर उभय स्वभाववती होतीहै ।

उपवासाद्भवेत्क्षीणा तथा च द्रुतवाहिनी ।
संभोगान्नाडिका क्षीणा ज्ञेया द्रुतगतिस्तथा ॥१०७॥

अर्थ–उपवास (निराहार) से नाडी क्षीण और शीघ्रवाहिनी होतीहै एवं स्त्रीसंभोगसे नाडी क्षीण और शीघ्र चलनेवाली होतीहै ।

कुपथ्यवसनाडीकीचाल ।

उष्णत्वं विषमावेगा ज्वरिणां दधि भोजना ॥ १०८ ॥

अर्थ–यदि ज्वरवान् पुरुष दही खाय तो उसकी नाडी गरम और विषमवेगवती होतीहै ।

इति श्रीमायुरकृष्णलालाङ्गजदत्तरामेणसङ्कलिते नाडीदर्पणे द्वितीयावलोकः ॥ २ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अब इसके उपरांत कितनेक रोगोंके नाडीकी जैसी अवस्था होतीहै उसको लिखतेहैं तहाँ, रोगनिरूपणमें प्रधानता करके प्रथम ज्वरनिरूपण करतेहै।

ज्वरके पूर्वरूपमें।

अङ्गग्रहेण नाडीनां जायन्ते मंथराः प्लुवाः।
प्लुवः प्रबलतां यातिज्वरदाहाभिभूतये ॥ १ ॥
सान्निपातिकरूपेण भवन्ति सर्ववेदनाः।

अर्थ–ज्वर आनेवाली अवस्थाके कितनेक क्षण पहिले अंगमें पीडा होने लगे, नाडी मंथर (मंद) भावसे मेंडकाकी चाल चलने लगे तथा दाह ज्वरकी पूर्वावस्थाके वा धारामें वहनेवाले मेंडकाके समान तथा सांनिपातिक ज्वरकी पूर्व अवस्थाके प्रमाण नाना आकृतिसे गमन करे।

ज्वरके रूपमें।

ज्वरकोपेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ॥ २ ॥

अर्थ–जिस कालमें इसप्राणीको ज्वर चढआताहै उस समय नाडी गरम और वेगवती होतीहै।

ऊष्मा पित्तादृते नास्ति ज्वरो नास्त्युष्मणा विना।
उष्णा वेगधरा नाडी ज्वरकोपे प्रजायते ॥ ३ ॥

अर्थ–विना पित्तके गरमी नहीं और विनागरमीके ज्वर नहीं होता अतएव ज्वरके वेगमें नाडी गरम और वेगवान् होतीहै।

ज्वरे च वक्रा धावन्ती तथा च मारुतः प्लुवे।
रमणान्ते निशि प्रातस्तथा दीपशिखा यथा ॥ ४ ॥

अर्थ–ज्वरके कोपमें और बादीमें नाडी टेढी और दौडती चलतीहै, तथा मैथुनकरनेके पिछाडी रात्रिमें और प्रातःकालमें नाडी दीपाशिखाके समान मंद गमन करतीहै।

वातज्वरे।

सौम्या सूक्ष्मा स्थिरा मन्दा नाडी सहजवातजा।
स्थूला च कठिना शीघ्रा स्पन्दते तीव्रमारुते ॥ ५ ॥
वक्रा च चपला शीतस्पर्शा वातज्वरे भवेत्।

अर्थ–स्वाभाविक वायुके द्वारा नाडी कोमल, सूक्ष्म, स्थिर, और मंद

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वेगवाली होतीहै तीव्रवायु द्वारा नाडीस्थूल, कठिन, तथा जल्दी चलनेवाली होतीहै और वातज्वरमें टेढी, चपल, तथा शीतल स्पर्शवान् नाडी होती है ।

द्रुता च सरला दीर्घा शीघ्रा पित्तज्वरे भवेत् ।
शीघ्रमाहननं नाड्याः काठिन्याच्चलते तथा ॥ ६ ॥

अर्थ-पित्तज्वरमें नाडी शीघ्र चलनेवाली, सरल, दीर्घ और कठिनताके साथ शीघ्र फडकनेवाली होतीहै ।

नाडी तन्तुसमा[1] मन्दा शीतला श्लेष्मदोषजा ।
मलाजीर्णे नातितरां स्पन्दनं च प्रकीर्तितम् ॥ ७ ॥

अर्थ-कफके प्रकोपमें नाडी तंतुवत् सूक्ष्म, मंद वेगवाली और शीतल होती है । और मलाजीर्णमें अत्यंत नहीं फडकती ।

द्वंद्वजनाडी ।

चञ्चला[2] तरला स्थूला कठिना वातपित्तजा । ईषच्च दृश्यतेतूष्णा मन्दा स्याच्छ्लेष्मवातजा ॥ ८ ॥ निरंतरं खरं रूक्षं मन्दश्लेष्मातिवातलम् । रूक्षवाते भवेत्तस्य नाडी स्यात्पित्तसन्निभा ॥ ९ ॥ सूक्ष्मा शीता स्थिरा नाडी पित्तश्लेष्मसमुद्भवा ॥ १० ॥

अर्थ-वातपित्तकी नाडी चञ्चल, तरल, स्थूल, और कठोर होतीहै । वातकफकी नाडी कुछ गरम और मंदगामिनी होतीहै । जिस नाडीमें किंचिन्मात्र कफ और अधिक वात होतीहै । वह अत्यंत खर और रूक्ष होतीहै । जिसके नाडीमें वायूका अत्यंत कोप होय उसकी पित्तके सदृश अर्थात् अत्यंत वक्र और अत्यंत स्थूल होय, पित्तकफ ज्वरमें नाडी सूक्ष्म शीतल और मन्दवेगवाली होतीहै ।

रुधिरकोपजनाडी ।

मध्ये करे वहेन्नाडी यदि सन्तापिता ध्रुवम् ।
तदा नूनं मनुष्यस्य रुधिरापूरितामलाः ॥ ११ ॥

---

१ मंदाच सुस्थिरा शीता पिच्छला श्लेष्मिणोर्भवेत् इति पाठांतरम् ।

२ वक्रा च ईषच्चपला कठिना वातपित्तजा इति पाठान्तरम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ--मध्य करमें अर्थात् मध्यमांगुलीनिवेशस्थलमें नाडी संतापित होकर तडफे तो जानेकि वातादि दोषत्रय रक्तप्रकोपकरके परिपूर्णहै। अर्थात् रुधिरसे दूषितहै।

आगन्तुकरूपभेदमाह।

भूतज्वरे सेक इवातिवेगाद्धावन्ति नाड्यो हि यथाब्धिगामाः।

अर्थ--भूतज्वरमें नाडी अत्यंत वेगसे चलतीहै, जैसे समुद्रमें जानेवाली नदियोंका प्रवाह वेगसे चलताहै।

तथा।

एकाहिकेन क्वचन प्रदूरे क्षणान्तगामा विषमज्वरेण ॥ १२ ॥
द्वितीयके वाथ तृतीयतुर्य्ये गच्छन्ति तप्ता भ्रमिवत् क्रमेण १३॥

अर्थ -एकाहिकज्वरमें नाडी सरलमार्गको त्यागकर क्षणक्षणमें पार्श्वगामिनी होतीहै तथा द्वितीय, तृतीय (तिजारी) और चातुर्थनामक विषमज्वरमें उष्ण होकर इतस्ततो धावमाना होतीहै।

अन्यत्रापि।

उष्णवेगधरा नाडी ज्वरकोपे प्रजायते। उद्वेगक्रोधकामेषु भयचिन्ताश्रमेषुच । भवेत्क्षीणगतिर्नाडीज्ञातव्या वैद्यसत्तमैः ॥ १४ ॥

अर्थ--गरम और वेगवान् नाडी ज्वरके कोपमें होतीहै उद्वेग, क्रोध, काम, बाधा, भय, चिन्ता और श्रम इनमें नाडी क्षीणगतिवाली होतीहै अर्थात् मंद मंद गमन करतीहै।

प्रसङ्गादाह।

व्यायामे भ्रमणे चैव चिन्तायां श्रमशोकतः।
नाना प्रभावगमना शिरा गच्छति विज्वरे ॥ १५ ॥

अर्थ--व्यायाम (दंडकसरत) करनेसे, डोलनेसे, चिंता, श्रम, और शोकसे एवं ज्वररहित मनुष्यकी नाडी अनेकप्रभावसे गमन करतीहै ।

अजीर्णरूपमाह।

अजीर्णे तु भवेन्नाडी कठिना पार्श्वतो जडा।
प्रसन्ना च द्रुता शुद्धा त्वरिता च प्रवर्तते ॥ १६ ॥

अर्थ- आमाजीर्ण और पक्वाजीर्ण दोनोंमें नाडी कठोर और दोनोंपार्श्वोंमें जड होतीहै इसीप्रकार कभी निर्मल निर्दोष तथा शीघ्रवेगवती होतीहै।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तत्र विशेषमाह ।

पक्वाजीर्णे पुष्टिहीना मन्दं मन्दं वहेज्जडा ।
असृक्पूर्णा भवेत्कोष्णा गुर्वी सामा गरियसी ॥ १७ ॥

अर्थ--पक्वाजीर्णमें नाडी पुष्टताराहित मंद मंद चलतीहै। तथा भारीहोतीहै एवं रुधिरकरके परिपूर्णनाडी गरम भारी होतीहै और आमवातकी नाडी भारी होतीहै ।

लघ्वी भवति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती मता ।
मन्दाग्नेः क्षीणधातोश्च नाडी मन्दतरा भवेत् ।
मग्नेऽग्नौ क्षीणतां याति नाडी हंसाकृतिस्तथा ॥ १८ ॥

अर्थ--दीप्ताग्निवाले मनुष्यकी नाडी हलकी और वेगवती होतीहै, मंदाग्नि वालेकी और क्षीणधातुकपुरुषकी नाडी मंदतर होतीहै, इसीप्रकार जिस मनुष्यकी जठराग्नि सर्वथा मंदहोगईहो उसकी नाडी हंसके समान अतिशय-मंद होतीहै ।

आमाश्रमे पुष्टिविवर्धनेन भवन्ति नाड्यो भुजगाग्रमानाः ।
आहारमांद्यादुपवासतो वा तथैव नाड्योऽग्रभुजाभिवृत्ताः॥१९॥

अर्थ--आम, और परिश्रम न करनेसे तथा देहमें अत्यंत पुष्टता होनेसे नाडी सर्पके अग्रभागके सदृश होतीहै इसीप्रकार थोडा भोजन करनेसे या उपवास करनेसे नाडी भुजाके अग्रभागमें सर्पके अग्रभाग समान होतीहै ।

ग्रहणीरोगे ।

पादे च हंसगमना करे मंडूकसंप्लवा ।
तस्याग्निर्मन्दता देहे त्वथवा ग्रहणीगदे ॥ २० ॥

अर्थ--जिसकी पैरकी नाडी हंसके समान और हाथकी नाडी मेंडकाके समान चले उसके देहमें मंदाग्निहै अथवा संग्रहणी रोगहै ऐसा जानना ।

भेदेन शान्ता ग्रहणीगदेन निर्वीर्यरूपा त्वतिसारभेदे ।
विलम्बिकायां प्लवगा कदाचिदामातिसारे पृथुता जडा च॥२१॥

अर्थ--संग्रहणीका दस्तहोनेके उपरांत नाडी शांतवेगा होतीहै, अतिसाररोगका दस्तहोनेके उपरांत नाडी सर्वथा बलहीन होजातीहै विलंबिकारोगमें नाडी मेंडकाके तुल्य चलतीहै इसीप्रकार आमातिसारमें नाडी स्थूल और जडवत् होतीहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषूचिकाज्ञानम्।

निरोधे मूत्रशकृतोर्विड्ग्रहे त्वितराश्रिताः।
विषूचिकाभिभूते च भवन्ति भेकवत्क्रमाः॥ २२॥

अर्थ--केवल मल वा केवल मूत्र अथवा मलमूत्र दोनों येसाथ बंद होजावे वा इच्छापूर्वक इनके वेगको रोकनेसे एवं विषूचिका रोगमें नाडीकी गति भेंडकाकी चालके समान होतीहै।

आनाहमूत्रकृच्छ्रे।

आनाहे मूत्रकृच्छ्रे च भवेन्नाडीगरिष्ठता।

अर्थ–आनाह (अफरा) और मूत्रकृच्छ्र रोगमें नाडी गुरुतर अर्थात् भारी होतीहै।

शूलरोगे।

वातेन शूलेन मरुत्प्लवेन सदैव वक्रा हि शिरा वहन्ती।
ज्वालामयी पित्तविचेष्टितेन साध्यान शूलेन च पुष्टिरूपा२३

अर्थ–वायुशूलमें और वायुके प्रखरतानिबंधनमें नाडी सदैव अत्यंत टेढी चलतीहै। पित्तके शूलमें यह अतिशय गरम होतीहै। और आमशूलमें पुष्टियुक्तहोतीहै।

प्रमेहज्ञानम्।

प्रमेहे ग्रन्थिरूपा सा सुतप्ता त्वामदूषणे।

अर्थ–प्रमेह रोगमें नाडी ग्रंथि अर्थात् गांठके आकार प्रतीत होयहै और आमवात रोगमें नाडी सर्वकालमें उष्ण होतीहै।

विषविष्टम्भगुल्मज्ञानम्।

उत्पित्सुरूपा विषरिष्टकायां विष्टम्भगुल्मेन च वक्ररूपा।
अत्यर्थवातेन अधः स्फुरन्ती उत्तानभेदिन्यसमाप्तकाले॥२४॥

अर्थ–विषभक्षण वा सर्पादि दंशजन्य अरिष्टलक्षण प्रकाशित होनेसे तत्कालमें नाडी देखनेसे बोधहोयहै। कि, इसके यह रोग नवीन उत्पन्न होताहै। और विष्टंभ तथा गुल्म रोगमें विषके तुल्य और विशेषता यह होतीहै कि, उसनाडीकी गति वक्ररूप होतीहै। इन दोनों पीडामें अत्यंत वायुका प्रकोप होनेसे नाडी अधःस्फुरित होय एवं इनकी असंपूर्णावस्थामें अर्थात् पूर्वरूपावस्थामें नाडी अत्यंत उर्ध्वगति होय।

गुल्मे विशेषमाह।

गुल्मेन कम्पाथ पराक्रमेण पारावतस्येव गतिं करोति॥ २४॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ--गुल्मरोगमें नाडी कंपितहो बलपूर्वक खबूतरकी तुल्य गमन करतीहै।

अथ भगन्दरज्ञानम् ।

व्रणार्थे कठिने देहे प्रयाति पैत्तिकं क्रमम् । भगन्दरानुरूपेण नाडी व्रणनिवेदने ॥ २६ ॥ प्रयाति वातिकं रूपं नाडीपाव-करूपिणी ॥ २७ ॥

अर्थ--व्रणरोगकी अपक्कअवस्थामें नाडीकी गति पैत्तिक नाडीके तुल्य होतीहै । भगंदर तथा नाडीव्रण रोगमें नाडीकी गति वातनाडीके तुल्य और अत्यंत उष्ण होतीहै ।

वान्तादिज्ञानम् ।

वान्तस्य शल्याभिहतस्य जन्तोर्वेगावरोधाकुलितस्य भूयः । गतिं विधत्ते धमनी गजेन्द्रमरालमानेव कफोल्बणेन ॥ स्त्री-रोगादिकमपि रक्तादिज्ञानक्रमेण ज्ञातव्यम् ॥ २८ ॥

अर्थ–वमित (जिसने रद्द करीहो) शल्याभिहत (जिसको किसी प्रकारका बाण आदि शल्य लगाहो) और वेगरोधी (जिसके मल मूत्रको धारण कर रक्खाहो) ऐसे प्राणियोंकी नाडी तथा कफोल्बणा नाडी हाथी और हंसा-दिककी गतिके समान चलतीहै । इसीप्रकार रक्तादि ज्ञानकरके अनुक्त जो स्त्रीके रोग प्रदरादिक उनकोभी वैद्य अपनी बुद्धि मानीसे जान लेवे यह नाडीपरीक्षा शंकरसेनके मतानुसार लिखीहै ।

नाडीस्पन्दनसंख्या ।

षष्ट्यास्पन्दास्तु मात्राभिः षट्पञ्चाशद्भवन्ति हि । शिशोः सद्यः प्रसूतस्य पञ्चाशत्तदनन्तरम् ॥ २९ ॥ चत्वारिंशत्ततः स्पन्दाः षट्त्रिंशद्यौवने ततः । प्रौढस्यैकोनत्रिंशत्स्युर्वार्ध-केऽष्टौ च विंशतिः ॥ ३० ॥

अर्थ–अब नाडीके फडकनेकी संख्या कहतेहैं, जैसे कि ६० दीर्घ अक्षर उच्चारण करनेमें जितना काल लगताहै उतने समयमें अर्थात् १ पलमें तत्काल हुए बालकी नाडीकी स्पंदनसंख्या ५६ बार होतीहै । इसके उप-रान्त अवस्था बढनेके अनुसार ५० तथा ४० बार होतीहै । यौवन अवस्था अर्थात् जवानीमें ३६ बार होतीहै । और प्रौढ अवस्थामें २९ बार और बुढापेमें २८ बार, एकपलमें नाडी फडकतीहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पुंसोऽतिस्थविरस्यस्युरेकत्रिंशदतः परम्। योषितां पुरुषाणाञ्च स्पन्दास्तुल्याः प्रकीर्त्तिताः॥ ३१॥ प्रौढानां रमणीनान्तु द्व्यधिकाः सम्मता बुधैः॥ ३२॥

अर्थ–अति वृद्धहोनेसे नाडीकी संख्या फिर बढने लगतीहै अर्थात् एकपलमें ३१ बार तडफतीहै। यह अवस्था भेदकरके संपूर्ण स्पन्दन संख्या लिखी गईहै। यह संख्या स्त्री और पुरुष दोनोंमें समान कहीहै। परंतु केवल प्रौढावस्थामें स्त्रीकी नाडी संख्या संख्याकी अपेक्षा अधिक अधिक अर्थात् प्रौढ पुरुषकी स्पन्दनसंख्या प्रतिपलमें २९ बार होतीहै। और प्रौढास्त्रीकी संख्या ३१ बार होतीहै।

दशगुर्वक्षरोच्चारकालः प्राणः षडात्मकैः।
तैः पलं स्यात्तु तत्षष्ट्या दण्ड इत्यभिधीयते॥ ३३॥

अर्थ–एक दीर्घवर्ण उच्चारण करनेमें जितना समय लगताहै उसको एक मात्रा अथवा निमेष कहतेहैं। १० मात्राका १ प्राण ६ प्राणका १ पल ६० पलका १ दंड होताहै। अतएव एक पलका साठ भाग उसमें एक भागको विपल कहतेहैं उसीको मात्रा कहतेहैं।

मतान्तरेण।

स्वस्थानां देहिनां देहे वयोवस्थाविशेषतः।
प्रवहन्ति यथा नाड्यस्तत्संख्यानमिहोच्यते॥ ३४॥

अर्थ–अब मतान्तरसे कहतेहैं कि, स्वस्थ पुरुषोंके देहमें आयुकी अवस्था विशेषकरके जैसे नाडी चलतीहै उनकी संख्या इसग्रंथमें लिखतेहैं।

सार्द्धद्वयपलः कालो यावद्गच्छति जन्मतः।
तावत्प्रकम्पते नाडी चत्वारिंशच्छताधिकम्॥ ३५॥

अर्थ–बालकके जन्मलेनेसे यावत् २॥ पल व्यतीत नहीं हो उतने समयमें १४० बार नाडी वारंवार कंपन होतीहै।

तदूर्ध्वं हायनं यावत्सार्द्धद्वयपलेन सा।
मुहुः प्रकम्पमाधत्ते त्रिंशद्वारं शतोत्तरम्॥ ३६॥

अर्थ–फिर १ वर्षकी अवस्थापर्यंत बालककी नाडी २॥ पलमें १३० बार तडफतीहै।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उपरिष्टादाद्वितीयात्तावत्काले शरीरिणः ।
ततः प्रकम्पते नाडी दशाधिकशतं मुहुः ॥ ३७ ॥

अर्थ–वर्ष दिनसे लेकर जबतक यह बालक दो वर्षका होताहै तावत्काल-पर्यंत नाडी ढाई पलमें ११० बार वारंवार तडफतीहै ।

ततस्त्रिवत्सरं व्याप्य देहिनां धमनी पुनः ।
मुहुः प्रकम्पते तद्वत्सार्द्धद्वयपले शतम् ॥ ३८ ॥

अर्थ–फिर दो वर्षसे उपरांत तीन वर्षतकके बालककी नाडी २॥ पलमें १०० वार वारंवार तडफतीहै ।

ततस्त्वा सप्तमाद्वर्षान्नवतिः स्यात्प्रवेपनम् ।
धमन्यास्तन्मिते काले प्रत्यक्षादनुभूयते ॥ ३९ ॥

अर्थ–फिर तीन वर्षसे सात वर्षतकके बालककी नाडी २॥ पलमें ९० बार वारंवार चलतीहै ।

ततश्चतुर्दशं तावत्पञ्चाशीतिः प्रवेपनम् । त्रिंशद्वर्षमभिव्याप्य ततोऽशीतिः प्रकीर्तितम् । शतार्द्धवत्सरं व्याप्य कंपनं पञ्चसप्ततिः । ततोऽशीतौ प्रकथितं षष्टिवारं प्रवेपनम् ॥४०॥

अर्थ–फिर सात वर्षसे लेकर चौदह वर्षकी अवस्थातक इस प्राणीकी नाडी २॥ पलमें ८५ बार तडफतीहै । और चौदह वर्षकी अवस्थासे लेकर ३० वर्षकी अवस्थापर्यंत ढाई पलमें ८० वार तडफतीहै । तीस वर्षके उपरांत पचास वर्ष पर्यंत ८० बार कंपन होताहै । और पचास वर्षसे लेकर अस्सी वर्षकी अवस्थातक इस प्राणीकी नाडी २॥ पलमें ६० बार कंप होतीहै ।

वयोऽवस्थाक्रमेणैवं क्षीयन्ते गतयो मुहुः ।
सार्द्धद्वयपले काले नाडीनामुत्तरोत्तरम् ॥ ४१ ॥

अर्थ–फिर जैसे जैसे अवस्था क्षीण होती जातीहै उसी प्रकार नाडीका गमनभी २॥ पलमें क्षीण होता जाताहै ।

एवं बहुविधाद्रोगात्तत्तलिङ्गानुबोधनी ।
नाडीनां च गतिस्तद्वद्भवेत्कालात्पृथक्पृथक् ॥ ४२ ॥

अर्थ–इसप्रकार अनेकविध रोगोंसे उन्हीं उन्हीं लिङ्गोंकी बोधन करनेवाली नाडियोंकी गति पृथक् पृथक् कालमें पृथक् पृथक् होतीहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हृदयस्य बृहद्भागः संकोचं प्राप्यते यदि ।
प्रसारयेत्तदा नाडी वायुना रक्तवाहिनी ॥ ४३ ॥

अर्थ–जिस समय हृदयका बृहद्भाग संकुचित होताहै और खुलताहै उस-समय रक्तवाहिनी नाडियोंकी गति पवनके वेगसे प्रस्पन्दन होतीहै ।

नाडीगतिरतिक्षीणा भवेन्मलविभेदतः ।
जीर्णज्वरादल्परक्ता दुर्बलत्वाच्च तादृशी ॥ ४४ ॥

अर्थ–मलके निकलनेसे नाडीकी गति अत्यंत क्षीण होतीहै । उसीप्रकार जीर्णज्वरसे अल्परुधिरसे और दुर्बलतासेभी नाडी अतिक्षीण होतीहै ।

तर्पयन्त्यसृजं देहे व्याघातैर्गतिभेदतः।
तेजःपुञ्जा चञ्चला च दुर्बला क्षीणधीरगे ॥ ४५ ॥

अर्थ--ये संपूर्ण रक्तवाहिनी नाडी आघात करके और अपनी गतिके भेद-से देहमें रुधिरको तर्पण करेहै अर्थात् सर्वत्र फैलातीहै । उनकी गति भेद कहतेहै । जैसे-तेजःपुञ्जा, चञ्चला, दुर्बला, क्षीणदा और धीरगामिनी, ये नाडियोंकी पांच प्रकारकी गति हैं ।

चञ्चला और तेजःपुञ्जागति ।

रक्तोष्णे शीघ्रगा नाडी ज्वरे च चञ्चला भवेत् ।
ज्वरारम्भे तथा वाते तेजःपुञ्जा गतिः शिरा ॥ ४६ ॥

अर्थ–तहां रुधिरके कोपमें गरमीमें नाडी शीघ्र चलतीहै, उसीप्रकार ज्व-रमें चंचला नाडी होतीहै और ज्वरके आरंभमें तथा वातके रोगमें नाडी-की तेजःपुंजा गति होतीहै ।

दुर्बला और क्षीणनाडी ।

दुर्बले ज्वररोगे च अतिसारे प्रवाहिके ।
दुर्बला क्षीणदा नाडी प्रबला प्राणघातिका ॥ ४७॥

अर्थ–दुर्बलतामें ज्वरमें अतिसार और प्रवाहिकारोगमें नाडीकी दुर्बला गति होतीहै, क्षीणदा नाडीप्रबल प्राणोंकी नाशक होतीहै ।

बहुकालगता रोगाः सा नाडी धीरगामिनी ।

अर्थ–जिसप्राणीके बहुतदिनोंसे रोगहोवे उसकी नाडी धीरगामिनीहोतीहै ।

सुखीपुरुषकीनाडी ।

हंसगा चैव या नाडी तथैव गजगामिनी ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सुखं प्रशस्तं च भवेत्तस्यारोग्यं भवेत्सदा ॥ ४८॥

अर्थ–जिसप्राणीकी नाडी हंसकीसी अथवा हाथीकीसी चाल चले उसको उत्तम सुख होय और सदैव आरोग्य रहे ।

सुव्यक्तता निर्मलत्वं स्वस्थानस्थितिरेव च ।
अमन्दत्वमचाञ्चल्यं सर्वासां शुभलक्षणम् ॥ ४९ ॥

अर्थ–उत्तम प्रकारसे प्रतीतहो निर्मल अपने स्थानमें स्थिति, अमंदत्व और चांचल्यता रहितहो ये संपूर्ण नाडियोंके शुभ लक्षण जानने ।

दोषसाम्याच्च सादृश्यादनुक्तासुरुजास्वपि ।
ज्ञातव्या धमनी धर्मा युक्तिभिश्चानुमानतः ॥ ५० ॥

अर्थ–यह कितनेएक रोगोंमें नाडीकी प्रकृति लिखीहै, इस्से भिन्न अन्य समस्त रोगोंमें जैसी जैसी नाडियोंकी गति होतीहै उसको वैद्य अनुमान और युक्तिद्वारा जाने, अर्थात् जिस रोगकी जिस जिस रोगके साथ सादृश्य ताहै अथवा जिसकिसी रोगमें संपूर्ण कुपितदोषोंके साथ अन्य किसीरोगके कुपित दोषोंकी साम्यता मिले उन उन रोग समस्तोंमें नाडीकी एकविध गती होतीहै ऐसा जानना ।

नाडीदर्शनानंतरहस्तप्रक्षालन ।

नाडीं दृष्ट्वा तु यो वैद्यो हस्तप्रक्षालनं चरेत् ।
रोगहानिर्भवेच्छीघ्रं गंगास्नानफलं लभेत् ॥ ५१ ॥

अर्थ–जो वैद्य रोगीकी नाडीदेखकर हाथको जलसे धोताहै तो जिस-रोगीकी नाडी देखी उसका रोग शीघ्र नष्टहोय और वैद्यको गंगास्नानका फल प्राप्तहोय ।

तथा च ।

यो रोगिणः करं स्पृष्ट्वा स्वकरं क्षालयेद्यदि ।
रोगास्तस्य विनश्यन्ति पङ्कप्रक्षालनाद्यथा ॥ ५२ ॥

अर्थ–जो वैद्य रोगीकी नाडी देख अपने हाथको धोताहै इसकर्मसे जैसे धोनेसे कीच जातीहै इसप्रकार उसरोगीका रोग दूर होताहै ।

इति श्रीपाठकज्ञातीयमाथुरकृष्णलालसूनुना दत्तरामेण निर्मिते आयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघंटुरत्नाकरान्तर्गते नाडीदर्पणे आयुर्वेदोक्तनाडीपरीक्षावर्णनंनामचतुस्त्रिंशस्तरङ्गः ॥ ३४ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथयूनानीमतानुसारनाडीपरीक्षामाह।

नाडीनामान्तरं नब्जं यूनानीवैद्यके मतम्।
विधास्ये तत्क्रमं चात्र वैद्यानां कौतुकाय च ॥ १ ॥

अर्थ–यूनानी वैद्य नाडीको नब्ज कहते हैं उस नब्जका क्रम अर्थात् नब्ज परीक्षाको मैं वैद्योंके कौतुकनिमित्त लिखताहूं।

ह्यवानी चैव नफ्सानी रूहद्वयमुदाहृतम्।
हृदयस्थं शिरःस्थं च देही देहसुखावहम् ॥ २ ॥

अर्थ–रूह दो प्रकारकीहै एक ह्यवानी दूसरी नफसानी, ह्यवानी हृदयमें रहतीहै। और नफसानी मस्तकमें रहतीहै। ए दोनों देहधारियों-की देहको सुखदायक है।

तत्सङ्गतास्तु या नाडयः शुरियानसवः क्रमात्।
हृत्पद्मे यास्तु संलग्नाः समन्तात्प्रस्फुरन्ति ताः ॥ ३ ॥

---

१ मानसिक शिराके परिवर्तनको नाडी कहतेहैं, वह मनके प्रफुल्लित और संकुचित होनेसे चलतीहै इसका यह कारणहै कि उसके विकसित होनेसे बाहरी पवन भीतर जातीहै, इसीसे ह्यवानीरूह जो मन-में है वह प्रसन्न होतीहै। और उष्ण पवनके दूरकरनेको हृत्पद्म संकुचित होताहै, इन दोनों कारणोंसे मनुष्यके संपूर्ण देहकी चेष्टा और उसके रोग तथा स्वस्थताका ज्ञान होताहै इस नाडीके दश भेदोंसे शरी-रकी चेष्टा प्रतीत होतीहै।

प्रथमतो यह कि, यह कितनी विकसित और कितनी संकुचित होतीहै, इसके विस्तार(लंबाव) आयत (चौडाव) और गंभीरादि भेदसे नौ भेद होतेहैं, अर्थात् कितनी लंबी, कितनी चौडी और कितनी गंभीर इन तीनोंको अधिक न्यून और समानताके साथ प्रत्येकके गुणन करनेसे नौ भेद होतेहैं। जैसे १ दीर्घ २ ह्रस्व ३ समान ४ स्थूल ५ कृश और ६ समान विस्तृत ७ बहिर्गति अत्युच्च ८ अंतर्गति अति-नीच ९ उच्चनीचत्वसमान।

१ अतिलंबनाडीमें अति उष्णताके कारण रोगकी आधिक्यता प्रतीत होतीहै। २ न्यूनलंबनाडीमें गरमीके न्यून होनेसे रोगकी न्यूनता प्रतीत होतीहै, ३ समान लंब नाडीमें प्रकृतिकी उष्णता यथार्थ रहतीहै। ४ अधिक विस्तृतमें शरदी अधिक होतीहै। अतएव यह नाडी अपने अनुमानसे अधिक चौडी होतीहै।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ-उस रूहके साथ लगीहुई जो नाडी है वो दो है एक शुरियान् दूसरी असब इनमें शुरियान् नाडी हृत्पद्ममें लगरहीहै उस्से सर्वत्र स्फुरण होताहै ।

शिरोन्तर्भागसम्बद्धास्ताभिश्चेष्टादिकं भवेत् ।
श्रेष्ठो जीवनिवासोऽद्राज्ञो राज्यासनं यथा ॥ ४ ॥

अर्थ-और दूसरी असब नामक जो नाडीहै, वह शिरोन्तरभाग अर्थात् मस्तकके भीतर लगरहीहै, इन नाडियोंकरके इसदेहकी चेष्टादि होतीहै । जैसे राजा राजसिंहासनपर स्थितहो शोभित होताहै । उसीप्रकार जीवका श्रेष्ठनिवास हृदय स्थान है ।

तद्भवाधमनी मुख्या मनुष्यमणिबन्धगा ।
परीक्षणीया भिषजा ह्यङ्गुलीभिश्चतसृभिः ॥ ५ ॥

अर्थ-उन हृद्गतनाडियोंमें मनुष्यके पहुचेकी धमनी नाडी मुख्यहै । उसको वैद्य चार उंगली रखकर परीक्षा करे । अपने शास्त्रमें तीन उंगलीसे परीक्षा करना लिखाहै परंतु यूनानी वैद्य चार दोषोंको चार उंगलियोंसे देखना कहतेहैं ।

यथैणगतिपर्यायस्तद्वदुत्प्लुत्य गच्छति ।
गिजाली गतिराख्याता पित्तकोपविकारतः ।

अर्थ-जैसै मृगका बच्चा उछलता कूदता चलताहै इसप्रकार नाडीकी गतिको गिजाली कहतेहैं । यह पित्त कोप विकारको सूचित करतीहै ।

तरङ्गनाममोजःस्यान्मोजीगतिरितीरिता ।
निवेदयतिवर्ष्मस्थं वायोरुष्माणमेव सा ॥ ७ ॥

अर्थ-यूनानी जलकी लहरको मोज कहतेहैं उस मोज सदृश नाडीकी गतिको मौजी गति कहतेहैं यह देहस्थ पवनकी गरमीको जाहिर करतीहै ।

दूदस्यात्कृमिपर्यायो दूदी तस्य गतिः स्मृता ।
श्लेष्मणःसंचयं चामं प्रकटीकुरुते हि सा ॥ ८ ॥

अर्थ-दूद (कानसलाई आदि) कृमिका पर्याय है अतएव तद्विशिष्टा नाडीकी गतिको दूदी गति कहतेहैं । यह कफके संचयको और आमको प्रकाशित करतीहै ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उमल्पिपीलिकामोर उमली तद्गतिः स्मृता।
यस्य नाडी तथा गच्छेन्मृतिं तस्याशु निर्दिशेत् ॥ ९ ॥

अर्थ–उमल चैंटी (कीडी) और मोरका नामहै अतएव इन्होंकिसी गतिको उमली गति कहतेहैं। जिस पुरुषकी नाडी ऐसी अर्थात् मोर चैंटी कीसी चले वो प्राणी जल्दी मृत्युको प्राप्तहो।

अस्पिपत्रस्य पर्यायो मिन्शार इति कीर्तितः।
यथास्यात्तत्क्रमः काष्ठे मिन्शारी सा गतिर्भवेत् ॥ १० ॥
तद्वात धमनी धत्ते बाह्यान्तः शोथरोगिणः।

अर्थ–आरेका पर्याय यूनानीमें मिन्शार है वो जैसे लकडीके ऊपर चलताहै इसप्रकार नाडीके गमन करनेको मिन्शारी गति कहतेहैं। इसप्रकारकी नाडी बाहर भीतर शोथरोगीकी चलतीहै।

जन्वलफारनाम्नीया गतिर्मूषकपुच्छवत् ॥ ११ ॥
पित्तश्लेष्मप्रकोपेण धमन्याः सम्भवेत्किल।

अर्थ–जिस नाडीकी गति मूषक (चूहे) की पुच्छसदृशहो अर्थात् एक ओरसे मोटी और दूसरी तरफ क्रमसे पतलीहो उसको जन्वलफार गति कहतेहैं यह पित्तकफके कोपमें होतीहै।

माली शलाकासदृशी सूक्ष्मा धीरा बलात्ययात् ॥ १२ ॥
गत्याघातद्वयं यस्यामधस्तादङ्गुलेर्भवेत्।
जुलफिकरत्तत्स्मृता पित्तश्लेष्मदग्धप्रबोधिनी ॥ १३ ॥

अर्थ–जो नाडी सलाईके आकार अत्यंत सूक्ष्म और धीरगामिनी होय वह माली कहातीहै यह बलनाश होनेसे होतीहै और जो नाडी मध्यमांगुलिमें दोवार आघातकरे वह पित्तकफ दग्धको बोधन करतीहै इसको जुलफिकरत कहतेहैं।

मुर्त्तइद प्रस्फुरन्तीया गतिः कोष्ठस्य रूक्षताम्।
विड्ग्रहत्वं च सौदावी विचाराज्ञापयत्यपि ॥ १४ ॥

अर्थ–जिस नाडीके प्रस्फुरणसे कोठेको रूक्षता प्रगटहोवे उसको मुर्त्तईद कहतेहैं और इसीसे मलबंधका ज्ञान होताहै यह सौदावी (वादीकी) नाडीके विचारसे जाने।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इर्त्तिशा कम्पपर्यायस्तद्विशिष्टा तु या भवेत् ।
मुर्त्तइश्राम सा ज्ञेया सफरासौदाविकारयुक् ॥ १५ ॥

अर्थ–कंपको फारसीमें इर्तिशा कहतेहैं, उसके समान जो नाडीहो उसको मुर्त्तइस नाडी कहतेहैं यह सफरा (पित्त) और सौदा दोनोंके मिश्रितावस्थामें होतीहै ।

मुम्तिला पूर्त्ति तूद्दिष्टाऽसृजोस्यां मुम्तिली तु सा ।
तमःकफादधोगाया मुन्खफिज् सा प्रकीर्त्तिता ॥ १६ ॥

अर्थ–परिपूर्णको फारसीमें मुम्तिला कहतेहैं, अतएव जिस नाडीसे रुधिरकी परिपूर्णता प्रतीतहो उस नाडीकी गतिको मुम्तिली कहतेहैं जो नाडी तमोगुण वा कफसे अधोभागमें गमनकरे उसको मुन्खफिज् नाडी कहतेहैं।

ऊर्ध्वमुत्प्लुत्य या गच्छेत्किंचिन्मायुप्रकोपतः ।
शाहक्बुलन्द सा ख्याता धमनी संपरीक्षकैः ॥ १७ ॥

अर्थ–जो नाडी पित्तके प्रकोपसे उछलकर ऊपरको गमनकरे उसको नाडीके ज्ञाता वैद्य साहक्बुलन्द नामक कहतेहैं ।

चतुरङ्गुलिसंस्थानादपि दीर्घा तवीलसा ।
दराज इति पर्यायस्तस्या एव निपातितः ॥ १८ ॥

अर्थ–जो नाडी चारअंगुलसे भी अधिक लंबीहो उसको तवील ऐसा कहतेहैं और उसी नाडीका नामान्तर दराज है ।

परिमाणान्न्यूनरूपा सा कसीर समीरिता ।
अमीक निम्नगा या च अरीज आयती स्मृता ॥ १९ ॥

अर्थ–जितना नाडी परिमाण कहाहै यदि उस्से न्यूनहो उसको कसीर कहतेहैं और अधोगामिनी नाडी अमीक कहतेहैं और लंबी नाडीको अरीज कहाहै ।

यथा गतिस्तु दोषाणां धत्ते प्राज्यत्वहीनते ।
गलवे कसूर अर्क्कात तारतम्येन निर्दिशेत् ॥ २० ॥

अर्थ–दोषोंके यथागति अनुसार नाडीको बली और निर्बली जानना इनके बली निर्बली आदि नाडियोंको गलवे कसूर और अरक्कातके तारतम्यसे कहे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वाकियुल्वस्तानिर्दोषा स्वस्थस्य परिकीर्त्तिता।
इति संक्षेपतो नाडीपरीक्षा कथिता बुधैः ॥ २१ ॥
विस्तरस्तु मया प्रोक्तो भाषायां जनहेतवे।

अर्थ—स्वस्थ प्राणीकी निर्दोष नाडीको वाकियुल्वस्त कहतेहैं यह मैंने संक्षेपसे यूनानी मतानुसार नाडीपरीक्षा कहीहै इसका विस्तार मैंने भाषामें कहाहै ।

यूनानी मतानुसार नाडीकोष्टकम् ।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
गिजालि	मोजी	दूदी	मिन्शारी	जनबुल फार	नुमली	मतली	मतरकी	जुलफिकरत	बाकअफिल्वस्त
मृग शावक	तरंग	कृमि	आरा	मूंसेकी पूछ	मोरचैंटी	शिलाई	हथोडा	शोकाक्रांत समान	विषम टंकोरदेना
मृगके बच्चेके समान जो नाडी उछलती कूदती चले उसको गिजाली कहतेहैं यह पित्ताधिक्यसे होती है ।									
जो नाडी जलकी तरंगके समान गमनकरे उसको मोजी गति कहतेहैं । यह तरीको सूचित करतीहै । अथवा देहकी निर्बलताको सूचित करैहै ।									
जो नाडी कीडाके समान मंद मंद गमनकरे तो कफ और आम दोषको सूचित करतीहै । इस नाडीकी गतिको दूदी कहतेहैं ।									
जैसे लकडीके ऊपर आरा चलता इसप्रकार खरदराट लिये जो नाडी उंगलियों का स्पर्शकरे वो बाहर और भीतर सूजनको सूचित करतीहै । इस गतिको मिन्शारी गति कहतेहैं ।									
जो नाडी चूहेकी पूछसदृश गमनकरे उसको जनबुल्फार गति कहते हैं । यह कफपित्तके कोपसे होतीहै ।									
जो नाडी बैटी और मोरकी गतिके समान गमन करे उसको नुमली गति कहते हैं । ऐसी नाडी रोगीकी शीघ्र मृत्यु सूचना करतीहै ।									
जो नाडी सलाईके समान दोनों प्रांतोंमें पतली और बीचमें मोटी होकर गमन करे उसको मतली गति कहते हैं । यह निर्बलता सूचना करतीहै ।									
जो नाडी हथोडेके समान उंगलियोंको वारंवार चोट देवे उसको मतरकी गति कहतेहैं । यह अत्यंत गरमीकी सूचना करतीहै ।									
जो नाडी गमन करते करते ठहर जावे उसको जुल्फिकर गति कहतेहैं । यह दिलकी कमजोरी सूचित करतीहै प्रायःयह शोक समय होतीहै ।									
जिस नाडीका टंकोरदेना जिस वख्तमें देना उचितहै उससे पूंछही जास्ती टंकोर देवे यह श्वासाधिक्य निर्बलतामें होतीहै ।									

यूनानी भाषामें नाडीको नब्ज कहनेका यह कारणहै कि नब्जका अर्थ शिराका तडफना है वह प्रत्येक मनुष्यकी प्रकृति, देश, काल, अवस्थाओंके भेदसे समान नहीं होती, कुछ नकुछ भेद रहताहीहै वैद्य जिस स्वस्थमनुष्यकी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नाडी अनेकबार देखी होगी यदि फिर उसकी रोगावस्थाके देखेगा तो उस को उसकी नाडीका ज्ञान यथार्थ होगा, अन्यथा ज्ञान होना अति दुस्तर है।

नाडीदेखनेवालेको वा दिखानेवालेको उचितहै कि किसीवस्तुका हाथ को सहारा न देवे, न कोई वस्तु पकड रक्खीहो, तथा रोगीके हाथमें पट्टी आदि बंधनादिक न होवे, यद्यपि बहुतसे वैद्य पहुचे, कनपटी, गुदा, टकने आदि अनेक स्थानकी नाडी देखतेहैं।परंतु बहुधा हाथकी देखनेका यह कारणहै कि अन्यनाडी सब थोडी थोडी प्रगटहै शेष हाड मांसमें प्रवेश होनेके कारण अस्त होरहीहै उसजगे उंगलीयोंको स्पर्श प्रतीत नहीं होसकता परंतु हाथकी नाडी विशदहै अतएव इसपर उंगली उत्तमरीतिसे धरी जातीहै,परंतु मुख्य कारण इसका यह है कि किसी स्त्रीकी नाडी देखनेकी आवश्यकता हो वे तो वो अन्योन्य अङ्गोकी नाडी लज्जाके वश नहीं दिखा सकती, परंतु हाथके दिखानेमें किसीकोभी संकोच नहीं होता अतएव सर्वत्र हाथकी नाडी देखना प्रसिद्धहै ।

अब कहतेहैं कि, यूनानी वैद्य नाडीकी गति दोप्रकारकी वर्णन करतेहैं प्रथम इम्विसात दूसरी इन्किबाज ।

इम्विसात (बाह्यगति)	इन्किबाज (अभ्यंतरगति)
इम्विसात उसगतिको कहतेहैं जब नाडी बाहर आनकर ऊंगलियोंका स्पर्श करतीहै ।	इन्किबाज उसगतिको कहतेहैं कि, जब नाडी ऊंगलियोंका स्पर्शकर भीतरको प्रवेश करतीहै ।

दोषः खिल्त इति प्रोक्तः स चतुर्धा निरूप्यते ।
सौदा सफरा तथा वल्गंतुरीयं खून उच्यते ॥ २१ ॥

यूनानीमें दोष शब्दको खिल्त कहते हैं वह चार प्रकारकाहै जैसे सौदा (वात) सफरा (पित्त) वल्गम (कफ) और चौथा दोष खून (रुधिर) है परंतु अपने शास्त्रमें दूष्यहोनेसे इसको दोष नहीं माना यह शारीरकमें हम लिख आएहैं ।

प्रत्येकदोषमेंदोदोगुणहैंयथा ।

तत्र सौदा धरातत्वं रूक्षं शीतं स्वभावतः । पित्तमग्नेः स्वरूपन्तु सफरा रूक्षउष्णकम् ॥ २२ ॥ वल्गंवारिस्वरूपं स्यात्सकफः स्निग्धशीतलः ॥ अस्रं वायुः खून इति स्निग्धोष्णं तेषु तद्वरम् ॥ २३ ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तहां सौदा अर्थात् वातमें पृथ्वीतत्व अधिकहै अतएव वातस्वभावसेही रूक्ष और शीतलहै पित्तमें अग्नितत्व विशेषहै अतएव सफरा (पित्त) रूक्ष और उष्णहै बल्गम (कफ) में जलतत्व अधिक होनेसे स्निग्ध शीतलगुण वालाहै खून (रुधिर) में वायुतत्व अधिक होनेसे स्निग्ध और उष्णहै अतएव अन्य दोषोंकी अपेक्षा यह रुधिर श्रेष्ठहै।

इस प्रकार दोषोंके गुणोंका विचारकर उक्त नाडीके लक्षणोंसे मिलाकर द्वंद्वज गुण अपनी बुद्धिसे कल्पना करै।

जैसे जो नाडी दीर्घ और स्थूलहो उसको गरम और तर गुणविशिष्ट होनेसे रुधिरकी जाननी और जो नाडी दीर्घ तथा पतली होवे उसमें गरम और शुष्क गुण होनेसे पित्तकी जाननी जो ह्रस्व और मोटीहो वह शरद और तर गुणवाली होनेसे कफकी जाननी और जो नाडी ह्रस्व और पतली होवे उसमें शरद और खुष्क गुणहोनेसे वातकी नाडी जाननी चाहिये।

इम्वसातके भेद।

तवील (दीर्घाकार)			अरीज (स्थूलाकार)			उमक (बहिर्गत्याकार)		
मुअदिल समान ३	कसीर ह्रस्व २	तवील १ दीर्घ	अरीज स्थूल	ज्यैयकवा जीक (कृश)	मुअदिल समान	सुशरिफ उमक बाहेर्गत	मुनखफिज अंतर्गत	मुअदिल समान
यदि नाडी चार अंगुलसे कुछभी न्यूनाधिक नहो किंतु समहो तो उसप्राणीके शरदी गरमी समान जाननी।								
और चार अंगुलसे न्यून होवे तो वो शरदीके लक्षणवाली जाननी अर्थात् ऐसे पुरुषके शरदी जानना।								
जो नाडी पहुंचेसें भुजाके प्रति चार अंगुलसे अधिक लंबी प्रतीतहो तो वो गरमीके लक्षणवाली जाननी।								
यदि नाडी तर्जनी उंगलीसे लेकर कनिष्ठिका पर्यंत स्थूल प्रतीत होवे तो वो तर अर्थात् जैसे रुधिर और कफमें।								
जो नाडी पतली प्रतीतहोवे उसको रूक्ष अर्थात् खुष्क कहेतेहैं। जैसे पित्त और वात कोपमें होतीहै।								
जो नाडी न स्थूलहो न कृशहोवे किंतु समानहो उसमें तरी ठीकठीक होतीहै।								
जो नाडी अत्यंत उछलकर बलपूर्वक उंगलियोंको स्पर्शकरे उसमें गरमीकी आधिक्यता प्रतीत होतीहै।								
जो नाडी हद्से कम ऊंची उठे अर्थात् धीरे उंगलियोंको स्पर्शकरे उसमें गरमीकी न्यूनता प्रतीत होतीहै। किंतु शरदीको द्योतन करतीहै।								
जो नाडी न बहुत उभरी हुईहो न बहुत बिलकुल दबी हुई हो किंतु समानहो इसमें गरमी ठीक होतीहै॥								

अब जानना चाहिये कि हिकमतमें दोष चारप्रकारके कहे हैं यथा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अन्यचक्र ।

जो नाडी उंगलियोंके मांसमें जोरसे धक्केदेकर उंची उठावेतो हृदयकी प्रबलता जाने ।	शीघ्रचारिणी	सबल	१
और यदि नाडी उंगलियोंको स्पर्शकर दबजावे तो हृदयकी दुर्बलता जाननी ।	मंदचारी	दुर्बल	
और जो नाडी न बहुत जोरसे लगे न अत्यंत धीरे लगे वो दिलकी समताको प्रगट करतीहै ।	समता	मोतदिल	
जो नाडी शीघ्र आवा गमनकरे वो देहमें गरमीकी विशेषता द्योतन करतीहै ।	समता	सरी	२
और धीरे धीरे आवा गमनकरे वो देहमें शरदीकी आधिक्यता द्योतन करतीहै ।	मंदचारी	वती	नाडीका विलंबहीना
जो नाडी मध्यम चालसे आवा गमनकरे वो शरदी गरमीकी समानता प्रगट करतीहै ।	शीघ्रचारी	मोअदिल	
जो नाडी दाबनेसे सहज दबजावे उसको तरलिग्ध कहतेहैं, इसे फारसीमें लीन कहतेहैं ।	नरम	मृदु	३ आकृति
और जो दबानेसे न दबे वह खुश्कजानी उसको फारसीमें सख्त कहतेहैं ।	सख्त	कठिन	
जिसमें मध्यम गुणहो अर्थात् न बहुतकठोर न बहुत नम्र वो मोतादिल जाननी ।	मोअदिल	सम	
जो नाडी मोटी और शीघ्र चलतीहो वह रुधिर और मवादसे भरी हुई जानना अथवा जीवसे परिपूर्ण जानना ।	मुमतिला	रुधिरपूर्ण	४ प्रमाण
और जो नाडी खाली होतीहै वो मंद और पतली होतीहै उसमें थोडा रुधिर और मवाद जानना ।	खाली	स्वल्परुधिर	
और जब नाडी न भरीहो न खालीहो वो समान कहलातीहै । इसमें मवाद ठीक होताहै ।	मोदिल	समता	
जिस समय नाडीका स्पर्श गरम प्रतीतहो तब रुधिरमें ज्वर वा गरमी जानना ।	गरम	उष्ण	५ स्पर्श
और जिस समय स्पर्शमें शीतलता प्रतीतहो तब रुधिरमें शरदीकी आधिक्यता जाने ।	सरद	शीत	
जिस समय नाडीमें शीत उष्णता समान प्रतीतहो उसको सम कहतेहैं ।	मोअदिल	सम	
जो नाडी कमसे कम ३५ वार टंकोर देके ठेहर जावे वो साध्यहै ।	उस्तवा	पूर्वसदृश	६ साध्यासाध्य
जो ३५ वार टंकोर देनेमें कई वार टूटजावे अर्थात् ठहर कर चले वो असाध्यहै ।	इख्तिलाप	विपरीत	
जो बहुतवार न टूटे किन्तु अल्पवार टूटकर फिर शीघ्र चलने लगे उसको याप्य जानना ।	मोअदिल	समता	
जो नाडी उंगलियोंको स्पर्शकरके शीघ्र नीचे चली जावे वो निर्बल जाननी ।	मुत्तवार	अत्यंत	७ स्थिति
जो नाडी उंगलियोंको कुछकालतक स्पर्शकरे उसको बलवान् कहतेहैं ।	मुतफावत	धैर्य	
और जो समान रीतिसे उंगलियोंका स्पर्शकरे उसको समान स्थितिवाली जाननी ।	मोदिल	समता	

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रत्येक प्रस्तार के नौ नौ भेद होतेहैं लंबाव चौडाव और गहराई तीनो प्रमाणको हकीम लोग कुतर कहतेहैं।

उन दो तीन कुतरोंको एकत्र करो अर्थात् प्रस्तार करो तो दोप्रस्तार २७ सत्ताईस सत्ताईस के होतेहैं जैसे आगेके दोनों चक्रोंमें लिखेहैं दोनो प्रस्तार करनेकी यह रीतिहै कि तीनप्रकारके लंबावको तीन प्रकारोंकी चौड़ाईके साथ गुणदेवे तो नौ होवेगी इसीप्रकार लंबाई और गहराइयोंकों तथा चौडाई और गहराईकी तीन तीन प्रकारोंके साथ मिलानेसे नौ नौ भेद होतेहैं इस प्रकार तीनोंके सत्ताईस सत्ताईस भेद होतेहैं इसका उदाहरण आगे चक्रोंसे समझाना चाहिये इस गुणनको फारसीवाले सनाई कहतेहैं।

नाडीनां प्रस्तारचक्रम्।

सनाई (द्विगुण)									सलासी (त्रिगुण)								
द स	द क	द य	ह स	ह क	ह य	य स	य क	य य	द स व	द स अं	द स य	द क व	द क अं	द क य	द य व	द य अं	द य य
द व	द अं	द य	ह व	ह अं	ह य	य व	य अं	य य	ह स व	ह स अं	ह स य	ह क व	ह क अं	ह क य	ह य व	ह य अं	ह य य
स व	स अं	स य	क व	क अं	क य	य व	य अं	य य	य स व	य स अ	य स य	य क व	य क अं	य क य	य य व	य य अं	य य य

इन दोनों चक्रोंमें जो अक्षर हैं उनमें द से दीर्घ, ह सें ह्रस्व, और यसे यथार्थ कहिये समान जानना उसीप्रकार स से स्थूल, क से कृश, व से बहिर्गत असे अंतरगतकी समस्या जानलेनी चाहिये।

इति बृहन्निघण्टुरत्नाकरे नाडीदर्पण यूनानीमतानुसारं नाडीपरीक्षणं तरंगः।

PULSE EXAMIN.

अथैंगलंडीयमतेन नाडीपरीक्षा।

ऐंगलंडीयभाषायां नाडी पल्सेति शब्दिता। तस्याः परोक्षापरोक्षभेदेन द्विविधा गतिः ॥ १ ॥ द्रष्टुर्याङ्गुलिसंस्पर्शे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

परोक्षा न करोति सा । करोति या साऽपरोक्षांगुलिस्पर्शञ्च पश्यतः ॥ २ ॥

अर्थ–इंग्लंड अर्थात् अँगरेजीमें नाडीको पल्स Pulse कहतेहैं वह दो प्रकारकी है एक परोक्ष और दूसरी अपरोक्ष तहां जो नाडी देखनेवालेकी ऊँगलियोंका स्पर्श न करे वह परोक्ष कहातीहै और जो उंगलियोंका स्पर्श करे वो अपरोक्ष अर्थात् प्रत्यक्ष नाडी कहातीहै ।

उत्थानापेक्षया पुंस आसने तदपेक्षया । शयने नाडिका-वेगो मन्दी भवति नानृतम् ॥ ३ ॥ सायंतनाद्धि समया-त्प्रातःकालेऽधिका गतेः । वेगसंख्या भवेन्निद्राकालेह्रासं च गच्छति ॥ ४ ॥

अर्थ–खडे होनेकी अपेक्षा (वनिसवत) बैठनेमें और बैठनेकी अपेक्षा सोनेमें नाडीकी गति घटजातीहै । उसीप्रकार सायंकालकी अपेक्षा प्रातः कालमें नाडीकी गति बढजातीहै । और निद्रामें नाडीकी संख्या घटजातीहै ।

भोजनस्याथ समये वेगसंख्या विवर्द्धते । अहिफेनसुरादी-नामुष्णानां यदि भोजनम् ॥ ५ ॥ बुभुक्षावसरे नाडीगते-र्वेगो ह्रसत्यलम् । एषा नाडीगतेर्वेगचर्या सन्मान्य-तोमता ॥ ६ ॥

अर्थ–यदि अफीम मद्य आदि गरमवस्तु खाय तो उस गरम भोजनके कारण नाडीकी संख्या बढजातीहै और अत्यंत शीतलवस्तू खानेसे नाडी-की संख्या न्यून होजातीहै, यह अर्थांशसे जाना जाताहै । उसीप्रकार भोजनके समय नाडीका वेग मंद होजाताहै, यह नाडीकी सामान्य गति संख्या कहीहै ।

नाडीकी व्यवस्था जाननेके लिये वैद्यको प्रथम इतनी वस्तुओंका जा-नना अति आवश्यकहै । जैसे प्रथम नाडी देखनेकी विधि दूसरे आ-रोग्यावस्थाकी नाड़ी तीसरे रोगावस्थाकी नाड़ी और चतुर्थ नाड़ी देखनेका यंत्र ।

१ नाडीदेखनेकी विधि–नाड़ी देखनेके जो नियम वैद्योंने निश्चित

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करराखेहैं, यदि उनके अनुसार न देखी जावे तो हम जानतेहैं कि नाडी का यथार्थ ज्ञान होना अति असंभवहै। अतएव अब उन नियमोंको वर्णन करतेहैं।

प्रथम--वैद्य या रोगी कहींसे चलकर आया हो तो उचितहै कि, थोडी देर विश्राम लेकर फिर नाडी देखे या दिखावे, तथा परिश्रमकी अवस्थामें और शोक विचारके समयभी नाडी न देखे ऐसे समयकी नाडी विश्वास योग्य नहींहै।

दूसरे-रोगीको बिठलाकर या लिटाकर यदि कोई आवश्यकता होयतो खडी करके रेडिअल आर्टेरी Radial Artery (जो पहुचेमें अंगूठेकी जडमें त्वचाके भीतरहै) उसपर बराबर तीन उंगली रखकर नाडी देखना, परंतु कभी पहुचेकी देखना असंभव होय तो अन्यान्य स्थानकी देखे, जैसे मस्तक संबंधी रोगमें कनपटीकी नाडी, तथा गठियामें पहुचेपर पट्टी बँधीहो अथवा दोनों हाथ कटगए हो तो प्रगंड (बाजू) की नाडी देखे, और कभी कभी पैरमें टकनेके नीचे भीतर की तरफ पोस्टीरीअर टीबीअल Posteriar Tibial नाडीको देखते हैं।

तीसरे-वैद्यको रोगीके दोनों हाथोंकी नाडी देखनी चाहिये, इसका यह कारणहै कि ऐसा देखा गयाहै, कि एक ओरकी नाडी दूसरी नाडीसे बडी होतीहै। और यहभी स्मरण रखना कि,दहने हाथकी बायेंहाथसे और वामहाथकी दहने हाथसे नाडी देखे इसमें सरलता रहतीहै।

चतुर्थ-स्त्रीकी नाडी दहने हाथकी अपेक्षा वामहाथकी उत्तमरीतिसे विदित होतीहै इस्से प्रतीत होताहै कि, स्त्रियोंकी बाँए हाथकी नाडी कुछ बडी होतीहै। हिंदुस्थानी वैद्य जो स्त्रीके वामकरकी नाडी देखतेहैं कदाचित् उसका यही कारण न होय।

पांचवे-नाडीकी स्पन्दन संख्या अर्थात् शीघ्रगति और मंदगति जाननेके पश्चात् उसके बलाबल जाननेको कुछ दबाकर फिर ढीली छोडदेवे, जिससे यह प्रतीत होजावे कि, नाडी दबानेसे कितनी दबतीहै। परन्तु इतनी न दबावे कि जिस्से रुधिरका भ्रमण बन्दहोजावे, केवल इतनी दाबे कि,जिस्से नाडीकी तड़फ़ प्रतीत होती रहे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

छठे-धैर्यरहित पुरुषोंकी या अत्यंत डरपोककी नाडी देखेतो उनका ध्यान वार्त्तालापमें लगाय लेवे, इसका यह कारण है कि ऐसे मनुष्योंके तुच्छ-कारणसे हृदयकी खटक न्यून होजातीहै। अतएव नाडीका वृत्तान्त ठीक ठीक निश्चय नहीं होता।

अब कहतेहै कि रुदन करनेसे और मचलनेसे बालकोंके पहुचेकी नाडी-का देखना कठिनहै। इसवास्ते उनको गोदीमें बैठाल खिलौने आदिका लोभ देके उनके छातीपर कान लगाकर हृदयकी धड़धडाटका निश्चय कर-ना। यदि नाडीकाही देखना जरूरी होवे तो निद्रा अवस्थामें देखनी चाहिये

सातमें-नाडी देखनेके समय यहभी अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि, नाडीपर किसी प्रकारका दवाब नहो जैसे बंध, अथवा तंगी, या रसौली वा घोट्टू आदिका सहारा नहोवे। क्षणिक और मानसिक रोगोंमें अनेकवार नाडी देखनी चाहिये कि, जिस्से रोग भलेप्रकार समझमें आयजावे।

आरोग्यावस्थाकी नाडी।

मध्यम श्रेणीके युवापुरुषोंकी नाडी आरोग्यावस्थामें साथ प्रबंधके कुछ दबनेवाली और कुछ भरीहुई होतीहै। परंतु चिह्न भेद और अवस्था तथा स्वभावादि भेदसे नाडीमें अंतर होजाताहै, और बालिकाओंकी नाडी पुरु-षोंकी अपेक्षा कुछ छोटी होतीहै। और शीघ्रचारिणी होतीहै। दंभी प्रकृति-बालोंकी नाडी भरीहुई, कठोर और शीघ्रगामिनी होतीहै। कोमल स्वभा-ववाले मनुष्योंकी नाडी धीरे धीरे चलेहै और नम्र होतीहै। वृद्धावस्थामें कठोर होतीहै।

नाडीकी स्पन्दनसंख्या (जिनका निश्चय करना नाडीकी और अवस्था-ओंसे सुगमहै) सदैव हृत्पद्मके संकुचित खटकेके समान होतीहै। इस्से क-दापि अधिक नहीं होती, परंतु अपस्मारआदि चित्तके रोग और मूर्च्छा आदिमें एक दो गति न्यून हो जातीहै।

छोटे बालककी नाडीके गति अधिक होतीहै, फिर जैसे जैसे अवस्थाकी वृद्धि होतीहै उसी प्रकार क्रमसे नाडीकी स्पन्दन संख्या न्यून होती जातीहै परंतु वृद्धावस्थामें फिर कुछ कुछ बढतीहै।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अवस्थानुसारनाडीकीगति	
गतिप्रमाण	अवस्था
१४०	सद्यःप्रसूत बालककी
१२० सें १३० तक	दूधपीनेवाले बालककी
१००	५वर्षसे६वर्षतकके बालककी
९०	१५वर्षतकवाले नवयुवावस्थामें
७० से ७५	३५ वर्षतक अर्थात् युवावस्थामें
७०	३५वर्षसे लेकर५० वर्षवालोंकी अर्थात् वृद्धावस्थामें
७५ से ८० तक	अतिवृद्धावस्थामें

इस चक्रमें जो नाडीकी संख्या है वह आरोग्य पुरुषके लिये ठीकहै। परंतु रोगावस्थामें न्यूनाधिक होजातीहै। यदि नैरोग्य पुरुषकी नाडीकी गति १ मिन्टमें ७२ बार हो और स्त्रीकी ८२ बार होय तो ठीक जाननी, स्त्रीकी १० गति पुरुषसे सदैव अधिक होतीहै। और गर्मी, सूजन, ज्वर, अतिदुर्बलता जागना, प्लेथोराके प्रथमदर्जासेलार रुधिर, क्रोध, जोश आदिमें ७० या अस्सीसे १०० या १२० वरंच २०० तक नाडीकी गति संख्या प्रत्येक मिन्टमें हो जातीहै एवं शरदी आलस्य, निद्रा, कुछ थकावट, क्षुधामें, हवाके दबावमें, बेफिकरीमें, इत्यादि कारणोंसे नाडीकी गति ऐसी न्यून होजातीहै कि प्रत्येक मिन्टमें ६०, या ६५ तकही रह जाती है।

रोगावस्थाकी नाडी।

रोगावस्थामें नाडीकी गति संस्था और अन्य अन्य लक्षणोंमें विशेष अंतर होताहै जैसे आगे लिखतेहैं।

ज्वर, प्रदर वमन, विरेचन, वुहरान, इत्यादि रोगोंमें नाडी इतनी शीघ्र चलतीहै कि गणना करना कठिन होजाताहै यदि ज्वरावस्थामें अकस्मात् नाडी मंदपडजावे तथा उसके साथ अन्य अशुभ लक्षणोंकी आधिक्यता होवे तो उसप्राणीके मस्तकमें किसीप्रकारके विघ्नसैं सन्ता या पक्षाघात होकर रोगीके मरनेका भय रहताहै।

गति संख्याके सिवाय नाडीमें जो वृत्तान्त निश्चय होताहै, उसको आगे कहतेहैं।

नाडीकीअँग्रेजीसंज्ञा।

आनन्दादितरावस्थास्वानंदापेक्षया गतेः।
वेगसंख्या वर्द्धते सा नाडीन्फ्रोक्रैटशब्दिता॥ १॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ–आनंदकी अपेक्षा जिस नाडीकी संख्या अधिक वेगवान् हो उसको अंग्रेजीमें Frrehquent फ्रीक्वेंट कहतेहैं ।

आनन्दादितरावस्थास्वानन्दापेक्षया गतेः ।
वेगसंख्या ह्रसति सा नाडीन्फ्रीक्वैंटशब्दिता ॥ २ ॥

अर्थ–जिस नाडीमें आनन्दकी अपेक्षा स्पन्दन संख्या न्यून होय उस मंदचारिणी नाडीको अँग्रेजीमें Infreequent इन्फ्रीक्वेंट कहतेहैं ।

चिरकालधृतायां च नाड्यां संख्या न वर्द्धते ॥
न वा ह्रसति वेगस्य सा च रैग्यूलराभिधा ॥ ३ ॥

अर्थ–जिस नाडीपर बहुतदेरीतक हाथधरनेपरभी कुछ न्यूनाधिक्य प्रतीत न होय उस नाडीको अँग्रेजीमें Regular रेग्यूलर कहतेहैं ।

चिरकालधृतायाश्च नाड्यां संख्या विवर्द्धते ॥
मन्दी भवति चावस्था सैरैग्यूलरशब्दिता ॥ ४ ॥

अर्थ--जो नाडी बहुतदेरी हाथ रखनेसे कुछ न्यूनाधिक्य प्रतीतहोय उस अवस्थाको डॉक्टरलोग Irregular इरैग्यूलर कहतेहैं ।

सकृदङ्गुलिसंस्पर्शादन्तर्धानन्तु गच्छति ।
इन्टर्मिटेंटाभिधा साऽसृक्कफाशयदूषिणी ॥ ५ ॥

अर्थ–जो नाडी एकवार उँगलियोंका स्पर्शकर छिपजावे, वह रुधिर और कफाशयको दूषितकर्त्ता हृदयसंबंधी व्याधिको उत्पन्नकरे इसको इंग्लंडीयवैद्य Intermittent इन्टर्मिटेंट कहतेहैं ।

यदा रक्तेन पूर्णत्वमापन्ना नाडिका भवेत् ।
तदा फुल्लशब्दविख्याताथवा लार्जेति विश्रुता ॥ ६ ॥

अर्थ–जिस समय नाडी रुधिरसे परिपूर्ण होतीहै उसको डॉक्टरलोग फुल् या Full Large लार्ज ऐसा कहतेहैं ।

यस्यां हृत्कमलोच्छ्वासाद्रक्तमल्पं वहेत्तु सा ।
रिक्तानाडी स्माल संज्ञा समाख्याताङ्गभाषया ॥ ७ ॥

अर्थ–जिस समय हृदयसे रुधिर अल्प प्रगटहोय उस रिक्तनाडीको पाश्चिमात्य वैद्य Egual स्माल ऐसा कहतेहैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

या वै गुणवदातन्वी नाडी क्षीणत्वशंसिनी।
रक्ताऽल्पतां द्योतयन्ती सा थ्रेडीपल्ससंज्ञिता ॥ ८ ॥

अर्थ–जो नाडी डोरेके माफिक बहुतबारीक प्रतीत होय वह क्षीणता और रक्तकी अल्पताको प्रकाश करने वालीको Thready Pulse थ्रेडीपल्स ऐसा कहतेहैं।

अङ्गुलीभिर्यदा नाडी पीडितापि न नम्रताम् ।
व्रजेत्तदातिरूक्षत्वद्योतिनीहार्डशब्दिता ॥ ९ ॥

अर्थ–जो नाडी उँगलियोंके पीडनसेभी अर्थात् दाबनेसेभी नम्र न होवे वो रूक्षताकी द्योतनकरता नाडीको डॉक्टरजन Hard हार्ड ऐसा कहतेहैं।

अङ्गुलीभिर्यदा नाडी पीडिता नम्रतां व्रजेत् ।
सार्द्रत्वद्योतिनी मृद्वी साफ्टशब्देन शब्दिता ॥ १० ॥

अर्थ--जो नाडी उँगलियोंके दबानेसे दबजावे उस मृदुनाडीको साफ्ट ऐसा कहतहैं यह आर्द्रत्वको द्योतन करतीहै।

प्रतिस्पन्दं शीघ्रतायां संख्या यस्या न वर्धते ।
सकृच्छैथ्यधरा तूर्णगा नाडी क्रीकशब्दिता ॥ ११ ॥

अर्थ–जिस नाडीमेंकी प्रत्येक तडफ शीघ्रभी होय परंतु स्पन्दन संख्या न बढे किंतु एकबारही जल्दीकरे उस तूर्णगामिनी नाडीको इंग्लैंडीय वैद्य Quick क्रीक् ऐसा कहतेहैं यह निर्बलताको द्योतन करतीहै।

यस्या मन्दगतिर्या च नाडी पूर्णा भवेत्तु सा ।
स्लोशब्दशब्दिता ज्ञेया रक्तकोपप्रकाशिनी ॥ १२ ॥

अर्थ–जो नाडी मंदगतिहो और परिपूर्णहो वह रुधिरकोपके प्रकाश करनेवाली नाडीको इंग्लैंडीय वैद्य Slow स्लो कहते हैं।

खूनकी गतिके कारण नाडीके अनेक भेद हैं जैसे आर्योंटा Poorta Water Harm वटिरहेर्म Bounding बौंडिंग् Lavauering लेवोंरंग Thriling Pulse थ्रिलिंग् पल्स Reaboubled रिडबल Dicrratores या डाईक्रोटस और इसीटेटआदिहैं। जोलहरके समान-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उंगलियोंको लगकर हटजावे उसको जर्किंग् अर्थात् झटकेदार नाडी कहते हैं। किँवारोंकी रिगडके माफिक आर्योटा होती है। उछलनेवाली नाडीको बौंडिंग् कहते हैं, जो नाडी काँपती हो उसको थ्रिलिंग्पल्स कहते हैं। इसी प्रकार अन्य सब नाडीयोंकी गतिको बुद्धिवान्नें डॉक्टरद्वारा और उनके ग्रंथों-से जाननी इसजगे ग्रंथविस्तारके भयसे नहीं लिखी।

नाडीदर्शक यंत्र।

नाडी देखनेके लिये अँग्रेजी डॉक्टरोंने एक यंत्र निर्माण करा है उसको अँग्रेजी बोलीमें स्फिग्मोग्राफ़ Sphygmograph कहत हैं। इसमें अनेक टुकडे होते हैं विना दृष्टिगोचर हुए उनका समझना मुष्किल् है इसलिये उस यंत्रकी तसबीर जो इस नाडीदर्पणग्रंथके पिछाडी है उस्से समझना उसके आवश्यक विभागों कुछ इसजगे वर्णन करते हैं।

अ–पटलीके चलाने और रोकनेकी खूटी।
क–ताली लगानेकी कमानी।
च–नाडीके कम अधिक दबाव करनेका गोलाकार चक्रविशेष।
ट–कज्जलसे रंजित काग़ज़ धरनेकी जगह।
त–चिह्नित होनेके पश्चात् जो काग़ज़ निकलता है।
प–जिनसे काग़ज़पर चिह्न होते हैं वो सूई।

इस यंत्रके लगानेकी यह विधि है कि जब हांतीदांतवाले स्थानको रेडिय-लूपर धरकर यंत्रको काममें लाते हैं तो नाडीकी तडफ कमानीको लगती है जिसके द्वारा सूईसे काग़ज़पर लहरदार रेखा प्रगट होती है कि, जिनसे हृदयके घडनेका हाल और रुधिरभ्रमणका वृत्तान्त उत्तमरीतिसे प्रतीत होता है। प्रत्येक लहरमें एक रेखा उठनेकी होती है फिर मुडनेकी और फिर उतरने की तथा उतरनेकी लहरमें दो लहर प्रगट होती है इन लहरोंकाभी चिह्न स्फिग्मोग्राफ यंत्रमें लिखाहै सो देखलेना।

खडीरेखा हृदयके संकोच होनेसे होती है और मुरडनेका कोना नाडियों-के किसीप्रकार संकोचसे होताहै और जिससमय हृदयके संकोचसे रुधिर अयोर्टा में पहुँचताहै तो पहली रेखा प्रगट होती है फिर अयोर्टाके किंवाड बंदहोने से दूसरी लहर खांचेतक बनतीहै अयोर्टाके सुकडनेके पीछे रुधिर आगेको

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नाडीयोंकी व्यवस्था	संस्कृतनाम	अँग्रेजीअक्षरोंमें नाडीके नाम	अँग्रेजी नाम	संख्या
हृदयके खटकाके संख्यानुसारनाडी दोप्रकारकीहै पहली फ्रीक्वेंट इसमें आरोग्यअवस्थाकी अपेक्षा गतिसंख्या अधिक होतीहै ।	शीघ्रचारिणी	Friqune	फ्रीक्वेंट	१
दूसरी इन्फ्रीक्वेंट इसकी दशा फ्रीक्वेंटसे विपरीत होतीहै यह स्त्रियोंके वातगुल्म रोगमें होतीहै ।	मंदगामिनी	infriquent	इन्फ्रीक्वेंट	२
हृदयकी गतिके प्रबंधानुसारभीनाडीकीदोअवस्था पाई जातीहै एकरेग्यूलर,नाडीन्में क्रमानुसार रुधिर जाने-वाली नाडीको रेग्यूलर कहते हैं इसपर हाथ रखनेसे गति एकसी मालूमहो और कभी बीचमें अंतर नहीं पडता ।	सावधानता सूचक	Regulars	रेग्यूलर्स	३
दूसरी इर्रेग्यूलर अर्थात् नाडीन्में क्रमके विपरीत रुधिर जाय इसपर हाथ रखनेसे गति एकसी प्रतीत नहीं होती और बीचमें अंतर पडजाताहै रोगावस्थामें नाडीका सम्बंधित अर्थात् क्रमपूर्वक चलना अच्छाहै।	असावधानता सूचक	Irregulars	इर्रेग्यूलर्स	४
जिस नाडीके तडफ होनेमें जितना काल जाताहै उससे अधिक होजाय अर्थात् दूसरी गतिकाभी काल व्यतीत होजावे उसको इंटरमिटेंट कहतेहैं परंतु गतिके भेदसे यह दो प्रकारकीहै एक रेग्यूलर इंटरमिटेंट और दूसरी इर्रेग्यूलर इंटरमिटेंट है ।	सांतारिक	Idtermittent	इंटरमिटेंट	५
मस्तकके मूजनेमें अन्यकारणोंसे नाडीमें अधिक रुधिर पहुचे और उंगलियोंके नीचे नाडीका उत्प्लवन अधि-क प्रतीतहो तो उसनाडीको फुल् या लार्ज कहतेहैं यह अधिक रुधिर वृद्धिमें अथवा कठोररोगोंमें प्रतीत होतीहै।	परिपूर्ण	Full या Large	फुल् या लार्ज	६
जो नाडी फुल् लार्जके विपरीतहो अर्थात् नाडियोंमें अल्प रुधिर पहुँचे और नाडीका उत्प्लवन उंगलि-योंको थोडा प्रतीतहो उसनाडीको स्माल अर्थात् बारीक नाडी कहतेहैं ।	रिक्त	smal	स्माल	७
जब नाडी अत्यंत सूक्ष्मसूतके समान हो तो उसको अँग्रेजीमें थ्रेडीपल्स कहतेहैं यह रुधिरकी न्यूनावस्था अथवा दुर्बलतामें देखी जाती है ।	सूक्ष्मतर	Thaeadvpnlse	थ्रेडीपल्स	८
नाडीकी दिवारकी लचकके तुल्य नाडीकी दोगति होतीहै एक हार्ड अर्थात् कठोर इसे किंचिन्मात्र भी दबानेसे उंगलियोंको कठोरता प्रतीत होती है यह नाडीकी अधिक लचकके कारण होतीहै ।	कठिन	Hard	हार्ड	९
द्वितीय साफ्ट या नम्र जिसकी दशा हार्ड नाडीके विपरीत होतीहै यह नाडीके अनुरोध (नाडीकीदि-वार) की लचकसे और देहके निर्बलतामें पाई जाती है	मृदु	Soft	साफ्ट	१०
नाडीकी गतिमें जो समय व्यतीत होताहै उसके अनुसार नाडी द्विविध होती है एक क्वीक् अर्थात् शीघ्रचारिणी नाडीकी प्रत्येक गति शीघ्र शीघ्रहो परंतु एक अथवा मानसिक रोगोंमें जिनमें स्वभाव दुष्टहो उनमें पाईजातीहै।	शीघ्रगामिनी	quiek	क्वीक्	११
जो क्वीक् नाडीके विपरीतहो अर्थात् सुस्तहो उसको स्लो नाडी कहतेहैं ।	धीरगामिनी	Slow	स्लो	१२

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बढजाता है और दूसरी लहर परिपूर्ण होकर एकवार हृदयके खटकेकी चिह्नि तरेखा संपूर्ण होजातीहै ।

इति नाडीदर्पणेऐंग्लैंडीयनाडीपरीक्षावर्णनं नाम पञ्चमावलोकः ।

इति श्रीमाथुरकृष्णलालपुत्रदत्तरामेण सङ्कलिते आयुर्वेदोद्धारे बृहन्निघण्टु-रत्नाकरान्तर्गते नाडीदर्पणे ऐंग्लैंडीयनाडीपरीक्षावर्णनं नाम पञ्चमावलोक-श्चाष्टत्रिंशस्तरङ्गः ॥ ३८ ॥

समाप्तोऽयं नाडीदर्पणाख्यो ग्रंथः ।

NADIDARPAN.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA .

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA